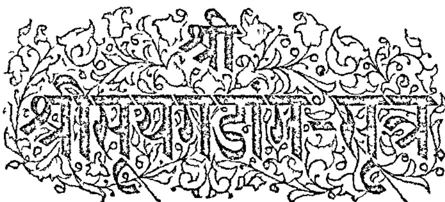


॥ द्वितीयांगम् ॥

अर्हद्ज्ञान क्षीराब्धि वीचिबिंदु प्राशित गणधरोद्गार रूपम्

टीका, दीपिका तथा बालावबोध सहितम्

स्वमत्यनुसार शुद्ध करीने

श्री मकसुदाबादनिवासी बाबुसाहेब

राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादुरनी आज्ञाथी

श्री मुंबापुरीमध्ये

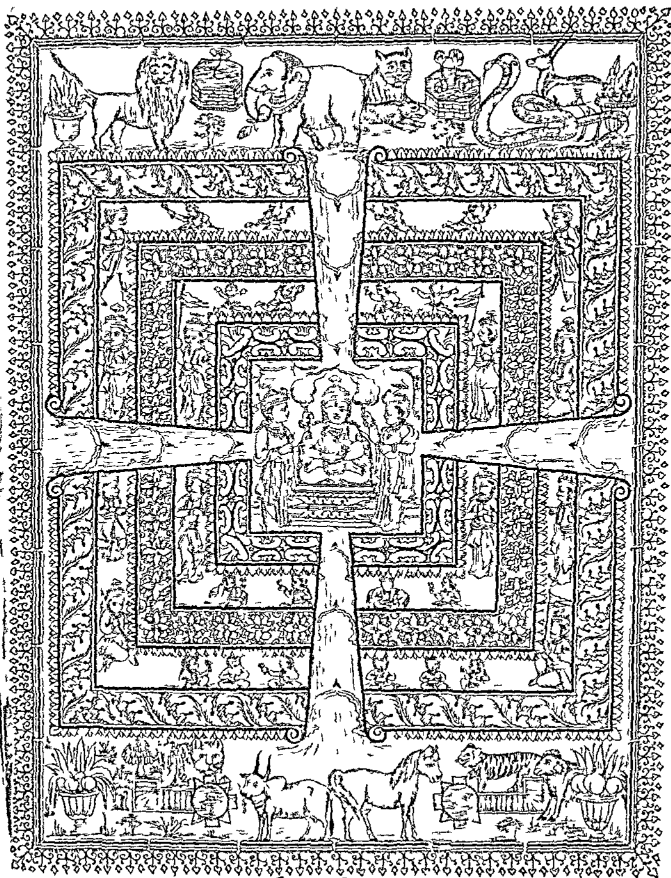
शा० भीमसिंह माणकाख्य श्रावके प्रीतिपूर्वक

“ निर्णयसागर ” मुद्रायंत्रना अधिपति जावजी दादाजीनी पासेथी

छपावीने प्रसिद्ध कर्यु

संवत् १९३६–शके १८०२

मिति पौष शुद पूर्णिमा भौमवासर



सुररचित श्रीजिन समवशरण

प्रस्तावना.

आ असार संसार समुद्रनेविषे सतत पर्यटन करनारा प्राणीउने जन्म मरणादिक अत्युग्र दुःखोमाथी मुक्त करे एवो तो मात्र एक धर्मज छे अने एमज सर्व दर्शनीना शास्त्रमां पण कहेलु छे, एवो जे धर्म तेनुं मूल तो सर्वांश युक्त दयाज छे कहेलु छे के "अहिंसा परमो धर्मः" दयावडे धर्मनी प्राप्ति थाय छे, अने परिपूर्ण धर्म प्राप्त थया पछी जीव मोक्षगामी थाय छे, माटें दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ छे. सर्व दर्शनीउ दयानो उपयोग करेछे खरा, परतु सर्वांशें करता नथी एटलाज माटे तेउने धर्म पदार्थनो जेवो जोइये तेवो लाभ थतो नथी दयानो सर्वांशे उपयोग तो मात्र जैन दर्शनमां स्वीकार्यो छे तेथीज जैनदर्शन धर्मधुरिंधर कहेवाय छे. माटें दयानो सर्वांशें उपयोग करवानी अगत्य छे, जेम काई भोजनार्थे पक्वान्न करवु होय तो तेमा घृत, पिष्ट, शर्करादिक अगत्य वस्तुनु एकत्रपणुं यथाविधि थाय त्यारेज ते पक्वान्न स्वादिष्ट कहेवाय, पण जो उपर कहेली वस्तुउमाथी एक पण वस्तुनु उंगा पणु होय तो ते पक्वान्न स्वाद रहित बने माटें दया पदार्थ सर्वांशे पलाय तोज तेथी धर्मोपलब्धि थाय, ते विना तो कदी पण थायज नहीं सर्व दर्शनीउने दया मान्य छे खरी तथापि तेउनी समजमा फेर होवाथी तेउ श्रेष्ठता पूर्वक दयानो उपयोग सर्वांशें करी शकता नथी ए वात आगलना व्याख्यान उपरथी सिद्ध थशे जेमके कोइएक दर्शनी तो एम जाणे छे के पशुउनो प्राणघात करवो, एटले तेउ जन्मथी छूटे, एम कही दया मानी लिये छे, कोइएक कहेछे के प्राणीउ, ज्या सुधी शरीरे सुखी होय त्या सुधी तेमनी उपर दया करवी, पण ज्यारे तेउ व्याधिग्रस्त स्थितिमा पीडाता होय त्यारे तो ते प्राणीउनो वध करी तेमने थती पीडामाथी मुक्त करवा एज दयाछे, केटलाएक कहे छे के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणीउ, जेउ मनुष्यने दुःख दीये छे, तेउने मारी नाखवा एज दया छे, केटलाएक तो यज्ञयागादिक करवामा प्राणीउनो नाश करी तेमाज धर्म धुरंधरता मानी बेठा छे, अने केटलाएक अति सूक्ष्मादि प्राणीउ जेनुं स्वरूप दृष्टिगोचर नथी तेनी चिता लेश मात्र न राखतां मात्र स्थूल प्राणीउ उपरज दया करवामा दया माने छे एम अनेक प्रकारे दयानो उपयोग अन्य दर्शनीउ करे छे तथापि तेउ स्वदया, परदया, द्रव्यदया, भावदया, निश्चयदया व्यवहारदया, स्वरूपदया अनुबंधदया, इत्यादि दयाना अनेक प्रकार, जैनग्रंथोमा सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमाणे वर्त्ती दयानु स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमा विभ्रम छे

अने एवी भ्रमित मतिवाला दर्शनीउनु मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परतु जे दर्शनमा पोताना आत्मानु आत्मत्वपणु जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी होय. एवु तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रसिद्धित छे तेथी ए धर्म जगतुमा सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीते, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेना कारण छे हवे धन वडें करी दान देवाय, मन बलवडे शील पलाय, शरीर बलवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबलवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करता अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बल छे, जेणे करी वस्तुनु स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीये ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा सरक्षण जेटलु थायछे तेटलु पेला त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतु नथी एनु कारण ए छे के नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बलवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे वली श्री दशवैकालिक सूत्रमा पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया करवी ते पण क्लेशरूप कहीछे अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे ज्ञानी पुरुषनी अल्प क्रिया पण अत्यत श्रेष्ठ छे वली श्री उत्तराध्ययनमा पण कह्यु छे के ज्ञान गुण सयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो एथी पण ज्ञाननु महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणायछे श्री महानिशीथमा ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्यु छे श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठा छता केवल ज्ञान उत्पन्न थयु वली श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छता कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुज प्राबल्य हतु, अने श्री उपदेश मालामां कह्युछे के ज्ञान रूपी नेत्र करी उजमाल एवा मुनिने वदन करवु योग्य छे देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोए बौध दर्शनीउने जीतीने जगतुमा यशोवाद लीधो ते पण ज्ञाननोज प्रसाद जाणवो ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अवध चारित्र जाणवु जे निकाचित कर्मनो क्रोडो वर्षपर्यत दान, शील तथा तप करवाथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोश्वासमा थायछे एटलाज माटे क्रिया गुरुने पींपलाना पत्र जेवा गण्या छे अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे ज्ञान विना सम्यक्त्वपणु रही शके नहीं, ज्ञान विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धातोक्त समस्त क्रियानु मूल जे श्रद्धा छे तेनु पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवु जे ज्ञान तेना पाच प्रकार छे मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव अने केवल ए पाचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनु प्रकाशक छे स्वमत तथा परमतनु परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे अज्ञानरूप तिमिर टालवाने सूर्यस

दशले तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजा चार प्रकारना जे ज्ञान छे तेनु पण कारण भूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्यु छेके श्रुतज्ञान सव्यवहारक छे उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो ज्ञान श्रुतज्ञानथी थाय छे वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे बीजा केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनु स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं, अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सानलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानु आचरण, आसेवन तथा अनुभव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी श्रुतज्ञान सानलवाना प्रभावथकी जीव, धर्मने विशेषे जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो श्रुतज्ञाननो सयोग थवो जीवने अत्यत दुर्लभ छे श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगोतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो ससार समुद्रने तरी गया, अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सानलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनाभादिक तीर्थंकरनी वाणी सानलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे तेमज आ भरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सानलशे, भणशे, अतरग रुचिए करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलभ बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परपराएं मुक्ति पामशे एवु श्रुतज्ञाननु मूल द्वादशागी छे. ते श्रुतज्ञाननी वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमा चार प्रकारनी कही छे – आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने सवेदिनी हवे जे थकी एक तत्वमार्गमा प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीए, जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीए, जे थकी मोक्षनी अभिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग भावनी उत्पत्ति थाय तेने सवेदिनी कहीयें

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमा बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशागीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमा थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र सज्ञा

होवाथी द्वादशांगना बारमा दृष्टिवादमा तेनो समावेश थायछे वर्त्तमान श्रीमहावीर परमेश्वरना शासनमा हाल प्रवर्त्तमान पीस्तालीश सूत्रो छे ते सर्व श्रुतज्ञाननाज नेद छे एम जाणवु बीजा पण अक्षर अनक्षरादिक चौद अने पर्याय पर्यायसमासादिक वीश नेद पण छे हाल पचम कालमा मात्र श्रुत ज्ञानज प्रगट पणे छे अने मतिज्ञान तो श्रुतज्ञान रूपज छे, केमके श्रुत ज्ञाननु समवायिकारण, मतिज्ञान छे अने कार्यथी कारण निन्न नथी, किंतु? अनिन्नज छे बीजा अवधि, मन पर्यव अने केवल, ए त्रण ज्ञान आ समयमा क्षेत्र कालादिक नेदने लीधे आ क्षेत्रमां श्रीवीर तीर्थंकरना शासनमा प्रवर्त्तमान नथी, मात्र मतिश्रुतरूप श्रुतज्ञाननोज प्रसार रह्यो छे ए श्रुत ज्ञानना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग, ए चार प्रकार थाय छे सामान्य कथन करवु, तेनु नाम उद्देश, विशेषकथन करवु, ते समुद्देश, आज्ञा अथवा अनुमोदन ते अनुज्ञा, अने प्रश्न, इच्छा, प्रार्थना प्रमुख करवु तेने अनुयोग कहीयें एटला कारण माटे व्याख्यान करवामा श्रुत ज्ञानज उपयोगी छे, पण बीजा ज्ञान नथी, माटे चालता समयमां श्रुतज्ञाननी वृद्धि तथा संरक्षण करवु, ते धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण कर्या प्रमाणे छे आ ठेकाणे ज्ञान कारण छे अने धर्म कार्य छे. हवे जेम राजा तथा प्रधान ए बेय प्रजानी वृद्धि तथा संरक्षणने माटे तत्पर होय छे, तेम द्वादशांगीरूप श्रुतज्ञानना मूलसूत्र, राजा समान छे अने तेना अर्थ रूप टीका, नाष्य, चूर्णी प्रमुख, प्रधान तुल्य छे तेथी सूत्र अने टीका प्रमुख धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षणने माटे छे अने ते श्रुतज्ञानरूप छे तेथी श्रुत ज्ञाननी वृद्धि अने संरक्षण करवाना उपाय तथा तत्संबंधी उद्योगमा अस्मन्मतविजयाभिलाषी, सुज्ञजनोयें उपरिकर थइ तन मन अने धनवडे आग्रह राखीने आदरवा. एना जेवु बीजु कोइ पण धर्मवृद्धि करवानुं अत्युत्तम साधन नथी श्रुतज्ञाननी सतत वृद्धि ने संरक्षण करवानु साधन वर्त्तमान कालमा मुद्रायंत्र सर्वोत्तम छे ते द्वाराए ग्रंथो छपावीने तेना नंमारा कराववा, ए सर्वोत्तमोत्तम उपायछे तेउमा प्रथम श्रुतज्ञानना आधारनूत एवा जे पिस्तालिश आगम छे, तेने शुद्ध करी छपावीने प्रसिद्ध करवा एवा सर्वोत्कृष्ट उपायनो श्री मकशुदावादेति नगरनिवासी "रायधनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बहादुर" तेउए पोताना परलोक प्राप्त मातुश्री "महताब बाई" तेमना निरंतर नामस्मरण निमित्ते तथा पूर्ण पुण्योपार्जन निमित्ते तथा अस्मदीय दर्शनगत सुजन पुरुषोने श्रुतज्ञान वृद्धि थवाने निमित्ते, प्रारंन कर्यो छे उपर कह्या जे पीस्तालीश आगम तेमांथी हाल आ "श्री सुयगडांगसूत्र" छापवाने मने आज्ञा कर्याथी, में यथामति शुद्ध करीने छाप्युछे आ ग्रंथ, अत्युत्तम अने अद्भुत रचना

युक्त ठे. एनुं सहज व्याख्यान प्रगट करुं छुं, ते वांचवाथी एनुं अतिशय श्रेष्टपणुं ते मज आवश्यकता ध्यानमा आवशे

सूयगडांग एटले संस्कृत नापामा सूत्रकृताग एवु नाम ठे सूत्र एटले जेमां सूत्र नी सूचना होय तथा स्वपरमतनी सूचना कराय ते सूत्र कहीये ते सूत्र वे प्रकारनु होय ठे पहेलुं द्रव्यसूत्र अने वीजुं नावसूत्र जे कार्पासादिकथी उत्पन्न थयु होय, ते द्रव्यसूत्र कहीये, अने श्रुत ज्ञानरूप सूत्र ते नावसूत्र ठे, एम जाणवुं वली जे प दार्थनु सूचक होय ते श्रुतज्ञान सूत्र जाणवु ते श्रुतज्ञान सूत्रना चार नेद ठे सज्ञा सूत्र, सग्रहसूत्र, वृत्तवंधसूत्र, तथा जातिवंधसूत्र हवे जे स्वसंकेत पूर्वक वाधे लुं होय ते संज्ञासूत्र केवाय, जेमा घणा अर्थोनो संग्रह तथा धर्माधर्मद्रव्यनु ग्रह ण होय ते सग्रह सूत्र केवाय, जे अनेक प्रकारना वृत्त ठंदनी जातिथी वाधेलु होय ते वृत्तवंधसूत्र केवाय अने जे जातिथी वाधेलु होय ते जातिबंध सूत्र कहेवाय ए जाति सूत्रना चार नेद ठे. तेना नाम कहीये ठैयें जेम के, कथ्य, गद्य, पद्य, अने गेय हवे जे उत्तराध्ययन तथा ज्ञाताधर्मकथादिकनी पेरें प्राये पूर्व रूपिना चरित्र प्रमुख कथा उनो विस्तार जेमा होय ते कथ्य, जे ब्रम्हचर्य अध्ययनादिकनी पेरें जेमा मुक्त नापानु विवेचन होय ते गद्य. जेमां ठंदरचनावडे मनोहर वर्णन होय, ते पद्य अने कापिली अध्ययननी परें स्वप्रीतिथी गायन करी जेनी रचना थइ होय ते गेय

अथवा तीर्थकरोना मुख थकी नव्य जीवोना मोक्षार्थे उत्पन्न थयेलो जे अर्थ ते सूत्र; अने तेनी जे गणधरें रचना करी तेने कृत कहीयें एम सूत्र अने कृत ए वे मलीने सूत्रकृत एवु पद थयु अथवा सूत्रने अनुसारें जेमा तत्वनो प्रवोध होय, ते पण सूत्रकृत कहेवाय, अने तेना कर्त्ता पण गणधरो ठे हवे गणधर कोने कहेवा? जे सामान्याचार्य होय ते गणधर कहेवाय, ते गौतमादिक जाणवा ते गौतमादिक एकाद श गणधरोमाहेला पाचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी तेमणे पोताना श्रीजंवुप्रमृति शिष्योने उपदेश करवाने अर्थे आ ग्रंथनी रचना कीधी ठे, अने ए कारण माटें आ ग्र थनुं नाम सूत्रकृत ठे एम जाणवु वली वीजुं नाम द्वितीय सूत्रकृताग एवु पण ठे, तेनु कारणके पूर्वोक्त पिस्तालीश सूत्रांतर्गत एकादशांगमानु ए द्वितीय अंग ठे ते पूर्वो क्त गणधर विरचित एकादशांग मध्ये प्रथमांगनु नाम आचारांग ठे, तेमा जीवनी ठ कायनु स्वरूप जाणवु, एनो सविस्तर उपदेश करेलो ठे अने एमा ज्ञाननु प्राधान्य ठे ज्ञाननी प्राप्ति थया पठी ज्ञान पूर्वक क्रिया करवी ते सवंधी आरंनमा (वुझिज्ज) एवी गाथा लखीने प्रथम आचारांग साथे आ द्वितीय सूत्रकृतागनो सवंध मेलव्यो ठे एना वे श्रुत स्कंध ठे. ते मध्ये प्रथम श्रुतस्कधना शोल अने द्वितीय श्रुतस्कधना सा

त, मळी त्रेवीश अध्ययनो छे अने तेमां तेत्रीश उद्देशाउं छे एनी पद सख्या छत्रीश हजारनी छे मूळ सूत्रनी श्लोक संख्या (२१००) छे एमा मुख्यत्वे द्रव्यानुयोग नी प्रधानता छे अने स्वमतानुसारी महान् साधु जनोनें उदासीनरूप क्रिया प्रवृत्ति आश्रयी उपदेश करता थका अन्य पाखंडी दर्शनीउंना मतोनु खंडन यथायोग्य कीधु छे ए शीवाय बीजा पण जे जे विषयोछे ते सर्व अनुक्रमणिकामा सविस्तर दर्शा वेला छे, ते जोवाथी स्पष्ट समजाशे

ए ग्रथनी टीका करनार पंडितोमा श्रेष्ठ एवा श्रीशीलंगाचार्य नामें पंडित हता, तेउं विक्रम सवत् छसोना सुमारमा थइ गया एवी दतकथा छे ए विषे कोइ ग्रथ साक्षी आपे एवु आज सुधी महारा जाणवामा आव्यु नथी ए महान् टीकाकारनी जन्मभूमि वल्लभीपुर नगरी जे हाल वलानें नामे प्रख्यात छे त्या हती, एवु मने सांभ ळवामा आव्यु छे साप्रत कालना पंडितो एमनी टीका वाचीने तेनी वाक्यरचना तथा उत्तम सरलता साथे गांभिर्य अने शब्द चातुर्यथी मोह पामी स्तुति करवामा महोटो आनद माने छे ए टीकानी श्लोक सख्या बार हजार आवशो ने पचाश छे ए महा पंडिते अन्यसूत्रो आचारागादि उपर पण टीका करेली छे ए स्तुतिपात्र टीकाकारनी टीका करवानी शैली एवी सरल अने सुगम छे के ते वाचता वाचता पंडि तोने पदश परमानदप्राडुर्भाव थातो रहेज नहिं तथा एनी मनोहर रचना अने अर्थ चमत्कृतिनी एवी सुदर छटाथी वाचनार ते वाणीरसनेज अनुभवे सूक्ष्म विषयनु वि वेचन एवी अलौकिक ढबथी कर्यु छे के वक्ता तेमज श्रोता उभयना मनने संपू र्ण संतोष उपजे अने क्यारे पण सशयतो लेश मात्र रहेज नहीं प्रत्येक विषयनु निरूपण मायत नियम बध कीधेलु छे के जेथी आपोआप तेनी सर्व मतलब ध्यान मा आवे ; जेम एक वार लखेली वातनो सबध बीजे ठेकाणे लगाडवो होय, तो त्या पूर्ववत् ए सकेतथी वाचनारने तुरत आगली वातनु ज्ञान थाय वली आ टीका वाच वा थकी जाणे टीकाकारे ग्रथकर्तानो सर्वहृगत अभिप्राय सान्निध्यताथी नि क्षेप श्रवण कर्यो होय एम टीका वाचनारने उत्प्रेक्षा थाय छे. एम सूत्रनो अक्षरश अर्थ न जाय एवी रीतें सनिर्युक्तिक टीका करी छे एवा अनेक प्रकार जेणे करीने टीकानी श्रेष्ठता अने स्तुति पंडितो करे, ते आ महाविद्वान् पंडितनी टीकामा नजरें आवे छे टुकामा एटलु ज केवु छे के जेटली खुबीउं ए टीकामा रही छे ते सर्व विस्तारनी बार छे. मात्र वा चवाथीज तेनो आनद प्राप्त थाय एम छे

एनी दीपिका श्री हेमविमलसूरिए विक्रम सवत् १५८२ ना वर्षमा करेली छे तेनी श्लोक सख्या मूल सुधा सात हजार छे. कारणके "सप्त सहस्राणि किंचिन्न्यूना

नि " एवु एमणे पोतेंज लख्युं छे. ए दीपिका पण घणी सरल सुरस, अने पदना य थायोग्य अर्थयुक्त अतिशय मनोहर छे. एनी शैली एवी बांधीछे के जेने थोडु घणुं संस्कृतनुं ज्ञान होय तेने पण सुगमताथी समज पडे अने एवी सरलरचनाने माटे तेवा जनो, ए पंमितनो अत्यत आजार माने छे.

आ ग्रथनो बालावबोध श्री पार्श्वचद्र सूरियें करेलो छे आ वात, बीजा श्रुतस्कंधना अंतमा प्रगट करेली छे ए बालावबोध टीका उपरथी कीधेलो छे केमके दीपिका करनार करतां बालावबोध करनारनी उत्पत्ति पूर्वे छे, तो पण ज्यारें ते मारा वाचवामा आव्यो त्यारे ते एटलो तो अस्तव्यस्त देखायो के तेने सुधारवानी मारी हिम्मत चाली नहीं तथापि ए कार्य अवश्य थवुंज जोइयें एवु जाणी में मारी अल्पमत्यनुसार श्रम लइने सुधार्यो छे.

हवे ए सूत्ररूप कल्पवृक्षनो जे जन आश्रय ग्रहण करे छे, ते निज जावानुसार फल पामे छे पण तेने अर्थे ए वृक्ष उपर आरोहण करवा माटें पूर्वाचार्योएं निश्रेणियो करेली छे, जेम के टीका, जाष्य, निर्युक्ति, दीपिका, चूर्णी तथा बालावबोध प्रमुख एमांथी वली टीकाकर्त्तायें टीकामाहेज निर्युक्तिनी गाथाउ लखीने तेनी पण टीका करेली छे तेथी निर्युक्तिनो समावेश टीकामा करेलो छे तथा दीपिका अने बालावबोध रूप एवी चार नीश्रेणीउ जूदा जूदा चार आचार्योंनी करेली आ सूयगडांगसूत्ररूप कल्पवृक्षने लगाडी छे तेने उपयोगमा लइ उपर कह्यु एवुं जे आ सूयगडाग सूत्ररूपकल्पवृक्ष, तेना फल ग्रहण करवा माटें जविक जनोएं अत्यानंद पूर्वक तत्पर थवु, ए मारी सविनय प्रार्थना छे

ए सूत्रमा सर्व जगत्ने प्रमोद उपजावनारी श्री वीतरागनी वाणी छे· ते केवी छे तोके जव रूप वेलनी कृपाणी, ससार रूप समुद्रथी तारवा वाली, महामोहरूप अंधकारनो नाश करवाने दिनकरना किरणो जेवी प्रकाश वाली, क्रोधरूप दावानलनो उपशम करनारी मुक्तिना मार्गने दर्शावनारी, कलिमलनो प्रलय करनारी, मिथ्यात्वने छेदन करनारी, त्रिजुवनतु पालन करनारी, मन्मथनो रोध करनारी, अमृतरसनु आस्वादन करावनारी अने हृदयने अत्याल्हाद करनारी एवां अनेक विशेषणोपयुक्त एवी जे श्री जिनवाणी ते सर्व सज्जनोनें मान्य थाउ

कदापि निविड कर्मनी शृंखलाये प्रतिबद्ध थयेला एवा अजव्य दुर्जव्यने बोध करवा माटे ए वाणी समर्थ नथी थती तो पण ए वाणीनु असामर्थ्य समजवु नहीं केमके सूर्यना किरणो जेम घुअड पक्षीना नेत्रने प्रकाश करी शकता नथी तो पण ते जगतमां निदाना आधिष्ठान थता नथी. वली जलनी वृष्टि करनारो मेघ जो प

ए उपर क्षेत्रने विषे तृणादिक उत्पन्न करवा माटें असमर्थ ले ते उतां ते लोकने विषे
निंदानें पात्र थतो नथी. तेमज जे पुरुषने ए वाणी गमती नथी ते तेनुं पोतानुज
दौर्भाग्य समजवु. माटें कुशल बुद्धिवाला सज्जनोने आ जिनवाणी रूप प्राधान्य ग्रंथ
महोत्सवरूप आनंद आपनारो थाउं अने तेमना चित्त रूप सरोवरने विषे प्रेम रूप
जल जराउं, तथा तेने योगें तेउने मोक्ष रूप महा सुंदर कमलनी प्राप्ति थाउ. अस्तु

श्रा० भी० मा०.

विज्ञापना

परमेश्वरनी वाणी रूप अमृतरस जेमां रेलाइ रह्यो होय तेवा ग्रंथोने मुद्रित करी प्रसिद्ध करवा ए महा परमार्थ ले एथी सुज्जनो आनंद पामेले. विवेकी जनो पठन पाठन करीने जिनधर्म जावमा दृढता वधारे ले, सामान्य जीवो व्याख्यानादिक श्रवण करीने धर्मलाजने पामे ले सज्जन पुरुषो वांचीने पोताना चित्तने निर्मल राखी धर्मने विषे आदर करेले एवी उत्कृष्ट जिनवाणी जेमा मुख्य ले एवा श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय करवा जेवु कोइ पण उग्र, पुण्यप्रकृति बांधनारु बीजु शुभ कर्म नथी तेनु साधन वर्त्तमान समयमा उपर कह्या प्रमाणे मुद्रायंत्र, घणुं सुलज अने मनोहर ले एनी सहायताथी सर्व सूत्रो तथा सर्व ग्रंथो उपावी प्रसिद्ध करवा, ए श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय, हाल सर्वोत्कृष्ट गणाय एम ले खरु पण ए कार्य, इव्यवान गृहस्थथी बनी शके. जेम इव्यवान् तेमज वली श्रीजिन धर्म प्रसार उपर प्रीतिमान् पण संपूर्ण होवो जोइये, एवो असाधारण पुरुष चतुर्विध संघमा कोइ विरलोज मली आवे जेम हाल बाबु साहेब "राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी" ले एवो श्रावक आधुनिक वर्त्तमान कालमा बीजो कोइ पण नथी एमणे उक्त रीति प्रमाणे प्रीतिसहित सर्व आगमो उपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग चालु कर्योले ए स्वधर्माग्रही बाबु साहेबें मने हाल श्री सूयगडांग सूत्र उपाववानी आज्ञा करी ते मे यथा बुद्ध्यनुसार सुधारीने मूल सूत्र, दीपिका, टीका तथा बालावबोध सहित उाप्युं ले. एमां दृष्टिदोषथी वा बुद्धिदोषथी अज्ञानरूप अंधकारना पराधीन पणाथी कोइ अशुद्धपद, वा शब्दनी योजना थइ होय तो सज्जन पुरुषोए तेने माटे मने क्षमा करवी यद्यपि आ मारो विवेक योग्य नथी केम के सज्जनोनो तो एवो स्वजावज होय ले के कोइ पण सत्कर्ममा दोष तेउनी दृष्टिगोचर थतो नथी, ते उता पूर्वे श्रेष्ठ ग्रंथकारोएं एवी

पद्धति राखी ठे तेने अनुगत थईने में पण ए विवक कीधो ठे सज्जनो पासे क्षमा मागी. तेना करता विशेषपणे डुर्जनो पासे क्षमा मागु बु, केम के तेउनो स्वनावज एवो होय ठे के कोइना हाथथी शुन रुत्य थाय ठे ते जोइ तेमने मन सताप उपजे ठे अने वीजानी हानी थाय तेमा तेउ लान समजे ठे वीजाना दोष कहाडवामा महा पमित होय ठे वीजाना कल्याणरूप घृतनी उपर माखी थइ वेसे ठे इत्यादिक अगणित दीर्घदोषोयें करी युक्त डुष्टजनो होय ठे, एवा डुष्टजनो उलूक समान ठे तेथी तेउ आ जिनवाणी रुप सूर्यना प्रकाश थकी अंध थइने विपर्यासने पामशे, अने द्वेष बुद्धियी ईर्ष्या करशे तेथी तेमना हृदयमा ताप उत्पन्न थशे तेने माटे हुं तेमनी पासे क्षमा मागु बुं, कारणके, ते ताप उत्पन्न थवानु कारण तेउ मने गणशे अस्तु

शा० जी० मा०

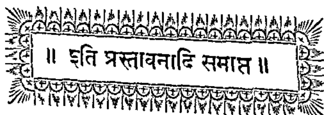
ज्ञान प्रसाररूप पुण्यकर्म उपार्जन करवामां प्रथम पंक्तिमा गणवा लायक महान्पुरुष जेणे लोकोपकारने अर्थे पिस्तालीश आगम सूत्र तथा तेउमाथी जेनी टीका प्रमुख जे अंग मले ते सहित मुद्रित करी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आ समयमा प्रसार कीधो ठे, तेवा सज्जन गृहस्थोनी उत्पत्ति विषे सहज लख्या विना मारी कलम अन्यकार्य करवामा चाली शकती नथी तेथी यत्किंचित् लखु बु

बगाला इलाकामा बालोचर, मकसुदावाद, अने मुरसिदावाद एवा त्रण नामे उलखातु सुंदर शहेर ठे ज्या कृष्णगढथी आवी निवास करनारा उसवशरूप नदन वनमा कल्पवृक्ष समान डुगडगोत्रीय, धर्म न्याय, विवक अने विनयादिक श्रेष्ठगुणें युक्त, तेमज सर्व सत्यवादिउमा अग्रेसर, महाबुद्धिनिधि, दीन जीवने तन, मन, धनवडे सहाय करनार, रुडा स्वनाववाला, पुण्य प्रनावरूप चद्रना प्रकाशवडे दिशाउने प्रकाश करनारा एवा "राय बुद्धसिंहजी" नामें श्रावक श्रीजिनधर्म उपर महोटा श्रद्धावान् हता तेमनी कुशलाउे नामे पत्नीनी कुक्षियकी सवत् १८३७ ना माघवदि एकमने गुरुवारने दिवसे राय प्रतापसिंहनामे कुलदीपक सुपुत्र उत्पन्न थया तेउ सर्व धनाढ्योमा शिरोमणि अने महाधर्मनिष्ठ तेमज क्षमावान् तथा धर्माऽधर्मना निर्णय करनाराउमा अग्रेसर थया तेमनी चतुर्थ पत्नीनु नाम महताववाई हतु तेमणे उसवशमा मुकुटमणि, न्यायमार्गे लक्ष्मीनु उपार्जन करनार तथा धर्म, अर्थ, काम ए त्रिवर्गना साधनारा अने प्राणिमात्रने विषे दयाईपणाए युक्त, एवा महातेजस्वी बे पुत्रोने जन्म आप्यो तेमा वडा पुत्रनु नाम "रायलक्ष्मीपति सिंह बाहाडुर" तथा जेमणे आवा ग्रथो ठपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आरभ्यो ठे, ते कनिष्ठ पुत्रनु नाम "रायधनपति सिंह बाहाडुर" ठे ए बेढु सद्गृहस्थो, सद्गुणनिधान अने मनुष्य मात्रना कल्याणमा उत्सुक ठे, माटे आ जिनधर्मे

प्रेरक उत्तम ग्रंथ छपावी एमणे पोताना जन्मनुं सार्थक कर्युं छे एवां परमार्थ कार्यो, ए भाग्यशालीओने हाथे प्रतिदिवस थाओ एवी मारी वार वार विज्ञापना छे

॥ काव्य छंद ॥

जिनवच पियूष पान, करन जो अति अभिलाषी,
एहि रातिदिन ध्यान, चित्तमें रहत विलाषी,
कथा सुनत श्रुतप्रीति, रीति अद्भुत धरी हीमे,
ज्ञान वृद्धिके हेत, अधिक उत्सुक सबहीमे १
जिहिँ मातुश्री प्रान, त्यागि गय सुरभव माही,
सुमरन तिनके नाम, कीय निश्चय इक आहीं,
सबहीं आगम छापि, प्रसिद्ध करिय या जगमे,
बहुत प्रानि अवलोकि, बांचि सुनि वह ता मगमे २
चलत सोइ उद्योग, करन मुद्रित सब आगम,
तिनमे इक मुद्रि दीन्ह, इतहि जब भयो समागम,
सूत्र कृतांग पवित्र, द्वितिय जो अंग कहावै,
सब विधि अति उत्कृष्ट, सुनत वाचत मन भावै ३
सो किय छापि प्रसिद्ध, होइ मनमें उल्लासा,
भयो एहउपकार, मोरि मति परम प्रकाशा,
बाबु साब परताप, जानि यह अर्पण करहु,
सदा रहहु जगमाहि मनुप अस भावन धरहु ४
धर्म वृद्धि के हेत, बुद्धि अति उदार कीनी,
लीनी कीर्ति अखण्ड, स्हाय तन मन धन दीनी,
सफल कीन नर देह, धन्य धनपतिसिंह जगमें,
अमर आपका नाम, रहो जिनधर्म ग्रंथमे ५



॥ श्रीसद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीसूयगडांगसूत्र द्वितीयांगानुक्रमणिका प्रारंभ ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम श्रुतस्कंधस्य षोडशाध्ययनानुक्रमणिका ॥

पहेलुं समयाख्य नामा अध्ययन छे, तेमां स्वसमय अने परसमयनी प्ररूपणा करी छे ए अध्ययनना चार उद्देशा छे तेमध्ये पहेला उद्देशामां छ अर्थाधिकार छे, बीजा उद्देशामां चार अर्थाधिकार छे, त्रीजा उद्देशामा बे अर्थाधिकार छे अने चोथा उद्देशामा एकज अर्थाधिकार छे ते मध्यें अनुक्रमे प्रथमाध्ययनना चार उद्देशामाहेला प्रत्येक अर्थाधिकारनी अनुक्रमणिका दर्शावियें छैये

॥ तत्र प्रथमोद्देशानुक्रमणिका ॥

१ पहेला उद्देशाना पहेला अर्थाधिकारनी प्रथम गाथामा आचारांग साथे आ सूयगडांगनो संबंध, एवी रीतें मेळव्यो छे के आचारांगमा छकायनुं स्वरूप जाणवुं, एटले ज्ञान कह्युं, ते ज्ञानप्राप्ति थया पछी ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी. ते संबधें आरंभमा (बुध्किज्ज) ए गाथाथी संबंध छे ते संबंध मेळवीने पछी पांचमी गाथा पर्यंत स्वसमयनुं स्थापन कर्युं छे ते वार पछी आठमी गाथा पर्यंत परसमयी जे पंचमहाभूतवादी तेनुं मत कहेलुं छे ते आ प्रमाणे के पृथवी, अप्, तेज, वायु अने आकाश, ए पांचनुं सर्वत्र व्यापकपणुं छे माटें ए पांच महाभूतज सर्वत्र छे परंतु आत्मा छेज नहीं ए रीतें एमनुं मत कहीने पछी तेनुं खंडन कर्युं छे

२ पहेला उद्देशाना बीजा अर्थाधिकारमा चेतनाचेतन सर्वने विषे एक आत्मा वर्त्ते छे माटें सर्व पदार्थ एक आत्मरूपज छे परंतु शरीर शरीरने विषे जूदो जूदो आत्मा नथी एवो आत्माद्वैतवादीनुं मत नवमी गाथा पर्यंत दर्शावीने पछी दशमी गाथामा ते खंडन कर्युं छे

॥ द्वितीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ तृतीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ चतुर्थोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथु स्त्रीपरिज्ञानामे अध्ययन छे. एमा बे उद्देशक छे, एकेक उद्देशक मा एकेको अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका करीये छैयें

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

पाचमुं निरयविभक्ति नामे अध्ययन छे एमा बे उद्देशा छे, प्रत्येक उद्देशामा एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका लखीये छैये

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथाष्टमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ नवमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ दशमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ एकादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

प्रथम गाथामा ए चारे मतनी गणना करी पछी वीजी गाथामा अज्ञान वादीनु मत दर्शावीने तेनु खम्मन कर्युछे त्रीजी गाथामा विनयवादीनु मत देखाडी पछी चोथी गाथाना पूर्वार्द्धमां तेनु अज्ञानपणुं देखाड्युं छे चोथी गाथाना उत्तरार्द्धमा अक्रियावादीनु मत देखाडी पछी पाच मी गाथामा अक्रियावादीनु अज्ञानपणुं दर्शावीने छठी गाथामा तेने दूषण आपी खम्मन कर्यु छे सातमी गाथाथी सर्व शून्यवादीनुं मत कर्यु छे अगीआरमी गाथाथी क्रियावादीनु मत दर्शावी पछी तेनु अ ज्ञानपणुं बतावीने तथा जैनदर्शनमा ससार परिभ्रमणनो अभाव दे खाडीने वावीशमी गाथा पर्यंत अध्ययनपरि समाप्त कर्यु छे ४४५

॥ अथ त्रयोदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१३ तेरमु याथातथ्य नामा अध्ययन छे एमा पण एक उद्देशक अने एकज अ र्थाधिकार छे आ अध्ययननी त्रेवीशे गाथामा कापिल काणाद,अक्षपाद, सौधोदन अने जैमनीय प्रमुख मतानुसारीउं जे कुमार्गपणे तत्व साधन करे छे ते दर्शाव्युछे तथा याथातथ्य सम्यक्ज्ञाननु स्वरूप,तथा सत्पुरु षनो श्रुत चारित्ररूप धर्म,अने पूर्वोक्त परतीर्थिक साधु तथा गृहस्थना दुराचार तथा स्वतीर्थिक पासत्थादिकना दुराचार तथा निर्वाण मार्ग अने ससार भ्रमणरूपमार्ग तेमज निन्ह्वादिक बोटीकादिक एवा जे मिथ्यात्वना प्रेर्या कदाग्रही जिनमार्गना उत्थापक कुमार्गना उपदेशक जनो छे ते सर्व याथातथ्य पणे कह्या छे ४८४

॥ अथ चतुर्दशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१४ चौदमुं ग्रथपरित्यागनामा अध्ययन छे एमा पण एक उद्देशक अने ए कज अर्थाधिकार छे आ अध्ययनमा सत्तावीश गाथा छे तेमा मुख्यत्वे करी गुरुकुल वास करवो कह्यो छे तथा बाह्याभ्यतर परिग्रहना त्याग थकी चारित्र थाय छे माटे एमां ग्रथपरित्याग करवानो उपदेश करेलो छे ५०८

॥ अथ पचदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१५ पदरमुं आदाननामा अध्ययन छे. एमा एक उद्देशक अने एकज अर्था

॥ अथ षोडशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधस्य सप्ताध्ययनानुक्रमणिका ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ज्ञानप्राप्ति थती नथी तेथी ते पौंमरिक कहेवाय नहि ते नु सविस्तर वर्णन तथा जे सत्साधु छे ते सम्यक्दर्शनादिक एवा मोक्षमार्गमा प्रवर्त्तता कर्मना मोचक जाणवा, ते प्रतिपादन कर्यु छे आ अध्ययनमा जूदा जूदा आठ आलावा छे, तेनी अनुक्रमणिका लखीये छैये.

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजु क्रिया स्थानक नामा अध्ययन ले एमा एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार ले एमा बार क्रियास्थानके करी कर्म बधाय ले अने तेरमा क्रियास्थानके करी कर्म मूकाय ले एवा तेर क्रिया स्थानकनु स्वरूप कह्यु ले एमा पञ्चाशी आलावा ले तेनी अनुक्रमणिका लखीयें लेयें

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजु आहारपरिज्ञानामा अध्ययन छे तेनो एक उद्देशक तथा अर्थाधिकार पण एकज छे, तेना जूदा जूदा आ डत्रीश आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखियें छैयें

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथु प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन छे एमा एकज उद्देशक अने अर्थाधिकार पण एकज छे एना जूदा जूदा आगीआर आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

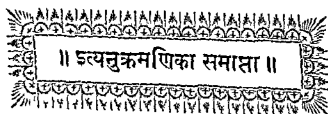
॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ पष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ठडु आर्द्रकीयनामा अध्ययन ठे एमा एक उद्देशक अ ने एकज अर्थाधिकार ठे ते मध्ये पच्चावन गाथाउ ठे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें ठैये

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

सातमुं नालंदीय नामा अध्ययन ठे तेमा एकज उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार ठे, एमा जूदा जूदा चालीश आलावा ठे पूर्वाध्ययनमा साधुना आचार कह्या तेम आ अध्ययनमा श्रावकना आचार कह्या ठे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें ठैये


॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

रायधनपतसिंघ बाहादुरका जैनागम संग्रह
भाग दुसरा.

॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरभाषासहितं श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारभ्यते

तत्रमूल ॥ बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किवा जाणंति तुट्टई ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा परिगिज्झ किसामवि ॥ अन्नवा अणुजाणाइ एवं डुक्खाणमुच्चइ ॥ २ ॥

प्रथम गुर्जर भाषामां अर्थकर्त्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ-प्रणम्य सद्गुरून् भक्त्या बालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लि
ख्यते वार्तिक मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पछी सुयगडांग कह्यु तेनो संबं
धजवेछे जे कारण श्री आचारांग माहे, (जीवो छकाय परु, वणा य तेसिंव हेणवं
त्ति) ॥ इत्यादि कह्यु छे. ते सर्व परमार्थेने (बुज्झिज्जाके०) जाणवु जोइए एम आचारांगस
र्थे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग प्रारंभीए छैए अ
हींया केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायछे एम कहेछे, अने केटलाएक क्रिया
करी मुक्ति कहेछे अने जैन तो एम कहेछे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिछे
ए अर्थ ए श्लोकमाहे देखाडेछे ते एमके

(बुज्झिज्जत्ति) के० छ कायनु स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कह्यु, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते
सफलछे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रो
डे ते शु जाणीने ! शुं त्रोडे ! ते कहेछे. (बंधण) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशे करी ते बं
धन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थ ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कष
य अने योग अथवा परिग्रह आरंभ ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे.
ण एकला जाणपणाथकी वांछितार्थसिद्धि थती नथी, ते माटे क्रिया देखाडेछे. ते बंध
ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पछी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रो
डे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवु वचन श्रीसुधर्मास्वामिभाषित सांभलीने

सूधर्मस्वामिप्रमुख शिष्य पूछेछे के, (किमाहबंधणवीरो) के० श्रीमहावीर देवे बधन केवुं कह्युं छे? अथवा (किंवा जाणतिउट्टई) के० शु जाणीने ते बधन त्रोडे? इति प्रथम श्लोकार्थ ॥१॥

हवे बधननुं कारण कहेछे, ए जगतमाहे ज्ञानावरणीयादिक जे कर्म ते बधन जाणवुं, ते कर्म बाधवाना कारण आरंभ अने परिग्रहछे. तेमा पहेलुं परिग्रह देखाडेछे, (चित्तमंतमचित्तवा) के० सचित्तते द्विपद चतुष्पदादिक अने अचित्तते सुवर्णरूप्यादिक ए बे प्रकारे परिग्रहछे, ते (परिगिज्झ किसामवि) के० थोडा तृण तुषादिक पोतानीपासे परिग्रहीने (अन्नवा) के० अनेरा बीजा पासे परिग्रहावे तथा (अणु जाणाइ) के० परिग्रह करतां ने अनुमोदे. एवो जीव, (एव) के० एरीते (डुक्खा णमुच्चइ) के० दुःखथकी न मूकाए ॥२॥

श्री ॥ अथ श्री द्वितीयांगदीपिका प्रारभ्यते ॥

॥प्रणम्य श्रीजिन वीरं, गौतमादिगुरुस्तथा ॥ स्वान्योपकृतये कुर्वे द्वितीयांगस्य दीपिकां ॥१॥ इह हि प्रवचने चत्वारोऽनुयोगा ॥ तथाहि चरणकरणानुयोग १ द्रव्यानुयोग. २ धर्मकथानुयोग ३ गणितानुयोगश्च ४ तत्र प्रथमं श्रीमदाचारांगं चरणकरणानुयोगप्राधान्येन व्याख्यातं ॥ अथेदं श्रीसूत्रकृताख्यं द्वितीयांग द्रव्यानुयोगप्राधान्येन व्याख्यायते ॥ सूत्रकृतागमिति क. शब्दार्थ ॥ उच्यते ॥ सूत्र स्वपरसमयसूचनकृतं येन तत्सूत्रं तदेवागमिति ॥ तत्रश्रुतस्कंध द्वय ॥ प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि ॥ द्वितीये सप्त ॥ तत्र प्रथमश्रुतस्कंधस्य प्रथमाध्ययने चत्वारउद्देशका ॥ तत्रापि पूर्वं प्रथमोद्देशक ॥ तस्यायमादि श्लोक ॥ (बुज्झिज्जत्ति०) ॥१॥ व्याख्या ॥ बुध्येत जानीयात् ॥ किंतत् ॥ बधनं बध्यते जीवोऽनेन बधन ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकार कर्म ॥ तद्धेतवो मिथ्यात्वादयोवा परिग्रहारंभादयो वा बधन जानीयादित्युक्त ॥ नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिरित्याह ॥ (तिउट्टिज्जा) (परिजाणिआ) परिज्ञायत्रोटयेत् अपनयेत् आत्मन पृथक्कुर्यादित्यर्थ ॥ अथजंबूस्वामी शिष्य श्रीसुधर्मस्वामिनमाह ॥ (किमाहेति) ॥ श्रीवीर किंबधनं आह वकथान किंवा जानन् बधन त्रोटयति ॥ उत्तरमाह ॥ १ ॥ (चित्तेति) ॥ चित्तवत् सचित्तं द्विपदचतुष्पदादि अचित्त कनकरजतादि तद्द्वयमपि परिगृह्य परिग्रहं कृत्वा तृणमपि स्तोकमपि स्वयमन्यान्वा ग्राहयित्वा ॥ गृण्हतोवाऽन्याननुज्ञाय एवंडुखान्नमुच्यते ॥ परिग्रहएव परमानर्थमूलमित्युक्त ॥ परिग्रहतश्चावश्यमारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयति ॥ २ ॥

॥ ॐनम सिद्धाय ॥ अथ श्री शीलंगाचार्यकृत टीका ॥ आर्या वृत्तं ॥

स्वपरसमयार्थसूचकमनंतगमपर्ययार्थगुणकलितम् ॥ सूत्रकृतमगमतुलं, विवृणोमि जिनान्नमस्कृत्य ॥ १ ॥ ॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ ॥ व्याख्यातमंगमिह यद्यपि सूरिमुख्यै,

नेत्तया तथापि विवरीतुमहं यतिष्ये ॥ किं पक्षिराजगतमप्यवगम्य सम्यक्, तेनैव वांछति पथा शलनो न गन्तुम् ॥ २ ॥ ॥ इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ॥ ये मय्यवज्ञां व्यधुरिद्धबोधा, जानंति ते किंचन तानपास्य ॥ मत्तोपि यो मंदमतिस्तथास्ति, तस्योपकाराय ममैष यत्न ॥ ३ ॥ इहापारसंसारांतर्गतेनाऽसुमताऽवाप्याऽतिदुर्लभं मनुजत्वं सुकुलोत्पत्तिसमग्रेन्द्रियसामग्र्याद्युपेतेनाऽर्हद्दर्शनमशेषकर्मोच्छित्तये यतितव्यम् ॥कर्मोच्छेदश्च सम्यग्विवेकसव्यपेक्षोऽसावप्याप्तोपदेशमंतरेण न भवति ॥आप्तश्चात्यंतिकाद्दोषक्षयात्सचार्हन्नेवातस्तत्प्रणीतागमपरिज्ञाने यत्नो विधेय ॥ आगमश्च द्वादशांगादिरूप सोप्यार्यरक्षितमिश्रैरैदंयुगीनपुरुषानुग्रहबुद्ध्या चरणकरणद्रव्यधर्मकथागणितानुयोगभेदाच्चतुर्धा अवस्थापित ।तत्राचाराग चरणकरणप्राधान्येन व्याख्यातमधुनाऽवसरायातं द्रव्यप्राधान्येन सूत्रकृताख्यं द्वितीयमग व्याख्यातुमारभ्यत इति । ननु चार्थस्य शासनाच्छास्त्रमिदं ।शास्त्रस्य चाशेषप्रत्यूहोपशान्त्यर्थमादिमंगलं तथा स्थिरपरिचयार्थं मध्यमगल शिष्यप्रशिष्यविच्छेदार्थं चान्त्यमगलमुपादेयं तच्चेह नोपलभ्यते । सत्यमेतत् । मंगल हीष्टदेवतानमस्कारादिरूप । अस्य च प्रणेतासर्वज्ञस्तस्य चापरनमस्कार्याभावान्मंगलकरणे प्रयोजनाभावाच्च न मंगलाभिधानं । गणधराणामपि तीर्थकृदुक्तानुवादित्वान्मगलाकरणं । अस्मदाद्यपेक्षयातु सर्वमेव शास्त्रं मगलं।अथवा निर्युक्तिकारएवात्रभावमगलमभिधातुकामआह ॥ (तित्थयरे जिनवरे, सुत्तकरे गणहरे पणमि ऊण । सूयगडस्स भगवउ, णिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि) ॥ १ ॥ गाथापूर्वार्द्धेनेहभावमंगलमभिहितं पश्चार्द्धेन तु प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थंप्रयोजनादित्रयमिति । तदुक्तं–"उक्तार्थज्ञातसंबंधं, श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ॥ शास्त्रादौ तेन वक्तव्य संबंध सप्रयोजन" । तत्र सूत्रकृतस्येत्यभिधेयपद । निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इति प्रयोजनपदं। प्रयोजनं तु मोक्षावाप्ति । संबंधस्तु प्रयोजनपदादनुमेय इति पृथक् नोक्त ॥ तदुक्तं–"शास्त्रं प्रयोजनं चेति संबंधस्याश्रयावुभौ ॥ तदुक्त्यंतर्गतस्तस्माद्भिन्नो नोक्त प्रयोजनादिति समुदायार्थ ॥ अधुनाऽवयवार्थ कथ्यते ॥ तत्र तीर्थं द्रव्यभावभेदाद्द्विधा । तथापि द्रव्यतीर्थं नद्यादे सम समुत्तरणमार्ग ॥भावतीर्थं तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि॥ससारार्णवादुत्तारकत्वात्तदाधारोवा सघ प्रथमगणधरोवा तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तान्नत्वेति क्रिया । तत्रान्येषामपितीर्थकरत्वसंभवेत दव्यवच्छेदार्थमाह (जिनवरानिति) ॥ रागद्वेषमोहजितो जिना । एवंभूताश्च सामान्यकेवलिनोऽपिभवति त द्व्यवच्छेदार्थमाह–(वरा) प्रधानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितत्वेन तान्नत्वेति ॥ एतेषां च नमस्कारकरणमागमार्थोपदेष्टृत्वेनोपकारित्वात् । विशिष्टविशेषणोपादानं च शास्त्रस्य गौरवाधानार्थं शास्तु प्राधान्येनेह शास्त्रस्यापि प्राधान्य भवतीति भाव । अर्थस्य सूचनात्सूत्र तत्करणशीला सूत्रकारास्ते च स्वयंबुद्धादयोपि भवतीत्यतआह (गणधरास्तांश्च नत्वेति) ॥ सामान्याचार्याणां गणधरत्वेपि तीर्थंक

नमस्कारानंतरोपादानाश्चोत्तमादय एवेह विवक्षिता ॥ प्रथमश्चकार सिद्धाद्युप गुणार्थो द्वितीय समुच्चित । क्त्वाप्रत्ययस्य क्रियातरमव्यपेक्षतामाह–स्वपर समयसूचनं कृतमनेनेति सूत्रकृतस्तस्य महार्थत्वाद्भगवास्तस्थानेन च सर्वज्ञप्रणी तत्वमावेदितं नवति ॥ (निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये) इति ॥ योजनंयुक्ति. । अर्थघटना निश्चये नाधिक्येन वा युक्तिर्निर्युक्तिः । सम्यगर्थप्रकटनमिति यावत् । निर्युक्तानां वा सूत्रेष्वेव प रस्परंसंबधानामर्थानामाविर्भावन । युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति । ता कीर्तयिष्येऽभिधास्य इति । इह सूत्रकृतस्य निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये इत्यनेनोपक्रमद्वारमुपक्षिप्त तच्चोद्देशोनिर्देशो इत्यादिनेपदनिक्षिप्तमिति । तदनतर निक्षेप ॥ सचत्रिविध । तद्यथा–ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्न सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽग नामनिष्पन्ने तु निक्षे पे सूत्रकृतमिति॥१॥तत्र तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्येत्यत पर्यायप्रदर्शनार्थं निर्युक्तिकृदाह(सूय गडं अंगाणं, बितियं तस्स य इमाणि नामाणि ॥ सूयगड सुत्तकड,सूयगडं चेव गोणाइ॥) ॥ २ ॥ सूत्रकृतमित्येतदगानां द्वितीयं तस्य चामून्येकार्थिकानि । तद्यथा–सूत्रमुत्पन्नमर्थ रूपतया तीर्थंकृद्भ्य' । तत कृतं ग्रथरचनया गणधरैरिति । तथा (सूत्रकृतमिति) । सूत्रा नुसारेणतत्वाववोध क्रियतेऽस्मिन्निति । तथा सूचाकृतमिति । स्वपरसमयार्थसूचन सूचा साऽस्मिन्कृतेति।एतानि चास्य गुणनिष्पन्नानि नामानीति॥२॥साप्रतं सूत्रकृतपदयोर्निक्षेपा र्थमाह (दव्व तु पोंडयादी, नावे सुत्तमिह सूयतं नाण । सन्नासंगहवित्ते, जातिणिवद्धेय कत्थादी) ॥ ३ ॥ (दव्वमित्यादि) । नामस्थापनेऽनादृत्य सूत्रं दर्शयति (पोंडया इति)। पो ण्डगं च वनीफलाङ्कत्पन्न कार्पासिक । आदिग्रहणादण्डजवालजादेर्ग्रहण । भावसूत्रमि हास्मिन्नधिकारे सूचक ज्ञान श्रुतज्ञानमित्यर्थ. ॥ तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वादिति । तच्च श्रुतज्ञानसूत्र चतुर्धा नवति । तद्यथा–सज्ञासूत्र सग्रहसूत्र वृत्तबद्ध जातिनिबद्ध । तत्र सज्ञासूत्र यत् ... तद्यथा–जे छेए सागरियं नसेवे सव्वामगंधं परिण्णा ...

सत्कारक्षेत्रजाइत्यादि ॥ सग्रहसूत्र

समस्तधर्माऽधर्मादिद्रव्यग्रह इति ।

पुनर्यदनेकप्रकारया वृत्तजात्या निब

चतुर्धा ॥ तद्यथा कथनीयकथ्य

। तथा गद्य–ब्रह्मचर्या

गीतिप्राय निबद्ध । तद्यथा–

इत्यादि ॥३॥ इदानीं कृतप

...पि कफनिक्केवो, दव्वे

...मित्यनेन कर्मोपात्त

न चाकर्तृकं कर्म नवतीत्यर्थात्कर्तुराक्षेपो धात्वर्थस्य च करणस्यामीपां त्रयाणामपि प्रत्येकं नामादि ।षोढानिक्षेपस्तत्रगाथापश्चार्द्धेनाटपवक्तव्यत्वाचावत्करणमतिक्रम्यकारकस्य निक्षेपमाह–तत्र नामस्थापने प्रसिद्धत्वादनादृत्य इव्यादिक दर्शयति (दवेइति ॥ इव्यविषये कारकश्चित्य । सच इव्यस्य इव्येण इव्यनूतो वा कारको इव्यकारक । तथा क्षेत्रे नरतार्दौ य. कारको यस्मिन् वा क्षेत्रे कारको व्याख्यायते सत्क्षेत्रकारक । एव कालेपि योज्य ॥ नावेन तु नाव द्वारेण चिंत्यमानोत्र कारकोयस्मात्सूत्रस्य गणधरः कारक ॥ एतच्चसूत्रकृदेवोत्तरत्र वक्ष्यति (वि इ अणुनावेत्यार्दो)॥४॥सांप्रत करणव्याचिख्यासया नामस्थापने मुक्त्वा इव्यादिकारणनिक्षेपार्थ निर्युक्तिकृदाह ॥ (दवंपर्ठगवीसस, पर्ठगसामूल उत्तरे चेव ॥ उत्तरकरण वजण, अन्नो उववरकरोसवो) ॥५॥ (दवइत्यादि) इव्ये इव्यविपये करणं चिंत्यते । तद्यथा इव्यस्य इव्येण इव्यनिमित्तवा करणमनुष्ठानं इव्यकरणं । तत्पुनर्द्विधा। प्रयोगकरण विस्रसाकरण च । तत्र प्रयोगकरण पुरुषादिव्यापारनिष्पाद्य । तदपि द्विविध । मूलकरणमुत्तरकरण च । तत्रोत्तरकरणं गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति–उत्तरत्र करणमुत्तरकरण कर्णवेधादि । यदिवा तन्मूलकरण घटादिक येनोपस्करेण दडचक्रादिना अनिव्यज्यते स्वरूपत प्रकाश्यते तदुत्तरकरण । कर्तुरुपकारक सर्वोप्युपस्करार्थं इत्यर्थ॥७॥पुनरपि प्रपचतो मूलोत्तरकरणे प्रतिपादयितुमाह॥(मूलकरण सरीरा, णि पंचतिसुकलसुखंधमादीय । दव्विंदियाणि परिणा, मियाणि विसउजहादीहिं) ॥६॥ (मूलकरणमित्यादि) । मूलकरणमौदारिकादीनि शरीराणि पंच । तत्र चौदारिकवैक्रियाहारकेषु त्रिपूत्तरकरण कर्णस्कधादिकं विद्यते ।तथाहि सीसमुरोयर पिठी, दो बाहू करुयाय अठगत्ति, त्रयाणामप्येतन्निष्पत्तिर्मूलकरण । कर्णस्कंधाद्यगोपागनिष्पत्तिस्तूत्तरकरण ॥ कार्मणतैजसयोस्तु स्वरुपनिष्पत्तिरेव मूलकरणमगोपागानावान्नोत्तरकरण ॥ यदिवौदारिकस्य कर्णवेधादिकमुत्तरकरण । वैक्रियस्यतूत्तरकरणमुत्तरवैक्रियं दतकेशादिनिष्पादनरुप वा आहारकस्यतु गमनाद्युत्तरकरण ॥ यदिवौदारिकस्य मूलोत्तरकरणे गाथापश्चार्द्धेन प्रकारातरेण दर्शयति–इव्येंद्रियाणि कलंबुकापुष्पाद्याकृतीनि मूलकरण तेषामेव परिणामिनां विषौषधादिनि पाटवाद्यापादनमुत्तरकरणमिति ॥६॥ साप्रतमजीवाश्रितं करणमनिधातुकाम आह (सघायणेयपरिसा, डणाय मीसे तहेव पडिसेहो ॥ पडिसखसगडघूणा, उट्टतिरिच्चादिकरणाच)॥७॥(संघायणेयइत्यादि)॥ सघातकरण आतानविताननूततंतुसघातेन पटस्य ॥ परिसादकरण करपत्रादिनाशखस्य निष्पादन ॥ सघातपरिसादकरणशकटादेस्तङनयनिषेधकरण स्थूणादेरूर्ध्वतिरश्चीनाद्यापादनमिति ७प्रयोगकरणमनिधाय विस्रसाकरणानिधित्सयाह (खधेसुडुपएसा,दिएसु अप्रेसुविकुमाईसु । णिप्फणगाणिदवा,णि जाणतंवीससाकरण) ॥७॥ (खधेसु इत्यादि) । विस्रसाकरण साद्यनादिनेदाद्विधा ।

ति । यदिवा व्यंजनपर्यायापन्नं शब्द द्वाराऽयातमिक्षुकरणादिकमितीक्षुक्षेत्रकरणं ॥ लांग लादिना संस्कार क्षेत्रकरणं । तत्र बहुधा शालिक्षेत्रादि नेदादिति॥ए॥साप्रतं कालकरणा निधित्सयाऽह ॥ (कालो जो जावइउं, ज कीरइ जमि जमि कालमि । उहेण णामउ पुण, करणा एक्कारस हवंति)॥१०॥ (कालोजोइत्यादि) । कालस्यापि मुख्यं करण न सन्न वतीत्यौपचारिक दर्शयति ॥ कालोयोयावानिति । य कश्चिद्घटिकादिको नलिकादिना व्य वहिय व्यवस्थाप्यते तद्यथा । पट्युदकपलमाना घटिका । हिर्घटिकोमुहूर्तस्त्रिशन्मुहूर्तमहोरात्रमित्यादि तत्कालकरणमिति । य द्वा यत् यस्मिन् काले क्रियते यत्रवा काले क रण व्याख्यायते तत्कालकरणमेतदोघत' ॥१०॥ नामतस्त्वेकादशकरणानि तानि चामूनि (ववच बालव चेव, कोलवं तेत्तिलं तहा। गरादि वणियं चेव,विठी हवइ सत्तमा ॥११॥ सउणि चउप्पय नाग,किंसुग्घं च करण नवे एयं । एते चत्तारि धुवा,अन्ने करणा चला सत्त ॥१२॥ चाउद्दसि रत्तीए, सउणी पडिवक्कए सदा करण।तत्तो अहक्कम खलु,चउप्पयं णागकिंसुग्घं) ॥१३॥ एतन्नायात्रयं सुखोन्नेयमिति ॥११॥१२॥१३॥ इदानीं नावकरणप्र तिपादनायाह (नावे पउग वीसस, पउगसा मूल उत्तरे चेव । उत्तर कम सुय जोवण, वस्रादीनो अणादीसु) ॥१४॥ (नावे पउगेत्यादि) । नावकरणमपि द्विधा। प्रयोग विस्र सानेदात् । तत्र जीवाश्रित प्रायोगिक मूलकरण पंचानां शरीराणा पर्याप्तिस्तानि हि पर्याप्तिनामकर्मोदयदौदयिके नावे वर्तमानो जीव. स्ववीर्यजनितेन प्रयोगेण निष्पादयति । उत्तरकरणं तु गाथापश्चार्द्धेनाह–उत्तरकरणं क्रमश्रुतयौवनवर्णादिचतूरूपं। तत्र क्रमकरण शरीरनिष्पत्त्युत्तरकालं बालयुवस्थविरादिक्रमेणोत्तरोत्तरोऽवस्थाविशेष'। श्रुतकरण तु व्याकरणादिपरिज्ञानरूपोऽवस्थाविशेषोऽपरकलानां परिज्ञानरूपश्चेति । यौवनकरणका लकृतो वयोवस्थाविशेषो रसायनाद्यापादितोवेति ॥ तथा वर्णगन्धरसस्पर्शकरण विशिष्टेषु नोजनादिषु सत्सु यद्विशिष्टवर्णाद्यापादनमित्येतच्च पुजलविपाकित्वा द्वर्णादीनामजीवाश्रितमपिड्रष्टव्य मिति १४ इदानीं विस्रसाकरणान्निधित्सयाऽह॥(वस्राविंयायवस्रा,दिएसुजेके इत्तीससा मेला ॥ ते हुति थिरा अथिरा, गाया तवक्कहमादीसु)॥१५॥ (वस्राइत्यादि) वर्णा दिका इति रूपरसगधस्पर्शास्ते यदा परेषामपरेषा वा स्वरूपादिना मिलंति ते वर्णादिमेलकाविस्रसाकरण ॥ तेच मेलका स्थिरा असख्येयकालावस्थायिनोऽस्थिराश्च क्षणावस्था यिन सध्यारागाभ्रेन्द्रधनुरादयोनवति ॥ तथा गयात्वेनातपत्वेनच पुजलाना विस्रसा परिणामत एव परिणामो नावकरण ॥ स्तनप्रच्यवनानंतर दुग्धादेश्च प्रतिक्षण कठिणाम्लादिनावेन गमनमिति१५साप्रतं श्रुतज्ञानमधिकृत्य मूलकरणाऽनिधित्सयाऽह ॥ (मूल करण पुण सुते, तिविहे जोगे सुनासुने झाणे ॥ ससमयसुएण पगयं, अक्खवसाणेण य सुहेण)॥ १६ ॥ (मूलेत्यादि) श्रुते पुनः श्रुतग्रथे मूलकरणमिदं त्रिविधे योगे मनोवाका

वनक्रणे व्यापारे शुनाशुने च ध्याने वर्तमानैर्ग्रंथरचना क्रियते । तत्र लोकोत्तरे शुना शुनध्यानावस्थितैर्ग्रंथरचना विधीयते ॥ लोकेत्वशुनध्यानाश्रितैर्ग्रंथग्रथन क्रियतइति ॥ लौकिकग्रंथस्य कर्मबंधहेतुत्वात् कर्तुरशुनध्यायित्वमवसेयं ॥ इहतु सूत्रकृतस्य तावत्स्व समयेन शुनाध्यवसायेनच प्रकृतं ॥ यस्माद्गणधरै शुनध्यानावस्थितैरिदमंग कृतमिति १६ तेषांच ग्रंथरचनाप्रति शुनध्यायिनां कर्मद्वारेण योऽवस्थाविशेषस्तद्दर्शयितुकामो निर्यु क्तिकृदाह ॥ (ठिइअणुनावे बंधण, निकायणनिहत्त दीहहस्सेसु ॥ संकम उदीरणाए उदये वेदे यउवसमे)॥१७॥(ठिइत्यादि) । तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थिति निर्गणधरै सूत्रमिदं कृतमिति ॥ तथाऽनुनावो विपाकस्तदपेक्षया मंदानुनावैस्तथा बं धमंगीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मंदानुनावाः बध्नद्भिस्तथाऽनिकाचयद्भिरेव निधत्ता वस्थामकुर्वद्भिस्तथा दीर्घस्थितिका प्रकृतीर्ह्रस्वीयसीर्जनयद्भिस्तथोत्तरप्रकृतीर्बध्यमाना सु नक्रामयद्भिस्तथोदयवतां कर्मणामुदीरणां विदधानैरप्रमत्तगुणस्थैस्तु शाताऽशाताऽ युष्यनुदीरयद्भिस्तथा मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यौदारिक शरीर तदंगोपांगादिकर्मणा मुदये वर्तमानैस्तथावेदमंगीकृत्य पुंवेदेसति तथोपशमेति सूचनात्सूत्रमिति क्षायोपश मिकनावे वर्तमानैर्गणधारिभिरिदं सूत्रकृतांगं ग्रथितमिति १७सांप्रतं स्वमनीषिकापरिहार द्वारेण कृतप्रकारमभिधातुकामआह ॥ (सोऊण जिणवरमतं, गणहारी काउ तक्ख ओ वसम ॥ अज्जवसाणेण कयं, सुत्तमिणं तेणसूयगडं) ॥१८॥ (सोऊणेत्यादि) श्रुत्वा निशम्य जिनवराणां तीर्थंकराणां मतमनिप्रायं मातृकापदं गणधरैर्गौतमादिनि कृत्वा तत्रग्रंथरचने क्षयोपशमं तत्प्रतिबंधककर्मक्षयोपशमादवधानैरितिनाव ॥ शुनाध्यवसा येन सता कृतमिदं सूत्रं तेनसूत्रकृतमिति॥१८॥इदानीं कस्मिन् योगे [illegible] वर्तमानै जीविनं कृतमा गणधरैस्त्वभित्येतदाह ॥(वइजोगेणपनासिय, मणोगजो [illegible] त्तो नय जोगेणकयं, जीवस्स सनावियगुणेण) ॥ १९ ॥ (वइजोगेणेत्य [illegible] [illegible] क्षायिकज्ञानवर्तिनियोगेनाये [illegible] ज्ञाति [illegible] नप्रात्तद्रूपकरणा किंत्वनेकयोगधराः धार्यंतीत्यनेकयोगधरास्तेषां प्रनावि [illegible] गणधरा एव गृह्यंते तदुद्देशेनैव [illegible] वाग्योगेनैव कृतं तच्च जीवस्य [illegible] [illegible] ॥ प्राकृतनाषयेत्युक्त [illegible] [illegible]विकल्पनानिष्पन्नयेति ॥ [illegible] [illegible] मनिरोधा, पणएक्कम्मपरिसाडनाण्य [illegible] २० ॥ (अरसेत्यादि) । अक्षराणि [illegible]

वाऽन्यथाऽर्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् ॥ मतेर्मतिज्ञानस्य संघटना मतिसंघटना अक्षर गुणेन मतिसंघटना ॥ भावश्रुतस्य द्रव्यश्रुतेन प्रकाशनमित्यर्थः ॥ अक्षरगुणस्य वा मत्या बुध्या संघटना रचनेति यावत् ॥ तया ऽक्षरगुणमतिसंघटनया ॥ तथा कर्मणां ज्ञानावरणा दीनां परिशाटना जीवप्रदेशेभ्यः पृथक्करणरूपा तयाच हेतुभूतया सूत्रकृतांग कृतमिति संबन्धः । तथाहि । यथा यथा गणधराः सूत्रकरणायोद्यमं कुर्वन्ति तथा तथा कर्मपरिशा टना भवति । यथा यथाच कर्मपरिशाटना तथा तथा ग्रंथरचनायोद्यमः संपद्यत इति । ए तदेव गाथापश्चार्धेन दर्शयति ।तडुनययोगेनेति ॥ अक्षरगुणमतिसंघटनायोगेन कर्मपरि शाटनायोगेन च ॥ यदि वा वाग्योगेन मनोयोगेन च कृतमिदं सूत्रं तेन सूत्रकृतमिति । इहा ऽनंतरं सूत्ररुतस्य निरुक्तमुक्तमधुना सूत्रपदस्य निरुक्तानिधित्सयाह । "सुत्तेण सुत्तियं चिय, अच्छा तह सूइयाय जुत्ताय ॥ तोबहुविहप्पउत्ता एया पसिद्धा अणादीया" ॥ २१ ॥ सुत्तेणेत्यादि । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तेन सूत्रेण केचिदर्थाः साक्षात्सूत्रिता मुख्यतयो पात्तास्तथाऽपरे सूचिता अर्थापत्त्याक्षिप्ताः ॥ साक्षादनुपात्तेऽपि दध्यानयनचोदनया तदा धारानयनचोदनावदिति । एवंच कृत्वा चतुर्दशपूर्वविदः परस्परं षट्स्थानपतिता भवति । तथा चोक्तं । अरकरलंजेण समा, ऊणहिया हुंति मतिविसेसेहिं । तेविय मईविसेसा, सुयणाणभिंतरेजाण ॥१॥ तत्र ये साक्षादुपात्तास्तान् प्रति सर्वेपि तुल्याः ॥ ये पुनः सूचिता स्तदपेक्षया कश्चिदनंतभागाधिकमर्थं वेत्त्यपरोऽसंख्येयभागाधिकमन्यः संख्येयभागाधि क तथान्यः संख्येयाऽसंख्येयाऽनंतगुणमिति तेच सर्वेपि युक्ता युक्त्युपपन्नाः सूत्रो पात्ताएव वेदितव्याः । तथा चाभिहितं "तेवियमईविसेसे" इत्यादि । ननु किं सूत्रो पात्तेभ्योऽन्येपि केचनार्थाः संति येन तदपेक्षया चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानपतितत्वमुद् घुष्यते । बाढं विद्यते । यतोऽभिहितं । पन्नवणिज्जाभावा, अणंतभागोउ अणभिल प्पाणं । पन्नवणिज्जाण पुण, अणंतभागो सुयनिबद्धो ॥ १ ॥ यतश्चैवं ततस्ते अर्था आगमे बहुविधं प्रयुक्ताः सूत्रैरुपात्ताः केचन साक्षात्केचिदर्थापत्त्या समुपलभ्यन्ते । य दि वा क्वचिद्देशग्रहणं क्वचित्सर्वार्थोपादानमित्यादि । यैश्च पदैस्ते अर्थाः प्रतिपाद्यन्ते तानि पदानि प्रकर्षेण सिद्धानि प्रसिद्धानि न साधनीयानि । तथाऽनादीनि च तानि नेदानीमुत्पाद्यानि ॥तथा चेयं द्वादशांगी शब्दार्थरचनाद्वारेण विदेहेषु नित्या भरतैरावं तेष्वपि शब्दरचनाद्वारेणैव प्रति तीर्थंकरं क्रियतेऽन्यथा तु नित्यैव । एतेन चोच्चरित प्रध्वंसिनो वर्णा इत्येतन्निराकृतं वेदितव्यमिति॥ २१ ॥सांप्रतं सूत्रकृतस्य श्रुतस्कंधाध्ययनादि निरूपणायेमाह । "दोचेवसुयखंधा, अज्झयणाइं च हुंति तेवीसं॥ तेत्तिसुदेसणकाला, आ यारा‍उ दुगुणमंगं" ॥ २२ ॥ (दोचेवेत्यादि)। द्वावत्र श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रय स्त्रिंशदुद्देशनकालास्ते चैव भवति । प्रथमाध्ययने चत्वारो द्वितीये त्रयस्तृतीये चत्वार ॥

एव चतुर्थपंचमयो र्द्वौ द्वौ तथैकादशस्वेकसरकेष्वेकादशैवेति । प्रथमश्रुतस्कन्धे तथा द्विती यश्रुतस्कन्धे सप्ताध्ययनानि तेषा सप्तैवोद्देशनकाला एवमेते सर्वेपि त्रयस्त्रिंशदिति।एतच्चा चारांगाद्द्विगुणमग षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणमित्यर्थः ॥२२॥ साप्रतं सूत्रकृतागनिक्षेपानतर प्रथमश्रुतस्कधस्य नामनिष्पन्ननिक्षेपाभिधित्सयाऽह। "निक्खेवोगाहाए,चउविहो ठविहोय सोळसस्सु॥निक्खेवोयसुयमिय,खधेयचउविहो होइ"॥२३॥ (निक्खेवो इत्यादि) इहाद्यश्रुतस्कधस्य गाथाषोडशक इति नाम। गाथाख्य षोडशमध्ययन यस्मिन् श्रुतस्कधे सतथेति । तत्र गाथाया नामस्थापनाद्रव्यभावश्चतुर्विधो निक्षेप ॥ नामस्थापनेप्रसिद्धे ॥ द्रव्यगाथा द्विधा ॥ आगमतो नो आगमतश्च ॥ तत्र आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमिति रुत्वा । नोआगमतस्तु त्रिधा । ज्ञशरीरद्रव्यगाथा भव्यशरीरद्रव्यगाथा ताभ्यां विनिर्मुक्ता च ॥ 'सत्तफ्तरूविसामणसेहयाताण ठठणद् जलया ॥ गाहाएपइछेनेउ ठठो त्ति इक्ककलो ' इत्यादिलक्षणलक्षिता पत्रपुस्तकादिन्यस्तेति ॥ भावगाथापि द्विविधा ॥ आगमत आगमभेदात् ॥ तत्रा ऽऽगमतो गाथापदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्त ।नोआगमतस्त्विद मेव गाथाख्यमध्ययन ॥ आगमैकदेशत्वादस्य षोडशकस्यापि नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्र कालभावभेदात् षोढा निक्षेप ॥ तत्र नामस्थापने क्षुसे । द्रव्यषोडशक ज्ञशरीरभव्य शरीरविनिर्मुक्त । सचित्तादीनि षोडश द्रव्याणि । क्षेत्रषोडशक षोडशाकाशप्रदेशा ॥ का लषोडशक षोडश समया एतत्कालावस्थापि वा द्रव्यमिति ॥ भावषोडशकमिदमेवाध्य यनषोडशक क्षायोपशमिकभाववृत्तित्वादिति ॥ श्रुतस्कधयो प्रत्येक चतुर्विधो निक्षेप ॥ सचान्यत्र निक्षेपेण प्रतिपादित इति नेह प्रतन्यते ॥२३॥ साप्रतमध्ययनानाप्रत्येकमर्थाधि कारदिदर्शयिषयाऽह ॥ "ससमय परसमयपरू, वणायणाऊण उज्झणा चेव ॥ सबुद्धस्सु वसग्गा थीदोसविवज्जणाचेव ॥ २४ ॥ उवसग्गभीरुणोयी वस्साणरएसु होज्ज उववाउ ॥ एवमहप्पावीरो जयमास तहा जएज्जाह ॥ २५ ॥ परिचत्तनिशीलकुशी,लसुशील स विग्गशीलवचेव ॥ णाऊण वीरियडुग पंडिय वीरियपहुज्ज पवयइ ॥ २६ ॥ धम्मोसमा हिमग्गो समोसढा चउसुसव्ववादीसु ॥ सीसगुण दोसकहणा गथमि सदा गुरुनिवासो ॥२७॥ आदाणिय सकलिया आदाणीयमि आयचरित्त ॥ अप्पग्गथे पंभिय वयणेणहा गहाइ अहिगारो" ॥२८॥ (ससमय इत्यादि गाथा पच) । तत्र प्रथमाध्ययने स्वसमयपरस मयप्ररूपणा । द्वितीये स्वसमयगुणान् परसमयदोषांश्च ज्ञात्वा स्वसमय एव बोधो वि धेय इति ॥ तृतीयाध्ययने तु सबुद्धः सन्यथोपसर्गसहिष्णुर्भवति तदभिधीयते ॥ चतु र्थे स्त्रीदोषविवर्जना ॥ पचमेत्वयमर्थाधिकार ॥ तद्यथा ॥ उपसर्गाऽसहिष्णो स्त्रीवशव र्तिनोऽवश्य नरकेषु पात इति ॥ षष्ठे पुनरेवमित्यनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहनेन स्त्री वर्जनेन च भगवान् महावीरो जेतव्यस्य कर्मणः ससारस्य वा पराजयेन जयमाह ॥

ततस्तथैव यत्न विधत्त यूयमिति शिष्याणामुपदेशो दीयते ॥ सप्तमे त्विदमनिहितं ॥ त
थथा ॥ नि शीला गृहस्था कुशीलास्त्वन्यतीर्थिका पार्श्वस्थादयो वा ते परित्यक्ता येन सा
धुना स परित्यक्तनि शीलकुशील इति ॥ तथा सुशीला उद्युक्तविहारिण संविग्ना' सवे
गमग्नास्तत्सेवाशील शीलवान् जवतीति । अष्टमे त्वेतत्प्रतिपाद्यते । तद्यथा । ज्ञात्वा वीर्य
६प पंमितवीर्ये प्रयत्नो विधीयत इति ॥ नवमे चार्थाधिकारस्त्वयं ॥ तद्यथा ॥ यथाऽवस्थि
तोधर्मे कथ्यते ॥ दशमेतु समाधि प्रतिपाद्यते ॥ एकादशेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्म
को मोक्षमार्गे कथ्यते ॥ द्वादशे त्वयमर्थाधिकार ॥ तद्यथा । समवसृता अवतीर्णा व्य
वस्थिताश्चतुर्पु मतेषु क्रियाऽक्रियाऽज्ञानवैनयिकाख्येष्वनिप्रायेषु त्रिपष्टयुत्तरशतत्रय
संख्या पापमिन स्वीय स्वीयमर्थं प्रसाधयत समुचितास्तडुपन्यस्तसाधनदोषोद्भा
वनतो निराक्रियंते ॥ त्रयोदशे त्विदमनिहित ॥ तद्यथा ॥ सर्ववादिषु कपिलकणा
दाक्षपादशौद्धोदनिजैमिनिप्रनृतिमतानुसारिषु कुमार्गप्रणेतृत्व साध्यते ॥ चतुर्दशेतु
ग्रंथाख्येऽध्ययनेऽयमर्थाधिकार ॥ तद्यथा । शिष्याणा गुणदोषकथना तथा शिष्यगुणसपडु
पेतेन च विनेयेन नित्य गुणानुरूपगुरुकुलवासो विधेय इति ॥ पचदशे त्वादानीयाख्ये
ऽध्ययनेऽर्थाधिकारोऽय ॥ तद्यथा ॥ आदीयते गृह्यंते उपादीयंते इत्यादानीयानि पदान्य
र्था वा ते च प्रागुपन्यस्तपदैरर्थैश्च प्रायशोऽत्र सकलिता ॥ तथा आयतं चरित्रं सम्यक्चरित्रं
मोक्षमार्गप्रसाधक तच्चात्र व्यावर्ण्यत इति ॥ षोमशेतु गाथाख्येऽध्ययथेऽध्ययनार्थोय
व्यावर्ण्यते । तद्यथा ॥ पचदशनिरध्ययनैर्योर्योनिहित सोत्र पंमितवचनेन सक्षिप्तानिधा
नेन प्रतिपाद्यत इति ॥ 'गाहा सोलसगाणं पिंडछोवन्निर्उ समासेण ॥ इत्तो इक्किक पुण
अञ्जयण कित्तयिस्सामि' ॥१॥ तत्राद्यमध्ययन समयाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्य
नुयोगद्वाराणि जवति ॥ तत्रोपक्रमणमुपक्रम्यते वाऽनेन शास्त्रं न्यासदेश निक्षेपावसरमा
नीयत इत्युपक्रम । सच लौकिको नामस्थापनाद्द्रव्यक्षेत्रकालनावजेदेन षड्रूप आवश्यका
दिष्वेवप्रपंचित ॥ शास्त्रीयोप्यानुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूप षोढैव ।
तत्रानुपूर्व्यादीन्यनुयोगद्वारानुसारेण ज्ञेयानि तावद्यावत्समवतारस्तत्रैस्तदध्ययनमानु
पूर्व्यादिषु यत्र यत्र समवतरति तत्र तत्र समवतारयितव्यं ॥ तत्र दशविधायामानुपूर्व्यांग
णनानुपूर्व्यां समवतरति सापि त्रिधा । पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति ॥ तत्रेदमध्य
यनं पूर्वानुपूर्व्या प्रथम पश्चानुपूर्व्यां षोडशम् । अनानुपूर्व्या तु चिंत्यमानमस्यामेवैकादिका
यामेकोत्तरिकाया षोडश गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासद्विरूपोनसंख्याजेद जवति ॥ अना
नुपूर्व्यांतु षोडशनेदसंख्यापरिज्ञानोपायोयं । तद्यथा । ' एकाद्या गच्छपर्यंताः परस्परसमाह
ता ॥ राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फल' ॥१॥ प्रस्तारानयनोपायस्त्वयं ॥ पुव्वाणुपुव्विहेठा

१२३४५ - इत्यादि॥तत्र।'गणितेत्यविनक्ते तु लब्धं शेषैर्विनाजयेत्॥ आदावते च तत्
२१३४५ स्थाप्य विकल्पगणिते क्रमात्'॥१॥ अथ श्लोक शिष्यहितार्थं विव्रियते। त
१३२४५ त्र सुखावगमार्थं पट् पदानि समाश्रित्य तावत् श्लोकार्थो योज्यते। तत्रैव
३१२४५ पट् पदानि स्थाप्यानि। १२३४५६। एतेषा परस्परताडनेन सप्तशतानि
२३१४५ विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते। तस्मिन् गणितेऽस्योत्र पट्कस्तेन नागे हते विं
३२१४५ शत्युत्तर शतं लभ्यते तच्च पश्चा पक्तीनामत्यपंक्तौ पट्काना न्यस्यते। तदध
१२४३५ - पचकानां विंशत्युत्तरमेवशतम्॥एवमधोधश्चतुष्कत्रिकद्विकैकानां प्रत्येकं विंश त्युत्तरशतं न्यस्यमेवमत्यपक्तौ सप्त शतानि विंशत्युत्तराणि नवत्येषा च गणितप्रक्रियाया आदिरुच्यते। तथा यत्तद्विंशत्युत्तर शत लब्ध तस्य च पुन शेषेण पचकेन नागेनापहृते लब्धा चतुर्विंशतिस्तावतस्तावन्तश्च पचकचतुष्कत्रिकद्विकैका प्रत्येक पचमपक्तौ न्यस्या यावद्विंशत्युत्तर शतमिति॥ तदधोग्रतो न्यस्तमक मुक्त्वा येन्ये तेषा यो यो महत्सख्य स सोधस्ताच्चतुर्विंशतिसख्य एव तावत् न्यस्यो यावत्सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि पचमपङ्क्तावपि पूर्णानि नवति॥ एषा च गणितप्रक्रियेत्यनिधीयते॥ एवमनया प्रक्रियया चतुर्विंशते शेपचतुष्ककेन नागे हते पट् लभ्यते तावतश्चतु पक्तौ चतुष्कका स्थाप्यास्तदध पट्त्रिका पुनर्द्विका नूय एकका पुन पूर्वन्यायेन पक्ति पूरणीया॥ पुन पट्कस्य शेपत्रिकेण नागे हते द्वौ लभ्येते तावन्मात्रौ त्रिकौ तृतीयपक्तौ शेप पूर्ववत्। शेपपक्तिद्वये शेपमकद्वय क्रमोत्क्रमाभ्या व्यवस्थाप्यमिति॥ तथा नाम्नि पड्विधनाम्न्यवतरति। यतस्तत्र पड् नावा प्ररूप्यते। श्रुतस्यच क्षायोपशमिकनाववर्तित्वात्। प्रमाणमधुना प्रमीयतेनेनेति प्रमाण॥तत् द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदाच्चतुर्धा। तत्रास्याध्ययनस्य क्षायोपशमिकनावव्यवस्थितत्वाद्भावप्रमाणेऽवतार.। नावप्रमाण च गुण, नय, सख्या, नेदात्रिधा। तत्रापि गुणप्रमाणे समवतार। तदपि जीवाजीवनेदाद् द्विधा। समयाध्ययनस्य च क्षायोपशमिकनावरूपत्वात्तस्य च जीवानन्यत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतार। जीवगुणप्रमाणमपि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, नेदात्रिविध। तत्रास्य बोधरूपत्वात् ज्ञानगुणप्रमाणे समवतार॥ तदपि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमनेदाच्चतुर्धा। तत्रास्यागमप्रमाणे समवतार॥ सोपि लौकिक, लोकोत्तर, नेदाद् द्विधा। तदस्य लोको [illegible] स्य च सूत्रार्थतदुनयरूपत्वा त्रैविध्य। त्रिष्वपि समवतार। [illegible]

ह्त्ते समुयारो णत्थि पुढुत्ते समोयारो ॥ १ ॥ तथा ॥ श्रासज्जउ सोयार नएनय विसारउ बूया' ॥ सख्याप्रमाणं त्वष्टधा ॥ नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, परिमाण, पर्यव, नाव, नेदात् । तत्रापि परिमाणसंख्यायां समवतार ॥ सापि कालिकदृष्टिवादनावात् द्विधा ॥ तत्रास्य कालिकपरिमाणसंख्यायां समवतारस्तत्राप्यंगानंगयोर गप्रविष्टे समवतार । पर्यवसंख्याया त्वनत्ता. पर्यवा ॥ तथा संख्येयान्यक्षराणि संख्येया· संघाता संख्येयानि पदानि सख्येया श्लोका सख्येया गाथाः सख्येया वेदा संख्येयान्यनुयोग द्वाराणि । साप्रतं वक्तव्यताया समवतारश्चिन्त्यते ॥ साच स्व, पर, समय,तडुनयनेदात्रिधा । तत्रेदमध्ययन त्रिविधायामपि समवतरति । श्रर्थाधिकारो द्वेधा॥ श्रध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽनिहित । उद्देशार्थाधिकार तु गाथातरितं निर्युक्तिरु द्वक्ष्यति । साप्रतं निक्षेपावसर सच त्रिधा । उंघनिष्पन्नो नामनिष्पन्न सूत्रालापकनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्नेऽध्ययनं तस्यच निक्षेप श्रावश्यकादौ प्रबंधेनानिहित एव । नामनिष्पन्नेतु समय इति॥२ण॥नाम तन्निक्षेपार्थ निर्युक्तिकार श्राह॥ “नामंठवणा दविए खेत्ते काले कुतित्थसगारे ॥ कुलगणसकरगंडी । बोधव्वा नावसमएय” ॥२ए॥ (नाम ठवणाइत्यादि) । नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, कुतीर्थ, सगार, कुल, गण, संकर, गंडी, नाव, नेदात् द्वादशधा समयनिक्षेप । तत्र नामस्थापने क्षुस्रे । इव्यसमयो इव्यस्य सम्यगयन परिणतिविशेष स्वनाव इत्यर्थ । तद्यथा । जीवइव्यस्योपयोग. पुजलइव्यस्य मूर्तत्व धर्माधर्माकाशाना गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणोऽथवा योयस्य इव्यस्यावसरो इव्यस्योपयोगकाल इति ॥ तद्यथा ॥ 'वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमते ॥ शिशिरे चामलकरसो घृतं वसते गुडश्चांते' ॥ १ ॥ क्षेत्रसमय क्षेत्रमाकाश तस्य समय स्वनाव । यथा ॥ ' एगेणविसेपुसे दोत्हिविपुणे सयपि माएज्जा ॥ लक्खसएणविपुसे, कोडिसहस्स पि माएज्जा' ॥१॥ यदि वा देवकुरुप्रनृतीनां क्षेत्राणामीदृशोऽनुनावो यङ्गत तत्र प्राणिन· सुरूपा नित्यसुखिनो निर्वैराश्च नवतीति क्षेत्रस्य वा परिकर्मणावसर क्षेत्रसमय इति ॥ कालसमयस्तु सुषमादेरनुनावविशेष. । उत्पलपत्रशतनेदानिव्यंग्यो वा कालविशेष. कालसमय इति ॥ अत्र च इव्यक्षेत्रकालप्राधान्यविवक्षया इव्यक्षेत्रकालसमयता इष्टव्येति । कुतीर्थसमय पाखंडिकानामात्मीयानात्मीय श्रागमविशेष स्तडुक्तं वानुष्ठानमिति ॥ संगार. सकेतस्तद्रूप समय सगारसमय ॥ यथा सिद्धार्थसारथिदेवेन पूर्वकृतसगारानुसारेण गृहीतव्रतशिवो बलदेव. प्रतिबोधित इति ॥ कुलसमय कुलाचारो यथा शकाना पितृशुद्धिः श्रानीरकाणां मथनिका शुद्धि । गणसमयो यथा॥ मल्लानामयमाचारो यथा यो ह्यनाथो मल्लो म्रियते स तै सत्क्रियते पतितश्चोध्रियत इति । सकरसमयस्तु संकरोनिन्नजातीयानां मीलकस्तत्र च समये एकवाक्यता ॥ यथा वाममा

गांदावनाचारप्रवृत्तावपि शुचिकरणमिति । गडीसमयो यथा शाक्यानां नोजनावसरे गं डीताडनमिति । नावसमयस्तु नो आगमत इदमेवाध्ययनमनेनैवात्राधिकार· शेषाणां तु शिष्यमतिविकाशार्थमुपन्यास इति ॥२९॥सांप्रतं प्रागुपन्यस्तोद्देशार्थाधिकारान्निधित्सया ऽह ॥ "महपचनूय एक्क, प्पएय तज्जीवतस्सरीरेय ॥ तहय अगार गवाती अत्तछठो अफलवादी ॥३०॥ बीए नियवाईउं, अत्राणियतहय नाणवाईउं ॥ कम्म च यन्नगच्छइ, चउविह निरकुसमयंमि ॥ ३१॥ तइए आहाकम्म, कडवाई जहयतेयवाईउं ॥ किच्चुवमा य चउत्थे, परप्पवाई अविरएसु" ॥ ३२ ॥ महपचनूय इत्यादिगाथात्रय । अस्याध्ययनस्य चत्वार उद्देशकास्तत्राद्यस्यषडर्थाधिकारा आद्यगाथयाऽनिहिता' ॥ तद्यथा । पचनूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि महांति च तानि सर्वलोकव्यापित्वात् नूतानि च महानूतानि इत्ययमेकोऽर्थाधिकार । तथा चेतनाचेतन सर्व मेकात्मविवर्त इत्यात्माऽद्वैतवाद प्रतिपाद्यत इत्यर्थाधिकारो द्वितीय । स चासौ जीवश्च तज्जीव कायाकारो नूत परिणामस्तदेव शरीर जीवशरीरयोरैक्यमिति यावदिति तृतीयोर्थाधिकार । तथाऽकारको जीव सर्वस्या पुण्यपापक्रियाया इत्येववादीति चतुर्थोधिकार ॥ तथात्मा षष्ठ इति पचाना नूतानामात्मा षष्ठ प्रतिपाद्यत इत्यय पंचमोर्थाधिकार । तथा फलवादीति । न विद्यते कस्याश्चित् क्रियाया फलमित्येव वादी च प्रतिपाद्यत इति षष्ठोर्थाधिकार इति । द्वितीयोद्देशकेचत्वारोर्थाधिकारा ॥तद्यथा । नियतिवादस्तथाऽज्ञानिकमत ज्ञानवादी च प्रतिपाद्यते । कर्म च चयमुपचय चतुर्विधमपि न गच्छति निक्रुसमये शाक्यागमे चतुर्थोर्थाधिकार । चातुर्विध्यतु कर्मणो ऽविज्ञोपचितं ॥ अविज्ञानमविज्ञा तयोपचितमनानोगकृतमित्यर्थ । यथा मातु स्तनाद्याक्रमणेन पुत्रव्यापत्तावप्यनानोगान्नकर्मोपचीयते । तथा परिज्ञान परिज्ञा केवलेन मनसा पर्यालोचन तेनापि कस्यचित्प्राणिनो व्यापादनानावात् कर्मोपचयानाव इति । तथा ईर्यापथीयगमन तेन जनितमीर्याप्रत्ययं तदपि कर्मोपचय न गच्छति [illegible] तथा स्वप्नांतिक स्वप्नप्रत्यय कर्म नोपचीयते । यथा स्वप्ननोजने [illegible]

केत्ययमर्थाधिकार । तथा [illegible]
कृतवादी च नण्यते । तद्यथेश्वरेण कृतोय लो[illegible]
न आत्मीय कृतवाद गृहीत्वोपस्थितास्तथा [illegible]
कारस्त्वय । तद्यथा॥ अविरतेषु गृहस्थेषु [illegible]
धाने कर्तव्ये परप्रवादी परतीर्थिक उपमी[illegible]
नुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निर्युक्त्यनुग[illegible]
उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम· सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति[illegible]

गत उंघनामनिष्पन्ननिक्षेपयोरंतर्गतत्वात्। तथाच वक्ष्यमाणस्य सूत्रस्य निक्षेपावसरत्वात्। उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्तु षड्विंशति द्वारप्रतिपादकाज्ञाथा द्वयादवसेयस्तच्चेदं उद्देश निद्देशेय इत्यादि। सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति संनवति॥ सूत्र च सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्त एव। तत्राऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेद॥ बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जेत्यादिश्लोकः। अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या। (बुध्यतेत्यादि)। सूत्रमिदं सूत्रकृतांगादौ वर्तते। अस्यच ऽऽचारांगेन सहायं संबंधः। तद्यथा आचारांगेऽभिहितं। 'जीवो छक्कायपरू, वणायतेसिं वहेणबंधोत्ति' इत्यादि तत्सर्वं बुध्येतेत्यादि। यदि चेह केषांचिद्वादिनां ज्ञानादेवमुक्त्यवाप्तिरन्येषां क्रियामात्रात्। जैनानां तूनाभ्यां निश्रेयसाधिगम इत्येतदनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते। तत्रापि ज्ञानपूर्विका क्रिया फलवती नवतीत्यादि बुध्येतेत्यनेन ज्ञानमुक्तं॥त्रोटयेदित्येनेनच क्रियोक्ता॥तत्रायमर्थो बुध्येतावगच्छेत् बोधं विदध्यादित्युपदेशः। किंपुनस्तद्बुध्येत तदाह। बंधनं बध्यते जीवप्रदेशैरन्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थाप्यत इति बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म तद्धेतवो वा मिथ्यात्वाऽविरत्यादयः परिग्रहारंनादयो वा। नच बोधमात्रादभिलषितार्थावाप्तिर्नवतीत्यतः क्रियां दर्शयति। तच्च बधनं परिज्ञाय विशिष्टया क्रियया संयमानुष्ठानरूपया त्रोटयेदपनयेदात्मनः पृथक्कुर्यात्परित्यजेद्वा। एवं चाभिहिते जंबूस्वाम्यादिको विनेयो बंधादिस्वरूपं विशिष्टं जिज्ञासुः पप्रच्छ॥ किमाह किमुक्तवान् बधनं वीरस्तीर्थकृत् किंवा जानन्नवगच्छंस्तद्बंधनं त्रोटयति ततो वा त्रुट्यतीति श्लोकार्थः॥१॥ बंधनस्वरूपनिर्वचनायाह॥ (चित्तमंतमचित्त वेत्यादि)॥ इह बधनं कर्म तद्धेतवो वाऽभिधीयंते॥ तत्र न निदानमंतरेण निदानिनो जन्मेति निदानमेव दर्शयति॥ तत्रापि सर्वारंनाः कर्मोपादानरूपाः प्रायश आत्मात्मीयग्रहोत्थानामिति कृत्वाऽदौ परिग्रहमेव दर्शितवान्॥ चित्तमुपयोगो ज्ञानं तद्विद्यते यस्य तच्चित्तवत् द्विपदचतुष्पदादि। ततोन्यदचित्तवत् कनकरजतादि तडुभयरूपमपि परिग्रहं परिगृह्य कृशमपि स्तोकमपि तृणतुषादिकमपीत्यर्थः। यदि वा कसनं कसः परिग्रहग्रहणबुध्या जीवस्य गमनपरिणाम इति यावत्। तदेव स्वतः परिग्रहं परिगृह्यान्यान्वा ग्राहयित्वा गृण्हतो वान्याननुज्ञाय डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तत्फलं वा असातोदयादिरूपं तस्मान्न मुच्यत इति। परिग्रहाग्रह एव परमार्थतोनर्थमूलं नवति। तथा चोक्तं। 'ममाहमिति चैष यावदभिमानदाहज्वरः कृतांतमुखमेव तावदिति न प्रशांत्युन्नयः॥ यश सुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः परैरपसदः कुतोपि कथमप्यपाकृष्यते'॥१॥ तथाच॥ द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षांते प्रतीपो विधिर्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं ध्यानस्य कष्टो रिपुः॥ डुःखस्य प्रनवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः प्राज्ञस्यापि परिग्रहो ग्रहइव क्लेशाय नाशायच'॥१॥२॥

सय निवायए पाणे, अडुवाऽन्नेहिं घायए ॥ हणतं वा णुजा णाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥३॥ जेस्सिं कुले समुप्पन्ने जेहिं वा स वसे नरे ॥ ममाइ लुप्पई वाले, अन्ने अन्नेहिं मुछिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ज्यां परिग्रह त्यां आरंन होय, अने ज्यां आरंन त्यां प्राणातिपात होय एवु देखाडेछे ते परिग्रहवंत पुरुष असतोपी छतो ते परिग्रह उपार्जवाने अर्थे, अने उपार्जन करेलो परिग्रह राखवाने अर्थे सयके० पोते, पाणेके० प्राणीउंनो, निवायएके० निपात एटले विनाश करे, अडुवाके० अथवा अन्नेहिं घायएके० अनेरा पासे प्राणीउंनी घात करावे, वाके० अथवा हणतं के० जे प्राणीउंने हणतो होय अर्थात् प्राणीउंनो विनाश करतो होय तेने अणुजाणाइके० अनुमोदवे करी प्राणीउंनी घात करतो थको अथवा करावतो थको अप्पणोके० आत्माने वेरवड्ढइके० वेरनी वृद्धी करेछे ते थी जे डुःख परंपरारूप बंधन तेथकी बुटे नहीं ॥३॥ वली पण बंधन आश्रयी कहेछे जेस्सिं कुले समुप्पन्नेके० रागोडादिक जे कुलमां उत्पन्न थयो, अथवा जेहिंवा सवसे के० जेनीसाथे वास वसे, एटले पासुक्रीडादिक करे एवा नरेके० मनुष्य जे माता, पिता, नाई, बेहेन, नार्या, अने मित्रादिक तेने विषे ममाइके० ममत्वनो करनार एटले मातापितादिकनी साथे स्नेह करतो एवो वालेके० अज्ञानी जीवते लुप्पइके० कर्मे संसारचक्रमांहे नमतो थको पीडायछे, ते मनुष्य केवोछे तोके अन्नेअन्नेहिंके० अन्य अन्य एटले प्रथम माता पिता, तदनंतर नाईने विषे, तदनंतर पुत्रपौत्रादिक, एम अन्य अन्यने विषे मुछिएके० मूर्छित एटले मूर्छा पामतो थको स्नेहे करी पीडायछे ॥ ४ ॥

दीपिका ॥ अथवा प्रकारांतरेण बंधनमेवाह । सयतीति ॥ सपरिग्रहवान् स्वयमात्मना प्राणानतिपातयेत् जीवान् हिंस्यात् । अथवा अन्यैः परैरपि घातयति घ्नतश्चान्याननुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिभिः प्राणिघातं कुर्वन्नात्मनो वैरं वर्धयति ततश्च बंधनान्न मुच्यते इति नाव ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । जेस्सिमित्ति । यस्मिन् कुले जातो यैर्वा मित्रैर्नार्यादिनिर्वा सह सवसेन्नर तेषु मित्रपितृमातृनार्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् लुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा बाध्यते । बालो मूर्ख विवेकरहितत्वादन्येषु च मूर्छितो ममत्वबहुल इत्यर्थ ॥ ४ ॥

टीका ॥ तथाच परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकौ प्राप्तेषु च रक्षणमुपनोगे वाऽतृप्तिरित्येव परिग्रहे सति डुःखात्मकाद्बंधनान्न मुच्यत इति परिग्रहवतश्चावश्यंनाव्यारंनस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयितुमाह । सयनिवायएपाणे इत्यादि । यदि वा प्रकारांत

रेण बंधनमेवाह् । सयंतीत्यादि । स परिग्रहवानसंतुष्टो भूयस्तदर्जनपर· समार्जितोप इवकारिणि च द्वेषमुपगतस्तत स्वयमात्मना त्रिन्यो मनोवाक्कायेन्य आयुर्बलशरीरेन्यो वा पातयेत् च्यावयेत् प्राणान् प्राणिन । अकारलोपाच्च अतिपातयेत् प्राणानिति । प्राणाश्चामी । पचेंद्रियाणि त्रिविध बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायु ॥ प्राणा दशैते नगवद्भिरुक्ता,स्तेषां वियोजीकरण तु हिंसा ॥ १ ॥ तथा स परिग्रहाग्रही न केवलं स्वतो व्यापादयति अपरैरपि घातयति घ्नतश्चान्यान् समनुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिनि· प्राण्युपमर्दनेन जन्मांतरशतानुबंध्यात्मनो वैरं वर्धयति । ततश्च डुखपरपरारूपबंधनान्न मुच्यत इति । प्राणातिपातस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादयोपि बंधहेतवो डृष्टव्या इति ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह् । (जेस्सिमित्यादि) । यस्मिन् राष्ट्रकूटादौ कुले जातो यैर्वा सह पांसुक्रीडितैर्यैर्नार्यादिनिर्वा सह संवसेन्नरस्तेषु मातृपितृभ्रातृनगिनीनार्यावयस्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् स्निह्यन् लुप्यते विलुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा नारकतिर्यङ्मनुष्यामरलक्षणे संसारे भ्रम्यमाणो बाध्यते पीड्यते। कोसौ बालोऽज्ञ स दसद्विवेकरहितत्वादन्येष्वन्येषु च मूर्छितो गृद्धोऽध्युपपन्नो ममत्वबहुल इत्यर्थ । पूर्वं ताव·मातापित्रोस्तदनुनार्यायां पुन पुत्रादौ स्नेहवानिति ॥ ४ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सवमेयं नताणइ॥ संखाए जीविअं चेवं,
कम्मुणा उ तिउट्टइ ॥५॥ एए गथे विउक्कम्म, एगे समणमाह
णा ॥ अयाणता विउस्सिता सत्ता कामेहि माणवा ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे जे प्रथम कह्यु हतुंके, कहेवु जाणतो थको बंधन त्रोडे ते कहेछे. वित्तं के० धनधान्यादिक सचित्त तथा अचित्त वस्तु अने सोयरियाके० भाइ प्रमुख कौटुंबिक स्वजनादिक चेवके० वली सवमेयंके० ए सर्व जे कुटुंबादिक स्नेहवतछे, ते शारीरी, मानसी वेदना नोगवता थका ए जीवने नताणइके० त्राण नणी न थाय एवुं जाणीने जीवियंचके० जे प्राणीउनुं जीवतव्य अल्पछे एवके० एवुं सखाएके० जाणीने, जीवितव्य प्राणीउने एटले परिग्रह प्राणिघात अने स्वजन स्नेहादिक बधनना स्थानने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने, प्रत्याख्यान परिज्ञाये छांडिने, कम्मुणाव तिउट्टइके० कर्म थकी तूटे अर्थात् कर्म थकी वेगलो थाय ॥ ५ ॥ हवे स्वसमयनो अधिकार कही परसमयनो अधिकार कहेछे. एएगंथेके० ए अरिहतना नाषित ग्रंथ जे करुणारसमय छे तेने गमीने स्वेछायें रचित ग्रंथोने विषे विउक्कम्मके० आसक्त थका, एगेसमणाके० एक शाक्यादिकना श्रमण, बीजा बृहस्पतिमतानुसारी एवा माहणा के० ब्राह्मण ए अयाणताके० परमार्थना अजाण थका विउस्सित्ता के० विविध प्रकारे उत्प्रबलपणे पोताना

ग्रथनेविषे सत्ता एटले बंधाणा, एतावता आपणा मतना कदाग्रही एवा छतां माणवाके० पुरुष जे छे, ते पोतपोताना मतना अनुरागेकरी, कामेहि के० इच्छामदनादिक तेनेविषे सत्ता के० आसक्त थका प्रवर्त्तेछे एटले पोतानो मार्ग लोकोमाहे प्रसिद्धपणे सारो करी देखाडेछे

॥ दीपिका–किं जानन् बंधन त्रोटयतीत्यस्योत्तरमाह । (वित्तमिति) । वित्त द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । सोदर्या भ्रातृभगिन्यादय सर्वमेतद्वित्तादिक संसारे पीड्यमानस्य जंतोर्न त्राणाय न रक्षणाय भवतीति । एतत् संख्याय ज्ञात्वा तथा जीवितं स्वल्पमिति संख्याय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय कर्मण सकाशात् त्रुटयति अपगच्छत्यसौ । तुर्निश्चये त्रुटयेदेव । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात् त्रुटयति कर्मण पृथग्भवतीत्यर्थ ॥ ५ ॥ स्वसमयं प्रतिपाद्य परसमयंप्रतिपादयितुकाम आह । (एएइति) । एतान् पूर्वोक्तान् ग्रंथान् सूत्रार्थान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य एके केचित् श्रमणब्राह्मणा श्रमणा शाक्यादयो ब्राह्मणाश्च (अयाणता) परमार्थमजानाना (विउस्सिता) विविधमुत्प्राबल्येन सिता बद्धा स्वसमयेषु प्रतिबद्धा सत कामेषु च सक्ता वर्ततइति ॥ ६ ॥

॥टीका–साप्रतं यदुक्त प्राक् किंवा जानन् बंधन त्रोटयतीत्यस्य निर्वचनमाह।(वित्तमित्यादि) । वित्तं द्रव्य तच्च सचित्तमचित्त वा । तथा सोदर्या भ्रातृभगिन्यादय सर्वमपि चैतद्वित्तादिकं संसारांतर्गतस्यासुमतोऽतिकटुका शरीरमानसवेदनास्समनुभवतो न त्राणाय रक्षणाय भवतीत्येतत्संख्याय ज्ञात्वा । तथा जीवितं च प्राणिना स्वल्पमपि तत्संख्याय ज्ञपरिज्ञया । प्रत्याख्यानपरिज्ञया तु सचित्ताचित्तपरिग्रहप्राण्युपघातस्वजनस्नेहादीनि बंधनस्थानानि प्रत्याख्याय कर्मण सकाशात्त्रुट्यति अपगच्छत्यसौ । तुरवधारणे । त्रुट्येदेवेति । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात्त्रुटयति । कर्मण पृथग्भवतीत्यर्थ ॥ ५ ॥ अध्ययनार्थाधिकाराभिहितत्वात्स्वसमयप्रतिपादनानंतर परसमयप्रतिपादनाभिधित्सयाऽह । (एएगथेविउक्कम्मेत्यादि) । एतानंतरोक्तान् ग्रथान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य स्वरुचिविरचितार्थेषु ग्रंथेषु सक्ता सिता बद्धा एके न सर्वे इति संबंध । ग्रंथातिक्रमश्चैतेषा तदुक्तार्थानभ्युपगमात् । अनंतरग्रंथेषु चायमर्थोऽभिहितस्तद्यथा जीवास्तित्वे सति ज्ञानावरणीयादि कर्मबंधन तस्य हेतवो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादय परिग्रहारंभादयश्च । तत्रोटन च सम्यक्दर्शनाद्युपायेन मोक्षसद्भावश्चेत्येवमादिक । तदेवमेके श्रमणा शाक्यादयो बार्हस्पत्यमतानुसारिणश्च ब्राह्मणा एतानर्हदुक्तान् ग्रंथानतिक्रम्य परमार्थमजानाना विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन सिता बद्धा स्वसमयेष्वभिनिविष्टा । तथा च शाक्या एव प्रतिपादयंति । यथा सुखदुःखेच्छाद्वेषज्ञानाधारभूतो नास्त्यात्मा

कश्चित् किंतु विज्ञानमेवैकं विवर्ततइति । क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यादि । तथा सांख्या एव व्यवस्थिता । सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति. प्रकृतेर्महान् महतोहंकारस्तस्माजणश्च षोडशकस्तस्मात्षोडशकादपि पंचभूतानि चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यादि । वैशेषिका पुनराहु· । द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाया पट् पदार्थाइति । तथा नैयायिका· प्रमाणप्रमेयादीनां पदार्थानामन्वयव्यतिरेकपरिज्ञानान्नि·श्रेयसाधिगमइति व्यवस्थिता । तथा मीमांसकाश्चोदनालक्षणोधर्मो नच सर्वज्ञ कश्चिद्विद्यते मुक्त्यजावश्चेत्येवमाश्रिता । चार्वाकास्त्वेवमभिहितवतो यथा नास्तिकश्चित्परलोकयायी जूतपंचकाद्व्यतिरिक्त· पदार्थो नापि पुण्यपापे स्तइत्यादि । एवचांगीकृत्यैते लोकायतिका । मानवा पुरुषा सक्ता गृध्ना अध्युपपन्ना कामेष्विच्छामदनरूपेषु । तथाचोचु· । एतावानेव पुरुषो, यावानिंद्रियगोचरः ॥ नद्रेवृकपदं पश्य, यद्वदंत्यवहुश्रुता ॥ १ ॥ पिब खाद च साधु शोजने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि जोरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ २ ॥ एव ते तंत्रांतरीया· स्वसमयार्थवासितांत·करणा सतो जगवदर्हदुक्त ग्रंथार्थमज्ञातपरमार्था· समतिक्रम्य स्वकीयेषु ग्रंथेषु सिता सबद्धा कामेषु च सक्ताइति ॥ ६ ॥

संति पंच, महब्भुया, इहमेगेसि माहिया ॥ पुढवी आउ तेऊ वा,
वाउ आगासपचमा ॥ ७ ॥ एए पंच महप्भूया, तेप्नो एगोत्ति
आहिया ॥ अहतेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे ग्रंथकार प्रथम चार्वाकनु मत देखाडेछे. संतिपंचमहप्भूया के० ते चार्वाक एम कहेछे के जगत्मां सर्वलोकव्यापी पचमहाजूत छे इहके० आ लोकमाहे, एगेसि के० कोइ एक जूतवादी तेना मतने विषे आहियाके० कह्याछे. ते कोण? तोके० पुढवी के० पृथ्वी कठिणरूप छे, आउके० अप्प ते द्रव्य लक्षणछे, तेऊके० तेज उष्णरूप, वाउके० वायु चलन लक्षण अने पचमाके० पाचमुं आगासके० आकाश अवकाश लक्षण छे, ॥७॥ हवे एनुज विशेष कहेछे. एएपंचमहप्भूयाके० ए पूर्वे कह्याते जे पचमहाभूत तेप्नो के० ते थकीज एगोत्ति के० कोइ एक चिद्रूप ते जूत थकी अव्यतिरिक्त एवो आहिया के० आत्मा होय छे , परतु जेम ए पाच जूत थकी पृथक् जूत एवो अन्य कोइ बीजो आत्मा छे, एवी रीते जे बीजा दर्शनी कल्पना करेछे तेम नथी केमके ए परलोकनो जनार, सुखदुःखनो जोगवनार जीव एवो पदार्थ कोइ बीजो नथी, एम ते चार्वाक कहेछे तेमने कोइ परवादी एम पूछे के, अहो चार्वाको जो ! तमारे मते पंचमहाजूत थकी अन्य कोइ आत्मा एवो पदार्थ नथी, तो मरण पाम्यो एम कोण कहेवाय?

हवे एनो उत्तर चार्वाक दर्शनीओ कहेछे अहएसिंके० अथ एटले हवे एसिं एटले ए पंच महाभूत जे छे तेना विणासेण के० विनाश थकी, देहिणो के० जीवनो पण विणासो होइ के० विनाश होयछे परंतु जे एवुं कहेछे के आत्मा चवीने अन्यत्र स्थाने जायछे. कर्मना वशथकी सुखी दुःखी थायछे, ते सर्व मुग्धरजन जाणवुं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं नास्तिकमतमाश्रित्याह । (संतीति) संति पंचमहाभूतानि इह अस्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि तत्तीर्थकृतानि । तैर्वा भूतवादिभिर्नास्तिकैराख्यातानि स्वयमंगीकृतानि । परेषां च प्रतिपादितानि तानि चामूनि । (पुढवीत्यादि) । पृथ्वी १ आपो जलं २ तेजो वन्हि ३ वायु ४ आकाश पंचमं येषां तानि । ननु सांख्यादिभिरपि भूतानि मन्यंतएव । तत्कथं चार्वाकमतापेक्षयैव भूतोपन्यास इति चेदुच्यते । सांख्यादिभिर्हि प्रधानाहंकारादिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमंगीक्रियते । चार्वाकैस्तु भूतव्यतिरिक्तं नात्मादि किंचिन्मन्यतइति तन्मताश्रयेणैवायं सूत्रोपन्यास इति ॥७॥ चार्वाकमतांगीकारमेवाह । (एतइति) । एतानि पंचमहाभूतानि तेभ्यो भूतेभ्य कायाकारपरिणतेभ्य एक कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्त आत्मा भवति नतु कश्चिदपर परलोकयायी जीवाख्य पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । ननु यदि भूतेभ्योन्य कश्चिदात्मा नास्ति कथं तर्हि मृतइति व्यपदेशइत्याशंकायामाह । (अहतेसिति) । अथ तेषां भूतानां विनाशेऽपगमे देहिनो देवदत्तादेर्विनाशो भवति ततश्च मृतइत्युच्यते न पुनर्जीवापगमइति । अत्रैतन्मतनिर्लोठनयुक्तयो वृत्तितोऽवसेया ॥८॥

॥ टीका–सांप्रतं विशेषेण सूत्रकार एव चार्वाकमतमाश्रित्याऽह । (संतिपंचमहब्भूयाइत्यादि) । संति विद्यते महांति च तानि भूतानि च महाभूतानि । सर्वलोकव्यापित्वान्महत्वविशेषण । अनेन च भूतानावादिनिराकरणं द्रष्टव्यं । इहास्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि प्रतिपादितानि तत्तीर्थकृता तैर्वा भूतवादिभिर्बार्हस्पत्यमतानुसारिभिराख्यातानि स्वयमंगीकृतान्यन्येषां च प्रतिपादितानि । तानि चामूनि । तद्यथा । पृथिवी कठिनरूपा । आपो द्रवलक्षणा । तेज उष्णरूपं । वायुश्चलनलक्षण । आकाश सुषिरलक्षणमिति तच्च पंचमं येषां तानि । तथा । एतानि सांगोपांगानि प्रसिद्धत्वात् प्रत्यक्षप्रमाणावसेयत्वाच्च न कैश्चिदपह्नोतुं शक्यानि । ननु च सांख्यादिभिरपि भूतान्यभ्युपगतान्येव । तथाहि । सांख्यास्तावदेवमूचुः । तद्यथा । सत्वरजस्तमोरूपात्प्रधानान्महान् बुद्धिरित्यर्थं । महतोऽहंकारोऽहमितिप्रत्ययस्तस्मादप्यहंकारात्षोडशकोगण उत्पद्यते । सचायं । पंच स्पर्शादीनि बुद्धीन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थरूपाणि पंच कर्मेंद्रियाणि । एकादशं मनः । पंचतन्मात्राणि । तद्यथा । गंधरसरूपस्पर्शशब्दत

न्मात्राख्यानि। तत्र गंधतन्मात्रात्पृथिवी गंधरसरूपस्पर्शवती। रसतन्मात्रादापो रस रूपस्पर्शवत्य। रूपतन्मात्रात्तेजो रूपस्पर्शवत्। स्पर्शतन्मात्रा द्वायु स्पर्शवान्। शब्द तन्मात्रादाकाशं गंधरसरूपस्पर्शवर्जितमुत्पद्यतइति। तथा वैशेषिका अपि नूतान्यनि हितवंतः। तद्यथा। पृथिवीत्वयोगात्पृथिवी। साच परमाणुलक्षणा नित्या। द्व्यणुकादि प्रक्रमनिष्पन्नकार्यरूपतया त्वनित्या। चतुर्दशभिर्गुणैरूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परि माण, पृथक्त्व, संयोग, विनाग, परत्वा,परत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेगाख्यैरुपेता। तथा प्त्वयोगादापस्ताश्च रूपरसस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वगुरुत्व स्वाना विकद्रवत्वस्नेहवेगवत्यस्तासु च रूपं शुक्लमेव रसो मधुरएव स्पर्शः शीतएवेति। तेजस्त्वानिसंबधात्तेजः। तच्च रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वनै मित्तिकद्रवत्ववेगाख्यैरेकादशनिर्गुणैर्गुणवत्। तत्र रूप शुक्लं नास्वरं च। स्पर्शउष्णएवेति। वायुत्वयोगा द्वायुः। सचानुष्णशीतस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्व वेगाख्यैर्नवनिर्गुणैर्गुणवान्। हृत्कंपशब्दानुष्णशीतस्पर्शलिंग। आकाशमिति पारिनाषिकी संज्ञा एकत्वात्तस्य। तच्च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागशब्दाख्यैः षड्निर्गुणैर्गुण वत्। शब्दलिंगंचेत्येवमन्यैरपि वादिनिर्नूतसद्भावाश्रयणे किमिति लोकायतिकमतापेक्ष या नूतपंचकोपन्यासइत्युच्यते। सांख्यादिनिर्हि प्रधानात्महदहंकारिकं तथा कालदिगात्मा दिकं चान्यदपि वस्तुजातमन्युपेयते। लोकायतिकैस्तु नूतपंचकव्यतिरिक्तं नात्मादिकं किं चिदन्युपगम्यते इत्यतस्तन्मताश्रयणेनैव सूत्रार्थो व्याख्यायतइति ॥ ७ ॥ यथा चैतत्त था दर्शयितुमाह।(एएपंचमहप्नूयाइत्यादि)।एतान्यनंतरोक्तानि पृथिव्यादीनि पंच महा नूतानि यानि तेन्य कायाकारपरिणतेन्य एक कश्चिच्चिद्रूपो नूताव्यतिरिक्त आत्मा नवति न नूतेन्यो व्यतिरिक्तोऽपर कश्चित्पर परिकल्पित परलोकानुयायी सुखडुःखनो क्ता जीवाख्य पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते। तथाहि। एवं प्रमाणयंति। न पृथिव्यादि व्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणानावात्॥प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेव नानुमानादिकं। तत्रेंद्रियेण साक्षादर्थस्य संबंधानावा द्व्यनिचारसंनव। सति च व्यनिचारसंनवे सदृशे च बाधासंनवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वास। तथाचोक्तं। हस्तस्पर्शादि वांधेन, विषमे पथि धावता॥ अनुमानप्रधानेन, विनिपातो न डुर्लन ॥ १ ॥ अनुमानं चात्रोपलक्षणमागमादीनामपि। साक्षादर्थसंबंधानावा द्धस्तस्पर्शनेनैव प्रवृत्तिरिति। तस्मात्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं। तेन च नूतव्यतिरिक्तस्यात्मनो न ग्रहणं। यत्तु चैतन्यं ते षूपलन्यते तन्नूतेष्वेव कायाकारपरिणतेष्वनिव्यज्यते मद्यांगेषु समुदितेषु मदशक्तिवदि ति। तथा न नूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वाद्घटादिवदिति। तदेवं नूतव्यतिरिक्तस्या त्मनोऽनावान्नूतानामेव चैतन्यानिव्यक्तिर्जलस्य बुद्बुदादिव्यक्तिवदिति। केषांचिल्लोकाय

तिकानामाकाशस्यापि नूतत्वेनान्युपगमाद्भूतपचकोपन्यासो न दोषायेति । ननुच यदि नूतव्यतिरिक्तोऽपर कश्चिदात्माख्य पदार्थो न विद्यते कथ तर्हि मृतइति व्यपदेश इत्याशं क्याह । अथैषां कायाकारपरिणतौ चैतन्याभिव्यक्तौ सत्यां तदूर्ध्वं तेषामन्यतमस्य विनाशे ऽपगमे वायोस्तेजसश्चोभयोर्वा देहिनो देवदत्ताख्यस्य विनाशोऽपगमो नवति ततश्च मृ तइति व्यपदेश प्रवर्तते न पुनर्जीवापगमइति नूताव्यतिरिक्तचैतन्यवादिपूर्वपक्षइति । अत्र प्रतिसमाधानार्थं निर्युक्तिरुदाह । "पचएहं सजोए,अस्मगुणाणच चेयणाइगुणो । पचिंदि यठाणाण,णअस्मुणिय मुणइ अस्मो ॥३ ३॥(पचएहंसजोएइत्यादि)। पचानां पृथिव्यादीनां नूतानां सयोगे कायाकारपरिणामे चैतन्यादिक । आदिशब्दात् नाषाचक्रमणादिकश्च गुणो न नवतीति प्रतिज्ञा । अन्यादयस्त्वत्र हेतुत्वेनोपात्ता । दृष्टातस्त्वन्यूह्य । सुजनत्वात्स्वनो पादान । तत्रेद चार्वाक प्रष्टव्य । यदेतद्भूताना सयोगे चैतन्यमभिव्यज्यते तत्किं तेषां संयो गेपि स्वातंत्र्यएवाऽहोस्वित्परस्परापेक्षया पारतत्र्ये इति । किंचाऽत ॥ न तावत्स्वातंत्र्ये यत आह । (अस्मगुणाणचेति) चैतन्यादन्ये गुणा येषा तान्यन्यगुणानि । तथा ह्याधारकाठिन्य गुणा पृथिवी इव्यगुणा आप पक्तृगुण तेज । चलनगुणो वायु अवगाहदानगुणमा काशमिति । यदि वा प्रागभिहिता ग गादय पृथिव्यादीनामेकैकपरिहान्याऽन्येगुणाश्चेत न्यादिति । तदेव पृथिव्यादीन्यन्यगुणानि । च शब्दो द्वितीयविकल्पवक्तव्यतासूचनार्थ । चैतन्यगुणे साध्ये पृथिव्यादीनामन्यगुणाना सतां चैतन्यगुणस्य पृथिव्यादीनामेकैकस्या प्यनावान्नतत्समुदायाच्चैतन्याख्यो गुण सिद्ध्यतीति । प्रयोगस्त्वत्र नूतसमुदाय स्वातंत्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चैतन्याख्यो गुणोस्तीति । साध्यो धर्म पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात् । योयोन्यगुणानासमुदायस्तत्रतत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिर्न नवती ति । यथा सिकतासमुदाये स्निग्धगुणस्य तैलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तंनाद्याविर्नावइति । दृश्यते च कार्ये चैतन्य तदात्मगुणो नविष्यतीति न नूताना मिति । अस्मिन्नेवसाध्ये हेत्वतरमाह । (पंचिंदियठाणाणति) । पच च तानि स्पर्शनर सनघ्राणचक्षुश्रोत्राख्यानींद्रियाणि तेषा स्थानान्यवकाशास्तेषा चैतन्यगुणानावान्न नूतसमुदाये चैतन्यं । इदमत्र हृदय । लोकायतिकानां हि अपरस्य इष्टुरनन्युपगमा दिंद्रियाएयेव इष्टृणि । एतेषा च यानि स्थानान्युपादानकारणानि तेषामचिद्रूपत्वान्न नूत समुदाये चैतन्यमिति । इंद्रियाणां चामूनि स्थानानि । तद्यथा । श्रोत्रेंद्रियस्याकाश सुषिरात्म कत्वात् । घ्राणेंद्रियस्य पृथिवी तदात्मकत्वात् । चक्षुरिंद्रियस्य तेजस्तद्रूपत्वात् । एव र सनेंद्रियस्याप । स्पर्शनेंद्रियस्य वायुरिति । प्रयोगश्चात्र नेंद्रियाण्युपलब्धिमति तेषामचे तनगुणारब्धत्वात् । यद्यदचेतनगुणारब्ध तत्तदचेतन । यथा घटपटादीनि । एवमपिच नू तसमुदाये चैतन्यानावएव साधितो नवति । पुनर्हेत्वतरमाह । (ण अस्मुणियमुण

इत्रणोति)। इहेंडियाणि प्रत्येकं नूतात्मकानि तान्येवापरस्य इष्टुरजावाद्रृणि तेषां च प्रत्येकं स्वविषयग्रहणादन्यविषये चाप्रऽवृत्तेर्नान्यदिंडियज्ञातमन्यदिंडियं जानातीत्यतो मया पचापि विषया ज्ञाता इत्येवमात्मक संकलनाप्रत्ययो न प्राप्नोत्यनुनूयते चायं तस्मादेकेनैव इष्टा नवतिव्यम्। तस्यैव च चैतन्यं न नूतसमुदायस्येति। प्रयोगः पुनरेव नूतसमुदाये चैतन्यं तदारब्धेंडियाणां प्रत्येकविषयग्राहित्वे सति संकलनाप्रत्ययाजावात्। यदि पुनरन्यगृहीतमप्यन्यो गृण्हीयाद्देवदत्तगृहीत यज्ञदत्तेनापि गृह्येत न चैतद् दृष्टमिष्टं चेति। ननुच स्वातंत्र्यपक्षेऽयं दोष। यदा पुन परस्परसापेक्षाणां सयोगपारतंत्र्याज्युपगमेन नूतानामेव समुदितानां चैतन्याख्यो धर्म सयोगवशादाविर्नवति। यथा किएवोदकादिषु मद्यांगेषु सुसुदितेषु प्रत्येकमविद्यमानापि मदशक्तिरिति तदा कुतोऽस्य दोषस्यावकाशइति। अत्रोत्तर। गाथाया चशब्दाक्षिप्तमनिधीयते। यत्तावडुक्तं। यथा नूतेज्य परस्परसव्यपेक्षसंयोगनाग्न्यश्चैतन्यमुत्पद्यते। तत्र विकल्पयाम। किमसौ सयोग सयोगिन्यो निन्नोऽनिन्नो वा। निन्नश्चेत्षष्ठनूतप्रसगो न चान्यत्पंचनूतव्यतिरिक्तसंयोगाख्यनूतग्राहक नवता प्रमाणमस्ति। प्रत्यक्षस्यैवैकस्याज्युपगमात्तेन च तस्याग्रहणात् प्रमाणांतराज्युपगमे च तेनैव जीवस्यापि ग्रहणमस्तु। तथा ऽनिन्नो नूतेज्यो नूतानामेव संयोगस्तत्राप्येतच्चिंतनीयं किंनूतानि प्रत्येक चेतनावत्यचेतनावति वा। यदि चेतनावति तदा एकेंडियसिद्धिस्तदा समुदायस्य पचप्रकारचैतन्यापत्ति। अथाचेतनानि तत्रोक्तो दोषो नहि। यच्चात्र प्रत्येकमविद्यमान तत्समुदाये नवडुपलज्यते सिकतासु तैलवदित्यादिना। यदप्यत्र पूर्वोक्त तथा मद्यांगेष्वविद्यमानाऽपि प्रत्येक मदशक्ति समुदाये प्राडुर्नवतीति। तदप्ययुक्त। यतस्तत्र किएवादिषु याच यावती शक्तिरुपलज्यते। तथा हि॥ किएवे बुनुक्षापनयनसामर्थ्यं न्रमिजननसामर्थ्यं चोदकस्य तृडपनयनसामर्थ्यमित्यादिनेति नूताना प्रत्येकं चैतन्याऽनज्युपगमे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यं। किंच नूते चैतन्याज्युपगमे मरणाजावो मृतकायेपि पृथ्व्यादीना नूतानां सद्भावात्। नैतदस्ति। तत्र मृतकाये वायोस्तेजसो वाऽनावान्मरणसद्भाव इत्यशिक्षितस्योल्लाप। तथाहि। मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरजाव कायस्य च पक्तिस्वजावस्य दर्शनान्नाग्नेरिति। अथसूक्ष्म कश्चिद्वायुविशेषोग्निर्वा ततोपगतइति मतिरित्येव च जीव एव नामांतरेणाज्युपगतो नवति। यत्किंचिदेतत्। तथा न नूतसमुदायमात्रेण चैतन्याविर्नाव। पृथिव्यादिष्वेकत्र व्यवस्थापिते चैतन्यानुपलब्धे। अथकायाकारपरिणतौ सत्यां तदाजिव्यक्तिरिष्यते। तदपि न। यतो लेप्यमयप्रतिमायां समस्तनूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोपलज्यते। तदेवमन्वयव्यतिरेकाज्यामालोच्यमानो नायंचैतन्याख्यो गुणो नूताना नवितुमर्हति। समुपलज्यते चायं शरीरेषु। तस्मात् पारिशेषात् जीवस्यैवायमिति स्वदर्शनपक्षपातं विहायांगीक्रियतामिति।

यच्चोक्तं प्राक् न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् । प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेवैकमित्यादि तत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तं प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नानुमानादिकमित्येतदनुपासितगुरोर्वचः । तथाहि । अर्थाविसंवादकं प्रमाणमित्युच्यते प्रत्यक्षस्य च प्रामाण्यमेवं व्यवस्थाप्यते । कश्चित्प्रत्यक्षव्यक्तीर्धर्मित्वेनोपादाय प्रमाणयति । प्रमाणमेता अर्थाऽविसंवादकत्वादनुभूतप्रत्यक्षव्यक्तिवत् । नच ताभिरेव प्रत्यक्षव्यक्तिभिः स्वसंविदितानि परव्यवहारयितुमयमीशस्तासां स्वसन्निविष्टत्वान्मूकत्वाच्च । प्रत्यक्षस्य नानुमानं प्रमाणमित्यनुमानेनैवानुमाननिरासं कुर्वंश्चार्वाकः कथं नोन्मत्तः स्यादेव ह्यसौ तदप्रामाण्यं प्रतिपादयेत् । यथा नानुमानं प्रमाणं विसंवादकत्वादनुभूतानुमानव्यक्तिवदित्येतच्चानुमानमथपरप्रसिद्ध्येतदुच्यते । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्परप्रसिद्धमनुमानं भवतः प्रमाणमप्रमाणं वा । प्रमाणं चेत्कथमनुमानमप्रमाणमित्युच्यते । अथाप्रमाणं कथमप्रमाणेन सता तेन परः प्रत्याय्यते । परेण तस्य प्रामाण्येनाभ्युपगतत्वादिति चेत्तदप्यसांप्रतं । यदिनाम परो मौढ्यादप्रमाणमेव प्रमाणमित्यवध्यस्यति । किं भवताऽतिनिपुणेनापि तेनैवाऽसौ प्रतिपाद्यते । यो ह्यन्यो गुडमेव विषमपि मन्यते किं तस्य मारयितुकामेनापि बुद्धिमता गुडएव दीयते । तदेवं प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवस्थापयतो भवतोऽनिच्छतोपि बलादायातमनुमानस्य प्रामाण्यं । तथा स्वर्गापवर्गदेवतादेः प्रतिषेधं कुर्वन् भवान् केन प्रमाणेन करोति न तावत्प्रत्यक्षेण प्रतिषेधः कर्त्तुं पार्यते । यतस्तत्प्रत्यक्षं प्रवर्तमानं वा तन्निषेधं विदध्यान्निवर्तमानं वा । न तावत्प्रवर्तमानं तस्याऽभावविषयत्वविरोधात् । नापि निवर्तमानं । यतस्तच्च नास्ति तेन च प्रतिपत्तिरित्यसंगतं । तथाहि । व्यापकविनिवृत्तौ व्याप्यस्यापि निवृत्तिरिष्यते ॥ न चार्वाकदर्शितप्रत्यक्षेण समस्तवस्तुव्याप्तिः संभाव्यते । तत्कथं प्रत्यक्षविनिवृत्तौ पदार्थव्यावृत्तिरिति । तदेवं स्वर्गादेः प्रतिषेधं कुर्वता चार्वाकेणाऽवश्यं प्रमाणांतरमभ्युपगतं । तथाऽन्याभिप्रायविज्ञानाभ्युपगमादत्र स्पष्टमेव प्रमाणांतरमभ्युपगतं । अन्यथा कथं परावबोधाय शास्त्रप्रणयनमकारि चार्वाकेणेत्यलमतिप्रसंगेन । तदेवं प्रत्यक्षादन्यमपि प्रमाणमस्ति तेनात्मा सेत्स्यति किंपुनस्तदिति चेदुच्यते । अस्त्यात्मा । असाधारणतद्गुणोपलब्धेश्चक्षुरिंद्रियवत् । चक्षुरिंद्रियं हि न साक्षादुपलभ्यते । स्पर्शनादींद्रियाऽसाधारणरूपविज्ञानोत्पादनशक्त्या त्वनुमीयते । तथात्मापि पृथिव्याद्यसाधारणगुणोपलब्धेरस्तीत्यनुमीयते । चैतन्यं च तस्यासाधारणगुणइत्येतत्पृथिव्यादिभूतसमुदाये चैतन्यस्य निराकृतत्वादवसेयं । तथास्त्यात्मा समस्तेंद्रियोपलब्धार्थसंकलनाप्रत्ययसद्भावात् । पंचगवाक्षान्यनन्योपलब्धार्थसंकलनाभिधाय्येकदेवदत्तवत् । तथाऽत्माऽर्थद्रष्टा नेंद्रियाणि । तद्विगमे हि तदुपलब्धार्थस्मरणात् । गवाक्षोपरमेऽपि तद्द्वारोपलब्धार्थस्मर्तृदेवदत्तवत् । तथार्थ

त्स्याप्यात्मास्तीत्यवसीयते । तथापि सत्यपि पृथिव्यादिनूतसमुदाये लेप्यकर्मादौ न सु खडु खेच्छाद्देषप्रयत्नादिक्रियाणां सन्नाव इत्यत सामर्थ्यादवसीयते । अस्ति नूतातिरिक्त कश्चित्सुखडुःखेच्छादीना क्रियाणां समवायिकारण पदार्थ. सचात्मेति । तदेव प्रत्यक्षानुमानादिपूर्विकाऽन्याप्यर्थापत्तिरन्यूह्या । तस्यास्त्विदं लक्षण । प्रमाणषट्कविज्ञातो, यत्रार्थो नान्यथा नवेत् ॥ अदृष्ट कल्पयेदन्य, सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ तथाऽगमादप्यस्तित्वमवसेयं । सचायमागम. । अत्थिमेआयाउववाइएइत्यादि । यदि वा किमत्राऽपरप्रमाणचिंतया सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणैवात्मास्तीत्यवसीयते । तज्गुणस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वात् । ज्ञान गुणस्य च गुणिनोऽनन्यत्वात् । प्रत्यक्षएवात्मा रूपादिगुणाप्रत्यक्षत्वेन पटादिप्रत्यक्षवत् । तथा ह्यहं सुख्यहंडुःख्येवमाद्यहंप्रत्ययग्राह्योऽस्त्यात्माप्रत्यक्ष । अहंप्रत्ययस्य स्वसंविद्रूपत्वादिति । ममेदं शरीर पुराण कर्मेति च शरीराद्भेदेन निर्दिश्यमानत्वादित्यादीन्यन्यान्यपि प्रमाणानि जीवसिद्धावन्यूह्यानीति ॥ तथा यडुक्त । न नूतव्यतिरिक्त चैतन्यं तत्कार्यत्वात् घटादिवदित्येतदप्यसमीचीन । हेतोरसिद्धत्वात् । तथाहि । न नूताना कार्य चैतन्यं तेषामतज्गुणत्वात् नूतकार्यचैतन्ये संकलनाप्रत्ययासन्नवाच्चेत्यादिनोक्तप्रायमतोस्त्यात्मा नूतव्यतिरिक्तो ज्ञानाधारइत्युक्त । ननुच किं ज्ञानाधारनूतेनात्मना ज्ञानाभिन्नेनाश्रितेन यावता ज्ञानादेव सर्वसकलनाप्रत्ययादिक सेत्स्यति किमात्मनातगेडुकल्पेनेति । तथाहि । ज्ञानस्यैव चिद्रूपत्वाद्भूतेरचेतनैः कायाकारपरिणतैः सह संवधे सति सुखडुःखेच्छाद्देषप्रयत्नक्रिया प्राडुर्ष्यति तथा सकलनाप्रत्ययो नवान्तरगमनचेति । तदेव व्यवस्थिते किमात्मना कल्पितेनेत्यत्रोच्यते । नत्वात्मानमेकमाधारनूतमतरेण संकलनात्र न्याय्या घटते । तथा हि । प्रत्येकमिंद्रियं स्वविषयग्रहणे सति परविषये चाप्रवृत्तेरेकस्य च परिच्छेत्तुरनावात् । मया पचापि विषया परिच्छिन्ना इत्यात्मकस्य संकलनाप्रत्ययस्यानावादिति । आलय विज्ञानमेकमस्तीति चेदेव सत्यात्मनएव नामांतर नवता कृतं स्यात् । नच ज्ञानाख्यो गुणो गुणिनमतरेण नवतीत्यवश्यमात्मना गुणिना नाव्यमिति । सच न सर्वव्यापी तज्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात् घटवत् । नापि श्यामाकतडुलमात्रोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा । तावन्मात्रस्योपात्तशरीराव्यापित्वात् त्वक्पर्यंतशरीरव्यापित्वात् त्वचोपलभ्यमानगुणत्वात् । तस्मात्स्थितमिदमुपात्तशरीरत्वक्पर्यंतव्याप्यात्मेति । तस्य चानादिकर्मसवद्धस्य कदाचिदपि सांसारिकस्यात्मन स्वरूपेऽनवस्थानात् सत्यप्यमूर्तत्वे मूर्तेन कर्मणा सबंधो न विरुध्यते । कर्मसंबधाच्च सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतु पंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तसाद्यवस्था बहुविधा प्राडुर्नवति । तस्य चैकांतेन क्षणिकत्वे ध्यानाध्ययनश्रमप्रत्यभिज्ञानाद्यन्नाव· । एकातनित्यत्वे च नारकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिपरिणामान्नाव· स्यात्तस्मात्स्यादनित्य. स्यान्नित्यश्चात्मेत्यलमतिप्रसगेन ॥ ८ ॥

जहा य पुढवीथूने. एगे नाणाहि दीसइ ॥ एवं नो कसिणे लोए विन्नू नाणाहि दीसइ ॥ ए ॥ एवमेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंनणिस्सिआ ॥ एगे किच्चा सय पावं, तिव्वं डुक्खं नियछइ ॥ १० ॥

अर्थ–एम पचनूतियागता एटले पंच नूतिक वादिनो मत कह्यु. हवे आत्माद्वैत वादिनो मत दृष्टांतेकरी कहिये ठये जहाय के० जेम पुढवीथूनेएगे के० पृथ्वीरूप थून एक ठता नाणाहिदीसइ के०नदी, समुड, पर्वत, नगर अने ग्राम इत्यादि रूप नाना प्रकारे देखायठे परतु विचाले पृथ्वीनु अतर काइ देखातु नथी एटले पृथ्वी एकज ठे एवके० ए उक्त न्याये, नो ए वचन परने बोलाववाने अर्थेठे एटले अहो ? दर्शनीउं तेम कसिणे लोएके० ए समस्त लोक चराचर स्वरूप एकज ठे एटले आत्मारूप ठे, परतु विन्नू के० विद्वान् ते चराचररूप आत्मा नाणाइ दीसइ के० नानाप्रकारे द्विपद चतुष्पद बहुपदादिरूप देखाय ठे परतु जे एम कहे के, शरीर शरीरने विषे आत्मा जुदो जुदो ठे ते मिथ्या ठे यडुक्त। एकएवहि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंडवत् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ए ॥ हवे जैन एने उत्तर आपेठे एव के० ए पूर्वोक्त न्याये एगेत्ति के० एक एटले कोइ एक परवादी, पोताना ठंदने बलात्कारे एम जप्पंति के०बोले ठे ते केवाठे, तोके मदा के०मद ठे एटले सम्यक् ज्ञान विकल ठे, केमके, जो सर्वत्र आत्मा एकज ठे, बीजो नथी तो जगत्माहे एगेके० एकेक जीव करसणी प्रमुख आरनणिस्सिआ के० जीवहिंसात्मक आरननेविषे निस्सिया एटले आसक्त थका सयंके० पोते पाव के० पापने किच्चा के० करीने तिव्वडुक्क के० तीव्र डुखने नियछइ के० पामेठे पण अनेरा नथी पामता, तथा जे जीव जगत्मा काइ असमजस चौरादिक कर्म करे ठे, ते ठेदनजेदनादिक अनेक विटबनाउ पामेठे अने जे नलो समाचरेठे ते साता पामेठे. माटे जो सर्वजीवनो आत्मा एकज होय तो सर्व जीवने विटबना अथवा साता केम न थवी जोइये ? माटे ए तमारु वचन मिथ्या ठे , केमके सर्व जीव पोतपोतानी करणीए सुख डुखने पामेठे ॥ १० ॥ ए सव्वगतवादिगता एटले सर्वगत वादीनु मत कह्यु.

॥ दीपिका– अथ एकात्माऽद्वैतवादमुद्दिश्याह । (जधायेति) यथा च शब्दोऽपिशब्दार्थे। सच निन्न । पृथिव्या स्तूप पृथिव्येव वा स्तूप पृथिवीसघाताख्योऽवयवी । सच एकोपि यथा नानारूप सरित्समुडपर्वतनगरग्रामाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते । निम्नोन्नतमृडुककिनरक्तपीतादिन्नेदेन वा दृश्यते । नच तावता पृथिवीत्वस्यैकस्य नेदो नवति। एव नोऽति परामत्रण । कृत्स्नोपि चेतनाचेतनरूपो लोक एको विद्वानेक एवात्मा- विद्वान् ज्ञानपिंड पृथिव्यादिनूताकारतया नाना दृश्यते।नच तावता तस्यैकस्यात्मतत्त्वस्य नेदो

नवति ॥९॥ अस्योत्तरमाह । (एवमित्ति) एवमात्माद्वैतवादमाश्रिता एके जल्पंति । मंदा जडा । मंदत्व चैतेषां युक्तिविकलजीवाऽद्वैतपक्षाश्रयणात् । तथाहि। यद्येकएवात्मा स्यात्तदा एके कृषीवलादय आरंभे जीवहिंसात्मके निश्रिता आसक्ता स्वयंपापं कृत्वा तीव्र नारकादिदुःखं (निगच्छइत्ति) आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनं। निश्चयेन गच्छति । तएवारंभसक्ता नान्ये इत्येतन्न स्यात्। यद्येक एवात्मा स्यात्तदा एकेनाप्यशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां दुःखं स्यान्नचैवं दृश्यते । तस्मादेकएवात्मेति न युक्तं ॥ १० ॥

॥ टीका ॥ सांप्रतमेकात्माऽद्वैतवादमुद्देशार्थाधिकारप्रदर्शितं पूर्वपक्षयितुमाह । (जहापुढवीत्यादि) दृष्टांतबलेनैवार्थस्वरूपावगते पूर्वंदृष्टांतोपन्यासः । यथेत्युपदर्शने । च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सचभिन्नक्रमएकेइत्यस्यानंतरं द्रष्टव्य । पृथिव्येव स्तूपः पृथिव्या वा स्तूपः पृथिवीसंघातावयवी । सचैकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरसन्निवेशाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते निम्नोन्नतमृदुकठिनरक्तपीतादिभेदेन वा दृश्यते । नच तस्य पृथिवीतत्त्वस्यैतावताभेदेन भेदो भवत्येवमुक्तरीत्या । भोइत्यादिपरामंत्रण । कृत्स्नोपि लोकश्चेतनाचेतनरूप एकोविद्वान् वर्तते । इदमत्र हृदयं । एकएव ह्यात्मा विद्वान् ज्ञानपिंड पृथिव्याद्याकारतया नाना दृश्यते नच तस्यात्मनएतावताऽत्मतत्त्व भेदो भवति । तथा चोक्तं । एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ तथा पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं॥ उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति, यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदंतरस्य सर्वस्य यत्सर्वस्यास्य वाह्यत इत्यात्माद्वैतवाद ॥९॥ अस्योत्तरदानायाह। (एवमेगे इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्तात्माद्वैतवादोपदर्शनं।एके केचन पुरुषकारणवादिनो जल्पंति प्रतिपादयंति । किंभूतास्ते इत्याह।मंदा जडा सम्यक्परिज्ञानविकला ॥मंदत्व चैषां युक्तिविकलात्माऽद्वैतपक्षसमाश्रयणात्। तथाहि।यद्येकएवात्मा स्यान्नात्मबहुत्व ततो ये सत्वाः प्राणिनः कृषीवलादय एके केचन आरंभे प्राण्युपमर्दकारिणि व्यापारे निश्रिता आसक्ता संबद्धा अध्युपपन्नास्ते च मरन्समारंभे कृत्वोपादाय स्वयमात्मना पापमशुभप्रकृतिरूपमसातोदयफलं तीव्रं दुःखं तदनुभवस्थानं वा नरकादिकं नियच्छतीति । आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनमकारि। ततश्चायमर्थो निश्चयेन यच्छंत्यवश्यतया गच्छति प्राप्नुवंति तएवारंभासक्ता नान्यइत्येतन्न स्यादपित्वेकेनापि अशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां शुभानुष्ठायिनामपि तीव्रदुःखाभिसंबंध स्यादेकत्वादात्मनइति । नचैतदेव दृश्यते।तथाहि।यएव कश्चिदसमंजसकारी सएव लोके तदनुरूपाविडंबना: समनुभवन्नुपलभ्यते नान्यइति । तथा सर्वगतत्वे आत्मनो बंधमोक्षाद्यभावस्तथा प्रतिपाद्यप्रतिपादकविवेकाभावाच्छास्त्रप्रणयनाभावश्च स्यादिति । एतदर्थसंवादित्वादमून्येव निर्युक्तिगाथात्र व्याख्यायते । तद्यथा । पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानामेकत्र

कायाकारपरिणताना चैतन्यमुपलभ्यते । यदि पुनरेकएवात्मा व्यापी स्यात्तदा घटादिष्वेव चैतन्योपलब्धि स्यान्नचैव । तस्मान्नैकआत्मा भूताना चान्योन्यगुणत्वं न स्यादेकस्मा दात्मनोभिन्नत्वात् । तथा पंचेंद्रियस्थानानां पंचेंद्रियाश्रिताना ज्ञानानां प्रवृत्तौ सत्यामन्येन ज्ञात्वा विदितमन्यो न जानातीत्येतदपि न स्याद्यद्येकएवात्मा स्यादिति ॥ १० ॥

पत्तेअ कसिणे आया, जे बाला जे अ पंमिआ ॥ संति पिच्चा
न ते संति, नत्थि सत्तोववाइया ॥ ११ ॥ नत्थि पुसेच पावेवा,
नत्थि लोए इतो परे ॥ सरीरस्स विणासेण, विणासो होइ देहिणो ॥ १२

अर्थ–हवे तज्जीवतच्छरीरवादिनो मत कहेछे –ते तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, जेम पचभूत मली कायाने आकारें परिणामी चेतना उपजावेछे. तो ते कारणे पत्तेअकसिणेआया के० शरीर शरीर प्रत्ये आत्मा जुदो जुदो छे जगतमा जे बालाके० बाल अज्ञानी तथा जेअपंमिआके० जे पंमित एटले विवेकी छे, ते सर्व जुदा जुदा छे परंतु एक आत्मा सर्वव्यापी न जाणवो एटले जैनमत अने तेमनो मत एकज थयो हवे गाथानां उत्तरार्द्धवडे तेमनो भेद देखाडेछे ते परवादी एम कहेछे के, आत्मा घणा छे, परंतु ज्यांसुधी शरीर छे त्यासुधी संति के० छे. पण जेवारे शरीर नहीं, तेवारे आत्मापण नहीं एटले गत्यंतर गामी आत्माउ नथी ए प्रकारे करी भेद देखाड्यो वली तेहिज कहेछे पिच्चानते संतिके० ते आत्माउ परलोकने विषे न जाय. एतावता शरीरथकी भिन्न आपणां कर्मनो भोगवनार एवो आत्मा नथी तथापि नत्थिसत्तोववाइयाके० सत्व जे प्राणीउ ते उपपातिक नथी एटले भवांतरमा जई उपजे नहीं अर्थात् गतागति पण नथी अहीं शिष्य पूछेछे के, पूर्वे जे भूतवादि कह्या अने ए तज्जीव तच्छरीरवादी ए बेहुने माहोमांहे शु विशेषछे ? तेवारें गुरु कहेछे के, भूतवादीने मते जे पचमहाभूत तेहिज कायाने आकारे परिणमीने धावनवल्गनादिक क्रिया करे अने एमने मतें पचभूत कायाने आकारे परिणामी चैतन्य स्वरूप आत्मा उपजावे. परंतु भूतथकी आत्मा जुदो नथी एटलुं विशेष छे ॥ ११ ॥ हवे तेनी वक्तव्यता कहेछे, नत्थिपुसेचपावेवा के० तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, पुण्य नथी, पाप पण नथी, अने नत्थिलोएइतोपरे के० अत' उपरात लोक पण नथी जेटलु दृष्टि गोचर आवेछे तेटलोज लोक छे वली यथकार एनु कारण कहेछे के, सरीरस्सविणासेणके० शरीरने विनाशेकरी विणासोहोइ देहिणो के० आत्मानो पण विनाश थाय ए कारण माटे आत्माने अभावे पुण्य पाप तथा लोकनी संभावना क्यां थकी थाय ? ॥१२॥

" तज्जीवतच्छरीरवादिगता " एटले तज्जीवतच्छरीरवादिनु ए प्रमाणे मत कह्यु

॥ दीपिका— सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयन्नाह । (पत्तेअमिति)। प्रत्येकं प्रति शरीरमात्मान कृत्स्ना सर्वेपि ये बाला अज्ञा ये च पंडितास्ते सर्वेपि पृथग्व्यवस्थिता नहि एकएवात्मा सर्वव्यापी स्वीकार्यो बालपंडितविभागाभावप्रसंगात् । नन्वेवमात्मवे दुत्वं जैनैरपि स्वीक्रियतएव तत्किमिति परमतमाश्रित्य सूत्रमिदमुच्यतइत्याशंकायामा ह । (संतित्ति) । संतिविद्यते जीवा शरीर यावत् । शरीराभावे तु न संति । एतदे वाह । (पिच्चानतेसंति) प्रेत्य परलोके ते जीवा न संति । तेषां मते शरीराद्भिन्न पर लोकयायी न कश्चिदात्माख्य पदार्थोस्तीति जैनेभ्यो भेद. किमित्येव ते मन्यंत इत्या ह । (नत्थिसत्तोववाइया) उपपातिका भवाद्भवांतरगामिन सत्त्वा प्राणिनो नहि न संति । ननु भूतवादिनोस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिन को भेद इत्यत्रोच्यते । भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिक्रियां कुर्वंति । अस्य तु कायाकारपरि णतेभ्योभूतेभ्यश्चैतनाख्य आत्मोपपद्यते अभिव्यज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्न इत्यनयो र्विशेष ॥ ११ ॥ तन्मतमेवाह । (नत्थीति) । नास्ति पुण्यं पाप च नास्त्यतोऽस्मा ल्लोकात्परोऽन्यो लोक परलोको यत्र पुण्यपापानुभवइति । अत्र हेतुमाह । शरीरस्य वि नाशेन देहिनो आत्मनोपि विनाशो ऽभावो भवति । तथाच दर्श्यते तन्मतलेश । य था स्वभावादेव जगद्वैचित्र्य । यडुक्त । कटकस्य च तीक्ष्णत्व, मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडाना, स्वभावेन भवति हीति ॥ १२ ॥

॥ टीका—सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह । (पत्तेअमित्यादि)। तज्जीव तच्छरीरवादिनामयमभ्युपगम । यथा पंचभ्यो भूतेभ्य कायाकारपरिणतेभ्यश्चैतन्यमुत्पद्यते अभिव्यज्यते चैकैक शरीरप्रति प्रत्येकमात्मन कृत्स्ना. सर्वेप्यात्मान एवमवस्थिता ॥ ये बालाअज्ञा ये च पंडिता सदसद्विवेकज्ञास्ते सर्वे पृथग्व्यवस्थिता । नह्येकएवात्मा सर्वव्यापित्वेनाभ्युपगतव्यो बालपंडिताद्यविभागप्रसंगात् ।ननु प्रत्येकशरीराश्रयत्वेनात्म बहुत्वमर्हतानामपीष्टमेवेत्याशंक्याह । संति विद्यंते यावच्छरीरं विद्यते तदभावे तु न विद्यंते। तथाहि । कायाकारपरिणतेषु भूतेषु चैतन्याविर्भावोभवति भूतसमुदायविघट्टने च चैत न्यापगमो न पुनरन्यत्र गच्चैतन्यमुपलक्ष्यते ।तदेव दर्शयति । (पिच्चानते संतीति) प्रे त्य परलोके न ते आत्मान संति विद्यते । परलोकानुयायी ह्यात्मा शरीराद्भिन्न स्वकर्मफ लभोक्ता न कश्चिदात्माख्य पदार्थोस्तीति भाव ।किमित्येवमतआह । (नत्थिसत्तोववाइया)। अस्तिशब्दस्तिडतप्रतिरूपको निपातो बहुवचने द्रष्टव्यस्तदयमर्थ. । न संति न विद्यंते॥ तद भावेतु न विद्यंते सत्वा प्राणिन उपपातेन निवृत्ता उपपातिका भवाद्भवांतरगामिनो न भवतीति तात्पर्यार्थ । तथाहि । तदागमाः विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्य. समुत्थाय तान्ये

वानुविनश्यतीति नप्रेत्य सज्ञा अस्तीति । ननु प्रागुपन्यस्तभूतवादिनोऽस्य च तज्जीवतच्छरीर वादिन को विशेष इत्यत्रोच्यते । भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्ग नादिका क्रिया कुर्वंत्यस्य तु कायाकारपरिणतेभ्यो भूतेभ्यश्चैतन्याख्य आत्मोत्पद्यते ऽनिव्य ज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्नइत्ययविशेष ॥११॥ एवच धर्मिणोऽभावाद्धर्मस्याप्यभावइति दर्शयि तुमाह । (नह्निपुण्णेच पावेवा इत्यादि) । पुण्यमभ्युदयप्राप्तिलक्षण तद्विपरीतं पापमेतद्भय मपि न विद्यते । आत्मनो धर्मिणोऽभावात् । तदभावाच्च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोको यत्र पुण्यपापानुभवइति । अत्रार्थसूत्रकार कारणमाह । शरीरस्य कायस्य वि नाशेन भूतविघटनेन विनाशेन देहिनआत्मनोप्यभावो भवति यतो न पुन शरीरे विनष्टे तस्मादात्मा परलोक गत्वा पुण्यं पाप वाऽनुभवतीत्यतोधर्मिणआत्मनोभावात्तद्धर्मयो पुण्यपापयोरप्यभावइति । अस्मिश्चार्थे बहवो दृष्टाता सति । तद्यथा । यथा जलबुद्बु दो जलातिरेकेण नापर कश्चिद्विद्यते तथा भूतव्यतिरेकेण नापर कश्चिदात्मेति । तथाच यथा कदलीस्तभस्य बहिस्त्वगपनयने क्रियमाणे त्वट्मात्रमिव सर्वं नात कश्चित्सारोस्त्ये व भूतसमुदाये विघटति सति तावन्मात्र विहाय नात सारभूत कश्चिदात्माख्य पदा र्थ उपलभ्यते । यथावाऽलातं भ्राम्यमाणमतद्रूपमपि चक्रबुद्धिमुत्पादयत्येव भूतसमुदायो पि विशिष्टक्रियोपेतो जीवभ्रातिमुत्पादयतीति । यथा च स्वप्ने बहिर्मुखाकारतया विज्ञा नमनुभूयते आतरेणैव बाह्यमर्थमेवमात्मानमतरेण तद्विज्ञान भूतसमुदाये प्रादुर्भवती ति । तथा । यथाऽदर्शे स्वच्छत्वात्प्रतिबिंबितो बहि स्थितोप्यर्थांतर्गतो लक्ष्यते नचासौ त था । यथाच ग्रीष्मे भौमेनोष्मणा परिस्पदमाना मरीचयो जलाकार विज्ञानमुत्पादयत्ये वमन्येपि गधर्वनगरादय स्वस्वरूपेणाऽतथाभूता अपि तथा प्रतिभासते तथात्मापि भू तसमुदायाकारपरिणतौ सत्या पृथगसन्नेव तथा भ्राति समुत्पादयतीत्यमीषा च दृष्टाता नां प्रतिपादकानि केचित्सूत्राणि व्याचक्षते । अस्माभिस्तु सूत्रादर्शेषु चिरतनटीकाया चादृष्टत्वान्नाभिलिगितानीति । ननु च यदि भूतव्यतिरिक्त कश्चिदात्मा न विद्यते तत्कृते च पुण्यापुण्ये न तत्कथमेतद्वैचित्र्यं घटते । तद्यथा कश्चिदीश्वरोऽपरो दरिद्रोन्य सुभगो परोदुर्भग सुखीदु खी सुरूपो मदरूपो व्याधितो नीरोगीत्येव प्रकारा विचित्रता किंनि बधनेत्यत्रोच्यते । स्वभावात् । तथाहि । कुत्रचिच्छिलाशकले प्रतिमारूप विद्यते तच्च कु कुमागरुचदनादिविलेपनानुभोगमनुभवति धूपाद्यामोद च । अन्यस्मिस्तु पाषाणखडे पाद क्षालनादि क्रियते नच तयो पाषाणखडयो शुभाशुभे स्त । यदुदयात्स तादृगवस्था विशेष इत्येव स्वभावाज्जगद्वैचित्र्य । तथाचोक्त । कटकस्य च तीक्ष्णत्व मयूरस्य विचि त्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां,स्वभावेन भवति हीति॥१॥तद्यावत्तच्छरीरवादिमतं गतं ॥१२॥

कुव च कारयं चेव, सवं कुवं न विऊई ॥ एवं अकारउ अप्पा; एवं
तेउ पगप्निआ ॥ १३ ॥ जे ते नुवाइणो एवं, लोए तेसि कउसिया ॥
तमाउ ते तमं जंति, मंदा आरंजनिस्सिया ॥१४॥ आत्मषष्ठवादीगत ॥

अर्थ-हवे अक्रियावादिनो मत कहेछे ते अकर्मवादी एम कहेछे के, आत्मा अमूर्त्तछे, नित्यछे, तथा सर्वव्यापी छे ते कारणे कुवचके० क्रियानो कर्त्ता नथी तथा कारयंचेवके० अनेरा पासे करावनार पण नथी, एटले आत्मा पोते क्रियाने विषे न प्रवर्त्ते, तथा अनेराने पण प्रवर्त्तावे नही पूर्वे चकार आव्योछे ते अतीत अनागतना कर्त्ताने निषेधवाने अर्थे छे यद्यपि स्थितिक्रिया अने मुद्राप्रतिबिंबोदयन्याये नोजनक्रिया पण करे तथापि समस्त क्रिया कारकपणु नथी एहिज नाव देखाडेछे. सवकुवंन विऊई के० सर्व क्रियाने एटले देशथकी देशांतर गमनरूप क्रियाने आत्मा करतो नथी एवअकारउ अप्पाके० ए रीते आत्मा अकारक छे एवतेउपगप्निआके० एप्रकारे ते सांख्यवादी धृष्टपणुं करता थका, प्रकृति करे, पुरुष नोगवे, इत्यादिक अयोग्य वचन बोले एटले अक्रियावादिनु मत कह्यु ॥१३॥ हवे जैन, एना मतनुं निराकरण करेछे जेते उवाइणो एवके० जे, आत्मा शरीरथकी जुदो नथी तथा आत्मा अकर्त्ता छे एम कहेछे तेसिके० तेने लोएकउसियाके० चतुर्गतिक संसाररूप लोक क्यां थकी होय? नि केवल ते लोकमाहे वाचालपणुं देखाडेछे एवा छता तमाउते तमंजतिके० ते अज्ञानरूप तम एटले अंधकार तेमाहेथकी निकळीने अनेरा तम एटले अंधकारमाहे जति एटले जायछे, एटले ज्ञानवर्णादिक कर्म उपार्जनकरेछे अथवा तमनेविषे हिअर्थे नरक पृथ्वी एवो अर्थ थायछे माटे त्यांपण जायछे ते नरक पृथ्वीये केम जाय, तेनु कारण कहेछे. ते लोक मंदाके० मंद एटले मूर्ख छे, वली आरंजनिस्सियाके० आरंननिश्रित एटले आरंन जे प्राणघात तेना व्यापारे निश्रितछे, एकांते तेमा आसक्तछे, जे कारण माटे तेमना मते आत्मानो अनावछे, ते कारणे पुण्य पाप पण नथी एवु जाणीने ते नास्तिकवादी आरंन करता थका शंका पामता नथी तथा जे एवु कहेछे के आत्मा क्रिया करे नहीं, तेपण एमनी पेरेज आरंनी जाणवा ॥ १४ ॥ अकिरियावाइगता एटले सांख्यनु मत ए प्रमाणे कह्यु.

॥दीपिका–अथाऽक्रियावादिमतमाह।(कुर्वन्निति) कुर्वन् कारयंश्चाऽऽत्मा न नवति। आत्मनो व्यापकत्वादमूर्तत्वाच्च कर्तृत्वानुपपत्तिः।ततएव कारयितृत्वमप्यात्मनो न युक्तं।एकश्च शब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीय समुच्चयार्थः ॥ कर्तृत्वकारयितृत्वनिषेधादन्यापि क्रिया तस्य नास्तीत्याह । (सवंति)। सर्वां परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिरूपां क्रियां

कुर्वन्नात्मा न विद्यते । सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्व सांख्यमते । (एवतेउत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते सांख्या प्रगल्भिता प्रागल्भ्यवतो धार्ष्ट्यवतो विद्यते॥१३॥ साम्प्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनोमत निराकुर्वन्नाह । (जेतेऽति)। ये तावच्छरीराऽव्यतिरिक्तात्मवादिन एव पूर्वोक्तयुक्त्या भूताऽव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवतस्ते निराक्रियंते । तेषा लोकश्चतुर्गतिनवरूप सुभग, दुर्भग, सुरूप, कुरूपेश्वर, दारिद्र्या,दिगत्या जगद्वैचित्र्यरूप कुत स्यात् । आत्माऽनंगीकारे पुण्यपापाभावे कथ विश्ववैचित्र्यमित्यर्थ । तेच नास्तिकास्तमसोऽज्ञानरूपात् तमो याति । ज्ञानावरणावृता पुनर्ज्ञानावरणरूपं तम प्रविशति । अथवा सद्विवेकप्रध्वसित्वात्तमोऽदु खं तस्मात्तमो महाडु ख याति । यतस्ते मंदा जडा परलोकनिरपेक्षत्वाच्चाऽरंभनिश्रिता । अयमेवश्लोकोऽकारकवादिम तमाश्रित्य किंचिद्विव्रियते । येचादिनोऽकारका सांख्या सति तेषां लोको जरामरण शोकहर्षादिरूपो नारकतिर्यगादिरूपो निष्क्रिये सत्यात्मनि कुत कस्माद्धेतो स्या न्न स्यादित्यर्थ । ततश्चदृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानात्ते तमो वेदनास्थान याति । यतो म दाश्चारंभनिश्रिताश्चेति सांख्यमतं निरस्त ॥ १४ ॥

॥टीका–इदानीमकर्मकवादिमतानिविख्यासयाऽऽह । (कुव्वचेत्यादि) कुर्वन्निति स्वतंत्र कर्तानि धीयते ॥ आत्मनश्चामूर्तत्वात्सर्वव्यापित्वाच्च कर्तृत्वाऽनुपपत्ति ॥ अतएवहेतो कारयितृत्वम प्यात्मनोनुपपन्नमिति । पूर्वश्चशब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीय समुच्चयार्थ । त तश्चात्मा न स्वयं क्रियायां प्रवर्तते नाप्यन्यं प्रवर्तयति । यद्यपि च स्थितिक्रियां मुद्राप्र तिबिंबोदयन्यायेन च भुजिक्रिया करोति तथापि समस्तक्रियाकर्तृत्व तस्य नास्तीत्येतद्द र्शयति । (सव्वकुवंणविज्जइत्ति) सर्वा परिस्पदादिका देशाद्देशांतरप्राप्तिलक्षणा क्रिया कु र्वन्नात्मा न विद्यते । सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वमिति । तथा चोक्त । अकर्ता निर्गुणो भोक्ता, आत्मा सांख्यनिदर्शन इति । एवमनेन प्रकारेणात्माऽका रक इति ते सांख्या । तुशब्द पूर्वेभ्यो व्यतिरेकमाह । ते पुन सांख्या एव प्रगल्भिता. प्रगल्भवतो धार्ष्ट्यवंत सतो भूयोभूयस्तत्र तत्र प्रतिपादयंति । यथा प्रकृति करोति पुरु ष उपभुंक्ते यथा बुध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते इत्याद्यकारकवादिमतमिति ॥ १३ ॥ सां प्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनो मतं निराचिकीर्षुराह । (जेतेउवाइणोइत्यादि) तत्र ये तावच्छरीराव्यतिरिक्तात्मवादिन एवमिति पूर्वोक्तया नीत्या भूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्यु पगतवतस्ते निराक्रियंते। तत्र यत्तैस्तावदुक्त । यथा न शरीराद्भिन्नोऽस्त्यात्मेति तदसंगतं । यतस्तत्प्रसाधकं प्रमाणमस्ति । तच्चेद । विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरमादिमत्प्रतिनियताका कारकत्वात् । इह यद्यदादिमत्प्रतिनियताकारं तत्तद्विद्यमानकर्तृक दृष्ट । यथा घट । य

आऽविद्यमानकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति यथाकाशं । आदिमत्प्रतिनियताकारस्य च सकर्तृत्वेन व्याप्तेः । व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यस्य विनिवृत्तिरिति सर्वत्र योजनीयं। तथाविद्यमानाधिष्ठातृकानीन्द्रियाणि । करणत्वात् । यद्यदिह करणं तत्तद्विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टं । यथा दण्डादिकमिति । अधिष्ठातारमंतरेण करणत्वाऽनुपपत्तिः । यथाकाशस्य । हृषीकाणां चाधिष्ठाताऽऽत्मा सच्च तेभ्योऽन्य इति । तथा विद्यमानाधिष्ठातृकमिदमिंद्रियविषयकदंबकं । आदानादेयसद्भावात् । इह यत्र यत्राऽऽदानादेयसद्भावस्तत्र तत्र विद्यमान आदाता ग्राहको दृष्टः । यथा संदंशकायःपिंडयोस्तद्भिन्नोऽयस्कार इति । यश्चात्रेन्द्रियैः करणैर्विषयाणामादाता ग्राहकः स तद्भिन्नआत्मेति । तथा विद्यमानभोक्तृकमिदं शरीरं भोग्यत्वादोदनादिवत् । अत्रच कुलालादीनां मूर्तत्वाऽनित्यत्वसंहतत्वदर्शनादात्मापि तथैव स्यादिति धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेन विरुद्धाशंका न विधेया । संसारिण आत्मनः कर्मणा सहान्योन्यानुवेधतः कथंचिन्मूर्तत्वाद्यभ्युपगमादिति । तथा यदुक्तं । नास्ति सत्त्वाऔपपातिका इति तदप्ययुक्तं । यतस्तदहर्जातबालकस्य य स्तनाभिलाषः सोभ्याभिलाषपूर्वको ऽभिलाषत्वात् कुमाराभिलाषवत् । तथा बालविज्ञानमन्यविज्ञानपूर्वकं विज्ञानत्वात् कुमारविज्ञानवत् । तथाहि । यदहर्जातबालकोपि यावत्सएवायं स्तन इत्येव नावधारयति तावन्नोपरतरुदितो मुखमर्पयति स्तने इत्यतोऽस्ति बालके विज्ञानलेशःसचाऽन्यविज्ञानपूर्वकः । तथान्यद्विज्ञानं भवांतरविज्ञानं तस्मादस्ति सत्त्व उपपातिक इति। तथा । यदभिहितं विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यतीति । तत्राप्ययमर्थो विज्ञानघनो विज्ञानपिंड आत्मा भूतेभ्य उत्थायेति प्राक्तनकर्मवशात्तथाविधकायाकारपरिणते भूतसमुदाये तद्द्वारेण स्वकर्मफलमनुभूय पुनस्तद्विनाशे आत्मापि तदनु तेनाकारेण विनश्यापरपर्यायांतरेणोत्पद्यते नपुनस्तैरेव सह विनश्यतीति । तथा यदुक्तं। धर्मिणो ऽभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरभावइति तदप्यसमीचीनं । यतो धर्मी तावदनंतरोक्तिकदंबकेन सावितस्तत्सिद्धौ च तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरपि सिद्धिरवसेया जगद्वैचित्र्यदर्शनाच्च ।यत्तु स्वभावमाश्रित्योपलक्षकलं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं तदपि तन्नोक्तृकर्मवशादेव तथा तथासवृत्तइति दुर्निवारः पुण्यापुण्यसद्भावइति । येपि वल्वः कदलीस्तंभादयो दृष्टांता आत्मनो ऽभावसाधनायोपन्यस्तास्तेप्यभिहितनीत्याऽऽत्मनोभूतव्यतिरिक्तस्य परलोकयायिनः सारभूतस्य साधितत्वात्केवलं भवतो वाचालतां प्रख्यापयंति इत्यलमतिप्रसंगेन । शेषं सूत्रं विवियतेऽधुनेति । तदेवं तेषां भूतव्यतिरिक्तात्मनिन्ह्ववादिनां योयं लोकश्चतुर्गतिकसंसारो भवाद्भवांतरगतिलक्षणः प्राक् प्रसाधितः सुभगदुर्भगसुरूपमदरूपेश्वरदारिद्र्यादिगत्या जगद्वैचित्र्यलक्षणश्च स एवंभूतो लोकस्तेषां कुतो भवेत् । कयोपपत्त्या घटेत । आत्मनोऽनभ्युपगमान्न किंचिदित्यर्थः । तेच नास्तिकाः परलोकयायिजीवा

ऽनभ्युपगमेन पुण्यपापयोश्चाभावमाश्रित्य यत्किंचनकारिणोऽज्ञानरूपात्तमस' सकाशाद न्यत्तमो याति । भूयोपि ज्ञानावरणादिरूपं महत्तर तम सचिन्वतीत्युक्तं भवति । यदि वा तमश्वतमो डु खसमुद्घातेन सदसद्विवेकप्रध्वंसित्वाद्यातनास्थान तस्मादेवभूतात्त मस परतर तमो याति । सप्तमनरकपृथिव्या रौरव, महारौरव, काल, महाकालाप्र तिष्ठानाख्य नरकावास यातीत्यर्थ । किमिति । यतस्ते मदा जडा मूर्खा सत्यपि यु क्त्युपपन्ने आत्मन्यसदभिनिवेशात्तदभावमाश्रित्य प्राणुपमर्दकारिणि विवेकिजननिंदि ते आरंभे व्यापारे निश्चयेन नितरा चाश्रिता सबद्धा पुण्यपापयोरभाव इत्याश्रित्य परलो कनिरपेक्ष्याऽरंभनिश्रिताइति । तथा तज्जीवतच्छरीरवादिमतं निर्युक्तिकारोपि निराचिकी र्पुराह । " पंचएद्दमित्यादिगाथा प्राग्वदत्रापि " ॥ ३३ ॥ साम्प्रतमकारकवादिमतमाश्रि त्यायमनतरश्लोको भूयोपि व्याख्यायते । ये एते अकारकवादिन आत्मनोऽमूर्तत्वनि त्यत्वसर्वव्यापित्वेभ्यो हेतुभ्यो निष्क्रियत्वमेवाभ्युपपन्नास्तेषा यएषलोको जरामरणशोका क्रंदनहर्षादिलक्षणो नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिरूप सोयमेवभूतो निष्क्रिये सत्यात्मन्य प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावे कुत कस्माद्धेतो स्यान्न कथचित्कुतश्चित्स्यादित्यर्थ । तत श्च दृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानरूपात्ते तमोतर निकृष्टं यातनास्थान याति । किमिति । यतो मदाजडा प्राणपकारकाऽरंभनिश्रिताश्च ते इति । अधुना निर्युक्तिकारोऽकारकवादि मतनिराकरणार्थमाह । " कोवेएई य कयं, कयनासो पचहा गई न हि ॥ देवमणुस्सग यागइ, जाईसरणा इयाए च " ॥ ३४ ॥ (कोवेएइत्यादि) । आत्मनोऽकर्तृत्वात्कृतं नास्ति ततश्चाकृतं को वेदयते । तथा निष्क्रियत्वे वेदनक्रियाऽपि न घटा प्राचति । अथा ऽकृतमप्यनुभूयेत तथा सत्यकृतागमकृतनाशापत्ति स्यात् । ततश्च एककृतपातकेन सर्व प्राणिगणो डु खित स्यात् पुण्येन च सुखी स्यादिति । नचैतद्दृष्टमिष्ट वा । तथाव्यापि त्वान्नित्यत्वाच्चात्मन पचधा पचप्रकारा नारक, तिर्यङ्,मनुष्या,मर, मोक्ष, लक्षणागति न भवेत् । ततश्च भवता साख्यानां कापायचीवरधारण,शिरस्तुडमुडन,दडधारण, भिक्षाभोजित्व,पचरात्रोपदेशानुसारयमनियमाद्यनुष्ठान । तथा । पचविंशतितत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ जटी मुडी शिखी वापि, मुच्यते नात्र सशयइत्यादि सर्वमपार्थकमा प्नोति । तथा देवमनुष्यादिषु गत्याऽगती न स्याता सर्वव्यापित्वादात्मन । तथानित्यत्वा च्च विस्मरणाभावाज्जातिस्मरणादिका च क्रिया नोपपद्यते । तथा । आदिग्रहणात्प्रकृ ति करोति पुरुषचपभुंक्तइति भुजिक्रिया या समाश्रिता सापि न प्राप्नोति । तस्या अपि क्रियात्वादिति । अथ मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन भोगइति चेदेतत्तु निरतरा सुहृदः प्रत्ये ष्यंति । वाङ्मात्रत्वात् । प्रतिबिंबोदयस्यापि च क्रियाविशेपत्वादेव । तथा नित्ये चावि कारिण्यात्मनि प्रतिबिंबोदयस्याभावायात्किंचिदेतदिति ॥३४॥ ननुच भुजिक्रियामात्रेण प्र

तिविबोदयमात्रेण च यद्यप्यात्मा सक्रियस्तथापि न तावन्मात्रेणास्माभि सक्रिय त्वमिष्यते किं तर्हि समस्तक्रियावत्वे सतीत्येतदाशंक्य निर्युक्तिरुवाह। "णहु अफलवो वणि वित्त, कालफलत्तणमिहं अडुमहेउ ॥ णाडुक्खवोवडुय,त्ताणणगा वित्तणोहेऊ" ॥ ॥ ३५ ॥ (णहुअफलेत्यादि) नह्नु नैवाऽफलत्व द्रुमाभावे साध्ये हेतुर्भवति। नहि यदैव फलवांस्तदैव द्रुमोऽन्यदात्वद्रुम इति भाव । एवमात्मनोपि सुप्ताद्यवस्थाया यद्य पि कथचिन्निष्क्रियत्व तथापि नैतावता त्वसौ निष्क्रियइति व्यपदेशमर्हति। तथा स्तोक फलत्वमपि न वृक्षाभावसाधनायालं। स्वल्पफलोपि हि पनसादिर्वृक्षस्य व्यपदेशभाग्भ वति । एवमात्मापि स्वल्पक्रियोपि क्रियावानेव ॥ कदाचिदेषा मतिर्भवतो भवेत् स्तोकक्रि यो निष्क्रियएव। यथैककार्षापणधनो न धनित्वमास्कंदत्येवमात्मापि स्वल्पक्रियत्वा दक्रियइत्येतदप्युपचार । यतोय दृष्टांत प्रतिनियतपुरुषापेक्षया चोपगम्यते समस्तपुरुषा पेक्षया वा। तत्र यद्याद्य पक्षस्तदा सिद्धसाध्यता। यत सहस्रादिधनवदपेक्षया निर्धनए वासौ। अथ समस्तपुरुषा पेक्षया तदसाधु। यतोन्यान्जरज्जीवरधारिणोपेक्ष्य कार्षापणध नोपि धनवानेव। तथात्मापि यदिविशिष्टसामर्थ्योपेतपुरुषक्रियापेक्षया निष्क्रियोऽभ्युपगम्य ते। न काचिस्क्षति। सामान्यापेक्षया तु क्रियावानेवेत्यलमतिप्रसगेन। एवमनिश्चिताकालफ लत्वाख्यहेतु द्वयमपि न वृक्षाभावसाधकमित्यादि योज्यं।एवमड्रुधलस्तोकड्रुग्धत्वरूपावपि हेतू न गोत्वाभावत्व साधयत । उक्तन्यायेनैव दार्ष्टांतिकयोजना कार्येति ॥ ३५ ॥ १४ ॥

सति पंच महब्भूया, इहमेगेसि आहिया ॥ आयछ्ठो पुणो आहु,
आया लोगेय सासए ॥ १५ ॥ डुहउ ण विणस्संति, नोय उप्पज्ज
ए असं ॥ सव्वे वि सव्वहा भावा, नियतीभावमागया ॥ १६ ॥

अर्थ–हवे आत्मषष्ठवादिनो मत कहेछे ते वादी एम कहेछे के, इहमेगेसिआहियाके० आसत्ताग्नेविषे एक आत्मषष्ठवादिउना मते एम कह्यु के, सतिपचमहब्भूयाके० पाच महा भूतछे. वली ते वादी एम कहेछे के, आयछ्ठोपुणोआहुके०जेम पच महाभूत तेम आत्मा छठोछे वली अनेराने मते आत्मा अने पंच महाभूत अशाश्वताछे तेम एने मते नथी, ते कहेछे के, आयालोगेयसासएके० आत्मा अने पृथिव्यादिकरूपजे लोक ते एने मते शा श्वता सर्वव्यापिछे माटे अविनाशि रूपछे ॥ १५ ॥ वली तेनु नित्यपणुं देखाडेछे. ते आत्मषष्ठ पृथिव्यादिक पदार्थ, नि कारण विनाश अथवा सकारण विनाश, ए डुहउके० बन्ने विनासे करी, णविणस्संतिके० विनास पामे नही पृथ्वी, अप्प, तेज, वा यु, अने आकाश. ए कदापि पोतानु स्वरूप छांमे नही, ते कारणे शाश्वताछे तथा कोइ ए जेनो आकार कर्यो नथी, ते कारणमाटे आत्मा शाश्वत छे. यडुक्तं।नैनं छिंदंति शस्त्राणि,

नैनं दहति पावक ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोषयति मारुत ॥१॥ अछेद्योयमनेद्योय, म विकारी सउच्यते, ॥ नित्य सर्वगत स्थाणुरचलो यं सनातन. ॥२॥ इत्यादिवचनात् ॥. तथा नोयउप्पज्जएअसके० जे असत् एटले अविद्यमान होय ते उपजे नही केमके अवि द्यमान पदार्थने विषे करनारनो व्यापार स्फुरे नहीं जो अउती वस्तु उपजे तो आकाश कुसुमगर्दनशृंगादिक पदार्थ पण उपजवानो संजवछे ए कारणे सर्वविसवहानावा के० सर्वकाले पण पृथिव्यादिक सर्वे पदार्थो नियतिजावमागया के० नित्यजावे परिणाम पा म्याछे ॥ १६ ॥ "आत्मषष्टवादीगत" एटले आत्म षष्टवादीनुं मत ए प्रमाणे कह्यु

॥ दीपिका– अथाऽत्मषष्ठवादिमतमाह । (सतित्ति) सति पच महानूतानि । इ हाऽस्मिन्संसारे एकेषामात्मषष्ठवादिनां साख्याना वैशेषिकाणा चैतदाख्यातं नूतान्या ख्यातानि वा । ते पुनर्वादिन एवमाहु । यन्नूतानि आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठोयेषांतानि आत्मषष्ठानि । केषाचिद्बादिनामनित्यानि नूतानि आत्मा च न तथा एषामित्याह (आया) आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूप शाश्वतोनित्य ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेवाह । (डुहउत्ति) ते नूतपदार्था आत्मषष्ठा उनयतो निर्हेतुकसहेतुकविनाशान्या न विनश्यं ति । बौद्धादिमते घटादिवस्तु हेतु विनापि क्षणे क्षणेविनश्यति । वैशेषिकाणां तु लकु टादिहेतुयोगेन घटादीना विनाश । तेन द्विविधेनापि विनाशेन लोकात्मनोर्नविनाशइ ति तात्पर्यार्थ । यदिवा द्विरूपाच्चेतनाचेतनस्वजावान्न विनश्यत्यात्मा पृथिव्याद्या लो काश्च चेतनस्वजावान्नविनश्यतीति न चोत्पद्यते ऽसदविद्यमान । सर्वेपिनावा सर्वथा नियतिजाव नित्यत्वमागता प्राप्ता ॥ १६ ॥

॥ टीका–साप्रतमात्मषष्ठवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह (सतीत्यादि) सति विद्यते पचमहा नूतानि पृथिव्यादीनि इहास्मिन्संसारे एकेषां वेदवादिनां साख्याना शैवाधिकारिणा च ए तदाख्यातमाख्यातानि च नूतानि तेच वादिन एवमाहुरेवमाख्यातवत । यथा । आत्म षष्ठानि आत्मा षष्ठो येषां तानि आत्मषष्ठानि नूतानि विद्यतइति । एतानि चात्मषष्ठा नि नूतानि यथा न्येषां वादिनामनित्यानि तथा नामीषामितिदर्शयति । आत्मा लोक श्च पृथिव्यादिरूप शाश्वतोऽविनाशी । तत्रात्मन सर्वव्यापित्वादमूर्तत्वाच्चाकाशस्येव शा श्वतत्व पृथिव्यादीनां च तद्रूपाप्रच्युतेरविनश्वरत्वमिति ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेव नूय प्र तिपादयितुमाह । (डुहर्उणविणस्संतीत्यादि) ते आत्मषष्ठा पृथिव्यादय पदार्था उनय तऽति निर्हेतुकसहेतुकविनाशद्वयेन न विनश्यंति। यथा बौद्धाना स्वतएव निर्हेतुको विना श । तथाच ते कहु । जातिरेव हि ... [illegible]

नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ यथाच वैशेषिकाणां लकुटादिकारणसांनिध्ये विनाश. स हेतुकस्तेनोजयरूपेणापि विनाशेन लोकात्मनोर्न विनाशइति तात्पर्यार्थ । यदि वा (डुहव ति)। द्विरूपादात्मन. स्वजावाच्चेतनाचेतनरूपान्न विनश्यतीति । तथाहि । पृथिव्यसेजो वाय्वाकाशानि रूपापरित्यागतया नित्यानि । न कदाचिदनीदृश जगदिति कृत्वा आत्मापि नित्यएव कृतकत्वादिन्यो हेतुन्य । तथा चोक्त । नैन छिंदंति शस्त्राणि, नैन दहति पावक ॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुत. ॥ १ ॥ अछेद्योयमदाह्योयमविकार्योयमुच्यते॥ नित्य सर्वगत. स्थाणुरचलोय सनातन ॥२॥ एव च कृत्वा नासडुत्पद्यते सर्वस्य सर्वत्र स ज्ञावादसति च कारकव्यापाराजावात् सत्कार्यवाद' । यदि वा असडुत्पद्येत खरविषाणा देरप्युत्पत्ति स्यादिति । तथा चोक्त । असदकरणाडुपादानग्रहणात्सर्वसंजवाजावात् शक्तस्य शक्यकरणात्कारणजावाच्च सत्कार्यं । एवच कृत्वा मृत्पिंडेपि घटोस्ति । तदर्थिनां मृत्पिं डोपादानात् । यदि वा ऽसडुत्पद्येत ततो यत कुतश्चिदेव स्यान्नावश्यमेतदर्थिना मृत्पिंडो पादानमेव क्रियते इत्यत सदेव कारणे कार्यमुत्पद्यतइति । एव च कृत्वा सर्वेपि जावा पृथिव्यादय आत्मषष्ठा नियतिजाव नित्यत्वमागता नाजावरूपतामनूत्वा च जावरूपतां प्रतिपद्यते । आविर्जावतिरोजावमात्रत्वाडुत्पत्तिविनाशयोरिति । तथा चाजिहितं । नास तो जायते जावो नाजावो जायते सतइत्यादि । अस्योत्तर निर्युक्तिकृदाह । "कोवेएइत्या दिप्राक्तन्येव गाथा,, । सर्वपदार्थनित्यत्वाज्युपगमे कर्तृत्वपरिणामो न स्यात्ततश्चात्मनोऽक र्तृत्वे कर्मबंधाजावस्तदजावाच्च को वेदयति न कश्चि त्सुखडुःखादिकमनुजवतीत्यर्थ । एव च सति कृतनाश स्यात् । तथा असतश्चोत्पादाजावे येय मया आत्मन पूर्वजावपरित्यागेनापर जावोत्पत्तिलक्षणा पचधा गतिरुच्यते सा न स्यात् । ततश्च मोक्षगतेरजावाद्दीक्षादिक्रियानु ष्ठानमनर्थकमापद्यते । तथाऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वजावत्वेन त्वात्मनो देवमनुष्यगत्या गती तथा विस्मृतेरजावात् जातिस्मरणादिक वा न प्राप्नोति । यच्चोक्तं सदेवोत्पद्यते तदप्यसत् । यतो यदि सर्वथा सदेव कथमुत्पाद । उत्पादश्चेत्तर्हि सर्वदा सदिति । तथा चो क्तं । कर्मगुणव्यपदेशा प्रागुत्पत्तेर्न संति यत्तस्मात्कार्यमसद्विज्ञेय क्रियाप्रवृत्तेश्च कर्तॄणां । तस्मात्सर्वपदार्थाना कथंचिन्नित्यत्व सदसत्कार्यवादश्चेत्यवधार्य । तथाचाजिहितं । सर्वे व्यक्तिषु नियतं, क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेष । सत्यश्चित्यपचित्योराकृतिजाति व्यवस्थानात् इति । तथा । नान्वय. सहि जेदत्वा,न्न जेदोऽन्वयवृत्तित ॥ मृद्भेदद्वयसं सर्गे, वृत्तिजात्यंतर घट ॥ १ ॥ १६ ॥

पंच खंधे वयतेगे, बाला उ खणजोइणो ॥ अण्णो अणण्णो णेवाहु, हेउयं च अहेउयं ॥ १७॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊय एग उ ॥ चत्तारि धाउणो रूवं, एवमाहु सुजाणया ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे अफलवादिनुं मत कहेछे एगे के० कोइएक वादी एटले बौद्ध ते पंचखंधेव· यंते के० पचस्कंध बोलेछे, तेना नाम कहेछे प्रथम विज्ञान ते रसनुं, विज्ञान सुखडखवेदे ते वेदना, संज्ञा ते धर्मसमुदायने पृथिव्यादिकते संस्कार, अने धातुरूपादिकते रूप, ए पाच प दार्थ जगतमांछे, पण एथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ जगतमाहे कोइ नथी एम ते बा लाउके० बाल एटले अज्ञानी कहेछे वलीते स्कंध केवा छे, खणजोइणोके० क्षणयो गीछे एटले एक क्षण मात्र रहे, उपरात रहे नहीं एवीरीतना बोलनारा ते क्षणिकवा दी जाणवा हवे अनेरा दर्शनीउंथकी एमनो नेद जे छे, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे दे खाडेछे. अस्रोअणस्रो णेवाहुके० ते जेम आत्मषष्ठवादी साख्यादिक नूत थकी आ त्मा अन्य छे, एम कहेछे तथा जेम चार्वाकमति नूतथकी आत्मा अनेरो नथी एट ले जे नूत तेहिज आत्मा एम कहेछे, नेम बौद्धमति कहेता नथी तथा हेउयंच के० हेतु एटले आत्मा कोणे नीपजाव्यो एम पण कहेता नथी अने अहेउयं के० अहेतु क एटले अनादि अनत शाश्वत आत्माछे एम पण बौद्ध कहेता नथी ॥ १७ ॥ अ फलवादीगत। तथा अनेरा बौद्धदर्शनी चतुर्धातुक जगत् कहेछे, ते देखाडेछे पुढवीके० पृथिवी ते पाषाण पर्वत अने स्थलादिक ए प्रथमधातु, तथा आउके० अप्प ते पाणी ए बीजी धातु, तथा तेज के० अग्नि ए त्रीजी धातु, तथा वायु ए चोथी धातु, जे कारणे ए चारे पदार्थ जगत्रने धरे एटले पोषे ते कारणे एने धातु कहिये ए केहवाछे? तोके एगउ के० ए चारे एकाकार पणे परिणमे, माटे एकाकारछे तेथी ए चत्तारिधाउणोरूव के० चारेधातुरूप जाणवा एटले ए शरीर चतुर्धारूप छे ते थकी अनेरो आत्मा एवो प दार्थ कोइ नथी, एव के० एम ते बौद्ध कहेछे ते केवा जाणवा? तोके आहसु के०पो ताने लोकमांहे जाणयाके० जाण कहेवराविये एवु अनिमान धरेछे परतु ए सर्व क्षणि कवादिपणा थकी क्रियाना फलने सबध मले नहीं ते कारणे एने अफलवादि कहिये.

॥ दीपिका–अथ बौद्धमतमाह। (पचेति)। एके बौद्धा पचस्कधान् वदति। रूपस्कध १ वेदनास्कध २ विज्ञानस्कध ३ सज्ञास्कध ४ सस्कारस्कध ५। तत्र रुप पस्कध पृथिवीत्वादयो रूपादयश्च। वेदनास्कध सुखा दुःखा अदुःखसुखा च वेदना। विज्ञानस्कधो रूपविज्ञान रसविज्ञानमित्यादि। सज्ञास्कध संज्ञानिमित्तोद्ग्रहणात्मिक प्रत्यय। सविकल्पसज्ञानमित्यर्थ। सस्कारस्कध पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय ५ नचैते न्योन्य कश्चिदात्माख्य पदार्थोस्तीति। बाला मूर्खा। ते स्कधा किंनूता क्षणयोगि न क्षणेक्षणेविनश्वरा इत्यर्थ। पूर्ववादिन्यो बौद्धव्यतिरेकमाह। (अणोत्ति)। यथा सांख्यादयो नूतेन्योऽन्यमात्मानमगीकृतवत। यथा चार्वाका नूतेन्योऽनन्यमनिन्नमा

त्मानमिष्टवतस्तथा बौद्धा नैवाहुर्नोक्तवत. । तथा हेतुन्योजातोहेतुकः कायाकारपरिणतजूतनिष्पादित तथा ऽहेतुकोनित्य इत्येव तमात्मान बौद्धा नांगीकृतवतइति ॥१७॥ तथान्ये चतुर्धातुकं जगद् बौद्धा वदंतीत्याह । (पुढवीति) पृथिवीधातु । आपोजलं धातु । तथातेजो वायुश्चेति धातव । एते चत्वारोपि धातवो यदा (एकउत्ति) एकाकारपरिणतास्तदाकारतयाजीवाख्या लजंते । एवमाहुर्जानका पंमितंमन्या बौद्धा । (एवमाहंसुआवरेइति) क्वचित्पाठ । तत्र आवरेत्ति । अपरे बौद्धा इत्यर्थ ॥१८॥

॥ टीका–साप्रतं बौद्धमतं पूर्वपक्षयन्निर्युक्तिकारोपन्यस्तमफलवादाधिकारमाविर्जावयन्नाह । (पचखंधेवयंतेगेइत्यादि)। एके केचन वादिनो बौद्धा पच स्कधान् वदंति । रूप,वेदना, विज्ञान, सज्ञा, सस्कारा,ख्या पचैव स्कंधाविद्यंते नापर कश्चिदात्माख्य. स्कंधोस्तीत्येव प्रतिपादयंति । तत्र रूपस्कध. पृथिवीधात्वादयो रूपादयश्च ॥१॥ सुखा डु खा अडु खसुखाचेति वेदनावेदनास्कध ॥ २ ॥ रूपविज्ञान रसविज्ञानमित्यादि विज्ञानं विज्ञानस्कंध ॥३॥ संज्ञास्कंध सज्ञानिमित्तोऽवग्रहणात्मक प्रत्यय ॥४॥ संस्कारस्कध' पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय इति ॥ ५ ॥ नचैतेन्यो व्यतिरिक्त कश्चिदात्माख्य पदार्थोऽध्यक्षेणाऽध्यवसीयते । तदव्यजिचारिलिंगग्रहणाऽजावान्नाप्यनुमानेन । नच प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तमर्थाऽविसंवादिप्रमाणांतरमस्तीत्येव बालाइव बाला यथाऽवस्थितार्थापरिज्ञानात् बौद्धा प्रतिपादयति । तथा ते स्कधा क्षणयोगिन । परमनिकृष्ट काल क्षण । क्षणेन योग संबंध क्षणयोग' स विद्यते येषा ते क्षणयोगिन । क्षणमात्राऽवस्थायिनइत्यर्थ । तथाच तेऽजिदधति । स्वकारणेन्य पदार्थउत्पद्यमान किंविनश्वरस्वजावउत्पद्यतेऽविनश्वरस्वजावो वा । यद्यविनश्वरस्ततस्तद्व्यापिन्या क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाया अजावात् पदार्थस्यापि व्याप्यस्याजाव प्रसक्तति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थत सदिति।सच नित्योर्थ क्रियाया प्रवर्तमान क्रमेण वा प्रवर्तते यौगपद्येन वा । न तावत्क्रमेण । यतो ह्येकस्याऽर्थक्रियाया काले तस्यापरार्थक्रियाकरणसजावो विद्यते वा न वा । यदि विद्यते किमिति क्रमकरणं । सहकार्यपेक्षयेति चेत् । तेन सहकारिणा तस्य कश्चिदतिशय क्रियते न वा । यदि क्रियते किं पूर्वस्वजावपरित्यागे नापरित्यागेन वा । यदि परित्यागेन ततोऽतादवस्थ्यापत्तेरनित्यत्व । अथ पूर्वस्वजावापरित्यागेन ततोऽतिशयाजावात्किं सहकार्यपेक्षया । अथाऽकिंचित्करोपि विशिष्टकार्यार्थिमपेक्षते । तदयुक्त । यत' । अपेक्षेत पर कश्चि,द्यदि कुर्वीत किंचन ॥ यदकिंचित्कर वस्तु, किं केनचिदपेक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ तस्यैकार्यक्रियाकारणकाले ऽपरार्थक्रियाकरणस्वजावो न विद्यते। तथाच सति स्पष्टैव नित्यताहानि. । अथासौ नित्यो यौगपद्येनाऽर्थक्रि

र्यां कुर्यात्तथा सति प्रथमक्षणएवाऽशेषार्थक्रियाणां करणात् द्वितीयक्षणेऽकर्तृत्वमाया तं । तथाच सैवानित्यता । अथ तस्य तत्स्वनावत्वात्तएवार्थक्रिया नूयो नूयो द्विती यादिक्षणेष्वपि कुर्यात्तदसाप्रत । रुतस्य करणाजावादिति । किंच द्वितीयादिक्षणसा ध्या अप्यर्थां प्रथमक्षणएव प्राप्नुवति । तस्य तत्स्वनावत्वात् । अतस्तत्स्वनावत्वे च तस्यानित्यत्वापत्तिरिति । तदेव नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहान्न स्वकारणे न्यो नित्यस्योत्पादइति । अथाऽनित्य स्वनाव समुत्पद्यते । तथाच सति विघ्नाजावा दायातमस्मदुक्तक्रमशेषपदार्थजातस्य क्षणिकत्व । तथाचोक्तं । जातिरेव हि नावाना, विनाशे हेतुरिप्यते ॥ यो जातश्च नच ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ ननु च स त्यप्यनित्यत्वे यस्य यदा विनाशहेतुसद्भावस्तस्य तदा विनाश । तथा च । स्वविनाशका रणापेक्षाणामनित्यानामपि पदार्थाना न क्षणिकत्वमित्येतच्चानुपासितगुरोर्वच ।तथाहि । तेन मुजरादिकेन विनाशहेतुना घटादे किं क्रियते । किमत्र प्रष्टव्यमनाव क्रियते । अत्र च प्रष्टव्यो देवानाप्रिय । अनाव इति किं पर्युदासप्रतिषेधोयमुत प्रसज्यप्रतिषेधइति । तत्र यदि पर्युदासस्ततोयमर्थो नावादन्यो नावो नावातर घटात्पटादि सोऽनावइति । त त्र नावातरे यदि मुजरादिव्यापारो न तर्हि तेन किंचिद्घटस्य कृतमिति । अथ प्रसज्यप्र तिषेधस्तदा यथार्थो विनाशहेतुरनाव करोति । किमुक्त नवति नाव न करोतीति । ततश्च क्रियाप्रतिषेधएव कृत स्यात् । नच घटादे पदार्थस्य मुजरादिना करण । तस्य स्वकारणैरेव रुतत्वात् । अथ नावानावोऽनावस्तं करोतीति तस्य तुच्छस्य नीरूपत्वात् कुतस्तत्र कारणाना व्यापारोऽथ तत्रापि कारणव्यापारो नवेत् खरशृगादावपि व्याप्रिये रन् कारणानीति । तदेव विनाशहेतोरकिंचित्करत्वात् स्वहेतुतएवाऽनित्यताक्रोडीकृ तानां पदार्थानामुत्पत्तेर्विघ्नहेतोश्चानावात् क्षणिकत्वमवस्थितमिति । तुशब्द पूर्वादिभ्यो ऽस्य व्यतिरेकप्रदर्शक । तमेव श्लोकपश्चार्धेन दर्शयति । (अस्रोअणस्रोइति) । ते हि बौद्धा यथाऽस्मपष्ठवादिन साख्यादयो नूतव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवतो यथा चार्वाका नूताऽव्यतिरिक्त चैतन्याख्यमात्मानमिष्टवतस्तथा नैवाहुर्नैवोक्तवत । तथा हेतुन्योजातो हेतुक । कायाकारपरिणतनूतनिष्पादितइति यावत् । तथाऽहेतुको ऽनाद्यपर्यवसितत्वान्नित्यइत्येवमात्मान ते बौद्धा नाऽन्युपगतवत इति ॥ १७ ॥ तथाऽपरे बौद्धाश्चतुर्धातुकमिद जगदाहुरित्येतद्दर्शयितुमाह । (पुढवीत्यादि) पृथि वी धातुरापश्च धातुस्तथा तेजो वायुश्चेति धारकत्वात्पोषकत्वाच्च धातुत्वमेषां । (एगउत्ति) । यदैते चत्वारोप्येकाकारपरिणतिं बिभ्रति कायाकारतया तदा जीवव्यपदेशमश्नुवत । तथाचोक्तं । चतुर्धातुकमिद शरीर न तद्व्यतिरिक्तआत्मास्तीति । (एवमाहसुअवरेत्ति) अपरे बौद्धविशेषा एवमाहुरनिहितवतइति । क्वचिज्जाणगा ऽतिपाठस्तत्राप्ययमर्थो जा

तेका ज्ञानिनो वयं किलेत्यभिमानाग्निदग्धाः संत एवमाहुरिति संबंधनीयं । अफलवादि
त्वं चैतेषां क्रियाक्षणएव कर्तुः सर्वात्मना नष्टत्वात् क्रियाफलेन संबंधाभावादवसेयं । स
एव वा पूर्ववादिनोऽफलवादिनो द्रष्टव्याः कैश्चिदात्मनोऽनित्यस्याऽविकारिणोऽभ्युपगत
त्वात् कैश्चित्त्वात्मनएवानभ्युपगमादिति । अत्रोत्तरपदार्थानां प्राक्तन्येव निर्युक्तिगाथा।
जीवेएइत्यादि व्याख्यायते । यदि पंचस्कंधव्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते त
तस्तदभावात्सुखडुःखादिकं कोऽनुभवतीत्यादिगाथा प्राग्व्द्याख्येयेति । तदेवमात्मनो
भावाद्योयं स्वसंविदितः सुखडुःखानुभवः स कस्य भवत्विति चिंत्यतां । ज्ञानस्कंधस्यायमनु
भवऽति चेन्न । तस्यापि क्षणिकत्वात् । ज्ञानक्षणस्य चातिसूक्ष्मत्वात् सुखडुःखानुभवाभाव ।
क्रियाफलवतोश्च क्षणयोरन्यतासंगते कृतनाशाकृताभ्यागमापत्तिरिति ज्ञानसंतान ए
कोस्तीति । तस्यापि संतानिभ्यतिरिक्तस्याऽभावाद्यत्किंचिदेतत् । पूर्वक्षणएव उत्तरक्षणे
वासनामाधाय विनश्यतीति चेत् । तथाचोक्तं । यस्मिन्नेव हि संताने, आहिता कर्मवासना॥
फलं तत्रैव संधत्ते, कार्पासे रक्तता यथा ॥ १ ॥ अत्रापीदं विकल्प्यते । सा वासना किं
क्षणेभ्यो व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा । यदि व्यतिरिक्ता वासकत्वानुपपत्तिरथाव्यतिरिक्ता क्ष
णवत् क्षणक्षयित्वं तस्या । तदेवमात्माभावे सुखडुःखानुभवाभाव स्यादस्ति च सुखडु
खानुभवोऽतोस्त्यात्मेति । अन्यथा पंचविषयानुभवोत्तरकालमिंद्रियज्ञानानां स्वविषया
दन्यत्राप्रवृत्ते सकलनाप्रत्ययो न स्यात् । आलयविज्ञानाद्भविष्यतीति चेदात्मैव तर्हि सं
ज्ञातरेणाभ्युपगतऽति । तथा बौद्धागमोप्यात्मप्रतिपादकोस्ति । सचायं । इत । एकनवति
मे कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हत ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षव ॥ १ ॥
तथा । कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि, तनूभवत्यात्मनिगर्हणेन ॥ प्रकाशनात्संवरणाच्च
तेषां,मत्यंतमूलोद्धरणं वदामीत्येवमादि । तथा यदुक्तं । क्षणिकत्वं साधयता यथा
पदार्थः कारणेभ्य उत्पद्यमानो नित्य समुत्पद्यते ऽनित्यो वेत्यादि । तत्र नित्येऽप्र
च्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावे कारकाणां व्यापाराभावादतिरिक्ता वाचोयुक्तिरिति नित्यत्वपक्षा
नुत्पत्तिरेव । यच्च नित्यपक्षे भवताभिहित नित्यस्य न क्रमेणार्थक्रियाकारित्वं नापि योगप
द्येनेति तत्क्षणिकत्वेपि समानं । यत क्षणिकोप्यर्थक्रियायां प्रवर्तमान क्रमेण यौ
गपद्येन वाऽवश्यं सहकारिकारणसव्यपेक्षएव प्रवर्तते । यत । सामग्री जनिका नह्येकं
किंचिदिति । तेनच सहकारिणा न तस्य कश्चिदतिशय कर्तुं पार्यते । क्षणस्यविवेकत्वेना
ऽनाधेयातिशयत्वात् क्षणानां च परस्परोपकारकोपकार्यत्वानुपपत्ते सहकारित्वाभाव ।
सहकार्यनपेक्षाया च प्रतिविशिष्टकार्यानुपपत्तिरिति । तदेवमनित्यएव कारणेभ्यः पदा
र्थः समुत्पद्यत ऽति द्वितीयपक्षसमाश्रयणमेव । तत्रापि चैतदालोचनीयं । किं क्षणक्षयि
त्वेनानित्यत्वमाहोस्वित्परिणामाऽनित्यतयेति । तत्र क्षणक्षयित्वे कारणकार्यत्वाभावा

त् कारणाना व्यापारएवानुपपन्न कुत क्षणिकानित्यस्य कारणेन्य उत्पादइति । अथ पू र्वक्षणाडुत्तरक्षणोत्पादे सति कार्यकारणनावो नवतीत्युच्यते तदयुक्तं । यतोसौ पूर्वक्षणो विनष्टो वोत्तरक्षण जनयेदविनष्टो वा । न तावद्विनष्टस्तस्यासत्वाज्जनकत्वानुपपत्ते । ना प्यविनष्ट उत्तरक्षणकाले पूर्वक्षणव्यापारसमावेशात्क्षणनंगनंगापत्ते. । पूर्वक्षणो विनश्यं स्तूत्तरक्षणमुत्पादयिष्यति तुलातयोर्नामोन्नामववदितिचेत् । एव तर्हि क्षणयो स्पष्टैवैकका लताश्रिता । तथाहि । यासौ विनश्यदवस्था साऽवस्था तु निन्ना । उत्पादावस्थातोप्यु दिपत्तोस्ततश्च तयोर्विनाशोत्पादयोर्यौगपद्यान्युपगमे तद्धर्मिणोरपि पूर्वोत्तरक्षणयोरेक कालावस्थायित्वमिति । तद्धर्मतानन्युपगमे च विनाशोत्पादयोरवस्तुत्वापत्तिरिति । यथो क्त जातिरेव हि नावानामित्यादि । तत्रेदमनिधीयते । यदि जातिरेवोत्पत्तिरेव नावानां पदार्थानामनावहेतुस्ततोऽनावकारणस्य सन्निहितत्वेन विरोधेनाघ्रातत्वाडुत्पत्त्यनावो ऽस्योत्पत्त्युत्तरकाल विनाशो नविष्यतीत्यन्युपगम्यते । तथा सति उत्पत्तिक्रियाकाले तस्याऽनू तत्वात्पश्चाच्च नवन्नतरायएव नवति न नूयसा कालेनेति । किमत्र नियामक विनाशे हेत्वना व इतिचेत् । यतउक्त निर्हेतुकत्वाद्विनाशस्य स्वनावानुबंधितेत्येतदप्ययुक्त । यतो घटादी ना मुजरादिव्यापारानरमेव विनाशो नवन् लक्ष्यते । ननु चोक्तमेवात्र तेन मुजरादिना घटा दे किं क्रियत इत्यादि । सत्यमुक्त । इदमयुक्तमुक्त तथाह्यनावइति । प्रसज्यपर्युदासविक ल्पद्वयेन योयं विकल्प पक्षद्वयेपि च दोष प्रदर्शित सोऽदोष एव । यत पर्युदासपक्षे कपालाख्यनावातरकारणे घटस्य च परिणामानित्यतया तद्रूपतापत्ते कथ मुजरादेर्घ टादीन् प्रत्यकिंचित्करत्व । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु नाव न करोतीति प्रतिषेधात्मकोत्र नाश्री यते । किंतर्हि प्रागनाव,प्रध्वसानावे,तरेतरा,त्यंतानावाना चतुर्णा मध्ये प्रध्वसा नावएवेहाश्रीयते । तत्र च कारकातरणा व्यापारोनवत्येव । यतोसौ वस्तुत पर्या योऽवस्थाविशेषो न नावमात्र । तस्य चाऽवस्थाविशेषस्य नावरूपत्वात्पूर्वोपमर्दन च प्रवृत्तत्वाद्यएव कपालादेरुत्पाद सएव घटादेर्विनाशइति विनाशस्य सहेतुकत्वमवस्थि त । अपिच कादाचित्कत्वेन विनाशस्य सहेतुकत्वमवसेयमिति । पदार्थव्यवस्थार्थं चाऽव श्यमनावचातुर्विध्यमाश्रयणीय । तडुक्त । कार्यद्रव्यमनादि स्या,त्प्रागनावस्य निन्हवे ॥ प्रध्वसस्य च नावस्य, प्रच्यवेऽनतता व्रजेत् ॥ १ ॥ सर्वात्मक तदेक स्यादन्यापोहव्यति क्रमे इत्यादि । तदेव क्षणिकस्य विचाराक्षमत्वात्परिणामानित्यपक्षएव ज्यायानिति । एव च सत्यात्मा परिणामी ज्ञानाधारो नवातरयायी नूतेन्य, कथञ्चिन्यएव शरीरेण सहा ऽन्योन्यानुवेधादनन्योपि । तथा सहेतुकोपि नारकतिर्य ... तथा तथा विक्रियमाणत्वात् पर्यायरूपतयेति । तथात्म...

आत्मनश्च शरीरव्यतिरिक्तस्य साधितत्वाच्चतुर्भूतिकमात्रं शरीरमेवेदमित्येतडुन्मत्तप्रल पितमपकर्णयितव्यमित्यलं प्रसंगेनेति ॥ १८ ॥

अगारमावसंतावि, अरणा वा वि पव्वया ॥ इमं दरिसणमावन्ना सव्वडुक्का विमुच्चई ॥१९॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते उहंतराहिया ॥२०॥ ते णावि संधि णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एव, न ते संसारपारगा ॥२१॥ ते णावि संधि णच्चा ण, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते गप्नस्स पारगा ॥२२॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्म विउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एव, न ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥ ते णावि संधि णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते डुक्खस्स पारगा ॥ २४ ॥ ते णावि संधि णच्चा णं, न ते धम्म विउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एव, न ते मारस्स पारगा ॥ २५ ॥

अर्थ–हवे ए पूर्वोक्त दर्शनी पोतपोतानां दर्शननेविषे मुक्तीनुं कारण जे कहेले ते देखाडे बे. ते उपर कहेलेके ते सर्व दर्शनी अगार के० घर तेनेविषे आवसंतावि के० निवास करनार एटले गृहस्थ, वा के० अथवा, अरणा के० अरण्यवासी तापसादिक अथवा पव्वयाके० प्रव्रजितशाक्यादिक ते एम भावना करेले के, इमदरिसणमावन्ना के० अमारा दर्शने आवन्ना एटले आव्या एटले जे कोई अमे कहिये तेने माने तो, ते सव्वडु क्काविमुच्चईके०सर्व डुःखथकी मुक्त थाय. एवी रीते पोतपोताना दर्शननेविषे सर्व कोई मुक्ति देखाडेले ॥१९॥ हवे ग्रंथकार कहेले तेणाविके० ते पंचभूतवादी प्रमुख दर्शनीउ तेने नैव के० नथी संधिके० बिद्र एटले ज्ञानावरणादिक कर्म तेनो विपर्ययभाव ते संधि जाणवी ते अहीं ज्ञानावरणादिक कर्मना विवरण तेने णच्चाणके० अजाणतायका बापडा डुःखथ की मूकावावाने अर्थे सावधान थयाले ते कारणे ते जणाके० जन एटले लोक, नतेध म्मविउके० क्षांत्यादिक दशप्रकारनो जे यतिधर्म तेना जाण नथी जेतेउवाइणो एवके० ते वादी जे नास्तिकमति प्रमुख पूर्वे कह्या, ते असमंजस वचनना बोलनारले माटे नतेउहतराहिया के० ते संसाररूप उघ एटले प्रवाह, अर्थात् संसारसमुद्रना तारना र ते नथी एम श्रीतीर्थंकरे तथा गणधरे कह्युंले ॥ २० ॥ ते पंचभूतवादी प्रमुख कर्म आववाना स्थानक जाणता नथी, वली ते जनके० लोक क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मने जाणता नथी एवा ते पूर्वे कह्या जे वादी ते संसारना पा

रगामी नहोय ए गाथाना पहेला त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज ठे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भना दुःख सहन करे. ॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं दुःख सहन करे ॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते दुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना दुःख सहन करे. ॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे ॥२५॥

॥ दीपिका–अथ पूर्वोक्तसर्वकुमतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संभावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो जीवाविमुच्यतइति ते वदंति ॥ १९ ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेऽति पद्भिः । ते पंच पंचभूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेऽत्यर्थः । णंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्भिन्नत्वं भवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः ॥ संधिर्द्विविधः । द्रव्यसंधिः कुड्यादेः । भावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्तं मज्ञात्वा प्रवृत्ताः । ते किंभूताइत्याह । (नतेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते।एवंविधवादिनस्ते। ओघो भवौघः संसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोकाः एवमेव व्याख्येयाः ।परं संसार १ गर्भ २ जन्म ३ दुःख ४ मारपारगा न भवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचभूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मषष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाऽइत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संविभावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो विमुच्यते । आर्षत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संत सर्वेभ्यः शिरस्तुडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण. केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेभ्यो दुःखेभ्यो मुच्यंते । तथा हुः । तपांसि यातनाश्चित्रा ,संयमो भोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संभावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्ना प्रव्रजितास्ते सर्वेभ्यो जन्मजरामरणगर्भपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

न्यो डुःखेन्यो विमुच्यते । सकलद्वंद्वविनिर्मोक्षं मोक्षमास्कदंतीत्युक्तं नवति ॥ १९ ॥ इदानीं तेषामेवाऽफलवादित्वाविष्करणायाह । (तेणावीत्यादि) ते पंचनूतवाद्याद्या नापि नैव संधिं छिद्रं विवरं। सचद्रव्यनावनेदाद्वेधा। तत्र द्रव्यसंधिः कुड्यादिर्नावसंधिर्ज्ञानावरणादिकर्मविवररूपस्तमज्ञात्वा ते प्रवृत्ता । णमिति वाक्यालंकारे। यथा आत्मकर्मणोः संधिर्द्विधा नावलक्षणोनवति। तथा अबुधाइव ते वराका डुःखमोक्षार्थमन्युद्यताइत्यर्थः । यथा तएवनूतास्तथा प्रतिपादितं लेशतः प्रतिपादयिष्यतेच। यदि वा संधानं संधिरुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं तदज्ञात्वा प्रवृत्ताइति। यतश्चैवमतस्ते न सम्यक्धर्मपरिच्छेदे कर्तव्ये विद्वांसो निपुणा जनाः पंचनूतास्तित्वादिवादिनो लोकाइति। तथाहि । क्षात्यादिकोदशविधो धर्मस्तमज्ञात्वैवान्यथा च धर्मं प्रतिपादयंति। यत्फलानावाच्च तेषामफलवादित्वं तडुत्तरग्रंथेनोद्देशकपरिसमाप्त्यवसानेन दर्शयति। ये तेत्विति। तुशब्दश्चशब्दार्थे यइत्यस्यानंतरं प्रयुज्यते। येच ते एवमनंतरोक्तप्रकारवादिनो नास्तिकादयोउंघोनवौघः संसारस्तत्तरणशीलास्ते न नवतीति श्लोकार्थः ॥ २० ॥ तथा न ते वादिनः संसार, गर्न, जन्म, डुःख, मारादिपारगा नवतीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

> णाणाविहाइ डुःखाइं, अणुहवंति पुणो पुणो ॥ संसारचक्कवालंमि, मच्चुवाहिजराकुले ॥२६॥ उच्चावयाणि गछंता, गप्नमेस्संति णंतसो ॥ नायपुत्ते महावीरे, एवमाह जिणोत्तमे ॥२७॥ इति बेमि पढममश्यणं पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ७ ॥ ७ ॥

अर्थ–वली ते जे स्थितिने पामे ते कहेछे णाणाविहाइडुरकाइ के० नानाविध बहु प्रकारे छेदन नेदन ताडनादिक डुखोनें अणुहवंतिपुणोपुणो के० वली वली अनुनवेछे परंतु ते डुःख क्या पामे? तोके संसार चक्कवालंमिके० संसारचक्रवालने विषे पामे ते संसार केवो डुस्तरछे तो के, मच्चुवाहिजराकुले के० मृत्यु, व्याधि अने जरा तेणे करी आकुलव्याकुल छे. एवा संसारमांहे परिन्रमण करता अनंतो काल डुःखी थाय ॥२६॥ ते दर्शनीउं वली असमंजस थका सूत्रविरोधना बोलनारा उच्चावयाणिगछंता के० उंचे नीचे स्थानके परिन्रमण करतां आगामिक काले गप्नमेसंतिणंतसोके० अनंता गर्नना डुःख पामसे एवमाहके० एवु वचन, नायपुत्तेमाहावीरेके० ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेव जिणोत्तमेके० जिनोत्तम तेणे कह्यु तेम अमे पण कहियेछेए ॥२७॥ इतिप्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ए प्रथम उद्देशकमां नूतवादिप्रमुख परवादीना मत कह्या.

॥ दीपिका–ते यत्प्राप्नुवंति तदाह । (णाणेति) । नानाविधान्यनेकप्रकाराणि डुःखानि

अनुनवति । पुन पुन संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरानिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां ड खफलमुपसहार चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गछतोच्च मतोगर्नाजर्नमेप्यति यास्यंत्यनतश । (नायपुत्तेति) । ज्ञात सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्र श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जबूस्वामिन प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्ररुते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या सपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि ड खान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवति पुन पुन । तथाहि नरकेषु करपत्र दारण,कुनीपाक,तप्ताय शाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्मादिदमनाकताडनाऽतिसारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसयोगशोकाक्रदनादीनि देवेषु चाभियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि ड खानि ये एवनूता वादिनस्ते पौन पुन्येन समनुनवति।एतच्च श्लोकार्द्ध सर्वेषूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं।शेष सुगम यावदुद्देशक समाप्तिरिति॥२६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गछतीति गछतोच्चमतोगर्नाजर्नमेप्यति यास्यंत्यनतशो निर्विछेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जबूस्वामिन प्रत्याह । ब्रवीम्यह तीर्थकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थकरसकाशाछ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो इष्टव्य ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशक समाप्त ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशक प्रारन्यते

आघायं पुण एगेसि, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुह ड खं, अडु वा लुप्पति ठाणउ ॥ १ ॥ न त सय कडं डुक्क, कउ अन्नकड च णं॥सुह वा जइ वा डुख, सेहिय वा असेहियं ॥ २ ॥ सय कड न अन्नेहि, वेदयति पुढो जिया ॥ सगइअ तं तहा तेसि, इहमेगेसि आहिअ ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिके० एक नियतवादिने मते, आघायके० एम कह्युंले ए टले तेनो जे अनिप्राय ले ते कहेले उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकने नवे जे जीवले, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहडुक्ख के० सुखड खने वेदयंतिके० वेदेले. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख ड ख अनुनवता ठाणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे सक्रमे एम नियतवादी कहेले ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेले जे ते प्राणी सुख ड ख अनुनवेले, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेले, नतंसयंकडंडुक्कके० ते ड खादिक ते जीवन्नु पोतानु कीधेलु नथी तेम कउअन्नकडंचण के० अनेरा का

ज ईश्वर स्वनावादिकनुं करेलुं क्यांथी होय. जो स्वयंकृत सुख डुःख ढे, तो सर्वे जीव व्यापारादिक सरिखो व्यापार करता सर्व सरखाज केम नथी थता माटे पुरुषाकारे कांइज नथाय, अने जो काल ईश्वरादिकना करेला सुख डुःख होय तो जगतनी विचित्रता केम थाय? तेमाटे काल ईश्वरादिकनुं करेलुं पण सुख डुःख थतु नथी एटले जीवने सुहंवाजइवाडुक्कके० सुख अथवा डुख जे ढे ते केवा ढे, तोके सेहिंय वा असेहिय के० सैद्धिक अथवा असैद्धिक ढे. तेमा स्रग् चदन विनितादिक तेथकी उपनु जे सुख तेने सैद्धिक कहिये अने अंतरग आनंदरूप जे सुख तेने असैद्धिक कहिये एवीरीते वे प्रकारे डुःख पण जाणवु, तेमा एक वध, बधन, ताडनादिक क्रियाना करवाथीकरी अने बीजुं शूलज्वरादिरूप जाणवुं, एटले एक कारणे निष्पन्न अने बीजुं स्वानाविक निष्पन्न ढे ॥ २ ॥ ए सुखडुःख जो कोइए कर्या नथी, तो ए जीव सुखी डुःखी केम थायढे, ते कहेढे सयकडनअसेहिंवेदयति पुढोजियाके०सयं एटले पोतानु करेलुं अथवा अनेरानुं करेलुं जे सुख डुःख ते जीव वेदतो नथी किंतु सगइअंतंतहातेसिके० नवितव्यतानु करेलु तेहिज जीवने सुख डुःख उपजेढे. तथाच तन्मत। प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थ, सोवश्य नवति नृणा शुनोशुनो वा ॥ नूताना महति कृतेपिहि प्रयत्ने, नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाश ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ ३ ॥ एप्रमाणे नियतवादीना मतनो अनिप्राय दर्शाव्यो

॥ दीपिका–उक्त प्रथमोद्देशक । अथ द्वितीयोद्देशकः कथ्यते । तस्यायमर्थसंबंध । आद्योद्देशके नूतवादादिमतं प्रदर्श्य निराकृतं । इहाप्यवशिष्ट तदेवोपदर्श्य निराक्रियत इत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकस्य सूत्र यथा । (आघायमिति) । पुन एकेषां नियतिवादिनामेतदाख्यातं । आख्यातमित्यत्र नावे क्तप्रत्यय तद्योगेन वा क्लीवइति कर्तरिषष्ठी । ततश्च नियतिवादिनिरिदमाख्यातमित्यर्थ । किं तदित्याह् । (उववसुत्ति) उपपन्ना युत्त्या घटमाना पृथक् अनेके जीवा । जीवसत्वे पचनूततच्छरीरवादिमतं निराकृतं । पृथगित्यनेन आत्माऽद्वैतवादिनिरासश्च । तेऽनेके जीवा सुखं डुःखं देवनारकादिनवेषु वेदयंत्यनुनवंति अनेनाऽकर्तृवादो निरस्त (अडुवेत्ति)। अथवा लुप्यंते स्थानात् स्थानातर संक्राम्यते। एतेनोपपातिकत्वमप्युक्तं ॥ १ ॥ नियतिवादिमतमेवाह् श्लोकद्वयेन । (नतमिति) यत्तै प्राणिनिरनुनूयते सुख डुःख स्थानविलोपन वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं डुःखं। डुःखस्यचोपलक्षणात्सुखमपि ग्राह्य । सुखडुःखानुनव पुरुषकारकृतो न स्यादित्यर्थ । अनेन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कुत कृतं । णमित्यलंकारे । कालादिनिरपि न कृतमित्यर्थ । किंतु नियतेरेव निष्पद्यते सर्वमिति । तत सुखं सैद्धिक सिद्धौ मोक्षे नव सं

द्धिकं । यदिवा दुःखमसैद्धिकं सांसारिकं । अथवा सैद्धिकमसैद्धिकं च सुखं यथा । स्रक् चंदनांगनाद्युपभोगक्रियासिद्धौ नव सैद्धिकं । आंतरं सुखमानंदरूपमसैद्धिकं । तथा सैद्धिकमसैद्धिकं च दुःखं यथा । कशाताडनांकनादिक्रियासिद्धौ नव सैद्धिकं । ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोत्थमसैद्धिकं दुःखं । एतद्वयमपि सुखं दुःखं च नपुरुषकारकृतं । नचान्यैः कालादिभिः कृतं वेदयत्यनुनवति पृथक्जीवा । कथं तर्हि प्राणिनांसुखं दुःखं च स्यादित्याह । (संगइअंति) । सम्यक् स्वपरिणामेन गतिर्यस्या यदा यत्र यत्सुखदुःखानुनवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्यानवं सांगतिकं नियतिकृतमित्यर्थः । इहाऽस्मिन्सुखदुःखानुनववादे एकेषां नियतिवादिनामिदमाख्यातं । यडुक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं नवति नृणां शुनोऽशुनो वा ॥ नूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने, नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाश इति ॥ ३ ॥

॥ टीका–उक्तः प्रथमोद्देशकस्तदनु द्वितीयोऽनिधीयते । तस्य चायमनिसंबंधः । इहाऽनंतरोद्देशके स्वसमयपरसमयप्ररूपणाकृता । इहाप्यध्ययनार्थाधिकारत्वात्सैवानिधीयते । यदि चानंतरोद्देशके नूतवादादिमतं प्रदर्श्य तन्निराकरणं कृतं । तदिहापि तदवशिष्टनियतिवाद्यादिमिथ्यादृष्टिमतान्युपदर्श्य निराक्रियंते । अथवा प्रागुद्देशकेऽन्यथापि यथा बंधनं बुध्येत तच्च त्रोटयेदिति तदेव च बंधनं नियतिवाद्यनिप्रायेण न विद्यतइति प्रदर्श्यते । तदेवमनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आघायमित्यादि) अस्य चाऽनंतरपरंपरसूत्रे संबंधोवक्तव्यस्तत्राऽनंतरसूत्रसंबंधोयं । इहानंतरसूत्रे ऽदमनिहितं यथा । पंचनूतस्कंधादिवादिनोमिथ्यात्वोपहताऽतरात्मनोऽसद्ग्राहानिनिविष्टा परमार्थाऽवबोधविकला संतः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराकुले उच्चावचानि स्थानानि गच्छंतो गर्नमेष्यत्यनंतेपर्यंति वाऽनंतशइति । तदिहापि नियत्यज्ञानिज्ञानचतुर्विधकर्मोपचयवादिनां तदेव संसारचक्रवालभ्रमणगर्नान्वेषणं प्रतिपाद्यते । परंपरसूत्रसंबंधस्तु (बुज्झेज्जेत्यादि) । तेन च सहायं संबंधस्तत्र बुध्येतेत्येतत् प्रतिपादितमिहापि यदाख्यातं नियतिवादिनिस्तद्बुध्येतेत्येव मध्यसूत्रैरपि यथासंनवं संबंधो लगनीयइति । तदेवं पूर्वोत्तरसंबंधसंबद्धस्यास्य सूत्रस्याऽधुनार्थः प्रतन्यते । पुनः शब्दः पूर्वादिभ्यो विशेषं दर्शयति । नियतिवादिनां पुनरेकेषामेतदाख्यातं । अत्र चाविवक्षितकर्मकाअपि अकर्मका नवंतीति ख्यातेर्धातोर्नावे निष्ठाप्रत्ययस्तद्योगे कर्तरि षष्ठी । ततश्चायमर्थस्तैर्नियतवादिभिः पुनरिदमाख्यातं तेषामयमाशयइत्यर्थः । तद्यथा । उपपन्नो युक्त्या घटमानकाइत्यनेन च पंचनूततज्जीवतच्छरीरवादिमतमपाकृतं नवति। युक्तिस्तु लेशतः प्राग्दर्शितैव । प्रदर्शयिष्यते

च पृथक्पृथक्नारकादिनवेषु शरीरेषु चेत्यनेनाऽप्यात्माऽद्वैतवादिनिरासोऽवसेय । के पुन स्ते पृथगुपपन्नास्तदाह।जीवा प्राणिन सुखडुःखनोगिन । अनेन च पंचस्कधातिरिक्तजीवा नावप्रतिपादकबौद्धमताऽपक्षेप कृतोद्रष्टव्य । तथा ते जीवा पृथक्पृथक् प्रत्येकदेहे व्य वस्थिता सुखं डुःखं च वेदयंत्यनुनवति । न वय प्रतिप्राणिप्रतीत सुखडुःखानुनव निह्नु महे । अनेन चाऽकर्तृवादिनोनिरस्तानवति । अकर्तर्यविकारिण्यात्मनि सुखडुःखानुनवा नुपपत्तेरिति नाव । तथंतदस्मानिर्नोऽपलप्यते । अडुवेत्यथवा । तेप्राणिन सुख डुःखं चानुनवति विलुप्यते बिद्यते स्वायुष प्रच्याव्यते स्थानात्स्थानांतर सक्राम्यत इत्यर्थ । ततश्चौपपातिकत्वमप्यस्मानिस्तेषा न निषिध्यते इतिश्लोकार्थ ॥ १ ॥ तदेव पचनूता स्तित्वादिवादिनिरास कृत्वा यत्तैर्नियतिवादिनिराश्रीयते तच्छ्लोकद्वयेन दर्शयितुमाह ।

(नतसयमित्यादि) यत् ते प्राणिनिरनुनूयते सुखं डुःख स्थानविलोपन वा न तत्स्वय मात्मना पुरुषकारेण कृत निष्पादित डुःखमिति । कारणेकार्योपचारात् । डुःखकारणमेवो क्त । अस्य चोपलक्षणत्वात् सुखाद्यपि ग्राह्य । ततश्चेदमुक्त नवति । योय सुखडुःखानुनव सपुरुषकारकृतकारणजन्यो न नवतीति । तथा कुतोऽन्येन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कृ तं नवेत् । णमित्यलंकारे । तथाहि । यदि पुरुषकारकृतं सुखाद्यनुनूयेत तत सेवकवणि क्कर्षकादीनां समाने पुरुषकारे सति फलप्राप्तिवैसदृश्य फलप्राप्तिश्च न न वेत् । कस्यचित्तु से वादिव्यापारानावेपि विशिष्टफलावाप्तिर्दृश्यत इत्यतो न पुरुषकारात्किंचिदासाद्यते किं त र्हिनियतेरेवेत्येतच्च द्वितीयश्लोकांतेऽनिधास्यते।नापि काल कर्ता । तस्यैकरूपत्वाज्जग ति फलवैचित्र्यानुपपत्ते । कारणनेदे हि कार्यनेदोनवति नानेदे । तथा ह्ययमेवहि नेदो नेदहेतुर्वा घटते । यडुत विरुद्धधर्माध्यास कारणनेदश्च । तथेश्वरकर्तृकेपि सुखडुःखे नन्न वत । यथाऽसावीश्वरो मूर्तोऽमूर्तो वा । यदि मूर्तस्तत प्राकृतपुरुषस्येव सर्वकर्तृत्वानाव । अथाऽमूर्तस्तथा सत्याकाशस्येव सुतरा निष्क्रियत्व । अपिच यद्यसौ रागादिमांस्ततो ऽस्मदाद्यव्यतिरेकाद्विश्वस्याकर्तैव । अथासौ विगतरागस्ततस्तत्कृत सुनगडुर्नगेश्वरद रिद्रादिजगद्वैचित्र्य न घटा प्राचति ततोनेश्वर कर्तेति । तथा स्वनावस्यापि सुखडु खादिकर्तृत्वानुपपत्ति । यतोऽसौ स्वनाव पुरुषाद्भिन्नोऽनिन्नोवा । यदि निन्नोन पुरुषा श्रिते सुखडुःखे कर्तुमल तस्माद्भिन्नत्वादिति । नाप्यनिन्नोऽनेदे पुरुषएव स्यात्तस्य चाक र्तृत्वमुक्तमेव । नापि कर्मण सुखडुःख प्रति कर्तृत्वं घटते । यतस्तत्कर्म पुरुषाद्भिन्नमनि न्नं वा नवेत् । अनिन्नं चेत्पुरुषमात्रतापत्ति कर्मणस्तत्र चोक्तो दोष । अथ निन्न तत्किं स चेतनमचेतन वा । यदि सचेतनं एकस्मिन् काये चैतन्यद्वयापत्ति । अथाचेतन तथा सति कुतस्तस्य पाषाणखंडस्येवास्वतन्त्रस्य सुखडुःखोत्पादनप्रति कर्तृत्वमित्येतच्चोत्तरत्र व्यासेन प्रतिपादयिष्ये इत्यलं प्रसगेन । तदेव सुख सैद्धिक सिद्धावपवर्गलक्षणाया

नव यदि वा डुख आसातोदयलक्षणमसैद्धिकं सांसारिकं । यदिवोजयमप्येतत्सुखं डुखं वा स्रक्चंदनागनाद्युपजोगक्रियासिद्धौजव तथा कशाताडनाकनादिसिद्धौ जव सैद्धिकं । तथाऽसैद्धिक सुखमातरमानंदरूपमाकस्मिकमनवधारितबाह्यनिमित्त । एव डुखमपि ज्वर शिरोर्तिशूलादिरूपमगोडुमसैद्धिक । तदेतडुजयमपि न स्वय पुरुपकारेण कृतं नाप्यन्येन केनचित् कालादिना कृत वेदयत्यनुजवति पृथक्जीवा प्राणिनइति । कथ तर्हि तत्तेपाम नूदिति नियतिवादी स्वाजिप्रायमाविष्करोति (सगइयति) सम्यक्स्वपरिणामेन गतिर्यस्य यदा यत्र यत्सुखडुखानुजवन सा सगतिर्नियतिस्तस्या जव सागतिक । यतश्चैवं न पुरुपकारादिकृतं सुखडुखायतस्तत्तेषा प्राणिना नियतिकृतं सांगतिकमित्युच्यते । इहास्मिन् सुखडुखानुजववादे एकेपा वादिनामाख्यात तेपामयमज्युपगम । तथाचोक्तं । प्राप्तव्यो नियतिवलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्य जवति नृणां शुजोऽशुजो वा ॥ जूताना महति कृतेपि हि प्रयत्ने नाजाव्य जवति न जाविनोस्ति नाश ॥ १ ॥ ३ ॥

एवमेयाणि जपता, बाला पंमिअमाणिणो ॥ निययानियय संत, अयाणंता अवुद्धिया ॥ ४ ॥ एवमेगे उ पासवा, ते जुज्जो विप्पगप्निआ ॥ एव उवठिआ संता, ण ते डुखविमोरकया ॥ ५ ॥

अर्थ–हवे ग्रथकार एने उत्तर आपेठे एवमेयाणिजपंता के० एव पूर्वोक्त वचन नियतवादाश्रित वोलतां एवा ते वालाके०वाल अज्ञानी ठता पोताने पमिअमाणिणोके० पमित करी मानता शा माटे मानेठे ते कहेठे के, निययानिययंके० ते अज्ञानी नियतिकृत सुख डुख अथवा अनियतिकृत पुरुपकारादिकनु करेलु एवु सुख डुख ते सत के० एकाते जवितव्यतायेज कयु एम कहेठे, ते कारणे तेने सुखडुखादि कारणना अयाणता अवुद्धियाके० अजाण, वुद्धिरहित कहिए अने जैनतो नियतिकृतपणे तथा अनियतिकृतपणे ए वने प्रकारे सुख डुख मानेठे एटले स्याद्वादी कहिए ॥ ४ ॥ हवे तेने एवी प्ररूपणानु विपाक देखाडेठे एवमेगेके० एरीते कोइ एक नियतवादने विपे आश्रित परवादीठे ते केवाठे, तोके पासज्ञाके० पार्श्वस्थ एटले न्यायपक्षथकी वाहेर अथवा पासज्ञा एटले पाशके० कर्मनु वधन तेने विपे स्थित जुज्जो के० तेवली पुन विप्पगप्नियाके० विविध प्रगल्जित एटले अत्यत धिगायका मुक्तिमार्गनेविपे प्रवर्त्ते, वली एवु कहेठे के अमे एवी क्रिया करता थका मुक्तिपामीशु परतु एवके० ए प्रकारे ते उवठियासताके० उठित एटले पोतानी क्रियानेविपे प्रवर्त्तता ठतां णतेडुखविमोरकयाके० पोताने डुखथी मूकावनार न होय एटले मुक्ति पामेनहीं ॥५॥ एटले नियतवादी कह्या

॥ दीपिका–अस्योत्तरमाह । (एवमिति) । एवमेतानि पूर्वोक्तानि वचनानि जल्पतो

नियतिवादिनोबाला मूर्खा पंडितमानिन स्वयमपंमिताअप्यात्मान पंडित मन्यमाना । किन्नूता नियताऽनियतमजानत किंचिन्नियतिकृतमवश्यनावि नियतमात्मपुरुपकारेश्वरादिकृत किंचिदनियतमेव द्विविधं वस्तु अजानंतोनियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयतोऽतएवाबुद्धिकाबुद्धिरहितानवति । पुरुपकारादयोपि वस्तूत्पादका । यतः । न दैवमिति सचित्य, त्यजेडुद्यममात्मन । अनुद्यमेन कस्तैल तिलेन्य प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ इत्याद्यजानंतोऽतएव निर्बुद्धिका. ॥ ४ ॥ एतद्वादिनामपायमाह । (एवमिति) । एवमेके नियतिवादिनं पार्श्वस्था युक्तिसमूहाद्बहिस्तिष्टतीति पार्श्वस्था परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । अथवा पाश. कर्मबधन तत्र स्थिता । (तेजुज्जोत्ति) । ते नूयो विविध प्रगल्निता धार्ष्ट्योपेतानियतिवादमगीकृत्यापि एव पुनरपि स्वकार्यपरलोकक्रियासु प्रवर्तमानाअतएव धार्ष्ट्योपेतानते डुःखविमोचकाआत्मानं डुःखान्न मोचयंति ॥ ५ ॥ नियतिवादिनोगता ॥

॥टीका–एव श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह । (एवमेयाणि इत्यादि) एवमित्यनतरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पंतोऽनिदधतो बालाअज्ञा सदसद्विवेवविकलाअपि संत पडितमानिनआत्मानं पमित मंतु शीलं येपा ते तथा । किमिति तएवमुच्यतऽति तदाह । यतो (निययानिययंसंतमिति) । सुखादिक किंचिन्नियतिकृतमवश्य नाव्युदयप्रापितं तथाऽनियतमात्मपुरुपकारेश्वरादिप्रापित सत् नियतिकृतमेवैकातेनाश्रयत्यतोऽजानाना सुखडुःखादिकारणमबुद्धिकाबुद्धिरहितानवतीति । तथाह्यार्हताना किंचित्सुखडुःखानि नियतितएव नवति । तत्कारणस्य कर्मण' कस्मिश्चिदवसरेऽवश्यंनाव्युदयसद्नावान्नियतिकृतमित्युच्यते । तथा किंचिदनियतिकृतं च पुरुपकालेश्वरस्वनावकर्मादिकृतं तत्र कथचित्सुखडुःखादे पुरुपकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते । यत क्रियात फलं नवति क्रिया च पुरुपकाराऽयत्ता प्रवर्तते । तथाचोक्त । न दैवमिति सचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मन । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्य प्राप्तुमर्हति ॥१॥ यत्तु समाने पुरुपव्यापारे फलवैचित्र्यं दूपणत्वेनोपन्यस्त तददूपणमेव । यतस्तत्रापि पुरुपकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारण नवति । समाने वा पुरुपकारे य फलानाव कस्यचिन्नवति सोऽदृष्टकृत । तदपि चास्माभि कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोपि कर्ता । यतो बकुलचपकाशोकपुन्नागसहकारादीना विशिष्टएव काले पुष्पफलाद्युन्नवोन सर्वदेति । यच्चोक्त । कालस्यैकरुपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटतइति तदस्मान् प्रति न दूपण । यतोऽस्माभिर्न कालएवैक कर्तृत्वेनान्युपगम्यतेऽपितु कर्मापि ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोप' । तथेश्वरोपि कर्ता । आत्मैवहि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वर. । तस्य सुखडुःखोत्पत्तिकर्तृत्व सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव । यच्चात्र मूर्तामू

तद्विदूषणमुपन्यस्तं तदेवनूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोत्क्षेदितमेवेति । स्वनावस्यापि कथंचित्कर्तृत्वमेव । तथा ह्यात्मनउपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं । पुज्ञलानां च मूर्तत्वं धर्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टंनकारित्वममूर्तत्वं चेत्येवमादिस्वनावापादितं । यदपि चात्मव्यतिरेकाऽव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव । यतः स्वनावआत्मनोऽव्यतिरिक्तः । आत्मनोपि च कर्तृत्वमन्युपगतमेव तदपि स्वनावापादितमेवेति । तथा कर्मापि कर्तृ नवत्येव । तद्धि जीवप्रदेशैः सहान्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थितं कथंचिच्चात्मनोऽनिन्नं तद्वशाच्चात्मा नरकतिर्यङ्मनुष्यामरनवेषु पर्यटन् सुखडःखादिकमनुनवतीति । तदेवं नियत्यनियत्यो कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतेरेव कर्तृत्वमन्युपगन्नतोनिर्युक्तिकानवंतीत्यवसेयम् ॥४॥तदेवं युक्त्या नियतिवादं दूषयित्वा तद्वादिनामपायदर्शनायाह ।(एवमेगेउइत्यादि । एवमितिपूर्वान्युपगमसंसूचकं । सर्वस्मिन्नपि वस्तुनि नियतानियते सत्येके नियतमेवाऽवश्यनाव्येव कालेश्वरादिनिराकरणेन निर्हेतुकतया नियतिवादमाश्रिताः । तुरवधारणे । तएव नान्ये । किंविशिष्टा पुनस्ते इति दर्शयति । युक्तिकदंबकाद्बहिस्तिष्ठंतीति, पार्श्वस्था परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । नियतिपक्षसमाश्रयणात्परलोकक्रियावैयर्थ्यं । यदि वा पाशइवपाशः कर्मबंधनं तच्चेह युक्तिविकलनियतिवादप्ररूपणं तत्रस्थिता पाशस्था । अन्येप्येकांतवादिनः कालेश्वरादिकारणिका पार्श्वस्था पाशस्थावा इष्टव्याइत्यादि । ते पुनर्नियतिवादमाश्रित्यापि नूयोविविधं विशेषेण वा प्रगल्नितताधाष्टर्योपगता परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवर्तंते । धाष्टर्याश्रयणं तु तेषां नियतिवादाश्रयणे सत्येव । पुनरपि तत्प्रतिपंथिनीषु क्रियासु प्रवर्तनादिति ते पुनरेवमप्युपस्थिताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवृत्ताअपि सतोनात्मडःखविमोक्षका । असम्यक्प्रवृत्तत्वान्नात्मानं डःखाद्विमोचयति । गतानियतिवादिनः ॥ ५ ॥

जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिआ ॥ असंकियाइ संकंति, संकिआइ असंकिणो ॥६॥ परियाणिआणि संकता, पासिताणि असंकिणो ॥ अण्णाणनयसंविग्गा संपलिंति तहिंतहिं ॥ ७ ॥ अह तं पवेज्ज बज्मं, अहे बज्जस्स वा वए ॥ मुच्चेज्ज पयपासाउ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अज्ञानवादीना मत उपर दृष्टांत कहेछे जहाके॰ जेम, मिगाके॰ मृग एटले अरण्यना पशु जविणो संताके॰ वेगवंत उता ते केवाछे, तोके परिताणेणवज्जियाके॰ परित्राण एटले शरणेकरी वर्जित अर्थात् तेमनो कोइ राखनार नथी एवा ते नयविव्हलनूत विवेकरहित थका असंकियाइके॰ अशंकित स्थानक जे कूट पाशादिक रहित तेने संकंति के॰ शकातु स्थानक जाणे तथा जे संकिआइ के॰ शंकित

स्थानक जे बधनुं कारण ते स्थानक थकी असकिणो के० शका पामे नहीं ॥ ६ ॥ वली एहिज कहेले के, ते मृगादिक जीव परियाणिआणि के० परित्राण जे रक्षानु स्थानक तेथी सकंता के० शकाता अने पासिताणि असकिणो के० पाशना स्थानक थकी अण शंकाता, असुाणभयके० अजाणपणे अथवा भयें करी, सविग्गा के० व्याकुल थका सपर्जिति तहिं तहि के० तेहिज तेहिज स्थानके जाय ज्यां त्यां पाशादिक माहेज पडे ॥ ७ ॥ वली एज दृष्टात दिपावेले अह के० अथ एटले हवे तंके० ते मृगादिक जीव ते वागुरादिकनो जे बझंपवेझ के० बंधपाशादिकना स्थानक ने अहेबझस्सवाव ए के० नीचे अथवा उपर आक्रमीने जाय जो एम करे तो ते मुच्चेझपयपासाउके० पगना पाशथकी मूकाय एटले ढुटो थाय परतु ते अनर्थ परिहरवानो उपाय तंके० ते, मदे के०, मद अज्ञानी, णदेहएके० नदेखे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथाज्ञानिमतमाह । (जविणोत्ति) । यथा जविनोवेगवत. सतोमृगा. परित्राणेन शरणेन वर्जितारहिता. । अथवा परित्राण वागुरादिबंधन तेन तर्जिताजय प्रापिता सतोऽशंकितानि स्थानानि शकते जयभ्रांता सतोनिर्भयान्यपि स्थानानि सजयतया मन्यते । शंकितानि च वागुरादीन्यशक्रमाना सपर्ययतइत्युत्तरसूत्रेण सं बंधः ॥ ६ ॥ परित्राण सजातं येषु तानि परित्राणितानि शरणभूतानि स्थानानि मूढ त्वात् शंकमाना सजयानि मन्यमाना. पाशितानि पाशयुक्तान्यशकमानास्तेषु शकाम कुर्वाणाअज्ञानेन जयेन च (सविग्गत्ति) सम्यक्व्याप्तास्तत्र तत्र वागुरादिके बंधने सं पर्ययंते समेकीजावेन परिसमतादयते गच्छंतीति ॥ ७ ॥ इममेव दृष्टातमाश्रित्याह । (अ हेति) । अथानंतरमसौ मृगस्तत् (वझमिति) बंधोबधनकारण रज्जुवागुरादिवधं वा यदि प्लवेतोपरिगछेत वा अथवा तस्याधोव्रजेत् तदा पदपाशात् वागुरादिबंधनान्मुच्यते । एव संतमपि तमनर्थपरिहरणोपाय मदोजडोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—साप्रतमज्ञानिमत दूषयितु,दृष्टांतमाह । (जविणोइत्यादि) यथा जविनोवेग वत संतोमृगाआरण्या पशव परिसमतात् त्रायते रक्षतीति परित्राण तेन वर्जिता रहि ता परित्राणविकलाइत्यर्थ । यदिवा परित्राण वागुरादिबधन तेन तर्जिताजय ग्रहि ता. संतोजयोद्भ्रातलोचना समाकुलीभूतांत करणा सम्यक्विवेकविकलाअशंकनी यानि कूटपाशादिरहितानि स्थानान्यशकार्हाणि तान्येव शकते अनर्थोत्पादकत्वेन गृह्णति । यानि पुन शकार्हाणि शका सजाता येषु योग्यत्वात्तानि शकितानि शंकायोग्या नि वागुरादीनि तान्यशकिनस्तेषु शकामकुर्वाणास्तत्र तत्र पाशादिके सपर्ययंतइत्युत्तरेण संबंध ॥६॥ पुनरप्येतदेवाऽतिमोहाविष्करणायाह । (परियाणीत्यादि) परित्रायते इति परित्राणं तज्जातं येषु तानि । यथा परित्राणयुक्तान्येव शकमानाअतिमूढत्वाद्विपर्यस्तबु

ह्यस्त्रातर्यपि नयमुत्प्रेक्षमाणानि पाशितानि पाशोपेतान्यनर्थोपादकान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणा सतोऽज्ञानेन नयेन च (सविग्गंति)। सम्यक्व्यासावशीनूता. श कनीयमशंकनीयं वा तत्राऽपरित्राणोपेतं पाशाद्यनर्थोपेतं वा सम्यक्विवेकेनाऽजानाना स्तत्र तत्राऽनर्थबहुले पाशवागुरादिके बधने सपर्ययते समेकीनावेन परिसमंतादयते याति वा गच्छंतीत्युक्तं नवति । तदेव दृष्टांतं प्रसाध्य नियतिवादाद्येकांताऽज्ञानवादिनोदार्ष्टांतिक त्वेनाऽयोज्या । यतस्तेप्येकांतवादिनोऽज्ञानकास्त्राणनूतानेकांतवादवर्जिता. सर्वदोष विनिर्मुक्तं कालेश्वरादिकारणवादान्युपगमेनाऽनाशंकनीयमनेकांतवादमाशंकते शंकनीयं च नियत्यज्ञानवादमेकांतं न शंकते । ते एवनूता परित्राणार्हेप्यनेकांतवादे शंकां कुर्वाणायुक्त्याऽघटमानकमनर्थबहुलमेकांतवादमशंकनीयत्वेन गृह्णंतोऽज्ञानावृतास्ते षु तेषु कर्मबंधस्थानेषु सपर्ययंत इति ॥ ७ ॥ पूर्वदोषैरतुष्यन्नाचार्योदोषांतरदिदृक्षया पुनरपि प्राक्तनदृष्टांतमधिकृत्याह । (अहतपवेञ्चइत्यादि) अथानंतरमसौ मृगस्तत् (वञ्च मिति) वद्ध बधनाकारेण व्यवस्थितं । वागुरादिक वा बंधन बधकत्वाद्वधमित्युच्यते । तदेवनूतं कूटपाशादिक बधन यद्यसावुपरिष्ठवेत् तदधस्तादतिक्रम्योपरिगच्छेत् तस्य व ध्र्यादेर्बंधनस्याधोगच्छेत्तत एव क्रियमाणेऽसौ मृग पदेपाश पदपाशोवागुरादिबधनं त स्मान्मुच्यते । यदि वा पद कूट पाश प्रतीतस्तान्या मुच्यते । क्वचित्पदपाशादीति पठ्यते । आदिग्रहणाद्धताडनमारणादिका क्रियागृह्यंते । एव सतमपि तमनर्थोत्पादक परिहरणोपाय मदोजडोऽज्ञानावृतोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

अहिअप्पाऽहियप्पणाणे, विसमंतेणुवागते ॥ सबद्धे पयपासेणं, तत्थ घाय नियच्छइ ॥ए॥ एव तु समणा एगे, मिच्छदिठी अणारिआ ॥ अ संकिआइ सकति, संकिआइ असकिणो ॥ १० ॥ धम्मपणवणा जा सा, त तु संकंति मूढगा ॥ आरंनाइ न सकति, अविअत्ता अकोविआ ॥ ११ ॥ सवप्पग विउक्कस्स, सवणूम विहूणिआ ॥ अप्पत्तिअं अकम्मंसे, एयमठ मिगे चुए ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे ते उपाय अण देखतो थको जे अवस्थाने पामे ते कहेछे अहिअप्पा के० ते मृग आत्माने अहित तथा अहियप्पणाणेके० अहित जेनु जाणपणु छे, एवा छता, विसमंते के० विषम कूट पाशादिक प्रदेशे, णुवागते के० आवे एटले ते पाश माहे पडे सबद्धेपयपासेण के० ते त्यां पड्या छता बंधन पामे तथा तछघायं के० त्यां ते विनाशने नियछइके० दुःखी थता पामे ॥ ए ॥ हवे ए दृष्टांत परवादिसाथे

मेलवेछे. एवतु के० एरीते जेम ते मृग अजाणतां थको पाशमांहे पडेछे, तेम सम णाएगे के० कोइएक श्रमण शाक्यादिक दर्शनी ते केवाछे, तोके मिछदिट्ठी के० मि थ्यादृष्टी तथा अणारिआ के० अनार्य अज्ञानपणे अनाचारना सेवनारा ते असंकिया इके० अशकित एवा जे रुडा धर्मनां अनुष्ठानछे, तेनेविषे सकति के० अधर्मनी शंका आणे; अने संकियाइ के० जे हिंसादिक शकित स्थानकछे, तेथकी असकिणो-के० न-शंकाय ॥ १० ॥ वली ते दर्शनीउंनी जे विपरीत मति छे ते देखाडेछे धम्मपन्नव णाजासा के० क्षात्यादिक दशविध धर्मसहित प्ररूपणा जेनीछे ततुसंकतिमूढगा के० तेथकी ते अज्ञानी शंकाय अने कहेके ए अधर्मनी प्ररूपणाछे, तथा जे आरंनाइंके० आरंनादिक पापना कारण छे तेथकी नसंकति के० न शंकाय अने तेनेज धर्म करी देखाडे माटे ते केवा छे, अविअत्ता के० अव्यक्त, मुग्ध, विवेक, विकल तथा अकोवि याके० अकोविद एटले अपंमित छे ॥ ११ ॥ हवे तेने फल देखाडेछे सवप्पग के० सर्वात्मक ते लोन, विउक्कस्सं के० मान, सव के० समस्त, णूमं के० माया, तथा अप त्तियं के० क्रोध ए चार कषाय विहूणिया के० खपावीने जीव अकम्मसेके० अकर्मांशि थाय, एटले कर्मांशरहित थाय. एयमहं के० एवो अर्थ ते मिगेके० मृगनी पेरे अज्ञान प छवादी दर्शनी चूएके० छांमेछे सारांश जेथकी जीव मुक्ति पामे ते अर्थ जाणता नथी॥१२॥

॥ दीपिका–पाशमपश्यतोयाऽवस्था स्यात्तामाह । (अहिअप्पेति । स मृगोऽहिता त्मा तथा अहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञान विषमान्तेन कूटपाशादियुक्तेन प्रदेशे नोपागत । अथवा विषमांते कूटपाशे आत्मानमनुपातयेत् । तत्र चासौ बद्ध पादपाशा दीननर्थबहुलान् अवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं निगच्छति प्राप्नोति ॥ ॥ ए ॥ दृष्टांतयोजनामाह । (एवमिति) । एव पूर्वोक्तमृगदृष्टांतेन । तुरवधार णे । एकेश्रमणा पाखमाश्रितमिथ्यादृष्टयोऽनार्याअसदनुष्ठानाअशंकितानि धर्मानुष्ठा नानि शंकमानास्तथा शकितान्येकातपक्षाश्रयणान्यशकिनोमृगाइवाऽनर्थभाज स्यु ॥ ॥ १० ॥ शकिताशकितविपर्यासमाह । (धम्मेत्ति)। धर्मप्रज्ञापना क्षात्यादिदशविधधर्म प्ररूपणा या सा प्रसिद्धा तां शंकते सद्धर्मप्ररूपणेयमिति मन्यंते । आरंनांश्च पापो पादानभूतान् शकते । यतोऽव्यक्तामुग्धा सदसद्विवेकविकलाअकोविदाअपंडिता स च्छास्त्रावबोधविधुरा ॥११॥ तेषा सत्फलानावमाह । (सवप्पगमिति) सर्वात्मकोलो नस्तं । व्युत्कर्षोमानस्त (सवणूमति) मायां तथा (अप्पत्तिअंति) क्रोधस्त च विधूय अकर्मा श न विद्यते कर्मांशोयस्य सोऽकर्मांश स्यात् । अकर्मांशत्व च ज्ञानाद्भवति नाऽज्ञानादि त्याह । (एयमट्ठंति) । एतमर्थं कर्मानावरूपं मृगइव मृगोऽज्ञानी (चुएत्ति) त्यजेत् ॥१२॥

॥ टीका—कूटपाशादिक चापश्यन् यामवस्थामवाप्नोति तां दर्शयितुमाह । (अहीत्यादि) स मृगोऽहितात्मा । तथाऽहित प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञान । सचाहितप्रज्ञान सन् विपमांतेन कूटपाशादियुक्तप्रदेशेनोपागत । यदिवा विपमांते कूटपाशादिके आत्मानमनुपातयेत् । तत्र चासौ पतितो बद्धश्च तेन कूटादिना पदपाशादीननर्थबहुलानवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बधने घातं विनाशं नियच्छति प्राप्नोतीति ॥ ए ॥ एव दृष्टांतं प्रदर्श्य सूत्रकारएव दार्ष्टांतिकमज्ञानविपाक दर्शयितुमाह । (एवतुइत्यादि) एवमिति यथा मृगाअज्ञानावृताअनर्थमनेकश प्राप्नुवति । तुरवधारणे । एवमेव श्रमणा केचित्पार्खंमविशेषाश्रिता । एके न सर्वे । किंनूतास्ते इति दर्शयति । मिथ्या विपरीता दृष्टिर्येपामज्ञानवादिना नियतिवादिना वा ते मिथ्यादृष्टय । तथा अनार्या आराद्याता सर्व हेयधर्मेन्यइति आर्या न आर्याअनार्याअज्ञानावृतत्वादसदनुष्ठायिनइति यावत् । अज्ञानावृतत्व च दर्शयति । अशंकितान्यशंकनीयानि सुधर्मानुष्ठानादीनि शंकमानास्तथा शंकनीयान्यपायबहुलान्येकांतपक्षसमाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइव मूढचेतसस्तत्तदाऽरजंते यद्यदनर्थाय सपद्यंतइति ॥ १० ॥ शंकनीयाशंकनीयविपर्यासमाह । (धम्मपसुवणेत्यादि) । धर्मस्य क्षात्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा । तंत्विति । तामेव शकंते असद्धर्मप्ररूपणेयमित्येवमध्यवस्यति । ये पुन पापोपादानचूता समारंजास्तानाशंकंते । किमिति । यतोऽव्यक्तामुग्धा सहजसद्विवेकविकला । तथा । अकोविदाअपंडिता सच्छास्त्रावबोधरहिताइति ॥ ११ ॥ तेच अज्ञानावृतायन्नाप्नुवति तद्दर्शनायाह । (सवप्पगमित्यादि) । सर्वत्राप्यात्मा यस्याऽसौ सर्वात्मको लोनस्तं विधूयेति सवध । तथा । विविधउत्कर्पोगर्वोव्युत्कर्पोमानइत्यर्थ । तथा (णूमति) माया तां विधूय । तथा (अप्पत्तियति) क्रोध विधूय । कपायविधूनने च मोहनीयविधूननमावेदित नवति तदपगमाच्च शेषकर्मानाव प्रतिपादितो नवतीत्याह । (अकर्मांशइति) । न विद्यते कर्मांशोऽस्येत्यकर्मांश । सच कर्मांशोविशिष्टज्ञानान्नवति नाज्ञानादित्येव दर्शयति । एतमर्थं कर्मानावलक्षण मृग अज्ञानी (चुएत्ति) । त्यजेत् । विनक्तिपरिणामेन वा अस्मादेवचूतादर्थात् च्यवेत् भ्रश्येदिति ॥ १२॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिच्छदिठी अणारिया ॥ मिगा वा पासवद्धा ते,
घायमेसंति णंतसो ॥ १३॥ माहणा समणा एगे, सवे नाण सय वए॥
सवलोगे वि जे पाणा, न ते जाणंति किंचण ॥१४॥ मिलक्खू अमिलक्खु
स्स, जहा वुत्ताणुभासए॥ ण हेउं से विजाणाइ, भासिअतणु भासए ॥१५

एवमन्नाणिया नाणं, वयताविं सयं सयं ॥ निछयछ न याणंति, मिलरकुव्व अबोहिया ॥ १६ ॥

अर्थ– वली एनोज दोष देखाडेछे जेएयनाभिजाणंति के० जे अज्ञानवादी ए कर्म खपाववानो उपाय नथी जाणता, ते केवा छे, मिछदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य एवा मिगावापासबद्धाते के० मृगलानी परे पाशमा बधाणाछे तेघायमेस्संति णं तसो के० आगामिक काले अनताघात एटले मरणने पामशे; एटले मृगतो एकवार मरण पामीनेज छूटेछे परतु ते अज्ञानी अनते मरणे पण छूटसे नहीं ॥ १३ ॥ हवे जे पोते एकवार ग्रह्युं एवु जे पोतानुं कदाग्रह तेने कोइवारे मूकेनहीं ते उपर विशेष कहेछे माह्णासमणाएगे के० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण परिव्राजक विशेष ए सवे के० सर्वे, सयंके० पोत पोतानु, नाणके० जाणपणु रुडुछे एम वएके० वदे एटले कहेछे. वली ते जुदा जुदा ज्ञान परस्पर माहोमांहे विरुद्ध सदेह उपजावेछे, ते माटे अजाणपणुंज भलु छे जाणपणानुं काइ काम नथी, ए रीते अज्ञानवादी कहेछे तेमाटे सव्वलोगेविके० सर्व लोकमाहे जे पाणा के० जे प्राणीउं छे, नतेजाणंतिकिंचण के० ते काइ जाणता नथी. एटले सर्व सम्यक्ज्ञान रहित जाणवा यद्यपि तेने काइ गुरुपरपरागत जाणपणु होय तथापि ते काई परमार्थ जाणता नथी, माटे ते अज्ञानीज जाणवा ॥ १४ ॥ हवे ते उपर दृष्टात कहेछे मिलरकुअमिलरकुस्स के० जेम म्लेछ आर्यभाषानो अजाण थको अम्लेछ जे आर्य भाषा तेने जहाबुत्ताणुभासए के० जेम भापतानी परे बोले परंतु ते णहेउसेविद्याणाइ के० हेतु एटले परमार्थ कांइ जाणे नही, नि केवल परमार्थ करी शून्य भासियंतणुभासए के० भाषाने केडे भाषे ॥ १५ ॥ हवे ए दृष्टात अज्ञानवादी साथे मेलवेछे एवमन्नाणियाणाण के० एरीते अज्ञानी सम्यक्ज्ञानरहित एवा श्रमण ब्राह्मणादिक पोतपोताना मतनुं ज्ञान प्रमाण करीने वयंताविसयसयं के० पोतपोतानो मार्ग कहेछे पण ते निछयछंनयाणति के० निश्चयार्थ नथी जाणता. मिलरकुव्वअबोहिया के० ते म्लेछवत् एटले म्लेछनीपरे अबोधिक एटले ज्ञानरहित छे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–भूयोप्यज्ञानवादिना दोपमाह। (जेएतमिति)। ये एत कर्मक्षयोपाय न जानति मिथ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघात विनाशमेष्यति यास्यंत्यन्वेप यंतिवा तद्योग्यक्रियाकरणात्। अनतशोनिरतरम् ॥ १३ ॥ अज्ञानवादिनामेव दूषणातर माह। (माह्णाइति)। एके ब्राह्मणास्तथा श्रमणा परिव्राजका सर्वे स्वकमात्मीयं ज्ञान वदति नच तानि सर्वेषा ज्ञानानि। अन्योन्यविरोधेन प्रवृत्तत्वात्। तस्मादज्ञान मेव श्रेयइत्याह। (सव्वलोयेविति)। सर्वस्मिन् लोके ये प्राणा प्राणिनस्ते किंचन स

म्यक् न जानति ॥ १४ ॥ अथ दृष्टांतमाह । (मिलरकुइति) । यथा म्लेछोऽनार्य अ म्लेछस्य आर्यस्य यडक्त नापितं तदनुनापते परमार्थशून्यं तन्नापितमेवानुनापते । नच हेतु विजानाति ॥ १५ ॥ दार्ष्टांतिके योजयति (एवमिति) । एवमज्ञानिका स म्यक्ज्ञानरहिता स्वक स्वकमात्मीय ज्ञान प्रमाणत्वेन वदतोपि निश्चयार्थं न जानति । इय यथा म्लेछो निश्चयार्थमजानन् परोक्तमनुवदत्येव तेप्यबोधिकाबोधरहिता । ततोऽज्ञानमेव श्रेयइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–नूयोप्यज्ञानवादिना दोपानिधित्सयाह । (जेएयमित्यादि) । ये अज्ञान पर्क समाश्रिताएन कर्मक्षपणोपाय न जानति । आत्मीयाऽसद्ग्राहाऽग्रहग्रस्तामि थ्यादृष्टयोऽनार्यास्ति मृगाइव पाशबन्धाघातं विनाशमेष्यति यास्यत्यन्वेषयति वा । त योग्यक्रियानुष्ठानात् । अनतशोविछेदेनेत्यज्ञानवादिनोगता ॥ १३॥ इदानीमज्ञानवादिनां दूषणोद्दिनावयिपया स्ववाग्यत्रितावादिनोन चलिष्यतीति तन्मताविष्करणायाह । (मा हणाइत्यादि) । एके केचन ब्राह्मणविशेषास्तथा श्रमणा परिव्राजकविशेषा सर्वेप्ये ते ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञान हेयोपादेयार्थाऽविर्नावक परस्परविरोधेन व्यवस्थितं स्वकमात्मीय वदति । नच तानि ज्ञानानि परस्परविरोधेन प्रवृत्तत्वात्सत्यानि । तस्मादज्ञानमेव श्रेय' किं ज्ञानपरिकल्पनयेत्येतद्दर्शयति । सर्वस्मिन्नपि लोके ये प्राणा प्राणिनोन ते किंचना पि सम्यगुपेतवाच जानतीति विदतीति ॥ १४ ॥ यदपि तेषा गुरुपारपर्येण ज्ञानमायातं तदपि छिन्नमूलत्वादवितथ न नवतीति दृष्टात द्वारेण दर्शयितुमाह । (मिलरकुअमिलक्कु स्सेत्यादि) । यथा म्लेछआर्यनापानभिज्ञोऽम्लेछस्यार्यस्य म्लेछनापानभिज्ञस्य यन्नापि तं तदनुनापते अनुवदति केवल न सम्यक्तदनिप्रायं वेत्ति यथाऽनया विवक्षयाऽने न नाषितमिति । नच हेतु निमित्तं निश्चयेनासौ म्लेछस्तन्नापितस्य जानाति । केवलं पर मार्थशून्य तन्नापितमेवानुनापत इति ॥ १५ ॥ एव दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिक योजयितुमा ह । (एवमित्यादि) । यथा म्लेछ अम्लेछस्य परमार्थमजानान केवलं तन्नापितानु नापते । तथा अज्ञानका सम्यक्ज्ञानरहिता श्रमणाब्राह्मणावदतोपि स्वीयं स्वीयं ज्ञान प्रमाणत्वेन परस्परविरुद्धार्थनाषणात् निश्चयार्थं न जानति । तथाहि । ते स्वकी य तीर्थंकर सर्वज्ञत्वेन निर्द्धार्य तडुपदेशेन क्रियासु प्रवर्तेरन् । नच सर्वज्ञविवक्षा अर्वा ग्दर्शना ग्रहीतु शक्यते । नासर्वज्ञ सर्वज्ञ जानातीति न्यायात् । तथाचोक्त । सर्वज्ञोऽ सावितिं ह्येतत्तत्कालेपि बुजुत्सुनि ॥ तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञान,रहितैर्गम्यते कथ ॥ १ ॥ ए व परचेतोवृत्तीना डुरन्वयत्वाडुपदेष्टुरपि यथावस्थितविवक्षया ग्रहणाऽसंनवान्निश्चया र्थमजानानाम्लेछवदपरोक्तमनुनापतएव । अबोधिकाबोधरहिता केवलमित्यतोऽज्ञा

नमेव श्रेयइति । एवं यावद्यावज्ज्ञानाभ्युपगमस्तावत्तावद्गुरुतरदोषसंभवः । तथाहि । यो वगजंत्पादेन कस्यचित् शिरः स्पृशति तस्य महानपराधोभवति । यस्त्वनाभोगेन स्पृशति तस्मै न कश्चिदपराध्यतीत्येव चाज्ञानमेव प्रधानभावमनुभवति नतु ज्ञानमिति । १६ ॥

अन्नाणियाण वीमंसा, नाणे ण विनियच्छइ ॥ अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउं ॥ १७ ॥ वणे मूढे जहा जतू, मूढे णेयाणुगामिए ॥ दोवि एए अकोविया, तिव्वं सोय नियच्छइ ॥ १८ ॥ अंधो अंध पहं णितो, दूरमक्षाणु गच्छइ ॥ आवज्जे उप्पहं जंतु, अडुवा पंथाणु गामिए ॥ १९ ॥ एवमेगे णियायठी, धम्ममाराहगा वयं ॥ अडुवा अहम्ममावज्जे, ण ते सव्वज्जुयं वए ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ–हवे एने दोष देखाडेछे जे एम कहेछे, अज्ञानज नलुंछे, तेने अन्नाणियाण के० अज्ञानवादी कहिये तेनी जे वीमंसा के० जाणवानी इछा, ते नाणे ण विनियछइ के० ज्ञानने विषे पहोचे नहीं कारण ते एम विचार करेछे के अज्ञानवडे अपराध करनाराना दोष स्वल्प छे, अने जाणनारने दोष घणो लागेछे जेम कोइक मनुष्य मार्गे जता जाणतो थकोज कोइकना मस्तकने पगे करीने फरशे. तोते महा अपराधनो पात्र थायछे परंतु जो अजाणता फरशे तोते स्वल्प अपराधी छे ए कारण माटे अज्ञानपणुंज रुडुंछे, एवी जेनामा विचारणा छे ते अज्ञानवादी जाणवा ते अज्ञानवादी अप्पणोय कहेता पोतानो आत्मा समजवानेज असमर्थ छे तो परंनालं के० बीजाने कुतो अन्नाणुसासिउं के० बीजा अज्ञानी जनोने समजाववाने क्याथी समर्थ थाय? अर्थात् नज थाय. ॥ १७ ॥ हवे एज अर्थ दृष्टांते करी दिपावेछे. वणे के० वन एटले अटवीने विषे, जहा के० जेम, कोइक मूढेजतू के० दिशिमूढजीव ते दिशिने जाणवा असमर्थ थको मूढेणेयाणुगामिए के० अनेरा दिशिमूढने आगेवान करीने तेनी पाछल चाले ते समये दोविएए के० ते बन्ने जण, ते मार्गना अकोविया के० अजाण थका, तिव्वंसोयंनियछई के० तीव्र गहनमांहे पडे अर्थात् महाडुख पामे. ॥ १८ ॥ वली बीजुं दृष्टांत कहेछे अंधोअंधंपहणितो के० जेम कोइएक पोते अंध छतां अनेरा अंधने मार्गे लेई जतो थको दूरमक्षाणुगछइ के० घणे दूर जईने आवज्जेउप्पहंजंतु के० ते अंध उन्मार्गे पडे; अडुवा के० अथवा पंथाणुगामिए के० अनेरे पंथे जाय पण वांछित मार्गे न जाय. एटले पोते उन्मार्गे पडतां पाछलाने पण उन्मार्गे पाडे ॥१९॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे एव के० ए अ

जाणता अंधनी पेठे नावमूढ एवा एगे के० कोइ एक परदर्शनी णियायठी के० मोक्ष ना अर्थी धम्ममाराहगावयं के० अमे धर्मना आराधक छैये एम कही प्रव्रज्याने लईने अनेक छकायनुं मर्दन करता थका, अडवा के० अथवा अनेराने छकायना आरंभनो उपदेश करता थका, अहम्ममावज्जे के० अधर्मज आचरे परंतु एतेसवज्जुअवए के० ते सर्व प्रकारे ऋजु एटले सरल एवो मार्ग न पामे एटले ते मोक्षने अर्थे यत्न करे प रंतु मोक्षनो मार्ग न पामे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–इदानीमेतद्दूषणायाह । (अन्नाणित्ति) अज्ञानिकानामज्ञानमेव श्रेयइति वादिनां योविमर्शोविचारस्स अज्ञानेऽज्ञानविषये न नियच्छति न युज्यते । यतोज्ञान सत्यमसत्यं चेति विमर्श । अज्ञानेन कृतेऽपराधे स्वल्पोदोष ज्ञानेन कृते महान् इत्येव नूतोविचारोपि तेषां न युज्यते । एवंविधविचारस्य ज्ञानरूपत्वादित्यज्ञानवादे विचारोन युज्यते । तथा आत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवादं शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्था । स्वयमज्ञत्वात् कुतोऽन्येषां शिष्याणामुपदेष्टुं समर्थाभवेयुः ॥ १७ ॥ यथा ते आत्मन परेषां च शिक्षणे ऽसमर्थास्तथा दृष्टांतेनाह (वणेत्ति) वनेऽरण्ये यथा कश्चिन्मूढोमूढं नेतारं प्रापकमनुगच्छत्याश्रयति तदा तौद्वावप्यकोविदौ मार्गाऽनिपुणौ सतौ तीव्रं स्रोतोगहनं शोकं वा नियच्छतः प्राप्नुतः ॥ १८ ॥ दृष्टांतांतरमाह । (अंधेति) यथा अंधः स्वयं अन्यमंधं पथानं नयन् दूरमध्वानं वाछितमार्गादन्यं दूरं मार्गं गच्छति । तथा उत्प थमुन्मार्गमापद्यते जंतुः प्राणी अंधः । अथवा परं पथानमनुगच्छेन्न वांछितं ॥ १९ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तार्थेन एके नावमूढानियागोमोक्ष सद्ध र्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं धर्माराधका इतिजानंतोऽधर्मं पापमेवापद्येरन् प्राप्नुवंति तथा ते सदनुष्ठानाच्चाजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ता सर्वथा ऋ जु सर्वज्ञं संयमं सद्धर्मोवा तं न व्रजेयुः न गच्छंति न प्राप्नुवंतीत्यर्थ । अथवा सर्वं र्जुकं सत्यमज्ञानांधानं व्रजेयुः ॥ २० ॥

॥ टीका–एवमज्ञानवादिमतमनूद्येदानीं तद्दूषणायाह । (अन्नाणियाणमित्यादि) न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां तेऽज्ञानिनः ।अज्ञानशब्दस्योत्तरपदत्वाद्वा मत्वर्थीय ।यथा गौरखरव दरण्यमिति । यथा तेषामज्ञानिनामज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादिनां योयं विमर्शः पर्यालोच नात्मकोमीमांसा वा मातुं परिच्छेत्तुमिच्छा साऽज्ञानेऽज्ञानविषये (नणियच्छंति) न नि श्चयेन यच्छति नावतरति न युज्यतइतियावत् । तथाहि । यैवंभूता मीमांसा विमर्शोवा किमेतज्ज्ञानं सत्यमुताऽसत्यमिति । यथा अज्ञानमेव श्रेयोयथा यथाच ज्ञानातिशय स्तथा तथाच दोषातिरेकइति सोयमेवंभूतोविमर्शस्तेषां न बुध्यते । एवंभूतस्य पर्यालो

चनस्य ज्ञानरूपत्वादिति । अपिच तेऽज्ञानवादिनआत्मनोपि पर प्रधानमज्ञानवाद मिति शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थास्तेषामज्ञानपक्षसमाश्रयणेनाऽज्ञत्वादिति कुत पुनस्ते स्वयमज्ञा संतोऽन्येषा शिष्यत्वेनोपगतानामज्ञानवादमुपदेष्टुमलं समर्थाभवेयु रिति । यदप्युक्त छिन्नमूलत्वात् म्लेछानुनाषणवत्सर्वमुपदेशादिक तदप्ययुक्तं । यतोऽ नुनाषणमपि न ज्ञानमृते कर्तुं शक्यते । तथा । यदप्युक्तं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाद ज्ञानमेव श्रेयइति तदप्यसत् । यतोनवतैवाज्ञानमेव श्रेयइत्येव परोपदेशदानान्यु द्यतेन परचेतोवृत्तिज्ञानस्याभ्युपगम कृतइति । तथाऽन्यैरप्यधायि । आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया नाषितेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेंतर्गतं मन ॥ १४ ॥ तदेव ते तपस्विनोऽ ज्ञानिनआत्मन परेषा च शासने कर्तव्ये यथा न समर्थास्तथा दृष्टांत द्वारेण दर्शयितुमा ह । (वणेइत्यादि) वनेऽटव्यां यथा कश्चिन्मूढो जतु प्राणोदिक्परिछेद कर्तुमसमर्थ स एवनूतोयदा पर मूढमेव नेतारमनुगछति तदा द्वावप्यकोविदौ सम्यक्ज्ञानाऽनिपुणौ सतो तीव्रमसह्यं स्रोतोगहनं शोकं वा नियछतोनिश्चयेन गछत प्राप्नुतोऽज्ञानावृत त्वात् । एव तेप्यज्ञानवादिनआत्मीयं मार्गं शोजनत्वेन निर्धारयंत परकीयं वा शोजन त्वेन जानाना स्वयं मूढा सत परानपि मोहयंतीति ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतांत रमाह । (अधोअधमित्यादि ।) यथा अंध स्वयमपरमंधं पथान नयन् दूरमध्वानं वि वक्षिताध्वन परतर गछति तथोत्पथमापद्यते जंतुरध । अथवा परं पंथानमनुगछे न्न विवक्षितमेवाध्वानमनुयायादिति ॥१९॥ एवं दृष्टांतं प्रसाध्य दार्ष्टांतिकमर्थ दर्शयितुमा ह । (एवमेगेनियायछित्ति ।) एवमिति पूर्वोक्तोर्थोपप्रदर्शने । एव नावमूढानावांधाश्चेके आजीविकादय' (नियायछित्ति) । नयोमोक्ष सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं सद्धर्मारा धकाइत्येव सधाय प्रव्रज्यायामुद्यता संत पृथिव्यंबुवनस्पत्यादिकायोपमर्देन पचनपा चनादिक्रियासु प्रवृत्ता· सतस्तत्तत्स्वयमनुतिष्ठन्त्यन्येषा चोपदिशति येनाऽनिप्रेतायामो क्षावाप्तेर्भ्रंशयंति । अथवा तावन्मोक्षानावस्तमेव प्रवर्तमानाअधर्मं पापमापद्येरन् । सं नावनायामुत्पन्नेन लिट्प्रत्ययेनैतद्दर्शयति । एतदपर तेषामनर्थांतरं संनाव्यते । यद्गुत विवक्षितार्थानावतया विपरीतार्थावाप्ते पापोपादानमिति । अपिच तएवमसदनुष्ठायि नआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ता सर्वै प्रकारैर्ऋजु प्रगुणो विवक्षितमोक्षगमनप्रत्यकुटिल सर्वर्जुसंयम सद्धर्मोवा तं सर्वर्जुक ते न व्रजेयुर्न प्रा प्नुयुरित्युक्तं नवति । यदि वा सर्वर्जुक सत्यं तत्तेऽज्ञानाधाज्ञानाऽपलापिनोन वदेयुरि ति । एते चाज्ञानिका सप्तषष्टिनेदानवति । तेच नेदाअमुनोपायेन प्रदर्शनीया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्था । सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्य , सदवक्तव्य , असदवक्तव्य , सदसदवक्तव्यइत्येते सप्तनि प्रकारैर्विज्ञातु न शक्यते नच विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति । ना

वना चेयं। सन् जीवइति कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन । असन् जीवइति को वेत्ति किंवा तेन ज्ञातेनेत्यादि । एवमजीवादिष्वपि प्रत्येक सप्त विकल्पा । नव सप्तकास्त्रिषष्टि । अमी चान्ये चत्वारस्त्रिषष्टिमध्ये स्थाप्यते । तद्यथा। सती जावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽन या ज्ञातया। एवमसती सदसदवक्तव्यताजावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनयाज्ञातयेति। शेषविकल्पत्रय तूत्पत्त्युत्तरकाल पदार्थावयवापेक्षमतोत्र न संजवतीति नोक्त। एतच्चतुष्टय प्रक्षेपात्सप्तषष्टिर्नवति।तत्र सन् जीवइति को वेत्तीत्यस्यायमर्थोन कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतींद्रियान् जीवादीनवनोत्स्यते । नच तैर्ज्ञातै किंचित्फलमस्ति । तथाहि । यदि नित्य सर्वगतोऽमूर्तोज्ञानादिगुणोपेतएतजुणव्यतिरिक्तोवा तत कतमस्य पुरुषार्थस्य सिद्धिरिति तस्मादज्ञानमेव श्रेयइति ॥ २० ॥

एवमेगे वियक्काहिं, नोअन्नं पज्जुवासिया ॥ अप्पणोय वियक्काहिं, अयमजूहिं डुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता, धम्माधम्मे अकोविया ॥ डुक्ख ते नाइतुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥ २२ ॥ सयं सय पसंसता, गरहंता पर वय ॥ जे उ तत्त विउस्संति, ससारं ते विउस्सिया ॥२३॥ अहावर पुरक्खाय, किरियावाइदरिसणं ॥ कम्मचितापणठाणं, संसारस्स पवड्ढणं ॥ २४ ॥

अर्थ—वली ग्रथकार कहेछे एव के०एरीते एगे के० कोइएक अज्ञानी परवादी वियक्काहिं के० वितर्कें करी, पोतानी कल्पित कल्पनाए असत्यने सत्य करी मानता थका नोअन्नपज्जुवासिया के० अनेरा साचा होय तोपण तेने पर्युपाशे नहीं एटले सेवे नहीं किंतु अप्पणोयवियक्काहिं के० पोतानाज वितर्कें करी एवु कहे जे ए अयमजूहिं के० अमारो मार्गज रुजु एटले सरल अकुटिल छे, इत्यादिक कहेछे तेमाटे ते डुम्मई के० डुर्मति विपरीतबुद्धिवाला छे. केमके ते सन्मार्गथी उपरांग वर्त्तेछे अने विपरीत मार्गने सन्मुख छे तेथी ते विपरीतबुद्धिवाला जाणवा ॥ २१ ॥ हवे ज्ञानवादी ते अज्ञानवादीनो अनर्थ प्रगट देखाडेछे एव के० ए पूर्वोक्त न्याये तक्काइसाहिंता के० तर्के करी एटले पोतानी कल्पनाये मोक्षमार्गने कहेतां थका अष्ट प्रकारे जे कर्मनो बंध तेने त्रोडी न शके, ते केवाछे, धम्माधम्मे के० धर्म जे क्षांत्यादिक दशविध अने अधर्म जे हिंसादिक पांच आश्रव तेने विषे अकोविया के० अकोविद एटले अजाणछे अर्थात् ते धर्मअधर्मने जाणता नथी डुक्खतेनाइतुट्टंति के० ते पोतानां डुखने शी रीते त्रोडे ते उपर दृष्टांत कहेछे ते जहा के० जेम सउणी के० शकुनी एटले पक्षी

ते पंजर के० पजरमांहे पड्युं थकुं पांजराने त्रोडीने पोताने मूकावी शके नहीं. तेम ए अज्ञानवादी पण पोताने संसारपंजरथकी मूकावी शके नहीं एम जाणवु ॥ २२ ॥ हवे सामान्याकारे एकांत मतिने दूषण करेछे सयसयपससंता के० सर्व दर्शनी पोतपोतानु दर्शन प्रशसता अने परवयं के० पारका वचनने गरहता के० निंदता जेउ के० जे तहु के० त्या एरीते विउस्संति के० पोतानु विश्वास एटले पंमित पणुं देखाडेछे. ते के० ते एवा वचनना बोलनार ससार के० चतुर्गतिक ससारमांहे विउस्सिया के० विशेषे बांध्या थता अनतो काल तहु के० त्याज रहे ॥ २३ ॥ एटले अन्नाणवाईगया के० अज्ञानवादी कह्या हवे क्रियावादीनो मत कहेछे अह के० अथ एटले हवे अवर के० अपर एटले अज्ञानवादीना मतथकी अनतर पुरस्कार्य के० पूर्वे कह्यु एवुं किरियावाइदरिसण के० क्रियावादीनुं दर्शन, ते क्रियावादी केवाछे, कम्मचितापणठाण के० कर्मचिताप्रनष्ट एटले कर्म जे ज्ञानावरणीयादिक तेने विषे चिता एटले आलोचवु ते थकी प्रनष्ट थयेला एटले ते कर्मबंधनो परमार्थ जाणे नही तेथी तेनुं दर्शन नि केवल ससारस्सपवद्धण के० संसारनु वधारनार जाणवु ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—दूषणांतरमाह । (एवमिति) । एव पूर्वोक्तनीत्या एकेऽज्ञानवादिनोवितर्कानिमीमांसानि स्वमतिकल्पनानि परमन्यं जैनादिक न पर्युपासते न सेवंते स्वमतमेव श्रेयइति ज्ञात्वा तदेव सेवते नान्यं ज्ञानादिवादिन । तथा (अप्पणोत्ति) । आत्मीयैर्वितर्कैः सुविचारैरयमस्मदीयोमार्गोऽज्जुर्निर्दोषत्वाद्व्यक्त स्पष्टऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिल । हियस्मात्ते डुर्मतयस्ततएव एवमाहु ॥ २१ ॥ पुनस्तेषामेव दोषमाह । (एवमिति) । एव पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकल्पनया साधयतोवदतोधर्माधर्मयोरकोविदाडुख ते नातित्रोटयति नातिशयेनापनयति । यथा शकुनि पजरं । पक्षी पंजरस्थो यथा पंजर त्रोटयितु बंधनादात्मान मोचयितु न समर्थएवमसावपि ससारपजरादात्मानं मोचयितु नालं ॥ २२ ॥ अथैकातवादिमत दूषयन्नाह । (सयमिति) । स्वक स्वकं आत्मीयमात्मीय मतं प्रशसत परकीया वाच गर्हतोनिंदत । यथा साख्यानित्यवादिनोबौद्ध क्षणिकवादिनं निंदंति तेपि सांख्यान् । एवमन्येपि ज्ञेया । एवमेकांतवादिनो ये । तुरवधारणे । तत्र तेष्विव स्वमतेषु विद्वस्यते विश्वासइवाचरति ते ससारं व्युछ्रिता विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिता ससारे सबद्धाउपिता स्यु ॥ २३ ॥ अथ क्रियावादिमतमाह । (अथेति) । अथापरं पूर्वमाख्यात पूर्वसूचित क्रियावादिदर्शनं । किंनूता क्रियावादिनइत्याह । (कम्मचितत्ति) । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिता कर्मचिता तत प्रनष्टाअपगता । यतस्ते चतुर्विध कर्मबंधं नेछंति तत कर्मचिताप्रणष्टास्तेषामिदं मतं ससारस्यप्रवर्धनं स्यात् ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि तद्दूषणाभिधित्सयाऽऽह । (एवमित्यादि) । एवमनतरोक्तया नीत्या एके केचनाऽज्ञानिकावितर्कानिर्मीमासानि स्वोत्प्रेक्षितानिरसत्कल्पनानि परमन्यमार्हतादिक ज्ञानवादिन न पर्युपासते न सेवते स्वावलेपग्रहग्रस्तावयमेवतत्त्वज्ञानाज्ञानपर कश्चिदित्येव नान्य पर्युपासतइति । तथात्मीयविकल्पैरेवमन्युपगतवतोयथाऽयमेवास्मदीयोऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवमात्मकोमार्गे । अजूरिति।निर्दोषत्वाद्व्यक्त स्पष्ट परैस्तिरस्कर्तुमशक्यऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिल । यथावस्थितार्थाभिधायित्वात् । किमिति एवमभिदधति । हियस्मादर्थे । यस्मात्ते डुर्मतयोविपर्यस्तवुद्धयइत्यर्थ ॥ २१ ॥ साप्रतमज्ञानवादिना ज्ञानवादिना स्पष्टमेवाऽनर्थाभिधित्सयाह । (एव तक्काइइत्यादि) एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकीयविकल्पनया साधयंत प्रतिपादयतोधर्मे क्षात्यादिके अधर्मे च जीवोपमर्दापादिते पापेऽकोविदाअनिपुणाड खमसातोदयलक्षण तद्धेतु वा मिथ्यात्वाद्युपचितकर्मैव न नातित्रोटयंति अतिशयेनैत व्यवस्थित ।तथा ते न त्रोटयत्यपनयतीति।अत्र दृष्टांतमाह।यथा पजरस्थ शकुनि पजर त्रोटयितु पंजरबधनादात्मान मोचयितु नालमेवमसावपि ससारपंजरादात्मान मोचयितु नालमिति ॥२२॥ अधुना सामान्येनैकातवादिमत दूषणार्थमाह । (सयसयमित्यादि) स्वक स्वकमात्मीय च दर्शनमन्युपगत प्रशसतोवर्णयंत समर्थयंतोवा । तथा गर्हमाणानिदत परकीया वाच । तथाहि । साख्या 'सर्वस्याविर्भावतिरोभाववादिन सर्वं वस्तु क्षणिक निरन्वयनिरीश्वर वेत्यादिवादिनोबौद्धान दूषयति तेपि नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहात् सांख्यान् । एवमन्येपि डृष्टव्याइति । तदेव यएकातवादिन । तुरवधारणे भिन्नक्रमश्च । तत्रैव तेष्वेवाऽत्मीयात्मीयेपु दर्शनेपु प्रशसा कुर्वाणा परवाच च विगर्हमाणावि व्स्यते विद्वांसइवाऽऽचरति 'तेपु वा विशेषेणोगति स्वशास्त्रविषये विशिष्ट युक्तिव्रातं वदति । तेचैव वादिन ससार चतुर्गतिभेदेन ससृतिरूप विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिता सबद्धा । तत्र वा ससारे जविता ससारातर्वर्तिन सर्वदा नवतीत्यर्थ ॥ २३ ॥ सांप्रतं यडुक्त निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकारे कर्मचय न गच्छति चतुर्विध भिक्षुसमयइति तदधिकृत्याह । (आहावरमित्यादि) । अथेत्यानतर्ये । अज्ञानवादिमतानतरमिदमन्यत् पुरा पूर्वमाख्यात कथितं । किंपुनस्तदित्याह । क्रियावादिदर्शन । क्रियैव चैत्यकर्मादिका प्रधान मोक्षागमित्येव वदितु शील येषां ते क्रियावादिनस्तेषा दर्शनमागम क्रियावादिदर्शन ॥ किंनूतास्ते क्रियावादिनइत्याह । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चितापर्यालोचन कर्मचिता तस्या प्रणष्टाअपगता कर्मचिता प्रणष्टा । यतस्ते अविज्ञानाद्युपचित, चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंत्यत कर्मचिताप्रणष्टास्तेषा चेद दर्शन डुखस्कधस्यासातोदयपरपराया विवर्धन नवति । क्वचित्ससारवर्धनमिति पाठ । तेह्येव प्रतिपद्यमाना ससारस्य वृद्धिमेव कुर्वंति नोच्छेदमिति ॥ २४ ॥

जाणं काएण णाउट्टी, अबुहो जं च हिंसति ॥ पुट्ठो संवेदइ परं, अवियं खु सावज्जं ॥ २५॥ संति मे तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ अनिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥ २६ ॥ एते उ तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ एवं नावविसोहीए, निवाणमनिगछइ ॥ ॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारप्न, आहारेज्ज असंजए ॥ नुंजमाणो य मेहावी, कम्मणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥

अर्थ—जे कारणे ते कर्मचिंता थकी प्रनष्ट ठे, ते उपर देखाडेठे जाणकाएणणाउट्टी के० जे पुरुष जाणतो थको प्राणीउंने हणे एटले जे पुरुष क्रोधे चड्यो थको मनने व्यापारे प्राणीनो घात करे परंतु कायाये करी अनाकुट्टी एटले कायाये करी प्राणीना अवयवना ठेदनजेदनना व्यापारे प्रवर्त्ते नही तेने कर्मबंध न लागे. तथा जचके० जे पुरुष अबुहोके० अजाणतो थको एकली कायाना व्यापारेज, हिंसतिके० प्राणीउंनी हिंसा करे तेने पण कर्म लागे नहीं तथा एवा एकला मनना व्यापारे अथवा एकला कायाना व्यापारे जो कर्म लागे तो पुठोके० ईषत्मात्र फरश्यो थको स्पर्शरूपेज कर्म नोगवे, परंके० परंतु एनो अधिक विपाक नथी केमके खुके० निश्चे सावज्जंके० ते सावद्य एटले पाप ते केवुंठे, तो के अवियत्तके० अव्यक्तमात्र ठे एटले अस्पष्ट ठे, सिकता मुष्टिवत् ठे एटले जेम वेलुनी मुष्टी नींतने सन्मुख नाखी ठतां स्पर्श मात्र करी पाठी पडे, पण ते नींतने कांइ लागी रहे नहीं तेम ए कर्मनो बंध जाणवो, एम क्रियावादी कहेठे ॥ २५ ॥ हवे कर्मनो बंध पूरण केम थाय एटले कर्मनो उपचय केम थाय ते कहेठे मेतउ के० ए त्रण आयाणा के० आदान एटले कर्मबंधनना कारण संति के० ठे जेहिं किरइपावगके० जेणे करी पाप करीये ते देखाडेठे अनिकम्मायके० अनिमुख चित्तमांहे जाणीने जे स्वयमेव एटले पोते जीवने हणे तथा तेने हणवानुं मन करे के हुं एनो विनाश करुं ए पहेलुं कर्म बंधननुं कारण जाणवुं तथा ते जीवनो विनाश करवाने अर्थे पेसाय के० अन्यने आदेश आपी तेनोविनाश करावे ए बीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं अने मणसाअणुजाणियाके० बीजो कोई जीवनो विनाश करतो होय तेने मने करी अनुमोदे, ए त्रीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं ॥ २६ ॥ हवे ए त्रण कारणे करी उपार्ज्युं कर्म अधिक बंधाय ते कहेठे एतेउतउआयाणाके० निश्चे पूर्वोक्त ए त्रण कर्मबंधनां कारणठे, ए त्रण एकठां मले तो निबड कर्म बंधाय एरीते जेहिंके० जे दुष्टअध्यवसायेकरी कीरइपावगके० पाप उपचयरूप करे एवंके० एरीते ए त्रण प्रकारे प्राणीघातने विषे प्रवर्त्ते नही अने नावविसोहीएके० नावनी विशुद्धि होय. एतावता रागद्वेष

विना यद्यपि कांई मने करी तथा कायाये करी प्राणिघात थाय. तोपण तेने नावनी विशुद्धिये कर्मबंध न लागे ते कर्मबंधने अनावे निव्वाणमनिगछइ के० निर्वाणपदे पहो चे एटले मुक्ति पामे एम परवादी कहेछे. ॥२७॥ ए उपर दृष्टांत कहेछे. पुत्तंपियासमा रप्नके० बाप दीकरानो विनाश करी तेनु मांस आहारने अर्थे कोइक आपत्कालने विषे, आहारेज्जअसजएके० असंयत जे गृहस्थ ते रागद्वेषरहित थको पुत्रना मांसने आहारे तथा मेधावीके० पंमितपण एटले संयती दीक्षित ते पण ते मांसनो नुंजमाणो के० आहार करतो थको जो शुद्ध अध्यवसाय छे तो कम्मणानोविलिप्पई के० कर्मे लेपातो नथी तेम बीजो प्राणी पण रागद्वेषरहित कर्त्ता थको कर्मे करी बंधातो नथी. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—कर्मचितानष्टत्वमेवाह ॥ जानन् य प्राणिनोहिनस्ति कायेनशरीरेणच नाकु ट्टी अहिंसक । कोर्थ । कोपादेर्निमित्तात्मनोव्यापारेण जीवान् हंति न कायेन तस्याऽनवद्य कर्मोपचयोन स्यादित्यर्थ । तथा अबुधोऽजानन् कायेन हिनस्ति तस्यापि मनोव्यापारा नावान्न कर्मबंध । (पुट्ठोत्ति) । तेन कर्मणा असौ केवलमनोव्यापारकृतेन केवलका यक्रियोत्थेन वा स्पृष्टएव संवेदयति स्पर्शमात्रेणैव तत्कर्मानुनवति न तस्याधिको विपाक स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थ । एवं तत्सावद्य कर्माऽव्यक्तमेव न स्पष्टं ॥ २५ ॥ कथं तर्हि कर्मोपचय स्यादित्याह । (संतित्ति) । संत्यमूनि त्रीण्यादानानि कर्मोपादा नानि । यैं पापकर्म क्रियते तान्याह । अभिक्रम्य सन्मुखं गत्वा स्वयं हंति १ परं प्रे ष्य यत्कारयति २ कुर्वंतं वाऽनुजानातीति ३ एतत्कर्मोपादानत्रय । अथ नाव । केवलं म नसा शरीरेण वा न कर्मबंध किंतु यत्र स्वयंकृतकारितानुमतय क्लिष्टाध्यवसायश्च तत्रैव कर्मबंध ॥ २६ ॥ एतदेव दर्शयति । तुरवधारणे । एतान्येव त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि कर्मोपादानानि यैं पाप कर्म क्रियते । एवं सति यत्र कृतकारितानुमतय प्राणिहिंसाया न संति तत्र नावविशुध्या रागद्वेषरहितबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन म नसा मनोव्यापाररहितेन कायेन उनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्न कर्मबंधस्तदनावान्निर्वाणम निगछति प्राप्नोति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य हिंसायामपि कर्मबंधो न स्यादि त्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तंति) । पिता पुत्रं समारभ्य व्यापाद्य आहारार्थं कस्यां चित्त थाविधायामापदि रागद्वेषरहितोऽसंयतोगृहस्थस्तन्मांसं नुंजानोपि । चशब्दोप्यर्थे । मेधा वी संयतोपि नुंजान कर्मणा नोपलिप्यते । यथा पितु पुत्रं व्यापादयतोपि शुद्धमन स कर्मबंधोन स्यात्तथा तस्यारक्तद्विष्टस्य प्राणिवधे न कर्मबंध ॥ २८ ॥ ॥

॥ टीका—यथा च ते कर्मचितातोनष्टास्तथा दर्शयितुमाह ।(जाणंकायेणणाउट्टीत्यादि)।यो हि जानन्नवगछन् प्राणिनोहिनस्ति कायेन चाऽनाकुट्टी । कुट्टछेदने । आकुट्टनमाकुट्ट• सवि

द्यते यस्यासावाकुट्टी नाकुट्टयनाकुट्टी। इदमुक्तं नवति। योह्यिकायादेर्निमित्तात् केवलं मनोव्यापारेण प्राणिनोव्यापादयति नच कायेन प्राण्यवयवानां छेदनजेदनादिके व्यापारे वर्त्तते न तस्याऽवद्यं। यस्य कर्मोपचयोन नवतीत्यर्थः। तथाऽबुधोऽजानान कायव्यापारमात्रेण यंच हिनस्ति प्राणिनं तत्रापि मनोव्यापाराजावान्न कर्मोपचयइति। अनेन च श्लोकार्धेन यडुक्तं निर्युक्तिरुता। यथा चतुर्विधं कर्म नोपचीयते जिकुसमयइति। तत्र परिज्ञोपचितमविज्ञोपचिताख्य जेदध्यं साक्षाडुपात्तं। शेष त्वीर्यापथस्वप्नातिकजेदध्यंच शब्देनोपात्तं। तत्रेरणमीर्या गमनं तत्सबन्द पथाईर्यापथस्तत्प्रत्ययं कर्मेर्यापथं। एतडुक्तं नवति। पथि गछतोयथाकथचिदनजिसधेर्यत्प्राणिव्यापादन नवति कर्मणश्चयोन नवति तथा स्वप्नांतिकमिति। स्वप्नएव लोकोक्त्या स्वमात. सविद्यते यस्य तत्स्वमांतिक तदपि न कर्मबंधाय। यथा स्वप्ने जुजिक्रियायां तृप्त्यजावस्तथा कर्मणोपीति। कथं तर्हि तेषां कर्मोपचयोनवतीत्युच्यते। यद्यसौ हन्यमान' प्राणी नवति हंतुश्च यदि प्राणीत्येव ज्ञानमुत्पद्यते तथैन हन्मीत्येव च यदि बुद्धि प्राडुष्यादेतेषु च सत्सु यदि कायचेष्टा प्रवर्त्तते तस्यामपि यद्यसौ प्राणी व्यापाद्यते ततोहिंसा ततश्च कर्मोपचयोनवतीत्येषामन्यतराजावेपि न हिंसा नच कर्मचय। अत्र च पंचानां पदाना द्वात्रिंशद्भगाजवति। तत्र प्रथम जंगे हिंसकोऽपरेष्वेकात्रिंशत्स्वहिंसक। तथाचोक्त। प्राणी प्राणिज्ञान, घातकचित्तं च तजता चेष्टा॥ प्राणैश्च विप्रयोग पचनिरापद्यते हिंसा॥ १॥ किमेकांतेनैव परिज्ञोपचितादिना कर्मोपचयो न नवत्येव काचिदव्यक्तिमात्रेति दर्शयितु श्लोकपश्चार्धमाह। पुछोत्ति। तेन केवलमनोव्यापाररूपपरिज्ञोपचितेन केवलकायक्रियोछेदेन वाऽविज्ञोपचितेनेर्यापथेन स्वमातिकेन च चतुर्विधेनापि कर्मणा स्पष्टईपत्स्पृष्ट सस्तत्कर्माऽसौ स्पर्शमात्रेणैव परमनुनवति न तस्याधिकोविपाकोस्ति। कुडयापतितसिकतामुष्टिवत्स्पर्शानतरमेव परिशटतीत्यर्थः। अतएव तस्य चयाजावोऽजिधीयते न पुनरत्यंताजावइति। एवच रुत्वा तदव्यक्तमपरिस्फुट। खुरवधारणे। अव्यक्तमेव स्पष्टविपाकानुजवाजावात्। तदेवमव्यक्तं सद्दावद्येन गर्ह्येण वर्त्तते तत्परिज्ञोपचितादिकर्मेति॥ २५॥ ननु च यद्यनंतरोक्तं चतुर्विधं कर्म नोपचयं याति कथ तर्हि कर्मोपचयोनवतीत्येतदाशंक्याह। (संतिमेइत्यादि)। सति विद्यते अमूनि त्रीणि आदीयते स्वीक्रियते अमीजि कर्मेत्यादानानि। एतदेव दर्शयति। यैरादानै क्रियते विधीयते निष्पाद्यते पापक कल्मष तानि चामूनि। तद्यथा। अतिक्रम्येत्याजिमुख्येन वध्यं प्राणिन क्रांत्वा तद्घाताजिमुखं चित्तं विधाय यत्र स्वतएव प्राणिनं व्यापादयति तदेक कर्मादानं। तथाऽपर च प्राणिघाताय प्रेष्यं समादिश्य यत्प्राणिव्यापादनं तद्वितीयं कर्मादानमिति। तथाऽपर व्यापादयतं मनसाऽनुजानीतइत्येतत्तृतीय कर्मादान। परिज्ञोपचितादस्याय जेद। तत्र केवल मनसा

चिंतनमिह स्वपरेण व्यापाद्यमाने प्राणिन्यनुमोदनमिति ॥ २६ ॥ तदेव यत्र स्वयं कृतका रितानुमतय प्राणिघाते क्रियमाणे विद्यते क्लिष्टाध्यवसायस्य प्राणातिपातश्च तत्रैव कर्मो पचयोनान्यत्रेति दर्शयितुमाह ।(एएउइत्यादि) तुरवधारणे । एतान्येव पूर्वोक्तानि त्रीणि व्य स्तानि समस्तानि वा आदानानि येर्दुष्टाध्यवसायव्यपेक्षे पापकं कर्मोपचीयतइति । एवच स्थिते यत्र कृतकारितानुमतय प्राणिव्यपरोपण प्रति न विद्यते । तथा नावशुध्या अरक्त द्विष्टबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन मनसा कायेन वा मनोनिसंधि रहितेनोनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्नकर्मोपचयस्तदनावाच्च निर्वाण सर्वद्वंद्वोपरतिनावमनि गच्छत्यानिमुख्येन प्राप्नोतीति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य कर्मबंधोन नवतीत्य त्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तपियाइत्यादि) पुत्रमपत्यं पिता जनक समारभ्य व्यापाद्याहा रार्थं कस्याचित्तथाविधायामापदि तदुद्धरणार्थमरक्तद्विष्टोऽसंयतोगृहस्थस्तत्पिशितं नुं जानोपि चशब्दस्यापिशब्दार्थत्वादिति । तथा मेधाव्यपि संयतोपीत्यर्थ । तदेव गृहस्थो निक्षुर्वा शुद्धाशय पिशिताश्यपि कर्मणा पापेन नोपलिप्यते नाश्लिप्यतइति । यथाचा त्र पितु पुत्र व्यापादयतस्तत्रारक्तद्विष्टमनस कर्मबधो न नवति तथान्यस्याप्यरक्तद्विष्टांत करणस्य प्राणिवधे सत्यपि न कर्मबधोनवतीति ॥ २८ ॥

मणसा जे पउस्सति, चित्त तेसि ण विज्जइ ॥ अणवज्जमतह तेसि, ण ते संवुमचारिणो ॥२९॥ इच्चेयाहि य दिठीहि, सातागारवणिस्सिया ॥ स रणति मन्नमाणा, सेवती पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णाव, जाइ अधो दुरूहिया ॥ इच्छई पारमागंतुं, अंतराय विसीयई ॥ ३१ ॥ एव तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते, संसार अणुपरियट्टंतित्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशक ॥

अर्थ–हवे एने उत्तर कहेले मणसाजे पउस्सतिके० जे कोई पुरुष कोईक कारण उत्पन्न थया थकी मने करी द्वेष करे, चित्ततेसिणविज्जइ के० तेनु चित्त शुद्ध केवी री ते थशे ? अर्थात् नहीं थशे, कारणके ते दर्शनीये एम कह्यु के. अणवज्जमतहतेसि के० एकला मनना व्यापार थकी कर्म न लागे ते एवु तेनु बोलवु मिथ्याले जेमाटे ते एकले मनने अशुद्धपणे णतेसवुमचारिणो के० ते संवृतचारी नहीं एटले संवुद्धचारी य को संवरमां प्रवर्त्तनार नथी केमके कर्मबंधनी वेळाये मुख्य कारणतो मनजले माटे जो तेने व्यापारेज कर्मबंध न थाय, तो पढी बीजा कया कारणे कर्मबंध थाय? ते मा टे पुत्रपिता ए दृष्टांत योग्य नथी ॥ २९ ॥ हवे ए क्रियावादीने अनर्थपरंपरा देखाडे

॥ टीका—तं चैवमभिप्रायमुदकं दृष्ट्वा भगवान्गौतमस्वाम्याह । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक खलु तथाभूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमपि योगक्षेमाय पद्यते यते येनार्थस्तत्पदं योगक्षेमपदं किंभूतमार्यमार्यानुष्ठानहेतुत्वादार्यं तथा धार्मिकं शोभ वचनं सुवचनं सद्गतिहेतुत्वात्तदेवंभूत पदं श्रुत्वा निशम्यावगम्याचात्मनएव तदनुत्तरं योग क्षेमपदमित्येवमवगम्य सूक्ष्मया कुशाग्रीयया बुध्या प्रत्यपेक्ष्यपर्यालोच्य तद्यथाहमने वं भूतमर्थपदं लंभितः प्रापित्त सन्नसावपि तावल्लौकिकस्तमुपदेशदातारमाद्रियते पू योयमित्येव जानाति तथा कल्याणं मंगलं देवतामिव स्तौति पर्युपास्ते च यदप्यसौ पूज नीयः किमपि नेच्छति तथापि तेन तस्य परमार्थोपकारिणोयथाशक्ति विधेयम् ॥ ३७ ॥

तएणं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं भंते पदाणं पुविं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणभिगमेणं अदिठाण असुयाणं अमुयाणं अविन्नायाणं अवोगडाणं अणिगूढाणं अविछि न्नाणं अणिसिठाणं अणिवूढाणं अणुवहारियाणं एयमठं णो सद्दहि यं णो पत्तियं णो रोइयं एतेसिणं भंते पदाणं एणिह जाणयाए सवणत्ता ए बोहए जाव उवहारणयाए एयमठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमे व से जहेयं तुझे वदह ॥ ३८ ॥

अर्थ—तेवार पढी ते उदकपेढालपुत्र, भगवत श्रीगौतम स्वामी प्रत्यें एम बोल्या के, (एतेसिणंभंतेपदाणं के०) हेभगवन् ! तमे एटलां पद कह्यां, ते में (पुविंअन्नाणया ए के०) पूर्वे न जाण्यां (असवणयाए के०) पूर्वे न सांभल्यां, (अबोहिए के०) जिनधर्मनी अप्राप्तिने लीधे एनी बोधि उपनी नहीं. (अणभिगमेण के०) विस्तारे बो धिना रहितपणा थकी एनो अभिगम न थयो, (अदिठाणं के०) पूर्वे साक्षात् पो ताथी दीठा नहीं एटले पाम्यां नही ते भणी अदृष्ट. (असुयाणं के०) कोइनी पासेथी सांभल्या नहीं, (अमुयाणं के०) स्मरण कर्यां नही, (अविन्नायाणं के०) अविज्ञा त एटले विशिष्ट बोधरहित (अवोगडाणं के०) विशेषथी गुरुयें कह्या नही (अणि गूढाणं के०) अप्रगट एटले प्रगट न थयां (अविछिन्नाण के०) विपक्षादिक संदेह छेद्या नहीं. (अणिसिठाणं के०) अनिश्चित कोइयें संभलाव्या नही. (अणिवूढा णं के०) अण सांभल्यां माटे निर्वाह्यां नहीं (अणुवहारियाण के०) अणविरत प णे हृदयने विषे अवधार्या नही (एयमठं के० (ए प्रकारे पदोनो अर्थ, (णोसद्दहि यं के०) सद्दह्यो नही, एटले श्रद्धाकरी नहीं, (णोपत्तियं के०) प्रतित करी नहीं, (णो

के श्रमणा शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्या स्वमतानुसारेण संसारपारकांक्षिणोपि संसारमेवानुपर्यटंति संसारएवानंतकालं भ्रमति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतमेतद्दूषणायाह । (मणसाजेइत्यादि)। येहि कुतश्चिन्निमित्तान्मनसांऽतःकरणेन प्रडुष्यंति प्रद्वेषमुपयांति तेषां वधपरिणतानां शुद्ध चित्तं न विद्यते । तत्रैव यत्तैरभिहितं । यथा केवलमन प्रद्वेषेप्यनवद्यं कर्मोपचयाभावाऽइति । ततस्तेषामतथ्यमसदर्थाभिधायित्वं । यतो न ते संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मोपचये कर्तव्ये मनएव प्रधान कारण । यतस्तैरपि मनोरहितकेवलकायव्यापारे कर्मोपचयाभावोभिहित । ततश्च यद्यस्मिन् सति भवत्यसति तु न भवति तत्तस्य प्रधानं कारणमिति । ननु तस्यापि कायचेष्टारहितस्याऽकारणत्वमुक्तं सत्यमुक्तं । अयुक्त तूक्तं । यतोभवतैवैव भावशुध्यानिर्वाणमभिगद्यतीति भणता मनसएवैकस्य प्राधान्यमन्यथापि । तथाऽन्यदप्यभिहितं । चित्तमेव हि ससारे रागादिक्लेशवासितं ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवातइतिकथ्यते । तथान्यैरप्यभिहितं । मतिविभवमनस्ते यत्समत्वेपि पुंसां, परिणमति शुभांशं कल्मषांशैस्त्वमेव ॥ निरयनगरवर्त्मप्रस्थिता कष्टमेके उपचितशुभशक्त्या सूर्यसभेदिनोन्ये ॥ १ ॥ तदेव भवदभ्युपगमेनेव क्लिष्टमनोव्यापार कर्मबंधायेत्युक्तं भवति । तथेर्यापथेपि यद्यनुपयुक्तोयातितवान् ततोनुपयुक्ततैव क्लिष्टचित्ततेति कर्मबंधो भवत्येवाथोपयुक्तोयाति ततो ऽप्रमत्तत्वादवधकएव । तथाचोक्तं । उच्चालियंमि पाए, इरियासमियस्स सकमट्ठाए । वावज्जेज्जकुलिंगी, मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥१॥ ण य तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो विदेसिर्त समये । अणवज्जो उपयोगे, ण सव्वभावे णसो जम्हा ॥ २ ॥ स्वप्नांतिकेप्यशुद्धचित्तसद्भावादीषद्बंधोभवत्येव सच भवतोप्यभ्युपगतएवाव्यक्त तत्सावद्यमित्यनेनेति । तदेव मनसोपि क्लिष्टस्यैकस्यैव व्यापारवधसद्भावात् । यडुक्त भवता प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादि तत्सर्व प्लवतइति । यदप्युक्त । पुत्र पिता समारभ्येत्यादि तदप्यनालोचिताभिधान । यतोमारयामीत्येव यावन्न चित्तपरिणामोभूत्तावन्न कश्चि द्व्यापादयति । एवंभूतचित्तपरिणतेश्च कथमसक्लिष्टता चित्तसक्लेशे चावश्यंभावी कर्मबंधइत्युभयोरपि सवादोत्रेति । यदपि च ते क्वचिडुच्यते यथापरव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताऽऽरुष्टांगारदाहाभाववन्न दोषइति । पिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याच्च कर्मबंधइति । तथा चान्यैरप्यभिहितं । अनुमता, विशसिता, सहर्ता, क्रयविक्रयी, ॥ संस्कर्ता, चोपभोक्ता च, घातकश्चाष्ट घातका । यच्च कृतकारितानुमतिरूपमादानत्रयं तैरभिहितं तज्जैनेंद्रमतलवास्वादनमेव तेरकारीति । तदेव कर्मचतुष्टयं नोपचय यातीत्येव तदभिदधाना कर्मचितातोनष्टा

समीपें चातुर्यामिक धर्मथकी पंचमहाव्रत सप्पडिक्कमण धर्म आदरीने विचरेछे, सर्वज्ञ प्रणितधर्म पालेछे (त्तिबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामी पोताना शिष्यो प्रत्ये कहेछे. के, मे जेवुं नगवत श्री महावीरदेव पासेथी सानल्युंछे, तेवु तमने कहुं छुं. इत्यादिक अर्थ, पूर्ववत् जाणवो॥४०॥एरीतें "णालंदइज्जं" नामा सातमा अध्ययननो अल्पार्थबालावबोध समाप्त थयो॥ ए बीजा श्री सूयगडांगना बीजा श्रुतस्कंधनो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो॥ सम्मत्तं सूयगडागं आदित ॥ सर्वाणि अध्ययनानि त्रयोविंशतिकानि संपूर्णानि ॥ श्री साधुरत्नप्येण पाशचंद्रेण वृत्तित कृतबालावबोधार्थं द्वितीयांगस्य वार्तिकं समाप्तम् ॥७॥

॥ दीपिका—ततोनगवान् गौतमस्तं प्राक् प्रतिपन्नश्रीपार्श्वशासनव्रतमुदकं गृहीत्वा यत्र श्रीवीरोनगवास्तत्रैवोपागछति । तत सउदकः श्रमणं नगवतं त्रि.कृत्वः आदक्षिण प्रदक्षिण करोति तिस्र प्रदक्षिणा करोतीति कृत्वा च वदते नमस्यति वदित्वा नमस्यित्वा च एवमवादीत् इछामि नवदते युष्मदतिके चातुर्यामात्पंच महाव्रतिकं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुमिति । तत श्रीवीरस्तमुदकमेवमवादीद्यथा सुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबंध धर्मातराय कार्षीरिति । तत सउदक. श्रीवीरांतिके पंच महाव्रतिकग्रहणायोछित नगवतापि तस्य सप्रतिक्रमण पंचमहाव्रतिकोधर्मोनुज्ञात सच तं धर्ममुपसपद्य स्वीकृत्य विहरतीति । इति परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत् । सुधर्मस्वामी स्वशिष्यानिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया नगवदंतिके श्रुतमिति ॥४०॥ नालंदीयाख्यमिदं सप्तममध्ययन समाप्तं । तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वितीय श्रुतस्कंधस्तत्सपूर्त्तौ च पूर्णेयं श्रीसूत्रकृतांग दीपिका ॥ ग्रथसख्या ॥ सुमारे ॥ (७०००)

॥ अथ प्रशस्ति ॥ आर्या वृत्तम् ॥

निस्तंद्रचंद्रचारुणि,चंद्रकुले चरणचातुरीनाज ।विख्याततपेत्याख्या,जगति जगच्चंद्रसूरयोऽनूवन् ॥ १ ॥ तेषां दोषांशमुषा, संताने सुकृतसचयविताने ॥ श्रीसोमसुंदरगुरू,नमाक्षमासगमाग्रनवन् ॥२॥ तत्पट्टस्फुटकमला,नाले कालेयतिलकसकाश ॥श्रीमुनिसुंदरगुरव ,कामितसंपत्तिसुरतरव ॥३॥ वाल्येपि नारतीनि,रुदपादि वादिवर्गे यै ॥ श्रीजयचंद्रमुनीशा,स्ते परगजेषु सिंहसदृशा ॥४॥ तत्पदविशदस्थाने,स्थाने शृंगारसारता नेजु ॥श्रीरत्नशेखराइति, जगति यत ख्यातिमापुस्ते॥५॥तेषामनकपट्टे,गुणसघट्टे प्रनावकपपट्टे॥प्राप्ताधिकनिष्ठा श्री, श्रीलक्ष्मीसागरा शिष्टा ॥६॥ नर्त्सितकलिकालुष्या,शिष्यानाषायथार्थनामान ॥ श्रीसुमतिसाधुगुरवो, लक्ष्मीसुरनीकारसायशोगुरव ॥७॥ तत्पट्टे प्रवादेप्सित, पूरणचिंतामणीयमानानाम् ॥ लब्धाधिकमानाना, सुहेमविमलानिधानानाम् ॥८॥ सुरीपगछनायक, देवीप्राप्तप्रनाप्रतिष्ठानाम् ॥ शिष्याणुर्गुणशासन,जननीतिथिसमिते (१५८३) वर्षे ॥९॥ विबुधना

चेवके० निश्चे ड्डपक्कके० द्विपक्ष एटले गृहस्थ अने प्रव्रजितनो पक्ष सेवइके० सेवे एटले ते लिंगे तो प्रव्रजित देखायछे, पण सदोष आहारना लेवा थकी ग्रहस्थ सरखो जाणवो । यडुक्त । आहाकम्मचुंजमाणे,समणे कइकम्मपयडीउबंधइ गोयमा अठकम्मपयडिउबंधइ सिढिलबंधण बद्धाउ, धणियबंधणवद्धाउकरेत्ति ॥ इत्यादिवचनात् ए कारणे परतीर्थी अथवा स्वतीर्थी आधाकर्मादिक आहार लेता थका द्विपक्षना सेवनार जाणवा ॥१॥ हवे एने एवो आहार लेता थका जे विपाक उपजे ते देखाडेछे. तमेवअवियाणता के० ते दर्शनी ते आधाकर्मि आहारनो दोष अजाणता तथा विसमंसिके० विषम जे अष्ट प्रकारना कर्मनो बध अथवा चतुर्गतिक ससारने विषे अकोविया के० अपंमित छे, ए टले ते एम नथी जाणता के जीवने कर्मनो बंध अथवा मोक्ष केम थाय? अथवा के वा उपाय थकी ससारसमुद्र तरे एवो परमार्थ ते जाणता नथी एवा छता संसारमा हे कर्मपासे बंधाणा थका डुःखी थायछे, अहिंया दृष्टात कहेछे मह्वा के० जेम माछ लां वेसालिया के० समुद्रना उपना, अथवा विशाल जातीना उपना, अथवा विशाल एटले बृहत्काय एटले मोहोटा शरीरवाला एवा महामह्व ते उदगस्सनियागमे के० पाणीना आगमे एटले समुद्रनी वेलि प्रसार पामी छते, ॥ २ ॥ उदकस्सपनावेण के० उदकने प्रनावे एटले पाणीने पूरे, समुद्र थकी निकलीने नदीना मुखमां आवी पडे त्या रपछी ते पाणी सुकसिग्घतमितिच के० सुके छते ते मह्व शरीरने स्थूलपणे कादवमा हे खूता थका घातमेस्संति के० मरण पामे ते केवी रीते, तो के ढकेहियकंकेहियके० ढक अने कक ए जातिना पक्षी विशेष अने आमिसच्छेहिं के० बीजापण मासना लो निष्ट एवा मह्वीमारोए विलुप्यमान एवा ते डुही के० डुःख पामेछे एटले ते जी वता मह्वोने विखुरी नाखे, छेदीनाखे, किं बहुना प्राण थकी मुकावे ए रीते डुःख पा मे ॥ ३ ॥ ए दृष्टात दर्शनीउ साथे मेलवेछे, एवतु के० ए पूर्वोक्त न्याये माछलानी पेरे समणाएगे के० एक शाक्यादिक श्रमण अथवा स्वतीर्थी ड्रव्यलिंगी ते केवाछे, तोके वट्टमाणसुहेसिणोके० वर्त्तमान सुख जे आधाकर्मिकआहार नोजन सुख तेना गवेष णहार परलोकना सुखथी पराङ्मुख मह्वावेसालियाचेव के० वैशालिक मह्वनी परे आगमिक काले अरहट्टघटिकाने न्याये घातमेस्संतिणतसो के० ससारमाहे अनंता उ न्मज्जन निमज्जन सरखा जन्म मरण पामे पण ससारना पारगामी न थाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–द्वितीयोद्देशके स्वान्यसमयप्ररूपणा कृता तृतीयेपि सैवोच्यतइति तस्येद मादिसूत्रं। (जंकिंचिदिति किंचिदाहारजातं स्वल्प घन वा पूतिरुतमाधाकर्मादिसिक्थेनापि संस्कारैरुपहितमिति)। श्रद्धावता नक्तिमताऽन्येनापरानागतुकानुद्दिश्य ईहितं कृतं तत्सहस्रां

मकशिष्य स्वस्य स्मृतये,परोपकृतये च ॥सूत्रकृतांगस्यैतां हर्षकुलोदीपिकामलिखत् ॥१०॥ काश्चित्प्रमाणयुक्ती,रग्रथयन्नात्र सुगमनाहेतो ॥ ततएव नैव विहितो,लक्षणसविस्तथा क्कापि ॥११॥ सूत्रासंगतमत्रा,वादि कथचिन्मया यदज्ञतया॥तच्छोधयंतु सुधिय ,रुपया मात्सर्यमुत्सार्य॥१२॥ग्रंथमितिरनुमिताऽत्र च,सप्तसहस्त्राणि किंचिदूनानि॥ विबुधजनवाच्यमानो, ग्रथोयं जगति जयतु चिरम् ॥१३॥ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकाया प्रशस्ति सपूर्णा ॥

॥ टीका—ततोसौ गौतमस्वामी तं गृहीत्वा तीर्थकरांतिकं जगाम । उदकश्च नगवत वंदित्वा पंचयामिकधर्मग्रहणायोद्यितोनगवतापि तस्य सप्रतिक्रमण पंचयामोधर्मोनुज्ञात. सच तं तथानूतं धर्ममुपसंपद्य विहरतीति । इति परिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी स्वशिष्यमिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया नगवदंतिके श्रुतमिति गतोनुगम. । साप्रत नयास्ते चामी । नैगम,२संग्रह,३व्यवहार,४ ऋजुसूत्र,५ शब्द,समनिरूढे, ६ वनूता, ७ख्या. सप्तैव । तेषां च मध्ये नैगमाद्याश्चत्वारोप्यर्थनया' । श्रर्थमेव प्राधान्येन शब्दोपसर्जनमिच्छति शब्दाद्यास्तु त्रय शब्दनयाः शब्दप्राधान्येनार्थमिच्छति । तत्र नैगमस्येदं स्वरूपं तद्यथा सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनोनैकेन प्रकारेणावगमः परिच्छेदोनिगमस्तत्र नवोनैगमोमहासामान्यायांतरालसामान्यविशेषाणां परिच्छेदकस्तत्र महासामान्यं-सर्वपदार्थानुयायिनी सत्तायातरालसामान्यं द्रव्यत्वजीवत्वाजीवत्वादिक विशेषा' परमाणुत्वादयस्त्वन्तावा शुक्लादयोगुणास्तद्वेव तच्चितयमप्यसाविच्छतीति निलयनप्रस्थकादिदृष्टांतरनुयोग द्वारप्रसिद्धैस्तत्स्वरूपमवसेयमथ च नैगम सामान्यविशेषात्मवस्तुसमाश्रयणेपि न सम्यग्दृष्टिर्नैदेनैव सामान्यविशेषयोराश्रयणात्तन्मताश्रितनैयायिकवैशेषिकवत् । तथा संग्रहोप्येव स्वरूपस्तद्यथा सम्यक् पदार्थानां सामान्याकारतया ग्रहणं सद्ग्रहस्तथा ह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावमेव सत्तारूप वस्त्वसावन्युपगच्छति सत्तातोव्यतिरिक्तस्यावस्तुत्व खरविषाणस्येव सच संग्रह सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुन. सामान्यांशस्यैवाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिस्तन्मताश्रितसांख्यवत् । व्यवहारनयस्य तु स्वरूपमिद तद्यथा यस्मा लोकग्राह्यमेव वस्तु यथा च शुष्कतार्किके स्वानिप्रायकृतलक्षणानुगतं तथानूतं वस्तु न नवत्येव नहि प्रतिलक्षणमर्थानामात्मनेदोनवति किं तर्हि यथा यथा लोके न विशिष्टनूयिष्ठतयार्थक्रियाकारि वस्तु व्यवन्हियते तथैव त दस्तित्यावालगोपालांगनादिप्रसिद्धत्वा दस्तुस्वरूपस्येत्ययमप्युत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य वस्तुनोनान्युपगमात् मिथ्यादृष्टिस्तयाविधरथ्यापुरुषवदिति । ऋजुसूत्रमतं त्विदं ऋजुप्रगुणं तत्वविन-ऽनुत्पन्नतयातीतानागतचक्रपरित्यागेन वर्तमानकाललक्षणनावि य दस्तु तत्सूत्रयति प्रतिपादयत्याश्रयतीति ऋजुसूत्रस्तस्यैवार्थक्रियाकारितया वस्तुत्वलक्षणयोगादित्ययमपि सामान्यविशेषोनयात्मकस्य वस्तुनः सामा,

मेव चोपभुंक्ते तेच सुतरां द्विपक्षसेविनोभवतीत्यर्थः । यदि वा द्विपक्षमिति ईर्यापथ सांपरायिकं वा । अथवा पूर्वबद्धानिकाचिताद्यवस्था कर्मप्रकृतीर्नयत्यपूर्वाश्चादत्ते । तथाचागमः । आहाकम्मं भुंजमाणे समणे कइ कम्मपयडीउ बंधइ गोयमा अट्ठकम्मपयडीउ बंधइ सिढिलबंधणबद्धाउ धणियबंधणबद्धाउ करेइ चियाउ करेइ उवचियाउ करेइ हस्सट्ठिइयाउ दीहट्ठिइयाउ करेइ इत्यादि । ततश्चैव शाक्यादयः परतीर्थिकाः स्वयूथ्याश्च आधाकर्मभुंजानाद्विपक्षमेवाऽऽसेवतइति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ इदानीमेतेषां सुखैषिणामाधाकर्मभोजिनां कटुकविपाकाविर्भावनाय श्लोकद्वयेन दृष्टांतमाह । (तमेव अवियाणंता इत्यादि) तमेव आधाकर्मोपभोगदोषमजानानाविषमोऽष्टप्रकारकर्मबंधोभवकोटिभिरपि दुर्मोक्षश्चतुर्गतिसंसारोवा तस्मिन्नकोविदाः कथमेषकर्मबंधोभवति कथं वा न भवति केन चोपायेनायं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽकुशलास्तस्मिन्नेव संसारोदरे कर्मपाशावपाशिताडःखिनोभवंतीति । अत्र दृष्टांतमाह । यथा मत्स्याः पृथुरोमाणोविशालः समुद्रस्तत्र भवावैशालिकाः विशालाख्यविशिष्टजात्युद्भवावा वैशालिकाः विशालाएव वैशालिकाबृहच्छरीरास्ते एवंभूतामहामत्स्याउदकस्याभ्यागमे समुद्रवेलायां सत्यां प्रबलमरुद्वेगोद्भूतोत्तुंगकल्लोलमालाऽपनुन्नाः संतउदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागतापुनर्वेलापगमे तस्मिन्नुदके शुष्के वेगेनैवापगते बृहत्वाच्छरीरस्य तस्मिन्नेव धुनीमुखे विलग्नाअवसीदंतआमिषगृध्नुभिर्ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्च मांसवसार्थिभिर्मत्स्यबंधादिभिर्जीवतएव विलुप्यमानामहांतं दुःखसमुद्घातमनुभवतोऽशरणाघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंति । तुरवधारणे । त्राणाभावाद्विनाशमेव यातीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ एवं दृष्टांतमुपदर्श्य दार्ष्टांतिके योजयितुमाह । (एवंतुसमणा इत्यादि) यथैतेऽनंतरोक्तमत्स्यास्तथा श्रमणाः श्राम्यंतीति श्रमणाएके शाक्यपाशुपतादयः स्वयूथ्यावा । किंभूतास्ते इति दर्शयति । वर्तमानसुखैषिणः समुद्रवायसवत् तत्कालावाप्तसुखलवासक्तचेतसोनालोचिताधाकर्मोपभोगजनिताऽतिकटुकदुःखौघानुभवनावैशालिकमत्स्याइव घातं विशालमेष्यंत्यनंतशोऽरहट्टघटीन्यायेन भूयोभूयः संसारोदन्वति निमज्जनोन्मज्जनं कुर्वाणान ते संसारांभोधेः पारगामिनोभविष्यंतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसि आहियं॥देवउत्ते अयं लोए, बंभउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहावरे ॥ जीवाजीवसमाउत्ते, सुहदुक्खसमन्निए ॥ ६ ॥ सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा॥ मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए ॥७॥ माहणा समणा एगे आह अंडकडे जगे ॥ असो तत्तमकासीय, अयाणंता मुसं वदे ॥ ८ ॥

न्यांशपरित्यागेन विशेषांशस्यैव समाश्रयणाद्बौद्धवदनिवन्न सम्यग्दृष्टिः कारणनूतद्रव्या नन्युपगमेन तदाश्रितविशेषस्यैव नावादिति । शब्दनयस्वरूपंत्विदं तद्यथा शब्दद्वारेणैवा स्यार्थप्रतीत्यान्युपगमाल्लिंगवचनसाधनोपग्रहकालनेदानिहितं वस्तु निन्नमेवेच्छति तत्र लि गनेदानिहितं वस्त्वन्यदेव नवति तद्यथा पुष्यस्तारकानक्षत्रमेव सख्यानिन्नं जलमयोवर्षा ऋतु साधननेदस्त्वयं एहिमन्ये रथेन यास्यति यातस्ते पिता अस्यायमर्थः । एवं त्व म न्यसे यथाह रथेन यास्यामीत्यत्र मध्यमपुरुषयोर्व्यत्यय उपग्रहस्तु परस्मैपदात्मनेपद योर्व्यत्ययस्तद्यथा तिष्ठति प्रतिष्ठते रमते उपरमतीत्यादि कालनेदस्त्वग्निष्टोमयाजी पुत्रो स्य नविता अस्यायमर्थोग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेनेष्टवान् नूते णिनिर्नवितेति नविष्यद नद्यतने लुट् तत्रायमर्थः णिनिप्रत्ययोनवितेत्यस्य संबधाद्भूतकालतां परित्यज्य नविष्य त्कालतां प्रतिपद्यते तेनेदमुक्तं नवत्येवनूतोऽस्य पुत्रोनविष्यति योऽग्निष्टोमेन यक्ष्यति तदे वनूतं व्यवहारनयशब्दनयोर्नेच्छति लिंगाद्यनिन्नास्तु पर्याया अनेकविषयत्वेनेच्छति तद्यथा 'घट कुन इन्द्र शक्र' पुरंदरइत्यादि । अयमर्थव्यंजनपर्यायोनयरूपस्य वस्तुनोव्यंजनपर्या यस्येव समाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिरिति । तथा पर्यायाणां नानार्थतया समनिरोहणात्सम निरूढोन ह्ययं घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिच्छति तथाहि घटनाद्घट कुट्टनात्कुट्ट कौ ना नीति- कुंनोनहि घटन कुट्टनं नवति तथेंदनादिन्द्र पुर्दारणात्पुरंदरइत्यादेरपि शब्दप्रवृत्ति ...स्य न परस्परानुगतिरिति तदयमपि मिथ्यादृष्टि पर्यायानिहितधर्मैव वस्तुनोनाश्र ...हीतप्रत्येकावयवांधहस्तिज्ञानवदिति । एवनूतानिप्रायस्त्वयं यदैव शब्दप्रवृत्तिनि मित्तं चेष्टादिकं तस्मिन्घटादिके वस्तुनि तदेवासौ युवतिमस्तकारूढउदकाद्याहरणक्रियाप्र वृत्तोघटोनवति न निर्व्यापारएव एवनूत तस्यार्थस्य समाश्रयणादेवनूतोनिधानोनयोनव ति । तदयमप्यनंतधर्माध्यासितस्य वस्तुनोनाश्रयणान्मिथ्यादृष्टि । रत्नावल्यवयवे प द्मरागादौ कृतरत्नावलीव्यपदेशपुरुषवदिति । तदेव सर्वे नया प्रत्येक मिथ्यादृष्टयोऽन्यो न्यसव्यपेक्षास्तु सम्यक्त्वं नजति अत्र च ज्ञानक्रियान्यां मोक्षइतिकृत्वा ज्ञानक्रियानययो. सर्वेप्येते सुधिया समवतारणीया तत्रापि ज्ञाननयऐहिकामुष्मिकयोर्ज्ञानमेव फलसा धकत्वेनेच्छति न क्रिया । क्रियानयस्तु क्रियामेव न ज्ञानं परमार्थस्तूनयमपि समुदितमन्यो न्यसव्यपेक्ष पंग्वन्धवदनिप्रेतफलनिद्धयेऽलमिति एतडुनययुक्तएव साधुरनिप्रेतमर्थं साधय त्युक्तं च । सवेसि पिणयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सवणय विसुद्धं, जं चरण गुणहिओ साहू ॥ १ ॥ ४० ॥ सा ... दाख्यं सप्तममध्ययनम् ॥ इति समाप्तेयं सूत्रकृतद्वितीयांगस्य टीका । कृता ... चार्येण वाहरिगणिसहायेन ॥ श्लोक ॥ ...स्मिं, टीकाकरणे ... तता ॥ तेनापेततमस्को,नव्य कल्याण

मिहास्मिन् लोके एकेषामाख्यातं । किं पुनस्तैराख्यातमित्याह । देवउत्तेति । देवेन उप्त. कृ तोदेवोप्तोदेवपुत्रोवायं लोक । ब्रह्मणा उप्तोब्रह्मणा कृतोवायं लोकइत्यपरे वदतीति ॥ ॥५॥ तथा ईश्वरेण कृतोलोक । अपरे वदति प्रधानादिकृतोलोक । सत्वरजस्तमोगुणा नां साम्यावस्था प्रकृति सैव प्रधानशब्दवाच्या । आदिशब्दान्नियतिकृतोलोकऽत्यन्ये । लोकोजीवाजीवसमायुक्त. सुखदुःखसमन्वितश्च ॥ ६ ॥ तथा स्वयंभूर्विष्णुरन्योवा सचै काकी रतिं न लभते ततोन्या शक्ति समुत्पन्ना तदनंतर जगत्सृष्टिरभूदिति महर्षिणा उ क्त । तत स्वयंभुवा लोकं निष्पाद्यातिससारभयात् यमाख्योमारयतीतिमारोव्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता माया तया मायया च लोको म्रियते । नच तत्त्वतोजीवस्य मृतिरस्त्यतोमायैषा तेन लोकोऽशाश्वतइति गम्यते ॥ ७ ॥ तथा ब्राह्मणाद्विजातय श्रमणास्त्रिदंडिप्रमुखाएके अंडेन कृतमंडकृतं अंडाज्जातं जगदाहुर्वदंति । ब्रह्मणांड कृ तं ततोविश्वं जातं । एवं कृते जगति असौ ब्रह्मा तत्त्वं पदार्थसमूहमकार्षीत् कृतवान् ते च ब्राह्मणाद्या परमार्थानभिज्ञाएव मृषा वदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतमपराज्ञानिमतोपप्रदर्शनायाह । (इणमन्नंतुअन्नाणमित्यादि)। इद मिति वक्ष्यमाणं।तुशब्द पूर्वेभ्योविशेषणार्थ । अज्ञानमिति मोहविजृंभणमिहास्मिन् लो के एकेषां न सर्वेषामाख्यातमभिप्राय ।किंपुनस्तदाख्यातमिति तदाह ।देवेनोप्तोदेवोप्त कर्ष केणेव बीजवपनं कृत्वा निष्पादितोयं लोकइत्यर्थ ।देवैर्वा गुप्तोरक्षितोदेवगुप्तोदेवपुत्रोवेत्या दिकमज्ञानमिति। तथा ब्रह्मणाउप्तोब्रह्मोप्तोयंलोकइत्यर्थ । परे एवं व्यवस्थिता । तथा हि। तेषामयमभ्युपगम ।ब्रह्मा जगत्पितामह सचैकएव जगदवासीत्तेनच प्रजापतय सृष्टा स्तेश्च क्रमेणैतत्सकलं जगदिति। तथेश्वरेण कृतोयं लोक । एवमेके ईश्वरकारकाअभिदधति प्रमाणयंति वा। सर्वमिदं विमत्यधिकरणभावोपपन्नं ननु भुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादी यते।बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति साध्योधर्म । संस्थानविशेषवत्त्वादिति हेतु ।यथा घटादिरि ति दृष्टांतोयं। यद्यत्संस्थानविशेषवत्तत्तद्बुद्धिमत्करणपूर्वकं दृष्टं । यथा देवकुलकूपादिसं स्थानविशेषवच्च मकराकरनदीधराधरधराशरीरकरणादिकं विवादगोचरापन्नमिति।तस्माद्बु द्धिमत्कारणपूर्वकं। यश्च समस्तस्यास्य जगत कर्ता ससामान्यपुरुषोन भवतीत्यसावीश्वरइ ति। तथा सर्वमिदं तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति।साध्यो धर्म कार्यत्वाद्घटादिवत् तथा स्थित्वा प्रवृत्तर्वा वास्यादिवदिति। तथाऽपरेप्रतिपन्नायथा प्रधानादिकृतोलोक ।सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति साच पुरुषार्थं प्रवर्तते। आदिग्र हणाच्च प्रकृतेर्महान् ततोहंकारस्तस्माच्च गण षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्य पंच महाभूतानीत्यादिकया प्रक्रियया सृष्टिर्भवतीति। यदि वा आदिग्रहणात्स्वभावादिकं गृह्य

खाडेठे ते दर्शनी श्रमणुन्नके० विरुद्ध अनुष्ठान अनाचार ते थकी जेनी समुप्पायं के० उत्पत्तिठे, ते केवुं तोके, डुरकके० हिंसादिक विरुद्ध अनुष्ठान तेमां जे प्रवर्त्तशे ते डुःखी थासे एवविजाणियाके० एवु जाणवु जोइये समुप्पायमजाणताके० ते एवा डुःखनी उत्पत्तिनां कारणोने नजाणे परतु ते अजाण बापडा कहंनायंतिसंवरं के० संवरपणुं जे डुःखनिवारणनु कारण ठे, तेने केवी रीते जाणी शकशे ? एतावता अति यत्न करतां पण डुःखनो उच्छेद न पामे, किंतु ससारमांहे अनंतो काल रहेशे ॥ १० ॥ ॥

॥ दीपिका–अथ तेषामुत्तरमाह । (सएहिमिति) । स्वकैर्निजैः पर्यायैरभिप्रायैर्लोकं कृतमब्रुवन् कथितवतस्ते तत्त्व परमार्थं नाभिजानति । नच विनाशी लोक कदाचित् निर्मूलत पर्यायरूपेण विनाश्यपि द्रव्यार्थतया नित्यत्वात् । लोकस्य ईश्वरादिकृतत्व निपेधयुक्तयष्टीकातोज्ञेयं ॥ ९ ॥ अथ तेषा मृषावादिनां फलमाह । श्रमणुन्नेति । अमनोज्ञ असदनुष्ठान तस्माडुत्पाद प्राडुर्भावोयस्य तदमनोज्ञसमुत्पाद डुःख विजानीयात् प्राज्ञ । अयमर्थ स्वकृतादसदनुष्ठानादेव डुःखमुत्पद्यते नेश्वरादेरिति । ते चैव डुःखस्य सवरं प्रतिघातहेतु ज्ञास्यंति । कारणोछेदादेव कार्योछेद स्यात् । कारण वाऽजानत कथ डुःखोछेदाय यतिष्यंते यत्नवतोपि डुःखोछेदं नाप्नुवतीति ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ टीका–अधुनैषां देवोप्तादिजगद्वादिनामुत्तरदानायाह । (सएहिमित्यादि) । स्वकीयैः स्वकीये पर्यायैरभिप्रायैर्युक्तिविशेषैरयं लोक कृतइत्येवमब्रुवन्नभिहितवत । देवोप्तोब्रह्मोप्तईश्वरकृत प्रधानादिनिष्पादित स्वयंभुवा व्यधायि तन्निष्पादितमायया म्रियते तथांडजश्चायं लोकइत्यादिस्वकीयाभिरुपपत्तिभि प्रतिपादयंति । यथाऽस्मडुक्तमेव सत्य नान्यदिति ते चैववादिनो वादिन सर्वेपि तत्त्व परमार्थं यथावस्थितलोकस्वभाव नाभिजानति न सम्यक् विवेचयंति । यथाऽयं लोकोद्रव्यार्थतया न विनाशीति निर्मूलत कदाचन। नचायमादितआरभ्य केनचित् क्रियते अपित्वयं लोकोऽभूद्भवति भविष्यति च। तथाहि। यत्तावडुक्त यथा देवोप्तोऽयं लोकइति तदसगतम्। यतोदेवोप्तत्वे लोकस्य न किंचित्तथाविध प्रमाणमस्ति। नचाप्रमाणकमुच्यमान विद्वज्जनमनांसि प्रीणयति। अपिच किमसौ देव उत्पन्नोऽनुत्पन्नोवा लोकं सृजेन्न तावदनुत्पन्नस्तस्य खरविषाणस्येवासत्त्वात्करणाभाव । अथोत्पन्न सृजेत्तत्किं स्वतोऽन्यतो वा। यदि स्वतएवोत्पन्नस्तथा सति तद्वल्लोकस्यापि स्वतएवोत्पत्ति किं नेष्यते। अथान्यतउत्पन्न सन् लोककरणाय सोप्यन्योन्यत सोप्यन्योन्यतइत्येवमनवस्थालतानभोमंडलव्यापिन्यनिवारितप्रसरा प्रसर्पतीति। अथासौ देवोऽनादित्वान्नोत्पन्नइत्युच्यते इत्येवसति लोकोप्यनादिरेवास्तु को दोष । किंचासावनादि सन्नित्योऽनित्योवा स्यात्तद्यदि नित्यस्तदा तस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधान्न कर्तृत्व। अथाऽनि

ते इच्चेयाहिं के० इत्यादिक ए पूर्वोक्त एवी दिठीहिं के० ज्ञानदृष्टीना अंगीकारे करीने ते वादी सातागारवणिस्सिया के० सातागारवे निश्रित एटले आसक्त अर्थात् सुखशी लीया एवा थका, ते क्रियाना करनार जेवो सदोष निर्दोष आहार पामे तेना जोगवना र एवा उतां ते पोतानुज दर्शन सरणतिमन्नमाणाके० संसारथकी उद्धरवासमर्थछे. एवु माणा एटले मानता थका, सेवतीपावगं के० ते विपरीत अनुष्ठाने करी हिंसादिक पा पज सेवेछे, तेमाटे यद्यपि ते व्रतधारी छे, तथापि ते अनेरा पामर एवा जणाके० लो क तेना सरखा जाणवा ॥ ३० ॥ एहिज अर्थ दृष्टांते कहेछे. जहा के० जेम अस्सा विणि के० छिद्रसहित एवी णाव के० नाव तेने विषे जाइअंधो के० जातिअंध एट ले जन्माध पुरुष डुरुहिया के० चडीने इछईपारमागंतु के० पार पामवा वांछे परंतु पार पामे नहीं. किंतु अंतराय के० अंतराले एटले वचमांहेज ते विसीयई के० बुडी जाय इत्यर्थ ॥ ३१ ॥ हवे ए दृष्टांत दर्शनीउं साथे मेलवेछे जेम सछिद्रनावे चडयो थको अंध पुरुष पार पोहोचे नहीं एवंतुसमणाएगे के० तेनीपेरे कोइएक शाक्यादिक श्रमण ते मिछदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी एटले जिनप्रणीत धर्मथकी विपरीत दृष्टि तथा अनारिया एटले अनाचारी संसारपारकखीते के० ते पोताना दर्शनने अनु रागे संसारनो पार पामवाने वांछे छे, परंतु ते संसारअणुपरियट्टंति के० संसारमांहेज परावर्तन घचन घोलन इत्यादिक अनंत कालसुधी पामे ॥ ३२ ॥ एम श्रीमहावीर देवे कह्यु इति के० एम हुं पण तुजने कहुंछुं एरीते श्रीसुधर्मास्वामिये पोताना शिष्य श्रीजंबुस्वामी प्रत्ये कह्यु इति प्रथम समयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः। ए उद्देशे करी स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा करीछे

॥ दीपिका–एतद्दूषयन्नाह । (मणसेति) । ये कुतोपि हेतोर्मनसा प्रडुष्यति प्रद्वेषयं ति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । एवंच यत्तैरुक्तं केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं पापानावइति तत्तेषामतथ्यं मिथ्या । यतस्ते न संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथा हि । कर्मबंधे मुख्योहेतुर्मनएव । यथा ईर्यापथेऽनुपयुक्तोगछन् कर्मबंधक । उपयु क्तस्तु सहसा हिंसकोपि न कर्मबंधकइति ततः पुत्रं पितेति दृष्टांतोन समीचीन इति ॥ २९ ॥ अथ तेषामनर्थमाह । (इच्चेहियाहिति) । इत्येतानि पूर्वोक्तानिर्दृष्टीनि मैतैस्ते वादिन सातागौरवनिश्रिताइदमस्मन्मतं शरणमिति मन्यमानानराः पापमेव सेवंते कुर्वंति ॥ ३० ॥ अत्रार्थे दृष्टांतमाह । (जहत्ति) । आश्राविणीं सछिद्रां नावं य था जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुमिच्छति स नरोनावोजलव्याप्तत्वादंतरा मध्यएव विषीदति जले निमज्जति ॥ ३१ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । एवमिति । एवं नौदृष्टांतेन ए

प्रति प्रवृत्तिर्येनाऽत्मनोजोगोपपत्त्या सृष्टि स्यादिति । प्रकृतेरयं स्वजावइति चेदेव तर्हि स्वजावएव बलीयान् । यस्तामपि प्रकृति नियमयति ततएव च लोकोप्यस्तु किमदृष्टप्रधानादिकल्पनयेति । अथादिग्रहणात्स्वजावस्यापि कारणत्व कैश्चिदिष्यतइति चेदस्तु । न हि स्वजावोऽन्युपगम्यमानोन क्षतिमातनोति । तथाहि । स्वनाव स्वकीयोत्पत्ति । सा च पदार्थानामिष्यतएवेति । तथा यडुक्त नियतिकृतोयं लोकइति । तत्रापि नियमनं नियतिर्यथानवन नियतिरित्युच्यते । साचाऽलोच्यमाना न स्वजावादतिरिच्यते । यच्चान्यथापि स्वयंनुवोत्पादितोलोकइति तदप्यसुंदरमेव । यत स्वयनूरिति किमुक्तं नवति । कि यदाऽसौ नवति तदा स्वतंत्रोन्यनिरपेक्षएव नवति । अथाऽऽदिनवनात्स्वयनूरिति व्यपदिश्यते । तद्यदि स्वतंत्रनवनान्युपगमस्तद्लोकस्यापि नवनं कि नान्युपेयते कि स्वयंनुवा । अथानादिस्ततस्तस्यानादित्वे नित्यत्व नित्यस्य चैकरूपत्वात्कर्तृत्वाऽनुपपत्तिस्तथा वीतरागत्वात्तस्य ससारवैचित्र्यानुपपत्ति । अथ सरागोसौ ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेकात्सुतरा विश्वस्याकर्ता मूर्ताऽमूर्तादिकल्पाश्च प्राग्वदायोज्याइति । यदपि चात्रानिहितं । तेन मार समुत्पादित सच लोकं व्यापादयति तदप्यकर्तृत्वस्यानिहितत्वात्प्रलापमात्रमिति । तथा यडुक्तं अडादिक्रमाज्जायते लोकइति तदप्यसमीचीनं । यतोयास्वप्सु तदड निसृष्टं तायथांडमतरेणान्नूवन् तथा लोकोपि नूतइत्यन्युपगमे न काचिद्बाधा दृश्यते । तथासौ ब्रह्मा यावदड सृजति तावल्लोकमेव कस्मान्नोत्पादयति किमनया कष्टया युक्त्यसगतया चाडपरिकल्पनया । एवमस्त्विति चेत् केचिदनिहितवतोयथा ब्रह्मणोमुखाद्ब्राह्मणा समजायत बाहुन्या क्षत्रियाऊरुन्या वैश्या पद्भ्यां शूद्राइत्येतदप्युक्तिसगतमेव । यतोन मुखादे कस्यचिडुत्पत्तिर्नवत्युपलद्यते । अथापि स्यात्तथा सति वर्णानामनेद स्यादेकस्माडुत्पत्ते । तथा ब्राह्मणाना कतत्तैत्तिरीयककलापादिकश्च नेदोन स्यादेकस्मान्मुखाडुत्पत्ते । एवचोपनयनादिसन्नावोन नवेन्नावे वा स्त्र्यादिग्रहणापत्ति स्यादेवमाद्यनेकदोषडुष्टत्वादेव लोकोत्पत्तिर्नान्युपगतव्या । ततश्च स्थितमेतत् । तएव वादिनोलोकस्याऽनाद्यपर्यवसितस्योर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य वैशाखस्थानस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषाकृतेरधोमुखमल्लकाकारसप्तपृथिव्यात्मकाधोलोकस्य स्थालाकाराऽसख्येयद्वीपसमुद्राधारमध्यलोकस्य मल्लकसमुद्गकाकारोर्ध्वलोकस्य धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवात्मकस्य द्रव्यार्थतयाऽनित्यस्य पर्यायापेक्षया क्षणक्षयिणउत्पादव्ययध्रौव्यात्पादितद्रव्यसतत्त्वस्याऽनादिजीवकर्मसबधापादिताऽनेकप्रपचस्याष्टविधकर्मविप्रमुक्ताऽत्मलोकातीपलक्षितस्य तत्त्वमजानाना सतोमृषा वदंतीति ॥ ए ॥ इदानीमेतेषामेव देवोप्तादिवादिनामज्ञानत्व प्रसाध्य तत्फलदिदर्शयिषयाऽह । (अमणुन्नऽत्यादि) । मनोनु कूलं मनोज्ञं शोननमनुष्ठानं न मनोज्ञमनोज्ञमसदनुष्ठान तस्माडुत्पाद प्राडुर्नावोयस्य

इति सुप्रतिष्ठमिदमिति ॥ २ए ॥ अधुनैतेषां क्रियावादिनामनर्थपरपरा दर्शयितुमाह । (इच्चेयाहिं इत्यादि) इत्येतानि पूर्वोक्तानिश्चतुर्विधं कर्म नोपचयं यातीति दृष्टिनिरन्यु पगमैस्ते वादिन सातागौरवनिश्रिता सुखशीलतायामासक्तायत्किंचनकारिणोयथाल ब्धनोजिनश्च संसारोध्दरणसमर्थं शरणमिदमस्मदीय दर्शनमित्येव मन्यमानाविपरीता नुष्ठानतया सेवते कुर्वंति पापमवद्यमेव व्रतिनोपि सतोजनाइव जना प्राकृतपुरुषसदृशा इत्यर्थ ॥ ३० ॥ अस्यैवार्थस्योपदर्शक दृष्टातमाह । (जहाअस्ताविणिमित्यादि) आस मतात्स्रवति तच्छीला आस्राविणी तच्छिद्रेत्यर्थ । ता तथानूता नाव यथा जात्यंध समारुह्य पार तटमागतु प्राप्तुमिच्छत्यसौ तस्याश्च स्राविणीत्वेनोदकपूर्णत्वादंतराले जलम ध्यएव विषीदति वारिणि निमज्जति तत्रैव च पंचत्वमुपयातीति ॥ ३१ ॥ सांप्रतं दार्ष्टा तिकयोजनार्थमाह । (एवमित्यादि) यथाऽध सच्छिद्रा नाव समारूढ पारगमनाय नालं तथा श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषा मिथ्यादृष्टय । तथापि शिताशनानुमतेरनार्या स्वदर्शनानुरागेण ससारपारकाङ्क्षिणोमोक्षाभिलाषुकाअपि सं तस्ते चतुर्विधकर्मचयानन्युपगमेनानिपुणत्वाच्छासनस्य ससारमेव चतुर्गतिससरणरूपम नुपर्यटंति । नूयोनूयस्तत्रैव जन्मजरामरणादौ गत्यादिक्लेशमनुनवतोऽनंतमपि काल मासते न विवक्षितमोक्षसुखमाप्नुवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववदिति ॥३२॥ इति सूत्रकृतांगे समयाख्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥

॥ अथ प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशक प्रारन्यते ॥

जं किंचिउ पूइकड सड्ढीमागंतुमीहियं ॥ सहस्सतरियं नुजे, डुपक्ख चेव सेवइ ॥ १ ॥ तमेव अवियाणता, विसमसि अकोविया ॥ मच्छा वेसा लिया चेव, उदगस्स नियागमे ॥ २ ॥ उदगस्स पन्नावेणं, सुक्कं सिग्घं तमिं तिउ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय, आमिसत्थेहि ते डुही ॥ ३ ॥ एवं तु सम णा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ॥ मच्छा वेसालिया चेव, घातमेस्संति णंतसो ४

अर्थ–पाबलना उद्देशे स्वसमय परसमय प्ररूपणा करी, अने अहींपण तेहिज कहेले. ज किंचिउके० जे कांइ अल्प अथवा घणो आहार पाणी पूइकडं के० पूतीकर्म एटले आधाक र्मिना एक कणे सहित एवो आहार पाणी सड्ढिके० श्रद्धावत गृहस्थे नक्तिये करी आगं तुमीहियं के० अनेरा आवनारना उद्देशे करी नीपजाव्योले. तेज आहार कदाचित् सह स्सतरियं के० सहस्रातरित एटले एके बीजाने दीधो, बीजे त्रीजाने दीधो, त्रीजे चो थाने दीधो एवी रीते सहस्रातरित पणे ते सदोष आहार जे नुजे के० नक्षण करे ते,

णी तेह्नीपरे जाणवु. जेम नीरयंके० निर्मल पाणी होयते रजादिकने संयोगे सरयंके० रजसहित एटले मलिन थाय, फरी ते पाणी निर्मलपण थाय, तहाके० तेम ए आत्मा पण जाणी लेवो ॥१२॥ हवे ए मतने दूषवेछे एतके० ए पूर्वोक्त वादीउना वचन असमं जस अणुचितिके० चितवी आलोचीने, मेधावी के० पमित जे होय ते मनमां एवी रीते अवधारे ते कहेछे बंनचेरे णतेवसेके० ए त्रैराशिक तथा अनेरा दर्शनी ब्रह्मचारीनेविषे न वसे एटले सूधो सयम नपाले जे कारण माटे ते सम्यक्ज्ञानरहित थका अकर्मक ने सकर्मक कहेछे ते माटे ते अज्ञानी छे तथा पुढोपावाउयासव्वेके० ए सर्व जुदाजुदा प्रा वाडक एटले परदर्शनी अरकायारो सयंसयंके० पोतपोतानुं दर्शन रुडु करी वखाणेछे ॥१३॥ वली तेहिज दर्शनीनु मत कहेछे सएसएउवठाणे के० ते पोतपोताना दर्शनने विषे प्रवर्त्तता पोतपोतानु अनुष्ठान जे दीक्षा, गुरु चरण, शुश्रूषादिक तेहिज सिद्धिमेव के० सिद्धिनु कारणछे पण नअन्नहाके० अनेरा दर्शन थकी, अनेरा अनुष्ठान थकी मुक्ति न पामिये. अहोइहेववसवत्ती के० ते एम कहेछे के—अमारा दर्शन थकी एहिज जन्ममां यावत् आत्मवर्ती थको एटले समस्त इंडीनो जीपनार एवो थको सव्वकामसमप्पिएके० सर्वकामएटले जे जे काम नोगनी प्रार्थना तथा वाउनाकरे ते ते पामे ॥ १४ ॥ ॥

॥ दीपिका—कृतवादिमतमेवाह । (सुद्धेति) । अयमात्मा शुद्धोमनुष्यनवएव शुद्धाचारोनूत्वा मोक्षे अपापक स्यात् । इदमेकेषा गोशालमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरयमात्मा अकर्मकोनूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा स तत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रजसा श्लिप्यते । तस्यहि स्वशासनपूजामन्यदर्शनपरानवमुपलन्य क्रीडाप्रमोद स्यात् । स्वशासनपरानवदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्यां कर्मणा वाध्यते ततोऽसौ नूय ससारेऽवतरति ॥११॥ किंच । (इहेति) । इह ससारे प्राप्त सन् प्रव्रज्यामगीकृत्य संवृतात्मा जात सन् पश्चादपाप स्यात् । यथाविकटाबु उदकोदक नीरजस्क निर्मल सत् वातोद्धूतरेणुयुक्त सरजस्क मलिन नूय स्यात् तथायमात्मा त्रैराशिकाणा मते राशित्रयावस्थ स्यात् । यथापूर्वं संसारावस्थायां सकर्मक ततो मोक्षे ऽकर्मक पुन शासनपरानवदर्शनात् द्वेषोदयात् सकर्मा स्यादिति ॥१२॥ एतन्मतं दूषयति । (एयाणुत्ति)। एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचित्य मेधावी प्रज्ञावान् एतदवधारयेत् यथा न ते वादिनो ब्रह्मचर्ये सयमानुष्ठाने वसेयु । यद्यपि ते सयमे स्थितास्तथापि न सम्यगनुष्ठातारइत्यवधारयेत् । पृथक्पृथक् सर्वेप्येते प्रावाडुका परमतिन स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनमाख्यातार शोननत्वेन कथयितार सदर्शन शुन वदंति ते । नच तत्रास्था विधेयेति ॥ १३ ॥ कृतवादिमतमेव प्रकारांतरेणाह । (सएत्ति) । ते कृतवादिन स्वके स्वके उपस्थाने संयमाद्यनुष्ठाने सिद्धि मोक्ष

तरितमपि यो ज़ुंजीत स द्विपक्ष गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षंच सेवते। अयमर्थ । आधाकर्मादिलवेनापि ससृष्टं परकृतमप्याहार योजक्ष्येत् सोपि द्विपक्षसेवी स्यात् किं पुन स्वयमाहार निष्पाद्य ये शाक्यादयोज्ञुजते ते सुतरां द्विपक्षसेविन· स्युरित्यर्थ । अथवा द्विपक्षमीर्यापथं सापराधिक वा बद्धनिकाचितनेदं वा कर्म तत्सेविन परतीर्थिका स्वयूथ्यावा स्युरिति ॥ १ ॥ अथ तझोजिना विपाकं दृष्टांतेनाह । (तमेवेति)। तमाधाकर्माद्युपनोगदोषमविजानतोविषमे कर्मबंधे ससारे वा अकोविदा कथ कर्मबंध स्यात्कथ च न स्यात् कथ ससारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽनिपुणाडु खिन स्यु । दृष्टांतमाह। मत्स्या यथा (वेसालियत्ति) विशाल समुद्रस्तत्र नवाविशालाख्यजातिनवावा विशालाएव वा वैशालिकावृहच्छरीराउदकस्य जलस्याज्यागमे समुद्रवेलाया सत्यामुदकस्य प्रजावेन नदीमुखमागता पुनर्वेलापगमे जले शुष्के वेगे अपगते सति ढकै कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्चामिषार्थिनिर्विलुप्यमानास्ते डु खिनोमत्स्यघातं विनाशं यांति प्राप्नुवतीति श्लोकद्वयार्थ ॥ ३ ॥ दार्ष्टांतिकयोजनामाह । (एवमिति)। एवमेके श्रमणाः शाक्यादय स्वयूथ्यावा वर्तमानमेव सुखमिहलोकसुखमाधाकर्माद्युपनोगजमेषितु शीलं येषां ते वर्तमानसुखैषिणोवैशालिकामत्स्याइव घात विनाशमेष्यत्यनतशोयास्यंति बहुवारं संसारे भ्रमिष्यंति डु खमनुनवंत ॥ ४ ॥

॥ टीका–द्वितीयोद्देशकानतर तृतीय समारज्यते ॥ अस्य चायमनिसबंध । अध्ययनार्थाधिकार· स्वसमयपरसमयप्ररूपणेति । तत्रोद्देशकद्वयेन स्वपरसमयप्ररूपणा कृता। अत्रापि सैव क्रियते । अथ चाऽद्ययोरुद्देशकयो कुदृष्टय· प्रतिपादितास्तद्दोषाश्च तदिहापि तेषामाचारदोष प्रदृश्यतइत्यनेन सबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्णस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेदं । (जकिंचिउपूइकडमित्यादि)। अस्य चानतरसूत्रेण सहार्थ सबंधइहानतरोद्देशकपर्यंतसूत्रेनिहित । (एवतुश्रमणाए केइत्यादि)। तदिहापि सबध्यते । एके श्रमणायत्किंचित्पूतिकृतं नुंजाना ससार पर्यटंतीति । परंपरसूत्रेत्वनिहितं (बुसिङ्गाइत्यादि) यत्किंचित्पूतिकृतं तद्दुध्येतेत्येवमन्यैरपि ...त्प्रेक्ष्य सबंधोयोज्य । अधुना सूत्रार्थ प्रतीयते । (यत्किंचिदिति)। आहारजातं ...आस्तांतावत्प्रभूतं । तदपि पूतिकृतमाधाकर्मादि सिक्थेनाप्युपसृष्टमास्तांताव तदपि न स्वयंकृतमपि तु श्रद्धावतान्येन नक्तिमताऽपरानागंतुकानुद्दिश्येहि निष्पादितं तच्च सहस्रांतरितमपि योनुंजीतान्यवहरेदसौ द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्र ...पक्षं वा सेवते । एतडुक्तं नवति । एवनूतमपि परकृतमपरागंतुकयत्यर्थ निष्पादि यदाधाकर्मादि तस्य सहस्रांतरितस्यापि योवयवस्तेनाप्युपसृष्टमाहारजातं नुजानस्य द्विपक्षसेवनमापद्यते । किं पुन यएते शाक्यादय स्वयमेव सकलमाहारजातं निष्पाद्य स्वय

कुत· पुन कर्मबंधस्तस्माच्च संसारावतरणमित्यर्थ ॥ अतस्ते यद्यपि कथंचिद्द्व्यब्रह्म चर्ये व्यवस्थितास्तथापि सम्यक् ज्ञानाभावान्न सम्यगनुष्ठानभाजइतिस्थितं । अपिच स र्वेप्येते प्रावाडुका स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शन स्वदर्शनानुरागादाख्यातार शोजनत्वेन प्र ख्यापयितारइति । नच तत्र विदितवेद्येनास्था विधेयेति ॥१३॥ पुनरन्यथाकृतवादिमत मुपदर्शयितुमाह । (सएसएइत्यादि) ते कृतवादिन शैवैकदडिप्रभृतय स्वकीये स्वकीये उपतिष्ठत्यस्मिन्नित्युपस्थान स्वीयमनुष्ठान दीक्षा गुरुचरणशुश्रूषादिका तस्मिन्नेव सिद्धिमशेषसांसारिकप्रपंचरहितस्वभावमभिहितवतोनान्यथा नान्येन प्रकारेण सिद्धि रवाप्यत इति । तथाहि शैवादीक्षातएव मोक्षइत्येव व्यवस्थिता । एकदडिका· पंच विंशतितत्त्वपरिज्ञानान्मुक्तिरित्यभिहितवतस्तथान्येपि वेदांतिकाध्यानाध्ययनसमाधिमार्गा नुष्ठानात्सिद्धिमुक्तवतइत्येवमन्येपि यथास्वदर्शनान्मोक्षमार्ग प्रतिपादयंतीति । अशेषद्वं द्वोपरमलक्षणाया सिद्धिप्राप्तेरधस्तात्प्रागपि यावदद्यापि सिद्धिप्राप्तिर्न भवतीति तावदिहै व जन्मन्यस्मदीयदर्शनोक्तानुष्ठानानुभावादष्टगुणैश्वर्यसद्भावो भवतीति दर्शयति । आत्म वश वर्तितु शीलमस्येति वशवर्ती वशेंद्रियइत्युक्तं भवति तद्यसौ सांसारिकै स्वभावैरभिभू यते । सर्वे कामाअभिलाषाअर्पिता· सपन्नायस्य ससर्वकामसमर्पितोयान्यान् कामान् कामयते ते तेऽस्य सर्वे सिध्यंतीति यावत् । तथाहि । सिद्धेरारादष्टगुणैश्वर्यसिद्धिर्भवति । तद्यथा । अणिमा लघिमा गरिमा प्राकाम्यमीशित्व वशित्व प्रतिघातित्व यत्र कामा वसायित्वमिति ॥ १४ ॥

सिद्धा य ते अरोगा य, इहमेगेसिमाहियं ॥ सिद्धिमेव पुरो काउ
सासए गढिआ नरा ॥ १५ ॥ असवुमा अणादीय, भमिहिति
पुणो पुणो ॥ कप्पकालमुवज्जति, ठाणा आसुरकिब्बिसियात्ति
बेमि ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशक ॥

अर्थ–हवे परभवे जे गति थाय ते कहेछे सिद्धायते के० ते जीव अमारा दर्शने प्र वर्त्तता शरीर त्याग करी, विशिष्ट समाधिने योगे सिद्ध थाय ते सिद्ध केवा? तो के, अरोगाय के० रोगरहित एटले शरीरनां दु ख थकी रहित छे एरीते इह के० एहि ज लोकने विषे मेगेसि के० एकेक कोइ शिवने मतें एम आहिय के० भाख्युं एटले क ह्यु ते दर्शनी पोतपोताने अनुष्ठाने सिद्धिमेवके० सिद्धिनेज, पुरोकाउके० आगल करी सासए के० आपणा अभिप्रायने विषे गढिआ के० गृध थता अनेक हेतु यु क्ति कहे ते कोनी परें? तो के, नराके० पामर नरनी पेरे. जेम ते अजाण म नुष्य पोताना मतनु कदाग्रह न त्यागे, तेम तें दर्शनीउंपण जे कांइ पोताना मतनु

अर्थ–हवे अनेरा अज्ञानीनुं मत देखाडेछे. इणमन्नतु अन्नाणं के० ए पूर्वे कह्योजे सदोष आहार लइने सुख माने तेनाथी वली अन्य अज्ञानीनुंमत देखाडेछे. इहमेगेसिआ हियंके० अहीयां कोइ एकने मते पण सर्वने मते नहीं एटले कोइक अज्ञानी एम कहेछे के देवउत्तेअयंलोए के० आ लोक जे चराचर ससार छे, ते देवे नीपजावेलो छे जेम करसणी बीज वावीने करसण नीपजावेछे ते सरखो जाणवो तथा वली बीजा एम कहेछे के बम्भउत्तेत्तिआवरे के० ए लोक ब्रह्मदेवे नीपजाव्योछे. ब्रह्मा जगत्पितामह इतिवचनात्. ॥ ५ ॥ वली कोइएक एम कहेछे, के ईसरेणकडेलोए के० ए लोक ईश्वरें करेलोछे पहाणाइ तहावरे के० तथा अवरे एटले बीजा वली एम कहेछे के, प्रधान एटले सत्व, रज अने तमगुणनी जे सम अवस्था ते प्रकृति कहिए तेणे ए लोक करे लो छे. बीजा एम कहेछे के मोरनी पांख कोणे चीतरी? सेलडीमिठ्ठ कोणे कीधी? स्वभा वथकी लोक नीपनोछे वली कांटा तीखा कोणे कीधा! लींब कडवो कोणे कर्यो तथा लस ण दुर्गंधमय, कमल सुगंधमय ए सर्व स्वभावेज नीपनांछे, तेम लोक पण स्वभावे निष्प न्न छे ते लोक केवोछे, तोके जीवाजीवसमाउत्तेके० जीव अजीव सहित तथा सुह दुक्ख सम न्निएके०सुखदुःखसहित छे ॥ ६ ॥ एक कहेछे के, सयंभुणाकडेलोएके० ए लोक स्वयंभु एटले विष्णु तेणे नीपजाव्यो अथवा ते विष्णु पेहेलो एकज हतो तेणे जगत नीपजाववानी चिंता करी त्यारे बीजी शक्ति नीपनी, त्यार पछी जगतनी सृष्टी निष्पन्न थई. इतिवुत्तंम हेसिणा के० एवु महर्षिए कह्युछे. त्यार पछी स्वयंभुए लोक नीपजावीने एवु चिंतव्युं जे एटली जगत सृष्टीनो समास क्यां थशे! तेवारे मार एटले यम नीपजाव्यो पछी मारे णसंथुयामायाके० तेणेमारे माया नीपजावी ते थकी ए लोक मरेछे. तेणलोए असासए के० ते कारण माटे ए लोक अशाश्वतो छे ॥ ७ ॥ वली तेहिज कहेछे माहणा समणा एगेके० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण जे त्रिदंडी प्रमुख ते एम आह के० कहेछे के, अंमकडेजगेके०ए सचराचर जगत ते अंडथकी निपनुं छे, ते एम कहेछे के जेवारे जगत मा काइ वस्तु न हती सर्व पदार्थ शून्य संसार हतो तेवारे ब्रह्माये पाणीमांहे इंडुं सरज्युं पछी ते इंडु वध्युं तेवारे ते भांगीने बे खंड थया, तेमांहे थकी अधोलोक अने ऊर्ध्वलोक नीपना तेमा समस्त प्रजा उत्पन्न थई एवा अनुक्रमे पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, आकाश, समुद्र, नदी, पर्वत, ग्राम, आगर, नगर इत्यादिक सर्व स्थिति उत्पन्न थई, ए कारणे अ सोके० ए ब्रह्माये ए सर्व तत्तके० तत्व एटले पदार्थ ते अकासीयके० कीधा एरीते ते ब्राह्मणादिक अयाणता मुसवदेके० परमार्थने अजाणता थका मृषा बोलेछे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथाऽपराज्ञानिमतमाह । (इणमिति) । इद वक्ष्यमाणमन्यदज्ञान

नुरोधेन सर्वविषयोपनोगादमुत्र मुक्त्यवाप्तेः । तदेव मुग्धजनं प्रतारयंतोऽनादि संसारकांतारं ज्रमिष्यंति पर्यटिष्यंति। स्वछंदरितोपात्तकर्मपाशा पाशावशायिता पौनःपुन्येन नारकादियातनास्थानेपूत्पद्यते । तथाहि । नेंद्रियैरनियमितैरशेषदंछप्रच्युतिलक्षणासिद्धिरवाप्यते । याप्यणिमाद्यष्टगुणलक्षणैहिकी सिद्धिरनिधीयते सापि मुग्धजनप्रतारणाय दंनकल्पैवेति । यापि च तेषां बालतपोनुष्ठानादिना स्वर्गावाप्तिः साप्येवप्राया नवतीति दर्शयति । कटपकालं प्रनूतकालमुत्पद्यते संनवंति । असुराश्रसुरस्थानोत्पन्नानागकुमारादयस्तत्रापि न प्रधानाः किं तर्हि किल्बिषिकाश्रधमाः प्रेष्यनूताश्रल्पर्धयोऽल्पनोगाः स्वल्पायुः सामर्थ्यादुपेताश्र नवंतीति । इति उद्देशकपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति समयाख्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ–प्रथमाध्ययने चतुर्थ उद्देशकः प्रारन्यते ॥

एते जिया नो न सरणं, बाला पंमियमाणिणो (पाठांतरे॥ यत्थवालेवसीयति)॥ हिच्चा णं पुव्व संजोगं, सिया किच्चोवएसगा॥१॥ तं च निक्खू परिन्नाय, वियं तेसुं ण मुछए॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे, मझेण मुणि जावए॥२॥

अर्थ–हवे चोथो उद्देशो प्रारंनिये ठैये. त्रीजे उद्देशे परतीर्थिनी वक्तव्यता कही हवे अहीं पण तेहिज कहेठे एते के० ते दर्शनी जे पूर्वे कह्या ते पंचनूतिक तज्जीव तछरीरवादी तथा गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक ए सर्वने कोणे जियाके० जीन्या? ते कहेठे–राग, द्वेष, परिग्रह, उपसर्ग तथा शब्दादिक विषय प्रबल मोहरूप वेरीए जीत्या ते कारणे नो के० शिष्यने आमंत्रणे अहो शिष्य ए वचन तु सही करीने सद्दहे न सरण के० ए परतीर्थीक कोइ जीवने शरण न थाय, एटले संसारमांहे पडतां प्राणीने उद्धरी नशके केमके जे कारणे ते बालाके० बाल अज्ञानी ठता पंमिय माणिणोके० आत्माने पंमित करी मानता अज्ञाने लागा सिदाय पोते उन्मार्गे पडता बीजाने उन्मार्गे पाडेठे, केमके तेनी आचरणादिरूप विरुद्ध देखायठे, ते गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडेठे हिच्चाणपुव्वसंयोग के० पूर्व संयोग एटले पूर्वे धनधान्य अने स्वजनादिक संयोग बामीने "अमे निःसंग प्रव्रजित ठैये" एम कहे, परंतु ते वली सियाके० ते बंधाणा एटले परिग्रह आरंनने विषे आसक्त एवा ठता गृहस्थजठे केमके ते किच्चोवएसगाके० ते ग्रहस्थनां कृत्य जे पचन तथा पाचनादिक ठकाय हिंसानो व्यापार तेनो जे उपदेश तेने विषे प्रवर्त्ते ते कारणे प्रव्रजित ठता गहस्थोनां करतव्य थकी वेगला नथी अर्थात् "जेवा गृही तेवा दर्शनी" ए कारणे कोइनो उद्धार न करी शके ॥ १ ॥ एवा दर्शनीउं देखीने चारित्रियाये जे करवु ते देखाडेठे. तंच निक्खू के० ते पाखंमी लोक वि

ते । ततश्चायमर्थः । स्वनावेन कृतोलोक कंटकादितैक्ष्ण्यवत् । तथान्ये नियतिकृतोलोको मयूरागरुहवदित्यादिनि कारणै कृतोयं लोकोजीवाजीवसमायुक्तो जीवैरुपयोगलक्षणै स्तथा जीवैर्धर्माधर्माकाशपुजलादिकै. समन्वित समुद्रधराधरादिकइति । पुनरपि लोकं विशेषयितुमाह । सुखमानदरूपं दु खमसातोदयरूपमिति ताभ्यां समन्वितोयुक्तइति ॥ ॥ ६ ॥ किंच । (सयंभुणाइत्यादि) । स्वयं नवतीति स्वयंनूर्विष्णुरन्यो वा सचैकएवादाव नूत्तत्रैकाकी रमते द्वितीयमिष्टवांस्ताश्चितानतरमेव द्वितीया शक्ति. समुत्पन्ना तदनतरमेव जगत्सृष्टिरनूदित्येव महर्षिणोक्तमनिहितं । एव वादिनोलोकस्य कर्तारमन्युपगतवतोपि च । तेन स्वयंनुवा लोक संपाद्यातिनारनयाद्यमाख्योमारयतीति मारोऽन्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता प्रसाधिता माया तया च मायया लोकाम्रियंते । नच परमार्थतोजीवस्योपयोगलक्षणस्य व्यापत्तिरस्त्यतोमायैषा । यथायं मृतस्तथा चायं लोकोऽशाश्वतोऽनित्योऽविनाशीति गम्यते ॥ ७ ॥ अपिच । (माहणाइत्यादि) । ब्राह्मणाद्विजात य श्रमणास्त्रिदंडिप्रनृतय । एके केचन पौराणिकान सर्वे एवमाहुरुक्तवत्तोवदति च । यथा जगदेतच्चराचरमंडेन कृतमडकृतं । अंडाज्जातमित्यर्थ । तथाहि । ते वदति यदा न किंचिदपि वस्त्वासीत् पदार्थशून्योयं ससारस्तदा ब्रह्माऽप्स्वडमसृजत्तस्माच्च क्रमेण वृद्धात्पश्चाद्विधानावमुपगतादूर्ध्वाधोविनागोऽनूत् तन्मध्ये च सर्वा प्रकृतयोऽनूवन् । एवपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसमुद्रसरित्पर्वतमकराकरनिवेशादिसंस्थितिरनूदिति । तथाचोक्तं । आसीदिदं तमोनूतमप्रज्ञातमलक्षण ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वत ॥ १ ॥ एवनूते चास्मिन् जगत्यसौ ब्रह्मा तस्य नावस्तत्त्व पदार्थजातं तदंमादिप्रक्रमेणाकार्षीत् कृतवानिति । तेच ब्राह्मणादय परमार्थमजानाना संतोमृषावदति अन्यथा च स्थितं तत्त्वमन्यथाप्रतिपादयंतीत्यर्थ ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइवि ॥ ए ॥ अमणुन्नसमुप्पायं, डुक्कमेव विजाणिया ॥ समुप्पायमजाणंता, कह नायति सवर ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवे ग्रथकार एनो उत्तर कहेछे. एरीते पूर्वे जे दर्शनी कह्या ते, सएहिं परियाएहिंके० पोतपोताना पर्याये करी एटले पोतपोतानी कल्पनाये लोयबूयाकडेतियके० एम कहे जे ए लोक अमुक अमुक प्रकारे कीधोछे परतु तत्तते णविजाणतिके० ते तत्त्व काइ जाणता नथी णविणासीकयाइविके० ए लोकतो कदापि काले विनाश पामे नहीं, एनी आदि पणनथीअने अंत पण नथी, तेथी एनो कर्त्ता कोइ नथी एवो परमार्थ ते जाणता नथी; पण अजाणथका नावे तेम व. एवा वचनना बोलनारने फल छे

नाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यभिधाय सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं (एतेजियानो इत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहाय संबंधस्तद्यथा। अनंतरसूत्रेऽभिहितं। तीर्थिकाश्रसुरस्थानेषु किल्बिषाजायतइति। किमिति। यतएते जिता परीषहोपसर्गै। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं। आदाविदमभिहितं बुध्येत त्रोटयेच्च। ततश्चैतदपि बुध्येत। यथैते पंचभूतादिवादिनोगोशालकमतानुसारिणश्च जिता परीषहोपसर्गैः कामक्रोधलोभमानमोहमदाख्येनाऽरिषड्वर्गेण चेत्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबंधउत्प्रेक्ष्य। तदेवं कृतसंबंधस्याऽस्य सूत्रस्येदानीं व्याख्या प्रतन्यते। (एतइति) पंचभूतैकात्मतज्जीवतच्छरीरादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणश्च त्रैराशिकाश्च जिताअभिभूतारागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च तथा प्रबलमहामोहोद्भवाऽज्ञानेन च। भो इति विनेयामंत्रणं। एवं त्वं गृहाण। यथैते तीर्थिकाअसम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवितुमर्हंति। न कथंचित्त्रातुं समर्थाइत्यर्थः। किमित्येवं यतस्ते बालाइव बाला। यथा शिशवः सदसद्विवेकवैकल्याद्यत्किंचनकारिणोभाषिणश्च। तथैतेऽपि स्वयमज्ञाः संतः परानपि मोहयंति। एवंभूताअपिच संतः पंडितमानिनइति। क्वचित्पाठोजत्थबालोवसीयइति। यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन्नवसीदति तत्र ते व्यवस्थिता यतस्ते न कस्यचित्त्राणायेति। यच्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति। हित्वा त्यक्त्वा। णमिति वाक्यालंकारे। पूर्वसंयोगोधनधान्यस्वजनादिभिः संयोगस्तं त्यक्त्वा किल वयं निःसंगाः प्रव्रजिताइत्युत्थाय पुनः सिता बद्धाः परिग्रहेष्वारंभेष्वासक्तास्ते गृहस्थास्तेषां कृत्यं करणीयं पचनपाचनकंडनपेषणादिकाभूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः कृत्योपदेशकावा। यदिवा सियाइति आर्षत्वाद्बहुवचनेन व्याख्यायते। स्युर्भवेयुः। कृत्यं कर्तव्यं सावद्याऽनुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभारंभरूपः संविद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः प्रव्रजिताअपि संतः कर्तव्यैर्गृहस्थेभ्यो न भिद्यते। गृहस्थाइव तेऽपि सर्वावस्थाः पंचसूनाव्यापारोपेताइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवंभूतेषु च तीर्थिकेषु सत्सु भिक्षुणा यत्कर्तव्यं तद्दर्शयितुमाह। तंचभिक्खूइत्यादि। तं पाखंडिकलोकमसदुपदेशदानाऽभिरतं परिज्ञाय सम्यगवगम्य यथैते मिथ्यात्वोपहतांतरात्मानः सद्विवेकशून्या नालमते हितायाल नान्यस्माइत्येवं पर्यालोच्य भावभिक्षुः संयतोविद्वान् विदितवेद्यस्तेषु न मूर्छयेत् न गार्ध्यं विदध्यान्न तैःसह संपर्कमपि कुर्यादित्यर्थः। किंपुनः कर्तव्यमिति पश्चार्द्धेन दर्शयति। अनुत्कर्षवानित्यष्टमदस्थानानामन्यतमेनाऽप्युत्सेकमकुर्वन्। तथा अप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत्। इदमुक्तं भवति। तीर्थिका

त्यस्तथासति स्वतएवोत्पत्त्यनंतरं विनाशित्वादात्मनोन त्राणाय कृतोन्यत्करणं प्रति तस्य व्यापारचिंतेति । तथा किममूर्तोमूर्तिमान् वा । यद्यमूर्तस्तदाऽकाशवदकर्तैवाऽथ मूर्तिमान् तथासति प्राकृतपुरुषस्येवोपकरणसव्यपेक्षस्य स्पष्टमेव सर्वजगदकर्तृत्वमिति । देवगुप्तदेवपुत्रपक्षौ त्वतिफल्गुत्वादपकर्णयितव्याविति । एतदेव दूषणं ब्रह्मोप्तपक्षेपि दृष्टव्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । तथा यदुक्तं । तनुभुवनकरणादिकं विमत्यधिकरणभावापन्नं विशिष्टबुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद्घटादिवदिति तदयुक्तं । तथाविधविशिष्टकारणपूर्वकत्वे न व्याप्त्यसिद्धेः । कार्यपूर्वकत्वमात्रेण तु कार्यं व्याप्तं । कार्यविशेषोपलब्धौ कारणविशेषप्रतिपत्तिर्गृहीतप्रतिबंधस्यैव भवति । नचात्यंतादृष्टे तथा प्रतीतिर्भवति । घटे तत्पूर्वकत्वं प्रतिपन्नमिति चेत् युक्तं । तत्र घटस्य कार्यविशेषत्वप्रतिपत्तेर्नत्वेवं सरित्समुद्रपर्वतादौ बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतइति । पुनरप्युक्तं । नन्वतएव घटादिसंस्थानविशेषदर्शनवत्पर्वतादावपि विशिष्टसंस्थानदर्शनाद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य साधनं क्रियते । नैतदेव युक्तं । यतोनहि संस्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वत्वावगतिर्भवति । यदितु स्यान्मृद्विकारत्वाद्वल्मीकस्यापि घटवत्कुंभकारकृतिः स्यात् । तथाचोक्तं । अन्यथाकुंभकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् । घटादेः कारणात्सिद्धे वल्मीकस्यापि तत्कृतिरिति । तदेवं यस्यैव संस्थानविशेषस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतस्तद्दर्शनमेव तथाविधकारणानुमापकं भवति न संस्थानमात्रमिति । अपिच घटादिसंस्थानानां कुंभकारएव विशिष्टः कर्तोपलभ्यते नेश्वरः । यदि पुनरीश्वरः स्यात्किं कुंभकारेणेति । नैतदस्ति । तत्रापीश्वरएव सर्वव्यापितया निमित्तकारणत्वेन व्याप्रियते । नन्वेवं दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यात् । तथाचोक्तं । शस्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य किं स्थाणोः कारणत्वं न कल्प्यते ॥ १ ॥ तदेवं दृष्टकारणपरित्यागेनाऽदृष्टपरिकल्पना न न्याय्येति । अपिच । देवकुलावटादीनां यः कर्ता ससावयवोऽव्याप्यनित्योदृष्टस्तदृष्टांतसाधितश्चेश्वरएवंभूतएव प्राप्नोति । अन्यथाभूतस्य च दृष्टांताभावाद्व्याप्त्यसिद्धेर्नानुमानमिति । अनयैव दिशा स्थित्वाप्रवृत्त्यादिकसाधनमसाधनमायोज्य तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । यदपि चोक्तं प्रधानादिकृतोऽयं लोकइति तदप्यसंगतं । यतस्तत्प्रधानं किं मूर्तममूर्तं वा । यद्यमूर्तं न ततोमकराकरादेर्मूर्तस्योद्भवोघटते । नह्याकाशात्किंचिदुत्पद्यमानमालक्ष्यते मूर्तामूर्तयोः कारणविरोधादिति । अथ मूर्तं तत्कुतः समुत्पन्नं । न तावत्स्वतोभोकस्यापि तथोत्पत्तिप्रसंगात् नाप्यन्यतोऽनवस्थापत्तेरिति । अन्यथाऽनुत्पन्नमेव प्रधानाद्यनादिभावेनास्ते तद्वल्लोकोपि किं नेष्यते । अपिच । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्युच्यते नचाऽविकृतात्प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिष्यते भवद्भिः । नच विकृतं प्रधानव्यपदेशमास्कंदतीत्यतोन प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिति । अपिचाचेतनाया प्रकृतेः कथं पुरुषार्थं

दिमुक्ता धनाद्यनावेपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावंत सपरिग्रहाएव तथा सारंना' सावद्य व्यापाराइतीह विचारे एकेषामाख्यात । यथा किमनया शिरस्तुंडमुडनक्रियया । गुरो रनुग्रहाद्यदा परमाक्षरावाप्तिर्नवति तदा मोक्ष स्यादेव नापमाणास्ते न त्राणाय स्यु । ये त्रातु समर्थास्तानाह । अपरिग्रहाधर्मोपकरणविना शरीरोपनोगाय स्वल्पोपि न विद्य ते परिग्रहोयेषा तेऽपरिग्रहाश्चनारंनाश्च तान् निक्षु साधु शरण परिव्रजेत् गच्छेत् । तेषा शरण यायादित्यर्थ ॥३॥ परिग्रहारंनवर्जन यथा स्यात्तथाह । (कडेसुइति) । कृतेषु गृहस्थै स्वार्थे निष्पादितेषु उंढनादिपिंडेषु ग्रासमाहार एषयेत् याचेत इति षोडशोजमदोषत्याग सूचित्त । तथा विद्वान् सयमनिपुणोदत्त परैराशसादोषरहितैर्निश्रयसबुध्या वितीर्णं तत्र एषणा ग्रहणैषणा चरेत् । दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनादोषा एषणा चरेदित्यनेन दश एष णादोषाश्च सूचिता । एतद्दोषत्यागेन पिंड गृह्णीयादित्यर्थ । अगृद्धोऽमूर्छितोविप्रमुक्तो रागद्वेषरहितश्च । आहारे स्यादिति पचग्रासैषणादोषत्यागउक्त । सएवनूतोनिक्षु परेषा मपमान परिवर्जयेत् तपोमद ज्ञानमद च न कुर्यादित्यर्थ । आत्मन सकाशात्परान् ही नान् न पश्येदिति तात्पर्य ॥ ४ ॥

॥ टीका–किमिति ते तीर्थिकास्त्राणाय न नवतीति दर्शयितुमाह । (सपरिग्रहाइत्या दि) । सपरिग्रहेण धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिना वर्तंते तदनावेऽपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावत सपरिग्रहा । तथा सहारंनणे जीवोपमर्दादिकारिणा व्यापारेण वर्ततऽति तदना वेऽप्यौद्देशिकादिनोजित्वात्सारंना । तीर्थिकादय सपरिग्रहारंनकत्वेनैव च मोक्षमार्गं प्रसा धयतीति दर्शयति । इह परलोकचिंतायामेकेषाकेषाचिदाख्यात नापित । यथा किमनय शिरस्तुंडमुंडनादिकया क्रियया पर गुरोरनुग्रहात्परमक्षरावाप्तिस्तद्दीक्षावाप्तिर्वा यदि नव ति ततोमोक्षोनवतीत्येव नापमाणास्ते न त्राणाय नवतीति । येतु त्रातु समर्थास्तान् श्चार्द्धेन दर्शयति । अपरिग्रहा न विद्यते धर्मोपकरणादृते शरीरोपनोगाय स्वल्पोऽपि प[रि] ग्रहोयेषाते अपरिग्रहा । तथा न विद्यते सावद्यआरंनो येषा तेऽनारंनास्तैचैव नूता [क] र्मलघव स्वयंयानपात्रकल्पा ससारमहोदधेर्जंतूत्तारणसमर्थास्तान् निक्षुर्निक्षणशी[ल] उद्देशिकाद्यपरिनोजी त्राण शरण परि समताद्व्रजेद्गच्छेदिति ॥३॥ कथं पुन पुनस्तेनापरि[ग्र] हेणाऽनारंनेण च वर्तनीयमित्येतद्दर्शयितुमाह (कडेसुइत्यादि) गृहस्थै परिग्रहारं[न] द्वारेणाऽत्मार्थ ये निष्पादितार्उदनादयस्ते कृताउच्यंते । तेषु कृतेषु परकृतेषु पर[नि] ष्ठितेष्वित्यर्थ ॥ अनेन च षोडशोजमपरिहार सूचित । तदेवमुजमदोषरहितं ग्रस्यतइति ग्र[ा] सथाहारस्तमेवनूतमन्वेषयेन्मृगयेत् याचेदित्यर्थ । तथा विद्वान्सयमकरणैकनिपुण रैराशसादोषरहितैर्यन्नि श्रेयसबुध्या दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनदोषा परिगृहीताइष्टव्या

डुखस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं । एवकारोऽवधारणे । सचैव संबंधनीय । अमनोज्ञसमुत्पादमेव डुःखमित्येव विजानीयादवगछेत्प्राज्ञ । एतडुक्तं नवति । स्वकृताऽसदनुष्ठानादेव डुखस्योद्भवोनवति नान्यस्मादित्येव व्यवस्थितेपि सत्यनतरोक्तवादिनोऽसदनुष्ठानोद्भवस्य डुखस्य समुत्पादमजानाना संतोऽन्यतईश्वरादेर्डुखस्योत्पादमिछंति । तेचैवमिछत कथं केन प्रकारेण डुखस्य संवर डुखप्रतिघातहेतु ज्ञास्यति । निदानोछेदेन हि निदानिनउछेदोनवति । तेन्र निदानमेव न जानंति तत्वाऽजानाना कथं डुखोछेदाय यतिष्यते यत्नवतोपि च नैव डुखोछेदनमवाप्स्यंत्यपि तु संसारएव जन्मजरामरणेष्टवियोगाद्यनेकडुखव्राताघ्राताभूयोभूयोऽरहट्टघटीन्यायेनानंतमपि कालं संस्थास्यंति ॥ १० ॥ ॥

सुद्धे अपावए आया, इहमेगेसिमाहियं ॥ पुणो किड्डापदोसेणं, सो तत्र अवरज्झई ॥ ११ ॥ इह संवुडे मुणी जाए, पच्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा भुज्जो, नीरयं सरयं तहा ॥ १२ ॥ एताणुवीति मेधावी, बंनचेरेण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सवे, अक्कायारो सयं सय ॥ १३ ॥ सए सए उवठाणे, सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती, सवकाम समप्पिए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे प्रकारांतरे दर्शनीनुं मत देखाडेछे. ए प्रस्तावे इहमेगेसिमाहियंके० एक वली कोइक, त्रैराशिक गोशालामतानुसारी ते एम कहेछेके, ए आयाके० आत्माते मनुष्यने नवेज सुद्धेके० शुद्ध थाय अपावए के० पापरहित थाय एटले सर्व कर्म क्षयकरी मोक्षे जाय पुणोके० वली सोके० तेहज आत्मा तत्रके० त्या मोक्षनेविषे छतो किड्डापदोसेणंके० क्रीडाप्रदोषे करी एटले रागद्वेषने वशे करी अवरज्झइके० अपराध करे एटले कर्म रजे करी अशुद्ध थाय एटले शुं कहुं? के ते मुक्ति छतां जीवने पोताना सासननी पूजा जाणी, अने अन्य सासननो परानव जाणी, पोताने राग उपजावे तथा पोताना सासननो व्याघात देखी द्वेष उपजे ए कारण माटे आत्मा निर्मल छतो उज्वल वस्त्रनी परे शनैःशनैः मलीन थाय. ए प्रकारे ते आत्मा वली ससारमाहे अवतरे एवु जे त्रैराशिक कहेछे. ते जीवनी त्रणराशी स्थापेछे. प्रथम आत्मा सकर्मक, पछी वली अकर्मक थईने मुक्तिमां जाय, ए बीजी राशी अने त्यां मुक्तिने विषे वली कर्म उपार्जी संसारमाहे आवे ए त्रीजी राशी. ॥ ११ ॥ इहसंवुडेमुणीजाएके० अहीं मुक्ति थकी आवी मनुष्यना नवमां उपजीने मुनि एटले यमनियम आदरी, संवुडे एटले संवर आदरी, पच्छाहोइअपावएके० पछी पापरहितनिर्मल थाय. एना उपर दृष्टांत कहेछे, जहाके० जेम वियडंबुके० विकटांबु एटले पा

अगना अगनैवेति । अथवा अनंतोनिरवधिक तथा नित्योऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूप तथा शाश्वत कार्यद्रव्य नवदपि प्राते परमाणुत्व न त्यजति तथा न विनश्यति दिगा त्माकाशाद्यनपेक्षया । तथा अंतवान् लोक सप्तद्वीपा वसुधरेति परिमाणोक्तेस्तादृक्परि माणोनित्यइति धीर -साहसिकोव्यासादिरतीव पश्यति ॥ ६ ॥

॥ टीका–एव निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकाराऽनिहित किंचुचमाय चचठत्तीत्येतत्प्रद र्श्यैवानीं परवादिमतमेवोद्देशार्थाधिकाराभिहित दर्शयितुमाह । (लोगवायमित्यादि)। लोकाना पाखण्डिना पौराणिकाना वा वादोलोकवाद । यथा स्वाभिप्रायेणाऽन्यथावा ऽभ्युपगमस्त निशामयेत् शृणुयात् जानीयादित्यर्थ । तदेव दर्शयति । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषा केषांचिदिदमाख्यातमभ्युपगम । तदेव विशिनष्टि । विपरीता परमार्थादन्यथाभूता या प्रज्ञा तया संभूत समुत्पन्न तत्त्वविपर्यस्तबुद्धिग्रथितमितियावत् । पुनरपि विशेषय ति । अन्यैरविवेकिनिर्यद्उक्त तदनुग यथावस्थितार्थविपरीतानुसारिनिर्यद्उक्त विपरीतार्था भिधायितया तदनुगच्छतीत्यर्थ ॥५॥ तमेव विपर्यस्तबुद्धिरहित लोकवाद दर्शयितुमाह । (अणतेनिइएलोएइत्यादि) नाऽस्यातोऽस्तीत्यनत । न निरन्वयनाशेन नश्यती त्युक्त नवतीति । तथाहि । यो यादृगिह नवे स तादृगेव परनवेऽप्युपपद्यते पुरुप पुरुप एवाऽगनाऽगनैवेत्यादि । यदिवाऽनतोऽपरिमितोनिरवधिकइति यावत् । तथा नित्यइति । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावोलोकइति । तथा शश्वन्नवतीति शाश्वतो द्व्यणुकादिकार्य द्रव्यापेक्षया शश्वन्नवन्नपि न कारणद्रव्य परमाणुत्व परित्यजतीति । तथा न विनश्यतीति दिगात्माकाशाद्यपेक्षया । तथाऽत्तोऽस्याऽस्तीत्यतवान् लोक । सप्तद्वीपा वसुंधरेति परिमा णोक्ते सच तादृक् परिमाणोनित्यइत्येव धीर कश्चित्साहसिकोऽन्यथाभूतार्थप्रतिपा दनात् व्यासादिरतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तदेवभूतमनेकनेदभिन्न लोकवाद निशामये दिति प्रकृतेन संबध । तथा अपुत्रस्य न सति लोकाब्राह्मणादेवा श्वानोयक्षागोनि र्द्दतस्य गोघ्नस्य वा न सति लोकाइत्येवमादिक निर्युक्तिक लोकवाद न निशामयेदिति ॥६॥

अपरिमाणं वियाणाई, इह मेगेसिमाहिय ॥ सवत्त सपरिमा
ण, इति धीरोति पासई ॥७॥ जे केइ तसा पाणा.चिठंति अडुवा
वरा ॥ परियाए अत्थि से अंजू, जेण ते तसथावरा ॥ ८ ॥

अर्थ–वली तेहिज कहेछे –अपरिमाण वियाणाइ के० जेनु क्षेत्र थकी तथा काल थकी प्रमाण नथी, तेटलुज मात्र जाणे पण सर्वज्ञ नथी इह के० ए लोकनेविषे मेगे सिमाहिय के० कोइएक दर्शनीने मते एम कह्युछे, जे अमारा तीर्थनो स्वामी अपरिमा

मनिहितवतोनान्यथा । तथासिद्धिप्राप्तेरधः प्रागपि वशवर्ती वशेंद्रिय स्यात् अस्मन्म ताश्रित सांसारिकैः स्वभावैर्नाभिभूयते । सर्वे कामाश्वभिलापा समर्पिता सपन्नायस्य ससर्वकामसर्पितः इहलोके ईदृश स्यात् परलोके च मोक्षं यायादित्यर्थ ॥ १४ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं प्रकारांतरेण कृतवादिमतमेवोपन्यस्यन्नाह । (सुद्धेत्यादि) । इहा स्मिन् कृतवादिप्रस्तावे त्रैराशिकागोशालकमतानुसारिणोयेपामेकविंशतिसूत्राणि पूर्व गतत्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या व्यवस्थितानि ते एव वदंति । यथायमात्मा शुद्धोमनुष्यभ वएव शुद्धाचारोभूत्वा अपगताशेषमलकलंकोमोक्षेऽपापकोभवति । अपगताशेपक र्मा भवतीत्यर्थ । इदमेकेषा गोशालकमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरसावात्माऽशुद्धत्वाऽक र्मकत्वराशिद्वयावस्थोभूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा सतत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रज सा श्लिष्यते । इदमुक्तं भवति । तस्य हि स्वशासनपूजामुपलभ्यान्यशासनपराभव चोपल भ्य क्रीडोत्पद्यते प्रमोदः संजायते स्वशासनन्यक्कारदर्शनाच्च द्वेपस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेपाभ्या मनुगतांतरात्मा शनैर्निर्मलपटवदुपभुज्यमानोरजसा मलिनीक्रियते मलीमसश्च कर्मगौ रवाद्भूय संसारेऽवतरति । अस्या चावस्थायां सकर्मकत्वात्तृतीयराश्यवस्थोभवति ॥ ॥ ११ ॥ किंच । (इहेत्यादि) । इहास्मिन् मनुष्यभवे प्राप्त सन् प्रव्रज्यामभ्युपेत्य संवृ तात्मा यमनियमरतोजात सन् पश्चादपापो भवति। अपगताऽशेपकर्मकलंकोभवतीति भाव । तत स्वशासन प्रज्ञाप्य मुक्त्यवस्थोभवति । पुनरपि स्वशासनपूजादर्शनान्निका रोपलब्धेश्च राग द्वेपोदयात्कलुषितांतरात्मा विकटांबुवदुदकवन्नीरजस्कं स वातोद्धूतरेणुभि र्वहुसपृक्त सरजस्क मलिन भूयोयथा भवति तथाऽयमप्यात्माऽनंतकालेन संसारो द्वेगा च्छुद्धाचारावस्थोभूत्वा ततोमोक्षावाप्तौ सत्यामकर्मावस्थोभवति । पुनः शासनपूजानि कारदर्शनाद्रागद्वेपोदयात्सकर्मा भवतीत्येव त्रैराशिकानां राशित्रयावस्थोभवत्यात्मे त्याख्यातं ॥ अकंच । दग्धेंधन पुनरुपैति भव प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितभीरु निष्ठ ॥ मुक्त स्वयं कृतभवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यमिति ॥ १२ ॥ अधुनैतद्दूपयितुमाह । (एयाणुचीइत्यादि) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचित्य मेधावी प्र ज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितोवा एतदवधारयेत् । यथा नैते राशित्रयवादिनोऽन्येवोप्तादिलोक वादिनश्च ब्रह्मचर्ये तदुपलक्षिते वा सयमानुष्ठाने वसेयुरवतिष्ठेरन्निति । तथाहि । तेपामय मभ्युपगमोयथा स्वदर्शनपूजानिकारदर्शनात्कर्मबंधोभवत्येवचावश्यं तद्दर्शनस्य पूजा यास्तिरस्कारेण चोभयेन वा भाव्य तत्संभवाच्च कर्मोपचयस्तदुपचयाच्च शुध्यभाव शु ध्यभावाच्च मोक्षाभावः । नच मुक्तानामशेपकर्मकलंकाना कृतकृत्यानामपगताशेपयथाव स्थितवस्तुतत्त्वाना समस्तुतिनिंदानामपगतात्मात्मीयपरिग्रहाणां रागद्वेपानुषंगस्तद्भावाच्च

निप्रेतार्थाऽतींद्रियदर्शीति । तथाचोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञान, तस्य न क्वोपयुज्यतइति । इहाऽस्मिंल्लोके एकेषा सर्वज्ञापन्हवया दिनामिदमाख्यातमयमन्युपगम । तथा सर्वक्षेत्रमाश्रित्यकाल वा परिछेद्यं कर्मतापन्न माश्रित्य सदपरिमाणेन सपरिमाण सपरिछेद धीर्बुद्धिस्तयाराजतइतिधीरइत्येवमसौ ष्ठतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तथाहि । ते ब्रुवते दिव्य वर्षसहस्रमसौ ब्रह्मा स्वपिति तस्यामवस्थाया न पश्यत्यसौ तावन्मात्रं च काल जागर्ति तत्र च पश्यत्यसाविति तदेवंभूतोबहुधा लोकवाद प्रवृत्त ॥ ७ ॥ अस्य चोत्तरदानायाह । (जेकेइइत्यादि) ये केचन त्रस्यतीति त्रसाद्वींद्रियादय प्राणा प्राणिन सत्वास्तिष्ठति त्रसत्वमनुभ वति । अथवा स्थावरा स्थावरनामकर्मोदयात् पृथिव्यादयस्ते । यश्चय लोकवाद सत्योभवेत् । यथासौ यादृगस्मिन् जन्मनि मनुष्यादि सोऽन्यस्मिन्नपि जन्मनि ता दृगेव भवतीति । तत स्थावराणा त्रसाणा च तादृशत्वे सति दानाध्ययनजपनियमत पोनुष्ठानादिका क्रिया सर्वाप्यनर्थिकाश्चापद्येरन् । लोकेनाऽपि चाऽन्यथात्वमुक्तं । तद्य था । सर्वे एषशृगालोजायते य सपुरीषोदह्यते तस्मात् स्थावरजगमाना स्वकृतकर्मवशा त् परस्परसक्रमणाद्यनिवारितमिति । तथा अनतोनित्यश्च लोकइति यदभिहितं तत्रेदमभिधीयते । यदि स्वजात्यनुछेदेनास्य नित्यताऽभिधीयते तत परिणामानित्य त्वमस्मदभीष्टमेवाऽन्युपगतं न काचित्क्षति । अथाऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वेन नित्यत्व मन्युपगम्यते तन्न घटते तस्याऽध्यक्षबाधितत्वात् । नहि क्षणभाविपर्यायानाऽलि गितं किंचिद्वस्तु प्रत्यक्षेणाऽवसीयते । नि पर्यायस्यच खपुष्पस्येवाऽसद्रूपतेव स्यादिति । तथा शश्वद्भवन कायद्रव्यस्याऽकाशात्मादेश्चाऽविनाशित्व यदुच्यते द्रव्यविशे षापेक्षया तदप्यसदेव । यत सर्वमेव वस्तूत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वेन निर्विनागमेव प्रवर्त ते अन्यथा वियदरविदस्येव वस्तुत्वमेव हीयेतेति । यथा यदुक्तमतवाल्लोक सप्तद्वीपावच्छि न्नत्वादित्येतन्निरतरा सुहृद प्रत्येष्यति न प्रेक्षापूर्वकारिणस्तदग्राहकप्रमाणाभावादिति । तथा यदप्युक्त अपुत्रस्य न सति लोकाइत्यादीत्येतदपि बालभाषित । तथाहि । किंपुत्रस त्तामात्रेणैव विशिष्टलोकावाप्तिरुत तत्कृतविशिष्टानुष्ठानात् । तद्यदि सत्तामात्रेण ततइभ हलकार्मुकगर्त्तावराहादिभिर्व्याप्तालोकाभवेयुस्तेषा पुत्रबहुलत्वसभवात् । अथानुष्ठानमाश्री यते । तत्र पुत्रद्वयेसत्येकेन शोभनमनुष्ठितमपरेणाऽशोभनमिति तत्र का वार्त्ता स्व कृतानुष्ठान च निष्फलमापद्येतेत्येव यत्किंचिदेतदिति । तथा श्वानोयक्षाइत्यादियुक्ति विरोधित्वादनाकर्णनीयमिति । यदपि चोक्तम् । अपरिमाण विजानातीति तदपि न घटा मियर्ति । यत सत्यप्यपरिमितज्ञत्वे यद्यसौ सर्वज्ञोन भवेत् ततोहेयोपादेयोपदेश दानविकलत्वान्नैवाऽसौ प्रेक्षापूर्वकारिभिराद्रियते तथासति तस्य कीटसंख्यापरिज्ञान

अनुष्ठान ते सर्वे मुक्तिनुं कारण ठे, एम कहे. ॥ १५ ॥ हवे एवुं कहेनारने फल देखाडेठे. असवुमा के० ते पाखम्डि दर्शनी संवररहित, असंयमसहित, एवी रीते मुग्धलोकने विप्रतारणहार अणादीयं के० अनादि संसारमाहे नमिहिति के० परिभ्रमण करता पुणो पुणो के० वली वली नरकादिनी पीडा पामशे. कदाचित् ते बाल तपने प्रनावे स्वर्गादिक गति पामे, तोपण केवी पामे तो के, कप्पकालं के० घणाकालसुधी वाणा के० स्थानक जे आसुर के० असुर कुमारादिकना स्थानक तेनेविषे अथवा किब्बिसिया के० किल्बिषीयादिक अधमं स्थानक त्या उवज्जंति के० उत्पन्न थया उता डुखज पामे. तिबेमि के० पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्त ।

दीपिका—एतदेवाह । (सिद्धेति) । तेऽस्मन्मताश्रिता सिद्धाश्च अरोगा स्यु । अरोगग्रहणाच्छारीरमानसानेकडु खरहिताश्चेति ज्ञेयं । इहास्मिन् लोके एकेषा शैवादीनामिदमाख्यातं । ते हि सिद्धिं मुक्तिमेव पुरस्कृत्याऽङ्गीकृत्य स्वाशये स्वमतानुरागे ग्रथिता संबद्धानरा. प्राकृतपुरुषा पण्डितंमन्याइवेत्यर्थ ॥ १५ ॥ एतद्दूषणायाह । (असवुडेति) ते पाखंडिनस्तत्त्वतोऽसंवृताअनादिक संसार पुन पुनर्भ्रमिष्यंति । यदि कथंचित्तेषा स्वर्गावाप्तिस्तथापि कल्पकाल बहुकालमुत्पद्यते सनवत्यसुरा । असुरस्थानोत्पन्नाअपि न प्रधाना किंतर्हि किल्बिषिकाअधमाएवेति ॥ १६ ॥ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ इति सूत्रकृतांग दीपिकाया प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशक ।

॥ टीका—तदेवमिहैवास्मडुक्तानुष्ठायिनोऽष्टगुणैश्वर्यलक्षणा सिद्धिर्भवत्यमुत्रचाऽशेषद्वन्द्वोपरमलक्षणा नवतीति दर्शयितुमाह । (सिद्धायतेइत्यादि) ये ह्यस्मडुक्तमनुष्ठान सम्यगनुतिष्ठंति तेऽस्मिन् जन्मन्यष्टगुणैश्वर्यरूपा सिद्धिमासाद्य पुनर्विशिष्टसमाधियोगेन शरीरत्यागं कृत्वा सिद्धाश्चाशेषद्वन्द्वरहिताअरोगाभवति । अरोगग्रहण चोपलक्षणं । अनेकशरीरमानसद्वन्द्वैर्न स्पृशंति शरीरमनसोरनावादित्येवमिहास्मिन्लोके सिद्धिविचारे वा एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं नाषितं । तेच शैवादय सिद्धिमेव पुरस्कृत्य मुक्तिमेवांगीकृत्य स्वकीये आशये स्वदर्शनाभ्युपगमे ग्रथिता सबद्धाअध्युपपन्नास्तदनुकूलायुक्ती प्रतिपादयंति । नराइव नरा प्राकृतपुरुषा शास्त्रावबोधविकला स्वाभिप्रेतार्थसाधनाय युक्ती प्रतिपादयत्येव तेपि पंडितंमन्या परमार्थमजानाना स्वाग्रहप्रसाधिकां युक्तिमुद्घोषयंतीति । तथाचोक्तं । आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ॥ पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं ॥ १ ॥ १५ ॥ सांप्रतमेतेषामनर्थप्रदर्शनपुर सर दूषणाभिधित्सयाह (असवुडाइत्यादि). तेहि पाखंडिकामोक्षाभिसंधिनः समुत्थिताअपिअसंवृताइंद्रियनोइंद्रियैरसंयताइहाप्यस्माक लाभइंद्रिया

॥ दीपिका—अत्र दृष्टांतमाह । (उरालमिति)। उदारं स्थूलं जगतोयोगं । औदारिका प्राणिनोगर्भकललार्बुदरूपादवस्थाविशेषाद्विपरीतं बालकुमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादपते गच्छति । अयमर्थः । औदारिकशरीरिणोमनुष्यादेर्बालकुमाराद्यवस्थाविशेषाः प्रत्यक्षेण दृश्यंते न पुनर्यादृक्प्राक्तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथात्वं ज्ञेयं । तथा आक्रांताः पीडितादुःखेन सर्वे जंतवस्ततस्तेऽहिंसितानवंति तथा कार्यं । अथवाऽकांतमप्रियदुःखं येषां तेऽकांतदुःखाश्चशब्दात् प्रियसुखाश्च अतः सर्वान्नहिंस्यादिति दृष्टांतोदर्शितउपदेशश्च दत्तः । ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान्न हिंस्यादित्याह । (एयमिति) खुनिश्चये । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्किंचन प्राणिजातं न हिनस्ति । अहिंसा समतां चैव एतावद्विजानीयात् । कोर्थः । यथा मम मरणं दुःखं वाऽप्रियं एवं सर्वस्य प्राणिलोकस्याप्रीतिः । एवं ज्ञात्वा न हिंस्यात्प्राणिनः । उपलक्षणान्मृषा न ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाब्रह्मा सेवेत न परिग्रहं कुर्यादिति ॥ १० ॥

॥ टीका—अस्मिन्नेवाऽर्थे दृष्टांतमिवित्सयाऽऽह । (उरालमित्यादि)। उरालमिति स्थूलमुदारं जगतऔदारिकजंतुग्रामस्य योगं व्यापारं चेष्टामवस्थाविशेषमित्यर्थः । औदारिकशरीरिणोहि जंतवः प्राक्तनादवस्थाविशेषाज्जन्मकललार्बुदरूपाद्विपर्यासनूतं बालकौमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गच्छंति पर्ययंते । एतदुक्तं नवति । औदारिकशरीरिणोहि मनुष्यादेर्बालकौमारादिकः कालादिकृतोऽवस्थाविशेषोऽन्यथा चाऽन्यथाऽनवन् प्रत्यक्षेणैव लक्ष्यते न पुनर्यादृक् प्राक् तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथाऽन्यथा च नवनं इष्टव्यमिति । अपिच सर्वे जंतवआक्रांता अनिनूतादुःखेन शारीरमानसेनाऽसातोदयेन दुःखाक्रांताः सतोऽन्यथाऽवस्थानाजो लक्ष्यते । अतः सर्वेपि ते यथाऽहिंसिता नवंति तथा विधेयं । यदि वा सर्वेऽपि जंतवोऽकांतमनभिमतं दुःखं येषां तेऽकांतदुःखाः । चशब्दात्प्रियसुखाश्च ते तान् सर्वान् न हिंस्यादित्यनेन वाऽन्यथात्वदृष्टांतोदर्शितोनवत्युपदेशश्च दत्तइति ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान् न हिंस्यादित्याह । (एवंखुइत्यादि)। खुरवधारणे । एतदेव ज्ञानिनोविशिष्टविवेकवतः सारं न्याय्यं यत्किंचनप्राणिजातं स्थावरं जंगमं वा न हिनस्ति न परितापयति । उपलक्षणं चैतत् । तेन न मृषा ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाऽब्रह्मा सेवेत न परिग्रहं परिगृण्हीयान्न नक्तं नुंजीतेत्येव ज्ञानिनः सारं यत्र कर्माश्रवेषु वर्ततइति । अपिच अहिंसया समतां अहिंसासमतां ता चैतावद्विजानीयात् । यथा मम मरणं दुःखं वाऽप्रियमेवमन्यस्याऽपि प्राणिलोकस्येति । एवकारोऽवधारणे । इत्येव साधुना ज्ञानवता प्राणिनां परितापनाऽपद्रावणादि वा न विधेयमेवेति ॥ १० ॥

परीत उपदेश देवाने प्रवर्त्तता तेने परिज्ञायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने जेम ए दर्शनी बाप डा मिथ्यात्वव्यापारे विवेकशून्य पोते पोतानेज अहितकारी दीशेछे, तो अन्य जीव ने हितकर्त्ता क्याथी थशे ? एवु आलोचीने निक्षु जे चारित्रीउ वियतेसुंके० परमार्थनो जाण ते दर्शनीउनेविषे णमुच्छए के० मूर्छाय नही अर्थात् तेनीप्रत्ये सबध पण न करे. त्यारे शु करे, ते अर्थ गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडे छे अणुक्कस्से के० ते उत्कर्ष र हित आठ मदनो टालनार, अप्पलीणे के० अप्रलीन एटले असबध गृहस्थ तथा पास त्थादिकने विषे ससर्ग अणकरतो ते नणी मझेण के० मध्यमनावे रागद्वेष रहित उतो मुणिके० मुनी एटले जे साधु ते जावए के० पोताने प्रवर्त्तावे, एटले शु कह्यु! तो के, कदाचित परतीर्थीक अथवा पासबादिक सघाते सबंध मळे तो मद न करवो ने ते नी प्रशंसा तथा निंदा अणकरतो राग द्वेष रहित वर्त्ते. ए प्रकारेकरी सयम जे पाले तेज साधु जाणवो ॥ २ ॥

॥ दीपिका–तृतीयोद्देशकेऽन्यतीर्थिकाणां कुत्सितत्वमुक्तमिहापि तदेवोच्यतइत्यर्थेस बन्धस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (एतइति) एतेऽन्यमतिनोजिताअनिभूतारागद्वेषा दिनि । नोइति शिष्यामंत्रणं । एव त्व जानीहि । यथाएते न शरणं कस्यचित्त्राणाय न समर्था । (जच्छत्ति) यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्न सन् अवसीदति तत्र ते व्यवस्थिता । बालापंमिअमाणिणोऽत्ति क्वचित्पाठस्तत्र बालानिर्विवेकाअपंमिताअपि पंमितमानिन कस्यापि न त्राणाय स्युरित्यर्थ । तत्कृत्यमाह । हित्वा त्यक्त्वा पूर्वसयोग धनस्वजनादिक । णमिति वाक्यालंकारे । सिताबद्धा परिग्रहारंजेषु । पुन किंनूता । कृत्यं कार्यं पचन पाचनादि तस्योपदेश गच्छतीति कृत्योपदेशगा । अथवा सियाइत्यार्षत्वात् स्युर्नवेयु । कृत्यं सावद्यानुष्ठानं तत्प्रधाना कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेश संरंजसमारंजरूप स विद्यते येषां ते कृत्योपदेशिका । प्रव्रजिताअपि कर्तव्यैर्गृहस्थैर्न्योन नियंतइत्यर्थ ॥ १ ॥ एव नूतेषु तीर्थिकेषु सत्सु साधुना यत्कर्तव्यं तदाह । (तंचेति) तं पाखंमिलोक परिज्ञाय स म्यक् ज्ञात्वा निक्षु सयतोविद्वान् तेषु न मूर्छयेत् तैः सह संबंधं न कुर्यात् । किंतर्हि कु र्यादित्याह । अनुत्कर्षवान् उत्कर्षोमदस्तमकुर्वन् । तथाऽप्रलीनोऽसबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थे षु पार्श्वस्थादिषु वा सश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी या पयेदात्मान वर्तयेत् तेषु निंदा स्तस्य प्रशंसांच परिहरन् साधुर्मध्यस्थवृत्त्या चरेदित्यर्थ.।

॥ टीका–उक्तस्तृतीयोद्देशक । अधुना चतुर्थ. समारभ्यते । अस्यचायमभिसंबंध । अनंतरोद्देशकेऽध्ययनार्थत्वात्स्वपरसमयवक्तव्यतोक्तेहापि सैवाऽभिधीयते । अथचाऽ नंतरोद्देशके तीर्थिकानां कुत्सिताचारत्वमुक्तमिहापि तदेवाभिधीयते । तदनेन संबंधे

नक्तपानमित्येतेन एपणासमिति । नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नापणासन्नवाज्ञापणासमितिराक्षिता । सति चाहारे प्रश्रवणादीना सन्नावात्प्रतिष्ठापनसमितिरप्यायाता इति तृतीय स्थान ३ एतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यत सयतश्चामोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकेन सबंध । तथा सतत मुनिरुत्कर्षोमान, ज्वलन क्रोध, णूमंति गहन मायेत्यर्थ । संसारमध्ये सर्वदा नवतीति मध्यस्थोलोन । च समुच्चये । एतान् मानादीन कषायान । (विगिंचएति) । विवेचयेदात्मन पृथक्कुर्यात् । ननु क्रोधएवादौ सर्वत्र स्थाप्यते ऽत्रतु कथ मानइति चेडुच्यते । माने सत्यवश्यनावी क्रोध क्रोधे च सति मान' स्यान्नवेत्यर्थस्य दर्शनाय क्रमोल्लंघनमिति ॥ १२ ॥

॥ टीका–एव मूलगुणाननिधायेदानीमुत्तरगुणाननिधातुकामआह । वुसि... ... दि । विवियमनेकप्रकारमुषित स्थितोदशविधचक्रवालसामाचार्या व्युषितस्तया विगता ऽपगता आहारादौ गृद्धिर्यस्यासौ विगतगृद्धि साधुरेवनूतश्चादीयते स्वीक्रियते प्राप्यते वा मोक्षोयेन तदादानीय ज्ञानदर्शनचारित्रत्रय तत्सम्यग्रक्षयेदनुपालयेत् यथा यथा तस्य वृद्धिर्नवति तथाकुर्यादित्यर्थ ॥ कथपुनश्चारित्रादि पालित नवतीति दर्शयति । चर्यासन शय्यासु । चरण चर्यागमन साधुनाहि सति प्रयोजने युगमात्रदृष्टिनागतव्य तथा सुप्रत्युपेक्षिते सुप्रमार्जिते चासने उपवेष्टव्य तथा शय्याया वसतौ सस्तारके वा सुप्रत्युपेक्षित प्रमार्जितस्थानादि विधेय तथा नक्ते पाने चातश सम्यगुपयोगवता नाव्य । इदमुक्त नवति । ईर्यानापैषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितियुपयुक्तेनाऽतगोनक्तपान यावदुग्रमादिदोपरहितमन्वेपणीयमिति ॥ ११ ॥ पुनरपि चारित्रशुध्यर्थं गुणानधिरुत्याह । एतेहि इत्यादि । एतान्यनतरोक्तानि त्रीणि स्थानानि । तद्यथा । ईर्यासमितिरित्येक स्थान, आसन शय्येत्यनेनादाननाडमात्रनिक्षेपणासमितिरित्येतच्च द्वितीय स्थान, नक्तपानमित्यनेनैषणासमितिरुपात्ता नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नापणासन्नवाज्ञापासमितिराक्षिता सति चाहारे उच्चारप्रश्रवणादीना सद्भावात्प्रतिष्ठापनासमितिरप्यायातेऽत्येतच्च तृतीय स्थानमित्यतएतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यत सयतश्चामोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकाते क्रियेति । तथा सततमनवरत मुनि सम्यक् यथावस्थितजगत्त्रयवेत्ता । उत्कृष्यते आत्मादर्पाध्मातोविधीयतेऽनेनेत्युत्कर्षोमानस्तथात्मान चारित्रं वा ज्वालयति दहतीति ज्वलन क्रोधस्तथा णूममिति गहन मायेत्यर्थ । तस्याअलब्धमध्यत्वा देवमनिधीयते । तथा आससारमसुमता मध्येऽतर्नवतीति मध्यस्थोलोन । चशब्द समुच्चये । एतान् मानादींश्चतुरोपि कषायास्तद्विपाकानिज्ञोमुनि सदा (विगिंचएति) विवेचयेदात्मन पृथक्कुर्यादित्यर्थ । ननु चान्यत्रागमेक्रोधआदावुपन्यस्यते तथा क्रप

दिनि सह सत्यपि कथंचित्संबंधे त्यक्ताहंकारेण तथा भावतस्तेष्वप्रतीयमानेनारक्तद्विष्टेन तेषु निंदामात्मनश्च प्रशसा परिहरता मुनिनाऽऽत्मा यापयितव्यइति ॥ २ ॥

सपरिग्गहा य सारंभा इह मेगेसिमाहियं ॥ अपरिग्गहा अणारंभा, भिरकू ताणं परिवए ॥ ३ ॥ कडेसु घासमेसेज्जा, विऊ दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को अवमाणं परिवज्जए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे जे कारणे परतीर्थीकने विरुद्धाचारी कह्या ते कारण देखाडेछे—सपरिग्गहा के० ते धनधान्यादिक द्विपद चतुष्पदादिक सहित, तेने अभावे शरीर उपकरणादिकने विषे मूर्छा राखेछे तेहिज परिग्रह कहिए अने सारंभ के० जीवघातने विषे प्रवर्त्तमान, तेहने अभावे उद्देशादिकना भोगवनार छे माटे आरंभी कहिये. एवाछता मोक्ष मार्ग साधे ते देखाडे छे इह मेगेसिमाहियंके० ते इह परलोकने चिंतवे. एक दर्शनीने मते एम कह्यु, के, ए तपस्यादिक तथा मुंमसुंमनादिक क्रिया करे ते व्यर्थ छे, किंतु जे गुरु भक्तीने प्रसादे एक परम अक्षर लाभे तेथी जीवने मोक्ष थाय बीजो जे काइ काय क्लेश करे ते सर्व अप्रमाण छे एम जे कहे ते साधु पदवी न पामे. ते तारवाने समर्थ नहीं होवाने लीधे जे तारवाने समर्थ एवो साधु होय, ते आगल अर्द्ध गाथाये देखाडेछे अपरिग्गहाके० जे किंचित् मात्र परिग्रहरहित होय एक धर्मोपकरण टाली अने तेना उपर पण ममताने अभावे परिग्रह उपर स्वल्प मात्रे भराचे तथा अणारंभाके० सर्वथा प्रकारे छकायना आरंभरहित एवा भिरकूताण के० भिक्षु पोताने अने बीजाने त्राण शरण होय एटले संसारसमुद्रमाहेथी पोते पण प्रवहणनीपरे तरे अने बीजा पण ससार समुद्रमा बुडता जीवने प्रवहणनी पेठे तारनार होय एरीते साधु परिवएके० उद्देशादिक आहार वर्जतो सयम पाले ॥३॥ हवे चारित्रिउं आरंभ अने परिग्रह टाली केम प्रवर्त्ते ते कहेछे. कडेसुके० ते गृहस्थे पोताने अर्थ जे भात पाणी कीधाछे. तेनेविषे सोल जातना उद्गम दोषरहित घासके० आहार एसेज्जाके० गवेषे,विऊके० ते पंमित नि केवल निर्जरा निमित्ते जे आहार दातारे दत्तके० दीधो तेना धात्रादिक सोले उत्पादन दोष तेनी एसणचरेके० एषणाने विषे विचरे अने सकीतादि दश एषणाना दोष जाणवा अर्थात् बेतालीश दोष विसुद्ध आहार ले एम कह्यु तथा अगिद्धोके० ते अमूर्छित थको आहारे एटले पांच मान्हलिना दोष टाले. विप्पमुक्कोके० आहारने विषे रागद्वेषरहित, एवो छतो अवमाण परिवज्जए के० बीजानुं अपमान वर्जे, एटले अनेराने करेलो पराभव अहियासे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—कथ तीर्थिकास्त्राणाय न स्युरित्याह । (सपरिग्रहाइति)। सपरिग्रहाधना

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशक प्रारंभः ॥

संबुज्झह किंन बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ॥ णोहूवणमंति राइओ, नो सुलभं पुणरवि जीवियं ॥ १ ॥ डहरा वुड्ढाय पासह, गप्नत्था वि चियंति माणवा ॥ सेणे जह वट्टयं हरे, एवमाउक्खयंमि तुट्टई ॥२॥

अर्थ–पहेलुं समय नामे अध्ययन कह्युं हवे बीजुं वैताली नामक अध्ययन कहेछे तेनो ए संबंध पेहेला अध्ययनने विषे परसमयना दोष कह्या तथा स्वसमयना गुण कह्या ते सर्वे जाणीने जेम कर्म विदारीये तेम यत्न करवो. ए जाव कहेछे ते श्री आदीश्वर देवे जरते तिरस्कार कस्या संवेग उपन्या थकी रुषजदेवना अठाणु पुत्र रुषजदेवनी पासे आव्या ते स्वपुत्र प्रत्ये उपदेश कहेछे अथवा श्रीमहावीर देव परखदा प्रत्ये कहेछे संबुज्झह के० अहो जव्यो ? तमे समजो ज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप धर्मनेविषे उद्यम करो, केमके आ अवसर मलवो फरी फरी दुर्लज छे, तो एवो अवसर पामीने किंनबुज्झह के० केम नथी समजता जे आ जवने विषे धर्म नहीं करशो तेने पेच्चके० परजवनेविषे खलुके० निश्चे थकी, संबोहीके० बोधबीज ते दुल्लहाके० दुर्लज छे णोहूवणमतिराइउ के० जेम अतिक्रमेली रात्री फरीथी आवे नहीं तेम यौवनादिक सर्व पदार्थ गया तेपण फरी आवे नहीं णोसुलजपुणरवि जीवियं के० फरी फरी जीवित शब्दे संयमे करी प्रधान जे जीवितव्य ते सुलज नथी ॥ १ ॥ हवे सर्व संसारी जीवने आयुष्य अनित्य करी देखाडेछे डहरा के० बालक एटले कोइक जीव बाल्यावस्थामायकाल विनाश पामेछे तथा कोइएक वुड्ढायके० वुढा (वृद्ध) थईने विनाश पामेछे तथा पासह के० जूउ के, गप्नत्था विचयंति माणवा के० कोइ एक मनुष्य जे छे, ते गर्नमां रह्या थका पण विनाशने पामेछे एम ए मृत्यु जे छे, ते जीवने सर्व अवस्थाये आवी पोहोचेछे तेना उपर दृष्टांत कहेछे जह के० जेम सेणे के० शेन एटले सींचाणो जे छे, ते वट्टय के० वाटो एटले तीतर पक्षी तेने उलोने पुहुते हरे के० हरण करी जीये एवं आउक्खयंमि तुट्टई के० एम ए मनुष्यनुं आयुष्य पण क्षणे क्षणे त्रूटे छे एवं जीवाण जीवियं के० ए पूर्वे कह्युं एवुं जीवनुं जीवितव्य जाणवुं ॥ २ ॥

॥ दीपिका–व्याख्यातं प्रथमं समयाध्ययनं । अथ द्वितीयं वैतालीयाध्ययनं व्याख्यायते तत्र प्रथमाध्ययने परसमयदोषाः स्वसमयगुणाश्चोक्तास्तांश्च ज्ञात्वा यथा कर्म विदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकत्रयं । तत्र प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (संबुज्झहत्ति) । तत्र जगवानादितीर्थकरोजरतं तिरस्कारागतसंवेगान्

तदेवनूतं शौल्यग्रात्रीनिमित्तादिदोषरहिते आहारे सनिक्षु एषणां ग्रहणैषणां चरेदनुतिष्ठे दित्यनेनाऽपि दशैषणादोषा परिगृहीताइति मतव्यं । तथा । अगृद्धोऽनध्युपपन्नोऽमूर्छि तस्तस्मिन्नाहारे रागद्वेषविप्रमुक्त. । अनेनाऽपि च ग्रासैषणादोषा पच निरस्ताअवसेया । सएवनूतोनिक्षु परेषामपमानं परावमदर्शित्व परिवर्जयेत् परित्यजेत् । न तपोमदं ज्ञा नमदं च कुर्यादिति नाव ॥ ४ ॥

लोगवायं णिसामिज्जा, इह मेगेसिमाहियं ॥ विवरीयपन्नसं नूयं, अन्नउत्त तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणते निइए लोए, सासए ण विणस्सती ॥ अतव णिइए लोए, इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे वली परवादी मिश्रित वचन कहेछे–लोगवायं के० पाखंमी लोक तेनो वाद पोतपोताने मतें कल्पित जे स्वरूप ते णिसामिज्जाके० सानले, सानलीने हैयामा धरे जिन मतिथी कशु खोटु जाणी परिहरे ते लोकवाद देखाडेछे इह के० तेए जगतने विषे, मे गेसिके० एकेक वादीने मतें, आहियंके० कह्यु छे ते केवु तोके, विवरीयंके० विपरीत पन्न के० प्रज्ञातत्व थकी उपराठी बुद्धि, सनूयंके० तेहथकी उपनो तथा अन्नउत्तंतयाणुगं के० ते अनेरा अविवेकीनु जे नाष्युं तेने अनुसारे वली तेवुज प्रवर्त्तेवु एवो लोकवाद सांनली हैये धारेछे ॥५॥ हवे ते विपरीत बुद्धि रचित लोकवाद देखाडेछे –ते लोक अणते के० अनत तथा निइएलोए के० नित्यछे एटले शुं कह्यु ? के जे आ नवमा पुरुषछे अथ वा स्त्री छे, ते आगमिक नवे पण तेवोज पुरुष तथा स्त्रीने रुपेछे. एटले स्त्री ते स्त्री ने पुरुष ते पुरुष छे, ते माटे लोक नित्यछे सासए के० वली ए लोक सास्वतोछे ण विणस्सति के० वणसे नही अतवके० ते अतसहित छे, एटले सप्त द्वीप तथा सप्त समुद्रसहित एटलो लोकछे एथी न्यून अधिक नथी, ए कारणे लोकनो अंत छे अने णिइएलोए के० लोक नित्यछे. स्त्री ते स्त्री अने पुरुष ते पुरुष रुपज छे ते माटे इति के० एरीते, धीरोके० अमारा जे व्यासादिक धीरपुरुष अनेक गुणवत ते पासइके० देखेछे

॥ दीपिका–स्वमतं प्रख्याप्य पुन परमतं दर्शयति । (लोगवायमिति) । लोकाना पाखंडिना वादमगीकार (णिसामिज्जा) निशामयेत् जानीयात् । तदर्शयति । इह ससा रे केषाचित् इदमाख्यातं । तथा विपरीता मिथ्या या प्रज्ञा तया सनूतमुत्पन्नं तत्त्व विपर्यस्तबुद्धिग्रथितमित्यर्थ· । तथाऽन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुग तत्सदृश अविवेकिजन वाक्यसदृशमिति ॥ ५ ॥ लोकवादमेवाह । (अणतेति) । न विद्यतें ऽतोयस्येत्यन तोनित्य शाश्वतोन विनश्यति । योयादृगिह नवे सपरनवेपि तादृशएव पुरुष. पुरुषएव

तु नामस्थापने अनादृत्य इव्य दारादि । भावे पुनरष्टप्रकार कर्मेति ॥ ३९ ॥ सांप्रतं वैतालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देसियत्ति वेयालियंतओ होइ ॥ वेयालिय तहा वित्तमत्ति तेणे वयणिबद्ध " ॥ ४० ॥ (वेयालियमित्यादि) । इहाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणा विदारणमभिहितमिति कृत्वैतदध्ययन निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोभवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्त । वैतालियछंदोविशेषरूप वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबद्धमित्यध्ययनमपि वैतालीय । तस्य चेद लक्षणं । वैतालीयलिगनै रना , षडयुक्पादोष्टौ समे चल । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेत षट्च निरतरायुजो ॥ ४० ॥ साप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घात दर्शयितुमाह " काम तु सासयमिणं कहिय अट्ठावयंमि उसभेणा ॥ अट्ठाणउतिसुयाण सोऊण वि तेइ पव्वइया " ॥ ४ ॥ (काममित्यादि) कामशब्दोऽयमभ्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागम शाश्वत तदंतर्गत मध्ययनमपि तथाऽपि भगवतादितीर्थाधिपेनोत्पन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन भरताधिपभरतेन चक्रवर्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिभि पुत्रै पृष्टेन यथा भरतोऽस्मानाऽज्ञां कारयत्यत किमस्माभिर्विधेयमित्यतस्तेषामगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिज्जंतोर्भोगेच्छा निवर्ततइत्यर्थ । गर्भमिदमध्ययन कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतच्छ्रुत्वा ससारासारता मवगम्य विषयाणा च कटुविपाकता नि सारता च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गिरिनदीवेगसम यौवनमित्यतोभगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवतऽन्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्गोऽप्युपोद्घातोभणनीय ॥ ४१ ॥ साप्रतं उद्देशार्थाधिकार प्रागुल्लिखित दर्शयितुमाह " पढमे सबोहो अनिचयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारा पुण भणिओ, तहा तहा बहुविहो तत्त ॥ ४२ ॥ उद्देसमिय तइये, अन्नाण वियस्स अवचओ भणिओ । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमाओ जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ (पढमइत्यादिगाथाद्वय) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽनित्यता वेत्ययमर्थाधिकार । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकार । पुनश्च तथाऽनेकप्रकारोबहुविध शब्दादाऽर्थेऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थाऽधिकारोभणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोभणितइति यतिजनेनच सुखप्रमादोवर्जनीय सदेति ॥ ४३ ॥ साप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेद । (सबुज्झहेत्यादि) तत्र भगवानादितीर्थकरोभरतस्तिरस्कारागतसवेगान् स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्च समुद्दिश्य प्रोवाच यथा सबुध्यध्व यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोध कुरुत । यत पुनरेवभूतोऽवसरो दुराप । तथाहि । मानुष जन्म तत्राऽपि कर्मभूमि पुनरार्यदेश सुकुलोत्पत्ति सर्वेंद्रिय

ए जाणे. जगतमां सर्वज्ञ कोइ नथी, किंतु सवत्र के० सर्वत्र सपरिमाणं के० प्रमाण सहित ठे. सर्वज्ञ अपन्हववादी ते एम कहेठे. इति के० एम धीरोति पासइ के० धीर पुरुष देखेठे, ते एम कहे ठे के, देवता संबंधी सहस्र वर्ष ब्रह्मा सुए ते प्रस्तावे, ते कां इ न देखे, वली एटलोज काल ब्रह्मा जागृत थाय त्यारे देखे ए कारणे सपरिमाण वस्तु जाणे नथा देखे एप्रमाणे कोइ एक कहेठे. ॥७॥ हवे ग्रंथकार तेने उत्तर कहेठे जगतमां हे जे केइ के० जे कोइ तसाके० त्रस ते बेइंडियादिक पाणाके० प्राणी जीव, चिठंति के० ते तिष्ठति एटले रहेठे अडुवाके० अथवा बीजा थावराके० स्थावर पृथिव्यादिक एवा बने सनाव जगत्मा दिशेठे अने अन्य दर्शनी एम कहे के " जे जेवो ते तेवोज होय " परतु अन्वय परावर्त न थाय जो ए वचन साचुं होय तो दान, अध्ययन, जप, नियम, तप तथा अनुष्ठानादिक क्रिया सर्व निरर्थक थाय ए कारणे तेनु बोलवु प्रमाण जाणवुं न हीं अने जैन कहेठे के,जगतमां त्रस अने स्थावर ठे तेने पोतपोताना कर्मने परिणामे अंजू के० रुजु परियाएके० पर्याय अडिसे के० ठे एटले शु कह्यु ? तो के पोतपोताना कर्मना उपार्ज्यां पर्यायने पामे ते पर्यायेकरी जेणतेके० जे कारणे ते तसके० त्रस जीव ते थावराके० स्थावर थाय एटले त्रस फीटी स्थावर थाय अने स्थावर फीटी त्रस थाय परतु " जे जेह्वो ते तेह्वो " ए निश्चये थकी नथी. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–किंच (अपरिमाणमिति) न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रत कालतोवायस्य तदपरिमाण विजानाति कश्चित्तीर्थिक । अपरिमितज्ञोऽसावर्तीन्द्रियद्रष्टा न पुन सर्व ज्ञ. । यद्वाऽपरिमितज्ञोऽनिप्रेतार्थातीन्द्रियदर्शी न पुन सर्वदर्शी । यडुक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्वोपयुज्यतइति । इह एकेषा सर्व ज्ञापन्हववादिनामिदमाख्यात । तथा सर्वत्र क्षेत्रे काले वा सपरिमाण परिमाणयुक्त धीर्बु द्धिस्तया राजतइतिधीर इत्येवमसावतीव पश्यति । दिव्यं वर्षसहस्र ब्रह्मा स्वपिति ताव त्काल न पश्यति किंचित् पुनस्तावत्त काल जागर्ति तत्र च पश्यति एव बहुधा प्रवृत्तो लोकवाद ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह । (जेकेइति) । ये केचित्त्रसा प्राणिनस्तिष्ठति अथवा स्थावरा तेषा स्वकर्मपरिणत्याऽयं पर्यायोस्ति । (अंजूइति) प्रगुणोऽव्यनिचारी तेन पर्या येण ते त्रसा स्थावरा स्यु । त्रसत्वमनुनूय कर्मपरिणत्या स्थावरा स्थावरत्वमनुनू य त्रसाश्च नवतीति । ततोयोयादृगिहनवे सपरनवेपि तादृगिति नियमो न युक्त ॥७॥

॥ टीका–किंच । (अपरिमाणमित्यादि) । न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रत का लतोवा यस्य तदपरिमाण । तदेवनूत विजानाति कश्चित्तीर्थिकस्तीर्थकृत् । एतडुक्तं नवति । अपरिमितज्ञोऽसावर्तीन्द्रियद्रष्टा न पुन. सर्वज्ञ इति । यदि वाऽपरिमितज्ञइत्य

मायाहिं पियाहिं लुप्पइ, नो सुलहा सुगई य पेच्चओ ॥ एयाइं भयाइ पेहिया, आरंभा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गाहइ, णो तस्स मुच्चेज्ज पुठ्य ॥ ४ ॥

अर्थ–कोइएक जीव बापडो मायाहिं पियाहिं के० मातापितादिक स्वजने लुप्पइ के० संसारमांहे भमाड्यो थको एटले तेने मोहे बांध्यो थको, धर्मने विषे उद्यम करे नहीं ते जीवने पेच्चओ के० परभवने विषे सुगईय के० सद्गति जे मुक्ति ते नोसुलहा के० सुलभ नथी केमके मोहरूप क्लेश तथा विषयसुख थकी दुर्गति थाय एवु जाणी एयाइंभयाइ के० ए मोहादिक भयने पेहिया के० देखीने जे आरंभाविरमेज्ज के० आरंभ थकी विरमे, निवृत्ते ते सुव्वएके० सुव्रत थाय एटले शोभनिकव्रत वत थाय ॥३॥ हवे जे कोई आरंभादिक थकी निवृत्ते नहीं तेने दोष कहेछे, जमिणं के० जे कारणे अव्रति जीवने आगल जे कहेशे ते उत्पन्न थाय ते शुं उत्पन्न थाय ? तो के जगती के० जगतमांहे पुढोजगा के० पृथक् पृथक् जुदा जुदा जीवना स्थानक जे नरकादिक छे, ते स्थानकोमांहे कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो के० प्राणी पोताना उपार्जेला कर्मोनां जे दुःख तेणेकरी पीडाय ते प्राणी सयमेवकडेहिं के० स्वमेव एटले पोते कीधा जे कर्म तेणे करी गाहइ के० अवगाहे एटले नरकादिक स्थानक दुःखना हेतु उपचय करे णोतस्समुच्चेज्ज के० ते अशुभविपाक थकी न मूकाय, अपुठ्यं के० अणफरश्यो एटले ते बांधेला कर्म भोगव्या विना तूटे नहीं ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–मायेति । योमातापितृमोहेन धर्मोद्यम न कुरुते सतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारेभ्राम्यते । तस्य प्रेत्य जन्मांतरे सुगतिश्च नो सुलभा । एतानि दुर्गतिगमनादीनि भयानि (पेहिया) प्रेक्ष्यारंभाद्विरमेत् सुव्रत शोभनव्रत । सुस्थितोवा पाठांतरे ॥ ३ ॥ (जमिणमिति) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं स्यात् । जगति पृथिव्या (पुढो जगत्ति) पृथग्भूताव्यवस्थिता सावद्याचारोपचितै कर्मभि प्राणिनोलुप्यते नरकादिषु भ्राम्यते । स्वयमेव कृतै कर्मभिर्नरकादिस्थानान्यभिगाहते । नच तस्याऽशुभाचरितस्य कर्मणो विपाकेनाऽस्पृष्टोमुच्यते जंतु ॥ ४ ॥

॥ टीका–तथा (मायाहीत्यादि) कश्चिन्मातापितृभ्यां मोहेन स्वजनस्नेहेन च न धर्मं प्रत्युद्यमं विधत्ते सचतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारे भ्राम्यते । तथाहि । विहितमलोहमहोमहृन्मातापितृपुत्रदारबंधुसंज्ञ । स्नेहमयमसुमतामत्त किंबंधन शृंखलं

मत्युपयोग्येव । यतोयथैव तद्विषयेऽस्याऽपरिज्ञानमेवमन्यत्राऽप्याशंकया हेयोपादेये प्रेक्षापूर्वकारिण प्रवृत्तिर्न स्यात् तस्मात्सर्वज्ञत्वमेष्टव्यं । तथा यडुक्तं । स्वापबोधविनागेन परिमितं जानातीत्येतदपि सर्वजनसमानत्वे यत्किंचिदिति । यदपिच केश्चिडुच्यते । यथा ब्रह्मण स्वप्नावबोधयोर्लोकस्य प्रलयोदयौ नवतइति तदप्ययुक्तिसंगतमेव । प्रतिपादित चेतत् प्रागेवेति न प्रतन्यते । नचाऽत्यंत सर्वजगतउत्पादविनाशौ विद्येते । न कदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात् । तदेवमनंतादिक लोकवादं परिहृत्य यथावस्थितवस्तुस्वनावाविर्नावन पश्चार्द्धेन दर्शयति । ये केचन त्रसा स्थावरावा तिष्ठंत्यस्मिन् संसारे तेषा स्वकर्मपरिणत्याऽस्त्यऽसौ पर्याय । अजूइति प्रगुणोव्यनिचारी तेन पर्यायेण स्वकर्मपरिणतिजनितेन ते त्रसा सत स्थावरा सपद्यते । स्थावरा अपिच त्रसत्वमश्नुवते । तथा त्रसास्त्रसत्वमेव स्थावरा स्थावरत्वमेवाऽश्नुवति । न पुनर्योयादृगिह सत्तादृगेवाऽमुत्राऽपि नवत्ययं नियमइति ॥ ८ ॥

उरालं जगतो जोगं, विवज्जासं पलितिय ॥ सवे अक्कतडुक्खाय
अउ सवे अहिंसिता ॥ ९ ॥ एवं खु नाणिणो सारं, जन्न हिंसइ
किंचणं ॥ अहिंसासमयं चेव, एतावत्तं वियाणिया ॥ १० ॥

अर्थ–हवे ए उपर दृष्टांत कहेछे–ए जीव उरालके० ते औदारिक एटले अति स्थूल एहवा जगतो जोगके० जगनो योग जीवनो, व्यापार चेष्टा विशेष, विवज्जासं के० ते विपरीत जुदो जुदो पलितिय के० पामे अत्रे गर्ननु दृष्टांत कहेछे जेम गर्नमाहे रह्यो थको जीव अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादिक जुदी जुदी अवस्था पामे तथा जन्म पाम्या पठी बाल, कुमार, तरुण अने वृद्ध एवी जुदी जुदी अवस्था पामे ए कारणे तेनु वचन साचुं नथी जणातु तो जैन कहे छे के, सवेके० सर्व जीव एकेंडियादिकथी मांमीने पचेंडियपर्यंत जे छे, तेने अक्कतडुःखाय के० शारीरी तथा मानसी डुःख ते वल्लन नथी अउ के० ए कारणे सवे के० सघला जीव अहिंसया के० हणाय नहीं, तेम करवु ॥ ९ ॥ एव शब्द अवधारणे छे नाणिणो के० ज्ञानी एटले जे जाण पुरुष तेनो एहज सार के०सार एटले न्यायछे जन्नहिंसई किंचण के० जे कोइ त्रस अने स्थावर जीवने किंचित् मात्र हणे नहीं, उपलक्षणथी मृषा बोले नहीं, अदत्त, मैथुन तथा परिग्रह ए आश्रव न सेवे, रात्री नोजन न करे, एज ज्ञानीनो सार जे आश्रव न सेवे, अहिंसा के० जीवनी दया तथा समयंचेव के० समता सर्वत्र सम परिणाम राखे एतावत्तंके० एटलुंज वियाणियाके० जाणवुं जोइये बीजुं घणुं पलाल नार सरखुं जाणवा थकी शुं फल छे? जेम मुजने मरण ते डुःख तेम बीजा जीवने पण मरण तेडुःख एम जाणे एटले मूल गुण कह्या. ॥ १० ॥

त्रूटे तेवारे अवश्य पडे, एव के० एम आउखयमि तुट्टती के० जीव, जे छे ते आयुष्य ना क्षय थकी जेवारे विनाश पामे तेवारे तेने कोइ जीवाडी शके नहीं ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–देवेति । देवाज्योतिष्कसौधर्माद्या गधर्वराक्षसयोरुपलक्षणार्थत्वादष्टप्रकाराव्यतरा । असुरा दशधा नवनपतय । येचान्ये नूमिचरा सरीसृपास्तिर्यच । राजानश्च क्रिहरिप्रमुखा । नरा सामान्यमनुष्या । श्रेष्ठिन पुरमहत्तरा ब्राह्मणाश्च । एते सर्वेपि स्वस्थानानि दु खिता सततस्त्यजते । सर्वेषा मरण दु खदायीति ॥५॥ (कामेहिति) कामैरिछामदनरूपै संस्तवै पूर्वापरनूतैर्गृद्धाआसक्ता कर्मविपाकसहिताव कालेन जतव स्यु । नोगेछोर्विषयासेवने क्लेशएवेत्यर्थ । कामनोगैर्न त्राणमस्तीत्याह (तालेत्ति) तालफल यथा व धनात् वृतात् च्युतमत्राण पतति एव जतुरपि स्वायु क्षये त्रुटयति च्यवते ॥६॥

॥ टीका–अधुना सर्वस्थानाऽनित्यता दर्शयितुमाह (देवाऽत्यादि) देवाज्योतिष्कसौधर्माद्या, गधर्वराक्षसयोरुपलक्षणत्वादष्टप्रकाराव्यतरागृह्यते । तथा असुरादशप्रकारानवनपतय, ये चाऽन्ये नूमिचरा सरीसृपाद्यास्तिर्यच, तथा राजानश्चक्रवर्तिनोबलदेववासुदेवप्रनृतय । तथा नरा सामान्यमनुष्या । श्रेष्ठिन पुरमहत्तराब्राह्मणाश्चैते सर्वेऽपि स्वकीयानि स्थानानि दु खिता सततस्त्यजति । यत सर्वेषामपि प्राणिना प्राणपरित्यागे महदु ख समुत्पद्यतऽति ॥ ५ ॥ किंच (कामेहित्यादि) कामैरिछामदनरूपैस्तथा सस्तवै पूर्वापरनूतैर्गृद्धा अध्युपपन्ना सत (कम्मसहित्ति) कर्मविपाकसहिताव कालेन कर्मविपाककालेन जतव प्राणिनोनवति । इदमुक्त नवति । नोगेप्सोर्विषयाऽसेवनेन तदुपशममिछतइहामुत्र क्लेशएव केवल न पुनरुपशमावाप्ति । तथाहि । उपनोगोपाय परो वाछति य शमयितु विषयतृष्णा । धावत्याऽक्रमितुमसौ पुरो पराएहे निजछाया । नच तस्य मुमूर्षो कामै सस्तवैश्च त्राणमस्तीति दर्शयति । यथातालफल व धनात् वृतात् च्युतमत्राणमवश्यं पतति एवमसावपि स्वायुष क्षये त्रुटयति जीवितात् च्यवतऽति ॥६॥

जे यावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहणभिक्खुएसिया ॥ अभिणूमकडे
हि मुछिए, तिव्व से कम्मेहि किच्चती ॥७॥ अह पास विवेगमुठिए, अवि
तिन्ने इह भासई धुव ॥ णाहिसि आर कर्त्त पर वेहासे कम्मेहि किच्चती ॥८॥

अर्थ–जेयाविबहुस्सुए के० जे कोइ बहुश्रुत एटले शास्त्रना पारगामी सियाके० होय, तथा धम्मियके० धार्मिक एटले धर्मना करनार होय तथा माहणभिक्खुएके० ब्राह्मण अने भिक्षुक एटले भिक्षा अटनशील एवा सिया के० होय, तेपण अभिणूमके० माया

वुसिए य विगयगेद्धी, आयाण सरक्कए ॥ चरिआसणसेज्जासु, नत्तपाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं ठाणेहिं, सजए सततं मुणी ॥ उक्कस जलण णूमं, मज्जन्न च विगिंचए ॥ १२ ॥

अर्थ-एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तरगुण कहेछे दशविध सामाचारीने विषे विविध नाना प्रकारे वुसिएके० वश्या तथा विगतगृद्धि के० जेमा आहारादिकनी लोलुपता नथी; एवा साधु ते आयाण के० आदान, ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए रत्नत्रयने सरक्कए के० सम्यक्प्रकारे राखे एटले जे प्रकारे ए रत्नत्रयनी वृद्धि थाय तेम करे तेज कहेछे चरिआ के० चालवु, एटले चारित्रवत पुरुषने कोइ प्रयोजन कार्य उपना थका चालवु पडे तो धूसर प्रमाण दृष्टि जोतो थको चाले, तथा प्रतिलेषित, प्रमार्जित एवा आसण के० आसन उपर वेसे, तथा सुप्रतिलेषित, सुप्रमार्जित एवा सेज्जासुके० उपाश्रय अथवा संथाराने विषे रहे अथवा शयन करे तथा नत्तपाणेअ के० नात पाणीने विषे अंतसो के० सम्यक् प्रकारे उपयोग करे एटले निर्दोष आहारनी गवेषणा करे ॥ ११ ॥ वली पण उत्तरगुण आश्रयीज कहेछे. एतेहिं के० ए पूर्वे कह्याजे तिहिंठाणेहिं के० त्रण स्थानक एटले एक चर्या, बीजुं आसन सज्जा, अने त्रीजु नातपाणी ए त्रणे स्थानक रुडी परे जाणवा एटले चालवामा ईर्यासमिति ए एक स्थानक, अने आसन सज्जा एटले आदान नाम मात्र निक्षेपणासमिति कही ए बीजुं स्थानक, तथा नत्तपाण एटले एषणासमिति कही, अने नातपाणीनी याचना करता नाषा निरवद्य बोले, एटले नाषासमिति पण आवी तथा आहार लीधाथी उच्चार प्रश्रवणनो सद्भाव थाय, तेने रुडीपेरे परठवता पारिष्टापनिका समिति पण कही ए त्रीजु स्थानक जाणवु ए त्रणे स्थानकने विषे संजएके० सयत थतो सततके० सततं एटले निरतर मुणी के० चारित्रवान ते उक्कसके० उत्कर्ष एटले मान, जलणके० क्रोध, णूम के० माया अने मज्जन्नं के० मध्यस्थ एटले लोन ए चारे कषायने विगिंचए के० आत्मा थकी जूदा करे ॥१२॥

॥ दीपिका-विविधमनेकधोषित स्थितोदशविधसामाचार्या व्युषित । विगता आहारादौ गृद्धिर्यस्य सविगतगृद्धि साधु । आदीयते प्राप्यते मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानादित्रय तत्सम्यग्रक्षयेत् । तथा चर्यासनशय्यासु । चर्यागमनं, आसनं निषीदनस्थानं, शय्या वसति, संस्तारकोवा तेषु तथा नक्तपाने चातश सम्यगुपयोगवता नाव्य । अयमर्थ । ईर्यानाषेषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिषूपयुक्तेनांतशोनक्तपानं यावन्निर्दोषमन्वेषणीय ॥ ११ ॥ पुनरुत्तरगुणानाह । एतानि त्रीणि स्थानानि । यथा ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं १ आसन शय्येत्यादानजोडमात्रनिक्षेपणासमितिरिति द्वितीय २

परित्यागं परिग्रहस्य परिज्ञानं वा संसारस्याऽऽश्रित्योऽन्वित प्रव्रज्योद्गानेन । सच स म्यक् परिज्ञानाभावादवितीर्णं संसारसमुद्रं तितीर्षु केवलमिह संसारे प्रस्तावे वा शाश्वतत्वात् ध्रुवोमोक्षस्तं तदुपायं वा संयमं नापतएव न पुनर्विधत्ते तत्परिज्ञाना भावादितिभाव । तन्मार्गे प्रपन्नस्त्वमपि कथं ज्ञास्यसि । आरमिहभव कुतोवा परं पर लोक । यदि वा आरमिति गृहस्थत्वं परमिति प्रव्रज्यापर्याय ।अथवा आरमिति संसा र परमिति मोक्षं एवंभूतश्चाऽन्योऽप्युभयभ्रष्ट । (वेहासित्ति) अंतराले उभयाभावत. स्वकृतै कर्मभि कृत्यते पीड्यतइति ॥ ८ ॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइविय भुंजिय मासमंतसो ॥ जे इह मायावि मिज्जई, आगतागप्पायणंतसो ॥ ए ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा, पलियंतं मणुयाणजीवियं ॥ सन्ना इह काममु च्छिया, मोह जंति नरा असंवुमा नरा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे शिष्य कहेछे के, हे भगवन्? केटलाएक दर्शनी निपरिगृही तथा तपस्या ना करनार देखायछे, तो तेने मोक्ष केम नहोय? हवे गुरु कहेछे के, जइविय के० यद्य पि ते परतीर्थिक तापसादिक अथवा आज्ञा थकी भ्रष्टस्वयूथिक णिगणे के० नग्न सर्व बाह्य परिग्रह रहित, किसे के० कृश डुर्बल कीधुंछे शरीर जेमने एवा थता चरे के० पोतपोतानी प्रव्रज्या आदरीने विचरेछे वली जइविय के० यद्यपि भुंजिय मासम तसोके० मासमास खमण करी मासने अंते जमे तथापि जेइह के० जे आ संसारने विषे मायावि के० मायासहित मिज्जइ के० संयोगकरे उपलक्षणथी कषायादिके करी युक्त होय ते आगतागप्पयाणतसो के० आगमिक काले अनंता गर्भादिक डुःख पामे, ए टले अनंतो संसार परिभ्रमण करे ॥ ए ॥ हवे जे कारणे मिथ्यादृष्टिने उपदेशे घणो कायक्लेश, पण मुक्ति नथी तेकारणे निरते मार्गे रहेवु ए भाव कहेछे पुरिसो के० अ हो पुरुषो? तमे पावकम्मुणा के० पापकर्म थकी उपरम के० निवर्त्तो केमके पलियंतं मणुयाणजीवियं के० मनुष्यनुं जीवितव्य ते पल्योपमांतछे, एटले संयमरहित जीवनुं जो घणुंज आयुष्य होय तो त्रण पल्योपम होय अने संयमसहित तो एक पल्योपमनी अंदर जाणवु एटले आठ वर्ष उणी एक पूर्वकोडी एटलुंज मनुष्यनुं आयुष्यछे तेतो गयुंज जाणजे एवुं जाणीने जेटलो काल जीविए तेटलो काल सम्यक् अनुष्ठाने करी सफल करिए वली जे नरा के० मनुष्य सन्नाइह के० भोग स्नेह पंकनेविषे खुता अथवा काममुच्छिया के० कामभोगने विषे मूर्छित थता एवाजे मनुष्य असंवुमा नराके० ते

कश्रेएयामारूढोनगवान् क्रोधादीनेव सज्वलनान् क्षपयति किमर्थमागमप्रसिद्धसुक्तं घ्यादौ मानस्योपन्यासइति ॥ अत्रोच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोध क्रोधेतु मान स्याद्वानवेत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनायान्यथाक्रमकरणमिति ॥ १२ ॥

समिएउ सयासाहु, पंचसंवरसंवुमे ॥ सिएहिं अ
सिए निक्कू, अमोरकायपरिवएज्जासित्तिवेमि ॥ १३ ॥

अर्थ–हवे अध्ययन उपसहरतो कहेछे समिएके० पाच समिते समितो,उके० तु अ वधारणने अर्थे छे तथा सयासाहुके० सर्वकालनेविषे साधु केवोछे ? ते कहेछे पंचसवर सवुमेके० पाच महाव्रतनो पालनार तथा पाच प्रकारना सवरे करी सवख्यो छतो तथा सिएहिके० जे गृहस्थ पासछादिकने विषे बंधाणा तेवा गृहस्थने विषे असिए के० अ णबधाणो थको एटले तेने विषे मूर्छा नकरे जेम कर्दम थकी कमल उचुरहे तेम निक्कूके० साधु ते आरन परिग्रह थकी दूर रहे पण तेनी साथे बधाय नही, एवो छतो अमोरकायपरिवएके० ज्यासुधी मोक्ष न थाय त्यासुधी सयम पाले इतिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशक समाप्त । प्रथमाध्ययन स०

॥ दीपिका– एव समितिनि समित साधु पंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसवृत । चशब्दात्त्रिगुप्तगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सितावद्धा गृहस्थास्तेष्वसितोन बद्धोन मूर्छितो निक्षुर्नाविनिक्षुरासमतात् मोक्षाय परिसमताद्व्रजे सयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमितिशिष्यस्यो पदेश । इति समाप्ता । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति तपागच्छाधिपश्रीहेमविमलसू रिस्वशिष्यहर्षकुलप्रणीताया श्रीसूत्ररुतागदीपिकाया प्रथम समयाध्ययन समाप्तं ॥

॥ टीका– तदेव मूलगुणानुत्तरगुणाश्चोपदर्श्याऽधुना सर्वोपसहारार्थमाह । (समिए उनया इत्यादि) तुरवधारणे । पचनि समितिनि समितएव साधुस्तथा प्राणातिपा तादिपचमहाव्रतोपेतत्वात्पचप्रकारसवरसवृतस्तथा मनोवाक्कायगुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशा दिषु सिताश्चवद्धा सक्तागृहस्थास्तेष्वसितोऽनवबद्धस्तेषुमूर्छामकुर्वाण पकाधारप कजवत्तत्कर्मणाऽदिह्यमानोनिक्षुर्निक्षणशीलोनावनिक्षुरामोक्षायाऽशेषकर्मापगमलक्षण मोक्षार्थं परि समतात् व्रजे सयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमिति विनेयस्योपदेश । इति अध्य यनसमाप्तौ । ब्रवीमीति गणधरएवमाह यथा तीर्थंकृतोक्त तथैवाहं ब्रवीमि न स्वमनी षिकयेति गतोऽनुगम । साप्रतं नयास्तेषामयमुपसहार । सव्वेसिपि नयाण बहुविहव त्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं ज चरणगुणट्ठिउसाहुत्ति ॥ १ ॥ १३ ॥ इति सू त्रकृतांगे प्रथमाध्ययन समाप्तं ॥ ॥

जययं विहराहि जोगव, अणुपाणा पंथा डुरुत्तरा ॥ अणुसासणमेव प क्कमे, वीरेहिं सम पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुठिया कोहकायरि याइ पीसणा॥पाणेण हणंति सव्वसो, पावाउविरिया अभिनिवुमा॥१२॥

अर्थ–हवे जो एमछे तो शु करवु ते कहेछे जयय के० आयुष्य तुछ जाणी अने विषयने क्लेशनु कारण जाणी, गृहपाशबंध छेदीने चारित्रने विषे यत्न करतो विहराहि के० विचरे ते केहेवो छतो विचरे? तोके, जोगव के० समिति अने गुप्तिसहित थको विचरे, केमके अणुपाणापथाके०सूक्ष्मजीव जे पंथ एटले मार्गने विषे छे, ते पथ ईर्यास मितिविना डुरुत्तराके० डुस्तरछे एटले जतां दोहिलोछे, एरीते बीजी समितिउ पण फला ववी तो एम सदा सावधान पणे हिंमे अणुसासण के० जेम श्रीवीतरागदेवे सूत्रम ध्ये शीखामण कहीछे एउके० तेम सूत्रने अनुसारे पक्कमेके० चाले, एम वीरेहिं के० श्रीवीर तीर्थंकरे समके० साधु पवेदिय के० कह्युछे ॥ ११ ॥ ते श्रीवीर केवाछे, ते क हेछे जे हिंसादिक पापथकी विरियाके० विरत एटले निवर्त्या ते वीरा के० वीरकर्मना छेदनारा तथा समुठियाके० सम्यक् आचारने विषे सावधान थया एवा छता कोह के० क्रोध अने कायरियाइके० कातरी एटले माया तथा आदि शब्द थकी मान अने लोभ पण जाणी लेवा तेना पीसणा के० पीसनार एटले मर्दन करनार ते वीर सव्वसो के० सर्वथापि पाणेणहणंति के० प्राण हणे नहीं पावाउ के० पाप जे सावद्य अनुष्ठान ते थकी विरिया के० विरत तथा अभिनिवुमा के० क्रोधादिकना उपशमे करी शीतल थयाछे एवा श्रीवीर जाणवा ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–जययमिति । यतमानोयत्नंकुर्वन् विहर उद्युक्तविहारी भव योगवान् संय मयोगवान् । अणव सूक्ष्मा प्राणा प्राणिनोयेषु ते अणुप्राणा पथानोऽनुपयोगैर्डुरु त्तराडुर्गमा । ईर्यादिसमितिषु उपयोगवताभाव्यमित्यर्थ । अनुशासनमेव सूत्रानुसारेणै व संयमे प्रक्रमेत् चरेत् । एवं वीरैरर्हद्भि सम्यक् प्रवेदितं कथितं ॥११॥ विरयाइति । हिंसादेर्विरता समुत्थिता सम्यगारंभत्यागेनोत्थिता क्रोधकातरिकादिपीपणा । क्रोधग्रह णान्मानोपि ग्राह्य । कातरिका माया । मायाग्रहणाच्च लोभोगृहीत । तेषां पीषणाविना शका एवंविधावीरा स्यु । तथा प्राणान् सर्वशोमनोवाक्कायैर्न घ्नंति । पापात् सावद्यव्या पारात् विरताअभिनिर्वृता क्रोधाद्युपशमेन शांता स्यु ॥ १२ ॥

॥ टीका–एवं च स्थिते यद्विधेय तद्दर्शयितुमाह । (जययमित्यादि) स्वल्प जीवित मवगम्य विषयाश्च क्लेशप्रायाऽनवबुध्य छित्वा गृहपाशबंधनं यतमानोयत्नं कुर्वन् प्राणि

स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह् । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्च समुद्दिश्याह् । यथा बुध्यध्व यूयं धर्मे बोधं कुरुत । किं न बुध्यध्व एवंविधसामग्र्यां सत्यां कस्माद्धर्मे बोधोन क्रियतइत्यर्थः । यत अकृतधर्माणा प्रेत्य परलोके संबोधिर्धर्मप्राप्तिरूपा पुनर्डर्लना । डुर्निश्चये । नैवातिक्रांतारात्रयउपनमंति पुनर्ढौकंते । नहि अतिक्रांतोयौवनादिकाल पुनरावर्ततइतिभाव । पुनरपि जीवितं संयमजीवितं नो नैव सुलभ । यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत्संधातु न शक्यतइति ॥ १ ॥ आयुषोऽनियतत्वमाह् । (मह्रेति) । मह्राबालाएव केचिज्जीवितं त्यजंति तथा वृद्धागर्भस्थाश्चपि मानवा । उपदेशयोग्यत्वान्मानवग्रह्ण । एतत्पश्यत यूय यत्सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी जीवितं त्यजतीति । तथाहि त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अत्र दृष्टांतमाह् । यथा श्येनोवर्तकं तित्तिरिजीवं ह्रते हंति एवमायु क्षये प्राणान् मृत्युरपह्रेत् । आयुःक्षये वा त्रुटयति जीवितं ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं समयाख्यं प्रथममध्ययनं सांप्रतं वैतालीयाख्यं द्वितीयमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंध । इहाऽनंतराऽध्ययने स्वसमयगुणा परसमयदोषाश्च प्रतिपादितास्तांश्च ज्ञात्वा यथाकर्मविदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यऽनुयोगद्वाराणि नणनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाऽधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाऽधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकार प्रागेव निर्युक्तिकारेणाऽनाणि । णाऊणबुज्जणाचेवेत्यनेन गाथाद्वितीयपादेनेत्युद्देशार्थाधिकारं तु स्वतएव निर्युक्तिकारउत्तरत्र वक्ष्यति । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह् " वेयालियम्मि वेया,लगो य वेयालणं वेयालिय । तिन्निवि चउक्कगाइं, वेयालेउं एछ पुण जीवी " ॥ ३७ ॥ (वेयालियमित्यादि) । तत्र प्राकृतशैल्या वेयालियमिति । दृविदारणेऽस्यास्य धातोर्विपूर्वस्य ण्वुल्सत्वात् नावे एवुल्प्रयातस्य विदारकमिति क्रियावाचकमिदमध्ययनाऽभिधानमिति । सर्वत्र च क्रियायामेतत्त्रय सन्निहितं । तद्यथा कर्ता करणं कर्म चेत्यतस्तद्दर्शयति । विदारकोविदारणं विदारणीय च तेषां त्रयाणामपि नामस्थापनाऽव्यनावनेदाच्चतुर्धा निक्षेपेण । त्रीणि चतुष्ककानि ऽष्टव्यानि । अत्र च नामस्थापने क्षुण्णे ऽव्यविदारकोयोहि ऽव्यं काष्ठादि विदारयति । नावविदारकस्तु कर्मणोविदार्यत्वात् नो आगमतोजीवविशेष साधुरिति ॥ ३७ ॥ करणमधिकृत्याऽह् " दव्वं च परसुमादी दंसणणाणतवसंयमाभावे । दव्वं च दारुगाही नावे कम्मं वियालणिय " ॥ ३९ ॥ (दव्वंचेत्यादि) नामस्थापने क्षुण्णे ऽव्यविदारणं परश्वादि नावविदारणं दर्शनज्ञानतप संयमास्तेपामेव कर्मविदारणे सामर्थ्यमित्युक्तं नवति । विदारणीयं

॥ दीपिका–एवितेति। परीषहे स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत। पीडितएव चिंतयेत् नतावदहमेव परीषहोपसर्गैर्लुप्ये पीडये किंतु अन्येपि प्राणिनस्तिर्यङ्मनुष्या पीडयंते लोके एव सहितोज्ञानादिभिः स्वहितआत्महितोवा पश्येत् निर्मलबुध्या विचारयेत् पूर्वोक्त। अनीह क्रोधादिभिरपीमित सयमेपरीषहसहनेवा निगूहीतवीर्योवा सन् परिषहे स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत ॥ १३ ॥ धुणियाऽति। धूत्वा विधूय कुडिअं कुड्य भित्तिमिवेत्यर्थ। लेपवत् सलेप। यथा कुडय गोमयादिलेपेन सलेपं क्रमेण लेपोप गमत कृग स्यात् एवमशनादिभिर्देह कर्शयेत्। देहकृशत्वाच्च कर्मकृशत्वं स्यादितिभा व। तथा विवि धाहिसाविहिसा न विहिंसा अविहिसा ता प्रव्रजेत प्रकर्षेण व्रजेत। अ हिसा प्रधान स्यादित्यर्थ। अनुगतोमोक्षं प्रति अनुकूलोधर्मोऽनुधर्मोऽय मुनिना सर्व ज्ञेन प्रवेदित कथित॰ ॥ १४ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह। (एविताऽत्यादि परीषहोपसर्गाएतद्भावनापरेण सोढव्या नाहमेवैकस्तावदिह शीतोष्णादिभ्र्विशेषैर्लुप्ये पीडये। अपित्वन्येऽपि प्राणि नस्तथाविधा स्तिर्यङ्मनुष्याअस्मिँल्लोके लुप्यते अतिदु सहैर्दुखै परिताप्यते तेषां च सम्यग्विवेकाभावान्ननिर्जराख्यफलमस्ति। यत। क्षात न क्षमया गृहोचितसुख त्यक्त न सतोषत सोढा दु सहतापशीतपवनक्लेशान तप्त तप ॥ ध्यातं चित्तमहर्निंग नियमि तं द्वन्द्वै तत्व पर तत्तत्कर्मकृतं सुखार्थिभिरहो तैस्तै फलैर्वचिता ॥१॥ तदेव क्लेशादिस हन सद्विवेकिना सयमाभ्युपगमे सति गुणाय भवति। तथाहि। कार्श्यं क्षुत्प्रभव कदन्न मशन शीतोष्णयो पात्रता पारुष्य च शिरोरुहेषु शयन मह्यास्तले केवले। एतान्येव गृ हे वहत्यवनतिं तान्युन्नतिं सयमे दोषाश्चापि गुणाभवति हि नृणां योग्ये पदे योजि ता। १। एव सहितो ज्ञानादिभि स्वहितोवा आत्महित सन् पश्येत् कुशाग्रीयया बुध्या पर्यालोचयेदनतरोदित। तथा निहन्यतइति निह न निहोऽनिह क्रोधादिभि रपीमित सन् समहासत्व परीषहे स्पृष्टोऽपि तानाधिसहेत मन पीमा न विदध्यादिति। यदिवाऽनिहइति तप सयमपरीषहने वा निगूहितबलवीर्य। शेषपूर्ववदिति ॥ १३ ॥ अपिच (धुणियाइत्यादि)। धूत्वा विधूय (कुडियति) कमणकृतं कुडय। लेपवत्सलेपं। अयमत्रार्थ। यथाकुडय गोमयादिलेपेन सलेप जायस्यमान लेपापगमात् कृश भवति एव अनशनादिभिर्देह कर्शयेत् अपचितमासशोणित विदध्यात्। तदपचयाच्च कर्मणोऽ पचयोभवतीति भाव। तथा विविधाहिसा विहिसा न विहिसा अविहिसा तामेव प्रकर्षे ण व्रजेत् अहिसाप्रधानोभवेदित्यर्थ। अनुगतोमोक्ष प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्म, असावहि सालक्षण परीषहोपसर्गसहनलक्षणश्च धर्मोमुनिना सर्वज्ञेन प्रवेदित कथितइति ॥१४॥

पाटव । श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसवित्त्यवष्टंभेनाह् । किं न बुध्यध्वमित्यवश्यमेवविय सामग्र्यावाप्तौ सत्या सकर्णेन तुच्छान् नोगान् परित्यज्य सद्धर्मेबोधोविधेयइतिनाव । त थाहि । निर्वाणादिसुखप्रदे नरन्नवे जैनेऽधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितु युज्यते । वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, जातु स्वल्पमदीप्तिकाचशक लं किं चोऽचित सांप्रत ॥१॥ अकृतधर्मचरणाना तु प्राणिनां संबोधि सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्राऽवाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगताना खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुदुर्लनैव । त थाहि । विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं ससारे पर्यटनम निहितमिति । किंच । हुरित्यवधारणे । नैवाऽतिक्रांतारात्रयउपनमति पुनर्ढौकते । नह्यति क्रांतोयौवनादिकाल पुनरावर्त्ततऽतिन्नाव । तथाहि । नवकोटिन्निरसुलन्नं, मानुष्यं प्राप्य क प्रमादोमे । नच गतमायुर्नूय प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥ १ ॥ नोनैव ससारे सु लन्न सुप्राप सयमप्रधान जीवित यदि वा जीवितमायुस्त्रुटित सत् तदेव सधातु न शक्य तऽति वृत्तार्थ । सबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोनवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबो धयोश्च नामा दिश्चतुर्द्धा निक्षेप । तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यनावनिक्षेप प्रतिपादयितु निर्युक्ति कृदाह् । 'दवं निद्दा वेउ दसणनाणतवसजमा नावे । अह्गिारो पुणन्नणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते ' ॥ ४४ ॥ (दवंनिद्दावेउ इति) इह् च गाथाया द्रव्यनिद्रान्नावसबोधश्च द र्शित । तत्राऽर्थतग्रहणेन नावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदतर्वर्तिनोर्ग्रहण द्रष्टव्य । तत्र द्र व्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुनव । दर्शनावरणीयविशेषोदयऽति यावत् । नावनिद्रातु निषयज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता । तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधन । नावे नाव विषये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतप संयमाद्रष्टव्या । इह् च नावप्रबोधेनाऽधिकार सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितऽति । अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यनावनेदाच्चत्वारो नगायोजनीयाऽति ॥ ४४ ॥ १ ॥ नगवानेव सर्वससारिणा सोपक्रमत्वादनियतमायु रुपदर्शयन्नाह् । (डहराबुड्ढायेत्यादि) डहराबालाएव केचन जीवित त्यजति । तथा वृद्धाश्च गर्नस्थाअप्येतत्पश्यत यूय के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्ह्त्वात् मानवग्रहण । बह्वपायत्वादायुष सर्वास्वऽप्यवस्थासु प्राणी प्राणास्त्यजतीत्युक्त नवति । तथाहि । त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनतरमतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठती ति । अपिच गर्नस्थं जायमानमित्यादि । अत्रैव दृष्टांतमाह् । यथा श्येन पक्षिविशे षोवर्त्तक तित्तिरजातीयं हरेत् व्यापादयेदेव प्राणिन प्राणान् मृत्युरुपहरेत् । उप क्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत् । तदन्नावे वा आयुष्यक्षये त्रुटचति अवछिद्यते जी वाना जीवितमिति शेष ॥ २ ॥

णत्ति) मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य मप्राकृतशैल्या माहणेत्युच्यतइति ॥ १५ ॥ अनुकूलोप सर्गमाह । (उठियेत्यादि) अगारं गृहं तदस्य नास्तीत्यनागारस्तमेव नूत संयमोत्थाने नैपणा प्रत्युत्थित प्रवृत्त । श्राम्यतीतिश्रमणस्त । तथास्थानस्थितमुत्तरोत्तरविशिष्टसंयम स्थानाध्यासिन तपस्विन विशिष्टतपोनिष्टप्तदेह तमेवनूतमपि कदाचित् महरा पुत्रनप्ता दयोवृद्धा पितृमातुलादय उन्निष्क्रामयितु प्रार्थयेयुर्याचेरस्तएवमूचुर्नवता वयप्रतिपाल्या न त्वामतरेणाऽस्माक कः प्रतिपाल्यएव नणतस्ते जनाअपि शुष्येयु श्रम गच्छेयुर्न च तं साधु विदितपरमार्थं लजेरन् नैवाऽऽत्मसात्कुर्युर्नैवाऽऽत्मवशगं विदध्युरिति ॥ १६ ॥

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयति य पुत्तकारणे ॥ दवियं भिक्खुसमुठियं णो लप्नति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइ वियकामेहि लाविया, जइ ण जाहिण वधिउं घरं ॥ जइ जीवितनावकखए, णो लप्नंति ण संठवित्तए ॥ १८ ॥

अर्थ—जइके० यद्यपि ते माता पिता पुत्र कलत्रादिक जेठे ते साधुने सन्मुख आवीने कालुणियाणिकासियाके० अनेक करुणा प्रलाप वचन बोले तथा जइके० यदि रोयतियपुत्तकारणेके० पुत्रने निमित्ते रुदन करे तोपण ते दवियके० मुक्ति गमन योग्य भिक्खुके० साधु रागद्वेषरहित एवो समुठियके० सम्यक् प्रकारे संयमने विषे उठ्यो ठे, सावधान थयोठे, एवा साधुने णोलप्नतिके० क्षोनावी न शके णसंठवित्तएके० प्रव्रज्या मूकावी गृहस्थावासने विषे स्थापि नशके ॥ १७ ॥ जइवियकामेहिलावियाके० यद्यपि ते पोताना सज्जन ते संयम पालता साधुने कामनोगे करी लोनावे ए अनुकूल उपसर्ग अने जइणजाहिणवधिउंघर के० अथवा जो तेने बांधीने घेर लेई जाय ए प्रतिकूल उपसर्ग ठे तो एवा अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्गें पीड्यो थको पण साधु जइ के० यदि जीवितंनावकखए के० असंयमे जीवितव्य न वांठे एटले मरण कबुल करे पण असंयमे जीवितव्य न वांठे तो तेने णोलप्नति णसंठवित्तए के० तेना स्वजन ते पोताने वशकरी नशके अर्थात् गृहवासने विषे स्थापी नशके ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—जईति । यद्यपि ते मातापित्रादय कारुणिकानि विलापवचनानि कुर्यु । तथा यदि रुदति पुत्रकारणात् सुतनिमित्त । एव रुदतोयदि नणति भिक्खु । किंनूत द्रव्यं मुक्ति योग्यत्वात् द्रव्यनूतं संयमे समुत्थितमुद्यत तथापि तं साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवति संयमा च्चालयितु तथा न गृहस्थत्वे संस्थापयितु ॥ १७ ॥ (जईति) यद्यपि ते पित्रादयस्तं साधुं कामैरिच्छामदनैर्लोभयति उपनिमन्त्रयेयु । तथा यदि णंवाक्यालंकारे बध्वा गृहं नयति।

खलेन धात्र। ॥ १ ॥ तस्य च स्नेहाकुलितमानसस्य सदसद्विवेकविकल्पस्य स्वजनपोषणार्थं यत्किंचनकारिणऽहैव सद्भिर्निंदितस्य सुगतिरपि प्रेत्य जन्मांतरे नोसुलनाऽपि तु मातापितृव्यामोहितमनसस्तदर्थं क्लिश्यतोविषयसुखेप्सातश्च डुर्गतिरेव नवतीत्युक्तं नवति । तदेवमेतानि नयानि नयकारणानि डुर्गतिगमनादीनि (पेहियत्ति) प्रेक्षाऽरंनासावद्याऽनुष्ठानरूपाद्विरमेत् । सुव्रत शोननव्रत सन् सुस्थितोवेति पाठान्तर ॥ ३ ॥ अनिवृत्तस्य दोषमाह । (जमिणमित्यादि) यद्यस्मादनिवृतानामिद नवति । किं तत् जगति पृथिव्या (पुढोत्ति) पृथक्नूताव्यवस्थिता सावद्यानुष्ठानोपचितं कर्मनिर्विलुप्यंते नरकादिषु यातनास्थानेषु प्राम्यंते । स्वयमेव च कृतं कर्मनिर्नेश्वराद्यापादितैर्गाहते नरकादिस्थानानि यानि तानि वा कर्माणि डु खहेतूनि गाहते उपचिनोति । अनेन च हेतुसद्भाव कर्मणामुपदर्शितोनवति । नच तस्याऽशुनाऽचरितस्य कर्मणोविपाकेनाऽस्पृष्टोऽसुसो मुच्यते जतु । कर्मणामुदयमननुनूय तपोविशेषमंतरेण दीक्षाप्रवेशादिना न तदपगमं विधत्तइतिनाव ॥ ४ ॥

देवा गंधवरक्कसा, असुरा नूमिचरा सिरिसिवा ॥ राया नरसेठिमाहणा, ठाणा ते विचयति डुक्किया ॥५॥ कामेहिय संथवेहिय गिद्धा, कम्मसहा कालेण जतवो॥ताले जह् बंधणच्चुए,एव आउक्कयंमि तुट्टती ॥६॥

अर्थ—हवे सर्व स्थानकनु अनित्यपणुं देखाडेले देवा के० देवता ते ज्योतिषि सौधर्मादिक तथा गंधवरक्कसा के० गांधर्व राक्षस एटले व्यंतरदेवो कह्या, तथा असुरा के० दश प्रकारना नुवनपति तथा नूमिचरा के० नूमिचरादिक ते मनुष्यादिक जाणवा अने सिरिसिवा के० सरीसृप एटले सर्पादिक तिर्यंच जाणवा, तथा राया के० राजा चक्रवर्त्यादिक अने नर के० सामान्य मनुष्य, सेठिके० श्रेष्ठि ते नगरमाहे मोहोटा, माहणा के० ब्राह्मण, ठाणा तेविचयंति डुक्किया के० एटला सर्व पोतपोताना स्थानकने पोते डुखिया थया थका ठामेठे एटले सर्व प्राणीमात्रने अंतकाले डु ख उपजेठे इत्यर्थ ॥५॥ वली तेहिज नाव कहेले. कामेहियके० कामते विषयादिक नोग अने संथवेहिय के० संस्तवते मातापितादिक तथा स्वसुर वर्गादिक तेनो परिचय, तेणेकरी गिद्धाके० आसक्त थतो कम्मसहाकालेण के० काले कर्मविपाके एटले नोगववाने प्रस्तावे जतवो के० जीव कर्मनो सहन करनार थाय, एटले विषयासक्त मनुष्यने आगमिक काले डु खज थाय, परतु ते जीवने काम, नोग तथा स्वजन ए सर्व डु ख थकी राखनार नथी जह के० जेम ताले के० तालवृक्षनु फल ते बंधणच्चुए के० बींट थकी

के० पोषण करवु ते महापुण्यनु कामछे ॥१९॥ हवे कोइएक कायर पुरुष ते मातापितादिकना वचनथी लोनाय तेने विपाक कहेछे अन्नेके० अनेरा कोइएक अल्प सत्वव त एवा चारित्रिया ते अन्नेहिके० अन्य जे मातापितादिक तेने विषे मुछिया के० मोहे मूर्ग्रीयका मोहजतिणराअसवुमा के० असवरी एटले सवरविना मोह पामे, एटले रूडाअनुष्ठानन्नु करवु मूकी आपे अने मोहनेविषे पोहोचे तथा ते असयतिनरोने विस मके० गृहस्थे विसमेहिगाहियाके० असयम तेने विषे पोहोचाडया ठता पुणो के० वली ते पावेहिके० पापेकरी पगप्रियाके० धृष्ट ठता पापकर्म करतां लज्जा पामे नहीं ॥२०॥

॥ दीपिका-(सेहतीति) ते मात्रापित्रादय सुताजार्या च । णमिति व्याक्यालंकारे । तं साधुं (ममाइणोत्ति) ममायं साधुरिति स्नेहालव शिक्षयंति । किमित्याह । पश्य नोऽस्मा न् डु खितान् त्व तु दर्शक सूक्ष्मदर्शी अतोऽस्मान् पोषय अन्यथा त्वया प्रव्रज्याग्रहणा दिह लोकस्त्यक्त । अस्मत्परिपालनत्यागात्परलोकमपि त्व जहासि त्यजसि ॥ १९ ॥ (अन्नेति) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाअन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअसवृतानरामोह यां ति सदनुष्ठाने मुह्यति । तथा विषमैरसयतैर्विषममसयम ग्राहिताअसयमे प्रवर्तितास्ते पापे कर्मनि पुन प्रगल्भिताधृष्टतांगता ॥ २० ॥

टीका-च (सेहतियणमित्यादि) ते कदाचिन्मातापित्रादयस्तमजिनवप्रव्रजित (सेहं तित्ति) शिक्षयंति । णमिति वाक्यालंकारे । (ममाऽइणोत्ति) । ममाऽयमित्येव स्नेहा लव । कथ शिक्षयंतीत्यतआह। पश्य नोऽस्मानत्यतडु खितास्त्वदर्थ पोषकानावा ढा त्वं च यथावस्थितार्थपश्यक सूक्ष्मदर्शी सश्रुतिकइत्यर्थ । अतोनोऽस्मान् पोषय प्रतिजागर ण कुरु अन्यथा प्रव्रज्याऽन्युपगमेनेह लोकस्त्यक्तोनवताऽस्मत्प्रतिपालनपरित्यागेन च प रलोकमपि त्व त्यजसीति डु खितनिजप्रतिपालनेन च पुण्यावाप्तिरेवेति । तथाहि । या ग ति क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनां । बिभ्रता पुत्रदारांस्तु तां गति व्रज पुत्रकेति ॥१९॥ एव तैरुपसर्गिता केचन कातरा कदाचित् यत्कुर्युरित्याह । (अन्नेइत्यादि) अन्य केच नाऽल्पसत्वा अन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअध्युपपन्ना सम्यग्दर्शनादिव्यतिरेकेण सकल मपि शरीरादिकमन्यदित्यऽन्यग्रहण । ते एवन्नूता असवृतानरा समोह यांति सदनुष्ठा ने मुह्यति तथा ससारगमनैकहेतुनूतत्वात् विषमोऽसयमस्त विषमैरसयतैरुन्मार्गप्रवृत्ति त्वेनाऽपायानीरुनि रागद्वेषैर्वा अनादिनवान्यस्ततया डुश्छेद्यत्वेन विषमैर्ग्राहिताअ सयम प्रति वर्तिता । ते चैवनूता पापे कर्मनि पुनरपि प्रवृत्ता प्रगल्भिता धृष्टतां ग ता पापक कर्म कुर्वतोऽपि नलज्जतइति ॥ २० ॥

येकरी कडेहिं के० कीधा एवा जे कर्म तेने विषे मुछिए के० मूर्छित थता तिव्वसे के० ती व्र एटले आकरा एवा कम्मेहिं के० कर्म तेणेकरी किच्चती के० पीडाय, एटले सारो अथवा नरसो कोई पण जीव करेला कर्मने भोगव्याविना छूटे नहीं ॥ ७ ॥ हवे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रविना अन्य कोइ मोक्षमार्ग नथी एवु देखाडेछे अहपास के० एवु देखीने शिष्य प्रत्ये गुरु एम कहेछे के. कोइएक दर्शनी विवेक के० परिग्रहनो परित्याग करी उठिते के० उठ्यो अर्थात् प्रव्रज्याने विषे सावधान थयो; परतु अवितिन्ने के० सम्यक् परिज्ञानने अभावे तिन्न एटले ससारसमुद्र थकी तर्यो नहीं, एवो थतो वली इहमासइ के० एम भाषे के ध्रुव के० जे मोक्षनो मार्ग अथवा मोक्षनो उपाय ते अ माराज आचार थकीछे एम कहे माटे हे शिष्य? तेना मार्गे प्रपन्न थतो तु णाहिसिके० क्या थकी जाणीश? आर के० इहलोक अने वली कउके० क्या थकी पर के० परलोकने जाणीश अथवा आर एटले गृहस्थावास अने पर एटले प्रव्रज्या अथवा आर एटले ससार अने पर एटले मोक्ष तेने केम जाणीश एटले इहलोक परलोक बन्ने थकी भ्रष्ट एवो थको वेहासे के० अंतराले एटले ससारमाहेज कम्मेहिं किच्चइ के० पोताना करेला जे कर्म तेणेकरी पीडातो जइश ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-(जेयावित्ति) येचापि बहुश्रुता स्युर्येधार्मिकास्तथा ब्राह्मणास्तथा भिक्षुकास्यु आभिमुख्येन (णूमति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितास्तीव्रमत्यर्थं । सेत्ति आर्षत्वाद्बहुवचन ज्ञेयं । ते कर्मभि कृत्यंते पीड्यंते ॥ ७ ॥ ज्ञानादिसाध्यएव मोक्षोन तीर्थिकोक्तइत्याह । (अहेति) अथाऽनतर त्व पश्य विवेकत्यागं परिग्रहस्य ज्ञान वा ससारस्याश्रित्य उत्थित सक्रियोद्युक्त सम्यक्ज्ञानाभावादवितीर्ण संसाराब्धिमतीर्ण केवलं ध्रुवं मोक्षं तदुपाय वा भाषतएव नतु विधत्ते ज्ञानाभावादित्यर्थ । तन्मार्गप्रपन्नस्त्वमपि कथमार इहभव पर वा परभव ज्ञास्यसि । एवं भूतश्चोभयभ्रष्टो (वेहासित्ति) अतराले कर्मभि कृत्यते पीड्यते ॥ ८ ॥

॥ टीका-अपिच (जेयावीत्यादि) येचाऽपि बहुश्रुता शास्त्रार्थपारगा । तथा धार्मिकाधर्माचरणशीला । तथा ब्राह्मणा । तथा भिक्षुकाभिक्षाटनशीला स्युर्भवेयु । तेऽप्याभिमुख्येन (णूमति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितागृद्धास्तीव्रमत्यर्थं । अत्र च गादसत्वाद्बहुवचन द्रष्टव्य । एवभूता कर्मभिरसद्वेद्यादिभि कृत्यते छिद्यंते पीड्यंतेऽभियावत् ॥ ७ ॥ साप्रत ज्ञानदर्शनचारित्रमतरेण नाऽपरोमोक्षमार्गोऽस्तीति त्रिकालविषयत्वात् सूत्रस्याऽगामितीर्थिकधर्मप्रतिषेधार्थमाह (अहेत्यादि) अथेत्यधिकारांतरे वन्द्यादेशो एकादेशइति । अथेत्यनतर एतच्च पश्य । कुतीर्थिकोविवेकं

रद्दित्तोवा सन्नीकृस्य तद्विपाक पर्यालोचय । पडित सद्विवेकयुक्तः पापात् कर्मणोसद नुष्ठानरूपात् विरतोनिवृत्त क्रोधादिपरित्यागाच्छातीभूतइत्यर्थ । तथा प्रणता -प्रह्वीभू तावीरा कर्मविदारणसमर्थामहावीथि महामार्गे । तमेव विशिनष्टि । सिद्धिपथं ज्ञा नादिमोक्षमार्ग तथा मोक्षंप्रति नेतार प्रापक ध्रुवमव्यभिचारिणमित्येतदवगम्य सएव मार्गोऽनुष्ठेयोवा सदनुष्ठानप्रगल्भैर्नाव्यमिति ॥ २१ ॥ पुनरप्युपदेशदानपूर्वकमुपसहर न्नाह । (वेयाजियमग्गइत्यादि) कर्मणा विदारणमार्गमागतोभूत्वा त तथाभूत मनो वाक्कायसवृत पुनस्त्यक्त्वा परित्यक्त्वा वित्त द्रव्य तथा ज्ञातींश्च स्वजनाश्च तथा साव द्यारंभ च सुष्ठु सवृतइंद्रिये सयमानुष्ठान चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशक समाप्त ॥

अथ वेतालीयऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकप्रारभ ॥ प्रथमउद्देशामाबाह्य द्रव्य, स्वज न तथा आरभनो परित्याग कह्यो, हवे बीजे उद्देशे मानना परित्याग कहेछे.

> तय संच जहाइ सेरय, इति मखाय मुणीण मज्जई॥गोयन्नतरेण
> माहणे, अह सेयकरी अनेसि इखणी ॥१॥ जे परभवई पर ज
> ण, ससारे परिवत्तई मह॥अङ इखणिया ऊ पाविया,इति संखा
> य मुणीण मज्जई॥ २ ॥

अर्थ–तयसच के० ते जहा के० जेम सर्प पोतानी त्वचा जे काचली ते परिहरवा योग्य जाणीने गमे, सेरय के० तेम ए साधुजे छे, ते रजनी पेरे अष्ट प्रकारना कर्मने गमे एतावता कषाय नकरे केमके कषायने अभावे कर्म पोतानी मेले ठमाशे. इति सखायमुणी के० एवीरीते जाणीने चारित्रिउ एणमज्जई के० मद एटले अहकार करे नही, ते मदनु कारण देखाडेछे गोके० काश्यपादिक गोत्रकरी अथवा यन्नतरेण के० अनेरा कुलरूपादिक मद तेने पामीने उत्कर्ष मान नकरे एवो माहणे के० साधु ते जेम पोता थकी मद नकरे तेम अनेसि के० अनेरानी पण अहसेयकरी के० अश्रेयकारणी एवी जे इखणी के० निदा तेपण नकरे ॥१॥ हवे परनिदाना दोष कहे छे जे के० जे कोइ अविवेकी पुरुष परजण के० अनेरा लोकने परभवई के० पराभव करे एटले अवहेलना करे ते पुरुष ससारेपरिवत्तईमह के० ससारमाहे अत्यंत परिभ्रमण करे अङ के० अथ जे कारणे इखणिया के० परनिदाते पावया के० एवी पापणीछेके जे स्वस्थानक थकी अधोस्थानके जीवने पाडे इतिसखाय के० एवु जाणी ने एटले परनिदाने दोषरूप जाणीने मुणी के० मुनिश्वर जे छे, ते जाति कुल श्रुत त

पुरुष असवरी ठतां मोहजंति के०मोहने विषे पोहोचे एटले हिताहित न जाणे.॥१०॥

॥ दीपिका–जइवीति । यद्यपि कश्चित्तापसादिर्नग्न कृशश्च चरेत् । यद्यपि षष्ठाष्टमादिकुर्वन् यावदनंतशोमास स्थित्वा भुक्ते तथापि योमायावी उपलक्षणात्कषाययुक्तोमीयते सगर्नाय गर्नार्थीमनंतशोऽनंतवार आगता यास्यति । अनंतकाल संसारे भ्रमिष्यतीति नाव ॥ ए ॥ पुरीसोति । हे पुरुष त्व पापकर्मण सकाशात् उपरम निवर्तस्व । यतोम नुजानां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवित वा पल्योपमस्यांतर्मध्ये पूर्वकोटि मितमित्यर्थः । अथवा परिसमंतादंतो यस्य तत् पर्यंतं सातमित्यर्थ । ये पुन कामेषु इच्छा मदनादिषु-मूर्छिता सन्नामग्नाइह संसारे ते मोहं याति ते मोहनाय कर्म बध्नंति अ संवृता सवररहितानरा ॥ १० ॥

॥ टीका–ननु च तीर्थिकाअपि केचन निष्परिग्रहास्तथा तपसा निष्टप्तदेहाश्च त त्कथं तेषां नो मोक्षावाप्तिरित्येतदाशंक्याह । (जइविइत्यादि) यद्यपि तीर्थिक कश्चित्तापसादिस्त्यक्तबाह्यगृहवासादिपरिग्रहत्वात् निष्किंचनतया नग्नस्त्वक्त्राणानावाच्च कृशश्चरेत् स्वकीयप्रव्रज्यानुष्ठानं कुर्यात् । यद्यपिच षष्ठाष्टमदशमद्वादशादितपोविशेषं विधत्ते यावदनंतशो मासं स्थित्वा भुक्ते तथापि आंतरकषायाऽपरित्यागान्न मुच्यते इतिदर्शयति । यस्तीर्थिकइह मायादिना मीयते उपलक्षणार्थत्वात् कषायैर्युक्तइत्येव परिछिद्यते । असौ गर्नाय गर्नार्थीमासमंतात् गता यास्यत्यनंतशोनिरवधिक कालमिति । एतडुक्तं नवति । अकिंचनोऽपि तपोनिष्टप्तदेहोऽपि कषायाऽपरित्यागान्नरकादिस्थानात् तिर्यगादिस्थानं गर्नाजन्मनंतमपि कालमविश्रमंवत् संसारे पर्यटतीति ॥ ए ॥ यतोमिथ्यादृष्ट्युपदिष्टतपसाऽपि न डुर्गतिमार्गनिरोधोऽतोमडुक्तएव मार्गे स्थेयमेतज्जन्मुपदेश दातुमाह । (पुरिसोइत्यादि) हे पुरुष येन पापेन कर्मणा असदनुष्ठानरूपेण त्वमुपलक्षितस्तत्राऽसकृत् प्रवृत्तत्वात् तस्माडपरम निवर्त्तस्व । यत पुरुषाणा जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांऽतर्मध्ये वर्त्तते तदऽप्यूना पूर्वकोटिमिति यावत् । अथवा परिसमंतात्अंतोऽस्येतिपर्यंतं सांतमित्यर्थः । तच्चैव तन्नतमेवाऽवगंतव्यं । तदेव मनुष्याणां स्तोक जीवितमवगम्य यावन्नपर्यैति ताव द्धर्मानुष्ठानेन सफलं कर्त्तव्यं । ये पुनर्नोगरूपेहपंके अवसन्नामग्नाइह मनुष्यनवे संसारे वा कामेष्विछामदनरूपेषु मूर्छिताअध्युपपन्नास्ते नरा मोह याति हिताहितप्राप्तिपरिहारे मुह्यंति मोहनीयं वा कर्मोपचिन्वतीति संनाव्यते । एतदसंवृतानां हिंसादिस्थानेन्योनिवृत्तानामसंयतेंडियाणां चेति ॥ १० ॥

ति । मुणीनमज्जइइत्यादिकम्य सूत्रावयवस्य सूत्रस्पर्शगाथाद्वयेन निर्युक्तिरुदाह । तवसंजमणाणेसु, विजईमाणोवज्जितं महोसीहिं ॥ अत्रसमुक्करिसद्यकिपुणहीना अन्ने सिं ॥ २ ॥ जइतावनिज्जरमतं, पडिसिद्धोअवमाणमहणेहि । अविसेसमयठाणा, परिहरयव्वापयत्तेण ॥ ३ ॥ (तवसजमइत्यादि) । तप सयमज्ञानेष्वऽप्यात्मसमुत्कर्षणार्थं मुत्सेकार्थ य प्रवृत्तोमानोयद्यसावपि तावद्विवर्जितस्त्यक्तोमहर्षिभिर्महामुनिभि किं पुनर्निंदाऽन्येषा न त्याज्येति । यदि तावन्निर्जरामदोपि मोक्षैकगमनहेतु प्रतिषिद्धो ऽपमानमथनैरर्हद्भिरवशेषाणि तु मदस्थानानि जात्यादीनि प्रयत्नेन सुतरा परिहर्त्तव्यानीति गाथाद्वयार्थ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ १ ॥ साम्रत परनिंदादोषमधिरुत्याह । (जोप रजवइत्यादि) । य कश्चिदविवेकी परिभवत्यवज्ञयति । पर जन अन्य लोकमात्म व्यतिरिक्त । सततरुतेन कर्मणा ससारे चतुर्गतिलक्षणे जवोदग्रावरघट्टघटीन्यायेन परिवर्त्तते भ्रमति महदत्यर्थ महात वा काल ।कचिच्चिरमितिपाठ (अदुत्ति) अथशब्दोनिपात ।निपातानामनेकार्थत्वात् अतइत्यस्याऽर्थे वर्तते। यत परपरिभवादात्यंतिक ससार अत (इखिणिया)परनिंदा। तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पापिकैव दोषवत्येव । अथवा स्वस्थानादधमस्थाने पातिका । तत्रेह जन्मनि। सुनरोदष्टात ।परलोकेऽपि पुरोहितस्याऽपि श्वादिषूत्पत्तिरिति इत्येव सख्याय परनिंदा दोषवती ज्ञात्वा मुनिर्जात्यादिभिर्यथाऽह विशिष्टकुलोद्भव श्रुतवान् तपस्वी जवास्तु मत्तोहीनइति न माद्यति ॥ २ ॥

जे यावि अणायगे सिया,जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोणप
य उवठिए, णो लज्जे समय सयायरे ॥३॥ समअन्नयरम्मि स
जमे, ससुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए, दविए
कालमकासि पंडिए ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे मदने अभावे जेकाइ कर्त्तव्यछे ते देखाडेछे जेयाविके० जेकोइ अणायगेके० अनायक एटले नायक रहित किंतु स्वमेव नायक चक्रवर्त्यादिक सियाके० होय तथा जेवियके० जेकोइ अनेरो पेसगके० कर्म करनो पेसएके० कर्मकर होय परतु जे के० जे मोणपयके० मौन पद एवुजे चारित्र तेने विषे उवठिएके० उपस्थित एटले सावधान थयो तेपण णोलज्जेके० लज्जाने अण करतो थको एतावता अभिमान ठामीने सर्वक्रिया परस्पर वदन प्रतिवदनादिक करे जो चक्रवर्त्ति चारित्र आदरे तो पण पूर्वे दिक्षित पोताना कर्मकरना कर्म करने वादे परतु गर्व नकरें, लज्जा पामे नही एरीते सयाके० सदाय समयके० समभावने आयरेके० आदरे सयमने विषे सावधान थाय ॥ ३॥ हवे क्या रह्यो थको लज्जा तथा मद नकरे? ते देखाडेछे समके० सामायकादिक जमे

नामनुपरोधेन विहरयुक्तविहारी भव । एतदेव दर्शयति । योगवानिति ॥ संयमयोगवान् गुप्त समितिगुप्तइत्यर्थः । किमित्येव। यतोऽणव सूक्ष्मा प्राणा प्राणिनोयेषु ते । तथा चेवंभूता पथानोऽनुपयुक्तैर्जीवानुपमर्दन दुस्तराइतिमाइत्यनेन ईर्यासमितिरुपक्षिप्ता । अस्याश्चोऽपलक्षणार्थत्वात् अन्यास्वऽपि समितिषु सततोऽपयुक्तेन भवितव्य । अपिच अनुशासनमेव यथागममेव सूत्राऽनुसारेण संयम प्रक्रमेत् । एतच्च सर्वैरेव वीरैरर्हद्भि सम्यक् प्रवेदित प्रकर्षेणाऽख्यातमिति ॥ ११ ॥ अथ कएते वीराइत्याह । (विरयेत्यादि) हिंसाऽनृतादिपापेभ्योये विरता । विशेषेण कर्म प्रेरयतीति वीरा, । सम्यगारम्भपरित्यागेनोत्थिता समुत्थिता ते एवंभूताश्च क्रोधकातरिकादिपीषणा । तत्र क्रोधग्रहणान्मानोगृहीत । कातरीका माया तदग्रहणाल्लोभोगृहीत । आदिग्रहणात् शेषमोहनीय परिग्रह तत्पीषणास्तदपनेतार तथा प्राणिनोजीवान् सूक्ष्मतरभेदभिन्नान सर्वशोमनोवाक्कायकर्मभिर्नन्नति नव्यापदयति । पापाच्च सर्वत सावद्यानुष्ठानरूपाद्विरता निवृत्तास्त तश्चाऽभिनिवृत्ता क्रोधाद्युपशमेनशातीभूता । यदि वाऽभिनिवृत्ता मुक्ताइव द्रष्टव्याऽति॥ १२

णवि ता अहमेव लुप्पए, लुप्पंति लोअसि पाणिणो ॥ एव स हिएहि पासए, अणिहेसे पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया कुलिय चलेवव, किसए देहमणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव पव्वए, अणुधम्मो मुणिणापवेदितो ॥ १४ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे ए भावनाये परिसह अने उपसर्ग सहन करवा ते कहेछे ण के० नथी अपि के० निश्चे ता के० तेप्रत्ये ए शीत, उष्ण, क्षुधातृषादिक परिसह तेणेकरी अहमेवलुप्पएके० नथी पीडातो हुं ? किंतु लुप्पंतिलोअसिपाणिणोके० लोकने विषे घणा तीर्यंच तथा मनुष्यादि प्राणीउं जे छे, ते शीततापादिक कष्ट करी पीडायछे, परंतु तेने सम्यक् विवेकने अभावे निर्जरा काइ पण थती नथी तेमाटे एव के० ए प्रकारे सहिएहि के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित छता जे शीततापादिक पूर्वे कह्या तेने पासए के० आलोचे तथा अणिहे के० स्नेहरहित अथवा क्रोधादिकेरहित छतो सेपुट्ठेके० ते परिसहे पीडचो थको तेनी वेदना सम्यक् प्रकारे अहियासे ॥१३॥ वली तेहिज कहेछे धुणिया के०दूरकरी कुलिय चलेवव के० लेपसहित भीतने एटले शुं कहुं के, जेम गोबरथकी लींपेली भीत ते अनुक्रमे तेनो लेप गये थके दुर्बल थाय ए दृष्टांते करी मणासणाइहिके०अनशनादिक तपे करीने किसएदेहके०देहने कृश करे तथा वली अविहिंसा मेवपव्वएके०एक अहिंसाज आदरे अणुधम्मो मुणिणापवेदितो के०ए अहिंसादिलक्षण जे धर्मछे ते जीवने अनुकूल एटले हितकारी सर्वज्ञेकह्योछे ॥१४॥

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्य । सएवनूत कालमकार्षीत् पंडित सद्विवेकासद्विवेक कलित । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यत्तोयावन्मृत्युकाले तां वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्थात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुठे परुसेहि माहणे, अविहणू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये ति ॥ ५ ॥ पण्ण समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सुहमे उ सया अलूसए, णो कुझे णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे शास्त्रु अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेछे दूरके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये, तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवुं विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउं अतीतधम्म के० अतीत धर्म एटले पाछले काले जीवनु अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे त्रमण कखु तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागय के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं सरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं तथा परुसेहिके० कठण वचन अथवा दंम कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउं ते अपि के० किंबहुना हणू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अथवा पाठांतरे (समयाहियासएति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेछे पण्णसमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे अथवा प्रश्न पूछ्या थका प्रत्युत्तर देवाने समर्थहोय समता के० समनावे धम्म के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेछे एवो मुणी के० चारित्रिउं सुहमेउ के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअलूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकुझे के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माहणे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(दूरमिति) दूर मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जीवाना स्वनावं विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्ट परुषैः कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनि (अविहणूत्ति) अपि हन्यमान स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गच्छति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थ ॥५॥ (पण्णसमत्तेत्ति) ।

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ॥ एवं दविउवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उठियमणगारमेसणं, समणं ठाण ठिअं तवस्सिणं ॥ डहर वुड्ढाय पछए, अवि सुस्से ण य तं लभेज्जणो ॥१६

अर्थ—हवे कहेछे के जह के॰जेम सउणी के॰ पक्षिणी ते पसुगुंडिया के॰रजे करी खरडी थती विहुणिय के॰ अंग धुणावीने धंसयईसियरयं के॰ ते वधी रज खंखेरीने दूर करे एवं के॰ एरीते दविउ के॰ मोक्ष जवाने योग्य भव्यजीव ते वहाणवं के॰ उप धान वत थतो उपधान एटले तपविशेष तेनो करनार एवो तवस्सिमाहणे के॰ तपस्वी माहण महणो एवोजेनो उपदेश छे,तेने प्राकृत शैली माटे माहण कहिए, एटले तपस्वी ब्रह्मचर्यनो पालनार ते कम्मखवइ के॰ कर्म खपावीने पोता थकी वेगलाकरे ॥१५॥ हवे अनुकूल उपसर्ग कहेछे अणगार के॰ साधु ते संयमने विषे उठियं के॰ प्रवर्त्यो तथा एसणके॰ एषणानो पालनार तथा समणके॰ श्रमण अने तवस्सिणं के॰ तपस्वी ठाणठिअके॰स्थान स्थित उत्तरोत्तर संयमने स्थानके प्रवर्त्यो ते तवस्सिणके॰ तपस्वी एवा साधुने कदाचित् डहरा के॰ बालक पुत्र पौत्रादिक तथा वुड्ढाके॰ पिता माता दिक तेणे पछएके॰ प्रार्थ्यो एटले प्रार्थना करी कहेके, शुं तमे अमारु प्रतिपालन कर वानुं टालोछो अमारु पालण पोषण करनार तमारा विना बीजो कोइ नथी इत्यादिक व चन कहेता ते अवि के॰ अपि सुस्से के॰ श्रम पामे, परतु तजणा के॰ ते जन जे स्व जनादिकते परमार्थना जाण एवा साधुने णयलभेतुके॰पोताने वश करी शके नही.॥१६॥

॥ दीपिका—सउणीति । शकुनिः पक्षिणी यथा पांसुना रेणुना गुंठिता व्याप्ता सती अ गं विधूय कंपयित्वा सितं बद्धं रजोध्वंसयत्यपनयति एवं द्रव्योभव्योमुक्तिगमनयोग्य उपधानवान् तपोयुक्तः क्षपयति तपस्वी । मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्यामाहण ॥१५॥ (उठियेति) डहराबाला पुत्रादयोवृद्धा पित्रादयः श्रमणं प्रार्थयेयुः । वयं त्वया पाल्यास्त्वंचास्माकं पाल्यइति । किंभूतं श्रमणं अनगारं गृहरहितं एषणां प्रति उत्थितमुद्य मवंतं स्थानस्थितं संयमस्थानस्थं तपस्विनं एवं भणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं ग छेयुः न च तं साधुं लभेरन् नैवात्मवशं कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच (सउणीत्यादि) शकुनिका पक्षिणी यथा पांसुना रजसा ऽवगुंठितासती अंगं विधूय कंपयित्वा तद्रजः सितमवबद्धंसत् ध्वंसयत्यपनयति । एवं द्रव्योभव्यो मुक्तिगमनयोग्योमोक्षंप्रत्युपसामीप्येन दधातीति उपधानमनशनादिकं तपः तदस्याऽस्ती त्युपधानवान् सचैवंभूतः कर्मज्ञानावरणादिकं क्षपयत्यपनयति । तपस्वी साधुः (माह

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्य । सएवनूत कालमकार्षीत् पंडित सद्विवेकासद्विवेक कलित । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकालं ता वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुठे परुसेहि माहणे, अविहसू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये ति ॥ ५ ॥ पसु समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सुहमे उ सया अलूसए, णो कुप्पे णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे शानु अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेले दूरके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये, तेने अणुपस्सियाके० आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवु विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउ अतीतधम्म के० अतीत धर्म एट ले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे नमण कर्युं तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागय के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनु स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं तथा परुसेहिके० कठण वचन अथवा दम कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउ ते अपि के० किंबहुना हसू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अ थवा पाठांतरे (समयाहियासएत्ति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेले पसुसमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे अथवा प्रश्न पूछ्या थका प्रत्युत्तर देवाने स मर्थहोय समता के० समनावे धम्म के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेले एवो मुणी के० चारित्रिउ सुहमेउ के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअ लूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हएयो थको पण णोकु प्पे के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माह णे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(दूरमिति) दूरं मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जी वाना स्वनाव विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्ट परुषै कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनि (अविहसूत्ति) अपि हन्यमान स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गछ ति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थ ॥५॥ (पसुसमत्तेत्ति) ।

एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैर्पीडितोपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षयेत् यदि जीवितं न वांछेत् असंयमजीवितं वा नाकांक्षेत् । तदा ते निजास्तं साधुं न लभंते न प्राप्नुवंति स्वव शेकर्तुं (नसववित्तएत्ति) नापि गृहस्थत्वे संस्थापयितुमलं ॥ १७ ॥

॥ टीका–किंच (जईत्यादि) यद्यपि ते मातापितृपुत्रकलत्रादयस्तदंतिके समेत्य करुणा प्रधानानि विलापप्रायाणि वचांस्यऽनुष्ठानानि वा कुर्युः । तथाहि । णाहपियकंतसामिय, अइवल्लहडुल्लहोसि भवणंमि ॥ तुहविरहम्मियनिक्किवसुस्ससव्वंपिपडिहाइ ॥१॥ सेणीगा मोगोवी,गणोवतज बहोमिसणिहितो ॥ दिप्पइसिरिएसुपुरिसंकिपुणनिययघरदारं ॥ २ ॥ तथा यदि (रोयंतियत्ति) रुदंति पुत्रकारणं सुतनिमित्तं कुलवर्धनमेकं सुतमुत्पाद्य पुनरेव कर्तुमर्हसीति । एवं रुदंतोयदि भणंति तं भिक्षुं रागद्वेषरहितत्वान्मुक्तियोग्यत्वाद्वा डव्यभूतं सम्यक्संयमोत्थानेनोत्थितं तथाऽपि साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति प्रव्रज्यातोभ्रंशयितुं भावाद्भ्यावयितुं नाऽपि संस्थापयितुं गृहस्थभावेन द्रव्यलिंगाद्भ्यावयितुमिति ॥ १७ ॥ अपिच (जइविइत्यादि) यद्यपि ते निजास्तं साधुं संयमोत्थानेनोत्थितं कामैरिच्छामदनरूपैर्लोभयंति उपनिमंत्रयेयुरुपलोभयेयुरित्यर्थः । अनेनाऽनुकूलोऽपसर्गग्रहणं । तथा । यदि नयेयुर्बध्वा गृहं। णमिति वाक्यालंकारे। एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरभिद्रुतोऽपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीविताभिलाषी न भवेत् असंयमजीवितं वा नाऽभिनंदेत् ततस्ते निजास्तं साधुं (णो लप्नतित्ति) न लभंते न प्राप्नुवंति आत्मसात्कर्तुं (णसव वित्तएति । नाऽपि गृहस्थभावेन संस्थापयितुमलमिति ॥ १७ ॥

सेहंतिय णं ममाइणो,माया पियाय सुयाय भारिया ॥ पोसाहि
ण पासओ तुमं, लोगपरं पि जहासि पोसणो ॥ १८ ॥ अन्ने अ
न्नेहिं मुच्छिया, मोहं जंति णरा असंवुडा ॥ विसमं विसमेहिं
गाहिया, ते पावेहिं पुणो पगब्भिया ॥ २० ॥

अर्थ–ते माता पितादिक ते चारित्रियाने अहीं णं इति वाक्यालंकारे, सेहंतिके० शीखवे ते स्वजन केवा छे? तोके, ममाइणोके० अत्यंत स्नेहेकरी ते मायाके० माता, पिया यके० पिता, सुयायके० सुत एटले छोकरा अने भारियाके० भार्या एवा सज्जन कुं शीखवे तेकहेछे के अहो पुत्र? अमे ताहरे वियोगे अत्यंत डुखिआछैए, एवा अमने पासउके० देखीने तुमके० तु अमारु पोसाहिणके० पोषण कर,कारणके तु अत्यंत सूक्ष्मदृष्टीवालोछो ते माटे तारा हृदयमा सारीपेठे विचारीने अमारु पोषण कर,अन्यथातो लोगके०इहलोक तथा परके० परलोक थकी पण जहाहिके०भ्रष्ट थईश. तेमाटे डुःखी एवा मावित्रनु पोसणो

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्य । सएवनूत कालमकार्षीत् पडित सद्विवेकासद्विवेक कलित । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकालं ता वल्लज्ञामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागय तहा ॥ पुठे परुसेहिं माहणे, अविहसू समयमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये ति ॥ ५ ॥ पस्स समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सुहमे उ सया अलूसए, णो कुज्झे णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे शानु अवलंबन करीने सयम पाले ते कहेछे दूरके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये, तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवु विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउ अतीतधम्म के० अतीत धर्म एटले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे भ्रमण कयु तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागय के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नही तथा परुसेहिंके० कठण वचन अथवा दंम कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउ ते अपि के० किंबहुना हसू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयमि के० सिद्धातना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अथवा पाठांतरे (समयाहियासएति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेछे पस्ससमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे अथवा प्रश्न पूठया थका प्रत्युत्तर देवाने समर्थहोय समता के० समनावे धम्म के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेछे एवो मुणी के० चारित्रिउ सुहमेउ के० सूक्ष्म सयमने विषे सयाअलूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकुज्झे के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माहणे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(दूरमिति) दूर मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जीवाना स्वनाव विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्ट परुषे कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनि (अविहसुत्ति) अपि हन्यमान स्कदकशिष्यवत्समये सयमे रीयते गछति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थ ॥५॥ (पस्ससमत्तेत्ति) ।

तम्हा दवि इक्क पंमिए, पावाउ विरतेऽभिणिवुमे ॥ पणए वीरे म
हाविहिं, सिद्धिपहं णेआउयं धुवं ॥२१॥ वेयालियमग्गमागउ
मणवयसाकायएणसंवुमो ॥ विच्चा वित्तं च णायउ आरम्भ च सुसंवु
मे चरेज्जासित्तिबेमि ॥२२॥ इति वैतालीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशक.

अर्थ–जो तेने ए विपाक लागेतो शुं करवु ? ते कहेछे तम्हा के० ते कारणे दवि के० मुक्तिगमन योग्य भव्यजीव रागद्वेषरहित पमिए के० पंमित विवेकयुक्त छतो संसारवास सेवता महाक्लेशछे एवु जाणी इक्क के० तेना विपाकने चितवे एवो तो के० ते पावा के० पापकर्म थकी विरते के० निवर्त्ते अभिणिवुमे के० क्रोधादिकने परिहारे करी शीतल थाय तथा पणतके० महाविनयवंत अने वीरेके०कर्म विदारवाने सामर्थ्यवान महाविहिं के० जे महांत एटले जैनमार्गे प्रवर्त्ते ते मार्ग केवो छे? तो के, सिद्धिपहं के० सिद्धिपंथ जे मोक्षनो मार्ग तथा णेआउयं के० न्यायमार्ग तथा धुव के० शाश्वतो एवो मार्ग जाणीने आदरवो ॥ २१ ॥ वली तेहज उपदेश उपसंहार करतो कहेछे वेयालिय के० कर्मनो विदारनार एवो जे मग्ग के० मार्ग तेनेविषे आगउ के० आगत एटले आव्यो तथा वली मणवयसाकाएण संवुमो के० मन, वचन अने कायायेकरी संवरनो पालनार विच्चाके० छांमीने, शुं छांमीने? तोके, वित्तंचणायउके० धन, ज्ञाती, स्वजन तथा आरंभं के० आरंभ एटला वाना छांडीने सु के० सुष्टु एटले भलीपरे इंद्रीउने संवुमे के० संवरतो छतो चरे के० संयमने पाले तिबेमि के० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी जंबुप्रत्ये कहेछे के, जेम श्रीमहावीरदेव पासेथी सांभट्यु तेम तुजने कहुं ॥ २२ ॥ इति श्रीवैतालियाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देश समाप्त

॥ दीपिका–तम्हादिति । तस्मात् द्रव्यभूतोमुक्तियोग्य पंडित सन् ईक्षस्व विचारय । पापाद्विरतोऽभिनिर्वृत क्रोधादित्यागात् शांतीभूत तथा वीरा कर्मविदारणसमर्थामहावीर्थि महामार्गं प्रणता प्रातानान्ये । महावीर्थिकिंभूता सिद्धिप्रद ज्ञानादिमार्गं प्रतिनेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यभिचार इतिज्ञात्वा संयमप्रागल्भ्यैर्नभाव्यमिति ॥ २१ ॥ वैतालिएत्ति । कर्मणा वैदारिक विदारणसमर्थं मार्गमागतोमनोवाक्कायसंवृतस्त्यक्त्वा वित्त धनं ज्ञातीन् स्वजनान् सावद्यारंभं च सुसंवृतइंद्रियै संयमे चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशक समाप्त ॥

॥ टीका–यतएव ततः किं कर्तव्यमित्याह । (तम्हाइत्यादि) यतोमातापित्रादिमूर्छिता पापेषु कर्मसु प्रगल्भानवति तस्माद्द्रव्यभूतोभव्योमुक्तिगमनयोग्योरागद्वेष

सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त नरक तिर्यंच मनुष्यादिक भेदें करी संसारमाहे आश्रित छे, तेने पत्तेय के० प्रत्येके प्रत्येके समय के० समता एटले सरखापणे समीहिया के० देखवा केमके सर्व जीव सुखना अभिलाषीछे, पण दुःखना द्वेषीछे, तेमाटे पोताना सरखा जाणी धर्म प्रकाशे तथा जेमोणपदउवछिते के० जे मौनपद एटले संयमने वि पे उपस्थित एटले सावधान एवो साधु छे, तउके० ते जीवघातने विषे त्रिविध त्रिविध प्रकारे जेणे विरति अकासि के० विरति कीधी छे, पंमिएके० ते पंमित जाणवो ॥ ७ ॥

दीपिका–(बहुजनेति) बहुजनैर्नम्यते स्तूयते इति बहुजननमनोधर्म । कथं राजगृहपुरे श्रेणिकराज्ञ सदसि कदाचिदेव विचार क्रियते । किंधार्मिकाजनाबहव किं वा ऽधार्मिका । तदा लोकैरुक्तं अधार्मिकाबहव । अभयमन्त्रिणा तु कथितं धार्मिका बहव । सभालोके तद्वचोऽमन्यमाने अभयेन परीक्षार्थं श्वेतकृष्णप्रासादद्वय कारितं । नगरे च बहुघोषणा कारिता । य कश्चिद्धार्मिक सबलिं गृहीत्वा धवलप्रासादे समेतु अधार्मिकस्तु कृष्णे तदा सर्वोपि लोकोधवलप्रासादमेव प्राप्त कृष्णप्रासादे तु श्रावकद्वय। तद्दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथमेतावतोलोकाधार्मिकाएव । तदा स्वस्वधर्मप्रशंसापूर्वक वयं धार्मिका इति सर्वजनैरुक्तं । कृष्णप्रासादे श्रावकद्वयं दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथं युवामधार्मिकौ । तदा ताभ्यामुक्तमस्माभिर्मद्यनिवृत्तिनियमभंग सकृन्निर्मित । भग्नव्रतस्य किं जीवित । यत । वरमग्गिमिपावेसो, वर विसुद्धेण कम्मुणा मरणं ॥ मागहियव्वयभंगो, माजीय खलिय सीलस्स ॥१॥ इति । तथा परमार्थत साधवएव धार्मिका । अस्माभिस्तु । अवाप्य मानुष जन्म, लब्ध्वा जैन च शासनं ॥ कृता निवृत्तिर्मद्यस्य, सम्यक् सापि न पालिता ॥१॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाअधार्मिक ॥ अधमाधममात्मान,कृष्ण प्रासादमाश्रिता ॥२॥ तदेव सर्वेपि प्राय स्व धार्मिक मन्यतइति। बहुजननमनोधर्मस्तस्मिन् संवृत समाहितो नर सर्वार्थैर्बाह्याभ्यन्तरैर्धनधान्यकलत्रममतादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्ध सन् धर्म प्रकाशितवान् इत्युत्तरेण संबंध । यथा ह्रदोजलाशयविशेषोऽनाविलोनिर्मल स्यात् तथाऽकलुषचित्तोधर्म काश्यप जिनप्रणीतं प्राडुरकार्षीत् प्रकट कृतवान् । छांदसत्वाद्वा वर्तमानातीतप्रत्ययनिर्देश । एवंविधोधर्म प्रकाशयेदिति । एवंगुणश्च साधु स्यात्तत साधोरेव धर्मदेशनायामधिकारोन गृहिणइति ॥ ७ ॥ (बहवइति) बहव प्राणिन पृथिव्यादय पृथक् संसार श्रितास्तेषां समता सुखप्रियत्वं तुल्यमवेक्ष्य दृष्ट्वा योमौनपद संयममुपस्थितआश्रित साधुस्तत्र प्राणिसमूहोपघाते विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वा पंडित ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (बहुजणनमणमित्यादि) बहून् जनान् आत्मानप्रति नामयति प्रव्हीकरोति तैर्वा नम्यते स्तूयते बहुजननमनोधर्म सएव बहुभिर्जनैरात्मीयात्मीयाश

पादिकने विषे एमकूई के० मद न करे, एटले हु उत्तम छुं ए अमुक महारा थकी घणो हीन ठे एवो पोतानो उत्कर्ष नकरे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयआरभ्यते पूर्वोद्देशके श्रीऋषभस्वामिना स्वपुत्राणामुपदेश कथित इहापि सएवोच्यतइति तत्रेद प्रथमसूत्रं (तयेत्ति)यथा सर्प त्वच स्वा जहाति एवमसौ साधु रज कर्म त्यजति एव कषायाभावे कर्माभावइति सख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मद न याति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषमदग्रहण । माहणेत्ति। साधु । जेविउत्तिपाठे यो विद्वान् जातिकुलादिभिर्न माद्यतीति तथा । अश्रेयस्करी इखिणी निंदा साप्यन्येषा न कार्येति ॥१॥ (जोपरिभवइत्ति) य परिभवति अवज्ञाति पर जनं ससंसारे परिवर्तते भ्रमति महदत्यर्थं । चिर वा पाठ । अडुत्ति । अथशब्दोऽतइत्यर्थे। अत इखिणिआ परनिंदा । तुर्निश्चये । पापिकैव डुर्षेव । इहलोके निंदाया सुघरोदृष्टात । यथा एकोवानर कश्चिद्वृक्षे वर्षासु शीतवाते पीड्यमान सुगृहीकया पक्षिण्या भणित । यथा। वानरगापुरिसोसी निरत्ययंवहसिवाहुदंडाइ । जोपायवस्ससिहरे,नकरोसिकुडिपडालिंवा ॥१॥ सचैव पक्षिण्या भाषितोपि तूष्णीमास्ते तावत्पक्षिणी वानर वार वार तद्वक्ति रुष्टेन वानरेण त वृक्षमारुह्य तद्गृह भग्न सा दूर नष्टा । वानरोवक्ति । यथा। नवसिममंमहतरिआनवसिममंसोहिआवनिछावा । सुघरेअछसुविघरा,जावछसिलोगतत्तासु ॥१॥ सुखमिदानीं तिष्ठेति सुगृहा डुखिनी जाता परलोकपुरोहितस्यापि श्वादियोनिपूत्पत्तिरिति इति सख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मद न कुर्यात् यतोमदादेव परनिंदा स्यादिति ॥ २ ॥

॥ टीका–प्रथमानतर द्वितीय समारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसबंध । इहानतरोद्देशके भगवता स्वपुत्राणा धर्मदेशनाभिहिता । तदिहापि सैवाऽध्ययनार्थाधिकारत्वात् अभिधीयते । सूत्रस्य सूत्रेण सह सबधोऽय । अनंतरोक्तसूत्रे बाह्यद्रव्यस्वजनारभपरित्यागोऽभिहितस्तदिहाऽभ्यातरमानपरित्यागउद्देशार्थाभिकार सूचितोऽभिधीयते । तदनेन सबधनाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्यादिसूत्रं । (तयसचयइत्यादि) । यथाह्युरग स्वां त्वच अवश्य परित्यागार्हत्वात् जहाति परित्यजति । एवमसावपि साधु रजइव रजोऽष्टप्रकार कर्म तद् कषायित्वेन परित्यजतीति । एव कषायाभावो हि कर्माभावस्य कारणमिति सख्याय ज्ञात्वा मुनि कालत्रयवेदी न माद्यति मदं न याति । मदकारण दर्शयति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषाणि मदस्थानानि गृह्यतइति (माहणत्ति) साधु । पाठातर वा (जेविउत्ति) विद्वान् विवेकी सजातिकुलज्ञानादिभिर्न माद्यतीति । न केवलं स्वतोमदोन विधेयोजुगुप्साऽप्यन्येषा न विधेयेति दर्शयति । अथाऽनंतर । असौ अश्रेयस्करी पापकारिणी (इंखिणित्ति) निंदा अन्येषाऽमतोन कार्ये

ग्रादसत्वात् वर्त्तमानेभूतनिर्देशइति ॥ ७ ॥ सबहुजननमने धर्मे व्यवस्थितोयादृक् धर्म प्रकाशयति तदर्शयितुमाह । (बहवेइत्यादि) यदिवोपदेशातरमेवाऽधिकृत्याह । (बह वेइत्यादि) बहवोऽनता प्राणादशविधप्राणनोक्त्वात्तदभेदोपचारात् प्राणिन । पृथगि ति पृथिव्यादिभेदेन सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तनरकगत्यादिभेदेन वा संसारमाश्रितास्तेषां च पृथगाश्रितानामपि प्रत्येक समता दु ख द्वेपित्व सुखप्रियत्व च समीक्ष्य दृष्ट्वा। यदि वा समता माध्यस्थ्यमु पेक्ष्य योमौनीन्द्रपदमुपस्थित सयममाश्रित ससाधुस्तत्राऽनेक भेदभिन्नप्राणिगणे दु ख द्वेपिसुखाभिलापिणि सति तदुपघाते कर्त्तव्ये विरतिमकार्पीत् कुर्यादिति पापाद्वीन पापानुष्ठानात् दवीयान् पण्डितइति ॥ ८ ॥

धम्मस्स य पारए मुणी,आरंभस्स य अंतए ठिए ॥ सोयंति य णं ममा इणो, णो लप्नति णिय परिग्गह ॥ ए॥ इह लोगदुहावह विऊ, पर लोगेय दुह दुहावहं ॥ विद्धसण धम्ममेव तं इति विज्ज कोगारमावसे॥१०॥

अर्थ–वली तेहिज कहेछे धम्मस्सयपारएमुणी के० धर्म शब्दे श्रुत चारित्ररूप ते नो पारगामी एटले सवेगी अने गीतार्थ एवो मुनीश्वर तथा आरंभस्सय के० आर भ जे सावद्यानुष्ठान तेनाथी अंतएठिए के० अत्यत दूर रह्योछे अर्थात् सावद्यानुष्ठानने अण करतो थको प्रवर्त्ते ते मुनि कहेवाय अने सोयतियण के० ए पूर्वे कह्यु एवो जे धर्म तेना अण करनार जे होय ते मरण आवे थके शोच पामे परतु ते केवा जाण वा ? तोके, ममाइणो के० ममत्वना करनार णोलप्पतिनिय परिग्गह के० ते पोतानु जे नष्ट थयेलु सुवर्णादिक परिग्रह अथवा स्वजन नाशीगयेलो अथवा मरण पाम्यो एवो स्वजन तेने न पामे पण ते शोच करता थकाज मरीने दुर्गतिये जाय. ॥ ए ॥ धन धान्य अने स्वजनादिक जे परिग्रह छे ते इहलोगदुहावहविऊ के० आ लोकने विपे दु खनु कारण जाणी यत । अर्थानामर्जने दु खमार्जितानां च रक्षणे ॥ आये दु. खं व्यये दु ख धिगर्थान् दु खभाजनान् ॥ १ ॥ अने परलोगेयदुह दुहावहके० परलोके पण दुःख तथा अनेरा दु खनो करनार जाणीने तथा विद्धसणधम्ममेवत के० तेथी परिग्रह जे छे, विद्धसण धर्मिछे एटले अशाश्वत अनित्यछे इतिविज्ञ के० एवु जाण तो थको कोगारमावसे के० कोण सकर्ण मनुष्य गृहवासने विपे वसे यत । दारा परिभवकारावधुजना बधन विपं विपया ॥ कोय जनस्य मोहोये रिपवस्तेपु सुहृदाशा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ १० ॥

॥ दीपिका–(धम्मस्सेति) धर्मस्य श्रुतचारित्ररुपस्य पारगोमुनि आरंभस्य च अं

के० अनेरा संयमने विषे एटले सामायक छेदोपस्थापनीयादिक सयमने विषे प्रवर्त्ततो थको संके० सम्यक्प्रकारे सुद्धेके० शुद्ध समणेके० श्रमण जे तपस्वीते लज्जा तथा मदने परित्यागे समचित्त थको परिव्वए के० प्रव्रज्या पाळे. ते केटलो काल सुधी पाळे? ते कहेछे. जेआवके० ज्यांलगे तेनी कहाके० कथा रहे त्यालगे पाळे एटले जावजीव लगे मरण सीम समाहिएके० समाधिवंत अथवा आत्मज्ञानसहित अथवा रुडा अध्यवसाये करी सुक्त दविएके० ते मुक्ति गमन योग्य अथवा रागद्वेपरहित एवो थको जे काल मकासिके० काल करे ते पंमिएके० पंमित कहेवाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—जेयाविति । यश्चापि अनायकोनायकरहित स्वयं प्रजुश्चक्रवर्त्यादि स्यात् यश्चापि प्रेष्यस्यापि प्रेष्य कर्मकरस्यापि कर्मकर स्यात् एवन्नूत सन् मुनेरिदं मौन पदं स्थान मौनपद सयममुपस्थितआश्रितोनोलज्जते । कोर्थ । चक्रवर्त्यपि प्रेष्यं साधुं वदमानोन लज्जते प्रेष्योपि प्रजु साधुमितर वा उत्कर्पेरहितोनमन्न लज्जते । एवमनेन प्रकारेण समता चरेत् साधु ॥ ३ ॥ (समेति) समोमध्यस्थ सयमस्थानाना पट्स्थानपतितत्वादन्यतरस्मिन् सयमस्थाने सामायिकछेदोपस्थापनीयादौ वा सयमे संशुद्धे निर्मले संशुद्धो वा मदरहित श्रमणः परिव्रजेत् उद्यमवान् नवेत् । कियत काल यावत्कथा यावन्नाम धत्ते तावत् । किन्नूत साधु समाहित शुनध्यान पंडितोयावत्कालमकार्षीत् मृत्युकालं यावदित्यर्थ । नामवार्तातु मृतस्यापि नवेत् ततउक्त यावत्कालमकार्षीदिति ॥ ४ ॥

॥ टीका—मदानावे च यद्विधेय तद्दर्शयितुमाह (जेयावीत्यादि) यश्चाऽपि कश्चिदास्तां तावत् । अन्योन विद्यते नायकोऽस्येत्यनायक स्वय प्रजुश्चक्रवर्त्यादि स्यात् नवेत् यश्चाऽपि प्रेष्यस्याऽपि प्रेष्य तस्यैव राज्ञ कर्मकरस्यापि कर्मकरोयएवन्नूतोमौनीइं पद्यते गम्यते मोक्षोयेन तत्पद सयमस्त उपसामीप्येन स्थित उपस्थित समाश्रित सोऽप्यलज्जमानउत्कर्पमकुर्वन् वा सर्वा क्रिया परस्परतोवदनप्रतिवदनादिकाविधत्ते । इदमुक्तं नवति ।चक्रवर्तिनाऽपिमौनीइपदमुपस्थितेन पूर्वमात्मप्रेष्यमपि वदमानेन लज्जा न विधेया इतरेण चोत्कर्पइत्येव समता समन्नाव सदा निकुश्चरेत् संयमायुक्तोनवेदिति ॥ ३ ॥ क्वपुनर्व्यवस्थितेन लज्जामदौ न विधेयाविति दर्शयितुमाह (समेइत्यादि) (समेत्ति) समन्नावोपेत सामायिकादौ सयमे संयमस्थाने वा पट्स्थानपतितत्वात् संयमस्थानानामन्यतरस्मिन् सयमस्थाने छेदोपस्थानीयादौ वा । तदेव विशिनष्टि । सम्यक् शुद्धे सम्यक् शुद्धोवा श्रमणस्तपस्वी लज्जामदपरित्यागेन समानमनावा परिव्रजेत् संयमोद्युक्तोनवेत् स्यात्। कियतं कालं यावत् कथा देवदत्तोयज्ञदत्तइति कथा यावत् ।सम्यगाहितआत्मा ज्ञानादौ येन ससमाहित समाधिना वा शोननाध्यवसायेन सुक्तोइव्यन्नूतोरागद्वेपादिरहि

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाऽइहं ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विउ मता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा मह्रोटा जीवने कतरतां दुर्जन एवो शु? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरग कर्दम जाणवो जाविय वंदणपूयणाइह के०तेअही साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलाभ ना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनु कारण जाणिया के० जाणीने उ त्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहु मेसल्लेदुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे दुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो दुर्जनछे तेमाटे विउमता के० विद्वास विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० ठामे संथव के० सत्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउं एका की द्रव्य थकी एकलविहारी अने भाव थकी रागद्वेषरहित एवो ठतो विचरे तथा एक लो ठतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको वेगे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्या पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामा प्रवर्ते त्यात्या सियाके० रागद्वेष टाल तो थको प्रवर्त्तमान होय एवो भिक्खू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुडे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो कर नार एवो साधु होय ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(महयमिति) महांतं परिगोपं भावपंकोऽभिष्वगस्तं विपाकतोज्ञात्वा यो पि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजन। इहाऽस्मिंल्लोके ता ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतो गर्वोऽय सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्च दुरुद्धरमुद्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तत्भावत्ससंस्तवं परि चयं सगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥११॥ (एगेइति) एकोरागद्वेषरहितएकलविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेषरहितएव समाहितो धर्मादिध्यानयुक्त स्यात् । तथाभिक्षुरुपधान तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवी र्य वाग्गुप्त अध्यात्म मनस्तेन संवृत स्यात् ॥ १२ ॥

प्रज्ञासमास पटुप्रज्ञ । अथवा प्रश्नसमर्थः प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थ. सदाजयेत्कषाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनि । सूक्ष्म स्तोकमपि यत्संयमकृत्यं तस्याऽ छूपकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमान पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयति ॥ ६ ॥

॥ टीका—किमालव्यैतद्विधेयमित्युच्यते । (दूरमित्यादि) दूरवर्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा । यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनि कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीत धर्म स्वनाव जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षण तथा अनागतं च धर्म स्वनाव पर्यालोच्य लज्ञामयो न विधेयो । तथा स्पृष्ट परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणोत्ति) मुनि (अविहमूत्ति) अपि मार्यमाण. स्कंदकशिष्यगणवत्समये सयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गञ्चतीत्यर्थ । पाठांतर वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पण्णसमत्तइत्यादि) प्रज्ञाया समाप्त प्रज्ञासमाप्त' पटुप्रज्ञ । पाठांतर वा (पण्णसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थ सदा सर्वकालं जयेज्जेय कषायादिकमिति शेष । तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यति सू क्ष्मे सयमे यत्कर्तव्यं तस्याछूपकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वित स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सवठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
5 सिया पत्तेय समयउवेहिया ॥ जे मोणपदं उवछिते, विरतिं
तत्त अकासि पंमिए ॥ ८ ॥

अर्थ—बहुजण के० घणालोकने णमणमि के० नमाडे एटले जेने सर्वे लोक पोत पोतानो करीने प्रसन्नो तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुमोके० संवृत एटले समाधिवंत एवो उतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सवठेहिं के० सर्वे अ र्थ एटले बाह्य अने अभ्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित ए टले अप्रतिबंध उतो धर्म प्रकाशे हरएवके०इहनी पेरे जेम इहजेठे, ते सयाके० सर्वे काल स्वड निर्मल पाणीयेज नर्यो थको रहेठे. अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना मोलवा थकी पण डोहोलु नथाय तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित उतो धम्मपाड रकासि के० धर्म प्रगट करे. ते धर्म कासव के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेठे अथवा उपदेशांतरे कहेठे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाइह ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथव ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेछे महयं के० महा मह्होटा जीवने कतरता दुर्जेन एवो शु? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरग कर्दम जाणवो जाविय वंदणपूयणाइह के०तेअही साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलाभ ना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनु कारण जाणिया के० जाणीने उ त्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहु मेसल्लेदुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे दुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो दुर्जेनछे तेमाटे विउमता के० विद्वास विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० छांमे संथव के० सस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एका की द्रव्य थकी एकल्लविहारी अने भाव थकी रागद्वेषरहित एगो छतो विचरे तथा एक लो छतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको वेसे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामा प्रवर्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेष टाल तो थको प्रवर्त्तमान होय एवो भिक्खू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुडे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो कर नार एवो साधु होय ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(महयमिति) महान् परिगोपं भावपंकोऽभिष्वगस्तं विपाकतोज्ञात्वा यो पि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजना इहाऽस्मिंल्लोके तां ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतो गर्वोऽयं सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्चदुरुद्धरमुद्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तत्तावस्तस्तव परि चयं सगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥११॥ (एगेइति) एकोरागद्वेषरहितएकल्लविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेषरहितएव समाहितो धर्मादिध्यानयुक्त स्यात् । तथाभिक्षुरुपधान तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवी र्य वाग्गुप्त अध्यात्मं मनस्तेन संवृत स्यात् ॥ १२ ॥

प्रज्ञासमाप्त पटुप्रज्ञ । अथवा प्रश्नसमर्थे प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कपाया दिक तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनि । सूक्ष्म स्तोकमपि यत्संयमकृत्य तस्याऽ लूषकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमान पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयति ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालब्यैतद्विधेयमित्युच्यते । (दूरमित्यादि) दूरवर्त्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा । यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनि कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीत धर्म स्वनाव जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षण तथा अनागत च धर्म स्वनाव पर्यालोच्य लज्जामदौ न विधेयौ । तथा स्पृष्ट परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणेत्ति) मुनि (अविहम्मूत्ति) अपि मार्यमाण स्कंदकशिष्यगणवत्समये संयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गच्छतीत्यर्थः । पाठांतर वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पन्नसमत्तइत्यादि) प्रज्ञायां समाप्त प्रज्ञासमाप्त पटुप्रज्ञ । पाठांतर वा (पन्नसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थः सदा सर्वकालं जयेज्जेय कषायादिकमिति शेष । तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यति सू क्ष्मे संयमे यत्कर्तव्यं तस्याच्लूषकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वित स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सव्वठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासव ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
सिया पत्तेयं समयजवेहिया ॥ जे मोणपदं जवठिते, विरतिं
तत्र अकासि पंमिए ॥ ८ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुमोके० संवृत एटले समाधिवंत एवो थतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सव्वठेहिं के० सर्व अ र्थ एटले बाह्य अने अभ्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित ए टले अप्रतिबंध थतो धर्म प्रकाशे हरएवके०इहनी पेरे जेम ड्रहजेठे, ते सयाके० सर्व काल स्वच्छ निर्मल पाणीयेज नखो थको रहेठे अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना मोलवा थकी पण डोहोलु नथाय. तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित थतो धम्मपाडु रकासि के० धर्म प्रगट करे तेधर्म कासव के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेठे. अथवा उपदेशांतरे कहेठे. बह्वेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनंताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जूदा जूदा

पनो जाण एवो मुनीश्वर ते सम एटले अनुकूल शय्यादिक तथा विषम एटले प्रतिकूल शय्यादिक तेने अहियासे तथा तेमज ते स्थानकने विषे चरकके० मांस मसादिक अ थवा ते० अथवा नेरवा के० बिहामणा एवा घूक सिंहादिक जीव अडवा के० अ थवा तत्र के० त्यां सुनाघरने विषे सरीसिवा के० सरीसृप एटले सर्प्प, सिया के०होय तो ते जीवोना करेला उपसर्गने सहन करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णोपीहेति)। केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्य गृहमाश्रितोभिक्षुस्तस्य गृहस्य द्वार कपाटादिना न पिदधीत न स्थगयेत् ।(णयावपंगुणेत्ति)। नोद्घाटयेत। के नचिद्धर्मादिक मार्गादिक पृष्ट सन् सावद्या वाच नोदाहरेन्नब्रूयात् ।आनिग्रहिकोजिनकल्पि कादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् । न समुच्छियात्तृणानि कचवरवा प्रमार्जनेन नावनयेत् नापि शयनार्थी कश्चिदानिग्राहिकस्तृणादिक सस्तरेत् तृणैरपि सस्तारक न कुर्यात् किंपुन. कबला दिना अन्योवा शुषिरतृण न सस्तरेत् ॥ १३ ॥ (जत्थेत्ति)। यत्रास्तमेति सविता तत्र वाऽनाविलोऽनाकुलस्तिष्ठति । समविषमाणि शयनासनादीन्यधिसहेत समतया सहेत। त त्र स्थितस्य मुनेश्चरकादशमशकादयोनैरवाभयकरारक्ष शिवादयोऽथवा सरीसृपा सर्पा स्युस्तदा तत्कृतोपसर्गानपि सहेत ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (णोपिहेत्यादि)। केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्यगृहमाश्रितोभिक्षुः तस्य गृहस्य द्वार कपाटादिना नस्थगयेन्नाऽपि तच्चालयेत्।यावत् (नयावपंगुणेत्ति)नोद्घा टयेत् तत्रस्थोऽन्यत्रवा केनचिद्धर्मादिकं मार्ग वा पृष्ट सन् सावद्या वाच नोदाहरेत् न ब्रूयात् । आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् तथा न समुच्छियात् । तृ णानि कचवरच प्रमार्जनेन नाऽपनयेत नाऽपि शयनार्थी कश्चिदानिग्राहिक स्तरेत् तृणैरपि सस्तारक न कुर्यात् किं पुन कबलादिनाऽन्योवा शुषिरतृण दिति ॥ १३ ॥ तथा (जत्थत्थमियेत्यादि)। निकुर्यत्रैवाऽस्तमुपैति सविता तत्रै योत्सर्गादिना तिष्ठतीति । यत्राऽस्तमितस्तथाऽनाकुल समुद्भवन्नक्रादिभि परी पसर्गैरकुल्यन् समविषमाणि शयनासनादीन्यनुकूलप्रतिकूलानि मुनिर्यथावस्थितसंस रस्तनाववेत्ता सम्यगारक्तद्विष्टतयाऽधिसहेतेति ॥ १४ ॥

तिरिया मणुयाय दिव्वगा, उवसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लो मादिय पिण हरिसे सुन्नागारगउ महामुणी ॥१५॥ णो अभिकं खेज्ज जीविय, नोविय पूयणपत्थए सिया ॥ अप्रत्थमुविंति ये ॥, सुन्नागारगयस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥

प्रज्ञासमास पटुप्रज्ञ.। अथवा प्रश्नसमर्थे प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कपाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनि । सूक्ष्म स्तोकमपि यत्सयमकृत्यं तस्याऽ छूपकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमान पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयतिः ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालव्यैतद्विधेयमित्युच्यते । (दूरमित्यादि) दूरवर्त्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्टा । यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनि कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीतं धर्म स्वनाव जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षण तथा अनागतं च धर्म स्वनाव पर्यालोच्य लज्जामदौ न विधेयो। तथा स्पृष्टः परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणेत्ति) मुनि (अविहसूत्ति) अपि मार्यमाण स्कंदकशिष्यगणवत्समये सयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गच्छतीत्यर्थः ।पागंतर वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पसुसमत्तइत्यादि) प्रज्ञाया समाप्त प्रज्ञासमास पटुप्रज्ञ । पागंतर वा (पसुसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थ सदा सर्वकाल जयेज्जेय कषायादिकमिति शेष । तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यति सू क्ष्मे सयमे यत्कर्तव्यं तस्याछूपकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वित स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सव्वठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
सिया पत्तेयं समयडुवेहिया ॥ जे मोणपदं उवछिते, विरतिं
तत्त अकासि पंमिए ॥ ७ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे सवुमोके० सवृत एटले समाधिवत एवो छतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सव्वठेहिं के० सर्व अ र्थे एटले बाह्य अने अभ्यतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित ए टले अप्रतिबध छतो धर्म प्रकाशे हरएवके०डहनी पेरे जेम डहजेठे, ते सयाके० सर्व काल स्वछ निर्मल पाणीयेज नयो थको रहेठे अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना मोलवा थकी पण डोहोलु नथाय तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित छतो धम्मंपाडु रकासि के० धर्म प्रगट करे तेधर्म कासव के० श्रीतीर्थंकरसबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेठे अथवा उपदेशांतरे कहेठे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

पनो जाण एवो मुनीश्वर ते सम एटले अनुकूल शय्यादिक तथा विषम एटले प्रतिकूल शय्यादिक तेने अहियाशे तथा तेमज ते स्थानकने विषे चरकके० मास मसादिक अ हुवावि के० अथवा चेरवा के० बिहामणा एवा घूक सिहादिक जीव अहुवा के० अ यवा तत्र के० त्या सुनाघरने विषे सरीसिवा के० सरीसृप एटले सर्प, सिया के०होय तो ते जीवोना करेला उपसर्गने सहन करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णोपीहेति)। केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्य गृहमाश्रितोभिक्षुस्तस्य गृहस्य द्वार कपाटादिना न पिदधीत न स्थगयेत् ।(णयावपगुणेत्ति)। नोद्घाटयेत् । केनचिद्धर्मादिक मार्गादिक पृष्ट सन् सावद्या वाच नोदाहरेन्नब्रूयात् ।आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् । न समुछियात्तृणानि कचवरवा प्रमार्जनेन नापनयेत् नापि शयनार्थी कश्चिदभिग्राहिकस्तृणादिक सस्तरेत् तृणैरपि सस्तारक न कुर्यात् किंपुन कवला दिना अन्योवा शुषिरतृण न सस्तरेत् ॥ १३ ॥ (जत्थेत्ति)। यत्रास्तमेति सविता तत्र वाऽनाविलोऽनाकुलस्तिष्ठति । समविषमाणि शयनासनादीन्यधिसहेत समतया सहेत । तत्र स्थितस्य मुनेश्चरकादशमशकादयोभैरवाभयंकरारक्त शिवादयोऽथवा सरीसृपा सर्पा स्युस्तदा तत्कृतोपसर्गानपि सहेत ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (णोपिहेत्यादि) । केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्यगृहमाश्रितोभिक्षुस्तस्य गृहस्य द्वार कपाटादिना नस्थगयेन्नाऽपि तच्चालयेत्।यावत् (नयावपगुणेत्ति)नोद्घाटयेत् तत्रस्थोऽन्यत्रवा केनचिद्धर्मादिक मार्ग वा पृष्ट सन् सावद्या वाच नोदाहरेत् न ब्रूयात् । आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् तथा न समुछियात् । तृणानि कचवरच प्रमार्जनेन नाऽपनयेत नाऽपि शयनार्थी कश्चिदाभिग्राहिक स्तरेत् तृणैरपि सस्तारक न कुर्यात् किं पुन कवलादिनाऽन्योवा शुषिरतृण दिति ॥ १३ ॥ तथा (जत्थत्थमियेत्यादि) । भिक्षुर्यत्रैवाऽस्तमुपैति सविता तत्रै योत्सर्गादिना तिष्ठतीति । यत्राऽस्तमितस्तथाऽनाकुल समुद्भवन्नक्रादिभि परी पसर्गैरक्षुभ्यन् समविषमाणि शयनासनादीन्यनुकूलप्रतिकूलानि मुनिर्यथावस्थितसस्वभावेत्ता सम्यगारक्तद्विष्टतयाऽधिसहेतेति ॥ १४ ॥

तिरिया मणुयाय दिव्वगा, उवसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लोमादिय पिण हरिसे सुन्नागारगउ महामुणी ॥१५॥ णो अभिकंखेज्ज जीविय, नोविय पूयणपत्थए सिया ॥ अब्भत्थमुविंति भेरवा, सुन्नागारगयस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥

येन यथाऽभ्युपगमप्रशंसया स्तूयते प्रशस्यते। कथमत्र कथानक। राजगृहे नगरे श्रेणिको महाराज कदाचिदसौ चतुर्विधबुध्युपेतेन पुत्रेण अभयकुमारेण सार्धमास्थानस्थित स्तानिस्तानि कथानिरासाचक्रे। तत्र कदाचिदेवंभूता कथाऽभूत्। तद्यथा इहलोके धार्मिकाबहवउताऽधार्मिकाइति। तत्र समस्तपर्षदाभिहितं। यथाऽत्राऽधार्मिकाबहवोलोकाधर्मे तु शतानामपि मध्ये कश्चिदेवैकोविधत्ते तदाकर्ण्याऽभयकुमारेणोक्त। यथा प्रायशोलोका सर्वएव धार्मिका। यदि न निश्चयोभवता परीक्षा क्रियते पर्षदाऽप्यभिहितमेवमस्तु ततोऽभयकुमारेण धवलेतरप्रासादद्वयं कारितं घोषितं च डिंडिमेन नगरे यथा य कश्चिदिह धार्मिक ससर्वोऽपि धवलप्रासाद गृहीतबलि प्रविशतु इतरस्त्वितरमिति। ततोऽसौ लोक सर्वोऽपि धवलप्रासादमेव प्रविष्टोनिर्गच्छश्च कथं त्व धार्मिकइत्येव पृष्ट कश्चिदाचष्टे। यथाऽह कर्षकोऽनेकशकुनिगणोमधान्यकणैरात्मान प्रीणयति खलकसमागतधान्यकणभिक्षादानेन च मम धर्मइति।अपरस्त्वाह।यथाऽहं ब्राह्मण षट्कर्माऽभिरत स्तथा बहुशौचस्नानादिभिर्वेदविहितानुष्ठानेन पितृदेवास्तर्पयामि।अन्य कथयति यथा वणिकुलोपजीवी भिक्षादानादिप्रवृत्तोऽपरस्त्विदमाह। यथाऽह कुलपुत्रकोन्यायागतं निर्गतिक कुटुंबक पालयाम्येव तावत् श्वपाकोपीदमाह यथाऽह कुलक्रमागतं धर्ममनुपालयामीति मत्निश्रयाश्च बहव पिशितभुज प्राणान् धारयंतीत्येव सर्वोऽप्यात्मीयमात्मीयं व्यापारमुद्दिश्य धर्मे नियोजयति। तत्राऽपरमसितप्रासादं श्रावकद्वयं प्रविष्टं तच्च किमधर्माचरण भवद्भ्यामकारीत्येव पृष्ट सत् सकृन्मद्यनिवृत्तिभगव्यलीकमकथयत् तथा साधवएवाऽत्र परमार्थतोधार्मिकायथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहणसमर्था। अस्माभिस्तु अवाप्य मानुष जन्म लब्ध्वा जैन च शासन॥ कृत्वा निवृत्तिं मद्यस्य सम्यक् साऽपि न पालिता॥ १॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाअधार्मिक॥ अथनाधममात्मान कृष्णप्रासादमाश्रिता॥ २॥ तथाहि। लज्जा गुणौघजननी जननीमिवार्या,मत्यंतशुद्धहृदयामनुवर्त्तमाना॥ तेजस्विन सुखमसूनपि सत्यजति सत्यस्थितिव्यसनिनोन पुन प्रतिज्ञा॥ ३॥ वर प्रवेष्टु ज्वलित हुताशन नचाऽपि भग्नं चिरसंचितव्रतं॥ वर हि मृत्यु सुविशुद्धचेतसोनचाऽपि शीलस्खलितस्य जीवितमिति॥ ४॥ तदेव सर्वोऽप्यात्मानं धार्मिक मन्यतइतिकृत्वा बहुजननमनोधर्मइति स्थित। तस्मिश्च सवृत ममाहित सन् नर पुमान् सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममत्वादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्ध सन् धर्मं प्रकाशितवानित्युत्तरेण सह संबंध। निदर्शनमाहाऽह्रदइव स्वच्छाभसा भृत सदानाविलोऽनेकमत्स्यादिजलचरसंक्रमेणाऽप्यनाकुलोऽकलुषोवा क्षान्त्यादिलक्षण धर्मं प्राडुरकार्षीत् प्रकट कृतवान्। यदि वा एव विशिष्टएव काश्यपतीर्थकरसन्निभ धर्मं प्रकाशयेत्।

स्वात्मनां उपसामीप्येन यंति गच्छंति । तत्सहनाच्च निद्धो. शून्यागारगतस्य नीराजित वारणस्येव शीतोष्णादिजनिताउपसर्गाः सुसहाएव नवतीति नाव ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो, नयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स ज, जो अप्पाण नएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तनोइणो धम्मठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिअ साहुराइहि, असमाही उ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

अर्थ–वली बीजो उपदेश कहेले उवणीयतरस्सके० उपनीततर एटले जेणे पोताना आत्माने ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनेविषे पहोचाडयोडे तथा ताइणोके०त्राइ एटले जेनो आत्मा अन्यने उपकारी होय तेने त्राइ कहिए तथा विविक्कके० विविक्त आसणके० आशन एटले स्त्री तथा पशु पमके करी विवर्जित एवा नयमाणस्सके०उपाश्रयनो से वनार सामाइयमाहुतस्सजंके० तेने सामायक चारित्र जाणवो. जोके० जेचारित्रिउ अ प्पाणके० पोतानाआत्माने परिसह उपसर्ग उपना थका नएणदंसएके० नयने देखाडे नहीं, एटले उपसर्ग उत्पन्नययाथी बीहे नहीं ॥१७॥ वली उसिणोदगतत्तके० उष्ण उ दक तथा तप्तोदकनो नोइणोके० नोगवनार एटले उष्ण थकां शीतल नकरे, किंतु उष्णो दक उताज पानकरे, तथाधम्मठियस्सके० श्रुत अने चारित्र धर्मने विषे स्थित मुनि-स्सके० मुनिराज एटले तत्वनो जाण हीमतोके० लज्जावत एटले असयमे प्रवर्त्यो थको लज्जा पामे एवा साहुके० साधुने पण राइहिके राजादिकने ससग्गिअके० सस र्ग असमाहिउ के० असमाधिज थाय, तह गयस्सविके० तथा गतस्य यथोक्त अनुष्ठा नना करनार एवा साधु पण राजादिकना ससर्गें करी स्वाध्याय ध्यानथकी चूके. ॥१८॥

॥ दीपिका–उवणीयेति । उपनीतोऽतिशयेन ज्ञानादौ प्रापितआत्मायेन सउपनीतत रस्तस्य । तायिन परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य विविक्तं स्त्रीपशुपडकवि वर्जितमासन वसत्यादि नजमानस्य सेवमानस्य सामायिकादिचारित्रमाहु । सर्व ज्ञा यते यस्मात्तत साधुना निश्चलात्मना नाव्यं । तथा यआत्मान नयेन दर्शयेत् परीषहो पसर्गैर्नीरुर्नस्यात् तस्य सामायिकमाहुरिति ॥ १७ ॥ (उसिणोत्ति) मुनेरुष्णोदकत प्तनोजिन त्रिदंडोत्तोष्णोदकनोजिन अथवा उष्ण सत् न शीतीकुर्यादिति तत्तग्रहण ।त ॥ धर्मे स्थितस्य न्हीमत असयमे लज्जावतोराजादिनि सह ससर्ग सबंधोऽसाधुरन तथागतस्य यथोक्तानुष्ठायिनोपि राजादिससर्गवशादसमाधिरेव नकदाचित्स्या स्यादित्यर्थ ॥ १८ ॥

ते पर्यंते स्थित स्यात् । ये पुनरेव नस्तु. ते । एवाक्यालंकारे (ममाइणोत्ति) । ममेद अहमस्य स्वामीत्यध्यवसायिन शोचति । शोचमानाअपि निजपरिग्रह धनस्वजनादि क नष्टं मृतं वा लनंते ॥ ए ॥ (इहेति) इह लोकडु खावह धनस्वजनादिक (विडत्ति) विद्या' जानीहि । यत । अर्थानामर्जने डु ख,मर्जिताना च रक्षणे ॥ आये डु खं व्य ये डु ख धिगर्थान् डु खनाजनान् ॥ १ ॥ तथा रेवापय' किसलयानिव सल्लकीना वि ध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिएया. स्नेहोहि का रणमनर्थपरपराया' ॥ २ ॥ परलोके च धनादिक डु ख तदप्यपर डु ख करोति । तडु पादानकर्मोपादानात् ॥ तथा तद्धनादिविध्वसनधर्मकमेव विनश्वरमेव इति विद्वान् एव जानन् कोऽगारवासमावसेत् गृहवासे तिष्ठति । यत । दारा परिनवकारा,बंधुजनो बंधनं विष विपया ॥ कोय जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा इति॥ १ ॥ १० ॥

॥ टीका–अपिच । (धम्मस्सइत्यादि) । धर्मस्य श्रुतचारित्रनेदनिन्नस्य पार गह्नतीति पा रग सिद्धांतपारगामी सम्यक् चारित्रनुष्ठायी वेति । चारित्रमधिकृत्याह । आरनस्य साव द्यानुष्ठानरूपस्यांते पर्यंते तदनावरूपे स्थितोमुनिर्नेवति।ये पुनर्नैव नवति ते अकृतधर्मा मरणे डु खेवा समुह्रिते आत्मान शोचति । एमिति वाक्यालंकारे । यदि चेष्टमरणादा ऽवर्थनाशे वा (ममाइणोत्ति) ममेदमहमस्य स्वामीत्येवमध्यवसायिन शोचति । शोचमा नाअप्येते निजमात्मीय परिसमतात् गृह्यते आत्मसाक्रियतइति । परिग्रहोहिरएयादिरिष्ट स्वजनादिर्वा । नष्टं मृत वा नलनते न प्राप्नुवतीति । यदिवा धर्मस्य पारग मुनिमारनस्या ऽते व्यवस्थितमेनमागत्य स्वजनामातापित्राद्य शोचति ममत्वयुक्ता स्नेहालव । नच ते लनते निजमप्यात्मीयपरिग्रहबुद्ध्या गृहीतमिति । अत्रातरे नागार्जुनीया स्तु पठति ॥ सोऊणतयउवह्रिय केइगिहीविग्घेणउह्रिया धम्ममिअणुत्तरे मुणी,तंपि जिणिज्जइमेणपडिए॥१॥ एतदेवाह । (इहलोगेइत्यादि) । इहाऽस्मिन्नेव लोके हिरएयस्वज नादिक डु खमावहति । (विडत्ति) विद्या जानीहि । तथाहि । अर्थानामर्जने डु ख, मर्जिताना च रक्षणे । आये डु खं व्यये डु खं, धिगर्थ डु खनाजनं । तथाहि । रेवापय किसलयानि च सल्लकीना विंध्योपकठविपिन स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतो सि वश करिएया स्नेहोनिबधनमनर्थपरपराया ॥१॥परलोके च हिरएयस्वजनादिममत्वाऽ पादितकर्मज डु ख नवति तदप्यपर डु खमावहति तडुपादानकर्मोपादानादिति नाव ॥ तथैतडुपार्जितमपि विध्वसनधर्मं विशरारुस्वनाव गत्वरमित्यर्थ । इत्येव विद्वान् जानन् क. सकर्णोऽगारवास गृहवासमावसेत गृहवासं वा ऽनुबध्नीयादिति । उक्तंच । दाराः परि नवकारावंधुजनो बंधन विप विपया. ॥ कोऽय जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥१०॥

के० गृहस्थसंबंधी जे ज्ञाजन कास्यपात्रादिक तेने विषे नचुंजती के० जोजन न करे तेने सामायकवत जाणवो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—(अहिगरणेति) । अधिकरण कलहस्तत्करस्य निक्षोदारुण वाच प्रसह्य प्रगटमेववदतोऽर्थोमोक्ष सयमोवा बहु परिहीयते नृश विनश्यतीत्यर्थ । बहुकालार्जित मपि महत्पुण्यं कलह कुर्वतस्तत्काल हीयते । यत । ज अज्जिअ समीखल्लएहि तवनियम बजमइएहि ॥ माहुतयकलहता, बड्डेअहसागपत्तेहि ॥ १ ॥ तस्मादधिकरण नकुर्यात्पं मित ॥ १९ ॥ (सीउदगेति) । शीतोदकमप्रासुकजल तत्प्रति जुगुप्सकस्य परिहारिणो न विद्यते प्रतिज्ञा निदान यस्य सअप्रतिज्ञस्तस्याऽनिदानस्य लव कर्म तस्मादवसर्पिणोनि वर्तमानस्य साधो सामायिकादिसयममाहु सर्वज्ञा । यश्च साधुर्गृहमात्रे गृहस्थनाज नेन जुक्ते तस्य सामायिकमिति ॥ २० ॥

॥ टीका—परिहार्यदोपप्रदर्शनेनाऽधुनोपदेशानिधित्सयाह । (अहिगरणेत्यादि) । अधिकरण कलहस्तत्करोति तच्छीलश्चेत्यधिकरणकरस्तस्यैवजूतस्य निक्षोस्तथाऽधिकरण करीं दारुणां वा जयानका वा प्रसह्यप्रगटमेव वाच ब्रुवत सतोर्थोमोक्षस्तत्कारण जूतोवा सयम सबहु परिहीयते ध्वसमुपयाति । इदमुक्त जवति । बहुना कालेन यद र्जितं विप्रकृष्टेन तपसा महत्पुण्यं तत्कलह कुर्वत परोपघातिनीं च वाच ब्रुवतस्तत्क्ष णमेव ध्वसमुपयाति । तथाहि । जअज्जियसमीखल्लएहि तवनियमबंजमइएहि । माहु तयंकलहताछड्डेअह सागपत्तेहि ॥ १ ॥ इत्येव मत्वा मनागप्यधिकरण न कुर्यात् प ण्मित सदसद्विवेकीति ॥ १९ ॥ तथा (सीउदगेत्यादि) । शीतोदकमप्रासुकोदक तत्प्र ति जुगुप्सकस्याऽप्रासुकोदकपरिहारिण साधोर्न विद्यते प्रतिज्ञा निदानरूपा यस्य सोप्र तिज्ञोऽनिदानइत्यर्थ । लव कर्म तस्मात् (अवसर्प्पिणोत्ति) । अवसर्पिण यदनुष्ठा न कर्म बधोपादानजूतं तत्परिहारिणइत्यर्थ । तस्यैवजूतस्य साधोर्यस्मात् यत्सामा यिक समजावलक्षणमाहु सर्वज्ञा । यश्च साधु गृहमात्रे गृहस्थजाजने कास्यपात्रादौ न जुक्ते तस्यच सामायिकमाहुरिति सबंधनीयमिति ॥ २० ॥

णय सखयमाहु जीविय, तहविय बालजणो पगप्नइ ... ... हि मिज्जती, इति सखाय मुणी ण मज्जती ॥ २१॥ बदेण ... हुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण प ...

.॥ २२ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह (महयमित्यादि) महांतं संसारिण दुस्त्यजत्वा न्महता वा सरचेण परिगोपण परिगोपोद्रव्यत पाकादिर्नावतोऽनिष्वगस्तं ज्ञात्वा स्व रूपतस्तद्विपाकतोवा परिछिद्य याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिनि कायादिनिर्वंदना वस्त्रपात्रादिनिश्च पूजना ताच इहाऽस्मिन् लोके मौनीडे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमज फलमित्येव परिज्ञायोत्सेकोन विधेय । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च दुरुद्धर दु खेनोद्धर्तु शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वग परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठति । पलिमथमह वियाणिया जावियवदणपूयणाऽह ॥ सुहुम सल्ल दुरुद्धर तपि जिणे एएण पडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थ । साधो स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं परैर्वंदनापूज नादिक सत्कार क्रियते असावपि सदनुष्टानस्य सजतेर्वा महान् पलिमथे विघ्नआस्ता तावच्छब्दादिष्वनिष्वगस्तमित्येव परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं दुरुद्धर वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेऽत्यादि) एकोऽसहायोद्रव्यतएक लविहारी नावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थान कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एव शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्त. स्यात् नवेत् । एतडुक्तं नवति । सर्वास्वप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा निक्षणशीलोनिक्षु उपधान तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्य तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थ । तथा वाक्गुप्त. सुपर्यालोचितानिधायी अ ध्यात्म मनस्तेन संवृतोनिक्षुर्नवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुठेण नुदाहरेवायं, ण स मुछे णो संथरे तणं ॥१३॥ जछ ठमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय डुवावि नेरवा, अडुवा तछ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ–वली साधुने उपदेश कहेछे कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरे रह्यो थको एवोजे सजएके० साधु, ते ते घरना दारके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णेके० ढाके पणनही, तेम उघाडे पण नही वली त्या रह्यो छतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योछतो पुठेणवदाहरेवायके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुछे णोसथरेतण के० त्या रहेलाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नही, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं ए आचार जिनकल्पादिक अनिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे, ॥ १३ ॥ वली जछठमिए के० चारित्रिउ ज्या सूर्य अस्त थाय त्याज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्गे करी आकुल व्याकुल न थाय , क्षोन पामे न हि,अक्षोन थको रहे. तथा समविसमाइमुणीहियासएके० यथावस्थित ससारना स्वरु

न लज्जतइति । सचैवनूतोबालस्तैरसदनुष्ठानापादिति. पापं कर्मनिर्मीयते तथुक्तइत्येव प रिह्रियते म्रियते वा मेयेन धान्यादिना प्रस्थकवदित्येव सख्याय ज्ञात्वा मुनिर्यथावस्थि तपदार्थाना वेत्ता न माद्यतीति तेष्वसदनुष्ठानेष्वह शोनन कर्त्तत्येव प्रगल्नमानोमदं न करोति ॥ २१ ॥ उपदेशातरमाह (उदेणेत्यादि) छंदोऽनिप्रायस्तेन तेन स्वकीया निप्रायेण कुगतिगमनैकहेतुना इमा प्रजाअय लोकस्तासु गतिषु प्रलीयते । तथाहि रागादिवधमपि स्वानिप्रायग्रहग्रस्ता यमेसायनमित्येव प्रगल्नमानाविदधति । अन्येतु स्वर्गा दिकमुद्दिश्य दासीदासधनधान्यादिपरिग्रह कुर्वति तथाऽन्ये मायाप्रधानं कुक्कुटैरसकृद् त्प्रेक्षमाणश्रोत्रस्पर्शनादिनिर्मुग्धजन प्रतारयति । तथाहि । कुकटसाध्योलोकोन कुकुट त प्रवर्तते किंचित् । तस्माल्लोकस्यार्थे पितरमपि सकुकुट कुर्यात् तथेय प्रजा बहु माया कपटप्रधाना किमिति यतोमोहोऽज्ञान तेन प्रावृताऽऽच्छादिता सदसद्विवेकविकले त्यर्थ । तदेवमवगम्य (माहणेत्ति) साधुर्विकटेन प्रकटेनाऽमायेन कर्मणा मोक्षे संयमे वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयते शोननजावयुक्तोनवतीति नाव । तथा शीनच उष्णच शीतो ष्ण शीतोष्मोवा अनुकूलप्रतिकूलपरीषहास्तान् वाचा कायेन मनसा च करणत्रयेणाऽपि सम्यगधिसहेतइति ॥ २२ ॥

कुजए अपराजिएजहा, अक्खेहि कुसलेहि दीवयं ॥ कडमेव गहाय णो कलि, नो तियनो चेवदावर ॥ २३ ॥ एवलोगंमि ताइणा, वुइए जे धम्मे अणुत्तरे ॥ त गिण्ह हियति उत्तम, कडमिव सेसवहाय पंडिए॥२४॥

अर्थ—वली उपदेशातर कहेछे कुजए के कुत्सित एटले माठो एवो ' गो जय तेने कु जय कहिए ए जुगार कहेवाय छे, केमके एमा घणो जय थाय तोप ंदा करवा यो ग्य छे माटे कुजयछे,ते केवो? तोके अपराजिएके० लब्ध लक्षपणे खेल एटले अ न्य कोइथी जीत्यो जाय नही एवो जुगारी जहा के० जेम अक्खे त एटले पाशा तेणेकरी कुसलेहि के० कुशल निपुण एवीरीते दीवय के० र कड मेवसहाय के० चोतरो दाव ग्रहण करीने खेलता जीते तो ते चो करे, पण णोकलीके०एकनोदाव ग्रहण करे नही तेमज णोतियंके नकरे अने नोचेवदावर के० बेनो दाव पण ग्रहण नकरे ॥ २३ ाये मेजवे छे, जेम जुगारने विषे जय पामवानो अनिलाषी एट दावज ग्र करी बीजा दावनो त्याग करे एवलोगमि के० एरीते ग्राइ त्तमं। छकायनो रक्षपाल चारित्रिये वुइएजेधम्मे दियास्ने श्रीवीतरागे कह्यो, अणुत्तरे के०

॥ टीका–पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह (महयमित्यादि) महांत संसारिण डुस्त्यजत्वा न्महत्ता वा संरनेण परिगोपण परिगोपोइव्यत पाकादिर्नावितोऽनिष्वगस्तं ज्ञात्वा स्व रूपतस्तद्विपाकतोवा परिज्ञिय याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिनि कायादिनिर्वंदना वस्त्रपात्रादिनिश्च पूजना ताच इहाऽस्मिन लोके मौनींडे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमज फलमित्येव परिज्ञायोत्सेकोन विधेय । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च डुरुद्धर डु खेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् सत्तव परिचयमनिष्वग परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठति । पलिमथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइह ॥ सुहुम सल्ल डुरुद्धर तपि जिणे एएण पडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थ । साधो. स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकातनिस्पृहस्य योऽपि चाऽय परैर्वंदनापूज नादिक सत्कार क्रियते असावपि सदनुष्ठानस्य सन्नतेर्वा महान पलिमथे विघ्नआस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वगस्तमित्येव परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्य डुरुद्धर वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पंडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोइव्यतएक लविहारी नावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थान कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एव शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्त स्यात् नवेत् । एतडुक्त नवति । सर्वास्वप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा निक्खणशीलोनिक्खु उपधान तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्य तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थ । तथा वाक्गुप्त सुपर्यालोचितानिधायीअ ध्यात्म मनस्तेन सवृत्तोनिक्खुर्नवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुठेण नुदाहरेवायं, ण स मुल्ले णो संथरे तणं ॥१३॥ जछ ठमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय डुवावि नेरवा, अडुवा तछ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ–वली साधुने उपदेश कहेछे कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरे रह्यो थको एवोजे सजएके० साधु, ते ते घरना दारके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णेके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नही वली त्यां रह्यो ठतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योठतो पुठेणउदाहरेवायके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनही. तथा णसमुल्ले णोसथरेतण के० त्यां रहेलाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नही, वली तेनेणो सथरे एटले पाथरे पण नही ए आचार जिनकल्पादिक अनिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे, ॥ १३ ॥ वली जछठमिए के० चारित्रिउ ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्ग करी आकुल व्याकुल न थाय, क्षोन पामे हिं,अक्षोन थको रहे तथा समविसमाइमुणीहियासएके० यथावस्थित संसारना

अर्थ—वली अन्य उपदेश कहेछे मणुयाणके० मनुष्यने उत्तरके० जीपतां अति डुर्लन आहिया के० कह्या एवा शु ? तोके, गामधम्मा के० ग्रामधर्म ते शब्दादिक विषय अथवा मैथुन सेवन इत्यादिकने ग्रामधर्म कहिए इति के० एरीते मेके० में अणुस्सुयं के० श्रीवीरजगवत पासेथी सांजल्युं छे, एटले श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामि प्रत्ये कहे छे के, ग्रामधर्म जे शब्दादिक विषय छे ते मनुष्यने घणा डुर्जय श्रीवीतरागे कह्या छे, एवुं में जगवत पासेथी सांजल्युं छे तेरीते हुं तुजने कहुंछु तो हवे ए ग्रामधर्म आश्री जसी के० जे विरता के० विरतिने विषे समुठिया के० सावधान थया ते पुरुष कासव स्स के० काश्यप गोत्री एटले श्रीरुषजदेव स्वामि अथवा श्रीमहावीरस्वामि एमना धम्म के० धर्मना अणुचारिणोके० अनुचारी जाणवा ॥ २५ ॥ वली कहेछे. जेके० जे पुरुष एय के० ए पूर्वोक्त ग्रामधर्मने विषे विरतिलक्षण एवो जे धर्म तेने चरति के० आचरे ते धर्म कोणे आहियके० कह्यो ? तोके, महया के० महोटा महेसिणा के० महाऋषी एवा नाएण के० ज्ञातपुत्रे कह्योछे तेके० ते एवा धर्मना करनार संयम पालवाने उठिय के० उठ्या, सावधान थया, तथा समुठिया के० सम्यक् प्रकारे कुमार्ग देशनाने परित्यागे करी घणा सावधान थता प्रवर्त्ते. ते अन्नोन्नसारंति धम्मउके० परस्पर माहोमाहे धर्मथकी पगता प्राणीने वली धर्मनेविषे सारंति एटले स्थापे इत्यर्थ ॥२६॥

॥ दीपिका–(उत्तरेति) । मनुजानां नराणां ग्रामधर्मा शब्दादिविषयाउत्तराडुर्जयत्वात्प्रधानाजिनैराख्याता । मयैतदनुपश्चाछ्रुतमाकर्णितं । यत श्रीरुषजस्वामिना स्वपुत्रानुद्दिश्य प्रोक्तं तत्पाश्चात्यगणधरैः शिष्येन्य कथित ततोमया श्रुतमिति । यस्मिन्निति पंचम्यर्थे सप्तमी । येन्योविषयेन्योविरता समुत्थिताउद्यता काश्यपस्य श्रीरुषजस्य श्रीवीरस्य वा सबन्धी यो धर्मस्तदनुचारिणोजिनोक्तधर्मकारिण स्युः ॥२५॥ (जेएयमिति) । ये एवंविधा पूर्वोक्तास्ते धर्मविषयत्यागरूपं चरंति कुर्वंति इति महता महर्षिणा ज्ञातेन श्रीवीरेणाख्यात । तएवोत्थिता सम्यङ्मार्गेण समुत्थिताश्च [illegible] न्य परस्परं [illegible] मितोधर्ममाश्रित्य धर्मतोभ्रश्यंतं वा सारयति धर्मे प्रवर्तयंतीत्यर्थ [illegible]

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह केषामुपदेशार्हत्वान्मनुष्याणामन्यथा पुनरूपावेति । एवं ग्रामधर्मोत्तरत्वं नुकोय आणुक्त । यच्च वक्ष्यमाण [illegible] मिनम

अर्थ–तथा तिरिया के० तिर्यंच संबंधी, मणुंयाय के० मनुष्यसंबंधी अने दिव्वगा के० देवतासंबंधी ए तिविहा के० त्रण प्रकारना उवसग्गा के० उपसर्गने साधु हियासि याके० सहन करे. पण तेना करेला उपसर्गथी विकार पामे नहीं, लोमादियंपि के० कि बहुना तेने ते नयथकी रोमोज्ञम पण एहरिसेके० नथाय, सुन्नागारगउ के० एरीते जे सुनाघरने विषे रहे ते महामुणी के० महामुनि जिनकल्पियादिक जाणवा. ॥ १५ ॥ तथा नोअनिकखेज्जजीवियंके० ते चारित्रिउ पूर्वोक्त उपसर्गे पीड्यो उतो जीवितव्यने वाले नहीं किंतु मरण आगमिने परिसहने सहन करे, तथा नोपियपूयणपच्छएसियाके० परिसह सहन करवा थकी पूजाना अनिलाषी नथाय एरीते ते सुन्नागारगयस्सनिक्खु णोके० शुनागारगत चारित्रियाने नेरवा के० महारौद्र उपसर्ग ते अप्पउ के० सहन क रतां सुलन थविति के० होय ॥ १६॥

॥दीपिका–तिरियाइति ।तिरश्चा सिंहादिकृता मानुषाअनुकूलप्रतिकूलादिव्याव्यंतरादिकृ ताउपसर्गास्त्रिविधास्तान् अधिसहेत निर्विकारतया क्षमेत । लोमादिकमपि नहर्षेत् नयेन रोमोज्ञम नकुर्यात् । आदिशब्दाद्दृष्टिमुखविकाराग्रिह । शून्यागारगतोमहामुनि उपल क्षणात्प्रेतवनादिस्थित ॥१५॥ नोअनिकखेइति । उपसर्गै पीड्यमानोपि साधुर्नाभिका क्षेज्जीवितं । जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गा सोढव्याइत्यर्थ ।नापिच पूजाप्रार्थक स्यात् । उप सर्गसहनात्पूजामपि नसमीहते इत्यर्थ । एव सह्यमाना परिषहानैरवानयकराअपि अन्य स्तन्नाव यति गच्छति। शून्यागारगतस्यनिक्षोरे वमुपसर्गा सहन्यस्ता सुसहान्नवंतीति॥१६

॥ टीका–सांप्रतं त्रिविधोपसर्गाधिसहनमधिकृत्याह । (तिरियाइत्यादि) तैरश्चा सिंहव्याघ्रादिकृतास्तथा मानुषाअनुकूलप्रतिकूला सत्कारपुरस्कारदंमकशाताडनादिज निता। तथा (दिव्वगाइति) व्यंतरादिना हास्यप्रद्वेषादिजनिता। एवत्रिविधानप्युपसर्गानऽ धिसहेत नोपसर्गैर्विकार गच्छेत् । तदेव दर्शयति । लोमादिकमपि न हर्षेत् नयेन रोमो ज्ञममपि न कुर्यात् । यदिवा एवमुपसर्गास्त्रिविधाअपि (अहियासियत्ति) अधिसोढा नवति । यदि रोमोज्ञमादिकमपि न कुर्यात् । आदिग्रहणात् दृष्टिमुखविकारादिपरिग्रह । शून्यागारगत शून्यगृहव्यवस्थितस्य चोपलक्षणार्थत्वात् पितृवनादिस्थितोवा महामु निर्जिनकल्पिकादिरिति ॥ १५ ॥ किंच । (णोअनिकखेइत्यादि) । सतैर्नैरवैरुपसर्गैरु दीर्णैस्तोद्यमानोऽपिजीवितं नाऽनिकांक्षेत जीवितनिरपेक्षेणोपसर्ग सोढव्यइतिनाव । नचोपसर्गसहनद्वारेण पूजाप्रार्थक प्रकर्षाऽनिलाषी स्यात् नवेत् । एवच जीवि तपूजानिरपेक्षेणाऽसकृत् सम्यक् सह्यमानानैरवानयानका शिवा पिशाचादयोऽन्यस्तनाव

अथवा अनेराये पूछयाथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा संपसारए के० अर्थकांमादिक कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तर के० सर्वो त्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करे एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे. कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने सयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका-(मापेहेति) । प्रणामयंति प्रापयंति दुर्गतिं प्रणामका शब्दादिविषया स्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधि मायां धूनयितुमपनयनायानिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थ । ये नरादुर्मनोनिर्विषयैर्नैनता न तत्परा स्युस्ते जानंति समा धि धर्मध्यानं आहितं आसमतात् हितं ॥२७॥ (नोकाहिएति) सयत्त साधु काथिक कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निक प्रश्ननिमित्तकथकश्च ननवेत । नच संप्रसारको मेघवृष्टयर्थकाडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तमुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया सयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अ हमस्य स्वामीति मामक. परिगृही नस्यादित्यर्थ ॥ २८ ॥

॥ टीका-किंच (मापेहेत्यादि) दुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति प्राणि नां प्रणामका शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं भुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर। तेषां स्मरणम पि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागताश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । तथाऽनिकांक्षेत् अ भिलषेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति दर्शयति । उपधीयते ढौक्यते दुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म तद्धननायाऽपनयनायाऽ निकांक्षेदिति सबंध । दुष्टधर्मं प्रत्युपनता कुमार्गानुष्ठायिनस्तीर्थिका यदिवा (दूमणत्ति) दुष्टमन कारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु ये महासत्वा न नतान प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच सन्मार्गानुष्ठायिनोजानंति विदंति स माधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच आहितमात्मनि व्यवस्थितं आसमताद्धितं वा तएव जानंति नाऽन्यइतिनाव ॥ २७ ॥ तथा (णोकाहिएइत्यादि) सयत प्रव्राजितं कथया चरति काथिकोगोचरादौ न नवेत् । यदिवा विरुद्धां पैशून्यापादनीं स्त्र्यादिकथा वा न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन राजादिकिंवृत्तरूपेण दर्पणादिप्रश्ननिमित्तरूपेण वा चरतीति प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच सप्रसारकोदेववृष्टयर्थकाडादिसूचककथाविस्तारकोनवेदि ति । किंकृत्वेति दर्शयति । ज्ञात्वाऽवबुध्य नास्योत्तरोविद्यतइत्यनुत्तरस्तंश्रुतचारित्रा ख्यं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यदुत विकथानिमित्तपरिहारेण स

अर्थ-तथा तिरिया के० तिर्यंच संबंधी. मणुयाय के० मनुष्यसंबंधी अने दिव्वगा के० देवतासंबधी ए तिविहा के० त्रण प्रकारना उवसग्गा के० उपसर्गने साधु हियासि याके० सहन करे. पण तेना करेला उपसर्गथी विकार पामे नहीं, लोमादियपि के० किं वहुना तेने ते नयथकी रोमोज्ञम पण एहरिसेके० नथाय, सुन्नागारगउ के० एरीते जे सुनाघरने विपे रहे ते महामुणी के० महामुनि जिनकल्पियादिक जाणवा. ॥ १५ ॥ तथा नोअनिकंखेज्जजीवियंके० ते चारित्रिउ पूर्वोक्त उपसर्ग पीड्यो उतो जीवितव्यने वांबे नहीं किंतु मरण आगमिने परिसहने सहन करे, तथा नोपियपूयणपछएसियाके० परिसह सहन करवा थकी पूजाना अनिलाषी नथाय. एरीते ते सुन्नागारगयस्सनिक्खु णोके० शुनागारगत चारित्रियाने नेरवा के० महारौद्र उपसर्ग ते अप्पउ के०सहन करतां सुलन्न थ्रवंति के० होय ॥ १६॥

॥दीपिका-तिरियाइति ।तिरश्चा सिंहादिकृता. मानुषाअनुकूलप्रतिकूलादिव्याव्यंतरादिकृतावपसर्गास्त्रिविधास्तान् अधिसहेत निर्विकारतया क्षमेत । लोमादिकमपि नहर्षेत् नयेन रोमोज्ञमं नकुर्यात् । आदिशब्दाद्दृष्टिमुखविकारादिग्रह् । शून्यागारगतोमहामुनि उपलक्षणात्प्रेतवनादिस्थित ॥१५॥ नोअनिकंखेइति । उपसर्गे पीडयमानोपि साधुर्नाभिकांक्षेज्जीवितं । जीवितनिरपेक्षणोपसर्गा सोढव्याइत्यर्थ ।नापिच पूजाप्रार्थक.स्यात् । उपसर्गसहनात्पूजामपि नसमीहते इत्यर्थ । एव सह्यमाना परिषहानैरवानयंकराअपि अन्यस्तनाव यंति गवति। शून्यागारगतस्यनिक्षोरे वमुपसर्गा. सह्यन्यस्ता सुसहानवर्तंति॥१६

॥ टीका-सांप्रतं त्रिविधोपसर्गाधिसहनमधिकृत्याह । (तिरियाइत्यादि) तैरश्चा. सिंहव्याघ्रादिकृतास्तथा मानुषाअनुकूलप्रतिकूला सत्कारपुरस्कारदंमकशाडनादिजनिता । तथा (दिव्वगाइति) व्यंतरादिना हास्यप्रद्वेषादिजनिता.। एवत्रिविधानुपसर्गानऽधिसहेत नोपसर्गविकार गच्छेत् । तदेव दर्शयति । लोमादिकमपि न हर्षेत् नयेन रोमोज्ञममपि न कुर्यात् । यदिवा एवमुपसर्गास्त्रिविधाअपि (अहियासिया) अधिसोढा नवति । यदि रोमोज्ञमादिकमपि न कुर्यात् । आदिग्रहणात् दृष्टिमुखविकारादिपरिग्रह. । शून्यागारगत शून्यगृहव्यवस्थितस्य चोपलक्षणार्थत्वात् पितृवनस्थितोवा महामु निर्जिनकल्पिकादिरिति ॥ १५ ॥ किंच । (णोअनिकखेइत्यादि) सतैनैरवैरुपसर्गैरुदीर्यमाणोतुद्यमानोऽपिजीवित नाऽनिकांक्षेत जीवितनिरपेक्षेण [illegible] सोढव्यइतिनाव । नचोपसर्गसहनद्वारेण पूजाप्रार्थक प्रकर्षाऽनिलाषी [illegible] तपूजानिरपेक्षेणाऽसकृत् सम्यक् सह्यमानानैरवानपि [illegible] नवेत् । एवच जी

अथवा अनेरायें पूछ्याथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा सपसारए के० अर्थकांमादिक, कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मंके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तर के० सर्वो त्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करे एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे, कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने संयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका-(मापेहेति) । प्रणामयंति प्रापयंति डुर्गतिं प्रणामका शब्दादिविषया स्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधिं मायां धूनयितुमपनयनायाभिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थः । ये नराडुर्मनोभिर्विषयैर्ननता न तत्परा स्युस्ते जानंति समा धिं धर्मध्यानं आहितं आसमतात् हितं ॥२७॥ (नोकाहिएति) संयतः साधुः कार्थिकः कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निकः प्रश्ननिमित्तकथकश्च ननवेत् । नच सप्रसारको मेघवृष्ट्यर्घकांडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तममुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अ हमस्य स्वामीति मामकः परिगृही नस्यादित्यर्थः ॥ २८ ॥

॥ टीका-किंच (मापेहेत्यादि) डुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति नां प्रणामकाः शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं भुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर । ते पि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागतांश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । त निजपेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति ढौक्यते डुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म त निकांक्षेदिति संबंधः । डुष्टधर्मं प्रत्युपनता कुमार्गानुष्ठायिनस्ती डुष्टमनः कारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच माधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच ॥ तएव जानंति नाऽन्यइतिनावः ॥ २७ ॥ तथा (कथया चरति कार्थिकोगोचरादौ न नवेत् । न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच ति । किंकृत्वेति दर्शयति । त्वं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यडत विकथा

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह (उवणीयेत्यादि) उपसामीप्येन नीतः प्रापितोज्ञानादाऽवात्मा येन सतथा अतिशयेनोपनीतउपनीततरस्तस्य तथा तायिन परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य तथा भजमानस्य सेवमानस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमास्यते स्थीयते यस्मिन्निति तदासन वसत्यादि तस्यैव भूतस्य मुने सामायिकं समभावरूप सामायिकादिचारित्रमाहु सर्वज्ञा । यद्यस्मात् ततश्चारित्रिणा प्राग्व्यवस्थित स्वभावेन भाव्यं यश्चात्मान भयेन परिषहोपसर्गजनितेन दर्शयेत् तभीरुर्न भवेत् तस्य सामायिकमाहुरिति संबधनीयं ॥ १७ ॥ किंच (उसिणोदगेत्यादि) मुनेरुष्णोदक तप्तभोजिन त्रिदंडोद्धृतोष्णोदकभोजिन । यदिवा उष्ण सन्नशीतीकुर्यादिति तप्तग्रहण । तथा श्रुतचारित्राख्ये धर्मे स्थितस्य (हीमतोत्ति) ऱ्हीरसयम प्रति लज्जा तद्वतो ऽसंयमजुगुप्सावतइत्यर्थ । तस्यैवभूतस्य मुनेराजादिभि सार्द्ध य संसर्ग संबंधोऽसाऽवसाधुरनर्थोदयहेतुत्वात्तथागतस्यापि यथोक्तानुष्ठायिनोऽपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेवाऽपध्यानमेव स्यात् न कदाचित् स्वाध्यायादिक भवेदिति ॥ १८ ॥

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो, वयमाणस्स पसज्झदारुण ॥ अट्ठे परिहायती बहु, अहिगरणं नकरेज्ज पंडिए ॥ १९ ॥ सीओदग पडिडुगंछिणो, अपडिन्नस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय साहु तस्स ज, जो गिहिमत्तसण न भुंजती ॥ २० ॥

अर्थ–हवे उपदेश आश्री कहेछे. अहिगरण के० अधिकरण ते कलह तेनो कडस्स के० करनार एवो भिक्खुणो के० चारित्रिउ वली पसज्झदारुण के० प्रगटदारुण एटले जीवने भयनुं कारण वयमाणस्स के० एवी भाषानो बोलनार एवा चारित्रियानो घणो एवो जे अट्ठेके० अर्थ जे मोक्ष तेनु कारण जे सयम ते परिहायती के० हीणो थाय. एटले बहुके० घणाकाले उपार्जित जे दुष्करतप संयम तेनो पण कलह करता परोपघातीया वचन बोलता क्षय थाय एवु जाणीने शुंकरे ? ते कहेछे पंडिएके० जे पंडितविवेकी होयते अहिगरणके०अधिकरण जे क्रोध ते स्वल्पपण नकरेज्जके० नकरे,एटले पंडित अल्पक्रोध पण करे नही ॥ १९ ॥ जे चारित्रिउ सीओदगं के० शीतोदक एटले सचेतपाणी तेने पडिडुगछिणो के० टालनार तथा अपडिन्नस्स के० अप्रतिज्ञ एटले नियाणु सर्वेयापि नकरे तथा लवावसप्पिणो के० लव एटले कर्म तेथकी शंकातो रहे. एटले कर्मबंधनुं कारण एवु जे अनुष्ठान होय ते नकरे. सामाइयसाहुतस्सजके० ते साधुने सामायक एटले समता लक्षणवंत कहिए भोके० जे साधु गिहिमत्तसणं

इति प्रशस्योलोनस्त च नकुर्यात् । तथा जात्यादिनिर्मदस्थानैर्लघुप्रकृति पुरुषमुक्त पंयतीत्युत्कर्षकोमानस्तमपि न कुर्यादिति संबंध । तथाऽतर्व्यवस्थितोऽपि मुखदृष्टि नंगविकारै प्रकाशी नवतीति प्रकाश क्रोधस्त च (माहणेत्ति) साधुर्न कुर्यात् । तेषां क पायाणां यैर्महात्मनिर्विवेक परित्यागश्राहितो जनितस्तएव धर्मं प्रति प्रणताइति । य दिवा तेषामेव सत्पुरुषाणा सुष्टु विवेक परिज्ञानरूपश्राहित प्रथित प्रसिद्ध गतस्त एवच धर्मं प्रति प्रणता । यैर्महासत्वै सुष्टु जुष्ट सेवित । धूयतेऽष्टप्रकारं कर्म येन तद्धूतं सं यमानुष्ठान । यद्दिवा ये सदनुष्ठायिनि (सुज्जोसिअति) सुष्टु क्षितं धूननार्हत्वात् धूतं कर्मेति ॥ १९ ॥ अपिच (अणिहेइत्यादि) स्निह्यतइतिस्निह् । नस्निह् अस्निह् सर्वे त्र ममत्वरहितइत्यर्थ । यद्दिवा परीषहोपसर्गैर्निहन्यतेइतिनिह नर्निहोऽनिहस्प सर्गैरपराजितइत्यर्थ । पागतरवा । (अणहेति) नाऽस्याऽघमस्तीत्यनघानिरवद्यानु ष्टायीत्यर्थ । सह हितेन वर्ततइति सहित सहितोयुक्तोवा ज्ञानादिभि स्वहितश्रा त्महितोवा सदनुष्ठानप्रवृत्ते । तामेव दर्शयति । सुष्टु सवृतइन्द्रियनोइन्द्रियैर्विस्रोत सिकारहितइत्यर्थ । तथधर्म श्रुतचारित्राख्यस्तेनाऽर्थ प्रयोजन सएवाऽर्थस्तस्यैव रर्ज्यमाणत्वात् धर्मार्थ सयस्याऽस्तीति सधर्मार्थी । तथोपधान तपस्तत्र वीर्यवान सए वभूतो विहरेत् सयमानुष्ठान यात् । समाहितेन्द्रिय सयतेन्द्रिय । कुतएव । यतश्रा त्महित दु खेनाऽसुमता सत्वे पर्यटता अकृतधर्मानुष्ठानेन लभ्यते अवाप्यतइति । त थाहि । नपुनरिदमतिदुर्लभ भावससारजलधिविभ्रष्ट । मानुष्य खद्योतकतडित्तावि लसितप्रतिम ॥ १ ॥ तथाहि । युगशमिलादिदृष्टातनीत्या मनुष्यभवएव तावत् दुर्लभ स्तत्राऽप्यार्यक्षेत्रादिक दुरापमित्यतश्रात्महित दु खेनाऽवाप्यतइति मतव्य । अपिच । भू तेषु जगमत्व, तस्मिन् पचेन्द्रियत्वमुत्कृष्ट । तस्मादपि मानुष्य मानुष्येप्यार्यदेशश्च । १ । देशे कुल प्रधान, कुले प्रधाने च जातिरुदयाय ॥ जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बल विशिष्ट तम ॥२॥ नवति बले चायुष्क प्रकृष्ट तेच रेऽपि विज्ञान । विज्ञाने सम्यक्त्व सम्यक्त्वे शीलसप्राप्तिरिति ॥ ३ ॥ एतत्पूर्वश्चायहितमात्मोमोक्षसाधनोपाय । तत्रच बहु स, नवविरत्प च सप्राप्य ॥ ४ ॥ तत्कुरुतोद्यममधुना मदुक्तमार्गे समाधिमाधाय ॥ त्यक्त्वा सगमनार्य, कार्य सद्भि सदा श्रेयइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

णहि णूण पुरा अणुस्सुत, अडुवा त तह [illegible] गो समुठिय ॥ पा गतरं अडुवा अवितहणो अणुठिअं॥मु[illegible] [illegible] आहित, नाएण जगसबदसिणा॥३१॥एव मत्ता महतर, [illegible] मिण सहिया बहू जणा ॥ गुरुणो बदाणुवत्तगा,विरया तिन्न [illegible]

अर्थ–वली प्रकारांतरें कहेछे. आहुजीवियंके० जीवितव्य आयुष्य काल पर्यायें करी त्रूटोठता एयसखयके० वधारी नशकाय, एरीते पंमितो कहेछे तहवियके० तोपण बालजणोके० बाल अज्ञानी जन पगप्नइके० पाप करतो धृष्टपणु करे एवो बालेके० बाल ते पापेहिमिज्जतीके० पापकर्मेकरी नराय, संसारमा दुःख पामे इतिसखायके०एवु जाणीने मुणी के० साधुजेछे, ते णमज्जतीके० मद नकरे एटले पापें करी धीठो न थाय ॥ २१ ॥ वलीउपदेश कहेछे ठदेणके० पोतपोताने अनिप्रायेकरी इमापया के० ए प्रजा एटले लोकजेछेतेपालेके०तेवी तेवी नरकादिक गतिने विषे पर्यटन करे,ते केवीरीते? तोके, एक दर्शनी पोताना अनिप्राये करी गृहनेविषे ग्रस्त ठता अजादिकना वधने पण धर्मनु कारण कहेछे, अन्य वली धनधान्यादिक परिग्रह पृथ्वीकायनो आरंन एने पण धर्म कहेछे, इत्यादिक प्रकारे ए प्रजालोक जे छे ते मुग्धजनरंजननिमित्ते बहुमाया के० कपट प्रधान अनेक प्रकारनी कपटक्रिया करे, परंतु श्रीवीतरागनो मार्ग सम्यक् प्रकारे नजाणे तेनुं कारण कहेछे, केमके ए लोक जेछे, ते मोहेणके० अज्ञाने करी पाउडाके० आ विवेकरहित छे, माटे खोटा साचानी व्यक्तिने जाणता नथी,एवु जाणीने माहणे यडेण के० विकटेण एटले प्रगट मायारहित निर्माय कर्मे करी पलिंति तथा संयमने विषे प्रवर्त्ते. एटले शुन ध्याने करीयुक्त होय, सीउण्हके०शीत उष्ण एटले अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग ते वयसा के० वचने,कायाये अने मने ए त्रिकरण शुद्धेकरी अहियासए एटले परीसह आवे थके दीनपणु आणेनहीं ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–नयेति । जीवितं त्रुटितं सत् (नसंखयन्ति) नसंस्कर्तुं शक्यमित्याहुस्तद्विद तथापि बालोऽज्ञो जन प्रगल्नते पापं कुर्यात् । बाल पापे कर्मनिर्मीयते म्रियते वा इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति अहं सदनुष्ठानइति मद नकुर्यात् ॥२१॥ (ठंदेणेति) इमा प्रजा अयलोक ठंदेन स्वानिप्रायेण प्रलीयते शोननन्नाव स्यात् । यथा ठागादि वधेपि केचिद्धर्मं वदंति कुटुंबमुद्दिश्य धनादिपरिग्रह कुर्वंति केचिन्मायया मुग्धजन प्रतारयंति तथा बहुमाया प्रजा मोहेन प्रावृता आछादिताच एवज्ञात्वा (माहणेत्ति) साधु विकटेन प्रकटेन निर्मायेन कर्मणा संयमे प्रलीयते शुनन्नाव स्यात् । तथा शीतं उष्णच वाचा कायेन मनसा वाऽधिसहते ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंच (नयसंखयमित्यादि) नच नैव जीवितमायुष्कं कालपर्यायेण त्रुटितं सत् पुन (संखयमिति) संस्कर्त्तुं तंतुवत्संधातु शक्यते इत्येवमाहुस्तद्विदस्तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते बालोऽज्ञो जन प्रगल्नते पाप कुर्वन् धृष्टोनवति असदनुष्ठानरतोऽपि

शेराचार्योदेस्तीर्थंकरस्य वा छंदानुवर्त्तकास्तदुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरता' पापेभ्य' कर्मभ्य. सतस्तीर्णामहौघमपार ससारसागरमेवमाख्यात मया भवतामपरैश्च तीर्थकृद्भिरन्येषा । इ तिशब्द परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत्॥३२॥वैतालीयस्य द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥२॥

॥ अथ वैतालीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकस्य प्रारंभ ॥

संवुडकम्मस्स भिक्खुणो, जं दुक्खं पुठ अबोहिए ॥ तं संजमओव चिज्जई, मरणं हेच्च वयंति पंमिया ॥१॥ जे विन्नवणा अजोसिया, संतिन्नेहिं समं विहाहिया ॥ तम्हा उठति पासहा, अदक्कुकामाइरोगवं ॥ २ ॥

अर्थ–हवे त्रीजो उद्देशो प्रारंभियेछेये बीजा उद्देशामा चारित्र पालवु कह्यु ते चारि त्र पालता कदाचित् परिसह आवेतो सहन करवा एवो भाव कहेछे, संवुम के० संव स्याछे कम्मस्स के० मिथ्यात्वादिक कर्म जेणे एवा भिक्खुणो के० साधुने जडुक्क के० जे दु ख भोगवता दोहिला अथवा तेना कारण जे अष्ट प्रकारना कर्म अबोहिए के० अज्ञानपणे पुठ के० बाध्याछे, निकाचित कर्याछे तके० ते संजमओ के० सत्तर प्रकार ना संयमे करी चिज्जई के० क्षणे क्षणे खुटेछे, जेम तलावनु पाणी सूर्यना किरणे करी सर्वदा क्षणे क्षणे खूटेछे, तेम चारित्रियाना कर्म ते [illegible] अने संयमे करी खूटेछे, मरणं हेच्चपमिया के० तथा संवृत्ति आत्मा ते पंमित [illegible] जन्म, जरा, मरण अने शोकादिक छांमीने वयंति [illegible]

जे पंमित विवेकी सर्वज्ञ छेते क[illegible]
हिज भवे मोक्षे जाय ते आ[illegible]
जे कामार्थि पुरुषे विनती कर[illegible]
सियाके० भसेवे तथा रुडे आ[illegible]
मंवि विहिया के० सरखा कह्या[illegible]
ह्या के० जोयु वली जेणे अद[illegible]

॥ दीपिका–उक्तोद्वितीयो[illegible]
रताइत्युक्त तेषाच कदाचित् प[illegible]
यातस्यास्योद्देशकस्येद[illegible]
साधोर्दु ख यत् स्पृष्ट [illegible]
ते संवृतात्मानोमरण [illegible]
[illegible] ॥ १ ॥ (जेव[illegible]

तंके० ते धर्मने अहो शिष्य? तु नि संदेह थइने स्थितिके० एकांत हितकारी जाणीने गि ण्हके० आदर ए उत्तमके० सर्वोत्तम मार्ग छे ते तूं ग्रहण कर. कोनी पेरे तोके, कड मेव के० ते जुगारिये ग्रहण करेला चोकाना दावनी पेरे सेसवहाय के० शेष एकादि कनो दाव गमी दीधो. तेम पमिए के० पंमित जे छे, ते शेष अनेरा जे गृहस्थ, कुलि गी, इव्यलिंगी एवा धर्म गमीने एक सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मने ग्रहण करे ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-(कुजएत्ति)। कुजयोद्यूतकारोयथा अक्षैः पाशैर्दीव्यन् क्रीमन् कुशलो नापराजित स्यात्। अन्येन न जीयतइत्यर्थः। कडमेवत्ति। सद्यूतकार कृतचतुष्कमेव गृहीत्वाकैक नो गृण्हाति। नत्रेतं त्रिक नद्वापरद्विकवा गृण्हाति किंतुचतुष्कमेव लाति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमिति)। एव लोकेस्मिन् तायिना सर्वज्ञेनोक्तोऽनु त्तरउत्कृष्टोयोय धर्मस्त हितमुत्तम त्व गृहाण। दृष्टांतनिगमनमाह। यथा द्यूतकार शेष एककादि अपहाय त्यक्ता कृतं कृतयुगं चतुष्कमेव लाति तथा पमित साधुरपि गृहस्थ कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनाव त्यक्त्वा सर्वोत्तम धर्मं गृण्हीयादित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ टीका-अपिच (कुजएत्यादि)। कुत्सितोजयोऽस्येति कुजयोद्यूतकार महतो ऽपि द्यूतजयस्य सद्भिर्निंदितत्वादनर्थहेतुत्वाच्च कुत्सितत्वमिति। तमेव विशिनष्टि। अप राजितोदीव्यन् कुशलत्वादन्येन न जीयते। अक्षैर्वा पाशकैर्दीव्यन् क्रीडस्तत्पातज्ञ कुशलोनिपुण यथा असौ द्यूतकारोऽक्षैः पाशकैः कपर्दकैर्वा रममाण (कडमेवत्ति) चतुष्कमेन गृहीत्वा तल्लब्धजयत्वात् तेनैव दीव्यति। ततोसौ तल्लब्धजय सन्न कलिमे कक नाऽपि त्रेत त्रिक च नापि द्वापर द्विक गृण्हातीति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमित्यादि) यथा द्यूतकार प्राप्तजयत्वात् सर्वोत्तम दीव्यश्चतुष्कमेव गृण्हात्येवम स्मिंल्लोके मनुष्यलोके तायिना त्रायिणा वा सर्वज्ञेनोक्तोऽय धर्म क्षान्त्यादिलक्षण श्रु तचारित्राख्योवा नाऽस्योत्तरोऽधिकोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमेकांतहितमपि कृत्वा सर्वोत्तमच गृ हाण विस्रोतसिकारहित स्वीकुरु। पुनरपि निगमनार्थतमेव दृष्टांत दर्शयति। यथा क श्चित् द्यूतकार. कृत कृतयुगं चतुष्कमित्यर्थः। शेषमेककाद्यपहाय त्यक्ता दीव्यन् गृण्हा ति एव पंडितोऽपि साधुरपि शेषं गृहस्थकुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनावमपहाय सपूर्णं म हांतं सर्वोत्तम धर्मं गृण्हीयादिति नाव ॥ २४ ॥

उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इइ मे अणुस्सुय ॥ जंसी
विरता समुठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे
एय चरंति आहिय, नाएण महया महेसिणा ॥ ते उठिय
ते समुठिया, अन्नोन्न सारंति धम्मउ ॥ २६ ॥

अग्गं वणिएहिं आहियं धारंति राइणिया इह ॥एवं परमा महव्वया, अ
क्खायाउ सराइ नोयणा ॥३॥ जे इह सायाणुगा नरा, अज्झोववन्ना कामे
हिं मुच्छिया ॥ किवणेणसमं पगब्भिया, न विजाणंति समाहिमाहितं ॥४॥

अर्थ–वली उपदेश आश्री कहेछे जेम वणिएहिं के० वणिके अग्गके० अग्र एटले प्रधान एवा रत्नवस्त्राभरणादिक देशांतर थकी, आहियंके० आण्या तेने इह के० आमनुष्यलोकमाहे राइणिया के० राजा अथवा मोटोटा व्यवहारवतपुरुषजे होय तेज धारंति के० धारण करेछे एटले पहेरेछे एव के० एप्रकारे परमा के० प्रधान रत्नतुल्य एवाजे महव्वया के० पाच महाव्रत ते सराइनोयणा के० छठारात्रीभोजन विरमण सहित छ व्रत ने अक्खा याउ के० आचार्ये आण्या तेने साधुज धारणकरे अने सारीरीते पाले ॥३॥ जे के० जे इह के० आजगतने विषे सायाणुगा के० सुखशिलीया त्रण गारवेकरी अज्झोववन्ना के० अध्युपपन्न एटले सहित तथा कामेहिंमुच्छिया के० कामभोगने विषे मूर्छित ते किवणे णसम के० रुपण एटले दीन, कायर सरखा पगब्भिया के० धीठ एटले अल्पदोषे अमारो निर्मल सयम शी रीते मलिन थशे? एवी रीते धृष्टपणुकरनार जे होय ते समाहिमाहितंके० श्रीवीतरागनो कह्यो एवो जे समाधिनो मार्ग तेने नविजाणति के० नजाणे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(अग्गमिति) अग्र प्रधान रत्नाभरणादिक वणिग्भिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्तुल्याइह मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति । एवं रत्नतुल्यानि परमाणि प्रधानानि महाव्रतानि पंचसरात्रिभोजनानि त्रिरात्रिभोजनविरमणपष्ठानि आख्यातान्याचार्यैरिति तानि महासत्वा साधवोधारयति नान्ये ऽति तात्पर्यार्थः ॥ ३ ॥ (जेइहेति) । ये इह मनुष्यलोके सातानुगा सुखशीलानराऋद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धा स्तथा कामेषु इछामदनेषु मूर्छिता सतृष्णा संत कृपणेन दीनेन इंद्रियपराजितेन समास्तद्वत्कामासेवने प्रगल्भिता धृष्टता गता किमनेनाऽसम्यक् प्रत्युपेक्षणादिस्तोकदोषेणास्मच्चारित्रविराधना भाविनीत्येव प्रमादवत्तोधृष्टा शनैः समस्तमपि समलिनयति । एवंभूतास्ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि नजानंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (अग्गंवेत्यादि) अग्रं वर्यं प्रधानं रत्नवस्त्राभरणादिकं । तद्यथा वणिग्भिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्कल्पाईश्वरादय इहाऽस्मिन्मनुष्यलोके धारयति बिभ्रति एवमेतान्यपि महाव्रतानि रत्नकल्पानि आचार्यैराख्यातानि योजितानि सरात्रिभोजनविरमणपष्ठानि साधवोबिभ्रति । तुशब्द पूर्वरत्नेभ्यो महाव्रतरत्नानां विशेषापादकइति । इदमुक्तं भवति । यथा प्रधानरत्नानां राजानएव

वध । यस्मिन्निति कर्मणि ल्यब्लोपे पचमी सप्तमीवेति । यान् ग्रामधर्मानाश्रित्य ये वि रता । पचम्यर्थे वा सप्तमी । येन्योवा विरता सम्यक्संयमरूपेणोच्छिता समुच्छितास्ते काश्यपस्यर्षभस्वामिनोवर्धमानस्वामिनोवा सबधी योधर्मस्तदनुचारिणस्तीर्थकरप्रणीतध र्मानुष्ठायिनोनवतीत्यर्थः ॥२५॥ किच (जेएइत्यादि) । ये मनुष्याएन प्रागुक्त धर्म ग्राम धर्मविरतिलक्षण कुर्वति चरति । आख्यात ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण (महयेति) महाविषयस्य ज्ञानस्याऽनन्यनूतत्वात् महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्री मद्वर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्म ये चरति तेएव सयमोद्याने कुतीर्थिकपरिहारेणोच्छि तास्तथा निन्हवादिपरिहारेण । तएव सम्यक्त्वमार्गदेशनाऽपरित्यागेनोच्छिता समुच्छिता इति नाऽन्ये कुप्रावाचनिकाजमालिप्रनृतयश्चेतिनाव । तएव च यथोक्तधर्मानुष्ठायिनो ऽन्योऽन्य परस्पर धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोवाभ्रश्यत सारयति चोदयति पुनरपि सद्धर्मे प्रवर्तयतीति ॥ २६ ॥

मापेह पुरा पणामए, अभिकखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणतेहिं णोणया, ते जाणंति समाहिमाहिय ॥ २७ ॥ णोकाहिए होऊ संजए, पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे जेरीते धर्मस्थापे ते रीत कहेछे पणामएके० प्रणाम एटले सर्व जीवने न माडे एवा प्रणाम ते शब्दादिक विषयरूप पुरा के० पूर्वला नोगव्या नोग तेने मापेह के० न चितवे केमके तेनु चितववु पण महा अनर्थनु कारणछे तो ए शब्दादिक विषय ने सेववानु शु कहेवु ? तथा अनिकंखे के० आगमिक काले उपजनार जे विषय तेने प ण न वांछे, तेनी अनिलाषा न करे, तथा तेने दूर करवा वांछे तोआत्माने जे उवहिके० उपधि एटले माया अथवा अष्टप्रकारे कर्म तेने धुणित्तए के० पोतायकी दूर करे त था जे दूमणतेहिं के० डुष्ट मनना करनार एवाजे शब्दादिक विषय तेने विषे णोणयाके० नम्या नथी अथवा डुष्ट धर्मना करनार एवा जे कुतीर्थिक तेना कहेला जे अनुष्ठान ते ना करनार थया नथी एटले तेने वशीगत थया नथी ते जाणति समाहिमाहिय के० ते पुरुष राग, द्वेष, परित्यागरूप जे समाधि तद्रूप धर्मध्यान तेने आहिय एटले आत्माने विषे व्यवस्थित जाणे ए थकी जे अन्य छे तेने विषे समाधि जाणे नही, एवु जाणीने विषयने गमे ॥ २७ ॥ वली उपदेशातर कहेछे. संजए के० चारित्रिउ जे छे, ते णोकाहिए होऊ के० गोचरीने विषे कथानो करनार न होय एटले विकथा न करे अथवा विरुद्ध रूप पैशुन्य वार्त्ता एटले स्त्रीयादिकनी कथा तेपण न करे तथा पासणिएणयके०प्रश्न नकरे

ह्यतीतिवाह शाकटिकस्तेनाऽवहन गौं प्रतोदादिना कृत प्रेरितोपि अबलोविषमपथे गतुमसमर्थ स्यात् सचातशोमरणातमपि यावत् अल्पस्थामाऽल्पसामर्थ्योनोजार वोढुं शक्नोति एवनूतश्चतत्रैव पकादौविषीदति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एव पूर्वोक्तदृष्टांतेन कामाना शब्दादीना या गवेषणा प्रार्थना तस्या वि द्वान् निपुण कामप्रार्थ नासक्तोऽद्य श्वोवा सत्तव कामसवधं प्रजह्यात् । नवा बलीवर्दइव विषममार्गकामान त्य क्तुमर्ह । किच नवेह्किामुष्मिकापायदर्शी कामी नूत्वा प्राप्तानपि कामान् कामयेताऽनि लपेत वेरस्वामी जबूस्वामिनामादिवत् तथाक्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात् । सुठु गाइय सुठुगाइय सुनेच्चिअसामसुदरि ॥ अणुपालिअदीहराइअं वसुमिणते मापमायह । इत्यादि प्रतिबुद्धोलब्धानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोनिस्पृह स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशातरमधिकृत्याह (वाहेणेत्यादि) व्याधेन लुब्धकेन (जह्रावत्ति) यथा (गवत्ति) मृगादि पशुर्विविधमनेकप्रकारेण कूटपाशादिना कृत परवशीकृत' श्रम वा ग्राहित प्रणोदितोऽप्यबलोनवति जातश्रमत्वात् गतुमसमर्थ । यदिवा वाह्य तीति वाह शाकटिकस्तेन यथावदवहन् गौर्विविध प्रतोदादिना कृत प्रचोदितोऽप्य बलोविषमपथादौ गतुमसमर्थोनवति । सचाऽतशोमरणातमपि यावदल्पसामर्थ्या न्नाऽतीव वोढु शक्नोति । एवनूतश्चाऽबलोजार वोढुमसमर्थस्तत्रैव पकादौ विषीदतीति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह (एवमित्यादि) एवमनतरोक्तया नीत्या कामाना शब्दादीना वि षयाणा या गवेषणा प्रार्थना तस्या कर्तव्यायां विद्वान् निपुण कामप्रार्थनासक्त शब्दा दिपके मग्न सचैवनूतोऽद्य श्वोवा सत्तव परिचय कामसंबध प्रजह्यात् । किंत्वेवम व्यवसाय्येव सर्वदाऽवतिष्ठते।नच तान् कामान् अबलोबलीवर्दवत् विषम मार्ग त्यक्तुमल । किच नचेह्किामुष्मिकापायदर्शितया कामी नूत्वोपपन्नानऽपि कामान शब्दादिविषयान् वेर स्वामिजबूनामादिव द्वा कामयेतानिलपेदिति । तथा क्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमि त्तात् । सुठुगाइयमित्यादिना प्रतिबद्धोलब्धानप्यप्राप्तानपि कामान् लब्धसमान् मन्य मानोमहासत्वतया तन्निस्पृहोनवेदिति ॥ ६ ॥

मापछ असाधुता नवे, अच्चेही अणुसास अप्पग ॥ अहियच असाहु सोयती, सथणती परिदेवती बहु ॥ ७ ॥ इह जीवियमेव पासहा, तरुणे एव वाससयस्स तुट्टती ॥ इत्तरवासेय बुप्नह, गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ॥८॥

अर्थ–हवे शास्त्रे ते कामनोगनो त्याग करवो ते कहेछे मापछ के० रखे, प वी मरणकाले नवातरने विषे ए कामनोगनी सेवाये करी असाधुतानवे के० असाधु

न्यक्क्रियावान् स्यादिति । तद्दर्शयति । कृता स्वभ्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियस्तथाऽनुश्च। नचाऽपि मामकोममेद महमस्य स्वामीत्येव परिग्रहाग्रही नवेदिति॥२८॥

छन्नं च पसंस णोकरे, नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं सुविवेगमाहिए, पणया जेहिं सुजोसिअं धुयं॥ २९ ॥ अणिहे सहिए सुसंवुडे, धम्मट्ठी उवहाण वीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए, आत्तहिअं खु दुहेण लब्भइ ॥ ३० ॥

अर्थ–तथा चारित्रिउं होयते छन्न के० माया अने पसंस के० लोभ ते णोकरे के० नकरे, तथा उक्कोस के० उत्कर्ष एटले मान तथा पगास के० प्रकाश एटले क्रोध तेपण माहणे के० साधु ते नय के० नकरे, तेसिं के० ते क्रोधादिकनो सुविवेग के० परित्याग आहिए के० महात पुरुषे कह्यो तेहिज धर्मनेविषे प्रणया के० सावधान थया एवा जेहिं के० जे महासत्ववंत पुरुष तेणे धुय के० संयमानुष्ठान सुजोसिय के० तेव्हु ते साधु जाणवा ॥ २९ ॥ अणिहे के० स्नेहरहित तथा सहिए के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संयुक्त अने सुसंवुडे के० सुसंवृत एटले संवरेसहित प्रवर्त्ततो तथा धम्मट्ठी के० धर्मनो अर्थि तथा उवहाण के० उपधान एटले तपविशेष तेनेविषे वीरिए के० बलवीर्यनो फोरवनार संयम पालतो समाहिइंदिए के० समाहित इंद्रिउं एटले इंद्रिउं वश करीने जेणे, एवो उतो विहरेज्जा के० विचरे केमके संसारमांहे नमता खु के० निश्चे आत्तहियं के० आत्महित जे छे, ते दुहेणलब्भइ के० दुःखेकरी लभ्यमान थायछे ॥३०॥

॥ दीपिका–(छन्नंति) माया न कुर्यात् । प्रशस्यते सर्वैरिंद्रियैरिति प्रशस्योलोभस्तंच उत्कर्षमानं प्रकाशंक्रोधंच माहन साधुर्न कुर्यादिति सर्वत्र संबंध । तेषां कषायाणां यैर्महात्मभिर्विवेक परित्यागआहितोजनितस्तएव धर्मंप्रति प्रणता प्रह्वीभूता । अथवा तेषां सत्पुरुषाणां सुविवेकआहित प्रथित । यैः सत्पुरुषैर्जुष्टं सेवित । धूयते क्षिप्यते कर्म येन तत्धूत संयमानुष्ठान।(अथवा यैः सुजोसिअति)सुष्ठु क्षपित धूतं कर्मेति ॥२९ ॥ (अणिह अस्निहोममत्वरहित परीषहोपसर्गैर्न निहन्यतइत्यनिहोवा । अणहेतिपाठेतु अनघो निरवद्य सहितोहितयुक्त स्वहितोवा सुसंवृतोधर्मार्थी । उपधान तपस्तस्य वीर्यवान् समाहितेंद्रिय संयतेंद्रियोविरहेत् । कुतएव यतआत्महित दुःखेन जीवैर्लभ्यते । यतो दशदृष्टांतैर्मानुष्यादिक दुर्लभमिति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (छन्नमित्यादि) (छन्नंति) माया तस्याः स्वाभिप्रायप्रछादनरूपत्वात् तां न कुर्यात् । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । तथा प्रशस्यते सर्वैरप्यविगानेनाद्रियत

ऽत्यर्थं स्तनति सशब्दं निःश्वसितिति । तथा परिदेवते विलपऽत्याक्रंदति । बहिहति । हामातर्म्रियतइति त्राता नैवाऽस्ति सांप्रत कश्चित् किंशरण मेम्यादित्याह । डुष्कृतचरितस्य पापस्येत्येवमादीनि डुःखान्यऽसाधुकारिण प्राप्नुवतीत्यतोविपयानुषंगेण विवेयइत्येवमात्मनोऽनुशासनं कुर्वीत सबधनीय ॥७॥ किंच (इहजीवियमेवेत्यादि) । इहाऽस्मिन् ससारे आस्ता तावदन्यज्जीवितमेव सकलसुखास्पदमनित्यताऽप्रात आवीचिमरणेन प्रतिक्षण विशरारुस्वभाव तथा सर्वायु क्षयएव वा तरुणएव युवैव वर्षशतायुरप्युपक्रमतोव्यवसाननिमित्तादिरूपादायुपत्रुटयति प्रच्यवते । यदिवा सांप्रत सुवह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च तदंते त्रुटयति । तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयनिमेषप्रायत्वात् इत्वर वासकल्प वर्तते स्तोकनिवासकल्पमित्येव बुध्यध्व यूय । तथैवभूतेऽप्यायुषि नरा पुरुपाल्लघुप्रकृतय कामेषु शब्दादिषु विपयेषु गृद्धाअध्युपपन्नामूर्छितास्तत्रैवाऽसक्तचेतसोनरकादियातना स्थानमाप्नुवतीति शेष ॥ ७ ॥

जे इह आरंभनिस्सया, आत्तदंमा एगतलूसगा ॥ गता ते पावलोगयं, चिरराय आसुरियं दिसं ॥ए॥ णय सखय माहु जीवित, तहविय वाल जणो पगप्नई ॥ पच्चुप्पन्नेण कारिय, कोदठुं परलोकमागते ॥ १० ॥

अर्थ–जेइह के० जे आ मनुष्य लोकमाहे महामोहाकुलित पुरुष आरंभ के० आरंभ हिंसादिक सावद्यानुष्ठानने विषे निस्सिया के० निश्रित एटले आसक्तछे, ते पुरुष आत्तदमा के० आत्माने दमनार तथा एगतलूसगा के० एकत जीवना प्राणने लूसनार अथवा सद् अनुष्ठाननेलूसनार, गताते पावलोगय के० एवा पुरुष पापलोक एटले जे गतिमा पापकर्मना करनार जाय, ते गतिमा जशे किंबहुना चिरराय असुरियदिसं के० चिरकाल सुधी नरकादिकना डुःख पामसे. यद्यपि ते अज्ञान कष्टने प्रभावे कदाचित् देवगति पामे तोपण असुरगिति एटले किल्बिषीयादिकनी गति पामे ॥ए॥ वली कहेछे ण यसखयमाहुजीवित के० सर्वज्ञे एम कह्युंछे के, त्रुट्युं आयुष्य सधाय नही तहविय के० तोपण वालजणो के० वाल अज्ञानी लोक ते निर्विवेकी पणे पगप्नई के० धृष्टपणु करेछे, ते कहेछे, कोइ एक पंडिते धर्मने विषे प्रेर्योथको ते नरविवेकी पुरुष एम कहेके पच्चुप्पन्नेणकारिय के० अमारा प्रत्युत्पन्न जे वर्त्तमान सुख तेनी सायेज अमारो कार्य छे, कोणजाणे परलोकछे किंवा नथी कोदठु परलोगमागते के० परलोकने कोण देखी आव्योछे जे देखीन परलोकथी आव्यो होय ते अमोने कहेतो मान्य करीये इत्यादिक धृष्टपणानी वातो करे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जेइहेति। ये केचन इह लोके आरंभनिश्रिताआरंभसबद्धाआत्मान दडयं

अर्थ—हवे ए जीव क्याए जे नथी पाम्यो ते देखाडेछे जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्यु ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतणहिके० निश्चेथकी सांभल्यु पण नथी अडवाके० अथवा तके० ते धर्म कदापि तह के० तथा णोसमुट्ठिय के० रुडीरीते पाल्यु पण नथी मुणि णा के० महर्षिये ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणा दुर्लभ छे, एरीते आ हित के० कह्या ते नाएण के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसव्वदंसिणा के० जगत मां सर्वदर्शी तेणे कह्यु ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवु ते कहेछे एवमत्तामहतर के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित दुर्लभ जाणीने तथा धम्ममिण के० धर्मनो ए मह्यात आतरो एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित ब हु के० घणा एवा हलवा कर्मि जणा के० लोक ते गुरुणो छंदाणुवत्तगा के० गुरुना छंदे प्रवर्त्तता एटले गुरुपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुद्र थकी तिन्न के० तर्या. एरीते आहित के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्यु तिवेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवेतालि याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥

॥ दीपिका–(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगत सर्वभावदर्शिना सर्व ...न सामायिकादि आहितमाख्यात तन्नून निश्चित पुरापूर्व जीवैर्नहि अनुश्रुत श्रवण ...मागत। अथवा श्रुतमपि नसमुत्थित यथावन्नानुष्ठित ॥ ३१ ॥ (एवमिति) एवमात्म ...र्लभ मत्वा (महंतरंति) मानुष्यादिकमवर ज्ञात्वा एन जैन धर्मच सहिताबहवोजना ...णोगुरोश्छंदानुवर्तकास्तदुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरता पापेभ्यइत्याख्यात तीर्थकृ ...समुच्चयार्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकाया ...द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥

...णिनिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतद्दर्शयितुमाह ॥ (णहिणूणेत्यादि)। ... सर्वभावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितमाख्यात तन्नून ... पूर्व जंतुनिरनुश्रुत श्रवणपथमायात। अथवाश्रुतमपि तत्सम्या ...था नाऽनुष्ठित । पाठांतरवा । (अवितहन्ति) । अवितथ ...गादसुमतामात्महित सुदुर्लभमिति ॥ ३१ ॥ पुनरप्युपदे ...त्ताइत्यादि)। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महित सुदुर्लभ मत्वा ज्ञा ...धर्मविशेष कर्मणोवा विवर ज्ञात्वा । यदिवा (मह ...नुष्ठानस्य ज्ञात्वा एन जैन धर्म श्रुतचारित्रात्मक स ...घुकर्मबहवोजनालघुकर्माण समाश्रिता सन्तोगु

अर्थ–हवे एवु धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदक्खुव के० अंध सरखा पुरुषो दक्खुव के० त्रणभुवनने देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आह्यिके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सद्दहसु के० सर्दहे, तु केवोछे? तोके, अदक्खुदसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलावियें छैयें के अहो? अदक्खुदसणा तु श्रीवीतराग परमात्मानोभाष्युजे सिद्धांत तेनाउपर श्रद्धाकरीने हंदि के० तेने गृहणकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण भरोशो राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तु बोलेछे, ते ताहारु बोलवु अयोग्यछे, केमके वर्त्तमानकाल टालीने अतीत अनागत नही मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण नथी, एम पण कहेवुपडशे परतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीये छैये जे सु के० सुष्टु पणे तु निरुद्धदसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो मोहणिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो दर्शन रुंधाणुछे तेमाटे तु जैनमार्ग सर्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यमार्गनी सर्दहणा कर॥११॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार दुक्खीके० दु खीछतो मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी ससार माहे अनतो काल परिभ्रमण करे एवु जाणी मोह मूकीने जे सयमने विषे प्रवर्त्ते ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयण के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा तथा वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वाछे, एटले ए सर्वनो त्यागकरे एव के० ते एम करतो सहितेहि के० ज्ञानादिक सहित थको सजए के० सयती पाणेहि के० सर्व प्राणीमात्रने आयतुल के० पोताना आत्मा तुल्यकरी पाभए के० देखे ए रीते दया पाले ॥१२॥

दीपिका–एव नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदक्खवेति) पश्यतीतिपश्य नपश्योऽपश्योधस्त द्द ग्रत् हेअ ग्रतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यात सर्वज्ञागम श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु। तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगत दर्शन येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामत्रण हेऽपश्यकदर्शन प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यागीकारे व्यवहारलोप स्यात् तस्मादागम प्रमाणमिति । कस्मादेवमुपदिश्यतऽत्याह । (हदीत्यादि) हदिएवगृहाण । हुशब्दोवाक्यालकारे । मोहनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्टु निरुद्धमावृत दर्शन सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शन । एवविध प्राणी सर्वज्ञोक्त मार्ग नश्रद्दधते तस्मादेव बहूपदिश्यतेऽति ॥ ११ ॥ (दु खीति) दु खी प्राणी पुन पुनर्मोहयाति दु खेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्दु खी स्यात् तस्मान्मोह परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघा पूजन च निर्विंद्येत जुगुप्सेत । परिहरेदित्यर्थ । एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा सयत साधु परै प्राणिभिरा

अर्थ–हवे ए जीव क्यांए जे नथी पाम्यो ते देखाडेछे जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्युं ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतणहिके० निश्चेथकी सांजल्युं पण नथी अडुवाके० अथवा तके० ते धर्म कदापि तह के० तथा णोसमुठ्ठियं के० रुडीरीते पाल्युं पण नथी मुणिणा के० महर्षिये ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणा डुर्लभ छे, एरीते आहित के० कह्या ते नाएण के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसवदंसिणा के० जगतमा सर्वदर्शी तेणे कह्युं ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवुं ते कहेछे एवमत्तामहतर के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित डुर्लभ जाणीने तथा धम्ममिण के० धर्मनो ए महात आतगे एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित बहु के० घणा एवा हलवा कर्मि जणा के० लोक ते गुरुणो छंदाणुवत्तगा के० गुरुने वदे प्रवर्त्तता एटले गुरूपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुद्र थकी तिन्न के० तरया. एरीते आहित के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं तिबेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवैतालियाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥

॥ दीपिका–(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगत सर्वभावदर्शिना सर्वज्ञेन सामायिकादि आहितमाख्यात तन्नून निश्चित पुरापूर्वं जीवैर्नहि अनुश्रुत श्रवणपथमागत। अथवा श्रुतमपि नसमुष्ठित यथावन्नानुष्ठित ॥ ३१ ॥ (एवमिति) एवमात्महित डुर्लभ मत्वा (महतरति) मानुष्यादिकमवरं ज्ञात्वा एन जैनं धर्मंच सहितावहवोजना लघुकर्माणोगुरोश्छदानुवर्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरता पापेभ्यइत्याख्यात [illegible] ति। इतिशब्द समुच्चयार्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदी[illegible] द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशक समाप्त ॥

॥ टीका–एतच्च प्राणिभिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतदर्शयितुमाह ॥ (णहि [illegible] यदेतन्मुनिना जगत सर्वभावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितम [illegible] निश्चितं। नहि नैव पुरापूर्वं जंतुभिरनुश्रुत श्रवणपथमायात। अथवाश्रुतम [illegible] यिकादि यथावस्थितं तथा नाऽनुष्ठित । पाठांतरंवा । (अवितहं [illegible] यथावन्नाऽनुष्ठितमत कारणादसुमतामात्महितं सुडुर्लभमिति ॥ ३१ [illegible] शांतरमधिकृत्याह । (एवमत्ताइत्यादि)। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महितं [illegible] त्वा धर्माणां च महदंतरं धर्मविशेषं कर्मणोवा विवरं [illegible] तरति) मनुष्यार्यक्षेत्रादिकमवसरं सदनुष्ठानस्य ज्ञात्वा एनं जैनं [illegible] ह हितेन वर्ततइति सहिताज्ञानादियुक्तावहवोजनालघुकर्माण [illegible]

गारं पिअ आवसे नरे, अणुपुवं पाणेहिं संजए ॥ समता सवत्त सुवते, देवाणं गछे सलोगय ॥ १३ ॥ सोच्चा नगवाणुसासणं सच्चे तछकरे ज्जुवक्कमं ॥ सवत्त विणीयमछरे, उछं निक्खु विसुद्धमाहरे॥१४

अर्थ–वली उपदेशातर कहेछे गारपिअआवसेनरे के० गृहवासने विषे वसतो ए वो मनुष्य तेपण अणुपुव के० अनुक्रमे धर्म सानली, श्रावकना व्रतादिकने अगीकार करी, पाणेहिं के० जीवोने विषे सजए के० सम्यक्प्रकारे यत्न करतो, समतासवत्तसुव ते के० सर्वत्र समता परिणामे वर्त्ततो एवीरीते गृहस्थ धर्मने पालतो थको पण देवा णगछेसलोगयके० देवलोकमा जाय तो पछी यतिधर्म पालनारनो केवोजकुं ॥ १३ ॥ वली कहेछे सोच्चानगवाणुसासण के०ते श्रीवीतरागनी आज्ञापूर्वक धर्म सानलीने सच्चेत छकरे ज्जुवक्कमके० तेना आगमने विषे जेम कह्युछे तेम सत्य सयमने विषे उपक्रम ए टलेउद्यम करे, सवत्तविणीयमछरेके० सर्वत्र मत्सररहित एवो थको निक्खु के० साधुते उछ के० माधुकरी वृत्तिये विसुद्धमाहरे के० शुद्ध एटले बेतालीश दोप रहित एवो आहार लीये ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–किंच । (गारपीति) अगार गृहमप्यावसन् गृहस्थोपि नरआनुपूर्व्या चारित्रप्रतिपत्त्यादिरूपया प्राणिषु जीवेषु सयतोहिंसानिवृत्त । यत सर्वत्र समता श्रूय ते । यतो गृहस्थेच समतैव जिनमतेऽनिर्णीयते ता कुर्वन् गृहस्थोपि देवाना लोक गछेत् किंपुनर्यतिरिति ॥१३॥ (सोच्चेति) नगवदनुशासन जिनागम श्रुत्वा तडुक्ते सत्ये संयमे उपक्रम उद्यम कुर्यात् । किंनूत सर्वत्र उपनीतमत्सरोऽरक्तद्विष्ट (उछति) नैक्ष्यं शु द्ध दोषरहितमाहरेद्गृह्णीयात् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–किंच (गारपियइत्यादि)। अगारमपि गृहमप्यावसन् गृहवासमपि कुर्वन् नरो मनुष्य (आनुपूर्वमिति)आनुपूर्व्या श्रवणधर्मप्रतिपत्त्यादिलक्षणया प्राणिषु यथाशक्त्या स म्यक् यत सयतस्तडुपमर्दान्निवृत्त । किमिति । यत समता समनाव । आत्मपरतुल्यता सर्वत्र यतो गृहस्थे च यदिचैकेडियादौ श्रूयतेऽनिधीयते आर्हते प्रवचने ता च कुर्वन् सगृहस्थोऽपि सुव्रत सन् देवाना पुरदरादीना लोक स्थान गछेत् किं पुनर्योमहासत्त्वत या पचमहाव्रतधारी यतिरिति ॥ १३ ॥ अपिच । (सोच्चाइत्यादि) । ज्ञानैश्वर्यादिगु णसमन्वितस्य नगवत सर्वज्ञस्य शासनमाज्ञामागम श्रुत्वाऽधिगम्य तत्र तस्मिन्ना गमे तडुक्तेवा सयमे सन्नोहिते सत्ये लघुकर्मा तडुपक्रम तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात् । कि नूत सर्वत्राऽपनीतोमत्सरोयेन सतथाऽसौरक्तद्विष्ट क्षेत्रवस्तूपधिशरीरनिष्पिपास । त था (उछति) नैक्ष्य शुद्ध द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहार गृह्णीयादन्यवदरेदेति ॥ १४ ॥

यें अजुष्टाअसेविताम्ते सतीर्णैर्मुक्ते सम व्याख्याता । अतीर्णाअपि ते संसार तीर्णाइव स्यु रित्यर्थ ॥ तस्मादूर्ध्वमोक्ष यूयपश्यत ये च कामान् रोगवत् रोगतुल्यान् अद्राक्षुर्दृष्टवतस्तेपि तीर्णसमाऽख्यपि पश्यत । यत पुप्फफलाण च रस, सुराऽमसस्स महिलि आण च ॥ जाणतो जे निरया, ते डुक्करकारएवदे ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तोद्वितीयोद्देशक सांप्रतं तृतीय समारभ्यते ॥ अस्यचाऽयमनिसबंध । इहाऽनतरोद्देशकाते विग्ताऽइत्युक्तं तेषाच कदाचित्परीषहा समुदीर्येरन्नतस्तत्र हन विधेयमित्युद्देशार्थाधिकारोऽपि निर्युक्तिकारेणाऽनिहित । यथाऽज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयोनवतीति सच परीषहसहनादेवेत्यत्त परीषहा सोढव्याऽइत्यनेन सबंधेनाऽऽयातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्र । (संवुमकम्मस्सेत्यादि) । सवृतानि रुद्धानि कर्माण्यनुष्ठानानि सम्यगुपयोगरूपाणि वा मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपाणि वा यस्य निक्षो साधो सतथा तस्य यत् डुखमसद्वेद्य तदुपादानजूत वाऽष्टप्रकार कर्म । (स्पृष्टमिति) बद्धस्पृष्टनिकाचितमित्यर्थ । तच्चाऽबोधिना अज्ञानेनोपचितं सत् सयमतोमौनीन्द्रोक्तात् सप्तदशरूपादनुष्ठानादपचीयते प्रतिक्षण क्षयमुपयाति । एतडुक्त नवति । यथा तटाकोदरसस्थितमुदक निरुद्धापरप्रवेशद्वार सदादित्यकरसपर्कात् प्रत्यहमपचीयते । एव सवृताश्रवद्वारस्य निक्षोरिन्द्रिययोगकषाय प्रति संलीनतया सवृतात्मन सत सयमानुष्ठानेन चाऽनेकनवाज्ञानोपचित कर्म क्षीयते । ये च सवृतात्मान सदनुष्ठायिनश्च ते हित्वा त्यक्त्वा मरण मरणस्वनावमुपलक्षणत्वात् जातिजरामरणशोकादिक त्यक्त्वा मोक्ष व्रजति पंडिता सदसद्विवेकिन । यदि वा पंडिता. सर्वज्ञाएव वदति यत् प्रागुक्तमिति ॥ १ ॥ येऽपिच तेनैव नवेन च मोक्षमाप्नुवति तान निरुक्ताह । (येविन्नवणेत्यादि) ये महासत्वा कामार्थिनिर्विज्ञाप्यते यास्तदर्थिन्यो वा कामिनं विज्ञापयति ताविज्ञापना स्त्रियस्तानिरजुष्टाअसेविता क्षय वा व्यवसाय लक्षणमतीतास्ते सतीर्णैर्मुक्तै सम व्याख्याता । अतीर्णाअपि सतोयनस्ते निष्किंचनतया शब्दादिषु विषयेष्वप्रतिबद्धा ससारोदन्वतस्तटोपातवर्तिनोनवन्ति । (तस्मादूर्ध्वमिति) मोक्षं योषित्परित्यागादूर्ध्वं यन्नवति तत्पश्यत यूय । येच कामान् रोगवद्व्याधिकल्पान् अद्राक्षुर्दृष्टवतस्ते सतीर्णसमाव्याख्याता । तथाचोक्त । पुप्फफलाणचरस. सुराइमसस्समहलियाणच ॥ जाणताजेविरया, तेडुक्करकारएवंदे ॥ १ ॥ तृतीयपादस्य पाठातर वा । उड्ढतिरियअहेतहा ऊर्ध्वमिति सौधर्मादिषु निम्निमिति तिर्यक्लोके धऽति नवनपत्यादौ येकामास्तान् रोगवद्द्राक्षुर्दृष्ट्वा अज्ञाताइति ॥

रमउत्कृष्टआयतोदीर्घं सर्वकालजवनात् मोक्षस्तेनाऽर्थिकस्तदनिलापी पूर्वोक्तविशेषणवि शिष्टोनवेदिति ॥ १५ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह (वित्तमित्यादि) वित्त धनधान्यहिरण्या दि । पशव करितुरगगोमहिष्यादयोज्ञातय स्वजनामातापितृपुत्रकलत्रादय तदेतद्वित्ता दिक बालोऽज्ञ शरण मन्यते। तदेव दर्शयति । ममैते वित्तपशुजातय परिजोगे उपयो क्ष्यते । तेषु चाऽर्जनपाजनसंरक्षणादिना उपोपद्रवनिराकरणेन परिहारेणाऽहनवामीत्ये व बालोमन्यते । न पुनर्जानीते यदर्थ धनमिछति तछरीरमशाश्वतमिति । अपिच । रि द्धी सहावतरला, रोगजराभंगुर ह्यशरीर ॥ तथा मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च। प्रतिजन्मनि वर्तते कस्य माता पितापि वा ॥१॥ एतदेवाह । नोनैव वित्तादिक ससारे क थमपि त्राण नवति।नरकादौ पततोनापि रागादिनोऽपद्रुतस्य क्वचिछरण विद्यतइति ॥१६॥

अप्पागमितमि वा डुहे, अहवा उक्कमिते नवंतिए॥ एगस्स गती य आगती, विडुमता सरण ण मन्नई ॥ १७ ॥ सबे सयकम्मक प्पिया, अवियत्तेण डुहेण पाणिणो ॥ हिंमंति नयाउला सढा, जाई जरा मरणेहिं निहुता ॥ १८ ॥

अर्थ–वली उपदेश कही देखाडेछे अप्पागमितंमिवाडुहे के० पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय कर्मना उदय थकी डुःख प्राप्त थया छता ते डुःख एकलोज जीव अनुनवेछे, पण ज्ञाति, स्वजन अथवा इव्य ते डुख थकी मूकावी शकता नथी अहवाके० अथवा उक्क मितेनवतिए के० मरण आवे छते पण एकलोज डुःख नोगवे तथा नवांतरने विषे पण एकलोज डुःख नोगवे तथा एगस्सगतीय आगती के० गति आगति पण एकलानेज होय, परतु ते वखते धनादिक जे छे ते कोइ सरण न थाय विडुमता के० विवेकी पंमित ज न एवी रीते जाणता थका सरण णमन्नइ के० कोइनु सरण करी माने नही॥ १७॥ सबे के० ससारमाहे सर्व जीव सय के० पोताना करेला कम्म के० कर्मे करी कप्पिया के० एकेंड्रियादिकनी अवस्थाये कल्प्या छता अवियत्तेणके० अव्यक्त सज्ञाये डुहेण के० अस्पष्ट शिरशूलादिक डुःखे करी डुःखीया छता एवा पाणिणो के० प्राणीउ ते हिंमति के० चतुर्गतिकरूप संसार माहे अरहट्ट घटीने न्याये परिभ्रमण करेछे, ते ज योनीनेविषे नयाउला के० नयाकुल बिहीता थका तथा सढा के० शठ एटले अज्ञानी छता जाई जरामरणेहि के० वली वली जाइ एटले जाति अने जरा तथा मरणे करी निहुता के० पीडया थका रहेछे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(अप्पागमितंमिवेति) अन्यागते प्राप्ते डुःखेऽथवा उपक्रमकारणैरुपक्रांते ह्री

नाजनं एव महाव्रतरत्नानामपि महासत्वाएव साधवोनाजनं नान्ये इति ॥३॥ किंच (जेइहेत्यादि) ये नरालघुप्रकृतयऽहाऽस्मिन् मनुष्यलोके सात सुखमनुगच्छतीति सा तानुगा सुखगीलाऐहिकामुष्मिकाऽपायनीरव समृद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृध्रा । तथा कामेषु ऽहामदनरूपेषु मूर्छिता कामोत्कटतृष्णा । कृपणोदीनोवराककऽड्रियपराजितस्तेन समास्तद्कामासेवने प्रगल्नितावृष्टता गता । यदिवा किमनेन स्तोकेन दोषेणाऽसम्यक्प्रत्युपेक्षणादिरूपेणाऽसमस्तसयमस्य विराधनं नविष्यत्येव प्रमादवत कर्तव्येष्ववसीदंत समस्तमपि संयम पटवन्मणिकुट्टिमवद्वा मलिनीकुर्वंति । एवनूताश्च ते समाधि धर्मध्यानादिकमाख्यात कथितमपि न जानतीति ॥ ४ ॥

वाहेण जहा व विछए, अवले होइ गव पचोइए॥ से अंतसो अप्पथामए नाइवहइ अवले विसीयति ॥ ५ ॥ एवं कामेसणं विऊ अज्जसुए पयहेज्ज संथव ॥ कामी कामेण कामए, लद्धेवावि अलद्धकएहई ॥ ६ ॥

अर्थ–वली उपदेशातर कहेछे जहाव के० जेम वाहेणके० व्याध एटले आहेडी ते मृगादिक पशुने विछएके० त्रासव्यो थको ते गवके० मृगादिक अवले होइके० बलरहित थाय क्याए जइ शकेनहीं अथवा वाहेणके० गाडानो वाहक एटले सांयडीउं तेणे जेम विषम मार्गने विषे गवके० बलदने पचोइतेके० पराणे प्रेरणा करी खेडयो थको बलरहित थाय पछी से के० ते बलदने अतसो के० मरणात सुधी जो कष्ट आपे तो पण अप्पथामए के० अल्प सामर्थ्यपणाने लीधे नाइवहइके० चाली नशके. अवलेविसीयति के० निर्बलपणाथी तेहिज कादवमां विषम मार्गे खूतो रहे ॥५॥ हवे ए दृष्टात पुरुष साथे मेलवेछे एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये काम के० शब्दादिक विषय तेनी एसणं के० गवेपणा एटले प्रार्थना तेनेविषे विऊ के० निपुण आसक्त थको ते पुरुष सिदाय परतु कामनोगने गामी नशके, कामनोगरूप कर्दमने विषे खुतो एवो बतो अज्जसुएके० आज अथवा काले संथव के० ए कामनोगनो सवध पयहेज्जके० गंमीश एम चितवे, पण निर्बल बलदनी परें गमी नशके एमजाणी सवेग आणीने कामी के० कामि पुरुषे कामेण के० कामनोग वाछवा नही वली कामएलद्धेवावि के० ते कामनोगने लाधा थका पण अलद्धकाहइ के० अणलाधा एटले अणपाम्या सरखा करे. कोइएक निमित्ते बुज्यो थको जबुस्वामि तथा वेरस्वामिनी पेरे निस्पृहीथाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(वाहेणेति) । व्याधेन लुब्धकेन यथा(गवति) । मृगादिपशु विक्षतोविविधप्रकारेणक्षत पीडित. प्रचोदित. श्रम प्रापित सन्नवलोगंतुमसमर्थ. । अथवा वा

के० बोधबीज पामवु सुलन नथी, ए रीते आहित के० कह्युंछे एवु जाणी धर्म अण करवा थकी फरी फरी बोधि दुर्लनछे एव के० एरीते ज्ञान दर्शनेकरी सहितके० सहित साधु जाणे तथा उदय आव्या परिसहने हियासए के० अहियासे. ए वचन आहि जिणे के० श्री आदिनाथ नगवाने प्रकाश्यो तथा उणमेवसेसगा के० एरीतेज शेष बी जा तीर्थकर पण प्रकाशेछे ॥ १९ ॥ अनविंसुपुराविनिरकुवो के० हवे सर्वज्ञ पोता ना शिष्यने बोलावी कहेछे के, अहो निक्षु ? एटले यतिओ पूर्वे जे तीर्थकर थया, त था आएसाविनवति के० आगमिक काले जे थशे ते केवा थशे तो के सुव्वता के० सुव्रत एटले प्रधान व्रतधारी तेणे एयाइगुणाइ आहुतेके० ए सर्व गुण जे पाछल कह्या ते अ थवा आगल कहेशे ते कह्याछे परतु ते तीर्थकरने मते नेद नथी कासवस्स के० काश्य प ते श्रीआदीश्वर तथा वर्द्धमान स्वामी तेना अणुधम्मचारिणो के० धर्मना अनुचारि जे छे ते एमज कहेछे के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र एहिज मोक्षमार्ग छे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(इणमिति) इम प्रत्यक्ष क्षणमवसर विज्ञाय ज्ञात्वा तथा बोधि नोसुलनामि त्याख्याता ज्ञात्वा तदुचित विधेय। ईदृशोमानुष्यार्यदेशधर्मसामग्र्याअवसर पुन सुलनोन स्यादिति नाव। तदेवमुत्कर्षतोपार्धपुजलपरावर्तकालेन पुन सुदुर्लना बोधिरित्येव ज्ञानादि सहितोऽविपश्येत् वो धेर्दुर्लनत्व पर्यालोचयेत्। पाठातरवा (अहियासएत्ति) परीषहानु दीर्णान् सम्यक् पश्येत्। एव जिन श्रीक्षनोष्टापदे स्वसुतानुदिश्याह कथितवान्। तथा शेषाअपि जिनाएवमेवोक्तवतइति ॥ १९ ॥ (अनविमिति) हेनिक्षव साधव सर्वे ज्ञा· स्वशिष्यानामत्रयति। पुरा ये अनूवन् अतिक्रातजिना (आएसत्ति) आगमिष्याश्च ये नविष्यति जिनास्ते सर्वेपि सुव्रता सुव्रतत्वेनैव सर्वे जिनत्व प्राप्ताइत्यर्थ । ते सर्वे जिनाए तान् गुणानाहुरुक्तवत । नकश्चित्सर्वज्ञाना मतनेदइति नाव । येच काश्यपस्य क्षनस्वा मिन श्रीवीरस्यवा सर्वेप्यनुचीर्णधर्मचारिण । एतेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितम् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (इणमेइत्यादि)। इदम प्रत्यक्षासन्नवाचित्वात् इम इव्यक्षेत्रकालना वलक्षण क्षणमवसर ज्ञात्वा तडुचित विधेय। तथाहि। इव्य जगमत्वपचेन्द्रियत्वसुकु लोत्पत्तिमानुष्यलक्षण। क्षेत्रमप्यार्य देशार्धपड्विंशतिजनपदलक्षण। कालोऽप्यवसर्पिणी चतुर्थारकादिधर्मप्रतिपत्तियोग्यलक्षण। नावश्च धर्मश्रवणतच्छ्रद्धानचारित्राचरणकर्मक्षयो पशमाहितविरतिप्रतिपत्त्युत्साहलक्षण। तदेवविध क्षणमवसर परिज्ञाय तथा बोधि च सम्यग्दर्शनावाप्तिलक्षणा नोसुलनामित्येवमाख्यातामवगम्य तदवाप्तौ तदनुरूपमेव कुर्यात्

पणाथकी डुर्गति गमनरूप थाय. एवु जाणी पोतानो आत्मा विषयना संग थकी अ ळेहो कें० दूर करे तथा अणुसासअप्पग के० पोताना आत्माने शीखवे के, रे जीव अ साधु कर्मने प्रमाणे तुं डुर्गतिये गयो थको डुःखी थईश तथा अहियंचके० अत्यंत अ साहु के० असाधु कर्मने प्रमाणे सोयती के० शोचकरीश सयणती के० हे जीव तुज ने परमाधार्मियें पीटचो थको गाढा आकरा शब्द करीश, तथा परिदेवऽवहु के० घणा विलाप करीश हे माय? हु मरुछु, आ वखत मने राखनार कोइ नथी इत्यादिक अनेक आक्रंद करीश एवु कहीने आत्माने शीखामण आपे ॥७॥ वली इहके० आ सं सारमांहे धनधान्यादिक पदार्थ तो दूररह्या, पण जीवियमेव के० एकलु जीवितव्य पणुज पासह के० देखो तेएवु तो असाश्वतु छे के, क्षणेक्षणे विनाशशीलछे कोइक तो तरुणएव के० तरुण पणेज विनाशपामे वाससतस्सतुट्टती के० चालता समयमा घणुतो शो व र्षनु आयुष्यछे, तेपण छेहेडे त्रूटेछे जेमाटे ते आयुष्य सागरोपमनी अपेक्षायेतो मेषो न्मेष प्रायें इत्तरवासेय के० इत्वर एटले अल्प वर्ष सरखु थाय एवु जाणीने रे जीव बुज्झह के० बुजो के, एवीरीतनो आयुष्यनो नरोशो छता पण गिद्धनराकामेसुमुछियाके० एकेक पुरुष गृद्धछता कामभोगने विषे मूर्छित रहेछे? तेनरकादिक पीडाने पामेछे ॥७॥

॥ दीपिका-(मापच्छेति पश्चान्मरणकाले भवांतरेवा मानुषगाढसाधुता कुगतिरूपा माभवेत् माप्राप्नुयादित्यतोविषयेभ्यआत्मानमत्येहि त्याजय । तथा आत्मानमनुशास्ति कुरु । यथा हेजीव असाधुरशुभकर्मकारी अधिक डुर्गतौ गत शोचति । सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु क्षुधादिवेदनाग्रस्त स्तनत्याक्रंदति परिदेवते विलपति बह्वपि इत्या त्मानुशासनंकुरु ॥ ७ ॥ (इहेति) इह ससारे आस्तातावदन्यत् । जीवितमायुरेवाऽनि त्यं पश्यत प्रतिक्षणमावीचीमरणसद्भावात् । तथा सर्वायु क्षयात्तरुणएव त्रुटचति च्यव ते । अथवा साम्प्रत सुबह्वप्यायुर्वर्षशत तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयमेषोन्मेषप्रायत्वा त् इत्तरवासकल्प स्तोकवासतुल्यमिति बुध्यध्व । एवभूतेप्यायुषि गृद्धानरा कामे मूर्छिताश्चा नरकानरकादिपीडा लभतइति शेष ॥ ७ ॥

॥ टीका-किमिति कामपरित्यागोविधेयइत्याशंक्याह । (मापच्छेत्यादि) मापश्चान्मरण काले भवांतरेवा कामानुषंगादसाधुता कुगतिगमनादिकरूपा भवेत प्राप्नुयादिति । अतो विषयासंगादात्मानमत्येहि त्याजय । तथात्मानं चाऽनुशाध्यात्मनोऽनुशास्ति कुरु । यथा हेजीव चोद्यमसाधुरसाधुकर्मकारी हिंसानृतस्तेयादौ प्रवृत्त सन् डुर्गतोपतितोऽधिक मत्यर्थमेव शोचति सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु वा क्षुधादिवेदनाग्रस्तो

मान स्वामी पासेथी अमे सांभळ्युं ने, तेरीते तमोने कहुंछुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतां गे प्रथमश्रुतस्कधे श्रीद्वितीयवेतालीयाध्ययन समाप्त ॥

॥ दीपिका–(तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रत । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनिदानोनिदानरहित सवृतएवभूत सिध्यतीत्याह । एवभूताअनतश सिद्धा सप्रति वर्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोग्ये सिध्यति । अपरे अनागते काले सेत्स्यति । नान्योमुक्तिमार्गइत्यर्थ ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषभस्वामी स्वसुतानुद्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्टं ज्ञान तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनुत्तरदर्शी । अनतज्ञानदर्शनइत्यर्थ । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारजीव दर्शयति । अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति । कथचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थ । अर्हन् सुरेन्द्रादिपूज्योज्ञातपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषभस्वामीवा भगवान् विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीर । ऋषभस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिक ॥ यदुक्तं “ विशालाजननीयस्य, विशालकुलमेववा ॥ विशाल वचन वास्यात्तेन वैशालिकोजिन ” इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययन समाप्त ॥

॥ टीका–तदभिहिताश्च गुणानुद्देशतआह । (तिविहेणेत्यादि) । त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनोदशविधप्राणभाजोमाहन्यादिति । प्रथममिद महाव्रत । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् एव शेषाण्यपि द्रष्टव्यानि । तथाऽऽत्मनेहित आत्महित । तथानाऽस्य स्वर्गावाप्त्यादिलक्षणनिदानमस्तीत्यनिदान । तथा [illegible] नोवाक्कायैर्वा सवृतस्त्रिगुप्तिगुप्तइत्यर्थ । एवभूतश्चावश्यं सिद्धिमवाप्नोतीत्येतद्दर्शयति एवमनतरोक्तमार्गानुष्ठानेनानतता सिद्धाअशेषकर्मक्षयभाज. सवृत्ताविशिष्टस्थानभा[illegible] वा । तथा सप्रति वर्तमाने काले सिद्धिगमनयोग्ये सिद्ध्यत्यऽपरेवाऽनागते काले [illegible]न्मार्गानुष्ठायिनएव सेत्स्यति । नाऽपर सिद्धिमार्गोऽस्तीति भावार्थ ॥ २१ ॥ एतच्च [illegible] स्वामी जम्बूस्वामिप्रभृतिभ्य स्वशिष्येभ्य प्रतिपादयतीत्याह । (एवसेत्यादि) । एव[illegible] कत्रयाभिहितनीत्या सऋषभस्वामी स्वपुत्रानुद्दिश्योदाहृतवान प्रतिपादितवान् । ना[illegible] रं प्रधानमस्तीत्यनुत्तर । तच्च तज्ज्ञानच अनुत्तरज्ञान तदस्याऽस्तीत्यनुत्तरज्ञानी तथ[illegible] रदर्शी । सामान्यविशेषपरिच्छेदकाववोधस्वभावइति बौद्धमतनिरासद्वारेण ज्ञानाधा[illegible] दर्शयितुमाह । (अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति) । कथचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थ [illegible] सुरेन्द्रादिपूजार्होज्ञातपुत्रोवर्द्धमानस्वामी ऋषभस्वामी वा भगवानैश्वर्या[illegible] [illegible]शाल्यां नगर्यां वर्द्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषभस्वामी वा । विशाल[illegible]

तीत्यात्मदंडका । तथा एकातेन लूपकाजंतूना हिंसकास्ते पापलोकं नरकादिगतिं गता रोयास्यति चिररात्र प्रभूतकालं तन्निवासिनोनवति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्य पि देवत्वप्राप्तिस्तथाप्यासुरींदिश याति किल्बिषिकादेवाऽधमा स्युरित्यर्थः ॥ ए ॥ (न येति । नचनैव ससंस्कृतमायुस्त्रुटितमायुर्न संस्कर्तुं संधातु शक्यमेवमाहु सर्वज्ञा । तथापिच एव सत्यपि बालजनोमूर्खलोक सावद्य कृत्य कुर्वन् प्रगल्भतेऽसदनुष्ठानेनापि नलज्ज ते । एव पापकर्माणि कुर्वन् परेण प्रेरितोवक्ति । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनास्माक कार्य अ तीतानागतयोर्विनष्टाऽनुत्पन्नत्वादसत्व तस्मादिह लोकएव विद्यते नपरलोके । यत । ए तावानेव लोकोय यावानिंद्रियगोचर । भद्दे वृकपद प-य य हृदत्यवहुश्रुताइति ॥ १० ॥

॥ टीका–अपिच (जेइहेत्यादि) ये केचन महामोहाकुलितचेतसइहाऽस्मिन्मनुष्य लोके आरंभे हिंसादिके सावद्यानुष्ठानरूपे निश्चयेन श्रिता सम्यक्अध्युपपन्नास्ते आत्मानं दंडयतीत्यात्मदंडकास्तथैकातेनैव जतूना लूपकाहिंसका सदनुष्ठानस्य वा ध्वं सकास्ते एवभूतागंतारोयास्यति पाप लोक पापकर्मकारिणा योलोकोनरकादिश्चिर रात्रमिति प्रभूत काल तन्निवासिनोनवति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि तथावि धदेवत्वापत्तिस्तथाऽप्यासुराणामियमासुरी ता दिशं याति । अपरे प्रेष्या किल्बिषिका देवाऽधमानवतीत्यर्थः ॥ ए ॥ किंच (णयसंसयेत्यादि) नचनैव त्रुटितं जीवितमायु. सस्कर्तुं संधातु शक्यते एवमाहु सर्वज्ञा । तथाहि दमकजिय कस्तिावङ्गनि हुगइठंबहि वसाय आउसचेन्नता गयाय पुणोनाणनियत्तति । तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते जीवितानायु षि बालजनोऽन्योलोकोनिर्विवेकतया असदनुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वन् प्रगल्भते धृष्टतां या त्यसदनुष्ठाने नाऽपि लज्जतइत्यर्थः । सचाऽन्योजन- पापानि कर्माणि कुर्वन् परेण चो दितोधृष्टतया अलीकपाण्डित्याभिमानेनेदमुत्तरमाह । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनैव परमार्थतोऽतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनाऽविद्यमानत्वात् कार्य प्रयोजनं प्रेक्षापूर्व कारिभिस्तदेव प्रयोजनसाधकत्वादाश्रीयते । एवंच सतीह लोकएव विद्यते नपरलोक इति दर्शयति । क परलोकं दर्शयति क परलोकं कोदृष्ट्वाऽऽयातस्तथाचोक्तं । पिब खाद च साधु शोभने यदतीत वरगात्रि तन्न ते । नहि भीरुगत निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ तथा एतावानेव पुरुषोयावानिंद्रियगोचर ॥ भद्रे वृकपदं पश्य यद्वदन्त्यबहुश्रुताइति ॥ १० ॥

अदरकुव दरकुवाहियं,सदहसु अदरकुदंसणा॥हंदि हु सुनिरुद्ध दसणे,मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा॥११॥ डुक्खी मोहे पुणो पुणो निव्विदेज्जसि लोगपूयणं ॥ एवं सहिते हियासए, आयतुले पा णेहि संजए ॥ १२ ॥

मान स्वामी पासेथी अमे सांजल्यु ने, तेरीते तमोने कहुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कधे श्रीद्वितीयवेतालीयाध्ययन समाप्त ॥

॥ दीपिका–(तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रत । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनिदानोनिदानरहित सवृतएवनूत सिध्यतीत्याह । एवनूताअनंतश सिद्धा संप्रति वर्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोगे सिध्यति । अपरे अनागते काले सेत्स्यति । नान्योमुक्तिमार्गइत्यर्थ ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषनस्वामी स्वसुतानुद्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्ट ज्ञानं तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनुत्तरदर्शी । अनतज्ञानदर्शनइत्यर्थ । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारजीव दर्शयति । अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति । कथचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थ । अर्हन् सुरेंद्रादिपूज्योज्ञातपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषनस्वामीवा नगवान् विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीर । ऋषनस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिक ॥ यदुक्तं “ विशालाजननीयस्य, विशालकुलमेववा ॥ विशाल वचन वास्यात्तेन वैशालिकोजिन ” इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययन समाप्त ॥

॥ टीका–तदनिहिताश्च गुणानुद्देशतआह । (तिविहेणे [illegible]) [illegible] वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिभिर्वा [illegible] तचोदीर्णा सम्यक् सोढव्याइत्येतयमिद [illegible] ते । ततोऽनेन सबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवति । तत्रोपक्रमातर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकार । तत्राऽध्ययनार्थाधिकार सबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादित । उद्देशार्थाऽधिकार तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकार प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (उवसग्गमित्यादि) उवसग्गमियछक्क दव्वे चेयणमचेयण डुविह । आगतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्रकालनावन्नेदात् उपसर्गा षोढा । तत्र नामस्थापने क्षुस्वात्दनादृत्य द्रव्योपसर्ग दर्शयति । द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गो द्वेधा । यतस्तद्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतनन्नेदात् द्विविध । तत्र तिर्यङ्मनुष्यादय स्वावयवाभिघातेन यदुपसर्गयति ससचित्तद्रव्योपसर्ग सएवकाष्ठादिनेतर तत्त्वन्नेदपर्यायैर्व्याख्यात । तत्रोपसर्गउपताप शरीरपीडनोत्पादनमित्यादि पर्याया । नेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादय नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागछतीत्यागतुकोयोऽसावुपसर्गोन्नवति । सच देहस्य सयमस्य वा पीडाकारीति ॥१॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुउघपयं

त्मतुलामात्मतुल्यत्व पश्यन् यथाऽस्मनोदुःखमप्रिय सुखंच प्रियं एव सर्वेपि प्राणिनईह शाएवेति ज्ञात्वा सर्वान् प्राणिन पालयेदित्यर्थ ॥ १२ ॥

टीका–(अदक्खुवेत्यादि)। पश्यतीति पश्योनपश्योऽपश्योऽधस्तेन तुल्यं कार्याकार्या विवेचित्वादपश्यवत्तस्याऽऽमत्रण हेऽपश्यवद्‌अंधसदृश प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽभ्युपगमेन कार्या कार्यानभिज्ञ पश्येन सर्वज्ञेन व्याल्हतमुक्तं सर्वज्ञागम श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु प्रत्यक्षस्यैवै कस्याऽभ्युपगमेन समस्तव्यवहारविलोपेन हत हतोसि पितृनिबंधनस्याऽपि व्यवहारस्या ऽसिद्धेरिति। तथाऽपश्यकस्याऽपि सर्वज्ञस्याऽभ्युपगम दर्शनं येनासाऽवपश्यकदर्शनस्तस्याऽ मत्रण वा हेऽपश्यकदर्शन स्वतोऽर्वाक्दर्शी भवास्तथाविधदर्शनप्रमाणश्च सन् कार्याका र्यविवेचितयाऽथवदनविष्यत् यदिसर्वज्ञाभ्युपगमं नाऽकरिष्यत् यदिवाऽदक्षोवा ऽनिपुणो वा यादृगस्तादृशोवाऽचक्षुदर्शनमस्याऽसावचक्षुदर्शन केवलदर्शन सर्वज्ञस्तस्माद्यदवाप्य ते हितं तत् श्रद्धस्व। इदमुक्त भवति। अनिपुणेन निपुणेन वा सर्वज्ञदर्शनोक्तं हितं श्रद्धातव्यं। यदि वा हे अदृष्ट हेअर्वाक्दर्शीन दृष्टाऽतीताऽनागतव्यवहितसूक्ष्मपदार्थद र्शिना यद्व्याल्हतमभिहितमागमं तंश्रद्धस्व। हेअदृष्टदर्शीन अदक्षदर्शीन ऽतिवा असर्वज्ञो क्तशासनानुयायिन् तमात्मीयमाग्रह परित्यज्य सर्वज्ञोक्तेमार्गे श्रद्धान कुर्विति तात्पर्या र्थः। किमिति सर्वज्ञोक्ते मार्गे श्रद्धानमसुमाम्नकरोति। येनैवमुपदिश्यते तन्निमित्तमा ह। हदीत्येव गृहाण। हुशब्दोवाक्यालंकारे। सुष्टु अतिशयेन निरुद्धमावृत दर्शनं सम्य क् अवबोधरूपं यस्य स। केनेत्याह। मोहयतीति मोहनीय मिथ्यादर्शनादिज्ञाना्वरणी यादिक वा तेन कृतेन कर्मणा निरुद्धदर्शन प्राणी सर्वज्ञोक्त मार्गं नश्रद्दधते ऽतस्तन्मा र्गश्रद्धानं प्रति चोद्यते इति ॥ ११ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह। (दुःखीत्यादि) दुःखम सातवेदनीयमुदयेन यत्प्राप्तं तत्कारण वा दुःखयतीति दुःख तदस्याऽस्तीति दुःखी सन् प्राणी पौन पुन्येन मोहं याति सदसद्विवेकविकलोभवति। इदमुक्तंभवति। असातो दयात् दुःखमनुभवन्नार्तोमूढस्तत्करोति येन पुन पुन सुखी संसारसागरमनंतमध्येति त देवभूतं मोह परित्यज्य सम्यगुज्ञानेनोऽज्ञाय निर्विद्येत, जुगुप्सेत परिहरेदात्म श्लाघा स्तुतिरूपां तथा पूजन वस्त्रादिलाभरूप परिहरेत्। एवमनंतरोक्तरीत्या परिवर्त्त मान सहहितेन वर्त्ततऽति सहितोज्ञानादियुक्तोवा सयत प्रव्राजितोऽपरप्राणिभिः सु स्वार्थिभिरात्मतुलामात्मतुल्यता दुःखाप्रियत्वसुखप्रियत्वरूपामभिक पश्येत् आत्मतुल्या न् सर्वानपि प्राणिन. पालयेदिति ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ (हेत्वइत्यादि) चतुर्थोद्देशके अयमर्थाधिकार । तद्यथा । हेतुसदृशैर्हेत्वा भासैरन्यतीर्थिकैर्व्युद्ग्राहिता प्रतारितास्तेषा शीलस्खलिताना व्यामोहिताना प्रज्ञाप ना यथाव स्थितार्थप्ररूपणा स्वसमयप्रतीतैर्निपुणजणितैर्हेतुभि रुतेति ॥ साप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेद । (सूरमसइत्यादि) । कश्चिल्लघुप्रकृति सग्रामे समुपस्थिते शूरमात्मान मन्यते । निस्तोयाबुदइवात्मश्ला घाप्रवणोवाग्निर्विस्फूर्जन् गर्जति । तद्यथा । नमत्कटप परानीके कश्चित् सुनटो ऽस्तीत्येव तावज्जर्जति यावत् पुरोऽवस्थितं प्रोद्यतास्ति जेतार न पश्यति। तथा चोक्त। तावद्गज प्रस्रुतदानगड करोत्यकालाबुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु लांगू लविस्फोटरव शृणोति ॥ १ ॥ न दृष्टातमतरेण प्रायोलोकस्याऽर्थावगमोनवतीत्यतस्तद वगतये दृष्टातमाह । यथा माद्रीसुत शिशुपालोवासुदेवदर्शनात्प्राक् आत्मश्लाघाप्र धान गर्जितवान् पश्चाच्च युध्यमान शस्त्राणि व्यापारयत दृढ समर्थोधर्म. स्वनाव. स ग्रामाचगरूपो यस्य सतथा त महान् रथोऽस्येति महारथ सच प्रक्रमादत्रनाराय णस्तं युध्यमान दृष्ट्वा प्राग्गर्जनाप्रधानोपि क्षोन गत । एवमुत्तरत्र दार्ष्टातिकेऽपि योजनी यमिति । नावार्थस्तु कथानकादऽवसेय । तच्चेद । वसुदेवसुसाएसुउदमघोसणराहिवेणमु दीए । जाकचबध्दुर्वज्ञुजवलकलिउंकलहपत्तहो ॥१॥ टटूणतउंजणणी, चन्नुयपुत्तमप्पुय मणग्घ॥नयहरिसविम्हयमुही पुच्छइणेमत्तियंतहसा॥२॥णेमित्तिकएणमुणिकणसाहियंती इहठहियपाए॥जहएसतुज्झपुत्तोमहाबलोडकाउंतसमरे॥३॥ एयस्सयजदटूणहोइसानाविय सुयाजुयल ॥ होहीतत्तोवियनयंसुतस्ससतेणब्जिसंदेहो ॥४॥ नाविनयवेविरगी पुत्तदसेइजा वकएहस्स ।तावच्चियतस्सवियपयइत्तवरत्नुयाजुगल ॥५॥ तोकएहस्सपिउच्छापुत्तंपाडेइपाय पीढमि ॥ अवराहखामणत्तसोविसयसेखमिस्सामि ॥५॥ सिसुवालोविदुव्वणमएण नारा यणग्रसप्नेहि ॥ वयणेहिंनणइसोविहुखमइखमाएसमत्तोवि ॥ ७ ॥ अवराहसएपुण्णेवारि ज्जतोणचिठइजाहे। कएहेणतउ छिन्नचक्केणउत्तमगसे ॥७॥ साप्रत सर्वजनप्रतीत वार्तमा निकं दृष्टातमाह । (पयायाइत्यादि) यथा वाग्भिर्विस्फूर्जत प्रकर्षेण विकटपादपात रणशिरसि सग्राममूर्धन्यग्रानीके यातागता । केते शूरा शूरमन्या सुनटा । तत सग्रामे समुपस्थिते पतत्परानीकसुनटमुक्तहेतिसघाते सति तत्रच सर्वस्याऽऽकुलीनूतत्वात् मा ता पुत्र न जानाति कटीतोच्चश्यत स्तनधयमपि न सम्यक् प्रतिजागर्त्तीत्येव मातापुत्रीये सग्रामे परानीकसुनटेन जेत्रा च शक्त्यादिभि परिसमतात् विविधमनेकप्रकार क्षतोहत श्छिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्त्वोभंगमुपयाति दीनोनवतीति यावदिति ॥ १ ॥

सव्वं नच्चा अहिठिए,धम्मठी उवहाणवीरिए॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय परे परमायतठिते ॥ १५ ॥ वित्त पसवोय नाईउ, त वाले सरण ति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताण सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेले ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नच्चाके० जाणीने सर्व लोक सत्यरूप मार्गने अहिठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमा बलवत्त थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नही वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुभयोगे युक्त थयानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठिते के०ते साधुपरमायतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्त के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउ के० ज्ञातिने स्वजन मातापितादिक तके० तेनु वाले सरणतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हु एनी रक्षा करनारछु पण नोताण सरणनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा दुर्गतिमा पडता थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी थवाना ॥ १६ ॥

॥दीपिका–(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थी उपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिनियुक्त सदा यतेत आत्मनि परस्मिश्च । किंभूत परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदभिलाषी ॥ १५ ॥ (वित्तमिति) वित्तं धन पशवस्तुरगादय ज्ञातय. स्वजनामात्रादय. तदेतद्बालोमूर्ख शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्ताद्योममं मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्त्त एव बालोमन्यते नन्वेव वेत्ति यद्वित्तादिक त्राण नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगार्द्दा शरण विद्यते । रिद्धिसहावतरला, रोगजराभगुर हयसरीरं ॥ दोण्हंपि गमणसीला, णाकिच्चिरहोज्ज संबंधाऽति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सच्चणच्चेत्यादि) सर्वमेतद्धेयमुपादेय च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्त सर्वसंवररूपमधितिष्ठेत आश्रयेत । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थ· परमार्थताऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थ सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्य यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थ । तथा मनोवाक्कायगुप्त सुप्रणिहितयोगइत्यर्थ । तथा युक्तोज्ञानादिभि सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्ट· सन् अतआह । प

तावच्छिशुपालवत् शूर मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्ष संयम कर्म सश्लेपकारणा नाशात् नसेवते नजजतइति । तत्प्राप्तो तु बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयाति ॥ ३ ॥ संयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमतेइत्यादि) । यदा कदाचित् हेमत मासे पौषादौ शीत सहिमकणवात स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे स गतिमति एके मदाजडागुरुकर्माणोविषीदंति दैन्यभावमुपयाति राज्यहीनाराज्यच्यु ता यथा क्षत्रियाराजानइति ॥ ४ ॥

पुट्ठे गिम्हाहि तावेण, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तड मंदा विसिय ति, मछा अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा डुक्खा, जायणा डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुब्भगा-चेव,इच्चाहु सुपुढो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उष्णपरिसह कहेछे गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो उप न्यो तावेण के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरश्यो एटले व्याप्यो थतो, विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यत तृषाये करी पराभव पाम्यो तेवारे तडमंदाविसीयंतिके० त्यां पण मंद बापडो कायर सिदाय,भग पामे. जहा के० जेम मछाअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमां एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो संयम थकी भ्रष्ट थाय जेम माछलां जीवितव्य थ की भ्रष्ट थाय तेनी पेरे जाणी लेवु ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेछे सदादत्तेस णाडुक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महादुःखछे जायणा के० याचना एटले मागवु ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जनछे तेमां जे काय र होय ते सिदाय हवे पाछले अर्थ आक्रोश परिसह कहेछे पुढोजणाके० पामर लो क होय ते साधुने इच्चाहसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए बापडा पूर्व आचरित कर्म करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मनो फल अनुभवेछे अथवा ए बापडा मलमलिन श रीर डुःखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पा म्यायका यति थयाछे ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुब्भगाचेव के० दौर्भागी थ का परिवार छांमी प्रवर्ज्या आदरी रहेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(पुट्ठेति) । ग्रीष्मेऽभितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्त सन् विमना विमनस्क सु ष्ठु अतिशयेन पिपासा तृषा प्राप्त स्यात् । तत्रोष्णपरीषहे मंदाविषीदंति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदंति ॥ ५ ॥ (सदेति) सदासर्वकाल दत्तशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयदो परहितं चोक्तव्यमिति दत्तैषणादुःख । तथा इय याच्ञा डुःखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्ज

आयुषि नवांते वा सति एकाक्येव डुःखमनुनवतीतिशेषः ॥ यतः सयणस्सविमस्सगउ, रोगानिद्दउंकिनिस्सइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं, नविरचइनेव नासेइ इति ॥ तथाचाह । (एक्स्सति) एकस्यैव प्राणिनानवांतरे गतिरागतिश्च स्यात् ततोविद्वान् तावदीषदपि श रणं न मन्यते । यत एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनानवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहि तमेकेनैवात्मनः कार्यमिति॥१७॥(सव्वेत्ति) सर्वे प्राणिनः स्वकेन स्वकृतेन कर्मणा कल्पिताए कैंद्रियादिनेदेन व्यवस्थिता. । तथा एकेंद्रियादिजनेषु अव्यक्तेन डुःखेन उनयलक्षणा द्य केनापि डुःखेन समन्विता प्राणिनोनयाकुला शठकर्मकारित्वात् शठाहिंडंति पर्यटं ति तासुतासु योनिषु । किंनूता प्राणिनः जातिजरामरणैरनिडुता पीडिता. ॥ १८ ॥

॥ टीका–एतदेवाह । (अघागमितंमीत्यादि)। पूर्वोपात्ताऽसातवेदनीयोदये नाऽन्यागते डुःखे सत्येकाक्येव डुःखमनुनवति न ज्ञातिवर्गेण वित्तेन वा किंचित्क्रियते । तथाच । सयणस्सविमप्पगउरोगानिद्दतोकिनिस्सइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं नविरंच इनेवनासेइ ॥ १ ॥ अथवोपक्रमकारणैरुपक्रांते स्वायुषि स्थितिक्षयेण वा नवांतरे नवां तिके वा मरणे समुपस्थिते सति, एकस्यैवाऽसुमतोगतिरागतिश्च नवति । विद्वान् विवे की यथावस्थितससारस्वनावस्य वेत्ता ईषदपि तावत् शरणं न मन्यते कुतः सर्वात्मना त्रा णमिति । तथाहि । एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनानवावर्ते । तस्मादाकालिकहि तमेकेनैवाऽऽत्मनः कार्य ॥ १ ॥ एक्को करेइ कम्मं फलमवि तस्सिं क्कउसमणुहवइ । एक्को जायइ मरइ य परलोय एक्कउजाइ ॥१॥१७॥ अन्यच्च । (सव्वेसयइत्यादि)। सर्वेपि संसा रोदरविवरवर्तिनः प्राणिनः ससारे पर्यटंतः स्वकृतेन ज्ञानावरणीयादिना कर्मणा कल्पि ताः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकैकेंद्रियादिनेदेन व्यवस्थिता । तथा तेनैव कर्मणैकेंद्रियाद्यवस्थायाम व्यक्तेनाऽपरिस्फुटेन शिरःशूलाद्यलक्षितस्वनावेनोऽपलक्षणत्वात् प्रव्यक्तेन च डुःखेनाऽसाता वेदनीयस्वनावेन समन्विता प्राणिनः पर्यटंत्यरघट्टघटीन्यायेन तावत्स्वेव योनिषु नयाकुला. शठकर्मकारित्वात् शठाःभ्रमति जातिजरामरणैरनिडुताःगर्नाधानादिनिर्डुःखैःपीडिताइति १८

इणमेव खणं वियाणिया, णोसुलनं बोहिंच आहितं ॥ एवं स हिए हिपासए, आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अनविंसु पुरा विनिक्खुवो, आएसावि नवंति सुव्वता ॥ एयाइं गुणाइ आ हुते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥

अर्थ–इणमेव के० एहिज अर्थे क्षेत्र, सुकुमाल जन्म जिनधर्म प्रतिपत्तिरूप एक्षणनियाणिया के० रूप एटले अवसर जाणी यथोक्ति ...

तावच्छिशुपालवत् शूर मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्ष सयमं कर्म संश्लेषकारणा नाशात् नसेवते नजजतइति । तत्प्राप्तौ तु बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयाति ॥ ३ ॥ सयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमतेऽत्यादि) । यदा कदाचित् हेमत मासे पोषादौ शीत सहिमकणवात स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे ल गतिसति एके मदाजडागुरुकर्माणोविषीदति दैन्यजावमुपयाति राज्यहीनाराज्यच्यु ता यथा क्षत्रियाराजानइवेति ॥ ४ ॥

पुठे गिम्हाहि तावेण, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तत्र मंदा विसियं ति, मत्ता अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा झक्खा, जायणा डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुन्नगा चेव, इच्चाहु सुपुढो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उष्णपरिसह कहेले गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो उप न्यो तावेण के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरज्यो एटले व्याप्यो थतो, विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यत तृषाये करी पराजव पाम्यो तेवारे तत्रमदाविसीयंतिके० त्या पण मद बापडो कायर सिदाय,जग पामे जहा के० जेम मत्ताअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमा एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो सयम थकी भ्रष्ट थाय जेम माछला जीवितव्य थ की भ्रष्ट थाय तेनी पेरे जाणी लेवु ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेले सदादत्तेस णाडक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महाड खबे जायणा के० याचना एटले मागवु ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जनछे तेमां जे काय र होय ते सिदाय हवे पाछले अर्थ आक्रोश परिसह कहेले पुढोजणाके० पामर लो क होय ते साधुने इच्चाहसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए बापडा पूर्वे आचरित कर्मे करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मना फल अनुनवेले अथवा ए बापडा मलमलिन श रीर डुखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पा म्यायका यति थयाले ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुन्नगाचेव के० दोर्जागी थ का परिवार हामी प्रवर्ज्या आदरी रहेले ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(पुठेति) । ग्रीष्मेऽभितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्त सन् विमना विमनस्क सु ष्ठु अतिशयेन पिपासा तृषा प्राप्त स्यात् । तत्रोष्णपरीषहे मदाविषीदति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदति ॥ ५ ॥ (सदेति) सदासर्वकाल दत्तशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयवा परदिने नोक्तव्यमिति दत्तेषणाडुख । तथा ऽप याच्ञा डुखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्जे

दितिशेष । अकृतधर्माणां च पुनर्दुर्लना बोधि । तथाहि । लद्धेल्लियंच बोहि अकरेंतो अ णागयंचपछंतो । अन्नं दाइ बोहि लप्निसिकयरेण मोल्लेण ॥ १ ॥ तदेवमुत्कृष्टतोपार्द्धपुद्ग लपरावर्तप्रमाणकालेन पुनः सुडुर्लना बोधिरित्येव सहितोज्ञानादिभिरधिपश्येत् । बोधिसु डुर्लनत्व पर्यालोचयेत् । पागंतरवा । (अहियासएत्ति) परीषहानुदीर्णान् सम्यगधिसहेत। एतदाह जिनोरागद्वेषजेता नान्येयोऽष्टपदस्थान् सुतानुद्दिश्य । तथाऽन्येपि इत्थमेव शेष काजिनाअनिहितवत इति ॥१७॥ । एतदाह। (अनविसुइत्यादि) हेनिक्षव सावव सर्व ज्ञा. स्वशिष्यानेवमामन्त्रयति । येऽनूवन् अतिक्रांताजिना सर्वज्ञा (आएसाविंत्ति) आगमिप्याश्च नविष्यंति । तान् विशिनष्टि । सुव्रता शोननव्रता । अनेनेदमुक्त नवति । तेषामपि जिनत्व सुव्रतत्वादेवाऽऽयातमिति तेसर्वेऽप्येतानऽनतरोदितान गुणानाहुरनिहि तवत । नाऽत्र सर्वज्ञाना कश्चिन्मतनेदइत्युक्त नवति । तच काश्यपस्य ऋषनस्वामिनो वर्द्धमानस्वामिनो वा सर्वेऽप्यनुचीर्णधर्मचारिणइति । अनेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रा त्मकएकएव मोक्षमार्गइत्यावेदित नवतीति ॥ २० ॥

तिविहेणवि पाण माहणे, आयहिते अणियाण संवुडे॥ एवं सिद्धा अण
तसो, सपइ जे अणागयावरे॥ २१ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तर नाणी अ
णुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते नगवं वेसालिए
वि याहिएत्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्रीवेयालियं द्वितीयमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ-हवे ते गुण कहेछे तिविहेणवि के० मन, वचन अने कायाये करण कराव ण अने अनुमोदने करी पाणमाहणे के० जीवना प्राण हणे नही ए प्रथम महाव्र त एम उपलक्षण थकी शेष महाव्रत पण जाणवा तेणेकरी आयहिते के० आत्माने हेतु तथा अणियाणके० नियाणा रहित संवुडेके० इंद्रियोने संवरवेकरी सवृतिथका एवं के० एवा आचारे प्रवर्तता सिद्धाअणतसोके० आगल अनंताजीव सिद्धि पाम्या वली स पइजेके० सांप्रत एटले वर्त्तमान काले सिद्ध थायछे अने अणागयावरेके० अवर आगमि ककाले, अनेक सिद्ध थशे. ॥२१॥ एवके० एरीते सेके० श्रीआदीश्वर नगवाने उदाहुके० पोताना पुत्र आश्री उद्देशीने मोक्षमार्गनो उद्देशो कह्यो ते नगवत केवा छे? तोके अणुत्त रनाणीके० निरुपमज्ञान अने अणुत्तरदंसीके० निरुपम दर्शन एटले सम्यक् ज्ञान दर्शनना धरनार छे तथा अणुत्तरनाणदंसणधरके० कथंचित् ज्ञान दर्शनना आधार छे एरीते अर हानायपुत्तेके० अरिहंत ज्ञातपुत्र श्रीवर्द्धमान स्वामी नगव के० नगवत तेणे वेसालिएवि के० विशालानगरीने विषे ए मार्ग अमोने आहिएके० कह्यो तिबेमिके० एरीते पंचम गण धर श्रीसुधर्मस्वामी जंबुप्रमुति पोताना शिष्योने कहेछे के अहो शिष्यो? जेम श्रीवर्द्ध

अर्थ-एतेसद्दे के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबधि जे शब्द तेने सहन करवाने अचा यंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा णगरेसु के० नगरने विषे तडके० त्या एवा आक्रोश उपने थके मदाविसीयंतिके० तेमद अज्ञानी चारित्रिउ सीदा यछे, कोनी परे सिदायछे ते कहेछे सगाममिवजीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य सग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मद चारित्रियो चारित्रथी नग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि सनावनाये एगे के० एक कोइ एक लू सक श्वानादिक ते खुधियनिक्कु के० निक्षाये नमतो नूख्यो एवोजे साधु तेने देखी सुणी के० ते श्वानादिक मसतिके० मख मारे लूसए के० वखुरे तडके० त्या श्वानादिके खा धो छतो मदाविसीयति के० अज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय कोनी परें, तोके जेम तेउ के० अग्निने पुछाव के० स्पर्श करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर सकोचे तेम मद चारित्रिउ पण पोतानु गात्र सकोचे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-(एतेऽति) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवतोग्रामनगरादौ स्थि ता । तत्राक्रोशे मदा विषीदति दैन्यंनजते सयमाद्वा नश्यंति यथा नीरव कातरा सग्रामे षु नज्यते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपि संनावने । एक कश्चित् श्वादिर्लूपक. क्रूरोनक्षक (खुधियमिति) क्षुधित निक्षामटत निक्षु दशति नक्षयति। तत्र श्वादिनक्षणे मदाविषीदति । यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमाना प्राणिनोवेदनार्ता सीदति ॥ ८ ॥

॥ टीका-(एएसद्दइत्यादि) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादि रूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवतोग्रामनगरादौ तदतराले वा व्यवस्थिता । तत्र तस्मिन आक्रोशे सति मदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदति विमनस्कानवति सयमाद्भ्रश्यंति। तथा नीरव सग्रामे रणशिरसि चक्रकुताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशखझल्लरीनाद गजीरे समाकुला सत पौरुष परित्यज्याऽयश पटहमगीकृत्य नज्यते। एवमाक्रोशादि शब्दाकर्णनादऽल्पसत्वा सयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह । (अप्पेगेइ त्यादि)। अपि सनावने । एक कश्चिच्छ्वादि लुपयतीतिलुपक प्रकृत्यैवक्रूरोनक्षक. । खुधियति । क्षुधितं बुभुक्षितं निक्षामटतं निक्षुं दशति नक्षयति दशनैरगावयव विलु पति । तत्र तस्मिन् श्वादिनक्षणे सति मदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदति दैन्य नज ते । यथा तेजसाऽग्निना स्पृष्टादह्यमाना प्राणिनोजतवोवेदनार्त्ता सतोविषीदति गात्रं सकोचयत्यार्तध्यानोपहतानवति । एव साधुरपि क्रूरसत्वैरनिद्रुत सयमा द्भ्रश्यतइति दु सहत्वाग्रामकटकाना ॥ ८ ॥

त्वाद्वैशालिक । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशाल वचन चा ऽस्य तेन वैशालिकोजिन । एवमसौ जिनआख्यातइति । इतिशब्द परिसमाप्त्यर्थोब्रवीमी तिवक्तार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥२२॥ समाप्तञ्च द्वितीय वेतालीयमध्ययन ॥ ग्रथाग्रं॥१०६॥

हवे बीजो अध्ययन कह्या अनतर त्रीजो अध्ययन प्रारंनिये डैंए एनो ए सबंधछे के, पाबले अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोप अने स्वसमय ना गुण जाणीने स्वसमयने विपे प्रवर्तवो, तेने विपे प्रवर्त्तता थकां जे अनुकूल अने प्रति कूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंनिये ढैयें

सूरं मणइ अप्पाण, जावजेय नपस्सती ॥ जुझतं दढधम्माणं,
सिसुपालोव महारह ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि
उवहिते ॥ माया पुत्त नयाणाइ, जेएण परि विछए ॥ २ ॥

अर्थ–कोइएक बाल मनुष्य सग्रामने विपे अप्पाणके० पोताने सूरमणइके० शूरवीर क री माने जे आजगतमांहे माहारा समान सुनट कोइ नथी परतु जावजेयं के० ज्या सुधी तेसग्रामने विपे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यासुधी जाणवुं को नीपरे ? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परतु संगामने विपे दढधम्माण के० दृढधर्मी तथा महारह के० महारथी एवा नारायणने

श्वात ॥३॥ साप्रत[illegible] पामी, मद गमीने निर्मद थयो ॥ १ ॥ साप्रत सामा

सोलसविहोवा।घडणजयणायतंमि,[illegible] के० शूरवीरपणुं मानता रण के० सं

तुर्नेद । तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेपात् विमर्शात् पृथग्विमात्रा[illegible]उवहितेके०

हास्यत प्रद्वेपाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च । तेरश्चाअपि चतुर्विधा । तद्य [illegible]कुल यात्प्रद्वेषादाहारादपत्यसरक्षणाञ्च । आत्मासवेदनाअपि चतुर्विधा । तद्यथा । घट्ट नातोलेशनातोंऽगुल्याद्यवयवसश्लेपरूपायास्तननात प्रपाताच्चेति । यदिवा वातपित्त श्लेप्मसनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलनेदात् अष्टधा नवति । सएव दिव्यादि प्रत्येक यश्चतुर्धा प्राग्दर्शित सचतुर्णा चतुष्काना मेलापकात् पोडशनेदोनवति । तेपा चोपसर्गाणा यथा घटनासवधप्राप्ति प्राप्तानाचाऽधिसहन प्र तियातना नवति । तथाऽतऊर्ध्वमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिनाव ॥४॥ उद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽह ।(पढममीत्यादि) पढमनियपडिलोमा हुतीअणुलोमगाय तितियमि।तइएअज्झत्तविसीदणयपरवादिरयणच॥५॥ प्रथमे उद्देशके प्रतिलोमा प्रतिकूला उपसर्गा प्रतिपाद्यतइति तथा द्वितीये ज्ञातिकृता स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकू लाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविपीदनं परवादिवचन चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउस रिसेहिअहेउएहि समयपडिएहिणिउणेहि । शीलखलितपसुवनाकयाचउमि उद्देशे

दत्तादानालुंचितशिरस सर्वेनोगवचिताड खित जीवतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइ त्यादि) अप्येके केचन कुसृतिप्रसृताअनार्यावाच युजति जापंते । तद्यथैते जिनक ल्पिकादयोनग्नास्तथा (पिंमोलगत्ति) परपिंमप्रार्थिकाअधमा मलाविलत्वात् जुगुप्सितामुं मालुंचितशिरसस्तथा क्वचित्कमूरुतकृतरेखानिर्वा विनष्टागाविकृतशरीराअप्रतिकर्मश रीरतया वा क्वचिद्रोगसनवे सनत्कुमारवद्विनष्टागस्तथोजतोजह्न. शुष्कप्रस्वेदोयेपातं अजु ह्लास्तया असमाहिताअशोजनाबीनत्साडष्टावा प्राणिनामसमाधिमुत्पादयतीति ॥ १० ॥

एव विप्पडिवन्नेगे, अप्पणाउ अजाणया ॥ तमउ ते तम जंति,
मदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुठोय दस मसएहिं, तण फास
मवाइया ॥ न मे दिठे परे लोए, जइ पर मरणसिया ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे साधुने एवा डुर्वचन बोले, तेने विपाक देखाडे ठे एव के० एपूर्वली रीते विप्पडिवन्नेगे के० कोइ एक पुण्य रहित जीव, विप्रतिपन्न एटले साधु मार्गना द्वे षी अप्पणाउअजाणया के० पोते अजाण ठता तु शब्दथकीअन्य विवेकी पुरुषना वच न अण मानता एवा जीव तमउतेतमजति के० अधकार गति थकी फरी आकरी अं धकार गतिये जाय ते मदा के० अज्ञानी केवाठे तोके, मोहेण के० मिथ्यात्व दर्शने करी पाउडा के० ढांक्या आवखा कुमार्गने सेवेठे ॥ ११ ॥ हवे दसमसकादिक परिसह कहे ठे सिंधु ताम्रलिप्त कोकणादिक देशने विषे प्राये दंस मशकादिक अधिक होयठे ते देशोने विषे कोइवार साधु गयो थको, दसमसएहिं के० दस मशकादिक पुठोय के० फरशे तेथी दसमशकादिके पीडायो तथा अकचन जावठे, माटे तण के० तृणादिकने विषे सथारो करे, तेथी ते तृणादिकना फास के० स्पर्श मवाइया के० सहन कर वाने अशक्तिवत ठतो, कोइ एक कायर एम चिंतवन करे के एवु डुष्कर अनुष्ठान परलो कने अर्थे करिये ठैये अने नमेदिठेपरेलोए के० ते परलोकतो अमे दीठु नथी जइ के० जेमाटे अपरमरण के० एवा क्लेशथी मरण तो प्रत्यक्ष देखायठे जे अवश्य मरण पामीशु माटे एवा क्लेशथी सखु ॥ १२ ॥

॥दीपिका—एव जापते ये तेषा विपाकमाह । (एवमिति) एव पूर्वोक्तनीत्या एके केचित् प्रति पन्ना साधुमार्गे द्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञा । तुशब्दादन्येषा वचनमकुर्वाणास्तेऽज्ञानात्तमो याति। अधस्तमां गतिं गच्छति। मदामोहेन मिथ्यात्वेन प्रावृताआछादिता साधुद्वेषिण कुमा र्गगा स्यु । यथा । एक हि चक्षुरमल सहजोविवेक,स्त द्विद्भिरेव सह सवसतिर्द्वितीयं ॥ एतद्द्व य चुवि न यस्य सतत्वतोधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराध ॥ ११ ॥दशमशकपरीषहानाह ।

त्वाद्वैशालिक । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशाल वचन चा
स्य तेन वैशालिकोजिन । एवमसो जिनआख्यातइति । इतिशब्द परिसमाप्त्यर्थोब्रवीमी
तिशब्दार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥२२॥ समाप्तच द्वितीयं वैतालीयमध्ययन ॥ ग्रंथाग्रं॥१०६॥
हवे बीजो अध्ययन कह्या अनतर त्रीजो अध्ययन प्रारंभिये छैए एनो ए सबंध छे के,
पाछले अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोष अने स्वसमय
ना गुण जाणीने स्वसमयने विषे प्रवर्तवो, तेने विषे प्रवर्त्तता थका जे अनुकूल अने प्रति
कूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंभिये छैये.

सूरं मणइ अप्पाणं, जावजेयं नपस्सती ॥ जुश्रंतं दढधम्माणं,
सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि
उवट्ठिते ॥ माया पुत्तं नयाणाइ, जेएण परि विछ्छए ॥ २ ॥

अर्थ—कोइएक बाल मनुष्य संग्रामने विषे अप्पाणके० पोताने सूरमणइके० शूरवीर क
री माने जे आजगतमाहे माहारा समान सुभट कोइ नथी परतु जावजेय के० ज्या
सुधी तेसंग्रामने विषे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यांसुधी जाणवु. को
नीपरे ? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परतु
संग्रामने विषे दढधम्माण के० दृढधर्मी तथा महारह के० महारथी एवा नारायणने
श्रीत ॥३॥ साप्रतम... पामी, मद गाळीने निर्मद थयो ॥ १ ॥ साप्रत सामा
सोलसविहोवा।घडणजयणायतंमि; ... के० शूरवीरपणुं मानता रण के० सं
तुभेद । तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रा... उवट्ठिते के०
हास्यत प्रद्वेषाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च । तैरश्चाअपि चतुर्विधा । तेथ ...कुल
यात्मद्वेषाताहारादपत्यसरक्षणाच्च । आत्मासवेदनाअपि चतुर्विधा । तद्यथा । घट्ट
नातोलेशनातोऽगुआद्यवयवस्थंभरूपायास्तजनात प्रपाताच्चेति । यदिवा वातपित्त
श्लेष्मसंनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलभेदात् अष्टधा
नवति । सएव दिव्यादि प्रत्येक यश्चतुर्धा प्राग्दर्शित सचतुर्णां चतुष्काना मेलापकात्
षोडशभेदोनवति । तेषां चोपसर्गाणां यथा घटनासंबंधप्राप्ति. प्राप्तानांचाऽधिसहन प्र
तियातना नवति । तथाऽतऊर्ध्वमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिभाव ॥४॥
उद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽह ।(पढममीत्यादि) पढममिपडिलोमा हुंतीअणुलोमगाय
बितियमि।तइएअज्झत्तविसीदणयपरवादिवयणंच ॥५॥ प्रथमे उद्देशके प्रतिलोमा प्रतिकूला
उपसर्गा प्रतिपाद्यतइनि तथा द्वितीये ज्ञातिकृता स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकू
लाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविषीदनं परवादिवचन चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउस
रिसेहिअहेउएहि समयपडिएहिणिउणेहि । शीलखलितपण्णवणाकयाचउमि उद्देशे

न्ना के० रागद्वेषे व्याकुल एवा केइ के० कोइएक अनारिया के० अनार्य पुरुषो ते चारित्रवत साधुने क्रीडाये करी लूसंति के० लूगे कदर्थना करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(सताइति)। केशानां लोचने सतप्ता पीडितास्तथा ब्रह्मचर्येण पराजिताजग्ना सतस्तत्र केशलोचे ब्रह्मचर्ये मदाविपीदति सयमाद्भ्रश्यंते। यथा मत्स्या केतने मत्स्यबधने प्रविष्टाविपीदति जीविताद्भ्रश्यति ॥ १३ ॥ (आयदंडेत्ति)। आत्मा दडयते दुर्गतौ पात्यते येन स आत्मदड समाचारोनुष्ठानं येपा ते आत्मदम समाचारा। मिथ्यासस्थिताविपरीततया स्वीकृता जावना चित्तवृत्तिर्यैस्ते मिथ्यासस्थितजावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थ । हर्षद्वेषमापन्नारागद्वेपाकुलाएवविधाअनार्या केचित् साधु लूषयति कदर्थयंति दडादिनिर्वाग्निर्वा ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच (संतत्ताइत्यादि)। समतात् तप्ता संतप्ता केशानां लोचउत्पाटनं तेन। तथाहि। सरुधिरकेशोत्पाटने हि महती पीडोपपद्यते तया चाऽल्पसत्वा विस्रोतसिकां जजते। तथा ब्रह्मचर्य वस्तिनिरोधस्तेनच पराजिता पराजग्ना सतस्तत्र तस्मिन् केशोत्पाटनेऽतिदुर्जयकामोद्रेके वा सति मदाजन्मालघुप्रकृतयोविपीदति सयमानुष्ठान प्रति शीतलीजवति सर्वथा सयमाद्भ्रश्यंति। तथा मत्स्या केतने मत्स्यबधने प्रविष्टानिर्गतिका सतोजीविताद्भ्रश्यति। एव तेपि वराका सर्व कष्टकामपराजिता सयमजीवितात् भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ किंच (आयदंडेत्यापि)। आत्मा दडयते खंडयते हितात् भ्रश्यते येन स आत्मदम समाचारोऽनुष्ठान येपामनार्याणा ते। तथा मिथ्या विपरीता सस्थिता सानुग्रहारूढा जावनात करणवृत्तिर्येषा ते मिथ्यासंस्थितजावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थ । हर्षश्च प्रद्वेषश्च हर्षप्रद्वेष तदापन्नारागद्वेषसमाकुलाइति यावत् । तएवजूताअनार्या साधु सदाचार क्रीमया प्रद्वेषण वा क्रूरकर्मकारित्वात् लूषयंति कदर्थयति दमादिनिर्वाऽग्निर्वैते ॥ १४ ॥

अप्पेगे पलियंतेसि, चारो चोरोति सुव्वय ॥ बधंति भिक्खुय बाला कसायवयणेहिय ॥१५॥ तत्त दंमेण सवींते, मुठिणा अडुफलेण वा ॥ नातीण सरती बाले, इत्थीवा कुद्धगामिणी ॥१६॥ एते जोकसिणा फासा, फरुसा डुस्सहियासया॥हत्थी वा सरसंवित्ता कीवा वसगयागिहंतिवेमि ॥१७॥ इति तृतीय ऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशोस०

अर्थ–वली अपि संजावनाये एगेपलियं के० कोइएक अनार्य, देशपर्यंत विचरता

एवं सेहेवि अपुट्ठे, भिरका यरिया अकोविए ॥ सूर मण्णंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासम्मि, सीतं फुसइ सवगं, पाठांतरं सवायगं ॥ तत्थ मदा विसीयंति, रज्जहीणावि खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे छे एव के० एम पूर्वोक्त सुजटनी पेरे शीशु पालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुठ्ठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामा शु दुर्लभछे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलजज छे एवो ते भिरकायरि या अकोविएके० भिक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण. अनेरा आचारने विषे अनि पुण थको नवदीक्षितछे ते सूरमण्णतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूर पणानो माननार ते जावके० ज्यालगे लूहके० सयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवु कहे के, " ए सयममा शु दुष्करपणुं छे? " परतु जेवारे सयम आदरे तेवारे प रिसहनो उदय आवे थके सिदाय ॥ ३ ॥ हवे सयमनुं दुष्करपणुं देखाडेछे. जया के० ज्या एकदाकाले हेमतमासम्मि के० हेमत ऋतुना पोष अने माघ मासमा स व्वग के० सर्वांगे पाठातरे सवायगं के० वायरासहित सीतफुसति के० शीत फरसे तत्थ के० तेवारे मदाविके० मदबुद्धि भारी कर्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रज्जहीणावि खत्तिया के० जेम राज्य हीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एव पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरमन्योजेता र वासुदेवमन्यवा युध्यमान दृष्ट्वा भग याति । एव शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजित परीषहैरस्पृ ष्ट प्रव्रज्याया किंदुष्करमिति गर्जन भिक्षाचर्याया भिक्षाटनेऽकोविदोनिपुण. । उपलक्ष णादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुण सआत्मान तावत् शिशुपालवत् शूर मन्यते । याव ऋतारमिव रूक्ष सयम नसेवते नजजते । सयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभगमु पयातीति ॥३॥ सयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेति) यदा हेमतमासे शीतकाले शीत स्पृशति स वांग।तत्र शीते मदाविषीदति दीना स्यु । राज्यहीना राज्यच्युतायथाक्षत्रियाराजान ॥४॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवसेहेवीत्यादि) । एवमिति प्रक्रातपरामर्शार्थे । य थाऽसौ शूरमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसग्रामशिरस्युपस्थित पश्चाज्जेतार वासुदेवम न्यं वा युध्यमान दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एव शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजित. परीषहैरस्पृष्टोमुत्र त्रिप्रव्रज्याया दुष्करमित्येव गर्जन् भिक्षाचर्याया भिक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुण । उपल क्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽनिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीण· सएवभूतआत्मान

॥ टीका–एतदेव दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपि संभावने । एके अनार्या आत्मदण्डसमाचारामिथ्यात्वोपहतबुद्धयोरागद्वेषपरिगता । साधु (पलिपंतेसिंति) अनार्यदेशपर्यंते वर्त्तमान (चारोत्ति) चारोयं चौरोयस्तेन इत्येव मत्वा सुव्रत कदर्थयंति । तथाहि । बध्नति रज्वादिना सयमयंति भिक्षुक भीक्षणशील बालाअज्ञा सदसद्विवेकविकलास्तथा कषायवचनैश्च क्रोधप्रधानकटुकवचनैर्निर्भर्त्सयंतीति ॥ १५ ॥ अपिच (तत्थदंडेणेत्यादि) । तत्र तस्मिन्ननार्यदेशपर्यंते वर्त्तमान साधुरनार्यैर्दडेन यष्टिना मुष्टिना वा सवीत प्रहतोऽथवा फलेन वा मातुलिंगादिना खड्गादिना वा ससाधुरेव तं कदर्थ्यमान कश्चिदपरिणतोबालोऽज्ञोज्ञातीना स्वजनाना स्मरति । तद्यथा । यद्यत्र मम कश्चित् सबधी स्यात् नाऽहमेवभूता कदर्थनामवाप्नुयामिति । दृष्टांतमाह । यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहात् गमनशीला निराश्रया मासपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुता सती जातपश्चात्तापा ज्ञातीना स्मरत्येवमसावपीति ॥ १६ ॥ उपसहारार्थमाह । (एते भोइत्यादि) । भोइति शिष्यामत्रण । यएतआदित प्रभृति दशमशकादय पीडोत्पादकत्वेन परीषहाएवोपसर्गाअभिहिता कृत्स्ना सपूर्णाबाहुल्येन स्पृश्यते स्पर्शेंद्रियेणाऽनुभूयंतइति स्पर्शा । कथभूता परुषा परुषैरनार्यैः कृतत्वात् पीडाकारिण । तेचाऽल्पसत्वैर्क्लीबेनाऽधिसह्यते ताश्चाऽसहमानालघुप्रकृतय केचन श्लाघामगीकृत्य हस्तिनइव रणशिरसि शरजालसवीता शरशताकुलाभगमुपयात्येव क्लीबाअसमर्थाअवशा परवशा कर्मायत्तागुरुकर्माण पुनरपि गृहमेव गता । पाठांतर वा (तिवसड्ढेत्ति) ती व्ररुपसर्गैरभिद्रुता गता गतानुष्ठाना सयम परित्यज्य गृह गताइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उपसर्गपरिज्ञाया प्रथमोद्देशकइति ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वितीयोद्देशकस्य प्रारभ पहेला उद्देशामा प्रतिकूल उपसर्गना कारण कह्या हवे बीजा उद्देशामा अनुकूल उपसर्गना कारण कहेछे

अहिमे सुहमा संगा, भिक्खुण जे दुरुत्तरा ॥ जत्थ एगे विसीय
ति, णचयतिज वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायऊ दिस्स, रोयति
परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुठोसि,कस्स तायजहासि णे ॥२॥

अर्थ–अहके० अथ हवे इमे के० ए सुहमाके० सूक्ष्म,एटले चित्तने विकार उपजावनार एवा, अतरग प्रतिकूल उपसर्गना कारण पण बादर एटले प्रगट देखाय नही तेवा शरीरने विकार करनार उपसर्ग न जाणवा एवा संगाके० मातापितादिकनो सबध, ते सबधी जेके० जे भि

यइतिनाव । भिन्नाइ मुहलावसु, वायाघोलेइकवमक्कंमि । कहकहकरेइहियय, देहि त्ति पर नणतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्य गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ १ ॥ एवं याञ्चापरिषह परित्यज्य महापुरुषसेवित पथा श्रयणीय । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहु सामान्यलोकाइत्रमुक्तवत । यथा एते यतय कर्मनि कृष्यादिनिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्था सतोयतिल प्रतिपन्ना दुर्नगा पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिका सत प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उसपरीषहमधिकृत्याह । (पुठेइत्यादि) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अग्नितापस्तेन स्पृष्टश्छुप्तोव्याप्त सन् विमनाविमनस्क सुष्ठुवा अतिशयेन पातुमिच्छा पिपासा ता प्राप्तोनितरा तृडभिभूतोवाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नुसपरीषहोदये महाजमाअशक्ताविषीदति पराजगमुपयाति । दृष्टांतमाह । यथा मत्स्याअल्पोदके विषीदति । गमनाजावान्मरणमुपयात्येव सत्वाजावात्सयमात् भ्रश्यतइति । इदमुक्त नवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाडुदकस्य ग्रीष्माभितापेन तप्ताअवसीदत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्राबहिरुष्माभितप्ता शीतलान् जलाश्रयान् जलाधारगृहचदनादीनुष्णप्रतिकारहेतूननुस्मरतआकुलितचेतस सयमानुष्ठान प्रति विषीदति ॥ ५ ॥ साम्प्रत याञ्चापरीषहमधिकृत्याह (सदादत्तेइत्यादि) यतीना सदा सर्वदा दत्तशोधनायपि परेण दत्तमेषणीयमुत्पादाद्येषणादोषरहितमुपनोक्तव्यमित्यत क्षुधादिवेदनार्त्ताना यावज्जीव परदत्तैषणादुःख नवति । अपि चेय याञ्चापरीषहोल्पसत्वैर्दुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । भिन्नाइमुहलावसु, वायाघोलेइकवमक्कमि । कहकहकहेइहियय देहित्तिपरनणतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्य गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एव दुस्त्यजं याञ्चापरीषह परित्यज्य गताभिमानामहासत्वाज्ञानाद्यभिवृद्धये महापुरुषसेवित पथानमनुव्रजतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽक्रोशपरीषह दर्शयति । पृथक्जना प्राकृतपुरुषाअनार्यकल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवत । तद्यथा । ये एते यतय जलाविलदेहालुंचितशिरस क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एते पूर्वाचरितै कर्मनिरार्ता पूर्वस्वकृतकर्मण फलमनुनवति । यदिवा कर्मनि कृष्यादिनिरार्त्तास्तत्कर्तुमसमर्थाउद्विग्ना सतोयतय सवृत्ताइतितथैते दुर्नगा सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्यक्ता निर्गतिका संत प्रव्रज्यामभ्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु णगरेसु वा ॥ तत्र मदा विसीयति,
सगाममिव नीरुया ॥७॥ अप्पेगे खुधियं निक्खु, सुणी डंसंति
लूसए ॥ तत्र मदा विसीयति, तेउ [illegible] [illegible]णो ॥ ८ ॥

तथाविधाज्ञातय स्वजनामातापित्रादयः प्रव्रजंतं प्रव्रजित वा दृष्टोपलभ्य परिवार्य वेष्ट यित्वा रुदति रुदतोवा वदति च दीन । यथा बाल्यात् प्रभृति त्वमस्माभि· पोषितोवृद्धा ना पालकोभविष्यतीति कृत्वा ततोधुनानोऽस्मानपित्व तात पुत्र पोषय पालय कस्य कृ ते केन कारणेन कस्यवा बलेन तातास्मान् त्यजसि नास्माक भवतमंतरेण कश्चित्राता विद्यतइति ॥ २ ॥

पिया ते थेरउ तात, ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरोते सगा ता
त, सोयरा किं जहासि णे ॥ ३ ॥ मायर पियरं पोस, एवं लोगो
भविस्सति ॥ एव खु लोइयं ताय, जे पालति य मायर ॥ ४ ॥

अर्थ-पियाते थेरउतात के० अहो तात ताहरो जे पिताछे ते थेरउ एटले मोकरो छे अर्थात वृद्धछे, तथा ससा के० बेहेन ते खुड्डिया के० न्हानीछे, इमाके० ए प्रत्यक्ष देखायछे. तथा भायरोतेसगातात के० हेतात ताहरा सगाभाइ ते एक माताना जण्या एवा सोयरा के० सहोदर एक उदरना उपज्या, स्नेहना पात्र, तेने किंजहासिणे के० केम छांडीश ते कारण माटे तु अमने का छांडेछे ॥ ३ ॥ तथा मायर के० माता अने पियर के० पिता तेने पोस के० पोषण कर एव लोगोभविस्सति के० एरीते पर लोकनी सिद्धि थशे एवखुलोइय ताय के० तथा हेतात आलोकने विषे पण निश्चय थकी एवो आचारछे के जे पालति य मायर के० जे ससारमाहे पोताना मातापिताने पालणपोषणकरे, तेज श्रेष्ठ मनुष्य कहेवायछे यतोगुरुवोयत्र पूज्यतिइति वचनात्॥४॥

॥ दीपिका-पियेति। हेतात पुत्र ते तव पिता स्थविर स्वसाभगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी इमे भ्रातरस्तव निजास्तात सोदरा स्वका सहोदरा किमस्मान् त्यजसि ॥३॥ मायरमिति। मातर पितर पुषाण पोषय एवकृते तवेह लोक परलोकश्च भविष्यति । इदमेव लौकिक लोकसमतं यत् वृद्धयोर्मातृपित्रो परिपालन । यत· । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुस स्कृत ॥ अदतकलहोयत्र तत्र शक्र वसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका-किंच (पियेत्यादि) हेतातपुत्र पिता ते तव स्थविरोवृद्ध शतातो त स्वसाच भगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी अप्राप्तयौवना इमा पुरोवर्त्तिनी प्रत्यक्षेति तथा भ्रातरस्ते तव स्वकानिजास्तात सोदराएकोदरा किमित्यस्मान् परित्यजसीति ॥ ३ ॥ त था (मायरमित्यादि) मातर जननी तथा पितर जनयितारं पुषाण बिभृहि । एव च कृते तवेह लोक परलोकश्च भविष्यति । तातेदमेवलौकिक लोकाचीर्णमयमेव लौकिकः पं

यइतिनावः । मिखाइ सुहलावसं, वायांघोलेइकंवमजंमि । कहकहकरेइहियय, देहि ति पर नणतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्य गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ २ ॥ एव याञ्चापरिषह परित्यज्य महापुरुषसेवित पथा श्र यणीय । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहु सामान्यलोकाइत्थमुक्तव त । यथा एते यतय कर्मनि कृष्यादिनिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्था संतोयतित्वं प्रतिपन्ना दुर्नगा पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिका सत प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

॥ टीका–जलपरीषहमधिकृत्याह । (पुट्ठेइत्यादि) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अनि तापस्तेन स्पृष्टःवृतोव्याप्तः सन् विमनाविमनस्क सुएवा अतिशयेन पातुमिछा पिपा सा तां प्राप्तोनितरा तृडनिनूतोबाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नु लपरीषहोदये महाजमाअशक्ताविषीदति पराजंगमुपयाति । दृष्टांतमाह । यथा म त्स्याअल्पोदके विषीदंति । गमनाजावान्मरणमुपयांत्येव सत्वाजावात्संयमात् भ्र श्यतइति । इदमुक्तं नवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाडुदकस्य ग्रीष्माजितापेन तप्ताअ वसीदंत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्रावहिस्तानितप्ता शीत लान जलाश्रयान् जलाधारगृहचदनादीनुलप्रतिकारहेतूननुस्मरतआकुलितचेतस मं यमानुष्ठान प्रति विषीदति ॥ ५ ॥ सांप्रत याञ्चापरीषहमधिकृत्याह (सदादत्तेइ त्यादि) यतीना सदा सर्वदा दतशोधनाद्यपि परेण दत्तमेपणीयमुत्पादायेपणादोषरहि तमुपनोक्तव्यमित्यत क्षुधादिवेदनार्त्तानां यावज्जीव परदत्तैपणाडुखं नवति । अपि चेप याञ्चापरीषहोल्पसत्वैर्डुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । मिखाइमुहलावसा, वा यारोलेइकवमझमि । कहकहकदेइहियय देहित्तिपरनणतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एव डुस्त्यज पाञ्चापरीषहं परित्यज्य गतानिमानामहासत्वाज्ञानाद्यनिवृद्धये महापुरुषसेवित पंथान मनुव्रजतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽक्रोशपरीषह दर्शयति । पृथक्जना. प्राकृतपुरुषाअनार्य कल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवत । तद्यथा । ये एते यतय जलाविलदेहालुंचितशिर स क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एते पूर्वाचरितैः कर्मनिरार्ता पूर्वस्वकृतकर्मणः फलमनुनव नि । यदिवा कर्मनि. कृष्यादिनिरार्त्तास्तत्कर्तुमसमर्थाउद्विग्ना. संतोयतय संवृत्ताइतित धंते दुर्नगा सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्यक्ता निर्गतिका संत प्रव्रज्यामभ्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु णगरेसु वा ॥ तत्र मंदा विसीयति, संगामंमिव नीरुया ॥७ ॥ अप्पेगे खुधियं निक्खं चरंतं ...
लूसए ॥ तत्र मंदा विसी- ...

गंतु ताय पुणो गच्छे, णय तेणासमणोसिया ॥ अकामगं परि
कम्मं, कोउते वारेउ मरिहति ॥७॥ जं किंचि अणगं तात, तंपि
सवं समीकतं ॥ हिरणं ववहाराइ, तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८ ॥

अर्थ–गंतुताय के० तेमाटे अहो तात एकवार घेर जइने पुणोगच्छे के० वली फरी आवीने यति थाजो णयतेणासमणोसिया के० एटलु कीधा थकी अश्रमणपणु न थाय, जो तमे अकामगं के० गृह व्यापारनी इच्छारहित परिकम्मं के० पोतानु मन मान्यु अनुष्ठान करशो, तो तमने कोउतेवारेउमरिहति के० कोण वारवाने समर्थ छे अथवा अकामगं के० वृद्धावस्थाये विषयाभिलाष निवर्त्ते थके परिकम्मं के० संयमानुष्ठानने विषे पराक्रम करजो, केमके तेवखत धर्म करवाने योग्य छे, तेवारे कोतेवारेउ मरिहतिके० तमोने कोइ पण वारवाने समर्थ थशे नही ॥७॥ जंकिंचिअणगंतातके० वली अहो तात जेकाइ तमारा उपर ऋण एटले लेणुहतु तंपिसवंके० तेपण अमे सर्व देवुं समीकित के० समुकीधु, एटले मागनाराउनु सर्व लेणु चुकावी दीधु छे, तथा हिरन्नववहाराइ के० जे व्यवहारने कार्य अथवा अन्य कोइ भोगोपभोगने अर्थे सुवर्ण रूपादिक खपमां लागशे तंपि के० तेपण सर्व अमे तेवयं के० तमोने दाहासुके० आपीशु ॥८॥

॥ दीपिका–(गंतुमिति) तात गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनर्गतासि न च तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । अकामकं गृहव्यापारेच्छारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कोवारयितुमर्हति । एकवारं गृहमागत्य पुनर्यथोचितं कुर्याइति भाव । अथवा अकामकं वृद्धावस्थायां मदनेच्छारहितं पराक्रमंतं संयमे प्रवर्तमानं त्वां कोवारयितुमर्हति ॥७॥ (जंकिंचिदिति) यत्किंचित्तव ऋणमासीत्तदस्माभिर्विभज्य समीकृतं समभागेण व्यवस्थापितं । यच्च हिरण्यं द्रव्यं व्यवहारादावुपयुज्यते तदपि वयं तव दास्याम ॥८॥

॥ टीका–किंच । (गंतुमित्यादि) । तात पुत्र गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनरागतासि न च तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । (अकामगंति) अनिच्छंतं गृहव्यापारेच्छारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कस्त्वां भवंतं वारयितुं निषेधयितुमर्हति योग्योभवति । यदि वा (अकामगंति) वार्द्धकावस्थायां मदनेच्छाकामरहितं पराक्रमंतं संयमानुष्ठानं प्रति कस्त्वामवसरप्राप्ते कर्मणि प्रवृत्तं धारयितुमर्हतीति ॥ ॥७॥ अन्यच्च (जंकिंचिइत्यादि) । तात पुत्र यत्किमपि भवदीयमृणजातमासीत्तत्सर्वमस्माभि सम्यग्विभज्य समीकृतं समभागेन व्यवस्थापितं । यदिचोत्कटं सत् समीकृतं सुदेयत्वेन तं स्थापितं यच्चहिरण्यं द्रव्यजातं व्यवहारादावुपयुज्यते । आदिशब्दात् येनवा प्रकारेण भ्रातररोग यास्यति तदपि वयं दास्यामोनिर्धनोहमिति माकृथाभयमिति ॥ ८ ॥

या (मायर.
तवेह लोक

अप्पेगे पडिज्ञामति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते, जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुजंति, नगिणा पिंमो लगाहमा ॥ मुंमाकमूविणठंगा, उज्जल्ला असमाहिता ॥ १०॥

अर्थ–वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेछे अप्पेगे के० अपि संभावनायें. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना द्वेषी, साधुनी साथे शत्रुभावे पाहोंना थका पडिज्ञासंति के० एवुं कठोर वचन साधुप्रतें भासे एटले बोले. शुं बोले? तो के. पडियारगताएते के० ए बापडा पाछला भवना करेलां कर्मनां फल भोगवेछे. जे एने के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेछे. एटले परघरनी भिक्षा मागेछे, तथा अतप्रांत आहारना लेनारा छे. एणे पूर्वले भवे कांइ दीधुं नथी, कांइ साधु नथी तथी मस्तक मुंम थइ दीनत्वरूपे सर्व भोग थकी वंच्या एवा ए बापडा दुःखी थका, जीवे छे ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेछे. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संभावनायें, एक कोइ अनार्य एवा वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सकेवल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना लंलीआला अधम डुगंछाना स्थानक मुंमा के० मुंमितरोम, कंडूके० खाजीये करी एमना शरीर विणठंगाके० विणठाछे. अगजेना एवा शरीर तथा उज्जला के० मेल प्रस्वेद थकी खरडयाछे असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोभनिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारछे. ॥ १० ॥

विबद्धो नातिसंगेहिं, हत्थीवावि नवग्गहे ॥ पिठ्ठतो परिसप्पंति, सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एतेसं गा मणूसाण, पाताला व अतारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति, नायसंगेहिं मुच्छिया ॥ १२ ॥

अर्थ–पहीते नातिसंगेहिं के० ज्ञाति गोत्रीनी संगते करी विबद्धो के० विविध प्रकारे बंधाणो थको परवश थयो एटले तेमना अनुकूल वचने करी मनने विषे धृति उपजी तेणे करी बंधाणो हत्थीवाविनवग्गहे के० जेम नवा ग्रहण करेला हस्तिने, जो इक्षुखमादिकनो आहार कराविये तो नवा बंधने करी बंधाय अथवा मधुर वचने करी उपचारिये तेवारे ते बंधननो अंगीकार करे तेम अंही पण ए दृष्टांते ते ज्ञाति गोत्रि जे पुत्रादिकछे ते सुयगोव्व के० नवप्रसूत गायनीपेरे जेम तेगाय पोताना बालक थकी अदूरए के० दूर नजाय, तेम ते पिठ्ठतोपरिसप्पंति के० पुत्रादिक तेसाधुने व्यामोहमा पाडवाने अर्थे पछवाडे लाग्याज फरता रहे ॥ ११ ॥ हवे संगनो दोष कहेछे, एतेसंगा के० ए पूर्वोक्त मातापितापुत्रादिकनो जे संगम छे ते मणूसाण के० मनुष्यने पाताला व के० पाताल समुद्रनी पेरे अतारिमा के० तरता डुस्तर जाणवो जत्थय के० जे संगमने विषे मनुष्य कीवा के० क्लीब असमर्थ छता किस्संति के० क्लेश पामेछे, ते केवाछता क्लेशपामेछे, तोके नायसंगेहिंमुच्छिया के० ज्ञाति स्वजनने संगे गृद्ध मूर्छित छता संसार मांहे क्लेश पामेछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(विबद्धइति) । ज्ञातिसंगैर्विबद्धोविशेषेण बद्ध । तेच ज्ञातयस्तस्मिन्नवसरे तस्य सर्वमनुकूलमनुतिष्ठति । यथा हस्ती नवग्रहे धृत्युत्पादनार्थं इक्षुखडादिभिरुपचर्यते तथाऽसावप्युपचर्यते । यथाऽभिनवप्रसूता गोर्निजवत्सस्यादूरगा समीपवर्तिनीसती पृष्ठत परिसर्पति एव स्वजनाअपि तन्मार्गानुगा स्यु ॥ ११ ॥ (एतेति) एते पूर्वोक्ता संगा पित्रादिसंबधामनुष्याणा पाताला समुद्राइव अतारिमाडुस्तरा संति क्लीबाअसमर्था । यत्र येषु संगेषु क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति ज्ञातिसंगैर्मूर्छिता ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच । (विबद्धइत्यादि) विविध बद्ध परवशीकृत विबद्धोज्ञातिसंगैर्मातापित्रादिसंबंधैस्तेच तस्य तस्मिन्नवसरे सर्वमनुकूलमनुतिष्ठतोधृतिमुत्पादयंति । हस्तीवापि नवगृहे अभिनवग्रहणे धृत्युत्पादनार्थमिक्षुशकलादिभिरुपचर्यते । एवमसावपि सर्वानुकूलैरुपायैरुपचर्यते । दृष्टांतांतरमाह । यथाऽभिनवप्रसूता गौर्निजस्तनधयस्यादूरगा समीपवर्तिनी सती पृष्ठत परिसर्पत्येव तेपि निजाअप्रव्रजित पुनर्जातमिव मन्यमाना पृष्ठतोनुसर्पंति तन्मार्गानुयायिनोभवंतीत्यर्थ.॥११॥ संगदोषदर्शनायाह । (एतेसंगाइत्यादि)

(पुट्ठेत्ति) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिषु बहवोदंशमशका स्युस्तत्रपर्यटन् साधुस्तै स्पृष्टोभक्षितस्तथा निष्किंचनत्वात्तृणेषु शयानस्तेषां स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्त्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । यथा परलोकार्थमिदं डुष्करमनुष्ठानं क्रियते नचासौ मया परलोकः प्रत्यक्षेण दृष्टोनाप्यनुमानादिना । यदि परमनेन क्लेशेन मरणं स्यान्नान्यत्फलं किंचिदिति १२

॥ टीका–सांप्रतमेतद्भावकाणां विपाकदर्शनायाह् । (एवमित्यादि) । एवमनंतरोक्तरीत्या एके अपुण्यकर्माणोविप्रतिपन्नाः साधुसन्मार्गद्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः । तुशब्दादन्येषां च विवेकिनां वचनमकुर्वाणाः संतस्ते तमसोऽज्ञानरूपाडुत्कृष्टं तमोयांति गच्छति यदिवा अधस्तादप्यधस्तनीं गतिं गच्छंति । यतोमहाज्ञानावरणीयेनाऽवष्टब्धास्तथा मोहेन मिथ्यादर्शनरूपेण प्रावृताआछादिताः संत पिंगप्राया साधुविद्वेषतया कुमार्गगानवंति । तथाचोक्तं । एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीय । एतद्द्वयं भुवि न यस्य सतत्वतोऽवस्तस्याऽपमार्गचलने खलु कोपराधः ॥ १ ॥ ११ ॥ दंशमशकपरीषहमधिकृत्याह । (पुट्ठोयेत्यादि) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोकणादिके देशे अधिकादंशमशकाभवंति । तत्रच कदाचित्साधुः पर्यटंस्तैस्पृष्टश्च भक्षितस्तथानिष्किंचनत्वात् तृणेषु शयानस्तत्स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्त्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । तद्यथा । परलोकार्थमेतडुष्करमनुष्ठानं क्रियमाणं घटेत नचाऽसौ मया परलोकः प्रत्यक्षेणोपलब्धो ऽप्रत्यक्षत्वात् नाऽप्यनुमानादिनोपलभ्यतइति । अतोयदि परं ममानेन क्लेशानितापेन मरणं स्यान्नाऽन्यत्फलं किंचनेति ॥ १२ ॥

संतत्ता केसलोएण, बंभचेर पराइया ॥ तत्त मंदा विसीयंति,
मत्ता विहाव केयणे ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे, मिछासंठिय
भावणा ॥ हरिसप्पडसमावन्ना, केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥

अर्थ–तथा वली संतत्ता केसलोएण के० केशना लोचे संताप्या तथा बंभचेर पराइया के० ब्रह्मचर्य थकी भागा एटले लोचनी पीडा उपनी थकी तथा कामविकार ना दीपवा थकी तत्त के० त्यां मंदा के० मंद अज्ञानी बापडा विसीयंति के० सदाय. संयम थकी भ्रष्ट थाय ते कोनी परे? तोके, जेम केयणे के० केतन एटले मत्स्य बंधन तेने विषे विहाव के० प्रवेश करवा थकी मत्ता के० माछलुं जीवितव्य थकी चूकेछे. तेनी पेरे ते बापडा संयम थकी चूकेछे ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे के० आत्मा जे थकी दंमाय एवो जेनो आचार एटले अनुष्ठानछे तथा मिछासंठियभावणा के० मिथ्यादर्शन संस्थित एटले मिथ्यादर्शने भावित जेनु चित्त छे, तथा हरिसप्पडसमाव

पङ्क्षिया परिहरेत् । किमिति यत सर्वेपि केचन सगास्ते महाश्रवामहांति कर्मणश्रा श्रव द्वाराणि वर्तते । ततोनुकूलैरुपसर्गैरुपस्थितैरसयमजीवितं गृहावासपाश नाभि काङ्क्षेत नाभिजपेत् । प्रतिकूलैश्चोपसर्गै सद्भिर्जीवितानिजापी नत्रवेदसमजसकारित्वेन न वजीवित नाभिकाङ्क्षेत् । किंकत्वा श्रुत्वा निशम्यावगम्य । कधर्मं श्रुतचारित्राख्यं । नास्यो त्तरोस्तीत्यनुत्तर प्रधान मौनीन्द्रमित्यर्थ ॥१३॥ अन्यच्च । (अहिमेत्यादि) । अथेत्यधिका रातरदर्शनार्थे । पाठातर वा अहोइति तच्चविस्मये । इमे ऽतिप्रत्यक्षासन्ना सर्वजनविदि तत्वात् सति विद्यते वक्ष्यमाणाआवर्तयति प्राणिन त्रामयतीत्यावर्तास्तत्र द्रव्यावर्ता नद्यादेर्नावावर्तास्तूत्कटमोहोदयापादितविपयाभिलापसपादकसपत्प्रार्थनाविशेषाएतेचाव र्ता काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनाऽनुत्पन्नदिव्यज्ञानेनावेदिता कथिता' प्रतिपादिता । यत्र येषु सत्सु बुद्धाअवगततत्त्वाआवर्तविपाकवेदिनस्तेभ्योवसर्पते । प्रम त्ततया तद्दूरगामिनोनवत्यबुद्धास्तु निर्विवेकतया येष्ववसीदन्त्यासक्ति कुर्वतीति ॥ १४॥

रायाणो रायमच्चाय, माहणा अडुव खत्तिया ॥ निमंतियति जो
गेहिं, निक्खूण साहु जीविण ॥ १५ ॥ हत्थस्स रहजाणेहिं, वि
हारगमणेहिया ॥ भुजभोगे इमे सग्घे, महरिसी पूजयामु त ॥१६॥

अर्थ—हवे ते आवर्त कहेछे रायाणोराय के० राजाना राजा जे चक्रवर्ति प्रमुख तथा राजाना मच्चाय के० अमात्य मत्रीश्वरप्रमुख तथा माहणा के० ब्राह्मण ते पुरोहित प्रमुख अथवा खत्तिया के० क्षत्रीते इक्ष्वाकुकुलप्रमुख वशने विपे उत्पन्न थयला एवा पुरुषो ते भिक्खूणजीविण के० साधुने आचारे प्रवर्तता एवा साहु के० साधुर्डने भोगेहिं के० भोगे करी निमतियंति के० ब्रह्मदत्त जेम चित्र साधुने निमत्रण कर्यु तेनी पेरे निम त्रण करे ॥१५॥ हवे जेरीते भोगे करी निमत्र ते देखाडेछे हत्थस्सके० हस्ती घोडा रह के० रथ यानके० पालखी प्रमुख, एटले करी निमत्रण करे भोलवे विहारगमणेहिय के० उद्यानादिकने विपे क्रीडादिक हेतुये गमन करवाने अर्थे, तथा अन्य इंद्रियोने अनुकूल एवा विपयसुखने अर्थे निमत्रण करे अने कहेके इमे के० आ प्रत्यक्ष सग्घे के० श्लाघनीय भोगे के० भोग ते तमे भुजके० भोगवो, महरिसी के० अहो महर्पि एटले प्रकारे करीने पूजयामुत के० अमे तमोने पूजीये ठैये ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(रायाणोत्ति) । राजानोराजामात्यामत्रिणोब्राह्मणा अथवा क्षत्रिया शेपभृत्या । एते सर्वेपि भिक्षुक साधुजीविन साध्वाचारेण जीवनशील साधु भोगैर्निमत्रयं ति भोगाश्चागीकारयति । यथा ब्रह्मदत्तचक्रिणा चित्रसाधुर्भोगैर्निमत्रितइति ॥१५॥ तथा

जें साधु तेसिके० ते साधुने एम कहेके, चारोचोरोतिसुव्वयके० ए हेरुछे चोरछे, निक्खुण शील एम कहीते सुव्रतजे अणगार तेने बधतिनिरुकयके० राशी प्रमुखे करी, साधुने बांधे एवा वालाके० बाल अज्ञानी तथा कसायवयणेहियके० कषायना वचने करी निजर्त्सना करे. ॥१५॥ तछके० त्यां अनार्य पुरुषे साधुने दन्मेणके० दन्मे करी तथा मुठिणाके० मुट्ठियें करी अडवाके० अथवा फलेणवाके० फले करी सवीतेके० हण्यो छतो काइक परिणत साधु नातिणसरतीवाले के० एवा डुखोने ते बाल अज्ञानी अण सहेतो थको ज्ञाती गोत्रीने सनारे के, माहारो सबधि गोत्री जो कोइ अहिया होत तो ए मने एवी कदर्थना नकरत, एवी चितवना करे इछिवाकुछगामिणी के० जेम स्त्री रीशाणी थकी, पोताना घरमाथी निकली, रस्तामा तेने चोर लोकोए ग्रहण करी छती पोताना संबंधितनु स्मरण करे, पश्चात्ताप करे, तेनीपेरे जाणी लेवी ॥ १६ ॥ हवे उपसंहार करतो कहेछे. एते के० ए जे पूर्वे दसमशकादिकना परिसह कह्या ते नोके० श्रीसुधर्मस्वामी जबूप्रमुख शिष्योने बोलावी कहेछे के, नोशिष्यो कसिणाफासा के०जे परिसह कह्या ते सपूर्णप्रत्ये फरशे फरुसा डुसहियालया के० जे कठोर अहियासता डुर्जनछे एवा परिसहने अणसहेता एवा जे किवाके० क्लीव असमर्थ अवसाके० परवशे एटले कर्मना वशे पडया थका गयागिह के० वली गृहवासे गया कोनीपरे ? तोके, हछिवासरसंविता के० जेम हस्ती सग्रामने माथे, मस्तके शरजाले वींध्यो थको त्याथी नाशी पाछो फरे तेम कायर साधु चारित्र थकी पाछो फरे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ १७ ॥ इति तृतीयाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशक समाप्त ॥

॥ दीपिका–(अप्पेगत्ति) एके पूर्वोक्तविशेषणाअनार्या पर्यंतदेशे वर्तमान साधुं सुव्रत (चारोचोरित्ति) चरोय चोरोयमिति कत्वा वध्नंति निक्षुक निक्षुणशील बालाअज्ञास्तथा कषायवचनै क्रोधवचनैर्निर्भर्त्सयति ॥ १५ ॥ (तछेति) तत्राऽनार्यदेशेऽनार्यैर्दडेन मुष्टिना फलेन मातुलिंगादिना खड्गादिनावा सवीत कश्चिदपरिणत साधुर्ज्ञातीना स्मरति। यद्यत्र मम कश्चित्संबंधी स्यात्तदा नाहमीदृशी कदर्थना प्राप्नुयामीति। यथा स्त्री क्रुध्दा सती स्वगृहाद्गमनशीला निराश्रया मासपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरनिद्रुतासती जातपश्चात्तापा ज्ञातीना स्मरत्येव साधुरपि ॥ १६ ॥ (एतेइति)। नोइति शिष्यामत्रण । एते दशमशकादय परीषहा स्पृश्यते अनुभूयते स्पर्शा परुषा कठिनाडुखेनाधिसह्यते डुरधिसह्याद्हस्तिनइव शरैर्वाणै सवीताव्याप्ताजम्यतइति शेष । एवं क्लीबाअसमर्थाअवशा परवशा कर्मायत्ता पश्चात्स्वगृह गता ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १७ ॥ इतिउपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने प्रथमोद्देशक समाप्त ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। वस्त्रगधेत्यादि। वस्त्रं चीनांशुकादि गंधा काष्ठपुटपाटकादय वस्त्रा णि च गंधाश्च वस्त्रगधमिति समाहारद्वद्व । तथा अलकार कटककेयूरादिक तथा स्त्रि य प्रत्यग्रयौवना शयनानि च पर्यंकतूलीप्रवरपटोपधानयुक्तानि इमान् जोगानिंद्रिय मनोनुकूलानस्माभिर्ढौकितान् भुड्क्ष्व तडुपजोगेन सफलीकुरु हेआयुष्मन् जवतं पूजयाम सत्कारयामइति ॥ १७ ॥ अपिच (जोतुमेइत्यादि) यस्त्वया पूर्वं जिक्षुनावे प्रव्रज्याव सरे नियमोमहाव्रतादिरूपश्चीर्णोनुष्ठित इंद्रियनोइंद्रियोपशमगतेन देसुव्रत सत्सांप्रत मप्यगार गृहमावसतोगृहस्थनाव सम्यगनुपालयतोनवतस्तथैव विद्यतइति । नहि सु कृतस्यानुचीर्णस्य नाशोस्तीति नाव ॥ १८ ॥

चिरं दूइज्जमाणस्स, दोसोदाणि कुतो तव ॥ इच्चेव णं निमंते
ति, नीवारेणव सूयर ॥ १ए ॥ चोइया निक्खचरिया, अचयंता
जवित्तए ॥ तत्र मंदा विसीयंति, उज्जाणंसिव डुब्बला ॥ २०॥

अर्थ–चिरदूइज्जमाणस्स के० घणो काल संयमानुष्ठाने करी विचरता तमने दोसो दाणिकुतोतव के० हमणा दोषनी प्राप्ति क्याथी थशे एटला दिवस सुधी घणा व्रत पाळ्याछे इच्चेवण के० इत्यादिक जोग योग्य पदार्थोये करी निमंतेति के० ते साधुने नि मत्रण करे ते उपर दृष्टांत कहेछे नीवारेणवसूयर के० जेम नीवार एटले व्रीहिना कण तेणे करी सूयरने कूटवधमा पाडे तेम चारित्रियाने संयम थकी ब्रष्ट करी ससाररूप पाम बंधनमा नाखे ॥ १ए॥ चोइयाके० संयमने विषे वारवार प्रेरया छता पण निक्खूके० चारित्रि या चरियाए के० साधुनी समाचारीने विषे अचयता के० असमर्थ जवित्तए के० संयम रूप जारनो निर्वाह करवाने अशक्त छता तत्र के० ते मुक्ति पथने विषे मंदा के० को इएक मंद अज्ञानी कायर चारित्रिउ होयते विसीयंति के० सीदाय एटले सीतल विहा री थाय ते उपर दृष्टांत कहेछे उज्जाणसीव के० जेम मार्गने विषे उचे स्थानके आ वे थके डुब्बला के० डुर्बल बलदिया गामलाने जारे पीडया थका सीदाय गावडनाखी नीचे पडे, तेम साधु मंद चारित्रिउ महाव्रतनो जार नाखी ससारमाहे पडे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(चिरमिति) चिर बहुकालं (दूइज्जमाणस्सेति) सयमक्रियया विहरत स्तवेदानीं कुतोदोषोनैवास्तीत्यर्थ । इत्येव पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातय साधु निमंत्रयंति । यथा नीवारेण व्रीहिविशेषेण सूकर वराह कूटे पातयति एव साधुमपि ॥ १ए ॥ (चो इयाइति) निक्षुसमाचर्यया साधुसमाचर्यया प्रेरिता संयमानुष्ठानेनात्मान यापयितुं

रकु एके० चारित्रियाने डुरुत्तराके० डुर्जैयनीय उपसर्गछे तेज उपसर्ग कहेछे. जछके० जे उपसर्ग आवे थके एगेके० कोइ एक कायर चारित्रिउ, सीयंतिके० सदाय एचियंलिजविन्नएके० ते पोताना आत्माये संयमनो निर्वाह करी शके नही ॥१॥ अपि संजावनाए, एगेके० कोइएक नायउदिस्स के० ज्ञातिला साधुने देखीने साधुने परिवारिया के० वीटीने रोयंति के० रुदन करे एटले विलाप करे अने एम कहेके अम्हे तारु बालपण थकी पालण पोषण कस्यु, ते अम्हे तारा ताय के० तात एटले पिता छैये माटे एवु जाणुजे अमारी वृद्धावस्थामां, तुपण अमारु पोषण करीश पुढोसि के० तेमाटे हेपुत्र तु अमारुं पोसणके० पोषण कर, तथा ते साधुना पुत्रादिक होय ते एम कहेके कस्सताायजहासिणे के० अहो तात अहोपित्ता तमे अमने शाकारणे ढामोछो ? ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरन्यते । पूर्वं प्रतिकूलाउपसर्गाउक्ता इहाऽनुकूलाउच्यंते । यथा (अहिमेति) अथ इमे वक्ष्यमाणा सूक्ष्माआंतरविकारिण सगामातापित्रादयोनिकूणा ये डुरुत्तराडुर्जेध्या । यत्र येषु उपसर्गेषु एकेअल्पसत्वाविपीदंति संयमे मंदा स्यु । नशक्नुवंति यापयितु सयमे आत्मानं प्रवर्तयितुमिति ॥ १ ॥ (अप्पेगइति) अपि संजावने । एके ज्ञातय स्वजना प्रव्रजत प्रव्रजित वा दृष्ट्वा परिवार्य विष्टन्य आश्रित्य रुदंति वदंति चैव त्वमस्मानि पोषितोबाल्याढारन्यावृद्धमस्माक बालकोनविष्यसीति कृत्वा ततोऽस्मान् त्व तातपुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेनास्मान् त्यजसि ॥२॥

॥ टीका—उक्त प्रथमोद्देशक । सांप्रत द्वितीय समारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । इहोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उपसर्गा प्रतिपादितास्तेचानुकूला प्रतिकूलाश्च । तत्र प्रथमोद्देशके प्रतिकूला प्रतिपादिताऽहत्वनुकूला प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबधेनायातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (अहिमेइत्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । प्रतिकूलोपसर्गानंतरमनुकूला प्रतिपाद्यंतइत्यानंतर्यार्थे । इमे त्वनंतरमेवाजिधीयमाना प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमनिधीयते । तेच सूक्ष्मा प्रायश्चेतोविकारकारित्वेनांतरान प्रतिकूलोपसर्गाइव बाहुल्येन शरीरविकारकारित्वेन प्रकटतया बादराइति । सगामातापित्रादिसंबंधा । यएते निकूणा साधूनामपिडुरुत्तराडुर्लंघ्याडुरतिक्रमणीयाइति । प्रायोजीवितविघ्नकरैरपि प्रतिकूलोपसर्गैरुदीर्णैर्माध्यस्थ्यमवलंबयितु महापुरुषै शक्यमेतेत्वनुकूलोपसर्गास्तानप्युपायेन धर्माच्च्यावयंत्यतोऽमीडुरुत्तराइति । यत्र येषूपसर्गेषु सत्स्वेके अल्पसत्वा सदनुष्ठानं प्रति विपीदंति शीतलविहारित्व जजते सर्वथा वा संयम त्यजंति नैवात्मानं संयमानुष्ठानेन यापयितु वर्तयितु तस्मिन् वा व्यवस्थापयितु शक्नुवंति समर्थाजवंतीति ॥ १ ॥ तानेव सूक्ष्मसंगान् दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) अपि संजावने । एके

तथा गिद्धइच्छीसु के० स्त्रीने विषे गृद्ध एटले अत्यंत आसक्त थता तथा अज्झोववन्ना कामेहिं के० कामभोगने विषे अभ्युपपन्न एटले तेनेविषे रागी होय तेने विवेकी पुरुषे चोइज्जता के० चोयणा करी थकि ते चोयणा सहन करी शके नही, एवा मंद चारित्रिया, ते संयम गामीने गयागिहं के० भागा थका, फरी घरवास अंगीकार करे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतिश्री उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देश समाप्त

॥ दीपिका-(अचेति) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवतउपधानेन तर्जिता पीडिता सतस्तत्र संयमे मदाविषीदंति स्थलजूमौ यथा जरज्ञवाजीर्णवलीवर्दा । तरुणस्यापि तत्रसीदन संभवति किंपुनर्जीर्णस्येति जीर्ण ग्रहणं । तथा समर्थानां विवेकिनामपि संयमे सीदनं संभाव्यते किंपुनर्मंदानामिति ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवं पूर्वोक्तं निमंत्रणं भोगं प्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु मूर्छिताआसक्ता स्त्रीषु गृद्धादत्तोपयोगा रमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनेषु अभ्युपपन्ना कामानुगतचित्ता संयमं प्रति प्रेरणां सोढुमसमर्था प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहंगता गृहस्थीभूताइति । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति उपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने द्वितीयोद्देशक समाप्त

॥ टीका-किंच । (अचयताइत्यादि) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतस्तथोपधानेनानशनादिना सबाह्याभ्यंतरेण तपसा तर्जिताबाधिता सतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंत्युद्यानशिरस्युद्धकमस्तके जीर्णोदुर्बलोगौरिव यूनोपि हि तत्रावसीदनं संभाव्यते किंपुनर्जरज्ञवस्येति जीर्णग्रहणं । एवमावर्तमंतरेणापि धृतिसंहननोपेतस्य विवेकिनोप्यवसीदनं संभाव्यते किंपुनरावर्तैरुपसर्गिताना मंदानामिति ॥ २१ ॥ सर्वोपसंहारमाह । (एवमित्यादि) । एवं पूर्वोक्तया नीत्या विषयोपभोगोपकरणदानपूर्वकं निमंत्रणं विषयोपभोगप्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु विषयोपकरणेषु हस्त्यश्वरथादिषु मूर्छिताअत्यंतासक्तास्तथा स्त्रीषु गृद्धादत्तावधानारमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनरूपेष्वऽध्युपपन्ना कामगतचित्ता संयमेऽवसीदंतोऽपरेणोद्युक्तविहारिणोनोद्यमाना संयमं प्रति प्रोत्साह्यमानानोदनं सोढुमशक्नुवंत सतोगुरुकर्माण प्रव्रज्यां परित्यज्याल्पसत्वा गृहं गतागृहस्थीभूता ॥ इतिपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

हवे त्रीजा अध्ययननो त्रीजो उद्देशो प्रारंभिये छेये

जहा संगामकालंमि, पिठतो भीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं, कोजाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स, मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो, इति भीरु उवेहई ॥ २ ॥

था यदुत वृद्धयोर्मातापित्रो प्रतिपालनमिति । तयाचोक्त । गुरवोयत्र पूज्यते यत्र धान्यं सुसस्कृत ॥ अदतकलहोयत्र तत्र शक्रवसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

उत्तरा महुरुल्लावा, पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात, मा सा अन्नं जण गमे ॥ ५ ॥ एहि ताय घरं जामो, माय कम्म सहावयं ॥ बितिय पिताय पासामो, जासु ताव सय गिह ॥ ६ ॥

अर्थ-एरीते उत्तर के० प्रधान तथा उत्तरोत्तर महुरुल्लावा के० मधुर जेनो आलाप छे एटले नरम वचनना बोलनारा एवा पुत्तातेतातखुड्डया के० अहोतात तमारा पुत्र न्हानाछे, तथा भारियातेणवातात के० तमारी भार्या ते नवीन परणेलीछे ने लघुवयवालीछे, माटे माके० रखे साके० ते अन्नंजणगमे के० अन्यजन पासे जशे तो आपणा कुलने ते कलंक लगाडशे ॥ ५ ॥ माटे एहितायघरजामो के० अहो तात तमे आवी घरमां रहो अने त्यां रह्या थका मायकम्म के०काइपण कार्य करशोमां नवा कार्य उपने थके अम्हे तमोने सहावय के०सहाइ थइशु तेमाटे एकवार गृहकार्यथी तमे भागाछो परतु बितियंपि के० बीजी वखत तायके० हेतात अथवा हे पुत्र पासामो के० तमे जुउ के अमे शखाइ छता जोइये जे तमारो शु बिगाड थायछे, जासुतावसयगिहके० तेमाटे चालो पोताने घेर जइये, एटलु अमारु वचन मान्यकरो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(उत्तराइति) उत्तरा प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा । मधुरोल्लापामधुरवचनास्ते तात पुत्रालघव । तथा भार्या तव नवा नवयौवना नवोढा वा सा त्वया त्यक्ता सती नान्य गच्छेदुन्मार्गगामिनी मास्यात् ॥ ५ ॥ (एहीति) एहि आगच्छ तात गृहं याम. । मात्व किमपि कर्म कुथा । अपितु कर्मण्युपस्थिते ते वय सहायकान्भविष्याम । एकवारं तावद्गृहकर्मनिर्भग्नस्त्व पुनरपि द्वितीयवार पश्यामोऽद्द्यामोयदस्माभि सहायैर्भवतो भविष्यतीत्यतोयामस्तावत्स्वक निजं गृह ॥ ६ ॥

॥ टीका-अपिच । (उत्तरेत्यादि) उत्तरा प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा मधुरोमनोज्ञउल्लापआलापयेषाते तथाविधा· पुत्रास्ते तव तातपुत्र क्षुल्लकालघव । तथा भार्यापत्नी ते नवा प्रत्यग्रयौवना अतिनवोढा वा मासौ त्वया परित्यक्ता सत्यन्य जन गच्छेदुन्मार्गयायिनी स्यादय च महाजनापवादइति ॥ ५ ॥ अपिच । (एहीत्यादि) जानीमोवय यथा त्व कर्मभीरुस्तथाप्येहि आगच्छ गृह यामोगच्छाम । मात्व किमपि साप्रत कर्मकुथा अपितु तव कर्मण्युपस्थिते वय सहायकाभविष्याम साहाय्यं करिष्याम । एकवार तावद्गृहकर्मनिर्भग्नस्त्व तात पुनरपि द्वितीयवार पश्यामोऽद्दयामोयदस्माभि: सहायैर्भवतोभविष्यतीत्यतोयामोगच्छामस्तावत् स्वकं गृह कुर्वे तदस्मद्वचनमिति ॥ ६

कटिमस्थानीयं(णूमति) प्रछन्न गिरिगुहादिक किमित्यसावेवमवलोकयति । यत एव मन्य ते । तत्रैवभूते तुमुले संग्रामे सुभटसकुले कोजानाति कस्यात्र पराजयोभविष्यतीति यतो दैवायत्ता कार्यसिद्धयस्तोकेऽपि बहवोजीयतइति ॥ १ ॥ किंच (मुहुत्ताणमित्यादि) मु हूर्त्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्यापरोमुहूर्त कालविशेषलक्षणोवसरस्तादृग्भवति यत्रजय प राजयोवा सम्भाव्यते तत्रैव व्यवस्थिते पराजितावयमपसर्पामोनश्यामऽत्येतदपि सम्भाव्य ते अस्मद्विधानामिति भीरु पृष्ठतआपत्प्रतीकारार्थं शरणमुपेक्षते ॥ २ ॥

एव तु समणा एगे, अबलं नच्चाण अप्पगं ॥ अणागयं भय दि
स्स, अविकप्पंति मसुय ॥३॥ कोजाणइ विउवात, इत्थीउ उदगा
उवा ॥ चोइज्जंता पवक्खामो, णणो अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

अर्थ-हवे एपूर्वोक्तदृष्टांत कायर साधु साथे मेलविएछेए एवतु के० एरीते समणाए गे के० कोइएक श्रमण प्रव्रजित अल्प सत्वना धणी ते अप्पगं के० पोताने विषे अ बल के० अबलपणु एटले सयमरुप भार वहेवाने जाव जीवसुधी पोताने विषे असम र्थ पणु नच्चाण के० जाणीने अणागयंभय के० अनागत एटले आगमिक कालनो भ य दिस्सके० देखीने, एटले आगल वृद्धावस्थाये तथा ग्लानावस्थाये तथा दुर्भिक्षने वि षे मने शु त्राण शरण थशे अविकप्पतिमसुयके० एवी कल्पना करीने ठेरावकरे के मने व्या कर्ण,ज्योतिष, वैद्यकादिक त्राण शरण थशे माटे तेवा शास्त्रो भणे ॥३॥ कोजाणइके० कोण जाणे विउवातं के० मुजने केवा कारण थकी सयमनो भ्रंस थशे इत्थीउके० स्त्रीथकी थसे उदगाउवाके० किंवा उदक एटले सचित्तपाणीना परिभोग थकीथशे, केमके कर्मनी वि चित्र गतिछे णणोअत्थिपकप्पियके० प्रकल्पित पूर्वोपार्जित द्रव्य नथी जे ते समय म ने काम आवे, तो तेवखते चोइज्जंताके० कोइये अमने पूछया थका पवक्खामो के० व्याकर्णादिक कहिसु एरीते चिंतवन करी ज्योतिषादिकने विषे यत्न करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका-श्लोकद्वयेन दृष्टांत प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं पूर्वोक्तदृ ष्टांतेन श्रमणाएके अल्पसत्वाआत्मानमबलं संयमभारवहनाक्षम ज्ञात्वाऽनागतमेव भय दृष्ट्वा इदंव्याकरण गणितं ज्योतिष्कं वैद्यकं मन्त्रादिकं वा श्रुतमधीतं मम त्राणाय स्यादि ति अविकल्पते मन्यते ॥ ३ ॥ (कोजाणइति) कोजानाति व्यापातं संयमाद्भ्रंश । के न पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंश स्यादिति। किंस्त्रीत किंवा उदकात् स्नानाद्यर्थमुदकसेवना भिलाषात् इत्येवं ते वराकामन्यते ननो ऽस्माकं किंचित्प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितं द्रव्यम स्ति यत्तस्या दुःखावस्थाया कार्यं ममेति । अतश्चोद्यमाना परेण पृच्छ्यमानावयं हस्तिशि

इच्चेव ण सुसेहंति, कालुणीयसमुठिया ॥ विबद्धो नायसंगेहिं, ततो गार पहावइ ॥ ९ ॥ जहा रुक्खं वणे जायं, मालुया पडिबंधई ॥ एव णं पडिबंधंति, णातओ असमाहिणा ॥ १० ॥

अर्थ—इच्चेवके० एरीते वचनेकरी, णइति वाक्यालंकारे ते सर्व पुत्रादिक सुके० रुडीरीते सेहंति के० शीखवे कालुणीय के० करुणाकारे एवावचने समुठिया के० पोते ते पुत्रादिक दीनपणाने जावे पोंहोच्या थता, एम पूर्वोक्त रीते कहे, तेथी ते नायसंगेहिं के० ते ज्ञाति गोत्रीजे पुत्रादिक तेना संगे करी, विबद्धो के० बांध्योथको ततोके० तेवारे ते अल्प सत्ववंत कायर साधु, तेमना वचने मोहित थयो थको आगारपहावइ के० आगार जणी धावे, एटले घरवास सामीने संयमने छांडे ॥ ९ ॥ पछी जहा के० जेम वणेजायं के० वनने विषे उत्पन्न थयु एवुजे रुख के० वृक्ष ते मालुया के० वेलडीओ तेणेकरी पडिबंधई के० बंधाय, एटले वेलडीये करी वींटाय, एव के० एम णइति वाक्यालंकारे णातओ के० ज्ञाति स्वजनादिक जे छे ते साधुने असमाहिणा के० असमाधियेकरी पडिबंधंति के० बांधीजीये संयमथकी भ्रष्ट करे इत्यर्थ ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(इच्चेवेति) णवाक्यालंकारे । इत्येव पूर्वोक्तनीत्या स्वजना करुणामुत्पादयंतीति कारुणिका समुपस्थिता प्राप्तास्तं साधु (सुसेहंति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचाऽपरिणतधर्माऽल्पसत्वोगुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमोहितस्ततोऽगारगृहं (पधावइत्ति) प्रव्रज्या त्यक्त्वा गृहे यातीत्यर्थ ॥ ९ ॥ (जहेति) यथा वनं वने वृक्षं मालुयावल्ली प्रबध्नाति वेष्टयति । एव ज्ञातयस्तं साधुमसमाधिना प्रतिबध्नंति । तत्कुर्वंति येनान्याऽसमाधिरुत्पद्यते । यदुक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासो गईजाइ, दोण्णिगइसुडग्गइ इति ॥ १० ॥

॥टीका—उपसंहारार्थमाह (इच्चेवणमित्यादि)।णमितिवाक्यालंकारे।इत्येव पूर्वोक्तया नीत्या मातापित्रादय कारुणिकैर्वचोभि करुणामुत्पादयंत स्वयवा दैन्यमुपस्थितास्तं प्रव्रजितं प्रव्रजंतं वा ॥ (सुसेहंतित्ति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । नचापरिणतधर्माऽल्पसत्वो गुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमातापितृपुत्रकलत्रादिमोहितस्ततोगार गृहं प्रति धावति प्रव्र- परित्यज्य गृहपाशमनुबध्नातीति ॥९॥ किंचान्यत् । (जहारुक्खमित्यादि) । यथा ने अटव्यां जातमुत्पन्नं मालुयावल्ली प्रतिबध्नाति वेष्टयत्येव । णमितिवाक्या ज्ञातय स्वजनास्तं यतिं असमाधिना प्रतिबध्नंति ते तत्कुर्वंति येनान्यासमा । तथा चोक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण, कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्त सोगई [illegible] ग्गइ ॥ १० ॥

चित्तना अस्थिरपणाने पोहोता थका, मनमां विचार करे के, शु जाणीये, अमे जाव जीव सुधी संयम पाली शकशु, किंवा नही पाली शकशु, कोनीपेरे तोके पथाणचके० जेम मार्गने विषे अकोविायाके० अनिपुण एवापुरुषो मार्ग देखी संदेहमा पडे, के शुं जाणीये एमार्ग अमुक स्थानके जशे किंवा नही जाय, ॥५॥ हवे माहापुरुषनी स्थिति कहेछे जे चके० जे महासत्ववंत मोहोटा पुरुष नाता के० ज्ञात लोकोमाहे प्रसिद्ध अने सूरपुरं गमा के० शूरवीर पुरुषोमां अग्रेसर, एटले आगेवान एरीते प्रसिद्ध थयेलाछे ते संगा मकालंमि के० संग्रामकालने अवसरे, णोतेपिट्ठमुवेहिंति के० पाछु न जुवे, एटले ना सी जवानुं स्थानक जूए नही, किंपरमरणसियाके० ते एम जाणे जे आपणने मरण तो साश्वतछे एटले क्यारेपण मरवु तो आवश्यछे नासी जइशु तो, अमारो यश जतो रेशे, ते कारण माटे आ संग्राममनेविषे अमे मरण पामीशु पण अमारो यश अखंडित राखीशु ॥६॥

॥ दीपिका–(इच्चेवेति) इत्येव पूर्वं प्रकारेण यथा नीरव संग्रामे प्रासावलयादि स्थानसमुपेक्षिण स्युस्तथा प्रव्रजिताअपिआजीविकानयाद्व्याकरणगणितादिकं जी वनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षते परिकल्पयति । किंजूता । विचिकित्सा चित्तविप्लुति किंमे न संयम वयं समर्थाचत नेत्येवरूपा । यडुक्त । लुस्कमणुएहमत्तियय, कालाइक्क तसोयण विरस ॥ नूमीसयण लोच, असिणाण बंजचेरच ॥ १ ॥ तां समापन्ना प्राप्ता । यथा प थान प्रत्यकोविदाअनिपुणा किंमय पथा इष्ट देश यास्यति नवेति कृतचित्तसंदेहा स्यु । तथा ते संयमनारवहने संदेह प्राप्ता । यथानिमित्तादिकं जीविकार्थं परिकल्पयंति ॥ ५ ॥ (जेवसगेति) ये पुनर्महासत्वा । तुर्विशेषणे । संग्रामकाले ज्ञाता प्रसिद्धा शूरा णां पुरंगमा पुरोगामिन सुजटाग्रवर्तिनस्ते पृष्ठ नप्रेक्षते नाशस्थान नविलोकयंति किं त्वेव मन्यंते यदत्रास्माकं किमपर मरणमेव स्यात् जवतु मरण यशोमायातु । यडुक्त । वि शरारुनिरविनश्वरमतिचपलै स्यास्नुवाछतां विशद ॥ प्राणैर्यदिशूराणा, जवति यश किं न पर्याप्तमिति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उपसंहारार्थमाह । (इच्चेवमित्यादि) । इत्येवमिति पूर्वप्रक्रातपरामर्शार्थे । यथा नीरव संग्रामे प्रविविक्षवोवलयादिकं प्रत्युपेक्षिणोनवतीत्येव तेपि प्रव्रजिता मदनाग्यतया अल्पसत्वात्आजीविकानयाद्व्याकरणादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षते परिकल्पयंति । किंनता विचिकित्सा चित्तविप्लुति किंमेन संयमनारमुत्क्षिप्तमंत नेतु वयं समर्था उतनेतीत्येव नूता । तथाचोक्त । लुस्कमणुएहमणियय, कालाइक्क तनोयण वि रस । नूमीसयणलोउ असिणाण बनचेरच ॥१॥ता समापन्ना समागता । यथा पथान प्र त्यकोविदाअनिपुणा किंमय पथा विवक्षितं नूनाग यास्यत्युत नेतीत्येव कृतचित्तविप्लुत

एते पूर्वोक्ता सज्यतऽति सगा मातृपित्रादिसबंधा कर्मोपादानहेतव मनुष्याणां। पाताला इव समुद्राइवाप्रतिष्ठितनूमितलत्वात् ते (अताग्मित्ति) डुस्तराएवमेतेपि सगाअटपस त्वैर्ड खेनातिलंघ्यते । तत्रच येषु सगेषु क्लीबाअसमर्था क्लिश्यंति क्लेशमनुनवति स सारातर्वर्तिनोजवतीत्यर्थ । किंनूता ज्ञातिसगे पुत्रादिसंवधैर्मूर्छितागृध्दाअध्युपपन्ना सतोन पर्यालोचयत्यात्मान ससारातर्वर्तिनमेव क्लिश्यति ॥ १२ ॥

त च निक्खू परिन्नाय, सवे सगा महासवा ॥ जीविय नाव कखि
ज्जा, सोच्चा धम्ममणुत्तर ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा, कास
वेणं पवेइया ॥ बुद्धा जञ वसप्पति, सीयति अबुद्दा जहि ॥१४॥

अर्थ–तचके० तेमाटे निक्खूके० जे साधु होय ते ज्ञाती स्वजनादिकना समागमने परिन्नाय के० ज्ञ परिज्ञाये करी ससारनु कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे केमके, ए सर्वसगा के० समस्त समागमो जे ठे ते महासवा के० महाश्रव महोटा कर्मोना स्थानको जाणवा ते कारण माटे जीवियनावकखिज्जा के० अनुकूल उपसर्गआवे थके पण, असयमे जीवितव्य वाठे नही, एटले गृहस्थावासनी वाठा साधु करे नही; शु करीने तो के अणुत्तर के० अनुत्तर एटले प्रधान एवो धम्म के० श्रीजिनधर्म तेने सोच्चा के० सांनलीने असयम वाठे नही ॥ १३ ॥ अहके० अथ एटले हवे अथवा पाठांतरे अहो इति विस्मये इमेके० ए प्रत्यक्ष समस्त जन प्रसिद्ध सति के० ठे एवा आवट्टा के० आवर्त एटले जेम नदीने विषे पाणीना आवर्त होय, तेम अही उत्कृष्ट मोहनीयना उदय थकी उत्पन्न थया जे विषयानिलाषरूप आवर्त, ते जीवने संसार माहे बुडवाना स्थानक जाणवा ए कासवेण के० काश्यपगोत्री श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे पवेइया के० प्रवेदिता एटले कह्या ठे जञ के० जे थकी बुद्धा के० पण्डित तत्वना जाण ते अवसप्पंति के० दूर थाय ठे , अने अबुद्दा के० अबुद्ध एटले अज्ञानी लोक ते जहि के० जे आवर्त्तने विषे सीयंति के० सदाय भ्रममा पडीने बुडेठे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(तंचेति) तंच निक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्यानपरिज्ञया परिहरेत् । यत सर्वे संगामहाश्रवा कर्मबंधहेतवस्ततोऽसयमजीवितं नावकाङ्क्षेत नानिलषेत् श्रुत्वा धर्ममनुत्तर प्रधान ॥ १३ ॥ (अहिमेइति) । अथ इमे आवर्तामोहपाशा सति काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदिता कथिता. । यत्र येषु सगेषु सत्सु बुधास्तत्वज्ञाअपसर्पंति तद्दूरगामिन स्यु । अबुधाअज्ञास्तु तत्र सीदति आसक्ता. स्यु ॥ १४ ॥

॥टीका–अपिच । (तंचेत्यादि) । तंच ज्ञातिसगं ससारैकहेतु निक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यान

तंत इति ॥ ७ ॥ अध्यात्मविषीदनाधिकारोगत अथ परवादिवचनाधिकारमाह । (त मेगइति) एके परवादिन साधु भिक्षु साधु शोभन जीवितु शीलमस्य सतथा तं एव परि भाषते । ये ते पुष्टधर्माणोगोशालकमतानुगता आजीविकादिगंबरावा ये ते एव वक्ष्यमा ण परिभाषते साधु निंदति ते अंतके पर्यंते समा धेर्मोक्षाद्दाइति शेष ॥ ८ ॥

॥ टीका–तदेव सुभटदृष्टांत प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) यथा सुभटाज्ञा तगेनामत कुलत शौर्यत शिक्षातश्च तथा सन्निबद्धपरिकरा करगृहीतहेतय प्रतिभ टसमितिभेदिनोन पृष्ठतोवलोकयति । एव भिक्षुरपि साधुरपि महासत्त्व परलोकप्रति स्पर्धिनमिंद्रियकषायादिकमरिवर्ग जेतु सम्यक् संयमोत्थानेनोत्थित समुत्थित । तथा चोक्तं । कोह माण च मायंच लोह पचेंदियाणिय । दुज्जय चेवमप्पाण सव्वमप्पेजिएजि य ॥ किं कृत्वा समुत्थितइति दर्शयति । व्युत्सृज्य त्यक्त्वा अगारबंधन गृहपाशं तथा आर भ सावद्यानुष्ठानरूप तिर्यक्कृत्वाऽपहस्तयित्वात्मनोभावआत्मत्वमशेषकर्मकलंकरहित त्वं तस्मै आत्मत्वाय । यदिवा आत्मा मोक्ष संयमोवा तद्भावस्तस्मै तदर्थ परिसमताद्व्रजेत् संयमानुष्ठानक्रियायां दत्तावधानोभवेदित्यर्थ ॥ ७ ॥ निर्युक्तौ यदभिहितम ध्यात्मविषी दन तदुक्तमिदानीं परवादिवचन द्वितीयमर्थाधिकारमधिकृत्याह । (तमेगेइत्यादि) तमिति । साधुमेके ये परस्परोपकाररहित दर्शनमापन्नाअथ शलाशकटपास्ते च गोशालक मतानुसारिणआजीविकादिगंबरावा तएव वक्ष्यमाण परिभमताज्ञापते । त भिक्षुक सा ध्वाचार साधु शोभन परोपकारपूर्वक जीवितु शीलमस्य ससाधुजीविनमिति । ये ते ऽपुष्ट धर्माणएव वक्ष्यमाण परिभाषते साध्वाचारनिंदा विदधति तएव भूताअंतके पर्यंते दूरे समाधे मोक्षाख्यात्सम्यक् ध्यानात्सदनुष्ठानात् वा वर्ततइति ॥ ८ ॥

संबद्ध मम कप्पाउ, अन्न मन्नेसु मुछिया ॥ पिन्डवायगिलाण
स्स, ज सारेह दलाहय ॥ ९ ॥ एवं तुभे सरागत्था, अन्न मन्न
मणुवसा ॥ नठसप्पह सप्भावा, ससारस्स अपारगा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे ते गोसालकादिक मतानुसारी जे कहे ते देखाडेछे संबद्धसमकप्पाउ के० निश्चयथकी ग्रहस्थ समान तमारो कल्प एटले आचारछे, अर्थात् तमे मोहे करी बधाणाछो अन्नमन्नेसु के० जेम ग्रहस्थ अन्योअन्य परस्पर माहोमाहे मातापितादिकनी सार सभाल करे तेम तमे पण माहोमाहे आचार्यादिक उपर मुछिया के० मुर्छित थयेला छो ते केवीरीते मुर्छितछो ते देखाडे छे पिन्डवाय गिलाणस्स के० पिन्ड एटले भिक्षा ते गिलाण एटले रोगीने अर्थे जके० जेमाटे सारेह के० गवेषो छो दलाहय के० भिक्षा आणी आपोछो च शब्द थकी गुर्वादिकनो वैयावच्च करोछो तेमाटे तमे गृहस्थ

(हयस्सेति)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथा विहारगमनैः क्रीडागमनैः साधु निमन्त्रयतीति। य था। त्वं भुंक्ष्व भोगान् इमान् श्लाघ्यान् हे महर्षे वयं त्वां पूजयामः सत्कारयामः ॥१६॥

॥ टीका–तानेवावर्त्तान् दर्शयितुमाह। (रायाणोइत्यादि)। राजानश्चक्रवर्त्यादयो राजामात्याश्च मन्त्रीपुरोहितप्रभृतयस्तथा ब्राह्मणाश्चथवा क्षत्रियाइक्ष्वाकुवंशप्रभृतय। एते सर्वेपि भोगैः शब्दादिविषयैर्निमन्त्रयन्ति भोगोपभोगं प्रत्यभ्युपगमं कारयन्ति कं भिक्षु कं (साधुजीविणमिति)। साध्वाचारेण जीवितुं शीलमस्येति साधुजीविनमिति। यथा ब्र ह्मदत्तचक्रवर्त्तिना नानाविधैर्भोगैश्चित्रसाधुरुपनिमन्त्रितइत्येवमन्येपि केनचित्तत्संधेन व्य वस्थितायौवनरूपादिगुणोपेतं साधुं विषयाद्देशेनोपनिमन्त्रयेयुरिति ॥ १५ ॥ एतदेव द र्शयितुमाह। (हयरसरहेत्यादि)। हस्त्यश्वरथयानस्तथाविहारगमनैः विहरणं क्रीडनं विहारस्तेन गमनान्युद्यानादौ क्रीडया गमनानीत्यर्थः। चशब्दादन्यैर्वेन्द्रियानुकूलैर्विषयैरुप निमन्त्रयेरस्तद्यथा भुवि भोगान् शब्दादिविषयानिमानस्माभिर्ढौकितान् प्रत्यक्षासन्नान् श्लाघ्यान् प्रशस्तान् ननिवान् महर्षेसाधो वयं विषयोपकरणढौकनेन त्वां भवन्तं पूज याम सत्कारयामइति ॥ १६ ॥

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीउ सयणाणिय ॥ भुंजाहि माइं भोगाइं,
आउसो पूजयामुतं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिन्नो, भिक्खुभावं
मि सुव्वया ॥ अगारमावसतस्स, सव्वो संविज्जए तहा ॥ १८ ॥

अर्थ–वत्थं वस्त्र के० वस्त्र भीना विना चीन अंशुकादिक अने गंध के० गंध ते कपूरादिक तथा अलंकार के० आभूषण ते केयूरादिक तथा इत्थीउ के० स्त्री ने नवयौ वना अने सयणाणिय के० शयन ते पर्यंकतूलिकादिक भुंजाहिमाइंभोगाइं के० इत्या दिक ए प्रत्यक्ष भोग भोगवो, आउसो के० अहो आयुष्मन साधु प्रजयामुतं के० एह ले प्रकारे करी अमे तमने पूजीये छैये ॥ १७ ॥ जोतुमे नियमोचिन्नो के० अहो साधु जो तमे पूर्वं महाव्रतादिकरूप नियम आचर्योछे, भिक्खुभावंमि के० ते भिक्षुने भावे संयमने अवसरे आचर्योछे, सुव्वया के० हे सुव्रति अगारमावसतस्स के० ते आगार गृहस्थावासे वसता पण सव्वो संविज्जएतहा के० सरजो तेमजछे सुकृत अथवा दुष्क त जे करवां तेनो नाश नथी ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वत्थेति), वस्त्राणि गंधा सुगन्धचूर्णानि वस्त्रगंधं अलंकारं केयूराद्याभरणं त था स्त्रियं शयनानि पर्यंकादीनि इमान्भोगास्त्वं भुंक्ष्व। हेआयुष्मन् त्वां एभि पूजयामः ॥१७॥ (जोतुमेति) यस्त्वयापूर्वं भिक्षुभाव नियमोमहाव्रतरूपश्चीर्णोऽनुष्ठित अगारं गृह आवसतस्तव सर्वोपि विद्यते नहि सुकृतस्याऽनुचीर्णस्य नाशोस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

अह ते परिजासेज्जा, भिक्खू मोक्खविसारए ॥ एवं तुब्भे पभासं ता, डुपक्खं चेव सेवह ॥११॥ तुब्भे भुंजह पाएसु, गिलाणो अ भिहडमिया ॥ तच बीउदगं भोच्चा, तमुद्दिस्सादिजकडं ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते अन्य तीर्थिंने साधु उत्तर आपेठे अह के० अथ एवु कह्या नतर तेके० ते असाधु प्रत्ये परिजासेज्जा के० साधु एवीरीते बोले परंतुते बोलनार भिक्खू के० साधु केवाछे तो के मोक्खविसारए के० मोक्षमार्गना विशारद एटले जाण ते अ साधु प्रत्ये कहेछेके एवके० एम पूर्वोक्त न्याये तुब्भेके० अहो तुमे पभासंताके०एम बो लता थका डुपक्खचेव के० निश्चे थकी बे पक्षने सेवह के० सेवो ठो एटले रागद्वेषरूप बन्ने पक्षने सेवोठो कारण के एकतो पोते अनाचारी ठो सदोष पक्षीठो माटे अने बी जा निर्दोषी साधुना निंदकठो माटे बेहु पक्षना सेवनारठो अथवा बीज उदक उद्देशि कादिक भोगवता गृहस्थ समानठो अने लिंग ग्रहण कर्यु माटे यति समान देखवा मात्रठो एम बन्ने पक्षने सेवोठो ॥ ११ ॥ हवे आजीविकादिक परतीर्थिकोनो आचार कही देखाडेछे तुब्भे के० तमे एम कहोठो के अमे नि कचन छैये अने तमे जे भुंजह के० भोगवोठो तेपण पाएसु के० कांशादिक धातुना जे गृहस्थना पात्र तेने विषे भोजन करोठो तेमाटे तमे सपरिग्रहीठो तथा आहारादिकनी मूर्छा करोठो माटे नि परिग्रहि शीरीते थशो वली गिलाणो के० गिलानने अर्थे भिक्षा अटनने विषे असमर्थ छतां अभिहडमियाके०गृहस्थने हाथे आणी देवाडोठो तचके०तेहिज दोष देखाडेछे बीउद गके० जे गृहस्थे बीज अने उदकनु मर्दन करीने तमुद्दिस्सादिजकड के०ते ग्लानने अर्थे उद्देशीने जे आहार नीपजाव्यो तेने भोच्चाके० भोगववा थकी तमने दोष लागेछे॥१२

॥ दीपिका—अथात्रपूर्वपक्षे दोषमाह । (अहतेइति) । अथ तान् परवादिनएवमुपस्थि तान् भिक्षु परिभाषेत ब्रूयात् । किंभूतोभिक्षु मोक्षविशारद ।एव यूय प्रभाषमाणाडुप्पक्ष डष्ट पक्षं सेवध्व । यद्वा द्विपक्ष रागद्वेषात्मकं पक्षद्वय सेवध्व । तथाहि । सदोषेपि स्व मते राग । निर्दोषेप्यस्मन्मते द्वेष । अथवा बीजोदकोद्दिष्टादिभोजित्वाद्गृहस्थायूयं यतिलिंगांगीकाराच्च प्रव्रजिताइतिपक्षद्वय ॥ ११ ॥ परमतीनामसदाचार दर्शयति । (तु ब्भेति) हेपरमतिनोयूय पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिगृहस्थभाजनेषु भुग्ध्व भोजन कुरुध्व। तत कथ निष्परिग्रहा ।तथा ग्लानस्य भिक्षाटनं कर्तुमसमर्थस्य यदपरैर्गृहस्थैरभ्याहृतं कार्यते भवद्भि यतेरानयनाधिकाराभावात् । तदृष्ट भवता यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देन निष्पा दितमाहार भुक्त्वा ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादियत्कृतं यन्निष्पादित तदवश्य युष्मत्परिभोगाय

वर्तयितुमशक्नुवतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति शीतलविहारिण स्यु । यथा उद्याने क ध्वस्थजनूमौ उत्क्षिप्तमहाभाराबलीवर्दाअतिदुर्बला सीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठं त्येव साधवोपि ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (चिरमित्यादि)। चिरं प्रनूतकालं संयमानुष्ठानेन (डुझ्ज्जमाणस्सत्ति) विहरंत सततइदानीं सांप्रत दोष कुतस्तव नैवास्तीति नाव । इत्येव हस्त्यश्वरथादि निर्वस्त्रगंधालंकारादिनिश्च नानाविधैरुपनोगोपकरणै करणनूतै । णमितिवाक्यालंकारे । तं निक्षु साधुजीविनं निमंत्रयति नोगबुद्धिं कारयति । दृष्टांत प्रदर्शयति । यथा नीवारे ण व्रीहिविशेषकणदानेन सूकरं वराहं कूटके प्रवेशयत्येव तमपि साधुमपि ॥ १९ ॥ अनंतरोपन्यस्तवार्तोपसंहारार्थमाह । (चोदिताइत्यादि) । निक्षूणा साधूनामुद्युक्तवि हारिणा चर्या दशविधचक्रवालसामाचारी इहामिवेत्यादिका तया नोदिता प्रेरिता । यदि वानिक्षुचर्यया करणनूतया सीदंतश्चोदितास्तत्करणं प्रत्याचार्यादिकै पौन पुन्येन प्रेरितास्त ञ्चोदनामशक्नुवंत संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं वर्तयितुमसमर्था संतस्तत्र तस्मिन् संयमे मोक्षैकगमनहेतौ नवकोटिशतावाप्तैर्मंदाजडाविषीदंति शीतलविहारिणोनव ति तमेवाचिंत्यचिंतामणिकल्पं महापुरुषानुचीर्णं संयमं परित्यजंति । दृष्टांतमाह । क ध्वेपानमुत्थान । मार्गस्योन्नतोनागउछकमित्यर्थ । तस्मिन् उद्यानशिरसि उत्क्षिप्तमहाभरा वहाणीतिदुर्बलायथावसीदंति ग्रीवा पातयित्वा तिष्ठति नोत्क्षिप्तनरनिर्वाहकानवतीत्येव तेपि नावमंदाउत्क्षिप्तपंचमहाव्रतनारं वोढुमसमर्था पूर्वोक्तनवावर्तै पराजग्राविषीदंति२०

अचयंतावलूहेण, उवहाणेण तज्जिया ॥ तत्र मंदा विसीयंति, उ ज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं निमंतिए लधुं, मुच्छिया गिद्ध इ त्थीसु ॥ अझोववन्ना कामेहिं, चोइज्जंता गयागिहं तिबेमि ॥२२॥ इति उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देसो सम्मत्तो ॥ २ ॥

अर्थ–एरीते अचयंतावलूहेण के० संयमने निर्वाह करवा अशक्त, तथा उवहा णेण के० बाह्याभ्यंतर तपे करीने तज्जिया के० पीड्या थता नथ के० ते संयमने विषे, मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी विसीयंति के० सीदाय कोनीपेरे तोके उज्जाणंसि के० जेम उद्यान एटले उर्ध्वस्थलनूमिने मस्तके आवे तेवारे जरग्गवा के० गरढो फोकरो वृषन सीदाय, अने नारनी पीडाय पीड्या थको तो तरुण बलद पण सीदाय तो जर ठव एटले फोकरो बलद सीदाय तेमां केवुंजकहुं, ॥२१॥ एवंनिमंतिएलधुं के० ए पूर्वो क्तरीते कामनोगादिके करी निमंत्रण लेइने ते कामनोगने विषे मुच्छिया के० मूर्छित थता

खरु ठेरावबु एवी जेनी प्रतिज्ञा नथी ते अप्रतिज्ञ रागद्वेष रहित तथा जाणया के०, जाणते एवे सयत तत्वे सहित तेने हेयोपादेय परमार्थ जाण्याविना तत्तेण अणुसि ह्वाते के० परमार्थ करीने ते असाधु ठे एम तेना मार्गने दोष देखाडवानु तमने कोणे शिखव्यु णएसणीयएमग्गेके० माटे अहो तुमारो उपमार्ग ते निश्चय मलनो नथी जे कारणे गिलानने अशनादिक आपे ते गृहस्थ समान जाणवा एवो तमे कहोठो परंतु ए असमिरकावत्ती के० अणआलोच्याना बोलनारनु कत्ती के० जे कर्तव्य अनुष्ठान ते पण अणआलोच्योज देखायठे ॥ १४ ॥

॥दीपिका–(लित्तेति) तीव्रतापेन साधुनिंदारूपेण लिप्ताव्याप्ता (उज्झयेति)निर्विवेकाउद्देश कादिनोजित्वात् असमाहिता शुनाध्यवसायरहिता । दृष्टांतमाह । यथाऽरुपोव्रणस्याति कंडूयितं नश्रेय किंतु अपराध्यति दोषकरोति एव यूयमपि निर्विवेका वयं किल निष्किंच नाइति रुत्वा काम्य पात्रादिक परिहृत्यैतदनावादवश्यमशुद्धाहारपरिनोगकारिण निष्किं चनत्वात्पात्रादिपरिहारोनश्रेयो व्रणस्यातिकंडूयितमिव॥१३॥ (तत्तेणेति) ते गोशालम तानुसारिणआजीविकादयोदिगंबरावा तत्वेनाऽनुशासिता शिक्षाग्राहिता केन अप्रतिज्ञेन इदंमया समर्थनीयमिति प्रतिज्ञा सा नास्ति यस्याऽसावप्रतिज्ञोरागद्वेषरहित साधुस्तेन जा नताज्ञानवता । कथमनुशिष्टाइत्याह । (णएसेति) ।योनवद्भिरंगीरुत सनियतोन युक्ति क्षमोमार्गं । याच साधुनिंदा वाक् सा समीक्ष्योक्ता आचार्यकथिता। तथारुति क्रिया प्यविचाररम्यैव ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (लित्ताइत्यादि) यूयं षट्जीवनिकायविराधनयोद्दिष्टनोजित्वेना निगृहीतमिथ्यादृष्टितया च साधुपरिनाषणेन च तीव्रोनिताप कर्मबंधरूपस्तेनोपलिप्ता सवेष्टितास्तथा -(उज्झयत्ति) सद्विवेकशून्यानिक्षापात्रादित्यागात्परगृहनोजितयोद्देशकादि नोजित्वात् । तथा असमाहिता शुनाध्यवसायरहिता सत्साधुप्रद्वेषित्वात् । साम्प्रतं दृ ष्टांतद्वारेण पुनरपि तद्दोषानिधित्सयाह। यथाऽरुपोव्रणस्यातिकंडूयित नखैर्विलेखन नश्रे योनशोनन नवति । अपित्वपराध्यति तत्कंडूयन व्रणस्य दोषमावहति । एव नवतोपि सद्विवेकरहिता वय किल निष्किंचनाइत्येव निष्परिग्रहतया षट्जीवनिकायरक्षणनूत निक्षापात्रादिकमपि सयमोपकरण परिहृतवत । तदनावाच्चावश्य नावी अशुद्धाहारपरि नोगइत्येव इव्यक्षेत्रकालनावानपेक्षणेन नातिकंडूयित श्रेयोनवतीति नाव ॥१३॥ अपि च । (तत्तेणेत्यादि) तत्वेन परमार्थेन मौनीड्ानिप्रायेण यथावस्थितार्थप्ररूपणया ते गो शालकमतानुसारिणआजीविकादय कोटिकाअनुशासितास्तदभ्युपगमदोषदर्शन द्वारेण शिक्षाग्राहिता । केनाप्रतिज्ञेन । नास्य मयेदमसदपि समर्थनीयमित्येव प्रतिज्ञा विद्यते

अर्थ—जहासंगामकालंमि के० जेम संग्रामनो काल आवे छते, जीरु के० कोइएक बीकणो पुरुष पिछतोके० पाछो वेहईके० जूए, एटले बीकण मनुष्य संग्रामने काले प्रथमथीज प्रतिकार कारण डुर्ग प्रछन्न स्थानक नासवानें अर्थे जूए, ते स्थानक देखाडेछे, वलय के० वलयाकारे उदक रहित एवी गर्तातें डुर्गम होय अथवा जेमा पेसता,तथा नीकलतां गहणके० गहन होय, एटले वृक्षे करी व्याप्त होय अने णूम के० प्रछन्न एवा जे गिरि गुफादिक तेनु अवलोकन नासवाने अर्थे करे तेनु कारण मनमां आवीरीते चिंतवे जे, कोजाणइपराजय के० कोण जाणे एवा संग्रामने विषे कोनो जय पराजय थशे, कार्यसिद्धि दैवायत्तछे, थोडा होय ते घणाने पण जीतीशकेछे ॥ १ ॥ मुहुत्ताण मुहुत्तस्स के० मुहूर्त्त जोवामा कोइएक मुहूर्त्त मुहुत्तोहोऽतारिसो के० अपर अन्य मुहूर्त्त काल विशेष लक्षण तेवु होय त्या एवो प्रस्ताव आवेके पराजियाके० त्या जीवने जय पणुं थाय अथवा पराजय पणुं पण थाय तेवारे नासीजइने ए स्थानको मने छुपीरेवाने काम आवशे इतिके० एवा स्वरूपे अवसप्पामोके० पराजयने अवसरे कदाचित् संग्रामथकी नासीने पाछा आववु पडे तेवारे शी गति थाय, तेमाटे जीरु के० बीकण सुजट ते नासवानु स्थानक उवेहती के० प्रथमथीज मनमा चिंतवी राखे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयोद्देशक प्रारभ्यते । पूर्वोद्देशकयोरनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाउक्ता स्तैश्चाध्यात्मविषाद स्यादिति। अत्रोच्यते। (जहेति) यथा संग्रामकाले कश्चिद्भीरु परानीकयुद्धावसरे पृष्ठत प्रेक्षते नाशस्थान वाऽऽलोकते। वलय यत्रोदक वलयाकारेणस्थितं उदकरहिता वा गर्ता गहन धवादिवृक्षावृतं स्थान णूम प्रछन्नगिरिगुहादिकमित्यादिस्थानं नाशहेतोरालोकते । यत कोजानाति पराजय कस्य जय पराजयोवा भावीति कोवेत्ति दैवायत्ता कार्यसिद्धय ॥ १ ॥ किंच । (मुहुत्तंति) मुहूर्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्याऽपरो मुहूर्त कालविशेषस्तादृशोभवति । यत्र जय पराजयोवास्यात् । एव सति पराजितावयमवसर्पामइति भीरुरुपेक्षते शरणमपीति ॥ २ ॥

॥ टीका—उपसर्गपरिज्ञाया उक्तोद्वितीयोद्देशक साम्प्रतं तृतीय समारभ्यते । अस्यचायमभिसंबंध । इहानतरोद्देशकाभ्यामुपसर्गाअनुकूलप्रतिकूलभेदेनाभिहितास्तैश्चाध्यात्मविषीदन भवतीति तदनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिसूत्र (जहेत्यादि) दृष्टातेन हि मदमतीनासुखेनवार्थावगतिर्भवतीत्यतआदावेव दृष्टातमाह । यथा कश्चिद्भीरुरकृतकरण संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे समुपस्थित पृष्ठत प्रेक्षते आदावेवापत्प्रतीकारहेतुभूतं डुर्गादिकस्थानमवलोकयति। तदेव दर्शयति । वलयमिति । यत्रोदक वलयाकारेण व्यवस्थितमुदकरहितावा गर्ता डु खनिर्गमप्रवेशा तथा गहन धवादिवृक्षै

दृष्टीनिर्युष्मन्मतानुगतानि पूर्वमादौ सर्वज्ञे प्रकटितप्ररूपितमासीत् न हि सर्वज्ञा एवनि धमसार ब्रुवते । यकृद्दस्थैर्ग्लानवैयावृत्त्य कार्यं नतूपयुक्तेन सयतेनेति । ग्लानोपका रोजनैरप्यनुमतोगृहस्थप्रेरणादनुमोदनाच्च ॥ १६ ॥

॥ टीका–यथा प्रतिज्ञातमाह । (एरिसेत्यादि) येयमीदृक्षा वाक् यतिना ग्लानस्यानी य नदेयमित्येषा अग्रे वेणुवंशवत्कर्शिता तन्वी युक्त्यक्षमत्वात् दुर्बलेत्यर्थः । तामेव वा च दर्शयति । गृहिणा गृहस्थाना यदन्याहृत तद्यतेर्नोक्तु श्रेय श्रेयस्कर नतु निक्षूणा सब्रवीति । अग्रे तनुत्वं चास्या वाचएव इष्टव्य । यथा गृहस्थान्याहृत जीवोपमर्देन भव ति यतीनात्कमादि दोषरहितमिति ॥ १५ ॥ किंच । (धम्मपण्णवणेत्यादि) धर्मस्य प्र ज्ञापना देशना यथा यतीना दानादिनोपकर्तव्यमित्येवभूता या सा सारजाणा गृहस्था ना निशोधिकायतयस्त्वनुष्ठानेनैव विशुध्यति । नतु तेषा दानाधिकारोस्तीत्येतत् दूष यितु प्रक्रमते । नतु नैवतानिर्यथागृहस्थेनैव पिण्डदानादिना यतेर्ग्लानाद्यवस्थायामु पकर्तव्य । नतु यतिभिरेव परस्परमित्येवभूतानिर्युष्मदीयानिर्दृष्टिनिर्धर्मप्रज्ञापनादि नि पूर्वमादौ सर्वज्ञै प्रकटित प्ररूपित प्रख्यापितमासीदिति । यतो नहि सर्वज्ञाएव भूत परिफल्गुप्रायमर्थं प्ररूपयति यथा असयतैरेपणाद्यनुपयुक्तैर्ग्लानादेर्वैयावृत्त्य विधे य नतूपयुक्तेन सयतेनेति । अपिच भवद्भिरपि ग्लानोपकारोऽभ्युपगतएव । गृहस्थप्रेरणा दनुमोदनाच्च ततोभवतस्तत्कारिणस्तत्प्रद्वेषिणश्चेत्यापन्नमिति ॥ १६ ॥

सवाहि अणुजुत्तीहि, अचयताजवित्तए ॥ ततो वाय णिराकि
च्चा, ते भुज्जोवि पगप्निए ॥ १७ ॥ रागदोसाभिभूयप्पा, मिच्छत्ते
ण अभिद्दुता ॥ आउस्स सरण जति, टकणाइव पव्वय ॥ १८ ॥

अर्थ–सवाहि के० ते गोसालादिक मतानुसारी अन्य समस्त अणुजुत्तीहि के० अ नुयुक्ति एटले हेतु दृष्टाते करी अचयताजवित्तए के० पोताने पक्षे पोतानो पक्ष स्थापन करवाने असमर्थ थता ततो के० ते माटे वायणिराकिच्चाके० वाद मूकीने तेभुज्जो के० ते फरी फरी विपगभिए के० विशेषे धृष्टपणु करे एटले एम कहेके अमारे जेम पर परागतछे तेज श्रेयछे अन्यथी अमारे काइ काम नथी इत्यादिक कहीने धृष्ट पणु अगी कार करे पण युक्ति पूर्वक जैनमतानुसारीने उत्तर आपी शके नही ॥ १७ ॥ ते रागदो स के० राग अने द्वेषे अभिभूयप्पाके० पराभव्या थका सारी युक्तिये करी प्रत्युत्तर आ पवाने असमर्थ एवा मिच्छत्तेण के० मिथ्यादृष्टिये करीने अभिद्दुता के० व्यापरता आ उस्ससरणजति के० ते अनार्य अनेक आक्रोस एटले असत्य वचने दण्ड मुष्ट्यादिक हण

स्त्राधनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्याम कथयिष्यामइत्येवं हीनसत्वा संप्रधार्य व्याकरणादिव्रणितादौ प्रवर्तंते तथापि तेषां मंदभाग्यानामभिमतार्थोनसिध्यति । यत उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिच्छतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं । न नियतफला कर्तुर्भावा फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीज न जातु यवांकुरं ॥४॥

॥ टीका–इति श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) एवमिति यथा संग्राम प्रवेष्टुमिच्छु पृष्ठतोवलोकयति किमत्र मम पराजयस्य वलयादिकं शरणं त्राणाय स्यादिति ।एवमेव श्रमणा प्रव्रजिताएके केचनाऽदृढमतयोऽल्पसत्वाच्यात्मानं अवलं यावज्जीव संयमभारवहनाऽक्षम ज्ञात्वा अनागतमेव भयं दृष्ट्वोत्प्रेक्ष्य । तद्यथा। निष्किंचनोहं किमम वृद्धावस्थायां ग्लानावस्थायां दुर्भिक्षे वा त्राणाय स्यादित्येवमाजीविकाभयमुत्प्रेक्ष्य विकल्पयति परिकल्पयति मन्यते इदं व्याकरणं गणितं जोतिष्कं वैद्यकं होराशास्त्रं मन्त्रादिकं वा श्रुतमधीत ममाऽवमादौ त्राणाय स्यादिति ॥ ३ ॥ एतच्चैते विकल्पयंतीत्याह । (कोजाणइइत्यादि) अल्पसत्वा प्राणिनोविचित्राच कर्मणा गतिर्बहूनि प्रमादस्थानानि विद्यते अत कोजानाति कः परिछिनत्ति व्यापातं संयमजीवितात् भ्रंशयतं केन पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंश स्यादिति। किंत्वीतं स्त्रीपरिग्रहाडुतोदकात् स्नानाद्यर्थमुदकासेवनाभिलाषादित्येवं तेवराका प्रकल्पयंति । ननोऽस्माकं किंचन प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितद्रव्यजातमस्ति । यत्तस्यामवस्थायामुपयोगे समेत्य यास्यत्यतश्चोद्यमाना परेण दृश्यमानाहस्तिशिक्षा धनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्याम कथयिष्याम प्रयोक्ष्यामइत्येवं ते हीनसत्वा संप्रधार्य व्याकरणादौ श्रुते प्रयततइति, नच तथापि मंदभाग्यानामभिप्रेतार्थावाप्तिर्भवतीति । तथाचोक्तं । उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिच्छतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं ॥ ननियतफला कर्तुर्भावा फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीज न जातु यवांकुरं ॥ ४ ॥

इच्चेव पडिलेहंति, वलया पडिलेहिणो ॥ वितिगिंछसमावन्ना, पथाणंच अकोविया ॥ ५ ॥ जेउ संगामकालंमि, नाया सूरपुरं गमा ॥ णो ते पिठमुवेहिंति, किंपरं मरणंसिया ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उपसंहार करतो कहेछे इच्चेव के० ए जेम पूर्वे कह्या एवा पडिलेहंति के० कायर सुभट जेम बीक पामता थका वलयापडिलेहिणोके० वलयादिक स्थानकना जोनारा थाय, तेम प्रमादि चारित्रिया मंद भाग्यने लीधे, अल्प सत्वना धणी आजीविकाना भय थकी अनेक कुशास्त्र शीखे, ते केवा छे तोके, वितिगिछसमावन्नाके०

दृष्टयआक्रोशादिक शरणमाश्रयते । नच ते ऽदमाकलय्य प्रत्याक्रोष्टव्या । तद्यथा । अ
कोसहणणमारण धम्मकंसाणवाल सुलनाण।लानमन्नऽ नीरो जहुत्तराणअनावमि॥१८॥

बहुगुणप्पगप्पाइ, कुज्जा अत्तसमाहिए ॥ जेणत्तेणोविरुज्झेज्जा, तेण तंतं समायरे ॥ १९ ॥ इम च धम्म मादाय,कासवेण पवेइय ॥ कुज्जा भिक्खु गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥ २० ॥ संखाय पेसलं धम्मं, दिठि मं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता,आमोक्खाए परिव्वएज्जा सित्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति ततीय अज्झयणस्स तईउ उद्देसो सम्मत्तो

अर्थ–परंतु जे साधुने ते तेमनी साथे आक्रोशादिक करे नही किंतु ज्या बहुगुण के० घणागुणने एटले प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत उपनय नगम नय इत्यादिक प्पगप्पाइ के० प्रकटिपये एवा मध्यस्थपणाना कारणने कुज्जा के० करे वली जे थकी अत्त के० आत्मा समाहिए के० समाधिवंत रहे एवा अनुष्ठान करे जेणत्तेणो विरुज्झेज्जा के० जे अनुष्ठानकर्याथी अथवा जे वचन बोल्या थकी अन्यपुरुष विरोध नपामे तेवु कार्य करे तेण क० तेमाटे तत के० ते ते विधि समायरे के० समाचरे ॥१९॥ एरीते परमत निराकरण करी उपसहारे स्वमत स्थापन करता कहेछे इमके० ए पूर्वोक्त वचनरूप धम्म मादाय के० धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेण पवेइयके० काश्यप एटले श्रीमहावीर देवे प्रवेद्यो च शब्द थकी अन्य मतिनु निराकरण करीने प्रवेद्यो एटले कह्यो ते केवीरीते तो के भिक्खूके० साधु जे छे ते गिलाणस्स के० गिलाननी कुज्जाके० वैयावच्च करे अगिलाए समाहिए के० परंतु अगिलान पणे करे जेम पोताने तथा गिलानने समाधि उत्पन्न थाय तेवीरीते वैयावच्च करे ॥२०॥ संखायपेसलधम्म के० ते पेसल एटले मनोहर एवा सर्वज्ञ प्रणीत श्रुत चारित्ररूप धर्मने सम्यक् प्रकारे जाणीने दिठिम के० दृष्टीमतसाचा तत्वनो जाण परिनिव्वुडेके०परिनिवृत्त एटले क्रोधना उपशम थकी शीतलीभूत थएलो एवो साधु तेने उवसग्गेके० उपसर्ग उदय आव्या छता नियामित्ताके० तेने सहन करीने आमोक्खाय के० मोक्ष प्राप्तिसुधी परिव्वएज्जासि के० शुद्ध संयम पालतो थको प्रवर्त्ते तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२१॥ इति श्रीद्वितीयसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कधे तृतीयाध्ययने उपसर्ग परिज्ञानाम स्तृतीयोद्देशक समाप्त ॥

॥ दीपिका–(बहुगुणेति) । बहवोगुणा स्वपक्षसिद्ध्यादय प्रकल्पते प्रादुर्भवति ये षु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि मध्ये स्ववचनानि वाऽनुष्ठानानि साधुर्वादकाले कुर्यात् । कीदृश साधु आत्मसमाधिकश्चित्तस्वास्थ्यवान् । तत्त

योजवति तथा तेपि सयमनारवहनप्रति विचिकित्सा समापन्नानिमित्तगणितादिकं जीविकार्थं प्रत्युपेक्षतइति ॥ ५ ॥ साप्रतं महापुरुषचेष्टिने दृष्टांतमाह । (जेउसंगामेत्था दि)। ये पुनर्महासत्वा । तु शब्दोविशेषणार्थे । सग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे ज्ञाता रोलोकविदिता । कथ शूरपुरगमा शराणामग्रगामिनोयुद्धावसरे सैन्याग्रस्कधवर्तिनइति एवनूता सग्राम प्रविशतोन पृष्ठमुत्प्रेक्षंते नङ्गादिकमापन्नाणाय पर्यालोचयंति । तेचा नंगरुतबुद्धयोपित्वेव मन्यते । किमऽपरमत्रास्माक नविष्यति यदि पर मरण स्यातच्च शाश्व तं यश प्रवाहमिच्चतामस्माक स्तोकं वर्ततइति । तथाचोक्त । विशरारुनिरऽविनश्वर, मति चपले स्यास्तु वाछता विशद ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यश किं न पर्याप्त ॥१॥६॥

एवं समुठिए निक्कू, वोसिज्जा गारवधण ॥ आरन तिरियंकट्टु आत्तत्ताए परिव्वए ॥ ७ ॥ तमेगे परिनासति, निक्कय साहुजी विण ॥ जे एवं परिनासंति, अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥

अर्थ–एव के० एरीते निक्कू के० साधु संयमने विषे समुठिए के० सावधान थयो उतो, तथा अगारवधण के० गृहस्थावासनुं वंधन तेने वोसिज्जा के० छांमीने, तथा आरन के० आरंन जे सावद्यानुष्टान तेने तिरियं कट्टुके० तिर्छो करीने एटले, आरंनने दूर क रीने आत्तत्ताए परिव्वएके० एक मोक्षनेविषे सावधान थाय, सयमानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते॥७॥ अध्यात्मविषीदनार्थाधिकारोगत के० ए आत्मा थकीजे विषाद ते कह्यो हवे बीजो अ धिकार परवादिना वचन आश्री कहेने एगे के० एक कोइ परने उपकार रहि त एवा दर्शनने ग्रहण करनारा गोसालीक मतना अनुसारी तथा दिगंबरादिक एवा अन्य तीर्थिकना साधुउ तं के० ते पूर्वोक्त साहुजीवण के० साधु एटले रूडी आ जीवण एटले आजीविकाये प्रवर्त्तनार अर्थात् परने उपकार करनार, रुडा आचारे प्रव र्त्तमान एवा निक्कूयं के० साधुने परिनासति के० एवीरीते कहे. इतिकोथी तेनी निंदा करे, तो जे के० जे धर्मना अजाण एव के० एम पूर्वे कह्यु, तेम परिनासंति के० साधु ना आचारनी निंदा करे ते के० तेवा अन्यतीर्थिक साधुउ समाहिए के० समाधि एट ले सम्यक् अनुष्ठान थकी अथवा मोक्षथकी अतए के० वेगला जाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं निक्षुरपि महासत्व. सम्यक्सयमे उत्थि त. कषायादिवैरिवर्ग जेतु प्रवृत्त । यत । कोहमाण च माय च, लोह पचिंदिआणिअ । दु ज्जय चेवमप्पाण, सव्वमप्पेजिएजिअ।१।किंकृत्वा समुत्थित. अगारबंधनं गृहपाशं व्युत्सृज्य त्यक्त्वा आरन तिर्यक्कृत्वा निराकृत्य आत्मत्वाय शेषकर्मरहितत्वाय परिव्रजेत् सयमे प्रव

यन्य सोढा नोपसर्गैरुपसर्गितोऽसमंजस विदध्यादित्येवमामोक्षायाशेषकर्मक्षयप्राप्ति या वत्परिसमतात् व्रजेत्सयमानुष्ठानोद्युक्तोनवेत् परिव्रजेदिति । परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २१ ॥ उपसर्गपरिज्ञायास्तृतीयोद्देशक समाप्त ॥ ३ ॥

अथ तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशकस्य प्रारन

आहंसु महापुरिसा, पुव्वि तत्ततवोधणा ॥ उदयेण सिद्धिमाव न्ना, तत्र मंदोवसीयति ॥ १ ॥ अनुंजिया नमी विदेही, रामगुत्ते य नुंजिआ ॥ बाहुए उदगं नोच्चा, तहा तारागणेरिसी ॥ २ ॥

अर्थ–आहं सुमहा पुरिसाके० हवे ते परमार्थना अजाण एम कहेछेके महा पुरुष प्रधान पुरुष तारागणऋषि प्रमुख तेणे एवीरीते आहु एटले कह्युछे शुकह्युछे तोके पुव्वित तत्तके०पूर्व कालनेविषे तपश्चर्याना करनार तवोधणाके० तपरूप धनना धणी एवा अनेक ऋषीश्वर ते उदयेणके० उदक एटले शीतल पाणीनो परिनोग करता थका सिद्धिमाव न्ना के० सिद्धिने पाम्या तेरीतनु अन्य तीर्थिनु वचन सानलीने तत्रमंदोवसीयति के०मंद अज्ञानी बापडा तत्र एटले तेहिज शीतलोदकने विषे राचे, पण प्राशुक उदकनो नोग नकरे, एरीते सयमानुष्ठानने विषे सीदाय. ॥ १ ॥ हवे कोइक कुतीर्थि होयते सा धुने विप्रतारवाने अर्थे आवीरीते कहेके अनुंजिया के० अशनादिकने अण नोगवतो एवो नमीविदेही के० नमीराजा विदेह देशमा उत्पन्न थयेलो हतो, ते मुक्ति पोहोतो, तथा अन्य तीर्थिज कहेछे के रामगुत्तेय नुंजिया के० रामगुप्त राजऋषीश्वर आहा र नोगवतो थको मुक्ति पोहोतो, तथा बाहुए के० बाहुक ऋषीश्वर तहा के० तेमज तारागणेरिसी के० तारागणनामा ऋषीश्वर ए बने उदगनोच्चा के० शीतल पाणीना परिनोग थकी सिद्धिने पाम्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका–साप्रत चतुर्थआरभ्यते । सच साधुना शीलरक्षणाय यत्नोविधीयतइत्य र्थवान् तस्य चेदमादिम सूत्र । (आहंसुइति) केचिदविज्ञाततत्वाआहुरुक्तवत । यथा म हापुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रमुखा पूर्व पूर्वकाले तप्तमनुष्ठित तपएव धन येषाते तप्ततपोधना पचाग्न्यादिसाधकास्तएवनूताउदकेन स्वचित्तोदकपरिनोगेण उपलक्ष णात्कदमूलादिनोजिन सिद्धिमापन्ना सिद्धि गता । तत्रैवनूतार्थाकर्णने मदोमूर्खोऽ वसीदति सयमे सीदति शीतोदकादिपरिनोगे प्रवर्तते । तत्रैव वेति तेषा तापसाना कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्नूतस्वसम्यग्दर्शनाना सयमप्रतिपत्त्याऽगतज्ञानावरणा

सरखा छो ॥ ९ ॥ एव के० ए कारणमाटे तुम्हके० तुमे सरागछा के० गृहस्थनी पेरे सराग पणे वर्त्तोछो अन्नमन्न के० माहोमाहे मणुवसा के० वशगामी साधु कोइना आधीन न थाय ते कारणमाटे तमे सप्पह के० सद्पंथ एटले रुडोमार्ग तेना सम्नावा के० सन्नावने नष्ठ के० नष्ट कीधो एटले सन्मार्गने च्रष्ट कीधो तेथी तमे ससारस्सअपारगा के० ससारना पारगामी नही एवा दोष अन्य तीर्थिर्ड बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यत्परिनापते तदाह । (सवद्धेति) सवद्धागृहस्थास्तैस्तुल्य सम कल्पो व्यवहारोयेषा ते तथा गृहस्थानुष्ठानतुल्या।यथा गृहस्था परस्परमुपकारे प्रवर्तते । माता पुत्रे पुत्रोमातरि एव यूयमप्यन्योन्यमुपकारे मूर्छिता । कथमित्याह पिंडपातनैक्ष्य ग्लानस्य रोगिण साधोर्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयते तथा (दलाहत्ति) ग्लानायददध्व । चशब्दादाचार्यादिवैयावृत्त्ये प्रवर्तध्व ततोगृहस्थतुल्याइत्यर्थ ॥९॥ (एवमिति) एव यूय स राग स्वनावस्तत्रस्थिताअन्योन्य वशमुपागता परस्परायत्ता । यतयस्तु नि संगा कस्य चिदायत्तानस्यु । ततोगृहस्थानामय न्यायइति । तथा नष्टसत्पथसद्भावा गतसन्मार्गपरमार्थाएवनूतायूय ससारस्य । अपारगा नपारगामिन ॥ १० ॥

॥ टीका–यत्ते प्रनापते तद्दर्शयितुमाह । (सवद्धेत्यादि) समेकीनावेन परस्परोपकार्योपकारितयाच बद्धा. पुत्रकलत्रादिस्नेहपाशै सवद्धागृहस्थास्त समस्तुल्य कल्पोव्यवहारोनुष्ठान येषाते संबद्धसमकल्पागृहस्थानुष्ठानतुल्यानुष्ठानाइत्यर्थ । तथाहि । यथा गृहस्थानामय न्यायोयद्धुतपरस्मे परस्परोपकारेण माता पुत्रे पुत्रोपि मात्रादावित्येवमूर्छिताअ सुपपन्नाएव नवतोप्यन्योन्यं परस्परत शिष्याचार्याद्युपकारक्रियाकल्पनया मूर्छिता । तथाहि । गृहस्थानामय न्यायो यद्धुतपरस्मै दानादिनोपकारइति नतु यतीना । कथमन्योन्य मूर्छिताइति दर्शयति । पिंडपात नैक्ष्य ग्लानस्याऽपरस्य रोगिण साधोर्यद्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयते । तथा (दलाह्यत्ति) ग्लानयोग्यमाहारमन्विष्य तद्धुपकारार्थं ददध्व । चशब्दादाचार्यादे वैयावृत्त्यकरणाद्युपकारेण वर्तध्व ततोगृहस्थसमकल्पाइति ॥ ९ ॥ साप्रतमुपसहारव्याजेन दोषदर्शनायाह । (एवमित्यादि) एव परस्परोपकारादिना यूय गृहस्थाइव सरागस्था सहरागेण वर्ततइति सराग स्वनावस्तस्मिन् तिष्ठंतीति ते तथा अन्योन्य परस्परतोवशमुपागता परस्परायत्ता । यतयोहि नि सगतया नकस्यचिदायत्ता नवति । यतोगृहस्थानामयन्याय इति।तथा नष्टोऽपगत सत्पथ सद्भाव सन्मार्ग परमार्थोयेन्यस्ते तथा । एवनूताश्र यूय ससारस्य च डुर्गतिन्रमणलक्षणस्याऽपारगा अतीरगामिनइति ॥ १० ॥

दगनोइा के० शीतलपाणीनें नोगवी तथा वीयाणि के० वीजकाय हरियाणिय के० हरिकायना परिनोग थकी सिद्ध थया ॥ ३ ॥ एते के० ए नेमीराज ऋषी प्रमुख पुव महापुरिसाके० पूर्वकालनेविषे माहा पुरुष (आहिताके०)कह्या वे ते इहके० आलोकनें विषे समता के० प्रसिद्ध वे ते कुतीर्थिक अथवा साताशील स्वयूथिक एम कहे के ए सर्व जीर्ठंदगं के० बीज सचेतपाणीने नोश्चा के० नोगवीने सिद्धा के० सिद्ध थया इतिके० एम मेय के० ए अमे महानारतादिक तथा पुराणोमाथी अणुस्सुय के० सानलुने. माटे अमे पण एवीज रीते मुक्ति साधशु ॥ ४ ॥

॥ दीपिका-(असिलेति) । असिलोनाम महर्षिस्तथा देवलोद्वैपायन. पराशराख्यइत्यादय शीतोदकबीजहरितादिनोजिन सिद्धा ॥ ३ ॥ (एतइति) एते पूर्वोक्ताम हापुरुषानम्यादय पूर्वकाले त्रेताद्वापारादै आख्याता प्रसिद्धा इहाप्यार्हतमते ऋषिनापितादौ केचन समता इत्येव कुतीर्थिका प्रोचु । एते सर्वेपि बीजोदकादिनोगात्सिद्धाइति मया नारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

॥टीका-अपिच । (असिलेइत्यादि) । असिलोनाम महर्षिर्देवलोद्वैपायनश्च तथा पराशराख्यइत्येवमादय शीतोदकबीजहरितादिपरिनोगादेव सिद्धाइति श्रूयते॥३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (एतेइत्यादि) एते पूर्वोक्तानम्यादयोमहर्षय पूर्वमिति पूर्वस्मिन्काले त्रेताद्वापरादौ महापुरुषाइति प्रधानपुरुषाआसमतात् ख्याता प्रख्याताराजर्षित्वेनप्रसिद्धिमुपगताइहाप्यार्हतप्रवचने ऋषिनापितादौ केचन समताअनिप्रेताइत्येव कुतीर्थिका स्वयूथ्यावा प्रोचु । तद्यथा । एते सर्वेपि बीजोदकादिकं चुक्त्वा सिद्धाइत्येतन्मया नारतादौ पुराणे श्रुत ॥ ४ ॥

तत्र मदा विसीअति, वाहछिन्नाव गहना ॥ पिठतो परिसप्पंति
पिठसप्पी च सन्नमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ नासंति, साल सातेण वि
जती ॥ जे तत्र आरिअ मग्ग, परम च समाहिए ॥ ६ ॥

अर्थ-तत्रके० त्या कुशास्त्र जे नारतपुराणादिक तेने सानलवे करी तथा परिसह उपने थके मदाविसीअति के० कोइक मद अज्ञानी चारित्र थकी सीदाय कोनीपेरे तोके वाहछिन्नावगहना के० जेम नार थकी नागा एवा जे गर्दन ते मार्गमाज नार नाखीदेइ ने नासीजाय अथवा पिठतोपरिसप्पति के० ष्टष्ट सर्प एटले नम्र गति पुरुष सन्नमे के० सन्नमी पणे अग्न्यादिक उपद्रव उपने थके पिठसप्पिय के० नाशीजनार मनुष्य

समेतअवतिष्ठते । तदेव गृहस्थगृहे तन्नाजनेषु जुंजानाग्लानस्य च गृहस्थै कारयंतोयूय अवश्य बीजोदकादिनोजिनउद्देशकादिकृतनोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

॥ टीका–अयं तावत्पूर्वपक्षोस्य च दूषणायाह । (अहतेपरिज्ञासेडेत्यादि) । अथा नंतर तानेव प्रतिकूलत्वेनोपस्थितान् निक्षु परिनापेत ब्रूयात् । किंनूतो मोक्षविशारदो मोक्षमार्गस्य सम्यक्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्य प्ररूपक । एवमनततरोक्त यूय प्रनाषमाणा-सत डुष्ट पक्षोडुष्पक्षोऽसत्प्रतिज्ञान्युपगमस्तमेव सेवध्व यूय यदिवा रागद्वेषात्मक पक्ष द्वय सेवध्व यूयं । तथाहि । सदोषस्याप्यात्मीयपक्षस्य समर्थनाद्रागो निष्कलंकस्याप्यस्मद न्युपगमस्य दूषणाद्वेषोऽथैव पक्ष द्वय सेवध्व यूय । तद्यथा । वक्ष्यमाणनीत्या बीजोदको द्दिष्टकृतनोजित्वाद्गृहस्था यतिलिंगान्युपगमात्किल प्रव्रजिताश्चेत्येव पक्ष द्वयासेवन नवता मिति । यदिवा स्वतोऽसदनुष्ठानमपरच सदनुष्ठायिना निंदनमितिनाव ॥ ११ ॥ आजीविका दीनां परतीर्थिकाना दिगंबराणा वा सदाचारनिरूपणायाह ।(तुम्ने नुजहेत्यादि) किल वय मपरिग्रहतया निष्किचनाएवमन्युपगम कृत्वा यूयं जुग्ध्व पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिषु गृहस्थ नाजनेषु तत्परिनोगाच्च तत्परिग्रहोऽवश्य नावी । तथाऽहारादिषु मूर्गा कुरुध्वमित्यत कथं निष्परिग्रहान्युपगमोनवतामकलकइति । अन्यच्च ग्लानस्य निक्षाटन कर्तुमसमर्थ स्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहत कार्यते । नवद्भिर्यतोरानयनाधिकारान्नावाद्गृहस्थानयने च योदो षसन्नाव सनवतामवश्यंनावीति । तमेव दर्शयति । यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देना पादितमाहार नुक्त्का त ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादि यत्कृत यन्निष्पादित तदवश्यं परिनोगा यावतिष्ठते । तदेव गृहस्थगृहे तन्नाजनादिषु नुंजानास्तथा ग्लानस्य च गृहस्थैरेव वै यावृत्यकारयतो यूयमवश्यं बीजोदकादिनोजिनउद्देशिकादिकृतनोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

लित्ता तिव्वा नितावेणं, उज्जा असमाहिया ॥ नातिकंमूइयं से यं, अरुयस्सावरज्झती ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिठ्ठाते अपडिन्नेण जाणया ॥ एएस णियए मग्गे, असमिख्का वती किती ॥ १४ ॥

अर्थ–तिव्वानितावेण के० तुमे छ काय जीवनी विराधना तथा साधुनी निंदारूप तीव्र तापे एटले संतापे करी लित्ता के० लिप्तहो तथा उज्झआ के० विवेक रहित हो वली असमाहिया एटले शुनध्यान रहितहो माटे जेम नातिकंमूइय सेयं के० कमू एटले खुजली तेने अत्यंत खणवी श्रेयकारी नथी किंतु अरुयस्स के० गुंबडाने खणवुं थकु अवरज्झती के० अपराधियें घणा दोषनी वृद्धि करे तेम तमने साधु साथे द्वेष पण करवु श्रेय नथी ॥ १३ ॥ अपडिन्नेण के० जे खराने खोटु ठेरावबु अने खोटाने

दाचिदपि सर्वविरतिपरिणामजावलिंगमंतरेण शीतोदकबीजाद्युपजोगेन जीवोपमर्दप्राये ण कर्मक्षयोऽवाप्यते । विषीदने दृष्टांतमाह । वहन वाहोजारोद्वहन तेन छिन्ना कपि ताश्रुटितारासजाइव विषीदति । यथा रासजागमनपथएव प्रोज्झितजारानिपतति ए व ते प्रोज्य संयमजार शीतलविहारिणोजवति । दृष्टांतांतरमाह । यथा पृष्ठसर्पिणोजग्न गतयोऽग्न्यादिसंभ्रमे सत्युद्भ्रांतनयना समाकुला प्रनष्टजनस्य पृष्ठत पश्चात्परिसर्प ति नाग्रगामिनोजवत्यपि तु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यत्येव तेपि शीतलविहारिणो मोक्ष प्रतिप्रवृत्ताअपि तु न मोक्षगतयोजवत्यपि तु तस्मिन्नेव संसारे अनंतमपि काल यावदासतइति ॥ ५ ॥ मतांतर निराकर्तुं पूर्वपक्षयितुमाह । (इहमेगेइत्यादि) । इहेति मोक्षगमनप्रस्तावे एके शाक्यादय स्वयूथ्यावा लोचादिनोपतप्ता । तुशब्द पूर्वस्मात् शी तोदकापरिजोगाद्विशेषमाह । जाषते ब्रुवते । मन्यते च इति क्वचित्पाठ । किंतदित्याह । सात सुख सातेन सुखेनैव विद्यते जवतीति । तथाच वक्तारोजवति । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजति । तस्मात्सुखार्थी सुखमेव दद्यात् सुखप्रदाता लज ते सुखानि॥१॥ युक्तिरप्येवमेव स्थिता । यत कारणानुरूप कार्यमुत्पद्यते। तद्यथा । शा लिबीजाच्छाल्यंकुरोजायते न यवांकुरस्त्येव प्रीत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखमुपजायते न तुलो चादिरूपात् दुःखादिति । तथाह्यागमे ऽप्येवमेव व्यवस्थित ॥ मणुसु जोयण जोच्चा मणु सु सयणासण। मणुसुंति अगारसि मणुसु जायए मुणी ॥१॥ तथा मृद्वी शय्याप्रातरुत्थाय पेया, जुक्त मध्ये पानक चापराह्ने । द्राक्षाखंड शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्ट. ॥१॥ इत्यतोमनोज्ञाहारविहारादेश्चित्तस्वास्थ्य तत समाधिरुत्पद्यते समाधेश्च मुक्त्यवाप्तिर त स्थितमेतत्सुखेनैव सुखावाप्तिर्न पुन कदाचनापि लोचादिना कायक्लेशेन सुखावाप्तिरि ति स्थित । इत्येव व्यामूढमतयोये केचन शाक्यादयस्तत्र तस्मिन्मोक्षमार्गप्रस्तावे स मुपस्थिते आराक्षात सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गोजैनेइशासनप्रतिपादितोमोक्षमार्ग स्तं ये परिहरति। तथा च । परम च समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मक ये त्यजति तेऽज्ञा संसा रांतर्वर्तिन सदा जवति । तथाहि । यत्तैरजिहितं कारणानुरूप कार्यमिति तन्नायमेकां तोयत शृंगाच्छरोजायते गोमयाद्वृश्चिकोगोलोमाविलोमादिभ्योदूर्वेति । यदपि मनोज्ञा हारादिकमुपन्यस्त सुखकारणत्वेन तदपि विषूचिकादिसंजवाद्व्यजिचारीति । अपिचेद वै षयिक सुख दुःखप्रकारहेतुत्वात् सुखाजासतया सुखमेव न जवति । तदुक्त । दुःखात्म केषु विषयेषु सुखाजिमान सौख्यात्मकेषु नियमादिषु दुःखबुद्धि । उत्कीर्णवर्णवदपंक्तिरि वान्यरूपा सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात्॥१॥इति। कुतस्तत्परमानंदरूपमस्यात्यंतिकै कांतिकस्य मोक्षसुखस्य कारण जवति। यदपि लोचभूशयनभिक्षाटनपरपरिजवक्षुत्पिपासा दंशमशकादिक दुःखकारणत्वेन जवतोपन्यस्त तदप्यल्पसत्वानामपरमार्थदृशा महापु

इत्यग्रतिज्ञोरागद्वेषरहित साधुस्तेन जानता हेयोपादेयपदार्थपरिच्छेदकेनेत्यर्थ । कथमनु ज्ञानिताइत्याह । योय नवद्भिरभ्युपगतोमार्गो यथा यतीना निष्किंचनतयोपकरणाना वात् परस्परतउपकार्योपकारकानावइत्येपनियतोनिश्चितोन युक्तिसंगतोऽतो चेय वाग् यथा ये पिण्डपात ग्लानस्यानीय ददति ते गृहस्थकल्पाइत्येपा असमीक्ष्यानिहिता अपर्या लोच्योक्ता तथा कृत करणमपि नवदीयमसमीक्षितमेव यथा वा पर्यालोचितकरणता न वति नवदनुष्ठानस्य तथा नातिकमूयित श्रेयइत्यनेन प्राग्लेशत प्रतिपादित पुनरपि सदृ ष्टान्त तदेव प्रतिपादयति ॥ १४ ॥

एरिसा जावई एसा. अग्गवेणु व्वकरिसिता ॥ गिहिणो अभिहड
सेय, नुजीउं णउ भिक्खणो ॥१५॥ धम्मपन्नवणा जासा, सारना
ण विसोहिआ ॥ णउ एयाहि दिठीहिं, पुव्वमासि पग्गप्पिअ॥१६॥

अर्थ–एरिसाजावईएसा के० जो एटले आमत्रणे करीने तमारी एवी वाणीजे ग्लानने आहारलावी नआपवो ते अग्गवेणुव्व करिसिता के० वशना अग्नी सरखी अ त्यत सुक्ष्म एटले कोइ पण युक्तिने खमे नही एवी तमारी वाणी केही ते कहेले गिहि णो अभिहडसेय के० तमे कह्यु जे गृहस्थनो आणेलो आहार श्रेयने नुजीउं के० ते नोगववो परतु णउभिक्खणो के०यतिनो आणेलो आहार यतिने लेवो अयोग्यले ए त मारुं वचन रुडु नथी अमे एम कहियेलेये के गृहस्थनो आण्यो आहार सदोपले अने य तिनो आण्यो आहार निर्दोपले ॥ १५ ॥ वली साधु तेने कहेले के धम्मपन्नवणाजासा के० जे तमारी धर्म प्रज्ञापना एटले धर्मदेशना जे यतिने दाननो देवो नथी सारनाण विसोहिया के० केमके दान जे लेते ते सारन जे गृहस्थ तेनी विशुद्धिनो करनार जाणवो कारण के यतितो पोताना अनुष्ठाने शुद्धि पामेले यतिने दान देवानो अधिकार नथी एयाहि दिठीहिं के० एम तमारी दृष्टीमा जे आवेले परतु ए प्रकारे पुव्वमासि के० जे पूर्वे तीर्थकर थया तेणे णउपग्गप्पिअ के० नथी प्रकल्प्यो एटले जेरीते तमे धर्म कहोलो तेरीतनो धर्म सर्वज्ञे कह्यो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(एरिसेति) इदृशी एपा वाक् साधुना ग्लानस्यानीय न देयमिति एपा वाक् अग्रवेणुवत् वशवत् निकरिपिता दुर्बला यथा वशाग्रं दुर्बल स्यात्तथा दुर्बलेत्यर्थ । तामेव वाच दर्शयति । गृहिणायदभ्याहृत तद्यथा नोक्तुश्रेयोनतु भिक्षुणा । गृहस्थाभ्याहृत जीवो पमर्दहेतुभूत साधूनामकल्पमिति ॥ १५॥ (धम्मपन्नवणेति) या धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यतीनां दानादिना उपकर्तव्यमित्येवभूता सारनाणा गृहस्थाना विशोधिका विशुद्धिकारि णी । यतय स्वस्वानुष्ठानेनैव शुध्यति नतु तेपा दानाधिकार । एतद्रूपयति । नतुएतानि

यमपि ॥ ७ ॥ (पाणाइवेति) यूयं प्राणातिपाते मृषावादे संयता संतोवर्तमाना तथा ऽदत्तादाने मैथुने परिग्रहे वर्तमानाअल्पेन सुखेन बहु हारयथ ॥ ८ ॥

॥ टीका—अतोव्यपदिश्यते । (माएयमित्यादि) एनमार्यं मार्गं जैनेंद्रप्रवचनं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रमोक्षमार्गप्रतिपादकं सुखं सुखेनैव विद्यते इत्यादिमोहेन मोहिताअवमन्यमाना परिहरंतोऽल्पेन वैषयिकेण सुखेन मा बहु परमार्थसुखं मोक्षाख्यं लुपथ विध्वंसयथ तथाहि । मनोज्ञाऽहारादिना कामोद्रेकस्तदुद्रेकाच्च चित्तास्वास्थ्यं न पुनः समाधिरिति । अपि चैतस्यामल्पकान्युपगमस्यामोक्षे परित्यागे सति । (आयो हारिबहूरहत्ति) आत्मानं यूयं कदर्थयथ । यथैव केवलं यथावाऽयसो लोहस्यार्थार्थं अ पांतराले रूप्यादिलाभे सत्यपि दूरमानितमिति कृत्वा नोज्झितवान् । पश्चात् स्वावस्थानावाप्तावल्पलाभे सति जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं जवंतोपि जूरयिष्यंतीति ॥७॥ पुनरपि सातेन सातमित्येव वादिना शाक्याना दोषोद्भिन्नावयिषयाह । (पाणाइवायेत्यादि) प्राणातिपाते मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेषु वर्तमानाअसंयतायूयं वर्तमान सुखैषिणोल्पेन वैषयिकसुखाभासेन परमार्थिकमेकांतात्यंतिकं बहु मोक्षसुखं विलुपथेति । किमिति । यतः पचनपाचनादिषु क्रियासु वर्तमानाः सावद्यानुष्ठानारंजतया प्राणातिपातमाचरथ । तथा येषां जीवानां शरीरोपन्नोगोनवद्भिः क्रियते तानि शरीराणि तत्स्वामिनिरदत्तानीत्यदत्तादानाचरणं । तथा गोमहिष्यजोष्ट्रादिपरिग्रहात्तन्मैथुनानुमोदनादब्रम्हेति । तथा प्रव्रजितादयमित्येवमुद्भाय गृहस्थाचरणानुष्ठानान्मृषावादस्तथा धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिपरिग्रहात्परिग्रहइति ॥ ८ ॥

एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसंगया बाला,
जिणसासणपरम्मुहा ॥ ९ ॥ जहा गंम पिलागं वा, परिपीलेज्ज
मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कउसिआ ॥ १० ॥

अर्थ—वली परमतनो नाषा दोष कही देखाडेछे एवं के० एरीते एगेउ के० कोइएक परतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक पासत्थाके० पासत्थादिक ते केवाछे तोके अणारियाके० अनार्य कर्मना करनार अणाचारि वली इत्थीवसगया के० स्त्रीने वसे पड्या एटले स्त्रीनो परिसह जीतवाने असमर्थ तथा बाला के० अज्ञानी वली जिणसासण परम्मुहा के० जिनमार्ग थकी वपरावा ते पन्नवंति के० एम कहेछेके ॥ ९ ॥ जहा के० जेम गंमके० गूबडु पिलागंवा के० पाकु थकु तेने परि के० त्याज पीलेज्ञ के० पीलीने तेमांथी परु अथवा रुधीर काढी नाखवा थकी मुहुत्तगंके० मुहूर्त्तमात्रमां सुख थाय परंतु पीडा काइ

वानो जे व्यापार तेनु शरण ग्रहण करे टकणाऽव पव्वयं के० जेम टंकण एटले म्लेच्छादिक लोको जेने ते शस्त्रादिके करी युद्ध करवाने असमर्थ हता पर्वतनो सरण ग्रहण करे तेम पूर्वोक्त कुतीर्थिकोपण युक्तिपूर्वक उत्तर देवाने असमर्थ हता क्रोधनो सरण अंगीकार करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(सव्वेहिति) तेगोशालमतीयादिगंबरावा सर्वानिरनुगतयुक्तिनि स्वपक्षं यापयितुमशक्नुवतस्यापयितुमततोवाद निराकृत्य ते तीर्थिका नूयोपि प्रगल्भिता गता वादपरित्यागेपि स्वधर्मस्थापनं नामुंचन्निति ॥ १७ ॥ (रागेति) रागद्वेषाभिनूता त्मानो मिथ्यात्वेनाऽभिडुताव्याप्तावाद कर्तुमसमर्थाआक्रोशेन शरण याति असन्यवचनानि दमादिहननव्यापारवा स्वीकुर्वतीत्यर्थ । यथा टकणाम्लेच्छविशेपा परैरभिडुता पर्वत शरणयाति ॥ १८ ॥

॥ टीका–अपिच (सव्वाहीत्यादि) ते गोशालकमतानुसारिणोदिगंबरावा सर्वानिर्यानुगतानिर्युक्तिनि सर्वैरेव हेतु दृष्टातै प्रमाणनूतैरशक्नुवत स्वपक्षे आत्मान यापयितु संस्थापयितु ततस्तस्माद्युक्तिनि प्रतिपादयितु सामर्थ्यानावाद्वाद निराकृत्य सम्यग्हेतुदृष्टातैर्योवादोजल्पस्त परित्यज्य ते तीर्थिकानूय पुनरपि वादपरित्यागे सत्यपि प्रगल्भिता धृष्टता गताइदमूचु । तद्यथा । पुराणं मानवोधर्म सगोवेदश्चिकित्सित । अज्ञासिद्धानिचत्वारि न हतव्यानि हेतुनि ॥ १ ॥ अन्यच्च किमन्यया बहिरगया युक्त्या ऽनुमानादिकया ऽत्र धर्मपरिक्षणे विधेये कर्तव्यमस्तियात प्रत्यक्षएव बहुजनसमतत्वेन राजाद्याश्रयणाच्चायमेवास्मदभिप्रेतोधर्म श्रेयान्नापरइत्येव विवदते तेषामिदमुत्तर । नह्यत्र ज्ञानादिसाररहितेन बहुनापि प्रयोजनमस्तीति । युक्तं च । एरमकठरासी जहायगोसीस चदनपलस्स । मोल्लेन होज्ज सरिसो कितियमेत्तो गणिज्जंतो ॥१॥ तहविगणणातिरेगो जहारासी सोनचदनसरिछो ॥ तहनिविणाणमहो जणो विमोक्षे विसवयति ॥२॥ एक्कोसचक्कुगोणविमूढापमाण जेगइणयाणत्ति ॥ ससारगमणगुविलणिउणस्सयबधमोरकस्स ॥ ३ ॥ इत्यादि ॥ १७ ॥ अपिच (रायदोस्साइत्यादि) रागश्च प्रीतिलक्षणोद्वेपश्च तद्विपरीतलक्षणस्ताभ्यामभिनूतआत्मायेपा परतीर्थिकाना ते । तथा मिथ्यात्वेन विपर्यस्तावबोधेनातत्वाऽध्यवसायरूपेणाभिद्रुताव्याप्ता सद्युक्तिनिर्वाद कर्तुमसमर्था क्रोशानुगाआक्रोशानसन्यवचनरूपास्तथा दमुष्ट्यादिनिश्च हननव्यापार यात्याऽश्रयते । अस्मिन्नेवार्थे प्रतिपाद्ये दृष्टातमाह । यथा टकणाम्लेच्छविशेपाडुर्जेयायदा परेण बलिना स्वानीकादिनाभिडूयंते तदा ते नानाविधैरप्यायुधैर्योडुमसमर्था सत पर्वत शरणमाश्रयंत्येव तेपि कुतीर्थिकावादपराजिता क्रोधाद्युपहत

वमेगे उ पासत्था, मिछदिट्ठी अणारिआ ॥ अझोववन्ना कामे
हिं, पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥

अर्थ–वली दृष्टांत कहेछे जहाके० जेम मंदादननामके० मेंढो एवे नामे जनावर ते थि मितं के० जेरीते पाणी मोलाय नही एरीते भुंजतीदग के० उदकनु पान करे, परंतु पाणीने पण बाधा नथाय अने पोताने पण बाधा नकरे एवके० एरीते विन्नवणिछीसु के० प्रार्थना करती स्त्री साथे संबंध करवा थकी दोसोतछकउसिया के० त्यांपण दोष क्यां थकी थाय अपितु नज थाय ॥ ११ ॥ जहा के० जेम विहगमापिंगा के० कपिंजल एवेनामे पंखणी आकाशें उडती थकीज थिमिअभुंजतीदग के० निर्मलपाणीनुं पानकरे एव के० एरीते विन्नवणिछीसु के० अहींपण गर्भांतर करण पूर्वक पुत्रादिकने अर्थे राग द्वेप रहित प्रार्थती एवी स्त्रीनी साथे संग करता थका दोप क्यांथकी थाय ॥ १२ ॥ हवे सूत्र कर्ता ते वादीउंना दोष प्रगट करतो कहेछे. एवमेगेउपासछाके० ते पूर्वोक्त गुवडादिकना दृष्टांते करी मैथुनने निर्दोष मानता एवा कोइएक परतीर्थिक तथा स्वयूथिक पासछादिक जेणे स्त्री परिसह जित्यो नथी, ते सिथल विहारी केवा छे, तो के मिछदिठी अणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य कर्मना करनार अनाचारी अझोववन्नाकामेहिके० कामभोगने विषे गृद्ध थता प्रवर्त्ते कोनीपेरे तोके पूयणाइवके० पुतना एटले डाकणनीपेरे जेम डाकण न्हाना बालकने देखी गृद्ध थाय अथवा पुतना एटले गाडरीनीपेरे जेम गाडरी पोताना तरुणए के० तरुण बालकने विषे गृद्ध थाय, एटले समस्त जीवोमाहे सता नने विषे गाडरीनो स्नेह आकरो दीसेछे ते माटे ए दृष्टांत कह्युं तेम पूर्वोक्त अनाचारी पासछादिक पण कामभोगनेविषे गृद्ध थायछे ॥ १३ ॥

॥ दीपिका–(जहेति) यथा मधादनोमेष स्तिमितं अनालोड्याग्रतउदकं भुंक्ते पिब त्यात्मानं प्रीणयति नचान्योपघातं कुर्यात् एवं स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा । त्मनश्च प्रीणनमिति कुतस्तत्र दोष ॥ ११ ॥ यथा पिंगा कपिंजलाविहगमा पक्षिणआकाशएव वर्तमाना स्तिमितं निभृतमुदकं पिबति एवमत्रापि पुत्रार्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोऽरक्तद्विष्टस्य पक्षिणइव कुतोदोष । यदुक्तं ॥ धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिण ॥ ऋतुकालविधानेन दोषस्तत्र नविद्यतइति ॥ १२ ॥ अथैवं वदतां परेषां दोषमाह । एवं प पार्श्वे पूर्वदृष्टांतैर्मैथुनं निर्दोषमितिमन्यमानाएके शाक्यादय स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थादय जिनम मिथ्यादृष्टयोऽनार्याधर्मविरुद्धनाषिणोऽध्युपपन्नागृद्धा कामेषु वा । यथा पूतना गृद्ध पि तरुणके बाले आसक्ता यदि वा पूतना गड्डरिका स्वापत्ये आसक्ता । कथाचात्र रु अथवा ऽस्तानामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि । तत्र चान्यामात

त्कुर्यात्साधुर्येन कृतेनान्यतीर्थिकोनविरुध्येत नविरोधं गच्छेत् । तेन तत्तदविरुद्धं समाचरेत् ॥१७॥ (इममिति) इमं वक्ष्यमाणं धर्ममादाय काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं कुर्याद्भिक्षु साधुर्ग्लानस्य वैयावृत्त्यादिकं अग्लानतया यथाशक्ति समाहितं समाधिप्राप्तः । यथा ग्लानस्य समाधिरुत्पद्यते स्वस्य वा योगानविषीदति तथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ (सखाएति) । पेशलं श्रेष्ठं सर्वज्ञोदितं धर्मं सख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् दर्शनोपेतं परिनिर्वृतोरागद्वेषत्यागाच्छीतलउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियन्त्र्य आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत्संयमोद्यतोभवेत् ससाधुरिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२१॥ इति तृतीयाध्ययने तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (बहुगुणेत्यादि) । बहवोगुणा स्वपक्षसिद्धिपरपक्षदोषोद्भावनादयोमाध्यस्थ्यादयोवा प्रकल्पते प्रादुर्भवंत्यात्मनि येष्वनुष्ठानेषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि माध्यस्थ्यवचनप्रकाराणि वा अनुष्ठानानि साधुर्वादकाले अन्यदा वा कुर्यात् विदध्यात् सएव विशिष्यते । आत्मनः समाधिश्चित्तस्वास्थ्यं यस्य सभवत्यात्मसमाधिकः । एतदुक्तं भवति । येन येनोपन्यस्तेन हेतुदृष्टांतादिना आत्मसमाधिः स्वपक्षसिद्धिलक्षणोमाध्यस्थ्यवचनादिना वा परानुपघातलक्षणः समुत्पद्यते तत् तत् कुर्यादिति । तथा येनानुष्ठितेन वा भाषितेन वा अन्यतीर्थिकोधर्मश्रवणादौ वाऽन्यः प्रवृत्तोन विरुध्येत नविरोधं गच्छेत् तेन पराविरोधकारणेन तत्तदविरुद्धमनुष्ठानं वाचनं वा समाचरेत् कुर्यादिति ॥ १९ ॥ तदेव परमतं निराकृत्योपसंहारद्वारेण स्वमतस्थापनायाह । (इमचेत्यादि) । इममिति वक्ष्यमाणं पूर्वोक्तमूलोत्तरगुणरूपं चारित्राख्यं वा दुर्गतियारणाद्धर्ममादायोपादाय आचार्योपदेशेन गृहीत्वा । किंभूतमिति । तमेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनोत्पन्नदिव्यज्ञानेन सदेवमनुजायां पर्षदि प्रकर्षेण यथावस्थितार्थनिरूपणद्वारेण वेदितं प्रवेदितं । चशब्दात्परमतं च निराकृत्य भिक्षणशीलोभिक्षुर्ग्लानस्यापटोरपरस्य भिक्षोर्वैयावृत्त्यादिकं कुर्यात् । कथं कुर्यादेतदेव विशिनष्टि । स्वतोप्यग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिप्राप्तऽइति । इदमुक्तं भवति । यथा यथात्मनः समाधिरुत्पद्यते तथा पिंडपातादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ किं कृत्वैतद्विधेयमितिदर्शयितुमाह । (सखायेत्यादि) । सख्याय ज्ञात्वा कः धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं श्रुतचारित्राख्यभेदभिन्नपेशलमिति । सुश्लिष्टं प्राणिनामहिंसादिप्रवृत्त्या प्रीतिकारणं । किंभूतमिति । दर्शनं दृष्टिः समुद्भूतपदार्थगतं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । सा विद्यते यस्याऽसौ दृष्टिमान् यथा व्यवस्थितपदार्थपरिच्छेदवानित्यर्थः । तथा परिनिर्वृतोरागद्वेषविरहाच्छीतीभूतस्तदेव धर्मं पेशलं परिसंख्याय दृष्टिमान् परिनिर्वृतउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान्नियम्य स

के० ते पुरुषे एसर्वे स्त्रीसगादिक तथा क्षुधा तृषादिक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना गण एटले समूह तेने निराकरीने जे महापुरुष संसेवित मार्गे प्रवर्त्ते तेछियासुसमाहिए के० तेपुरुष सवररूप समाधिने विषे स्थित जाणवा ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–यथा वैतरणी नदी सर्वनदीना मध्ये दुस्तरा दुर्लंघ्या इह लोके सम्मता । एव लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन नरेण दुस्तरा । यदुक्त । सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणा लज्जा तावद्विधत्ते विनयमपि समालवते तावदेव । भ्रूचापाक्षेपमुक्ता श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीना न हृदि धृतिमुषो दृष्टिवाणा पतंति इति ॥ १६ ॥ यैरुत्तमैर्नारीणा सयोगास्तत्सयोगार्थमेव वस्त्रालकारादिनिरात्मन पूजना. कामविभूषा एष्ठत कृतास्त्यक्तास्ते महापुरुषा सर्वमेतत्स्त्रीप्रसगादिक निराकृत्य सुसमाधिना चित्तस्वास्थ्येन स्थिता ॥ १७ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जहाऽस्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थे । यथा वैतरणी नदीनां मध्येऽत्यतवेगवाहित्वात् विषमतटत्वाच्च दुस्तरा दुर्लंघ्या एवमस्मिन्नपि लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन हीनसत्वेन दु खेनोत्तीर्यंते । तथाहि । ताहावभावे कृतविद्यानपि स्वीकुर्वंति । तथाचोक्तं । सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणा, लज्जा तावद्विधत्ते विनयमपि समालबते तावदेव ॥ भ्रूचापाक्षेपमुक्ता श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीना न यदि धृतिमुषो दृष्टिवाणा पतति । तदेव वैतरणीनदीवत् दुस्तरानार्योभवतीति ॥ १६ ॥ अपिच । (जेहींत्यादि । यैरुत्तमसत्वै स्त्रीसंगविपाकवेदिभि पर्यतकटवोनारी सयोगा परित्यक्तास्तथा तत्सगार्थमेव वस्त्रालकारमाल्यादिभिरात्मन. पूजनाकामविभूषा एष्ठत कृता परित्यक्तेत्यर्थ । सर्वमेतत्स्त्रीप्रसगादिक क्षुत्पिपासादिप्रतिकूलोपसर्गकदबक च निराकृत्य ये महापुरुषसेवितपथान प्रति प्रवृत्तास्ते सुसमाधिना स्वस्थचित्तवृत्तिरूपेण व्यवस्थितानोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलरूपे प्रक्षोभ्यते । अन्येतु विषयाभिष्वगिण रूपादिपरीषहपराजिताअगारोपरिपतितमीनवङ्गाग्निना दह्यमानाअसमाधिना तिष्ठतीति ॥१७॥

एते ओघ तरिस्सति, समुद्द ववहारिणो ॥ जत्थ पाणा विसन्ना
सि, किच्चती सयकम्मणा ॥ १८ ॥ तच भिक्खू परिणाय, सुवते
समिते चरे ॥ मुसावाय च वज्जिज्जा, दिन्नादाण च वोसिरे ॥१९॥

अर्थ–एतेके० ए पूर्वोक्त परिसहना जीपणहार ते ओघके० ओघससारने तरिस्संतिके० तरसे समुद्दववहारिणोके० समुद्रवत, एटले जेम व्यवहारिया समुद्रने नाव वडे तरेछे तेनीपरे जाणीलेवु जत्थके० जे ससार समुद्रने विषे पाणाविके० प्राणी एटले जीव ते सन्नासिके०

दिकर्मणां भरतादीनामिव मुक्ति संजाता न तु शीतोदकपरिभोगादिति ॥ १ ॥ (अ हुजिएति) केचित्कुतीर्थिकाअथवा स्वयूथ्याएव शीतलविहारिण एवमाहु। नमी राजा विदेहपुरवासिनोलोकावैदेहास्तेयस्य संति स वैदेही अशनादिकमभुक्त्वा सिद्धिं गत.। रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकभुक्त्वैव भुंजानएव सिद्धिं गत। तथा बाहुक शीतोदकादिपरिभोग कृत्वा तथा तारागणनामा मुनि शीतोदकादिपरिभोगात्सिद्ध ॥ २ ॥

॥टीका–उक्तस्तृतीयोदेशक सांप्रत चतुर्थ समारभ्यते। अस्यचायमभिसंबंध। इहानंतरोदेशके अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गा प्रतिपादितास्तैश्च कदाचित्साधु शीलात् प्रच्याव्येत तस्य च शीलस्खलितस्य प्रज्ञापनानेन प्रतिपाद्यतेइति। अनेन संबंधेनायातस्यास्योदेशकस्यादिम सूत्र (आहसुइत्यादि)। के चन अविदितपरमार्थाआहुरुक्तवत। किंतदित्याह। यथा महापुरुषा.प्रधानपुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रभृतय। पूर्वं पूर्वस्मिन् काले तप्तमनुष्ठित तपएव धन येषा ते तप्ततपोधना पंचाग्न्यादितपोविशेषेण निष्टप्तदेहास्तएवभूता शीतोदकपरिभोगेन उपलक्षणार्थत्वात् कंदमूलफलाद्युपभोगेन च सिद्धिमापन्ना सिद्धिं गतास्तत्रैवभूतार्थसमाकर्णने तदर्थसद्भावावेशात् मंदोहोस्नानादित्याजित प्रासुकोदकपरिभोगभग्न सयमानुष्ठाने प्रविषीदति। यदि वा तत्रैव शीतोदकपरिभोगे विषीदति लगति निमज्जतीति यावत्। न त्वसौ वराकएवमवधारयति यथा तेषा तापसादिव्रतानुष्ठायिना कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्भूतसम्यग्दर्शनाना मौनीन्द्रभावसंयमप्रतिपत्त्या अपगतज्ञानावरणादिकर्मणा भरतादीनामिव मोक्षावाप्तिर्न तु शीतोदकपरिभोगादिति॥१ ॥ किंचान्यत्। (अहुजियाणमित्यादि) केच न कुतीर्थिका साधुप्रतारणार्थमेवमूचु । यदिवा स्वयूथ्या शीतलविहारिणएतद्वक्ष्यमाणमुक्तवतस्तद्यथा निमीराजा विदेहोनाम जनपदस्तत्रभवावैदेहास्तन्निवासिनोलोकास्तेऽस्य संतीति वैदेही। सएवभूतो निमीराजा अशनादिकमभुक्त्वा सिद्धिमुपगतस्तथा रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिक भुक्त्वैव भुंजानएव सिद्धिं प्राप्तइति। तथा बाहुक शीतोदकादिपरिभोग कृत्वा तथा नारायणोनाममहर्षि. परिणतोदकादिपरिभोगात्सिद्धइति ॥ २ ॥

आसिले देवले चेव, दीवायण महारिसी, पारासरे दग भो
च्चा, बीयाणि हरियाणिया॥ ३॥ एते पुब्व महापुरिसा, आहिता
इह समता॥ भोच्चा बीउदग सिद्धा, इति मेयमणुस्सुअं॥ ४॥

अर्थ–वली आसिले के० आसिल तथा देवले के० देवल चेव के० एमज दीवायणमहारिसी के० द्वीपायन महाऋषीश्वर अने पारासरे के० पाराशर ए सर्व ऋषीउं उ

पेसल धम्मं दिठिम परिनिवुमे ॥ उवसग्गे हियासित्ता, आमो
रकाए परिव्वएज्जा सितिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्री उवसग्गपरिन्ना
ए तइय अप्रयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–हवे बीजा सर्वव्रत दयानी वाड रूपछे तेकारणे अहिंसाने विशेष दीपावेछे उड़ के० उंचो अहे के० अधो एटले नीचो तिरिय के० तीर्छो वा के० अथवा एटले सर्व लोकमाहे क्षेत्रथी प्राणातिपात कह्यु हवे द्रव्यप्राणातिपात कहेछे जेकेईतसथावरा के० ए सर्व लोकमाहे जेकाइ त्रस अने स्थावर जीवछे सव्वछविरतिकुज्जा के० तेनेविषे सर्व प्रकारे एटले करण करावण अने अनुमतियेकरी सर्वत्रकाले विरतिपणु करे एटले सर्व जीवोनी दयानु पालवु तेने सतिनिव्वाण माहिय के० ते शांति एटले कर्म दाहनी उप शम करनार कहिये तथा एनेज निरवाण एटले मोक्षपदमांपण आहित एटले कह्युछे ॥२०॥ हवे अध्ययननो अर्थ उपसंहरतो कहेछे इमच धम्ममादाय के० एम श्रुत चारित्र रूप धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेणप्पवेदित के० श्रीमहावीर स्वामिये प्रकाश्यो ते मार्ग आदरीने भिक्खू के० साधु ते गिलाणस्स के० गिलानने विषे वेयावच्चने कुज्जा के० करे ते केवो थको वैयावच्च करे तो के अगिलाए समाहिए के० अगिलाणपणे आत्माने समाधिमान थको जे साधु वैयावच्च करेछे तेने धन्यछे एवी समाधि धारण करतो थको वैयावृत करे ॥ २१ ॥ संखायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने एटले जातिस्म रणादिके अथवा अन्यपासेथी सांभलीने पेसल के० रुडो एवो धम्म के० केवलीनु ना प्योजे धर्म तेने दिठिम के० सम्यक्दृष्टी जीव परिनिवुमे के० कषायने उपशमावी शीत लीभूत थको उवसग्गेहियासित्ता के० अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गने अहियासीने आमो रकाए के० ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी परिव्वएज्जासिके० सुधो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ ए उपसर्ग परिज्ञानामे त्रीजाध्ययननु अर्थ समाप्त थयु ॥

॥ दीपिका–कर्ध्वमध ये केचित् त्रसा स्थावरा प्राणिनस्तेषु सर्वत्र काळेऽवस्थासु च विरति कुर्यात् यस्माच्छांतिनिर्वाण कर्म दाहोपशम शांतिस्तद्रूप निर्वाण मोक्षपदं आ ख्यात कथित यतोविरतेर्मोक्षोभवतीति ॥ २० ॥ इम चारित्ररूप धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितमाख्यात ग्लानस्य साधोर्वैयावृत्त कुर्यात् भिक्षु । कथ । अग्लान तया यथाशक्ति समाहित समाधि प्राप्त यथाग्लानस्य समाधिरुत्पद्यते स्वस्यच योगान विषीदति यथा वैयावृत्त्यादिक विधेयमिति ॥२१॥ पेशल मोक्षप्रद धर्म संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् सम्यग्दर्शनी परिनिर्वृत शात उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य निपत्य

नी पठवाडे दोडतो जाय परंतु अग्रगामि नथाय अग्नीमाहेज विनाश पामे तेम जे शीतल विहारी छे तेपण मुक्तिना अग्रगामी नथाय अनंतोकाल संसारमाहेज नमे ॥५॥ इहके० ए मोक्षमार्ग विचारवाने प्रस्तावे एगेड के० कोइक शाक्यादिक अथवा स्वतीर्थि लोच प्रमुख कष्ट पीडया थका एम कहेके सातके० ते जे मुक्तिना सुख छे ते सातेणके० सुखे करीज विद्धती के० थाय परतु दुःख थकी सुख न थाय यथा शालिबीजाच्छाल्यांकुरो, जायतेनयवांकुर इतिवचनात् माटे लोचादिक कष्ट थकी मुक्ति शीरीते थशे एवीरीते बोलीने जेके० जे कोइक शाक्यादिक तह के० त्यां मोक्षविचारणाने प्रस्तावे आरिय के० श्रीतीर्थंकर देव तेनो प्ररुप्यो एवो जे मग्गं के० मोक्षमार्ग तेने मूकी आपेछे, ते परमचसमाहिय के० परम समाधिनो कारण जे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररुपछे तेने त्यागीने घणो ससारमाहे परिभ्रमण करेछे तेहिज देखाडेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(तछेति) तत्र कुमतश्रवणोपसर्गे मंदाविषीदंति संयमे सीदंति । यथा वाहेन नारेण छिन्नास्त्रुटितारासना सीदंति । कोर्थ । यथा रासनानारपीडिता मार्गेएव निपतति एव ते नयमनार त्यक्त्वा शीतलविहारिण स्यु । यथा पीठसर्पिणो नग्नगमनतया अग्न्यादिनये उद्भ्रांतनयना पश्चान्न परिसर्पति नाग्रगामिनोनवति अपितु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यति । एव तेपि शीतलविहारिणोन मोक्षगामिन स्युः अपितु तत्रैव ससारे अनंतकाल तिष्ठति ॥ ५ ॥ (इहेति) इह मोक्षविचारे एके शाक्यादय स्वतीर्थ्यावा लोचादिपीडिता । तुशब्दोविशेषणे । नाषते । तथाहि । सातं सुख सातेन सुखेन विद्यते स्यात् । यतउक्तं । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि, सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजति ॥ जीवेषु तस्मात्सुखमेव दद्यात् सुखप्रदानाल्लनते सुखानि ॥ १ ॥ इत्यात्मसुखान्मुक्तिसुख स्यात् नतु लोचादिदुःखात् । यदुक्त । मणुण नोअण नुच्चा, मणुण सयणासण ॥ मणुणसि अगारसि, मणुण ऊायए मुणी ॥१ ॥ तथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया नुक्त मध्ये पानक वाऽपराह्णे ॥ द्राक्षाखण्ड शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चाते शाक्यपुत्रेण दृष्टइति । अतोमनोज्ञाहारादेश्चित्तस्वास्थ्य तत समाधि सएव मुक्तिरिति । तत सुखेन सुखावाप्तिर्न तु लोचादिक्लेशेनेति एवये नाषते तथा आर्यं जैनइमार्ग परमच समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मक येत्यजति ते सदा नवे न्राम्यंतीति ॥६ ॥

॥टीका-एतदुपसहारद्वारेण परिहरन्नाह। (तत्रेत्यादि) तत्र तस्मिन् कुश्रुत्युपसर्गोदये मंदाअज्ञानानाविधोपसाध्य सिद्धिगमनमवधार्य विषीदंति संयमानुष्ठानेन पुनर्गत छदल्यज्ञा ।तद्यथा। येषा सिद्धिगमनमनूत् तेषा कुतश्चिन्निमित्तात् जातजातिस्मरणादिप्रत्ययाना मवाप्तसम्यक्ज्ञानचारित्राणामेव वल्कलचीरिप्रनृतीनामिव सिद्धिगमनमनूत् । न पुन क

छन्नपएण इत्थि मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणं सु जहा लिस्सति भिक्कुणो एगे ॥ २ ॥

अर्थ—(जेके०) जे उत्तमसाधु (मायरंचपियरंचके०) माता पिता अने भाइ प्रमुखनो (पुव सजोगंके०) पूर्वलो संयोग एटले आगलो संबध तथा श्वशुरादिकनो पश्चात् संबंध एटले पाछलथी थयलो सबध तेने विप्पजहायके० छांडीने एगेके० एकलो रागद्वेषरहित अने ज्ञान दर्शन तथा चारित्रे करीने सहितेके० सहित एवो छतो, चरिस्सामिके० हु सयम पालीश एवी प्रतिज्ञा करे, वली मेहुणो के० मैथुन थकी आरत्त के० निवर्त्योछे विवित्तेसु के० स्त्री पशु पंडग रहित एवा उपाश्रयनो गवेषणहार एवा साधुने पण कोइएक स्त्री विप्रतारेछे ते कहेछे ॥ १ ॥ सुहुमेण के० कोइएक कार्यने मीशे तपरिक्कम्म के० ते साधुने समीपे आवीने छन्नपएण के० छाने शब्दे, हलवे हलवे, अनेक गूढार्थ पदे करी एटले मर्मना वचने करी, इत्थिउमंदाके० कोइक स्त्री मद एटले विवेकरहित एवी छति पुरुषने वशकरवाना उवायपि के० उपायने ताउ के० ते स्त्री जाणसु के० जाणे जहा के० जे उपाये करीने एगेके० कोइक भिक्कुणो के० चारित्रिउ मोहनीय कर्मना उदय थकी स्त्रीने वश थई जाय अने लिस्सति के० सयम थकी पडी जाय ॥ २ ॥

अथ चतुर्थमध्ययनं.

॥ दीपिका—उक्त तृतीयमध्ययन । अथ चतुर्थमारभ्यते । तच्चस्त्रीपरीषहोजेयइत्यर्थवाचक तस्येदमादिमसूत्र । जेमायरमिति । योमातर पितर चशब्दात्पुत्रादिक च विप्रहाय त्यक्त्वा पूर्वसयोग एकोनि सग सहितोज्ञानादिभि सहितोवा चरिष्यामि सयम करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञ । आरतमुपरत मैथुन कामाभिलापोयस्य सआरतमैथुनोविविक्तेषु स्त्र्याद्याकुलेपु स्थानेषु चरतीति शेष । अथवा विविक्त स्थानं एषितु मार्गितु शीलमस्य विविक्तैषी॥१॥तं साधु सूक्ष्मेन परकार्यव्यपदेशेन छन्नपदेन कपटेन पराक्रम्य समीपमागत्य मद्वागत्यमदा कामोद्रेककारित्वान्निर्विवेका स्त्रिय शीलाद्भ्रंशयंति । कोर्थ । भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य स्त्रिय सयमाद्भ्रंशयति साधुमिति । प्रछन्नपद गुप्ताभिधान । यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघाधकारासु च शर्वरीपु ॥ मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि । स्त्रियस्तथोपायंजानन्ति यथाश्लिष्यते साधवोप्येके ॥ २ ॥

॥टीका—उक्त तृतीयमध्ययन साप्रतं चतुर्थमारभ्यते । अस्य चायमभिसबध । इहानंतराध्ययने उपसर्गा प्रतिपादितास्तेषा च प्रायोनुकूलाड सहास्ततोपि स्त्रीकृताअतस्तज्जयार्थमिद

रुपाणां तु स्वार्थान्युपगमप्रवृत्तानां परमार्थचिंतकानां महासत्वतया सर्वमेवेतत्सुखायैवे ति । तथाचोक्तं । तणसंथारनिविस्सो विमुनिवरो नहरागमयमोहो ॥ जपावइ मुत्तिसुह कत्तो तंचक्कवट्टीवि॥१॥ तथा । डुष्कृतसख्यया च महता क्षात पद वैरिण कायस्याशुचिता विरा गपदवी सवेगहेतुर्जरा ॥ सर्वत्यागमहोत्सवाय मरण जाति सुहृत्प्रीतये संपद्भिः परिपूरित जगदिद स्थान विपने कुतःइति ॥१॥ अपिचैकांतेन सुखेनैव सुखेऽन्युपगम्यमाने विचित्रस सारान्नाव स्यात्तथा स्वर्गस्थानां नित्यसुखिनां पुनरपि सुखानुभूतैस्तत्रैवोत्पत्ति स्यात्तथा नारकाणां च पुनर्दुःखानुनवात्तत्रैवोत्पत्तेर्न नानागत्या विचित्रता ससारस्य स्यान्नचैतत् दृष्टमिष्ट चेति ॥ ६ ॥

मा एय अवमन्नंता, अप्पेणं लुपहा बहुं ॥ एतस्स अमोरकाए, अयहारिव जूरह ॥ ७ ॥ पाणाइवाते वट्टंता, मुसावादे अस जता ॥ अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहुणेय परिग्गहे ॥ ८ ॥

अर्थ–मा के० अहो दर्शनीओ, तमे एय के० सुख थकी सुख थाय एवा वचने करी अवमन्नता के० श्रीजिनेंद्रना मार्गने अवहिलता थका अप्पेण के० अल्प विषयने अ र्थे बहु के० घणा एवाजे मोक्षना सुख तेने लुपहा के० गमावोठो, एतस्स क० एवा असत्य पक्षने अमोरकाए के० न मूकवे करीने अयहारिव के० लोहवाहकनी पेरे जूर ह के० क्करशो, जेम कोइक बे जण हता तेणे लोहनो नार उपाडयो हतो, पठी मार्गे जतां सुवर्ण दीठुं तेवारे एकजणे लोहना नारने नाखी देइने अमुलक सुवर्ण व स्तु ग्रहण करी अत्यंत धनवंत थयो, अने बीजाये लोहनो नार नाखी दीधो नही, ते पठी क्करवा लागो, तेम तमे पण क्करशो ए कथा सविस्तर श्रीरायप्रश्नि सूत्रमांहे त्यां थकी जोड लेवी ॥ ७ ॥ पाणाइवातेवट्टंता के० प्राणातिपातने विषे वर्त्तता मुसावादे के० मृषावादने विषे वर्त्तता अदिन्नादाणेके० अदत्तादान तथा मेहुणेके० मैथुन च के० वली परिग्गहेके० परिग्रह एटलाने विषे वट्टताके० वर्त्तता थका तमे असजताके० असय तिठो अल्प विषयसुखमा पड्या थका घणु एवु जे मोक्ष सुख तेनो विनाशकरोठो ॥८॥

॥ दीपिका–(माएत्ति) एन जैनमार्ग अवमन्यमाना परिहरतो ऽल्पेन सुखेन मा बहु मोक्षसुख लुपथ विध्वसथ । तथा एतस्यासत्पक्षस्यामोक्षेपरित्यागे अयोहारीव (क्करहत्ति) आत्मान कदर्थयते । यथाऽयसोलोहस्याहर्ता ऽपातराले रूप्यादिलानेपि दूरमानीतमिति लोह नोज्जितवान् पश्चादलाने जूरितवान् पश्चात्ताप कृतवान् एव यू

नि कर्माण्यनुजवन्तीत्येते दशपुरुषनिक्षेपान्नवति। सांप्रत प्रागुल्लिगितमुद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याह (पढमेइत्यादि) पढमेसंथवसंलवमाइहिखलणाउहोतिसीलस्स। बितिएइहेवखलियस्सथवञाकम्मबधोय॥५७॥प्रथमे उद्देशके अध्ययनार्थाधिकार।तद्यथा। स्त्रीभि सार्धसस्तवेन परिचयेन यथा संलापेन भिन्नकथाद्यालापेनादिग्रहणादगप्रत्यंगनिरीक्षणादिना कामोत्कोचककारिणोत्तवेदवपसत्वस्य शीलस्य चारित्रस्य स्खलनातुशब्दात्तत्परित्यागोवेति। द्वितीये त्वयमर्थाधिकारस्तद्यथा। शीलस्खलितस्य साधोरिहैवास्मिन्नेव जन्मनि स्वपक्षपरपक्षकृता तिरस्कारादिकाविम्बना तत्प्रत्ययश्च कर्मबधस्ततश्च संसारसागरपर्यटनमिति। किं स्त्रीभि कश्चित् शीलात् प्रच्याव्यात्मवश कृतोयेनैवमुच्यते रुतइति दर्शयितुमाह। (सूरामोइत्यादि) सूरामोमन्नता, कतिववियाहिचवहिप्पहाणाहि ॥ गहियाहुअनयपज्जोवकूलवालादिणोबहवे ॥ ५९ ॥ बहव पुरुषाअनयप्रद्योतकूलवालादय शूरावयमित्येव मन्यमाना ।मो इतिनिपातोवाक्यालंकारार्थे । कत्रिमाभि सद्भावरहिताभि स्त्रीभिस्तथोपधिमाया तत्प्रधानानि रुतकपटशतानिर्गृहीत्वा आत्मवशता नीता केचनराज्यादपरे शीलात् प्रच्याव्येहैव विम्बना प्रापिता ॥ अनयकुमारादिकथानकानिच मूलाद्यावश्यकादवगतव्यानि । कथानकत्रयोपन्यासस्तु यथाक्रम मर्त्यबुद्धिविक्रमात्यतबुद्धिविक्रमतपस्वित्वख्यापनार्थइति । यतएव ततोयत्कर्तव्य तदाह् । तम्हाणउवीसनोगं तवोणिज्ञमेवइबीसु ॥ पढमुद्देसेनणिया, जेदोसातेगणतेण ॥ ६०॥ (तम्हाइत्यादि) । यस्मात् स्त्रिय सुगतिमार्गार्गलामायाप्रधानावचनानिपुणास्तस्मादेतदवगम्य नैव विश्रंभोविश्वासस्तासा विवेकिना नित्य सदा गतव्योयातव्य कर्तव्यइत्यर्थ । ये दोषा प्रथमोद्देशके अस्योपलक्षणार्थत्वात् द्वितीयेच तान् गणयता पर्यालोचयता तासा मूर्तिमत्कपटराशिभूतानामात्महितमिच्छता नविश्वसनीयमिति । अपिच । सुसमञ्चावसमञ्चा, कीरतीअप्पसत्तियापुरिसा । दीसतीसूरवादीणारीवसगाणतेसूरा ॥६१॥(सुसमत्थेत्यादि) परानीकविजयादौ सुष्टु समर्थाअपि संत पुरुषा स्त्रीभिरात्मवशीकृताअसमर्थाभ्रूक्षेपमात्रभीरव क्रियतेत्पसात्विका स्त्रीणामपि पादपतनादिचाटुकरणेन नि सारा क्रियंते तथा दृश्यंते प्रत्यक्षेणोपलभ्यते । शूरमात्मान वदितु शील येषा ते शूरवादिनोपि नारीवशगा सतोदीनता गता । एवभूताश्च नते शूराइति । तस्मात् स्थितमेतदविश्वास्या स्त्रियइति । उक्तच । कोवीससेज्ञतासि,कतिवयभरियाणडुच्चियठाणे । खणरत्तविरत्तेण, धिरत्थुइत्थीणहिययाण ॥ १ ॥ अणं भणतिपुरउं अणुपासेइविज्ञमाणीउं । अन्नंच तासिहियए, जचखमतकरितिपुणो ॥२॥ कोएयाणणाहिइ, वेचलयागुम्मगुविलहिययाण ॥ भावभग्गासाण तत्रुपत्रभणतीण ॥ ३ ॥ महिलायरत्तमेत्ता, उच्छुखमचसक्कराचेव । सापुणविरत्तमित्ताणिबंकूरेविसेसेत्ति ॥४॥ महिलादिज्ञकरेज्ञवमारिज्ञवसठविज्ञभमणुस्स । तुहा

पण न थाय एव के० एरीते अहीं पण विन्नवणिठीसु के० प्रार्थना करती एवी स्त्रीनी साथे संबंध करवाथी दोसोतछकउंसिया के० त्यापण क्या थकीदोष आवशे अपितु काइज दोषनथी ॥ १० ॥

॥ दीपिका—एव पूर्वोक्त प्रकारेण एके बौद्धविशेषा शैवविशेषावा पार्श्वस्था स्वयूथ्या वाऽवसन्नकुशीलादयोऽनार्या स्त्रीवशगता प्रज्ञापयंति वदंति। यतस्तेषा वचन। प्रियादर्शन मेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनातरै ॥ प्राप्यते येन निर्वाण, सरागेणापि चेतसा इति । ते किंभूता जिनशासनपराङ्मुखा ॥ ९ ॥ (जहेत्ति) ते एवमाहु । यथा गंड पिटक पीडोपशमार्थं परिपीड्य रुधिरादिक निर्गाल्य मुहूर्तमात्र सुखिन स्युर्नच दोषेणानुषज्यते । एव विज्ञा पनासु प्रार्थनीयासु स्त्रीषु दोष कुत स्यात् । तत्रकोर्थ । गडपरिपीडनतुल्ये स्त्रीसबधे क दोष. स्यात् । तत्र दोषोयदि काचित्पीडा भवेन्न चेह साकाप्यस्तीति ॥ १० ॥

॥ टीका—साप्रत मतातरदूषणाय पूर्वपक्षयितुमाह । (एवमेगेइत्यादि) तुशब्द पूर्वे स्माद्विशेषणार्थे । एवमिति वक्ष्यमाणया नीत्या यदि वा प्राक्तनएव श्लोकोत्रापि सबध्यनी य । एवमिति । प्राणातिपातादिषु वर्तमानाएकइत्यादिबौद्धविशेषानीलपटादयोनाथ वादिकमण्डलप्रविष्टावा शैवविशेषा मदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्था स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलादय स्त्रीपरीषहपराजितास्तएव प्रज्ञापयति प्ररूपयति । अना र्या' अनार्यकर्मकारित्वात्। तथाहि। ते वदंति। प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनातरै । प्रा प्यते येन निर्वाण सरागेणापि चेतसा। किमित्येव तेनिदधतीत्याह।स्त्रीवशगता यतोयुवती नामाज्ञाया वर्तते बालाअज्ञारागद्वेषोपहतचेतसइति । रागद्वेषजितोजिनास्तेषा शासन माज्ञा कषायमोहोपशमहेतुभूता तत्पराङ्मुखा ससारनिष्पगिणोजैनमार्गविद्वेषिणएत द्वक्ष्यमाणमूचुरिति ॥ ९॥ यदूचुस्तदाह (जहागडमित्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थे । यथा येन प्रकारेण कश्चित् गण्डी पुरुषोगड समुत्थित पिटक वा तज्जातीयकमेव तदा कृतोप शमनार्थं परिपीड्य पूयरुधिरादिक निर्गाल्य मुहूर्तमात्र सुखितोभवति न च दोषेणानुष ज्यते । एवमत्रापि स्त्रीविज्ञापनाया युवतिप्रार्थनाया रमणीसबधे गण्डपरिपीडनकल्पे दोष स्तत्र कुत स्यात् । न ह्येतावता क्लेदापगममात्रेण दोषोभवेदिति । स्यात्तत्र दोषोयदि काचि त्पीडा भवेत् ॥ १० ॥

जहा मधादए नाम,थिमिअं भुजती दगं ॥ एवं विन्नवणिठीसु,
दोसो तछ कउसिआ ॥११॥ जहा विहगमा पिगा,थिमिअं भु
जती दग ॥ एव विन्नवणिठीसु, दोसो तछ कउसिआ ॥१२॥ ए

भूता लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुन कामाभिलापोयस्यासावारतमैथुनस्तदेवन्भू तोविविक्तेषु स्त्रीपशुपण्डकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येव सम्यगुत्थानेनोत्थाय विहरती ति । क्वचित्पाठो (विवित्तेसित्ति) विविक्त स्त्रीपडकादिरहित स्थान सयमानुपरोध्ये पितु शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैव कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यथाभवत्यविवेकिस्त्रीजनात्त दर्शयितुमाह । (सुहुमेणेत्यादि) । त महापुरुष साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशभूते न छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शील स्खलनयोग्यतापत्त्या अभिभूय का स्त्रिय कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानाना विधकपटशतकरणदक्षाविविधबिब्बोकवत्योभावमदा कामोद्रेकविधायितया सदसद्वि वेकविकला समीपमागत्य शीलात् ध्वसयति । एतदुक्त भवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुस मीपमागत्य सयमाद् भ्रंशयति । तथाचोक्त । पियपुत्तेभाइ किडगाणत्तूचकिमहगायसय णकिडगाय॥एतेजोवण किम्हगा पच्छन्नपइमहिलियाण । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभि मानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न भाषा मि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ता स्त्रीयो मायाप्रधाना प्रतारणो पायमपि जानत्युत्पन्नप्रतिभतया विदति । पाठातर वा ज्ञातवत्य यथाश्लिष्यंते विवेकि नोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु सगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिस णिसीयति, अभिक्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ काय अहे वि दसति, बाहूउद्धुकक्खमणुव्वजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं, इत्थिउ एगता णिमततिं ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

अर्थ–हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिस के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयति के० बेशीने अभिक्खण के० वारवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वत्थपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायअहे के० नीचलु शरीर जे जघादिक ते विदसति के० देखाडे बाहूउद्धु के० बं ने बाहु उची उपाडीने कक्ख के० काख देखाडती छती अणुव्वजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वली इत्थिउ एगता के० कोइ एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सय नाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्व्यजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमततिके० निमत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्र कारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० ए सुजने बधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्या बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थेछे ॥ ४ ॥

र स्वापत्यशब्दाकर्णनेऽस्मिन्नपि कूपतटस्थाएव रुदंति अरत्री त्वपत्यातिस्नेहांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिपवतीत्यतोन्यपक्षुन्योगफुरिका स्वापत्ये नृशमासक्ता एव तेपि कामासक्ता. ॥ १३ ॥

॥ टीका—दृष्टातेन दर्शयति । (जहेत्यादि) यथेत्ययमुदाहरणोपन्यासार्थे । मंधाद नइति मेव । नामशब्द सन्नावनाया। यथा मेपस्तिमितमनालोडयन्नुदक पिवत्यात्मानं प्रीणयति नच तथान्येषा किंचनोपघात विधत्ते।एवमत्रापि स्त्रीसवंधे न काचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमत कुतस्तत्र दोप स्यादिति ॥ ११ ॥ अस्मिन्नेवानुपघातार्थे दृष्टातबहुत्वख्यापनार्थं दृष्टातातरमाह। (जहाविहगमाइत्यादि) यथा येन प्रकारेण विहायसा गच्छतीति विहंगमा पक्षिणी(पिंगेति)कपिजलासाकाशएव वर्तमाना स्तिमित निभृतमुदकमापिवत्येवमत्रापि दर्जप्रदानपूर्विकया क्रियया अरक्ताद्विष्टस्य पुत्राद्यर्थे स्त्रीसवंधं कुर्वतोपि कपिजलायाइव न तस्य दोपइति । साप्रतमेतेपा गडपीडनतुल्यं स्त्रीपरिन्नोग मन्यमानानां तथैरूकोदकपानसदृश परपीडाऽनुत्पादकत्वेन परात्मनोश्च सुखोत्पादकत्वेन किल मैथुन जायतइत्यध्यवसायिना तथा कपिजलोदकपान यथा तस्यागोदकासंस्पर्शेन किल नवत्येव मरक्तद्विष्टतया दर्नाद्युच्चारणात् स्त्रीगात्रस्पर्शेन पुत्रार्थं न कामार्थं । ऋतुकालाभिगामितया शास्त्रोक्तविधानेन मैथुनेपि न दोपानुषग ॥ तथाचोचुस्ते। धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिण. । ऋतुकाले विधानेन दोपस्तत्र न विद्यते इति । एवमुदासीनत्वेन व्यवस्थिताना दृष्टातेनैव निर्युक्तिकारो गाथात्रयेणोत्तरदानायाह । (जहणामेइत्यादि) जहणा ममम्मलग्गे णसिर ... स्सइमणुस्सो ॥ अच्छेज्जपराहुत्तो किं नामततो णये पेच्छा ॥ ५३ ॥ जहणा विसगडू... ीवेत्तूणनामतुण्हिक्को ॥ अण्णेणअदीसंतो, किं नाम ततो नवमरेज्जा ॥ ५४॥ ... । सिरिघराउ, कोइरयणेणणामवेत्तूण । अच्छेज्जपराहुत्तो किणामततो न घेप्पे... या नामकश्चिन्मस्तकाग्रेणकस्यचिच्छिरश्छित्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् । किमेतद्... वलंबनेन न गृह्येत नापराधी नवेत्।तथा यथा कश्चिद्विपगंडूपं गृहीत्वा ... व नजेदन्येन वा सदृश्यमानोसौ किं नाम ततोसावन्यादर्शनात् न म्रियेत्... श्रेष्ठीगृहाद्भाण्डागाराद्रत्नानि महार्घाणि गृहीत्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् किमेत । अत्र च यथा कश्चित् शठतया अज्ञतया वा शिरच्छेदे विपगडूपरत्नापहारे माध्यस्थ्यमवलवेत । न च तस्य तदवलंबनेपि निर्दोपतेति । एवमत्राप्यवश्यंनाविरागकार्यमैथुने सर्वदोपास्पदे ससारवर्द्धके कुतोनिर्दोपतेति । तथा चोक्तं । प्राणिना बाधक चैतच्छास्त्रेगीत महर्षिनि ॥ नलिकातप्तकणकप्रवेशज्ञा ततस्तथा ॥ १ ॥ मूल चैतदधर्मस्य नवनावप्रवर्धन॥तस्माद्विषान्नवत्याज्यमिदं पापमनिच्छतेति निर्युक्तिगाथा

थका अप्पा के० पोताना आत्मानु रक्खिवं के० रक्षण सु के० रुमीरीते होइ के० था य ॥ ५ ॥ स्त्री स्वनावे अकार्य करवाने सावधान होयछे, तेमाटे निरकु के०साधुने आ मंतिय के० आमंत्रीने कहे के हु अमुक वखते आवीश, एम संकेत कहीने वस्स विय के० विश्वास उपजावे आयसा के० पोते पोताना आत्माने मैथुन सेववाने अर्थे एकदा प्रस्तावे निमंतंति के० साधुने निमंत्रण करे, अथवा साधुने निवारवा नणी ते स्त्री एम कहेके आयसा के० माहारा नर्तारना आदेशथी हुं तमारा पाशे आवी छु, एवी रीते पोताने वश करवाना वचन कहे एताणिचके० ए पूर्वोक्त वचनने करी अहींच पद पू रणार्थे छे एव के० एम से के० ते साधु जाणे के० ज्ञ परिज्ञायेकरी स्त्रीनुं स्वरूप जेवुछे तेवु जाणे सुंजाणे तोके सद्दाणि विरूवरूवाणि के० विषय संबंधिया नानाप्रकारना हावनावादिकरूप जे स्त्रीना शब्द तेने साधु बंध पासना कारण जाणे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–नो तासु स्त्रीषु चक्षुः संदध्यात् सधयेत् । स्वदृष्टिं स्त्रीदृष्टौ न निवेशयेदित्यर्थः ॥ यदि कार्ये ईषदवज्ञया निरीक्षेत । यडुक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योपिदंगमस्थिरया॥ अस्निग्धयादृशावज्ञयाह्यकुपितोपि कुपितइवेति॥तथा नोपि च साहसमकार्यकरणं तत्प्रार्थ नया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ न विहरेन्नगच्छेत् । अपिशब्दात्तानिः सहै कासने नतिष्ठेत्॥ यडुक्तं। मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा न विविक्तासनो नवेत्॥बलवानिंद्रियग्राम पमितोप्यत्र मुह्यतीति । एवमात्मा सुरक्षितोनवति ॥ ५ ॥ ता स्त्रिय साधुमामंत्र्य सं केतं ग्राहयित्वा (उस्सविअत्ति) सस्थाप्य उच्चावचैर्विश्वासजनकैरालापैर्विश्रंने पातयित्वा निजु आत्मनोनिमंत्रयति आत्मनोगेन साधुमन्युपगमं कारयति सच निक्षुरेतान्विरूपरूपा न् नानाविधान् शब्दादिविषयान् ज्ञपरिज्ञया जानीयात् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥६॥

॥ टीका–किंच । (णोतासु इत्यादि) नोनैव तासु शयनासनोपमंत्रणपाशावपा शिकासु स्त्रीषु चक्षुर्नेत्रं संदध्यात्सधयेद्वा न तदृष्टौ स्वदृष्टिं निवेशयेत् । सतिच प्रयोज ने ईषदवज्ञया निरीक्षेत । तथाचोक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया । अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया ह्यकुपितोपि कुपितइव ॥ १ ॥ तथा नापिच साहसमकार्यकर णं तत्प्रार्थनया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत । तथा ह्यसति साहसमेतत्संग्रामावतरणवद्य न्नरकपातादिविपाकवेदिनोपि साधोर्योषिदासंजनमिति । तथा नैव स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ विहरेत् गच्छेत । अपिशब्दान्न ताभिः सार्धं विविक्तासनोनवेद्यतोमहापापस्थानमेतद्यतीना यत् स्त्रीनिः सह सागत्यमिति ॥ तथाचोक्तं । मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा नविविक्तासनो नवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्राम पमितोप्यत्रमुह्यति ॥ १ ॥ एवमनेन स्त्रीसंगवर्जनेनात्मा स

खुता थका सयकम्मणाके० पोताना करेला पापकर्मे करी असातावेदनीयरूपे किच्चंती के० पीडायछे ॥ १८ ॥ हवे उपदेश कहेछे तंचनिरकू के० ते पूर्वोक्त चारित्रिउं परिस्सायके० हेय उपादेय स्वरूप जाणीने सुव्रते के० जला व्रतनो पालक समितेचरे के० पाच समिते समितो एवो थको विचरे अने मुसावायच वज्जिज्जा के० मृपावादने वर्जे तथा दिन्नादाणचवोसिरे के० अदत्तादान एटले चोरी थकी वोसिरे एटले चोरीनुं त्यागकरे, एम अनुक्रमे मैथुन तथा परिग्रहने पण जाणे ॥ १९ ॥

॥ दीपिका—एतेस्त्रीपरीषहजेतारउंघं ससार तरिष्यति । यथा व्यवहारिण सायात्रिका समुद्र तरति । यत्र नवौघे प्राणिनोविषयसगैर्विषण्णा संत कृत्यते पीडयते स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ तदेतत्प्राग्रुक्त निक्षु परिज्ञायज्ञात्वा सुव्रत शोननव्रतयुक्त समित. पचसमितिनिश्चरेत् सयमानुष्ठान कुर्यात् तथामृपावादं वर्जयेददत्तादानच व्युत्सृजोत् त्यजेत् । आदिशब्दान्मैथुनपरिग्रहादिच त्यजेत ॥ १९ ॥

॥ टीका—स्त्र्यादिपरीषहपराजयस्य फलं दर्शयितुमाह ।(एतेइत्यादि) यएते अनन्तरोक्ता अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गजेतारएते सर्वे उंघसंसार डुस्तरमपितरिष्यंति। इत्र्यौघदृष्टांतमाह । समुद्रलवणसागरमिव व्यवहारिण सायात्रिकायानपात्रेण तरत्येवं नवौघमपि ससारसंयमयानपात्रेण यतयस्तरिष्यति।तथा तीर्णास्तरतिचेति।नवौघमेव विशिनष्टि।नवौघे ससारसागरेप्राणा प्राणिन स्त्रीविषयसंगाद्विषण्णा सत रुत्यते पीयते स्वकृतेनानुष्ठितेन पापेनकर्मणा असद्वेदनीयोदयरूपेणेति ॥१८॥ साप्रतमुपसहारव्याजेनोपदेशातरविधित्सयाह । (तंच निरकूइत्यादि) । तदेतद्यथा प्रागुक्तं । यथा वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्यायै परित्यक्तास्ते समाधिस्था संसार तरति स्त्रीसंगिनश्च ससारातर्गता स्वकृतकर्मणा कृत्यंतइति । तदेतत्सर्वं निक्षणशीलोनिक्षु परिज्ञाय हेयोपादेयतया बुध्वा शोननानि व्रतान्यस्य सुव्रत पंचनि समितिनि समितइत्यनेनोत्तरगुणावेदन कृतमित्येवच्चूतश्चरेत् संयमानुष्ठान विदध्यात् तथा मृपावादमसद्भूतार्थनापण विशेषेण वर्जयेत्तथा अदत्तादान च व्युत्सृजेदंतशो धनमात्रमप्यदत्त न गृह्णीयात् । आदिग्रहणान्मैथुनादे परिग्रहइति । तच्चमैथुनादिकं यावज्जीवमात्महित मन्यमान परिहरेत् ॥ १९ ॥

उड्ढमहे तिरियं वा,जे केई तस थावरा ॥ सव्वड विरति कुज्जा, संति निवाणमाहियं ॥२०॥ इमं च धम्ममादाय,कासवेण प्पवेदितं॥ कुज्जा भिरकू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥२१॥ संखाय

अने कायाने संवखाठे एवा एगतियं अणगारके० कोइएक सुव्रती अणगारने स्नेहरूप बंधनेकरी बधंतिके० बाधे धर्म थकी पाडे तो बीजा सामान्य साधुनु केवुज शु. ॥८॥

॥ दीपिका–मनो बध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मञ्जुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रकटनादीनि तैरनेकै करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणति) उपसश्लिप्य समीपमागत्याथवा तदनतर मञ्जुलानि पेशलानि नापते । तथा भिन्नकथानीरहस्यालापै मैंथुनसबद्धैर्वचोभि सायोश्चित्तमकार्यकरणप्रति आज्ञापयति प्रवर्तयति ॥ ७ ॥ यथा सिंह (कुणिमेण) मासेनोपलोभ्य निर्भयमेकचर पाशेन यंत्रेण बध्नति एव स्त्रियोप्येक कचनाऽनगार साधु संवृतमपि बध्नति स्ववश कुर्वति ॥ ८ ॥

॥ टीका–अन्यच्च । (मणबंधणेहिइत्यादि) मनोबध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनागप्रत्यगप्रकटनादीनि । तथाचोक्त । णाहपियकं तसामिय दतियजियाउ तुम महपिउत्ति । जीएजीयामिअहं पहवसितमेशरीरस्स ॥ १ ॥ इत्यादिभिरनेकै प्रपचै करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणति) उपसश्लिष्य समीपमागत्याऽथ तदनतर मञ्जुलानि पेशलानि विश्रम्भजनकानि कामोत्काचकानि वा नापते । तदुक्त । मितमहुररिभिय जपुल्लएहिईसीकडक्खहसिएहिं॥ सविगारेहिवरागहियय पिहियं मयच्छीए ॥१॥तथा भिन्नकथानीरहस्यालापैर्मैथुनसबद्धैर्वचोभि सायोश्चित्तमादाय तमकार्यकरण प्रत्याज्ञापयति प्रवर्तयति स्ववश वा ज्ञात्वा कर्मकरवदाज्ञा कारयतीति ॥ ७ ॥ अपिच । (सीहजहेत्यादि) यथेति दृष्टातोपदर्शनार्थे । यथा बधनविज्ञा सिंह पिशितादिनामिषेणोपप्रलोभ्य निर्भयं गतभीक निर्भयत्वादेवैकचर पाशेन गलयत्रादिना बध्नति बध्वाच बहुप्रकार कदर्थयत्येव स्त्रियोनानाविधैरुपायै पेशलभाषणादिभि (एगतियंति) कचन तथाविधमनगार साधु संवृतमपि मनोवाक्कायगुप्तमपि बध्नति स्ववश कुर्वतीति । सवृतग्रहण च स्त्रीणा सामर्थ्योपदर्शनार्थ । तथाहि । सवृतोपि तानिर्बध्यते किं पुनरपरोऽसवृतइति ॥ ८ ॥

अह तत्थ पुणो णमयती रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धे मिएव पासेण फदते वि णमुच्चए ताहे ॥९॥ अह से णुतप्पई पच्छा भोच्चा पायसंच विसम्मिस्स ॥ एव विवेगमादाय, सवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥

अर्थ–अथ के० हवे साधुने पोताने वश करीने पछी तत्थ के० त्याते स्त्री पोताना कार्यनेविषे ते साधुने पुणोके० वली णमयती के० नमाडे एटले सेवकनी पेरे कार्य क

आमोक्षाय मोक्षार्थ परिव्रजेत् सयमेचरेदिति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतितृतीयाध्ययने चतुर्थउद्देशक समाप्त ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपरिव्रतानामहिंसायावृत्तिकल्पत्वात् तत्प्राधान्यख्यापनार्थमाह (उड्ढमहे इत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चेत्यनेन क्षेत्रप्राणातिपातोगृहीत । तत्रच ये केचन त्रसतीति त्रसाद्विन्त्रिचतु पचेंद्रिया पर्याप्तापर्याप्तकनेदनिन्नास्तथा तिष्ठतीति स्थावरा पृथिव्यप्तेजो वायुवनस्पतय सूक्ष्मवादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नाइत्यनेन च डव्यप्राणातिपातोगृहीत । सर्वत्र काले सर्वास्ववस्थास्वित्यनेनापि कालनावनेदनिन्न प्राणातिपातउपात्तोड्रष्टव्य । तदेव चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु कृतकारितानुमतिनिर्मनोवाक्काये प्राणातिपातविरति कुर्यादित्यनेन पादोनेनापि श्लोकद्वयेन प्राणातिपातविरत्यादयोमूलगुणा ख्यापिता । साप्रतमेतेषा सर्वेषामेव मूलोत्तरगुणानां फलोद्देशेनाह । शांतिरिति कर्मदाहोपशमस्तदेवच निर्वाण मोक्षपद यदाख्यात प्रतिपादित सर्वद्वद्वापगमरूप तदस्यावश्य चरणकरणानुष्ठायिन साधोर्नवतीति ॥ २० ॥ समस्ताध्ययनार्थोपसहारार्थमाह । (इमच धम्म मित्यादि) इममिति पूर्वोक्त मूलोत्तरगुणरूपं श्रुतचारित्राख्य वा डुर्गतिधारणात् धर्ममादायाचार्योपदेशेन गृहीत्वा (किंनूतमिति)। तदेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना समुत्पन्नदिव्यज्ञानेन नव्यसत्वाऽनुग्रहणानिलापिणा प्रवेदितमाख्यात समधिगम्य निक्षु साधु परीषहोपसर्गैरतर्जितोग्लानस्यापरस्यसा धोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् । कथमिति । स्वतोऽग्लानतया यथाशक्ति समाहितइति समाधि प्राप्त । इदमुक्त नवति । कृतकृत्योहमिति मन्यमानोर्वैयावृत्त्यादिक कुर्यादिति ॥ २१ ॥ अन्यच्च (सखायइति) सख्यायेति सम्यक् ज्ञात्वा स्वसमत्या अन्यतोवा श्रुत्वा (पेशलति) मोक्षगमन प्रत्यनुकूलकितधर्मं श्रुतचारित्राख्यं दृष्टिमान् सम्यक्दर्शनी परिनिर्वृतइति । कपायोपशमाच्छीतीनूत. परिनिर्वृतकल्पोवा उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् सम्यग् नियस्यातिसह्यामोक्षाय मोक्षंयावत् परिसमंतात् व्रजेत् सयमानुष्ठानेन गच्छेदिति । इतिशब्द समाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयचर्चापि तथैवेति ॥ २२ ॥ उपसर्गपरिज्ञाया समाप्तश्चतुर्थोद्देशकस्तत्परिसमाप्तौ च तृतीयाध्ययनमिति । ग्रंथाग्र ॥७७५॥

हवे प्रथम श्रुतस्कधने विषे चोथुं अध्ययन प्रारनियें छैये त्रीजा अध्ययननेविषे जे उपसर्ग कह्या तेमाहे अनुकूल उपसर्ग सहन करवा डुर्नेनले एम कह्यु हतु, तेमाटे स्त्रीना करेला अनुकूल उपसर्ग सहन करवाने अर्थे चोथुं अध्ययन कहिये छैयें.

जे मायरंच पियरच, विप्पजहाय पुव्वसजोगं ॥ एगे सहिते च
रिस्सामि, आरतमेहुणो विवित्तेसु ॥ १ ॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म

मिश्र नोजन त्नुक्त्वा पश्चात्तत्र कृतावेगाकुलितोऽनुतप्यते । तद्यथा । किमेतन्मया पापेन सांप्रतेक्षिणा सुखरसिकतया विपाककटुकमेवनूत नोजनमास्वादितमिति । एवमसावपि पुत्रपौत्रडुहितृजामातृस्वसृन्रातृव्यनागिनेयादीना नोजनपरिधानपरिणयनालंकारजातमृतकर्मतद्व्याधिचिकित्साचिंताकुलोपगतस्वशरीरकर्तव्य प्रनष्टैहिकामुष्मिकानुष्ठानोऽहनिश तद्व्यापारव्याकुलितमति परितप्यते । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या विपाक स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य । विवेकमिति वा क्वचित्पाठस्तद्विपाक विवेकं चादाय गृहीत्वा स्त्रीनिश्चारित्रपरिपंथिनीनि सार्धं संवासोऽसतिरेकत्र नकल्पते न युज्यते कस्मिन्द्रव्यनूते मुक्तिगमनयोग्ये रागद्वेषरहिते वा साधौ । यतस्तानि सार्धं संवासोवश्य विवेकिनामपि सदनुष्ठानविघातकारीति ॥ १० ॥

तम्हाउ वऊए इत्थी, विसलित्तच कटग नच्चा ॥ उए कुलाणि वसवत्ती आघाते ण सेवि णिग्गंथे ॥ ११ ॥ जे एय उंउ अणुगिद्धा अन्नयरा ढुंति कुसीलाण ॥ सुतवस्सिएवि से निरकु, नोविहरे सह णमित्थीसु ॥१२॥

अर्थ–जे कारण माटे स्त्रीना समागम थकी कडवा विपाक प्राप्त थाय तम्हा के० तेकारणे इत्थीके० स्त्रीने वऊएके० वर्जे तु शब्द थकी स्त्रीनी साथे आलाप सलाप पण करे नहि, जेम विसलित्तच के० विषेकरी लिप्त एटले विषेकरी खरडयो एवो कटगके० कांटो नच्चाके० जाणीने तेने दूर थकी टालियें, तेम साधु होयते स्त्रीने विषे करी खडया कांटानी पेरे डुर थकी टाले तथा उए के० एकलो थको कुलाणि के० ते गृहस्थने कुलेजइ, वसवत्ती के० तेनो वशवर्त्ती थको जे साधु आघाते के० धर्मकथा कहे सेवि के० ते द्रव्यलिंगी साधु पण णणिग्गंथे के० निर्ग्रंथ नही निषिद्धाचरण सेवनादित्यर्थ ॥ ११ ॥ जे एय के० जे चारित्रिया ए स्त्री सबंधिया उंउ के० निंदनिक तेने विषे अणुगिद्धा के० गृद्ध एटले मूर्च्छा थका होय ते अन्नयराढुंति कुसीलाण के० अन्य पासथा उसन्ना कुशीलिया प्रमुख जे स्त्रीनी पाशे कथाना करनार होय तेमाहेला कुशीलिया जाणवा ते कारणे सुतवस्सिएवि के० रूडो तपसी जे होय सेनिरकु के० ते साधु नोविहरेसहणमित्थीसु के० स्त्रीसहित विचरे नही, तथा स्त्रीनो समागम आलाप सलापादिक पण करे नही अही ण वाक्यालंकारेछे स्त्रीने अंगारा सरखी जाणी दूर टाळी आपे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–तस्मात् स्त्रियो वर्जयेत् । तुशब्दादालापादिन कुर्यात् । विषे लिप्त कंटकमिव ज्ञात्वा । विषदिग्धकंटक शरीरेमग्न सन्ननर्थं करोति स्त्रियस्तु स्मरणादपि । यत । विषस्य विषयाणा च दूरमत्यंतमतर ॥ उपभुक्तं विषं हंति विषया स्मरणादपीति । तथा (उए)

मध्ययनमुपदिश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो द्वेधा। अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च। तत्रा ध्ययनार्थाधिकार प्राग्वत् निर्युक्तिकृता(थीदोषविवज्जणा)चेवेत्यनेनस्वयमेवप्रतिपादित। उद्देशार्थाधिकार तूत्तरनिर्युक्तिकृदेव भणिष्यति।सांप्रत निक्षेप सचौघनामसूत्रालापकभेदा त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययन नामनिष्पन्ने स्त्रीपरिज्ञेति नाम। तत्र नामस्थापने क्षु एणत्वादनादृत्य स्त्रीशब्दस्य द्रव्यादिनिक्षेपार्थमाह। (दव्वाभिलावेत्यादि)। दव्वाभिला वचिंधे, देवेभावेयइत्थिणिक्खेवो । अहिलावे तहसिद्धी, भावे वेयम्मिउवउत्तो॥ ५६ ॥ तत्र द्रव्यस्त्री द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च । आगमत स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चानुपयुक्तो नुपयोगोद्रव्यमिति कृत्वा नोआगमतोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तात्रिधा । एकभविका बद्धाऽयुष्काभिमुखनामगोत्रावेति। चिन्ह्यते ज्ञायतेऽनेनेतिचिह्न स्तननेपथ्यादिक चिह्नमा त्रेण स्त्री चिह्नस्त्री अपगतस्त्री वेदछद्मस्थ केवलीवा अन्योवा स्त्रीवेषधारी य कश्चि दिति। वेदस्त्रीतु पुरुषाभिलापरूप स्त्रीवेदोदय। अभिलापभावौ तु निर्युक्तिकृदेव गाथाप श्चार्द्धेनाह। अभिलाप्यते इत्यभिलाप स्त्रीलिंगाभिधान शब्द। तद्यथा।शाला माला सिद्धि रिति। भावस्त्री तु द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमत स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्त उपयोगोभावइति कृत्वा नोआगमतस्तु भावविषये निक्षेपे वेदेस्त्रीवेदरूपे वस्तुन्युपयुक्ता तदुपयोगानन्यत्वाद्भावस्त्री भवति । यथाऽग्नावुपयुक्तोमाणवकोग्निरेव भवत्येवमत्रा पि। यदिवा स्त्रिवेदनिवर्तकान्युदयप्राप्तानि यानि कर्माणि तेषूपयुक्तेति तान्यनुभवती भावस्त्रीति। एतावानेव स्त्रियोनिक्षेपइति। परिज्ञानिक्षेपस्तु शस्त्रपरिज्ञावद् द्रष्टव्य । सां प्रत स्त्रीविपक्षभूत पुरुषनिक्षेपार्थमाह। (नामठवणाइत्यादि)। णामठवणादविए खेत्ते कालेयपज्ञणणकम्मे।भोगेगुणेयभावे,दसएएपुरिसणिक्खेवा ॥५७॥ नामेति सज्ञा तन्मात्रे ण पुरुषोनामपुरुष । यथाघट पटइति यस्य वा पुरुषइति नामेति। स्थापनापुरुष काष्ठा दिनिर्वर्तितोजिनप्रतिमादिक । द्रव्यपुरुषोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोनो आगमतएक भविकोबद्धायुष्कोभिमुखनामगोत्रश्चेति। द्रव्यप्रधानोवा मम्मणवणिगादिरिति। योयस्मिन् सुराष्ट्रादौ क्षेत्रे भव सक्षेत्रपुरुषोयथा सौराष्ट्रिकइति । यस्यच यत् क्षेत्रमाश्रित्य पुंस्त्वं भवतीति।योयावत्कालं पुरुषवेदवेद्यानि कर्माणि वेदयते सकालपुरुषइति। यथा पुरिसेणं भंते पुरिसेत्ति कालउक्केव चिरं होइ। गो जहन्नेण एगसमयउक्कोसेणजोजम्मिकालेपुरिसोभ वइ। जहाकोइएगमिपक्खेपुरिसोएगमिनपुंसगोत्ति।प्रजन्यतेऽपत्य येन तत्प्रजनन शिश्नं लिंगं तत्प्रधान पुरुष परपुरुषकार्यरहितत्वात् प्रजननपुरुष ।कर्मानुष्ठानं तत्प्रधान पुरुष कर्म पुरुष· कर्मकरादिकस्तथा भोगप्रधान· पुरुषोभोगपुरुषश्चक्रवर्त्यादिस्तथा गुणाव्यायाम विक्रमधैर्यसत्वादिकास्तत्प्रधान पुरुषोगुणपुरुष । भावपुरुषस्तु पुंवेदोदये वर्तमानस्त्द्वेधा

कहेछे अवि के० अपि सनावनाये धूयराहिंसुएहाहिं के० धूआ एटले बेटी साथे पण साधु विचरे नहीं, तथा सुएहा एटले वहु साथे अने धातीहिं के० धाव, ते माता स मानछे ते साथे पण, अडुव के० अथवा दासीहिं के० दासी साथे, तथा महतीहिं के० म्होटी स्त्री साथे, वा के० अथवा कुमारीहिं के० कुमारिका जे न्हानी स्त्री, तेनी साथे पण सथव के० संस्तव परिचय से के० ते साधुनकुझा के० नकरे तेने अणगा रे के० अणगार जाणवो ॥ १३ ॥ हवे ए पूर्वोक्त स्त्रीउंना समागम थकी जे दोष उप जे ते कहेछे अथ के० हवे कदापि एगता के० एकदा प्रस्तावे एकाते स्त्रीनी साथे साधु नो ससर्ग तेने णाईण के० ज्ञाति गोत्रि वा के० अथवा सुहीण के० सुहृत् एटले मि त्र सबधि वर्ग होति के० त्या होय ते दठु के० देखे तेवारे तेउंने अप्पिय के० अप्री ति एटले द्वेष उपजे अने तेउं जाणेके गिद्धासत्ता कामेहिं के० जूवो ए पुरुष एवा गृ द्धछे कामजोगने विषे आसक्त देखायछे एम चितवी सक्रोध वचन बोले के मणुस्सोसिके० अरेतु एनो पुरुषछे के शु जे तु अही घणो घणो बेशेछे, रस्कण पोसणे के० राखवे पो षवे आदर करेछे, तेनो शु कारणछे, एवा कठोर वचन ते बोले ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–डुहितृनिरपि पुत्रीनिरपि सार्धं न विहरेत् स्नुषा सुतजार्यास्तानिर्धात्र्यास्त न्यदायिन्यस्तानिरथवा दासीनिर्महतीनि प्रौढानि कुमारीनिर्लघ्वीनिर्वा सार्धं संस्त व परिचय न कुर्यादनगार ॥ १३ ॥ अथ एकदा स्त्रीनि सह सगत साधुं दृष्ट्वा योषि तुज्ञातीना सुहृदा वाऽप्रिय चित्ताशका नवति । एवच ते माब्रुवेरन् । यथा सत्वा प्राणि न कामैर्गृद्धा ।एवविधोप्यय श्रमण स्त्रीसक्तचेता स्त्रीनि सार्धं तिष्ठति । तडुक्त । मुंड शिरोवदनमेतदनिष्टगधि, निक्षाशनेन नरण वहतोदरस्य । गात्र मलेन मलिन गतसर्व शोन, चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वाछेति ॥ अतिस्त्रीसग दृष्ट्वा तव ज्ञातय क्रुद्धा साधु ब्रुवति रक्षण वा पोषण वा समाहारद्वद्वे रक्षणपोषण तत्र त्वमादर कुरु ।यतस्त्व मस्यामनुष्योसि । यदिवा वय रक्षणे पोषणे प्रछन्नास्त्वमेव मनुष्योसि त्वयैव सार्धमिय मेकाकिन्यहर्निंश त्यक्तगेहव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका–कतमानि पुन स्त्रीनि सार्धं न विहर्तव्यमित्येतदाशक्याह । (अविधूयराही त्यादि) अपिशब्द प्रत्येकमनिसबध्यते । (धूयराहिंत्ति) डुहितृनिरपि सार्धं न विहरे त्तथा स्नुषा सुतनार्यास्तानिरपि सार्धं न विविक्तासनादौ स्थातव्य । तथा धात्र्य पंच प्रकारा स्तन्यदायिन्योजननीकल्पास्तानिश्च साकं न स्थेय । अथवा सता तावदपरायोषि तोयाश्रप्येतादास्योघटयोषित सर्वापसदास्तानिरपि सह सपर्क परिहरेत् । तथा महती नि' कुमारीनिर्वाशब्दाल्लघ्वीनिश्च सार्धं संस्तव परिचय प्रत्यासत्तिरूप सोऽनगारोन कु

जीवाविज्ञाअदुवरणर वचयावेज्ञा ॥ ५ ॥ एविरत्तकतेसुकय, एविणेदुणवियदाणस म्माण ॥ एकुलणपुत्तयंआयतच शीलमहिलियाउं ॥ ६ ॥ मावीसत्नहताण महि लाहियमाणकवड नरियाण ॥ सिसुसेहनिदयाण अलियवयणजपणरयाण ॥ ७ ॥ मारेइ जियत्तपिहुमयंपि अणुमरइकाइनत्तार ॥ विसहरगइवचरियं वकविवकमहेलाण ॥ ८ ॥ गगाएवालुयंसागरेजलहिमवउंयपरिमाण । जाणति बुद्धिमतामहिलाहिययंणजाणति ॥ ९ ॥ रोवावतिरुवतिय अलियंजपंतिपत्तियावति ॥ कवडेणयरवतिविसमरतिणयजतिस ड्डाव ॥१०॥ चितितिकज्जमसुअसुसववइन्नासईअसु ॥आढवइकुणइअसु माइणग्गूणिय मिसारो ॥ ११ ॥ असयारन्नाणतहासवेसिलोगगरहणिज्जाण ॥ परलोगवैरियाणकारणयं चेवइत्थीउं ॥ १२ ॥ अहवाकोजुवईण जाणइचरियंसहावकुमिलाण ॥ दोसाणआगरोच्चि य जणेसरीरेवसइकासा ॥ १३ ॥ मूलडुचरियाण हवइउणरयस्सवत्तिणी ॥ विबुला मो रकसनमहाविग्धवज्जेयवासयानारी ॥ १४ ॥ धस्रातेवरपुरिसाजेच्चियमोत्तूणणिययजुव ईउं ॥ पवइयाकयनियमासिवमयलमणुत्तरपत्ता ॥ १५ ॥ अधुना यादृक् ग्रोनवति तादृक्कं दर्शयितुमाह । धम्ममिजोदढमइसोसूरोसत्तिउयवीरोय ॥ णहुधम्मणिरुत्साहोपुरि सोसूरोसुवलिउंवि ॥ ६२ ॥ (धम्ममित्यादि) । धर्मे श्रुतचारित्राख्ये दृढा निश्चला मति र्यस्य सतथा एवनूत सइंदियनोइंद्रियारिजयाच्छूरस्तथा सात्विकोमहासत्वोपेतोऽसा वेव वीर स्वकर्मदारुणसमर्थोऽसावेवेति । किमिति यतोनैव धर्मेनिरुत्साह सदनुष्ठाननि रुद्यम सत्पुरुषाचीर्णमार्गपरिन्रष्ट पुरुष सुष्ठु बलवानपि शूरोनवतीति । एतानेव दोपान् पुरुपसवंधेन स्त्रीणामपि दर्शयितुमाह । एतेचेवयदोसा पुरीसगमाएविइच्चियाणपि ॥ त म्हाणअप्पमाउविरागमग्गमितासिंतु ॥६ ७॥(एतेचेवेत्यादि)। ये प्राक्शीलप्रध्वसादय स्त्री परिचयादिन्य पुरुषाणामनिहिताएतएव न्यूनाधिका पुरुषेण सह य समाय सबधस्त स्मिन स्त्रीणामपि यस्माद्दोपानवति तस्मात्तासामपि विरागमार्गे प्रवृत्ताना पुरुषपरिचया दिपरिहारलक्षणोऽप्रमादएव श्रेयानिति । एव यदुक्त स्त्रीपरिज्ञेति तत्पुरुषोत्तमधर्मप्रति पादनार्थमन्यथा पुरुषपरिज्ञेत्यपि वक्तव्येति । साप्रतं सूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेद । (जेमायरचेत्यादि) । अस्य चाऽयमनंतरसूत्रेण सह सब ध । तद्यथा । अनतरसूत्रेनिहितमामोक्षाय परिव्रजेदित्येतच्चाऽशेषाभिष्वगवर्जितस्य नवतीत्यतोऽनेन तदनिष्वगवर्जनमनिधीयते । य कश्चिदुत्तमसत्वोमातर पितर जननीं जनयितारमेतद्ग्रहणादन्यदपि भ्रातृपुत्रादिक पूर्वसयोग तथा श्वश्रूश्वशुरादिक पश्चात्सं योगं च विप्रहाय त्यक्त्वा । चकारौसमुच्चयार्थौ । एकोमातापित्राद्यभिष्वगवर्जित क षायरहितोवा तथा सहितोज्ञानदर्शनचारित्रै स्वस्मै वा हित स्वहित परमार्थानुष्ठा नविधायी चरिष्यामि सयम करिष्यामीत्येव कृतप्रतिज्ञ ।ता मेव प्रतिज्ञा सर्वप्रधान

ति किंपुन कृतविकार। तथा स्त्रीदोषाशंकिनश्च ते नवति। ते चामी दोषा। नोजनैर्बहुविधै र्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरियमेनमुपचरति अथवा नोजनार्थमुपविष्टेष्वपि श्वशुरादिषु साध्वागमने सा वधू समाकुला सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्ददाति। यथा। कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइका संस्कृत्य दत्ता। ततश्चासौ श्वशुरेणोपलक्षिता पत्या क्रुद्धेन ताडिता ऽन्यग तचित्तेत्याशंकया गृहान्निर्घाटितेति ॥१५॥ तानि स्त्रीभिः सह संस्तव परिचय कुर्वंति। किंनूता। प्रभ्रष्टाः सचलिता समाधियोगेभ्योधर्मध्यानव्यापारेभ्य प्रच्युता तस्मात् श्रमणा (एसमेतित्ति) नगच्छति। सत्य शोननाअनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्या स्त्रीकृता माया अथवा स्त्रीवसती आत्महिताय स्वहित मन्यमाना ॥ १६ ॥

॥ टीका–(किंचान्यत्। समणपीत्यादि) श्राम्यतीतिश्रमण साधु। अपिशब्दोभिन्नक्रम। तमुदासीनमपि रागद्वेषविरहान्मध्यस्थमपि दृष्ट्वा।श्रमणग्रहण तप खिन्नदेहोपलक्षणार्थं। तत्रैवनूतेपि विषयद्वेषिण्यपि साधौ तावदेके केचन रहस्यस्त्रीजल्पनकृतदोषत्वात्कुप्यंति। यदिवा (पाठांतर) "समण दट्ठूणुदासीण" श्रमण प्रव्रजित उदासीन परित्यक्त निजव्यापार स्त्रिया सह जल्पंत दृष्ट्वोपजन्य तत्राप्येके केचन तावत् कुप्यति किंपुन कृतविकारमितिनाव.। अथवा स्त्रीदोषाशंकिनश्चते नवति। ते चामी स्त्रीदोषा। नोजनैर्नानाविधैः राहारैर्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरेतदर्थमेव संस्कृतैरियमेनमुपचरति तेनायमहर्निशमिहागच्छतीति।यदिवा नोजनं श्वशूरादीना न्यस्तैरर्धदत्ते सति सावधू साध्वागमनेन समाकुलीनूता सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्दद्यात्ततस्ते स्त्रीदोषाशंकिनोनवेयुर्यथेय डु शीलाऽनेनैव सहास्तइति। निदर्शनमत्र यथा कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणैकगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाऽति कृत्वा राइका संस्कृत्य दत्तास्ततोसौ श्वशुरेणोपलक्षिता निजपतिना क्रुद्धेन ताडिता अन्यपुरुषगतचित्तेत्याशंक्य स्वगृहान्निर्घाटितेति ॥ १५ ॥ किंचान्यत्। (कुर्वतीत्यादि) तानि स्त्रीभिः सन्मार्गाद्भ्रष्टाभिः सह संस्तव तद्गृहगमनालापदानसंप्रेक्षणादिरूप परिचय तथाविधमोहोदयात्कुर्वंति विदधति। किंनूता। प्रकर्षेण भ्रष्टा स्खलिता समाधियोगेभ्य।समाधिर्धर्मध्यान तदर्थ तत्प्रधानावा योगामनोवाक्कायव्यापारास्तेभ्य प्रच्युता शीतलविहारिणइति। यस्मात् स्त्रीसंस्तवात्समाधियोगपरिभ्रंशोनवति तस्मात्कारणाछ्रमणा सत्साधवोन (समेति) न गच्छंति। सद्भोजना सुखोत्पादकतयाऽनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्यास्त्रीभिः कृता माया यदिवा स्त्रीवसतीरिति आत्महिताय स्वहितं मन्यमाना। एतच्च स्त्रीसंबंधपरिहरण तासामप्यैहिकामुष्मिकापायपरिहाराद्धितमिति। क्वचित्पश्चार्द्धमेव पठ्यते ॥ तद्माससमणाउ जहा

॥ दीपिका—भृशं सस्नेह निषीदंति तिष्ठंतिस्त्रिय पुष्णात्यतिपोषं मनोहरवस्त्रं परिदधति अभीक्ष्ण निरतर तथाध काय ऊर्वादिक दर्शयति बाहून् उद्धृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षामाऽदर्यानुव्रजेत् अनुकूलं गच्छेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्भोगयोग्यै स्त्रियएकदा निर्व्यंजनकालादौ निमंत्रयति प्रार्थयति साधु । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरुपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगच्छेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । (पासेभिसमित्यादि) पार्श्वे समीपे भृशमत्यर्थमुरु पीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वंत्योनिषीदति विश्रंभमापादयितुमुपविशंतीति । तथा काम पुष्णातीति पोष कामोत्काचकारि शोभनमित्यर्थ । तच्च तद्वस्त्रं तदभीक्ष्णमनवरत तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वाभिलापमावेदयंत्य साधुप्रतारणार्थ परिधान शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽध कायमूर्वादिकमनगोद्दीपनाय दर्शयति प्रकटयंति तथा बाहुमुध्धृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वभिमुख व्रजेत् गच्छेत् । संभावनाया लिङ् । संभाव्यते एतदनगप्रत्यगसंदर्शकत्व स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । (सयणासणेइत्यादि) शय्यतेऽस्मिन्निति शयन पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमासदकादीत्येवमादिना योग्येनोपभोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोषितएकदेति विविक्तदेशकालादौ निमंत्रयंत्यभ्युपगम ग्राहयति । इदमुक्तं भवति । शयनासनाद्युपभोगप्रति साधु प्रार्थयति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्य परमार्थदर्शी जानीयादवबुध्येत स्त्रीसबधिकारिण पाशयति बध्नतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रकारानिति । इदमुक्त भवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योभवति । तथाचोक्तं । अंव वा निबं वाअब्भासगुणेन आरुहइ वल्ली । एव इत्थीतोविज आसन्न तमिच्छंति ।१। तदेवभूता स्त्रियोज्ञात्वा न तानि सार्ध साधु सग कुर्यादितस्तदुपचारादिक सगोदुष्परिहार्योभवति । तदुक्तं जइइसिपेतुजे, पुविंत आमिसेण गिण्हाहि॥आमिसपासनिवद्धोकाहिइकज्जअकज्जंवा॥ २ ॥ ४ ॥

नोतासु चक्खु सधेज्जा, नोविय साहसं समभिजाणे ॥ णोसहियंपि विहरेज्जा, एवमप्पासु रक्खिउ होइ ॥५॥ आमंतिय उस्सविय भिक्खु आयसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६॥

अर्थ—नो तासुचक्खुसधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी साथे साधु पोतानी दृष्टी मेलवे नही, तथा नोवियसाहस के० मैथुनादिक अकार्यनु करवु करे नही, अने समभिजाणे के० ते स्त्रीनु कहेवु जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही णोसहियं पिविहरेज्जा के० वली ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही, एव के० एरीते रहेता

हवेइत्यादि) बहव केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य पुनस्तथाविधमोहोदयान्मिश्रीनावऽ ति । ड्व्यलिंगमात्रसद्भावाद्भावतस्तु गृहस्थसमकल्पाइत्येवनूतामिश्रीनाव प्रस्तुता सम नुप्राप्तान गृहस्थाएकाततोनापि प्रव्रजितास्तदेवनूताअपि सतोध्रुवोमोक्ष संयमोवा तन्मा र्गमेव प्रवदति । तथाहि । ते वक्तारोनवति यथाऽयमेवास्मदारब्धोमध्यम पंथा श्रेया न् तथाह्यनेन प्रवृत्तानां प्रव्रज्यानिर्वहण नवतीति तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतं वीर्यं नानुष्ठा नकृतं । तथाहि । ते ड्व्यलिंगधारिणोवाङ्मात्रेणैव वय प्रव्रजिताइति ब्रुवते नतु तेषा सातगौरवविषयसुखप्रतिबद्धाना शीतलविहारिणा सदनुष्ठानकृत वीर्यमस्तीति ॥ १७ ॥ अपिच (ग्रुर्ध्वरवतीत्यादि) सकुशीलोवाङ्मात्रेणाविष्कृतवीर्यं पर्षदि व्यवस्थितोधर्मदेश नावसरे सत्यात्मान शुद्धमपगतदोषमात्मानमात्मीयानुष्ठान वा रौति नापते । अथाऽन तर रहस्येकांते डुष्कृत पाप तत्कारण वा सदनुष्ठानं करोति विदधाति तच्च तस्यासदनु ष्ठान गोपायतोपि जानति विदति । के । तथारूपमनुष्ठान विदतीति तथाविदइंगिताकार कुशलानिपुणास्तद्विदइत्यर्थ । यदिवा सर्वज्ञा । एतडुक्तनवति । यद्यप्यपर कश्चिदकर्त व्य तेषा न वेत्ति तथापि सर्वज्ञाविदति तत्परिज्ञानेनैव किन पर्याप्त यदिवा मायावी महा शठश्चायमित्येव तथाविदस्तिद्विदोजानति । तथाहि । प्रच्छन्नकार्यकारी न मा कश्चिज्जाना त्येव रागाधोमन्यते अथच त तद्विदो वदति । तथाचोक्त । नयलोणलोणिज्जाइ,णयउंपि ज्जाइ घयं चतेल्लवा ॥ किहसक्कावचेउअत्ताअणू हूयकल्लाणो॥ १ ॥ १८ ॥

सयं डुक्कडं च न वदति; आइठोवि पकत्थति बाले ॥ वेयाणुवीइ मा का सी, चोइज्जतो गिलाइ से नुज्जो ॥ १९ ॥ उसियावि इत्थिपोसे सुपुरिसा इत्थिवेयखेदन्ना ॥ पण्णासमन्निताबेगे, नारीण वसं उवकसति ॥ २० ॥

अर्थ—सयंडुक्कडच के० जे ड्व्यलिंगी होय, ते पोतानो करेलो अनाचार तेने चशब्द थकी आचार्यादिके पुछ्यो थको, नवदति के० नकहे, एटले पोतानो नाचार प्रकाशे नही, तथा आइठोवि के० आदिष्ट एटले चोयणा कस्यो छतो, एटले हे वत्स आज पछी एम न करवु एरीते प्रेस्यो थको, पण बाले के० ते बाल अज्ञानी पक त्थति के० पोताना आत्माने श्लाघनीय मानतो थको एम कहेके, आज पछी तमे क होछो तेम करीश, तथा वेय के० पुरुषवेदनो उदय तेथी प्रयोजे अणुवीइ के० मैथुन सेववानो अनिलाष ते माकासी के० मकरीश, एरीते चोइज्जंतोके० प्रेस्यो थको गिलाइ के० गिलानपणु पामे एम सेके० ते ड्व्यलिंगी साधु नुज्जो के० वली वली सांन ळ्यु अणसांनळ्यु करे ॥ १९ ॥ उसियावि के० अनेक प्रकारना कामनोगने विषे उषित

मस्तापायस्थानेन्योरक्षितोनवति । यत सर्वापायानां स्त्रीसवय कारणमत स्वहितार्थी तत्संगं दूरत परिहरेदिति ॥ ५ ॥ कथ चैता पाशाइव पाशिकाऽत्याह (श्रामतिये त्यादि) स्त्रियोहि स्वनावेनवाकर्तव्यप्रवणा साधुमामन्त्र्य यथाहममुकस्या वेलायां नव दंतिकमागमिष्यामीत्येव सकेत ग्राहिला तथा (उस्सवियत्ति) सस्थाप्योञ्चावचैर्वि श्रंनजनकैराजापैर्विश्रंने पातयित्वा पुनरकार्यकरणायात्मना निमंत्रयत्यात्मनोपनोगेन साधुमन्युपगम कारयति । यदिवा साधोर्नयापहरणार्थं ताएव योषित प्रोचुस्तद्यथा न तारमामंत्र्याष्टव्याहमिहायाता तथा सस्थाप्य नोजनपदधावनशयनादिकया क्रियया पचर्यं ततस्तवांतिकमागतेत्यतोनवता सर्वा मन्नर्तृजनितामाशका परित्यज्य निर्नयेन नाव्यमित्येवमादिकैर्वचोनिर्विश्रंनमुत्पाद्य निकृमात्मना निमंत्रयंते । युष्मदीयमिद शरीरक यादृक्तस्य कोदीयसोगरायसोवा कार्यस्य क्षम तत्रैव निमञ्जतामित्येवमुपप्र लोनयंति । सच निकुरवगतपरमार्थएतानेव विरूपरूपान्नानाप्रकारान् शब्दादीन् विष यान् तत्स्वरूपनिरूपणतोज्ञपरिज्ञया जानीयाद्यथैते स्त्रीससर्गापादिता शब्दादयोविष याडुर्गतिगमनैकहेतव सन्मार्गार्गलारूपाइत्येवमवबुध्येत । यथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तद्विपाकागमेन परिहरेदिति ॥ ६ ॥

मणवंधणेहिं णेगेहिं, कलुण विणीयमुवगसित्ताणं॥अडु मंजुलाइं नासंति, आणवयंति निन्नकहाहिं॥७॥ सीहं जहा च कुणिमेणं, निब्भयमेगचरति पासेणं ॥ एव त्थियाउ बधति सवुडं एगतियमणगार॥ ८ ॥

अर्थ–(मणवंधणेहिंके०) मनने बंधन करे एवा अणेगेहिंके०अनेक प्रपंचकरती कलुण के० जे थकी पुरुपने दया उपजे तेवा करुणाना वचने विणीय के० विनय पूर्वक उवगसित्ताण के० साधुनी पासे आवीने अडु के० अथवा निरतर मंजुलाइं के० मधुर स्नेह सहित मनोहर वचन नासति के० बोले तथा निन्नकहाहिं के० निन्नकथा एटले रहस्यवार्ता जे मैथुन सबंधि गाना वचन तेणे करी आणवयंति के० सेवकनी पेरे साधुने ते स्त्री पोतानी आज्ञा करावे, अथवा निन्नकहाहिं के० मैथुन सबं धिया वचनेकरी ते स्त्री आणवयंति के० साधुनु चित्त मैथुन सेववा नणी प्रवर्त्ते तेम मैथुन सेववानी आज्ञा आपी पोतानी आज्ञाये साधुने प्रवर्त्तावे ॥ ७ ॥ हवे दृष्टाते करी देखाडेडे जहाचके० जेम सीहकुणिमेणके० सिंहने मासे करी लोनवीने निब्भयं के० निर्नय करी ने एगचरति के० एकलो थको विचरे तेम करी पढी तेने पासेण के० अनेक बधने बाधीने कदर्थियें एव के० एम त्थियाउ के० स्त्रीपण सवुडं के० जेणे मन वचन

तन्माकार्षी रित्येव नूय पुनश्चोद्यमानोसौ ग्लायति ग्लानिमपयास्यकर्णेश्रुतं विधत्ते मर्मवि द्धोवा सखेदमिव नापते । तथा चोक्तं । सनाव्यमानपापोह,मपापेनापि किं मया ॥ निर्वि षस्यापि सर्पस्य नृशमुद्विजते जनइति ॥ १९ ॥ अपिच । (उसियावीत्यादि) स्त्रिय पो षयतीति स्त्रीपोषकाअनुष्ठानविशेषास्तेपूषिताअपि व्यवस्थिताअपि पुरुषामनुष्यानुक्त जोगिनोपीत्यर्थ तथा स्त्रीवेदज्ञा स्त्रीवेदोमायाप्रधानइत्येव निपुणाअपि तथा प्रज्ञया औत्पत्तिक्यादिबुध्या समन्वितायुक्ताअप्येके महामोहाग्रचेतसोनारीणां सम्यक्स्त्री णां संसारावतरणवीथीनां वश तदायत्ततामुपसामीप्येन कषति व्रजति । यद्यत्ता स्वप्नाय मानाअपि कार्यमकार्यं वा ब्रुवते तत्तत्कुर्वते नपुनरेतज्जानन्ति यथैताएवंनूतानवतीति । तद्यथा । एताहसति च रुदति च कार्यहेतो,र्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसति ॥ तस्मा न्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्य श्मशानघटिकाइव वर्जनीया ॥ १ ॥ तथा । समुद्र वीचीव चलस्वनावा, संध्यान्नरेखेव मुहूर्तरागा ॥ स्त्रिय कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, नि ष्पीडितालक्तकवत्त्यजंति ॥ २ ॥ अत्रच स्त्रीस्वनावपरिज्ञाने कथानकमिदं । तद्यथैकोयुवा स्वगृहान्निर्गत्य वैशिकं कामशास्त्रमध्येतु पाटलिपुत्रं प्रस्थित । तदंतराले ऽन्यतरग्रामवर्तिन्यै कया योषिताऽनिहितस्तद्यथा सुकुमारपाणिपादशोननाकृतिस्त्वं क्व प्रस्थितोसि तेनापि य थास्थितमेव तस्या कथितं । तयाचोक्तं । वैशिकं पठित्वा मम मध्ये नागतव्यं तेनापि तथै वाच्युपगतं । अधीत्य चासौ मध्येनायातस्तया च स्नानजोजनादिना सम्यगुपचरितोविविध नावनाभैश्चापहृतहृदय सत्तां हस्तेन गृण्हाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमना वसरे मस्तके वारिवर्धनिका प्रक्षिप्ता। ततोलोकस्य समाकुले एवमाचष्टे । यथाय गले लग्नेनो दकेन मनाक् मृत । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गतेच लोके किं त्वया वैशिकशास्त्रोप देशेन स्त्रीस्वनावाना किं परिज्ञातमित्येव स्त्रीचरित्रं दुर्विज्ञेयमिति नात्रास्था कर्तव्येति । तथा चोक्तं । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्कर्मण्यन्यत्पुरोथपृष्ठेन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां, सर्वं किमप्यन्यत् ॥ २० ॥

अवि हत्थपादछेदाए, अडुवा वद्धमंसउक्कंते ॥ अवि तेयसाभितावणानि तच्छिय खारसिंचणाइ च ॥ २१ ॥ अडु कन्नणासछेदं, कंठछेदणं तितिक्खंती ॥ इत पावसंतत्ता, नयबिंति पुणोन काहिंति ॥ २२ ॥

अर्थ–हवे इहलोके पण स्त्रीने संबधे जे विपाक थाय ते देखाडेले अपि एवी संना वना वे जे कुशीलिया पुरुष होय ते हछपादछदाएके० हस्तपादादिकनु छेद पामे, अडुवा के० अथवा वद्धमंसके० चर्म अने मांसनु उक्कंते के० उपडवु पामे अपि एवी संनावना

रावे रहकारोव के० जेम रथकार सूत्रधार अणुपुवीके० अनुक्रमे ऐमिके० पइडानो वाहे रलो प्रदेश नमाडे तेम साधुने ते स्त्री पोताना कार्य करवाने विषे नमाडे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते साधु, बद्धे मिएवपासेणके० मृगनी पेरे स्त्रीरूप पासे करी बंधाणो थको जेम मृग पासे करी बंधाणो होय ते फदतेविके० फदाणोथको अरहो परहो हाले चाले पण ताहेके० ते पास थकी णमुच्चएके० मूकाय नही तेम साधु पण स्त्रीरूपीआ पास थकी मूकाय नही॥ए॥ अथ के० हवे स्त्रीरूपीआ पासमा पड्या पठी, सेके० ते साधु णुतप्पइ के० पश्चात्ताप करे पछा के० पठी सयम गमीने गृहवास आदरे, तेवारे जूरे जेम विसम्मिसं के० विषमि श्रित एवो पायसं के० दूध तेने जोद्मा के० जमीने पठी पश्चात्ताप करे के ए अन्नमे सा वास्ते आसेव्यो एम चितवे चके० तेनी पेरे ते साधु पण पश्चाताप करे एवके० एवो वि वेग मादायके० विवेक ग्रहण करीने दविए के० मुक्ति गमन योग्य एवा साधुने संयमनी हे पणी एवीजे स्त्री तेनी साथे सवासो नविकप्पएके० संवास ससर्ग करवो नकल्पे. ॥१०॥

॥ दीपिका—अथ पुनस्तत्र स्वात्मनि अवस्तुनि नमयंति आसक्त कुर्वंति । यथा रथ कारोवर्धकिर्नेमिचक्रधाराकाष्ठ आनुपूर्व्या नमयति एव स्त्रियोपि साधुं नमयंति स्ववश कुर्वंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि चलमानोपि पाशान्नमुच्य ते ॥ ए ॥ अथ ससाधु पाशबद्धमृगइवाऽनुतप्यते पश्चात्ताप करोति । यत । मया परि जनस्यार्थे कृत कर्म सुदारुण ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभागिनइति । यथा कश्चिद्वि षमिश्रं पायस भुक्त्वाऽनुतप्यते एव पूर्वोक्तप्रकारेण विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य तानि सह सवासोनकल्पते द्रव्यमुक्तियोग्ये साधौ ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच । (अहतत्थेत्यादि) अथेति स्ववशीकरणादनंतर पुनस्तत्र स्वाभिप्रे ते वस्तुनि नमयंति प्रव्हं कुर्वंति । यथा रथकारोवार्धकिर्नेमिकाष्ठ चक्रबाह्यभ्रमिरूपमा नुपूर्व्या नमयत्येव ताअपि साधुं स्वकार्यानुकूल्ये प्रवर्तयंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि तत पाशान्नमुच्यतइति ॥ ए ॥ किंच । (अहसेइत्यादि) अ थासौ साधु स्त्रीपाशावबद्धोमृगवत् कूटके पतित सन् कुटुंबकृते अहर्निशं क्लिश्यमान प श्चादनुतप्यते । तथाहि । गृहांतर्गतानामेतदवश्यं संभाव्यते । तद्यथा । कोधायउकोस मवित्तु कोहोवणाहि कादोविद्धभचित्त कोभग्गाम उपहिय उपरिणीय भकोवकुमार उपडि यतो जीवखडप्पडेहि परवंचइ पवेहनारउ । तथा यत् । मया परिजनस्यार्थे, कृत कर्म सु दारुण ॥ एकाकी तेन दह्येह गतास्ते फलभागिन ॥ १ ॥ इत्येव बहुप्रकार महामोहा त्मके कुटुंबकूटके पतिताअनुतप्यते । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति । यथा कश्चिद्विष-

पाछेथी सुतमेके० मेसाहुत्पुंठे. एतमेवके० एवीरीते एगेसिके० कोइएकने कडवाविपाक होय इत्तिवेदेतिहुके० स्त्रीवेद थकी हुइति निश्चे दुःखज पामे सुयस्कार्यके० ए मद्धुं कसु एवपि के० एरीते लोकपरपराये पण सांजल्युंछे जे, स्त्रीना संबंध थकी कडवा विपाक पामिये, एम सांजलीने ताके० ते अकार्यनो करनार वदित्ताणके० एम कहे जे हवे हुं ए अकार्य नही करुं अडुवाके० अयापि एटले तोपण कम्मणाके० माठा कर्मने करवे करी अवकरैतिके० तेहिज अकार्यनुं आचरण करे ॥२३॥ हवे स्त्री उपर विरक्त थवाने अ र्थे स्त्रीना दोष कहेछे अन्नमणेणचितेति के० स्त्री जेछे ते मने करी अन्य चितवे अने वायाअन्नच के० वचने करी अन्य बोले कम्मणाअन्न के० वली कायाये करी अन्य करे तम्हा के० तेमाटे णसद्दहिजिक्कू के० स्त्रीना वचन मायासहित होय तेने परमा र्थेनो जाण साधु सर्दहे नही बहुमायाउ इत्तिउं के० अत्यंत मायासहित एवी स्त्रीने णच्चा के० जाणीने साधु जे होय ते स्त्रीनो विश्वास करे नही ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—श्रुतमेतद्गुरो सकाशात् यत्पूर्वमुक्त एवमेकेषा ख्यात जवति । यत स्त्रियो निद्याइति । तथास्त्रिय वेदयति ज्ञापयतिस्त्रीवेदोवैशिकादिक स्त्रीस्वजावप्रकाशक शास्त्र मिति । तदुक्त । डुर्ग्राह्य हृदय यथैव वदन यद्दर्पणातर्गतं, जाव पर्वतदुर्गमार्गविषम, स्त्रीणा न विज्ञायते ॥ चित्त पुष्करपत्रतोयचपल नैकत्र सतिष्ठते नार्योनाम विषाकुरैरिव लतादोष सम वर्धिता ॥१॥ तथा उप्रेवअगुलिसोपुरिसो सयलमिजीवलोगमि। काम तएणनारिंजेण नपत्ताइ डुखाइ इत्यादि । किच । अकार्यमह न करिष्यामीत्येव वाचा उक्त्वापि (अडुवत्ति) अयापि तया कर्मणा क्रिययाऽपकुर्वति विरूपमाचरति स्त्रि य ॥ २३ ॥ स्त्रियोमनसाऽन्यत चितयति वाचान्यद्भापंते कर्मणा क्रिययाऽन्यत् कुर्वति । तस्मात्तासा जिक्षु साधुर्नश्रद्दधीत तत्कृतमायया आत्मान नप्रतारयेत् । यतोबहुमाया स्त्रियइति ज्ञात्वा। अत्र दत्तावैशिकदृष्टात । यथा दत्तकोनामकश्चिद्युवा एकया गणिकया बहु प्रकारं प्रतार्यमाणोपि ता नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किमया दौर्जाग्यकलकितया जीवत्या प्र योजन । अह त्वया त्यक्ताऽग्निं विशामि ततोदत्तकोवदत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके त दासौ पूर्व सुरगामुखे काष्ठजार समीदय त प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरगया गृहमागता । दत्तकोपि इदमप्यस्ति वैशिके इत्येव विलपन्नपि वातिकैश्चिताया प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धान कृतवान् एवमन्येनापि स्त्रीषु न श्रद्धातव्य ॥ २४ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (सुतमेतमित्यादि) श्रुतमुपलब्ध गुर्वादे सकाशाल्लोकतोवा एतदिति यत्पूर्वमाख्यातं। तद्यथा । डुर्विज्ञेय स्त्रीणा चित्त दारुण स्त्रीसवधविपाकस्तथा ‥‥नावा स्त्रियोडुष्परिचाराअदीर्घप्रेक्षिण्य प्रकृत्या लघ्व्या जवत्यात्मगर्विताश्चेत्येव

एकोऽसहाय कुलानि गृहस्थगृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती योधर्ममाख्याति नासौ निर्ग्रं थोनिषिद्धाचरणात् ॥ ११ ॥ ये यतयएतत् पूर्वोक्त जघं गर्ह्यं स्त्रीसंबंधादिक एकाकि स्त्रीधर्मकथानादिक वा अनुगृद्धा प्रत्यासक्तास्ते कुशीलादीनां पार्श्वस्थादीनामन्यत मा स्यु । ततस्तु तपस्व्यपि तप कृशदेहोपि स्त्रीनि सह नविहरेन्नगछेन्नापि तिष्ठेत् । तृतीयार्थे सप्तमी । ण वाक्यालंकारे ॥ १२ ॥

॥ टीका–स्त्रीसंबंधदोषानुपदर्श्योपसंहरन्नाह । (तम्हाऽत्यादि) । यस्माद्विपाककटु स्त्रीनि सह संपर्कस्तस्मात्कारणात् स्त्रियोवर्जयेत् । तुशब्दात्तदालापमपि न कुर्यात् । किं तदित्याह । विषोपलिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वाऽवगम्य स्त्रियं वर्जयेदिति । अपिच । विपदिग्ध कंटक शरीरावयवे नग्न सन्ननर्थमापादयेत् स्त्रियस्तु स्मरणादपि । तडुक्तं । विषस्य विषयाणा च, दूरमत्यंतमतर ॥ उपयुक्त विषं हंति,विषया स्मरणादपि ॥१॥ तथा वरि विसखइमविसय सुडुऽक सुविसिणमरति॥विसयामि सपुणधाहिया णरणरएहिपडंति॥१॥ तथोजएकोऽसहाय सन् कुलानि गृहस्थाना गृहाणि गत्वा स्त्रीणा वशवर्ती तन्निर्दिष्टवेला गमनेन तदानुकूल्य नजमानोधर्ममाख्याति योसावपि ननिर्ग्रंथोनसम्यक् प्रव्रजितोनि षिद्धाचरणसेवनादवश्यं तत्रापायसंजवादिति । यदा पुन काचित्कुतश्चिन्निमित्तादागंतुम समर्था वृद्धा वा नवेत्तदा परिसहायसाध्वनावे एकाक्यप्यपि गत्वाऽपरस्त्रीवृंदमध्यगताया पुरुषसमन्वितायावा स्त्रीनिदाविषयजुगुप्साप्रधान वैराग्यजनन विधिना धर्मं कथयेदपीति ॥ ११ ॥ अन्वयव्यतिरेकान्यामुक्तोर्थं सुगमोनवतीत्यनिप्रायवानाह । (जेएयंउंडमि त्यादि) ये मदमतय पश्चात्कृतसदनुष्ठाना साम्प्रतेक्षिणएतदनंतरोक्त उंठतिजुगुप्सनीयं गर्ह्य तदत्र स्त्रीसंबंधादिक एकाकिस्त्रीधर्मकथनादिक वा इष्टव्यं । तदनु तत्प्रति ये गृद्धा अध्युपपन्नामूर्छितास्तेहि कुशीलानां पार्श्वस्थावसन्नकुशीलससक्तयथाछंदरूपाणामन्यतरा नवति, यदिवा कायिकपश्यकसप्रसारकमामकरूपाणा वा कुशीलानामन्यतरानवति तन्म ध्यवर्तिनस्तेपि कुशीलानवतीत्यर्थं । यतएवमत सुतपस्व्यपि विकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोपि निक्षु सात्मुरात्महितमिछन् स्त्रीनि समाधिपरिपंथिनीनि सह न विहरेन्नक्वचिजछेन्नापि सतिष्ठेत् । तृतीयार्थेसप्तमी । णमितिवाक्यालंकारे । व्वजितागारपुजवद्दूरत स्त्रियोवर्जयेदितिनाव ॥ १२

अवि धूयराहि सुण्हाहि,धातीहि अडुव दासीहि ॥ महतीहि वा कुमारी हिं, सथवं सेन कुज्जा अणगारे॥१३॥अड णाऽणाच सुहीणवा अप्पिय द ठ्ठु एगता होति ॥ गिद्धासत्ता कामेहि; रस्कणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे कदाचित् पुत्री प्रमुखनो संसर्ग थइ जाय,तो ते पण साधुये टालवो ते आश्रयी

वल पारवंम तेणे करी ते स्त्री साधुने समीप आवे अहमसिसाहम्मिणीय समणाण के० हुंश्रमण माहात्मानी सामिणीछु, एवा प्रपच करी साधुने धर्मथकी भ्रष्ट करे तेना उपर दृष्टांत कहेछे जहा के० जेम जतुकुंने के० लाखनो घडो ते उवज्जोइ के० अग्नी समीपे गलीने पाणी रूप थाय, तेम विडविके०पमित होय तेपण सवासेके०स्त्रीने सवासे ससर्गे करी सीएज्जाके०सीदाय सीतल विहारी थाय तो अन्य जननुं केवुज शु? ॥२६॥

॥ दीपिका–युवतिर्मायया श्रमण ब्रूयाद्विचित्रवस्त्राणि परिधायालंकृतशरीरेत्यर्थ । अह गृहपाशाद्विरता मह्य पतिर्नरोचते परित्यक्ताह च तेन ततश्चरिष्यामि रूक्षं सयम। मे म महेनयत्रातधर्ममाख्याहि ॥ २० ॥ अनेन प्रवादेन छलेन अथवा स्त्री साधुसमीपमागछे त् अहं श्राविका अहश्रमणानां सधर्मिणी एव मायया समीपमागत्य कूलवालकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति । यडुक्त । तज्ज्ञान तच्च विज्ञान तत्तप सच सयम ॥ सर्वमेकपदे भ्रष्टं सर्वथा किमपि स्त्रिय ॥ १ ॥ यथा जतुकुंनोज्योति समीपे उपज्योतिर्वर्ती विलीयते ए व योषिता सवासे विद्वानपि विषीदेत शीतलविहारी नवेत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (सुवर्इत्यादि) युवतिरभिनवयौवना स्त्री विचित्रवस्त्रालंकारवि नूषितशरीरा मायया श्रमण ब्रूयात्। तद्यथा। विरताह गृहपाशान्नममानुकूलोनर्ता मह्य चासौ नरोचते परित्यक्ता चाह तेनेत्यतश्चरिष्यामि धर्ममाचक्षाणेति । अस्माक हेनयत्रात यथाहमेव दुःखाना नाजन ननवामि तथाधर्ममावेदयेति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् । (अदु साविएइत्यादि) अथवाऽनेन प्रवादेन व्याजेन साध्वतिक योषिदुपसर्पेत। यथाह श्राविके ति कृत्वा युष्माक श्रमणाना साधर्मिणीत्येव प्रपचेन नेदीयसी नूत्वा कूलवालुकमिव साधु धर्माद्भ्रंशयति । एतडुक्त नवति योषित्सान्निध्यं ब्रह्मचारिणा महतेऽनर्थाय । तथा चोक्तं। तज्ज्ञान तच्च विज्ञान, तत्तप सच सयम ॥ सर्वमेकपदे भ्रष्ट सर्वथाकिमपि स्त्रिय ॥१॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । यथा जातुष कुंनोज्योतिषोग्नि समीपे व्यवस्थितउपज्यो तिर्वर्ती विलीयते द्रवत्येव योषिता सवासे सान्निध्ये विद्वानप्यास्तातावदितरोयोपि विदि तवेद्योसावपि धर्मानुष्ठान प्रति विषीदेत शीतलविहारी नवेदिति ॥ २६ ॥

जतुकुंने जोइ उवगूढे, आसु निततें णासमुवयाइ ॥ एविन्थियाहिं अ णगारा, सवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावग कम्मं, पुठावेगे वमाहिंसु ॥ नोहं करेमि पावंति, अंके साइणी ममेसत्ति ॥ २८ ॥

अर्थ–जतुकुंनेके०जेम लाखनो घडो जोइके०अग्निये उवगूढेके०आलिंग्यो छतो आसुके०

यादिति । यद्यपि तस्यानगारस्य तस्या डुहितरि स्नुषादौ वा नचित्तान्यथात्वमुत्पद्यते तथा पि च तत्र विविक्तासनादावपरस्य शंकोत्पद्यते अतस्तछंकानिरासार्थं स्त्रीसंपर्कं परिहर्त व्यइति ॥१३॥ अपरस्य शंका यथोत्पद्यते तथा दर्शयितुमाह । (अडुणाईणमित्यादि) विविक्तयोषिता सार्धमनगारमथैकदा दृष्ट्वा योषिज्ज्ञातीना सुहृदा वा अप्रियं चित्तडु खा सिका नवत्येव च ते समाशंकेरन् यथा सत्वा प्राणिनऽच्चामदनकामैर्गृ-ध्राअध्युपप न्नास्तयाह्येवजूतोप्यय श्रमण स्त्रीवदनावलोकनासक्तचेता परित्यक्तनिजव्यापारोऽनया सार्थं निर्ह्रीकस्तिष्ठति । तडुक्त । मुंम शिरोवदनमेतदनिष्टगन्धि, निक्षाटनेन नरण वह तोदरस्य ॥ गात्र मलेन मलिनं गतसर्वशोन्न चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांग ॥१॥ तथातिक्रोधाध्मातमानसाश्चैव सूचुर्यथा रक्षण पोषण चेति विगृह्य समाहारद्वंद्व स्तस्मिन् रक्षणपोषणे सदादर कुरु । यतस्त्वमस्या मनुष्योसि मनुष्योवर्तसे । यदि वा परं वयमस्यारक्षणपोषणव्याप्टतास्त्वमेव मनुष्योवर्तसे । यतस्त्वयैव सार्धमियमेका किन्यहर्निश परित्यक्तनिजव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

समणंपि दठ्ठुदासीण, तछवि तावएगे कुप्पंति ॥ अडु नोयणेहिं णछेहिं इत्थीदोस संकिणो होंति ॥१५॥ कुव्वंति सथवं ताहिं, पन्नठा समाहि जो गेहिं ॥ तम्हा समणा णसमेंति, आयहियाए सणिसेज्जाउ ॥ १६ ॥

अर्थ—समणंपि दठ्ठुदासीण के० तपस्वी उदासीन मध्यस्थ, राग द्वेष रहित एवो सा धु पण स्त्री साथे आलाप करतो थको देखीने ताव के० तेवारे तछवि के० त्या प ण एगे के० कोइएक कुप्पंति के० क्रोध करे अडुवा के० अथवा नोयणेहिं के० अने क प्रकारना नोजन ते णछेहिं के० साधुने अर्थे थाप्या देखीने एम जाणे जे ए यति आ हारनो गृद्ध सदैव अहीं आवेछे, इत्थीदोस संकिणोहोंति के० तेवारे तेने स्त्रीना दोष नी शंका मनमांहे उपजे, अने एम जाणे के ए स्त्रीपण नली नथी ॥ १५ ॥ तेमाटे जे पन्नठा समाहि जोगेहिं के० प्रकर्षे करी धर्मरूप समाधि जे मन वचन कायाना शु नयोगरूप व्यापार,तेथकी भ्रष्ट थया होय कुव्वंति सथवंताहिंके० तेवा द्रव्यलिंगीउ स्त्रीनी साथे सस्तव परिचय करे तम्हा के० तेमाटे एवु जाणीने समणा के० साधु णसमेंति के० स्त्रीनी साथे नजाय, आयहियाए के० आत्माना हितने अर्थे सणिसेज्जाउ के० स्त्रीजे स्थानके रहेती होय ते स्थानके साधु निषिज्ञा अशनादिक परिचय करे नहीं ॥१६॥

॥ दीपिका—श्रमणमुदासीनमपि रागद्वेषरहितमपि दृष्ट्वा तत्रापि मध्यस्थे रहस्यस्त्री जल्पनकृतदोषादेके कुप्यति श्रमण मध्यस्थमपि स्त्रिया सहैकाते जल्पं दृष्ट्वा एके कुप्यं

अर्थ–बालस्स के० अज्ञानीनी एबीजी मंदय के० मूर्खता जाणवी, केमके एकतो अकार्य करवा थकी चोथा व्रतनो नग थायछे ने बीयं के० बीजो जचकई· के० जे अनाचार कीधो तेने अवजाणई के० उलववे करी मृषावाद बोले तेथकी बीजाव्रतनो नग थाय, तेमाटे तुक्को के० वली वली सेके० ते पुरुष डुगुणकरेईपाव के० बमणुं पाप करे, ते सावास्ते करे, तेनु कारण कहेछे पूयणकामो पूजा सत्कारनो अभि लाषी असंयमनु विसन्नेसि के० गवेषणहार थको मनमा एम जाणे जे माहारो लोकोमा अवर्णवाद थशे तेमाटे अनाचारने गाना राखे ॥ २९ ॥ सलोकणिक्कमण गार के० सलोकनीय एटले सुदराकार एवा साधुने देखीने, आयगय के० आत्मगत जाणी कोइएक स्त्री निमतणेण के० निमत्रणा पूर्वक आहसु के० एम कहे के ताय के० अहो छकायना रक्षपाल वचच के० वस्त्र वली पाय के० पात्र वा के० अथवा अन्नपाणग के० अन्न पाणी जे कांइ आपने खप होय ते पडिग्गहे के० अमारे घेर आवीने लेजो ॥ ३० ॥ जे उत्तम साधु होय ते ए पूर्वोक्त आमत्रणने णीवारमेव बुवे के० व्रीहीना कण समान जाणीने णोइछेअगारमागतु के० एवा घेरने विषेजवु आववु वाछे नही जो कदापि कोइएक साधु तेवा घरे जाय तो ते बद्धेविस यपा सेहि के० विषयरूप पाशे करी बधाणो गलो पुणो के० वली वली मोहमाव ज्ञइ के० मोहने आवर्त्त पडे एटले मोहने वश थको चित्तनु आकुल व्याकुलपणु पा मे, मद के० ते मूर्ख स्नेहरूप पास त्रोडवाने असमर्थ होय माटे डुखी थाय. तिबे मिनो अर्थ पूर्ववत जाणवो ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशक समाप्त

॥दीपिका–बालस्याऽज्ञस्य द्वितीय मवत्व । प्रथममज्ञत्वमेक तावदकार्यकरणेन तुर्यव्र तविलोपोद्वितीय तदपलपनेन मृषावाद । तदेवाह । यत्कृतमकार्यमपजानीते अपलप ति सएवत्नूतोद्विगुण पापं करोति। किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनकामुक सत्कारानिला षी मामे लोकेऽवर्णवाद' स्यादित्यकार्य प्रछादयति । विषण्णोऽसयमस्तमेषितुं शीलमस्य सविषण्णेषी॥ ॥ २९ ॥ सलोकनीय रूपवतमनगारमात्मगतमात्मज्ञ काश्चन स्वैरिण्यो निमत्रणपूर्वमाहुरुक्तवत्य । तथाहि । हेत्रायिन् साधो वस्त्रं पात्र चान्नापानादिकं वा य त्तव विलोक्यते तत्त्वसमद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण लाहि ॥३०॥ वस्त्रादिदान नीवारतुल्य बु ध्येत जानीयात्। यथा नीवारेण च व्रीहिणा मृगादिर्वशमानीयते एवसाधुरप्यामत्रणेन वशमानीयते अतस्त नेछेदगार गृह गतु बद्धश्च विषयदामभिर्विषयपाशैर्मोह चित्ताकु लत्वमापद्यते मदोमूढइति। ब्रवीमीति पूर्ववत्॥३१॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशक ॥

॥ टीका–किंच (बालस्येत्यादि) । बालस्याज्ञस्य रागद्वेषाकुलितस्यापरमार्थदृशए

हि अहितार्थ सन्निसेजाव ॥ अयमस्यार्थः । यस्मात्स्त्री सबंधोनर्थाय भवति तस्मात् हेश्रम ण साधो । तुशब्दोविशेषणार्थः । विशेषेण सनिषद्या स्त्रीवसतीस्तत्कृतोपचाररूपा वा मा या आत्महिताद्धेतोर्जहाहि परित्यजेति ॥ १६ ॥

बहवे गिहाइ अवहट्टु, मिस्सीभावं पत्थुया (पाठांतरे पणता) यएगे ॥ धुव मग्गमेव पवयंति वायावीरियं कुसीलाणं ॥१७॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्समि दुक्कड करेति ॥ जाणंतियणं तहाविया, माइल्ले महासढेयंति॥ १८॥

अर्थ–बहवे के० घणा मनुष्य गिहाइअवहट्टु के० घर गमी संयम आदरीने वली मोहनीय कर्मना उदय थकी अज्ञानपणे, मिस्सीभाव के० मिश्रभावे पत्थुयाचके० पहोता एवा एगे के० कोइएक मनुष्य ते गृहस्थ पण नही अने यतिपण नही एटले द्र व्यलिंगी थाय एवा छता पण धुवमग्गमेव के० मोक्ष मार्गज एटले अमारो मो क्षनो मार्ग सत्यछे एम पवयंति के०मध्यम मार्गने श्रेष्ठ कही बोले ए कारणे अहो कु सीलाण के०ते कुसीलीयाना वायाके० वचननु बोलवा मात्र, जे वीरियंके० बल वीर्यछे ते जुगो केवु छे ॥ १७ ॥ एरीते परिसाए के० परखदा मध्ये ते कुशीलिया पोतानी आ त्माने सुद्ध के० शुद्ध निर्दोष रवति के० बोले अह के० अथ हवे परखदा माहेथी उठया पछी, रहस्संमि के० एकांत ठानो दुक्कड करेति के० दुष्कृत एटले अनाचार करे एरीते ते मूर्ख पोतानो अनाचार गोपवे, तोपण जाणतियणतहाविया के० तेना अंग चेष्टाना जाण होय तेजाणे, तथा सर्वज्ञ तो जाणेजछे के ए साधु माइल्लेके० दुष्ट मायावीछे, तथा महासढेयंति के० महाधूर्त मृषावादी छे एरीते तो बीजा जाणे किंवा नजाणे परंतु सर्वज्ञतो जाणेजछे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–बहव केचन गृहाण्यपहत्य परित्यज्य मिश्रीभाव गृहस्थतुल्यत्व प्रणताः प्राप्ताएवंभूतास्ते ध्रुवमार्गं मोक्षमार्गमेव प्रवदंति, यथायमेवास्मदीयोमार्गः श्रेयान् अनेनैव प्रव्रज्यानिर्वाह स्यादिति । तदेतत्कुशीलाना वाचा कृतवीर्य नानुष्ठानकृत । वाङ्मात्रेणैव ते प्रव्रजितानतु सदनुष्ठानतइत्यर्थः ॥ १७ ॥ सकुशीलोवाङ्मात्रेण परि षदि शुद्धमात्मानं रौति भाषते । अथ रहस्येकांते दुष्कृतं पापं करोति तच्च तस्य पाप मन्य कोपि न वेत्ति तथापि तथारूपमनुष्ठानं विदतीतितथाविदोनिपुणाइंगिताकार ज्ञाः सर्वज्ञावा जानंत्येव यतोय मायावी महाशठश्चेति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किं केचनाभ्युपगम्यापि प्रव्रज्यायां स्त्रीसंबंधं कुर्युर्येनैवमुच्यते उमित्याह । (ब

पाम्यो थतो(मुच्छितके०)स्त्रीने विषे मूर्छित एवो(निरकूके०)यति तथा (काममतिवट्टंके०) कामजोग उपरे मति अनिलाषनु प्रवर्त्तावबुंने जेमने एवा साधुने ते स्त्री एम कहेके(प लिभिंदियाणके०) मे माहारा कुलशीलनी मर्यादा अतिक्रमीने माहारो आत्मा तुजने दीधोठे इत्यादिक वचन कहीने ते यतिने पोताने वश करे (पन्नाके०) तेवारपठी को इएक प्रकारे ते स्त्रीने रीशाणी जाणीने ते बापडो ते स्त्रीने पगे पोतानुं मस्तक लगाडे तेवारे ते पुरुषने एवो वश थयो देखीने ते स्त्री (पाउदट्टुकिके०) पोतानो पग उंचो उ पाडीने माबा पगे करी ते इव्यलिंगी यतिना मस्तकने विषे (पहणतिके०) प्रहार करे तोपण जे काम जोगनेविषे गृद्ध होय ते मूर्ख स्त्रीथकी विरचे नहि ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयआरन्यते । तस्येदमादिसूत्र ॥ (उएति) उजएकोरागद्वेषर हित सदास्त्रीषु न रागं कुर्यात् यद्यपि कर्मोदयाद्भोगानिलाषी नवेत्तथापि पुनस्तान्योविर क्तेत । कोर्थः । कर्मोदयात् प्रवृत्तमपि चित्तं ज्ञानाकुशेन निवर्तयेत् । तथाश्रमणाना नोगाइती यविमंबनैवेति शृणुत यूय। यदुक्त मुडशिरइत्यादि पूर्ववत् । तथात्तैरप्युक्तं ॥ कृश काण खज श्रवणरहित पुब्रविकल क्षुधाक्षामोजीर्णे पिवरककपालार्दितगल ॥ व्रणै पूयक्लि न्नै कृमिकुलशतैराविलतनु शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनइत्यादि । यथा अधर्माणोनिक्ष्वोप्येके नोगान् नुजते तथाग्रे वक्ष्यतीति ॥१॥ अथ त साधु नेद शील नेद चारित्रस्खलनमापन्न प्राप्त स्त्रीमूर्छित । तुर्विशेषणे । पुन किंनूत । कामेषु इछामद नेषु मतिर्बुद्धिर्वर्तते यस्य स काममतिवर्तस्तमेवविध निक्षु परिनिद्य मया कुलशीलमर्या दामतिक्रम्य तवात्मा अर्पितस्त्वतु अकिंचित्करइत्यादिवचनान्युच्चार्य या पादचरणमु त्कृत्य उर्ध्वीकृत्य साधोर्मूर्ध्नि प्रघ्नति प्रहार ददति एव विडबयति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्त प्रथमोद्देशक साप्रतं द्वितीय समारन्यते । अस्य चायमनिसबध । इहा नतरोद्देशके स्त्रीसस्तवाच्चारित्रस्खलनमुक्त स्खलितशीलस्य या अवस्था इहैव प्राडर्नवति तत्कृतकर्मबधश्च तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन सबधेनायातस्योद्देशकस्यादिसूत्र (उएस याइत्यादि) अस्य चानतरपरपरसूत्रसबधोवक्तव्य सचाय सबधोविषयपाशैर्मोहमा गच्छति यतोऽतउजएकोरागद्वेषवियुत स्त्रीषु राग न कुर्यात् । परपरसूत्रसबधस्तु सलो कनीयमनगार दृष्ट्वा च यदि काचिद्योषित् साधुमशनादिना नीवारकल्पेन प्रतारयेत्तत्रौज सन्न रक्तेतेति । तत्रौजोइव्यत परमाणुर्नावतस्तु रागद्वेषवियुत । स्त्रीषु रागादिहैव वक्ष्य माणनीत्या नानाविधाविमबनानवति तत्कृतश्च कर्मबधस्तद्विपाकाच्चामुत्र नरकादौ तीव्रावेदनानवति । यतोऽतएतन्मत्वा नावोज सन् सदा सर्वकाल वाऽनर्थखनिषु स्त्रीषु न रक्तेत । तथा यद्यपि मोहोदयात् नोगानिलाषी नवेत्तथाप्यैहिकामुष्मिकापायान्

एटले भुक्तभोगी थइने पुरिसाके० ते मनुष्य इच्छिपोसेसुके० स्त्रीने पोषवाने विषे प्रवर्त्ते तथा इच्छिवेयखेदन्ना के० स्त्रीवेद खरावले, एटले स्त्री संसार भ्रमणनुं कारणछे, एम जाणता छता पण पन्नासमन्निताबेगे के० प्रज्ञासमन्वित एटले बुद्धिमत एवा कोइएक पुरुष मोहने उदये करी नारीणवस के० तेहिज स्त्रीने वशवर्त्तिये रहे अने उवकसंति के० ते स्त्री जे काइ कहे ते किंकरनी पेरे करे इत्यर्थ ॥ २० ॥

॥ दीपिका–स्वयंकृत पाप परेण पृष्टोपि नवदति यदहमेतत्पापकारीति परेणादिष्ट श्चोदितोपि बालोऽज्ञः प्रकथते आत्मानंश्लाघमानोऽकार्यमपलपति। तथा वेद पुंवेदोदय स्तस्यानुवीचिरानुकूल्यं मैथुनाभिलाष माकार्षीरिति य पुनश्चोद्यमानोग्लायति ग्लानिं याति अनाकर्णितं करोति मर्मविद्धोवा सखेदं जायते। यथा। सजाव्यमानपापश्चेद पापेनापि किं मया। अजमुद्विजते लोको,निर्विषादपि सर्पतइति ॥ १९ ॥ स्त्रीपोषकाये अनुष्ठान विशेषास्तेषु उद्यताव्यवस्थिता पुरुषा भुक्तभोगिनइत्यर्थ। तथा स्त्रीवेदे खेदज्ञा स्त्रीवेदो मायाबहुलइति निपुणाअपि प्रज्ञाबुद्धिरौत्पत्त्यादिका तया समन्वितायुक्ताअपि एके नारीणा वशमायत्तता उपकर्षति व्रजति स्त्रीवशवर्तिनोभवतीत्यर्थ। नतु एव जानति। यत.। एताहसतिच रुदतिच कार्यहेतोर्विश्वासयंति च नर नच विश्वसंति ॥ तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन नार्य स्मशानघटिकाइव वर्जनीया ॥१॥ स्त्रीस्वभावस्तथा। यथा। एकोयुवा गृहान्निर्गत्य पाटलिपुत्रं प्रस्थितस्तदंतरेऽन्यतरग्रामवर्तिन्या कयाचिन्नार्याऽभिहितस्त्वमेव शुभरुति क यासि तेनापि च यथास्थितमुक्तं। तयोक्त पठित्वा चलमानोत्रागछे। तेनागीकृत्याग्रे गत। अधीत्य स तत्रायात.। तथा च स्नानभोजनादिभि. सत्कारितो हावभावैश्च हृतचित्तस्ता हस्ते गृह्णाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे तन्मस्तके वारिघट प्रक्षिप्त। ततोलोकस्य तयोक्तं अय गले लग्नेन जलेन व्याकुलोमृतइव। ततोमयोदकेन सिक्तइति। गते लोके सा पृष्टवती त्वया कामशास्त्र पठता स्त्रीस्वभावानां किं ज्ञातमिति एव स्त्रीचरित दुर्विज्ञेय। यत्त। हृद्यन्य द्वाच्यन्यत्, कर्मण्यन्यत् पुरो थ पृष्ठेऽन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणा सर्व किमप्यन्यदिति ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (सयदुक्कडचेत्यादि)। स्वयमात्मना प्रछन्न यदुष्कृत कृतं तदपरेणाचार्यादिना पृष्टोन वदति न कथयति यथाहमस्याऽकार्यस्य कारीति। सच प्रछन्नपापोमायावी स्वयमवदन् यदापरेणादिष्टश्चोदितोपि सन् बालोज्ञोरागद्वेषकलितोवा प्रकथते आत्मान श्लाघमानोऽकार्यमपलपति वदतिच यथाहमेवंभूतमकार्य कथं करिष्ये इत्येव धाष्ट्यात्प्रकथते। तथा वेद. पुंवेदोदयस्तस्यानुवीच्याऽनुकूल्य मैथुनाभिलाषं

रा आदेशो प्रवर्त्तिश इत्यादिक वचने करी विश्वास उपजावीने ते स्त्री जे करे ते कहेछे ॥ ३ ॥ (अह के०) अथ एटले हवे ण वाक्यालंकारे एवा वचने करी (साके०) ते साधु (होईउवलद्धो के०) स्त्रीने वश थाय एम ते स्त्री पोताने वश थयो जाणीने (तो के०) तेवारपछी तेने (पेसंतितहानूएहिं के०) तथा नूत एटले तेवाज अनेक कर्मकरना कार्य करवा मोकले एटले दासनी पेरे कार्य करवानी आज्ञा आपे ते कार्य कया ते देखाडेछे (अलाउछेद के०) तुंबडुं छेदवाने अर्थे शस्त्रो (पेहाहि के०) जोइए ते लावो के जे शस्त्रे करी तुंबिपात्रादिक समारियें तथा (वग्गुफलाइ आहराहित्ति के०) रुडा नालियेरादिकना फल लइ आवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–केशाविद्यते यस्या सा केशिका । णवाक्यालंकारे । हेभिक्षो यदि मया स्त्रिया केशिकया सह त्वं नोविहरे । यदि मया सह भोगान् भुंजानोव्रीडां वहसि तदा नप्यहंलुंचिष्याम्यपनेष्यामि । आस्तातावद्भूषणादिकमित्यपेरर्थ । अस्योपलक्षणाद् डुष्करं विदेशगमनादि सर्वमहं करिष्यामि त्वं पुनर्मया रहितोनान्यत्र चरे ॥ वाक्यालंकारे । अथ ससाधुराकारेंगितैस्तया उपालब्ध स्ववशइति ज्ञातस्तद नूतैर्दासव्यापारैः प्रेषयति नियोजयति । तथाहि । अलावु तुंबं छिद्यते येन तदलावु प्पलकादिशस्त्रं प्रेक्षस्व निरूपय येन शस्त्रेण पात्रादेर्मुखं क्रियते । तथा वग्गूनि शोभ नालिकेरादीनि त्वं आहर आनय । अथवा देशनादिरूपया यानि लभ्यते तानि वा लानि वस्त्राहारादीनि तान्यानय ॥ ४ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जइइत्यादि) केशाविद्यतेयस्या सा केशिका । णमितिवाक्यालंकारे । हेभिक्षो यदिमया स्त्रिया भार्यया केशवत्या सह नोविहरेस्त्वं सकेशया स्त्रिया भोगान् भुंजानोव्रीडां यदि वहसि तत केशानप्यहंत्वत्संगमाकांक्षिणी लुंचिष्याम्यपनेष्यामि । आस्तां तावदलंकारादिकमित्यपिशब्दार्थ । अस्य चोपलक्षणार्थत्वादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादिकं तत्सर्वमहं करिष्ये त्वं पुनर्न मया रहितोनान्यत्र चरे । इदमुक्तं भवति मया रहितेन भवता क्षणमपि नस्थातव्यमेतावदेवाहं भवतं प्रार्थयामि अहमपियद्भवानादिशति तत्सर्वं विधास्यइति ॥ ३ ॥ इत्येवमतिपेशलैर्विश्रंभजननैरापातभद्रकैरालापैर्विश्रंभयित्वा यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह । (अहणमित्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । विश्रंभालापानंतरं यदासौ साधुर्मदनुरक्तइत्येवमुपलब्धोभवत्याकारैरिंगितैश्चेष्टया वा मद्वशगइत्येवं परिज्ञातोभवति तानि कपटनाटकनायिकाभि स्त्रीभिस्ततस्तदभिप्रायपरिज्ञानादुत्तरकालं तथाभूतै कर्मकरव्यापारैरपशब्दे

छे तेयसाके० अग्नीनो ताप पामे एटले राजपुरुष रीशाणा थका अग्नितावणानिके० पर स्त्री गमन करनार पुरुषना अग्नी सहित तेना शरीरना जडथुआ करे नखिय के० वांशला साथे तेना शरीर बांधीने तेवार पछी खारसिंचणाइय के० खारनु सींचवु करे, एटले लुणक्षेप पामे ॥२१॥ अड के० अथवा कन्नणासछेदके० कान अने नाशिकानु छेदन पामे कंठछेदण तितिरकती के० कंठनु छेदन पोताना कर्मना उदये सहन करे एरीने इह के० अहीं मनुष्य लोकने विषे पण पावसतत्ता के० पापे करी सतत एरी विटंबना पामे, तथापि नयविंतिके० एमनकहे जे पुणोके० हवे वली हु ए वा अनाचार नकाहितिके० नही करुं एम विचारी विरति पणु अंगीकार करे नही॥२२॥

॥ दीपिका–स्त्रीसंबंधे रागिणा हस्तपादछेदाद्यपि अथ वर्ध्रमासोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽग्नितापनानि स्त्रीसंबधिनिर्मनृपुरुषैर्नेटित्रकाण्यपि क्रियते। पादारिकास्तथा शस्त्रैश्छित्वा क्षारोदकसेचनानि प्राप्यते ॥ २१ ॥ कर्णनासिकाछेदमपि कंठछेदन च तितिक्षते सहते। इति एव प्रकारेणात्रैव मनुष्यजन्मनि पापसंतप्तामहावेदनामनुभवति नच ब्रुवते एव पुनर्न करिष्यामइति ॥ २२ ॥

॥ टीका–सांप्रतमिह लोकएव स्त्रीसंबंधविपाक दर्शयितुमाह। (अविहत्थेत्यादि) स्त्री संपर्काहि संसर्गिणा हस्तपादछेदनाय भवति। अपि संभावने। संभाव्यतएतन्मोहातुराणा सर्वथा हस्तपादछेदादिक अथवा वर्ध्रमासोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽग्नितापनानि स्त्रीसंबधिनिरुत्तेजितैराजपुरुषैर्नेटित्रकाण्यपि क्रियते पादारिकास्तथा वास्यादिना तक्षयित्वा क्षारोदकसेचनानि च प्रापयतीति ॥२१॥ अपिच। (अडुकन्नेत्यादि) अथ कर्णनासिकाछेद तथा कंठछेदन च तितिक्षते स्वकृतदोषात्सहते इत्येव बहुविधा विडंबनामस्मिन्नेव मानुषे च जन्मनि पापेन पापकर्मणा संतप्तानरकातिरिका वेदनामनुभवतीति। नच पुनरेतदेवभूतमनुष्ठान नकरिष्यामइति ब्रुवतइत्यवधारयतीति यावत्। तदेवमैहिकामुष्मिकाडुःखविभवनाअप्यगीकुर्वंति न पुनस्तदकरणतया निवृत्ति प्रतिपद्यंतइत्ति भाव ॥ २२ ॥

सुतमेत मेवमेगेसि, इत्थीवेदेतिहु सुयरकाय॥ एवंपि ता वदित्ताणं अडुवा कम्मणा अव करेति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चितेति, वाया अन्नंच कम्मणा अन्न ॥ तम्हा णसद्दाहिभिक्खू, बहुमायात्तइत्थि णच्चा ॥ २४ ॥

अर्थ–श्रीसुधर्मसामी कहेछे के एवक० ए जे पूर्वे स्त्रीना संबंधनुं फल कह्यु ते, भगवत

॥ टीका—अपिच (दारूणीत्यादि) यथा दारूणि काष्ठानि शाकं पत्रवल्लादिकं त्रप शाक तत्पाकार्थं।क्वचिदन्नपाकायेति पाठस्तत्रान्नमोदकादिकमिति । रात्रौ रजन्या प्रद्योतो वा भविष्यतीति कृत्वा अतोऽटवीतस्समाहरेति । तथा पात्राणि पतद्गृहादीनि रजय लेपय येन सुखेनैव भिक्षाटनमहं करोमि ।यदिवा पादावलक्तकादिना रजयेति । तथा प रित्यज्यापर कर्म तावदेह्यागच्छ मे मम पृष्ठमुत्प्राबल्येन मर्दय बाधते ममागमुपवि ष्टायाअत सहारय पुनरपर कार्यशेष करिष्यसीति ॥ ५ ॥ किंच (वत्थाणियमेऽत्यादि) वस्त्राणिच अवराणि मे मम जीर्णानि वर्ततेऽत प्रत्युपेक्षस्वान्यानि निरूपय । य दिवा मलिनानि रजकस्य समर्पय मदुपधिवा मूषिकादिभयात्प्रत्युपेक्षस्वेति । तथा अन्नपा नादिकमाहरानयेति तथा गंध कोष्ठपुटादिकग्रंथि वा हिरण्य तथा शोभनं रजोहरण तथा लोच कारयितुमहमशक्तेत्यत काश्यप नापित मच्छिरोमुण्डनाय श्रमणानुजानीहि येनाहं बृहत्केशानपनयामीति ॥ ६ ॥

अदु अजणि अलकारं,कुक्कययंमे पयच्छाहि ॥ लोद्धंच लोद्धकु
सुमच, वेणुपलासियच गुलियच ॥ ७ ॥ कुठ तगरच अगरु, स
पिठ सम्म उसिरेण॥ तेल्लं मुहभिजाए, वेणुफलाइ सन्निधानाए ॥८॥

अर्थ—(अदुके०)अथवा हवे प्रकारातरे गृहस्थना उपकरण कहीदेखाडेछे (अंजणिके०) काजलनु भाजन लावो तथा (अलकारके०) घरेणानु भाजन लावो तथा (कुक्कयके०) खुखणो आणी आपो तथा(पयच्छाहिके०)घुघुरा विणा (मेके०) मुजने लावी आपो जेम हु सर्व आभरण पेहेरीने तमने विनोद उपजावु तथा (लोद्धचलोद्धकुसुमचके०) लोद्र अने लोद्रना फल तथा (वेणुपलासियचके०) वशनी लाकडी आणी आपो जेने वाम हाथे ग्रहणकरी भाबाहाथे वीणा वजाडिये तथा (गुलियचके०) औषधगुटिका एटले औषधनी गोली लावी आपो जेणेकरी हु सदा यौवनाभिराम थकी रहु ॥७॥ (कुठअगरु तगरचके०) कुष्ट ते पुटादिक तथा अगर अने तगर रूडावास सुगध द्रव्य (सपिठ स म्मउसिरेणके०) एसर्ववस्तु उसिरजे वालो ते सहित पीसेली एवी सुंगध लइ आवो(तेल्लं मुहभिजाएके०) तथा औषधादिके सस्कार्यु एवु तैल मुखना अभ्यगने अर्थे लइ आ वो जे थकी माहारो मुख सतेज देखाय तथा (वेणुफलाइ सन्निधानाएके०) वासना करंडीआ पेटी प्रमुख वस्त्रालकारादिक राखवाने अर्थे लइ आवो ॥ ८ ॥

॥दीपिका—अथ अजनिका कज्जलाधारभूता नलिका अलकार केयूरादिक च मे प्रयच्छ देहि (कुक्कयय) खुखणक प्रयच्छयेनाहं वीणाविनोदेन त्वा रजयामि लोध्र लोध्रकुसुम सुगध तथा (वेणुपलासिअत्ति) वशात्मिका त्वक्काष्ठिका सा दतैर्वीणावद्वाद्यते तथौषधगुटिकां

इत्यादिक लावो (तिलगकरण के०) जेणेकरी गोरोचननुं तिलक करिये तेवी शलि लावो तथा (अंजण के०) जेणेकरी आख आंजीये एवी (सलागं के०) शिलाका लावो (विसुमेविहूयणविजाणेहि के०) उन्हालो जे ग्रीष्मकाल विशेष ते दिवशे वायु ढोलवाने अर्थे वींजणो लावो ॥ १० ॥

॥दीपिका—नदीचूर्णं उंघ्रलक्षणचूर्णं प्राहार प्रकर्षेणानय आतपस्य वृष्टेर्वारणाय छत्रमुपा नहौ च ममानुजानीहि। तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदाय पत्रशाकछेदनार्थं देहि तथा नीलं व स्त्र रजय। उपलक्षणाद्रक्तादिक च कारय॥ए॥ सुष्ठु फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिक यत्र सा सुफ णि स्थाल्यादिभाजन तत् शाकपाकार्थमानय। आमलकानि पित्तोपशमाय नक्षणार्थं स्ना नार्थवा उदकाहरण च जलाहरणपात्र। उपलक्षणाद्घृतादिपात्रमानय। सर्व गृहोपस्क रमानय। तथाहि। तिलक क्रियते यया सा तिलककरणी अजनशलाका यया तिलक क्रियते तामानय तथा ग्रीष्मे उष्णतापे मम विधूनक व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

॥टीका—किंच। (नंदीचुण्णगाईइत्यादि) नदीचुण्णगाइति द्रव्यसंयोगनिष्पादितोघ्रलक्षण चूर्णोनिधीयते। तमेवनूत चूर्णं प्रकर्षेण येन केनचित्प्रकर्षेणाहरानयेति तथाऽऽतपस्य वृष्टे र्वारक्षणाय छत्र तथोपानहौ च ममानुजानीहि। नमे शरीरमेनिर्विनावर्तते ततोदडस्वेति। तथा शस्त्र दात्रादिक सूपछेदनाय पत्रशाकछेदनार्थं ढौकयस्व। तथा वस्त्रमवर परिधानार्थं गुलिकादिना रजय यथा नीलमीषन्नीलं सामस्त्येन वा नीलं नवत्युपलक्षणार्थत्वाद्रक्तं यथा नवतीति ॥ए॥ तथा। (सुफणिचेत्यादि) सुष्ठु सुखेन वा फण्यते क्वाथ्यते तक्रादि क यत्र तत्सुफणि स्थालीपिठरादिक नाजनमनिधीयते तच्छाकपाकार्थमानय। तथा आ मलकानि धात्रीफलानि स्नानार्थं पित्तोपशमनायान्यवहारार्थं वा तथोदकमाह्रियते ये न तदुदकाहरण कुटवर्धनिकादि। अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्घृततैलाद्याहरण स र्ववा गृहो स्कर ढौकस्वेति। तिलक क्रियते यया सा तिलककर्णी दंतमयी सुवर्णात्मिका वा श लाका यया गोरोचनादियुक्तया तिलक क्रियतइति। यदिवा गोरोचनया तिलक क्रियते साच तिलककर्णीत्युच्यते। तिलका क्रियते पिष्यंते वा यत्र सा तिलककर्णीत्युच्यते। तथाजन सौवीरकादि। शलाका अक्ष्णोरजनार्थं शलाका अजनशलाका तामाहरेति। तथा ग्रीष्मे उष्णानितापे सति मे मम विधूनक व्यजनक विजानीहि ॥ १० ॥

संडासगंच फणिहंच, सीहलि पासगच आणाहि ॥आदसगच पयछा हि, दंतपक्खालण पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलय, सूई सुत्तगच जाणाहि ॥ ... सुपुक्खलगंच खारगालणंच ॥ १२ ॥

शीघ्र नितत्तेके० तेना तापेकरी णासमुवयातिके० विनाश पामे,एटले लाख बधीगली जाय ए वके०एरीते इत्थियाहिके० स्त्रीने सवासेणके० सवासे करीने अणगाराके०साधु पणते लाख नीपेरे णासमुवयतिके० सयम थकी विनाश पामे ॥२७॥ कुवतिपावगकम्मके० कोइएक साधु अनाचारी मोहना उदय थकी भ्रष्ट थको मैथुनसेवादिरूप पापकर्म करे, तेने पुछा वेगे वमाहिसु के० कोइ एक आचार्यादिके पुछ्यो थको एम कहे, जे नोहंकरेमिपाव ति के० हुं एवुं पाप कर्म नकरुं अकेसाइणी ममेसत्ति के० ए स्त्रीतो मारे दीकरी स मानछे, ए जेवारे न्हानी हती तेवारे माहरे खोले सयन करती, ते अन्यासे हमणा पण माहारा खोलामा बशेछे, सयन करेछे, परतु हुं प्राणाते पण व्रतभग करु नही ॥२८॥

॥ दीपिका–यथा जतुघ कुंभोज्योतिपाऽग्निनोपगूढोव्याप्तआशु अनितप्तोना शमुपयाति एव स्त्रीभि सार्धं सवसनेनाऽनगारानाशमुपयाति सयमाद्भ्रश्यंति ॥ २७ ॥ स्त्रीष्वासक्ता पाप कर्म कुर्वंति भ्रष्टा सयमादेके आचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्य माणमुक्तवत ।नाहमेवभूतकुलप्रसूत पापमकार्यं करिष्यामि ममैषा डुहितृतुल्या पूर्वमंके शायिनी आसीत् तदेषा पूर्वाभ्यासान्मयि एवमारचयति । नपुनरहं प्राणातेपि व्रतभगं विधास्य इति ॥ २८ ॥

॥ टीका–एव तावत्स्त्रीसान्निध्ये दोषान् प्रदर्श्य तत्सस्पर्शज दोष दर्शयितुमाह । (ज उकुंभेत्यादि) यथा जातुष कुंभोज्योतिषाग्निनोपगूढ समालिंगितोनितप्तोग्निनाभिमु ख्येन सतापित क्षिप्रं नाशमुपैति द्रवीभूय विनश्यत्येव स्त्रीभि सार्धं सवसनेन परिभो गेनानगारानाशमुपयाति सर्वथा जातुषकुंभवत् व्रतकाठिन्य परित्यज्य संयमशरीराद्भ्रश्य ति॥२७॥अपिच।(कुर्वतीत्यादि) तासु ससाराभिष्वगिणीष्वभिसक्ताअव धीरितैहिकामुष्मि कापाया पाप कर्म मैथुनासेवनादिकं कुर्वंति विदधति।परिभ्रष्टा सदनुष्ठानादेके केचनोत्कट मोहाआचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्यमाणमुक्तवंत । तद्यथा।नाहमेवंभूतकुलप्रसूत एतदकार्यं पापोपादानभूत करिष्यामि ममैषा डुहितृकल्पा पूर्वमंकेशायिनीआसीत् तदेषा पूर्वा भ्यासेनैव मय्येवमाचरति नपुनरहं विदितसंसारस्वभाव प्राणात्ययेपि व्रतभंग विधास्यइति.

बालस्स मंदय वीयं, जच कम अवजाणई भुजो ॥ डुगुणं करे इ से पावं, पूयणकामो विसन्नेसी ॥२९॥ संलोकणिजमणगारं, आयगयं निमंतणेणाहसु ॥ वछंच ताय पायंवा, अन्नं पाणगं पडिग्गहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुज्झेज्जा, णोइछे अगारमागं तुं ॥ बद्धे विसयपासेहिं, मोहमावज्जइपुणो मंदित्तिबेमि ॥३१॥ इति इत्थी परिन्नाए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

चंदालगंच करगंच, वच्चघरंच आउसो खणाइ ॥ सरपाय च जायाए, गोरहगच सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिगंच सडिंडिमयच, चेलगोल कुमारभूयाए ॥ वासं समभिआवन्न, आवसहंच जाण भत्तंच ॥ १४ ॥

अर्थ-(चदालगच के०) देवपूजाने अर्थे चगेरी प्रमुख भाजन तथा (करगचके०) करुउं मदिरानु भाजन ते आणी आपो तथा (वच्चघरंचआउसोखणाहिके०) अहो आयुष्मन् सचारुखण एटले पुरिष विष्टा घरमा नपडे माटे घरने नलीया संचारो तथा कूइ खणावो वली (सरपायंचजायाएके०) शरपात एटले धनुष्य बाण पुत्र रमाडवाने अर्थे लइ आवो (गोरहगंचसामणेराए के०) गोरहग एटले त्रण वर्षनो वलदीउं श्रमणना पुत्रने अर्थे रमत करवासारुं लइ आवो ॥१३॥(घडिगचसडिंडिमयचके०) घडिग एटले कूल्हाडी सडिंडिम एटले वाजित्रविशेष तेसहित तथा (चेलगोलके०)गोलदडी(कुमारभूयाएके०)कुमरक्रीडाने अर्थे लइ आवो जे दडीये करी माहारा बालक रमत करे (वाससमभिआवन्नंके०) तथा हेश्रमण वर्षाकाल आव्यो ते कारणे (आवसहचके०) वर्षाकालमा निवास करवा योग्य घर करावी आपो के जे थकी निर्जीये नहीं तथा (जाणभत्तचके०) तेवर्षाकाल योग्य एटले वर्षाकालमां वेगा खाइये माटे ताडुलादिक लइ आवो ॥१४॥

॥ दीपिका-चदालकं देवतार्चनाद्यर्थं ताम्रमय भाजन एतच्च मथुरायां चदालगमित्युच्यते। करकोजलाधारोमद्यभाजन वा आनय । तथा वर्चोगृह पुरीषोत्सर्गस्थान आयुष्मन् खन सस्कुरु ।शरपात बाणक्षेपस्थान धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय राय ढौकय । गोरहगं त्रिवर्ष बलीवर्द वाऽनय श्रमणस्यापत्य श्रामणिस्तस्मै श्रामणये गन्त्यादिरुते भविष्यतीति ॥ १३ ॥ घटिका मृन्मयकुल्लडिकां सडिंडिका पटहादिवादित्रेण सह गोलं कंडुक कुमारभूताय क्षुल्लकरूपाय मत्पुत्राय क्रीडार्थं देहि। हे श्रमण वर्षं प्रावृट्कालोयमभ्यापन्न समापन्न । प्राप्तस्ततश्रावसथं गृह वर्षाकालयोग्य भक्त च तडुलादिक च जानीहि निष्पादय । येन सुखेन वर्षाकालोतिवाह्यते । यदुक्त । मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽयुषा ॥ तत्कर्तव्य मनुष्येण यस्याते सुखमेधते ॥ १४ ॥

॥टीका-किंचान्यत्(चदालगचेत्यादि)चदालकमिति देवतार्चनिकाद्यर्थं ताम्रमय भाजन। एतच्च मथुरायां चदालकत्वेन प्रतीतमिति । तथा करकोजलाधारोमदिराभाजन वा तदानयेति क्रिया। तथा वर्चोगृह पुरीषोत्सर्गस्थान तदा ऽयुष्मन् मदर्थं खन सस्कुरु। तथा शराइव पात्यंते क्षिप्यंते येन तच्छरपातं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय कृते ढौकय । तथा (गोर

तद्द्वितीय माय। अज्ञत्वमेक तावदकार्यकरणेन चतुर्थव्रतभंगो द्वितीयं तदपलपनेन मृषावा द। तदेव दर्शयति। यत्कृतमसदाचरण जूय पुनरपरेण चोद्यमानोऽपजानीतेऽपलपति नै तन्मयाकृतमिति सएवनूतोऽसदनुष्ठानेन तदपलपनेन च द्विगुणं पाप करोति। किमर्थं मपलपतीत्याह्। पूजन सत्कारपुरस्कारस्तत्कामस्तदभिलाषी मामेलोके अवर्णवाद स्यादित्यकार्यं प्रच्छादयति। विषसोऽसयमस्तमेषितुं शीलमस्येति विषसैषी॥ २ए॥ किं चान्यत् (सलोकणिक्कमित्यादि) सलोकनीय सदर्शनीयमाकृतिमत कश्चनानगार साधु मात्मनि गतमात्मगतमात्मज्ञमित्यर्थ। तदेवनूत काश्चन स्वैरिण्योनिमंत्रणेन निमंत्रणपु र स्सरमाहुरुक्तवत्य। तद्यथा। हेशयिन् साधो वस्त्र पात्रमन्य द्वा पानादिक येन केनचिद्भवत प्रयोजन तदह्न नवते सर्वं ददामीति मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण त्वमिति॥ ३०॥ उपसं हारार्थमाह (णीवारमित्यादि) एतद्योषित्ता वस्त्रादिकमामंत्रण नीवारकल्पं बुध्येत जा नीयात्। यथाहि नीवारेण केनचिद्भक्ष्यविशेषेण सूकरादिर्वशमानीयते एवमसावपि तेना मंत्रणेन वशमानीयते अतस्त नेच्छेदगार गृह गंतुं।यदि वा गृहमेवावर्तोगृहावर्तोगृह भ्र मस्तं नेच्छेत् नाभिलपेत्। किमिति। यतोवश्योवशीकृतोविषयाएव शब्दादय पाशारज्जुबंध नानि तैर्बद्ध परवशीकृत स्नेहपाशानपत्रोटयितुमसमर्थ सन्मोह चित्तव्याकुलत्वमाग च्छति किंकर्तव्यमूढोनगति पान पुन्येन मदोऽज्ञोजडइति। इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पू र्ववत्॥ ३१॥ इतिस्त्रीपरिज्ञाया प्रथमोद्देशक समाप्त॥

हवे चोथा अध्ययननो बीजो उद्देशो प्रारंनिये बैये पहेला उद्देशामां स्त्रीना परिचय थकी चारित्रनो विनाश थायछे एम कह्यु हवे बीजा उद्देशामां जे साधु शील थकी पडे तेने जे विटंबना थाय ते कहेछे

उएसया णरज्जेज्जा, नोगकामी पुणोविरज्जेज्जा॥ नोगे समणाण सुणेह, जह्न भुंजंति निक्कुणो एगे॥१॥ अह त तु नेदमावन्न, मुछितं निक्कूका ममतिवट्टं॥ पलिनिंदियाण तो पच्छा, पाडद्दट्टुमुद्धि पहाणंति॥ २॥

अर्थ-(उएसयाके०)चारित्रिउ एकाकी राग द्वेषरहित होय ते साधु स्त्रीने विषे सदा काल(णरज्जेज्जाके०)नराचे, (नोगकामीपुणोके०) कदापि कर्मोदय थकी नोगाभिलाषी था य, तो वली विरज्जेज्जाके० विरचे केमके गृहस्थने पण जे नोगछे,ते विटंबनाप्रायछे, तेथी ते पण विरचेले तो, साधुने नोगनी विटंबनानु केवुजश्यु तेकारण माटे (नोगेसमणाण सुणेहके०)साधुना नोग केवा विटंबना प्रायछे ते सानलो(जह्नके०)जेम (भुंजंति निक्कुणो एगेके०)धर्मना जाण एवा कोइक साधु नोगवे ते आगल कहेछे. ॥१॥(अहके०)हवे(तं के०)ते साधु(तुके०)विशेषेकरी स्त्रीना परिचय थकी(नेदके०)शीलना विनाशने(आवन्नंके०)

नि पुरुषा कर्मकराइवादिश्यंते ॥१५॥ जात पुत्र सएव फलं गृहस्थाना तस्मिन्-पुत्रे समुत्पन्ने तडुद्देशेन याविम्बनास्ताआह । अमु दारक गृहाण त्व रमे अहतु व्यापा रवती अथवा एन जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छामि । कुपिता पुन' साब्रू ते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वतु उत्सगेपि नधत्से एवमुक्तोनरस्तडुक्त सर्व कुरुते । यत । ददाति प्रार्थित प्राणान्, मातर हंति तत्कृते ॥ किं न दद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीनिर न्यर्थितोनर ॥१॥ ददाति शौचपानीयं पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणा वशगतोनर ॥ २ ॥ अथ पुत्रपोषिणस्ते नराएके भारवहा स्यु । यथातु उ ष्ट्रानार वहति तत्तुल्या ॥ १६ ॥

॥ टीका-एवच (पाउन्नाइति) मौजे काष्ठपादुके वा सक्रमणार्थं पर्यटनार्थं निरूपय यतोनाह् निरावरणपादा भूमौपदमपि दातु समर्थेति । अथवा पुत्रे गर्नस्थे दोहद पुत्र दोहद अतवेंत्तीफलादावनिलापविशेषस्तस्मै तत्सपादनार्थं स्त्रीणा पुरुषा स्ववशीकृता दासाइव क्रयक्रीताइवाज्ञाप्याआज्ञापनीयानवति । यथा दासाअलज्जितैर्योग्यत्वादाज्ञा प्यते एव तेपि वराका स्नेहपाशावपाशिताविषयार्थिन स्त्रीनि ससारावतरणवीथीनि रादिश्यतइति ॥ १५ ॥ अन्यच्च । (जाएफलेइत्यादि) जात पुत्र सएव फल गृहस्था ना । तथाहि । पुरुषाणा कामभोग फल । तेषामपि फल प्रधानकार्य पुत्रजन्मेति । तडु क्त । इद तत्स्नेहसर्वस्त्र, सममाढ्यदरिद्रयो ॥ अचदनमनौशीर, हृदयस्यानुलेपनं ॥१॥ यत्तन्नपनिकेत्युक्त, बालेनाव्यक्तभाषिणा ॥ हित्वा सौख्य च योग च तन्मे मनसि वर्तते ॥ २ ॥ यथा लोके पुत्रसुख नाम द्वितीय सुखमात्मनइत्यादि । तदेव पुत्र पुरुषाणा परमान्युदयकारण तस्मिन् समुत्पन्ने जाते तडुद्देशेन या विडंबना पुरुषाणा नवति । अमुं दारक गृहाण त्वमहतु कर्मासक्ता न मे ग्रहणावसरोस्ति । अथचैन जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छाम्येव कुपितासती ब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्व पुनरुत्सगे नाप्यु वहन् स्तोकमपिकालमुद्विजसइति । दासदृष्टातस्त्वादेशदानेनैव साम्य नजते नादेश निष्पादनेनैव । तथाहि । दासोनयादुदन्नादेश विधत्ते सतु स्त्रीवशगोऽनुग्रह मन्यमानोमु दितश्च तथादेश विधत्ते । यदेव रोचते मह्य, तदेव कुरुते प्रिया । इतिवेत्ति न जानाति त त्प्रिय यत्करोत्यसौ ॥ १ ॥ ददाति प्रार्थित प्राणान् मातर हति तत्कृते ॥ किं नदद्या त्किं न कुर्यात्स्त्रीनिरन्यर्थितो नर ॥ २ ॥ ददाति शौचपानीय, पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणा वशगतो नर ॥३॥ तदेव पुत्रनिमित्तमन्यद्वा यत्किंचिन्नि मित्तमुद्दिश्य दासमिवादिशति । अथ तेपि पुत्रान् पोषितु शील येषाते पुत्रपोषिणउपलक्ष

परिगणय्य पुनस्तान्योविरक्तेत । एतडुक्तं नवति । कर्मोदयात्प्रवृत्तमपि चित्तंहेयोपादेयपर्या लोचनया ज्ञानांकुशेन निवर्तयेदिति । तथा श्राम्यति तपसा खिद्यंतीति श्रमणास्तेषामपि नोग इत्येतत्शृणुत यूय । एतडुक्तं नवति । गृहस्थानामपि नोगा विडंबनाप्रायायतीनातु नोगा इत्येतदेव विडंबनाप्राय किंपुनस्तत्कृतावस्था । तथाचोक्त । मुम शिरइत्यादि पूर्ववत् । यथा यथा च नोगानेकेऽपुष्टधर्माणोनिक्षवोयतयोविडंबनाप्रायान् नुजते तथोद्देश कसूत्रेणैव वक्ष्यमाणेनोत्तरत्र महता प्रबंधेन दर्शयिष्यामि । अन्यैरप्युक्तं । कृश का ण खज श्रवणरहित पुच्छविकल', क्षुधाक्षामोजीर्णं पिठरककपालार्दितगल ॥ व्रणै पूयक्लिन्नै कृमिकुलशतैराविलतनु शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हत्येव मदन इत्यादि ॥ १ ॥ नोगिना विडंबना दर्शयितुमाह । (अहेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे । तुशब्दोविशेष णार्थे स्त्रीसंस्तवादनंतर निक्षु साधुं चेद शीलनेद चारित्रस्खलनमापन्न प्राप्त संतं स्त्री षु मूर्छित गृद्धमध्युपपन्नं । तमेव विशिनष्टि । कामेष्विच्छामदनरूपेषु मतेर्बुद्धेर्मनसोवा व र्तन प्रवृत्तिर्यस्यासौ काममतिवर्त कामानिलाषुकइत्यर्थ । तमेवनूत परिनिद्य मदन्यु पगत श्वेतरुजप्रतिपन्नोमत्कशकइत्येव परिज्ञाय यदिवा परिनिद्य परिमार्यात्मसात्कृत चोद्यार्येति । तद्यथा । मया तव लुचितशिरसोजल्लमलाविलतया दुर्गंधस्य जुगुप्सनीय कक्षावक्षोवस्तिस्थानस्य कुलशीलमर्यादालज्जाधर्मादीन्परित्यज्यात्माढत्तस्त्व पुनरकिंचि त्करइत्यादि नणित्वा प्रकुपितायास्तस्याअसौ विषयमूर्छितस्तत्प्रत्यापनार्थं पादयोर्निप तित । तथाचोक्त । व्याभिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहा,नागाश्च दानमदराजिकृशैं कपोलै ॥ मेधाविनश्च पुरुषा समरेच शूरा स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषानवति ॥ १ ॥ ततोविषयेष्वे कांते न मूर्छितइति परिज्ञानात्पश्चात्पाद निजवामचरणमुत्क्षिप्योत्क्षिप्य मूर्ध्नि शिरसि प्रघ्नंति ताडयत्येव विडंबना प्रापयतीति ॥ २ ॥

जइ केसिआ णं मए निक्खु, णोविहरे सह ण मिथीए॥ केसाणविह लुं चिस्सं नन्नज मए चरिज्जासि ॥ ३ ॥ अहणा सहोई उवलद्धो, तो पेसति तहानूएहिं ॥ अलाउछेद पेहेहि, वग्गुफलाइ आहराहित्ति ॥ ४ ॥

अर्थ–वली कोइक स्त्री एवी माया करे के (जइके०)जो तमे(केसिआके०) केसवत्ती एवी एवाक्यालंकारे (मएके०)माहारा सहित विहार करतायका शंका पामताहो तो(निक्खूके०) अहो साधु तमे (णोविहरेसहणमिथीएके०)केशवाली स्त्रीनी साथे विहार करशो नहीं (के साणविहके०) केशनेपण हु (लुचिस्सुंके०) लोच करीने दूर करीश अपि शब्द थकी अन्य जे काइ तमे कहेशो ते सर्व हुं करीश पण (नन्नडमएचरेज्जासि के०) माहारा विना तमे अन्य स्थानके विचरशो नही एटली वीनत्ती करुं ते मान्य करो. हु पण तमा

॥ टीका—किंचान्यत् (राउविइत्यादि) रात्रावप्युत्थिता सतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापै । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय इउकण्णगिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स निन्नस्सय कुच्छिपुरस्सयकणुकुज्जआयामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिनिरसंबद्धैः क्रीडनकलापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिन पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोपहा स्यता सर्वेभ्य व्रजति । सुप्पु न्हीर्लज्जा तस्या मनोत्त करण येषाते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते सतोविहाय लज्जा स्त्रीवचनात्सर्वेजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव नवति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद न्यदप्युदकवहनादिक कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमभिधीयते वाढं कु र्वंतीत्याह । (एव बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्त स्त्रीणामादेशकारण पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिक तद्बहुभि संसाराभिष्वंगिभि पूर्वं कृत कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यति च ये नोगकृते कामभोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्याभिमुख्येन भोगानुकूल्येनापन्नाव्य वस्थिता सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागाध स्त्रीवशीकृत सदासवदश कितान्निस्तानि प्रत्यपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतित परवशोमृगइव धार्यते ना त्मवशोभोजनादिक्रियापि कर्तुं लभते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्च शोधनादा वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्य विवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात् पशु भूतइव। यथाहि पशुराहारभयमैथुनपरिग्रहाभिज्ञएव केवलमसावपि सदनुष्ठानरहितत्वा त्पशुकल्प ।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुभ्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतडुक्तं नवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्य नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदिलुभयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिभोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिना मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एव खु तासु विन्नप्प, संथवं सवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा वज्जकराय एवमरकाए॥१९॥ एव भय एसेयाय, इइ से अप्पग निरुं भित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, भिक्खुणो सय पाणिणा णिलज्जेज्जा ॥२०॥

अर्थ—हवे उपदेश कहेछे (एवखुतासुविन्नप्पके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो भिनव्यो मायानु कारण जाणीने (सथवके०) तथा तेनु सस्तव (सवासचके०) तेनुं सवास एटले भेळुं व शवु तेने उत्तमपुरुष (वज्जेज्जाके०) वर्जे त्याग करे (तज्जातिआइमेकामा के०) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी छे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामभोग ते (वज्ज करायएवमरकाए के०) अवद्यकराएवमाख्यात एटले पापकर्म कारी दुर्गतिना दातार

प्रेषयंति नियोजयति । यदिवा तथाजूतैरिति लिंगस्थयोग्यैर्व्यापारे प्रेषयंति तानेवदर्शयितुमाह् । (अलाउत्ति) अलावु तुब छिद्यते येन तदलावुछेद पिप्पलकादि शस्त्रं (पेहाहित्ति) प्रेक्षस्व निरुपय लनस्वेति येन पिप्पलकादिना लब्धेन पात्रादेर्मुखादि क्रियतइति । तथा वग्गूनि शोजनानि फलानि नारीकेरादीनि अलाबुकानिवा त्वमाह्रानयेति । यदिवा वाक्फलानिच धर्मकथारूपायाव्याकरणादिव्याख्यानरूपायावा वाचोयानि फलानि वस्त्रादिलानरूपाणि तान्याह्रेति ॥ ४ ॥

दारुणि साग पागाए, पज्जोउ वा नविस्सती राउ ॥ पाताणिय मे रयावेहि, एहि तामे पिट्ठउ मद्दे ॥५॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहि, अन्न पाणच आहराहित्ति ॥ गधंच रउहरण च कासवग मे समणुजाणाहि ॥ ६ ॥

अर्थ-(दारुणिसाग पागाएके०) दारुण एटले काष्ठ शाकपत्र एटले वत्थुलादिक राधवाने अर्थे लावो (वाके०) अथवा (पज्जोउके०) प्रद्योत एटले अजवालु (राउके०) रात्रीनेविषे (नविस्सतीके०) थाय ते वास्ते तैलादिक लावो. तथा (पाताणिय मेरयाहिके०) माहारा पात्राने रंगी आपो के जेणे करी हु सुखे निक्षा मागी आहारादिक लावु अथवा माहारा पग रगवाने अर्थे रग लइ आवो तथा (एहितामे पिट्ठउमद्देके०) अहीं आवो माहारा अगडु खेडे माटे माहारी पीठे मर्दन करो एम कहे ॥ ५ ॥ (वत्थाणियमेपडिलेहेहिके०) माहारा वस्त्र प्रतिलेखो एटले जूर्ण जुना थयाछे, माटे बीजा नवा आणी आपो, तथा मलीन थयाछे तेने धोवरावो तथा (अन्नपाणच आहराहित्तिके०) अन्न पाणी आणी आपो तथा (गंधंचके०) सुगध कर्पूरादिक लइ आवो, अथवा ग्रथ ते हिरण्यादिक लावो तथा (रउहरणचके०) रजोहरण सारो आणी आपो तथा (कासवगमेसमणुजाणाहिके०) हुंलोच करावी शकु तेम नथी तेमाटे मस्तक नइ करावबा एटले त्रुहत्केश उतारवाने अर्थे नावीने तडी लावो एटला उपकरण वेषधारीना कह्या ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-दारुणि काष्ठानि शाकंच पाकायानय । रात्रौ रजन्या प्रद्योतोनविष्यतीति रात्रावपि वनादौ गत्वाऽ नय । तथा पात्राणि नाजनानि मे रजय लेपय येनाहं सुख निक्षा मार्गये । अथवा पादौ रजय अलक्तकादिना । एहि आगच्छ साधो तावन्मेमम पृष्ठ मर्दय विश्रमणा कुरु बाधते मर्मांगमिति ॥ ५ ॥ वस्त्राणि मे जीर्णानि वर्तंते अतस्तानि प्रत्युपेक्षस्व अन्यानि निरुपय अन्नपानादिकं चाहारमानय गध वासादिक ग्रंथवा हिरण्यादिक शोजन रजोहरणच । अह लोच कारयितुमसमर्था तत काश्यपं नापितं अनुजानीहि येनाह शिरोमुंडयामि ॥ ६ ॥

भिक्खू॥ तम्हा अप्पविसुद्धे सुविमुक्के, आमोक्खाए परिव्वएज्जा सि(पाठां तर विहरे आमुक्खाए)त्तिबेमि॥२२॥इति श्रीइत्थी परिन्ना चतुर्थाध्ययनं समत्तं

अर्थ-(सुविसुद्धलेसेके०) शुद्ध निर्मल लेश्यावत चित्तनो व्यापारछे जेनो एवो (मेहावीके०) पंमित ते (परकिरियंचके०) परनी करेली क्रियादिकसबधीनी क्रिया अथवा जोगने अर्थे परने हाथे पोताने विषे स्पर्शादिक जे क्रिया करावची तेने (वज्जएनाणीके०)ज्ञानवत पुरुष मने वचने अने कायाये करवु करावचु ने अनुमोदवु एम त्रिविधे वर्जे अर्थात् काम जोगने टालेतथा(सव्वफासमहे अणगारेके०)अन्य सर्व शीतादिक परिसह जे कह्याछे तेने ते अणगार स्पर्श्ये थको सहे एटले सहन करे ॥२१॥ (इच्चेवमाहु सेवीरेके०) एम ए पूर्वोक्त समस्त उपदेश श्री माहावीर देवे आहु एटले कह्योछे ते श्रीमाहावीर परमेश्वर केवाछे तो के(धुअरए धुअमोहेके०) पाप रज रहित तथा मोहरहित छे (तम्हाके०)तेमाटे(सेभिक्खूके०)ते साधु सम्यक्दर्शन चारित्रे करी युक्त थको मुक्तिने साधे (अप्पत्त विसुद्धेसुके०) अध्यवसाय निर्मल थको (विमुक्क आमोक्खाए परिव्वएज्जासिके०) विमुक्त आमोक्षाय परिव्रजेत् संयमानुष्ठाने इति एवो भिक्षु स्त्रीसंगादिक क्लेश थकी विमुक्त थयो थको ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी सूधो संयम पाले तिबेमिनु अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २२॥ एस्त्री परिज्ञा नामे चोथा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो ॥

॥ दीपिका-सुविशुद्धा लेश्या मनोवृत्तिर्यस्य सुविशुद्धलेश्योमेधावी मर्यादावान् परस्य कृयादे सबन्धिनीं क्रियां ज्ञानी विवेकवान् वर्जयेत् मनसा वाचा कायेन सर्वस्पर्शसहोऽनगार शीतोष्णदंशमशकादिसहनकृत्य स्यात् ॥ २१ ॥ इत्येव पूर्वोक्त तत्सर्व भगवान् वीरोधुत क्षिप्त रज स्त्रीसबंधकृत कर्म येन स धुतरजा धुतमोहआह उक्तवान् तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्धोनिर्मलचित्त सुविमुक्त स्त्रीसबंधेन रहितआमोक्षाय सर्वकर्मक्षयं यावत् विहरेत्संयमोद्यतोभवेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां चतुर्थाध्ययनं समाप्त ॥

॥ टीका-अपि च । सुविसुद्धेइत्यादि)सुष्टु विशेषेण शुद्धा स्त्रीसंपर्कपरिहाररूपतया निष्कलंका लेश्याऽत करणवृत्तिर्यस्य स तथा सएवभूतोमेधावी मर्यादावर्ती परस्मै कृयादि पदार्थां क्रिया परक्रिया ता च ज्ञानी विदितवेद्योवर्जयेत्परिहरेत्। एतदुक्त भवति । विषयोपभोगोपाधिना नान्यस्य किमपि कुर्यान्नाप्यात्मन स्त्रिया पादधावनादिकमपिकारयेत्। एतच्च परक्रियावर्जन मनसा वचसा कायेन वर्जयेत्तथा ह्यौदारिककामभोगार्थं मनसा न गच्छति नान्य गमयति गच्छतमपर नानुजानीते एव वाचाकायेन च सर्वेप्यौदारिके नव भेदाएव दिव्येपि

तादृशीं देहि येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ कुष्ठमुत्पलं तगरमगरच सुगंधिद्व्यमुशीरेण वीरणमूलेन सपिष्टं सुगंधि स्याद्यतस्तत्तथा कुरु। तैलं मुखमाश्रित्य (भि लिजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकय मुखाभ्यंगार्थं तैलं तथाविधमानयेत्यर्थः । वेणुफलानि वंश कार्याणि करंडकादीनि सन्निधान वस्त्रादेर्व्यवस्थापन तदर्थमानय ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (अडुअंजणीमित्यादि) अथशब्दो ऽधिकारांतरप्रदर्शनार्थः । पूर्वं लिंगस्थोपकरणान्यभिहितान्यधुना गृहस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिधीयते । तद्यथा (अंजणीमिति) अंजणिका कज्जलाधारभूता नलिका मम प्रयच्छस्वेत्युत्तरत्र क्रिया। तथा कटककेयूरादिकमलंकार वा तथा (कुक्कुटयति) खुखुणक मे मम प्रयच्छ येनाहं सर्वालंकारविभूषिता वीणाविनोदेन भवत विनोदयामि। तथा लोध्रं च लोध्रकुसुमं च। तथा (वेणुफलातिपति) वंशात्मिका श्लक्ष्णत्वक् काष्ठिका सा दंतैर्वामहस्तेन प्रगृह्य दक्षिणहस्ते नवीणाव द्वाद्यते। तथौषधगुटिका तथाभूतामानय येनाहमविनष्टयौवना नवामीति॥७॥ तथा (कुट्ठमित्यादि) कुष्ठमुत्पलकुष्ठं तथाऽगरुं तगरच एते द्वेअपि गंधिकद्रव्ये। एतत्कुष्ठादिकमुशीरेण वीरणीमूलेन सपिष्टं सुगंधि नवति यतस्तत्तथा कुरु, तथा तैलं लोध्रकुकुमादिना संस्कृत मुखमाश्रित्य (भिलिजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकयस्व। एतदुक्तं नवति। मुखाभ्यंगार्थं तथाविध संस्कृत तैलमुपाहरेति येन कांत्युपेतं मे मुख जायते (वेणुफलाइत्ति) वेणु कार्याणि करंडकपेटिकादीनि सन्निधि सन्निधान वस्त्रादेर्व्यवस्थान तदर्थमानयेति ॥ ८ ॥

नंदीचुण्णगाइं पाहराहि,छत्तोवाणहंच जाणाहि ॥ सत्थंच सूवछेज्जाए आणीलंच वत्थं रयावेहि ॥ ९॥ सुफणिंच साग पागाए, आमलगाइंदगाहरणंच ॥ तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मेविहूणयं विजाणेहि ॥ १० ॥

अर्थ–(नंदीचुण्णगाहि पाहराहिके०)द्रव्यसंयोगे नीपजाव्युं एवुं नंदीचूर्ण ते उष्ठ रंगवाने अर्थे कोइक प्रकारे लावो (छत्त के०) आताप तथा वृष्टी राखवा भणी छत्र लावो तथा (उवाणहचजाणाहिके०) उपानह जे मोजडी प्रमुख ते पग राखवाने अर्थे सम्यक् प्रकारे लावो (सत्थंचसुवछेज्जाएके०) दात्रादिक शस्त्र नीलाशाक पत्रादिक छेदवाने अर्थे लावो (आणीलंचवत्थरयावेहिके०) नीला वस्त्र रंगावी आपो लालवस्त्र रंगावी आपो एरीते वचन कहे ॥ ९ ॥ (सुफणिचसागपागाए के०)रुडी हांमली पत्रशाक अन्नादिक पकाववाने अर्थे लावो तथा (आमलगाइके०) पित्तोपशमाववाने अर्थे अथवा स्नान करवाने अर्थे आमला लावो (दगाहरणाच के०) पाणी राखवाने अर्थे घडो घडूलो

रूपण । ऊर्ध्वलोकविनक्ति सौधर्माद्यात्रपर्युपरिव्यवस्थिता द्वादशदेवलोका नवग्रैवेयकानि पंचमहाविमानानि । तत्रापि विमानेंद्रकावलिप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिविमानस्वरूपनिरूपणमिति । दिगाश्रयणेन तु पूर्वस्या दिशि अवस्थितं क्षेत्रमेवमपरास्वपीति । द्रव्याश्रयणाच्चाल्लिक्षेत्रादिकं गृह्यते । स्वाम्याश्रयणाच्च देवदत्तस्य क्षेत्रं यज्ञदत्तस्य वेति । यदिवा क्षेत्रविनक्तिरार्याऽनार्यक्षेत्रनेदाद्द्विधा । तत्राप्यार्यक्षेत्रमर्धषड्विंशतिजनपदोपलक्षितं राजगृहमगधादिकं गृह्यते । रायगिहमगहचपा, अंगातहतामलित्तिवगाय ॥ कंचणपुरकलिंगा, वाराणसीचेव कासीय ॥ १ ॥ साकेयकोसलागय, पुरचकुरुसौरियंकुसुट्टाय ॥ कपिल्ल पंचाला, अहिछत्ताजंगलाचेव ॥ २ ॥ वारवईयसुरट्ठा मिहिलविदेहायवच्छकोसंबी ॥ नंदिपुरसंडिल्ला, नद्दिलपुरमेवमलयाय ॥ ३ ॥ वइराडवच्छवरणा, अच्छातहमित्तियावइदसन्ना ॥ सुत्तीमईयचेदी, वीयनय सिंधुसोवीरा ॥४॥ महुरायसूरसेणा, पावाजंगीयमासपुरिवट्टा ॥ सावित्थीयकुणाला, कोमीवरिसंचलाढाय ॥ ५ ॥ सेयवियावियणायरि, केययअद्धचआरियनणिय ॥ जत्थुप्पत्तिजिणाण, चक्कीणरामकिण्हाण ॥ ॥ ६ ॥ अनार्यक्षेत्रं धर्मसंज्ञारहितमनेकधा । तदुक्तं । सगजवणसबरबब्बर, कायमुरुमो डुगोणपक्कणया ॥ अक्खागहूणरोमस पारसखसखासियाचेव ॥ १ ॥ डुबिलयलवोसवाक्कस, भिल्लंदपुलिंदकोंचभमररुया ॥ कोंचायचीणचंचुय, मालंदमिलाकुलग्धाय॥ ॥ २ ॥ केकयकिरायहयमुह खरमुहतह तुरगमेढगमुहाय ॥ ॥ हयकन्नागयकन्ना, अन्नेयअणारियावहवे ॥ ३ ॥ पावायचंमदंमा, अणारियाणिग्घिणाणिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अक्खराइ, जेसुणणज्जतिसुविणोवि ॥ ४ ॥ कालविनक्तिस्तु अतीताऽनागतवर्तमानकालनेदात्त्रिधा । यदि वैकांतसुषमादिकक्रमेणाऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्युपलक्षितं द्वादशारं कालचक्रं । अथवा । समयावलियमुहुत्ता, दिवसमहोरत्तपक्कमासाय ॥ संवच्छरयुगपलिया, सागरउस्सप्पिपरियट्टेत्येवमादिकाकालविनक्तिरिति । नावविनक्तिस्तु जीवाजीवनेदाद्द्विधा। तत्र जीवनावविनक्तिरौदयिकौपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक, सान्निपातिक, नेदात् षट्प्रकारा । तत्रौदयिकोगतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्नेदक्रमेणैकविंशतिनेदनिन्न । तथौपशमिक सम्यक्त्वचारित्रनेदाद् द्विविध । क्षायिक सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभनोगोपनोगवीर्यनेदान्नवधा । क्षायोपशमिकस्तु ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचनेदा । तथा सम्यक्त्वचारित्रसयमासयमनेदक्रमेणाष्टादशधेति । पारिणामिकोजीवत्वभव्याभव्यत्वादिरूप सान्निपातिकस्तु द्विकादिनेदात् षड्विंशतिनेद । सनवीतु पञ्चदशविधोयमेव गतिनेदात्पंचधेति । अजीवनावविनक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगंधरसस्पर्शसंस्थानपरिणाम । अमूर्तानां गतिस्थित्यवगाहवर्तनादिकइति । सांप्रतं समस्तपदापेक्षया नरकविनक्तिरिति । नरकाणां विनागोविन

अर्थ—(समासक के०) चीपींउं जेणेकरी नाशिकाना नीमाला चूंचीए काढीए तेने समासक कहिए वली (फणिहचके०) कासकी जेणेकरी मायाना वाल समारिए ते तथा (सीहलिपासगचआणाहि के०) वेणी बांधवाने अर्थे ऊननी कांकशी ए वस्तुउं आणी आपो (आदसगंचके०) आदर्शक आसमतात् दृश्यते आत्मा यस्मिन् स आदर्श जेणे करी मुख वर्णादिक रूप शरीर देखाय तेने आरीशो कहिए ते (पयछाहिके०) आणी आपो (दंतपक्खालणपवेसाहिके०) दंतप्रक्षालन करवाने अर्थे दांतण माहारा समीपे लावो ॥११॥ (पूयफलंके०) पुगफलते सोपारी (तंबोलयंके०) नागरवेलीना पानना बीडा प्रमुख तथा (सूईसुत्तगचजाणाहिके०) सूत्र शीववाने अर्थे सूई ए वस्तुउं लइ आवो (कोसंयके०) घटादिक भाजन (मोचमेहाएके०) मोचप्रस्रवणतेनमेहसेचन एटले लघुनीति करवा निमित्त रात्रीने समये मने बाहेर निकलता बीक लागेछे तेमाटे ते भाजन आणी आपो (सुप्पुके०) तडुलादिक धान सोधवाने अर्थे सुपडु लावो (ऊखलगचके०) धान खांडवाने अर्थे उखलो लइ आवो वली (खारगालणचके०) जेमां नाखीने साजी प्रमुख खार गालीयें ते पात्र लावो अथवा लवणादिक खार लावो ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—सडासिक नासिकाकेशोत्पाटन फणिह केशसमारचनाय कंकतकं सीहलिपासकं वीणासयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय आदर्शकं दर्पणं प्रयछ दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं मदंतिके प्रवेशय ॥११॥ पूगफलं तांबूलं सूचीसूत्रं च जानीहि देहि। कोशं घटादिभाजन मोचमेहायानय। मोच प्रस्रवण तेनमेह सेचन तदर्थं भाजनमानय। तथा शूर्पं तंडुलादिशोधन उदूखल क्षारस्य सार्जिकादेर्गलनकं चानयेति ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं (समासगचेत्यादि) सडासिक नासिकाकेशोत्पाटनं फणिह केशसमानार्थं कंकतकं तथा (सीहलिपासगति) वीणासयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय ढौकयेति। एवमासमंताद्दृश्यते आत्मा यस्मिन् सआदर्श सएवआदर्शकस्तं प्रयछ ददस्वेति। तथा दंता प्रक्षाल्यंते अपगतमला. क्रियंते येन तद्दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं तन्मदंतिके प्रवेशयेति ॥ ११ ॥ (पूयफलंचेत्यादि) पूगफलं प्रतीतं तांबूलं नागवल्लीदलं तथा सूची च सूत्रं च सूच्यर्थं वा सूत्र जानीहि ददस्वेति तथा कोशमिति वारकादिभाजनं तन्मोचमेहाय समाहर। तत्र मोच प्रस्रवणकायिकेत्यर्थः। तेन मेह सेचनं तदर्थं भाजनं ढौकय। एतदुक्तं भवति। बहिर्गमनं कर्तुमहमसमर्था रात्रौभियादतो मम यथारात्रौ बहिर्गमनं न भवति तथा कुरु। एतच्चान्यस्याप्यधमतमकर्तव्यस्योपलक्षणं द्रष्टव्यं। तथा शूर्पं तडुलादिशोधनं तथोदूखलं तथा किंचन क्षारस्य सर्जिकादेर्गालनकमित्येवमादिकमुपकरणं सर्वमप्यानयेति ॥ १२ ॥

छेदनं तथा पातनं निष्कुटादधोवज्रभूमौ प्रक्षेपस्तथाप्रतोदन व्यथन तथा सूच्यादिना नासिकादौ वेधस्तथा रज्ज्वादिना क्रूरकर्मकारिण बध्नति। तथा तादृग्विधलताप्रहारस्ता डयंत्येव दुःखोत्पादन दारुण शातनपातनवेधनबंधनादिक बहुविध प्रवर्तयंति व्यापा रयतीति। अपिच। अतगयफिफिसाणिय, हियय कालेज्जफुप्फु सेचक्के। सवलाणेरति याण, कढतितहिअपुन्नाण ॥ ७३ ॥ (अतगयेत्यादि)। तथा सवलाख्यानरकपाला स्तथाविधकर्मोदयसमुत्पन्नक्रीडापरिणामाअपुण्यभाजा नारकाणा यत्कुर्वति तद्दर्शय ति। तद्यथा। अंत्रगतानि यानि फिफिसानि अत्रांतवर्तीनि मांसविशेषरूपाणि हृदयं ति पाटयति तथा तजत (कालेज्जति)। हृदयातवर्ति मांसखडं। तथा (फुप्फुसेत्ति) उदरातवर्तीन्यत्रविशेषरूपाणि तथा वल्कलान् वध्रानाऽकर्षयति। नानाविधैरुपायैरशर णाना नारकाणां तीव्रा वेदनामुत्पादयतीति। अपिच। असिसत्तिकोंततोमर, सूलतिसू लेसुसूइविधगासु ॥ पोएतिरुद्दकम्माउ, णरगपालातहिरोदा ॥ ७४ ॥ (असिसत्तीत्या दि)। तथा अन्वर्थाभिधानारौद्राख्यानरकपालारौद्रकर्माणोनानाविधेष्वसिशक्त्या दिषु प्रहरणेषु नारकानशुभकर्मोदयवर्तिन प्रोतयतीति। तथा। भजतिअंगमगाणि, ऊरूबाहूसिराणिकरचरणा। कप्पेतिकप्पणीहि, उवरुद्दापावकम्मरया ॥ ७५ ॥ (भजतीत्या दि) तथोपरुद्राख्या परमाधार्मिकाणामगप्रत्यगानि शिरोबाहूरुकादीनि तथा करचरणांश्च भजति मोटयति पापकर्माण कल्पनीभि कल्पयति पाटयंति। तत्रास्त्येव दुःखोत्पादन य त्ते न कुर्वतीति। अपिच। मीरासुसुठएसुय, कडूसुयपयणएसुयपयति। कुभीसुयलोहियसुय, एयतिकालाउणेरतिए॥ ७६ ॥ (मीरासुइत्यादि) तथा कालाख्यानरकपाला सुरामीरासु दीर्घचुल्लीषु तथा शुठकेषु तथा कडुकेषु प्रचडकेषु तीव्रतापेषु नारकान् पचति तथा कुभीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा वह्नीष्वायसकवल्लिषु नारकान् व्यवस्थाप्य जीवन्मत्स्यानिव प चति। अपिच। कप्पतिकागिणीम, सगाणिछीदतिसीहपुच्छाणि ॥ खावतियाणरइए, मह कालापावकम्मरए ॥ ७७ ॥ (कप्पतीत्यादि) महाकालाख्यानरकपाला पापकर्मनिर तानारकान्नानाविधैरुपायै कदर्थयति। तद्यथा। काकिणीमांसकानि श्लक्ष्णमांसख डानि कल्पयति नारकान् कुर्वति तथा (सीहपुच्छाणित्ति)। पृष्ठीवर्धास्ताश्छिंदति। त था ये प्राक् मांसाशिनोनारकाआसन् तान्स्वमासानि खादयंतीति। अपिच। हत्थेपाएऊ रू, बाहुसिरापायअगमगाणि ॥ छिदतिपगाणतू असिणेरइएनिरयपाला ॥ ७८ ॥ (ह त्थेत्यादि) असिनामानोनरकपालाअशुभकर्मोदयवर्तिनोनारकानेव कदर्थयति। तद्य था। हस्तपादोरुबाहुशिर पार्श्वादीन्यगप्रत्यगानि छिंदति प्रकाममत्यर्थं खडयति। तुश ब्दोऽपरदुःखोत्पादनविशेषणार्थइति। तथा। कण्णोठणसकरचरण दसणथण फुग्गऊरुबाहू ण ॥ छेयणभेयणसाडण, असिपत्तधणूहिपाडति ॥ ७९ ॥ (कण्णोठइत्यादि)। असि

हृगंति) उपढायण बलीवर्दं च ढौकयेति (सामणेराएत्ति) श्रमणस्यापत्य श्रामणिस्तस्मै श्रामणिपुत्राय त्वत्पुत्राय गंत्र्यादिकृते भविष्यतीति॥१३॥तथा (घडिगचेल्लादि) घटिका मृन्मयकुल्लुडिकां डिंडिमेन पटहकादिवादित्रविशेपेण सह तथा (चेलगोलंति) वस्त्रात्मकं कंडुक कुमारनूताय कुब्बकनूताय राजकुमाररूपाय वा मत्पुत्राय क्रीडनार्थमुपानयेति। तथा वर्षमिति प्रावृट्कालोयमन्यापन्नोभिमुख समापन्नोऽतश्चावसथ गृहं प्रावृट्कालनिवासयोग्य तथा नक्तच तंडुलादिकं तत्कालयोग्य जानीहि निरूपय निष्पादय।येन सुखेनैवाऽनागतपरिकल्पितावसथादिना प्रावृट्कालोतिवाह्यतेइति । तडुक्त । मासैरष्टनि रह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुपा ॥ तत्कर्तव्य मनुष्येण, यस्याते सुखमेधते ॥ १४ ॥

आसदियंच नवसुत्त, पाउल्लाइ संकमठाए ॥ अडु पुत्तदोहलठाए,
आणप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने, गेण्हसुवाणं
अहवा जहादि ॥ अहं पुत्तपोसिणो एगे,नारवहा हवंति उट्टावा॥१६

॥ अर्थ-(आसदियचके०) बेशवानिमित्ते माची आणी आपो पणते केवी लावो के जे (नवसुत्तके०) नवासूत्रे वणी होय अथवा चर्म थकी वणी होय तेवी लइ आवो (पाउल्लाइ संकमठाए के०) वरसादमा चालता पगे कादव नलागे तेना अर्थे काष्ठनी पावडी माहारा सारु आणी आपो (अडुके०) अथवा (पुत्तदोहलठाएके०) गर्नस्थे पुत्रना मोहोला संपादवाने अर्थे वस्तुउलावो एम(आणप्पाहवतिदासावाके०)आज्ञापेनवतिदासाइव एटले स्त्री जेठे ते पुरुषने पोतानी आज्ञामा प्रवर्त्तावे स्नेह पाशे बंधाणा एवा विषयार्थी पुरुष स्त्रीना दास थाय ॥१५॥ (जाएफलेसमुप्पन्नेके०) हवे जात एटले गृहवासनेविषे पुत्ररूप फल उत्पन्न थया ठता जे विटंबनाउ थाय ते कहेठे, (गेण्हसुवाण अहवाजहाहिके०) कोइक स्त्री गृहना कार्ये व्याकुल थई थकी पुरुष प्रत्ये कहे के ए बालक तमे सनालो अथवा एनो त्याग करो (अहके०)हु एनी वेठ करी शकत्ती नथीमे नवमाश कुखी उदरे धर्यो अने तमे क्षणमात्र पण पुत्रने खोलामा लेता नथी, एम क्रोधना वचन बोले तेवारे (एगेके०) कोइएक पुरुष आक्रोशताये (पुत्तपोसिणोके०) स्त्रीनो वशवर्त्ती थको पुत्रनो पोषक थाय (नारवहा हवंति उट्टावाके०) जेम उटनो नारवाहक जेटलो नार उट उपर नाखे तेटलो नार आरडतो थकोउपाडे तेम ते पुरुष पण स्त्रीनीपाशेउटतुल्य जाणवा॥१६

॥ दीपिका-आसदिका मचिका ।किंनूता॥ नव सूत्र वल्कलादि यस्या सा नवसूत्रा ता (पाउल्लाइ) मौजकानि काष्ठपादुकावा संक्रमणार्थ पर्यटनार्थ अथवा पुत्रे गर्नस्थिते दोहदोहदस्तदर्थ स्त्रीणा पुरुषाआज्ञापनीया स्यु । यथा दासाआज्ञाप्यंते जनैस्तथा स्त्री

नास्त्येव पृष्ट सुधर्मस्वाम्याह । यदेतद्भगवताऽह पृष्टस्तदेतत्केवलिनमतीतानागतवर्तमानसूक्ष्मव्यवहितपदार्थवेदिन महर्षिमुग्रतपश्चरणकारिणमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिन पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानस्मि । यथा कथ किंभूताश्चनिताशान्वितानरकानरकावासान्भवतीत्येतदजानतोमे मम हेमुने जानन् पूर्वमेव केवलं ज्ञानेनाऽवगच्छन् ब्रूहि कथय । कथंतु केन प्रकारेण किमनुष्ठायिन । नुरिति वितर्के । बालाश्च ज्ञाहिताहितप्राप्तिविवेकरहितास्तेषु नरकेषूपसामीप्येन तद्योग्यकर्मोपादानतया यांति गच्छति ॥ १ ॥ किंभूताश्च तत्र गतानां वेदना प्रादुर्ष्यंतीत्येतच्चाह । (पुष्टवानिति) (तया एवमइत्यादि) एवमनंतरोक्तं मया विनेयेनोपगम्य पृष्टोमहाश्चतुस्त्रिंशदतिशयरूपोऽनुभावोमाहात्म्य यस्य स तथा प्रश्नोत्तरकाल चेद वक्ष्यमाण। मोऽइति वाक्यालंकारे। केवलालोकेन परिज्ञाय मत्प्रश्न निर्वचनमब्रवीडुक्तवान् । कोसौ । काश्यपोवीरोवर्धमानस्वामी आशुप्रज्ञ सर्वत्र सदोपयोगात् सचैव मया पृष्टोभगवानिदमाह । यथा। यदेतद्भवता पृष्टस्तदह प्रवेदयिष्यामि कथयिष्याम्यग्रतोदत्तावधान शृणुेति । तदेवाह । दुःखमिति नरक दुःखहेतुत्वात् असदनुष्ठान। यदिवा नरकावासएव दुःखयतीतिदुःख । अथवा असातावेदनीयोदयात् तीव्रपीडात्मक दुःखमित्येतच्चार्थेत परमार्थतोविचार्यमाण दुर्ग गहन विषम दुर्विज्ञेयं। असर्वज्ञेन तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावादित्यभिप्राय । यदिवा (दुहमदुग्गति) दुःखमेवार्थोयस्मिन् स दुःखनिमित्तोवा दुष्प्रयोजनोवा दुःखार्थोनरक । सच दुर्गो विषमोदुरुत्तरत्वात् त प्रतिपादयिष्ये । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । आसमतादीनमादीनतद्विद्यते यस्मिन्सआदीनिकोऽत्यतदीनसत्त्वाश्रयस्तद्दुष्कृतमसदनुष्ठान पाप वा तत्फल वा असातावेदनीयोदयरूप तद्विद्यते यस्मिन्स दुष्कृतिकस्त पुरस्तादग्रत प्रतिपादयिष्ये । पाठांतर वा (दुक्कडिणति) दुष्कृतं विद्यते येषा ते दुष्कृतिनोनारकास्तेषा सचरितं पुरस्तात्पूर्वस्मिन् जन्मनि नरकगतिगमनयोग्य यत्कृत प्रतिपादयिष्यतइति॥ २ ॥

जे केइ बाला इह जीवियठी, पावाइ कम्माइ करंति रुद्दा ॥ ते घोररूवे तमिसधयारे, तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पाणिणो थावरेया, जे हिंसति आयसुह पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ अदत्तहारी, ण सिक्खती सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ–(जेकेइबालाके०) जे कोइक महारंभीया बाल एटले अज्ञानी (इहजीवियठीके०) आससारने विषे असयमे जीवितव्यना अर्थी एवा जीव (पावाइकम्माइकरतिरुद्दाके०) रौद्र एटले प्राणीने भयना उपजावनार एवा अनेक पापकर्मकरे (तेघोररूवेतमिसंधयारे के०) तेवा पुरुष तीव्रपापोदयने लीधे घोररूप एटले अत्यंत बीहामणे रूपे त

णार्थेत्वा दास्य सर्वादेशकारिणएके केचन मोहोदये वर्तमाना स्त्रीणां निदेशवर्तिनोऽपह स्तितैहाकामुष्मिकापायाउष्ट्राइव परवशाभारवाहानवतीति ॥ १६ ॥

रा३वि उठिया संता, दारगंच सठवंतिधाईवा ॥ सुहिरामणा विते संता वडधोवा हवति हसावा ॥ १७ ॥ एव बहुहि कए पुवं, भोगठाए जेभि यावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा ॥ पसुभूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥

अर्थ-(रा३वि उठियासंता के०) रात्रने विषे पण निद्रामाथी उठीने बालक रडतो होय तेने राखे बालकने रमाडे कोनीपेरे तो के (दारगचसव्वतिधाईवाके०) रुदंतं दारक धात्रीवत् सधापयंति एटले धात्रीनी पेरे राखे जेम धात्री बालकने रुडीरीते पाले तेम ते पुरुष पण बालकने पाले (सुहिरामणावितेसताके०) कदापि ते पुरुष सुहिराम एटले घणो लज्जावत होय तोपण स्त्रीने वचने निर्लज्ज थाय (वडधोवा हवति हसावा के०) हस एटले धोबीनी पेरे स्त्रीना तथा बालकना वस्त्र धोवे तथा बीजापण जेकाइ कार्य कहे ते सर्व दासनी पेरे करे ॥१७॥ (एवके०) ए पूर्वोक्त प्रकारे स्त्रीनु किंकरपणुं (पुवके०) पूर्वे अतीत कालने विषे (बहुहिके०) घणा पुरुषोए (कएके०) कस्यु अने वर्त्तमान काले पण स्त्रीनुं दासत्वपणु घणा पुरुषो करेछे तथा आगमिक काले पण करशे (भोगठाएजेभियावन्ना के०) भोगने अर्थे जे अभिमुख एटले सन्मुख थया तेना ए हवाल थाय एवा रागाध पुरुषजे स्त्रीने वश वर्त्ते थयाते (दासेके०)दास समान तथा (मिइव के०) पाशमा पडेला मृग समान तथा (पेसेवाके०)वेचातो लीधेलो चाकर ते समान तथा (पसुभूतेवसेणवाकेइ के०) तिर्यंच समान पण न कहेवाय किंबहुना ते कोइ सरीखान कहेवाय एवो कोइ पदार्थ नथी के जेनी उपमा एवा अधमने आपीने तेनी तुल्यना करी बतावीए ते पुरुष सत्क्रिया थकीरहित माटे साधुपण नही अने तांबुलादिक परिभोग थकी रहित माटे गृहस्थ पण न कहेवाय माटे उभय भ्रष्ट जाणवा. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका- रात्रावप्येके नराउत्थाय धात्रीवत्त रुदंत दारक बालं संस्थापयंति । सुष्टुन्ही लज्जा तस्यां मनो येषाते सुन्हीमनसोलज्जावंतोपि सतोलज्जा त्यक्त्वा स्त्रीवशगाहीनकर्माण्यपि कुर्वंति । तान्येवाह । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालका. स्यु । यथा हंसारजकाइव । अस्योपलक्षणादन्यदपि जलवहनादि कुर्वंति ॥ १७ ॥ एव पूर्वोक्तं बहुनिर्नरै. पूर्वकृतं कृतपूर्वं भोगकृतये नराअन्यापन्नाअव्यवस्थिता. सावद्यकार्येषु सक्ता । तथा योरागाध सदासइव मृगइव मूर्खोहीनकर्मण्यपि प्रेष्यते योज्यते पशुभूत स न कश्चित् । न दीक्षित सत्क्रिया रहितत्वात् । नापिगृहस्थ· तांबूलादिभोगरहितत्वात् अतोऽसौ नकश्चित् ॥१८॥

इयंखेत्तजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोवहुययरं खेत्तजाणइणो वहुययत्तरपासइ इत्तरियमेवखेत्तजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोऽ सह्यः खदिरागारमहारा शितापादनतगुणोऽनिताप सतापोयस्मिन् सतीव्रानितापस्तस्मिन् एवनूते नरके बहुवेद नेऽपरित्यक्तविपयानिष्वगा स्वकृतकर्मगुरव पतति तत्र च नानारूपा वेदना समनुनव ति । तथाचोक्त । अच्छंडियविसयसुहो, पडइअविसायसिविसिहाणिवहे ॥ ससारोदहिव लय, सुहंमिड खागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकतोरलमुद्द, कुद्दरुवलियरुहिरगडूसे कयवुक कडहाविरिक्किंविवईणदेहद्धे ॥ २ ॥ जंतंतरनिक्कतु, वलतसलद्दनरियदिशिविवरे ॥ मर्स तुप्फिडियसमुवलतसीसच्छिसथाए ॥ ३ ॥ सुक्कर्कदकडाटु, कढतडक्कयकयतकम्मते ॥ मू लविनितुखित्तु,द्देहणित्तंतपञ्मारे ॥ ४ ॥ वद्धयारडुग्ग वधणयारडद्दरकिलेसे ॥ निन्नकरचरणसकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिद्धमुहणिहत्तरिक,त्तवधणो मुद्धकविरकवधे ॥ दडगहियतत्तसडा, सयग्गविसुमुक्कुम्मियजीहो ॥ ६ ॥ निरकड सग्गकड्डिय, कटयरुरुक्कग्गजज्जरसरीरे ॥ निमिसंतरपि डुखद्द,सुक्केवरकेड खमि ॥ ७ ॥ इयनीसणमिणिरए, पडतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सवप्पछायनरा, जयमिकयपावस घाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (तिव्वतसेत्यादि) । तथा तीव्रमतिनिरनुकं पं रौद्रपरिणामतया हिंसाया प्रवृत्त । त्रस्यतीतित्रसा र्द्वींद्रियादयस्तास्तथा स्थावराश्च पृथिवीकायादीन् य कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्य प्राणिना लूपकउपमर्दकारी नवति तथा अदत्त मपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्रव्यापहारकस्तथा न शिक्षते नाभ्यसति । नादत्ते (सेयवियस्सत्ति) सेवनीयस्यात्महितैपिणा सदनुष्ठाने यस्य सयमस्य किंचिदिति । एतडु क्तं नवति । पापोदयाद्विरतिपरिणाम काकमासादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागप्भि पाणे वहुणतिवाती, अनिव्वते घातमुवेति वाले ॥ णिहो णिस गच्छति अतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेड डुग्ग ॥५॥ हण छि दहभिद णं दहेति, सद्दे सुणिता परहम्मियाणं ॥ ते नारगानु नयभिन्नसन्ना, कखति कन्नामदिस वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ–(पागप्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशकलतो (पाणेवहुणति वाती के०) बहुनाप्राणानतिपाती घणाप्राणीर्उनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघात क, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमाहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिव्वते के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो उतो (वालेके०) वाल एटले अज्ञा

छे एम श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युछे ॥ १९ ॥ (एवनयं के०) एम स्त्रीना संवास थकी घणा नयना कारण उत्पन्न थायछे माटे (णसेयायसेके०) ते श्रेयकारी कल्याणकारी न थी (इइ के०) ए हेतु जाणीने (अप्पग के०) पोताना आत्माने (निरुंनित्ताके०) स्त्रीना संग थकी निरुंधीने एटले निवारीने समार्गने विषे स्थापन करीने (निरकूके०) चारित्रिउं जे होय ते (णोइत्थिणोपसु के०) स्त्रीअने पशु एटले तिर्यंचनो सहवास करे नही (णोसयंपाणिणाणिलिजेज्झाके०) तथा पोताना हाथथी स्पर्श मात्रपणनकरे॥२०॥

॥ दीपिका—खुर्वाक्यालंकारे । एतत्पूर्वोक्त तासु स्त्रीषु विषये यद्विज्ञप्तमुक्त तत्तथा स्त्री नि सार्धं संस्तव परिचय वासच एकत्र निवासच त्यजेत् । यत । तान्य· स्त्रीन्योजातिरु त्पत्तिर्येषाते तज्जातिकाःमे कामा । पुन किंभूता ।अवद्यं पापं तस्य कारकास्तएवमाख्या तास्तीर्थंकृद्भि ॥ १९ ॥ एव पूर्वोक्तप्रकारेण नयहेतुत्वान्न्य स्त्रीसंबंधरूप नश्रेयसे इति हे तो सन्निकुरात्मान निरुध्य न स्त्रिय नापि पशुं लीयेत सश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां संवासं त्यजे त् । तथा स्वहस्तेनवा अंगस्य (नणिलिज्जेज्जति) जातेन सवधं न कुर्यात् । यतो हस्तकर्म णापि चारित्र शबलीनवति ॥ २० ॥

॥ टीका—साप्रतमुपसंहारद्वारेण स्त्रीसंगपरिहारमाह । (एवखुइत्यादि) एतत्पूर्वोक्तं । खुशब्दोवाक्यालंकारे । तासु यत् स्थितं तासा वा स्त्रीणा सबंधि यद्विज्ञप्तमुक्तं । तद्यथा । यदि सकेशया मया सह न रमसे ततोह केशानप्यपनयामीत्येवमादिक तथा स्त्रीनि सार्धं सं स्तव परिचय तत्संवास च स्त्रीनि सहैकत्र निवासं चात्महितमनुवर्तमान सर्वापायभीरु स्त्यजेज्जह्यात् । यतस्तान्योजातिरुत्पत्तिर्येषा ते कामास्तज्जातिकारमणीसंपर्कोत्थास्तथा ऽवद्य पाप वज्र वा गुरुत्वादध पातकत्वेन पापमेव तत्करणशीलाऽवद्यकरावज्रकरावेत्येव माख्यातास्तीर्थंकरगणधरादिनि प्रतिपादिताइति ॥ १९ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (एव नयमित्यादि) एवमनंतरनीत्या नयहेतुत्वात् स्त्रीनिर्विज्ञप्तं तथा संस्तवस्तत्संवासश्च न यमित्यत स्त्रीनि सार्धं संपर्कोन श्रेयसे सदनुष्ठानहेतुत्वात्तस्येत्येव परिज्ञाय सन्निरुरव गतकामनोगविपाकआत्मान स्त्रीसंपर्कान्निरुध्य सन्मार्गेप्यवस्थाप्य यत्कुर्यात्तदर्शयति । नस्त्रियं नरकवीथीप्राया नापि पशु लीयेताश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां सह सवास परित्यजेत् स्त्रीप शुपंडकवर्जिताशय्येतिवचनात्तथास्वकीयेन पाणिना हस्तेनावाच्यस्य (नणिलिज्जेज्जति) नसबाधन कुर्यात् । यतस्तदपि हस्तसंबाधन चारित्रं शबलीकरोति । यदिवा स्त्रीपश्वादिक स्वेन पाणिना नस्पृशेदिति ॥ २० ॥

सुविशुद्धलेसे मेहावी, परकिरिअंच वज्जए नाणी॥ मणसा वयसा काएण सव्वफासंसहे अणगारे ॥२१॥ इच्चेव माहु से वीरे, धुअरए धुअमोहे से

ह। (हणछिंदहेत्यादि)। तिर्यङ्मनुष्यनवात्सत्वानरकेषूत्पन्नाअ्रतर्मुहूर्तेन निर्लूनांडज तन्निनानि शरीराण्युत्पादयंति। पर्याप्तिनावमागताश्चातिनयानकान् शब्दान् परमाधामि कजनितान् शृण्वति।तद्यथा। हतं मुजरादिना ठिंदितं खजादिना निन्नं मूलादिना दग्धं मु मुरादिना।णमितिवाक्यालंकारे। तदेवनूतान् कर्णासुखान् शब्दान् नैरवान् श्रुत्वा तेतु ना रकानयोद्भ्रांतलोचनानयेन नीत्या निन्ना नष्टा सज्ञाऽत करणवृत्तिर्येषांते तथा नष्टसज्ञाश्च कांदिशं व्रजाम कुत्र गतानामस्माकमेवनूतस्यास्य महाघोरारवदारुणस्य डुखस्य त्राणं स्यादित्येतत्काङ्क्षतीति ॥ ६ ॥

इंगालरासिं जलियं सजोतिं, ततोवमं नूमिमणुक्कमता ॥ ते॰ज्झ
माणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तत्थ चिरछितीया ॥७॥ जइ
ते सुया वेयरणीनिडग्गा, णिसिर्ज जहा खुरइव तिरकसोया ॥
तरंति ते वेयरणींनिडग्गा, उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा ॥ ८ ॥

अर्थ–एम चिंतवी नयन्नांत ठता नाशता थका जे पामे ते कहेछे (इंगालरासिंज लियंसजोति के॰) खदिरांगार एटले खयरना अंगाराना पुंज ज्वाला कराल ज्योति स हित एवीजे नूमि (ततोवम के॰) तेनीछे उपमा जेने (नूमिमणुक्कमता के॰) एवी नूमि ने अतिक्रमता (ते॰ज्झमाणा के॰) तेनारकी अत्यंत दाफता बलता थका (कलुणंथ णंति के॰) कलुनमहाशब्दास्तनति करुण एटले घणा दीनस्वरे आक्रंद करे परंतु ते नारकी केवाछे तोके (अहरहस्सरा के॰) जेनो स्वर प्रगट जाण्यामां आवे नही एटले जेवा गुगाना शब्द तेवा शब्द बोले वली केवाछे तोके (तत्थचिरछीतीया के॰) त्यां घ णोकाल रेवानी स्थितिछे जेनी एटले उत्कृष्ट तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति अने जघन्य दश हजार वर्षनी स्थिति जाणवी ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य प्रत्ये कहेछे के (जइतेसुयाके॰) जेते सानलीछे शु शानलीछे (वेयरणीनिडग्गाके॰) वेतरणी नामनी नदी घणी डुर्ग एट से विषम केवी विषमछे तोके (णिसिर्जजहाखुरइवतिरकसोया के॰) क्षुर एटले छुरी नी पेरे तीक्ष्णछे स्रोत एटले पाणीनुं पूर जेने विषे एवी (वेयरणींनिडग्गा के॰) ते वेतरणी नदी माहा विषम तेमां (तेके॰) ते नारकीउं नरकनी नूमिना तापे तप्या ठता पाणीना अर्थि तरस्या थका (तरंति के॰) तरे पण केवा ठता तरे तोके त्यां जवाने अण इछता (उसुचोइयाके॰) बाणना चोया एटले प्रेर्या तथा (सत्तिसुहम्ममा णा के॰) शक्ति नाले करी हणाता थका ते नदीने डुखे पीड्या ठता बलात्कारे ते वेतर णी नदी अगाधछे माटे तरवाने असमर्थ ठता पण तरे तेवारे घणाज डुखी थाय पढी तर वाने नौकानी वांछा करे तेवारे फरी अत्यंत डुखी थाय ते आगली गाथाये कहेछे ॥ ८ ॥

नव भेदास्तनश्चाष्टादशभेदभिन्नमपि ब्रह्म बिभृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषह सोढव्यएव स र्वानपि शीतोष्णदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवच सर्वस्पर्शसहोऽनगार साधुर्भवती ति ॥२१॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येव यत्पूर्वमुक्त तत्सर्वं सवीरोभग वानुत्पन्नदिव्यज्ञान परहितैकरतआह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रज स्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजा । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपथा यस्मिन् स्त्रीसस्तवादिपरिहारात्तया तत्सर्वं भगवान् वीरएवाह ।य तएव तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्ध सुविशुद्धात करण सुष्टु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसपर्केण मु क्त सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयपावत्परिसमंतात्सयमेऽनुष्ठाने व्रजेद्गच्छेत्संयमोद्योगवान् भवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविभत्ति नामा पाचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्मं स्वामी जब प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविभत्ति नामा पाचमुं अध्ययन कहेछे

पुच्छिस्सहं केवलिय महेसिं, कहं भितावा णरगा पुरत्था ॥ अ
जाणओ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उवेंति ॥ १ ॥
एवं मए पुट्ठे महाणुभावे, इणमोब्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं दुहमट्ठदुग्गं, आदीणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥ २ ॥

अर्थ-(पुच्छिस्सहंकेवलियमहेसिके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम मे पण (पुरत्थाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछ्युं हतुं के हे भगवन् (अभितावा.के०) तापसहित (णरगाके०) नरकना भय जे तीव्र दुःख रूपछे ते (कहंके०) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउवितिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥१॥ (एवमएपुट्ठेके०) एम मे विनय सहित पुछ्युं छतां (महाणुभावे के०) महोटोछे अनुभाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (कासवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोब्बवीके०)एमज कह्युं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संदुहमट्ठदुग्गंके०) प्रवेदि तेदु ग्यमेवार्थदुर्ग एटले दुःखनुं कारणछे माटे दुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंदुक्कडियंपुरत्थाके०)आदीनिकदुष्कृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीनपुरुषे जेनो आश्रयकरयो

नितापमंधतमसं डुष्प्रतर डुरुत्तर महांतं विशाल नरकं महापापोदयाद्व्रजंति । तत्र च नरके ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वत समाहित सम्यगाहितोव्यवस्थापितोग्निर्ज्वलतीति । पच्यते च । (समूसिर्ठजलगणीजियांइ) यत्र नरके सम्यगूर्ध्वश्रित समुच्छ्रितोऽग्नि प्रज्वलति तं तथाभूत नरक वराकाव्रजति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् (जसिगुहाएइत्यादि) यस्मिन्नरके ऽतिगतोऽसुमान् गुहायामित्युष्ट्रिकाकृतौ नरके प्रवेशितोज्वलनेऽग्रावतिवृत्तोवेदनाभि भूतत्वात्स्वकृतं डुश्चरितमजानन् लुप्तप्रज्ञोऽपगतावधिविवेकोदह्यते । तथा सदा सर्वकाल पुन करुणप्राय कृत्स्न वा धर्मस्थानमुष्णस्थान तापस्थानमित्यर्थ ।(गाढति) अत्यर्थमु पनीतं ढौकित डुष्कृतकर्मकारिणा यत् स्थान तत्ते व्रजति । पुनरपि तदेव विशिनष्टि । अ तिडखरूपोधर्म स्वभावोयस्मिन्निति । इदमुक्तं भवति । अक्षिनिमेषमात्रमपि काल नत स्य डुखस्य विश्रामइति । तडुक्तं । अच्छि णिमीलणमेत्त णत्थि सुह डुकमेव पडिवर्द्ध ॥ णिरए णेरइयाण, अहोणिस पच्चमाणाण ॥ १ ॥ १२ ॥

चत्तारि अगणिठ समारभित्ता,जेहिं कूरकम्मा भितविति बाल॥
ते तब चिठति भितप्पमाणा, मछावजीवंतुवजोतिपत्ता ॥१३॥ स
तच्छण नाम महाहिताव, ते नारया जच्छ असाहुकम्मा॥ हत्थेहिं
पाएहिय बंधिऊण, फलगवतच्छंति कुहाडहत्था ॥ १४ ॥

अर्थ-(चत्तारिअगणिठ समारभित्ता के०) चारेदिशे चार अग्नी समारंभीने एटले प्रज्वलित करीने (जेहिं के०) जे नरकावासने विषे (कूरकम्मा के०) क्रूरकर्मना कर नार एवा परमाधार्मिको ते (अभितवितिबालके०) अज्ञानी एवा बापडा नारकीठने तपावे (तेतबचिठतिभितप्पमाणाके०) तेनारकी त्या पूर्वोक्त रीते ताप सहन करता कदर्थता अत्यंत डुख भोगवता थका घणा काल सुधी रहे कोनीपेरे तोके (मछावजीवंतुवजोति पत्ता के०) जेम जीवता मत्स्य अग्नी पासे मूक्या थका अत्यंत तापनु डुख पामे पण परवश पणाने लीधे त्याथी नासी शके नही, तेमते नारकीठ पण जाणी लेवा ॥ १३ ॥ (सतच्छणनाम के०) त्या ते नरकमाहे नारकीठने त्राछवा छेदवानु जे स्थानकछे ते केवुछे तोके (महाभिताप के०) सर्वने महा डुखनु कारणछे (जच्छ वितीति ०) ज्या (असाहुकम्मा के०) असाधुकर्मि एवा परमाधार्मिको (कुहाडहत्था के०) र्ता शिला भमां कुहाडो लइने (तेनारया के०) ते नारकीठने पकडीने (हत्थेहिं पाएहियबंधि रणीनद्याकलंकु) तेना हाथ तथा पग बांधी(फलगवतच्छतिके०)काष्टनी पेरे त्राछे छेदे ॥ १४ ॥ नय गमततोगेलप।

ोतकर्मासपेशीवत् पच (चत्तारित्ति) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वाल्य यत्र नरके क्रूरक

कित्तामाह ॥ पुढवीफासअसुा,णुवक्कमणिरयणवाजवह्णच ॥ तिसुवेदेतिअताणाअणु नागचेव सेसासु ॥ ६७ ॥ (पुढवीफासमित्यादि)। पृथिव्या शीतोष्णरूपायास्तीव्रवेदनो त्पादक स्पर्शे सपर्के पृथिवीसस्पर्शस्तमनुनवति। तमेव विशिनष्टि। अन्येन देवादिना उ पक्रमितुमुपशमयितुं योनशक्यते सोन्यानुपक्रमस्तमपराचिकित्स्यमित्यर्थ । तमेवंनूतमप राऽसाध्य पृथिवीस्पर्शं नारका समनुनवति। उपलक्षणार्थत्वाच्चास्य रूपगंधस्पर्शशब्दान प्येकांतेनाशुनान्निरुपमाननुनवति । तथा नरकपालै पंचदशप्रकारै परमाधार्मिकै कृ तमुजराऽसिकुंतक्रकचकुंनीपाकादिकं वधमनुनवत्याद्यासु तिसृषु रत्न,शर्करा,वालुकाख्या सु पृथिवीषु स्वकृतकर्मफलजुजोनारकाअत्राणाअशरणा प्रनूतकालं यावदनुनवति । शेषासु चतसृषु पृथिवीषु पंकधूमतमोमहातम प्रनाख्यासु परमाधार्मिकनरकपालानावे पि स्वतएव तत्कृतवेदनाया सकाशाद्यस्तीव्रतरोऽनुनावोविपाकोवेदनासमुद्घातस्तमनु नवति । परस्परोदीरितडुःखाश्च नवतीति। सांप्रतं परमाधार्मिकानामाद्यासु तिसृषु पृथिवी षु वेदनोत्पादकान् स्वनामग्राह दर्शयितुमाह। अंबेअंबरिसीचेव, सामेयसबलेविय ॥ रो देवरुद्दकालेय, महाकालेत्तिआवरे ॥ ६८ ॥ असिपत्तेधणुंकुंनेवालुवेयरणीविय ॥ खर स्सरेमहाघासे, एवपन्नरसाहिया ॥ ६९ ॥ गाथाद्वयंप्रकटार्थं । एव ते चांबाऽस्यादय पर माधार्मिकायादृक्षा वेदना परस्परोदीरणडुःखं चोत्पादयंति । तां दर्शयितुमाह । धाडेति पहाडेंतिय, हणंतिविंधतितहणिसुंनति। मुंचतिअंबरतले; अवाखलुतत्रणेरइया ॥ ७० ॥ (धाडेतीत्यादि)। तत्राबानिधाना परमाधार्मिका स्वनवनान्नरकावास गत्वा क्रीडया ना रकान् अत्राणान् सारमेयानिव शूलादिप्रहारैस्तुदंतो (धाडेतेत्ति) प्रेरयंति । स्थानात् स्थानांतर प्रापयंतीत्यर्थ । तथा (पहाडेंतित्ति) स्वेच्छयेतश्चेतश्चाऽनाथं नमयंति तथाऽ बरतले प्रक्षिप्य पुनर्निपतंतं मुजरादिना घ्नंति तथा शूलादिना विध्यति तथा (निसुंनंतित्ति) कृकाटिकाया गृहीत्वा नूमौ पातयंति अधोमुखं अथोत्क्षिप्याऽम्बरतले मुंचतीत्येवमादिक या विडंबनया तत्र नरकपृथिवीषु नारकान् कदर्थयंति। किंचान्यत् । उहयहयेयतहिय, णिस्सन्नेकप्पणीहिंकप्पंति ॥ विडुलगवकुलगबिन्ने अवरसीतच्चणेरडए ॥ ७१ ॥ (उहए त्यादि)। उप सामीप्येन मुजरादिना हताउपहता. पुनरप्युपहताएव खड्गादिना हता उपहतहतास्तान्नारकान् तस्यां नरकपृथिव्या नि.संज्ञकान् नष्टसंज्ञान् मूर्छितान्सत क ल्पणीनि' कल्पयंति छिंदतीतश्चेतश्च पाटयंति । तथा द्विदलचटुलकछिन्नानिति म ध्यपाटितान् खडशश्छिन्नाश्च नारकास्तत्र नरकपृथिव्यामवर्धिनामानोसुरा. कुर्वतीति । तथा । साडणपाडणतोमण, बंधणरज्जुलयप्पहारेहिं ॥ सोमाणेरतियाण पवत्तयंतीअ पुन्नाण ॥ ७२ ॥ (साधनेत्यादि)। तथा अपुण्याना तीव्राऽसातोदये वर्तमानानां नार काणां श्यामाख्या. परमाधार्मिकाएतच्चैतच्च प्रवर्तयंति ।तद्यथा। सातनमंगोपांगाना

॥ टीका–किंचान्यत् । (तेहिंचेत्यादि) तस्मिश्च महायातनास्थाननरके । तमेव विनष्टि । नारकाणा ज्वलने सम्यक् प्रगाढोव्याप्तोनृत सतथा तस्मिन्नरके शीतार्ता. सतो ढमत्यर्थं सुष्टु तसमग्निं व्रजति । तत्राप्यग्निस्थानेऽ निर्ङ्गं दह्यमाना सात सुख मनाग प नलभंते । अरहितोनिरतरोऽनितापोदाहोयेपाते अरहितानितापास्तथापि तान्नार हास्तेनरकपालास्तापयतीत्यर्थ । तप्ततैलाग्निना दहतीति ॥ १७ ॥ अपिच (सेसुब्बई त्यादि) सेशब्दोऽथशब्दार्थे । अथानतर तेपा नारकाणा नरकपालैरौद्रैः कदर्थ्यमानानां नयानकोहाहारवप्रचुरआक्रंदनशब्दोनगरवधइव श्रूयते समाकर्ण्यते दुःखेन पीम्योप नीतान्युच्चरितानि करूणाप्रधानानि यानि पदानि हामातस्तात कष्टमनाथोहं शरणागत स्त्व त्रायस्व मामित्येवमादीना पदाना तत्र नरके शब्द श्रूयते । उदीर्णमुदयप्रात कटुविपाक कर्म येपां तथोदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमाना पुन. पुनर्वहुशस्ते (सरहंतित्ति) सरनसं सोत्साह नारकान् दुःखयत्यतस्त्वसह्यं नानाविधरुपा यैर्दु खमसातवेदनीयमुत्पादयतीति ॥ १८ ॥

पाणेहि णं पावविठं जयति, त से पवरकामि जहा तहेण॥ दमेहिं
तत्ना सरयति बाला, सवेहिं दंमेहिं पुरा कएहिं ॥१ए॥ ते हम्म
माणा णरगे पडति, पुन्ने डुरूवस्स महाभितावे ॥ ते तत्त चिठति
डुरूवनरकी, तुट्टति कम्मोवगया किमीहिं ॥ २० ॥

अर्थ–एवाक्यालकारेछे (पाणेहिणपावविउजयतिके०) ते पापिष्ट परमाधार्मिको नारकी प्राणीना इद्री विमुक्त करे उपाग वेगला करे (तसेपवरकामिजहातहेण के०) ते नारकीने एटला दुःख सावास्ते करे तेना कारण तमने यथा तथ्य कहुछु (तत्ना के०) त्यां (दमेहिं के०) दुःख विशेप एटले पाछला नवना करेला कर्म तेने (सरयति के०) सनारीने तेनरकपाल पुरुपो तेने कहेके अरे बापडा तें पूर्वनवने विपे मांसनक्षण, मद्यपान, जीवघात, मृषावाद, चोरी, परस्त्रीगमन, कर्याछे, ते सांप्रत ताहारे उदय आव्याछे, तेने योगे तु दुःख नोगवेछे, माटे आम सावास्ते आरडेछे एरीते (बाला के०) ते परमाधार्मिक पुरुपो (सवेहिं के०) सर्वथा प्रकारे (दमेहिं के०) ते नारकीने दुःखरूप दमेकरी(पुराकएहिंके०)पूर्वकृत कर्मना उदय थकी पीडा करे ॥१ए॥(तेहम्ममाणाणरगेपडति के०) ते नारकी हणाया थका पाचशे योजन उचा उछलीने नरकने एकदेसे पडे ते नरक केवाछे तोके (पुन्नेडुरूवस्स महाभितावे के०) दुष्टरूप माहातापे करी पूर्णछे, नाना प्रकारना दुःख तथा मल सहितछे, (तेतत्तचिठतिडुरूवनरकी के०)

धाना पत्रधनुर्नामानोनरकपालाअसिपत्रवनं बीभत्सं कृत्वा तत्र छायार्थिन समा तान् नारकान् वराकान् अभ्यादिनि पाटयति तथा कर्णौष्ठनासिकाकरचरणदशीन तनस्फिगूरुबाहूना छेदनभेदनशातनादीनि विकुर्वितवाताहतचलिततरुपातितासिप त्रादिना कुर्वंतीति । तडुक्त । छिन्नपादभुजस्कधा, छिन्नकर्णौष्ठनासिका ॥ भिन्नतालु शेरोमेढ्रानिन्नाक्षिहृदयोदरा ॥ १ ॥ किंचान्यत् कुंभीसुचपञ्चणेसुय, लोहियसुयकुडलो हे कुंभीसु ॥ कुंभीयणरयपाला हणतिपाडतिणरएसु ॥ ८० ॥ (कुंभीसुइत्यादि) कुं भिनामानोनरकपालानाक्रान्नरकेषु व्यवस्थितान् निघ्नति तथा पाचयति । केति द र्शयति । कुंभीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा पचनेषु कडिल्लकाकृतिषु तथा लोहीष्वायसभा जनविशेषेषु पाचयति । तथा । तडवडस्सनभ्रुति, भञ्जणेकलंबुवालगापहे । वालूगाणे रइया लोलंतीअवरतलमि ॥ ८१ ॥ (तडवडेत्यादि) वालुकाख्या परमाधार्मिकाना रकानत्राणास्ततवालुकाभृतभाजने चणकानिव (तमतडिति) स्फुटत (भ्रुति) भृजंति प चंति। केत्याह । कदवपुष्पाकृतिवालुकाकदववालुका तस्या पृष्ठमुपरितलं तस्मिन् पात यित्वाऽवरतलेच लोलयतीति । किंचान्यत् । पूयरुहिरकेसट्ठिवाहिणीकलकलेंतजलसो या ॥ वेयरणिणिरयपालाणेरइएऊपवाहति ॥ ८२ ॥ (पूयरुहिरेत्यादि)। वैतरणीना मानोनरकपालावैतरणीं नदीं विकुर्वति । साच पूयरुधिरकेशास्थिवाहिनीमहाभयानका कलकलायमानजलाश्रिता तस्याच क्षारोष्णजलायामतीव बीभत्सदर्शनाया नारकान् प्रवा हयंतीति ॥ तथा । कप्पेंतिकरकरएहि, तच्छितिपरोप्परसुएहिंति ॥ सिंवलितमारुहती, खरस्वरातत्थणेरइए ॥ ८३ ॥ (कप्पेंतीत्यादि) । खरखराख्यास्तु परमाधार्मिकानर कानेव कदर्थयंति । तद्यथा । क्रकचपातैर्मध्य मध्येन स्तनमिव तान् पातानुसारेण कल्प यति पाटयति । तथा परशुभिश्च तानेव नारकान् परस्परमन्योन्यं तक्ष्यंति सर्वशोद्देशाव यवापनयनेन तनून् कारयति । तथा शाल्मलीं वज्रमयभीषणकंटकाकुला खरस्वरैरारुट तोनारकानारोहयति पुनरारूढानाकर्षयतीति ॥ अपिच । भीएयपलायते समंततोतत्थते णिरुंभति ॥ एसुणोजहापसुवहे, महघोसातत्थणेरइए ॥ ८४ ॥ (भीएइत्यादि) । महाघो षाभिधानानवनपत्यसुराधमविशेषा परमाधार्मिकाव्याधाइव परपीडोत्पादनेनैवाऽतु लं दर्पमुद्वहतोक्रीडया नानाविधैरुपायैर्नारकान् कदर्थयंति तांश्च भीतान् प्रपला यमानान् मृगानिव समतत सामस्त्येन तत्रैव पीडोत्पादनस्थाने निरुंभंति प्रतिबध्न ति पशून् बस्तादिकान् । यथा पशुवधे समुपस्थिते भयतस्तद्वधका प्रतिबध्नंत्ये व तत्र नरकावासे नारकानिति । गतोनामनिष्पन्नोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगु णोपेतं सूत्रमुच्चारणीय। तच्चेद ।(पुच्छिस्सहमित्यादि) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्ट। त द्यथा । भगवन् किंभूतानारका. कैर्वा कर्मभिरसुमता तेषूत्पाद कीदृश्योवा तत्रत्यावेद

सया कसिण पुण घम्मठाण, गाढोवणीय अतिडुक्खधम्मं॥अंदूसु पक्खिप्प विहत्तुदेहं, वेहेण सीस से भितावयंति ॥२१॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं, उठेवि छिंदंति डुवेवि कन्ने ॥ जिप्भं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं, तिक्खाहिं सूलाइ भितावयंति ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाकसिणंपुणघम्मठाण के०) सर्वदाकाले ते नरक परिपूर्ण घर्म एटले आतापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीय के०) कर्मने उदये ढोया एवा नारकी (अतिडुक्खधम्म के०) अत्यंतडुःखनो धर्म एटले स्वजावछे ज्यां (अंदूसुपक्खिप्पविहत्तुदेहं के०) ते स्थानके नारकीनो शरीर निगडबंधमाहे प्रक्षेपीने (वेहेणसीसते के०) मस्तके छिद्रकरी तेने (भितावयंति के०) तपावे सर्व शरीर चर्मनी पेरे विस्तारीने खीलाये करी चखेडे ॥ २१ ॥ ते परमाधार्मिक (बालस्स के०) ते अज्ञानी नारकीउंना (खुरेण के०) क्षुर एटले छुरीयें करीने (नक्कंके०) नासिकाने (छिंदतिके०) छेदे तथा (उठेविछिंदतिडुवेविकन्ने के०) उष्ठ छेदे तथा बने कान पण छेदे तथा मद्यमासादि मृषावो लवु इत्यादि पाप तेमने सजारी आपीने (जिप्भंविणिक्कस्सविहत्थिमित्त के०) ते नारकीनी एक विहस्त प्रमाण जीन बाहेर काढीने (तिक्खाहिंसूलाइभितावयतिके०) तीक्ष्ण सूलिये करी सतावे, छेदे एरीते ते नारकीने पीडे वेदना आपे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्यातपस्य स्थानमुष्णस्थानं नवति गाढं दृढं कर्मनिरुपनीतं ढौकितं अतिडुःखमेव धर्मः स्वनावोयस्यतत् एवंविधे स्थाने स्थितोजंतुः अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य तथा शिरश्च(से)तस्य वेधनेनारकस्य रंध्रोत्पादनेनाभितापयंति कीलकैश्च सर्वाण्यंगानि विद्धा चर्मवत् कीलयंति ॥ २१ ॥ (छिंदंतीति) ते नरकपाला बालस्याज्ञस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंतीति। तथा उष्ठौ कर्णौ च द्वावपि छिंदंतीति तथा जिव्हां वितस्तिमात्रां बहिर्निष्काश्य तीक्ष्णशूलाभिरभितापयंति अपनयंति ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (सयाकसिणमित्यादि) सदा सर्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं । पुनस्तत्र नरके घर्मप्रधानं उष्णप्रधानं स्थितिस्थानं नारकाणां नवति । तत्रहि प्रलयातिरिक्ताग्निवातादीनामत्यतोष्णरूपत्वात्तच्च दृढैर्निधत्तनिकाचितावस्थैः कर्मनिर्नारकाणामुपनीतं ढौकितं। पुनरपि विशिनष्टि।अतीव डुःखमसातावेदनीयं धर्मः स्वनावोयस्य तत्तथा तस्मिंश्चैवंविधे स्थाने स्थितोऽसुमान् अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य च यथा शिरश्च (से)तस्य नारकस्य वेधेन रंध्रोत्पादनेनाभितापयंतीति ॥ २१ ॥ अपिच (छिंदंतिबालस्सेत्यादि) ते परमाधार्मिका पूर्वडुश्चरितानि स्मरयित्वा बालस्याज्ञस्य निर्विवेकस्य प्रायशः सर्वदा वेदनास

मिसंधयारे एटले महाअंधकारे सहित ज्यां आखे करी काइज देखाय नही मात्र अवधिज्ञाने करी थोडु थोडुं घुकनी पेरे देखे अने (तिव्वाभितावेनरएपडतिके०) ज्यां खेरना अगाराथी अनंतगणो तापछे एवा नरकनेविषे पडेछे ॥ ३ ॥ (तिव्वंतसेके०) जे पुरुष तीव्रपणे करी बेंडीयादिक त्रस (पाणिणोके०) जीव अने (थावरेयाके०) पृथवीकायादिक स्थावर जीव तेने (जेहिंसतिआयसुहंपडुच्चके०) येहिनस्तिआत्मसुखप्रतीत्य एटले जे पुरुष सदाकाल स्वात्मसुखनो अर्थ जाणी करीने हणे तथा (जेलूसएहोइके०)जे प्राणीउनु उपमर्दन करनार होय तथा (अदत्तहारीके०) परद्रव्यापहारक एटले अदत्तदाननो लेनार होय तथा (णसिक्खतीसेयवियस्सकिंचिके०) नशिक्ष्यतेसेवनीयस्य किंचित् एटले सेववा योग्य एवा जे व्रत पच्चखाणादिक छे ते नकरे अर्थात् अविरति वतोज रहे परतु काकमांसादिकनी पण विरति करी शके नही ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—ये केचिद्बालाअज्ञाजीवितार्थिन सयमजीवितार्थेन पापानि कर्माणि रौद्रा कुर्वंति ते नरके पचति । यडुक्तमागमे । केहसुचंतेजीवानेरइअत्ताएकाम्मपकरतीति । किंभूते नरके । घोररूपे अतिभयानके तथा (तमिस्संधयारेत्ति) बहुलतमोधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते केवलमवधिनापि मदमदमुलूकाइवाम्हि पश्यंति । तथा चागम । कण्हलेसेणंभंतेणेरइकण्हलेस्सनेरइअंपाणिहाएउहिणा सबातासमन्नातसमनिलोएमाणीकेवइयंखेत्त जाणइपासइ इत्तिरिअमेवखेत्त जाणइपासइ इत्यादि । पुन किंभूते नरके । तीव्रोड.सह खादिरांगारमहाराशितापाढनतगुणाभिताप सतापोयस्मिन् स तीव्राभितापस्तस्मिन् ॥ ३ ॥ तीव्रं निर्दयोयस्त्रसान् द्वींडियादीन् स्थावराश्च पृथ्वीकायादीन हिनस्ति हति आत्मसुख प्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते य· प्राणिना लूपकउपमर्दकारी अदत्तहारी अदत्तग्राही सन शिक्षते नाभ्यसति (सेयविअस्सत्ति) सेवनीयस्य सयमस्य किंचित् मासादेरपि निवर्ततइत्यर्थ ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथाप्रतिज्ञातमाह । (जेकेइत्यादि) ये केचन महारभपरिग्रहपंचेंडियवधपिशितभक्षणादिके सावद्यानुष्ठाने प्रवृत्ताबालाअज्ञारागद्वेषोत्कटास्तिर्यग्मनुष्याइहास्मिन्संसारेऽसयमजीवितार्थिन पापोपादानभूतानि कर्माण्यनुष्ठानानि रौद्रा प्राणिनां भयोत्पादकत्वेन भयानकहिंसानृतादीनि कर्माणि कुर्वंति तएवभूतास्तीव्रपापोदयवर्तिनोघोररूपेऽत्यतभयानके (तमिसधयारेत्ति) बहुलतमोधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते चक्षुषा केवलमवधिनापि मदमदमुलूकाइवाह्नि पश्यंति । तथाचागम· । कण्हलेसेणंभंतेणेरइएकण्हइलेस्संणेरइअपाणियाएउहिणासव्वउ समंतासमनिलोएमाणेकेव

गुणा परेणापरेण प्रकर्षेण । तथा पुन. किंनूता महती बृहत्तरा (अहियपोरिसीयेति) पुरुषप्रमाणाऽधिकसमुछ्रिता उष्ट्रिकाकृति ऊर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितपूर्णा ॥२४॥

॥ टीका-तथा । (तेतिप्पमाणेत्यादि) ते छिन्ननासिकोष्ठजिव्हा संत शोणितं तिप्प्यमाना क्षरंतोयत्र यस्मिन् प्रदेशे रात्रिंदिन गमयंति । तत्र बालाअज्ञास्तालसपुटाइव पवनेरितशुष्कतालपत्रसचयाइव सदा स्तनति दीर्घविस्वरमाक्रंदतस्तिष्ठंति तथा प्रद्योतितावन्हिना ज्वलितास्तथा क्षारेण प्रदिग्धांगा शोणित पूय मांस चाहर्निशं गलतीति. ॥ २३ ॥ किंच । (जइतेसुताइत्यादि) पुनरपि सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य नगवद्वचनमाविष्करोति । यदिते त्वया श्रुता आकर्णिता । लोहित रुधिर पूय रुधिरमेव पक्क ते द्वे अपि पक्तुं शील यस्या सा लोहितपूयपाचिनी कुंनी । तामेव विशिनष्टि । बालोऽभिनवप्रत्यग्रोग्निस्तेन तेजोनिताप सएव गुणोयस्या सा बालाग्नितेजोगुणा परेण प्रकर्षेण तप्तेत्यर्थं । पुनरपि तस्याएव विशेषण महती बृहत्तरा (अहियपोरुसोयति) पुरुषप्रमाणाधिका समुछ्रितोष्ट्रिकाकृतिरूर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितेन पूयेन च पूर्णा सवनूता कुंनी समंततोऽग्निना प्रज्वलिताऽतीव बीनत्सदर्शनेति ॥ २४ ॥

पक्खिप्प तासु पययति बाले. अट्टस्सरे ते कलुण रसते ॥ तण्हा इया ते तउ तंबतत्त, पज्जिज्जमाणाट्टतर रसति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्प इह वचइत्ता, नवाहमे पुवसते सहस्से ॥ चिठ्ठति तत्था बहुकूरकम्मा, जहा कडं कम्म तहासि नारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुस अणज्जा, इठेहि कंतेहि य विप्पहूणा ॥ ते डुब्भिगंधे कसिणेयफासे, कम्मोवगाकुणिमे आवसंतित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्तिएपढमोउद्देसोसमत्तो ॥

अर्थ-हवे त्या कुंनीमाहे नारकीने शु करे ते कहेछे (पक्खिप्पतासुके०) ते परमाधार्मिक कुंनीमाहे घालीने (अट्टस्सरेतेकलुणरसते के०) आर्त शब्द करता तथा करुण प्रलाप करता एवा ते बापडा (बालेके०) अज्ञान नारकीने (पययतिके०) प्रकर्षे करी पचावे (तण्हाइयातेतउतंबतत्तके०) तृषाये पीडया थका पाणी मागे तेवारे तेने त्राबु उकालीने तेनो रस (पज्जिज्जमाणके०) पीअरावे तेवारे ते (अट्टतररसंतिके०) घणामा घणे दीनस्वरे करुणाकारी विलाप करे ॥ २५ ॥ (अप्पेणअप्पइहवचइत्ता के०) जेणे इह एटले आ मनुष्य नवमा अल्पसुखने अर्थे परोपघाति पणु आदरीने पोताना आत्माये करी पोताना आत्मानेज वच्यो (नवाहमेपुवसतेसहस्से के०) तथा पूर्वे जन्मे अधम एवा लुब्धकादिकना शतसहस्र नव नोगवी घणा कर्मोपार्जीने (चिठ्ठतितत्थाबहुकूरकम्माके०)

नी (घातं के०) नरकने (उपेतिके०) पामे (अंतकालेके०) अंतकाले एटले मरणकाले (अहोसिरकट्टु के०) नीचुं मस्तक करी (णिहोणिस के०) अधोगतिये अधकारने विषे (गछतिके०) जाय (डुग्गके०) डुर्ग विषम स्थानके छेदनजेदनादिक डुखने (उवेइ के०) पामे ॥५॥ हवे ते नारकी पर्याप्त जावे पोहोता थका परमाधार्मिकना शब्द सानले ते कहेछे (हणके०) मुजरादिके करी हणो (छिंदहके०) खड्गादिकेकरी छेदो (निंदणके०) शूलादिके करी जेदो (दहेतिके०) अग्नीये करी बालो इत्यादिक करणने डुखकारी एवा (परहम्मियाण के०) परमाधार्मिकना (सद्देके०) शब्दने (सुणिताके०) सांजलीने (ते नारगाउ के०) ते नारकीउ (नयनिन्नसन्नाके०) जयेकरीने नाश पाम्याछे संज्ञा एटले मनव्यापार जेना तथा गात्र पण जागाछे एवा वर्त्ता (कंखंतिके०) एवी वांछना करेके (कन्नामदिसंवयामो के०) कादिशंव्रजाम एटले अमे कयी दिशाये नाशी जइये के ज्यां गया थका अमने नय टली जाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—प्रागल्भ्यं धार्ष्ट्यं विद्यते यस्य स प्रागल्भी बहूना प्राणिनामतिपाती हिंसक सर्पहिंसादिवत् अनिर्वृत्त कदाचिदप्यनुपशात सन् घातं नरकमुपैति बाल स अंतकालेन्यक् नीचैः (निसति) अंधकार गछति स्वपापेनाध शिर कृत्वा डुर्गं विषम पीडास्थानमुपैति ॥ ५ ॥ हतमुजरादिना, छिन्नखड्गादिना जिन्नं शूलादिना दग्ध वन्हिना । णवाक्यालंकारे । तद्देवंभूतान् परमाधार्मिकाणां शब्दान् शृण्वंति श्रुत्वा वा ते नारकाजयेन जिन्ना नष्टा संज्ञा येषा ते तथा कांदिश व्रजेम इति कांक्षति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तथा (पागब्भिपाणेऽत्यादि)। प्रागल्भ्य ध्यार्ष्ट्यं तद्विद्यते यस्य सप्रागल्भी बहूना प्राणिना प्राणानतीव पातयितु शीलमस्य सजवत्यतिपाती। एतडुक्तं जवति । अतिपात्यपि प्राणिन प्राणानतिधार्ष्ट्याद्वदति। यथा वेदाजिहिता हिंसाऽहिंसैव जवति।तथा राज्ञामप धर्मोयडुत आखेटकेन विनोदक्रिया । यदिवा। नमांसजक्षणे दोषो.न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा जूताना, निवृत्तिस्तुमहाफलाइत्यादि । तदेव क्रूरसिंहकृष्णसर्पवत् प्रकृत्यै प्राणातिपातानुष्ठायी अनिर्वृत्त कदाचिदप्यनुपशात क्रोधाग्निना दह्यमानोयदिवा लुब्धकमत्स्यादिवधकजीविकाप्रसक्त सर्वदा परिणामपरिणतोऽनुपशांतोहन्यते प्राणिन स्वकृतकर्मविपाकेन यस्मिन् सघातोनरकस्तमुपसामीप्येनैति। याति कोबालोऽज्ञो रागद्वेषोदयवर्ती सोंतकाले मरणकाले (निहोत्ति) न्यगधस्तात् (णिसति) अर्थोंधकारं गछतीत्यर्थ । यथा तेन डुश्चरितेनाध शिर.कृत्वा डुर्गं विषम यातनास्थानमुपैति अवाक्शिरा नरके पततीत्यर्थ. ॥ ५ ॥ साप्रतं पुनरपि नरकांतर्वर्तिनोनारका यदनुजवति तद्दर्शयितुमा

धार्मिको ते नारकीउनु चर्म उखेडी नाखे पछी ते नारकीना चर्म रहित एवा अंगने (प रकीहिखजंति अउमुहेहि के०) वज्र समानछे चाच जेमनी एवा काक समली गृद्ध पक्षीउ तेने खाय, एरीते नरकपाले छेदन भेदन मूर्छित कस्या थका पण ते नारकी मरण पामे नही तेनु कारण कहेछे (सजीवणी नामचिरछितीया के०) सजीवनी नामे एवी साश्वति कुंभीछे (जसीपया के०) जेहने विषे पोहोता थका प्राणी (हम्मइपावचे या के०) पापसहित एवा परमाधार्मिकलोक तेने हणे छेदे भेदे परतु तेणे करी ते मरे नही किंतु पारानी पेरे तेनु शरीर फरी मली जाय ॥९॥ (तिरकाहिसूलाहि के०) तेपर माधार्मिक पुरुषो तीक्ष्ण वज्रवत् सूलिये करीने नारकीना शरीरने (अभितावयति के०) अभितापयति एटले पीडे जेम (लछु के०) लुब्धक एवा जे कुतरादिक तेने (वसोगयं के०) वसोपगत एटले वशे पड्या एवा (सोयरयव के०) स्वापद मृगादिक पशु ते जेम मरणात कदर्थना पामे तेम (ते के०) ते नारकीजीवो पण (सूलविद्धा के०) सूलिये विध्या थका (कलुणथणति के०) दीनस्वरे अरडाट करे एकतो अन्यतर शोकादिक अने बीजो बाहिर हननादिके करी (गिलाणाके०) गिलान थता एम (डुहउके०) बन्ने प्रकारे (एगतडुरक के०) एकात डुःख भोगवे परतु मरण पामे नही॥१०॥

॥ दीपिका-(समूसिआइति) तत्र नरके स्तंभादौ ऊर्ध्ववाहवोऽध शिरस श्वपाकैरजवद्बद्धिता (विसूणिअगत्ति) उत्कृत्ताग्राअपनीतत्वचोलोहमुखै पक्षिभिर्वज्रचचुभि काक गृध्रादिभिर्भक्ष्यते । एवते परमाधार्मिककृतै परस्परकृतै स्वाभाविकैर्वा डुःखैश्छिन्नभिन्ना अपि न म्रियते । अतोज्ञायते सजीवनी नरकभूमिर्यस्या खम्डशश्छिन्नोपि न म्रियते स्वायुषि सतीति । सर्वे प्रजा प्राणिनोयस्मिन्नरके पापचेतसोहन्यते मुजरादिभि । नरकानुभावाच्च,मुमूर्षवोपि नम्रियते ॥९॥(तिरकाहिति) तीक्ष्णाभि शूलाभिस्तापयति । कमिव। वशमुपगत सूकरादिक लब्धा यथा कदर्थयंति । ते नारका शूलविद्धाअपि नम्रियते पारदवन्मिलंति तत करुण स्तनति दीनमाक्रंदति उभयतोतर्बहिश्च ग्लानाएकातडुःखमनुभवति ॥१०॥

॥ टीका-अपिच (समूसियाऽत्यादि) तत्र नरके स्तंभादौ ऊर्ध्व बाहवोऽध शिरसोवा श्वपाकैर्वस्तवल्लंबिता सत (विसूणियगत्ति) उत्कृत्ताग्राअपगतत्वच पक्षिभिरयोमुखै र्वज्रचचुभि काकगृध्रादिभिर्भक्ष्यते । तदेव ते नारकानरकपालापादितै परस्परकृतै स्वाभाविकैर्वा छिन्नाभिन्ना क्वथितामूर्छिता सतोवेदनासमुद्घाते गताअपि सतोन म्रियते अतोव्यपदिश्यते सजीवनीवत् सजीवनी जीवितदात्री नरकभूमि । तत्र गत खम्डशश्छिन्नोपि नम्रियते स्वायुषि सतीति । साच चिरस्थितिकोत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत् यावत्सागरोपमाणि । यस्या च प्रासा प्रजायतइति प्रजा प्राणिन पापचेतसोहन्यते मुजरा

॥ दीपिका–अंगारराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति सज्योतिर्भूमिस्तेनो पमा यस्यां सा तडुपमा तामंगारतुल्यां नूमिमाक्रमतस्ते नारकादह्यमाना करुण दीन स्तनंत्याक्रंदंति। तत्र बादराग्नेरनावात्तडुपमा नूमिमित्युक्तं। एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं। अन्य था नारके चिरस्थितिकालस्थितय । तथाहि । उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्य तस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जबूस्वामिनमाह । यदि ते त्वया श्रु ता वैतरणी नाम क्षारोष्मरुधिराकारजलवाहिनी नदी अनिडुर्गा विषमा।यथा निशितस्ती क्ष्ण क्षुर स्यादेव तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्या सा तीक्ष्णस्रोता। तथा ते नारका तापतप्ताजलं पातुमिन्नवो वैतरणीमतिडुर्गां तरति । किंनूता ।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिता शक्तिनि शस्त्रविशेषैर्हन्यमाना । तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥

॥ टीका–तेच नयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुनवंति तद्दर्शयितुमाह । (इंगालेत्यादि) अं गारराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्यो तिर्भूमिस्तेनोपमायस्या सा तडुपमा तामंगारसन्निनां नूमिमाक्रमतस्ते नारकादह्यमा ना करुणं दीनं स्तनत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरनावात्तडुपमा नूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते । तेच नारकामहानगरदा हाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराश्प्रकटस्वरामहाशब्दा संतस्तत्र तस्मिन्नरकावा से चिरं प्रभूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते । तथा सुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा णि जघन्यनोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठतीति ॥ ७ ॥ (जइतेसुयाइत्यादि)। सुधर्मस्वामी जबूस्वामिन प्रतीदमाह । यथा नगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपाग ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी आनिमुख्येन डुर्गानिडुर्गा डुःखोत्पा दिका । तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्या सा । तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निनां नूमिं विहायोदकपिपासवोऽनितप्ता संतस्तापाप नोदायाऽनिपिपिक्षवोवा तां वैतरणीमनिडुर्गां तरति ।कथंनूता ।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चो दिता प्रेरिता शक्तिनिश्च हन्यमानास्तामेव नीमां वैतरणीं तरति ।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विन्नति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥९॥
केसिंच वंधित्तु गले सिलाउ, उदगं सि बोलति महालयसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलति पच्चति अ तत्र अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ–(असाहुकम्माके०) पहीते असाधुकर्मा पापकारक एवा नारकी ते नावमाहेआजे

क्षिपति । स असाधुकर्मा तस्यां चितायामावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये अग्निमध्ये पतितं विलीयते तथापि नम्रियते नवस्वनावत्वात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (सयाजलमित्यादि) सदा सर्वकालं ज्वलद्देदीप्यमानमुष्णरूपत्वात् स्थानमस्ति । निहन्यंते प्राणिनः कर्मवशगा यस्मिन् तन्निहमाघातस्थानं तच्च महाविस्तीर्णं यत्राकाष्ठोऽग्निर्ज्वलन्नास्ते तत्रैव नूते स्थाने नवांतरे बहुक्रूरकर्माणस्तद्विपाकापादितेन पापेन बद्धास्तिष्ठतीति । किंनूता । अरहस्वराबृहदाक्रंदशब्दाश्चिरस्थितिका प्रनूतकालस्थितय इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथा (चियामहंतीउ इत्यादि) महतीश्चिता समारच्य नरकपालास्तं नारकं विरसं करुणं दीनमारसंतं तत्र क्षिपंति । सचासाधुकर्मा तस्यां चितायां गतः सन्नावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये पतितं द्रवीनवत्येवमसावपि विलीयते नच तथापि नवानुनावात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइडुक्खधम्मं ॥ हत्थे हि पाएहिय बंधिऊणं, सत्तुव दंमेहिं समारनंति ॥ १३ ॥ नंजंति बालस्स वहेण पुठी, सीसंपि निंदंति अउघणेहिं॥ ते निन्नदेहा फलगंव तठा, तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे वली डुःखनो बीजो प्रकार कहेठे (सदाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) त्यां सर्वकाल संपूर्ण घर्म एटले उष्ण आतापनुं स्थानक जे स्थानके (गाढोपनीतंके०) ते नारकीने निवडकर्मे आणी ढोक्या थका (अइडुक्खधम्मं के०) ज्यां अत्यंत डुःखरूप धर्म नो स्वनावठे एवा स्थानके (हत्थेहिंपाएहियबंधिऊणंके०) नरकपाल ते नारकीना हाथ अने पग बांधीने (सत्तुवके०) शत्रुनी पेरे (डंमेहिंके०) दंमेकरी (समारनंतिके०) समारने ताडना करे ॥ १३ ॥ (नंजंतिबालस्सवहेणपुठिं के०) ते परमाधार्मिको दंमादिके करी बाल अज्ञ एवा नारकीनी पीठने नांजे तथा (अउघणेहिंके०) लोढाना घणे करीने (सीसंपिनिंदंतिके०) मस्तकने पण नेदी नाखे, चूर्ण करीनाखे वली अपि शब्द थकी बीजा पण अंगोपांग एजरीते मुग्दरे करी नेदी नाखे (तेनिन्नदेहाके०) ते नारकी चूर्ण थयाथी निन्नदेह बता (फलगंवतठाके०) पाटीआनी पेरे बन्ने पासे करवते करी ठेद्या थका (तत्ताहिंआराहिंके) तप्त आरे करी खोसता थका तप्त कथीरादिकना मार्गने विषे (नियोजयंति के०) ते नारकीने प्रवर्त्तावे इतिनाव एटले तप्त कथीरना रसनुं पान करावावाने विषे नियोजे एटले प्रवर्त्तावे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(सदेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्थानं गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं प्रापितं

र्माणोनरकपालास्तंबालं मूर्वं अभितापयंति जटित्रवत् पचति तेनारकास्तत्राभितप्य माना कदर्थ्यमानास्तिष्ठति । यथा मत्स्याजीवतोज्योति प्राप्ता अग्निगता पीड्यंते तथा पीड्यमाना ॥ १३ ॥ (संतछणमिति) नामेति संभावनाया । सतक्षण छेदन महाभि तापं महाडुखोत्पादकं । ततस्ते यत्र नरकावासे असाधुकर्माण क्रूरकर्माणोनरकपाला कुठारहस्तान् हस्तैः पादैश्च बध्वा फलकमिव काष्ठखंममिव तक्ष्णुवति छिंदति ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (चत्तारित्यादि) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वा ल्य यस्मिन्नरकावासे क्रूरकर्माणोनरकपालाअभिमुख्येनात्यर्थं तापयंति जटित्रवत्प चति बालमङ्क नारकपूर्वकृतडुश्चरित । तेतु नारकजीवाएवमभितप्यमाना कदर्थ्यमानाः स्वकर्मनिगडितास्तत्रैव प्रभूत काल महाडुखाकुले नरके तिष्ठंति । दृष्टांतमाह । यथाजी वतोमत्स्यामीनाउपज्योतिरग्ने समीपे प्राप्ता परवशत्वादन्यत्र गंतुमसमर्थास्तत्रैव तिष्ठत्येव नारकाअपि । मत्स्याना तापासहिष्णुत्वादग्नावत्यंत डुखमुत्पद्यतइत्यतस्तद्ग्रह णमिति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् (संतछमित्यादि) समेकीभावेन तक्षण सतक्षण । नामश ब्द संभावनाया । यदेतत्संतक्षण तत्सर्वेषा प्राणिना महाभितापं महाडुखोत्पादकमित्ये व संभाव्यते । यदेव तत किंचित्याह । ते नारकानरकपालायत्र नरकावासे स्वभवनादा गताअसाधुकर्माण क्रूरकर्माणोनिरनुकंपा कुठारहस्ता परशुपाणयस्तान्नारकानत्राणान् हस्तैःपादैश्च बध्वासयम्य फलकमिव काष्ठशकलमिव तक्ष्णुवति तनूकुर्वति छिदंतीत्यर्थ १४

पुणो वच्च समुस्सिअंगे, भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता॥ पयंति
इए फुरते, सजीवमच्छेव अयोकवल्ले ॥ १५॥ नोचेव ते तछ
वंति, णमिज्जती तिव्वभिवेयणाए ॥ तमाणुभाग अणुवेदयं
कति डुक्खी इह डुक्कडेण ॥ १६ ॥

नरकोवह
मिवभूत महा

के०) ते परमाधार्मिको ते नारकीजीवोनुज रक्त, काढीने कडाहमां फरी तेज लोहीमां ते नारकीउने पचावे ते नारकीउ केवाछे तोके (व सु तेणेकरी (समुस्सिके०) खरडयाछे (अंगेके) अग जेमना एवा ते नारकीने केवीरीते पचावे तोके (भिन्नुत्तमगेके०) प्रथम तेमनुं उत्तमांग भेदीने पछी (प रिवत्तयता के०) परिवर्त्तयता एटले सम्रु होय तेने उपराठु होयकरे अने उपराठुं तेने सम्रुकरे अर्थात् उलटावी पलटावीने पचावे (पयतिणंणेरइएफुरते के०) त्यां पचता थका ते नारकी तापे करी विव्हल थता आघा पाछा उछलता हालता थका धूजे, ट लवले, कोनीपेरे तोके (सजीवमछेवअयोकवल्ले के०) जेम जीवता मत्स्य तप्त लोखं

(कटइल के०) कांटावाली एवी (महंतं के०) महोटी (नूमि के०) नूमिकानी वे लुने विषे (अणुक्कमता के०) अतिक्रमावे ते जेम जेम आकरा चलावे तेम तेम ङु ख पामे तथा (विवसुचित्ते के०) मूर्छित एवा नारकीतने (विव ग्गतपेहिके०) अने क नरकपालो त्रापें करी बाधीने (समीरियाके०) तेना पूर्वकृत पापकर्म प्रकाशीने (कोट्ट बलिकरंति के०) कोट एटले नगरनी बलिवाकुल जेम दशोदिशे संकडाखंम थइ वि खरी जाय तेम परधार्मिको ते नारकीना खंमो खम करी विखेरी नाखे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(अनिजुजिआइति) रौद्रकर्मणि अपरान्नारकान् हननव्यापारेऽनियुज्य व्यापार्य असाधुकर्मणइपुचोदितान् शरानिघातप्रेरितान् हस्तिवद् वाहयति नरकपाला । यथा हस्ती वाह्यते समारुह्य एव तान् वाहयति । तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा स मारोप्य ततस्त वाहयति । अतिनारारोपणेनावहतमारुष्य रोषकृत्वा प्रतोदादिना विध्य ति । सेतस्य नारकस्य (ककाणउत्ति) मर्मणि विध्यति छिंदति ॥ १५ ॥ (बालाइति) बाला॰ प रवशामहतीं रुधिरादिप्रपिछिला कटकाकुला नूमिमनुक्रामतोमदगतयोबलात्प्रेर्यते । तथा न्यान् तर्षकाकारान् विषसुचित्तान् मूर्छितान् विविधमनेकधाबद्धानरकपाला पापेन समी रिता प्रेरितास्तान् कुट्टयित्वा बलिं कुर्वंति खडश छित्वा इतश्चेतश्चक्षिपति ॥ १६ ॥

॥ टीका–(अनिजुजियाइत्यादि) रौद्रकर्मण्यपरनारकहननादिकेऽनियुज्य व्यापार्य यदि वा जन्मांतरकृत रौद्र सत्त्वोपघातकार्यमनियुज्य स्मारयित्वा असाधून्यशोननानि जन्मांतर कृतानि कर्माण्यनुष्ठानानि येषाते तथा तानिपुचोदितान् शरानिघातप्रेरितान् हस्तिव द् वाहयति नरकपाला । यथा हस्ती वाह्यते समारुह्येव तमपि वाहयति । यदिवा हस्ती महातं नार वहत्येवतमपि नारकं वाहयत्युपलक्षणार्थत्वादस्योष्ट्रवद् वाहयतीत्याद्यप्यायो ज्य कथ। वाहयतीति दर्शयति । तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारुह्य समारोप्य ततस्त वाहयति । अतिनारारोपणेनावहतमारुष्य क्रोध कृत्वा प्रतोदादिना विध्यति तुदं ति । सेतस्य नारकस्य (काकणउत्ति) मर्माणि विध्यतीत्यर्थ ॥ १५ ॥ अपिच (बाला बलाइत्यादि) बालाइव बाला परतंत्रा पिछिला रुधिरादिना तथा कटकाकुला नूमिम नुक्रामतोमदगतयोबलात्प्रेर्यते । तथान्यान् विषसुचित्तान् मूर्छितास्तर्षकाकारान्वि विधमनेकश बद्धानरकपाला समीरिता पापेन कर्मणा चोदितास्तान्नारकान् कुट्ट यित्वा खमश कृत्वा (बलिंकरिंति) नगरबलिवदितश्चेतश्च क्षिपतीत्यर्थ । यदिवा को एवलि कुर्वंतीति ॥ १६ ॥

वेतालिए नाम महान्निताह्ने, ( ) पवयमतलिरके ॥ हम्मति
तत्ता बहुकूर पर ॥ ॥१७॥ सवाहिया

त्यांते नारकी अशुची वस्तुना आहारी थता घणोकाल सुधी रहे (तुट्टंति कम्मोवगया किमीहि के०) कर्मने वश पड्या एवा नारकीने परमाधार्मिक विकुर्विने पीडे ॥ २० ॥

॥दीपिका-(पाणेहिणमिति) ण वाक्यालंकारे।ते पापानरकपाला प्राणै शरीरेंद्रियादि निर्वियोजयति येनैव दुःखं ते लभंते तद्दुःखकारणं चे भवता याथातथ्येन सत्यतया प्रव क्ष्यामि तेषा दंडैर्नरकविशेषैस्तत्र बालानरकपाला पूर्वकृत स्मारयति । पूर्वभवे त्वं मांसानि खादसि पिबसिमद्य गच्छसि परदारान् । साप्रत विपाकप्राप्तेन कर्मणा किमेवमाक्रंदसीत्येवं पुराकृतं सर्वैर्दंडैः दुःखविशेषैस्तादृशमेव दुःखमुत्पादयति ॥ १९ ॥ (तेइति) ते नारका हन्यमानानष्टा सतोऽन्यस्मिन् घोरतरे नरके पतति। किंभूते पूर्णे भृते।दुरूपं विष्टासृङ्मासादिमल तस्यभृते महाभितापेऽतिसतापोपेते तत्र नरके दुरूपस्याशुच्यादेर्भक्षिणस्तिष्ठंति।तथा कृमिभिर्नरकपालकृतै परस्परकृतैश्च तुद्यंते व्यथ्यंते । तथा चागम । छट्ठीसत्तमासुण पुढवीसुनेरइया पहूमहंताइ लोहिअकुंथुरूवाइं विउव्विता अन्नमन्नस्स काय समचउरगेमाणा २ अणुखायमाणा २ चिट्ठंति॥२०॥

॥ टीका-तथा (पाणेहिणमित्यादि) णमिति वाक्यालकारे । प्राणैः शरीरेंद्रियादिभिस्ते पापा पापकर्मणोनरकपालावियोजयति शरीरावयवाना पाटनादिभि प्रकारैर्विकर्तनादवयवान् विश्लेषयंति। किमर्थमेव कुर्वंतीत्याह । तद्दुःखकारणं भेयुष्माकं प्रवक्ष्यामि याथातथ्येनावितथं प्रतिपादयामीति । दंडयति पीडामुत्पादयंतीति दंडाःदुःखविशेषास्तैर्नारकाणामापादितैर्बालानिर्विवेकानरकपाला पूर्वकृत स्मारयति । तद्यथा । तदा हृष्टस्त्वं खादसि समुत्कृत्य प्राणिना मांस तथा पिबसि त तद्रस मद्य च गच्छसि परदारान् सांप्रत तद्विपाकापादितेन कर्मणाऽभितप्यमान किमेव रारटीषीत्येव सर्वं पुराकृतैर्दंडैर्दुःखविशेषै स्मरयंतस्तादृक् भूतमेव दुःखविशेषमुत्पादयंतोनरकपाला पीडयंतीति ॥ १९ ॥ किंच (तेहम्ममाणाइत्यादि) ते वराकानारकाहन्यमानास्तोद्यमानानरकपालेभ्योनष्टेऽन्यस्मिन् घोरतरे नरकैकदेशे पतति गच्छति । किंभूते नरके पूर्णे भृते ।दुष्ट रूप यस्य तद्दुरूप विष्टासृग्मांसादिकं मलं तस्य भृते तथा महाभितापिते सतापोपेते ते नारका स्वकर्मावबद्धास्तत्रैवभूते नरके दुरूपभक्षिणोऽशुच्यादिभक्षकाः प्रभूतं कालं यावत्तिष्ठंति । तथा कृमिभिर्नरकपालापादितै परस्परकृतैश्च स्वकर्मोपगता स्वकर्मढौकितास्तुद्यंते व्यथ्यंते इति । तथाचागम । छट्ठीसत्तमासुणं पुढवीसु नेरइयाहूपमहंताइ लोहिकुंथुरूवाइ विउव्वित्तअन्नमन्नस्सकायंसमचउरगे माणामाणा अणुखायमाण अणुखायमाणा चिट्ठंति ॥ २० ॥

पीमितादुष्कृतं पाप विद्यते येषाते दुष्कृतिनोमहापापा । अहोअहनि तथा रात्रौ च परितप्यमानाअतिदुःखेन पीड्यमाना सत करुण दीन स्तनत्याक्रंदति । तथैकांतेन कूटानि दुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेव नूते नरके महति विस्तीर्णे पतिता प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पाषाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्विषमे हता । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनत्येव केवलमिति ॥ १८ ॥

नजंति णं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतु ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमता, उमुद्धगा धरणितले पडति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला, पागप्निणो तत्र सया सकोवा ॥ खज्जंति तत्रा वढुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ-(पुव्वमरीसरोसतेके०) पूर्व जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोस सहित कोपायमान थका (समुग्गरेमुगलेगहेतु के०) मुद्गर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (नजतिण के०) नांगी नाखे तेवारे (तेनिन्नदेहारुहिरवमता के०) तेनारकी बापडा निन्नदेही थका लोहिवमता बता प्राबल्ये करी (उमुद्धगा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडति) धरणीतलने विषे पडे ॥१९॥ त्या (अणासियाके०)जुख्या अहीं नाम शब्द सनावनायेछे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाण वाला (पागप्निणो के०) प्रगल्जित एटले दुष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध सहित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तत्रके०) ते नरकने विषे परमाधार्मिको विकूर्वे ते (तत्राके०) त्यां नारकीमा (अदूरएसकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (वढुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत क्रूर कर्मना करनार नारकीउ तेने (खज्जति के०) खम खम करी नक्षण करे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(नजतीति) ण वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मातरवैरिणइव परमाधार्मिकानारकावा अन्येषामगानि सरोष समुद्गराणि मुसलानि गृहीत्वा नजति ते नारकाभिन्नदेहारुधिर वमतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १९ ॥ महात शृगालानरकपालविकुर्विताअनाशिनोबुभुक्षिता । नामेति सनावने । सनाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्भिताधृष्टारौद्ररूपायत्र सदा सकोपा सनवति । तत्र तै सृगालादिनिर्बहुक्रूरकर्माण शृखलादिनिर्लोहनिगडैर्बद्धाअदूरगा परस्परसमीपएव वर्तिन खाद्यते नक्ष्यते ॥ २० ॥

॥ टीका-अपिच (नजतिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयोज

मुद्धातोपगतस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंति तथौष्ठावपि द्वावपि कर्णौ छिदंति तथा मद्य मांसरसाऽभिलिप्सोर्मृषाभाषिणोजिव्हा वितस्तिमात्रामाक्षिप्य तीक्ष्णाभिः शूलाभिरभि तापयंत्यपनयति ॥ २२ ॥

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव, राइंदियं तत्र थणंति बाला॥ गलंति ते सोणिअपूयमंस, पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥२३॥ जइ ते सुता लो हितपूअपाई, बालागणी तेअगुणा परेण॥ कुम्भी महंताहियपोर सीया, समूसिता लोहियपूयपुण्णा ॥ २४ ॥

अर्थ-(ते के०) तेनारकी कान होठ प्रमुख अंगोपांगना छेदन थकी (तिप्पमाणा के०) लोहिजरता थका (तलसंपुडंव के०) सुका ताडवृक्षना पान जेम पवने उडता शब्द करे, तेनीपेरे (राइंदियतत्थणंतिबालाके०) ते बाल अज्ञानी निरविवेकी एवा नारकी बापडा रात्र दिवश त्यां आक्रंद शब्द करे (गलंतितेसोणियपूयमसं के०) त्यांते नारकीना अंगोपांग छेद्या पछी तेना शरीरमांथी लोही परु तथा मांसादिक जरे (पज्जोइया के०) तेवारे तेने शेककरी अग्नीये प्रज्वालीने (खारपइद्धियंगा के०) लवणादिक खारे अंगोपांग खरड्या छता रुधिर परु अने मांस एटलावाना रात्र दिवस तेमना शरीरमांथी गलता थका रहेछे॥२३॥वली श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रत्ये कहेछे के, (जइते के० (यदि तें श्रीमहावीर भाषित (लोहितपूअपाई के०) रुधिर अने परुनी पात्री एटले रुधिर अने पाकीरुधिर ते परु ए बने ज्यां पचेछे एवो स्थानक कुंभी भाजन विशेष ते (सुता के०) ते सांभलीछे ते केवीछे तोके (बालागणीके०) नवी अग्नीना (तेअ के०) तेज करता पण (गुणापरेण के०) गुणे करी अधिकछे एटले अत्यंत बलतीछे (कुम्भीमहंताहियपोरसीया के०) एवी पुरुष प्रमाण थकी अधिक मोटी कुम्भी भाजन विशेष ते केवीछे तोके (समूसिता के०) उंटने आकारे उचीछे अने (लोहियपूयपुण्णा के०) रुधिर अने परु एणे करी परिपूर्ण भरेलीछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-(तेऽति) ते नारका शोणितं तिप्यमाना स्रवतोयत्र रात्रिदिनं गमयंति तत्र प्रदेशे तालसंपुटाइव पवनप्रेरितशुष्कपत्रसचयाइव सदा विस्वरं स्तनंति क्रदति । वन्हिना प्रद्योतिताज्वालिता क्षारेणप्रदिग्धांगा शोणितं पूयं मांसं वाऽहर्निशं गलंति ॥ २३ ॥ (जईति) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं वक्ति ।यदि ते त्वया श्रुता लोहितं रुधिरं पूयं पक्वरुधिरं ते द्वे अपि पक्तुं शीलमस्याः सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । पुनः किंभूता । बाल प्रत्यग्रोग्निस्तस्यतेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोभिताप

दुःखयंति निरतर मविश्रामं तत्र चिरस्थितिकं तं हन्यमानस्य नारकस्य नकिंचित्त्राण स्यात् । यथा शीतेऽेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्त्राणोद्यतेनापि नत्राण कृतमिति एकः स्वयं प्रत्यनुनवति दुःख । यतो मया परिजनस्यार्थे, कृत कर्म सुदारुण ॥ एकाकी तेन दह्येह गतास्ते फलनोगिनइति ॥ २२ ॥

॥ टीका–अपिच (सदाजलेत्यादि) सदा सर्वकाल जलमुदकं यस्या सा तथा सदा जलानियाना वा नदी सरितिदुर्गा अतिविषमा प्रकर्षेण दिग्धि यमत्युष्ण क्षारपूयरुधिरावि लजल यस्या सा (पविज्जलेत्ति) रुधिराविलत्वात् पिच्छिला विस्तीर्णगनीरजला वा । अथवा प्रदीप्तजला वा। एतदेव दर्शयति । अग्निना तप्त सद्विलीन इवता गत यल्लोहमयस्त द्यत्ता ऽतितापविलीनलोहसदृशजलेत्यर्थ ।यस्या च सदाजलाया अनिदुर्गाया नद्या प्रपद्यमा ना (एगायत्ति) एकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमण तस्या गमन प्लवन कुर्वतीति ॥ २१ ॥ सा प्रतमुद्देशकार्थमुपसहरन् पुनरपि नारकाणा दुःखविशेष दर्शयितुमाह (एयाइफासाइइ त्यादि) एते अनतरोदितकदयाश्चेत्यतिकटचोबालमशरण स्पृशयति दुःखयति निरत रमविश्राम (अच्छिनिमीलयमित्यादिपूर्ववत्) तत्र तेषु नरकेषु चिर प्रनूत काल स्थितिर्यस्य वालस्यासौ चिरस्थितिकस्त।तथाहि।रत्नप्रनायामुत्कृष्टा स्थिति सागरोपम तथा द्वितीया या शर्करप्रनाया त्रीणि तथा वालुकाया सप्त पकाया दश धूमप्रनाया सप्तदश तम प्रना या द्वाविंशतिर्महातम प्रनाया सप्तमपृथिव्या त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि उत् त्कृष्टा स्थि तिरिति। तत्र गतस्य कर्मवशाऽपादितोत्कृष्टस्थितिकस्य परैर्हन्यमानस्य स्वकृतकर्मफलनुजो न किंचित्राण नवति । तथाहि।किल शीतेंऽेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्तत्राणोद्य तेनापि न त्राण कृतमिति श्रुति । तदेवमेकोसहायोयदर्थ यत्पाप समर्जित तैरहित स्तत्कर्मविपाकज दुःखमनुनवति नकश्चिद्दुःखसविनाग गृह्णातीत्यर्थ । तथाचोक्तं । म या परिजनस्यार्थे कृत कर्म सुदारुण । एकाकी तेन दह्येह गतास्ते फलनोगिनइत्यादि ॥२२

जं जारिसं पुव्वमकासिकम्मं,तमेव आगछति संपराए॥ एगंतदुक्खं नव मज्जणित्ता, वेदंति दुक्खी तमणंतदुक्खं ॥ २३ ॥ एताणि सोच्चा णरगा णि धीरे, नहिंसए किंचण सव्वलोए ॥ एगंतदिठ्ठी अपरिग्गहेउ, बुज्झि ज्ज लोयस्सवसं नगछे ॥२४॥ एवं तिरिक्खे मणुया सुरेसु, चतुरंतणं तं त यणुविवाग ॥ ससवमेयं इति वेदइत्ता, कखेजकालं धुयमायरेज्जत्तिबेमि ॥ २५ ॥ इति श्रीनरयविनत्तीनाम पंचमाध्ययनसमत्त ॥

अत्यत क्रूर पापकर्मना धणी दु खवेदना भोगववाने घणोकाल सुधी त्या नरकने विषे रहे (जहाकडंकम्मतहासिभारे के०) यथारुतानिकर्माणि जेवा अध्यवसायेकरी जेवाजा वे कर्म कीधा होय तेवाज नरकमा पण सिभार शब्दे दु ख उपजे जेम मांस भ क्षण करनारने तेनाज शरीरमांथी मासकापी अग्नीवर्ण करी खवरावे, मद्यपानीने तप्त कथीरनो रस पीवरावे, मत्सघातकीने छेदे, भेदे, असत्य भाषण करनारनी जिव्हा छेदे, परधनापहारीना अगोपाग छेदे, लपटना वृषण छेदे, सालमली वृक्षनु आलिंगन करावे इत्यादिक जेणे जेवा कर्म उपार्ज्या होय तेने ते सरखाज दु ख परमाधार्मिको उपजावे ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्ताकलुसअणज्जा के०) ते पापी अनार्य माता पिता अने स्त्रियादि कने अर्थे घणा कलुप एटले पापकर्म उपार्जन करीने पछी (इठेहिकतेहियविप्पहूणा के०) इष्टजे मातापिता तथा काता एटले स्त्रियादिक ते थकी विप्पहूणा एटले रहित अर्थात् एकाकी छता (तेदुब्भिगधेकसिणेयफासेके०) ते दुर्भिगंध दु खे करी भर्यो तथा अशुभ स्पर्शवान एवा नरकने विषे (कम्मोवगाकुणिमेआवसतिके०) कर्मोपगता अशुभ क र्मने लीवे कुणि एटले मास पेसी रुधिर परु आतरमा फेफसुं इत्यादिक कस्मले करी समाकुल एवा नरक स्थानमां घणोकाल अवश्य पणे रहीने पूर्वोक्त दु ख सहन करे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२७॥इति नरकविभक्तियनाम प्रथमोद्देशकनुअर्थसमाप्त

॥ दीपिका-(पक्खिप्पेति) कुभीषु तान् आर्तस्वरान् करुण दीन रसत प्रक्षिप्य प्रप चति ते तृषार्ता सलिलं प्रार्थयंतस्तप्त त्रपु पाय्यते । पाय्यमानाश्चार्ततर रसंति गरटंति ॥ २५ ॥ (आप्पेणेति) इह नरके आत्मनैवात्मानं वचयित्वा भवानामधमाभवाधमा अधमभवामत्स्यवधलुब्धकादीना भवास्तान् पूर्वजन्मनि शतसहस्रश समनुभूय क्रूरक र्माणस्ते नरके बहुप्रभूतकाल तिष्ठति यथा येन प्रकारेण यादृशाध्यवसायेन पूर्वभवे रु तानि कर्माणि तथा से तस्य नारकस्य भारावेदना स्यु ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्तेति) अ नार्या, पापकर्मकारिण कलुप पाप समर्ज्य अर्जयित्वा ते नारकादुरभिगंधिनरके वसं ति ।किंभूता ।इष्टै कातै शब्दादिविषयैर्विहीना।नरके किंभूते।कृत्स्ने सपूर्णेऽस्पर्शेऽत्यं ताशुभस्पर्शे कर्मोपगताआशु कर्मबद्धा कुणिमे रुधिराद्याकुले आसमताद्उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रि शत्सागराणि वसतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इतिपंचमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशक

॥ टीका-तासु च यक्रियते तदर्शयितुमाह । (पक्खिप्पेत्यादि) तासु प्रत्यग्निना दी प्तासु लोहितपूयशरीरावयवकिल्बिषपूर्णासु दुर्गंधासु च बालान्नारकास्त्राणरहितानार्त स्वरान् करुण दीन रसत प्रक्षिप्य प्रपचति तेच नारकास्तया कदर्थ्यमानाविरसमाक्रं दतस्तृषार्ता सलिल प्रार्थयंतोमद्य ते अतीव प्रियमासीदित्येव स्मरयित्वा तप्त यत्रपु

नुरूपं विपाक सबुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्त विदित्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं काङ्क्ष
त् ।कोर्थ ।चतुर्गतिकससारे ड खमेव केवलं मत्वा सयमानुष्ठानरतोयावज्जीव मृत्युका
लं प्रतीक्षेत । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति पचमाध्ययने द्वितीयोदेशक ॥ ॥ इ
तितपोगच्छे श्रीहेमविमलसूरिशिष्यहर्षकुलपमितप्रणीताया श्रीसूत्रकृतागदीपिकाया नर
कविजक्तयाख्यं पंचमाध्ययन समाप्तं ॥ ॥

तथा सदा

॥ टीका–किचान्यत् (जलारिसमिस्यादि) यत्कर्म यादृग यदनुभा द्वारपूयरुधिरवि
वा कर्म पूर्वं जन्मांतरे अकार्षीत् कृतवास्तत्तादृगेव जघन्यमध्यमोत्कृष्ट ला वा । अथवा
सपराये तथा तेनैव प्रकारेणानुगच्छति । एतडुक्त भवति । तीव्रमद यल्लोहमयस्त छन्न
स्थानैर्यादृशैर्यद्बद्ध तत्तादृगेव तीव्रमदमध्यमेव विपाकमुदय गच्छतीति गाया नद्या प्रपद्यमा
खलेशरहित ड खमेव यस्मिन्नरकादिके भवे सतथा तमेकातड ख भव नीति ॥ २१ ॥ सां
वोपादानभूतानि कर्माण्युपादायैकातड खिनस्तत्पूर्वनिर्दिष्ट ड खमसातवे (एयाइफासाइ
दयत्यनुभवतीति ॥२३॥ पुनरप्युपसहारव्याजेनोपदेशमाह ।(एयाणिसोच्च खयति निरंत
न्पूर्वोक्तान्नरकान् स्वास्थ्या ढ्यपदेशइतिकृत्वा नरकड खविशेषान् श्रुत्वा नि न्मियतिर्यस्थ
या राजतइति धीरोबुद्धिमान् प्राज्ञ ।एतत्कुर्यादिति दर्शयति।सर्वस्मिन्नपि त्र तथा द्वितीया
न्ने लोके प्राणिगणे नकमपि प्राणिन हिस्यान्नव्यापादयेत् । तथैकातेन निभ्रय दृश तम प्रभा
दृष्टि सम्यक् दर्शन यस्य सएकातदृष्टिर्निष्प्रकपसम्यक्त्वइत्यर्थ । तथा नविद्य त्कृष्टा स्थि
न्सुखार्थं गृह्यतइति परिग्रहोयस्य सावप्यपरिग्रह ।तुशब्दादाद्यतोपादाना द्वा मृषा फलभुजो
दानमैथुनवर्जनमपि द्रष्टव्य । तथा लोकमशुभकर्मकारिणं तद्विपाक फलं भुजन् तत्राणोद्य
कषाय लोक तत्स्वरूपतोबुध्येत जानीयान्नतु तस्य वश गच्छेदिति ॥२४॥ एतदनंतर तरहित
विशेष मन्यत्राप्यतिदिशन्नाह।(एवमित्यादि) एवमशुभकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्क । म
मरेष्वपि चतुरत चतुर्गतिकमनतमपर्यवसान तदनुरूप विपाक स बुद्धिमान् सर्वमे॥२५
पूर्वोक्तया नीत्या विदित्वा ज्ञात्वा ध्रुव सयममाचरन् काल मृत्युकालमाकाङ्क्षेत् । ए
भवति । चतुर्गतिकससारातर्गतानामसुमतां ड खमेव केवल यतोध्रुवोमोक्ष सय
तदनुष्ठानरतोयावज्जीव मृत्युकाल प्रतीक्षेतेति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२५॥
इतिपचम नरकविभक्त्यध्ययन परिसमाप्त ॥

अथ द्वितीये सूत्रकृतागे पष्ठमध्ययन प्रारभ्यते।पांचमा अध्ययनने विषे नरकना ड ख
कह्या ते श्रीमहावीरदेवे उपदेश्या छे ते माटे आ छठा अध्ययनने विषे श्री महावीर
परमात्मानी गुणो त्किर्तनीपूर्वक स्तुति करेछे

रादिनिर्नरकानुनावाच्च मुमूर्षवोप्यत्पतपिष्टाअपि न म्रियंते ऽपितु पारदवन्मिलंतीति॥ए॥ अपिच (तिरकाहीत्यादि) पूर्वडुष्कृतकारिण तीक्ष्णानिरयोमयीनि शूलानिरनेकपा लानारकमनितापयति । किमिव । वशमुपगतं श्वापदमिव । कालपृष्ठसूकरादिकं स्वा तन्त्र्येण लब्ध्वा कदर्थयंति ते नारका शूलादिनिर्विद्धाअपि नम्रियते केवल करुण दीन स्तनंति । नच तेषा कश्चित्त्राणायाल । तथैकातेनोनयतोतर्वहिश्च ग्लानाअपगतप्रमोदा सदा डुखमनुनवतीति ॥ १० ॥

सया जलं नाम निह महंतं, जसी जलतो अगणी अकहो ॥
चिठति बद्धा बहुकूरकम्मा, अरहस्सरा केइ चिरठितीया ॥
॥११॥ चिया महतीउ समारनित्ता,बिप्नति ते त कलुण रसंतं ॥
आवट्टती तह असाहुकम्मा, सप्पी जहा पडियं जोइमझे ॥१२॥

अर्थ-(सयाजलनाम के०) सर्व काल निरतर जलतु बलतु एवे नामे (निहंके०) ज्या प्राणीने हणीये ते (महत के०) मोहोटुं स्थानकठे (जसीजलतोअगणी अकठो के०) जे स्थानके काष्ट रहित अग्नि प्रज्वलेठे त्या (बद्धाबहुकूरकम्मा के०) घणा कूरकर्मे बाध्या थका घणा कालसुधी (चिठतिके०) रहे केवा थका तिष्टे तोके (अरह स्सराकेइ के०) मोहोटा बीहामणा आक्रद स्वर करता थका तथा (चिरठितीयाके०) घणाकाल नी स्थितीने जेमनी एवा थका रहे ॥ ११ ॥ (चियामहतीउ के०) ते पर माधार्मिक त्या नरकने विषे मोहोटी अग्नीनी चिता (समारनित्ता के०) समारनीने तेमा अनेक काष्ट प्रक्षेपीने (बिप्नतितेतकलुणरसतके०) तेमाहे नारकीनेनाखे ते त्या दा झता थका करुण स्वरे आक्रद करता (तहके०) त्या ते चितामाहे गयाथका (असाहुक म्माके०)असाधुकर्मना करनार एवा नारकी (आवट्टतीके०) आवर्त्ते,विलय थइ जाय कोनी पेरे तोके (जहाके०) जेम (सप्पि के०) घृत ते (जोइमझेके०) ज्योतिजे अग्नी तेमा हे (पडियके०) पड्यो थको विलय थइ जाय तेनीपेरे विलयथाय परतु घृततो अग्नीमाहे सर्वथा बली जाय पण नारकी जीव ते अग्नीमा मरण पामेनही ॥ १२ ॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा ज्वलद्दीप्यमान स्थान । किंनूत । निहन्यंते प्राणिनोयस्मि न् निहमाघातस्थान महद्विस्तीर्णमस्ति ।यस्मिन् स्थानेऽकाष्ठोग्निर्ज्वलन्नास्ते । तत्र बहुकू रकर्माण केचिच्चिरस्थितिकाअरहस्सराबृहदाक्रंदशब्दास्तिष्ठंति ॥ ११ ॥ (चियेति) महतीश्चिता. समारभ्य नरकपालास्ते तं नारकं करुणं दीन रससमाक्रदतं तत्र

॥टीका–उक्त पंचममध्ययन ।अधुना षष्ठमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंध ।अत्रानंतरा ध्ययने नरकविभक्ति प्रतिपादिता । सा च श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनाऽभिहितेत्यत स्तस्यैवाऽनेन गुणकीर्तनद्वारेण चरितं प्रतिपाद्यते । शास्तुर्गुरुत्वेन शास्त्रस्य गरीयस्त्वमि ति कृत्वेत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोमहावीरगुणगणोत्कीर्त्तनरूप ।निक्षेपस्तु द्विधा । ओघनिष्प न्नोनामनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपे ऽध्ययन । नामनिष्पन्नेतु महावीरस्तव. । तत्र म हच्छब्दस्य वीरइत्येतस्य स्तवस्यच प्रत्येक निक्षेपोविधेय । तत्रापि यथोद्देशस्तथानिर्देश इतिकृत्वा पूर्वं महच्छब्दोनिरूप्यते । तत्राऽस्त्ययऽय महच्छब्दोबहुत्वे । यथा महाजनइति अस्तिबृहत्त्वे । यथा महाघोषोऽस्तीत्यर्थं यथा महानयमित्यऽस्ति प्राधान्ये यथा महापु रुषइति । तत्रेह प्राधान्ये वर्तमानोगृहीतइत्येतन्निर्युक्तिकारोदर्शयितुमाह । पाहन्नेमहसद्दो, दव्वे खेत्ते य कालभावेय ॥ वीरस्सउणिक्खेवो चउक्कउहोइणायव्वो ॥१॥ पाहन्नेमहसद्दोऽस्यादि तत्र महावीरस्तवइत्यत्र योमहच्छब्द सप्राधान्ये वर्तमानोगृहीत । तच्च नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा । प्राधान्ये नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यप्राधान्य ।ज्ञशरीरभव्य शरीरव्यतिरिक्त सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदे नरहस्त्यश्वा दिकमपदेषु प्रधान कल्पवृक्षादिक । यदि वेहैव ये प्रत्यक्षारूपरसगंधस्पर्शैस्तकृष्टा पौंड रीकादय पदार्था । अचित्तेषु वैडूर्यादयोनानाप्रभावमणयोमिश्रेषु तीर्थकरोविभूषित इति । क्षेत्रत प्रधानासिद्धिर्धर्मश्रयणान्महाविदेह चोपभोगांगीकरणेन तु देवकुर्वादि क क्षेत्र कालत प्रधान त्वेकांतसुषमादि । योवा कालविशेषोधर्मचरणप्रतियोग्यइति । भावप्रधानतु क्षायिकोभावस्तीर्थकरशरीरापेक्षयौदयिकोवा । तत्रेह द्वयेनाऽप्यधिकारइ ति । वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालभेदाच्चतुर्धा निक्षेप । तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्य वीरोद्रव्यार्थं संग्रामादावद्भुतकर्मकारितया शूरोयदिवा यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्य तद् द्र व्यवीरऽतर्भवति । तद्यथा। तीर्थकृदनंतबलवीर्योलोकमलोक कंडुकवत् प्रक्षेप्तुमल । तथा मंदर दंडं कृत्वा रत्नप्रभा पृथिवी छत्रवद्बिभृयात् ।तथा चक्रवर्तिनोपि बल दोलोभावत्तीसा। तथा विषादिना मोहनादिसामर्थ्यमिति । क्षेत्रवीरस्तु योयस्मिन् क्षेत्रेऽद्भुतकर्मकारी वीरोवा यत्र वर्ण्यते । एव कालेऽप्यायोज्य । भाववीरोयस्य क्रोधमानमायालोभै परीष हादिभिश्चात्मनोजेता । तथाचोक्त । कोहं माणं च मायं च, लोभं पचेंद्रियाणिय ॥ दुज्जयचेव अप्पाणं सव्वमप्पेजिएजिय ॥ १ ॥ योसहस्ससहस्साणं सगामेदुज्जयेजिणे । एकजिणेज्जअप्पाणं एसेसपरमोजउ ॥ २ ॥ तथा । एक्कोपरिभमउजए, वियडंजिणकेसरीमज्जीजाए ॥ कदप्पदुद्दाढो मयणोविद्दारिउजेण ॥३॥ तदेव वर्धमानस्वाम्येव परी षहोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भुतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नात् भावतोमहावीर

श्रति दुखमेव धर्मः स्वभावोयस्मिन् तत्तथा । एवविधे स्थाने नारकं हस्तै पादैर्बध्वा त त्र प्रक्षिपंति क्षिप्त्वाच शत्रुमिव दंमै समारभते ताडयति ॥ १३ ॥ (भंजतित्ति) बा लस्य नारकस्य व्यथेन लकुटादिप्रहारेण पृष्ठं भजंति अयोघनैर्लोहघनैः शीर्षं भिंदंति चूर्णयत्ति । अपिशब्दादन्यान्यप्यंगानि चूर्णयंति । ते भिन्नदेहानारका फलकमिवोभा भ्या पार्श्वाभ्या क्रकचादिनावतष्टाद्विधाकृतास्तप्तानिराराभि· पीडयमानास्तत्रपुपानादि के कर्मणि नियोज्यंते व्यापार्यंते ॥ १४ ॥

॥ टीका–अथायमपरोनरकयातनाप्रकारस्तमाह । (सयाकसिणमित्यादि) सदा स र्वकालं कृत्स्नं सपूर्णं पुनरपर घर्मस्थानमुष्णस्थान दृढैर्निधत्तनिकाचिकावस्थै कर्मभिरु पनीतं ढौकितमतीव दुःखरूपोधर्मः स्वभावोयस्मिस्तदतिदुःखधर्मं तदेवंभूते यातनास्था ने तमत्राण नारकं हस्तेषु पादेषु च बध्वा तत्र प्रक्षिपति । तथा तदवस्थमेव शत्रुमिव दंडै समारभते ताडयंति ॥ १३ ॥ किंच । (भजतिबालस्सेत्यादि) बालस्य वराकस्य नारकस्य व्यथयतीति व्यथोलकुटादिप्रहारस्तेन पृष्ठ भजयंति मोटयंति तथा शिरोप्य योमयेन घनेन भिदति चूर्णयत्यपिशब्दादन्यान्यप्यंगोपागानि द्रुघणघातैश्चूर्णयंति । ते नार कानिभिन्नदेहाश्चूर्णितागोपागा· फलकमिवोभाभ्या पार्श्वाभ्या क्रकचादिना अवतष्टास्तनूकृता· सतस्तप्तानिराराभि प्रतुद्यमानास्तत्रपुपानादिके कर्मणि विनियोज्यते व्यापार्यतइति ॥ १४

अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं वहंति ॥ ए
गं दुरूहित्तु डुवे ततोवा, आरुस्स विज्झति ककाणउसो ॥ १५ ॥
बाला बलाभूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विव
द्धतप्पेहिं विवणचित्ते, समीरिया कोट्टबलिं करिंति ॥ १६ ॥

अर्थ–(अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्माके०) रौद्र एवा असाधु कर्मि एटले अन्य नार कीउने हणवादिक कार्ये पापना करनार अथवा पूर्व भवना करेला एवा रौद्र अ साधु कर्म तेने प्रेरता थका एटले पूर्वकृत दुष्कृतने स्मरण करावीने (उसुचोइया ह त्थिवहंवहंति के०) सरानिघात एटले बाणादिके करी जेम हस्तिने चलाविये वाहिये तेम ते परधार्मिको माहावतनी पेरे ते नारकीउने वाहे अथवा उंटनी पेरे वाहे एटले चलावे (एगंदुरुहित्तुडुवेततोवा के०) तेना उपर एक बे अथवा त्रणरुपे आरुढ थइ ने दुःख आपे (आरुस्सविज्झतिककाणउसोके०) क्रोधेकरीने ककाणउ एटले तेना मर्म स्थानकने आरादिकेकरी विंधे॥१५॥ (बालाके०) अज्ञ एवा नारकीने (बलाके०) बला त्कारे करी (पविज्जलं के०) रक्त अने परु तद्रूप रौद्र कर्दमे करी विषम तथा

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारित यथा दृष्ट तथा सर्व ब्रूह्याचक्ष्वेति ॥२॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणतनाणीय अणंतदसी॥
जसस्सिणो चक्कुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइ पेचहि
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्म समिय उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ–एम श्री सुधर्म स्वामिने पुछ्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण क हेने (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले ससारी जीवोने कर्म वि पाक थकी उत्पन्न थयु जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी तेना दुःख टालवाने सामर्थवान तथा (कुसले के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महेसी के०) महोटा रूपीश्वर साधु तथा (अणतनाणीय के०) अनत अविनाशी जेनुं ज्ञान प्रगटयुछे (अणतदसीके०) अनत अविनाशी जेमनु दर्शन प्रगटयु छे (जसस्सिणोके०) यशस्वी एटले जेनो यश त्रण भुवनमा व्याप्योछे (चक्कुपहठियस्स के०) लोकने च क्षुभूत समानछे केमके लोकना भावना जे भेद ते सर्व परिछेदे माटे लोकने चक्षुने स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्ररूप धर्म तेने धर्म जाणो (धिइच के०) तथा तेज सयमने विषे धृति एटले धैर्यपणु तेप ण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्ष्यो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप सयमने विषे जेहने रतिछे धैर्यछे ॥ ३ ॥ (उड्ढअहेयतिरियदिसासु) के० उचोनीचो अने ति र्छो एटले चौदराज लोक माहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार भावदिशाउ मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंड्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथवि यादिक जे स्थावर प्राणीउछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्खपन्ने के०) तेने भगवत नित्या नित्य भेदे द्रव्य पर्याय भेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव ते णे ससार समुद्र माहे पडता बुडता प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समि यं के०) समभावि (धम्म के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–सभगवान् वीर खेद प्राणिना कर्मविपाकज दुःख जानातीति खेदज्ञ कुश लोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनतज्ञानी अनतदर्शीच । विशेषग्राहक ज्ञानं सा मान्यग्राहक दर्शन तेद्वेअपि यस्यानते तस्य यशस्विनोजगवतोलोकस्य चक्षु पथे लो चनमार्गे स्थितस्य भवस्थकेवलिनइत्यर्थ । तस्य धर्म ससारतारणसमर्थ धृतिंच संय मनिश्चलतां जानीषे । तत (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिरपी

डुक्कडिणो थणंति, अहोय राउ परितप्पमाणा॥ एगंतकूमे नरए महंते, कूमेण तत्था विसमे हताउ ॥ १७ ॥

अर्थ–अहीं नाम शब्द सन्नावनाने अर्थे जाणवो (वेयालिए के०) विकूर्व्यो एवो (महानितापे के०) माहा दुःखनु कारण (एगायते के०) घणो लांबो एवो (पव्वयके०) पर्वत नरकमाहे (अंतरिक्खे के०) आकाश पर्यंत उंचोविकुर्वे निष्पादे (तहाके०) त्या ते पर्वत उपरथी (बहूकुरकम्मा के०) अत्यंत पापकर्मना करनार एवा घणा नारकी पडता थका अंधकाररूपे दृष्टीये कांइ पण देखे नही परंतु हस्त स्पर्श मात्रे थाय अने चडता थका तो परमाधार्मिक तेने (हम्मति के०) हणे पीडा आपे त्या (परसहस्साणमुहुत्तगाणके०) हजार थकी घणा मूहुर्त्त अधिक एटले उपलक्षणथी घणा काल सुधीएवु दुःख पामे ॥ १६ ॥ (डुक्कडिणो के०) ते नारकी माहा पाप कर्मना करनार ते (सबाहिया के०) सबाधित्ता एटले अत्यंत पीडया थका (थणंति के०) आक्रंद करे (अहोयराउपरितप्पमाणा के०) अहोरात्र परितप्तमान थका करुण आक्रंद करे (एगतकूमे नरएमहत्ते के०) एकांत एटले निश्चयरूप कूट एटले दुःखोत्पत्तिनु स्थान ज्याहे एवु महत एटले विस्तीर्ण नरकने विषे (कूमेण तत्था विसमेहताउ के०) त्या विषम कूट पासादिक गलयत्रादिके करी हणाता थका आक्रंद करे ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–(वेयालिएत्ति) नामेति संजावने। सन्नाव्यते यन्नरकेषु। यथांतरिक्षे महानितापे महादुःखे एकशिलाघटितोदीर्घ. (वेयालिएत्ति) वैक्रय परमाधार्मिकनिष्पादित पर्वतस्तत्र हस्तस्पर्शिकया समारूहतोनारकाबहुकूरकर्माणोहन्यते पीडयंते सहस्रसंख्याना मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं प्रनूत कालं हन्यंतेइत्यर्थः ॥१६॥ (सबाहियाइति) डुष्कृत वियते येषाते डुष्कृतिन सबाधिता पीमिताअहनि रात्रौ च परितप्यमानाएकातेन कूटानि दुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन् एवंविधे महति नरके कूटेन गलयत्रपाशादिना तत्र विषमे हता सुनिश्चितं स्तनति ॥ १७ ॥

॥ टीका–(किंच। वेयालिए इत्यादि) नामशब्द सन्नावनाया। सन्नाव्यते एतन्नरकेषु यथांतरिक्षे महानितापे महादुःखैककार्येएकशिलाघटितोदीर्घ (वेयालिएति) वैक्रियः परमाधार्मिकनिष्पादित पर्वतस्तत्र तमोरूपत्वान्नारकाणामतोहस्तस्पर्शिकतया समारूहतोनारकाहन्यते पीडयंते बहूनि क्रूराणि जन्मांतरोपात्तानि कर्माणि येषां ते तथा सहस्रसंख्याना मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं सहस्रशब्दस्योपलक्षणार्थत्वा त्प्रनूत कालं हन्यंतइति यावत् ॥१६॥ तथा। (सबाहियाइत्यादि) समेकीनावेन बाधिताः

तथाचोक्तं । जहापुसुस्सकछइतहातुछस्सकछइइत्यादि सम वा धर्ममुत्प्राबल्येनाऽऽह उक्तवान् । प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥ ४ ॥

से सवदसी अभिभूयनाणी, णिरामगंधे धिइमं ठितप्पा ॥ अणु
त्तरे सव जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ स
भूइपन्ने अणिए अचारी, उहतरे धीरे अणंतचक्कू ॥ अणुत्तरे
तप्पति सूरिएवा, वइरोयणि देवतम पगासे ॥ ६ ॥

अर्थ–(सेके०) ते भगवंत (सवदसीके०) सर्वदर्शी एटले लोकालोकने देखनार वली (अभिभूतनाणी के०) बावीश परिसहने जीतवा थकी केवल ज्ञानी थया (णिरामगंधेके०) निरामगंध एटले मूलोत्तर गुण विशुद्ध संयम पालक तथा (धिइमके०) धैर्यवंत (ठितप्पाके०) स्थितात्मा एटले समस्त कर्मना क्षय थकी आत्म स्वरूपमांज जे स्थित थयाछे तथा (अणुत्तरेसवजगंसिविज्ज के०) अनुत्तर एटले प्रधान सर्व जगतमा निरुपम ज्ञाता माटे विद्वान् एटले भली बुधिवंतछे तथा (गथाअतीतेके०) ग्रंथ थकी अतीत एटले निग्रंथ बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहितछे (अभएके०) सप्त भय रहितछे तेना नाम कहेछे पेहेलुं इहलोकभय बीजुं परलोकभय त्रीजुं आदान भय चोथुं अकस्मात् भय पांचमुं वेदना भय छठुं अपकीर्त्तिभय सातमुं मरण भय तथा (अणाऊ के०) चारप्रकारना आयुकर्म करी रहितछे ॥ ५ ॥ (सके०) ते भगवंत (भूइपन्ने के०) भूति प्राज्ञ एटले अनंत ज्ञानी तथा (अणिएअचारी के०) अप्रतिबद्ध विहारी जाणवा (उहतरेके०) उंघ एटले संसाररूप समुद्रने तरनार (धीरेके०) धीर एटले निश्चल (अणंतचक्कु के०) अनंत ज्ञानरूप चक्षुना धरनार (अणुत्तरेतप्पतिसूरिएवा के०) जेम सूर्य सर्व थकी अधिक तपे तेम भगवंत ज्ञाने करी सर्व थकी उत्तम प्रधानछे (वइरोयणिदेवतमपगासे के०) तथा वैरोचनेंद्र एटले अग्नी जेम अंधकारने दूर करी अधिक प्रकाशकरेछे तेम श्रीमहावीर यथावस्थित पदार्थना प्रकाशक जाणवा ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–ससर्वदर्शी अभिभूय द्वाविंशतिपरीषहान् पराजित्य ज्ञानं च केवलाख्यं विद्यते यस्य सज्ञानी निर्गतआमोविशोधिकोटिरूपोगंधोयस्मात्सनिरामगंधः । मूलोत्तर गुणविशिष्टचारित्रइत्यर्थः । धृतिमान् स्थैर्यसंपन्नः स्थितात्मा निर्मलात्मा अनुत्तरउत्कृष्टः सर्वस्मिन्नजगति विद्वान् सर्वपदार्थवेत्ता ग्रंथाद्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहादतीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । अभयः सप्तभयरहितः । नविद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्यासावनायुः ॥५॥ भूतिशब्दोत्र वृद्धौ । भूतिप्रज्ञोवृद्धप्रज्ञो ऽनंतज्ञानइत्यर्थः । अनियतचारी उघं संसारं तरतीति उ

न्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकायद्विवा जन्मांतरापकारिणोनारकाश्चपरेपामंगानि सरोष सकोप समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा नजति गाढप्रहारैरमर्दयंति तेच नारकास्त्राण रहिता शस्त्रप्रहारैर्भिन्नदेहारुधिरमुद्वहतोऽधोमुखाधरणितले पततीति ॥ १९ ॥ किंच (अणासियाइत्यादि) महादेहप्रमाणामहांत शृगालानरकपालविकुर्विताश्चन शितावुचुक्षिता । नामशब्द सनावनाया । संनाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्भिताअति धृष्टारौद्ररूपानिर्नयास्तत्र तेषु नरकेषु संनवति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवनूतै सृगालादिनिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरर्माण शृखलादिनिर्बद्धाअयोमयनिगड निगडिताअदूरगा परस्परसमीपवर्तिनोनद्यते खडश खाद्यतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी जिडुग्गा, पविज्जल लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी जिडुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइ फुसति बाल, निरंतर तञ्च चिरडितीयं ॥ ण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताण, एगोसय पच्चणु होइ डुक्ख ॥ २२ ॥

अर्थ–(सयाजला नाम नदीजिडुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए जरपूर एवी महाविषम नदीरूप स्थानछे अंहीं नाम शब्द सनावनायेछे तेमां (पविज्जलोह विलीणतत्ता के०) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखु उस पाणीछे जे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उम्म लागे माटे विषमछे (जसीजिडुग्गंसि पवज्जमा णा के०) जे एवी विषम नदी तेने विषे ते नारकी प्रेरचा थका जाता थका हालता थका (एगाय ताणुक्कमण करति के०) एकाकी अशरण प्लवन करता परवश पड्या थका डुःख जोगवे ॥ २१ ॥ (एयाइ के०) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे नारकीना डुःख कह्यां तेने (बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते (फुसंतिके०) फरसे छे सहन करेछे (निरतर तञ्च चिरडितीय के०) जेनी निरतर घणा काल सुधी रेहेवानी स्थितिछे एवा नारकी त्यां (णहम्ममाणस्स उहोइत्ताणके०) हणाता थका तेने कोइपण त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी (सयके०) पोते (एगो के०) एकलो थकोज (पच्चणुहोइडुक्खं के०) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्यां डुःख जोगवे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–सदा जलं यस्या सा सदाजला नाम नदी अनिडुर्गा विषमा पविज्जला रुधिरादिपिच्छिला अग्नितप्तं सद्विलीन ड्वीनूत यल्लोह तद्वत्तथा ड्वीनूततप्तलोहजलेत्यर्थः । यस्या नद्यां प्रपद्यमानानारकाएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमण गमन कुर्वंति ॥ २१ ॥ एते पूर्वोक्ता स्पर्शाड्खविशेषा परमाधार्मिककृता स्वानाविकाश्च बालं नारकं स्पृशंति

अर्थ-(अणुत्तरधम्ममिणजिणाण के०) जे श्रीऋषनादिक प्रनावंवत तीर्थंकरो त तु सबधी जे निरुपम धर्म तेनो नायक एटले तेने (णेया के०) जाणे एवा (मुणी के०) चारित्रवान (कासव के०) काश्यपगोत्री श्रीमहावीर (आसुपन्ने के०) वता वली प्रज्ञानो जाण (इंदेवदेवाणमहाणुनावे के०) जेम इंद्र हजारो देवतानो नायक महाप्रनाववत देवो माहे प्रधान तेम श्री महावीर केवलज्ञानी (सहस्सणेतादिविण विसिठे के०) सहस्र पुरुषोमा देवताना नायक जेइंद्रतेनी पेरे विशिष्ट माहानुनाव जाणवा ॥ ७ ॥ (सेके०) तेनगवत (पन्नयाअक्खयसागरेवा के०) प्रज्ञाये एटलेबुद्धि ये करीने अक्षयछे वा शब्द विशेषणने अर्थछे कोनी पेरे तोके जेम समुद्र जे (महो दहीवावि के०) महोदधी एवो स्वयनुरमण समुद्र (अणंतपारे के०) निर्मल जेनु ज लछे इत्यादिक गुणे करी अनतअपारछे तेम श्रीवीरपण (अणाइलेया के०) अकलुप अकषाइ थका (निरकू के०) निक्षाये आजीविका करेछे यद्यपि नि शेष कर्मक्षय करी त्रैलोक्यने पूज्यछे तथापि निक्षाये आजीवेछे परतु अक्षीणमाहानसी प्रमुख लब्धीने प्रयुजता नथी एवा अनेक गुणयुक्त श्रीमहावीरदेवछे तथा (सक्केवदेवाहिवईजुईम के०) शक्रेंद्र देवताना स्वामी तेनी पेरे दीप्तिमान्छे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-अनुत्तर धर्मजिनानामृषनादिना सबंध्यय मुनि श्रीवीरोनेता प्रणेता काश्य पोगोत्रेण। आशुप्रज्ञ केवली। नेताइति ताच्छीलिकस्तृन । तद्योगे नलोकाव्ययेतिषष्ठीनि षेधात्कर्मणिद्वितीया । यथा इंद्रोदेवसहस्राणा मध्ये महानुनाव । ण वाक्याल कारे। दिवि स्वर्गे विशिष्टोरूपबलादिनि । एव स नगवान् सर्वेन्योविशिष्टोनेता ॥७॥ सनग वान प्रज्ञयाक्षयोऽक्षीणज्ञानइत्यर्थ । यथा महोदधि सागर स्वयनुरमणोऽवानंतपा रोविस्तीर्णगनीरजलोऽक्षोन्यश्चानाविलोऽकलुषजलस्तथा नगवानपि अकलुषोपि मुक्त क र्मबधात् यथा शक्रोदेवधिपतिर्द्युतिमान दीप्तिमान् ॥ ८ ॥

॥ टीका-किंच (अणुत्तरमित्यादि) । नाऽस्योत्तरोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमिममनुत्तर धर्म जिनानामृषनादितीर्थकृता सबधिनमय मुनि श्रीमान वर्धमानाख्य काश्यपगोत्रेणाशु प्रज्ञ केवल [illegible] ज्ञानोनेता प्रणेतेति । ताच्छीलिकस्तृन् तद्योगे नलोकाव्य [illegible] मित्यत्र कर्मणिद्वितीयैव । यथा चंद्रोदिवि स्वर्गे देवसह [illegible] । णमितिवाक्यालकारे । तथा नेता प्रणायकोवि [illegible] नगवानपि सर्वेन्योऽपि विशिष्ट प्रणायकोमहानु [illegible]) असौ नगवान् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा त [illegible] प्रतिहन्यते वा । तस्य हि बुद्धि वलके

अर्थ—(जहारिसंपुव्वमकासिकम्मके०) जे जीवे जेवाजावे पाछला जन्मातरे कर्म कीधाछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) ससारमा जमता थका चारगति नेविषेजीवने (आगच्छतिके०) उदय आवे (एगतदुक्खंजवमज्जणित्ताके०) परतु नरकमाहे तो एकात नि केवल दु खरूप जव उपार्जीने (वेदतिदुक्खीतमणतदुक्ख के०) ते नारकी जीव दु खी थका अनत दु ख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र दु ख साजलीने (धीरेके०) जे धैर्यवत पुरुषछे ते शु करे ते देखाडेछे (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरकना दु ख न जोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकाइ त्रस अने स्थावर जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगतदिठीके०) एकात दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो हतो तु शब्दथी मृषावादादिकनु वर्जन पण जाणी लेवु तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहा प्रस्तावथकी अशुज कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (बुज्झिज्जके०) जाणीने एवा लोकने (वस के०) वशमा (नगछे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवतिरिक्खेमणुयासुरेसु के०) ए जेम अशुज कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम बधिमली (चतुरत्तणत के०) चतुर्गतिक ससारने विषे अनत (तयणुविवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (ससव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जाणीने जेरीते श्रीजगवते कह्योछे तेरीते (कखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वाछे सुंवाछेतोके (काल के०) काल एटले ज्यासुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयके०) ध्रौव एटले सयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमा ज्रमण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पालवाने वाछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविजक्तिनामे पाचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

॥ दीपिका—यत्कर्म यादृग पूर्वजन्मातरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृगमेव सपराये ससारे अनुगच्छति। एकातेन दु खमेव जवोयस्मिन् नएकातदु खजवस्तमर्जयित्वा दु खिनस्तमनत दु खवेदयंति॥२३॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनहिंस्यात्कचन प्राणिन सर्वलोके एकांतदृष्टि र्निश्चलसम्यक्त्वोऽ परिग्रह ।तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेय । तथा लोक अशुजकर्म कारिणं तद्विपाकच जुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वश गच्छेत् ॥ २४ ॥ एवमशुज कर्मकारिणामसुमता तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसान तद

नुत्तरस्तथा गिरिषु मध्ये पर्वभिर्मेखलादिभिर्दंष्ट्रापर्वतैर्वा डुर्गोविषम· सामान्यजंतूना ड्डुरारोहोगिरिवर पर्वतप्रधान । तथाऽसौ मणिभिरौषधीभिश्च देदीप्यमानतया जौमइव नूदेशइव ज्वलितइति ॥ १२ ॥

मही३ मज्नंमि ठिते णगिंदे, पन्नाय ते सुरिय सुद्धलेसे ॥ एव सि रीए उस नूरिवन्ने, मणोरमे जावइ अच्चिमाली॥ १३ ॥ सुदस णस्सेव जसो गिरिस्स, पचुच्चई महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे समणे नायपुत्ते, जातीजसो दंसणनाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ–(महीऽमज्नंमिठिते के०) मही एटले पृथ्वीने वचमा आवेलो जे जंबूद्वीप तेना मध्यनागे एटले वचमा वर्त्तेठे (णगिंदे के० नगेंद्र एटले सर्व पर्वतोना इंद्र सरखो ए मेरु पर्वत जाणवो (ते के०) ते पर्वत लोकमा (सूरिय के०) सूर्यनी पेरे (सुद्धलेसे के०) विशुद्धनिर्मल कांतिवानठे एम (पन्नाय के०) प्रकर्षे करी जाणीये (एव के०) ए प्रकारे करी (सिरीएउस के०) लक्ष्मीये सहित ते मेरू रत्न (नूरिवन्ने के०) अनेक वर्णे करी सहितठे तथा (मणोरमे जावइ अच्चिमाली के०) मनने रमाडनार तथा जेनी ज्योति अर्चिमाली एटले सूर्य तेनी पेरे दशे दिशिने विषे प्रकाश पामेठे ॥१३॥ हवे ए मेरु पर्वतनी उपमाउ श्रीमहावीर नगवतनी साथे जोडेठे (सुदसणस्सेवज सोगिरिस्स के०) सुदर्शन नामा जे गिरि एटले पर्वत तेनोजे यश (पचुच्चई के०) क हियेठेए तेवो (महतोपव्वयस्सके०) महोटो मेरुपर्वत जाणवो (एतोवमेके०) एमेरुनी उ पमाये (समणेनायपुत्ते के०) श्रमण तपस्वी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर देव जाणवा (केवी रीते तोके (जातीजसो दसणनाणसीलेके०) जातिये करी, यशे करी, दर्शने करी, ज्ञाने करी अने शीले करी समस्त जेटला धर्म मार्गना प्रकाशकोठे तेमा श्रीमहावीर देव प्रधानठे

॥ दीपिका–महारत्नप्रनापृथिव्यामध्यदेशे जंबूद्वीपस्तन्मध्ये स्थितोनगेंद्र प्रकर्षे ण ज्ञायते सूर्यवत् शुद्धलेश्य सूर्यसमतेजा.। एव पूर्वोक्तप्रकारेण श्रिया समेरुर्भूरिवर्णो ऽनेकवर्णरत्नोपेतत्वात् मनोरम अर्चिमाली सूर्यइव द्योतयति दिश ॥ १३ ॥ एतद्यश कीर्तन सुदर्शनस्य गिरेर्मेरो प्रोच्यते महत पर्वतस्य एतडुपमएतत्तुल्य श्रमणोज्ञात पुत्र श्रीवीर सजात्या यशसा दर्शनज्ञानाभ्या शीलेन वा श्रेष्ठ । अत्रो आदित्वान्मत्व र्थीयाच्प्रत्ययेन योज्य- ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (महीइत्यादि)। मह्या रत्नप्रनापृथिव्या मध्यदेशे जंबूद्विपस्तस्याऽपि बहुमध्यदेशे सौमनस, विद्युत्प्रन, गधमादन माल्यवत, दंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोभित समनू

पुछिस्सु ण समणा माहणाय, अगारिणोया परतिछिआय ॥
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिक्कयाए॥१॥
कहंच णाणं कह दसणं से, सीलं कहं नायसुतस्स आसी॥ जा
णासि ण भिक्कु जहातहेणं, अहासुत बूहि जहाणिस तं ॥ २॥

के० ... (पुछिस्सुण के०) पूर्वोक्त नरकना दुःख सांभळीने संसारना भयथी बीकपाम्या धर्मवंत पुरुष ... पुरुषो श्रीसुधर्म स्वामिने पूछेछे ते कोण पूछेछे तोके (समणा के०) साधु ना दुःख न भोगके०) ब्राह्मण तथा (अगारिणोया के०) आगारीते गृहस्थ क्षत्रिया र जीवछे तेकोऽन्नि छिआयके०) अन्य तीर्थिकते शाक्यादिक तापस प्रमुख जाणवा ए यारूक तथा (अपर्कहेछे (सेकेऽणेगत के०) ते कयो एकांत (हियके०) हितनो कर कनु वर्जन पण जलिस के०) अनीदृशमतुलं एटले निरुपम शाश्वत (साहुसमिक्कयाए कर्मकारी जेवो त्मीक्षाये यथास्थित तत्व ज्ञाने करी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेवे निरतो (ध लोकने (वस वे (आहु के०) कह्योछे के जेणे करी जीव सुख पामे ॥ १ ॥ (कहंचणा रेसु के०) ए] ज्ञान वली (कहदसणसे के०) दर्शन चारित्ररूप केवु तथा (सीलक्कह गति एम बनियमरूप शील केवुछे ए वधुं (नायसुतस्सआसीके०) ज्ञातपुत्र एटले क्षत्रि के०) तदनुरू सिद्धार्थ राजाना पुत्र श्रीमहावीरने विषे केवु हतुं ते (भिक्कू के०) अ क्के०) मबुद्धि (जाणासिण के०) ए सर्व जेरीते तमे जाणोछो (जहातहेण के०) यथा णीने जेरीते सत्य निरुपण रूप (अहासुतं के०) जेम तमे सांभळ्युं छे (जहाणिसतं के०) (काल कोर्त एटले सांभळीने जेम हृदयने विषे धारण कर्युछे तेम अमने (बूहिके०) कहो. सयमने

मण कदीपिका—अथ षष्ठमारभ्यते। पूर्वाध्ययने नरकविभक्तिरुक्ता श्रीवीरेण। ततोत्र श्रीवीर लवाने गुणाउच्यते तस्येदमादिसूत्र (पुछिस्सुणमिति) जंबूस्वामी सुधर्माणमाह। यथा के ऽति नूतो धर्मेचक्रऽस्येतद्दद्धोमा पृष्टवत श्रमणा साधवादयस्तथा ब्राह्मणाब्रह्मचर्या — ष्ठानरताअगारिण क्षत्रियादयोयेच शाक्यादय परतीर्थिकास्ते सर्वेपि पृष्टवत। किंतदि त्याह। योसो ऽम धर्म एकांतहितमाह उक्तवान् अनीदृशमनन्यसदृशमतुल्यमित्यर्थ। साध्वी चासौ समीक्षा तत्वपरिछित्तिश्च साधुसमीक्षा सासमता तया उक्तवान् ॥१॥ तस्य श्रीवीरस्य ज्ञानं किंभूत च दर्शनं शीलंच यमनियमरूपं कीदृगासीत्। हेसुधर्मस्वामिन् यन्मयाएष्ट तद्याथातथ्येन त्वंजानासि। ण वाक्यालंकारे। यथाश्रुतं श्रुत्वा च यथानिशं तमवधारितं तथा त्व बूहि ऽति पृष्ट सुधर्मा वीरगुणानाह ॥ २ ॥

रहित एवु निर्दोष शुक्ल ध्यान सुवर्णनी पेरे उज्वलछे अथवा गंम शब्दे उदकनु फेण ते सरखु उज्वलछे तथा (सखिंडु के०) शंख अने चद्रमा तेनीपेरे (एगतवदातसुक्कं के०) एकात अवदात एटले अत्यत शुक्ल एवु शुक्ल ध्यानछे, तेने ध्यावे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–यथा निपधोगिरिवराणा गिरीणामायताना मध्ये दीर्घत्वेन श्रेष्ठस्तथा वलयायताना मध्ये रुचक पर्वत श्रेष्ठ । सहि रुचकद्वयातवर्ती मानसोत्तरगिरिरिव वृत्ता यतोऽसख्येययोजनानि परिक्षेपेण स जगवान् तडुपमोजगति ससारे जूतिप्रज्ञ प्रजूत ज्ञानोमुनीना मध्ये प्रज्ञ । एव तत्स्वरूपविदउदाहुरुक्तवत ॥१५॥ अणुत्तर उत्कृष्टधर्मेमुदी र्य कथयित्वा ऽनुत्तर प्रधान ध्यान ध्यायति सुष्ठु शुक्लवत् शुक्ल ध्यान अपगत गंडं दोपो यस्मात्तदपगंडं निर्दोप शुक्ल। अथवा अपगडमुदकफेन तत्तुल्यं शखेंडुवत् एकातावदातं शुक्लध्यानोत्तरजेद द्वय ध्यायति । तथाहि । योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोग निरुंधन् शु क्लध्यानस्य तृतीय जेद सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगं चतुर्थ शुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्याख्यं ध्यान ध्यायतीति ॥ १६ ॥

॥ टीका–पुनरपि दृष्टांत द्वारेणैव जगवतोव्यावर्णनमाह । (गिरिवरेत्यादि) यथा नि षधोगिरिवरोगिरीणामायताना मध्ये जबुद्वीपेऽन्येषु वा द्वीपेषु दैर्घ्येण श्रेष्ठ प्रधान तथा वलयाऽऽयताना मध्ये रुचक पर्वतोऽन्येन्योवलयाय तत्वेन । यथा प्रधान सहि रुचक द्वीपांतर्वर्ती मानुपोत्तरपर्वतइव वृत्तायतोऽसख्येययोजनानि परिक्षेपेणेति । तथा सज गवानपि तडुपम । यथा वाऽऽयतवृत्तताभ्यां श्रेष्ठश्च । एव जगवानपि जगति ससारे जूति प्रज्ञ प्रजूतज्ञातप्रज्ञयाश्रेष्ठइत्यर्थ । तथा परमुनीना मध्ये प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञ । एव तत्स्वरूपविदउदाहुरुदाहृतवतउक्तवतइत्यर्थ ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् (अणुत्तरमि त्यादि) नाऽस्योत्तर प्रधानोऽन्योधर्मोविद्यते इत्यनुत्तर । तमेवजूत धर्म उत् प्राबल्येन ईरयित्वा कथयित्वा प्रकाश्याऽनुत्तर प्रधान ध्यानवर ध्यानश्रेष्ठ ध्यायति ॥ तथाहि । उ त्पन्नज्ञानोजगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्म काययोग निरुधन् शुक्लध्यानस्य तृतीय जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्य । तथा निरुद्धयोग चतुर्थशुक्लध्यानजेद व्युपरतक्रियमनिवृत्ता ख्य ध्यायति । एतदेव दर्शयति । सुष्ठु शुक्लवच्छुक्ल ध्यान । तथा अपगत गंडमपद्रव्य यस्य तदपगतगम निर्दोषार्जुनसुवर्णवत् शुक्लं। यदिवा गडमुदकफेन तत्तुल्यतिति जाव । तथा शंखेंडुवदेकातावदात शुभ्र शुक्ल शुक्लध्यानोत्तर जेद द्वय ध्यायतीति ॥ १६ ॥

अणुत्तरग्गं परम महेसी, असेसकम्म स विसोहइत्ता॥सिद्धि ग
ते साइमणतपत्ते, नाणेण सीलेण य दसणेण॥१७॥रुक्खेसु णाते

इति नएयते । यदिवा द्रव्यवीरोव्यतिरिक्तएकन्नविकादि । क्षेत्रवीरोयत्र तिष्ठत्यसौ व्या वर्ण्यते वा कालोऽप्येवमेव । नावत्रीरोनोआगमतोवीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुनवन् स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति ॥ स्तवनिक्षेपार्थमाह ॥ थुइणिरकेवोचत्तहा, अंगतुअनूसणेहि दवसुती ॥ नावेसतताणगुणा, एकित्तणाजेजहिंजणिया ॥ १ ॥ (थुइणिरकेवोइत्यादि) स्तुते स्तवस्य नामादिश्चतुर्धा निक्षेप । तत्र नामस्थापने पूर्ववत् । द्रव्यस्तवस्तु ज्ञश रीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तोय कटककेयूरस्रक्चदनादिनि सचित्ताचित्तद्रव्ये क्रियतइति । नावतस्तु वस्तुत सनूताना विद्यमानानां गुणाना ये यत्र नवति तत्कीर्तनमिति ॥ साप्रतं आद्यसूत्रसस्पर्शीद्वारेण सकलाध्ययनसंबधप्रतिपादिका गाथा निर्युक्तिकृदाह । पुछिस्सु जनुणामो,अज्ज सुहम्मा ततकहेसीय । एवमहाप्पवीरो, जयमाहाहु तहा जएज्जा हि ॥ २ ॥ जबूस्वामी आर्यसुधर्मस्वामिन श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् पृष्टवान् अतोऽसावपि जगान् सुधर्मस्वाम्येवगुणविशिष्टोमहावीरइति कथितवान । एवं चाऽसौ न गवान् ससारस्य जयमजिनव चाह । ततोयूयमपि यथा नगवान ससार जितवान तथै य यत्न विधत्त । साप्रत निक्षेपानतर सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेद । (पुछिस्सुणमित्यादि) । अस्य चाऽनंतरसूत्रेण सहाय सबध ।तद्यथा । तीर्थकरो पदिष्टेन मार्गेण ध्रुवमाचरन् मृत्युमुपेक्षेतेत्युक्तं । तत्र किंनूतोऽसौ तीर्थकृत् येनोप दिष्टोमार्गइत्येत् पृष्टवत श्रमणायतयइत्यादि । परपरसूत्रसंबधस्तु बुध्येत ॥ यदुक्तं । प्रागित्येतच्च यदुत्तरत्र प्रश्नवचन वक्ष्यते तच्च बुध्यतेत्यनेन संबधेनाऽयातस्याऽस्य सूत्रस्य सहितादिक्रमेण व्याख्या प्रतन्यते । साचाऽयमनतरोक्ता वहुविधा नरकविनक्ति श्रुत्वा ससाराडुद्विग्नमनस केनेय प्रतिपादितेत्येतत् सुधर्मस्वामिनमप्राक्षु पृष्टवत । णमितिवाक्यालंकारे । यदिवा जबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमेवमाह । यथा केनैव नूतोधर्म ससारोत्तरणे समर्थ प्रतिपादितइत्येतद्दहवोमा पृष्टवत । तद्यथा । श्रमणानिग्र थादयोब्राह्मणाब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरतास्तथाऽऽगारिण क्षत्रियादयोयेच शाक्यादय पर तीर्थिकास्ते सर्वेऽपि पृष्टवत । कितदिति दर्शयति । सकोयोऽसावेन धर्म डुर्गतिप्रसृतज तुधारकमेकातहितमाहोक्तवान् अनीदृशमतुलमित्यर्थ । तथा साध्वीचाऽसौ समीक्षा च साधुसमीक्षा यथावस्थिततत्त्वपरिछित्तिस्तया यदिवा साधुसमीक्षया समतयोक्तवानिति ॥ ॥ १ ॥ तथा तस्यैव ज्ञानादिगुणावगतये प्रश्नमाह । (कहचणाणमित्यादि) कथ केन प्रकारेण नगवान् ज्ञानमवाप्तवान् किंनूतं वा तस्य नगवतोज्ञान विशेषावबोधक । किं नूतं च तस्य दर्शन सामान्यार्थपरिछेदक शीलं च यमनियमरूप कीदृक् ज्ञाता क्षत्रियास्ते षां पुत्रोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तस्याऽऽसीदनूदिति यदेतन्मया पृष्टं तत् निक्षोसुध र्मस्वामिन् याथातथ्येन त्वं जानीपे सम्यगवगछसि । (णमितिवाक्यालंकारे) तदेतत्सर्वं

क्रीडां वेदयत्यनुनवति । वनेषु च मध्ये यथा नंदन देवाना क्रीडास्थान प्रधान । एव नगवानपि ज्ञानेन केवलाख्येन समस्तपदार्थाविर्नावकेन शीलेन च चारित्रेण यथा ख्यातेन श्रेष्ठ प्रधानोनूतिप्रज्ञ प्रवृद्धज्ञानोन्नगवानिति ॥ १८ ॥

थणियंव सद्दाण अणुत्तरे उ, चदोव ताराण महाणुनावे ॥ गधे सु वा चदणमाहु सेठं, एव मुणीण अपडिन्नमाहु ॥ १९॥ जहा सयंनू उदहीण सेठे, नागेसु वा धरणिंदमाहुसेठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयते ॥ २० ॥

अर्थ–जेम (सद्दाण के०) शब्दमा (थणियंव के०) स्तनित एटले मेघनी गर्जनानो शब्द (अणुत्तरेउके०) प्रधान एटले रुडो कह्योछे तथा (चदोवताराणमहाणुनावे के०) जेम ग्रह नक्षत्र अने ताराने विपे चंद्रमा महानुनाव कह्योछे तथा (गधेसुवाचदणमाहुसेठके०) जेमसमस्त गंधमा गोशीर्प बावना चंदन श्रेष्ठ कह्युछे (एव के०) एम (मुणीण के०) समस्त साधुमां (अपडिन्नमाहुके०) अप्रतिज्ञ एटले आलोक परलोकनी आशसा करवानी जेने प्रतिज्ञा नथी अर्थात् इहलोक परलोकनी आशसा रहित एवा श्रीमहावीरने मोहोटा श्रेष्ठ कह्याछे ॥ १९ ॥ (जहासयंनूउदहीणसेठे के०) जेम समस्त समुद्रमां स्वयंनूरमण समुद्र श्रेष्ठ कह्योछे (नागेसुवाधरणिंदमाहुसेठे के०) जेम नागकुमार देवोमा धरणेंद्रनामा इंद्र श्रेष्ठ कह्योछे (खोउदएवारसवेजयतेके०) जेम इक्षुरसोदक समस्त रसमां प्रधान वेजयत एटले वखाण्योछे (तवोवहाणेमुणिवेजयतेके०) तेम तप उपधाने करी तपो विशेपे करी समस्त मुनिमा श्रीमहावीर ने प्रधानवखाण्याछे॥२०॥

॥ ... था शब्दाना मध्ये स्तनित मेघगर्जितमनुत्तर प्रधानं । तुर्विशेषणे । यथा चंद्रोमहानुनाव श्रेष्ठ । गधेपु मध्ये यथा चदन श्रेष्ठ तज्ज्ञा आहु । त नगवतं श्रेष्ठमाहु । किंनूतं । नास्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकाशंसिनी वि ... ॥ स्वयंनुवस्ते यत्रागत्य रमतऽति स्वयनूरमण सयथा उद ... ४ । नागेपु नवनपतिविशेपेपु धरणेंद्र श्रेष्ठमाहु । (खोउदए ... सइक्षुरसोदक समुद्रोयथा रसमाश्रित्य वेजयत प्रधान । ... मुनिर्नगवान् वैजयत प्रधान ॥ २० ॥

...) यथा शब्दाना मध्ये स्तनितं मेघगर्जितं तदनुत्त ... वा । तारकाणा च नक्षत्राणां मध्ये यथा

ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसा स्थावराश्च ये प्राणिनस्तान् नित्यानित्यान्या समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोभगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममुदाहृ उक्तवान् समतया । यदागम । जहापुरुस्सकत्थई तहातुछस्सकत्थइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका–स एव पृष्ट सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान कथयितुमाह । (खेयन्नएसेऽत्यादि) स भगवान् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेत खेद ससारान्तर्वर्तिना प्राणिना कर्मविपाकज दुःखं जानातीति खेदज्ञोदुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदिवा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञऽति । अथवा क्षेत्रमाकाश तज्जानातीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा भावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुनाति छिनत्ति कुशल प्राणिना कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्र प्रज्ञा यस्याऽसावाशुप्रज्ञ' । सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थइव विचिन्त्य जानातीति भाव । महर्षिरिति क्वचित्पाठ' । महाश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसहनाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनतपदार्थपरिच्छेदक वा ज्ञान विशेषग्राहक यस्यासावनतज्ञानी । एव सामान्यार्थपरिच्छेदकत्वेनाऽनतदर्शी । तदेव भूतस्य भगवतोयशोनृसुरासुरातिशाय्यतुल विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षु पथे लोचनमार्गे भवस्थकेवव्यवस्थाया स्थितस्य लोकाना सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्भावनेन चक्षुर्भूतस्य वा जानीह्येव गन्ह । धर्म ससारोद्धरणस्वभाव तत्प्रणीत वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव भगवतस्तथोपसर्गितस्याऽपि निष्प्रकपा चारित्राचलनस्वभावा धृतिं संयमे रति तत्प्रणीता वा प्रेक्षस्व सम्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यद्विवा तैरेव श्रमणादिभि सुधर्मस्वाम्यभिहितो यथा त्व तस्य भगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्म धृति च जानीषे। ततोऽस्माकं (पेहित्ति) कथयेति ॥ ३ ॥ साप्रत सुधर्मस्वामी तद्गुणान् कथयितुमाह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यतीति त्रसास्तेजोवायुरुपाविकलेंद्रियपचेंद्रियभेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावरा पृथिव्यंबुवनस्पतिभेदात् त्रिविधा । एते श्वासादय प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंद्रियाणामपि जीवत्वमावेदित भवति । सभगवास्तान् प्राणिन प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः [illegible] नित्यानित्यान्याद्रव्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् [illegible] प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्युत्तरेण संबंध । तद्यथा । सप्राणिना पदार्थाविर्भावने [illegible] । यद्विवा ससारे पतितानां सदुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् [illegible] सर्वभूत. संसारो[illegible] समर्थं श्रुतचारित्राख्य सम्यक् ऽत गत [illegible] हितत्वेन सम[illegible]

मृगाणा श्वापदाना मध्ये सिंह प्रधान । जरतक्षेत्रापेक्षया यथोदकानां मध्ये गंगोदकं प्रधानं यथा च पक्षिणा मध्ये गरुडोऽपरनामा वेणुदेव प्रधानस्तथानिर्वाणपथदेश काना ज्ञातपुत्र श्रीवीर प्रधानोयथास्थितमोक्षार्थवादित्वात् ॥ २१ ॥ योधानां मध्ये यथा विश्वा सपूर्णा सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्री ज्ञात पुष्पेषु यथाऽरविंदं प्रधानमाहु. क्षत्रियाणा मध्ये यथा दांताउपशांतावाक्येनवा शत्रवोयस्मात्सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती प्र धानस्तथा ऋषीणा मध्ये श्रीवर्धमान श्रेष्ठ ॥ २२ ॥

॥ टीका-(हत्थीसुइत्यादि) हस्तिषु करिवरेषु मध्ये यथा ऐरावतं शक्रवाहनं ज्ञातं प्रसिद्ध दृष्टातनूतं वा प्रधानमाहुस्तज्ज्ञा । मृगाणां च श्वापदाना मध्ये यथा सिंह केसरी प्रधानस्तथा जरतक्षेत्रापेक्षया सलिलाना मध्ये यथा गंगासलिलं प्रधानजावमनुजव ति । पक्षिषु मध्ये यथा गरुत्मान वेणुदेवाऽपरनामा प्राधान्येन व्यवस्थित । एव निर्वा ण सिद्धिक्षेत्राख्य कर्मच्युतिलक्षणवा स्वरूप तत्तदुपायप्राप्तिहेतुतोवा वदितु शील येषां ते तथा तेषा मध्ये ज्ञाता क्षत्रियास्तेषा पुत्रोऽपत्य ज्ञातपुत्र श्रीमन्महावीरवर्धमान स्वामी सप्रधानइति यथावस्थितनिर्वाणार्थवादित्वादित्यर्थ ॥ २१ ॥ अपिच (जोहे सुइत्यादि) योधेषु मध्ये ज्ञातोविदितोदृष्टांतजूतोवा विश्वा हस्त्यश्वरथपदातिचतुर गबलसमेता सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्रवर्ती यथाऽसौप्रधान पुष्पेषु च मध्ये यथाऽ रविंद प्रधानमाहु । तथा क्षतात् त्रायतइति क्षत्रियास्तेषा मध्ये दांताउपशांतायस्य वाक्येनैव शत्रव सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती यथासौ श्रेष्ठ. । तदेव बहून् दृष्टांतान् प्रशस्तान् प्रदर्श्याऽधुना जगवतं दार्ष्टांतिक स्वनामग्राहमाह । तथा ऋषीणा मध्ये श्रीमान् वर्धमानस्वामी श्रेष्ठइति ॥ २२ ॥

दाणाण सेठ्ठ अजयप्पयाण, सच्चेसुवा अणवज्ज वयंति ॥ तवेसु वा उत्तमबंजचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण से ठा लवसत्तमावा, सजा सुहम्माव सजाण सेठा ॥ निवाणसेठा जह सवधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थी नाणी ॥ २४ ॥

अर्थ-(दाणाणसेठ्ठअजयप्पयाण) जेम समस्त दानने विषे अजयदान श्रेष्ठ कह्यु (सच्चेसुवाअणवज्जवयंति के०) जेम सत्य वचनमा निरवद्य एटले जे वचनना उच्चारे करी परने पीडा उत्पन्न नथाय ते वचन श्रेष्ठ वखाण्युछे (तवेसुवाउत्तमबंजचेर के०) जेम सर्व तपमा नवविध ब्रह्मगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य श्रेष्ठकह्योछे (लोगुत्तमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम लोकमा उत्तम श्रमण तपस्वी श्रीमहावीर देव श्रेष्ठ वखाण्याछे ॥ २३ ॥

घतर। धिया राजतेधीर । अनंततया ऽनतत्वाच्चक्षुर्ज्ञानं यस्य स तथा। यथा सूर्योऽनुत्तर सर्वाधिक तपति यथा वा वैरोचनोऽग्नि सएव प्रज्वलितत्वादिइ सयथा तमोपनीय प्रकाशयति एवमसावपि जगवान् ॥ ६ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत्। (सेसव्वदसीत्यादि) सजगवान् सर्वं जगत् चराचर सामान्येन दृष्टुं शीलमस्य ससर्वदर्शी। तथाऽनिनूय पराजित्य मत्यादीनि चत्वार्यऽपि ज्ञानानि यद्वर्तते ज्ञानं केवलाख्यं तेन ज्ञानेन ज्ञानी। अनेन चाऽपरतीर्थाधिपाधिकत्वमावेदितं जवति। ज्ञानक्रियाज्यां मोक्षइति कृत्वा तस्य जगवतो ज्ञानं प्रदर्श्य क्रिया दर्शयितुमाह। निर्गतोऽपगतश्रामोऽविशोधिकोटयाख्यस्तथा गंधोविशोधिकोटिरूपोयस्मात् सजवति निरामगंध। मूलोत्तरगुणजेदनिन्ना चारित्रक्रिया कृतवानित्यर्थ। तथाऽसह्यपरीषहोपसर्गान्निडुतोऽपि निष्प्रकंपतया चारित्रधृतिमान् तथा स्थितोव्यवस्थितोऽशेषकर्मविगमात्स्वरूपे आत्मा यस्य स जवति स्थितात्मा। एतच्च ज्ञानक्रिययो फलद्वारेण विशेषणं। तथा नास्योत्तर प्रधान सर्वस्मिन्नऽपि जगति विद्यते सतथा विद्वानिति सकलपदार्थाना करतलामलकन्यायेन वेत्ता। तथा बाह्यग्रंथात् सचित्तादिजेदादांतराच्च कर्मरूपाद्दतीतोऽतिक्रांतोग्रंथातीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थ। तथा न विद्यते सप्तप्रकारमपि जय यस्याऽसावनय समस्तजयरहितइत्यर्थ। तथा न विद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्य सजवत्यनायुर्दग्धकर्मबीजत्वेन पुनरुत्पत्तेरजावादिति ॥ ५ ॥ अपिच (सजूइपसेइत्यादि) । जूतिशब्दोवृद्धौ मंगले रक्षाया च वर्तते। तत्र जूतिप्रज्ञ प्रवृद्धप्रज्ञ। अनतज्ञानवानित्यर्थ। तथा जूतिप्रज्ञोजगद्रक्षाजूतिप्रज्ञ। एव सर्वमगलजूतिप्रज्ञइति। तथा अनियतमप्रतिबद्धं परिग्रहोयोगाच्चरितु शीलमस्याऽसावनियतचारी। तथौघ ससारसमुद्र तरितु शीलमस्य स तथा धीर्बुद्धिस्तया राजतऽति धीर परीषहोपसर्गाऽक्षोन्योवा धीर। तथा अनंतं ज्ञेयानततया नित्यतया वा चक्षुरिव चक्षु' केवलं ज्ञान यस्याऽनंतस्यवा लोकस्य प्रदार्थप्रकाशकतया वा चक्षुर्जूतोय सजवत्यनतचक्षु। तथा यथा सूर्योऽनुत्तर सर्वाधिक तपति न तस्मादधिकस्तापेन कश्चिदस्ति। एवमसावपि जगवान् ज्ञानेन सर्वोत्तमइति। तथा वैरोचनोऽग्नि सएव प्रज्वलितत्वात् इड्डोयथाऽसौतमोऽपनीय प्रकाशयति एवमसावपि जगवानज्ञानतमोऽपनीय यथावस्थितपदार्थप्रकाशन करोति ॥ ६ ॥

अणुत्तर धम्ममिण जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने॥ इं
देव देवाण महाणुजावे सहस्सणेता दिवि णं विसिठे ॥७॥ से प
न्नया अरकय सागरेवा, महोदहीवावि अणतपारे ॥ अणाइ
लेया अकसाइ मुक्के (पाठांतरे जिक्कु) सक्केव देवाहिवई जुईमं ॥८॥

॥ टीका–तथा (दाणाणमित्यादि)। तथा स्वपरानुग्रहार्थमर्थिने दीयतऽति दान नमनेकधा। तेषा मध्ये जीवाना जीवितार्थिना त्राणकारित्वादजयदान श्रेष्ठ । तडुक्तं। दीयते म्रियमाणस्य, कोटि जीवितमेव वा। धनकोटि नगृएहीयात्, सर्वोजीवितुमिच्छति गोपालागनादीना दृष्टांत द्वारेणार्थोवु द्धौसुखेनारोहतीति । अतोऽजयप्रदानप्राधान्यख्या पनार्थे कथानकमिद । वसतपुरे नगरे अरिदमनोनाम राजा सच कदाचिच्चतुर्वधूसमेतो वातायनस्थ क्रीडायमानस्तिष्ठति । तेन कदाचिच्चौरोरक्तकरवीरकृतमुंमुमालोरक्तपरिध । नोरक्तचदनोपलिप्तश्च प्रहतवध्यमिडिमोराजमार्गेण नीयमान सपत्नीकेन दृष्टोदृष्ट्वा च तानि पृष्ट किमनेनाकारीति । तासामेकेन राजपुरुषेणाऽऽवेदित यथा परद्रव्यापहारेण रा जविरुद्धमिति । ततएकया राजा विज्ञप्तोयथा योजवता मम प्राग्वर प्रतिपन्न सोऽधुना दीयता यथाऽहमस्योपकरोमि। किंचित् राज्ञापि प्रतिपन्न ततस्तया स्नानादिपुर सरमलंका रेणाऽलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन पचविधान् शब्दादीन् विषयानेकमह् प्रापित पुनर्द्विती ययाऽपितथैव द्वितीयमहोदीनारशतसहस्रव्ययेन लालित । ततस्तृतीयया तृतीयमहोदी नारकोटिव्ययेनसत्कारित । चतुर्थ्यातु राजानुमत्या मरणाद्रक्षितो ऽजयप्रदानेन । ततोऽ सावऽन्यानिर्हसितानाऽस्य त्वया किंचिद्दत्तमिति। तदेव तासा परस्परवहूपकारविषये विवादे राज्ञाऽसावेव चौर समाहूय पृष्टोयथाकेन तव बहूपकृतमिति तेनाऽप्यजाणि । यथा न मया मरणमहाजयजीतेन किंचित् स्नानादिक सुख विज्ञायीति । अजयप्रदानाकर्णनेन पु नर्जन्मानमिवात्मानमवैमीति । अत सर्वदानानामजयप्रदानं श्रेष्ठमिति स्थित । तथा स त्येषु च वाक्येषु च यदनवद्यमपापं परपीडानुत्पादकं तत् श्रेष्ठ वदति। नपुन परपीडोत्पाद क मत्य सद्भ्योहितं सत्यमितिकृत्वा। तथाचोक्तं। लोकेऽपि श्रूयते वादो, यथा सत्येन कौशि क ॥ पतितोवधयुक्तेन, नरके तीव्रवेदने । अन्यच्च । तहेवकाणकाणत्ति पमगपमगत्तिवा। वाहियवाहिरोगित्ति, तेणचोरोत्तिनोवदे ॥ तपस्सु मध्ये यथैवोत्तम नवविधब्रह्मगुप्त्युपेतं ब्रह्मचर्य प्रधान जवति । तथा सर्वलोकोत्तमरूपसपदा सर्वातिशायिन्या क्षायकज्ञानदर्श नाभ्यां शीलेन ज्ञातपुत्रोजगवान् श्रमण प्रधानइति ॥ २३ ॥ किंच (ठिईणमित्यादि) स्थितिमतां मध्ये यथा लवसत्तमा पंचानुत्तरविमानवासिनोदेवा सर्वोत्कृष्टस्थितिवर्ति न ... सप्तलवाआयुष्कमजविष्यत्तत सिद्धिगमनमजविष्यदिति । ... । सजाना च पर्षदाच मध्ये यथासौधर्माधिपपर्षच्छ्रेष्ठा बहु ... यथा सर्वेऽपि धर्मानिर्वाणफलमेव स्वदर्शन ब्रुवते । यत ... सर्वज्ञात् सकाशात् पर प्रधान अन्यद्विज्ञान नास्ति ... जाव ॥ २४ ॥

ज्ञानाख्या साच सायपर्यवसाना कालतोऽव्यक्षेत्रनावैरप्यनता । सर्वसाम्येन दृष्टातानावादे कदेशेन त्वाह् । यथा सागरइति । अस्य वा विशिष्टत्वात् विशेषणमाह् । महोदधिरिव स्वयंनूरमणइवाऽनतपार । यथाऽसौ विस्तीर्णोगंनीरजलोऽक्षोन्यश्च । एव तस्याऽपि नगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञा स्वयनूरमणानतगुणोगंनीरो ऽक्षोन्यश्च । यथा चासौ सागरोऽनाविलोऽकलुषजल एव नगवानपि तथाविधकर्मलेशानावादकलुषज्ञानइति । तथा कषायाविधंते यस्याऽसौकषायी नकषायी अकषायी । तथा ज्ञानावरणीयादिकर्मबंधनाद्विमुक्तोमुक्त । निकुरिति क्वचित्पाठ । तस्याऽयमर्थ । सत्यपि नि शेषातरायक्षये सर्वलोकपूज्यत्वेच तथापि निक्षामात्रजीवित्वात् निकुरेवाऽसौ नाऽक्षीणमहानसादिलब्धिमुपजीवतीति । तथा शक्रइव देवाऽधिपतिर्युतिमान् दिप्तिमानिति ॥ ८ ॥

से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदसणेवा णगसवसेठे ॥ सुरालएवा सि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥ ए ॥ सयं सहस्साणउ जोयणाए, तिकम्गे पंमगवेजयंते ॥ से जोयणेणवणवतिसहस्से उद्धुरिसतो हेठसहस्समेग ॥ १० ॥

अर्थ-(सेवीरिएणपडिपुन्नवीरिए के०) ते नगवत श्रीमहावीर वीर्यांतराय कर्मना क्षय थकी बलेकरी प्रतिपूर्ण वीर्यवानछे एटले संघयणादिके बलवान छे (सुदंसणेवा णगसव्वसेठे के०) सुदर्शन शब्दे मेरुपर्वत ते जेम सर्व पर्वतमां श्रेष्ठछे तेम नगवत पण ऐश्वर्यगुणे करी सर्वमा श्रेष्ठछे वली (सुरालएवासि के०) देवलोकना निवासी देवताने (सेके०) तेमेरुपर्वत (मुदाकर के०) हर्षनो करनारछे (अणेगगुणोववेए के०) प्रशस्त एवा अनेक वर्णादिक गुणे करी (विरायएके०) विराजमान एटले शोनेछे तेम श्रीनगवानप ण जाणवा ॥ए॥ तेमेरु पर्वत (सयसहस्साणउजोयणाएके०) सतसहस्र योजन प्रमाण सर्वांगे उच पणे जाणवो तेमज (सेके०) ते पर्वतना (तिकंमे के०) त्रण कामछे एक नूमिमय बीजो सुवर्णमय त्रीजो वैमूर्यमयछे अने (पमगवेजयंते के०) पमगवनछे ते वेजयति एटले ध्वजा समान शोनेछे (सेजोयणेणवणवतिसहस्से के०) ते मेरु पर्वत णवणवति एटले नवाणु हजार योजन (उद्धुस्सितो के०) उचो जाणवो अने (हेठसहस्समेग के०) नीचे नूमि मध्ये एक हजार योजननो कंदछे एम सर्व मली एक लाख योजन प्रमाणछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सन्नगवान् वीर्येण बलेन प्रतिपूर्णवीर्य सुदर्शनोमेरुर्जंबूद्वीपमध्यगनो य था नगाना पर्वताना सर्वेषा श्रेष्ठस्तथा नगवान् गुणै श्रेष्ठः । यथाच सुरालयः स्वर्गे

प्रकार कर्मेतिशेप । तथा विगता प्रलीना सबाह्याभ्यंतरेपु वस्तुपु गृद्धिर्गार्ध्यंम जिलापोय स्य सविगतगृद्धि। तथा सन्निधान सन्निधि सच द्रव्यसन्निधि । धनधान्यद्विपदचतुष्पदरू पोजावसन्निधिस्तु मायाक्रोधादयोवा सामान्येन कपायास्तमुनयरूपमपि सन्निधिं न करोति जगवांस्तथाऽऽशुप्रज्ञ सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थवन्मनसा पर्यालोच्य पदार्थप रिच्छित्ति विधत्ते । सएवजूतस्तरित्वा समुद्रमिव पार महाजवौघ चतुर्गतिक संसारसागरं बहुव्यसनाकुल सर्वोत्तम निर्वाणमासादितवान् । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । अजयं प्राणिनां प्राणरक्षारूप स्वत परतश्च सडपदेशदानात् करोतीत्यजयंकर । तथाऽष्टप्रका रं कर्म विशेपेणेरयति प्रेरयतीति वीर । तथाऽनतमपर्यवसान नित्य ज्ञेयानतत्वादनतं चक्षुरिव चक्षु केवलज्ञान यस्य सतथेति ॥२५॥ किंचाऽन्यत् (कोह्चेत्यादि) निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोजवतीति न्यायात ससारस्थितेश्च क्रोधादय कारणमतएतानध्या त्मदोपांश्चतुरोऽपि क्रोधादीन् कपायान्वात्वा परित्यज्य असौ जगवानर्हत्तीर्थकृत् जात तथामहर्पिश्चैव परमार्थतोमहर्पित्व जवति यद्यध्यात्मदोपान जवति नान्यथेति । तथा न स्वत पापं सावद्यमनुष्ठान करोति नाप्यन्यै कारयतीति ॥ २६ ॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवाय, अन्नाणियाण पडियच्च ठाणं॥ से सववायं इति वेयइत्ता, उवठिए संजमदीहराय ॥ २७॥ से वारि या इत्थि सराइनत्त, उवहाणव डुक्खखयठयाए॥ लोगं विदित्ता आर पारंच, सव पनू वारिय सववार ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्म अरहत नासियं,समाहित अठपदोपसुद्ध ॥ तं सद्दहाणाय ज णा अणाऊ, इंदावदेवाहिव आगमिस्संतित्तिबेमि ॥ २९॥ इति श्री वीरस्तुतीनाम पष्ठमध्ययन सम्मत्त॥

अर्थ–(किरियाकिरियंके०) क्रियावादीना एकशोने एंशी जेद, अक्रियावादीना चोराशी जेद (वेणइयके०). [illegible] जेद, अने (अन्नाणियके०) अज्ञान वादीना सड सठ जेद् ए स [illegible] ते पाखंमी दर्शनीउंना (अणुवायके०) अनुवाद एट [illegible] (स्थानके०) दर्शन स्वरूप तेने (पडियच्च के०) इ [illegible] ते श्रीमहावीर देव (सववायंके०) सर्ववादने ([illegible] करीने (संजमसदीहरायं के०) चारित्ररूप ध [illegible] उवहिए के०) उपस्थित एटले सावधान थय [illegible] के०) स्त्री सहित रात्री जोजन तथा उप [illegible] ०) निवाखाळे वळी (डु रकखयठ

त्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंमीजटी वापि सिद्ध्यते नात्र संशय ॥१॥ तथा विनयादेव मो क्षइत्येव गोशालकमतानुसारिणोविनयेन चरंतीति वैनायिकाव्यवस्थिता । तथाऽज्ञा नमेवैहिकामुष्मिकायाऽलमित्येवमज्ञानिकाव्यवस्थिताऽस्यैव रूप तेषामन्युपगम परि ज्ञाय स्वत सम्यगवगम्य सम्यगवबोधेन तथा सएव वीरवर्धमानस्वामी सर्वमन्यमपि बौद्धादिक यं कचन वादमपरान् सत्वान् यथावस्थिततत्वोपदेशेन वेदयित्वा परिज्ञाप्यो पस्थित सम्यगुत्थानेन सयमे व्यवस्थितोनतु यथा अन्ये । तडुक्तं । यथा परेषा कथका विदग्धा, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेता ॥ शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारै,र्वक्तृत्वदोषा स्त्वयि ते न सति १ ॥ दीर्घरात्रमिति यावज्जीव सयमोत्थानेनोत्थितइति ॥ २१ ॥ अपि च (सेवारिएइत्यादि) सनगवान् वारयित्वा प्रतिषिध्य । किंतदित्याह । स्त्रियमिति स्त्री परिनोगमैथुनमित्यर्थ । सहरात्रिनक्तं वर्ततऽति सरात्रिनक्तं । उपलक्षणार्थत्वादस्याऽन्यद पि प्राणातिपातनिषेधादिक ड्रष्टव्य । तथा उपधानं तपस्तद्विद्यते यस्याऽसौ उपधानवान् तपोनिष्टप्तदेह । किमर्थमिति दर्शयति । डु खयतीति डु खमष्टप्रकार कर्म तस्य क्षयोऽपग मस्तदर्थ । किंच लोक विदित्वा आरमिहलोकाख्य पार परलोकाख्यं । यद्विवा आर मनुष्य लोक पारमिति नरकादिक स्वरूपतस्तत्प्राप्तिहेतु ततश्च विदित्वा सर्वमेतत् प्रजुर्भगवान् सर्ववार बहुशोनिवारितवान् । एतडुक्त नवति। प्राणातिपातनिषेधादिक स्वतोऽनुष्ठाय परांश्च स्थापितवान्। नहि स्वतोऽस्थित पराश्च स्थापयितुमलमित्यर्थ । तडुक्त। ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं, स्ववचनविरुद्ध व्यवहरन्, परान्नाल कश्चिद्दमयितुमदात स्वयमिति ॥ नवान्नि श्चित्यैव मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मान तावद्दमयितुमदातं व्यवसितइति ॥ तथा तिव्वयरोववनाणी, सुरमहिर्ड सिज्ञियव धूयामि ॥ अणिगूहियवलविरर्ड सव्वहामेसु उज्ज मइ इत्यादि ॥ २८ ॥ साप्रतं सुधर्मस्वामी तीर्थकरगुणानाख्याय स्वशिष्यानाह (सोच्चा येत्यादि) श्रुत्वा च डुर्गतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यमर्हद्भिर्नाषित सम्यगाख्यातमर्थ पदानि युक्तयोहेतवोवा तैरुपशुद्धमवदातं सयुक्तिक सहेतुकवा । यदि वाऽर्थैरनिर्धेय पदै श्च वाचकै शब्दै उप सामीप्येन शुद्ध निर्दोष । तमेवचूतमर्हद्भिर्नाषित धर्म श्रद्दधाना स्तथाऽनुतिष्ठतोजनालोकाअनायुषोऽपगतायु कर्माण सत सिद्धा सायुषश्चेडाया देवाधिपाश्चागमिष्यतीति । इतिशब्द परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २९ ॥ इति वीर स्तवाख्य षष्ठमध्ययन परिसमाप्तमिति ॥ ग्रंथसंख्या ३००

हवे सातमु अध्ययन प्रारंनियें ठैये ठ्ठा अध्ययनने विषे श्रीमहावीरनु स्तवन क रता श्रीमहावीरने सुशील कह्या, हवे आ सातमां अध्ययननेविषे ते थकी विपरीत कुशीलिया होयठे जे अरहट्ट घटीकाने न्याये ससारमांहे न्रमण करे तेनु स्वरूप कहेठे.

जह सामलीवा, जस्सि रति वेययंती सुवन्ना ॥ वणेसु वाणंदण
माहु सेठ्ठं, नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने ॥ १८ ॥

अर्थ–ते भगवत शैलेसी अवस्थाये शुक्लध्यानना चोथा भेदने अनंतर (साइके०) सादि अने (अणतके०) अनत एवी (सिद्धिगते के०) सिद्धिगतिने विषे पोहोता ते सिद्धिकेवीने लोके, (अणुतरग्ग के०) सर्वमा उत्तम तथा लोकने अग्रे वर्तमानछे ते कारण माटे (परममहेसी के०) परम प्रधान मोहोटा ऋषीश्वर श्रीमहावीर देवछे जे (नाणेणसीलेणयदसणेणके०) ज्ञाने करी दर्शनेकरी चारित्रशीलेकरी (असेसकम्मसविसोहइत्ताके०) समस्तज्ञानावर्णादिक आठेकर्मने शोधी कर्म खपावीने मुक्तिनेविषे (पत्तेके०) पोहोता. ॥१७॥ वली उपमाये करी भगवतने स्तवेछे, (जहके०) जेम (रुक्खेसुके०) वृक्षो माहे (णातेके०) प्रसिद्ध देवकुरु उत्तरकुरुने विषे व्यवस्थित एवु (सामलीवाके०) सात्मली वृक्ष मोहोटुंछे (जस्सिके०) जेनेविषे (सुवन्नाके०) सुवर्ण कुमारकादिक भुवनपति देवो आवीने (रतिवेयपती के०) रतिवेदेछे एटले क्रीडा रूप सुख भोगवेछे तथा जेम (वणेसुवाके०) वनने विषे (णदण के०) नंदन वन (सेठ्ठंके०) श्रेष्ठ (आहुके०) कह्यु छे उत्तम शोभाये करी सहित कह्युछे तेम (नाणेणसीलेणयभूतिपन्ने के०) ज्ञान अने शील एटले चारित्र तेणे करी, श्री महावीर महाप्राज्ञ एटले मोहोटा जाणवा ॥१८॥

॥ दीपिका–अनुत्तरा प्रधाना अग्र्या च सर्वोत्तमा परमां सिद्धि गति साद्यनता प्राप्तोमहर्षि सअशेषं कर्म विशोध्यापनीय केन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच कर्म क्षपयित्वा ॥ ॥ १७ ॥ वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञात प्रसिद्धोदेवकुरुस्थित कूटशाल्मलीवृक्ष । यस्मिन्वृक्षे सुपर्णाभवनपतिविशेषारति क्रीडा वेदयतीति । वनेषु मध्ये यथा नंदन वन श्रेष्ठमाहुस्तथा भगवान् ज्ञानेन शीलेनच श्रेष्ठोभूतिप्रज्ञ प्रवृद्धज्ञान ॥ १८ ॥

॥ टीका–अपिच (अणुत्तरग्गमित्यादि) तथाऽसौ भगवान् शैलेऽश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थभेदानतर साद्यपर्यवसाना सिद्धि गतिं पंचमीं प्राप्त । सिद्धिगतिमेव विशिनष्टि । अनुत्तरा चासौ सर्वोत्तमत्वादग्र्याच लोकाग्रव्यवस्थितत्वादनुत्तराग्र्या तां परमा प्रधाना महर्षिरसावत्यंतोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वादशेषं कर्म ज्ञानावरणादिकं विशोध्यापनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच क्षायिकेन सिद्धिं गतिं प्राप्त इति मीलनीयं ॥ १७ ॥ पुनरपि दृष्टातद्वारेण भगवत स्तुतिमाह । (रुक्खेसुणाएइत्यादि) वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञात प्रसिद्धोदेवकुरुव्यवस्थित शाल्मलीवृक्ष सच भवनपतिक्रीडास्थान । यत्र व्यवस्थिताअन्यतश्चागत्य सुपर्णाभवनपतिविशेषारतिं रमण

॥ टीका—उक्त पष्ठमध्ययनं साम्प्रतं सप्तममारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंध । इहाऽनतराध्ययने महावीरगुणोत्कीर्त्तनत सुशीलपरिजाषा कृता। तदनतर तद्विपर्यस्ता कुशीला परिजाष्यते । तदनेन संबधेनाऽऽयातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्णनीयानि । तत्राप्युपक्रमातर्गतोर्थाधिकारोऽय ॥ तद्यथा । कुशीला परतीर्थिका पार्श्वस्थादयोवा स्वयूथ्याअशीलाश्च गृहस्था परि समंतात् जाष्यते प्रतिपाद्यंते तदनुष्ठानत स्तद्विपाकडुर्गतिगमनाश्च निरूप्यतइति । तथा तद्विपर्ययेण क्वचित्सुशीलाश्चेति । निक्षेपस्त्रिधा । उघनामसूत्रालापकनेदात् । तत्रौघनिष्पन्ननिक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने कुशीलपरिजाषेति । एतदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । शीलेचउक्कं दवे,पाउरणाजरणजोयणादीसु॥ जावेउ उहशील अजिक्कमासेवणा चेव ॥ ८८ ॥ (शीलेचउक्कमित्यादि) शीले शील विषये निक्षेपे क्रियमाणे चतुष्कमिति नामादिश्चतुर्धा निक्षेप । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुण्णे तदनादृत्य इव्यमिति इव्यशील प्रावरणाजरणजोजनादिषु इष्टव्य । अस्याऽयमर्थ । योहि फलनिरपेक्षस्तत्स्वजावादेव क्रियासु प्रवर्तते सतच्छीलस्तत्रेह प्रावरणशीलइति।प्रावरणप्रयोजनाजावेऽपि तच्छीलयान्नित्यप्रावरणस्वजावप्रावरणे वा दत्तावधान ।एव माजरणजोजनादिष्वपि इष्टव्यमिति । योवा यस्य इव्यस्य चेतनाचेतानादे स्वजावस्त द्दव्यशीलमित्युच्यते। जावशील तु द्विधा उघशीलमाजीक्ष्णसेवनाशीलमिति । तत्रौऽघशील व्याचिख्यासुराह । उहेसीलविरति, विरयाविरईयअविरतीअसील ॥ धम्मेणाणतवादी, अपसत्थअहम्मकोवादी ॥८९॥ (उहेत्यादि)। तत्रौघ सामान्य । सामान्येन सावद्ययोगविरतोऽविरतोवा शीलवान् जएयते तद्विपर्यस्तोऽशीलवानिति । आजीक्ष्णसेवाया त्वनवरतसेवनाया तु शीलमिति ॥ तद्यथा।धर्मे धर्मविषये प्रशस्त शील यद्धताऽनवरता पूर्वज्ञानार्जन विशिष्टतप करण वा । आदिग्रहणादनवरताजिग्रहणादिक परिगृह्यते । अप्रशस्तजावशील त्वधर्मप्रवृत्तिर्वाह्या । आतरा तु क्रोधादिषु प्रवृत्ति । आदिग्रहणात् शेष कषायाश्चौर्याज्याख्यानकलहादय परिगृह्यतइति ॥ साम्प्रत कुशीलपरिजापाख्यस्याऽध्ययनस्याऽन्वर्थता दर्शयितुमाह । परिजासियाकुशीला य,एत्थजावति अविरताकेइ ॥ सुत्तिपसंसासुद्धो, कुतिइगुगाअपरिसुद्धो ॥९०॥ (परिजासियाइत्यादि) । परि समतात् जापिता प्रतिपादिता कुशीला कुत्सितशीला परतीर्थिका पार्श्वस्थादयश्च । चशब्दात् यावत केचनाऽविरताअस्मिन्नित्यतइदमध्ययन कुशीलपरिजापेत्युच्यते । किमिति कुशीलाअशुद्धाग्रह्यते इत्याह। सुरित्यय निपात प्रशसाया शुद्धविषये वर्तते । तद्यथा सौराज्यमित्यादि । तथा कुरित्ययमपि निपातोजुगुप्सायामशुद्धविषये वर्तते । कुतीर्थ कुग्रामइत्यादि । यदि कुत्सितशिला कुशीला कथतर्हि परतीर्थिका पा॰ [illegible] श्च तथाविधाजवतीत्याह । अफासुयपडिसेविय, णामज्जोयशीलवादीय । फा॰ [illegible] अफासुयामोअज्जजता ॥९१॥

चड्रोमहानुनाव सकललजनिवृत्तिकारिण्या कात्यामनोरम श्रेष्ठ । गंधेष्विति गुणगुणि नोरनेदान्मतुब्लोपाद्वा । गधवत्सु मध्ये यथा चदन गोशीर्षकाख्य मलयज वा तज्ज्ञा श्रेष्ठमाहु । एव मुनीना महर्षीणा मध्ये नगवत नाऽस्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलो काना शमिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तमेवनूत श्रेष्ठमाहुरिति ॥ १९ ॥ अपिच । (जहा सयनूइत्यादि) स्वय नवतीति स्वयंनुवोदेवास्ते तत्राऽऽगत्य रमतीति स्वयनूरमणस्तदे वमुदधीना समुड्राणा मध्ये यथा स्वयंनूरमण समुड् समस्तद्वीपसागरपर्यंतवर्त्ती श्रे ष्ठ. प्रधानोनागेषु च नवनपतिविशेषेषु मध्ये धरणेड् नागेड् यथा श्रेष्ठमाहु । तथा (खो यदएइति) इक्षुरसइवोदक यस्य सइक्षुरसोदक सयथा रसमाश्रित्य वैजयत प्रधान स्व गुणैरपरसमुड्राणा पताकेवोपरि व्यवस्थित. । एव तपउपधानेन विशिष्टतपोविशेषेण मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिर्नगवान् वैजयत प्रधान समस्तलोकस्य महा तपसा वैजयतीवोपरि व्यवस्थितइति ॥ २० ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाण सलिलाण गंगा, प
क्खीसुवा गेरुले वेणुदेवे, निवाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसुवा जह अरविंदमाहु॥खत्तीण
सेठे जह दत्तवक्के, इसीण सेठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

अर्थ–(हत्थीसुएरावणमाहुणाएके०) जेम हस्तिउने विषे इंड्नुवाहन ऐरावणहस्ति प्र धान कह्योछे (सीहोमिगाणके०)जेम मृग प्रमुख स्वापद जनावरोमा सिंह प्रधानकह्योछे (सलिलाणगंगाके०) नरतक्षेत्रनी अपेक्षाये जेमपाणीमा गंगानदिनुंपाणी निर्मल कह्युछे(प क्खीसुवागेरुलेवेणुदेवेके०) जेम समस्त पक्षीउमा गरुड मोहोटो कह्योछे अपरनामे वेणुदेव ए जेम प्रधान कह्याछे (निव्वाणवादीणिहके०) तेम निर्वाणजे मोक्ष मार्ग तेना स्थापन कर नारा वादीलोक मा (णायपुत्ते के०) श्रीमहावीर मोहोटा कह्याछे ॥२१॥ (जहके०) जेम (जोहेसु के०) योद्धशुनटो मा (णाएके०) ज्ञातविदित (वीससेणेके०) विश्वसेन एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे (पुप्फेसुवाजहअरविंदमाहु के०) जेम फूलमा अरविंद कमल मो होटु कह्युछे (खत्तीणसेठेजहदत्तवक्के के०) जेम क्षत्रीमा दंतवाक्य एटले चक्रवर्त्ति प्रधा न कह्योछे (तह के०) तेम (इसीणके०) समस्त रुषीउ मा (वद्धमाणे के०) श्रीव र्द्धमान स्वामि (सेठे के०) श्रेष्ठ कह्याछे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हस्तिषु यथा ऐरावतं इंड्गज ज्ञातं प्रसिद्ध दृष्टांतनूतमाहुस्तज्ज्ञा । यथा

ति । सर्वेपि सत्वा सातंपिणोडुखद्विपश्चेति ज्ञात्वा प्रत्युपेक्षस्व कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदिति । यथेभि कायं समारभ्यमाणे पीड्यमानैरात्मा दंडयते तत्समारंजादा त्मदंमोजवतीत्यर्थ । अथवैऽभिरेव कायैर्ये आयतदंमादीर्नदमा । एतडुक्तं जवति । ए तान् कायान् ये दीर्घकालं दमयति पीमयंतीति तेषा यद्भवति तद्दर्शयति । तं एतेष्वेव पृथि व्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं परि समंतादाशु क्षिप्रमुपसामीप्येन याति व्रजति । तेष्वे व पृथिव्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं जूयोजूय समुत्पद्यंतइत्यर्थ । यदिवा विपर्यासो व्यत्यय सुखार्थिभि कायसमारंज क्रियते तत्समारंजेणच दुखमेवाऽप्यते नसुखमि ति । यदिवा कुतीर्थिकामोक्षार्थमेते कायैर्या क्रिया कुर्वंति तया संसारएव जवतीति ॥२॥

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे, तस थावरेहिं विणिघायमेंति ॥
से जाति जाति बहुकूरकम्मे, जं कुव्वती मिज्जति तेण बाले ॥३॥
अस्सिंच लोए अडुवा परत्था, सयग्गसोवा तह अन्नहावा ॥
संसारमावन्न परंपरं ते, बंधति वेदंतिय डुन्नियाणि ॥ ४ ॥

अर्थ–(जाइपहअणुपरिवट्टमाणेके०) एकेंद्रियादिकथी मामीने पचेंद्रिय पर्यंत जीव नी जातीने तेने विषे एकस्थानकथी बीजे स्थानके परिज्रमण करता थका (तसथावरेहिं विणिघायमेतिके०) त्रस तथा स्थावर जीवने विषे विनिघातमेत्य एटले उत्पत्ति अने वि नाश पामे (सेजातिजाति बहुकूरकम्मे के०) ते कूर कर्मना करनार जाति जातिने विषे उत्पत्ति पामीने (जंकुव्वती मिज्जतितेणबालेके०) ते बाल अज्ञानी जे वली त्या डुष्ट एवा पापकर्म करे तो वली तेहीज डुष्ट कर्मे करी एटले चोर अथवा परदारा गमन इत्यादिक दोषे वली विनाश पामे ॥ ३ ॥ (अस्सिंचलोए अडुवापरत्था के०) जे कर्म करे ते कर्म आजन्मने विषे अथवा परजन्मने विषे विपाक आपे (सयग्गसोवा के०) अथवा एकज कर्म सो सहस्र लाख क्रोम सख्याता असख्याता इत्यादिक घणा जवलगी पण विपाक आपे जेवा विधिये कर्म कस्यो होय तेवा विधिये जोगवे (वा के०) अथवा (तह के०) तथा (अन्नहा के०) अन्यविधिये पण जोगवे सिरछेदादिक हस्तपाद छेदनादिक डुख पामे (संसार मावन्न परंपरते के०) एवीरीते ते कुशीलिया अरहट्ट घटीकाने न्याये संसारने विषे फरीफरी जव परंपराये परिज्रमण करता थका डुख जोगवे तथा (बंधति वेदंतिय डुन्नियाणिके०) एकेक छेदनादिक डुखे पीड्या थका ते डुखना योगेकरी वली नवा नवा कर्म बांधे तेने फरी जोगवे पण जोगव्या विना छूटेज नही ॥४॥

॥ दीपिका–जातिपथं जन्ममरणे अनुपरिवर्तमाने एकेंद्रियादिषु पर्यटन् त्रसस्था

(ठिईणसेठ्ठालवसत्तमावा के०) जेम स्थितिमा प्रधान लव सत्तम देवता एटले पंचा नुत्तर विमानवासी देवो कह्याछे कारणके तेमनु मनुष्यमा सात लव प्रमाण आयु कर्म जो शेष रह्यु होत तो मुक्ति पामत तेमाटेएने लव सत्तम देवो कहिये (सनासुहम्मावस नाणसेठ्ठा के०) अन्य सनाउमा जेम सौधर्मा सना श्रेष्ठ कहीछे (निवाणसेठ्ठाजहस व्वधम्मा के०) जेम समस्त धर्मोने विषे निर्वाण जे मोक्ष ते प्रधान कह्योछे केमके अन्य दर्शनीउं पण पोत पोताना धर्मने विषे मोक्ष प्रधान बोलेछे माटे (णणायपुत्ता परमछीनाणी के०) तेम ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर थकी अन्य कोइ ज्ञानी नथी एटले सर्व मा उत्तम ज्ञानवत श्रीमहावीर देव जाणवा ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–यथा दानाना मध्येऽनयप्रदानं श्रेष्ठं । यदुक्तं । दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवि तमेव वा ॥ धनकोटिं न गृण्हीयात्सर्वोजीवितुमिच्छति ॥ १ ॥ अत्रदृष्टांत । वसंतपुरे अरिदमनोराजा चतुर्वधूयुक्तोऽन्यदा गवाक्षे क्रीडति तेन सपत्नीकेन चौरोवधस्थानं नीय मानोदृष्ट पत्निनि पृष्ट किमनेनापराद्ध । एकेन राजनरेण तत्स्वरूपमुक्तं । अनेन चौर्यं कृतं । ततएकया पत्न्या नृपपार्श्वे पूर्वदत्तोवरोमार्गितएकदिन चौरोमोच्यइति । राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नाननोजनसत्कारादिपूर्वकमलंकारैरलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन श ब्दादिविषयान् प्रापितोदिनमेक पालितश्चौर । द्वितीयदिने द्वितीयया दीनारलक्षव्ययेन लालितस्तृतीयदिने तृतीयया दीनारकोटिव्ययेन सत्कारितश्चतुर्थ्यातु राज्ञोनुमत्या मर णाद्रक्षितोनान्यत्किंचिडुपकृतं सान्यपत्नीनिर्हसिता नानया किंचिद्दत्तमिति । ततस्तासां बहूपकारविषये विवादे जाते राज्ञा चौरएव कार्यं पृष्टोयथा तव कया बहूपकृतमिति तेनोक्तं मया मरणमहानयनीतेन स्नानादिसुखं किंचिन्न ज्ञातं । अग्रे पुनरनयदानाकर्ण नात्परमं सुखमनुनवामीति सर्वदानानामनयदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । सत्येषु वाक्येषु यदनवद्यं पीडानुत्पादकं वाक्यं तत्श्रेष्ठं । सत्यं तदेव यत्परपीडानुत्पादकं । यत । लो केपि श्रूयते वादोयथाऽसत्येन कौशिक॰ ॥ पतितोवधयुक्तेन नरके तीव्रवेदने ॥ १ ॥ तथा तहेव काणकाणित्ति पंमगंपंमगत्ति वा ॥ वाहिअं वाहिरोगिति ताण चोरित्ति नोवते इति ॥ तप सु यथा ब्रह्मचर्यमुत्तमं तथा लोकोत्तम श्रमणोज्ञातपुत्र श्रीवीर ॥२३॥ स्थितिमता मध्ये यथा लवसप्तमा पंचानुत्तरविमानस्थादेवा सर्वोत्कृष्टस्थितय प्रधाना । तेषां यदि सप्तलवाआयुष्कमनविष्यत्तत सिद्धिगमनमनविष्यदिति । यथा सनाना मध्ये सौधर्मा सना श्रेष्ठा । यथा सर्वधर्मानिर्वाणश्रेष्ठामोक्षप्रधाना ।कुदर्शिनोपि स्वधर्मं निर्वाण फलदमाहु॰ । एव ज्ञातपुत्रात् श्रीवीरात् परोज्ञानी नास्तीति सर्वेन्योधिकज्ञानइत्यर्थ॰॥२४

रइयं ॥ १ ॥ जइ पविससिपायाज, अडइ वदरि गुद्द समुद्दवा ॥ पुव्वकयाउ नचुक्कसि अप्पाण घायसेजइवि ॥ २ ॥

जे मायर वा पियरं च हिच्चा, समणव्वए अगणि समारभिज्जा ॥
अहाहु से लोए कुसीलधम्मे, भूताइं जे हिंसति आयसाते ॥५॥
उज्जालओ पाण निवातएज्जा, निव्वावओ अगणि निवायवेज्जा ॥
तम्हा उमेहावि समिक्ख धम्मं, ण पंमिए अगणि समारभिज्जा ॥६॥

अर्थ-(जेमायरवा पियरचहिच्चा के०) जे कोइ माता पितादिकने हित्वा एटले छांमीने अने स्वजन वर्गनो त्याग करीने (समणव्वएके०) श्रमणने व्रते उठया अर्थात् अमे साधुछैये एवु जाणता छता (अगणि समारभिज्जा के०) उद्देशादिक परिभोगे करी अ ग्नीनो समारंभ करे अथवा करावे तथा अनुमोदे (अहाहुसेलोए कुसीलधम्मेके०) तेवा पाखंमी लोकने कुशील धर्मि जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधरादिक कहेछे (भूताइ जेहिंसति आयसाते के०) जे पोताना आत्मसुखने अर्थे प्राणीनी हिंसाकरेछे ते कुशी लिया जाणवा ॥ ५ ॥ (उज्जालउपाण निवातएज्जा के०) जे अग्नि उज्वाले प्रदीप्त करे ते त्रस अने स्थावर जीवोनो अतिपात एटले विनाशकरे अने (निव्वावउ अगणि नि वायवेज्जाके०) तेम वली ते अग्नीने पाणीयें करी बुजावता थका पण अनेक त्रस अने स्थावर जीव हणायछे एमज अग्नीने अजुआलता तथा उलवता थकां पण प्राणीउनो घात थायछे (तम्हाउ के०) तेमाटे (मेधाविके०) पंमित सदसद्विवेकनो जाण (स मिक्खधम्मके०) हिंसानो त्याग करी तथा दयामा धर्मछे एम विमाशीने (णपंमिए अग णिसमारभिज्जाके०) पंमित अग्निकायनो समारंभ करे नही ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-ये ज्ञाततत्वामातर पितर स्वजनवर्गं हित्वा श्रमणव्रते स्थितावयमि त्यंगीकृत्याऽग्निकाय समारभते अग्न्यागार कुर्युः पचनपाचनादौ । अथ तीर्थकृतएवं माहु सोय पाखंडिलोक कुशील कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सतथा योभूतानि प्राणि नोहिनस्ति आत्मसाते आत्मसुखार्थं ॥ ५ ॥ अग्निमुज्वालयन् सोग्निकायमपरांश्च पृथ्व्यादिजीवान् स्थावरत्रसाश्च निपातयेत् तथा अग्निकाय निर्वापयेत् तदाश्रितान न्यांश्च प्राणिनोनिपातयेत् । अग्निज्वालकनिर्वापकयोर्योज्वालयति समहाकर्मबंधक । तथा चागम । दोभंतेपुरिसा असिमसुए सद्धि अगणिकायं समारभंति । तत्थण एगे पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ एगेपुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ तेसिं भंते पुरिसाण कयरे पु रसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए वा गोयमा जेण पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ सेण म

पुढोवमे धुणइ विगयगेहि, नसणिहि कुव्वति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुद्दंच महाभवोघं, अभयकरे वीर अणंतचक्कू ॥ २५ ॥ कोहं च माणच तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥ एआणि वंता अरहामहेसी ण कुव्वई पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

अर्थ-(पुढोवमेके०) जेम पृथवी सकल पदार्थने आधार भूतछे तेम श्रीमहावीर सर्व सत्वने अभय प्रदाने करी रुडा उपदेशना दान थकी आधारभूतछे. (धुणइके०) अष्टप्रकारना कर्म खपाव्याछे (विगयगेहि के०) विगतगृद्धि एटले अभिलाप रहित थयाछे वली (नसण्णिहिंकुव्वति के०) सनिध नकरे एटले काइ पण सचय करे नही त था (आसुपन्नेके०) उतावली प्रज्ञाना धणी एटले केवली एवा भगवत जाणवा (त रिउसमुद्दचमहाभवोघं के०) तथा समुद्रनी पेरे तरवाने दुस्तर एवो मोहोटो ससार स मुद्र तेने तरीने मुक्तिये पोहोताछे, वली श्रीमहावीर केवाछे तोके, (अभयकरेके०) अभ य करनार एटले सर्व जीवना भयना टालनारछे तथा (वीरके०) शूरवीरछे (अणतच क्कू के०) अनत चक्षुना धणी एटले सर्व स्वरूप देखेछे जाणेछे. ॥ २५ ॥ (कोहंचमा णचतहेवमाय के०) क्रोध वली मान तथा माया तेमज वली (लोभके०) लोभते परवचना रूप जाणवो (चउत्थके०) एचार (अज्झत्थदोसा के०) अध्यात्म दोपछे तेने ससार वधारवाना कारण जाणीने (एआणिवता के०) एचारे कषायने वामीने श्रीम हावीर (अरहामहेसी के०) अरहत थया महारिषी थया ते कारण माटे (णकुव्व ईपावणकारवेइ के०) श्रीमहावीर स्वामि पोते पाप करे नही तथा बीजा पासे पाप करावे नही अने पापकर्मना करनारनी अनुमोदना पण करे नही ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-यथा पृथ्वी सर्वसहा तथा भगवानपि तदुपम । विगतगृद्धिर्गताभिला पोधुनात्यपनयति कर्मेति।आशुप्रज्ञ सदायोगज्ञान सन्निधि न करोति। द्रव्यसन्निधिर्येन धान्यादिर्भावसन्निधिर्मायाक्रोधादिस्त द्विविधमपि सन्निधि न करोति सतरित्वा समु द्रमिव महाभवौघ ससारप्रवाह निर्वृतोऽभयकर प्राणिना वीरोऽनतचक्षुरनतज्ञान ॥ ॥ २५ ॥ क्रोधं मानं माया लोभ चतुर्थमध्यात्मदोपानात्मदोपरूपान् कषायान् एता न् वात्वा त्यक्त्वा ऽर्हन्महर्षि स्वय पाप न करोति न कारयत्यन्यै ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पुढोवमेऽत्यादि) सहि भगवान् यथा पृथिवी सकलाधारा व र्तते तथा सर्वसत्वानामभयप्रदानत सदुपदेशदानाद्वा सत्वाधारऽति । यदिवा यथा पृ थ्वी सर्वसहा एव भगवान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहतइति । तथा धुनात्यपनयत्यष्ट

बावेइ सेण पुरिसे अप्पतराग पुढविकायं समारन्नइ जाव अप्पतरागं तसकाय समारनइ बहुतरागं अगणिकायं समारन्नइ । से एतेणअट्ठेण गोयमा एव वुच्चइ ॥ अपि चोक्तं । नूयाण ए ममाघातं, । इत्ववादेण संतउइत्यादि । यस्मादेव तस्मान्मेधावी सदसद्विवेक सश्रुतिक समीक्ष्य धर्म पापाङ्गीन पडितोनाग्निकायं समारन्नते । सए व च परमार्थेत पण्डितोयोऽग्निकायसमारन्नकृतात् पपान्निवर्ततइति ॥ ६ ॥

पुढवीवि जीवा आऊवि जीवा, पाणाइ संपाइम सपयति ॥ ससेयया कठसमस्सियाय, एते दहे अगणि समारन्नते ॥ ७ ॥ हरियाणि नूताणि विलवगाणि, आहार देहाय पुढो सियाई ॥ जे छिंदती आयसुह पडुच्च, पगन्निपाणे वहुणतिवाती ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे अग्नीनो समारन्न करवा थकी बीजा जीवो केवीरीते हणाय ते कहेछे (पुढवीविजीवाआऊविजीवा के०) पृथवी तेपण जीव अने आऊ एटले पाणी तेपण जीव (पाणाइसपाइम के०) तथा सपातिमप्राणी ते पतगीया प्रमुख (सपयति के०) त्या सम्यक् प्रकारे पडे तथा (ससेययाकठसमस्सियाय के०) सस्वेदजा ते काष्ठ तथा छाणादिकने विपे उत्पन्न थएला जीव काष्ठनिश्रितघुणादिककीडीप्रमुख जाणवा (एतेदहेअगणिसमारन्नते के०) एटला स्थावर जगमजीवने जे अग्नीनो समारन करे ते दहे एटले बाली नाखे ॥ ७ ॥ तथा (हरियाणि के०)हरीकाय ते अकुरादिक समस्त वनस्पति जाणवी ए सर्वे (नूताणि के०) जीव ते (विलवगाणि के०) विलवक जाणवा विलवक शब्दे जीवनो आकार धारण करे जेम कलल अर्बुद मांस पेशी एटली अवस्था गर्नमा थाय अने गर्न प्रसव्या पछी बाल कुमार तरुण वृद्ध एटली अवस्था मनुष्य धारण करे तेम शाल्यादिक वनस्पति पण अकूर मूल स्कध पत्र शाखादिक विशेष जे छे ते पण वर्द्धमान थका बाल तरुण वृद्धावस्थादिक नाव पामे छे तथा ए हरितादिक जेछे तेना मूल पत्र शाखादिकने विपे (पुढोसियाई के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा जीव जाणवा एटला वनस्पतिने (आहारदेहाय के०) आहार तथा शरीरने अर्थे (जेछिदतीआयसुहपडुच्चके०) जे आत्माना सुखने अर्थे एटले एने छेदवा थकी माहारा आत्माने सुख थशे एवी आत्मसुखनी प्रतीते जे छेदे (पगन्निपाणेवहुणतिवाती के०) ते पुरुष धीठाइ पणे घणाजीवोना घातनो करनार जाणवो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–पृथ्वीजीवाअपोपिजीव... ... सपातिमा शलनादयस्तेच

थाए के०) कर्मरूप डु ख क्षय करवाने अर्थे (उवहाणव के०) उपधानवंत थया एट ले तपश्या करी देह शोषवीने कर्म खपाव्या (लोगंविदित्ता आरपारच के०) इह लोक अने परलोक ए बंनेने जाणीने (सव्वंपन्नूवारियसव्ववार के०) सर्व पापना स्था नकने प्रनूत पणे पोते वारवार निवारयाले ॥ २८ ॥ हवे श्रीसुधर्म स्वामि पोताना शिष्य प्रत्ये कहेछे (धम्म अरहत नासियके०) अरिहंतनो नापेलोजे धर्म ते केवोछे तो के (समाहित अछपदोपसुद्ध के०) सम्यक् प्रकारे अर्थे करी पदे करी शुद्ध एटले उज्वल युक्ति सहित तेने (सोच्चाय के०) सानलीने (त के०) ते धर्मने (सदहाणाय के०) सर्दहता एटले सत्य करी मानता थका (जणा के०) अनेक जन (अणाऊ के०) कर्म रहित थईने अनायुष्य थया एटले सिद्ध थया (इंदावदेवाहिव आगमिस्संतिके०) अथवा आगमिक काले इंद्रादिक पदवी पाम्या तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २९॥ इतिश्री वीरस्तुतिनामे छठ्ठा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो

॥ दीपिका–क्रियावादिनामक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानां स्थानं पक्षं सम्यक्प्रका र प्रतीत्य परिछिद्य ज्ञात्वा सनगवान् सर्ववादं निवेदयित्वा सर्वकुदर्शनिनां स्वरूपं ज्ञात्वा दीर्घ काल यावज्जीव संयमे उपस्थित ॥२७॥ सनगवान् स्त्रीनोग मैथुन सरात्रिनोजनसहितं वारयित्वा उपलक्षणादन्यदपि प्राणातिपातादिकं ग्राह्यं । उपधानवान् तपोविशेषयुक्तो डुखक्षयार्थं आर पारच लोक इह लोक परलोकं च विदित्वा ज्ञात्वा प्रनुर्नगवान् सर्वं वार बहुशोनिवारितवान् । कोर्थ । अहिंसादिकं स्वयं विधाय पराश्च स्थापितवान् न हि स्वयमधर्मे स्थित परान् धर्मे स्थापयितुमलं । यडुक्तं स्तुतिकृता । ब्रुवाणोपि न्या य्यं स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन् परं नालं कश्चिद्दमयितुमदांत स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ २८ ॥ श्रु त्वा धर्ममर्हद्भाषित सम्यगाख्यातमर्थपदैर्युक्तिनिरुपशुद्धं निर्मलं तं धर्मं श्रद्दधानाज नास्तथा कुर्वंति यथा नायु कर्माणि सिद्धा सायुषश्च इंद्राद्यादेवाधिपा आगमिष्यंती ति इति ब्रवीमीति ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययन समाप्तं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (किरिएइत्यादि) तथा सनगवान् क्रियावादिनमक्रियादिनां वैनयिका नामज्ञानिकानांच स्थानं पक्षमन्युपगतमित्यर्थः । यदिवा स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानं डुर्गति गमनादिकं प्रतीत्य परिछिद्य सम्यगवबुध्यत्यर्थः । एतेषां च स्वरूपमुत्तरत्र प्रत्यक्षेण व्याख्या स्याम । लेशतस्त्विद । क्रियैव परलोकसाधनायाऽलमित्येव वादितुं शीलं येषांते क्रियावा दिनस्तेषां हि दीक्षातएव क्रियारूपायामोक्षइत्येवमन्युपगम । अक्रियावादिनस्तु ज्ञानवादि नस्तेषां हि यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादेव मोक्ष । तथाचोक्तं । पंचविंशतितत्वज्ञो, य

बुया बुयाणा, णरा परे पचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगाय, (पाठांतरे पोरुसाय) चयंति ते आउखए पलीणा ॥ १० ॥

अर्थ-(जातिंच के०) उत्पत्ति एटले मूलादिक कोमल तथा (वुड्ढिंच के०) वृद्धि एटले शाखा प्रशाखादि जे वनस्पति तेनो (विणासयंते के०) विनाश करतो होय तथा (बीयाइ के०) बीजादिक एटले तेना फलनो विनाश करतो होय तेने (असंजय आयदंमेके०) असंयत एटले गृहस्थ अथवा प्रव्रजित अन्यलिंगी अथवा स्वलिंगी आत्मानो दंमनार कहिए तेजीव प्राणीने उपघाते पोताना आत्मानो उपघात करेछे (अहाहुसे लोएअणऊधम्मेके०) जे आत्म सुखने अर्थे हरीकायने छेदे तेने लोकमाहे अनार्य धर्मि श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे (बीयाइजेहिंसतिआयसाते के०) जे प्राणी धर्मोपदेशे आत्मसुखने अर्थे बीजादिक वनस्पतिकायने छेदे, छेदावे तथा अनुमोदे तथा एवो धर्मोपदेश करे ते पाखंमी अनार्य जाणवो ॥ ए ॥ (गप्नाइमिज्जंति के०) वनस्पतिकायना विनाशक प्राणीउ घणा जन्मसुधि गर्नादिक अवस्थाने विषे वर्त्तताज मरण पामे एटले कलल अर्बुदादिक अवस्थाये वर्त्तता थकाज मरण पामे तथा जन्म्या पठी (बुयाबुयाणाके०) बोलता अणबोलता थका तथा (णरापरेके०) अन्य मनुष्य (सिहाकुमाराके०) न्हानी चोटलीना धणी कुमारावस्थाये स्थित थका मरे तथा (जुवाणगा के०) युवानवय तरुणवय तथा (मज्झिम के०) मध्यमवय (थेरगायके०) थविर वय ए सर्व अवस्थाने विषे (आउखए पलीणा के०) आयुष्यना क्षय विषे प्रलीन थका एटले स्वकर्म नोगवता दीन डुखी जुख तृषादिक सहन करता थका (चयंतितेके०) ते पापी जीवो शरीर त्याग करे एटले जेवु पाप समाचरे तेवु नोगवे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जाति पत्रांकुरादिनेदा वृद्धि च विनाशयन् बीजानिच फलानि विनाशयन् असयतोगृहस्थ प्रव्रजितोवा आत्मदम परहिंसया आत्मानमेव हतीत्यात्मदंड । अथेति वाक्यालंकारे । आहुरुक्तवतोजिना । तदेवाह । सलोके निर्दयोऽनार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी स्यात् । योबीजानि वनस्पतिकायमात्मसुखार्थं हिनस्ति ॥ ए ॥ वनस्पतिकायोपमर्दकागर्नादिकावस्थासु म्रियते तथाऽब्रुवतोऽब्रुवतश्च व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च तथा परे नरा पचशिखा कुमारा सतोम्रियते युवानोमध्यमपौरुषामध्यमवयसोवृद्धाश्च । एव सर्वावस्थासु आयु क्षयोप्रलीना सतोदेह त्यजति ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच । (जातिचेत्यादि) । जातिमुत्पत्ति तथाऽकुरपत्रमूलस्कंधशाखाप्रशाखानेदेन वृद्धि च विनाशयन् बीजानिच तत्फलानि विनाशयन् हरितानि छिनत्तीति । असय

पुढवीय आऊ अगणीय वाऊ,तण रुक्ख बीयाय तसाय पाणा॥
जे अमया जेय जराउपाणा; संसेयया जे रसयाभिहाणा॥१॥
एयाइं कायाइं पवेदिताइ, एतेसु जाणे पडिलेह सायं॥ एतेण
काएणय आयदंमे, एते सु याविप्परियासुविंति ॥ २ ॥

अर्थ-(पुढवीयआऊअगणीयवाऊ के०) पृथ्वीकाय अप्पकाय अने वायुकाय अ हीं चकार थकी ए चारे निकाय सूक्ष्म अने बादरना नेदे करी बे प्रकारे जाणवा तथा (तणरुक्खबीयाय के०) तृण वृक्ष बीज शालीप्रमुख वनस्पतिकाय जाणवी अने (तसायपाणा के०) त्रसते बेइंद्रियादिक जीव जाणवा तेना अनेक प्रकारछे ते कहेछे. (जेअमया के०) जेइमा थकी उपना एवा पखी तथा सर्प प्रमुख तथा (जेयजराउपा णाके०) जे जराउते गाय प्रमुख जीव जाणवा अने (ससेययाके०) सस्वेदज एटले प्रस्वेद थकी उत्पन्न थयला एवा जु माकण प्रमुख जीव जाणवा वली (जेरसयाभिहाणा के०) रसजा ते जे सोवीरादिकने विषे उपजे तेनाज वर्ण सरखा जे जीव होय ते जाणवा एरीते जीवना नेद कह्या ॥ १ ॥ (एयाइकायाइ पवेदिताइ के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक छ जीवनी निकाय श्रीतीर्थंकर देवे कहीछे (एतेसुजाणेपडिलेहसायं के०) ए छ जीवनिकायजेछे ते सातासुखने जाणेछे वांछेछे एटले सर्वजीव सुखाभिलाषीछे (ए तेणकाएणयआयदमेके० (ए छ कायने जे दमे घात करे दीर्घकाल पीडा आपे तेने जे फल थाय ते कहेछे (एतेसुयाविप्परियासुविंति के०) ते जीव एज छ कायने विषे वि पर्यासमुपयंति एटले विनाश पामे अर्थात् वारवार एने विषेज परिभ्रमण करे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-साप्रत सप्तम । पूर्वस्मिन् वीरस्तवेन सुशीलतोक्ता । अत्र तद्विपरीता कुशीला. परिज्ञाप्यते । यथा । (पुढवीति) पृथिवीकायिकाअप्कायिकाअग्निकाया वायवश्च । चशब्दात्सूक्ष्मबादरनेदा । तृणानि कुशादीनि वृक्षाअश्वत्थाद्या । बीजानि शा ल्यादीनि एते त्रयोपि वनस्पतय । त्रसा प्राणिनोद्वीन्द्रियादय । अमजा पक्षिसर्पादयो जरायुजागोमहिष्याजाद्या सस्वेदजायूकामत्कुणकृम्यादय रसजानिधानादधिसौवीरा दिषु रूतपक्ष्मतुल्या ॥ १ ॥ ते पूर्वोक्ता कायाजीवनिकाया प्रवेदिता कथिताजिनै.। षादसत्वात्क्षीवलिगता । एतेषु प्राणिषु सात सुख जानीहि । सर्वे जीवा सुखैषिणइति प्रत्युपेक्षस्व पर्यालोचय।यथा एभि कायै पीड्यमानैरात्मा दड्यते । एतत्पीमयाऽऽत्मद ड. स्यात्। तथा एतान ये पीमयति ते एतेष्वेव पृथिव्यादिकायेषु विविध परिसमतात् आ शु क्षिप्रमुपयाति व्रजति ॥ २ ॥

च नेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लवण बीजो प लाडु त्रीजो करनी एटले डुग्ध चोथो गौमास पाचसुं मद्य (एगेयसीओदगसेवणेणके०) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपनोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अतरग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे (हुएणएगेपवयतिमोक्कं के०) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुव र्णादिकना मलने अग्नी बोलेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे ॥१२॥

॥ दीपिका–हेजतवो यूयं संबुध्यध्व मनुष्यत्व डुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालनोविवेकज्ञेन न लन्यते इतिज्ञात्वा एकातडुखाज्व रितऽवाय लोक । यडुक्त । जन्मडु ख जराडु ख, रोगा य मरणाणि अ ॥ अहोड स्के हु ससारो जब कीसति जतुणो इति। तथा तणहाइ अस्सपाए कूगेठायस्स लुत्तपत्ति त्ति । डु खसयसपउत्तजरिअमिवजगकालऽ । एवनूतोलोकोडुप्कर्मकारी विपर्यासमुपे ति सुखार्थी पाप कुर्वन् डु खमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्त कुशीलविपाक । अथ तद्दर्शना न्युच्यते । ऽह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदति । केन आहारस्य सपड्रसस्त जनयतीत्याहारस पञ्चन लवण तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्ष प्रवदति । लवण हि सर्वरसमूल त ह र्जनाच्च रसपचक तस्य वर्जनेन । लवणपचक चेद। सैंधव १ सौवर्चलं २ विडं ३ रौम ४ मामुडश्चेति। तथा पाठातर आहारउपचकवज्जणेण। आहारत आहारमाश्रित्य पचक वर्जन । तथाहि। लशुन १ पलाडु २ करनीक्षीर ३ गोमास ४ मद्यचेति। एवमाहा रपचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदति । तथा एकेन शीतोदकसेवनेन सचित्तजलपरिनोगादेके मोक्ष वदति। यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथातरस्यापी त्यर्थ । एके हुतेन वन्हिहो मेन मोक्ष प्रवदति । कोर्थ । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदतिच यथाग्नि स्वर्णादी नां मल दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

॥ टीका–किचाऽन्यत् (सबुज्झहेत्यादि) हेजतव प्राणिन सबुध्यध्व यूय नहि कुशी लपार्श्वडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मच सुडुर्लनत्वेन सबुध्यध्व । तथाचोक्त । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाचयबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासममोयलोगमि डुल्लहाइ॥ तदेव मरुतधर्माणा मनुष्यत्वमतिडुर्लनमिन्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरक तीर्यक्षुच तीव्रडु खतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलनइत्येतच्चा ऽवगम्य तथा एकातडु खोयज्वरितऽव लोक ससारप्राणिगण । तथा चोक्त । जा ५। अहोडस्कोहुससारो जब कीसतिपा

(अफासुयइत्यादि) अस्त्यऽय शीलशब्दस्तत्स्वाभाव्ये। तथाहि। य फलनिरपेक्ष क्रियास्वा चरणादिषु प्रवर्तते सचेह द्रव्यशीलत्वेन प्रदर्शित । अस्त्युपशमप्रधाने चारित्रे। तथाहि। तत्प्रधान शीलवानयं तपस्वीति। तद्विपर्ययेण डुशीलइति। सचेह जावशीलग्रहणेनो पात्तइति। इह च यतीना ध्यानाध्ययनादिक मुक्त्वा धर्माधारशरीरतत्पालनाहारव्यापार च मुक्त्वा नाऽपर कश्चिद्व्यापारोऽस्तीत्यतस्तदाश्रयणेनैव सुशीलत्व च चिंत्यते । तत्र कु तीर्थिका पार्श्वस्थादिर्वा। अप्राशुक सचित्त प्रतिसेवितु शीलमस्य सजवत्यप्राशुकप्रतिसे वी। नामशब्द सजावनाया। जूय पुनर्धाष्ट्र्याद्बीलवतमात्मान वदितु शील यस्य स शीलवादी। किमित्येव यत्त प्राशुकमचेतनं शील वदति। इदमुक्तं जवति। य· प्रा शुकमुजमादिदोषरहितमाहार जुंक्ते त शीलवत वदंति तज्ज्ञा । तथाहि। यतयोप्राशुक मुजमादिदोषडुष्टमेवाऽऽहारमजुंजाना शीलवतोजण्यते नेतरइति स्थित । नोशब्दस्य निपातत्वेनाऽवधारणार्थत्वादिति। अप्राशुकजोजित्वेन कुशीलत्व प्रतिपादयितु दृष्टांत माह। जहणामगोयमाच, डीदेवगावारिजद्दगाचेव ॥ जेअग्निहोत्तवादी, जलसोयजेयइ छंति ॥ ए१ ॥ (जहणामेइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपक्षेपार्थे । नामशब्दोवाक्यालंकारे । गौतमाइति गोव्रतिकागृहीतशिक्ष लघुकाय वृषजमुपादाय धान्याद्यर्थ प्रतिगृहमटंति। तथा (चमीदेवगाइति)। चक्रधरप्राया । एव वारिजद्रकाअब्जक्षा शैवलाशिनोनित्य स्नानपानादिजावनानिरतावा । तथा ये चाऽन्येऽग्निहोत्रवादिनोऽग्निहोत्रादेव स्वर्गगमन मिछति ये चान्ये जलशौचमिछति जागवतादयस्ते सर्वेऽप्यप्राशुकाहारजोजित्वात् कुशी लाइति। चशब्दात् ये च स्वयूथ्या· पार्श्वस्थादयउजमाद्युष्टमाहार जुजते तेऽपि कुशी लाइति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेप ॥ सांप्रत सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे अस्खलितादि गुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (पुढवीएइत्यादि) पृथिवी पृथिवीकायिका सत्वा। चकार स्वगतजेदसूचनार्थ । सचाऽयजेद । पृथिवीकायिका सूक्ष्माबादराश्च। ते च प्रत्येकं पर्याप्तकाऽपर्याप्तजेदेन द्विधा।एवमप्कायिकाअपि। तथाऽग्निकायिकावायुकायिका श्च इष्टव्या। वनस्पतिकायिकान् जेदेन दर्शयति।तृणानि कुशादीनि।वृक्षाश्चाश्वत्थादयोबी जानि शाल्यादीनि।एव वल्लीगुल्मादयोऽपि वनस्पतिजेदाइष्टव्या ।त्रस्यतीति त्रसाद्वीन्द्रिया दय प्राणा प्राणिनोये चाण्डाज्जाताअंडजा· शकुनिसरीसृपादय ।ये च जरायुजाजवालवेष्टि ता· समुत्पद्यते तेच गोमहिष्यजाविकमनुष्यादय ।तथा संस्वेदाज्जाता सस्वेदजायूकामत्कु णकृम्यादय ये च रसजाजिधानादधिसौवीरकादिषु रूतपक्ष्मसन्निजाइति॥१॥ नानाजेदजि न्नं जीवसघात प्रदर्श्याऽधुना तडुपघाते दोषं दर्शयितुमाह। (एयाइमित्यादि)। एते पृथिव्या दय कायाजीवनिकायाजगवद्भि प्रवेदिता कथिता । ग़ादसत्वान्नपुंसकलिंगिता ॥ एते षु च पूर्व प्रतिपादितेषु पृथिवीकायादिषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । एतडुक्त जव

च भेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लशण बीजो प लाडु त्रीजो करनी एटले छुग्ध चोथो गौमांस पाचमुं मद्य (एगेयसीउदगसेवणेणके०) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपनोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अंतरंग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे (हुएणएगेपवयंतिमोरकं के०) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुव र्णादिकना मलने अग्नी बोलेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे ॥१२॥

॥ दीपिका—हेजंतवो यूयं संबुध्यध्वं मनुष्यत्वं छुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालनोविवेकज्ञेन न लभ्यते इतिज्ञात्वा एकांतदुःखाज्ज्व रितऽवाय लोक । यदुक्तं । जम्मडुःख जराडुःख, रोगा य मरणाणि अ ॥ अहोडुः रके हु संसारो जच्छ कीसंति जंतुणो इति। तथा तण्हाइ अस्सपाण कूगेठायस्स तुलपंति ति । डु खसयसपउत्तंजरिअमिवजगकालइ । एवंभूतोलोकोडुष्कर्मकारी विपर्यासमुपै ति सुखार्थी पापं कुर्वन् डुःखमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्तं कुशीलविपाकं । अथ तद्दर्शना न्युच्यते । इह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदंति । केन आहारस्य संपड्सस्तं जनयतीत्याहारसं पज्जनं लवणं तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । लवणं हि सर्वरसमूलं तद् भेनाच्च रसपंचकं तस्य वर्जनेन । लवणपंचकं चेदं। सैंधवं १ सौवर्चलं २ विडं ३ रौमं ४ सामुद्रंचेति। तथा पाठांतरं आहारउपचकवज्जणेणं। आहारत आहारमाश्रित्य पचकं वर्जनं । तथाहि । लशुनं १ पलांडु २ करभीक्षीरं ३ गोमांसं ४ मद्यंचेति । एवमाहा रपंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथा एकेन शीलोदकसेवनेन सचित्तजलपरिनोगादेके मोक्षं वदंति। यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथांतरस्यापी त्यर्थः । एके हुतेन वन्हिहो मेन मोक्षं प्रवदंति । कोर्थः । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदतिच यथाग्नि स्वर्णादी नां मलं दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

॥ टीका—किंचाऽन्यत् (संबुज्झहेत्यादि) हेजंतव प्राणिन संबुध्यध्वं यूयं नहि कुशी लपाखंडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मंच सुडुर्लनत्वेन संबुध्यध्वं । तथाचोक्तं । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाउयंबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासंममोयलोगंमि डुल्लहाइ॥ तदेवं मरुतधर्माणां मनुष्यत्वमतिडुर्लनमित्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरक तीर्यक्षुच तीव्रडुःखतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलनइत्येतच्चा ऽवगम्य तथा निश्चयनयमवगम्य एकांतडुःखोयं ज्वरितइव लोकः संसारप्राणिगणः । तथा चोक्तं । जम्मडुःख जराडुःख, रोगायमरणाणिय । अहोडुःखोडुसंसारो जच्छ कीसंतिपा

वरेषु समुत्पन्नोबहुशोविनिघात विनाशमेति सजातिसुत्पत्ति प्राप्य बहुक्रूरकर्मा यत्क र्म करोति तेन कर्मणा म्रियते हिंस्यते ॥ ३ ॥ अस्मिन् लोकेऽन्यस्मिन् जन्मनि वा क र्माणि विपाक ददति शताग्रशोवा बहुषु जन्मसु यद्यथा आचरति तथैवोदीर्यते अन्य थावा । एव ते कुशीला ससारमापन्ना पर पर प्रकृष्टं प्रकृष्ट डुःखमनुनवति । आर्तध्यानो पहताश्चापर बध्नति वेदयतिच डुर्नीतानि कर्माणि डुष्टं नीतानि डुर्नीतानि डुष्कृतानि । नहि स्वकृतकर्मणोनाशोस्ति । यडुक्त । माहोहिरेविसन्नो जीवतुम विमणडुम्मणो दी णो ॥ णहुवितिए ण फिट्ट्इ तं डुक्क ज पुरा रइअमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका–यथा चाऽसावायतदडोमोक्षार्थी तान् कायान समारन्य तद्विपर्यासात् ससारमाप्नोति तथा दर्शयति । (जाइपहमित्यादि) जातीनामेकेंद्रियादीना पथाजाति पथ । यदिवा जातिरुत्पत्तिर्वधोमरण जातिश्च वधश्च जातिवधं तदनुपरिवर्तमानएके द्रियादिषु पर्यटन् जन्मजरामरणानि वा बहुशोऽनुनवस्त्रसेषु तेजोवायुर्द्वीन्द्रियादिषु स्था वरेषु च पृथिव्यंबुवनस्पतिषु समुत्पन्न सन् कायदमविपाकजेन कर्मणा बहुशोविनि घातंविनाशमेत्यवाप्नोति सचायतदडोऽसुमान् जाति जातिमुत्पत्तिमुत्पत्तिमवाप्य ब हूनि क्रूराणि दारुणान्यनुष्ठानानि यस्य सनवति बहुक्रूरकर्मा सएवनूतोनिर्विवेक सद सद्विवेकशून्यत्वात् बालइव बालोयस्यामेकेन्द्रियादिकाया जातौ यत्प्राण्युपमर्दकारि कर्म कु रुते सतेनैव कर्मणा मीयते म्रियते पूर्यते । यदिवा मीड्हिंसाया मीयते हिंस्यते । अ थवा बहुक्रूरकर्मेति चौरोऽय पारदारिकइति वा इत्येव तेनैव कर्मणा मीयते परिछिद्य तइति ॥ ३ ॥ क्व पुनरसौ तै कर्मभिर्मीयते इति दर्शयति (अस्तिचेत्यादि) यान्याशुका रीणि कर्माणि तान्यस्मिन्नेव जानाति जन्मनि विपाक ददति ।अथवा परस्मिन् जन्मनि नरकादौ तस्य कर्मविपाक ददत्येकस्मिन्नेव जन्मनि विपाक तीव्र ददति (शताग्रशोवेति) बहुषु जन्मसु येनैव प्रकारेण तदशुनमाचरति तथैवोदीर्यते । तथा (अन्यथावेति) इ दमुक्त नवति । किंचित्कर्म तन्नवतएव विपाक ददाति किंचिच्च जन्मांतरे । यथा मृगा पुत्रस्य डुःखविपाकाख्ये विपाकश्रुताग्श्रुतस्कंधे कथितमिनि दीर्घकालस्थितिकं स्वपरज न्मातरनि वेद्यते येन प्रकारेण सकृत्तथैवाऽनेकशोवा । यदिवाऽन्येन प्रकारेण सकृत्सह स्रशोवा शिरश्छेदादिक हस्तपादछेदादिक चाऽनुनूयतइति। तदेव ते कुशीलाआयतदडाश्च तुर्गतिकसंसारमापन्नाअरहट्टघटीयन्त्रन्यायेन ससार पर्यटत पर पर प्रकृष्ट प्रकृष्टं डुःखम नुनवति। जन्मातरकृत कर्मानुनवतश्चैकमार्तध्यानोपहताअपर बध्नंति वेदयंति च डुष्टं नीतानि डुर्नीतानि डुष्कृतानि । नहि स्वकृतस्य कर्मणोविनाशोऽस्तीतिनाव । तडुक्त । माहोहिरेविसन्नो, जीवतुम विमणडुम्मणो दीणो । णहुवितिए णफिट्टइ, त डुःखं ज पुरा

(उदयंजइ कम्ममलंहरेज्जाके०) उदक जो अशुन कर्मरुप मलने हरण करे तो (एव सुह के०.) एमज शुन एटले पुण्य तेने पण हरण करे अने जो पुण्यने हरण नकरे तो कर्म मल पण अपहरी शकेनही माटे (इच्छामित्तमेव के०) जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते ए वचन इच्छामात्रज बोलेछे (अधवणेयारमणुस्सरित्ताके०) जेम जात्यध पुरुष मार्गे देखाडनार होय तो तेनी पछवाडे चालवा थकी वांछित मार्ग पामिये, नही (पाणाणिचेवविणिहंतिमंदाके०) तेम मूर्ख प्राणी पण धर्मनी बुद्धिये प्राणीउनो विनाशक एवा शौच मार्गनो सेवन करता थका मोक्षपामे नही एम नगवंत कहेछे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—उदकेन यदि मुक्ति स्यात्तदा मत्स्या कूर्माश्च सरीसृपाजलसर्पामद्भवोजलवायसाउष्ट्राजलचरविशेषादकराक्षसाजलमानुषास्ते प्रथम सिध्येयु । नचैव दृष्टमिष्टं वा । ततोऽस्थानमयुक्तमेतदिति कुशलानिपुणावदंति ये उदकेन सिद्धिमुदाहरति ॥१५॥ उदक यदि कर्ममल हरेत् एव शुन पुण्यमपि हरेत् । अथ पुण्य नहरेदेव कर्ममलमपि न हरेदतइच्छामात्रमेतज्जल कर्मापहारीति ॥ यथा जात्यंधाश्चान्य जात्यधमेव नेतारमनुसृत्य गछत कुपथाश्रिता स्यु । एव स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरामंदामूर्खा प्राणिनएव विनिघ्नंति व्यापादयति ततश्च नानिप्रेतस्थानगामिन स्यु ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच (मछायइत्यादि) । यदि जलसंपर्कात्सिद्धि स्यात् ततोये सततमुदकावगाहिनोमत्स्याश्चकूर्माश्च सरीसृपाश्च तथा मद्भवस्तथोष्ट्राजलचरविशेषास्तथोदकराक्षसाजलमानुषाकृतयोजलचरविशेषाएते प्रथम सिद्धेयुर्नचैतद्दृष्टमिष्ट । ततश्च ये उदकेन सिद्धिमुदाहरत्येतदस्थानमयुक्तमसांप्रत कुशलनिपुणामोक्षमार्गाभिज्ञावदति ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् । (उदयमित्यादि) यद्युदक कर्ममलमपहरेदेव शुनमपि पुण्यमपहरेत् अथ पुण्यं नापहरेदेव कर्ममलमपि नापहरेत् । अतइच्छामात्रमेवैतयदुच्यते जलकर्मापरिहारीति । एवमपि व्यवस्थिते ये स्नानादिका क्रिया स्मार्तमार्गमनुसरत कुर्वंति ते यथा जात्यधाअपर जात्यधमेव नेतारमनुसृत्य गछत कुपथश्रुतयोनवति नाऽनिप्रेतं स्थानमवाप्नुवंति । एव स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरायणामंदाअज्ञा कर्तव्याकर्तव्यविवेकविकला प्राणिनएव तन्मयात् तदाश्रिताश्च पूतरकादीन् विनिघ्नंति व्यापादयंति अवश्य जलक्रियया प्राणव्यपरोपणस्य सनवादिति ॥ १६ ॥

पावाइं कम्माइ पकुव्वतोहि, सिउदग तू जइ त हरिज्जा॥सिझ सु
एगे दगसत्तघाती. मुस वयते जलसिद्धिमाहु ॥ १७ ॥ हुतेण जे

हाकम्मतराए जेसे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेण पुरिसे अप्पकम्मतराए से केणठेण भंते एव वुच्चत्ति तहेव गोयमा तत्तण जेसे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेण पुरिसे बहुतराग पुढविकायं समारभति । एव आउकाय समारभति एव वाउकायं वणस्सतिकाय अप्प तराग अगणिकाय समारभति तत्तण जेसे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ सेण पुरिसे अप्प तराग पुढविकायं समारभति जाव अप्पतराग तसकायं समारभति बहुतराग अगणि कायं समारभति सेण अठेण गोयमा एव वुच्चत्ति जे पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ सेण पुरिसे महाकम्मतराए जेण पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ सेण पुरिसे अप्पकम्मतराएइति । तस्मान्मेधावी पण्डितोधर्म समीक्ष्याऽग्निकाय नसमारभते ॥ ६ ॥

॥ टीका—एव तावदोघत कुशीला प्रतिपादिता । तदधुना पाषंडकानधिकृत्याह । (जेमायरंचेत्यादि) ये केचनाऽविदितपरमार्थाधर्मार्थमुद्यितामातरं पितरच त्यक्त्वा मातापि त्रोर्ङ्स्त्यज त्वात् तदुपादानमन्यथा भ्रातृपुत्रादिकमपि त्यक्त्वेति इष्टव्यं । श्रमणव्रते किल वयं समुपस्थिताइत्येवमभ्युपगम्याऽग्निकार्यं समारभंते पचनपाचनादिप्रकारेण । कृतकारि तानुमत्योद्देशिकादिपरिभोगाच्चाऽग्निकायसमारंभ कुर्युरित्यर्थः । अथेति वाक्योपन्यासार्थे । आहुरिति तीर्थकृद्गणधरादयएवमुक्तवतोयथा सोऽयं पाषंडिकोलोकोगृहस्थलोकोवा ऽग्निकायसमारंभात् कुशील कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सकुशीलधर्मा । अयं किंभूतइति दर्शी यति ॥ अभूवन् भवति भविष्यंतीति भूतानि प्राणिनस्तान्यात्मसुखार्थं हिनस्ति व्यापाद यति । तथाहि । पंचाग्नितपसा निष्टप्तदेहास्तथाऽग्निहोत्रादिकया च क्रियया पापडिका' स्व र्गावाप्तिमिछतीति । तथा लौकिका पचनपाचनादिप्रकारेणाऽग्निकार्यं समारभमाणा सुखमभिलपतीति ॥ ५ ॥ अग्निकायसमारंभे च यथा प्राणातिपातोभवति तथा द र्शयितुमाह (उज्जालउइत्यादि) तपनतापनादिप्रकाशहेतु काष्ठादिसमारंभेण योऽग्निका यं समारभते सोऽग्निकायमपराश्च पृथिव्याद्याश्रितान् स्थावरास्त्रसाश्च प्राणिनोनिपात येत् । त्रिभ्योवा मनोवाक्कायेभ्यआयुर्बलेंद्रियेभ्योवा पातयेन्निपातयेत् । तथाऽग्निका यमुदकादिना निर्वापयेत् विध्या पयस्तदाश्रितानऽन्याश्च प्राणिनोनिपातयेन्निपातयेछा । तत्रोज्वालकनिर्वापकयोर्योऽग्निकायमुज्ज्वलयति सबहूनामन्यकायाना समारंभक । त था चाऽऽगम । दोभते पुरिसा अन्नमन्नेण सद्धिं अगणिकाय समारभंति तत्तण एगे पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ से एगेण पुरिसे अगणिकायं निव्ववइ तेसि भंते पुरिसा ण कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए ॥ गोयमा तत्तण जेसे, पुरिसे अगणि काय उज्जालेइ सेण पुरिसे बहुतराग पुढविकायं समारभति ॥ एव आउकाय वाउकाय वणस्सइकाय अप्पतरागं अगणिकायं समारभइ तत्तण जेसे पुरिसे अगणिकाय नि

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्गकामइत्य स्मा द्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिका स्वर्गा वाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंभूता सायमपराह्णे विकालेवा प्रात प्रत्यु षसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्निं तर्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलषंति । आहुश्चै व ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्त स्मादग्निं स्पृशता कुकर्मिणामगारदाहककुंभकारायस्कारदीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मं त्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतरा सुहृद प्रत्येष्यंति । यत कुकर्मिणा मप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुक र्मिभ्योऽग्निहोत्रादिक कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवा । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विष्ठादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषा बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिक्ख दिठ्ठ णहु एव सिद्धी, एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
हि जाण पडिलेह सातं, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थण
ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू॥ तम्हा
विऊ विरतोआयगुत्ते, दट्ठुं तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिक्खदिठ्ठणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय (एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के०) ते अबुध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धिये पाप करता थका घात पामशे (भूएहिजाणपडिलेहसात के०) एवु जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विऊके०) विद्वान् विवेकने (गहा यके०) गृहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवु ज्ञानेकरी जाणे यदुक्त पढमनाणतउदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउ नो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मी के०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (भिक्खुके०) चारि त्रिउं (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दट्ठुतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्ट युक्तिविकलमुक्तं ।

संपतति । संस्वेदजा करीषादिष्विधनेषु घुणपिपीलिकादय काष्ठसमाश्रिताश्च ये एतान् प्राणिन सदहेत् योग्नि समारजते ॥७॥ हरितानि नूतानि जीवरूपाणि तथा जीवाकार विलवंते धारयंतीति विलवकानि । यथा मनुष्या कललाऽर्बुदमासपेशीगर्नप्रसवबालकुमा रयुवमध्यमस्थविरावस्था धरति तथा हरितान्यपि । किंनूतानि पृथक् मूलस्कंधशाखा पत्रपुष्पादिस्थानेषु प्रत्येक श्रितानि नतु मूलादौ । एकएव जीव एतानि नूतानि आहा रार्थं देहोपचयार्थमात्मसुख प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यात् बहूना प्रा णिनामतिपाती हिंसक स्यात् तथाच नधर्मोनात्मसुखं चेति ॥ ८ ॥

॥ टीका–कथमग्निकायसमारंनेणाऽपरप्राणिवधोनवतीत्याशंक्याह । (पुढवीत्यादि) । नकेवल पृथिव्याश्रिता द्वींद्रियादयोजीवायापि च पृथ्वी मृल्लक्षणा असावपि जीवा । तथा आपश्च इवलक्षणाजीवास्तदाश्रिताश्च प्राणा सपातिमा शलनादयस्तत्र सपर्त ति । तथा सस्वेदजा करीषादिष्विधनेषु घुणपिपीलिका कृम्यादय काष्ठाद्याश्रिताश्च ये केचन एतान् स्थावरजगमान् सदहेद्योऽग्निकाय समारजते ऽतोऽग्निकायसमार नोमहादोषायेति ॥ ७ ॥ एव तावदग्निकायसमारनकास्तापसास्तथा पाकादनिवृत्ता शा क्यादयश्चोऽपदिष्ट ।साप्रत ते चाऽन्ये वनस्पतिसमारनादनिवृत्ता परामृश्यंते इत्याह (हरियाणीत्यादि) हरितानि दूर्वांकुरादीन्येतान्यप्याहारादेर्वृद्धिदर्शनात् नूतानि जीवा । तथा विलवकानीतिं जीवाकार याति विलवति धारयति । तथाहि । कललार्बुदमासपे शीगर्नप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थातोमनुष्योनवति । एव हरितान्यपि शाल्या दीनि जातान्यभिनवानि सजातरसानि यौवनवति परिपक्वानि जीर्णानि परिशुष्काणि मृतानि । तथा वृक्षाअप्यकुरावस्थाया जाताइत्युपदिश्यते मूलस्कधशाखाप्रशाखादिभि विशेषै परिवर्धमानायुवान पोताइत्युपदिश्यतइत्यादि शेषास्वप्यवस्थास्वायोज्यं । त देव हरितादीन्यऽपि जीवाकार विलवयति । ततएतानि मूलस्कधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु पृथक् प्रत्येक व्यवस्थितानि नतु मूलादिषु सर्वेष्वऽपि समुदितेषु । एकएव जीवएतानि च नूतानि सख्ययाऽसख्येयानतनेदभिन्नानि वनस्पतिकायाश्रितान्याहारार्थं वा देहक्षतसरो हणार्थं चात्मसुख प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यावष्टब्धाद्बहूना प्राणिनाम तिपाती नवति तदतिपाताच्च निरनुक्रोशतया नधर्मोनाऽप्यात्मसुखमित्युक्त नवति ॥ ८ ॥

जातिच वुड्ढिच विणासयते, बीयाइ अस्सजय आयदंमे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ९॥ गप्नाइ मिज्जति

मृषा वदति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइत्य स्माद्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेपेण सिद्धि सुगतिगमनादिका स्वर्गा वाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंभूता सायमपराण्हे विकालेवा प्रातः प्रत्यु षसि अग्नि स्पृशतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्नि तर्प्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलपंति । आहुश्च ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्त स्मादग्नि स्पृशतां कुकर्मिणामगारदाहककुंभकारायस्कारदीनां सिद्धि स्यात् । यदपि च म त्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतरा सुहृद प्रत्येष्यंति । यत कुकर्मिणा मप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुक र्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवा । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विष्टादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

> अपरिक्ख दिठ्ठ णहु एव सिद्धी,एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
> हिं जाण पडिलेह सात, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थण
> ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू॥ तम्हा
> विऊ विरतोआयगुत्ते, दठ्ठु तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिक्खदिठ्ठणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय (एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के०) ते अबुद्ध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धियें पाप करता थका घात पामशे (भूएहिंजाणपडिलेहसात के०) एवु जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जंके०) विद्वान् विवेकने (गहायके०) ग्रहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवु ज्ञानेकरी जाणे यडुक्त पढमनाणततंदया इतियवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउ नो उपमर्द्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मी के०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (भिक्खुके०) चारि त्रिउं (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दठ्ठुतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य तत् युक्तिविकलमुक्तं ।

तोगृहस्थ प्रव्रजितोवा तत्कर्मकारी गृहस्थएव सच हरितछेदं विधायात्मान दंमय तीत्यात्मदंड सद्हि परमार्थत परोपघातेनाऽऽत्मानमेवोऽपहृति । अथ शब्दोवाक्यालं कारे । आहुरेवमुक्तवतऽति दर्शयति । योहरितादिछेदकोनिरनुक्रोश सोऽस्मिन् लोकेऽ नार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी नवतीत्यर्थ· । सच एवनूतोयोधर्मोपदेशेनात्मसुखार्थं वा बीजान्यऽस्यचोपलक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकायं हिनस्ति सपापंडिकलोकोऽन्योवाऽनार्य धर्मा नवतीति सबध. ॥ ए ॥ साप्रतं हरितछेदकर्मविपाकमाह (गज्ञाइमिजतिइत्या दि) । इह वनस्पतिकायोपमर्दकाबहुषु जन्मसु गर्नादिकास्ववस्थासु कललार्बुदमी सपेशीरूपासु म्रियंते । तथा ब्रुवतोऽब्रुवतश्च व्यक्तवाचो ऽव्यक्तवाचश्च। तथा परेनरा· पं चशिखा कुमारा सतोम्रियते । तथा युवानोमध्यमवयस स्थविराश्च । क्वचित्पाठो (मज्झिमपोरुसायन्ति)। तत्र मध्यमामध्यमवयस (पौरुसायत्ति) । पुरुषाणा चरमाव स्थां प्राप्ताअत्यतवृद्धाएवेति यावत् । तदेव सर्वास्वप्यवस्थासु बीजादीनामुपमर्दका· स्वायुप क्षये प्रलीना सतोदेह त्यजतीति । एवमपरस्थावरजगमोपमर्दकारिणामप्य नियतायुष्कत्वमायोजनीयं ॥ १० ॥

सबुज्झहा जंतवो माणुसत्त, दहु नयं वालिसेण अलंनो ॥ एगं तडुक्के जरिएव लोए, सकम्मणा विप्परियासुवेइ ॥ ११ ॥ इहे गमूढा पवयंति मोक्ख, आहारसंपज्जणवज्जणेणं ॥ एगेयसी ढद गसेवणेण, हुएण एगे पवयति मोक्खं ॥ १२ ॥

अर्थ– (जतवो के०) अहो जीवो तमे (सबुज्झहा के०) बुझो जे (माणु सत्त के०) मनुष्यपणुं पामवुडुर्लनछे एम जाणो डुल्लहेखलुमाणुस्सेनवे इत्यादिक वचने बुजो एटले प्रतिबोध पामो (दहुनयबालिसेणअलनो के०) तथा नरक तिर्यचादिक गतिने विषे अनेक डु खछे तेनो नय देखीने बालिस एटले अज्ञान पणाने लीधे सद् विवेक पामवो डुर्लनछे एवीरीते जाणो (एगतडुक्केजरिएवलोए के०) तथा ए लोक एकात डुखीछे ज्वरित एटले जेम ज्वराक्रात जीव डु खी होय तेम ए सर्व लोक (सक म्मणाविप्परियासुवेइ के०) पोत पोताना कर्मरूप तापे करी व्याकुल थता संसा रमा विपर्यास एटले फरी फरी नाश पामेछे ॥ ११ ॥ (इहेगमूढापवयंति के०) अं हीं धर्म स्थापना अधिकारे कोइएक मूर्ख कुशील दर्शनी एम कहछे के (आहारसप ज्जणवज्जणेण के०) आहारेणसपचक एटले लवण तेने वर्जवा थकी (मोक्ख के०) मोक्षछे एटले सर्व रसनु सार लवणछे यत लवणाविहूणारसा इतिवचनात् तथा पाठां तरे (आहारपंचकवज्जणेण के०) आहारपंचकलवणपंचकंचेद आहार आश्री पां

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइत्यस्मा द्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिकां स्वर्गावाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंनूताः सायमपराण्हे विकालेवा प्रातः प्रत्यूषसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्निं तर्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलषंति । आहुश्चैव ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्तस्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामगारदाहककुंनकारायस्कारदीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मंत्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । यतः कुकर्मिणामप्यग्निकार्यं नस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि नस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुकर्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवाः । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विष्ठादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिरक दिठ्ठ णहु एव सिद्धी,एहिंति ते घायमवुज्ममाणा॥नूएहिं जाणं पडिलेह सातं, विज्जगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय निरकू॥ तम्हा विऊ विरतोआयगुत्ते, दठ्ठु तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिरकदिठ्ठणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय (एहिंतिते घायमवुज्ममाणा के०) ते अबुद्ध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धिये पाप करता थका घात पामशे (नूएहिंजाणपडिलेहसात के०) एवु जाणी करीने नूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जके०) विद्वान् विवेकने (गहायके०) ग्रहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवु ज्ञानेकरी जाणे यडुक्त पढमनाणतउदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउनो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंने सुखाभिलाषी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणंतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मीके०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (निरकके०) चारित्रिउ (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दठ्ठुतसेयापडिसंहरेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्ट युक्तिविकलमुक्तं ।

णिणो ॥ १ तथा । तएहाइहस्सपाण, कूरोडायस्सउक्काएतेत्ती ॥ दुरकसहसंपनुत्तं जरियमिवजगकलयलेऽ ॥१॥ इत्यत्र चैव नूतलोके आनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमुपैति सुखार्थी प्राएयुपमर्द कुर्वन् दुःख प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी ससार पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्त कुशीलविपाकोऽधुना तद्दर्शनान्यनिर्धीयंते । (ऽहेगेत्यादि) इहेति मनुष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽछादितमतय परैश्च मोहिता प्रकर्षेण वदति प्रतिपादयति । कितत् मोक्ष मोक्षावाप्तिं । केनेति दर्शयंति । आह्रियतइत्याहारउदनादिस्तस्य सपड्सपुष्टिता जनयतीत्याहरसपञ्चन लवण । तेन ह्याहारस्य रसपुष्टि क्रियते तस्य वर्जन तेनाऽऽहारसपञ्चनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्ष वदति । पाठातरवा । आहारसपंचयवज्जणेण आहारसलवणपंचकमाहाररसपचक । लवणपचकं चेदं । तद्यथा । सैंधव सौवर्चल विडं रौम सामुद्र चेति । लवणेन हि सर्वरसानामभिव्यक्तिर्नवति । तथाचोक्त । लवणविहूणायरसा, चरकुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिउ, सोरकसतोसरहियतो ॥ १ ॥ तथा लवण रसाना तैल स्नेहाना घृत मेध्यानामिति । तदेवनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोनवति तत्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येव केचन मूढा प्रतिपादयति । पाठातरवा आहारउपचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्मणि पचमी । आहारमाश्रित्य पचक वर्जयति । तथा लसण पलाडु करभीक्षीर गोमास मद्य चेत्येतत्पचकवर्जनेन मोक्ष प्रवदति । तथैके वारिनद्रकादयोनागवतविशेषा शीतोदकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिनोगेन मोक्षं प्रवदति । उपपत्ति च ते अनिदधति । यथोदकं वाह्यमलमपनयति एवमातरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाच्छुद्धिरुपजायते एव बाह्यशुद्धिसामर्थ्यदर्शनादातरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यते । तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्षं प्रतिपादयति । ये किल स्वर्गादिफलमनाशस्य समिधाघृतादि निर्द्रव्यविशेषैर्हुताशनं तर्पयति ते मोक्षायाग्निहोत्र जुह्वति । उपास्त्वन्युदयायेति । युक्ति चात्र ते आहु । यथा ह्यग्नि सुवर्णादीना मलं दहत्येव दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यातर पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोरको, खाररुस लोणस्स अणासएण ॥
ते मज्जमस लसणच भोच्चा, अन्नछवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पाय उदग फुसंता ॥ उदग
रुस फासेण सियाय सिद्धि, सिज्जसु पाणा बहवे दगसि ॥ १४॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे (पाउसिणाणादिसुके०) प्रातःस्नानादिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी (णत्थिमोरको के०) मोक्ष नथी के

जे धम्मलद्ध विणिहाय भुंजे, वियडेण साहटुय जे सिणाई॥जे धोवती लूसयतीव वत्त, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥२१॥ कम्मं परिन्नाय दगसि धीरे, वियडेण जीविज्ज आदिमोक्कं ॥ संबीय कदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ-(जे के०) जे शीतल विहारी (धम्म के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने ल द्ध के० लहीने (विणिहायभुजे के०) सनिधि करी जमे तथा (वियडेणसाहटुयजे सिणाइ के०) विकट एटले फासु पाणीये करी अगोपाग सकोची प्रासुक प्रदेशे बेशी देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा (जेधोवतीलूसयतीववत्तं के०) जे वस्त्र धोवे तथा लुसे एटले लाबुहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानु होय तेने साधी ने मोहोटु करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०) ते सयम थकी दूर वर्त्तेछे एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे ॥ २१ ॥ (कम्मपरिन्नायदगं सिधीरे के०) जे धीर बुधिमत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने (वियडे णजीविज्जयआदिमोक्क के०) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए (सबीयकदाइअभुज माणे के०) ते साधु बीज कदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान अभ्यंग उटगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही॥२२

॥ दीपिका-अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । (जेइति)। ये शीतलविहारिणोधर्मेण सु धिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोषरहितमाहार विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुज ते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि सकोच्यागानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नान कुर्वंति तथा ये वस्त्रं धावति प्रक्षालयति लूषयति शोभार्थं दीर्घं सच्छिदार्यं न्हस्व वा सधाय दीर्घं करोति (सेणागणिअस्स) निग्रथभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थंकृतआहु ॥ २१ ॥ उ क्ता. कुशीलाअथ सुशीलाउच्यते। धीरोबुद्धिमान् उदकारभे सति कर्म बध्यतइति प्रतिज्ञा य विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारण कुर्यात्। आदि ससारस्तस्मा न्मोक्षआदिमोक्ष ससारविमुक्तियावदित्यर्थ । अथवा धर्महेतूनामादिभूत शरीर तद्विमु क्तियावद्यावज्जीवमित्यर्थ । ससाधुर्बीजकदादीनभुजान स्नानादिषु विरत । आदिश ब्दादभ्यगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु वि रतोऽन्यास्त्रवेभ्योपि विरत कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका-साप्रतं स्वयूथ्या कुशीलाअनिधीयंतइत्याह।(जेधम्मलद्धमित्यादि) ये केच

णिणो ॥ १ तथा । तण्हाइद्दस्सपाण, कूरोव्वायस्सचुक्कएतेत्ती ॥ डु स्कसदसंपतुत्तं जरि यमिवजगकलयलेइ ॥१॥ इत्यत्र चैव नूतलोके अनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमु पैति सुखार्थी प्राण्युपमर्द कुर्वन् डु ख प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी ससार पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्त कुशीलविपाकोऽधुना तद्दर्शनान्यनिर्यीयंते । (इहेगेत्यादि) इहेति मनु ष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽच्छादितमतय परैश्च मोहिता प्रकर्षेण वदति प्रतिपादयति । कितत् मोक्षं मोक्षावाप्ति। केनेति दर्शयंति । आह्रियतइ त्याहारउदनादिस्तस्य सपङ्सपुष्टिस्ता जनयतीत्याहारसपज्ञन लवण । तेन ह्याहारस्य र सपुष्टि क्रियते तस्य वर्जन तेनाऽऽहारसपज्ञनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं वदति । पाठा तरवा । आहारसपचयवज्जणेण आहारसलवणपचकमाहारसपचक। लवणपंचकं चेदं । तद्यथा । सैंधव सौवर्चल बिड रौम सामुद्र चेति । लवणेन हि सर्वरसानामभिव्यक्तिर्नव ति । तथाचोक्त । लवणविहूणायरसा, चक्कुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिंडं, सोरकसंतोसरहियत्तो ॥ १ ॥ तथा लवण रसाना तेल स्नेहाना घृत मेध्यानामिति । तदे वनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोनवति तत्त्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येव केच न मूढा प्रतिपादयति । पाठातरवा आहारउपचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्म णि पंचमी। आहारमाश्रित्य पचक वर्जयति । तथा लसण पलाडु करनीक्षीर गोमांस मद्य चेत्येतत्पचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथैके वारिनद्रकादयोनागवतविशेषा शीतो दकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिनोगेन मोक्षं प्रवदति । उपपत्तिं च ते अनिदधति । यथोद क बाह्यमलमपनयति एवमातरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाच्छुद्धिरुपजायते एव बाह्य शुद्धिसामर्थ्यदर्शनादातरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यंते। तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्ष प्रतिपादयति । ये किल स्वर्गादिफलमनागस्य समिधाघृतादिनिर्द्रव्यविशेषैर्हुताशन तर्पयंति ते मोक्षायाग्निहोत्र जुह्वति । शेषास्त्वन्युदयायेति । युक्तिं चात्र ते आहुः । यथा ह्यग्नि सुवर्णादीना मलं दहत्येव दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यातर पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोरको, खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥
ते मज्जमस लसणच नोच्चा, अन्नत्थवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पाय उदग फुसंता ॥ उदग
स्स फासेण सियाय सिद्धि, सिज्जंसु पाणा बहवे दगसि ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे (पाउसिणाणादिसुके०) प्रात स्नाना दिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी (णत्थिमोरको के०) मोक्ष नथी के

रूचे तेने तेवो उपदेश आपे (अहाहुसे आयरियाणसयसेके०) ते पुरुषो आर्य धर्मने सो मे नागे उपलक्षणथकी सहस्र लाख क्रोडमे नागे पण पोहोचे नहीं एम श्री तीर्थकरादिक कहेले (जोलावएज्जा असणस्सहेकको०) तथा जे साधु आहार वस्त्रादिकोने अर्थे बीजाने मुखे पोताना गुण केवरावे लाल पाल करे तेपण कुशीलिया जाणवा ॥२४॥

॥ दीपिका–य कुशीलोमातर पितर वा उपलक्षणाद्भ्रातृदुहित्रादिकमपि हित्वा अगार गृह पुत्रमपत्य पशु हस्त्यश्वगोमहिष्यादिक धनं च त्यक्त्वा पुनर्हीनतया स्वादुकानि स्वादुनोजनवति कुलानि गृहाणि धावति गच्छति असौ श्रामण्यस्य श्रमणत्वस्य दूरे एवमाहुस्तीर्थकृत ॥ २३ ॥ य कुलानि स्वादुनोजनवति धावति गच्छति गत्वा निक्षार्थं प्रविश्य यद्यस्मै रोचते कथादिक तत्तस्याख्याति। किंनूत । उदरेऽनुगृद्ध उदरंनरणव्यग्र सआर्याणा उत्तमगुणानां शतांशे अधिवर्तते शतोपलक्षणात्सहस्रांशादेरप्यधिवर्तते । योऽशन स्यान्नस्य हेतु लापयति स्वप्रशसां करोति ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि कुशलानेवमधिकृत्याह । जेमायरचेत्यादि । ये केचनाऽपरिणतसम्यक्धर्माणस्त्यक्त्वा मातरच पितरच मातापित्रोर्दुस्त्यजत्वाडुपादान।अतोभ्रातृदुहित्रादिकमपि त्यक्त्वेति एतदपि द्रष्टव्य । तथा अगार गृह पुत्रमपत्य पशु हस्त्यश्वरथगोमहिष्यादिक बंधन च त्यक्त्वा सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थाय पचमहाव्रतनारस्य स्कधं दत्वा पुनर्हीनसत्वतया रससातादिगौरवगृद्धोय कुलानि गृहाणि स्वादुकानि स्वादुनोजनवति धावति गच्छति । असाऽसौश्रामण्यस्य श्रमणनावस्य दूरे वर्त्तते एवमाहुस्तीर्थकरगणधरादयइति ॥२३॥ एतदेव विशेषेण दर्शयितुमाह (कुलाइजेधावतीत्यादि) कुलानि स्वादुनोजनवति धावतिगच्छति)तथा गत्वा धर्ममाख्याति निक्षार्थवा प्रविष्टोयद्यस्मै रोचते कथासबंधस्त तस्याऽऽख्याति । किंनूतइति दर्शयति । उदरेऽनुगृद्धउदरानुगृद्ध । उदरनरणव्यग्रस्तुद परिमृजइत्यर्थ ।ऽदमुक्तं नवति। योह्युदरगृद्धआहारादिनिमित्त दानश्रद्धकाख्यानि कुलानि गत्वाऽऽख्यायिका कथयति सकुशीलइति। अथाऽसावाचार्यगुणाना वा शतांशे वर्ततइति। योह्यन्नस्य हेतु नोजननिमित्तमपरवस्त्रादिनिमित्त वा आत्मगुणानपरेणालापयेद्भाणयेत्। असावप्यार्यगुणाना सहस्रांशे वर्तते।किमग पुनर्य स्वतएवाऽऽत्मप्रशसा विदधातीति२४

णिक्खम्म दीणे परन्नोयणंमि, मुहमगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नी
वारगिद्धेव महावराहे, अदूरए एहइ घातमेव ॥ २५ ॥ अन्न
स्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पिय नासति सेवमाणे ॥ पास
त्थय चेव कुसीलयच, निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥

सिद्धिमुदाहरति, सायंच पायं अगणि फुसंता ॥ एव सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा, अगणि फुसंताण कुकंमिणंपि ॥ १८ ॥

अर्थ-(पावाइ कम्माइ पकुवतोहिके०) जे जीव प्रकर्षे करी जीव घातादिक अनेक पाप कृत्यो करी कर्म उपार्जीने पढी (सिउदगंतूजइतंहरिज्जाके०) सीतोदक एटले त्रिसंध्याये पाणीनो स्पर्श करी उपार्जित कर्मनो नाश करीने सिद्धिपामे तो (सिज्झंसुएगेदगसत्त घाती के०) पाणीने योगे करी कोइ एक जीवघातक एवा माछीगर प्रमुख पण सीजे (मुसं वयतेजलसिद्धिमाहु के०) तेमाटे जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते मृषावाद बोले छे ॥ १७ ॥ (हुतेणजे सिद्धिमुदाहरति के०) हुताशन जे अग्नि ते थकीजे मोक्ष कहेछे (सायंचपायं अगणिफुसता के०) एटले सध्या प्रनात अने मध्यान्हे एम त्रिसध्यायें अग्नीने फरसवे करी घृतादिकनु अग्नीनेविषे होम करवे करी सिद्धिछे एम अग्नी होत्री नामना दर्शनीउ कहेछे तेने पूछीये जे (एवसिया सिद्धिहवेज्जतम्हाके०) एम करवा थकी जो सिद्धि थति होय तो (अगणि फुसंताण कुकमिणपि के०) अग्नीना फरशनारा कुकर्मि एवा लोहकार अंगार दाहक कुंनकार नाडनूंजा सोनी प्रमुख ने पण मोक्ष प्राप्ति थवी जोइये केमके ए लोहकार प्रमुखतो सदा अग्नि तर्प्पण करता थकाज रहेछे माटे ते डुर्गतिमा नहीज जाय यद्यपि ते दर्शनीउ मन्त्रनु कारण देखाडे तो तेने एम कहेवु केजे अत्यत तमारा आज्ञाकारी होय ते एवु तमारु बोलवु प्रमाण करशे परतु अन्य जनो ए वात माने नही जेम तेम नस्म करणे सरखा तो मन्त्रेकरी शु विशेपछे॥१८॥

॥ दीपिका—पापानि कुर्वत· प्राणिनोयत्कर्म बध्यते तत्कर्म यदि जलमपहरेत् । यद्येव स्या त्तदा जलसत्वघातिनोजलप्राणिहिंसका सर्वे सिध्येयुर्नचैवमस्ति तस्माद्ये जलेन सिद्धिमा हुस्ते मृषावदति ॥१७॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादिवाक्यात् ये मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यक्षेपेण सिद्धि सद्गतिमुदाहरति वदति । किंनूता सायमपराएहे प्रात प्रनातेऽग्निं स्पृशतस्तर्पयत सिद्धिमिछति । एव यदि सिद्धि स्यात्ततस्तस्मादग्नि स्पृशता कुकर्मिणामगारकदाहककुनकारायस्कारादीना सिद्धि· कथ न स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका—अपिच (पावाइइत्यादि । पापानि पापोपादानन्नूतानि कर्माणि प्राण्युपमर्द कारीणि कुर्वतोसुमतोयत्कर्मोपचीयते तत्कर्म यद्युदकमपहरेत् । यद्येव स्यात् तर्हि य स्मादर्थे यस्मात्प्राण्युपमर्दकर्मोपादीयते जलावगाहनाच्चाऽपगछति तस्माडुदकसत्वघाति न पापन्नूयिष्ठाअप्येव सिद्ध्येयु । नचैतदृष्टमिष्टं वा । जलावगाहनात्सिद्धिमाहुस्ते

(किचअसुस्सेत्यादि) सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य वा कृतेऽन्यस्य वैहिकार्थस्य यस्त्रादे कृते अनुप्रियं नापते । यद्यन्य प्रिय तत्तस्य वदतोऽनुपश्चान्नापते अनुनापते । प्रतिशब्दकथ तु सेवकवद्रा राजाद्युक्तमनुवदतीत्यर्थ । तमेव दातारमनुसेवमानआहारमात्रगृद्ध सर्वे मेतत्करोतीत्यर्थ ।सचैवनूत सदाचारत्रष्ट पार्श्वस्थनावमेव व्रजति कुशीलता च गच्छति। तथा निर्गतएकातत· सारश्चारित्राख्योयस्य सनि सार । यदिवा निर्गतस्य सारोनि. सार सविद्यते यस्याऽसौ नि सारवान् पुलाकइव निष्कणोनवति यथा एवमसौ सय मानुष्ठान नि सारीकरोति । एवनूतश्चाऽसौलिंगमात्रावशेषोबहूना सयूथ्याना तिरस्कार पदवीमवाप्नोति परलोके च निकृष्टानि यातनास्थानान्यऽवाप्नोति ॥ २६ ॥

अन्नातपिंमेण हियासएज्जा, णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्दे
हि रूवेहि असज्जमाण, सव्वेहि कामेहि विणीय गेहि ॥२७॥ स
व्वाइ संगाइ अइच्च धीरे, सव्वाइ ऽक्खाइ तितिक्खमाणे ॥ अखिले
अगिद्धे अणिएयचारी, अनयं करे निक्खु अणाविलप्पा ॥२८॥

अर्थ—हवे सुशीलियानुं आचरण कहेछे (अन्नातपिंमेणहियासएज्जाके०) जे अ ज्ञात कुलने विषे पिंम एटले आहार पाणी लीये अत प्रात आहारे करी सयम पाले पण दीनपणु अगीकार करे नही (णोपूयणतवसाआवहेज्जा के०) तथा तपश्याये करी पूजा सत्कारने वाछे नही एटले राजादिकनी पूजाने निमित्ते तपश्या करे नही परतु आत्मार्थे करे यडुक्त इहलोगछयाएतवमाघहेज्जा इत्यादिक नाव जाणीने तथा (सद्दे हि के०) शब्दने विषे (रूवेहि के०) रूपने विषे (असज्जमाण के०) असद्यमान ए टले तत्पर नहोय अने (सव्वेहिकामेहिविणीयगेहि के०) सर्व कामने विषे गृद्ध पणु टालीने रागद्वेष नकरे तेने साधु जाणवो ॥ २७ ॥ (सव्वाइसगाइंअइच्च के०) सम स्त सग तेमा स्नेह ते अभ्यतर सग अने धन धान्यादिक बाह्य सग एबेप्रकारना सग थकी अतीत एटले रहित (धीरे के०) विवेकवान् (सव्वाइऽक्खाइंतितिक्खमाणे के०) तथा सर्व शारीरिक अने मानसिक ऽ ख तेने सहन करनार एटले परीसहोपसर्ग ज नित ऽ खनो सहन करनार (अखिले के०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सपूर्ण (अगिद्धे के०) कामनोगनी अनिलाष रहित तथा (अणिएयचारी के० अनियतचारी एटले अप्रतिबद्ध विहारी (अनयकरे के०) सर्व जीवने अनयनो करनार एवो (निक्खु के०) साधु ते (अणाविलप्पा के०) विषय कषाये करी अनाकुल एटले कषायने उपश मावते करी निर्मल थयोछे जेनो आत्मा एवो साधु महानुनाव जाणवो ॥ २८ ॥

यतो नैवमेव सिद्धि.।ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंत प्राणिघातेन संसारे च्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य नूते प्राणिनिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थिततत्व गृहीत्वा । कोर्थ । सर्वे जीवा सुखैषिणोडुःखद्विषश्च। नच सुखैषिणां डुःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १९ ॥ ते आरंनिणोनरकादिगतास्तनत्याक्रंदंति लु प्यंते छिद्यते खड्गादिनि। एवं पीड्यमानास्त्रसंति पलायते ।कर्माणि विद्यते येषांते कर्मि ण सपापा पृथक् जगाइति जंतव। एवं परिसंख्याय ज्ञात्वा निक्षुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरतं पापादात्मगुप्तोदांतात्मा त्रसान् स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रिया प्र तिसंहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका—उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषां सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिस्कंदिठमित्यादि । यैर्मुमुक्षुनिरुदकसंपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राण्युपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमाना प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वंतोघात्यंते वा व्या पाद्यंते नानाविधैः प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिनः संघातं संसारस्तमेष्यति। अप्कायतेजःकाय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं नावी विनाशस्तन्नाशेच संसारएव न सिद्धिरित्यनि प्राय । यतएव ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्वं गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्ज तुनिः कथं सांप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्तं नव ति। सर्वेऽप्यसुमंतः सुखैषिणोडुःखद्विषोनच तेषां सुखैषिणां डुःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यदिवा । (विक्कगहायत्ति) विद्याज्ञानं गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनिः करणनूतैः सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्तं ।(पढमं नाणं तवोदया एवं चिठ्इ सजए। अन्नाणीकिंकाही किंवाणाही छेयपावगमि त्यादि)॥ १९॥ ये पुनः प्राण्युपमर्देन सातमनिलषंतीत्यशीला कुशीलाश्च ते संसारे एवंविधाअवस्थाअनुनवंतीत्याह (थणंतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंनिणोनूतसं मारंनेण, सुखमनिलषंतोनारकादिगतिगतास्तीव्रडुःखैः पीड्यमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणाः स्तनंति केवलं करुणमाक्रंदंतीति यावत् । (तयालुप्पंतीति)। छि द्यंते खड्गादिनिरेव च कदर्थ्यमानास्त्रस्यंति प्रपलायते । कर्माण्येषां संतीति कर्मिण स पापाइत्यर्थः । तथा पृथक्जगाइति जंतवइति । एवं परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्षणशीलोनिक्षु साधुरित्यर्थः । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिणः संसारांतर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडितोवि रतः पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइर्थः । दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणीं क्रियां प्रतिसंहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

भारस्स जाता मुणि भुंजएज्जा, कखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू ॥
दुक्खेण पुठे धुयमाइएज्जा, संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥
अविहम्ममाणे फलगावतठी, समागमं कखति अंतकस्स ॥
णिधूय कम्म ण पवचुवेइ, अक्खक्खएवा सगडं तिबेमि ॥ ३० ॥
इतिश्री कुसील परिभासिय सत्तमाज्झयण सम्मत्त ॥

अर्थ-(भारस्सजातामुणि भुंजएज्जाके०) भार एटले संयम तेनी यात्रा निरवाह करवाने अर्थे चारित्रिउं शुद्ध निर्दोष आहार ग्रहण करे (कखेज्जपावस्सविवेगभिक्खू के०) तथा साधु पूर्वे आचरित पापकर्मनो विवेक एटले पृथक् नाव वांछे (दुक्खेणपुठेधुयमाइएज्जा के०) तथा परीसहादिक उपने थके दुःखने फरश्यो थको ध्रौव शब्दे संयम अथवा ध्रौव शब्दे मोक्ष तेने ग्रहण करे कोनीपेरे तोके (संगामसीसेवके०) जेम कोइक शूरवीर सुनटने संग्रामने मस्तके शत्रुये पराजव्यो थको (परंदमेज्जाके०) परते फरी शत्रुने दमन करे तेम चारित्रिउं कर्मरूप शत्रुथी उपना जे उपसर्ग अने परीसह तेथी पराजव्य पाम्यो थको पण कर्मने दमे अने आत्मस्वरूपने सावे ॥ २९ ॥ (अविहम्ममाणे के०) परीसहोपसर्गे हणातो थको पणते साधु सम्यक् अहियाशे कोनीपेरे तोके (फलगावतठीके०) फलग एटले पाटीआनीपेरे तिष्ठे एटले रहे जेम पाटीउं बन्ने पासे छेदातु थकुं पण राग द्वेष नकरे तेम साधुपण उपसर्ग परिसह उपने थके राग द्वेष रहित थको रहे (समागमकखतिअंतकस्स के०) अंतक एटले मृत्यु आववानो समागम वांछे अर्थात् पंमित मरण वांछे पण तपश्याये करी शरीर शोषवाने लीधे डुर्बलता पामवा थकी मनमा शंका तथा नय आणे नही (णिधूयकम्मणपवचुवेइके०) ज्ञानावर्णादिक अष्ट प्रकारना कर्म खपावीने वली प्रपंच एटले संसारने न पामे एटले मुक्ति पामे (अक्खक्खएवासगडतिबेमिके०) जेम अक्ष एटले धुरी तेना क्षय थकी गाडलु सम विषम मार्गे नचाले तेम साधु मोक्ष पहोता पछी संसार माहे पाछा आवे नही तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥३०॥इति कुशील परिनाषा नामे सातमा अध्ययननो अर्थ समाप्तथयो

॥ दीपिका-भारस्य संयमभारस्य यात्रानिर्वाहस्तदर्थं मुनिर्भुंजीत आहार गृण्हीयात् तथा भिक्षु पापस्य कर्मणोविवेकं विनाशं कांक्षेत् दुःखेन परीषहादिना स्पृष्ट सन् धूतं संयमं आददीत गृण्हीयात् यथा संग्रामशीर्षे कश्चित् सुनट परं शत्रुं दमयत्येवं साधु कर्मशत्रून् दमयेत् ॥ २९ ॥ परीषहैर्हन्यमान पीड्यमानोपि सम्यक् सहते । यथा फलकं वनाभ्यां पार्श्वाभ्यां तष्टं घटितं सत्तनु नवत्येव साधुरपि तपसा दुर्बलतनुः स्यात्

यतो नैवमेव सिद्धि । ते परमार्थमबुध्यमानाअजानत प्राणिघातेन ससारे भ्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सात सुख प्रत्युपेक्ष्य भूते प्राणिभिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थितत्व गृहीत्वा । कोर्थ । सर्वे जीवा सुखैषिणोदुःखद्विषश्च। नच सुखैषिणा दुःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुख स्यादिति ॥ १९ ॥ ते आरम्भिणोनरकादिगतास्तनत्याक्रंदंति लु प्यते छिद्यंते खड्गादिभि। एव पीड्यमानास्त्रसति पलायंते ।कर्माणि विद्यंते येषाते कर्मि ण सपापा पृथक् जगाइति जतव । एव परिसख्याय ज्ञात्वा भिक्षुस्तस्माद्विद्वान् पडितो निरत पापादात्मगुप्तोदात्तात्मा त्रसान् स्थावराश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तदुपघातक्रियां प्र तिसहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका—उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषा सामान्योपालंभइत्याह । (अ परिक्खदिट्ठमित्यादि । यैर्मुमुक्षुभिरुदकसपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राण्युपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमाना प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वतोघात्यते वा व्या पाद्यंते नानाविधै प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिन सघात ससारस्तमेष्यति। अप्कायतेज काय समारंभेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं भावी विनाशस्तन्नाशेच ससारएव न सिद्धिरित्यभि प्राय । यतएव ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्व गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्भूतैर्ज तुभि कथं सांप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतदुक्त भव ति । सर्वेऽप्यसुमत सुखैषिणोदुःखद्विषोनच तेषा सुखैषिणा दुःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्भवतीति । यदिवा । (विज्जगहायत्ति) विद्याज्ञान गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्भूतैर्जंतुभि करणभूतै सात सुख प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्त ।(पढम नाण तवोदया एव चिट्ठइ सजए। अन्नाणीकिकाही किंवाणाहीछेयपावगमि त्यादि) ॥ १९ ॥ ये पुन प्राण्युपमर्देन सातमभिलषतीत्यशीला कुशीलाश्च ते ससारे एवविधाअवस्थाअनुभवतीत्याह (थणतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंभिणोभूतस मारंभेण सुखमभिलषतोनारकादिगतिगतास्तीव्रदुःखै पीड्यमानाअसह्यवेदनाक्रातमा नसाअशरणा स्तनंति केवल करुणमाक्रंदतीति यावत् । (तथालुप्पतीत्ति) । छि द्यते खड्गादिभिरेव च कदर्थ्यमानास्त्रस्यति प्रपलायते । कर्माण्येषा सतीति कर्मिण स पापाइत्यर्थ· । तथा पृथक्जगाइति जतवइति । एव परिज्ञाय ज्ञात्वा भिक्षणशीलोभिक्षु साधुरित्यर्थ । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिण ससारातर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पडितोवि रत· पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइत्यर्थ । दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावराश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तदुपघातकारिणीं क्रिया प्रतिसहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

दंचेयंपवुच्चई के०) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे ॥ १ ॥ (कम्ममेगेपवेदंतिके०) एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्ठानरूप वीर्य कहेछे (अकम्मवावि के०) अथवा अकर्म एटले जीवनु सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारें वीर्य कहेछे (सुव्वयाके०) अहोसुव्रतो (एतेहिदोहिगणेहिं के०) एज बे स्थानके करी बल वीर्यना नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य जाणवो (जेहिदीसतिमच्चिया के०) जेने विषे व्यवस्थित सर्व मनुष्यो देखायछे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाष्टम । पूर्व कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यत स्यातामिति वीर्यमत्रो च्यते । (डुहेति) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्य सुष्टु आख्यात तीर्थकृदादिभि । इदं वीर्य द्विनेद प्रोच्यतइति । वीर्य जीवस्य शक्तिविशेष । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्व केन वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते। तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्य किंवा वीरत्वमित्याह । (कम्मेति) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयति ॥ अथवाऽष्टप्रकार कर्म कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते। तथाहि । नावनिष्पन्न कर्म उदयिकनावोपि कर्मोद यनिष्पन्नइति बालवीर्य १ द्वितीयनेदस्त्वय।कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनित जीव स्य सहज वीर्य। चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनित हेसुव्रताएवनूत पंडितवीर्य जानीत२ द्वाभ्यां द्वाभ्या स्थानाभ्या बालपंडितवीर्याभ्या व्यवस्थित वीर्यमित्युच्यते।येन्यो ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यते । तथाहि । अनेककार्यपूद्यमवत नर दृष्ट्वा वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोय मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्त सप्तममध्ययन साप्रतमष्टममारभ्यते ॥ अस्य चाऽयमनिसंबंध । इहा नंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूता श्रीसुशीला प्रतिपादिता ।तेषाच कुशीलत्व च सय मवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते तदने न संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽय ॥ (बालबालपंडितपंडितवीर्यनेदात्त्रिविधमपि वीर्य परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्यनिक्षेपाय निर्युक्तिकृदाह । (विरिएठक्कदवे, सचित्ताचित्तमीसगचेव ॥ डुपयचउप्पयअपय, एयंति विहतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) (विरिएठक्कमित्यादि) वीर्ये नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदा त् षोढा निक्षेप । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुएणे द्रव्यवीर्यं द्विधा ।आगमतो नोआगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र वाऽनुपयुक्त । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तसचित्ताचित्त मिश्रनेदात्त्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदनेदात् त्रिविधमेव। तत्र द्विपदाना अर्ह

यतो नेवमेव सिद्धि । ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंत प्राणिघातेन संसारे ऋमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सात सुख प्रत्युपेक्ष्य नूतं प्राणिनिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थितत्व गृहीत्वा । कोर्थ । सर्वे जीवा सुखैषिणोड खद्विषश्च। नच सुखैषिणा डःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १९ ॥ ते आरनिणोनरकादिगतास्तनत्याक्रंदंति लु प्यंते छियते खड्गादिनि । एव पीड्यमानास्त्रसति पलायंते ।कर्माणि विद्यते येषाते कर्मि ण सपापा पृथक् जगाऽति जतव । एव परिसख्याय ज्ञात्वा निक्षुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरत पापादात्मगुप्तोदातात्मा त्रसान् स्थावराश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रिया प्र तिसहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषा सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिस्कदिछमित्यादि । यैर्मुमुक्षुनिरुदकसपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राण्युपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमाना प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वतोघात्यते वा व्या पाद्यंते नानाविधै प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिन सघात संसारस्तमेष्यति । अप्कायतेज काय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्य नावी विनाशस्तन्नाशेच ससारएव न सिद्धिरित्यनि प्राय । यतएव ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्व गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्ज तुनि कथ साप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्त नव ति । सर्वेऽप्यसुमत सुखैषिणोड खद्विषोनच तेषा सुखैषिणा डःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यद्विवा । (विज्जगहायत्ति) विद्याज्ञान गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनि करणनूतै सात सुख प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्त ।(पढम नाण तवोदया एव चिठ्ठइ सजए । अन्नाणीकिंकाही किवाणाहीछेयपावगमि त्यादि) ॥ १९ ॥ ये पुन प्राण्युपमर्दन सातमनिलषतीत्यशीला कुशीलाश्च ते ससारे एवविधाअवस्थाअनुनवतीत्याह (थणंतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंनिणोनूतस मारंनेण सुखमनिलषतोनारकादिगतिगतास्तीव्रडःखै पीड्यमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणा स्तनति केवलं करुणमाक्रंदतीति यावत् । (तथालुप्पतीति) । छि द्यंते खड्गादिनिरेव च कदर्थ्यमानास्त्रस्यति प्रपलायते । कर्माण्येषा सतीति कर्मिण स पापाइत्यर्थ । तथा पृथक्जगाऽति जतवइति । एव परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्षणशीलोनिक्षु साधुरित्यर्थ । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिण ससारातर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडितोवि रत पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइत्यर्थ । दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावराश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणी क्रिया प्रतिसहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

र्थं पटुमतिना प्रोच्यमान नशक्नोति सांप्रतं परिणमयितु संनाव्यते त्वेपपरिकर्म्यमाण शक्नोत्यमुमर्थं परिणमयितुमिति । वाग्वीर्यमपि द्विविध । सनवे संनाव्येच । तत्र सनवे तीर्थकृता योजननिर्हारिणी वाक् सर्वस्वनावानुगताच । तथाऽन्येपामपि क्षीरमध्वास्रवादिलब्धिमतां वाच सौनाग्यमिति । तथा । हंसकोकिलादीना सनवति स्वरमाधुर्यं । संनाव्येतु सनाव्यते श्यामाया स्त्रियागानमाधुर्यं । तथाचोक्तं । श्यामा गायति मधुर, काली गायति खरच रुक्षचेत्यादि । तथा संनावयामएन श्रावकदारकमकृतमुखसंस्कारमप्यक्षरेपु यथावदनिलप्तव्येष्विति । तथा संनावयाम शुकसारिकादीना वाचोमानुपनापापरिणाम ।कायवीर्यमप्यौरस्य। यद्यस्य बलं तदपि द्विविध सनवे सनाव्येच।यथा चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्बाहुबलादिकायबलं । तद्यथा कोटिशिलात्रिपृष्टेन वामकरतलेनोध्दृता । यदिवा (सोलसरायसहस्साइत्यादि) यावदपरिमितबलाजिनवरेंदाइति। सनाव्येतु सनाव्यते तीर्थकरोलोक,मलोके कंडुकवत् प्रक्षेप्तु तथा मेरु दमवत्कृत्वा वहुधा छत्रकवद्धर्तुमिति । तथा मनाव्यते अन्यतरसुराधिपोजबूद्वीप वामहस्तेन छत्रवद्धर्तुमयत्नेनैव मदिरमिति ।तथा सनाव्यते अयं दारक परिवर्धमान शिलामेनामुध्दर्तुं हस्तिनं दमयितुमश्व वाहयितुमित्यादि । इंद्रियबलमपि श्रोत्रेंद्रियादिस्वविपयग्रहणसमर्थं पचधैकैक द्विविध सनवे सनाव्येच।सनवे यथा श्रोत्रस्य द्वादशयोजनानि विपय । एव शेपाणामपि योयस्य विपयइति । सनाव्ये तु यस्य कस्यचिदनुपहतेंद्रियस्य श्रांतस्य क्षुधस्य पिपासितस्य परिग्लानस्य वा अर्थग्रहणसमर्थमपि इंद्रियं सद्यथोक्तदोपोऽपशमे तु सति सनाव्यते विपयग्रहणायेति। साप्रतमध्यात्मिक वीर्यं दर्शयितुमाह । उज्जमधितीधीरत्त, सोडीरत्तखमायगनीर। उवयोग योगतव, संजमादियहोइअज्झप्पो (उज्जमधीत्यादि)। आत्मन्यधीत्यध्यात्म तत्र नवमाध्यात्मिकमातरशक्तिजनितं सात्विकमित्यर्थ । तच्चाऽनेकधा । तत्रोद्यमोज्ञानतपोऽनुष्ठानादिपूत्साह । एतदपि यथा योग सनवे सनाव्ये च योजनीयमिति । धृति सयमे धैर्यं चित्तसमाधानमिति । धीरत्व परीपहोपसर्गाक्षोभ्यता शौंडीर्यं त्यागसपन्नता पट्खडमपि जरत त्यजतश्चक्रवर्तिनोन मन कपते । यदिवाऽऽपद्यविपन्नता । यदिवा विपमेऽपिकर्तव्ये समुपस्थिते परानियोगमकुर्वन् मयैवैतत्कर्तव्यमित्येव हर्पायमाणोऽविपण्णोविधत्तइति । क्षमावीर्यंतु परैराक्रुश्यमाणोऽपि मनागपि मनसा नक्षोभमुपयाति नावयति । तद्यद । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थगवेपणे मति कार्या । यदि सत्य क कोप स्यादनृतं किंतु कोपेन ॥ ३ ॥ तथा (अक्कोसहणणमारण धम्मप्नसाण बालसुलनाण ॥ लान मन्नइ धीरो, जदुत्तराण अनावमि ॥१॥) गांनीर्यवीर्यं नाम परीपहोपसर्गैरधृष्यत्व । यदिवा यन्मनश्चमत्कारकारिण्यपि स्वानुष्ठाने अनौध्दत्य।उक्तच। (बुच्चुबलेइ जहे, इक्तणयं रित्तयं कणकणेइ। नरियाइ ण खुब्भती, सुउ

न शीतलविहारिणोधर्मेण सुविकया लब्ध धर्मलब्ध। उद्देशककीतकृतादिदोषरहितमित्य र्थ।तदेवनूतमप्याहारजात निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधि कृत्वा चुजते । तथा ये विकटेन प्रासुकोदकेनाऽपि सकोच्यांगानि प्रासुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नान कुर्वति । तथा योवस्त्रं धावति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोनार्थ दीर्घमुत्पाटयित्वा ऱ्हस्व करोति ऱ्हस्ववा सधा य दीर्घ करोति । एव लूपयति । तदेव स्वार्थ परार्थ वा योवस्त्र लूषयति।अथाऽसौ (णागणि यस्सत्ति) निर्ग्रंथनावस्य सयमानुष्ठानस्य दूरे वर्तते न तस्य सयमोनवत्येव तीर्थकरगण धरादयश्राहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ता कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूता शीलववत प्रतिपाद्यतइत्ये तदाह । (कम्मपरिणायइत्यादि) । धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगसित्ति) उद कसमारन्ने सति कर्मबंधोनवति । एव परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह । विकटेन प्रासुकोदकेन सोवीरादिना जीव्यात् प्राणसधारण कुर्यात् । चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्रासुकेनैव प्राणवृत्ति कुर्यात् । आदि संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्ष संसारविमुक्तियावदिति । ध र्मकारणाना तावदादिनूत शरीर तद्विमुक्ति यावज्जीवमित्यर्थ । किचाऽसौ साधुर्बीजकं दादीन् चुंजान ।आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यते । एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोनवति । कुतइति दर्शयति ।स्नानाच्यंगो द्वर्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीरतयाऽन्या सु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते । तथा स्त्रीषु च विरत वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रया गृह्यंते । यश्चैवनूत सर्वेन्योऽप्याश्रव द्वारेन्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न ससारे बच्रमीति । ततश्चन डुखित स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायर च पियर च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्म उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे, जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेमायरंच पियरचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पठी रसगृद्धियें आसक्त थता जिव्हालोलपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइ जेधावइ साउगाइके०) मोहोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थे जे च्रमण करे (अहाहुसेसामणि यस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेले ॥ २३ ॥ (कुलाइ जे धावइ साउगाइ के०) जे स्वाडक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी कर वाने जाय (आघातिधम्म उदराणुगिद्धके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

कर्म्म क्रियानुष्ठानमित्येतदेके वीर्यमिति प्रवेदयंति । यदिवा कर्माष्टप्रकारं कारणे कार्यो पचारात् तदेव वीर्यमिति ।तथा ह्यौदयिकभावनिष्पन्न कर्मेत्यपदिश्यते । औदयिकोपिच भाव कर्मोदयनिष्पन्नएव बालवीर्यं । द्वितीयभेदस्त्वय । न विद्यते कर्माऽस्येत्यकर्मा। वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहज वीर्यमित्यर्थ । चशब्दात् चारित्रमोहनीयोपशमज नितंच । हेसुव्रताएवभूतपंडितवीर्यं जानीत यूयं । आभ्यामेव द्वाभ्या स्थानाभ्या सकर्म काकर्मकापादितं बालपंडितवीर्याभ्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते । यकाभ्या ययोर्वा व्य वस्थितामर्त्येषु भवामर्त्या (दिस्सतइति) दृश्यंतेऽपदिश्यतेवा । तथाहि । नानाविधासु क्रियासु प्रवर्तमानमुत्साहबलसपन्नं मर्त्यं दृष्ट्वा वीर्यवानय मर्त्यइत्येवमपदिश्यते । तथा न दावारककर्मण क्षयादनतबलयुक्तोऽय मर्त्यइत्येवमपदिश्यते दृश्यतेचेति ॥ २ ॥

पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावरं ॥ तब्भावादेसउवावि, बा
लं पंडियमेववा ॥ ३ ॥ सत्थमेगेतु सिक्खंता, अतिवायाय पा
णिण ॥ एगे मंते अहिज्जंति, पाणभूयविहेडिणो ॥ ४ ॥

अर्थ–(पमायकम्ममाहंसु के०) श्रीतीर्थंकर देव प्रमादने कर्म कहेछे तेप्रमाद क हेछे मज्जंविसयकसाया निद्दाविहगाय पचमेभणियाइत्यादि (अप्पमायतहावरके०) तथा अप्रमादने अकर्म कहेछे (तब्भावादेसउवाविबालंपडियमेववा के०) जे प्रमादि थको कर्म करे ते बालवीर्य कहिए अने जे अप्रमादि थको कर्म करे ते पंडितवीर्य कहिए ते बाल अने पंडितवीर्य आवीरीतेछे अभव्यने अनादि अपर्यवसित अने भव्यने अना दि सपर्यवसित अथवा सादि सपर्यवसित जाणवो ॥ ३ ॥ (सत्थमेगेतुसिक्खता के०) कोइएक शस्त्र एटले खड्गादि हथीयार धनुष्य विद्यादिक शीखे अथवा शास्त्र एटले ज्योति षादिक शास्त्र तथा निमित्त वैद्यक औषध प्रमुख शीखे शावास्तेशीखेतोके (पाणिणके०) जीवोने (अतिवायायके०) अतिपात एटले विनाश करवाने अर्थ शीखे (एगेमतेअहिज्जंति के०) तथा कोइएक हिंसक मत्रादिक भणीने जे अथर्वणयाग अश्वमेध मनुष्य मेध अ जामेध प्रमुख करे ए (पाणके०) बेइंद्रियादिक त्रस जीव तथा (भूतके०) पृथिव्यादिक स्थावरजीव तेने (विहेडिणोके०) विविध प्रकारे हणवा निमित्ते पूर्वोक्त मत्रादि भणे ॥४॥

॥ दीपिका–प्रमादमेव कर्म आहुस्तीर्थंकृत ।कर्महेतुत्वात्प्रमाद कर्मैव।अप्रमाद चा परं कर्म आहु । कोर्थ । प्रमादात्कर्म बध्यते सकर्मणश्च क्रिया बालवीर्यं । तथा अप्रमत्त स्य कर्माभावस्तस्यच पंडितवीर्यं । तद्भावदेशत बालवीर्यस्य पंडितवीर्यस्य भावस्तेनादे शोव्यपदेशस्तत्र बालवीर्यमभव्यानामनाद्यनतं। भव्यानामनादिसातं सादिसांतं वा । पंडि

अर्थ–(णिरकम्मदीणेपरजोयणंमि के०) जे पोतानुं धनादिक ठामीने पछी परनो जनने विपे दीन एटले दयामणो थाय (उदराणुगिध्धे०) एम उदरगृध्यको रहेते (मुहमंगलिक के०) गृहस्थने वंदीजननी पेरे मुखेमंगलिक वचन कहे गृहस्थनी प्रस साकरे यत सोएसोजस्सगुणा, विरयतनवारियादसदिसासु, इहराकहासुच्चलि पच्चक्ख अच्छदिछोसि ॥ १ ॥ इत्यादिक वचन पेटनें अर्थे बोले (नीवारगिध्धेवमहावराहे के०) जे म महोटो सूअर नीवार एटले चावलना कणने विपे गृध्धतो (अदूरएएहइघातमेव के०) अदूर एटले तरत घात पामे तेम कुशीलिया पण आहार गृध्धता ससार माहे अनता मरण पामे ॥ २५ ॥ ते कुशीलिया (अन्नस्स के०) अन्नने अर्थे (पाणस्स के०) पाणीने अर्थे तथा (हलोइयस्स के०) अन्य वस्त्रादिकने अर्थे (अणुप्पियंभा सतिसेवमाणे के०) जेने जेवु गमतु होय तेना आगल तेवुज बोले सेवकनी पेरे जेम सेवक पोताना राजाने गमतु बोले तेम ए कुशीलिया पण बोले ते (पासत्थयचेवकुसी लयच के०) सदाचार थकी भ्रष्ट एवा पासत्थानो भाव तथा कुशीलियानो भाव पामे ते केवो थाय तोके (निस्सारएहोइजहापुलाए के०) नि सार थाय जेम पुलाक एटले धानना ठोतरा तूस नि सार होयछे तेम तेपण तेना सरखोज नि सार जाणवो ॥२६॥

॥ दीपिका–योनिष्क्रम्य प्रव्रज्य पराहारविपये दीन सन् वंदिवन्मुखमांगलिक स्या त् मुखेन परप्रशंसावाक्यानि वक्ति औदर्य प्रतिगृध्द । किमिव । नीवारोमृगादिभक्ष्यविशे पस्तत्र गृध्धआसक्तोयथा महावराह सूकर सकटे प्रविष्ट सन्नदूरएव शीघ्रमेव घात विनाशमेष्यति एवमसावपि कुशील ॥ २५ ॥ सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य ऐहिकार्थस्य व स्त्रादे कृतेतु प्रियं भापते ऽनुकूलंवक्ति सेवकवत्सेवमानएवभूतश्च पार्श्वस्थता कुशील ता च गच्छति नि सारोभवति यथा पुलाकस्तुप ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंच (णिरकमेत्यादि) । योह्यात्मीयं धनधान्यहिरण्यादिकं त्यक्त्वा निष्क्रां तोनिष्क्रम्य च परभोजने पराहारविपये दीनोदैन्यमुपगतोजिव्हेन्द्रियवशादार्तोवंदिवन्मु खमांगलिकोभवति । मुखेन मंगलानि प्रशंसावाक्यानि ईदृशस्तादृशस्त्वमित्येव दैन्य भावमुपगतोवक्ति । उक्तंच । सोएसोजस्सगुणा, वियरतनवारियादसदिसासु । इहराक हासु सुच्चसि, पच्चक्खअच्छदिछोसि । इत्येवमौदर्य प्रतिगृध्दोऽ ध्युपपन्न । किमिव । नीवा र सूकरादिमृगभक्ष्यविशेपस्तस्मिन् गृध्धआसक्तमनागृहीत्वा च स्वयूथ महावराहोम हाकाय सूकर । एवकारोऽवधारणे । अवश्य तस्य विनाशएव नाऽपरा गतिरस्तीति । ए वमसावपि कुशीलआहारमात्रगृध्द ससारोदर पौन पुन्येन विनाशमेवैति ॥ २५ ॥

माइणो कट्टु मायाय,कामभोगे समारभे ॥ हंता छेत्ता पगब्भित्ता आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसाचेव, कायसा चेव अतसो ॥ आरऊ परऊ वावि, डुहाविय असंजया ॥ ६ ॥

अर्थ–(माइणोकट्टुमायायके०) कोइएक मायावि पुरुष माया केळवीने (कामभोगेसमारभेके०) शब्दादिक विषय रूप कामभोगनो समारभ करे एटले पोतानाचित्तने विषे आशक्त थता काम सेवना करे एवा ते (आयसायाणुगामिणोके०) पोताना आत्म सुखना अर्थि विषय गृद्ध थता (हताछेत्ता पगब्भित्ता के०) जीवना हणनार तथा अगोपागना छेदनार तथा पेटना कापनार थाय ॥ ५ ॥ (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी चेव पदपूर्णार्थेछे अने (कायसा के०) कायाये करी (अंतसोके०) आशक्त थता तंडुल मच्छनी पेरे कर्म बाधता तथा(आरऊके०) आरत आलोकने विषे (परऊवाविके०) अथवा परलोकने विषे पण (डुहाविय के०) ए बन्ने लोकने विषे कृत्य कारीत पणे करी ते जीव घातना करनार पुरुष निश्चें थकी (असजया के०) असयति जाणवा ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–मायाविनोमाया परवचनानि कृत्वा कामभोगान् समारभते सेवते । तदेवमात्मना सातानुगामिन स्वसुखलिप्सव प्राणिना हतार स्यु । तथा छेत्तार कर्णनासादे प्रकर्तयितार पृष्ठोदरादे ॥ ५ ॥ मनसा वाचा कायेन अंतश कायेनाशक्तोपि तंडुलमत्स्यवन्मनसैव कर्म बध्नाति तथा आरत परतश्चेति इह लोकपरलोकयोर्द्विधापि कृतकारिताभ्या च सयताजीवोपघातकारिण ॥ ६ ॥

॥ टीका–(अधुना सत्थमित्येतत्सूत्रपद सूत्रस्पर्शिकया निर्युक्तिकार स्पष्टयितुमाह । सत्थमसिमादीय, विज्जामतेयदेवकय । पत्रीवकरुणअग्गेय, वायुतहमीसगचेव।)(सत्थमित्यादि) शस्त्र प्रहरण तच्चाऽसि खड्गादिस्तदादिक तथा विद्याधिष्ठित मत्राधिष्ठित, तदेव कर्मकृत दिव्यक्रियानिष्पादित। तच्च पचविध । तद्यथा । पार्थिव वारुणमाग्नेय वायव्य तथैव व्यादिमिश्र चेति । किचाऽन्यत् । माइणोइत्यादिसूत्र । माया परवचनादिका बुद्धि सा विद्यते येषाते मायाविनस्तएवभूतामाया परवचनानि कृत्वा एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणादेव क्रोधिनोमानिनोलोभिन सत कामान् इच्छारूपान् तथा भोगाश्च शब्दादिविषयरूपान् समारभते सेवते । पाठातरवा (आरभायेतिवट्टइ) त्रिनिर्मनोवाक्कायैरारभार्थं वर्तते । बहून् जीवान् व्यापादयन् बध्नन् अपध्वसयन् आज्ञापयन् भोगार्थी वित्तोपार्जनार्थं प्रवर्त्ततइत्यर्थ । तदेवमात्मसातानुगामिन स्वसुखलिप्सवोडुःखद्विषोविषयेषु गृद्धा कषायकलुषितातरात्मान सतएवभूतानवैति । तद्यथा । हता

॥ दीपिका—अज्ञातपिंड अत प्रांत अज्ञातेन्य पूर्वापराऽपरिचितेन्य कुलेन्यवंछ वृत्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहे वर्तयेत् नच तपसा पूजन सत्कारमावहेत् नसत्कारार्थी त प· कुर्यादित्यर्थ । यडुक्तं । परलोकादिकं धाम, तप श्रुतमिति व्दयं ॥ तदेवार्थित्वनिर्लुप्त सारं तृणलवायते इति । शब्दैर्मनोज्ञैरूपैश्वासज्जन् आसक्तिमकुर्वन् सर्वैरपि कामैरिच्छाम दनैर्गृद्धि विनीय त्यक्त्वा संयममनुपालयेत् ॥२७॥ सर्वान् सगानतीत्य त्यक्त्वा धीरोवि वेकी सर्वाणि डु खानि परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽविसहन् अखिलोज्ञाना दिसंपूर्णोऽगृद्ध कामेष्वनियतचारी अप्रतिबद्धविहारी जीवानामनयंकरोनिक्षु सा धुरनाविलात्मा निष्कषायात्मा सुशील स्यात् ॥ २७ ॥

॥टीका—उक्ता कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूतान् सुशीलान् प्रतिपादयितुमाह।(अन्नातपिंडेत्या दि) अज्ञातश्चाऽसौ पिंडश्चाऽज्ञातपिंम अंत प्रातइत्यर्थ ।अज्ञातेन्योवा पूर्वापरासंस्तुतेन्यो वा पिंमोऽज्ञातउंछवृत्त्या लब्धस्तेनात्मानमभिसहेत् वर्तयेत् पालयेत् । एतडुक्त नवति अतप्रातेन लब्धेनाऽलब्धेन वा न दैन्य कुर्यात् । नाऽप्युत्कृष्टेन लब्धेन मद विदध्यात् । नाऽपि तपसा पूजनसत्कारमावहेत् न पूजनसत्कारनिमित्तं तप कुर्यादित्यर्थ । यदिवा पूजासत्कारनिमित्तत्वेन तथाविधार्थित्वेन वा महतापि केनचित्तपोमुक्तिहेतुक न नि सार कुर्यात् । तडुक्तं । परलोकाधिक धाम तप श्रुतमिति व्दयं ॥ तदेवाऽर्थित्वनिर्लुप्तसार तृण लवायते । तथा च रसेषु गृद्धि न कुर्यात् । एव शब्दादिष्वपीति दर्शयति । शब्दैर्वेणुवीणा दिनिराक्षिस संस्तेष्वसज्जन्नासक्तिमकुर्वन् कर्कशेषुच व्देषमगच्छन् तथा रूपैरपि मनोज्ञेतरै रागव्देषमकुर्वन् । एव सर्वैरपि कामैरिच्छामदनरूपै सर्वेन्योवा कामेन्यो गृद्धि विनीयाऽपनीय सयममनुपालयेदिति । सर्वथा मनोज्ञेतरेषु विषयेषु रागव्देष न कुर्यात् । तथाचोक्तं।सद्दे सुयनद्दयपावएसुसोयविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ १ ॥ रूवेसुयनद्दयपावएसुचक्कुविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥२॥ गंधेसुयनद्दयपावएसु, घाणविसयमुवगएसु । तुठेण० ॥ ३ ॥ नरकेसुयनद्दयपावएसु, रस ण विसयमुवगएसु, तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्व ॥ ४ ॥ फासेसुयनद्दयपावए सु, फासविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयानहोयव्व ।' ५ ॥ २७ ॥ यथाचे न्द्रियनिरोधोविधेयएवमपरसगनिरोधोऽपि कार्यइति दर्शयति (सव्वाइइत्यादि) सर्वान् वा ह्याश्र्य इव्यपरिग्रहलक्षणानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डु खानि शारीरमानसानि त्यक्त्वा परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन्नऽखिलोज्ञानदर्शनचारित्रै सपू र्णस्तथा कामेष्वगृद्धस्तथा नियतचारी अप्रतिबद्धविहारी तथा जीवानामनयकरोपि निक्षणशीलोनिक्षु साधुरेवमनाविलोविषयकषायैरनाकुलआत्मा यस्याऽसावनाविला त्मा सयममनुवर्त्ततइति ॥ २७ ॥

स्पर्शाअसातोदयविपाकिनोनवतीति ॥ ७ ॥ किंचाऽन्यत्सपराइयणियहंतीत्यादि) द्विविध कर्म ईर्यापथं सांपरायिकंच । तत्र संपरायाबादरकषायास्तेन्यआगत सांपरायिक तज्जीवोपमर्दकत्वेन वैरानुषंगितयाऽऽत्मदुष्कृतकारिण स्वपापविधायिन सतोनियबं ति बध्नति । तानेव विशिनष्टि । रागद्वेषाश्रिता कषायकलुषितातरात्मान सदसद्विवेक विकलत्वात् बालाऽव बालास्ते चैवनूता पापमसद्वेद्यं बन्हनत कुर्वति विदधति ॥७॥

एय सकम्मवीरियं, बालाणं तु पवेदित॥इत्तो अकम्मविरिय, पं मियाणं सुणेहमे ॥७॥ दविए वधणुम्मुक्के, सवउ छिन्नवंधणे ॥ प णोल्लपावकं कम्मं,सल्लं कंततिअतसो पाठांतरे सल्लकंतंति अप्पणो१०

अर्थ-(एयसकम्मवीरिय के०) एपूर्वोक्त अनुक्रमे सकर्म वीर्य कह्यो ते कर्म बाधवा नु कारणछे माटे ए (बालाणतुपवेदित के०) ए बालनु वीर्य कह्यु (इत्तो के०) ए बालवीर्य कह्यानतर (अकम्मविरिय के०) अकर्म वीर्य ते (पमियाणसुणेहमे के०) पमितनु वीर्य जाणवो ते हु कहुंछुं माटे हे शिष्यो तमे सानलो ॥७॥ (दविएके०) मुक्ति गमन योग्य एवो जीव द्रव्य (बंधणुके०) राग द्वेष रूप जे कषाय तेथकी(मुक्केके०) मुक्त ए टले रहित (सवउछिन्नबधणे के०) सर्वथा प्रकारे कर्म बधननो छेद्य करनार एवोछतो (पणोल्लपावककम्म के०) पाप कर्मने क्षय करी (सल्लकततिअतसो के०) जेने पामीने जीव समस्त सल्य कापे अथवा पाठांतरे (सल्लंकततिअप्पणोके०)पोताना शल्य कापे॥१०॥

॥ दीपिका-तत् पूर्वोक्त बालाना सकर्मवीर्य प्रवेदित । यथा जमदग्निना स्वनार्यायामकार्य प्रवृत्त कृतवीर्योव्यापादितस्तत्पुत्रेण कार्तवीर्येण जमदग्निर्हत पुनर्जमदग्निपुत्रेण परशु रामेण सप्तवारान् क्षत्रियाहता पुन कृतवीर्यसुतेन सुनूमेन त्रि सप्तवारान् ब्राह्मणाह ताइति बालाना कर्मवीर्यमिति । ऽतऊर्ध्वमकर्मवीर्य पंडिताना तन्मे मम कथयत शृ णुत यूयं ॥ ७ ॥ द्रव्योनव्योमुक्तियोग्योऽकषायीत्यर्थ । बधनोन्मुक्त कर्मरहित सर्वत श्छिन्नबधन सूक्ष्मबादरकषायमुक्त प्रणुद्य प्रेर्य पाप कर्म तत्कारणनूतान् आश्रवान् वा त्यक्त्वा शल्यतुल्यमशेष कर्म कंतत्यपनयति ॥ १० ॥

॥ टीका-एव बालवीर्य प्रदर्श्योपसजिघृक्षुराह । (एयसकम्मेत्यादि) । एतत् यत् प्राक् दर्शितं । तद्यथा । प्राणिनामतिपातार्थ शस्त्र शास्त्रं वा केचन शिक्षते । तथा परे विद्याम त्रान् प्राणिबाधकानधीयते । तथाऽन्येमायाविनोनानाप्रकारा माया कृत्वा कामनोगार्थ मारंनान् कुर्वते । केचन पुनरपि परे वैरिणस्तत्कुर्वति येन वैरैरनुबध्यते । तथाहि । जमदग्निना स्वनार्याकार्यव्यतिकरे कृतवीर्योविनाशि तत्पुत्रेणतु कार्तवीर्येण, जमदग्नि-

अरक्तद्विष्टश्च मृत्यो समागम प्राप्तिमाकाङ्क्षेत अष्टप्रकार कर्म निर्धूयापनीय प्रपंच संसार नोपैति नयाति । यथा अक्षस्य क्षये विनाशे सति शकट समविषमपथरूपं प्रपच याति उपष्टनकारणाभावात् एव साधु कर्मक्षये ससार नयातीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्त कुशीलपरिज्ञाख्य सप्तमाध्ययन ॥

॥ टीका–किचाऽन्यत् (भारस्सजाताइत्यादि) । सयमभारस्य यात्रार्थ पंचमहाव्रत भारनिर्वाहणार्थ मुनि कालत्रयवेत्ता भुजीत आहारग्रहण कुर्वीत । तथा पापस्य कर्मण पूर्वचरितस्य विवेक पृथग्भाव विनाशमाकाङ्क्षेद्भिक्षु साधुरिति । तथा दुःखय तीति दु ख परीषहोपसर्गजनितापीडा तेन स्पृष्टोव्याप्त सन् धूत सयम मोक्षंवा आद दीत गृह्णीयात् । यथा सुभट कश्चित् सग्रामशिरसि शत्रुभिरभिद्रुत पर शत्रु दमयति । एव पर कर्मशत्रु परीषहोपसर्गाभिद्रुतोदमयेदिति ॥ २९ ॥ अपिच (अविहम्ममाणे त्यादि) परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि सम्यक् सहते । किमिव । फलकवदवकृष्ट । यथा फ लकमुभाभ्यमपि पार्श्वाभ्या तष्ट घट्टित सत्तनु भवति अरक्तद्विष्ट वा संभवत्येवमसा वपि साधु सबाह्याभ्यतरेण तपसा निष्टप्तदेहस्तनुर्दुर्बलशरीरोऽरक्तद्विष्टश्चातकस्य मृत्यो· समागमं प्राप्तिमाकाङ्क्षत्यभिलपति । एव चाऽष्टप्रकार कर्म निर्धूयाऽपनीय नपुन प्रपंच जातिजरामरणरोगशोकादिक प्रपच्यते । बहुधा नटवद्यस्मिन् सप्रपच ससारस्त नोपैति नयाति । दृष्टातमाह । यथा ऽक्षस्य क्षये विनाशे सति शकट गत्यादिक समविष मपथरूप प्रपचमुपष्टनकारणभावान्नोपयाति । एवमसावपि साधुरष्टप्रकारस्य कर्मण क्षये ससारप्रपच नापयातीति । गतोऽनुगमोऽनया।पूर्ववदिति शब्द परिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तंच कुशीलपरिज्ञाख्य सप्तमाध्ययन ॥

हवे आठमु वीर्याध्ययन कहेछे सातमाअध्ययनमा कुशीलियानो आचार कह्यो ते आचार सयमनेविषे वीर्यांतराय कर्मना उदय थकी थायछे तेमाटे आ अध्ययनमां सु शीलियानो वीर्य देखाडेछे तेथी ए अध्ययननु नाम वीर्याध्ययनछे

दुहावेय सुयक्खाय,वीरियंति पवुच्चई॥ किंनु वीरस्स वीरत्त, कह
चेय पवुच्चई ॥१॥ कम्ममेगे पवेदेति,अकम्म वावि सुव्वया॥ एते
हि दोहि ठाणेहि, जेहि दीसति मच्चिया ॥ २ ॥

अर्थ–(दुहावेयसुयक्खाय के०) तेजजो वीर्य पराक्रम बे प्रकारे श्रीजिनेश्वरे कह्युंछे (वीरियतिपवुच्चई के०) तेवीर्य प्रकर्षे करी कहिएछैये (किंनुवीरस्सवीरत्त के०) तु एवा वि तर्के करी वीर नामा सुभटनु केवु वीर पणु अने केवीरीते ए वीर केवायछे तथा (क

तथा मांमलिकादिकना स्थानछे तिर्यचने विपे पण क्याएक इष्टनोग जूम्यादिक स्थानछे ते सर्व स्थानने (चऽस्सति के०) गंमशे (णसंसऊ के०) एमा संदेहकरवो नही तथा (णायएहिं के०) ज्ञाति गोत्री (सुहीहिया के०) सुहृद एटले बाधवादिक (अणियतेअयवासे के०) ए सर्वनु अनित्य अशाश्वत एवो वासछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–नैय्यायिकं मोक्षनयनशील श्रुताख्यात धर्ममुपादाय गृहीत्वा समीहते सम्यक् मोक्षाय ईहते चेष्टते जूयोजूय पुन पुन डु खावास बालवीर्यवान् स्यात् यथाय था बालवीर्यवान् स्यात तथातथाऽशुनत्व डुर्ध्यान प्रवर्धते ततश्च नरकादिडु ख ॥११॥ स्थानानि विद्यते येषांते स्थानिनोदेवलोकादिशुनस्थानवर्तिन स्थानानि त्यक्ष्यं ति नात्र सशयोऽशाश्वतत्वादिन्द्रचक्रित्वादीना । यत । सुचिरतरमुषित्वा बाधवैर्वि प्रयोग सुचिरमपि हि रत्वा नास्ति जोगेषु तृप्ति ॥ सुचिरमपि हि पुष्ट याति नाश शरीर, सुचिरमपि विचिंत्योधर्मएक सहाय ॥ १ ॥ इतिज्ञातकै स्वजनै सुहृद्भिश्च सहवासोय मनियत कियत्कालस्थायी ननित्य ॥ १२ ॥

॥ टीका–यडुपादाय शल्यमपनयति तद्दर्शयितुमाह । (नेयाउयमित्यादि) नयनशी लोनेता । नयतेस्ताच्छीलिकस्तृन् । सचाऽत्र सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोमोक्षमार्ग श्रु तचारित्ररूपोवा धर्मोमोक्षनयनशीलवान् गृह्यते । मार्ग धर्म वा मोक्ष प्रति नेतार सुष्टु तीर्थकरादिनिराख्यातं स्वाख्यात तमुपादाय गृहीत्वा सम्यक् मोक्षाय चेष्टते ध्यानाध्य नादावुद्यम विधत्ते ।धर्मध्यानारोहणालबनायाह । जूयोजूय पौन पुन्येन यद्बालवीर्य त दतीतानागतानतनवग्रहणेषु डु खमावासयतीति डु खावास वर्तते ।यथा यथाच बाल वीर्यवान् नरकादिषु डु खवासेषु पर्यटति तथातथा वास्याऽशुनाध्यवसायित्वाद् शुतमेव प्रवर्धते इत्येव ससारस्वरूपमनुपेक्ष्यमाणस्य धर्मध्यान प्रवर्ततइति ॥ ११ ॥ सां प्रतमनित्यनावनामधिकृत्याह । (गणीविविहेत्यादि) । स्थानानि विद्यते येषांते स्थानिन । तद्यथा देवलोके इङ्स्तत्समानानि त्रयस्त्रिंशत्पार्षद्यादीनि मनुष्येष्वपि च क्रवर्तिबलदेववासुदेवमहामंडलिकादीनि । तिर्यक्ष्वपि यानि कानिचिदिष्टानि जोगनू म्यादौ स्थानानि तानि सर्वाण्यपि विविधानि नानाप्रकाराण्युत्तमाधममध्यमानि तेषु स्था निनस्त्यक्ष्यति नात्र सशयोविधेयइति । तथाचोक्तं । अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दि वि चेह च देवासुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानिच तथाऽय ज्ञातिनि सहधुनि सार्ध सहान्यै श्च मित्रैः सुहृद्भिर्य सवास सोऽनित्योऽशाश्वतइति । तथाचोक्त । सुचितरमुषित्वा बांध वैर्विप्रयोग सुचिरमपिहि रत्वा नास्ति जोगेषु तृप्ति । सुचिरमपि हि पुष्ट याति नाशं शरीर॥

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीना यद्वीर्य स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्य तदिह द्रव्यवीर्यत्वेन ग्राह्य । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीना सिंहव्याघ्रशरजादीनां वा परस्य यद्वोढव्ये धावने वा वीर्य तदिति । तथाऽपदाना गोशीर्षचदनप्रभृतीना शीतोष्णकालयोरुष्णशीतवीर्य परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्त पुणविरयं, आहारावरणपहरणा दीसु ॥ जहउसहीणजणिय, विरिय रसवीरियविवागो ॥ १ ॥ (अचित्तपुणेत्यादि) अचित्तद्रव्यवीर्य त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्य तदुच्यते । तत्राऽऽहारवीर्य सद्य प्राणकरा ह्याघृतपूर्णा कफापहाइत्यादि । ऊषधीना च शल्योद्धरणसरोहणविषापहारमेधाकरणादिक रसवीर्य विपाकवीर्य च । तदुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्राभृतकान्नानाविध द्रव्यवीर्य द्रष्टव्यमिति । तथा।आवरणेकववादी, चक्कादीपसपहरणेहोति ॥ खित्तमि जमि खेत्ते,काले ज जमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कवचादीना प्रहरणे चक्रादीना यद्भवति वीर्य तदुच्यतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्य गाथापश्चार्धेन दर्शयति । क्षेत्रवीर्यतु देवकुर्वादिक क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि द्रव्याणि तदतर्गतान्युत्कृष्ट वीर्यवति भवति । यद्वा दुर्गादिक क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोभवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्य व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एव कालवीर्यमप्येकातसुखमादावाऽऽयोज्यमिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृत, शरदिजल गोपयश्चहेमते ॥ शिशिरे चामलकरसो, घृतवसंते गुडश्चाऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडा सुसैंधवयुता मेघावनद्धेंबरे, तुल्या शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण सयोजिता, पुसा प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यतु ते शत्रव ॥ १ ॥ भाववीर्यप्रतिपादनायाह । (भावोजीवस्स सवीरियस्स विलयमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिदिय अज्झप्पिएसु बहुसोबहुवीहिय (भावोजीवस्सेत्यादि) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्य विषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि भवमौरस्य शारीरबलमित्यर्थ । तथेंद्रियबलमाध्यात्मिक बलं बहुशोबहुविध द्रष्टव्यमिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (मणवइकालाआणा पाणुसंभवतहायसभवे । सोत्तादीणं सद्दा, दिएविसएसुगहणच ॥ ४ ॥ (मणवइत्यादि) आतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुद्गलात्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति भाषायोग्यान् भाषात्वेन परिणमयति काययोग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीना तद्भावपरिणताना यद्वीर्य सामर्थ्यं तद्द्विविध । सभवे सभाव्येच । सभवे तावत्तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकानाच सुराणामतीव पटूनि मनोद्रव्याणि भवति । तथाहि । तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकसुरमन पर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य द्रव्यमनसैव करणात् । अनुत्तरोपपातिकसुराणाच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । सभाव्ये तु योहि यम

यति। सहसम्मत्या स्वमत्यावा विशिष्टाभिनिबोधिकज्ञानेन श्रुतज्ञानेनावधिज्ञानेन वा स्वप रावबोधकत्वात् ज्ञानस्य तेन सह धर्मस्य सार ज्ञात्वेत्यर्थ । अन्येन्योवा तीर्थंकरगण धराचार्यादिभ्यइलापुत्रवत् श्रुत्वा चिलातपुत्रवद्वा धर्मसारमुपगच्छति । धर्मस्य वा सार चारित्रं तत्प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तेश्च पूर्वोपात्तकर्मक्षयार्थ पंडितवीर्यसंपन्नोरागादिबंधन विमुक्तोबालवीर्यरहितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तये समुपस्थितोऽनगार प्रवर्धमानपरिणामः प्र त्याख्यात निराकृत पापक सावद्यानुष्ठानरूप येनाऽसौ प्रत्याख्यातपापकोभवतीति ॥१४॥

ज किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ॥ तस्सेव अंतरा खिप्प, सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ॥१५॥ जहा कुम्मे सअंगाइ, स ए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

अर्थ-(जकिच के०) जे कोइ प्रकारे करी (अप्पणो के०) पोतानो (आउक्खेम स्सके०) खेमे कुशले करी आयुष्यनो (उवक्कमजाणेके०) उपक्रम एटले विनाश जाणे अर्थात् पोतानु मरण जाणे (तस्सेवअंतराखिप्पके०) तेना अंतराले एटले विचाले क्षिप्र एटले उतावलो (सिक्खसिक्खेज्जपंडिएके०) ते पंडित सलेषणारूप शिक्षा शीखे अने ते शि क्षाने मरणावधि सुधि अगीकार करे ॥१५॥ (जहाके०) जेम (कुम्मेसअंगाइके०) काचवो पोताना अंग तथा हाथ मस्तकादिक उपागने (सएदेहेसमाहरे के०) पोताना देहने विषे गोपवे (एव के०) एरीते (मेधावी के०) पंडितजे छे ते पण (पावाइ के०) पापजे सावद्यानुष्ठान रूप तेने (अज्झप्पेण के०) अध्यात्म एटले सम्यक् दर्शन ज्ञा नादिक भावनाये करी (समाहरे के०) उपसहरे एटले मरण काल सुधी सलेष णायें करी पापकर्मने निर्ज्जरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-आयु क्षेमस्य स्वायुषउपक्रम क्षय जानीयात् ज्ञात्वा च तस्योपक्रमस्य कालस्य वा अतराले क्षिप्रमेव अनाकुल पंडित संलेखनारूपा शिक्षा भक्तपरिज्ञेंगितमर णादिकां वा शिक्षेत् ॥१५॥ यथा कूर्म स्वान्यगानि स्वके देहे समाहरेद्गोपायेत् एव मेधावी पंडित पापानि पापानुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् ज्ञानादिभावनया समाहरेदुपसंहरेत्॥१६

॥ टीका-किंचान्यत् (जकिंचुवक्कममित्यादि) उपक्रम्यते संवर्त्यते क्षयमुपनीयते आयुर्येन सउपक्रमस्तं य कचन जानीयात् । कस्यायु क्षेमस्य स्वायुषइति । इदमुक्त भव ति । स्वायुष्कस्य येन केनचित्प्रकारेणोपक्रमोभावी यस्मिन्वा काले तत्परिज्ञाय तस्योपक्र मस्य कालस्यवा अंतराले क्षिप्रमेवाऽनाकुलोजीविताशंसी पंडितोविवेकी संलेखना

रिसविन्नाण नडाइ ॥ १ ॥) उपयोगवीर्यं साकारानाकारजेदात् द्विविधं । तत्र साकारोप योगोऽष्टधा ऽनाकारश्चतुर्धा । तेन चोपयुक्त स्वविषयस्य इव्यक्षेत्रकालजावरूपस्य परिछे द विधत्तइति । तथा योगवीर्यं त्रिविध । मनोवाक्कायजेदात् । तत्र मनोवीर्यमकुशलमनो निरोध कुशलमनसश्च प्रवर्तन मनसोवा एकत्वीनाव करण। मनोवीर्येणहि निर्ग्रंथसंय ता प्रवृद्धपरिणामाश्चवस्थितपरिणामाश्च नवतीति । वाग्वीर्येण तु नाषमाणोऽपुनरु क्त निरवद्य च नाषते । कायवीर्यंतु यस्तु समाहितपाणिपाद कूर्मवद्यतिष्ठतइति । तपो वीर्य द्वादशप्रकार तपोयद्बलादग्लायन् विधत्तइति । एव सप्तदशविधेय सयमे एकत्वाद्यऽध्य वसितस्य यद्बलात्प्रवृत्तिस्तत्सयमवीर्य । कथमहमतिचार सयमेन प्राप्नुयामित्यध्यव सायिन प्रवृत्तिरित्येवमाद्यऽध्यात्मवीर्यमित्यादिच जाववीर्यमिति । वीर्यप्रवादपूर्वेचाऽनत वीर्य प्रति पादित । किमिति यतोऽनतार्थं पूर्व नवति । तत्रच वीर्यमेव प्रतिपाद्यते । अनता र्थता चातआगतव्या । तद्यथा । (सव्वणईण जाहोज्ञवानुया गणणमागयासत्ती । तत्तोवद्धुय तरागो अञ्चो एगस्स पुव्वस्स॥ १ ॥ सव्वसमुद्दाणजल जइ पच्छमिय हविज्ञ सकलिय। एत्तोवद्धु यतरागो, अञ्छोएगस्स पुव्वस्स ॥ २॥) तदेव पूर्वार्थस्याऽनत्या द्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनतता वी र्यस्येति । सर्वमप्येत द्वीर्य त्रिधेति प्रतिपादयितुमाह । (सव्वपिय त तिविह, पमियबालवि रियच । अहवावि होंति डुविह, अगारअणगारियचेव ॥ १ ॥) (सव्वपियमित्यादि) सर्व मप्येतज्ञाववीर्य पडितबालमिश्रजेदात् त्रिविध । तत्रनागाराणा पडितवीर्य बालपंडित वीर्य त्वगाराणां गृहस्थानामिति । तत्र यतीना पडितवीर्य सादिसपर्यवसित । सर्वविर ति प्रतिपत्तिकाले सादितासिद्धावस्थाया तदजावात्सात । बालपमितवीर्य तु देशवि रतिसद्भावकाले सादि । सर्वविरतिसद्भावे तद्भ्रंगेवा सपर्यवसान । बालवीर्य त्वविरतिल क्षणमजव्यानामनाद्यपर्यवसित नव्याना त्वनादिसपर्यवसित । सादि सपर्यवसित तु विरति भ्रशांत् सादिता । पुनर्जघन्यतांतर्मुहूर्तांडुत्कृष्टतो ऽपार्द्धपुज्ञलपरावर्तात् विरतिसद्भवात् सात तेति । साद्यपर्यवसितस्य तृतीयजगकस्य त्वसंजवएव । यदिवा पडितवीर्य ससर्वविरतिलक्ष ण । विरतिरपि चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमजक्षणाच्चिविधैवाऽतोवीर्यमपि त्रिधैव नवति गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेप । तदनुसूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य । त च्चेद । (डुहावेदसुयरकायमित्यादि) द्वे विधे प्रकारावऽस्येति द्विविधं द्विप्रकार । प्रत्य क्षासन्नवाचित्वात् इदमोयदनतर प्रकर्षेणोच्यते वीर्य तद्विजेद सुष्ठाख्यात स्वाख्यातं तीर्थ करादिनि । चोवाक्यालकारे । तत्रेऽरगतिप्रेरणयो । विशेषेण ईरयति प्रेरयति अनिहित ये न त द्वीर्य जीवस्य शक्तिविशेषइत्यर्थ । तत्र किंतु वीरस्य सुजटस्य वीरत्व केनवा कारणे नाऽसौवीरइत्यनिधीयते । तुशब्दोवितर्कवाची । एतद्वितर्कयति । कित द्वीर्य वीरस्य वा किं त द्वीरत्वमिति ॥ १ ॥ तत्र नेद द्वारेण वीर्यस्वरूपमाचख्यासुराह ॥ (कम्ममेगेइत्यादि)

॥ दीपिका–अनशने शेषकाले वा हस्तौ पादौच संहरे द्व्यापारान्निवर्तयेत्। तथा मन श्चित्त पचेंद्रियाणि च विषयेन्योनिवर्तयेत् पापकमशुन्न परिणाम नापादोपं च सावद्यां नापा सहरेत्॥१७॥ आयतार्थं मोक्षं सुष्टु आदाय गृहीत्वा कामक्रोधादिकं जयेत् एत द्वीरस्य वीरत्वं तथा सातगौरव सुखशीलता तत्र निन्नृतोऽनुद्यमउपशात क्षमावान् नविद्यते निहा माया यस्यासावनिहोमायाप्रपचरहितश्चरेत्सयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका–सहरणप्रकारमाह (साहरेत्यादि) पादपोपगमने इंगितमरणे नक्तपरिज्ञा या शेषकाले वा कूर्मवद्धस्तौ पादौ च सहरेद्व्यापारान्निवर्त्तयेत्। तथा मनोऽत करण तच्चाऽकुशलव्यापारेन्योनिवर्तयेत्। तथा शब्दादिविषयेन्योऽनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्वि ष्टतया श्रोत्रेंद्रियादीनि पचाऽपींद्रियाणि। चशब्द समुच्चये। तथा पापक परिणाममैहि कामुष्मिकाशंसारूप सहरेदित्येव नापादोपच तादृशपापरूप सहरेत् मनोवाक्काय गुप्त सन् छुनेन सयममवाप्य पमितमरण वाऽशेपकर्मक्षयार्थं सम्यगनुपालयेदिनि। तंच सयमे पराक्रममाण कश्चित् पूजासत्कारादिना निमन्त्रयेत्। तत्राऽऽत्मोत्कर्पोन का र्यइति दर्शयितुमाह ॥ १७ ॥ (अणुमाण चेत्यादि) चक्रवर्त्यादिना सत्कारादिना पूज्य मानेनाऽणुरपि स्तोकोऽपि मानोऽहंकारोन विधेय किमुत महान्। यदि वोत्तममरणो पस्थितेनोग्रतपोनिष्टप्तदेहेन वा अहोऽहमित्येवरूपस्तोकोऽपि गर्वोन विधेय। तथा पमुरार्येयेव स्तोकाऽपि माया न विधेया किमुत महतीत्येव क्रोधलोनावपि न विधेयावि ति। एव द्विविधयापि परिज्ञया कपायास्तद्विपाकाश्च परिज्ञाय तेन्योनिवृत्तिं कुर्यादिति। पाठांतरवा। अइमाणचमाइच तंपरिसायपमिए। अतीव मानोतिमान सुनूमादीनामिव तं छ खावहमित्येव ज्ञात्वा परिहरेत्। इदमुक्त नवति।यद्यपि सरागस्य कदाचिन्मानोदय स्या त्तथाप्युदयप्राप्तस्य विफलीकरण कुर्यादित्येव मायायामप्यायोज्य। पाठांतरवा। (सुय मे इहमेगेसि, एय वीरस्स वीरिय।) येन बलेन सग्रामशिरसि महति सुनटे परानीक वि जयते तत्परमार्थतोवीर्य नजवत्यपितु येन कामक्रोधादीन् विजयते तद्वीरस्य म हापुरुपस्य वीर्यमिहैवाऽस्मिन्नेव ससारे मनुष्यजन्मनि चैकेपा तीर्थकरादीना सबधि वाक्य मया श्रुतं वा। पाठांतरवा। (आयतट्ठं समादाय, एव वीरस्स वीरिय) आ यतोमोक्षोऽपर्यसितावस्थानत्वात्। सचाऽसावर्थश्च तदर्थोवा तत्प्रयोजनोवा सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्रमार्गं सआयतार्थस्त दृष्ट्वाऽऽदाय गृहीत्वा योधृतिबलेनकामक्रोधादि विजयाय च पराक्रमते। एतद्वीरस्य वीर्यमिति यदुक्तमासीत् किंतु वीरस्य वीरत्वमिति तद्यथानवति तत्तथाख्यातं। किचाऽन्यत् सातगौरव नाम सुखशीलता तत्र निन्नृत स्तदर्थमनुद्युक्तइत्यर्थ। तथा क्रोधाग्निजयाडपशात शीतीनूत शब्दादिविपयेन्यो

तवीर्यंतु सादिसातमेव ॥३॥ बालवीर्यमाह । शस्त्रं प्रहरण शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकमेके शिक्षते प्राणिनामतिपाताय विनाशाय गृण्हंति । एके बालवीर्यवतोमत्रानभिचारकानधी यते । किंनूतान् प्राणिनोर्द्वीद्रियाद्या । नूतानि पृथिव्यादीनि तेषा हेठकान् बाधकान्॥४॥

॥ टीका—इह बालवीर्यं कारणे कार्योपचारात्कर्मैव वीर्यत्वेनाभिहितं । सांप्रतं कारणे कार्योपचारादेव प्रमाद कर्मत्वेनापदिशन्नाह । (पमायमित्यादि) । प्रमाद्यति सदनुष्ठानर हितानवति प्राणिनोयेन सप्रमादोमद्यादि । तथाचोक्त । (मद्यविसयकसाया, णि दाविगहाय पचमे नणिया । एसपमायपमाउ, णिद्दिठो वीयरागेहि ॥ १ ॥) तमेवनूतं प्रमाद कर्माहुरुक्तवतस्तीर्थकरादयोऽप्रमादच तथा ऽपरकर्मकमाहुरिति । एतडुक्तं नव ति । प्रमादापहतस्य कर्म बध्यते सकर्मणश्च यक्रियानुष्ठान तद्वालवीर्यं । तथाऽप्रमत्तस्य कर्मानावोनवति । एवंविधस्य च पडितवीर्यं नवति । एतच्च बालवीर्यं पण्मितवीर्यमिति वा प्रमादवत सकर्मणोबालवीर्यमप्रमत्तस्याऽकर्मण पण्मितवीर्यमित्येवमायोज्य । (स न्नावादेसउवापीति) तस्य बालवीर्यस्य कर्मणश्च पण्मितवीर्यस्य वा नाव सत्ता सतन्नाव स्तेनाऽऽदेशोव्यपदेशस्ततस्तद्यथा न्नालवीर्यमनव्यानामनादि अपर्यवसितं नव्यानामनादि सपर्यवसित वा सादिसपर्यवसित चेति । पंण्मितवीर्यं तु सादिसपर्यवसितमेवेति ॥ ३ ॥ तत्र प्रमादापहतस्य सकर्मणोयद्वालवीर्यं तद्दर्शयितुमाह । (सत्थमेगेइत्यादि) । शस्त्र ख ड्गादिप्रहरण शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिक प्राण्युपमर्दकारि तत् सुष्ट सातगौरवगृद्धाएके केचन शिक्षंते उद्यमेन गृण्हति । तच्च शिक्षित सत् प्राणिना जतूना विनाशाय नवति। तथाहि । तत्राऽपदिश्यते एवंविधमालीढप्रत्यालीढादिभिर्जीवव्यापादयितव्ये स्थान वि धेय । तडुक्त । मुष्टिना छादयेल्लक्ष्य, मुष्टौ दृष्टिं निवेशयेत् । हतं लक्ष्य विजानीयाद्यदि मूर्धा न कपते । १ । (तथा) एव लावकरस क्षयिणे देयोऽनयारिष्टाख्योमद्यविशेषश्चे ति । तथैव चौरादे शूलारोपणादिकोदडोविधेय । तथा चाणक्यानिप्रायेण परोवच यितव्योऽर्थोपादानार्थं तथा कामशास्त्रादिक चोद्यमेनाऽशुना व्यवसायिनोधीयते । तदेव शस्त्रस्य धनुर्वेदादे शास्त्रस्य वा यदन्यसन तत्सर्वं बालवीर्यं । किंचैके केचन पापोदयान् म त्रानभिचारकानाऽऽथर्वणानश्वमेधपुरुपमेधादिक विधीयते । किंनूतानिति दर्शयति । प्रा णा द्वीद्रियादयोनूतानि पृथिव्यादीनि तेषा विविधमनेकप्रकार हेठकान् बाधान् रुकस्तथा नीयान् मत्रान् पठतीति । तथाचोक्त । पट्शतानि नियुज्यंते, पशूना मध्यमेऽहनि । अ श्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुभिस्त्रिभिरित्यादि ॥ ४ ॥

तातिचारइत्येवनूतं वा मनसापि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वत सबाह्याभ्यंतरत संवृतोगुप्तोदातइंद्रियदमेन आदान सम्यक्दर्शनादिकं सुष्टु आहार गृएहीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (पाणेइत्यादि) प्राणप्रियाणा प्राणिनां प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्त दतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृएहीयात् । तथा । सहादिना मायया वर्त्तत इति सादिक समायं मृपावादं न ब्रूयात् । तथाहि । परवचनार्थ मृपावादोऽधिक्रियते सच न मायामंतरेण नवतीत्यतोमृपावादस्य माया आदिनूता वर्त्तते । इदमुक्त नवति । योहि परवचनार्थ समायोमृपावाद सपरिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थ नमया मृगाउप लव्धाइत्यादिक सन दोपायेति । एपय प्राक् निर्दिष्टो धर्म श्रुतचारित्राख्यस्वनावोवा (वुसीमउत्ति) ढादसत्वान्निर्देशार्थस्त्वय । वस्तूनि ज्ञानादीनि त द्वतोज्ञानादिमतइत्यर्थ । यदिवा । (वुसीमउत्ति) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थ ॥ १९ ॥ अपिच (अइक्कमतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रम पीडात्मक महाव्रतातिक्रमवा मनोऽवष्टब्धतया पर तिरस्कारवा इत्येवनूतमतिक्रम वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । एतद्द्वयनिपेधेच कायातिक्रमोदूरतएव निपिद्धोनवति । तदेव मनोवाक्काय कृतकारितानुमतिनिश्च नवकेन नेदेनातिक्रम न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दात सन् मोक्षस्यादानमुपादान सम्यग्दर्शनादिक सुष्टूयुक्त सम्यग्विस्रोतसिकारहितआहरेत् आददीत गृएहीयादित्यर्थ ॥२०॥

कडच कज्जमाणंच, आगमिस्सच पावगं ॥ सव त णाणुजाणंति, आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अवुद्धा महानागा, वीरा अस मत्त दसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कंत,सफलं होइ सवसो ॥२२॥

अर्थ–(कडंचकज्जमाणच के०) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुपे कर्यु एवु जे पाप तथा वर्त्तमान काले जे पाप करेछे (आगमिस्सचपावगके०)तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरनादिक साधुने अर्थे जे करशे (सवंतणाणुजाणंति के०) ते सर्वने मन वचन अने कायाये करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके (आयगुत्ताजिइंदिया के०) जे महानुनाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही ॥ २१ ॥ (जेअवुद्धामहानागा के०) जे अवुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकरणादिक नणेला तेथी लोक माहे पूज्य मोटा केवाय एवा (वीरा के०) वीर पुरुप पण (असमत्तदसिणो के०) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय (असुद्धतेसिपरक्कंत के०) एवा पुरुपनु जे काइ दान तप नियमादिकने विषे पराक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो (सफलहोइसवसो के०) ते सर्व कर्मबंधना

र प्राणिव्यापादयितारस्तथाछेत्तार कर्णनासिकादेस्तथा प्रकर्तयितार पृष्ठोदरादेरिति ॥ ५ ॥ तदेतत्कथमित्याह (मणसाइत्यादि) अधुना सङ्गमित्येतत्सूत्रपदं तदेतत्प्राण्यु पमर्दन मनसा वाचा कायेन कृतकारितानुमतिनिश्चातश कायेनाऽशक्तोऽपि तन्दुलम त्स्यवन्मनसैव पापानुष्ठानानुमत्या कर्म बध्नातीति । तथाऽऽरत परतश्चेति लौकिकी वा यु क्तिरिति । एव पर्यालोच्यमानाऐहिकामुष्मिकयोर्द्विधापि स्वयकरणेन परकरणेनवा सयता जीवोपघातकारिणइत्यर्थ ॥ ६ ॥

वेराइं कुवइ वेरी, तउ वेरेहिं रज्जती॥पावोवगाय आरंभा, डुक्क

फासाय अंतसो ॥७॥ संपराइय णियछंति, अत्तडुक्कडकारिणो ॥

रागदोसस्सिया बाला, पावं कुवति ते बहु ॥ ८ ॥

अर्थ-(वेराइंकुवईवेरीके०) जीव घातनो करनार पुरुष ते विरोधरूप वेर ने अनेक जीवो नी साथे करे (तउवेरेहिंरज्जतीके०) तथा ते वैरे करी परलोके पण राचे एटले वेर सा थे सबंध करे (पावोवगायआरंभाके०) पापना समीप गामी एवा सावद्यानुष्ठानरूप आर भना करनार ते (डुक्कफासायअंतसो के०) अंत काले विपाकावसरे असातावेदनीय ना उदय थकी डु खनो स्पर्श पामे ॥ ७ ॥ (सपराइयणियछंति के०) साते कर्म बां धवाना बे प्रकार कह्याछे एक ईर्यापथिकिक्रिया अने बीजी सापराइकिक्रिया ए बे थकी जीव कर्मनो बंध बांधेछे (अत्तडुक्कडकारिणो के०) आत्म डुष्कृतकारी एटले स्वयं पापकारी (रागदोसस्सियाबाला के०) रागद्वेषाश्रित एटले राग द्वेषे व्याकुल बाल एटले अज्ञा नी सदसद् विवेक रहित एवा छता (पावकुवतितेबहुके०) ते पुरुषो पोताना आत्माना घात करनार एटले आत्माने डु खना देनारा एवा घणा पाप करे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-वैरी सजीवोवैराणि करोति ततोऽपैरवैरैरनुरुध्यते वैरपरपरानुषंगी स्या दित्यर्थ । आरम्भा पापोपगा पापयुक्ताअतशोविपाककालडु खदायिन स्यु ॥ ७ ॥ आत्मडुष्कृतकारिण स्वपापविधायिन सांपरायिक कर्म नियछति बध्नंति। ते किंभूता ।रा गद्वेषाश्रिताबाला. पाप कुर्वंति बहूनत । कर्मद्विधा । ईर्यापथं सापरायिकच तत्र सपराया बादरकषायास्तेभ्यआगत सांपरायिक जीवघातहेतुत्वेन कषायोद्भ कर्म बध्नतीत्यर्थ ॥ ८ ॥

॥ टीका-साप्रत जीवोपघातविपाकदर्शनार्थमाह । (वेराइइत्यादि) । वैरमस्यास्ती ति वैरी सजीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबंधीनि वैराणि करोति । ततोऽपि च वैरादपैरवैरै रनुरुध्यते । वैरपरपरानुषंगी भवतीत्यर्थ । किमिति । यत पाप उपसामीप्येन गछंती ति पापोपगा । कएते आरम्भा सावधानरूपा । अतशोविपाककाले डु खं स्पृशतीति डु ख

तातिचारइत्येवनूतं वा मनसापि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वतः सबाह्याभ्यंतरगत संवृतोगुप्तोदांतइंद्रियदमेन आदान सम्यक्दर्शनादिकं सुष्टु आहार गृएह्रीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (पाणेइत्यादि) प्राणप्रियाणा प्राणिना प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्त दतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृएह्रीयात् । तथा । सद्मादिना मायया वर्त्तइति सादिक समाय मृषावादं न ब्रूयात् । तथाह्रि । परवचनार्थ मृषावादोऽधिक्रियते सच न मायामतरेण नवतीत्यतोमृषावादस्य माया आदिनूता वर्त्तते । इदमुक्त नवति । योह्रि परवचनार्थ समायोमृषावाद सपरिह्रियते । यस्तु सयमगुप्त्यर्थ नमया मृगाउप लब्धाइत्यादिक सन दोषायेति । एपय प्राक् निर्दिष्टो धर्म श्रुतचारित्राख्यस्वनावोवा (वुसीमउत्ति) ग्रादसत्वान्निर्देशार्थस्त्वय । वस्तूनि ज्ञानादीनि त द्वतोज्ञानाढिमतइत्यर्थ । यदिवा । (वुसीमउत्ति) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थ ॥ १ए ॥ अपिच (अइक्कमतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रम पीडात्मक महाव्रतातिक्रमवा मनोऽवष्टब्धतया पर तिरस्कारवा इत्येवनूतमतिक्रम वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । एतद्वचनिषेधेच कायातिक्रमोदूरतएव निषिद्धोनवति । तदेव मनोवाक्काय कृतकारितानुमतिनिश्र नवकेन नेदेनातिक्रम न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दात सन् मोक्षस्यादानमुपादान सम्यग्दर्शनादिक सुष्टूद्युक्त सम्यग्विस्रोतसिकारह्रितआह्ररेत् आददीत गृएह्रीयादित्यर्थ ॥२०॥

कडच कज्जमाणच, आगमिस्संच पावगं ॥ सवं त णाणुजाणंति, आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अवुद्धा महानागा, वीरा असमत्त दंसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कतं,सफलं होइ सवसो ॥२२॥

अर्थ–(कडचकज्जमाणच के०) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुषे कर्यु एवुं जे पाप तथा वर्तमान काले जे पाप करेछे (आगमिस्संचपावगके०)तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरंनादिक साधुने अर्थे जे करशे (सवंतणाणुजाणंति के०) ते सर्वने मन वचन अने कायाये करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके (आयगुत्ताजिइंदिया के०) जे महानुनाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही ॥ २१ ॥ (जेअवुद्धामहानागा के०) जे अबुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकर्णादिक नणेला तेथी लोक मांहे पूज्य मोटा केवाय एवा (वीरा के०) वीर पुरुष पण (असमत्तदंसिणो के०) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय (असुद्धतेसिपरक्कत के०) एवा पुरुषनु जे काइ दान तप नियमादिकने विषे पराक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो (सफलहोइसवसो के०) ते सर्व कर्मबंधना

जमदग्निसुतेन परशुरामेण सप्तवारान् नि क्षत्रा पृथिवी कृता । पुनः कार्तवीर्यसुतेन तु सुभूमेन त्रि सप्तकृत्वोब्राह्मणाव्यापादिता । तथाचोक्त । अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् । अधिका कुरुते हि यातना, द्विषता जातमशेषमुद्धरेत् ॥१॥ तदेवं कषायवशगा प्राणिनस्तत्कुर्वंति । येन पुत्रपौत्रादिष्वपि वैरानुबंधोभवति । तदेतत्सकर्मणा बालाना वीर्य । तुशब्दात्प्रमादवता च प्रकर्षेण वेदित प्रवेदित प्रतिपादितमिति यावत् । अतऊर्ध्वमकर्मणां पंडिताना य द्वीर्य तन्मे मम कथयत शृणुत यूयमिति॥ए॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह (दविएइत्यादि) द्रव्योभव्योमुक्तिगमनयोग्य । द्रव्य च भव्यइति वचनात् । रागद्वेषविरहाद्वा द्रव्यभूतोऽकषायीत्यर्थः । यदिवा वीतरागइति । वीतरागोऽल्पकषायइत्यर्थः । तथाचोक्तं । किंसक्कावोयुजे, सरागधम्मंमि कोइअकसायी । सतेविजोकषाए, निगिएहइसोवि तत्तुल्लो ॥१॥ सच किंभूतोभवतीति दर्शयति । बंधनात्कषायात्मकान्मुक्तोबंधनोन्मुक्त । बंधन तु कषायाणा कर्मस्थितिहेतुत्वात् । तथाचोक्तं । (बंधठिइकसायवसाइति) यदिवा बंधनोन्मुक्तइव बंधनोन्मुक्त । तथा पर सर्वत सर्वप्रकारेण सूक्ष्मबादररूपं छिन्नमपनीत बंधन कषायात्मक येन सछिन्नबंधन । तथा प्रणुद्य प्रेर्य पाप कर्म कारणभूतान्वाऽऽश्रवानपनीय शल्यवच्छल्यं शेषक कर्म तत् कंतत्यपनयत्यतशोनिरवशेषतो विघटयति । पाठांतरवा । (सल्लंकतइअप्पणोत्ति) शल्यभूत यदष्टप्रकार कर्म तदात्मन सबंधि कृततीति छिनत्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

नेयाउय सुयरकायं,उवादाय समीहए॥भुज्जोभुज्जो डुहावासं, असुहत्त तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि, चइस्सति ए ससउ ॥ अणियते अय वासे, णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे जें वस्तु पामीनें शल्यने छेदे ते देखाडेछे (नेयाउयसुयरकायके०)न्याय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जे मोक्ष मार्ग श्री तीर्थंकर देवनो भाष्यो (उवादायके०) तेने उपादान एटले ग्रहण करीने (समीहएके०) धर्म ध्यानने विषे उद्यम करे अने (भुज्जोभुज्जो डुहावासके०) जे बालवीर्यवतते वली वली अनतभव ग्रहणने विषे जेम जेम नरकादिक डुःखना आवासोने विषे पर्यटन करे (तहातहा के०) तेम तेम (असुहत्तंके०) अशुभत्व एटले डुर्ध्यानपणु प्रवर्द्धमान थाय एवो ससारनु स्वरूप जाणीने पंमित पुरुष धर्मध्यानने विषे प्रवर्त्ते ॥ ११ ॥ हवे ससारनु अनित्य पणु देखाडेछे (ठाणीविविहठाणाणि के०) जे जीवना विविध प्रकारना प्रधान स्थानकछे तद्यथा देवलोकमा इंद्र तथा सामानिक त्रयस्त्रिंशकादिकना स्थानछे मनुष्यने विषे चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव

र्थे । तेषा च बालाना यत्किमपि तपोदानाध्ययनयमनियमादिषु पराक्रातमुद्यमकृतस्तद शुद्धमविशुद्धकारि प्रत्युत कर्मबंधाय जावोपहतत्वात् सनिदानत्वाद्वेति कुवैद्यचिकित्सा वद्विपरीतानुबंधीति । तच्च तेषा पराक्रातं सत्फलेन कर्मबधेन वर्ततइति सफलं सर्वश इति सर्वाऽपि तत्क्रिया तपोनुष्ठानादिका कर्मबधायैवेति ॥ २२ ॥

जेय बुद्धा महाजागा, वीरा सम्मत्तदसिणो॥सुद्धं तेसि परक्कतं, अफलं होइ सवसो ॥ २३॥ तेसिपि तवो असुद्धो, निरकंता जे महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति, नसिलोग पवेज्जए ॥ २४ ॥

अर्थ–(जेयबुद्धामहाजागा के०) जे बुद्ध तत्व मार्गना जाण एवा तीर्थकरादिक मोटा पूज्य पुरुष (वीरासम्मत्तदसिणो के०) घनघाती कर्म विदारवाने सूरवीर सम्य क्त्व दृष्टि होय (सुद्धतेसिपरक्कत के०) तेमनो जेटलो नियमादिक क्रिया अनुष्ठा नने विषे उद्यमछे ते सर्व शुद्ध निर्मल जाणवो (अफलहोइसवसो के०) ते सर्व उ द्यम कर्मबंधना कारणने विषे अफल थाय किंतु सुवैद्यचिकित्सानीपेरे ते कर्म निर्जरा नुज कारण थाय ॥२३॥ तेसिपितवोअसुद्धोके०) तेनु तपजे अनशनादिक ते पण अशुद्ध जाणवु ते कोनु अशुद्ध जाणवु तोके(निरकंताजेमहाकुलाके०)जेमोटा इक्ष्वाकादिक कुल तेथकी नीकलीने चारित्रिया थया हता पण (जन्नेवन्नेवियाणंति के०) जे मुनीश्वर पू जा सत्कारने अर्थे तप करे तेनो तप पण नि फल माटे अशुद्ध जाणवो अने जे त प करता अनेरा गृहस्थादिक जाणे नही (नसिलोगपवेज्जए के०) जे तपमा पोतानी श्लाघा प्रससा नबोले ते तप आत्मनेहिते जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–ये बुद्धाज्ञाततत्वामहाजागामहापूजाजाजोवीरा सम्यक्दर्शनास्तज्ज्ञा स्तेषा यत्पराक्रातमनुष्ठितं तत् शुद्धमफलं कर्मबधरहित जवति सर्वत ॥२३ ॥ महत्कु लं येषाते महाकुलानिष्क्राता प्रव्रजितास्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थं यत्तपस्तदशुद्धं स्यात् यत्तप क्रियमाण नान्ये विजानति तत्कार्य नैवात्मश्लाघा प्रवेदयेत् प्रकाशयेत्॥ २४ ॥

॥ टीका–साप्रत पंमितवीर्यैणाधिकृत्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये केचन स्वयबुद्धास्ती र्थकराद्यास्तच्छिष्यावा बुद्धबोधितागणधरादयोमहाजागामहापूजाजाजोवीरा. कर्मविदार णसहिष्णवोज्ञानादिभिर्वा गुणैर्विराजतइतिवीरा । तथा सम्यक्त्वदर्शिन परमार्थतत्व वेदिनस्तेषा जगवता यत्पराक्रात तपोऽध्ययनयमनियमादावनुष्ठित तच्छुद्धमवदात निरु परोध सातगौरवशल्यकषायादिदोषाकलंकित कर्मप्रतिबंधमफलं जवति तन्निरनुबंधनि

सुचिरमपि विचिंत्यो धर्मएक सहायइति ॥१॥ चकारौ धनधान्यद्विपदचतुष्पदशरीराद्यनि त्यत्वनावनार्थौ । अशरणाद्यशेषनावनार्थंचा ऽनुक्तसमुच्चयार्थमुपात्ताविति ॥ १२ ॥

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥ आरिय उवसंपज्जे, सवधम्ममकोविय ॥ १३ ॥ सहसमइए णच्चा, धम्मसारं सुणे तु वा ॥ समुवट्ठिए उ अणगारे पच्चरकाय पावए ॥ १४ ॥

अर्थ-(एवमादायमेहावीके०) एरीते पण्डित पुरुषे अवधारीने (अप्पणोगिद्धिमुद्धरे के०) पोतानो ममत्व स्वनाव उद्धरे एटले स्वजनादिकने विषे ममत्व नकरे (आरियउवसपज्जेके०) आर्यजे वीतराग प्रणीत मोक्षमार्गरूप धर्म तेने आदरे तेधर्म केवोछे तोके (सवधम्ममगोवियके०) सर्व धर्ममांहे प्रधान अगोपित एटले अदूषितछे प्रगटछे ॥१३॥ हवे शुद्धधर्म परिज्ञान जेरीते थाय तेरीते कहेछे (सहसमइएणच्चाके०)जाति स्मरणादिके करी तथा पोतानी मतिये करी जाणीने (वाके०) अथवा अन्य गुर्वादिक पाशेथी (धम्मसारसुणेतुके०) धर्मनो सार जे चारित्र तेने सानलीने अंगीकार करे (समुवट्ठिएउअणगारे के०) पण्डित वीर्य संपन्न एवा साधु संयमने विषे उद्यमवंत थको (पच्चरकायपावए के०) पापकर्म जे सावद्यानुष्ठान तेने पच्चरके एटले निराकरे ॥१४॥

॥ दीपिका-सर्वमनित्यमेवमादाय एवं ज्ञात्वा मेधावी आत्मनोगृद्धिं ममत्वमुद्धरेत् त्यजेत् आर्यं मोक्षमार्गमुपसंपद्येताधितिष्ठेदाश्रयेत् । किंनूतं सर्वैः कुतीर्थधर्मैरकोपितोऽदूषितश्च ॥१३॥ धर्मसारं धर्मरहस्यं ज्ञात्वा (सहसमइएइत्यादि) ज्ञातेनतीर्थंकरादिन्योवा श्रुत्वा चारित्रं प्रतिपद्यते । उपस्थितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तयेऽन्युद्यतोऽनगारः प्रत्याख्यात निराकृतं पापं येन सप्रत्याख्यातपापकः स्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपिच । (एवमादायेत्यादि) अनित्यानि सर्वाण्यपि स्थानानीत्येवमादायावधार्य मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वा आत्मनः संबंधिनीं गृद्धिं गार्द्ध्यं ममत्वमुद्धरेदपनयेन्ममेदमहमस्य स्वामीत्येवं ममत्वं क्वचिदपि न कुर्यात् । तथा । आराज्ज्ञातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमोक्षमार्गस्तमुपसंपद्येताऽधितिष्ठेत् समाश्रयेदिति । किंनूतं मार्गमित्याह । सर्वैः कुतीर्थकधर्मैरकोपितोऽदूषितः स्वमहिम्नैव दूषयितुमशक्यत्वात् प्रतिष्ठां गतः । यदिवा सर्वधर्मैः स्वनावैरनुष्ठानरूपैरगोपितः कुत्सितकर्त्तव्यानावात् प्रकटमित्यर्थः ॥ १३ ॥ सुधर्मपरिज्ञानंच यथा नवति तद्दर्शयितुमाह । (सहसमइएइत्यादि) धर्मस्यसारः परमार्थोधर्मसारस्तं ज्ञात्वाऽवबुध्य । कथमिति दर्शी

वगरणो तस्सहुदेवा विपणमतीति । अल्पं जापते य. सुव्रत क्रोधाद्युपशमात् क्षांतोऽनिनिर्वृतोलोनालोभजयादनातुरोदांतोजितेंद्रियस्तथा वीतगृद्धिर्निरीहः सदा यतेत संयमे ॥ कपाया यस्य नोच्छिन्ना यस्य नात्मवशं मन ॥ इंद्रियाणि नगुप्तानि प्रव्रज्या तस्य जीविकेति ॥२५॥ ध्यानं धर्मध्यानादि तत्र योगोमनोवाक्कायव्यापारस्तं समाहृत्य सम्यगाहृत्य कार्यं देहं सर्वतोव्युत्सृजेत् त्यजेत् तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहादिसहनरूपां परमां प्रधाना ज्ञात्वा आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत् संयमक्रियां कुर्यादिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२६॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां वीर्याख्यमष्टमाध्ययन समाप्त ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच अप्पपिंमाइत्यादि । अल्पं स्तोक पिंमशितु शीलमस्याऽसावल्पपिंमाशी यत्किंचनाशीति जाव । तथाचाऽऽगम । हेजतवआसीयजत्थतत्थवसुहोवगयनिद्दा॥ जेणवतेणसतुठ्ठ, वीरमुणिञ सितेअप्पा ॥ १ ॥ तथा (अठ्ठकुक्किअमगमत्तप्पमाणेकवलेआहरे माणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं ॥ २ ॥ अवड्ढोमोयरिया । सोलसेहिंडुनागपत्ते ॥ चउवीसंउमोदरियासपमाणपत्ते वत्तीसकवलासपुसुहारे ॥ ३ ॥ अतएकैककवलाद्दान्यादिनोदरता विधेया । एव पाने उपकरणेवोचोनोदरता विदध्यादिति । तथाचोक्त । थोवाहारोथोवजणिउअजोहोइ थोवनिद्दोअ ॥ थोवोवहिउपकरणोतस्सहुदेवाविपणमति ॥ तथा सुव्रत साधुरल्पं परिमितं हित च जापेत सर्वदा विकथारहितोनवेदित्यर्थ । जावातऔदर्यमविकृत्याह । जावत क्रोधाद्युपशमात् क्षांत क्षांतिप्रधानस्तथाऽनिनिर्वृतोलोजादिजयान्निरातुरस्तथा इंद्रियनोइंद्रियदमनाद्दांतोजितेंद्रिय । तथाचोक्त । कपायायस्य नोछिन्ना, यस्य नात्मवशमन । इंद्रियाणि न गुप्तानि, प्रव्रज्या तस्य जीवन ॥१॥ एव विगता गृद्धिर्विपयेपु यस्य सविगतगृद्धिराशंसादोषरहित , सदा सर्वकालं संयमानुष्ठाने यतेत यत्न कुर्यादिति ॥ २५ ॥ अपिच (जाणजोगमित्यादि । ध्यान चित्तरोधलक्षण धर्मध्यानादिक तत्र योगोविशिष्टमनोवाक्कायव्यापारस्त ध्यानयोग समाहृत्य सम्यगुपादाय काय देहमकुशलयोगप्रवृत्त व्युत्सृजेत् परित्यजेत् । सर्वत सर्वेणाऽपि प्रकारेण हस्तपादादिकमपिपरपीडाकारि न व्यापारयेत् । तथा तितिक्षा क्षांतिं परीषहोपसर्गसहनरूपा परमा प्रधाना ज्ञात्वा आमोक्षायाऽशेषकर्मक्षय यावत्परिव्रजेदिति संयमानुष्ठान कुर्यास्त्वमिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २६ ॥ समाप्तं चाऽष्टम वीर्याख्यमध्ययनमिति ॥

हवे नवमु अध्ययन प्रारनियेछैये आठमा अध्ययनमां वालनु अने पंमितनुं वीर्य कह्यु तेमां पण पंमितना वीर्यनु जे धर्म ते धर्मने विपे साधु उद्यम करे तेमाटे आ नवमा अध्ययनमां ते धर्मनु स्वरूप कहेछे

नुरूपां शिक्षा नक्तपरिज्ञेगितमरणादिका वा शिक्षेत् । तत्र ग्रहणशिक्षया यथावन्मरण विधि विज्ञायाऽऽसेवनाशिक्षया सेवेतेति ॥१५॥ किंचान्यत् । (जहाकुम्मेइत्यादि) । यथेत्यु दाहरणप्रदर्शनार्थं । यथा कूर्मः कच्छप स्वान्यगानि शिरोधरादीनि स्वके देहे समाहरेद्गोप येदव्यापाराणि कुर्यादेवमनयैव प्रक्रियया मेधावी मर्यादावान् सदसद्विवेककी वा पापानि पापरूपाण्यनुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् धर्मध्यानादिनावनया समाहरेदुपसंहरेन्मरणकाले चोपस्थिते सम्यक्संलेखनया संलिखितकाय पण्डितमरणेनाऽऽत्मान समाहरेदिति ॥१६॥

साहरे हत्थपाएय, मण पचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं, नासा दोसच तारिस ॥ १७ ॥ अणुमाणंच मायच, तं पडिन्नाय पण्डिए ॥ (पाठ तर अइमाण च माइंच त परिणाय पडिए) द्वितीय पाठांतर (सुयमे इहमेगेसि, एय वीरस्स वीरिय (तृतीय पाठांतरं । आयतठ समादा य एय वीरस्स वीरिय)॥ सातागारवणिहुए, उवसते णिहेचरे ॥ १८ ॥

अर्थ–(साहरे हत्थपाएयके०) काचवानी पेरे हाथ पग अगोपागादिकने गोपवीराखे (मणपचेंदियाणियके०) तथा मनना अकुशल व्यापार तथा श्रोत्रादिक सर्व इन्द्रिना विषय थकी निवर्त्ते तथा (पावकचपरीणामंके०) मननो पाप मय परिणाम एटले माठो अभिप्राय (नासादोसचतारिसंके०) ज्यारे काइ प्रयोजन पडे त्यारे तेवोजजे पापरूप नाषानो दोष तेने पण सवरे ॥१७॥ तथा कोइ पूजा सत्कार करे तेवारे मान टालवु ते आश्री कहेछे (अणुमाणच मायचके०) अल्पमान अल्पमाया अने चकारथकी अनुक्रमे क्रोध तथा लोन पण लेवो (तपडिन्नाय पण्डिए के० तेने जाणीने पण्डित विवेकी जन होयते अहीं पा ठातरे अइमाणमिति अत्यतमान अत्यतमाया तेमज अत्यंत क्रोध अने लोन एनो सर्वथा प्रकारे त्याग करे एम पण कह्युछे बीजु पाठातर (सुयमेइ हमेगेसि के०) एरीते में गु रुनी पाठथी सम्यक् प्रकारे साम्नळ्युछे के (एयंवीरस्स वीरिय के०) ए क्रोधादिकना जय थी वीर पुरुषनु वीर्य पराक्रम जाणवु पण जे सग्राममा शत्रुने ह णेते परमार्थे वीर सुनट नकहेवाय तीजुंपाठातर (आयतठंके०) मोक्षनो अर्थि आत्मनिष्ट एवो साधु (स मादायके०) ते चारित्रने रुडीरीते ग्रहण करीने पछी क्रोधादिकने जीतवानो उद्यम करे (एयवीरस्सवीरियके०) ए प्रकारे वीर पुरुषनु वीर्य जाणवो तथा (सातागारवणिहुए के०) सातागारवने विषे निभृत एटले अनुद्युक्त अर्थात् साता गारवे करी रहित तथा (उवसतेणिहेचरे के०) उपशात एटले कषायना जीतवा थकी क्षमावान् तथा माया रहित छतो सयमानुष्ठान आचरे ए शुद्ध मार्गनो नाव जाणवो ॥ १८ ॥

ने बालपंमितन्नेदेन द्विरूपं वीर्यं प्रतिपादितं। अत्राऽपि तदेव पंडितवीर्यं धर्मं प्रति यद्बुध म विधत्ते अतोधर्मं प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं। अस्य चत्वार्यनुयो गद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि। तत्राऽप्युपक्रमान्तर्गतोऽर्थाधिकारोऽ य। तद्यथा। धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह। (धम्मोपुवुद्दिठो नावधम्मेण एछ अद्दिगारो। एसेच होइ धम्म, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १। (धम्मोपुवुद्दि ठोइत्यादि)। दुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मं प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने ध र्मार्थकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः। इहतु नावेन धर्मेणाधिकारः। एषएवच नावधर्मः पर मार्थतोधर्मोनवति। अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह। एषएवच नावसमा धिर्नाविमार्गश्च नवतीत्यवगतव्यमिति। यदि वैषएवच नावधर्मएषएवच नावसमाधि रेषएवच तथा नावमार्गोनवति नतेषां परमार्थतः कश्चिद्भेदः। तथाहि। धर्मः श्रुतचारि त्राख्यः क्षान्त्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोनवेत् नावसमाधिरप्येवंप्रकारएव। तथाहि। सम्यगा धानमारोपणं गुणानां क्षान्त्यादीनामिति समाधिः। तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रा ख्योनावधर्मतया व्याख्यातयितव्यइति॥ सांप्रतमतिदिष्टस्यापिस्थानाशून्यार्थं धर्मस्यना मादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह। (णामठवणाधम्मो, दव्वधम्मोय नावधम्मोय। सचित्ताचित्तमीस ग, गिहत्थदाणेदवियधम्मे। २।) (नामठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावन्नेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपः। तत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्र न्नेदात् त्रिधा। तत्राऽपि सचित्तस्य जीवच्छरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वनावः। एवमचित्ता नामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वनावः सतस्य धर्मइति। तथाहि। (गइलरकणउध म्मो, ठाणलरकणोअहम्मोय। नायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलरकणं। १। पुग्गला स्तिकायोऽपियहणलक्षणइति। मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वनावः सत द्धर्मतयाऽवगतव्यइति। गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेन्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्रव्यधर्मोऽवगतव्यइति। तथाचोक्तं। अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः श यनासनं। शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं। १। नावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह। (लोइयलोउत्तरिउ, दुविहोपुणहोतिनावधम्मोउ। दुविहोवि दुविहतिविहो, पंचविहो होतिणायव्वो। ३। (लोइयइत्यादि)। नावधर्मोनोआगमतो द्विविधः। तद्यथा। लौकि कोलोकोत्तरश्च। तत्र लौकिकोद्विविधः। गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः। ज्ञानदर्शनचारित्रन्नेदात्। तत्राऽप्यानिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा। दर्शनमप्यौपशमिक, सा स्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक, क्षायिक न्नेदात् पंचविधं। चारित्रमपि सामायिकादिन्नेदात् पं चविधं। गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि। तद्यथा। नावधर्मोलौकिकलोकोत्तरन्नेदाद्द्विधा। द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकन्नेदात् द्वि

ऽप्यनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्विष्टतयोपशातोजितेंद्रियत्वात्तेन्योनिवृत्तइति । तथा निहन्यं ते प्राणिन संसारे यया सा निहा माया नविद्यते सा यस्याऽसावनिहोमायाप्रपंच रहितइत्यर्थ । तथा मानरहितोलोजवर्जितइत्यपि इष्टव्यं । सचैवजूत सयमानुष्ठानं चरेत् कुर्यादिति । तदेव मरणकालेऽन्यदा वा पंडितोवीर्यवान् महाव्रतेपूद्यत स्यात् । तत्राऽपि प्राणातिपातविरतिरेव गरीयसीति कृत्वा तत्प्रतिपादनार्थमाह । (उड्ढमहे तिरियवा जेपाणा तसथावरा ॥ सव्वछ विरति कुज्जा, सति निव्वाणमाहियं॥१॥) अयच श्लोकोन सूत्रादर्शेषु दृष्टष्टीकायातु दृष्टइति कृत्वा लिखितउत्तानार्थश्चेति ॥ १० ॥

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्न पियणादए॥ सादिय ण मुसं बूया एस धम्मे वुसीमउ ॥ १ए ॥ अतिक्कम्मति वायाए,मणसा वि न पछए ॥ सवउ सवुम्हे दते, आयाणसु समाहरे ॥ ए० ॥

अर्थ-(पाणेयणाइवाएज्जा के०) प्राणीउना प्राणने हणे नही (अदिन्नं पियणा दए के०) तथा दंत शोधनमात्र पण अदत्त लीए नही (सादियणमुसंबूया के०) मा या सहित मृषावाद न बोले केम के परवचना निमित्त जे मृषा बोलाय छे ते मायावि ना बोलातु नथी किंतु माया सहितज बोलायछे ते माटे मृषानी आदि ते मायाज जाणवी तेवी मायाने परिहरे त्यागे (एसधम्मेवुसीमउ के०) सयमवतनो तथा जी तेंद्रिय साधुनो एहिज धर्म सत्य जाणवो ॥ १ए ॥ (अतिक्कम्मतिवायाए के०) महा व्रतोनुं अतिक्रम एटले उलघन करवानी वचने करी (मणसाविनपछए के०) तथा मने करी पण प्रार्थना करे नही ए बन्नेना निषेधवा थकी त्रीजो कायानो अतिक्रम दूर थकीज निषेध्यो एम पोतानी मेलेज जाणी लेवो (सव्वउसंवुमेदंते के०) सर्व थकी करण करावण तथा अनुमतियें करी बाह्याभ्यतर नेदेकरी सवृत गुप्तेंद्रिय एवो छतो (आयाण सुसमाहरे के०) आदान एटले सम्यक् दर्शनादिकनुं ग्रहण करे तथा सुष्टुआ हार ग्रहण करे एम ग्रहण करेली चारित्रने सम्यक् प्रकारे शुद्ध क्रियासहित पाले ॥२०॥

॥ दीपिका–प्राणिना प्राणान् नातिपातयेत् परेणाऽदत्तं किंचिन्नाददीत नगृह्णीयात् सह आदिना मायया वर्तते इति सादिक समाय मृषावाद न ब्रूयात्।परवचनार्थ मृषावा दोऽभिक्रियते च न मायामतरेण स्यात्ततोमृषावादस्य माया आदिनूता।कोर्थ ।योहि परवंचनार्थ समायोमृषावाद सत्यज्यते । यस्तु सयमगुप्त्यर्थ नमया मृगादृष्टाइत्यादि क स न दोषाय (एसधम्मोवुसीमउत्ति) वस्तुमत वस्तूनि ज्ञानादीनि विद्यते यस्य स वस्तुमान् साधुस्तस्य अथवा वश्यस्य वशीकृतेंद्रियस्येत्यर्थ ॥ १ए ॥ अतिक्रम महाव्र

अर्थ-(परिग्गहे के०) परिग्रह द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य हिरण्य, सुवर्णादिकने विषे ममत्व तेमा (निविठ्ठाणके०) गृध थता (वेरतेसिंपवड्ढईके०) एवा पुरुष आरंजना करनार तेने नि केवल वैरनी वृद्धि थायछे अथवा पाठांतरे (पावतेसिपवड्ढई के०) तेवा आरंजना करनार पुरुषोने जमदग्नि कृतवीर्यनी पेरे पापनी वृद्धि थायछे ज्या जेरी ते प्राणीउनी हिंसा करे त्या तेरीते ससार माहे दुःखना विजागी थाय (आरंजसंनि याकामा के०) तथा कामजोगजे छे, ते आरंज सवृतछे आरंजे करी पुष्टछे अनेक पाप ना कारणे करी जखाछे, (नतेदुःखविमोयगा के०) ते कारण माटे ते दुःख थकी छू टे नही ॥ ३ ॥ जेयकी प्राणीना प्राणने हणिये तेने (आघाय के०) मरण कहिए ते मरणने अर्थे जे (किच्चमाहेउके०) कृत्य करवु एटले मरणनु जे कार्य करवु अर्थात् अग्निसस्कार जलांजली, प्रदान, पितृ पिंम, प्रमुख एटलावाना करीने पछी (नाइउ विसएसिणो के०) ज्ञाति, गोत्री, स्वजन, पुत्र, कलत्रादिक एसर्वे विषयाजिलाषी थता होय तेमनु उपार्जन करेलु जे वित्त एटले धन (तवित्तके०) तेधन (अन्नेहरंतिके०) अन्य जे पूर्वोक्त अग्नि सस्कार प्रमुखना करनारा पुरुषो ते लिये, एटले अंगीकार करे अने ते धननो उपार्जनार (कम्मीकम्मेहिंकिच्चती के०) अनेक कुकर्म करी दुर्गतीप पोहोतो थतो ते कर्मे करी ससारमा किच्चती एटले पीडाय छेदाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका-परिग्रहनिविष्टाना ममतासक्ताना तेषा पूर्वोक्ताना वैर वर्धते । जमदग्निकृ तवीर्यादीनामिव रिपवस्ते आरंजसनृताआरंजपुष्टा कामेषु प्रवृत्तास्ते एवविधादुःख विमोचकान स्यु ॥ ३ ॥ आघातोमरण तस्य कृत्यमग्निसस्कारजलांजलिदानपितृपिंमा दिक तदाधातुमाधाय कृत्वा पश्चाज्ज्ञातय स्वजनाअन्येऽपि विषयैषिण सततस्य त द्वित्तं धन हरति गृह्णति । यदुक्त । ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षिते ॥ क्रीडत्य न्ये नराराजन् हृष्टतुष्टाअलंकृताइति । सतु द्रव्योपार्जक कर्मवान् कृतै कर्मभि ससा रे कृत्यते पीड्यते ॥ ४ ॥

॥टीका-किंच (परिग्गहेइत्यादि) परिसमतात् गृह्यतइति परिग्रहोद्विपदचतुष्पदधनधान्य हिरण्यसुवर्णादिषु ममीकारस्तत्र निविष्टानामध्युपपन्नाना गार्द्ध्यं गताना पापमसात वेदनीयादिक तेषा प्रागुक्तानामारंजनिश्रिताना परिग्रहे निविष्टाना प्रकर्षेण वर्द्धते वृ द्धिमुपयाति जन्मांतरेष्वपि दुर्मोच जवति । क्वचित्पाठ (वेरतेसिपवड्ढइत्ति)। तत्र येन यस्य यथा प्राणिनउपमर्द क्रियते सतथैव ससारांतर्वर्ती शतशोदुःखनाक् जवति । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव पुत्रपौत्रानुग वैर प्रवर्द्धतइति जाव । किमित्येव । यतस्ते

कारणने विपे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्ज्जराना कारण ने विपे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—साधूद्देशेन यदन्यैः कृत पापक कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाण तथा अगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानति नानुमोदते आत्मगुप्ताजितेंद्रिया सा धव ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वा नवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यदुक्त । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुध समभि गच्छति वस्तुतत्व ॥ नानाप्रकाररसभावगतापि दर्वी स्वाद रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महाभागा । भागशब्द पूजावाची । कोर्थ । अपडिताअपि त्यागादिगुणै र्लोकपूज्यावीरा सुभटवादं वहतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थ । तेपा बालाना पराक्रातमनुष्ठानमशुद्ध नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबधाय तत्पराक्रात सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफल सर्वतः स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—तथा किंचाऽन्यत् । (कडवेत्यादि) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पै कृतम नुष्ठितं पापक कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाण तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्य ते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिर्नानुजानति नाऽनुमोदति तदुपभोगपरिहरेणेति भाव । यद्यप्यात्मार्थं पापक कर्म परै कृत क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रो' शिरश्छिन्न छि द्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिक परानुष्ठान नाऽनुजा नंति नच बहुमन्यते । तथाहि । यदि पर कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमत्रयेत्तमपि नानुमन्यतइति । कएवभूतानवतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गु प्तोयेपां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवभूता पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थित ॥ २१ ॥ अन्यच्च (जेयाबुद्धाइत्यादि) ये केचनाऽ बुद्धाधर्म प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपा पं डिताभिमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाइत्युक्त । नच सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वाववोधोभवतीति । तथा चोक्त ।

पि समभिगच्छति.

पियाइत्यादि) माताजननी पिताजनक स्नुषापुत्रवधू भ्रातासहोदर । तथा नार्या कलत्रं पुत्राश्चौरसा स्वनिष्पादिताएते सर्वेऽपि मात्रादयोये चान्ये श्वशुरादयस्ते तव संसारचक्रवाले स्वकर्मनिर्विलुप्यमानस्य त्राणाय नाऽलं समर्थानवतीति । इहाऽपि ताव न्नैते त्राणाय किमुताऽमुत्रेति । दृष्टांतश्चाऽत्र कालसौकरिकसुत सुलसनामा अनयकुमा रस्य सखा । तेन महासत्वेन स्वजनाऽभ्यर्थितेनाऽपि नप्राणिष्वपकृतमपि त्वात्मन्येवेति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (एयमहमित्यादि) धर्मरहिताना स्वकृतकर्मविलुप्यमानानामैहि कामुष्मिकयोर्नकश्चित्त्राणायेति एनं पूर्वोक्तमर्थं संप्रेक्षापूर्वकारी प्रत्युपेक्ष्य विचार्याऽवगम्य च परम प्रधानभूतोमोक्ष संयमोवा तमनुगच्छतीति तच्छीलश्च परमार्थानुगामुक सम्य क्दर्शनादिस्तच प्रत्युपेक्ष्य।क्त्वाप्रत्ययातस्य पूर्वकालवाचितया क्रियांतरसव्यपेक्षत्वात्।त दाह । निर्गत ममत्व बाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु यस्मादसौ निर्मम । तथा निर्गतोऽहंकारोऽ भिमान पूर्वैश्वर्यजात्यादिमदजनितस्तथा तप स्वाध्यायलोभादिजनितोवा यस्मा दसौ निरहंकारोरागद्वेषरहितइत्यर्थ । सएवभूतोभिक्षुर्जिनैराहित प्रतिपादितोऽनु ष्ठितोवा योमार्गोजिनाना वा संबंधी योऽभिहितोमार्गस्तं चरेदनुतिष्ठेदिति ॥ ६ ॥

चिच्चा वित्तंच पुत्तेय.णाइओ य परिग्गहं ॥ चिच्चाण अंतगं सोयं (चिच्चाणणंतगसोयं,) इति पाठांतरं । निरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥ पुढवी आउगणि वाऊ, तणरुक्ख सबीयगा ॥ अम्मया पोय जरा ऊरस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥

अर्थ-(वित्तचपुत्तेय के०) वित्तते धन अने पुत्रादिक तेने (चिच्चा के०) त्यक्त्वा एटले छांमीने वली (णाइओयके०) ज्ञाति, स्वजन, स्त्री, ससुर, वेवाही प्रमुख तथा (परि ग्गहं के०) परिग्रह तेना उपर ममत्व भाव ते सर्वने (चिच्चाके०) त्यक्त्वा एटले छा मीने एवास्यालकारेछे तथा (तसोयं के०) तथा भूतशोक तेने त्यागीने अथवा पाठांत रनु अर्थ कहेछे मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायरूप बंधना कारण, अने (णणतग के०) जेनो कोइरीते अंत एटले पार न आवे एवो सोय के० शोक तेनो त्याग करीने (निरवेक्खो के०) निरपेक्ष एटले विषयादिकने अण वाछतो थको (परिव्वए के०) सं यम पाले तेने साधु जाणवो ॥ ७ ॥ (पुढविआउगणिवाऊ के०) पृथ्वीकाय, अ प्काय, तेऊकाय अने वायुकाय तथा (तणरुक्खसबीयगा के०) तृण वृक्ष बीज शा लि प्रमुख ए पांचमी वनस्पतिकायनी जाति ए सर्व स्थावर जीवो जाणवा अने (अ म्मया के०) इंमा थकी उपजे जे वागुलि प्रमुख (पोतजके०) हस्तियादिक तथा (ज

कारणने विषे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्जराना कारण ने विषे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–साधूद्देशेन यदन्यैः कृत पापकं कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाणं तथा आगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानति नानुमोदंते आत्मगुप्ताजितेंद्रिया साधव ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वानवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यदुक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुध समभिगच्छति वस्तुतत्व ॥ नानाप्रकाररसभावगतापि दर्वी स्वाद रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महानागा । नागशब्द पूजावाची। कोर्थ । अपडिताअपि त्यागादिगुणै लोकपूज्यावीरा सुभटवाद वहतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थ । तेपा बालानां पराक्रांतमनुष्ठानमशुद्ध नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबंधाय तत्पराक्रांत सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वत स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका–तथा किंचाऽन्यत् । (कडंवेत्यादि) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पै कृतमनुष्ठितं पापक कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाण तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्यते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिर्नानुजानति नाऽनुमोदति तदुपभोगपरिहारेणेति भाव । यद्यप्यात्मार्थं पापक कर्म परै कृतं क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रो शिरश्छिन्न छिद्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिक परानुष्ठान नाऽनुजानति नच बहुमन्यते । तथाहि । यदि पर कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमत्रयेत्तमपि नानुमन्यतऽति । कएवभूताभवतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गुप्तोयेषां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवभूता पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थित ॥ २१ ॥ अन्यच्च (जेयाबुद्धाऽत्यादि) ये केचनाऽबुद्धाधर्म प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपा पंडितमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाऽत्युक्त । नच व्याकरणपरिज्ञानमात्रेण सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वाववोधोभवतीति । तथा चोक्त । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोऽपि नैवाऽबुध समभिगच्छति वस्तुतत्व ॥ नानाप्रकाररसभावगताऽपि दर्वी, स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति ॥१॥ यदिवाऽबुद्धाइव बालवीर्यवतस्तथा महातश्चते नागाश्च महानागा । नागशब्द पूजावचन । ततश्च महापूज्याइत्यर्थ । लोकविश्रुताऽइति । तथा वीरा परानीकभेदिन सुभटाऽति । इदमुक्तं भवति पंडिताअपि त्यागादिभिर्गुणैर्लोकपूज्या । अपिच । तथा सुभटवाद वहतोऽपि सम्यक्तत्वपरिज्ञानविकला केचन भवतीति दर्शयति । न सम्यगसम्यक् तद्भावोऽसम्यक्त्व तद्रूपं शीलं येषाते तथा मिथ्यादृष्टयऽत्य

सौवीरकादर्जातारसजास्तथा संस्वेदाज्जाता संस्वेदजायूकामत्कुणादय । उद्भिज्जा खजरीटकदर्दुरादयइति । आज्ञातत्नेदाद्दि ड खेन रक्ष्यतऽयतोनेदेनोपन्यासइति ॥ ८ ॥

एतेहिं उहिं काएहिं, त विज्जं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्के णं, णारंजी ण परिग्गही ॥९॥ मुसावायं वहिंठच,उग्गहंच अ जाइय ॥ सत्था टाणाइ लोगंसि, तं विज्ज परिजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ-(एतेहिठहिंकाएहिंके०) पूर्वोक्त ठ कायजीवो ते त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता ना नेदे करी (तंविज्जपरिजाणियाके०) ते ठकायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें करी नलीपरे जाणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये (मणसाकायवक्केण के०) मन, वचन अने काया एत्रण करणे करी (णारंजीणपरिग्गहीके०) साधु आरंज परिग्रह नकरे केमके ए आरंजपरिग्रहथकी पूर्वोक्त ठकाय जीवोनी विराधना थायठे माटेसाधु आरंजी परिग्रही नथाय. ए प्राणातिपात विरमण नामा प्रथम व्रतनो अधिकार कह्यो ॥९॥ हवे बीजो व्रत आदि कहेठे (मुसावाय के०) असत्य बोलवु (वहिंठचके०) तथा मैथुन ते नोग कामादिक (उग्गहच के०) परिग्रह तथा (अजाइय के०) अदत्तदान ए मृषावादादिक अव्रतजेठे ते (लोगंसि के०) लोक माहे (सत्थके०) शस्त्ररूपठे, तथा शस्त्रनी पेरे (आदानके०) कर्म ग्रहण करवानु कारणठे, (तंविज्जपरिजाणियाके०) तेने विद्वान् ए एले पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-एनि षड्भि कायैर्नारंजी नापि परिग्रही स्यात् विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायैरारंज परिग्रहंच परिहरेदिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ९ ॥ मृषावादं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् अवहिठ मैथुनं अवग्रहपरिग्रहमयाचितमदत्तादान एतानि मृषावादादीनि प्राण्युपघातकारित्वात् शस्त्राणि तथा आदानानि कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १० ॥

॥ टीका-एनि पूर्वोक्तैः षड्भिरपि कायैस्त्रसस्थावररूपैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नैर्नारंजी नाऽपि परिग्रही स्यादिति संबंध । तदेतद्विद्वान् सश्रुतिकोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायकर्मनिर्जीवोपमर्दकारिणामारंजं परिग्रहं च परिहरेदिति ॥ ९ ॥ शेषव्रतान्यधिकृत्याह । (मुसावायमित्यादि) मृषा असद्भूतोवादोमृषावादस्तं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् तथाऽवहिठमितिमैथुनं अवग्रहं परिग्रहमयाचितमदत्तादानं । यदिवाऽ वहिठमिति मैथुनग्रहोऽवग्रहमयाचित

जरार्थमेव नवतीत्यर्थ । तथाहि । सम्यक्दृष्टीना सर्वमपि सयमतप प्रधानमनुष्ठान नवति सयमस्य चानाश्रयरुपत्वात् तपसश्च निर्जराफलत्वादिति । तथाच पठ्यते । (संयमेणएहृयफलेतवेवोदाणफलेइति)। ॥ २३ ॥ किंचाऽन्यत् (तेसिंपीत्यादि) मह त्कुलमिक्ष्वाकादिक येषाते महाकुलालोकविश्रुता शौर्यादिनिर्गुणैविस्तीर्णयशसस्तेषा मपि पूजासत्काराद्यर्थमुत्कीर्त्तनेन वा यत्तपस्तदशुद्ध नवति । यञ्च क्रियमाणमपि तपो नैवाऽन्ये दानश्रद्धाढ्योजानति तत्तथाजूतमात्मार्थिना विधेय । अतोनैवात्मश्लाघा प्रवेदयेत् प्रकाशयेत् । तद्यथा । हेउत्तमकुलीन इन्योवा साप्रत पुनस्तपोनिष्टप्तदेहइति । एव स्वयमाविष्करणेन न स्वकीयमनुष्ठान फल्गुतामापादयेदिति ॥ २४ ॥

अप्पपिंमासि पाणासि, अप्प जासेक्क सुवए ॥ खते निनिवुमे दंते, वीतगिद्धी सदा जए ॥ २५ ॥ जाणजोगं समाहट्टु, काय विउसेज्ज सवसो ॥ तितिक्ख परम णच्चा आमोरकाए परिवएज्जा सित्ति बेमि ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीरिइनामम ठमऽझयण सम्मत्तं ॥

अर्थ-(अप्पपिंमासिपाणासिके०) अल्पाहारनो जमनार तथा अल्प पाणीनो वापरनार (अप्पजासेज्जसुवए के०) तथा सुव्रति साधु अल्प नाषणनु करनार परने हितरूप वचननु बोलनार (खतेनिनिवुमेदंतेके०) क्षमावत क्रोधादिकना उपशम थकी कषायने अनावे सीतल परिणामि तथा इंद्रियनो दमनार (वीतगिद्धीके०) लोल्यता रहित (सदाजएके०) एरीते साधु जे ठे ते सर्व काल सयमने विषे यत्न करे ॥ २५ ॥ (जाणजोगंसमाहट्टुके०) शुनध्यान एटले धर्मध्यानादिकना योग तेने सम्यक् आदरीने (कायविउसेज्जसवसोके०) कायाना अकुशल योगनी प्रवर्त्तिनो त्याग करे सर्वथा प्रकारे हस्त पादादिके करी पण परने पीडा नकरे (तितिक्खंपरमणच्चा के०) तितिक्षा एटले परीसह अने उपसर्गनुं जे सहन करवु तेने परम प्रधान कर्म निर्जरानुं कारण जाणीने (आमोरकाएपरिवएज्जासिके०) ज्यासुधी मोक्ष नपामे त्यासुधी दीक्षा पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्व वत् जाणवो ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीर्यनामा आठमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो

॥ दीपिका-अल्प पिंडमश्नातीति अल्पपिंडाशी एव पानेपि योज्य । यदागम । अह कुक्कुडिअंडप्पमाणे कवले आहारेमाणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहि अवढमो अरिआ सोलसहि १ डुनागयते २ चउवीसेहि पउणोमो अरिअरि आतीसेहिपमाणवत्तो बीत्तीसहि पुणेहारेत्ति । अतएवैकैकवलहान्या ऊनोदरता कार्या । एव पाने उपकरणे च ऊनोदरतां कुर्यात् । यडुक्तं । थोवीहारोथावजणि उवजोहोइथोवनिद्दो । थोवोवहि य

ध्मात पुरुषउत्तानीनवति सउन्नायोमान ।गादसत्वान्नपुंसकलिंगता।जात्यादीनामेतत्स्या नानां बहुलात् तत्कार्यस्याऽपि मानस्य बहुत्वमतोवहुवचन । चकारा स्वगतनेदसंस्चनार्था समुच्चयार्थावा। धूनयेति प्रत्येक क्रिया योजनीया । तद्यथा । पलिकुचनंमाया धूनय धूनीहि वा । तथा नजनं लोन तथा स्थंडिल क्रोध तथा उन्नाय मानं । विचित्रत्वात् सूत्रस्य क्रमोल्लघननिर्देशोन दोषायेति । यदिवा रागस्य डस्त्यजत्वात् लोनस्य च मायापूर्वकत्वादित्यादावेव मायालोनयोरुपन्यासऽति । कषायपरित्यागे विधेये पुनरपर कारणमाह। एतानि पलिकुचनादीनि अस्मिन् लोके आदानानि वर्त्तते । तदेतद्विद्वान् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञानप्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥ ११ ॥ पुनरप्युत्तरगुणानधिकृत्याह । (धावणमित्यादि) धावन प्रक्षालन हस्तपादयोर्वस्त्रादेरजनमपि तथा विरेचन निरूहात्मकमधोविरेकोवा । वमनमूर्ध्वविरेकस्तथाऽजन नयनयोरिति । एवमादिकमन्यदपि शरीरसस्कारादिक यत् सयमपलिमथकारि सयमोपघातरूप तदेतद्विद्वान् सरूपतस्तद्विपाकतश्च परिज्ञाय प्रत्याचक्षीत ॥ १२ ॥

गधमल्लसिणाणंच, दंतपरकालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मच,
त विज्ज परिजाणिया ॥१३॥ उद्देसियं कीयगम, पामिच्च चेव
आहडं ॥ पूय अणेसणिज्जच, त विज्जं परिजाणिया ॥ १४ ॥

अर्थ--(गधमल्लसिणाणच के०) सुगधिक ड्व्यते गध, माल्यते फूल अने शरीर स्नान ते शरीरप्रक्षालन देश थकी तथा सर्व थकी करवु तथा (दंतपरकालणके०) दातप्रक्षालन ते दातणप्रमुखनु करवु (तहाके०) तथा (परिग्गहि के०) सचेत अचेतादिकनो परिग्रह (इत्थिकम्मच के०) स्त्रीकर्म ते तिर्यच मनुष्य देवी प्रमुख ने हस्तकर्म कुचेष्टादिकनु करवु (तविज्जपरिजाणिया के०) ए सर्वने पंडित अशुन जाणीने वर्जे ॥ ॥ १३ ॥ (उद्देशिक के०) साधुने निमित्ते करेलो आहार (क्रीतक्रीत के०) साधुने अर्थे मूल आपीने लीधेलो आहार (पामिच्चचेव के०) साधुने अर्थे उधारे लीधेलो आहार वली (आहड के०) साधुने अर्थे ग्रहस्थे सामो आण्यो एवो आहार (पुय अनेपणिज्जच के०) आधाकर्मिना कण सहित आहार (तंविज्जंपरिजाणिया के०) किं बहुना एवधो अनेशणिय सदोष आहार जाणीने पंडित पुरुष एने परिहरे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका--गधा कोष्ठपुटाद्यामाल्यपुष्पादि स्नान शरीरक्षालन दंतप्रक्षालन परिग्रह सचित्तादे स्त्रीकर्म स्त्रियोनरतिरश्चयस्तासा वशीकरणादिकर्म हस्तकर्म सावद्यानुष्ठानवा तत्सर्व विद्वान् परिहरेत् ॥ १३ ॥ उद्देशिक साधुदेशेन यत्कृत। क्रीत क्रयस्ते

कयरे धम्मे अरकाए, माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहात
च्चं, जिणाणं तं सुणेहमे ॥ (पाठांतरे । जणगात सुणेहमे ॥
॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा, चंमाला अड वोकसा ॥ एसिया
वेसिया सुद्दा, जेय आरंन्नणिस्सिया॥ २ ॥

अर्थ–श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये श्रीजंबूस्वामि वे हाथ जोडीने पुढेडे, के (माहणेणम तीमता के०) माहण मतिमत एटले केवली नगवत एवा श्रीमहावीर देव तेणे (क यरेधम्मेअरकाए के०) सम्यक् प्रकारे करीने केवा प्रकारनो धर्म कह्योडे एम श्रीजंबुस्वा मिये पुढ्या थका, श्री सुधर्म स्वामि बोल्या, (अंजुधम्म के०) श्रीवीतराग प्रणीत धर्म ते ऋजु एटले सरल शुद्ध (जहातच्च के०) साचो यथावस्थित (जिणाणतंसुणेहमे के०) एवो धर्म, श्रीतीर्थंकरनु कहेलो तेहुं कहुंडुं ते तमे साजलो पागतर (जणगातं सुणेहमेके०) एवो धर्म ते अहो जन, एटले लोको हु कहुंडुं, ते प्रत्ये तमे साजलो ॥ १ ॥ (माहणाखत्तियावेस्सा के०) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अने (चमाला के०) चामाल निषाद (अडके०) अथवा (वोकसा के०) वोकसते अवातरजाति तेमां जे ब्राह्मण अने शुद्रथकी उत्पन्न थयो ते, निषाद एटले चामाल अने ब्राह्मण तथा वै श्यनी स्त्रीथी थयो ते अबष्ठ, चमालणी अने ब्राह्मण थकी थयो ते वोकस अंहीं माता पितानो पक्ष जूदो जाणवो (एसिया के०) मृगलुब्धक हस्तितापसादिक (वे सिया के०) वणिकादिक व्यापारमा अजीविका करनार (सुद्दा के०) शूद्र करसणी प्रमुख (जेयआरंन्नणिस्सिआ के०) इत्यादिक जे डे ते आरंनना करनार डे, तेमज बीजा पण पाखमी प्रमुख आरंनना करनार अनेकडे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ नवमाध्ययन। पूर्वाध्ययने बालपंडितवीर्यमुक्त पंडितवीर्यंच तदेव य द्धर्म प्रति उद्यम कुरुते अतोत्र धर्म प्रोच्यते। तस्येदमादिसूत्र। (कतरेत्ति) जंबूनामा सु धर्माणमुद्दिश्याह। कतरोधर्मआख्यातोमाहनेन श्रीवीरेण मतिमता ज्ञानवता। सुध र्मा आह। ऋजुमवक्र यथातथ्य सत्य जिनाना तं धर्म मम कथयत शृणुत यूयं ॥ १ ॥ ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्याश्चाडालाअथ वोकसाअवातरजातीया। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यां जातोनिषाद। ब्राह्मणेनैव वैश्याया जातोऽबष्ठ। तथा निषादेनाबष्ठ्या जातो वोकस। एषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च ये मासहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषति वैश्यावणि जोमायाप्रधाना कलाजीविन शूद्रा रुषीवलादय येचान्ये नानाविधारंनंनिश्रिताः॥२॥

॥ टीका–अष्टमानतर नवम समारभ्यते ॥ अस्य चायमनिसबंध । इहानंतराध्ययं

गोलोचनांजनं गृद्धिगार्ध्यं रसेषु उपघातकर्म परापघातक्रिया उच्चोलणं अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिक्षालनं कल्क लोधादिद्रव्येण शरीरोद्वर्तनं तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १५ ॥ असयतै सार्धं सप्रसारण पर्यालोचनं तत्संप्रसारण परिहरेत् । कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसयतानुष्ठानप्रशसा प्रश्नस्यायतन प्रकटीकरण प्रश्ननिर्णयकारण । सागारिक शय्यातरस्तस्य पिंड जुगुप्सित हीन वर्णपिंडं वा तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच । (आसूणिमित्यादि) येन घृतपानादिना आहारविशेषेण रसायनक्रियया वा अशून सन् आसमतात् शूनीभवति बलवानुपजायते तदाशूनीत्युच्यते । यदिवा (आसूणिति) श्लाघा यत श्लाघया क्रियमाणया आसमतात् तून । तूनोलघुप्रकृति कश्चिद्दर्पाध्मातत्वात् स्तब्धोभवति । तथा अक्ष्णा रागोरजन सौवीरादिकमजनमिति यावत् । एव रसेषु शब्दादिषु विषयेषु वा गृद्धिगार्ध्यं तात्पर्यमासेवा तथोपघातकर्मेत्युच्यते । तदेव लेशतोदर्शयति । (उच्चोलनति) अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालन तथा कल्क लोधादिद्रव्यसमुदायेन शरीरोद्वर्तनक तदेतत्सर्वं बंधनायेत्येव विद्वान पडितोज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१५॥ अपिच । (सपसारायइत्यादीति । असयतै सार्धं सप्रसारण पर्यालोचन परिहरेदिति वाक्यशेष । एव सयमानुष्ठानं प्रत्युपदेशदान तथा (कयकिरिए) नाम कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसयतानुष्ठानप्रशसन तथा प्रश्नस्यादर्शी प्रश्नादेरायतनमाविष्करण कथन यथावस्थितप्रश्ननिर्णयनानि। यदिवा प्रश्नायतनानि लौकिकाना परस्परव्यवहारे मिथ्याशास्त्रगतसशयेवा प्रश्ने सति यथावस्थितार्थकथनद्वारेणायतनानि निर्णयनानीति । तथा सागारिक शय्यातरस्तस्य पिंडमाहार । यदिवा सागारिकपिंडमिति सूतकगृहपिंड जुगुप्सित वर्णापसदपिंड च। चशब्द समुच्चये। तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१६

अठावयं नसिक्खिज्जा, वेहाईय च णोवए ॥ हत्थकम्म विवायंच
त विज्जं परिजाणिया ॥ १७॥ पाणहा उयछत्तच, णालीय वाल
वीयण ॥ परकिरिय अन्नमन्नच, त विज्जं परिजाणिया ॥ १८॥

अर्थ –(अठावय नसिक्खिज्जाके०) अर्थपद एटले अर्थ पदते धन धान्य उपार्जवानो उपाय, न शीखे अथवा बीजे अर्थे अष्टापद एटले द्यूतक्रीडा नशीखे, (वेधादिकचके०) अधर्मना वचन (णोवदेके०) नबोले, अथवा हिंसाकारी वचन बोले नही, तथा (हत्थकम्म के०) कुशील प्रसिद्ध छे (विवायंच के०) कलह अथवा बीजो कोइपण विवाद

विध । लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदात् त्रिविध । ज्ञानादीनि प्रत्येक त्रीण्यपि प चधैवेति । तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवता साधूना योऽधर्मस्त दर्शयितुमाह । (पासत्थोसण्ण कुसीलं, सघवोणकिरचट्टतीकाउं । सूयगडेऽज्झयणे, धम्मंमि निकाइतएय ॥४॥) पास त्थोसण्णेत्यादि)। साधुगुणाना पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्था । तथा सयमानुष्ठानेऽवसीदंती त्यवसन्ना ।तथा कुत्सित शीलं येपाते कुशीलाएतैं पार्श्वस्थादिभि' सह सस्तव परिचय सहसवासरूपोन किल यतीना वर्त्तते कर्त्तुमत सूत्रकृतेऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निका चितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नानिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलिताद्गुिणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेद । (कयरेऽत्यादि)॥ जबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । कतर किंभूतोदुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यात प्रतिपादितो (माहणेण ति) मा जतून् व्यापादयेत्येव विनेयेपु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोभगवान वीरवर्धमा नस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि । मनुतेऽवगच्छति जगत्रय कालत्रयोपेत यथा सा केवलज्ञा नाख्या मति सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन भगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वा म्याह रागद्वेपजितोजिनास्तेपा सबधिन धर्म (अज्जुमिति) ऋजु मायाप्रपचरहितत्वा दवक्र। तथा (जहातच्चमिति) यथावस्थित मम कथयत शृणुत यूय । ननु य थाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंभप्रधानोधर्मोभिहितस्तथा भगवताऽपीति (पागतरवा) जणगा तं सुणेहमे) जायतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेपामामत्रण हेजनका तधर्म शृ णुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थ सूक्तोभवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्ष भूतोऽधर्मस्तदाश्रितास्तावदर्शयितुमाह । (माहणेत्यादि)। ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या स्तथा चाण्डाला अथ वोक्कसाअवातरजातीया । तद्यथा । ब्राह्मणेन शूद्राजातोनिपादोब्रा ह्मणेनैव वैश्याया जातोऽवष्ठस्तथा निपादेनांवष्ठ्या जातोवोक्कस । तथा एपितुं शीलमित्ये पिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मासहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यति तथा कदमूलफ लादिकं च । तथा ये चाऽन्ये पाखडकानानाविधैरुपायैर्भक्ष्यमेष्यत्यन्यानिवा विपयरा धनानि ते सर्वेऽप्येपिकाऽत्युच्यते । तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविन । तथा शूद्रा रूपीवलादय । आभीरजातीया कियतोवा वक्ष्यतइति दर्शयति। ये चाऽन्येव र्णापसदानानारूपसावद्यारम्भनिश्रितायत्रपीडननिर्लाछनकर्मागारदाहादिभि क्रियाविशेषै र्जीवोपमर्दकारिणस्तेषा सर्वेपामेव जीवापकारिणा वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥२

परिग्गहनिविठाण, वेर तेसिं पवड्ढई ॥ (पाठातरे पाव तेसि पवड्ढई)
आरम्भसम्भिया कामा, नते दुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्चमाहेउ,
नाइउ विसएसिणो ॥ अन्ने हरति त वित्त, कम्मी कम्मेहि किच्चती ॥४ ॥

अर्थ-(उच्चारं के०) वडीनीत (पासवणं के०) लघुनीत तेनो (हरिएसुणकरेमु नि के०) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थण्डिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) पर हां नकरे एटले निश्रेयकी दूरन करे ॥ १९ ॥ (परमत्तेअन्नपाण के०) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कासादिकना नाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णभुंजेज्ज कयाइवि के०) कदापि नुजे नही एटले जमे नही (परवत्थअचेलोवि के०) पोते अ चेलक एटले वस्त्र रहित छता पण परजे गृहस्थादिक तेनुंजे वस्त्र तेने नजोगवे एटले ए सर्वने सयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-उच्चार प्रस्रवण च हरितेषु नकुर्यान्मुनि । तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपन कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १९ ॥ परस्य गृहस्थस्यामत्र नाजन तत्रान्नपान नञ्जुजीत । कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषा त् अचेलोपि सन् परवस्त्र गृहस्थवस्त्र नविनर्ति । यदिवा ऽचेलाजिनकल्पी तस्य सर्वम पि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिजृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-तथा (उच्चारमिति) उच्चारप्रस्रवणादिका क्रिया हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थ डिले वा मुनि साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन सहृत्यापनीय बीजानि ह रितानि वा नाचमेत ननिर्लेपन कुर्यात् किमुताविकटेनेतिनाव ॥ १९ ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि) परस्य गृहस्थस्यामत्रं नाजन परामत्रं तत्र पुर कर्म पश्चात्कर्म तद्भयात् हृतनष्टा दिदोषसनवाच्चान्न पानच मुनिर्न कदाचिदपि नुजीत । यदिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणे पाणिपात्र परपात्र । यदिवा पाणिपात्रस्याछिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादे पतद्गृह परपात्र त त्र सयमविराधनानयान्नजुजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्र परवस्त्र तत्साधुरचेलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषनयात् हृतनष्टादिदोषसनवाच्च नबिनृयात् । यदिवा जिनकल्पिका दिकोऽचैलोनूत्वा सर्वमपि वस्त्र परवस्त्रमिति कृत्वा नबिनृयादेतत्सर्व परपात्रनोजनादि क सयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्ज च गिहंतरे ॥ सपुच्छणं सरणंवा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २१ ॥ जसं कित्ति सलोयच, जाय वंदण पू यणा ॥ सव्वलोयसि जे कामा, त विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ-(आसदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे माची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

कामेषु प्रवृत्ता कामाश्चारंनै सम्यग् नृताआरंजपुष्टाआरंजाश्च जीवोपमर्दकारिणोऽतोन ते कामसनृताआरंननिश्रिता परगृहे निविष्टा डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकार कर्म तद्विमो चकाजवति तस्याऽपनेतारोजवतीत्यर्थ ॥ ३ ॥ किंचाऽन्यत् (आघायमित्यादि) आहन्यंते अपनयति विनाश्यते प्राणिना दश प्रकाराअपि प्राणायस्मिन् सआघा तोमरण तस्मै तत्र वा कृतमग्निसंस्कारजलांजलिप्रदानपितृपिंमादिकमाघातं कृत्यं तदा धातुमादाय कृत्वा पश्चात् ज्ञातय स्वजना पुत्रकलत्रज्रातृव्यादय । किंजूता । विषयान न्वेषु शील येषा तेऽन्येऽपि विषयैषिण सततस्य डुःखार्जितं वित्तं इव्यजातमपहरति स्वीकुर्वति । तथाचोक्त । ततस्तेनार्जितैर्इव्य.दारैश्च परिरक्षितै ॥ क्रीडत्यन्ये नराराजन्, हृष्टास्तुष्टाह्यलंकृता ॥ १ ॥ सतु इव्यार्जनपरायण सावद्यानुष्ठानवान् कर्मवान् पापी स्वीकृतै कर्मजि. ससारे कृत्यते ठिद्यते पीड्यतऽति यावत् ॥ ४ ॥

माया पिया एहुसा जाया, जक्का पुत्ताय उरसा ॥ नालं ते तव ताणा य, लुप्पतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एयमठ सपेहाए, परमहाणु गामियं ॥ निम्ममो निरहकारो, चरे जिक्कू जिणाहियं ॥ ६ ॥

अर्थ-(मायापियाएहुसाजाया के०) माता पिता स्नुषा एटले ठोकरानी स्त्री तथा जाइ (जक्कापुत्तायउरसा के०) जार्या, पुत्र अगजातिक एटला सर्व (लुप्पत स्ससकम्मुणा के०) ए जीवने कर्म विपाक जोगवता थका (नालंतेतवताणाय के०) तेवखते त्राणजणी नथाय एटले डुःख टालवाने असमर्थ थाय ॥ ५ ॥ धर्मरहित जी वने राखवा कोइ समर्थ नथी (एयमठंसपेहाए के०) ए अर्थ आलोची एटले सम्य क् प्रकारे विमासीने (परमहाणुगामिय के०) परमार्थजे मोक्ष तेनो अनुगामि एटले मोक्षनो साधक (निम्ममोनिरहकारो के०) निर्ममत्व तथा निरहकारी एवोठतो (चरे जिक्कूजिणाहिय के०) ते साधु जिनजापित जे सयम मार्गठे तेने आचरे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-माता पिता स्नुषापुत्रवधू ज्राता जार्या पुत्राश्च औरसा स्वागजाएते स र्वे तव त्राणाय रक्षणाय नाल नसमर्था । तव किंजूतस्य । स्वकर्मणा लुप्यमानस्य पीड्य मानस्य ।दृष्टांतोत्र कालसौकरिकसुत सुलसोऽजयकुमारस्य मित्रं तेन महात्मना स्वजना न्यर्थितेनापि न प्राणिहिंसा कृता ॥ ५ ॥ एत पूर्वोक्तमर्थं प्रेक्ष्य विचार्य परमार्थोमोक्ष स्तमनुगहतीति परमार्थानुगामुकस्त सम्यक्दर्शनादिकं विचार्य निर्ममोनिरहकारोजि क्षुर्जिनाहित जिनोक्त मार्ग चरेत् ॥ ६ ॥

॥ टीका-स्वजनाश्च तद्रव्योपजीविनस्तत्त्राणाय नजवतीति दर्शयितुमाह । (माया

अर्थ- (जेणेह के०) जे (अन्नपाण के०) अन्नपाणीये करीने आलोकने वि षे (णिव्वहेनिरकू के०) साधुपोतानो निरवाह करे आजीविका करे तेवा अन्न पान ने (तहाविहं के०) तथाविध देखीने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने नावनी अपेक्षाये शुद्ध नि र्दोष ग्रहण करे. (अणुप्पयाणमन्नेसि के०) वली एज अन्न पाणीनुं बीजा असयतिने देवुं ते सर्वने ज्ञ परिज्ञायें अनर्थनु हेतु जाणीने पंमित परिहरे ॥ २३ ॥ (एव के०) एरीते (महामुणी के०) महामुनि (निग्गथे के०) बाह्याभ्यतर परिग्रह रहित एवा (महावीरे के०) श्री वर्द्धमान स्वामी तेणे (उदालु के०) कह्याछे. (सेके०) ते श्री वर्द्धमान केवाछे, तोके (अणतनाणदंसी के०) अनत ज्ञान दर्शनना धरनारछे तेणे धम्मदेसितवसुत के०) ए श्रुत चारित्र रुप धर्म उपदेश्यो छे सिद्धात रहस्य प्रकाश्योछे.

॥ दीपिका- येनान्नपानेन इहास्मिन् लोके निर्कुर्निर्वहेत् सयमयात्रां कुर्यात् तत्तथा विधमन्न पान वा शुद्ध गृह्णीयात्तेषामन्नादीनामनुप्रदान गृहस्थाना परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा सयमोपघातक नकुर्यात्तत्सर्व विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २३ ॥ एव पूर्वोक्त निर्ग्रंथ श्रीवीरोमुनि उदाहृतवान कथितवान् । बाह्याभ्यतरग्रथरहितत्वान्नि र्ग्रंथ । अनंतं ज्ञान दर्शनं च यस्यासावनतज्ञानदर्शी सनगवान् धर्मचारित्ररूपं श्रुतं च सिद्धांतं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

॥ टीका- किचान्यत् । (जेणेहमित्यादि) येनान्नेन पानेन या तथाविधेनेति सुप रिशुद्धेन कारणापेक्षयात्वशुद्धेन वा इहास्मिन् लोके इदं संयमयात्रादिक डुर्निक्षारोगात कादिकं वा निर्कुर्निर्वहेन्निर्वाहयेद्वा यदन्न पानवा तथाविध द्रव्यक्षेत्रकालनावापेक्षयाशुद्ध कल्प गृह्णीयात्तथैतेषामन्नादीनामनुप्रदानमन्यस्मै सावद्ये सयममात्रान्निर्वहणसमर्थ मनुतिष्ठेत् । यदिवा येनकेनचिदनुष्ठितेन सयम निर्वहेन्निर्वाहयेदसारतामापादयेत्तथाविध मशन पान वाऽन्यद्वा तथाविधमनुष्ठान नकुर्यात् । तथैषामशनादीनामनुप्रदान गृहस्थाना परतीर्थिकाना स्वयूथ्याना वा सयमोपघातक नानुशीलयेदिति तदेतत्सर्व ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा सम्यक्परिहरेदिति ॥ २३ ॥ यडुपदेशेनैतत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह (एवउदाहुइत्या दि) एवमनतरोक्तया नीत्या उद्देशकादेरारन्य (उदाहुत्ति) उदाहृतवानुक्तवान्निर्गतो बाह्याभ्यतरोग्रथोयस्मात्सनिर्ग्रंथोमहावीरइति श्रीमद्वर्धमानस्वामी महांश्चासौ मुनिश्च महामुनि अनंतं ज्ञान दर्शन च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सनगवान् धर्म चारित्रलक्षण सं सारोत्तरणसमर्थ वा तथा श्रुतं च जीवादिपदार्थसूचक देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

रायुज के०) मनुष्यादिक (रसज के०) कीटादिक (सस्वेदजके०) जु प्रमुख (उद्भि ज्ज के०) तीडादिक ए सर्व त्रसकाय जीवोजाणवा ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–वित्त धन पुत्रांश्च ज्ञातीन् स्वजनान् त्यक्त्वा परिग्रह चातरममत्व । ए कारोवाक्यालंकारे अंत गच्छतीत्यतगोऽप्यरित्यजइत्यर्थ । त तथाभूतं शोकरूप त्य क्त्वा निरपेक्ष पुत्राद्यपेक्षारहित परिव्रजेत् सयमे चरेत् । यदुक्त । जलियाअवइरकंता, निरावइरकागयाअविग्घेण ॥ तम्हापवयणसारे, निरावइरकेणहोअव्वइति ॥ ७ ॥ पृथि वी आप अग्नय वायव तृणानिकुशादीनि वृक्षाअशोकाम्राद्य सबीजानि शालिगो धूमादीनि तद्युक्ताएते त्रयोपि वनस्पतय एते पचाप्येकेंद्रिया । अंडजा पक्षिगृहकोकि लाद्या पोतजाहस्त्याद्य जरायुजागोमनुष्याद्य रसाद्दधिसौवीरादेर्जातारसजा स स्वेदजायूकामत्कुणाद्य उद्भिज्जा खजरीटदर्दुराद्या एते त्रसा ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (चिच्चाइत्यादि) समारस्वभावपरिज्ञानपरिकर्मितमतिर्विदितवेद्य सम्यक् त्यक्त्वा परित्यज्य किंतद्वित्त द्रव्यजात तथा पुत्रांश्च त्यक्त्वा पुत्रेष्वधिकस्नेहोभ वतीति पुत्रग्रहण । तथा ज्ञातीन् स्वजनांश्च त्यक्त्वा तथा परिग्रह चातर ममरूपत्व । एकारोवाक्यालंकारे । अंत, गच्छतीत्यतगोऽप्यरित्यजइत्यर्थ । अंतकोविनाशकारीत्यर्थ । आत्मनि वा गच्छतीत्यात्मगआतरइत्यर्थ । त तथाभूत शोक त्यक्त्वा परित्यज्य श्रोतोवामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायात्मक कर्माश्रव द्वारभूत परित्यज्य पाठांतरवा । (चिच्चाणणतगसोय) अतं गच्छतीत्यतग नअतगमनतग । श्रोत शोकं परित्य ज्य निरपेक्ष पुत्रदारधनधान्यहिरण्यादिकमनपेक्ष्यमाण सन् मोक्षाय परिसमता त् सयमानुष्ठाने व्रजेत् परिव्रजेदिति । तथा चोक्त । (जलियाअवयरकंता, निरावय रकागयाअविग्घेण ॥ तम्हापवयणसारे, निरावयरकेणहोयव्वं॥ १ ॥ भोगेअवयरकता, प डंति ससारसागरे घोरे । भोगेहिनिरवपरका, तरंति ससारकतारमिति ॥२॥ सएव प्रव्रजि त सुव्रतावस्थितात्माऽहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेन ॥ ७ ॥ तत्राऽहिंसाप्रसिद्ध्यर्थमा ह । (पुढवीआउइत्यादिश्लोकद्वय) तत्र पृथिवीकायिका सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तक भेदभिन्ना । तथाऽप्कायिकाअग्निकायिकावायुकायिकाश्चैवभूताएव । वनस्पतिकायि कान् लेशत सभेदानाह । तृणानि कुशवच्चकादीनि वृक्षाभूताशोकादिका । सह बीजैर्व र्ततइति सबीजानि तु शालिगोधूमयवादीनि एते एकेंद्रिया पचापिकाया । पष्ठत्रसकायनि रूपणायाह । अडजा शकुनिगृहकोकिलकसरीसृपादय । तथा पोताएव पोतजाहस्तिश रभादय । तथा जरायुजाये जबालवेष्टिता समुत्पद्यते गोमनुष्यादय । तथा रसात् दधि

दिवसंपि नासमाणो,साहूवरुगुत्तयंपत्तो ॥१॥ यदिवा यत्रान्य कश्चिद्झादिकोनाषमाणस्त त्रांतरएव सश्रुतिकोहमित्येवमनिमानवान्ननाषेत।तथा मर्मे गछतीति मर्मग वचोन (वर्फे ऊति) नानिलपेत् । य द्वचनमुच्यमानं तथ्यमतथ्यवा सद्यस्य कस्यचिन्मन पीडामाधत्ते तद्विवेकी न नाषेतेति नाव ।यदिवा मामकं ममीकार पक्षपातस्तं नाषमाणो(नवफेऊ ति)नानिलपेत्तथा मातृस्थान मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत्। इदमुक्तं नवति। परवचनबुध्या गूढाचारप्रधानोनाषनाणोऽनाषमाणोवाऽन्यदावा मातृस्थान नकुर्यादिति ।यदातु वक्तु कामोनवति तदा नैतद्वच परमात्मनोरुनयोर्वा वाधकमित्येव प्राग्वि चित्य वचनमु दाहरेत्। तडुक्तं।पुव्र बुद्धीएपेहित्तापन्नावक्कमुदाहरे इत्यादि ॥२५॥ अपिच। (तहिमेत्यादि) सत्या असत्या सत्यामृपा असत्यामृपेत्येवरूपासु चतसृषु नाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृपेत्ये तदनिधानात्तृतीया नाषा। साच किंचिन्मृषा किंचित्सत्या इत्येवरूपा। तद्यथा दशदारका अ स्मिन्नगरे जातामृता । तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्यायाव्यनिचारात्सत्यामृषात्वमिति। या चैवरूपा नाषामुदित्वा अनुपश्चाज्ञापणाज्जन्मातरेवा तज्जनितेन दोषेण तप्यते पीड्यते क्लेशनाग्नवति।यदिवा अनुतप्यते किममैवनूतेन नाषितेनेत्येव/पश्चात्ताप विधत्ते। ततश्चेद मुक्तं नवति मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्या द्वितीया संमस्ताथैविसवादिनी।तथा प्रथमापि नाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषंगिणी सा न वाच्या।चतुर्थाप्यसत्या मृपा नाषा बुधैरनाचीर्णा सा न वक्तव्येति। सत्यायाअपि दोषानुषंगित्वमधिकृत्याह् । पद्वच (छन्नति) क्षणुहिंसाया हिंसाप्रधान । तद्यथा वध्यतांचौराय लूयंताकेदारा दम्यता गोरथकाइत्यादि ।यदिवा छन्नंति प्रछन्न यल्लोकैरपि प्रछाद्यते तत्सत्यमपि न वक्तव्य मिति। एषाऽऽज्ञा अयमुपदेशोनिर्ग्रथोनगवतस्तस्ये ति ॥ २६ ॥

होलावाय सहीवाय, गोयावाय च नोवदे ॥ तुम तुमति अमणु
न्नं, सवसो त ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया निक्खू, णेव स
संग्गिय नए ॥ सुहरूवा तत्तुवस्सग्गा, पडिबुज्झेज्ज तेविऊ ॥२८॥

अर्थ-(होलावाय के०) होलावादते देश विशेषे डरवचन विशेषते तेमाटे होल्या एम नबोले, तथा (सहीवाद के०) हे सखी एम पण न बोले, (गोयावायचनोवदे तुके०)गोत्रनो प्रकाशकरी बोलाववो जे तु अमुक नीच गोत्रीछो एवु वचन पण नबोले, (तुमतुमतिअणुमन्नके०) तुतु एवो अमनोज्ञ तिरस्कारनु असुहामणु वचन ते (सव्व सोतणवत्तए के०) सर्वथा प्रकारे नबोले, केमके साधुने एवा वचन बोलवा युक्त न थी ॥ २७ ॥ (अकुसीलेसया निक्खू के०) सर्व काल साधु अकुशील होय ब्रह्मचारी

मित्यनेनाऽदत्तादानं गृहीत । एतानिच मृषावादादीनि प्राण्युपतापकारित्वात् शस्त्रा णीव शस्त्राणि वर्तते । तथा दीयते गृह्यतेऽष्टप्रकार कर्मभिरिति । कर्मोपादानकारणान्य स्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१०॥

पलिउंचणंच नयणच, थंमिल्लुस्सयणाणिया ॥ धूणादाणाइं लो
गसि, तं विज्ञं पारिजाणिया॥११॥ धोयणं रयण चेव,वत्तीकम्म
विरेयणं ॥ वमण जणपलीमंथ, तं विज्ञ परिजाणिया ॥ १२ ॥

अर्थ–(पलिउचणंचके०) माया तथा (नयणचके०) लोन (थमिल्लके०) जे निर्विवे क पणा थकी थम्भिलनी पेरे होय ते क्रोध (उस्सयणाणियाके०) जे अपध्याने करी सध्या दिकनी पेरे उचु होय तेने मान कहिए (धुणाके०) एचारेनो त्यागकरे केम के (दाणाइ लोगसि के०) एचार कषायने लोकमा कर्म ग्रहण करवाना कारण कह्या छे तेमाटे (त विज्ञपरिजाणिया के०) एने पमित ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे ॥ ११ ॥ (धोयणरयण के०) हाथ पग वस्त्रादिकने धोवु तथा रगवु (चेवके०) वली (वत्थिकम्म के०) नख रोमादिकनु समारवु (विरेयण के०) परवाल लेवो (वमनके०) वमन करवु (अजण के०) आखनुं आजवु (पलिमथ के०) अन्यकोइ शरीर सस्का रादिक जेणे करी सयमनो उपघात थाय तेवा सर्वकारणोने जाणीने पमित परिहरे॥१२॥

॥ दीपिका–परिकुंच्यते आत्मा वक्रतां प्राप्यते येन तत परिकुचन माया । नज्यते सर्व त्र आत्मा प्रव्हीक्रियते येन सज्जनोलोन । यदुदयेनात्मा सदद्विवेकविकलत्वात् स्थमि लवत्स्यात् सस्थडिल क्रोध.। यस्मिन् सति आत्मा उच्छ्रित स्यादुन्नत सउच्छ्रायो मान.। ञादसत्त्वात्क्लीवत्व । एतानि धूनय त्यज। किंनूतानि आदानानि बंधकारणानि तदेतद्वि द्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ ११ ॥ धावन हस्तपादवस्त्रादे । रजन तस्यैव। बस्तिकर्मानु वासनरूप । विरेचनमधोविरेक । वमनमूर्ध्वविरेक । अजन नयनयो । एवमन्यदपि य त्सयमपलिमथकारि सयमोपघातकारि तत्परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १२ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (पलिउचणमित्यादि) पचमहाव्रतधारणमपि कषायिणोनि ष्फलं स्यादतस्तत्साफल्यापादनार्थं कषायनिरोधोविधेयइति दर्शयति ॥ परिसमतात् कुच्यते वक्रतामापद्यते क्रियायेन मायाऽनुष्ठानेन तत्पलिकुचन मायेति नण्यते । तथा न ज्यते सर्वत्राऽऽत्मा प्रव्हीक्रियते येन सज्जनोलोनस्त तथा यदुदयेन ह्यात्मा सदसद्विवेक विकलत्वात् स्थंमिलवद्भवति सस्थडिल क्रोध । यस्मिंश्च सत्यूर्ध्वं श्रयति जात्यादिना दर्पा

नन्नच्च अतराएणं, परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारिय किड्ड, नातिवेल हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सुउ उरालेसु, जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो, पुठो तठ हियासए ॥ ३० ॥

अर्थ– (नन्नच्च अतराएण के०) जरा रोगादिक कारणविना (परगेहेणणिसीयए के०) गृहस्थना घरने विषे नवेशे एटले गृहस्थने घेर नवेशवु ए साधुनो उत्सर्ग मार्ग कह्योछे अने अपवादे तो जरारोगादिक कारण विना नवेशे तथा कोइएक लब्धीमत धर्मोपदेशादिक वचन देवाने कारणे पण वेशे तथा (गामकुमारियंकिड्ड के०) ग्रामने विषे बालक क्रीडा हास्य कदर्प हस्तस्पर्श आलिंगनादिक गेडा दडि इत्यादिक क्रीडाने (नातिवेलहसेमुणीके०) साधु नकरे वली पडिलेहणादिक क्रियानी मर्यादा ने नगवतनी आज्ञा थकी विरुध जाणीने अतिक्रमे नही हसे नही ॥२९॥ (अणुस्सुउ उरालेसु के०) उदार उत्कट प्रधान एवा गृहस्थना कामनोगादिक देखी तथा सानलीने तेनी वांछा करे नही, तथा (जयमाणोपरिव्वए के०) संयमने विषे यत्नकरतो शुद्ध चारित्र, पाले (चरियाएअप्पमत्तो के०) विहार करवाने विषे प्रमाद नकरे, अप्रमत्त पणे विचरे (पुठोतठहियासए के०) त्या विहार करवानेविषे उपसर्ग परिसह उपने थके तेने फरश्यो थको अदीनपणे सम्यक्रीते अहियासे ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–साधुर्निक्षानिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्ट सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहे ननिषीदेत नोपविशेत्। यदिवा देशनालब्धिमान् कश्चित्ससहायोगुर्वनुज्ञात कयचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि । तथा ग्रामे कुमारकास्तेषामिय ग्रामकुमारिका क्रीडा हास्यकदर्पहस्तसस्पर्शालिंगनादिका अथवा क्रीडा वट्टकडुकादिका ता मुनिर्नोकुर्यात् अतिवेलं वेलामर्यादा तामतिक्रम्य नहसेन्मुनि । यदागम । जीवेणनतेहसमाणे उस्सूयमाणेवाकाडकम्मवगडीउ बधइ गोयमा सत्तविहबंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ उदारेषु शब्दादिविषयेषु अनुत्सुकोऽनासक्तोयतमान संयमे परिव्रजेन्मूलोत्तरगुणेपूद्यम कुर्यात् । चर्याया भिक्षादिकायामप्रमत्त स्यात् स्पृष्ट परीषहादिनिस्तत्राऽदीनोऽध्यासहेत् सम्यक् सह्यात् ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (ननन्नेत्यादि) तत्र साधुर्निक्षादिनिमित्त ग्रामादौ प्रविष्ट सन् परोगृहस्थस्तस्य गृह परगृह तत्र ननिषीदेन्नोपविशेत्उत्सर्गतोस्यापवाद दर्शयति।नान्यत्रांतरायेणेति। अतराय शक्त्यनाव सच जरसा रोगातकाभ्या स्यात्तस्मि चातराये सत्युपवि

न क्रीत । पामिच्चं साध्वर्थमन्यतउच्छिन्नकं गृह्यते । चकार समुच्चये । आहृत यद्गृहस्थै साध्वर्थमानीयते पूय आधाकर्मावयवसंपृक्त अनेपणीय यत्केनापि दोपेण अशुद्धं तत्सर्व विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (गंधमल्लइत्यादि) गंधा कोष्ठपुटादय । माल्यजात्यादिक । स्नानच शरीरप्रक्षालन देशत सर्वतश्च । तथा दंतप्रक्षालन कदंबकाष्ठादिना । परिग्रह सचित्ता दे स्वीकरण । तथा स्त्रियोदिव्यमानुपतैरश्च्य । तथा कर्महस्तकर्म सावद्यानुष्ठानवा । तदेत त्सर्वं कर्मोपादानतया संसारकारणत्वेन परिज्ञाय विद्वान् परित्यजेदिति ॥१३॥ किंचान्य त् । (उद्देसियमित्यादि) साध्वाद्युपदेशेन यद्दानाय व्यवस्थाप्यते तदुद्देशिक । तथा क्री तं क्रयस्तेन क्रीत गृहीत क्रीतक्रीत । (पामिच्चति) साध्वर्थं अन्यतउद्यतक यद्गृह्यते तत्तदुच्यते । चकार समुच्चयार्थे । एवकारोऽवधारणार्थे । साध्वर्थं यद्गृहस्थेन नीयते तदाहृत । तथा पूयमिति आधाकर्मावयवसंपृक्तं शुद्धमप्याहारजात नवति । किंबहुनो क्तेन यत केनचिद्दोपेणाऽनेपणीयमशुद्धंतत्सर्व विद्वान् परिज्ञाय संसारकारणतया नि स्पृह सन् प्रत्याचक्षीतेति ॥ १४ ॥

आसूणि मक्खिरागच, गिधुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणंच कक्कंच,
तं विज्ज परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए, पसिणाय
तणाणिय ॥ सागारियच पिम्मच, तंविज्जं परिजाणिया ॥१६ ॥

अर्थ–(आसूणि के०) घृतपानादिक औषध जेणे करी प्राणी बलवंत मत्त थाय. अथवा आशून एटले सुन्य जेणेकरी आत्मा शून्यथको रहे तथा (अक्खीरागच के०) आखनु अंजनादिक तथा (गृद्धिके०) रसलोल्यता तथा (उपघातकर्मक के०) जे करवा,थकी परजीवने उपघात थाय ते कर्म, तथा (उच्छोलनच के०) हाथ पग व स्त्रादिकनु पखालवु तथा (कक्कच के०) लोध्रादिक द्रव्ये करी शरीरनु उगटणु करवु ए सर्वने कर्म बंधनु कारण जाणीने पंमित परिहरे ॥ १५ ॥ (संपसारीकयकिरए के०) असंयतिनी साथे पर्यालोचन एटले आलोचन करवु तथा असंयमाचरण करवु करावबु तथा असंयतिना अनुष्ठाननी प्रसंसा करवी तथा (पसिणायतणाणियके०) प्रश्नजे लोक व्यवहार ज्योतिषादिक तेनो निर्णय करवो तथा (सागारियचपिम्मचके०) सागारिक जे स य्यात्तर तेना घरनो पिंम लेवो ए सर्वने पापना कारण जाणी पंमित परिहरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–येन घृतपानादिना आशूनी स्यात् बलवान् नवति तदाशूनी । अक्खिरा

तु ॥ आर्याणि शुनानि कर्तव्यानि बुद्धानामाचार्याणामतिके समीपे शिक्षेतान्यसेदनेन नित्यगुरुकुले वास सेवनीयइति ज्ञापित ॥ ३२ ॥

॥ टीका–परीषहोपसर्गाधिसहनमेवाधिकृत्याह । (हम्ममाणोइत्यादि) हन्यमानो यष्टिमुष्टिलकुटादिनिरपि न कुप्येन्नकोपवशगोनवेत्तथा डुर्वचनान्युच्यमानआक्रुश्यमानो निर्नर्त्स्यमानोन सज्वलेन्न प्रतीपं वदेन्नमनागपि मनोऽन्यथात्व विदध्यात् किंतु सुमना सर्व कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेतेति ॥ ३१ ॥ किंचान्यत् । (लद्धेकामेइत्यादि) लब्धान् प्राप्तानप्राप्तानपि कामानिच्चामदनरूपान्गंधालंकारवस्त्रादिरूपान्वा वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नानुमन्येत नगृह्णीयादित्यर्थ । यदिवा यत्र कामावसायितया गमनादिलब्धिरूपान् कामास्तपोविशेष लब्धानपि नोपजीव्यान्नाप्यनागतान् ब्रह्मदत्तवत्प्रार्थयेदेव च कुर्वतोनाव विवेकआख्यातआविर्नावितोनवति । तथा आर्याण्यार्याणा कर्तव्यानि अनार्यकर्तव्यपरिहारेण । यदिवा आचर्याणि मुमुक्षुणा यान्याचरणीयानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तानि बुद्धानामाचार्याणामतिके समीपे सदा सर्वकालं शिक्षेतान्यसेदित्यनेन हि शीलवता नित्य गुरुकुलवास आसेवनीयइत्यावेदितं नवतीति ॥ ३२ ॥

सुरसूसमाणो उवासेज्जा, सुपन्न सुतवस्सियं ॥ वीराजे अत्तपन्नेसी, धितिमंता जिइंदिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवमपासंता, पुरिसादाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुका, नावकखति जीवियं ॥३४॥

अर्थ–(सुस्सूसमाणोउवासेज्जाके०) सानलवा वाछतो एवो जे साधु ते पोताना गुरुनी रुडी वैयावच्चादिक विश्रामणादिके करी सेवा करे, ते गुरु केवाहोय तोके (सुप्पन्नं सुतवस्सियंके०) स्वपर सिद्धात जाणवाने नलीछे प्रज्ञा जेनी एटले रुडा गीतार्थ तथा रुडा तपना करनार एवा गुरुनी सेवा करे, ते केवा पुरुष गुरुनी सेवा करे तोके (वीरा के०) कर्मने जीतवा समर्थ तथा (जेअत्तपन्नेसी के०) जे सत्य बुद्धिना गवेषण हार तथा (धितिमताजिइंदिया क०) धैर्यवत एटले जेमनु सयममा एकाग्र चित्तछे, अने जीतेंद्रिय एवा जे पुरुष होय ते गुरुनी सेवा करे ॥ ३३ ॥ (पुरिसादाणियानरा के०) जे पुरुषादानीय एटले सत्यमार्गनी गवेषणा करनार एवा मनुष्य ते एम जाणेछे जे (गिहेके०) गृहस्यने नावे रेंवा थकी (दीवके०) ज्ञानरूप दीपक अथवा ससारनो उद्धार तेने (अपासता के०) नथी देखता माटे चारित्र आदरेछे, (तेवीराबंधणुम्मुक्का के०) ते वीर पुरुष राग द्वेषादिक बधनथी रहित थका (नावकखतिजीविय के०) असंयमे जीवितव्य वाछे नही एटले जीववाने अर्थे असयम करे नही ॥ ३४ ॥

पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १७ ॥ (पाणहा उयछत्तंच के०) पावडी तथा खासडा तथा ताप टालवाने अर्थे छत्र तथा (णालीयं के०) न लीमाहे पाश घाली नाखे द्युत रमत विशेष (वालवीयणच के०) चामर मोर पीछ प्रमुखना वींजणा तथा (परकिरिय के०) अन्य गृहस्थ पासेथी क्रिया करावे तथा (अन्नमन्नच के०) अन्योन्य एटले माहो माहे क्रियानुं करवुं एटले बीजो आपणी करे आपणे बीजानी करिए तेक्रिया जाणवी ए सर्व कर्म बधना हेतुछे एम तेने ज्ञ प रिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पंमित परिहरे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–अर्थोधनधान्यादि पद शास्त्रं प्राण्युपघातक नशिक्षेत् । अथवा अष्टा पदं द्यूतक्रीडा नशिक्षेत न।पि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेत् वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतं वे धातीतमधर्मप्रधान वचोनवदेत् हस्तकर्म प्रतीत ।अथवा हस्तक्रिया परस्पर हस्तव्यापारे प्रधान कलह् । विवाद शुष्कवाद तदेतद्धकारण परिहरेत् ॥ १७ ॥ उपानहौ काष्ठपा डुके आतपवारणाय छत्र च नालिका द्यूतक्रीडा वालैर्मयूरपिछैर्व्यजनकं परेषा क्रिया अन्योन्यकार्यमन्यकार्य सकरोति तस्य चान्य । तदेतत्सर्व विद्वान् कर्मबंधहेतुत्वेन ज्ञप रिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका किचान्यत् । (अष्टापयमित्यादि) अर्थते इत्यर्थो धनधान्यहिरण्यादिक पद्य ते गम्यते येनार्थस्तत्पद शास्त्र अर्थार्थ पदमर्थपदं चाणक्यादिकमर्थशास्त्रं तन्न शिक्षे त्नान्यसेन्नाप्यपरप्राण्युपमर्दकारि शास्त्र शिक्षयेत् । यदिवा अष्टापद द्यूतक्रीडाविशेषस्तं नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेदिति । तथा वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतमधर्मप्र धान वचोनोवदेत् । यदिवा वेधऽति वस्त्रवेधोद्यूतविशेषस्तद्गत वचनमपि नोवदेदास्ता तावत्क्रीडनमिति हस्तकर्म प्रतीत । यदिवा हस्तकर्म हस्तक्रिया परस्पर हस्तव्यापार प्रधान कलहस्त तथा विरुद्धवाद शुष्कवादमित्यर्थ । च समुच्चये । तदेतत्सर्व संसा रभ्रमणकारण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥१७॥ किंच (प णहावेवेऽत्यादि) उपानहौ काष्ठपाडुके च तथाऽतपादिनिवारणाय छत्रं तथा नालिका द्यूतक्रीडाविशेषस्तथा वालैर्मयूरपिछैर्वा व्यजनक तथा परेषा सबंधिनी क्रियामन्योन्यपरस्प रतो ऽन्यनिष्पाद्यामन्य करोत्यपरनिष्पाद्या चापरइति । च समुच्चये । तदेतत्सर्व विद्वान् प मित कर्मोपादानकारणत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥१८

उच्चारं पासवणं,हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वा विसाहट्टु, णावमज्जे कयाऽवि ॥ १९॥ परमत्ते अन्नपाण, ण भुंजेज्ज कया इवि ॥ परवत्थ अचेलोवि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥

सोनवति । यदिवा आदानीयोहितैषिणा मोक्षस्तन्मार्गोवा सम्यक्दर्शनादिकः पुरुषाणां मनुष्याणामादानीयः सविद्यते येषामिति विग्रह्य मत्वर्थीयोऽर्शआदिभ्योजिति। तथा यएवंभूतास्ते विशेषेणेरयंत्यष्टप्रकार कर्मेति वीरास्तथा बंधनेन सबाह्याभ्यतरेण पुत्रकलत्रादि स्नेहरूपेणोत्प्राबल्येन मुक्ताबधनोन्मुक्ता सतोजीवितमसयमजीवितं प्राणधारणवा ना विकाङ्क्षति नाभिलषंतीति ॥ ३४ ॥

अगिद्धे सद्दफासेसु, आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सवं तं समयाती त, जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणच मायंच, तं परिणाय पंमिए ॥ गारवाणिय सवाणि, णिवाण सधए मुणित्तिबेमि ॥ ॥ ३६ ॥ इति श्रीधम्मनाम नवमज्झयण सम्मत्त.

अर्थ–(अगिद्धेसद्दफासेसु के०) शब्द गध रूप रस स्पर्शादिकने विषे अगृद्ध एटले अमूर्छित तथा (आरंभेसु के०) छ कायना आरभने विषे (अनिश्रित के०) प्रवर्त्ते नही, (सवंतसमयातीत के०) ए सर्व निषेधवाना कारण कह्या, ते सर्वने सिद्धात थकी विपरीत जाणीने आचरवा नही (जमेतंलवियबहु के०) तथा जे विधि द्वारे कह्युछे ते सर्व सिद्धातने अनुसारे जाणीने आचरवु ॥ ३५ ॥ (अतिमाणचमायंच के०) अत्यत मान अत्यत माया च शब्द थकी क्रोध लोभ पण लेवा (तंपरिन्नायपंमिए के०) ए चार कषायने पंमित ज्ञ परिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी परिहरे (गारवाणियस वाणि के०) तथा रसगारव रूद्धिगारव अने सातागारव ए सर्वने सर्वथा परिहरे (णि वाणसधएमुणि के०) साधु चारित्रिउ मोक्षने सधए एटले वाछे त्तिबेमिनो अर्थ पूर्वव त् जाणवो ॥ ३६ ॥ इतिश्री धर्म नामा नवमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो

॥ दीपिका–शब्दस्पर्शेषु । आद्यतग्रहणान्मध्यग्रहण । रूपगधरसेष्वप्यगृद्धोऽनासक्त आरंभेष्वनिश्रितोऽप्रवृत्त । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य निषेधत्वेन यल्लपितमुक्त मया बहु तत्समयाज्जैनागमादतीतमितिकृत्वा निषिद्ध ॥ ३५ ॥ अतिमान तत्सहचर क्रोध माया तत्कार्यभूतं लोभ च तत्सर्व पंमित परिहरेत् सर्वाणि गारवाणि रूद्धिरससातरूपाणि त्यक्त्वेति शेष । साधुर्निर्वाण मोक्ष सर्वकर्मक्षय वा सदध्यात्। इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतागदीपिकाया नवम धर्माध्ययन समाप्त ॥

॥ टीका–किचान्यत् । (अगिद्धेत्यादि) अगृद्धोऽनध्युपपन्नोमूर्छित । क्व। शब्दस्पर्शेषु मनोज्ञेष्वाद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणमतोमनोज्ञेषु रूपेषु गधेषु रसेषु वा अगृद्धइति द्रष्टव्य।

ना उपर बेसवु तथा (निसिज्जंचगिहतरेके०) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमा बेसवु (संप्रच्छन के०) गृहस्थने कुशलादिकनु पुठवु (वाके०) तथा (सरणं के०) पूर्वक्रीडादिकनु सभारवु ए सर्वने जाणीने पमित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने (जसके०) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने (कित्तिके०) किर्त्ति कहिए तेज (सिलोयचके०) श्लाघानी (जायके०) जाति जाणवी तथा (वदणपूयणाके०) राजादिकनी वदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावचानी जे वांठा करवी, तथा (सव्व लोयंसिजेकामा के०) सर्व लोकमां जे विषय इच्छा कामरूप तेनी वाछना करवी, ए सर्वने पमित कर्म बधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–आसदीआसनविशेष पर्यंक शयनविशेष । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थान परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसप्रच्छन पूर्वक्रीडितस्मरण तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ सग्रामादिजव यश । दानादिजवा कीर्ति । तपोज्ञानादिजवा श्लाघा तथा नृपादिनिर्वदना पुष्पादिनि पूजन तथा सर्वलोकइच्छामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

॥ टीका–(आसदीत्यादि) आसंदीत्यासनविशेष । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोप्यासनविधिर्गृहीत । तथा पर्यक शयनविशेषस्तथा गृहस्यातर्मध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्या वाऽऽसनंवा सयमविराधनाजयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गनीरझुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बनचेरस्स, इत्थीर्ड वाविसकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रच्छन आत्मीयशरीरावयवप्रच्छनवा तथा पूर्वक्रीमितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्य सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । (जसकित्तिमित्यादि) वहुसमरसघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षण यश । दानसाध्या कीर्त्ति जातितपोवहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिवलदेववासुदेवादिनिर्वदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इच्छामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यश कीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिव्वहे भिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसि, तं विज्ज परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गथे, महावीरे महामुणी ॥ अणतनाणदंसी से, धम्म देसि तव सुत ॥ २४ ॥

दिक स्थावर जीवोछे ते समस्त जीवोने (हछेहिंपाएहिय के०) हाथे करी, पगे करी अथवा समस्त कायाये करी (सजमिता के०) सयत हतो एनी हिंसा नकरे उपलक्ष ण थकी एने कोइ पण कदर्थना नकरे तथा (अदिन्नमन्नेसुयणोगहेज्जा के०) अन्यनु अदत्तदान ग्रहण करे नही ए अर्थेथी परिग्रह मैथुन मृषावादादिकने पण नसेवे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथदशमाध्ययनमारन्यते । पूर्वं धर्मउक्त सच समाधौ सति स्यादित्यत्र समाधिरुच्यते । (आघमईमित्यादि । आघमाख्यातवान् ऽम वक्ष्यमाण धर्म मति मान् अर्हन् अनुविचित्य ज्ञानेन ज्ञात्वा । धर्म किंनूतं । ऋजुमवक्र समाधिच सम्यगधी यते मोक्षप्रति योग्य क्रियते आत्मायेन ससमाधिस्तमिम समाधिरूप धर्म शृणुत यूय । नविद्यते प्रतिज्ञा आकाङ्क्षा तपसि क्रियायावा यस्यासावप्रतिज्ञोनिस्पृहोनिक्षु समा धि धर्म प्राप्त नविद्यते निदानमारंनरूप जूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदान सावद्यानुष्ठानर हित परिव्रजेत् सयमे चरेत् ॥ १॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिषु लोकेषु प्राच्यादिदिक्षु च ये त्रसा स्थावरा श्च ये प्राणिन । एतान् प्राणिनोहस्तपादान्या सयम्य बध्वा साधु उप लक्षणादन्यथा वा कदर्थयित्वा दुःखोत्पाद न कुर्यात् । तथा अन्येभ्योदत्त नगृह्णीयात् तृतीयव्रतोपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि पालयेत्समाधिमाश्रयेदित्यर्थ ॥ २ ॥

॥ टीका—नवमानतर दशममारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । ऽहानतराध्ययने धर्मो ऽनिहित सचाविकल समाधौसति नवत्यतोधुना समाधि प्रतिपाद्यते ऽत्यनेन सबधे नायातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्रोपक्रमातर्गतोर्था धिकारोय । तद्यथा । धर्मे समाधि कर्तव्य सम्यगाधीयते व्यवस्थाप्यते तन्मार्गवा प्रति येना त्मा धर्मध्यानादिना ससमाधिर्धर्मध्यानादिक सच सम्यक्ज्ञात्वा स्पर्शनीय । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिरुदाह । आयाणपदेणाघ गोण णाम पुणो समाहित्ति॥णि क्खिविऊण समाहि, नावसमाही इपगयतु ॥ ५ ॥ (आयाणपदेणाघमित्यादि) आदीय ते गृह्यते प्रथममादौ यत्तदादानमादानच तत्पदच सुबत तिङतवा तदादानपद तेनाघति नामास्याध्ययनस्य यस्मादध्ययनादाविद सूत्र । (आघमईमणुवीइ धम्ममित्यादि) य थोत्तराध्ययनेषु चतुर्थमध्ययन प्रमादाप्रमादानिधायकमप्यादानपदेनासक्ष्यमित्युच्यते गुणनिष्पन्न पुनरस्याध्ययनस्य नामसमाधिरिति । यस्मात्सएवात्र प्रतिपाद्यते त च स माधि नामादिना निक्षिप्य नावसमाधिनेह प्रकृतमधिकारऽति । समाधिनिक्षेपार्थमा ह । णामठवणादविए, खेत्ते काले तहेव नावेय॥ एसोउ समाहीए, णिक्खेउ छव्विहोहोइ ॥ ॥ ६ ॥ (णामठवणाइत्यादि) नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् । एषतु समाधिनि क्षेप षड्विधोनवति । तुशब्दोगुणनिष्पन्नस्यैव नाम्नोनिक्षेपोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नाव

नासमाणो नन्नासेज्जा, णेव वंफेज्जमम्मयं ॥ मातिठाणं विवज्जे
ज्जा, अणुचितिय वियागरे ॥ २५ ॥ तत्थिमात ड्या नासा, जं
वदित्ता णुतप्पती ॥ जं छन्नं त न वत्तव, एसा आणाणियंठिया ॥२६॥

अर्थ-(नासमाणोनन्नासेज्जा के०) गुरुवादिक मोहोटा पुरुष बोलता होय तेनी व
चमा नडकीने नबोले, तथा (मम्मयके०) मर्मनुं वचन जेना बोलवा थकी कोइ जीव डुह
वाय एवा वचन बोले नही (मातिठाणविवज्जेज्जा के०) मातृस्थान एटले मायायें
करी प्रधान वचन बोलवानुं पण वर्जे तो सुं बोले तोके (अणुचिंतियवियागरे के०)
कार्य विशेषे विभागीने बोले जे नापा बोलवा थकी काइ पण डुषण नलागे तेवी ना
षा प्रकाशे ॥ २५ ॥ (तत्थिमातड्यानासा के०) एक सत्या बीजी असत्या त्रीजी स
त्यामृषा चोथी असत्यामृषा ए चार नाषा माहेली त्रीजी नाषा जे काइक सत्य अने
काइक असत्य ठे तेपण नबोले (जवदित्ताणुतप्पती के०) जे नाषाना बोलवा थकी
पठी घणो पश्चाताप करवो पडे, एटले परनवे एना उदयथी डुःखी थाय तेवारे पश्चा
त्ताप करे (जछन्नंतनवत्तवं के०) जे सावद्य एवु हिंसाकारी वचन ते नबोले, एटले
आ अमुक चोरठे एने मारो, आ धातुनो प्रयोग करो. अथवा आ खेत्र खेडो एवी नाषा
नबोले (एसाआणाणियंठियाके०) एवी आज्ञा निग्रंथ श्रीमाहावीर देवनीठे ॥२६॥

॥ दीपिका-योहि नाषासमित सन्नाषमाणोपि धर्मकथा कथयन्नपि अनाषकएव ।
उक्तंच । वयणविहत्तीकुसलो, वउगयं बहुविह वियाणंतो । दिवसपि नासमाणो, साहू
वइगुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ अथवा यत्र रत्नाधिकोनाषमाण स्यात्तत्रांतरे नन्नाषेत । मर्मग व
चन नर्कोक्तेत् । यद्वचनमुक्त सत्परपीडामाधत्ते तन्न नाषेतेत्यर्थः । मातृस्थान मायाप्रधान
वचोविवर्जयेत् अनुविचिंत्य विचार्य व्यागृणीयात् वदेत् ॥ २५ ॥ सत्या १ असत्या२
सत्यामृषा ३ असत्यामृषा ४ एताश्चतस्रोनाषा । तत्रेय तृतीया नाषा साच किंचित्सत्या
किंचिन्मृषा । यथा दशदारकाअत्रपुरे जातामृतावा तदत्र न्यूनाधिकसन्नवेसति सख्या
व्यनिचारात्सत्यामृषात्व । या नाषामुदित्वा इहलोके वा अनितप्यते क्लेशनाग्नवति । कों
र्य । मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्येति । तथा यद्वच (छन्नंति) कणुहिंसया हिंसाप्र
धान प्रछन्नवा यल्लोकैरगन्नायते तत्सत्यमपि नवाच्य एषाज्ञा निर्ग्रंथोनगवान् तस्य ॥२६

॥ टीका-किंचान्यत् (नासमाणे इत्यादि) योहि नाषासमित सन्नाषमाणोपि धर्मक
थासवयनाषकएव स्यात् । उक्तंच । वयणविहत्तीकुशलो, वउगयं बहुविह वियाणतो ।

ज्ञान समाख्यातवानेतच्च वक्ष्यमाणमाख्यातवानिति (आघंति) आख्यातवान् कोसौ । मतिमान् मननं मति समस्तपदार्थपरिज्ञानं तद्विद्यते यस्यासौ मतिमान् केवलज्ञानीत्यर्थ । तत्रासाधारणविशेषणोपादानात्तीर्थकृद् गृह्यते । असावपि प्रत्यासत्ते र्वीरोवर्धमानस्वामी गृह्यते । किमाख्यातवान धर्म श्रुतचारित्राख्य । कथं । अनुविचित्य केवलज्ञानेन ज्ञात्वा प्रज्ञापनयोग्यान् पदार्थानाश्रित्य धर्मं नापते । यदिवा ग्राहकमनुविचित्य कस्यार्थस्याय ग्रहणसमर्थस्तथाकोय पुरुष कच्च नत किंदर्शनमापन्नऽस्त्येवं पर्यालोच्य धर्मशुश्रूषवोवा मन्यंते । यथा प्रत्येकमस्मदभिप्रायमनुविचित्य जगवान् धर्मं नापते युगपत्सर्वेषा स्वनापापरिणत्या सशयापगमादिति । किंनूत धर्मं नापते । ऋजुमवक्रं यथावस्थितस्वरूपं वस्तुस्वरूपनिरूपणतोन । यथा शाक्या सर्वं क्षणिकमन्युपगम्य कृतनाशाकृताभ्यागमदोषनयात्ससंतानाभ्युपगम कृतवतस्तथावनस्पतिमचेतनत्वेनाभ्युपगम्य स्वय न ठिदति तच्छेदनादावुपदेश तु ददति तथा कार्षापणादिक हिरण्यं स्वतोनस्पृगत्य परेणतु तत्परिग्रहत क्रयविक्रय कारयति । तथा सांख्या सर्वमप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्नाव नित्यमभ्युपगम्य कर्मबंधमोक्षानावप्रसगदोषनयादाविर्नावतिरोनावावाश्रितवतइत्यादिकौटिल्यनावपरिहारेणावक्रं तथ्य धर्ममाख्यातवान् । तथा सम्यगधीयते मोक्ष तन्मार्गंवा प्रत्यात्मा योग्य क्रियते व्यवस्थाप्यते येन धर्मेण सधर्म समाधिस्त समाख्यातवान्। यदिवा धर्ममाख्यातवांस्तत्समाधिं च धर्मध्यानादिकमिति शुधर्मस्वाम्याह् तमिमं धर्मं समाधिं वा जगवड्डपदिष्ट शृणुत यूय । तद्यथा । नविद्यते ऐहिकामुष्मिकरूपा प्रतिज्ञा आकाङ्क्षा तपोनुष्ठान कुर्वतोयस्यासावप्रतिज्ञोनिक्षणशीलोनिक्षु । तुर्विशेषणे । नाव निक्षुरसावेत्र परमार्थत साधु धर्मं धर्मसमाधिंच प्राप्तोसातिति । तथा नविद्यते निदानमारंनरूप नूतेषु जतुषु यस्यासावनिदान सएवनूत सावद्यानुष्ठानरहित परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेजच्छेदिति । यदिवा अनिदानचूतोऽनाश्रवनूत कर्मोपादानरहित सुष्टु परिव्रजेत्। सुपरिव्रजेत् यदिवा अनिदानचूतान्यनिदानकल्पानि ज्ञानादीनि तेषु परिव्रजेत् । अथवा निदान हेतु कारण दुःखस्यातोनिदानजूत कस्यचिद्दुःखमनुपादयन् संयमे पराक्रमेतेति ॥१॥ प्राणिपातादीनितु कर्मणोनिदानानि वर्तंते । प्राणातिपातोपि इव्यक्षेत्रकालनावनेदाच्चतुर्धा । तत्र प्राणातिपातमधिकृत्याह् ॥ (उड्ढं अहेइत्यादि) सर्वोपि प्राणातिपात क्रियमाण प्रज्ञापकापेक्षयोर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रियते। यदिवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्रूपेषु त्रिषुलोकेषु तथा प्राच्यादिषु दिक्षु विदिक्षु चेति । इव्यप्राणातिपातस्त्वय । त्रस्यतीति त्रसाद्वीन्द्रियादयोयेच स्थावरा पृथिव्यादय । चकार स्वगतनेदसंसूचनार्थं कालप्राणातिपातसंसूचनार्थो वा। दिवा रात्रौ वा प्राणा । प्राणिना नावप्राणातिपातत्वाद् । एतान् प्रागुक्तान् प्राणिनोहस्तपादान्यां बध्वा उपलक्षणार्थत्वादस्यान्यथावा कदर्थयित्वा यत्तेषां दुःखोत्पादन तन्न कुर्या

थकी रहे (ऐवसत्तग्गियंनए के०) तथा जिनशासनथी विरुद्ध एवा अनाचारी पास त्थादिकनो अविधे संसर्ग नकरे ते पासत्थादिकनो संसर्ग केवोछे तोके जेना थकी (सु हरूवा तत्थुवस्सग्गा के०) सुखरूप जे संयम तेना घातना करनार एवा एना थकी उपसर्ग उत्पन्न थायछे केमके ते प्राये सातागारव पणे वर्त्तनारा होय छे तेमाटे तेनी साथे सुविहित पुरुष संसर्ग करे तो तेपण सातागारव पणाने पामे तेथी सुखरूप स यमनो घातक थायछे माटे (पडिबुज्झेज्जतेविऊ के०) पण्डित जे होय ते प्रतिबोध पा मीने एवा स्वेछाचारीउनो संसर्ग तेने दुःखनु कारण जाणीने त्याग करे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–होलाऽति वादोहोलावाद सखेऽति वाद सखिवाद गोत्रप्रकटनेन वादो गोत्रवाद काश्यपगोत्रावासिष्ठगोत्रावेत्यादि एवरूप वाद साधुर्नवदेत् (तुमति) इत्थं त्वमिति तिरस्कारवाक्य अमनोज्ञ परस्य मन प्रतिकूल सर्वश सर्वथा साधूना वक्तुं न वर्तते ॥ २७ ॥ नकुशीलोऽकुशील सदाभिक्षुर्नकुशीलै संसर्ग भजेत सेवेत । सुखरूपा सातागौरवस्वभावास्तत्र कुशीलसगे उपसर्गा सयमोपघातकारिण प्रादुर्ष्यंति तद्विद्वा न् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् कुशीलसग त्यजेदित्यर्थ ॥ २८ ॥

॥ टीका–किंच (होलावायमित्यादि) होलेत्येव वादोहोलावादस्तथासखेत्येव वाद स खिवादस्तथा गोत्रोद्घाटनेन वादोगोत्रवादोयथा काश्यपसगोत्रोवासिष्ठसगोत्रोवेति इत्ये वरूपं वाद साधुर्नोवदेत्तथा (तुमतुम) तिरस्कारप्रधानमेकवचनातबहुवचनोच्चारणयो ग्येऽमनोज्ञ मन प्रतिकूलरूपमन्यदप्येवभूतमपमानापादक सर्वश सर्वथा तत्साधूना वक्तुं न वर्ततइति । यदाश्रित्योक्त निर्युक्तिकारेण । तद्यथा । पासत्थोसत्थकुशीलसथवोणकिलव ट्टएकाउं तदिदमित्यादि ॥२७॥ (अकुशीलेत्यादि) कुत्सित शीलमस्येति कुशील सच पार्श्वस्थादीनामन्यतम नकुशीलोअकुशील सदा सर्वकाल भिक्षणशीलोभिक्षु कुशीलो भवेन्नचापि कुशीलै सार्थ संसर्ग सागत्य भजेत सेवेत । तत्ससर्गदोषोद्भिावयिषयाह् । सुखरूपा सातागौरवस्वभावास्तत्रतस्मिन् कुशीलसंसर्गे संयमोपघातकारिणउपसर्गा प्रादुष्यंति । तथाहि । कुशीलवक्तारोभवति । क किल प्रासुकोदकेन हस्तपाददंतादिके प्रक्षा ल्यमानेदोष स्यात्तथा नाशरीरोधर्मोभवति इत्यतोयेन केनचित्प्रकारेणाधाकर्मसान्निध्या दिना तथा उपानच्छत्रादिनाच शरीर धर्माधार वर्तयेत् । उक्तच । अप्पेण बहुमेसेज्जा एय पडियलक्खणइति । शरीर धर्मसयुक्त रक्षणीय प्रयत्नत ॥ शरीरात्स्रवते पाप पर्वतात्स लिलं यथा ॥ १॥ तथा साप्रतमल्पानि सहननानि अल्पधृतयश्च सयमे जतवइत्येवमादि कुशीलोक्त श्रुत्वा अल्पसत्वास्तत्रानुपक्ततेव विद्वान् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् बु ध्वा चापायरूपकुशीलससर्गं परिहरेदिति ॥ २८ ॥

तमसंयमजीवित तस्यार्थी आयमा श्रवरूपं न कुर्यात् । तथा सुतपस्वी निक्षु चयं आहारौषध्यादे संचय न कुर्यात ॥ ३ ॥ सर्वेंद्रियनिर्वृत सवृतेंद्रियइत्यर्थ । कासु प्र जासु स्त्रीषु। स्त्रीषु सवृतेंद्रिय स्यादिति सर्वतोविप्रमुक्तोनि सग सन् चरेत्सयमाध्वनि पृथक् पृथक् पृथिव्यादिकायेषु सत्वान् प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकायेऽनतानपि पश्य । किंनूतान् डु खार्तान् स्वकर्मणा ससारकटाहे परिपच्यमानान् ॥ ४ ॥

॥ टीका–ज्ञानदर्शनसमाधिमधिकृत्याह । (सुयरकाय धम्मेत्यादि) सुप्रख्यात श्रुत चारित्राख्योधर्मोयेन साधुनाऽसौ स्वाख्यातधर्माऽनेन ज्ञानसमाधिरुक्तोनवति।नहि विशिष्ट परिज्ञानमतरेण स्वाख्यातधर्मत्वमुपपद्यतइति नाव । तथा विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्वि द्वज्जु गुप्सा वा ता वितीर्णोतिक्रात । तदेव च नि शक यज्जिनै प्रवेदितमित्येव नि शकतया न क चिच्चित्तविप्लुति विधत्तइत्यनेन दर्शनसमाधि प्रतिपादितोनवति । येन केनचित्प्रासुकाहारो पकरणादिगतेन विधिनात्मान यापयति पालयतीति लाढ सएवनूत सयमानुष्ठान चरे दनुतिष्ठेत्तथा प्रजायतइतिप्रजा पृथिव्यादयोजतवस्तास्वात्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिन पश्यतीत्यर्थ । एवनूतएव साधुर्नवतीति । तथाचोक्त । जह ममणपिय डु खं, जाणिय ए मेव सवजीवाण ॥ णहणइणाहणावेइ, सममणइ तेण सोसमणो ॥ २ ॥ यथाच समाक्रु श्यमानस्यान्याख्यायमानस्य डु खमुत्पद्यते एवमन्येषामपीत्येव मत्वा प्रजास्वात्मसमो नवति । तथा इहासयमजीवितार्थी प्रनूतकालं सुखेन जीविष्यामीत्येतदध्यवसायी आय कर्माश्रवलक्षण न कुर्यात्तथा चयमुपचयमाहारोपकरणादेर्धनधान्यद्विपदचतुष्पदादेर्वा परिग्रहलक्षण सचयमत्यर्थ सुष्ठु तपस्वी सुविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोनिक्षुर्नकुर्यादिति ॥३॥ किं चान्यत् । (सर्वेंदियइत्यादि) सर्वाणि च तानि इंद्रियाणिच स्पर्शनादीनि तैरनिनिर्वृत्त स वृतेंद्रियोजितेंद्रियइत्यर्थ । क्व । प्रजासु स्त्रीषु । तासु हि पचप्रकाराअपि शब्दादयोविषया विद्यते। तथाचोक्तं , कलानि वाक्यानि विलासिनीना, गतानि रम्याण्यवलोकितानि ॥ र तानि चित्राणिच सुदरीणा, रसोपि गधोपि च चुबनादें ॥ १ ॥ तदेव स्त्रीषु पचेंद्रियविष यसनवात्तद्विषये सवृतसर्वेंद्रियेण नाव्यमेतदेव दर्शयति । चरेत्सयमानुष्ठानमनुतिष्ठेत् मुनि साधु सर्वत सबाह्यान्यतरात्सगाद्विशेषेण प्रमुक्तोनि सगोनिष्किचनश्चेत्यर्थ । स एवनूत सर्वबधनविमुक्त सन् पश्यावलोकय पृथक् पृथिव्यादिषु कायेषु सूक्ष्मबादरपर्या प्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान्सत्वान्प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकाये साधारणशरीरिणोऽनतान प्येकत्वमागतान् पश्य । किंनूतान् । डु खेनासातवेदनीयोदयरूपेण डु खयतीतिवा डु ख मष्टप्रकार कर्म तेनार्तान् पीडितान्परिसमतात्ससारकटाहोदरे स्वकृतबधनेन परिपच्यमा

ज्ञेयदिवोपशमलब्धिमान् कश्चित्सुसहायोगुर्वेनुज्ञात कस्यचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि। तथा ग्रामे कुमारकाग्रामकुमारकास्तेषामिय ग्रामकुमारिका ऽसौक्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसस्पर्शनालिंगनादिका। यदिवा वट्टकडुकादिका ता मुनिर्नकुर्यात्तथा वेला मर्यादातामतिक्रांतमतिवेल नहसेन्मर्यादामतिक्रम्य मुनि साधुर्ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबंधनयान्नहसेत्। तथा चागम। जीवेण नंते हसमाणे उस्सुयमाणे वाकाइकम्मपगडीउं बंधइ गोयमा सत्तविह बंधएवा अहविहबंधएवाऽस्यादि ॥ २ए ॥ किंच (अणुस्सुउ इत्यादि) उरालाउदारा शोननामनोज्ञाये चक्रवर्त्यादीना शब्दादिषु विषयेषु कामनोगा वस्त्रानरणगीतगंधर्वयानवाहनादयस्तथा आज्ञैश्वर्यादयश्चैतेपूदारेषु दृष्टेषु श्रुतेषु वा नोत्सुक स्यात्। पाठांतरवा। ननिश्रितोऽनिश्रितो ऽप्रतिबद्ध स्यायतमानश्च संयमानुष्ठाने परिसमंतान्मूलोत्तरगुणेषु उद्यम कुर्वन् व्रजेत्संयमं गछेत् तथा चर्यायां निक्षादिकायामप्रमत्त स्यात् नाहारादिषु रसगार्ध्य विदध्यादिति । तथा स्पृष्टश्चानिद्रुतश्च परीषहोपसर्गैस्तत्रादीनमनस्क कर्मनिर्जरा मन्यमानोविषहेत सम्यक् सह्यादिति ॥ ३० ॥

हम्ममाणो ए कुप्पेज्जा, वुच्चमाणो नसंजले ॥ सुमणे अहियासिज्जा, णय कोलाहलं करे॥३१॥ लद्धे कामे ए पछेज्जा, विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाण अंतिए सया॥ ३२ ॥

अर्थ–(हम्ममाणोणकुप्पेज्जाके०) कोइए लाकडी अने मुष्ट्यादिके करी हण्यो उतो क्रोध नकरे (वुच्चमाणोनसजलेके०) तथा डुर्वचने करी आक्रोश उपजाव्यो थको पण क्रोध नकरे, अने प्रति वचन पण नबोले, (सुमणेअहियासिज्जाके०) किंतु सुमन थको पूर्वोक्त परीसहने सहन करे, परतु (णयकोलाहलंकरे के०) तेवा परीसहनी पीडाये पीड्यो थको कोलाहल नकरे ॥३१॥ (लद्धेकामेणपछेज्जाके०) प्राप्त थएला कामनोगने प्रार्थे नही एटले नोगवे नही, (विवेगेएवमाहिए के०) ए साधुनो विवेक श्रीतीर्थंकरे कह्योछे, (आयरियाइंसिक्खेज्जा के०) तथा जे आचरवायोग्य एवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्रादिक तेने शीखे, परतु कोनी पाशेथी शीखे तोके (बुद्धाणअंतिएसया के०) गुरु जे आचार्य तेनी पाशेथी सदा शीखे एटले गुरु कुल वास कह्यो. ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–हन्यमानोयष्ट्यादिनिर्न कुप्येत कोप न कुर्यात् डुर्वचनैरुच्यमानआक्रुश्यमानोन सज्वलेत नप्रलापं वदेत् सुमना कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेत ॥ ३१ ॥ लब्धानपि कामान् नोगाश्च वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नगृह्णीयात् एवंकुर्वतोहि विवेकआविर्नावित स्या

रौद्ध्यानात्कर्म करोति बध्नाति । यथा राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहे कश्चिद्द्रमको निक्षार्थी वाछिताहारमप्राप्तोवैभारगिरिशिलापातनोद्यत सएव दैवात् शिलाध पतित शिलाचूर्णित सप्तमपृथ्वीं जगामेति। एवमादीननोजी कर्म बध्नाति एव मत्वा ज्ञात्वा एकाते न समाधिर्ज्ञानादिनावसमाधिस्तमाहु ससारतारणक्षम जिना ।बुद्धोज्ञाततत्व समाधौ ज्ञानादिके विवेकेवा रतोव्यवस्थित प्राणातिपाताद्विरत स्थितात्मा मर्यादावान् स्यात् ॥६॥

॥टीका–अपिच (एतेसुइत्यादि) एतेषु प्राड्निर्दिष्टेषु प्रत्येक साधारणप्रकारपूपतापक्रियया बालवद्बालोज्ञश्शब्दादितरोपि सघट्टनपरितापनोपद्रवणादिकेनानुष्ठानेन पापानि कर्माणि प्रकर्षेण कुर्वाणस्तेषुच पापेषु कर्मसु सत्सु एतेषु वा पृथिव्यादिजतुषु गत सस्तेनैव संघट्टनादिना प्रकारेणाऽनतशश्चावर्त्यते पीड्यते दु खनाग्भवतीति । पाठातरवा एव तु बाले) एवमित्युपप्रदर्शने। यथा चौर पारदारिकोवासदनुष्ठानेन हस्तपादच्छेदान् बधवा दींश्चावाप्नोत्येव सामान्यदृष्टेनानुमानेनान्योपि पापकर्मकारी इहामुत्रच दु खनाग्भवति (आउट्टतित्ति) क्वचित्पाठ । तत्राशुभान् कर्मविपाकान् दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा तेन्योऽसदनुष्ठानेभ्यआउट्टतित्ति निवर्तते। कानि पुन पापस्थानानि येन्य पुन प्रवर्तते निवर्तते वा इत्याशंक्य तानि दर्शयति। अतिपातत प्राणातिपातत प्राणव्यपरोपणाद्धेतोस्तच्चाशुभ ज्ञानावरणादिकं कर्म क्रियते समादीयते तथा पराश्च भृत्यादीन् प्राणातिपातादौ नियोजयन् व्यापारयन् पापं कर्म करोति। तुशब्दान्मृषावादादिकच कुर्वन् कारयश्च पापक कर्म समुच्चिनोतीति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (आदीणवित्तीत्यादि) आसमताद्दीना करुणास्पदा वृत्तिरनुष्ठान यस्य कृपणवनीपकादे सतवत्यादीनवृत्तिरेवनूतोपि पाप कर्मकरोति। पाठातरवा आदीननोज्यपि पाप करोतीति । उक्तच । पिंडोलकेव्व दु सीले णरगाउणमुच्चइ। सकदाचिद्भोजनमाहारमलनमानोऽल्पत्वादार्तरौद्रध्यानोपगतोप्यध सप्तम्यामप्युत्पद्येत। तद्यथा। असाविव राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहोवैभारगिरिशिलापातनोद्यत सदैवात्स्वय पतितपिंडोपजीवीति तदेवमादीननोज्यपि पिंडोलकादिवज्जन पाप कर्म करोतीत्येव मत्वा अवधार्य एकातेनात्यतेन च योभावरूपोज्ञानादिसमाधिस्तमाहु ससारोत्तरणाय तीर्थंकरगणधरादय । इव्यसमाधयोहि स्पर्शादिसुखोत्पादकाश्चनैकातिकाश्च नात्यतिकाश्च नवत्यंतेचावश्यमसमाधिमुत्पादयति । तथाचोक्त । यद्यपि निषेव्यमाणा, मनस परितुष्टिकारकाविषया ॥ किंपाकफलादनवद्भवति पश्चादतिदुरताइत्यादि । तदेव बुद्धोऽवगततत्व सचतुर्विधे ज्ञानादिके समाधावैकातिकात्यतिकसुखोत्पादके रतो व्यवस्थितोविवेकेवा आहारोपकरणकषायपरित्यागरूपे इव्यभावात्मके रत सन्नेव नूतश्च स्यादित्याह । प्राणाना दशप्रकाराणामप्यतिपातोविनाशस्तस्माद्विरत स्थित

॥ दीपिका–शुश्रूषमाणोगुर्वादेर्वैयावृत्य कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । गुरुं किंनूत । सुप्रज्ञ गीतार्थं सुतपस्विन संयमवंत । यडुक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरयरर्ड दंसणे चरित्ते य ॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवास न मुंचति ॥ १ ॥ ये वीराआत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्महितान्वेषकाधृतिमंति संयमे रतिस्त एतोजितेंद्रियास्ते गुरुकुलवासिन स्यु । यडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिमिति ॥३३॥ गृहे गृहस्थत्वे दीप नावदीप श्रुतज्ञानमपश्यतोऽप्राप्नुवतोनरा सम्यक्प्रव्रज्यापुरुषादानीया पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयामहतोपि महीयांस स्युरित्यर्थ.। यएवनूतास्ते वीराबंधनोन्मुक्ताजीवितमसंयमजीवित नावकांक्षंति नाभिलषंति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–यडुक्तं बुद्धानामतिके शिक्षेत्तत्स्वरूपनिरूपणायाह । (सुस्सूसमाणाइत्यादि) गुरोरादेश प्रति श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा गुर्वादेर्वैयावृत्त्यमित्यर्थ । ता कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । तस्यैव प्रधानगुणद्वय द्वारेण विशेषणमाह । सुष्ठु शोनना वा प्रज्ञास्येति सुप्रज्ञ स्वसमयपरसमयवेदी गीतार्थइत्यर्थ । तथा सुष्ठु शोननं वा सबाह्याभ्यंतर तपो स्यास्तीति सुतपस्वी तमेवनूत ज्ञानिन सम्यक्चारित्रवत गुरु परलोकार्थी सेवेत । तथा चोक्तं।नाणस्स होइ नागी थिरयरर्ड दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवास नमुंचति। यएव कुर्वंति तान् दर्शयति।यदिवा क ज्ञानिनस्तपस्विनश्चाह । वीरा· कर्मविदारणसहिष्णवोधीरावा परीषहोपसर्गाक्षोभ्या. । धिया बुध्या राजंतीति वा धीराये केचनासन्नसिद्धिगमनाआप्तोरागादिविप्रमुक्तस्तस्य प्रज्ञा केवलज्ञानाख्या तामन्वेष्टु शीलं येषां ते आप्तप्रज्ञान्वेषिण सर्वज्ञोक्तान्वेषिणइतियावत् । यदिवा आत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्मन प्रज्ञा ज्ञानमात्मप्रज्ञा तदन्वेषिणआत्मज्ञत्वान्वेषिणआत्महितान्वेषिणइत्यर्थ । तथा धृति· संयमेरति सा विद्यते येषा ते धृतिमंत । संयमधृत्या हि पंचमहाव्रतनारोद्वहन सुसाध्यं नवतीति । तप साध्या च सुगतिर्हस्तप्राप्तेति । तडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसि ॥१॥ तथा जितानि वशीकृतानि स्वविषयरागद्वेषविजयेनेंद्रियाणि स्पर्शनादीनि यैस्ते जितेंद्रिया· शुश्रूषमाणा यथोक्तविशेषणविशिष्टानवतीति ॥३३॥ तदभिधित्सुराह । गिहेदीवमित्यादि) गृहे गृहवासे गृहपाशेवा गृहस्थनावइतियावत् । दीवति । दीपीदीप्तौ दीपयति प्रकाशयतीति दीप. । सच नावदीप श्रुतज्ञानलान । यदिवा द्वीप समुद्रादौ प्राणिनामावासनूत. सच नाव द्वीप संसारसमुद्रे सर्वज्ञोक्तचारित्रलानस्तदेवनूतं दीपं द्वीप वा गृहस्थनावेऽपश्यतोऽप्राप्नुवत. सत सम्यक्प्रव्रज्योत्थानेनोत्थिता वत्तरोत्तरगुणलानेनैवनूता नवंतीति दर्शयति। नराः पुरुषा· पुरुषोत्तमत्वाद्धर्मस्य नरोपादानमन्यथा स्त्रीणामप्येतद्गुणनाक्त्वं नवत्यथवा देवादिव्युदासार्थमिति। मुमुक्षूणा पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीया· पुरुषादानीयामहतोपि महीयां

लासादिषु आसक्तोबालोऽज्ञोऽन्यमतरेण स्त्रीप्राप्तिर्नस्यादिति तदुपायभूतं परिग्रहं प्रकुर्वाण पापमेव बध्नाति ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंच (सव्वंजगमित्यादि) सर्वं चराचर जगत् प्राणिसमूहं समतया प्रेक्षितुं शीलमस्य समतानुप्रेक्षी समतापश्यकोवा नकश्चित्प्रियोनापि द्वेष्यइत्यर्थः । तथा चोक्तं । नत्थि यम कोइविस्सो, पिउसव्वेसु चेवजीवेसु । तथा (जहममणपिय दु खमित्यादि) समतोपेतश्च न कस्यचित्प्रियमप्रिय वा कुर्यान्नि सगतया विहरेदेव हि सपूर्णभावसमाधियुक्तोभवति । कश्चित्तु भावसमाधिना सम्यगुष्ठानेनोत्थाय परीषहोपसर्गैस्तर्जितोदीनभावमुपगम्य पुनर्विषण्णोभवति विषयार्थीवा कश्चिद्गार्हस्थ्यमप्यवलंबते रससातागौरवगृद्धोवा पूजासत्काराभिलाषी स्यात्तदभावे दीन सन् पार्श्वस्थादिभावेन वा विषण्णोभवति । कश्चित्तथा सपूजन वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयन् श्लाघाभिलाषीच व्याकरणगणितज्योतिषनिमित्तशास्त्राण्यधीते कश्चिदिति ॥ ७ ॥ किंचान्यत् (आहकडंचेत्यादि) साधूनाधायोद्दिश्य निष्पादितमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवभूतमाहारोपकरणादिक निकाममत्यर्थं य प्रार्थय निकाममीण । तथा निकाममत्यर्थं आधाकर्मादीनि तन्निमित्तनिमन्त्रणादीनि वा चरति तद्वीजश्च सतथा एवभूतं पार्श्वस्थावसन्नकुशीलाना सयमोद्योगे विषण्णाना भावमेषते सदनुष्ठानविषण्णतया ससारपकावसन्नोभवतीति यावत् । अपिच स्त्रीणीष्वासक्तोऽध्युपपन्न पृथक्पृथक् तद्भाषितहसितविब्बोकशरीरावयवेष्विति । बालोऽज्ञ सदसद्विवेकविकलस्तदवसक्ततया च नान्यथा द्रव्यमतरेण तत्संप्राप्तिर्भव येन केनचिदुपायेन तदुपायभूत परिग्रहमेव प्रकर्षेण कुर्वाण पापं कर्म समुच्चिनो

वेराणुगिद्धे (पाठांतरे आरंभसत्तो) णिचयं करेति, इउ चुतेसु दुहम
गग ॥ तम्हा उ मेधावि समिक्खधम्म, चरे मुणी सव्वउ विप्पमुक्के ॥ ९ ॥
य ण कुज्जा पाठांतरे (छंदं ण कुज्जा) इह जीवियठी, असज्जमाणोय
वएज्जा ॥ णिसम्म भासीय विणीय गिद्धिं,हिसन्निय वा ण कह करेज्जा

अर्थ–(वेराणुगिद्धेके०) जे कोइ परोपताप रूप कर्मकरी वैरनु अनुबध करे ते गृद्ध कहिये अथवा (आरंभसत्तोणिचयकरेति के०) आरंभने विषे आसक्त थका, सचय करे एवो पुरुष (इउचुतेसुके०) अहीं थकी चवीने ते (दुहमदुग्गके०) थकी दुर्ग एटले विषम दुष्कर एवु नरकादिक स्थानकने पामे, (तम्हाउ के०)ते माटे (मेधाविके०) पण्डित होय ते (समिक्खधम्म के०) सम्यक् प्रकारे आल त चारित्ररूप धर्मजे श्रीवीतरागे भाष्योछे, तेने विषे (चरेके०) विचरे

तयेतरेषु वाऽद्विष्टइत्यपि वाच्य । तथा आरन्नेषु सावद्यानुष्ठानरूपेष्वनिश्रितोऽसंबद्धोऽप्रव त्तइत्यर्थ । उपसहर्तुकामआह । सर्वमेतदध्ययनादेरारन्य प्रतिपेध्यत्वेन यन्नपितमुक्त म या बहु तत्तसमयादार्हतादागमादतीतमतिक्रांतमिति कृत्वा प्रतिपिद्धं।यदपिच विधिद्वारेणो क्त तदेतत्सर्वं कुत्सितसमयातीत लोकोत्तर प्रधान वर्तते । यदपिच तैं कुतीर्थिकैर्बहु ल पित तदेतत्सर्वं समयातीतमिति कृत्वा नानुष्ठेयमिति ॥ २५ ॥ प्रतिपेध्य प्रधाननिषेध द्वारे ण मोक्षानिसंधानेनाह (अतिमाणचेत्यादि) अतिमानोमहामानस्त । च शब्दात्सहचरितं क्रोधच तथा माया चशब्दात्तत्कार्यनूतं लोनंच तदेतत्सर्वं पंडितोविवेकी ज्ञपरिज्ञया परिज्ञा य प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरे तथा सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि सम्यक् ज्ञा त्वा ससारकारणत्वेन परिहरेत्परिहृत्यच मुनि साधुर्निवाणमशेषकर्मक्षयरूप विशिष्टाका शदेश वा सधयेदनिसदध्यात् प्रार्थयेदितियावत् । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्व वत् ॥ ३६ ॥ समाप्त धर्माख्य नवममध्ययनमिति ॥

हवे दशमुं समाधि नामे अध्ययन कहेछे नवमा अध्ययनने विषे धर्म कह्यो, ते ध र्म समाधि विना थाय नही माटे दशमा अध्ययनमा समाधिनु स्वरूप कहेछे

आघं मईमंमणुवीय धम्म, अंजू समाहि तमिणं सुणेह ॥ अप्प
डिन्ने न्निक्खू समाहिपत्ते, अणियाणनूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढं
अहेयं तिरियं दिसासु,तसा य जे थावर जेय पाणा॥हत्थेहि पाए
हि य संजमित्ता, अदिन्नमन्ने सुयणो गहेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-(आघमईममणुवीयधम्म के०) मतिमंत एटले केवली नगवान् तेणे केवल ज्ञाने करी विचारीने धर्म कह्यो, ते धर्म केवोछे तोके (अज्जुके०) ऋजु एटले सरलता पणु (समाहितमिणसुणेहके०) तेनेज समाधि कहिए ते समाधि श्री केवली नगवते मने उपदेशीने तेमज श्री सुधर्म स्वामि जंबुप्रत्ये कहेछे के हुं तमने कहुंछु ते तमे सान्न लो जे एवो साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो एरीते जाणो ते साधु केवो होय ते कहेछे (अप्पडिन्नेके०) जेने तप सयम पालता थका इह लोक तथा परलोकना सुखनी वाछा करवी एवी प्रतिज्ञा नथी तेने अप्रतिज्ञ कहिए, एवो, तथा (अनिदाननूतेके०) निदा न रहित एटले आश्रव रहित एवो छतो (सुपरिवएज्जा के०) रुडीरीते संयम पाले ते (निक्खूके०) साधु (समाहिपत्ते के०) समाधि प्राप्त जाणवो ॥ १॥ (उड्ढअहेयंतिरियं दिसासुके०) उचा नीचा अने तिर्छा एम दिशो दिशे एटले सर्व लोकमांहे दिशि विदिशि ने विषे (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे बेइन्द्रियादिक त्रश जीवो तथा पृथविकाया

त्युपमर्दरूपया अन्विता युक्तां कथां न कुर्यात् । नतत्प्रब्रूयात् यत्परात्मनोरुनयोव बाधक वचइति नाव । तद्यथा । अश्नीतपिवत खादतमोदत हतछिदत प्रहरतपचते त्यादिकथां पापोपादानजूता नकुर्यादिति ॥ १० ॥

आहाकड वा ण णिकामएज्जा, णिकामयं तेयण सयवेज्जा॥ धुणे
उरालं अणुवेहमाणे, विच्चाण सोय अणवेरकमाणो ॥ ११ ॥ ए
गंतमेयं अनिपत्तएज्जा, एवं पमोरको न मुसति पासं॥ एस प्पमो
रको अमुसे वरेवि, अकोहणे सच्चरते तवस्सी ॥ १२ ॥

अर्थ–(आहाकडवाणणिकामएज्जा के०) आधाकर्मि प्रमुख आहारादिकनो सर्व था प्रकारे साधु अनिलाष करे नही (णिकामयतेयणसयवेज्जा के०) तथाजे आधा कर्मि आहारनी वाछना करे एवा पासबादिक तेने सस्तवे नही एटले तेनी साथे परि चय करे नही तथा (उराल के०) शरीर तेने (धुणे के०) रुश करे (अणुवेहमा णो के०) निर्जराने आलोचीने एम विचारेजे शरीरने रुश करिये तो निर्जरा थाय. एम चितवी शरीर कृश करता कदाचित् शोक दुःखउपजे तो (विच्चाणसोयअणवेरकमा णे के०) शरीरनु ममत्व अण करतो ते शोक छामी चारित्र पाले, संयम गुणे साव धान थाय ॥ ११ ॥ (एगतमेयअनिपत्तएज्जा के०) साधु एकत्व पणानीज प्रार्थना करे एटले एकत्व पणु वाछे कारणके जीव एकलो आव्यो तथा परनवे दुर्गतिनी विषे जाय तेवारे पण एकलोज जाय पण कोइ एने सहायी थाय नही, एकलोज कर्म बांधे एकलोज नोगवे, ते माटे एकत्व नावना नावे (एवपमोरको नमुसतिपास के०) एम ए कत्व नावनाये प्रकर्षे करी मोक्ष एटले संगरहित पणो, थाय एम देखीने मृषा एटले अलीक नाषा बोले नही (एसप्पमोरकोके०) एम एकत्व नावनानो अनिप्राय ते प्रकर्षे करी मोक्षछे (अमुसेवरेविके०) मृषा रहित एवो प्रधान सत्यपणु एनेज नाव समाधि कहिए जे साधु (अकोहणे के० अक्रोधि क्षमावत (सच्चरतेके०) सत्यने विषे रत (तवस्सीके० तथा तपस्वी एवो चारित्रानुष्ठानवान् एवो जे साधु ते साधु नावसमाधिवंत जाणवो ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–आधायकृतमाधाकर्मादि न कामयेन्नाभिलषेत् तथाविधाहारमभिलष माणात् पार्श्वस्थादीन्नसस्तुयात् तै सम परिचय न कुर्यात् उदार औदारिकशरीर विकृष्टतप सा निर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् रुश कुर्यात् । तथानुकाम्यपि शोक त्यक्त्वाऽनपेक्षमा ण शरीरनिरापेक्षोधुनीयात् ॥ ११ ॥ एकत्वमसहायम् [illegible] येत् [illegible] वन। नाव येदित्यर्थ । एवमेकत्वनावनया प्रकर्षेण मोक्ष स्यादि

नार्येऽति । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य ड्व्यादिकमधिकृत्याह । पंचसु विसएसु सुभे, सु दव्वमि भावसमाहित्ति ॥ खेत्तंतु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहि जोऊ ॥ ७ ॥ (पचस्वि त्यादि) पचस्वपि शब्दादिषु मनोज्ञेषु विपयेषु श्रोत्रादींड्रियाणां यथा स्वप्राप्तौ सत्या य स्तुष्टिविशेप सद्व्यसमाधिस्तदन्यथा त्वसमाधिरिति । यदिवा ड्व्ययोर्ड्व्याणा वा सन्मिश्रा णामविरोधिना सता न रसोपघातोभवत्यपितु रसपुष्टि सद्व्यसमाधि ।तद्यथा क्षीरशर्क रयोर्दधिगुडचातुर्जातकाना चेति । येनवा ड्व्येणोपयुक्तेन समाधिपानकादिना समाधिर्भ वति तद्द्रव्य । ड्व्यसमाधिस्तुलादावारोपित वा यत् ड्व्य समतामुपैतीत्यादिकोड्व्य समाधिरिति । क्षेत्रसमाधिस्तु यस्य यस्मिन्वा क्षेत्रे व्यवस्थितस्य समाधिरुत्पद्यते सक्षेत्र प्राधान्यात् क्षेत्रसमाधिर्यस्मिन्वा क्षेत्रे समाधिर्व्याविर्ण्यतेऽति । कालसमाधिरपि यस्य य का लमवाप्य समाधिरुत्पद्यते । तद्यथा । शरदिगवा नक्तमुलूकानामह्नि बलिभुजा यस्य वा या वर्त काल समाधिर्भवति यस्मिन्वा समाधिर्व्याख्यायते सकालप्राधान्यात् कालसमाधिरि ति ।भावसमाधिस्त्वधिकृत्याह । भावसमाहिचवुविह दसणणाणे तवे चरित्तेय ॥ चउसुवि समाहियप्पा समचरणठिर्ठ साहू ॥ ८॥ (भावसमाहीत्यादि) भावसमाधिस्तु दर्शनज्ञान तपश्चारित्रभेदाच्चतुर्ध्या । तत्र चतुर्विधमपि भावसमाधि समासतोगाथापश्चार्धेनाह ।मुमुक्षु णा चर्यतऽति चरण । तत्र सम्यक्चरणे चारित्रे व्यवस्थित समुद्युक्त साधुर्मुनिश्चतुर्ष्व पि भावसमाधिभेदेषु दर्शनज्ञानतपश्चारित्ररूपेषु सम्यगाहितोव्यवस्थापितआत्मा येन ससमाहितात्मा भवति । इदमुक्त भवति । य सम्यचरणे व्यवस्थित सचतुर्विधभा वसमाधिसमाहितात्मा भवति योवाभावसमाधिसमाचितात्मा भवति ससम्यक्च रणे व्यवस्थितोऽष्टव्यऽति । तथाहि । दर्शनसमाधौ व्यवस्थितोजिनवचनभावितां त करणोनिर्वातशरणप्रदीपवन्नकुमतिवायुभिर्भ्राम्यते । ज्ञानसमाधिना तु यथा यथा पूर्वश्रुतमधीते तथातथातीव भावसमाधावुद्युक्तोभवति । तथा चोक्त । जहजह सु यमवगाहइ अइसयरसपसरसजुयमउव्वं । तहतह पल्हाऽ मुणी णव णवसवेगस द्धाए । चारित्रसमाधावपि विपयसुखनिस्पृहतया निष्किचनोपि पर समाधिमाप्नोति । तथाचोक्त । तणसथारणिसन्नो मस्सुितगेभठरागभयमोहो ॥ ज पावइ मुत्तिसुह क त्तोतं चक्कवट्टीवि ॥ नैवास्ति राजराजस्येत्यादि तप समाधिनापि निरुष्टतपसोपि ग्ला निर्भवति । तथा क्षुत्तृष्णादिपरीषहेभ्योनोद्विजते । तथा अभ्यस्ताभ्यतरतपोध्यानाश्रितम ना सनिर्वाणस्थइव नसुखदु खाभ्या बाध्यतइत्येव चतुर्विधभावसमाधिस्थः सम्यक्चर णव्यवस्थितोभवति साधुरिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेप । साप्रत सूत्रानुगमेऽस्खलिता दिगुणोपेत सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेद (आघमईमित्यादि) अस्य चायमनतरसूत्रेण सह सर्वंध ।तद्यथा। अशेपगारवपरिहारेण मुनिर्निर्वाणमनुसधयेदित्येतद्भगवानुत्पन्नदिव्यना

दि थको तथा संयमने विषे अरति अने असंयमने विषे रति तेने टालीने (तणाइ फा संतहसीयफास के०) तृणादिकनो कगोर स्पर्श सहन करे आदिशब्दथकी उचो नीचो प्रदेश तेनो स्पर्शपण जाणवो ते स्पर्शनेपण सहन करे तथा शीत प्रमुखनुं स्पर्श तथा (उएहंचदंसंच हियासएज्जा के०) उष्णनो स्पर्श. दशमसकादिकनो स्पर्श तेनेपण साधु सम्यक् प्रकारे सहन करे तथा (सुप्भिव डुप्भिवतितिरकएज्जाके०) समाधिवत साधु सुनिरगंध डुरनिगंधना परिसहने पण सम्यक् प्रकारे अहियासे एटले सहन करे ॥१४॥

॥दीपिका–स्त्रीषु यन्मैथुन न स्यात् आरतआसमताद रतोऽसक्त परिग्रहमकुर्वन उच्चावचेषु नानाविधेषु विषयेषु अरक्तद्विष्टस्त्रायी परेषां त्राणनूतोनि सशय निक्षुरेवनूत साधु समाधिप्राप्त स्यात् ॥१३॥ अरति रतिवा अनिनूय निक्षुस्तृणादिस्पर्शान् शीतोष्णस्पर्शान् दंशमशकादीन् परीषहाश्चाधिसहेत सुरनिमसुरनि वा गध तितिक्षेत्सहेत ॥ १४ ॥

टीका–किचा न्यत् (इत्थीसुइत्यादि) दिव्यमानुषतिर्यग्रूपासु त्रिविधास्वपि स्त्रीषु विषयनूतासु यन्मैथुनमब्रह्म तस्मादासमतान्नरतोऽरतोनिवृत्तइत्यर्थ । तु शब्दात्प्राणातिपातादिनिवृत्तश्च । तथा परिसमताद्गृह्यते इति परिग्रहोधनधान्यद्विपदचतुष्पदादिसंग्रह । तथा आत्माऽत्मीयग्रहस्त चैवाकुर्वाण सन्नुच्चावचेषु नानारूपेषु विषयेषु । यदिवोच्चावत्कृष्टाश्च वचाजघन्यास्तेष्वरक्तद्विष्टस्त्राय्यपरेषाच त्राणनूतोविशिष्टोपदेशदानतोनि सशय निश्चयेन परमार्थतोनिक्षु साधुरेवनूतोमूलोत्तरगुणसमन्वितोनावसमाधि प्राप्तोनवति नापर कश्चिदिति । उच्चावचेषु वा विषयेषु वा नावसमाधे प्राप्तोनिक्षुर्न सश्रय याति नानारुपान् विषयान् नसश्रयतीत्यर्थ ॥ १३ ॥ विषयाननाश्रयन् कथ नावसमाधिमाप्नुयादित्याह । (अरइरइवेत्यादि) सनावनिक्षु परमार्थदर्शी शरीरादौ निस्पृहोमोक्षगमनैकप्रवणश्च या सयमेऽरतिरसयमेच रतिर्वा तामनिनूय एतदधिसहेत । तद्यथा । निष्किंचनतया तृणादिकान् स्पर्शानादिग्रहणान्निम्नोन्नतनूतप्रदेशस्पर्शाश्च सम्यगधिसहेत तथा शीतोष्णदशमशकक्षुत्पिपासादिकान् परीषहानक्षोभ्यतया निर्जरार्थमध्यासहेदधिसहेत तथा गध सुरनिमितर च सम्यक् तितिक्षयेत्सह्यात् । चशब्दादाक्रोशवधादिकांश्च परिषहान्मुमुक्षुस्तितिक्षयेदिति ॥ १४ ॥

गुत्तो वईएय समाहिपत्तो, लेस समाहट्टु परिवएज्जा ॥ गिहं न
गए णवि गयएज्जा, समिस्सनावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे के
इ लोगमि उ अकिरियआया, अन्नेण पुठा धुयमादिसति ॥ आ
रंनसत्ता गढिताय लोय, धम्मं ण जाणति विमुक्कहेउ ॥ १६ ॥

त् ।यदि चैते प्राणिनोहस्तौ पादौ सयम्य सयतकाय सन्न हिंस्यात् । चशब्दादुच्छ्वासनिश्वास कासकाशितक्षुतवातनिसर्गादिषु सर्वत्र मनोवाक्कायकर्मसु संयतोभगवान् भावसमाधिमनु पालयेत्तया परैरदत्त नगृह्णीयादिति तृतीयव्रतोपन्यास ।अदत्तादाननिषेधाच्चार्थत्त परिग्र होनपिक्षोनवति नापरिगृहीतमासेव्यतइति मैथुननिषेधोप्युक्त । समस्तव्रतपालनोपदे शाच्च मृषावादोप्यर्थतोनिरस्तइति ॥ २ ॥

सुयक्खायधम्मे वितिगिच्छतिण्णे, लाढे चरे आयतुले पयासु ॥
आय न कुज्जा इह जीवियट्ठी,चय नकुज्जा सुतवस्सि भिक्खू॥३॥
सव्विंदियाभिनिवुडे पयासु, चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ॥ पासा
हि पाणे य पुढोवि सत्ते, दुक्खेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

अर्थ–(सुयक्खायधम्मे के०) समाधिवत जे साधु ले ते एम जाणेके श्रीवीतरागे जे धर्म भाष्योछे, ते रुडो कह्योछे ए श्रुताख्यात धर्म एवो होय एम साधु जाणे एटले गी तार्थ पणुं कह्युं, तथा (वितिगिच्छतिण्णे के०) जे श्रीवीतरागे कह्यु तेने संदेह रहित पणे तहत्ति करी मानतो थको रहे, एटले ज्ञान दर्शन रूप समाधि कही तथा (लाढेच रेके०) निर्दोष आहारनो लेनार एवो छतो विचरे एटले सयम पाले तथा (पयासु के०) प्रजा एटले सर्वजीवने (आयतुले के०) पोताना आत्मतुल्य करी लेखवे, तथा (आयंन कुज्जाऽइहजीवियट्ठी के०) जीववाने अर्थे आय एटले आश्रव नकरे अर्थात् असयमाश्र व नकरे तथा (सुतवस्सिभिक्खू के०) सुतपस्वी एवो साधु (चयनकुज्जा के०) धन धान्यादिक परिग्रहनो सचय नकरे ॥३॥ (सव्विंदियाभिनिवुडेपयासुके०) समस्त इंद्रिय नो संवर करीने निराभिलाषी थाय, ते कोनेविषे तोके प्रजा एटले स्त्रीने विषे निराभि लाषी थाय अर्थात् स्त्रीने देखी पाचे इंद्रियोनो सवर करे (चरेमुणीसव्वतोविप्पमुक्केके०) तथा सर्व थकी विप्रमुक्त एटले स्वजनादिक द्रव्य सग अने क्रोधादिक भाव संग ए सर्व सग थकी रहित थयो छतो एवो साधु सयम आचरे (पाणेयपुढोविसत्ते के०) तथा प्रत्येक जुदा जुदा पृथविकायादिकजे सत्व एटले जीवछे तेमने (दुक्खेणअट्टे के०) दु खे करीआर्त्त (परितप्पमाणे के०) परितप्पमान एटले ससाररूप कडाहमा कर्मरूप इंधणेकरी पचता एवा (पासाहिके०) देखीने समाधिवान साधु सर्व जीवनी दया पाले

॥ दीपिका–सुष्ठु आख्यातोधर्मोयेन सस्वाख्यातधर्मा जुगुप्साचित्तविप्लुतिस्ता तीर्णोऽति क्रात । येन केन चिदाहारोपकरणादिनाऽऽत्मानं यापयतीति लाढ नएवभूतश्चरेत्संयमे।इ न किंभूत । प्रजासु प्राणिषु आत्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिन. पश्यतीत्यर्थ । तथा आयं

प्रजायंतइति प्रजास्तासु तद्विषये येन कृतेन सन्मिश्रनावोनवति तत्प्रजह्यात्। तडुक्तं नव ति। प्रव्रजितोपि सन् पचनपाचनादिकां क्रिया कुर्वन् कारयंश्च गृहस्थै सन्मिश्रनाव नजते यदिवा प्रजा स्त्रियस्तासु तानिर्वा य सन्मिश्रीनावस्तमत्रिकलसंयमार्थी प्रजह्यात्परि त्यजेदिति ॥ १५ ॥ अपिच । (जेकेइइत्यादि) ये केचन अस्मिन् लोके अक्रियआत्मा येषामन्युपगमे तेऽक्रियात्मान सांख्यास्तेषा हि सर्वव्यापित्वादात्मा निष्क्रिय पठ्यते। तथाचोक्तं । अकर्ता निर्गुणोनोक्ता, आत्मा कपिलदर्शनइति । तुशब्दोविशेषणे । सचै तद्विशिनष्टि । अमूर्तत्वव्यापित्वान्यामात्मनोऽक्रियत्वमेव बुध्यते । तेचाक्रियात्मवादिनो न्येनाक्रियत्वे सति बधमोक्षौ नघटेते इत्यनिप्रायवता मोक्षसन्नाव पृष्टा संतोऽक्रियावा दर्शनेपि यूतं मोक्ष तदनावमादिशति प्रतिपादयति तेतु पचनपाचनादिके स्नानार्थ जलावगाहनरूपे वाऽरंनें सावद्ये सक्ताअध्युपपन्नालोके मोक्षैकहेतुनूत धर्म श्रुतचा रित्राख्य न जानति कुमार्गग्राहिणोन सम्यगवगहतीति ॥ १६ ॥

पुढोय बंदा इह माणवाउ, किरियाकिरीण च पुढोय वायं ॥जायस्स बा लस्स पकुव देह, पाठांतरे (जायाई बालस्स पगप्नणाए) पवद्दती वेरम संजतस्स ॥ १७ ॥ आउक्खय चेव अबुज्झमाणे, ममाति से साहसकारि मंदे ॥ अहोयराउ परितप्पमाणे, अट्टेसु मूढे अजरामरेव ॥ १८ ॥

अर्थ-(इहमाणवाउ के०) आलोकने विषे जे मनुष्यछे ते प्रत्येकमनुष्य (पुढोयबंदा के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा बद एटले अनिप्राय वालाछे ते अनिप्राय कोण कोणते देखाडेछे (किरियाकिरीणचपुढोयवाय के०) क्रियावादी एम कहेछे के सर्वकाल क्रियाज सफलछे अने अक्रियावादी एम कहेछे के क्रिया कर्याविनाज सर्व इच्छित पदार्थनी प्राप्ति थायछे एमज वली बीजा विनय प्रमुख वादीउ पण जाणी लेवा ए सर्व पुढोय एटले पृथ क पृथक वाय एटले वदेछे, परंतु ते धर्मना अजाण बापडा (जायस्सबालस्सपकुव्वदे ह के०) जात एटले उत्पन्न थयेला बालकनी देह एटले शरीर तेने खम खम करी ने पोताने सुख उपजावे छे, तथा पाठांतरे जायाइबालस्सपगप्नणाए एवो पण पाठ छे एवीरीते करतां ते (असजतस्स के०) असयति एटले संयम रहित थका (पवट्ट तीवेर के०) वेरने वधारेछे एटले जे जीवनी उपघात करे तेते जीवनी साथे वैरनी वृ द्धि थायछे ॥ १७ ॥ ते बापडा (आउक्खय के०) आयुष्यना क्षयने (अबुज्झमा णे के०) अजाणता एटले आयुष्य खूटेछे तेने नथी जाणता अहीं चेव पदपूर्णार्थे छे एवा उता (ममाति के०) अत्यंत ममत्व करेछे एटले आ माहारु छु एनो एवा

नान् क्राथ्यमानान् यद्दिवा दुःप्रणिहितेंडियानार्तध्यानोपगतान्मनोवाक्काये परितप्यमानान् पश्येति सत्रधोजगनीयऽति ॥ ४ ॥

एतेसु बालेय पाठांतरे (एव बालेय) पकुव्वमाणे, आवट्टती पाठांतरे (आउट्टती) कम्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्म, निउंजमाणे उ करेइ कम्म ॥ ५ ॥ आदीणवित्तीव पाठांतरे (आदीणभोइ वि) करेति पाव, मताउ एगंतसमाहिमाहु ॥ बुद्धे समाहीयरते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठियप्पा पाठांतरंवा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥

अर्थ-(एतेसु के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक जीवोने (बालेय के०) अज्ञानी जीव अनेक सघटन परिताप उपद्रवादिके करी (पकुव्वमाणे के०) पाप कर्म करतो थको वली तेजीव तेहिज पृथिव्यादिक जीवोने विषे आवीने (आवट्टती के०) घणा दुःख पामे (कम्मसुपावएसुके०) जे पापकर्म पोते जेवा प्रकारे कर्युं होय ते पाप कर्म तेवा प्रकारे तेजीव नोगवे. हवे ते पाप कहेढे (अतिवायतोकीरतिपावकम्मके०) अतिवाय एटले जीवनी घात तेथकी ज्ञानावर्णादिक पाप कर्मने समाचरे (निउंजमाणेउ करेइकम्मके०) तथा बीजा सेवकादिकने पण जीवघातनी प्रेरणा करतो थको पाप कर्म बांधे, एटले हिंसा करतो करावतो तथा अनुमोदतो थको पाप कर्मनुं बंध करे, एमज मृषावादादिकने पण सेवतो सेवरावतो अनुमोदन करतो थको पाप कर्मनुं बंध करे ॥५॥ (आदीणवित्तीवकरेतिपाव के०) दीन एटले दयामणी एवी, आहार लेवानी जेनी वृत्तिढे तेने आदीन वृत्ति कहिए, एवो ढतो पण पापकर्म बांधे, केमके आहारनी जो दयता थकी आर्त्त रौद्र ध्याने वर्त्ते ते थकी कर्म बांधे, (मताउएगंतसमाहिमाहुके०) एवु जाणीने श्रीतीर्थंकर गणधरे ससार तरवानु कारण एकांते आहारादिकने अर्थे पण अरत्यादिक नकरे एवी समाधि कहीढे (बुद्धसमाहीयरतेविवेगे के०) ते कारणे बुद्ध एटले तत्वनो जाण एवो साधु समाधिने विषे रत होय ते साधु विवेकी एवो ढतो शुं करे ते कहेढे (पाणातिवाताविर तेठियप्पाके०) प्राणातिपात जे जीवनी हिंसा ते थकी विरमीने संयमने विषे जेनो आत्मा सत्यमार्गने विषे व्यवस्थितढे एवो थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-एतेषु प्राणिषु बालोज्ञः सघट्टपरितापोपद्रवादि प्रकुर्वाणस्तेषु पापेषु कर्मसु सत्सु आवर्त्यते दुःखभाग्भवति अतिपाततोहिंसातः पापकर्मक्रिया नवध्यते परान् भृत्यादीन् नियोजयन् कर्म करोति प्राणातिपातादिक कुर्वन् कारयंश्च कर्म बध्नातीति ॥ ५ ॥ आसमंताद्दीना करुणा वृत्तिस्तया नोजी आहारग्राही नोजनादारमप्राप्नुवन्नार्त

पिच। (आउक्खयमित्यादि) आयुषोजीवनलक्षणस्य क्षयआयुष्कक्षयस्तमारंभप्रवृत्तचित्तःछेदमतस्यवड्ढकक्षये सत्यवबुध्यमानोतीव ममइति ममत्ववानिदं मे अहमस्य स्वामीत्येव समदोज्ञ साहसं कर्तुं शीलमस्येति साहसकारीति। तद्यथा। कश्चिद्वणिड् महाक्लेशेन महार्घाणि रत्नानि समासाद्योज्जयिन्याबहिरावासित। सच राजचौरदायादजयाद्रात्रौ रत्नान्येवमेवच प्रवेशयिष्यामीत्येव पर्यालोचनाकुलोरजनीक्षय न ज्ञातवान् अन्हेव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैरत्नेन्यश्च्यावितइति एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलस्यायुष क्षयमबुध्यमान परिग्रहेष्वारंभेषु च प्रवर्तमान साहसकारी स्यादिति। तथा कामभोगतृषितोऽन्हि रात्रौ च परिसमतात् द्रव्यार्थी परितप्यमानोममणवणिग्वदार्तध्यायी कायेनापि क्लिश्यते। तथाचोक्त। अजरामरवद्बाल, क्लिश्यते धनकाम्यया॥ शाश्वतं जीवितं चैव, मन्यमानोधनानिच॥ १॥ तदेवमार्तध्यानोपहत। कइयावच्चइस्सदो, किंभडकह्वकित्तियाभूमीत्यादि। तथा उक्कणइखणइणिहणइरत्ति नसुयइदियावियससको इत्यादि चित्तसंक्लेशात्सुष्टु मूढोजरामरवणिग्वदजरामरवदात्मानमन्यमानोऽपगत शुभाध्यवसायोहर्निशमारंभे प्रवर्ततइति॥ १८॥

जहाहि वित्त पसवोय सव्व,जे बंधवा जेय पियाय मित्ता॥लाल
प्पती से विय एइ मोहं, अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं॥१९॥ सी
ह जहा खुड्डुमिगा चरता,दूरे चरंती परिसंकमाणा॥ एव तु मे
हावि समिक्ख धम्मं, दूरेण पाव परिवज्जएज्जा॥ २०॥

अर्थ–(जहाहि के०) यथा दृष्टाते (वित्त के०) सुवर्णादिक द्रव्य तथा (पसवोय के०) गाय भेंश प्रमुख पशुउं (सव्व के०) ए सर्व तारो त्याग करशे माटे एमने विषे ममत्व करीश नही वली (जेबधवा जेयपियायमित्ता के०) यथा दृष्टाते भाइ माता पिता स्वसुरादय प्रिय मित्र ते पण परमार्थ थकी तने काम नही आवे तोपण तु बापडो तेमने अर्थे विलाप करेछे (लालप्पतीसेविय एइमोह के०) लालप्यते सोपिमोहउपेति एटले वित्त पुत्रादिकने अर्थे लाल पाल करेछे एम ते बापडो कुमरीकनी पेरे मोहपाशे पडयो थको (अन्नेजणातंसि हरतिवित्तं के०) पछी तेनु उपार्जन करेलु वित्त तेने बीजा जन अपहरे ए प्रकारे जीवता तथा मरण पाम्या पछी पण तेने क्लेश ज थाय॥ १९॥ (जहाके०) जेम खुड्डुमिगाचरता के० (क्षुद्र मृग एटले न्हानाएवा मृग प्रमुख अटवीनेविषे विचरनार जीवोते (सीहके०) सिंहनामा जनावर थकी (दूरेचरतीपरिसंकमाणा के०) बीहीता थका सिंहने दूर टालीने वेगला थका चरे, (एव

सम्यक् मार्गेषु आत्मा यस्य स । पागतरवा (ठियच्चित्ति) स्थिता शुद्धस्वनावात्मना अ र्चिर्लेश्या यस्य सनवति स्थितार्चि सुविशुद्धस्थिरलेश्यइत्यर्थ ॥ ६ ॥

सव जगं त समयाणुपेही, पियमप्पिय कस्सइ णो करेज्जा ॥ उठा
य दीणोय पुणो विसन्नो, संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥७॥ आहा
कडं चेव निकाममीणे नियामचारीय विसन्नमेसी ॥ इत्थीसु सत्तेय
पुढोय बाले, परिग्गह चेव पकुवमाणे ॥ ८ ॥

अर्थ-(सवजगके०) सर्वजगत एटले जीव अर्थात् ठ निकायना जीव (तंके०) ते स र्वेने (समयाणुपेहीके०) समता नावे करी पोताना आत्मा समान देखे (पियमप्पियं के०) प्रीतिनावते राग अप्रीतिनाव ते द्वेष ए बन्ने (कस्सइके०) कोइ उपरे (णोकरे ज्जा के०) नकरे, एटले कोइ उपर सारु मातु चिंतवे नही, (उठायदीणोयके०) तथा कोइक चारित्र आदरी पठी तेने पालवा असमर्थ एटले दीन थाय (पुणोविसन्नोके०) वली विषयानिलाषी थको गृहस्थपणु आदरे कंमरीकनी पेरे संसारमाहे खुचे, वली को इएक (संपूयणचेव के०) वस्त्र पात्रादिके करी पूजा वाछे तथा (सिलोयकामी के०) लोकमाहे पोतानी श्लाघा करावया माटे व्याकर्ण ज्योतिषादिक कुशास्त्र पण नणे, एवो पुरुष समाधि थकी भ्रष्ट जाणवो. ॥ ७ ॥ (अहाकडचेवनिकाममीणे के०) आ धाकर्मि उद्देशी आहारने अत्यत वाठतो थको तेवो आहार लेवाने अर्थे (नियामचा रीय के०) अत्यंत भ्रमण करे एवो ठतो (विसन्नमेसि के०) ससार रूप कादवमाहे खूतोज रहे (इत्थीसुसत्तेयपुढोयबाले के०) स्त्रीने विषे आसक्त जुदा जुदा ते रमणी ना हाव नाव विलासने विषे गृद्ध ठतो द्रव्य विना स्त्रीनी प्राप्ति नथाय एम विचारी ते बाल एटले अज्ञानी पुरुष (परिग्गहचेवपकुवमाणे के०) परिग्रहजे धन धान्यादिक तेनो सचय करतो थको वली घणा पाप कर्मने उपार्जे अर्थात् पापनो सचय करे ॥८॥

॥ दीपिका-सर्व जगत् प्राणिगणं समतयानुप्रेक्षतइति समतानुप्रेक्षी प्रियमप्रिय वा कस्यचिन्न कुर्यात् नि सगोविहरेदित्यर्थ । कश्चित्तु सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहानिर्दी न पुनर्विषण्ण स्यात् सयममादृत्यापि पश्चात्पार्श्वस्थादिनाव प्रतिपद्यते कश्चिदित्यर्थ । तथा सपूजन वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयेत् श्लोककामी श्लाघानिलाषी व्याकरणगणितनि मित्तादिशास्त्राण्यधीते कश्चित् ॥ ७ ॥ आधाकर्म आहारोपाध्यादिक (निकाममीणे त्ति) अत्यर्थानिलाषी तथा आधाकर्मादिनिमन्त्रणेषु निकामचारी अत्यत प्रवृत्तोविष ण्णनाव सयमे शीतलत्व एषते श्रयति । तथा स्त्रीषु सक्त पृथक् तद्भाषितहसितवि

वरिवएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणिअत्तगामी, णिव्वाणमेयं कसिणं समाहि ॥ सयं न कुज्जाउ न कारवेज्जा, करंतमन्नोपि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

अर्थ-(संबुज्झमाणेउणरेमतीमं के०) मतिमंत प्रज्ञावत एवो मनुष्य सम्यक् प्रकारे धर्मने जाणतो थको (पावाउअप्पाणनिवट्टएज्जा के०) पोताना आत्माने पाप थकी निवर्त्तावे, (हिंस के०) जीवनो घात ते थकी (प्रसूत के०) उत्पन्न थयां एवांजे (दुहाइके०) शारीरीक अने मानशीक दुःख तेने (मत्ताके०) जणीने अजाणीने तोके (वेराणुबंधीणिमहप्पयाणि के०) वेरानुंबधावेरना कारण जाणीने महानयना उपजावनार एवा आश्रवोनो निरोध करे, एटले सर्व आश्रवनुं मूल ते हिंसा जाणवी, माटे हिंसाथकीनिवर्त्ते ते साधु भावसमाधिवत जाणवो अथवा पावातरे सनिव्वाणजूएउपरिव्वएज्जा) ॥ २१ ॥ (मुणिअत्तगामी के०) मोक्ष गामी मुनि (मुसनबूया के०) मृषा बोले नही (णिव्वाणमेयंकसिणसमाहिके०) ए मृषावादनो जे परिहार एज मोक्षरूप समाधिनु पण सपूर्ण कारण जाणवु माटे ते मृषावादने (सयनकुज्जाउके०) साधु पोते करे नही, तथा (नकारवेज्जाके०)बीजा पाशे करावे नही, तथा (करंतमन्नोपियणाणुजाणे) अन्य कोइ करतो होय तेने अनुमोदे नही एवोसाधु भावसमाधिवत जाणवो ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-मतिमान्नर साधु सम्यक्धर्मं बुध्यमान पापात्सावद्याचरणादात्मानं निवर्तयेत् हिंसात प्रसूतानि जातानि दुःखानि वैरानुबधीनि कर्मबंधहेतूनि महाभयंकराणि इति मत्वा स्व पापान्निवर्त्तयेत् ॥ २१ ॥ आप्तोमोक्षस्तगामी मुनिर्मृषावाद न ब्रूयात् एतदेव मृषावर्जन कृत्स्नं सपूर्ण समाधिं भावसमाधिमाहु । यथा मृषावादस्तथा अन्य व्रतातिचारमपि न कुर्यात्स्वयं नाप्यपरेण कारयेत् अन्य कुर्वंतमपि नानुजानीयात् ॥२२॥

॥ टीका-अपिच । (संबुज्झमाणेत्यादि) मनन मति सा शोभना यस्यासौ मतिमान् । प्रशसायां मतुप् । तदेव शोभनमतियुक्तोमुमुक्षुर्नर सम्यक्श्रुतचारित्राख्य धर्मं वा भावसमाधि वा बुध्यमानस्तु विहितानुष्ठाने प्रवृत्ति कुर्वाणस्तु तदेव पूर्वं तान्निषिद्धाचरणान्निवर्तैतातस्तत्प्रदर्शयति। पापात् हिंसानृतादिरूपात्कर्मणआत्मान निवर्तयेत्। निदानोछेदेन हि निदानिनउछेदोभवतीत्यतोऽशेषकर्मक्षयमिछन्नादावेवनव द्वाराणि निरुंध्यादित्यभिप्राय । किंचान्यत् । हिंसा प्राणिव्यपरोपण तया ततोवा प्रभूतानि जातानि यान्यशुभानि कर्माणि तान्यत्यंतं नरकादिषु यातनास्थानेषु दुःखानि दुःखोत्पादकानि वर्तंते । तथा वेरमनुबभति तच्छीलानिच वैरानुबधीनि जन्मशतसहस्रदुर्मोचान्यतएव महद्भयं येभ्य सकाशात्तानि महाभयानीत्येव च मत्वा मतिमानात्मान पापान्निवर्तयेदिति । पा

के०) साधु (सव्वउविप्पमुक्के के०) सर्व संग थकी विप्र मुक्त छतो विचरे ॥ ९ ॥ (इ हजीवियट्ठी) साधु आ संसार माहे आजीविकाने अर्थे (आयके०) लाभ एटले द्रव्यादिक उपार्जन करवानो उपाय ते (णकुज्जा के०) नकरे तथा (असज्जमाणोयप रिव्वएज्जा के०) गृह पुत्र कलत्रादिकनो समागम अणकरतो थको संयमने विषे प्रवर्त्ते, गुध्द चारित्रपाले (णिसम्मभासीयविणीयगिद्धिके०) तथा कोइ कार्यउपना थका विमासीने बोले पण उतु बोले नही एटले शब्दादिक पाच प्रकारना विषयने विषे गृध्दपणु टालीने आलोचीने बोले अर्थात् (हिंसन्नियवाणकहंकरेज्जा के०) प्राणीनी हिंसाकारक एवी कथा नकरे, एटले जे वचन थकी जीव हणाय नही तेवा वचन बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका–वैरानुगृध्द परोपतापसक्तोनिचय कर्मबंध करोति । इतोभवाच्युत सन्दु समुपैति । किंभूत दु ख । अर्थदुर्ग परमार्थविषम तस्मान्मेधावी विवेकी धर्म समीक्ष्य विचार्य मुनि सर्वतोविप्रमुक्तोनि स्पृह सन् चरेत्संयमे ॥९॥ आयमिति । आय द्रव्यादि संचय नकुर्यात् । इहभवे असंयमजीवितार्थी तथा असज्जमान संगमकुर्वन्परिव्रजे त् गृध्दि आसक्तिविषयेषु विनीय त्यक्त्वा निशम्य पर्यालोच्य भाषकोभवेत् हिंसयान्वि ता युक्ता कथा नकुर्यान्न ब्रूयात् ॥ १० ॥

॥ टीका–तथा (वेराणुगिध्देइत्यादि) येन केन कर्मणा परोपतापरूपेण वैरमनुबध्यते जन्मांतरशतानुयायि भवति तत्रगृध्दोवैरानुगृध्द । पाठांतरवा (आरंभसत्तोत्ति) आरंभे सावद्यानुष्ठानरूपे सक्तोलग्नोनिरनुकंपोनिचय द्रव्योपचय तन्निमित्तापादितकर्मनिचय प्रानाच्च्युतोजन्मांतर गत सन् वा करोत्युपादत्ते सएवंभूतउपात्तवैर कृतकर्मोपचय यतोऽस्मात्स्थानाच्च्युतोजन्मांतरगत सन् दु खयतीति दु ख नरकादिकयातनास्थानम र्थत परमार्थतोदुर्ग विषम दुरुत्तरमुपैति । यतएव तत्तस्मान्मेधावी विवेकी मर्यादावान् संपूर्णसमाधिगुण ज्ञानानोधर्म श्रुतचारित्राख्य समीक्ष्यालोच्यांगीकृत्य मुनि साधु सर्वत सबाह्याभ्यंतरात्संगाद्विप्रमुक्तोऽपगत संयमानुष्ठान मुक्तिगमनैकहेतुभूत चरेदनु तिष्ठेत् रूपारम्भादिसंगाद्विप्रमुक्तोनि श्रितभावेन विहरेदिति यावत् ॥ ९ ॥ किंचान्यत् (आयणकुज्जाइत्यादि) आगच्छतीत्यायोद्रव्यादेर्लाभस्तन्निमित्तापादितोऽष्टप्रकारकर्मलाभो मिहास्मिन् संसारे असंयमजीवितार्थी भोगप्रधानजीवितार्थीत्यर्थ । यदिवा आजी विकाभयात् द्रव्यसंचय न कुर्यात् । पाठांतरवा (छंदणकुज्जाइत्यादि) छंद प्रार्थनाभि लाषइंद्रियाणां स्वविषयाभिलाषोवाद नकुर्यात्तथा असज्जमान संगमकुर्वन् गृहपुत्र कलत्रादिषु परिव्रजेदुद्युक्तविहारी भवेत्तथा गृध्दि गार्ध्य विषयेषु शब्दादिषु विनीयाप नीय निशम्यावगम्य पूर्वोत्तरेण पर्यालोच्य भाषकोभवेत् । तदेव दर्शयति । हिंसया प्रा

सयमानुष्ठानने पाले तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २४ ॥ इतिश्री समाधि ना मक दशमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—उद्गमादिदोषशुद्धे आहारादौ स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते सति रागद्वेषाभ्यां साधुर्न दूषयेत् । यत । बायाली सेसणस, कम्मि गहणमि जीवनदुब्बलिउ । इण्हिंजइ नलछिज्जसि, भुंजतोरागदोसेहि इति । अमूर्छितोनासक्त अन्नाहारे नचाध्युपपन्नस्तमेवाहार पुन पुनर्नाभिलषमाण सयमयात्रार्थमेवाहारयेत् । तथा धृतिमान् ग्रथाद्विमुक्तो नच पूजनार्थी श्लोक कीर्तिस्तत्कामी तदभिलाषुकोन स्यात् एवभूत परिव्रजेत् ॥ ॥ २३ ॥ गृहान्नि सृत्य निरावकाङ्क्षी निस्पृह काय शरीर व्युत्सृज्य विचिकित्साम कुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा जीवित नापि । मरणमनिकाङ्क्षेत निक्षुर्वलयात्ससाराद्वि मुक्त सयमे सचरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति श्रीसूत्रकृतागदीपिकायां समाध्याख्य दशमाध्ययन समाप्तं ॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह (सुद्धेसियाइत्यादि) उद्गमोत्पादनैषणाभि शुद्धे निर्दोषे स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते पिंडेसति साधूरागद्वेषाभ्या न दूषयेत् । उक्तंच । बायाली सेसणस, कडमिगहणमि जीवनदुब्बलिउ ॥ इण्हिजहन छलिज्जसि भुंजतोरागदोसेहि ॥१॥ तत्रापि रागस्य प्राधान्यख्यापनायाह । नमूर्छितोऽमूर्छित स[illegible]पि शोभनाहारलाभे सतिगृद्धिमकुर्वन्नाहारयति तथा नाध्युपपन्नस्तमेवाहार पौन पुन्ये[illegible] नाभिलषमाण केवलं संयमयात्रापालनार्थमाहारमाहारयेत् । प्रायोविदितवेद्यस्यापि कि[illegible]आहारसन्निधावभि लाषातिरेकोजायतइत्यतोऽमूर्छितोऽनध्युपपन्नइति च प्रतिषेधद्वयमुक्तं । उक्तंच । भुत्त भोगो पुरा जोवि, गीयत्थोविय भाविउ ॥ संते साहारमाईसु, सोविखिप्पतु खुब्भइ ॥ १ ॥ तथा सयमे धृतिर्यस्यासौ धृतिमान् सबाह्याभ्यतरेण ग्रथेन विमुक्तस्तथा पूजन वस्त्र पात्रादिना तेनार्थ पूजनार्थ सविद्यते यस्यासौ पूजनार्थी तदेवंभूतोन भवेत् । तथा श्लोक श्लाघा कीर्तिस्तत्कामी नतदभिलाषुक परिव्रजेदिति । कीर्त्यर्थी न काचन क्रियां कुर्यादित्यर्थ ॥२३॥अध्ययनार्थमुपसजिघृक्षुराह । (णिक्कम्मेत्यादि) गेहान्नि सृत्य निष्क्रम्य च प्रव्रजितोपि भूत्वा जीवितेपि निराकाङ्क्षो काय शरीर व्युत्सृज्य निष्प्रतिकर्मतया चि कित्सादिकमकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा न जीवितं नापि मरणमभिकाङ्क्षेत् भिक्षुः सा धुर्वलयात्संसारवलयात्कर्मबधनाद्वा विप्रमुक्त सयमानुष्ठान चरेत् । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति समाध्याख्यं दशमाध्ययन समाप्त ॥

ति विचारय एपएव एकत्वाभिप्राय अमृपारूप सत्योवर प्रधानश्च। यदि वा अक्रोधन सत्यरतस्तपस्वी सएव भावसमाधिवान् वर प्रधान स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच । (आहाकडंचेत्यादि) साधूनाथाय कृतमाधाकृतमौद्देशिकमाधाकर्मेत्यर्थ । तदेवंभूतमाहारजात निश्चयेनैव नकामयेन्नाभिलषेत्तथा विहारादिकंच निकाम निश्चयेनाभिलपेत् पार्श्वस्थादीस्तत्संपर्कदानप्रतिग्रहसंभाषणादिभिर्न संस्थापयेन्नोपबृंहयेत्तैर्वा सार्धं संस्तव न कुर्यादिति । किंच (उरालंति) औदारिक शरीर विशिष्टतपसा कर्मनिर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृश कुर्यात् । यदिवोरालंति बहुजन्मांतरसंचितं कर्म तउदार मोक्षमनुप्रेक्षमाणोधुनीयादपनयेत्तस्मिश्च तपसा धूयमाने कृशीभवति । शरीरके कदाचित् शोक स्यात्तं त्यक्त्वा याचितोपकरणवदनप्रेक्षमाण शरीरकं धुनीयादिति संबंध ॥११॥ किंचापेक्षितेत्याह । (एगतमेवेत्यादि) एकत्वमसहायत्वमभिप्रार्थयेदेकत्वाध्यवसायी स्यात् । तथाहि । जन्मजरामरणरोगशोकाकुले संसारे स्वकृतकर्मणा विलुप्यमानानाम सुमतां न कश्चित्त्राणसमर्थ सहाय स्यात् । तथाचोक्तं । एकोमेसासउअप्पा, णाणदंसणसंजुउ ॥ सेसामेबाहिराभावा, सव्वे सयोगलक्खणाइत्यादिकामेकभावना भावयेदेवमनयैकत्वभावनया प्रकर्षेण मोक्ष प्रमोक्षोविप्रमुक्तसंगता न मृषा अलीकमेतद्भवतीत्येवपश्य। एपचैकत्वभावनाभिप्राय प्रमोक्षोवर्तते अमृपारूप सत्यश्चायमेव। तथा वरोपिप्रधानोप्ययमेव भावसमाधिर्वा। यदिवा तपस्वी तपोनिष्टप्तदेहोऽक्रोधन । उपलक्षणार्थत्वादस्यामानोनिर्मायोनिर्लोभ सत्यरतश्च एपएव प्रमोक्षोऽमृपा सत्योवर प्रधानश्च वर्ततइति॥१२

इत्थीसु या आरय मेहुणाउ, परिग्गहं चेव अकुव्वमाणे॥ उच्चावए
सु विसएसु ताई, निस्संसयं भिक्खु समाहिपत्ते॥ १३ ॥ अरइं
रइंच अभिभूय भिक्खू, तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उएहंच दं
संच हियासएज्जा, सुब्भिव डुब्भिव तितिक्खएज्जा ॥ १४ ॥

अर्थ–(इत्थीसुया के०) स्त्रीने विषे (मेहुणाउ के०) मैथुन सेववा थकी (आरय के०) निवर्त्ते (परिग्गहं चेवअकुव्वमाणे के०) तथा धन धान्यादिक परिग्रहनो संचयअण करतो थको तथा (उच्चावएसु विसएसुताईके०) नाना प्रकारना मनोज्ञ एवा वचनना जे प्रकार तेने विषे अथवा नाना प्रकारना विषय तेने विषे राग द्वेषे रहित होय, तथा त्राइ एटले छकायनो रक्षपाल थको (निस्संसयं भिक्खु समाहिपत्ते के०) एवो भाव समाधिने विषे प्राप्त थयलोजे साधु, ते विषयने निसश्रय एटले नपामे एटले विषयने वांछे नही ॥ १३ ॥ हवे भाव थकी समाधि शीरीते साधु पामे ते देखाडेछे (अरइ रइंच अभिभूय भिक्खू के०) ते भाव साधु परमार्थनो जाण शरीरादिकने विषे निस्पृ

नाद्रस्य द्वशरीरत्नव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यमार्गमभिधित्सुराह । "फलगलय दाउ कुडवणविलप्पास मग्गेय । खलिगअयपक्खिप हे ढत्तजलाकासदव्वमि" ॥ १० ॥ (लकेत्यादि) फलकमार्गे फलकमार्गे । यत्र कर्दमादिनयात फलकैर्गम्यते । लताम० यत्र लतावलंबेन गम्यते । अदोलनमार्गोपि यत्रादोलनेन दुर्गमतिलंघ्यते । वत्रमा० त्रलतोपष्टंत्रेन जलादौगम्यते इति । तद्यथा । चारुदत्तोवेत्रलतोपष्टंत्रेन वेत्रवतीं नदीं परकूल गत । रज्जुमार्गस्तु यत्र रज्वाकिंचिदतिदुर्गमतिलंघ्यते । दवनति यान ० गोंदवनमार्गे । बिलमार्गोयत्र तु गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानोमार्ग शमार्गे पाशकूटकवागुरान्वितोमार्गइत्यर्थः । कीलकमार्गोयत्र वालुकोत्कटे मरु विषये कीलकाभिज्ञानेन गम्यते । अजमार्गोयत्र वस्त्येनाजेन गम्यते । तद्यथा । र्णभूम्या चारुदत्तोगतइति । पक्षिमार्गोयत्र नारुडादिपक्षिभिर्देशांतरमवाप्यते । यत्र छत्रमंतरेण गंतु न शक्यते । जलमार्गोयत्र नावादिना गम्यते । आकाश धरादीनामयं सर्वोपि फलकादिकोद्रव्ये द्रव्यविषये ऽवगतव्यइति । नायाह । "खेत्तंमि जमि खेत्ते, काले काला जहि दवइ जोउ । नावमि दोंति दो, पसछतह अप्पसछोय ३ ॥ ११ ॥ (खेत्तमीत्यादि) क्षेत्रमार्गे पर्यालोच्यमाने स्मिन् क्षेत्रे ग्रामनगरादौ प्रवेशेवा शालिक्षेत्रादिके वाक्षेत्रे योयाति मार्गोयस्मिन्वा देशे व्याख्यायते सक्षेत्रमार्गे । एव कालेप्यायोज्य । नावे त्वालोच्यमाने द्विविधोपि नवति नावमार्गे । तद्यथा । प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति । प्रशस्ताप्रशस्तनेदप्रतिपादनायाह । "दुविहंमि वितिगभेदो, णेवो तस्स विचिणिछिउ दुविहो ॥ सुगतिफलदुग्गतिफलो, पगयं सगतीफले णिह ४ ॥ १२ ॥ (दुविहमीत्यादि) द्विविधेपि प्रशस्ताप्रशस्तरूपे नावमार्गे प्रत्येक त्रिविधोनवति । तत्राप्रशस्तोमिथ्यात्वाविरतिरज्ञान चेति । प्रशस्तस्तु सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूपइति । तस्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपस्य नावानावमार्गस्य विनिश्चयोनिर्णय० फल कार्य । निष्ठा द्वेधा । तद्यथा । प्रशस्त सुगतिफलोऽप्रशस्तश्च दुर्गतिफलइति । इह तु पुन प्रशस्ताऽधिकार सुगतिफलेन प्रशस्तमार्गेणेति । तत्राप्रशस्त दुर्गतिफल मार्गं प्रतिपिपादयिषुस्तत्कर्तॄन्निर्दिदिक्षुराह । "दुग्गइफलवादीण, तिन्नि तिसट्ठासताइवादीण ॥ खेमे य खेमरूवे, चउक्कग मग्गमादीसु ५ ॥ १३ ॥ (दुग्गईत्यादि) दुर्गति फल यस्य सदुर्गतिफलस्त द्वदनशीलादुर्गतिफलवादिनस्तेषा प्रवादुकाना त्रीणि त्रिषष्ठ्यधिकानि शतानि न वति । दुर्गतिफलमार्गोपदेष्टृत्वच तेषा मिथ्यात्वोपहतदृष्टितया विपरीतजीवादितत्वाभ्युपगमात् । तत्सख्या चेवम० । त० ... , अकिरियवाईण होइ चुलसीई ॥ अन्नाणियसत्त ... ॥१॥ तेषाच स्वरूप समवसरणाध्ययने वक्ष्यतइति । सांप्रतं मार्ग ... एक क्षेमोमार्गस्तस्करसिंह

अर्थ–(गुत्तोवईएयसमाहिपत्तो के०) वचने करी गुप्त मौनव्रती एटले विचारीने धर्म संबंधनु नापण करनार एवो साधु नाव समाधिने विषे पोहोतो कहेवाय, तथा (लेसंसमाहट्टु परिवएज्जा के०) कृष्ण, नील अने कापोत ए त्रण अशुनलेश्याने परिहरिने तेज, शुक्ल अने पद्म ए त्रण शुन लेश्याने ग्रहण करीने संयमानुष्ठान पाले, (गिहनछाएणविछायएज्जा के०) तथा पोते घरने ढांके नही बीजाने हाथे ढवरावे नही उपलक्षण थकी ढवरावताने अनुमोदे नही,तथा बीजा पण गृहस्थ पणाना कर्तव्यने परिहरे तथा (पयासु के०) प्रजालोकने विषे (समिस्सनाव के०) विषयमिश्रित नावनो (पयहे के०) त्याग करे जे पचन पाचनादिक क्रिया करता गृहस्थ समान थाय ते नकरे अथवा प्रजा एटले स्त्री तेनी साथें मिश्रनावनो त्याग करे एटले स्त्री थकी दूर रहे ॥ १५ ॥ (जेकेइ लोगमिउ अकिरियआया के०) जे कोइ सांख्य दर्शनी लोक माहे एम कहेछे के आत्मा अक्रियछे आत्माने क्रिया नथी, पण प्रकृति सर्व क्रिया करेछे एम बंध मोक्षने अण मानता थका बोलेछे (अन्नेणपुठ्ठा धुयमादिसंति के०) तेने अन्य दर्शनी कोइ पूछे के तमारा मते जो आत्मा कर्त्ता नथी तो बंध मोक्ष केम घटे तेवारे तेने फरी एमज कहेके अमारा दर्शनमाज ध्रुव एटले मोक्षछे परंतु अन्य कोइ दर्शने मोक्ष नथी एवा ते (आरंनसत्ता गढितायलोय के०) पचन पाचन स्नानादिकना आरंनने विषे आसक्त थता अत्यंत गृद्ध एवा थका रहेछे परंतु ते कहेवाछे तोके आ लोकने विषे (धम्मणयाणंतिविमुक्कहेउ के०) मोक्षनो हेतु एवो जे श्रुत चारित्र रूप धर्म तेने नथी जाणता एवाछे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–वाचा गुप्तोमौनव्रती समाधिप्राप्त स्यात् । शुद्धा लेश्या समाहृत्यादाय परिव्रजेत् संयमेगृह स्वतोन्येनवा न छादयेत् अपरमपि गृहसंस्कारं किंचिन्न कुर्यात् । तथा प्रजा स्त्रियस्तासु मिश्रनावमेकत्व प्रजह्यात्त्यजेत् ॥ १५ ॥ ये केचिल्लोकेऽक्रियात्मानोऽक्रियावादिन सांख्या । तुर्विशेषेणे । तेऽन्येनाऽक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यनिप्रायवता पृष्टा स्वतोधूत मोक्षं क्रियासाध्यमादिशंति । तेतु पचनाद्यारंनसक्तास्तु लोके धर्म श्रुतचारित्राख्य विमोक्षहेतु न जानंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (गुत्तोवईए इत्यादि) वाचि वाचा वा गुप्तोवाग्गुप्तोमौनव्रती सुपर्यालोचितधर्मसंबधनापीवेत्येव नावसमाधि प्राप्तोनवति । तथा शुद्धा लेश्या तैजस्यादिका समाहृत्योपादाय अशुद्धाच कृष्णादिकामपहृत्य परिसमंतात्संयमानुष्ठानेन व्रजेद्गछेदिति। किंचान्यत् गृहमावसथं स्वतोन्यैर्वा नविछादयेदुपलक्षणार्थत्वादस्यापरमपि गृहादेरुरगवत्परकृतबिलनिवासित्वात्संस्कार न कुर्यात् । अन्यदपि गृहस्थकर्तव्य परिजिहीर्षुराह ।

मार्गाधिकारे सम्यक्त्वाख्यातिरूपो ऽवगंतव्य ।तथा मार्गइति पूर्वस्माद्विशुध्या विशिष्टतरो मार्ग सचेह सम्यक्ज्ञानावाप्तिरूपो ऽवगंतव्य । तथा न्यायइति निश्चयेनायन विशिष्टस्थान प्राप्तिलक्षण यस्मिन् सति सन्याय । सचेह सम्यक्चारित्रावाप्तिरूपो ऽवगतव्य ।सत्पुरुषा णामयं न्यायएव । यदुतावाप्तयो. सम्यग्दर्शनज्ञानयोस्तत्फलभूतेन सम्यक्चारित्रेण योगो भवतीत्यतोन्यायशब्देनात्र चारित्रयोगो ऽभिधीयतइति । तथा विधिरिति । विधान विधि· स म्यक्ज्ञानदर्शनयोर्योगपद्येनावाप्तिस्तथा धृतिरिति धरण धृति सम्यक्दर्शने सति चारित्रा वस्थान मानुषादाविव विशिष्टज्ञानाभावाद्विवक्ष्यैवमुच्यते । तथा सुगतिरिति शोभना ग तिरस्मात्तृज्ञानचारित्राच्चेति सुगति ।ज्ञानक्रियाभ्या मोक्षइति न्यायात्सुगतिशब्देन ज्ञानक्रिये अभिधीयेते । दर्शनस्यतु ज्ञानविशेषत्वादत्रैवातर्भावो ऽवगंतव्यः। तथाहि। हितमिति परमा र्थतोमुक्त्यवाप्तिस्तत्कारण वा हितं तच्च सम्यग्दर्शनचारित्राख्यमवगतव्यमिति । अत्र च सपू र्णाना सम्यग्दर्शनादीना मोक्षमार्गत्वेसति यद्वयस्तसमस्तानां मोक्षमार्गत्वेनोपन्यास स प्रधानोपसर्जनविवक्षया न दोषायेति। तथा सुखमिति सुखहेतुत्वात्सुखमुपशमश्रेण्यामुपशा मक प्रत्यपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसपरायरूपा गुणत्रयावस्था । तथा पथ्यमिति पथि मो क्षमार्गे हित पथ्य तच्च क्षपकश्रेण्यां पूर्वोक्त गुणत्रय तथा श्रेयइत्युपशमश्रेणिमस्तकावस्था उपशांतसर्वमोहावस्थेत्यर्थ । तथा निर्वृतिहेतुत्वान्निर्वृति क्षीणमोहावस्थेत्यर्थ ।मोहनी यविनाशेऽवश्य निर्वृतिसद्भावादितिभाव । तथा श्रेयइति निर्वाणमिति घनघातिकर्मचतुष्टय रूपेण कर्मक्षयेण केवलज्ञानावाप्तिस्तथा शिव मोक्षपद तत्करणशील शैलेश्यवस्थागमनमि त्येवमेतानि मोक्षमार्गत्वेन किंचिद्भेदाभेदेन व्याख्यातान्यभिधानानि । यदिचैते पर्यायशब्दा एकार्थिकामोक्षमार्गस्येति।गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनतर सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपे तं सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेद (कयरेमग्गेइत्यादि) विचित्रत्वात्रिकालविषयत्वाच्च,सूत्रस्यागा मुक पृच्छकमाश्रित्य सूत्रमिद प्रवृत्तमतोजबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमिदमाह।तद्यथा। कतर, किंभूतोमोक्षोऽपवर्गावाप्तिसमर्थोऽस्या त्रिलोक्यामाख्यात प्रतिपादितोभगवता त्रैलोक्यो द्धरणसमर्थेनकातहितैषिणा माहनेनेत्येवमुपदेश प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तीर्थकृत्तेन। तमे व विशिनष्टि।मतिर्लोकालोकातर्गतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्तमानपदार्थाविर्भा विकाकेवलज्ञानाख्या यस्यास्त्यसौ मतिमास्तेन प्रशस्तभावमार्गं मोक्षगमनप्रति ऋजु प्रगु ण यथावस्थितपदार्थस्वरूपनिरुपणद्वारेणावक्र सामान्यविशेषनित्यानित्यादिस्याद्वाद समाश्रयणात्तदेव भूत मार्गं ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रात्मक प्राप्य लब्ध्वा ससारोदरविवरव र्ती प्राणी समग्रसामग्रीकर्उघमिति भवौघ ससारसमुद्र तरत्यत्यतदुस्तर तदुत्तरगुण सामग्र्याएव दुष्प्रापकत्वात् । तदुक्त । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूपा रोगमाउय बुद्धी ॥ समणोग्गहसद्धास, यमोयलोयमि दुल्लहाऽऽत्यादि ॥१॥ साप्रत पृच्छक प्रदर्शयन् । (तं

ममत्वने नथी मूकता (सेसाहसकारिमंदे के०) ते महोटा साहासीक एटले पाप थकी बीता नथी एवा मद एटले अज्ञानी (अहोयराउपरितप्पमाणे के०) अहोरात्र परित प्रमान एटले ड्व्यने अर्थे मम्मण श्रेष्ठिनी पेरे पश्चाताप करे कायक्लेशकरे तथा (अ ट्टेसुमूढेअजरामरेव के०) आर्त्तवत थया थका एवा ते मूर्ख संसारने विषे परिभ्रमण करे परतु अजरामर वणिकनी पेरे कोइ काळे मनमा एम नजाणे जे अमने जरा अने मरण अवश्य आवशे एमविचारेनही एवाते मूर्ख अज्ञानी जाणवा ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–पृथक्छदानानाभिप्रायाऽह मनुष्यलोके मानवा । तुर्निश्चये । क्रियाक्रिय यो· पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावाद च समाश्रिता । जातस्य उत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सु खैषिणोदेह (पकुवन्ति) खडश कृत्वाऽऽत्मसुखमुत्पादयंति । एवकुर्वतोऽसंयतस्य वैरं प्राणि षु प्रवर्धते ॥ १७ ॥ आयु क्षयं जीवितातमबुध्यमानोऽजानन् साहसमविमृश्य प्रवृत्ति स्तत्करणशील साहसकारी महोममायमिति ममत्ववान् नवति । यथा कश्चिद्वणिक् महता क्लेशेन बहुमूल्यरत्नानि प्राप्य उज्जयिन्यावहिरावासित सच राजचौरदायादभयाद्रा त्रौ रत्नान्येवमेव नगरे नयामीत्येव विचाराकुलोनिशाक्षयं नज्ञातवान् दिवैव रत्नानि प्र वेशयन् राजपुरुषैर्धृतोरत्नानि गृहीतानिचेति । एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुल आयु·क्ष यमजानन् ममतया साहसकारी स्यादिति । अन्हि रात्रौ च परितप्यमानोमम्मणवणि ग्वदार्तध्यानी अर्थेषु मूढोऽजरामरवत्क्लिश्यते । यत । अजरामरवद्बाल क्लिश्यते धन काम्यया ॥ निरतर मन्यमान शाश्वतं जीवितं धनमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (पुढोयछंदाइत्यादि) पृथक् नाना छंदोऽभिप्रायोयेषां ते पृथ क्छंदाइहास्मिन्मनुष्यलोके मानवामनुष्या । तुरवधारणे । तमेव नानाभिप्रायमाह । क्रि याऽक्रिययो पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रिता । तद्यथा । क्रियैव फलदा पुं सां, नज्ञान फलद मतं ॥ यत स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितोभवेत् ॥१॥ इत्येव क्रियैव फलदायित्वेनाभ्युपगता क्रियावादमाश्रिताएवमेतद्विपर्ययेणाऽक्रियावादमाश्रि ता । एतयोश्चोत्तरस्वरूप न्यक्षेण वक्ष्यते । तेच नानाभिप्रायामानवा क्रियाक्रियादिक पृ थग्वादमाश्रितामोक्षहेतु धर्ममजानानाआरम्भेषु सक्ताइंद्रियवशगारसतातागारवाभि लाषिणएतत्कुर्वंति । तद्यथा । जातस्योत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सदसद्विवेकविकलस्य सु खैषिणोदेह शरीर पकुवति खडश कृत्वात्मन सुखमुत्पादयंति । तदेव परोपघातक्रियां कुर्वतोऽसयतस्य कुतोप्यनिवृत्तस्य जन्मांतरशतानुबंधिवैरं परस्परोपमर्दकारि प्रकर्षेण व र्धते । पावांतरवा (जायाइबालस्सपगभ्भणाए) बालस्याज्ञस्य हिंसादिषु कर्मसु प्रवृत्त स्य निरनुकंपस्य या जाता प्रगल्भता धार्ष्ट्यं तया वैरमेव प्रवर्धतेति संबंध ॥ १७

तद्व्याप्रवण मार्ग (पडिसाहिज्जेत्ति) प्रतिकथयेत् । मार्गसार मार्गपरमार्थं यं भवतो न्येषा प्रतिपादयिष्यति तन्मे मम कथयत श्रृणुत यूयमिति । पागतरवा (तेसिंतुइमं मग्ग आइक्खेज्जसुणेहमेत्ति) उत्तानार्थं ॥ ४ ॥

अणुपुव्वेण महाघोरं, कासवेण पवेइय ॥ जमादाय इउ पुव्वं, स
मुद्दं ववहारिणो ॥५॥ अतरिं सुतरतेगे, तरिस्सति आणगया ॥
त सोच्चा पडिवक्खामि, जतवो तं सुणेहमे ॥ ६ ॥

अर्थ-(अणुपुव्वेण के०) आनुपूर्वि एटले अनुक्रमे (पचिदिअत्तण माणुसत्तण) इत्यादिक अनुक्रमे करीने (महाघोर के०) पालता अत्यत दुष्कर ले एवो जे मार्गनो सार ते (कासवेणपवेइय के०) काश्यपजे श्रीमहावीर देव तेणे नाख्यो एटले कह्यो, (ज मादाय के०) जेमार्गना ग्रहण करवा थकी (इउपुव्वके०) पूर्वे अतीतकाले घणा सत्पु रुष दुस्तर एवो ससार समुद्र तस्याले ते उपर दृष्टात कहेले (समुद्दववहारिणो के०) जेम व्यवहारीआ वस्तुना लोनी थका दुस्तर समुद्र तरे तेनी पेरे तस्याले ॥५॥ (अतरि सुतरतेगे के०) जे मार्ग ग्रहण करीने अतीतकाले अनताजीव ससार समुद्र तस्या (तरिस्सति अणागया के०) अने हमणा पण सख्याता जीव ससार समुद्र तरेले, तथा आगमिक काले पण अनता जीव तरशे, एम त्रणे काले ससार समुद्रने जेवडे तरेले एवो जे मोक्षनो मार्ग (तश्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि के०) तेने सानलीने अंगीकार करे ते मार्ग सम्यक् प्रकारे तमने कहीश (जतवोत सुणेहमेके०) माटे अहो जीवो ते सर्व हु कहुबु माटे एकाग्रचित्ते तमे सानलो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-यथाहमनु पूर्वेण परिपाट्या मार्ग वच्मि तथा श्रृणुत यूय। किन्नूत मार्ग का पुरुषैर्दुष्पाट्यत्वान्महाघोर काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदित प्ररूपित य मार्गमादाय गृहीत्वा इत सन्मार्गोपादानात्पूर्वमादावेवाऽनुष्ठितत्वात्समार तरति । यथा व्यवहारिण सा यात्रिका पोतेन समुद्रं तरति ॥ ५ ॥ य मार्गमाश्रिता पूर्वं बहवोऽतीर्णस्तीर्णा ससार साप्रतमप्येके तरति महाविदेहादौ तथा ऽनागतकाले तरिष्यति । एवन्नूत त मार्गं श्रु त्वा तीर्थकृत्य अह प्रतिवक्ष्यामि । हेजतवोहेप्राणिन तं मार्ग मम कथयत शृणुत यूयमिति सुधर्मस्वामिवचन ॥ ६ ॥

॥ टीका-पुनरपि मार्गाभिष्टव कुर्वन्सुधर्मस्वाम्याह । (अणुपुव्वेणेत्यादि) यथाहमनु पूर्व्येणानुपरिपाट्या कथयामि तथा शृणुत । यदिवा यथा चानुपूर्व्या सामग्र्या वा मार्गो वाप्यते तच्छृणुत । तद्यथा । पढमिल्लगाणउदएइत्यादितावद्यावत् । बारसविहेकसाए, ख

तुमेहाविसमिरकधम्मके०) ए दृष्टाते पंमित जेछे तेपण सम्यक् प्रकारें श्रीवीतराग नावित श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलोचीने (दुरेणपाव परिवज्जएज्जाके०) हिंसादिक सावद्यानुष्ठा नरूपजे क्रिया तेने पापरुप जाणीने तेनाथी दूर रहे एरीते साधु सुंयूसंयम पाले ॥२०

॥दीपिका-वित्तं द्रव्यं पशवोगोमहिप्याद्यास्तान् सर्वान् जहाहि त्यज। बाधवा मातापि त्रादय सेतस्य येच मित्राणि सुहृदस्तेपि तस्य न किंचित्त्वत कुर्वंति सोपिच वित्ता द्यर्थं लालप्यते नृश विलपति मोहमुपैतिच धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवान पि तिलकश्रेष्ठिवत् एवमयमपि असमाधिमाप्नोति। यच्च तेनार्जितं धन तदन्यजनास्तस्य जीवतएव मृतस्यच हरति गृण्हति । तस्यतु क्लेशएव केवल ॥ १९ ॥ यथा क्षुद्रास्तुच्छा मृगाश्चरतोऽटव्यामटत सिंह दूरे त्यक्त्वा चरति । यत परिशंकमाना सर्वतोनयाकुला एव मेधावी धर्म समीक्ष्य विचार्य पाप दूरेण परिवर्जयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (जहाहिवित्तमित्यादि) वित्तं द्रव्यजातं तथा पशवोगोमहि ष्याद्यस्तान् सर्वान् जहाहि परित्यज। तेषु ममत्व माकृथा । ये बांधवामातृपित्रादय श्व शुरादयश्च पूर्वापरसंस्तुतायेच प्रियामित्राणि सहपांसुक्रीडितादयस्ते एते मातापित्राद योन किंचित्तस्य परमार्थत कुर्वंति सोपिच वित्तपशुबांधवमित्रार्थी अत्यर्थ पुन पुनर्वि लपति लालप्यते । तद्यथा हेमात हेपितइत्येव तदर्थं शोकाकुल प्रलपति तदर्जनप रश्च मोहमुपैति। रूपवानपि कंडरीकवत् धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलक श्रेष्ठिवदित्येवमसावप्यसमाधिमान् मुह्यते । यच्च तेन महता क्लेशेनापरप्राणुपमर्दनो पार्जित्त वित्तं तदन्ये जना सेतस्यापहरति जीवतएव च तस्य वा तस्य च क्लेशत केवल पापबंधश्चेत्येव मत्वा पापानि कर्माणि परित्यजेत्तपश्चरेदिति ॥ १९ ॥ तपश्चरणोपायम धिकृत्याह । (सीहंजहेत्यादि) यथा क्षुद्रमृगा क्षुद्राटव्यपशवोहरिणजात्याद्याश्चरंतो ऽटव्यामटंत सर्वतोबिन्यत परिशंकमाना सिंह व्याघ्रं वा आत्मोपद्रवकारिण दूरेण परिहृत्य चरंति विहरत्येव मेधावी मर्यादावान् । तुर्विशेषणे। सुतरा धर्मं समीक्ष्य पर्या लोच्य पापं कर्मसदनुष्ठानं दूरेण मनोवाक्कायकर्मभि परिहृत्य परिसमंताद्व्रजेत्संयमानुष्ठा यी तपश्चारी च नवेदिति दूरेण वा पापं पापहेतुत्वात्सावद्यानुष्ठान सिंहमिव मृग स्वहितमिच्छन् परिवर्जयेत्त्यजेदिति ॥ २० ॥

संबुज्झमाणे उ णरे मतीमं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ॥ हिंसप्पसूया
इं दुहाई मत्ता, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥ 'पाठांतरे सनिव्वाण भूएन

तथा गणधरे कह्याछे (एतावएजीवकाए के०) एटलीज ए जीवनी निकायछे (णावरे कोइविक्कई के०) परतु एथकी उपरांत बीजी कोइ जीवनी निकाय नथी ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–पृथिवीजीवा पृथक् प्रत्येक सत्वाजतवो ज्ञेया । आपश्च जीवाएवमग्नि कायाजीवावायुजीवाश्च पृथक्सत्वा प्रत्येकजीवास्तृणानि कुशादीनि वृक्षाश्चूताद्या बीजानि शाल्यादीनि एतेच वनस्पतिभेदा ॥७॥ अथापरे त्रसा प्राणिनोद्वित्रिचतु पं चेंद्रियाएव षट्कायाआख्यातास्तीर्थंकृद्भि । एतावान् जीवराशिर्नापरो विद्यते कश्चित् ॥८॥

॥ टीका–चारित्रमार्गस्य प्राणातिपातविरमणमूलत्वात्तस्य च तत्परिज्ञानपूर्वकत्वाद्तो जीवस्वरूपनिरूपणार्थमाह । (पुढवीजीवाइत्यादि) पृथिव्येव पृथिव्याश्रितावाजीवास्तेच प्रत्येकशरीरत्वात्पृथक् प्रत्येक सत्वाजतवोऽवगतव्या । तथा आपश्च जीवाएवमग्निकाया श्च तथापरे वायुजीवास्तदेव चतुर्महाभूतसमाश्रिता सत्वा प्रत्येकशरीरिणोऽवगतव्या । एतएव पृथिव्यप्तेजोवायुसमाश्रिता सत्वा प्रत्येकशरीरिणोवक्ष्यमाणवनस्पतेस्तु सा धारणा साधारणशरीरत्वेनापृथक्त्वमप्यस्तीत्यस्यार्थस्य दर्शनाय पुन पृथक् सत्वग्रहणमि ति । वनस्पतिकायस्तु य सूक्ष्म ससर्वोपि निगोदरूप । साधारणबादरस्तु साधारणा ऽसाधारणश्चेति । तत्र प्रत्येकशरीरिणोऽसाधारणस्य कतिचिद्भेदान्निर्दिदिक्षुराह । तत्र तृ णानि दर्भवीरणादीनि वृक्षाश्चूताशोकादय सहबीजै शालिगोधूमादिनिर्वर्तंतइति सबी जकाएते सर्वेपि वनस्पतिकाया सत्वाअवगतव्या । अनेनच बौद्धादिमतनिरास कृ तोवगतव्यइति । एतेषा च पृथिव्यादीना जीवाना जीवत्वेन प्रसिद्धिस्वरूपनिरूपणमाचा रे प्रथमाध्ययने शास्त्रपरिज्ञाख्ये न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते ॥ ७ ॥ पष्ठजी वनिकायप्रतिपादनायाह । (आहावरेत्यादि) तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयएकेंद्रिया सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तकभेदेन प्रत्येक चतुर्विधा । अथानंतरमपरेऽन्ये त्रसतीति त्रसा द्वित्रिचतु पचेंद्रिया कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादय । तत्र द्वित्रिचतुरिंद्रिया प्रत्येक पर्या प्तकापर्याप्तकभेदात्षड्विधा । पंचेंद्रियास्तु सज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकभेदाच्चतुर्विधा । तदे देवमनतरोक्तया नीत्या चतुर्दशभूतग्रामात्मकतया व्याख्यातास्तीर्थंकरगणधरादिभि । एतावानेवतद्भेदात्मकएव सक्षेपतोजीवनिकायोजीवराशिर्भवत्यडजोद्भिज्जसंस्वेदजादेरत्रैवां तर्भावान्नापरोजीवराशिर्विद्यते कश्चिदिति ॥ ८ ॥

सव्वाहि अणुजुत्तीहिं, मतिम पडिलेहिया ॥ सव्वे अकतदुक्खाय, अतो सव्वे अहिंसया ॥९॥ एयं खु णाणिणो सारं, ज न हिंसति कचण ॥ अहिंसा समय चेव, एतावंत विजाणिया ॥ १० ॥

गंतरवा । (निव्वाणनूएयपरिव्वएज्जा) अस्यायमर्थ । यथाहि निर्वृतौ निर्व्यापारत्वात्कस्य चिदुपघाते न वर्तते एव साधुरपि सावद्यानुष्ठानरहित परिसमताद् व्रजेदिति ॥ २१ ॥ तथा (मुसणबूयाइत्यादि) आतोमोक्षस्तन्नामी तद्गमनशीलआत्महितगामीवा आतोवा प्रक्षीणदोष सर्वज्ञस्तदुपदिष्टमार्गगामी मुनि साधुर्मृषावादमनृतमयथार्थ न ब्रूयात्सत्य मपि प्राण्युपघातकमिति । एतदेव मृषावादवर्जन कृत्स्न सपूर्ण नावसमाधि निर्वाण चा हु । सासारिकाहि समाधय स्नाननोजनादिजनिता शब्दादिविषयसपादितावा अनैकांति काऽनात्यंतिकत्वेन दुःखप्रतीकाररूपत्वेन वाऽसपूर्णावर्तते । तदेव मृषावादमन्येषा वा व्रतानामतिचार स्वयमात्मना न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेत्तथा कुर्वतमप्यपर मनो वाक्कायकर्मभिर्नानुमन्यतइति ॥ २२ ॥

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा, अमुछिए णय अज्झुववन्ने ॥ धिति म विमुक्के ण य पूयणठी, न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥ निक्कम्मगेहाउ निरावकखी, काय विउसेज्ज नियाणछिन्ने ॥ णो जीवियं णो मरणावकखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के तिबेमि ॥ २४ ॥ इति समाहिनाम दसमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(सुद्धेसिया जाएनदूसएज्जाके०) उद्गम, उत्पादन अने एषणा ए त्रणे दोष रहित एवो शुद्ध निर्दोष आहार प्राप्त थयो अथवा न थयो उता पण कदापि साधु राग द्वेषे करी पोताने दुषवे नही तथा (अमुछिए के०) अमूर्छित अगृद्ध एटले लोलुपता रहित (णयअज्झुववन्ने के०) फरी फरी ते रुडा आहारनी वाछा नकरे तथा (धि तिमविमुक्के णयपूयणठी के०) धृतिमत तथा बाह्याभ्यतर ग्रथी रहित तथा पूजानो अर्थी न थाय (नसिलोय कामीय परिव्वएज्जा के०) तथा श्लाघाने अर्थे क्रिया न करे परतु कर्म निर्जराने अर्थे मोक्षने अर्थे सयमने विषे प्रवर्त्ते एवो समाधिवत साधु जाणवो ॥ २३ ॥ (निक्कमगेहाउ के०) गृहस्थावास थकी निकलीने चारित्र आदरी ने (निरावकखी के०) जीवितव्यने विषे निरापेक्षी उतो (कायविउसेज्ज के०) शरीर उपर ममत्व मूकीने पोतानी काया वोसिरावे तथा (नियाणछिन्ने के०) परनवे देव अथ वा राजादिक थवानुं नियाणु नकरे (णोजीवियणोमरणावकखी के०) जीवितव्य अ ने मरणने वांछे नही एटले पूजा सत्कारनी प्राप्तिये करी जीवितव्य नवांछे अने उपसर्ग परिसह उपने थके मरण पण नवाछे एवो (भिक्खू के०) साधु ते (वलयाविमुक्के के०) कर्मबंध थकी मूकाणो अथवा वलय एटले ससार थकी मूकाणो थको (चरेज्जके०

धाश्रयोपसर्पणादिन्योहेतुन्योवनस्पतेश्चैतन्यसिद्धिः । द्वीन्द्रियादीनां तु पुनः कृम्यादीनां स्पष्टमेव चैतन्यं तद्वेदनाश्चोपक्रमिकाः स्वाजाविकाश्च समुपलन्यमानामनोवाक्कायैः कृत कारितानुमतिनिश्च नवकेन नेदेन तत्पीडाकारिणउपमर्दान्निवर्तितव्यमिति ॥ ए ॥ एतदेव समर्थयन्नाह । (एयंखुइत्यादि) खुशब्दोवाक्यालंकारेऽवधारणेवा । एतदेवानंतरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं ज्ञानिनोजीवस्वरूपतद्वधकर्मबंधवेदिनः सारं परमार्थप्रधानं । पुनरप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाह । यत्कंचनप्राणिनमनिष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति प्रनूतवेदिनोपि ज्ञानिनएतदेव सारतरं ज्ञानं यत्प्राणातिपातनिवर्तनमिति । ज्ञानमपि तदेव परमार्थतोयत्पीडातोनिवर्तनं । यथोक्तं । किंताए पढियाए, पयकोडीए पयालजूयाए ॥ जब्रित्तियं ण णायं, परस्स पीडा न कायव्वा ॥१॥ तदेवमहिंसाप्रधानः समयआगमः संकेतोवाप्युपदेशरूपस्तदेवंनूतमहिंसासमयमेतावन्तमेव विज्ञाय किमन्येन बहुना परिज्ञानेनैतावतैव परिज्ञानेन मुमुक्षोर्विवक्षितकार्यपरिसमाप्तेरतोन हिंस्यात्कंचनेति ॥ १० ॥

उड्ढं अहेय तिरियं,जे केइ तसथावरा ॥ सव्वउ विरतिं विज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥ ११॥ पनू दोसे निराकिच्चा,ण विरुज्जेज्ज केणई ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

अर्थ–(उड्ढअहेयतिरियं के०) उंचो नीचो अने तीर्गो एतावता सर्व लोकने विषे (जेकेइतसथावरा के०) जे कांइ त्रस अने स्थावर जीवछे, (सव्वउविरतिंविज्जा के०) ते सर्वजीवनी निवृत्तिकरे एटले प्राणातिपात थकी निवर्त्ते, (संतिनिव्वाणमाहियं के०) एहिज विरति, शांति अने निर्वाण श्रीतीर्थंकरें कह्युछे ॥ ११ ॥ (पनूदोसेनिराकिच्चा के०) प्रनु एटले समर्थ इंद्रीयनो जीपनार मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक दोषने निराकरी एटले अवगणीने (णविरुज्जेज्जकेणई के०) कोइ पण जीवनीसाथे विरोध नाव नकरे, (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी वली (कायसाचेवअंतसोके०) कायाये करी निश्चय थकी कोइ पण जीवनी साथे जावजीवसुधी विरोध नकरे ॥१२॥

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तत्र सर्वत्र प्राणिनि विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । एषैव विरतेः शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । तथा निर्वाणहेतुत्वान्निर्वाणमप्याख्याता एषैव विरतिः ॥११॥ प्रनुः समर्थोदोषान् मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषायादीन् निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं न विरुध्येत केनैव सह विरोधं न कुर्यात् मनसा वचसा कायेन चांततः परमार्थतः केनापि नविरुध्येत॥१२॥

हवे मोक्ष मार्ग नामे अगीआरमुं अध्ययन कहेछे पूर्वला दशमा अध्ययनमां समाधि कही, ते समाधि तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप जाणवी ते कारणे एनु सेवन करिए तो मोक्ष प्राप्ति थाय, माटे आ अध्ययनमा मोक्ष मार्ग कहेछे

कयरे मग्गे अक्खाए, माहणेण मईमता ॥ जं मग्गं उज्जु पाविता, उहं तरति दुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्ध, सवदुक्खविमोक्खण ॥ जाणासि ण जहा भिक्खू, तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥

अर्थ–श्रीजंबुस्वामी श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये पूछेछे के, (कयरेमग्गे के०) मोक्षमार्ग साधन करवानो एवो कयो धर्ममार्ग (माहणेणमईमताके०) मतिमत एटले केवलज्ञानवत श्रीमहावीर परमेश्वर तेणे (अक्खाएके०) कह्योछे (जमग्गउज्जुपाविताके०) जेज्ञान दर्शन चारित्ररूप सरल मार्ग पामिने प्राणी (उहंतरतिदुत्तर के०) तरता थका दुस्तर एवा ससार समुद्रने तरीने पार पामे ॥ १ ॥ सर्वनाहितने अर्थे जे मार्ग श्रीसर्वज्ञे उपदेश्योछे, (तंमग्गणुत्तरसुद्धं के०) तेमार्ग शुद्धो निर्दोष अनुत्तर एटले निरुपम (सवदुक्खविमोक्खण के०) समस्त दुःखथकी मुकावनार एवो मार्ग (जाणासिणजहाभिक्खू के०) अहो भगवत जेवो तमे जाणोछो (तंणोबूहिमाहामुणी के०) ते वो हे महामुनीश्वर अमने कहो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथैकादशमारभ्यते । पूर्वाध्ययने समाधिरुक्त सच मार्गे सति स्यादिति मार्गोऽत्र प्रतिपाद्यते । यथा । (कयरेइत्यादि) जबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमाह । कत्तर. कोमार्गआख्यातोमाहनेन मतिमता श्रीवीरेण । य मार्ग मुक्तिप्राप्तिरूपं ऋजुमवक्रं प्राप्योघं ससार तरति प्राणी ॥१॥ त मार्गमनुत्तर श्रेष्ठ शुद्ध निर्दोष सर्वदुःखविमोक्षण हे मुने त्वं यज्जानीषे । णमिति वाक्यालकारे । तं मार्ग नोऽस्माक हेमहामुने ब्रूहि ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं दशमाध्ययन तदनतरमेकादशमारभ्यते । अस्य चायमभिसबंध. । इहानतराध्ययने समाधि प्रतिपादित सच ज्ञानदर्शनतपश्चारित्ररूपोवर्तते । भावमार्गोप्येवमात्मकएवेत्यतोमार्गोऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतेइत्यनेन सबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्राप्युपक्रमातर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । प्रशस्तोज्ञानादिकोभावमार्गस्तदाचरण चात्राभिधेयमिति । नामनिष्पन्नेतु, निक्षेपे मार्गइत्यस्याध्ययनस्य नाम । तन्निक्षेपार्थ निर्युक्तिकृदाह । "णाम ठवणा दविए, खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु मग्गस्सय, णिक्खेवो छव्विहो होइ" ॥ ९ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदान्मार्गस्य षोढा निक्षेप । तत्र नामस्थापने सुगमत्वाद

नूतानि प्राणिन समारम्य संताप्य तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृत तादृशमाधाकर्म दोष दुष्टमाहारादिकं न गृह्णीयात् नक्तं पानच सुसंयतोगृहीतव्रतस्तादृशं न भुंजीत ॥१४॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह । (सवुडे इत्यादि) आश्रवद्वाराणा रोधेनेंद्रियनि रोधेन च सवृत सनिकुमेहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञोविपुलबुद्धिरित्यर्थ । तदनेन जी वाजीवादिपदार्थाभिज्ञता वेदिता भवति। धीरोऽक्षोभ्य क्षुत्पिपासादिपरीषहैर्न क्षोभ्यते। तदेव दर्शयति । आहारोपधिशय्यादिके स्वस्वामिना तत्सदिष्टेन वा दत्ते सत्येषणा चरत्ये षणीय गृह्णातीत्यर्थ ।एषणायाएषणायांवा गवेषणग्रहणैषणग्रासरूपाया त्रिविधायाम पि सम्यगित समित ससाधुर्नित्यमेषणासमित सन्ननेषणा परिवर्जयन् परित्यजन्स यममनुपालयेत् । उपलक्षणार्थत्वादस्य शेषाभिरपीर्यासमित्यादिभि समितोद्रष्टव्यइति ॥ १३ ॥ अनेषणीयपरिहारमधिकृत्याह (नूयाइइत्यादि) अनूवन् भवति भविष्यति च प्राणिनस्तानि नूतानि प्राणिन समारम्य सरंभसमारंभारंभैरुपतापयित्वा त साधुमुद्दि श्य साध्वर्थं यत्कृत तदकल्पितमाहारोपकरणादिक तादृशमाधाकर्मदोषदुष्ट सुसयत सु तपस्वी तदन्न पानक वा न भुजीत । तु शब्दस्यैवकारार्थत्वान्नैवाभ्यवहरेदेव तेन मार्गोऽ नुपालितोभवति ॥ १४ ॥

पूईकम्म न सेविज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ ज किंचि अभिकंखे ज्जा, सवसो त नभोत्तए ॥ १५ ॥ हणंत णाणुजाणेज्जा, आयगु त्ते जिइंदिए॥ ठाणाइ संति सङ्ढीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥

अर्थ—(पूईकम्मनसेविज्जाके०) शुद्धाहार पण जो आधाकर्मिकना एक कण सहि त होय तो ते अशुद्ध थाय, तेमाटे तेने पूतिकर्म कहिए, एवो आहारादिकने नसेवे ए टले नभोगवे (एसधम्मे के०) एवो धर्माचार ते (वुसीमउ के०) साचा सयमवतनो जाणवो तथा (जकिंचि के०) जेकांइ निर्दोष आहार होय परतु तेने (अभिकंखेज्जा के०) सदोष करी जाणे तेपण सशकित थयो माटे (सवसोतंनभोत्तए के०) ते सर्वथा प्रकारे भोगववु नकल्पे ॥१५॥ (ठाणाइसतिसङ्ढीणके०) श्रद्धावतना स्थान श्रद्धावत धर्मवतना आश्रय (गामेसुनगरेसुवाके०) एवा ग्रामने विषे अथवा नगरने विषे साधु रह्या छे त्यानो आश्रीत कोइएक कूप खनन सत्रुकारकादिकनो करावनार एवो पुरुष साधुने पू छे, जे एमा धर्मछे किंवा नथी एम पुछ्या थका (आयगुत्तेजिइंदिए के०) आत्मगुप्त तथा जितेंद्रिय एवो साधु, (हणतंणाणुजाणेज्जा के०) आरंभेकरी प्राणी हणाता होय तेवा कार्यने अनुमोदे नही, जे ए तु रुडु काम करेछे एम कहे नही ॥ १६ ॥

व्याघ्राद्युपद्रवरहितत्वात्तथा क्षेमरूपश्च समत्वात्तथा ग़ायापुष्पफलवृक्षोपेतजलाश्रया कुलत्वाच्च । तथा पर क्षेमोनिर्श्वार किंलक्षेमरूपश्चपलशकलाकुलगिरिनदीकटकगर्तशता कुलत्वेन विपमत्वात्तथाऽपरोक्षेमस्तस्करादिनयोपेतत्वात्क्षेमरूपश्चोपलशकलाद्यनावतया समत्वात्तथाऽन्योनक्षेमोनापि क्षेमरूप सिंहव्याघ्रतस्करादिदोपडुष्टत्वात्तथा गर्तपापाणनि म्नोन्नतादिदोपडुष्टत्वाच्चेति । एव नावमार्गोप्यायोज्य । तद्यथा । ज्ञानादिसमन्वितोऽव्य लिंगोपेतश्च साधु क्षेम क्षेमरूपश्च । तथाऽक्षेमोऽक्षेमरूपस्तु सएव नावसाधु कारणिको ऽव्यलिंगरहित । तृतीयनगकगतानिन्हवा परतीर्थिकागृहस्थाश्चरमनगकवर्तिनोऽष्ट व्या । एवमनतरोक्तप्रक्रियया चतुष्क नगकचतुष्टय मार्गादिष्वायोज्य । आदिग्रहणादन्य त्रापि समाध्यादावायोज्यमिति।सम्यक्मिथ्यात्वमार्गयो स्वरूपनिरूपणायाह् । सम्मप्पणि उं मग्गो, णाणे तह दसणे चरित्तेय ॥ वरगपरिव्वायादी, विस्सोमिहत्तमग्गोत्ति ६ ॥१४॥ (स मप्पणिउंइत्यादि) सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र चेत्यय त्रिविधोपि नावमार्ग सम्यग्दृष्टिनिर्ग णधरादिनि सम्यग्वा यथावस्थितवस्तुतया च निरूपणया प्रणीतस्तैरेव सम्यगाचीर्णश्चासे वितोमार्गोमिथ्यात्वमार्गो ऽप्रशस्तमार्गोनवतीति। तुशब्दो स्य डुर्गतिफलनिर्वंधनत्वेनऽ विशे पणार्थइति । स्वयूथ्यानामपि पार्श्वस्थादीना षड्जीवनिकायोपमर्दकारिणा कुमार्गाश्रित त्व दर्शयितुमाह । इड्डिरससायगुरुया, ठज्जीवनिकाय घायनिरयाए ॥ जेजदिसंति मिग्ग, कुमग्गमग्गस्सिता तेउं " ॥१५॥ (इड्डिरसेत्यादि) ये केचन अपुष्टधर्माण शीतल विहारिणोऋद्धिरससातगोरवेण गुरुकागुरुकर्माणश्चाधाकर्माद्युपनोगेन षड्जीवनि कायव्यापादनरताश्चापरे तेन्योमार्ग मोक्षमार्गमात्मानुचीर्णमुपदिशति । तथाहि । शरी रमिदमाद्य धर्मसाधनमिति मत्वा कालसहननादिहानेश्चाधाकर्माद्युपनोगोपि न दोपाये त्येव प्रतिपादयति तच्चैव प्रतिपादयत कुत्सितमार्गास्तीर्थिकरास्तन्मार्गाश्रितानवति । तु शब्दादेतेपि स्वयूथ्याएतडुपदिशत कुमार्गाश्रितानवतीति।किंपुनस्तीर्थिकाइति।प्रशस्तशास्त्र प्रणयनेन सन्मार्गाविष्करणायाह् । 'तवसंजमप्पहाणा, गुणधारी जे वयति सप्नाव ॥ सवजगजीवहिय, तमाहुसम्मप्पणीयमिण "॥१६॥ (तवसयमेत्यादि) तप सवाह्याभ्यंतर द्वादशप्रकार तथा सयम सप्तदशनेद पंचाश्रवविरमणादिलक्षणस्ताभ्या प्रधानास्तप मय मप्रधानास्तथाऽष्टादशशीलांगसहस्राणि गुणास्तद्धारिणोगुणधारिणोये सत्साधवस्तएव नताय सद्भाव परमार्थ जीवाजीवादिलक्षण वदति प्रतिपादयति । किंनूत सर्वस्मिन जग ति ये जीवास्तेन्यो हित पथ्य तङ्कणतस्तेपा सडुपदेशदानतोवा । त सन्मार्ग सम्यङ्मार्गे ज्ञा सम्यगविपरीतत्वेन प्रणीतमाहुरुक्तवतइति । साप्रत सन्मार्गस्यैकार्थिकान दर्शयितुमा ह।" पथो मग्गो णेउ, वहिंवीतिसुगतीहियसुवह ॥ पञ्च सय णिच्चुऽ, णिव्वाण शिवकरचेव " ॥ १७ ॥ (पथोमग्गोणेउइत्यादि) देशाद्विवक्षितदेशातरप्राप्तिलक्षण पंथा सचेह नाव

अह्वित्तिनोवए के०) तेकारणे आ तमारा अनुष्ठाने पुण्यछे एम पण साधु नकहे ॥१८॥

॥ दीपिका–केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्ट साधु किमस्मदनुष्ठाने ऽस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येव नूता गिर समारन्य निशम्यास्तिपुण्य नास्तिवेत्येवमुनयथापि महान्नयमिति मत्वा नानुमन्येत ॥ १७ ॥ अन्नपानादिदानार्थे पाकादिक्रियाया ये प्राणिनोहन्यते त्रसा स्थावराश्च तेषा सरक्षणार्थं साधुरत्र पुण्यमस्तीति नोवदेत्॥१८॥

॥ टीका–सावद्यानुष्ठानानुमतिं परिहर्तुकामआह । (तहागिरमित्यादि) केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्ट साधु' किमस्मदनुष्ठान अस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येव नूता गिर समारन्य निशम्याश्रित्य चास्ति पुण्य नास्तिवेत्येवमुनयथापि महान्नयमिति मत्वा दोषहेतुत्वेन नानुमन्येत ॥१७॥ किमर्थं नानुमन्येतइत्याह (दाणठयाऽत्यादि) अन्नपानदानार्थमाहारमुदकच पचनपाचनादिकया क्रियया कूपखननादिकया चोपकल्पयेत् । तत्र यस्माद्धन्यते व्यापाद्यते त्रसा स्थावराश्च जतवस्तस्मात्तेषा रक्षानिमित्त साधुरात्मगुप्तोजितेंद्रियोऽत्र नवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येव नो वदेदिति ॥ १८ ॥

जेसिं त उवकप्पति, अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसि लाभ तरायंति,
तम्हा णत्थित्ति णो वए॥ १९ ॥ जे य दानं पसंसंति, वहमिच्छंति
पाणिणं ॥ जेयण पडिसेहंति वित्तिछेय करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ–अने (जेसिंतं उवकप्पति के०) जे लोकने निमित्ते उपकल्पे एटले वांछे शुं वाछे तोके (अन्नपाणतहाविहके०) अन्न पाणी तथाविध दोषे दुष्ट अनेक प्रकारे करी नीपजावेछे तथापि तेनो निषेध करे तो (तेसिलाभतरायतिके०) तेने लाभांतराय रूप आहार देवानु विघ्न थाय (तम्हा के०) ते कारणे आ तमारे अनुष्ठाने पुण्य (णत्थित्तिके०) नथी (नोवए के०) एम पण नकहे ॥१९॥ (जेयदानपसंसंति के०) तेमाटे जे कोइ परमार्थनो जाण यति दाननी प्रशंसाकरे ते (वहमिच्छतिपाणिण के०) ते प्राणीना वधनी इच्छा करेछे, (जेयणपडिसेहंतिके०) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे (वित्तिछेयंकरतिते के०) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करेछे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–येषा जतूना कृते तदन्नपानादिक धर्मबुध्या उपकल्पयंति निष्पादयंति तन्निषेधे तेषामाहारार्थिना लाभातरायोविघ्नोनवेत् । तस्मात्कूपखननसत्रादिकर्मणिनास्ति पुण्यमित्यपि नो वदेत् ॥ १९ ॥ प्रपासत्रादिदान ये प्रशंसति ते प्राणिना वधमिच्छं

मग्गेइत्यादि) योसौ मार्गः सत्वहिताय सर्वज्ञेनोपदिष्टोऽज्ञोपैकातकौटिल्यवक्ररहितस्त मार्ग । नाम्योत्तर प्रधानोस्तीत्यनुत्तरस्त शुद्धोऽ वदातोनिर्दोष पूर्वापरव्याहतिदोषापगमा त्सावद्यानुष्ठानोपदेशाभावाद्वा तमिति । तथा सर्वाण्यशेषाणि बहुनिर्भवैरुपचितानि डुःख कारणत्वाडुःखानि कर्माणि तेभ्योविमोक्षण विमोचक तमेव भूतं मार्गमनुत्तर निर्दोष सर्वडुःखक्षयकारण हेभिक्षो यथा त्व जानीपे । णमितिवाक्यालंकारे । तथा त मार्ग सर्वज्ञ प्रणीतं नो ऽस्माक हेमहामुने ब्रूहि कथयेति ॥ २ ॥

जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसि तु कयरं मग्गं आइक्खेज्ज कहाहिणो ॥३ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं म पडिसाहिज्जा मग्गसार सुणेहमे ॥ ४ ॥

अर्थ–यद्यपि मुजनेतो तमारी प्रतिते मार्ग सुगमछे, परतु अन्य कोइने मार्ग हुं के वीरीते कहुं एवा अभिप्राये पूछुंछु (जइणोकेइपुच्छिज्जा के०) यद्यपि अमने कोइ पूछे कोण पूछे तोके (देवाअडुवमाणुसा के०) देवो अथवा मनुष्यजे चक्रवर्त्यादिक ते पूछे (तेसिंतुकयरमग्गं के०) तेवारे तेने कयो मार्ग (आहिक्खेज्जकहाहिणो के०) कहीए ते तमे कहो ॥ ३ ॥ एम श्रीजबुस्वामिये पूछया थका श्रीसुधर्मस्वामि कहेछे (जइणो केइपुच्छिज्जादेवाअडुवमाणुसा के०) यद्यपि तमने कोइ देव अथवा मनुष्य संसार भ्रां तिनो भग करनार एवा मार्गनी वात पूछे, तेवारे (तेसिमपडिसाहिज्जा के०) तेने त मारे जे मार्ग कहेवो (मग्गसारसुणेहमे के०) तेमार्गनो सार हु तमने कहुंछु ते तमे सांभळो

॥ दीपिका–यदि नोऽस्माक केचन पृछेयु ।देवाअथवा मनुष्यास्तेपामह । तुरेवार्थे । कतरं क मार्ग (आइक्खेज्जत्ति) आचक्षीम आचक्षीवा तत्कथय नोऽस्माकमिति ॥ ३ ॥ यदि केचित्सुजनवोधयोवोयुष्माकं मार्ग पृछेयु । के । ते देवामनुष्यावा तेपा पृच्छतामिम धर्म प्रति कथयेत्साधुस्तंमार्ग सार मम कथयत शृणुत यूयं ॥ ४ ॥

॥ टीका–यद्यप्यस्माकमसाधारणगुणोपलब्धेर्युष्मत्प्रत्ययेनैव प्रवृत्ति स्यात्तथाप्यन्ये षां किंभूतोमार्गोमयाख्येयइत्यभिप्रायवानाह । (जइणेत्यादि) यदा कदाचिन्नोस्मान् केचन सुजनबोधयं ससारोद्विग्ना सम्यग्मार्गं पृछेयु । के ते देवाश्चतुर्निकायास्तथा मनु ष्या प्रतीता बाहुल्येन तयोरेव प्रश्नसद्भावाशडुपादान । तेषा पृच्छता कतर मार्गमहमा ख्यास्ये कथयिष्ये तदेतदस्माक त्व जानान कथयेति ॥ ३ ॥ एवपृष्ट सुधर्मस्वाम्याह । (जइवोइत्यादि) यदि कदाचिद्वोयुष्मान् केचन देवामनुष्यावा ससार भ्रांतिपराभग्ना सम्यग्मार्गं पृछेयुस्तेषा पृच्छतामिममिति वक्ष्यमाणलक्षण षड्जीवनिकायप्रतिपादनगर्भ

करकिरणैर्यात्यनताविनाशं तेनोदासीनभाव व्रजति मुनिगण कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ ॥ एव रजस कर्मणआयं लाभ हित्वा त्यक्त्वाऽनवद्यभाषिणोनिर्वाण मोक्ष प्राप्नुवति ॥ ॥ २१ ॥ येषा निर्वाण मोक्षएव परम प्रधान ते बुद्धाज्ञातत्वा । यथा नक्षत्राणा मध्ये चद्रमाप्रधानएव मोक्षमेवाश्रित्य प्राप्य ये प्रवृत्तास्ते एव बुद्धाना मध्ये प्रधाना । त स्मात्सदा सर्वकालं यत प्रयत्नवान् इंद्रियदमने दांतोमुनिर्निर्वाण संधयेन्निर्वाणार्थं सर्वा क्रिया कुर्यादित्यर्थ ॥ २२ ॥

॥ टीका–तदेव राज्ञा अन्येन वेश्वरेण कूपतडागयागसत्रदानाद्युद्यतेन पुण्यसद्भाव पृष्टैर्मुमुक्षुभिर्यद्विधेय तद्दर्शयितुमाह। (दुहर्ओवीत्यादि) यद्यस्ति पुण्यमित्येवमूचुस्ततोनंता ना सत्वाना सूक्ष्मबादराणा सर्वदा प्राणत्यागएव स्यात्प्रीणनमात्रतु पुन स्वल्पाना स्वल्पका लीयमतोस्तीति न वक्तव्य। नास्ति पुण्यमित्येव प्रतिषेधेपि तदर्थिनामतराय स्यादित्यतो द्विधाप्यस्ति नास्ति वा पुण्यमित्येव ते मुमुक्षव साधव पुनर्न भाषंते किंतु पृष्टे सन्निमौं न समाश्रयणीय। निर्बंधेत्वस्माक द्विचत्वारिशद्दोषवर्जितआहार कल्पते। एवविधविष ये मुमुक्षूणामधिकारएव नास्तीति । उक्तंच । सत्य वप्रेषु शीत शशिकरधवल वारि पी त्वा प्रकाम, व्युच्छिन्नाशेषतृष्णा प्रमुदितमनस प्राणिसार्थाभवति ॥ शोष नीते जलौ घे दिनकरकिरणैर्यात्यनताविनाश, तेनोदासीनभाव व्रजति मुनिगण कूपवप्रादिकार्ये ॥१ तदेवमुभयथापि भाषिते रजस कर्मणआयोलाभोभवतीत्यतस्त चाय रजसोमौनेना नवद्यभाषणेन वा हित्वा त्यक्त्वा तेऽनवद्यभाषिणोनिर्वाण मोक्ष प्राप्नुवतीति ॥२१॥ अपिच। निव्वाणमित्यादि) निर्वृतिर्निर्वाण तत्परम प्रधान येषा परलोकार्थिना बुद्धाना ते तथा तानेव बुद्धान्निर्वाणवादित्वेन प्रधानानित्येव दृष्टातेन दर्शयति । यथा नक्षत्राणा मश्विन्यादीना सौम्यत्वप्रमाणप्रकाशकत्वैरधिकश्चद्रमाएव परलोकार्थिना बुद्धाना मध्ये ये स्वर्गचक्रवर्तिसपन्निदानपरित्यागेनाशेषकर्मक्षयरूप निर्वाणमेवाभिसधाय प्रवृत्तास्त एव प्रधानानापरइति । यद्वा यथा नक्षत्राणा चद्रमा प्रधानभावमनुभवन्येव लोक स्य निर्वाण परम प्रधानमित्येव बुद्धाअवगततत्वा प्रतिपादयतीति । यस्माच्च निर्वाण प्रधान तस्मात्कारणात्सदा सर्वकालं यत प्रयत प्रयत्नवान् इंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतो मुनि साधुर्निर्वाणमभिसधयेन्निर्वाणार्थं सर्वा क्रिया कुर्यादित्यर्थ ॥ २२ ॥

वुज्झमाणाण पाणाणं किच्चताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं दीव, पतिठे सा पवुच्चई ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्धमक्खाति, पडिपुन्नमणालिस ॥ २४ ॥

विएज्ववसामिएयजोगेहि ॥ लप्पइचरित्तलाभो, इत्यादि तथा चत्तारिपरमंगाणीत्यादि । किंनूतं मार्ग तमेव विशिनष्टि । कापुरुषे संग्रामप्रवेशवत् डुरध्यवसायत्वान्महाजयानकं काश्यपोमहावीरवर्धमानस्वामी तेन प्रवेदितं प्रणीत मार्गं । कथयिष्यामीत्यनेन स्वमनी षिकापरिहारमाह । ये शुद्धमार्गमुपादाय गृहीत्वा ऽतइति सन्मार्गोपादानात् पूर्वमाचारे वानुष्ठितत्वाडुस्तर ससार महापुरुषास्तरति । अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । व्यवहार प एयक्रयविक्रयलक्षणोविद्यते येषाते व्यवहारिण सांयात्रिका । यथा ते विशिष्टलाभार्थिन किंचिन्नगर यियासवोयानपात्रेण डुस्तरमपि समुद्र तरत्येव साधवोप्यात्यतिकैकातिक बोधसुखैषिण सम्यग्दर्शनादिना मार्गेण मोक्ष जिगमिषवोडुस्तर नवौघं तरतीति ॥ ५ ॥ मार्गविशेषणायाह । (अतरिसुइत्यादि) य मार्ग पूर्वं महापुरुषाचीर्णमव्यनिचारिण माश्रित्य पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोऽनता सत्वाअशेषकर्मकचीवरविप्रमुक्तानवौ घं ससारमतीर्षुस्तीर्णवत साप्रतमप्येके ममग्रसामग्रीका असख्येया सत्वास्तरति । महा विदेहादौ सर्वदा सिद्धिसन्नावा द्वर्तमानत्व न विरुध्यते । तथाऽनागतेच काले पर्यवसाना त्मकेऽनंतात्मकेऽनताएव जीवास्तरिष्यति । तदेव कालत्रयेपि ससारसमुद्रोत्तारक मोक्ष गमनैककारण प्रशस्त नावमार्गमुत्पन्नदिव्यज्ञानैस्तीर्थकृद्भिरुपदिष्ट त चाह सम्यक् श्रुत्वा ऽवधार्य च युष्माक शुश्रूषूणा प्रतिवक्ष्यामि प्रतिवादयिष्यामि । सुधर्मस्वामी जबूस्वामिन निश्रीकृत्यान्येषामपि जतूना कथयतीत्येतद्दर्शयितुमाह । हे जतवोऽनिमुखीनूय त चारित्र मार्ग मम कथयत शृणुत यूय । परमार्थकथनेऽत्यतमादरोपादानार्थमेवमुपन्यासइति ॥६॥

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहागणी ॥ वाउजीवा पुढो सत्ता. तणरुरका सवीयगा ॥७॥ अहावरा तसा पाणा, एव ठक्का य आहिया ॥ एतावए जीवकाए, णावरे कोइविज्जई ॥ ८ ॥

अर्थ– (पुढवीजीवापुढोसत्ता के०) पृथिवीकाय जीव तेपण जुदा जुदा जाणवा (आउजीवा के०) तेमज अपकायना जीव, उंस धूयरी प्रमुख पृथक् पृथक् जाणवा (तहागणी के०) तथा अग्नीकायना पण इगाल ज्वाल मूमर प्रमुख जीवो जुदा जुदा जाणवा तथा (वाउजीवापुढोसत्ता के०) वायुकायना जीव पण जुदा जुदा जाणवा अने (तणरुस्कासवीयगा के०) तृण वृक्षनी जाती तथा बीज ते शाली प्रमुख ए सर्व वनस्पति कायना जीव जाणवा ॥ ७ ॥ (अहावरातसापाणा के०) अथानतर अवरा एटले ए पूर्वे जे स्थावर जीवो कह्या तेथकी अपर बीजा बेड्रियादिक प्राण ते त्रसजीवो जाणवा (एवठक्कायआहिया के०) ए प्रमाणे ठक्कायना जीवो श्री तीर्थंकर

आत्मगुप्तस्तथा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतोवश्येंद्रियोधर्मध्यानध्यायी वे त्यर्थं । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्त्रोतांसि येन सतथा। एतदेव स्पष्टतरमाह निर्गतआश्रव प्राणातिपातादिक कर्मप्रदेशद्वाररूपोयस्मात्सनिराश्रवोयएवंभूत सशु द्धं समस्तदोषापेत धर्ममाख्याति । किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं निरवयवतया सर्वविरत्याख्य मोक्षगमनैकहेतुमनीदृशमनन्यसदृशमद्वितीयमिति यावत् ॥ २४ ॥

तमेव अवि जाणता, अबुद्धा बुद्धमाणिणो ॥ बुद्धा मोत्तियम न्नता, अतएते समाहिए ॥ २५ ॥ तेय बीउदगं चेव, तमुदिस्सा य ज कडं ॥ भोच्चा झाण झियायति, अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥

अर्थ-(तमेवअविजाणता के०) ते शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्मना आचारनुं जे जाणपणुं तेने विषे (अबुद्धाबुद्धमाणिणो के०) अबुद्ध एटले अविवेकी छता, पोतामां पंमित पणुं मानता थका जे अमेज धर्मना जाणछैये, (बुद्धामोत्तियमन्नता के०) तत्वना जाण एवा बुद्धिमान अमेज छैये एवीरीते मानता एवा जनो (अतएतेसमाहिए के०) ते भाव समाधि थकी अत्यंत दूर वर्त्तनार जाणवा ॥ २५ ॥ एवा कोण पुरुष ते कहेछे (तेयबीउंदगचेव के०) ते शाक्यादिक अन्य दर्शनी अथवा एवा जे स्वतीर्थिक पासत्था दिक तेबीज एटले शाली गोधूमादिक तथा उदक ते सचित्तपाणी तथा (तमुद्दिस्सायजकडं के०) तेने अर्थे उद्देशीने जे आहारादिक कीधो ते सर्वने अविवेकी पणे जीव्हाना ल पटी छता (भोच्चा के०) भोगवी ने (झाणझियायंति के०) आर्त्त ध्यान ध्यावे, एट ले सघनो भोजनादिक थशे तेवारे आपणने पण मलशे, एवो आर्त्त ध्यान ध्यावे ते तात्विके (अखेयन्ना असमाहिया के०) धर्माधर्मने विषे अखेदज्ञ एटले अनिपुण तथा एवा ध्यानना ध्यावनार सदा असंतोषी होय माटे असमाधिवंत जाणवा ॥२६॥

॥ दीपिका-तमेव धर्ममजानानाअबुद्धानिर्विवेकाबुद्धमानिन पंडितमन्यावुद्धा स्मोवयमिति मन्यमाना समाधे सम्यग्दर्शनादृते पर्यतेऽतिदूरे वर्तते इति तेऽन्ये तीर्थिकाज्ञेया ॥ २५ ॥ बीजानि शालिगोधूमादीनि उदकमप्रासुकजलं च शाक्यादय स्तानुद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिक कृत तत्सर्वं भुक्त्वा सातर्धिरसगौरवासक्ता संघभक्ता दिक्रियया तदवाप्तिकृते आर्त ध्यान ध्यायंति । नहि ऐहिकसुखार्थिना परिग्रहवता धर्म ध्यान स्यात् । यत । ग्रामक्षेमगृहादीना, गृहक्षेत्रजनस्य च । यस्मिन् परिग्रहोदृष्टो, ध्यान तत्र कुत शुभमिति । मोहस्यायतन धृतेरपचय शाते प्रतीपोविधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवन पापस्य वासोनिज ॥ दु खस्य प्रभव सुखस्य निधन ध्यानस्य क

अर्थ-ए पूर्वोक्त ठ जीवनी निकाय कही हवे जे काइ करवु ते देखाडेठे (सव्वाहिं अ णुजुत्तीहिं के०) समस्त अनुयुक्ति एटले जीवितव्य साधवाना कारण तेणेकरी जीवने सम्यक् प्रकारे उलखीने (मतिम के०) बुद्धिवत पुरुष जीवादिक तत्वने (पडिलेहिया के०) प्रतिलेखी एटले आलोचीने, (सव्वे अक्कत डुरकाय के०) सर्वजीवो डुःख थकी आक्रांत थायछे, एटले एकाते डुःख कोइने वल्लभ नथी सर्व सुखना अर्थीछे, (अतो के०) ते कारण माटे (सव्वेअहिंसया के०) पृथव्यादिक सर्व जीवोने हणे नही, ठए कायनी दया पाले ॥ ए ॥ (एय खुणाणिणोसार के०) एहिज निश्चय थकी ज्ञानी ने जाणवानो सारछे, (जनहिंसतिकचण के०) जे कोइ जीवनो विनाश नकरे परमार्थ थकी तेनेज ज्ञानी कहीये, के जे कोइ परजीवने पीडा उपजाववा थकी निवर्त्ते उक्तंच किताए पडियाए इति वचनात् (अहिंसा समयचेव के०) अहिंसा जे दया तेज निश्चये थकी आगमनु तत्व जाणवु (एतावतं विजाणिया) किंबहुना एटलुज जाणीने दयाने विषे यत्न करवो परतु घणु जाणे शु फलछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सर्वानिरनुकूलयुक्तिनिर्मतिमान् पृथिव्यादिजीवान् प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वे जीवाअकातडुःखाअनभिमतडुःखा सुखैपिणश्चेति मत्वाऽतो मतिमान्सर्वान्प्राणिनोन हिंस्यात् ॥ ए ॥ खुर्वाक्यालकारे निश्चयेवा । एतदेव ज्ञानिनसार यत्कचन प्राणिनं न हिनस्ति अहिंसाप्रधान सयममेतावतमेव विज्ञानं यन्न हिंस्यात्कचन किंबहुना ज्ञातेन एतावता ज्ञातेन विवक्षितकार्यसिद्धि ॥ १० ॥

॥ टीका-तदेव षड्जीवनिकाय प्रदर्श्य यत्तत्र विधेय तद्दर्शयितुमाह । (सव्वाहिंत्यादि) सर्वाया काश्चनानुरूपा पृथिव्यादिजीवनिकायसाधनत्वेनानुकूलायुक्तय साधनानि । यदिवा सिद्धविरुद्धानैकातिकपरिहारेण पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षव्यावृत्तिरूपतया युक्तिसंगतायुक्तयस्तानिर्मतिमान् सद्विवेकी पृथिव्यादिजीवनिकायान्प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वेपि प्राणिनोऽकातडुःखाडुःखद्विप सुखलिप्सवश्च मत्वाऽतोमतिमान् सर्वानपि प्रणिनोन हिंस्यादिति । युक्तयश्च तत्प्रसाधिका सक्षेपेणेमाइति । सात्मिका पृथिवी तदात्मना विद्रुमलवणोपलादीना समानजातीयाकुरसद्भावादर्शोविकाराकुरवत् । तथा सचेतनमम्भोनूमिखननादाविष्कृतस्वजावसन्नवाद्दर्डुरवत् । तथा सात्मकतेजस्तद्योग्याहारवृध्या वृध्युपलब्धेर्बालकवत् । तथा सात्मकोवायुरपराप्रेरितनियततिरश्चीनगतिमत्वाद्गोवत् । तथा सचेतनावनस्पतयोजन्मजरामरणरोगादीनां समुदितानां सद्भावात्स्त्रीवत्तथा क्षतसरोहणाहारोपादानदौहृदसद्भावस्पर्शसकोच सायान्हस्वापप्रबो

अर्थ–(जहाढंकायकंकाय के०) जेम ढंक पक्षी विशेष, तथा कंक पक्षी विशेष (कुललामगुकासिहा के०) कुलला पक्षी विशेष मूगु पक्षी विशेष काक पक्षी विशेष एसर्वे पक्षी मासना अर्थि मासनी इहा एटले वांछना करनार छे, ते (मच्छेसणंझि यायंति के०) माछलानी प्राप्तिनी एषणाने ध्यावता थका रहेछे (झाणंतेकलुसा धम के०) एवा मांसाहारी जीवो ते सर्वकाल कलुष एटले मलीन एवु माछलानी गवे षणानु अधम ध्यान ध्यावेछे ॥ २७ ॥ (एवंतुसमणाएगे के०) ए प्रकारे कोइएक अन्यतीर्थिक अथवा पासत्थादिक कुशीलिया श्रमण (मिच्छदिट्ठि के०) मिथ्यादृष्टी (अणारिया के०) अनार्य ते (विसएसणंझियायंति के०) विषयनी एषणा एटले, श ब्द रूप रस गंधनी प्राप्तिने ध्यावेछे (कंकावाकलुसाहमा के०) ते पूर्वोक्त कंकादिक प क्षीनी पेरे कलुषित चित्त वाला अधम पुरुषो जाणवा ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–यथा ढंकादय पक्षिविशेषाजलाश्रयनिवासाआमिषजीविनोमत्स्यप्रा प्ति ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च ते कलुषाधमा स्यु । एवं शाक्यादयोविषयप्राप्तिं ध्यायंत क लुषाधमाश्च स्यु ॥ २७ ॥

टीका–यथा चैते रससातागौरवतयार्तध्यायिनोभवंति तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितु माह । (जहाढंकायइत्यादि) यथेत्युदाहरणन्यासार्थ । यथा येन प्रकारेण ढंकादय पक्षि विशेषाजलाश्रयाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंत्येवंभूतं च ध्यानमार्तरौद्रध्यानरूपत याऽत्यंतकलुषमधमं च भवतीति ॥२७॥ दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमि ति यथा ढंकादयोमत्स्यान्वेषणपरं ध्यानं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कलुषाधमाभवंत्येवमेव मिथ्यादृष्टय श्रमणाएके शाक्यादयोऽनार्यकर्मकारित्वात्सरजपरिग्रहतया अनार्या सतो विषयाणां शब्दादीनां प्राप्तिं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कंकाइव कलुषाधमाभवंतीति ॥२८॥

सुद्ध मग्गं विराहित्ता, इहमेगेउ दुम्मती ॥ उम्मग्गगता दुक्ख,
घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं, जाइअंधो
दुरूहिया ॥ इच्छइ पारमागंतुं, अंतराय विसीयती ॥ ३० ॥

अर्थ–(सुद्धंमग्गंविराहित्ताके०)शुद्धमार्गजे सम्यक्दर्शनादिक तेने कुमार्गनी प्ररुपणाये विराधता एवा (इहके०) आसंसारमाहे (मेगेउदुम्मतीके०) कोइएक दुराचारी पोताना दर्शनना अनुरागे प्रवर्त्तता (उम्मग्गगतादुक्ख के०) उन्मार्ग गत एटले अरिहंत जापी त तत्व थकी विपरीत मार्गे प्राप्त थया थका दु खजे अष्ट प्रकारना कर्म असातोदयरू प तेणे करी (घायमेसंतितंतहा के०) तथा प्रकारे ते घात एटले नरकादिकगतिमांहे

॥ टीका–सांप्रतं क्षेत्रप्राणातिपातमधिकृत्याह । (उड्डमहेत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसास्तेजोवायुर्द्वीन्द्रियादयस्तथा स्थावरा. पृथिव्यादय किंबहुनोक्तेन सर्वत्र प्राणिनि त्रसस्थावरसूक्ष्मबादरनेदभिन्ने विरति प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात्। परमार्थतएवमेवासौ ज्ञाता नवति। यदि सम्यक् क्रियतइति एषैवच प्राणातिपातनिवृत्ति परेषामात्मनश्च शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । यतोविरतिमतोनान्ये केचन बिभ्यति नाप्यसौ नवांतरेपि कुतश्चिद्बिनेति । अपिच निर्वाणप्रधानैककारणत्वान्निर्वाणमपि प्राणातिपातनिवृत्तिरेव। यदिवा शांतिरुपशम शांतता निवृत्तिर्निर्वाण विरतिमाश्चार्तरौद्रध्यानानावादुपशांतिरूपोनिर्वृतिनूतश्च नवति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् । (पनूदोसेइत्यादि) इंद्रियाणा प्रनवतीति प्रनुर्वा वश्येंद्रियइत्यर्थ । यदिवा संयमाचारकाणि कर्माण्यनिनूय मोक्षमार्गे पालयितव्ये प्रनु समर्थ सएवनूत प्रनुर्दूषयतीति दोषामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगास्तान्निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं नविरुध्येत न केनचित्सह विरोध कुर्यात्त्रिविधेनापि योगेनेति मनसा वाचा कायेन चैवातशोयावज्जीव परोपकारक्रियया न विरोधं कुर्यादिति ॥ १२ ॥

संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं, व
ज्जयंते अणेसणं॥१३॥ नूयाइच समारंन त मुद्दिस्साय जं कडं॥
तारिसं तु ण गिण्हेज्जा, अन्नपाणं सुसंजए ॥ १४ ॥

अर्थ–(संवुमेसेमहापन्नेके०) आश्रवनो रोधकरी संवरने पाम्यो ते महाप्राज्ञ एटले विपुल बुद्धिवंत तथा (धीरेदत्तेसणचरेके०) परीसह जीतवाने धीर सुनट समान एवो ठतो दीधेली एषणाने चरे, अर्थात् दातारेदीधो एषणीक निर्दोष एवोजे आहारतेने लिए (एसणासमिएणिच्चके०) एषणा एटले आहारनी गवेषणा तेने विषे समिति सहित नित्यसदाकाल (वज्जयंतेअणेसण के०) अनेषणीयने वर्जतो थको संयम पाले ॥१३॥ (नूयाइंचसमारंन के०) नूत एटले प्राणीनो समारंन करीने (तमुद्दिस्सायजंकडके) यतिने अर्थे उद्देशीने कीधो एवो जे आधाकर्मिक आहार (तारिसके०) तादृस एटले तेवो (अन्नपाण के०) अन्न, पान, वस्त्र, पात्र अने शय्यादिक (णगिण्हेज्जा के०) तेने जे ग्रहण करे नही, ते (सुसंजए के०) सुसंयत जाणवो ॥ १४ ॥

दीपिका–इंद्रियै संवृत्ते समहाप्रज्ञोविपुलमतिर्धीरोऽक्षोभ्योनिक्षुर्दत्तैषणा चरेत् आहारोपधिशय्यादिक स्वामिना दत्त सदेषणीय गृह्णीतेत्यर्थ ।एषणायां गवेषणग्रहणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि समित सम्यक्तयाऽनेषणा वर्जयन् नित्यं संयममनुपालयेत्॥१३॥

रूप धर्म तेने ग्रहण करीने (कासवेणपवेदित के०) ते धर्म काश्यपगोत्री श्रीमहावीर देवे कह्यो ते धर्मने आदरवा थकी फल जे थाय ते कहेछे (तरेसोयमहाघोर के०) ते माहाघोर एवो ससार समुद्रनो श्रोत एटले प्रवाहरूप स्थानक तेने तरे अर्थात् संसार समुद्रने उल्लघीने पारपामे, (अत्तत्ताएपरिवए के०) ते कारण माटे आत्मानो त्राण एटले रक्षपाल एवो साधु ते एहिज सम्यग् धर्मने समाचारे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–एवमेके शाक्याद्य श्रमणामिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोत कर्माश्रवरूप कृत्स्न समापन्ना सतोमहाभय घोर पुन्येन दु खमागतारआगमनशीला स्यु ससार सागरोत्तरण न स्यादिति ॥३१॥ इम प्रत्यक्ष धर्म । च पुनरर्थे। काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्रणीत आदाय गृहीत्वा भावस्रोत संसारपर्यटनं महाघोर तरेदुल्लघयेत् । तदेव जिनप्रणीतधर्माटनेनासता आत्मनस्त्राणाय नरकादिभ्योरक्षणाय परिव्रजेत्सयमानुष्ठायी स्यात् । क्वचित्पश्चार्द्धस्याय पाठ । (कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स, अगिलाएसमाहिए)। भिक्षु साधु ग्लानस्य वैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रात कुर्यात्समाधिना ग्लानस्य समाधिमुत्पादयन् ॥३२॥

॥ टीका–दार्ष्टातिकमाह । (एवतित्यादि) एवमेव श्रमणाएके शाक्याद्योमिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोत कर्माश्रवरूप कृत्स्न सपूर्णमापन्ना संतस्ते महाभय घोर पुन्येन ससारपर्यटनतया नारकादिस्वभाव दु खमागतारआगमनशीलाभवति । न ते षा ससारोदधेरास्राविणी नाव व्यवस्थितानामिवोत्तरण भवतीति भाव ॥ ३१ ॥ यत शाक्याद्य श्रमणा मिथ्यादृष्टयोऽनार्या कृत्स्नं स्रोत समापन्ना महाभय मागतारोभवति ततइदमपदिश्यते । (इमचेत्यादि) ऽदमिति प्रत्यक्षासन्नवाचित्वा दिदमोनतर वक्ष्यमाणलक्षण सर्वलोकप्रकट च दुर्गतिनिषेधेन शोभनगतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्य । चशब्द पुन शब्दार्थे । सच पूर्वस्माद्व्यतिरेक दर्शयति । यस्माद्बोद्धाद निप्रणीतधर्मस्यादातारोमहाभय गतारोभवति इम पुनर्धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदित प्रणीत तरेदुल्लघयेद्भावस्रोत ससारपर्यटनस्वभाव । तदेव विशिनष्टि । महाघोरं दुरुत्तारत्वान्महाभयानक । तथाहि । तदतर्वर्तिनोजतवोगर्भाद्गर्भं जन्मतोजन्म मरणान्मरण दु खाद्दु खमित्येवमरघट्टघटीन्यायेनानुभवतोऽनंतमपि काल मासते । तदेव काश्यपप्रणीतधर्मादानेन सता आत्मनस्त्राण नरकादिरक्षा तस्मै आत्म त्राणाय परि समतात्परिव्रजेत्सयमानुष्ठायी भवेदित्यर्थ । क्वचित्पश्चार्धस्यान्यथा पाठ । कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स अगिलाएसमाहिए ॥ भिक्षु साधु ग्लानस्यवैयावृत्यमग्लानोऽ परिश्रात कुर्यात्सम्यक्समाधिना ग्लानस्य वा समाधिमुत्पादयन्निति ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–आधाकर्माद्यविशुद्धिकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तन्न सेवेत। एषधर्म (वुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोयत्किंचिदनिकाद्देतानुष्ठान तत्र सर्वश सर्वप्रकारम प्याहारादिकं पूतिकर्म नोक्तुं न कल्पते ॥ १५ ॥ धर्मश्रद्धावता ग्रामेषु स्थानान्याश्रया विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रित कश्चिद्धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिका क्रिया कुर्यात्ते न च किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येव पृष्ट साधुस्त प्राणिनोमत नानुजानीयात् । किंभूत साधुः आत्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तोजितेंद्रिय ॥ १६ ॥

॥ टीका– किंच (पूतीत्यादि) आधाकर्माद्यविशुद्धकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तदेवंभूतमाहारादिक न सेवेत नोपभुंजीत। एषोऽनतो धर्मकल्पस्वभाव (वुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोऽयमेवानुष्ठानकल्पोयदुताशुद्धमाहारादिक परिहरतीति। किंच। यद्यप्य शुद्धत्वेनाभिशंकेत किंचिदप्याहारादिक तत्सर्वश सर्वप्रकारमप्याहारोपकरणपूतिकर्म नोक्तुं न कल्पतइति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् (हणतमित्यादि) धर्मश्रद्धावता ग्रामेषु नगरेषु वा खेटखर्वटादिषु वा स्थानान्याश्रया सति विद्यते तत्र तत्स्थानाश्रित कश्चिद्धर्मोपदेशेन किल धर्मश्रद्धालुतया प्राण्युपमर्दकारिणा धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिका क्रिया कुर्यात्तेन च तथाभूतक्रियाया कर्ता किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येव पृष्टोवा तदुपरोधाद्भयाद्वा त प्राणिनोघ्नतं नानुजानीयात्। किंभूत सन्नात्मना मनोवाक्कायरूपेण गुप्तआत्मगुप्तस्तथा जितेंद्रियोवश्येंद्रिय सावद्यानुष्ठानं नानुमन्यते ॥ १६ ॥

तहागिरं समारप्भ, अत्थि पुन्नंति णोव ए॥ अहवा णत्थि पुन्नति,
एवमेय महप्भयं ॥ १७॥ दाणठ्याय जे पाणा, हम्मंति तस
थावरा॥ तेसिं सारखणठाए, तम्हा अत्थित्ति णोवए॥ १८॥

अर्थ–हवे ए स्वरूप विशेषे दीपावेछे अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुण्यछे किंवा नथी एम पुछ्या थका (तहा के०) ते साधु (गिरसमारप्भ के०) एवी वाणी कहे के आ समारंभ करवामा (अत्थिपुन्नतिणोवए के०) पुण्यछे एम पण मुख थकी कहे नही, (अहवा के०) अथवा (णत्थिपुन्नंति के०) एमा पुण्य नथी एम पण मुख थकी कहे नही (एवमेय महप्भयं के०) एम ए बने प्रकारने दोषना हेतु तथा महाभयना कारण जाणीने एवी भाषा नबोले ॥ १७ ॥ हवे जे कारणे एवी भाषा नबोले ते कारण कहेछे (दाणठ्यायजेपाणा के०) दानने अर्थे अनेक लोकने अन्नपाणी आपवा सारु जे प्राणी एटले जीव (तसथावरा के०) त्रस अने स्थावर (हम्मति के०) हणायछे (तेसिसारखणठाएके०) तेजीवोने राखवाने अर्थे (तम्हा

सामसमणुचरतस्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ॥ मस्सामि उच्छुपुप्फव निप्फलं मस्सं ॥१॥ तन्निष्फलत्वेच न मोक्षसनव । तथाचोक्तं । सत. ।द्वैपायननीति मे स्थितास्तृणावंधनवध्यमानमखिलं किंवेत्मि नेदं जगत् ॥ मृत्यो मुंच जराकोण शेषु मामाग्रहीरेहीत्यादरमतरेण नयत किनागमिप्याम्यहं॥१॥इत्यादि । ०२ पायपरित्यागादछिन्नप्रशस्तभावानुसंधनया निर्वाणानुसंधानमेव श्रेयइति ॥ ३४

संधए साहुधम्मंच, पाठांतरं (सद्दए साहुधम्मच) पावधम्मं णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू, कोहं माणंच पत्थए ॥ ३५ ॥ जे य बुद्धा अतिक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइ ठाणं, भूयाणं जगती जहा ॥ ३६ ॥

अर्थ-(सधएसाहुधम्मच के०) साधुनो धर्मजे क्षमादिक दश प्रकारनोछे म्यक् जाणीने वृद्धि करे एटले सम्यक् उपदेशीने वृद्धि पमाडे पाठांतरे (सद्दए म्मच के०) दश प्रकारनायतिधर्म उपर श्रद्धा राखे (पावधम्मंणिराकरे के० धर्म जे जीवोनो मर्दन करतो थको धर्मनेनावे प्रवर्त्ते तेने पापधर्म कहिए, तेने रे एटले तेनु उच्चापन करीने (उवहाणवीरिएभिक्खू के०) उपधान जे तप वलवीर्य फोरवतो एवो साधु (कोहमाणचपत्थए के०) क्रोध अने मानने प्रार्थ चशब्द थकी साधु वर्तमान काले एरीरीते सयम पाले ॥ ३५ ॥ ए धर्म देवे कह्यो किंवा अन्य जिनोए पण कह्यो ते कहेछे (जेयबुद्धाअतिक्कंता के० तीर्थंकर अतीत काले थया, तथा (जेयबुद्धाअणागया के०) जे तीर्थंकर काले थशे चशब्द थकी जे तीर्थंकर वर्त्तमान काले विराजमान छे, ते सर्वे ए ना कहेनार जाणवा (संतितेसिंपइठाणं के०) तेनो प्रतिष्ठान एटले अवलंबननं रूढ ते शांति एटले समस्त जीवनी दया जाणवी, कोनीपेरे तोके (जहाके०) (भूयाणजगती के०) समस्त जीवोने आधारभूत पृथवीरूप स्थानक छे, तेम देवोने जीवदया रूप शांतिनु स्थानक ते [illegible] ॥

ति येच निषेधयति प्रतिषेधयति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं आजीविकाविघ्नं कुर्वंति २०

॥ टीका-यद्येवं नास्तिपुण्यमिति ब्रूयात्तदेतदपि न ब्रूयादित्याह । (जेसिमित्यादि) येषां जंतूनां तदन्नपानादिकं किल धर्मबुध्योपकल्पयति तथाविधं प्राण्युपमर्ददोषडुष्टं निष्पादयति तन्निषेधेच यस्मात्तेषामाहारपानार्थिनां तल्लाभांतरायोविघ्नोनवेत्तदन्नावेन तु पीड्येरंस्तस्मात्कूपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यमित्येतदपि नोवदेदिति ॥ १९ ॥ एनमेवार्थं पुनरपि समासतः स्पष्टतरं बिजणिषुराह । (जेयदाणमित्यादि) ये केचन प्रपासत्रादिकं दानं बहूनां जंतूनामुपकारीति कृत्वा प्रशंसति श्लाघते ते परमार्थानभिज्ञाः प्रभूततरप्राणिनां तत्प्रशंसा द्वारेण वधं प्राणातिपातमिछंति । तद्दानस्य प्राणातिपातमंतरेणानुपपत्ते । येपिच किल सूक्ष्मधियोवयमित्येवं मन्यमानाआगमसद्भावानभिज्ञाः प्रतिषेधति निषेधयति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं वर्तनोपायविघ्नं कुर्वंतीति ॥ २० ॥

डुहर्उवि ते ण नासंति, अछिवा नछिवा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाण, निव्वाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निव्वाणं परमं बुद्धा, णक्खत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते, निव्वाणं संधए मुणी॥२२॥

अर्थ-(अछिवानछिवा के०) अस्ति अथवा नास्ति एम न कहे एटले पुण्यछे किंवा पुण्य नथी एवी (डुहर्उवि के०) बन्ने प्रकारनी वाणीने (पुणोके०) वली (तेके०) तेसाधु (णनासंति के०) नापेनही, केमके ए थकी (रयस्सके०) कर्मरूप रज तेनो (आय के०) लान तेने (हिच्चाके०) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे, (निव्वाणपाउणंतितेके०) ते साधु निर्वाण प्रत्ये पामे, एटले अनवद्य नाषक एवो साधु संसाररहित थाय ॥ २१ ॥ (निव्वाणपरमबुद्धा के०) निर्वाण एटले मोक्ष तेने परम प्रधान जाणे, (णक्खत्ताणवचंदमाके०) नक्षत्रचंद्रमानी पेरे, जेम नक्षत्रमां चंद्रमा प्रधानछे. तेम तत्वना जाण पुरुष सर्व गतिर्उमां मुक्तिने प्रधान कहेछे (तम्हाके०) तेमाटे (सदाजएदंतेके०) संयमवंत पुरुष ते निरंतर प्रयत्नवान इंद्रियनुं दमन करनार थको (निव्वाणसंधए मुणीके०) एवो साधु मोक्षने साधे अर्थात् सर्व क्रिया मोक्षने अर्थे करे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-द्विधापि ते पुनः साधवोन नाषंते अस्ति पुण्यं नास्तिवा इति किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौनमेवाश्रयणीयं । निर्बंधेत्वस्माकं निर्दोषाहारः कल्पते । एवंविधविषये साधूनामधिकारएव नास्तीति वक्तव्यं । यडुक्तं । सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं, व्युछिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थाभवंति ॥ शोषं नीते जलौघे दिन

र्यवान कर्मविदारवाने सूरवीर, दीठो एषणीक आहार ग्रहण करवाने विषे विचरे (नि वुमेकालमाकखी के०) तथा निवृत्त उपशांत कषाय वालो एवो छतो मरण कालसु धी संयमने वाछे (एवकेवलिणोमय के०) एम केवल ज्ञानीउंनो मतछे अने तेज केवल ज्ञानीउंनो प्रकाश्यो मार्ग श्रीमहावीर देव कहेछे, पण महारी बुद्धिये हु केतो नथी ति बेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३८ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधने विषे मो क्षमार्गनामे एकादशमा अध्ययनो अर्थ समाप्त थयो ॥

॥ दीपिका—अथ त साधु प्रतिपन्नव्रत उच्चावचा शुभाशुभा स्पर्शा परीषहोप सर्गा स्पृशेयु पीडयेयु । सच साधुस्तै पीडितोन विहन्यात् न संयमाच्चलेत् । यथा वातेन वायुना महागिरिर्मेरुर्न चलेत् । परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासवशाद्विधेय । यथा क श्चिद्गोपस्तदहर्जात तर्णकमुत्पाटय गवांतिक नयति आनयति च ततोसौ क्रमेण प्रत्यह वर्धमानमपि वत्समुत्पाटयन्नभ्यासवशाद्द्विवर्षत्रिवर्षमपि तमुत्पाटयति । एव साधुरप्यभ्या सात्परीषहोपसर्गजय विधत्ते ॥३७॥ ससवृत साधुर्महाप्रज्ञ सम्यग्दर्शनज्ञानवान् धीर परीषहादिनिरक्षोभ्य परेण दत्ते आहारादिके एषणा चरेत् त्रिविधयैषणया युक्त संयमं चरेत् तथा निर्वृत शीतीभूतकाल मृत्युकाल यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया यत्पूर्वोक्त त त्केवलिन सर्वज्ञस्य मतमिति । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाहेति ॥३८॥ इत्ये कादश मार्गाध्ययन समाप्त ॥

॥ टीका—प्रतिपन्नभावमार्गेण च यद्विधेय तद्दर्शयितुमाह । (अहणमित्यादि) अथ मार्गप्र तिपत्त्यनतर साधु प्रतिपन्नव्रत सत स्पर्शा परीषहोपसर्गरूपाउच्चावचागुरुलघवोनानारू पात्रा स्पृशेयु । सच साधुस्तैरभिद्रुत संसारस्वभावमपेक्षमाण कर्मनिर्जराच न तैरनुकूल प्रतिकूलैर्विहन्यात् नैव संयमानुष्ठानान्मनागपि विचलेत्किमिव महावातेनेव महागिरिर्मेरु रिति। परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासक्रमेण विधेयोऽभ्यासवतोहि दुष्करमपि सुकर भवति। अ दृष्टांत । तद्यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्क्षिप्य गवांतिके नयत्यानयति वा ततोसा वनेनैव क्रमेण प्रत्यह प्रवर्द्धमानमपि वत्समुत्क्षिपन्नभ्यासवशाद्विहायनं त्रिहायणमप्यु त्क्षिपत्येव साधुरप्यभ्यासात् शनै शनै परिषहोपसर्गजय विधत्तइति ॥३७॥ साप्रतमध्यय नार्थमुपसजिहीर्षुरुक्तशेषमधिकृत्याह । (सवुडेइत्यादि) सएव साधु संवृताश्रवद्वारत या संवरसंवृतोमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञ सम्यग्दर्शनज्ञानवांस्तया धीर्बुद्धिस्तया राज तइति धीर परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा सएवभूत सन् परेण दत्ते सत्याहारादिके एषणां चरेत्त्रिविधयाप्येषणया युक्त सन् संयममनुपालयेत्तथा निर्वृत कषायोपशमाच्छीतीभूतका ल मृत्युकाल यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया प्राक् प्रतिपादित तत्केवलिन सर्वज्ञस्य तीर्थक

अर्थ-(बुज्झमाणाण पाणाण के०) संसार समुद्रमां विचरता प्राणी (किच्चंताण सकम्मणा के०) पोतपोताना कर्मकरी छेदन भेदननी कदर्थना पामता एवा असरण जीवोने पण (आघातिसाहुतं दीव के०) श्रीतीर्थंकर गणधरनो कहेलो आश्वासभूत द्वीप समान एवो सम्यक् दर्शनादिक धर्म जाणवो, (पतिठेसापवुच्चई के०) एने ससार समुद्रमा परिभ्रमणनो टालनार कहिए ॥२३॥ एवा धर्मनो प्ररुपनार कोण ते कहेछे (आयगुत्तेसयादत्तेके०) आत्माजेनो गुप्तछे ते आत्मगुप्त कहिए तथा सदादात एटले सर्वकाल पाचेन्द्रियनो सवर करनार (छिन्नसोए के०) जेणे ससारना स्रोत छेद्याछे (अणासवेके०) अनाश्रव एटले प्राणातिपातादिक आश्रव रहित (जेधम्म सुद्धमरकाति के०) एवो जे होय ते सुद्धो धर्म कहे ते धर्म केवोछे, तो के (पडिपुन्न के०) प्रतिपूर्ण सर्व विर तिरूप तथा (अणाल्लिस के०) निरुपमछे एटले एवो धर्म अन्य दर्शनीछेना कोइपण शास्त्रमा कह्यो नथी माटे ए धर्म उपमारहित छे ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-संसारसागरे मिथ्यात्वकषायादिभिर्वाह्यमानाना समुख नीयमानाना तथा स्वकर्मभि कृत्यमानाना पीडयमानाना प्राणिना परोपकारनिरतस्तीर्थंकारणतस्तीर्थंकरो गणधरादिर्वा साधु शोभन द्वीपमाश्वासभूतमाख्याति । यथा समुद्रपतितस्य जतो क श्चित्सुखार्थं द्वीप वक्ति तथा ससारभ्रमणविश्रामहेतु सम्यग्दर्शनादिक जिनादिर्वक्ति एपा ससारभ्रमणविरतिरूपा प्रतिष्ठाप्रोच्यते तज्ज्ञै ॥ २३ ॥ आत्मा गुप्तोयस्य सआत्मगुप्त सदातोवशीकृतेन्द्रिय । तथा छिन्नानि त्रोटितानि ससारस्रोतासि येन सछिन्नस्रोतानिरा श्रव. कर्मबधरहितएवभूतोय सशुद्ध निर्दोषं धर्ममाख्याति कथयति । किंभूत धर्मं प्र तिपूर्णं सर्वविरतिरूपमनीदृशमनन्यसदृश ॥ २४ ॥

॥ टीका-किचान्यत् । (वुज्झमाणाण इत्यादि) ससारसागरस्रोतोभिर्मिथ्यात्वकषा यप्रमादादिकैरुह्यमानाना तदभिमुख नीयमानाना तथा स्वकर्मोदयेन निकृत्यमानानाम शरणानामसुमता परहितैकरत कारणवत्सलस्तीर्थकृदन्योवा गणधराचार्यादिकस्तेषामा श्वासभूत साधु शोभन द्वीपमाख्याति।यथा समुद्रात पतितस्य जतोर्जलकल्लोलाकुलित स्य मुमूर्षोरतिश्रातस्य विश्रामहेतु द्वीप कश्चित्साधुर्वत्सलतया समाख्यात्येव तथाभूतं द्वीप सम्यग्दर्शनादिक ससारभ्रमणविश्रामहेतु तीर्थंपरतीर्थिकैरनाख्यातपूर्वमाख्यात्येव च कृत्वा प्रतिष्ठान प्रतिष्ठा ससारभ्रमणविरतिलक्षणैषा दर्शनाद्यवाप्तिसाध्या मोक्षप्राप्ति प्रकर्षेण तत्वज्ञैरुच्यते प्रोच्यतइति ॥ २३ ॥ किंभूतोऽसावाश्वास द्वीपोभवति कीदृग्वि धेन वाऽसावाख्यायतइत्येदाह । (आयगुत्ते इत्यादि) मनोवाक्कायैरात्मा गुप्तोयस्य स

कान्युपगमसमूहरूपाणि इमानि यानि प्रावाडुका परतीर्थिका पृथक् पृथक् वदंति। क्रियामस्तीत्यादिका वदतीति क्रियावादिन १ अक्रिया नास्तीत्यादिका वदंतीत्यक्रिया वादिन २ तृतीयवैनयिका ३ चतुर्थास्त्वज्ञानिका ४ इमानि चत्वारि समवसरणान्युच्यंते ॥ १ ॥ अथैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापिनस्तानेवादावाह । (अन्नाणीति) अज्ञानिकास्तावदादौ प्रदर्श्यते । अज्ञानिका किल वय कुशलाइति वादिनोपि सस्तुताअसवुद्धा अतएव विचिकित्सा चित्तशुद्धिश्चित्तन्नातिस्ता न तीर्णानातिक्रांता । तथाहि । केचित्सर्वज्ञ मन्यंते केचित्त निषेधति एके सर्वगतमात्मान वदत्यन्ये देहमात्रमपरे अगुष्ठपर्वमात्र । केचित् श्यामाकतडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्त्त हृदयमध्यवर्तिन ललाटस्थितमित्यादि । एषामेकवाक्यता कथ स्यात् । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्ति य द्वाक्य प्रमाणीक्रियते । तथा ज्ञानवता प्रमादोबहुदोष । ततोवरमज्ञानमेवेति वदतश्चित्तन्नाति नातिक्राताअकोविदा सम्यक्परिज्ञानविकलाअकोविदेन्य स्वशिष्येन्यश्चाहु । तथा तेऽननुविचित्य अविचित्य नाषणान्मृषाऽसत्य वदति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तमेकादशमध्ययन । साप्रत द्वादशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंध । इहानतराध्ययने मार्गोनिहित सच कुमार्गव्युदासेन सम्यग्मार्गता प्रतिपाद्यतेऽत कुमार्गव्युदास चिकीर्षुणा तत्स्वरूपमवगंतव्यमित्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमिदमध्ययनमायातमस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि । तत्रोपक्रमातर्गतोर्थाधिकारोऽय । तद्यथा । कुमार्गाभिधायिना क्रियाक्रियाज्ञानिवैनयिकाना चत्वारि समवसरणानीह प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे समवसरणमित्येतन्नामनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । समवसरणमिचउक्कं सचित्ताचित्तमीसग दव्वे ॥ खेत्तमि जमि खेत्ते,काले ज जमि कालमि ' ॥१ ७ ॥ (समवसरणमित्यादि) समवसरणमिति सृगतावित्येतस्य धातो समवोपसर्गपूर्वस्य ल्युडतस्य रूप । सम्यगेकीनावेनावसरणमेकत्रगमन मेलापक समवसरण तस्मिन्नपि केवल समार्थौ षड्विधोनामादिकोनिक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविषय पुन समवसरण नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्त सचित्ताचित्तमिश्रनेदान्त्रिविध । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदापदनेदात्रिविधमेव । तत्र द्विपदाना साधुप्रनृतीना तीर्थकृज्जन्मनिष्क्रमणप्रदेशादौ मेलापक । चतुष्पदादीना गवादीना निपानप्रदेशादौ । अपदाना तु वृक्षादीना स्वतोनास्ति समवसरण विवक्षया तु काननादौ नवत्यपि । अचित्ताना तु द्व्यणुकाद्यन्नादीना तथा मिश्राणा सेनादीना समवसरणसन्नावोऽवगतव्यइति । क्षेत्रसमवसरण तु परमार्थतोनास्ति विवक्षया तु यत्र द्विपदादय समवसरति व्याख्यायते च समवसरण यत्र तत्क्षेत्रप्राधान्यादिदमुच्यते । एव कालसमवसरणमपि द्रष्टव्यमिति । इदानीं नाव

घोरिपु' प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तथा ते कुतीर्थिकाध र्माधर्मविवेके ऽखेदज्ञाश्चनिपुणाश्चसमाहिताश्च समाधेर्मोक्षमार्गाद्दूरस्थाऽस्त्यर्थ ॥ २६ ॥

॥ टीका–एवनूतधर्मव्यतिरेकिणा दोपानिधित्सयाऽह । (तमेवेत्यादि) तमेवनूत शुद्ध प रिपूर्णमनीदृश धर्ममजानानाश्चप्रबुद्धाश्चविवेकिन पडितमानिनोवयमेव प्रतिबुद्धाधर्मेत त्वमित्येव मन्यमानानावसमाधे सम्यग्दर्शनाख्याद्दते पर्यंते विदूरे वर्ततऽति तेच सर्वेपि प रतीर्थिकाइष्टव्याइति ॥ २५ ॥ किमिति ते तीर्थिकाभावमार्गरूपात्समाधेर्दूरे वर्ततइत्याशक्या ह।(तेयबीओदगमित्यादि) तेच शाक्यादयोजीवाजीवानभिज्ञतया बीजानि शालिगोधूमादी नि तथा शीतोदकमप्राशुकोदक ताश्चोदिश्य तन्नक्तेर्यदाहाराद्कि कृत निष्पादित तत्सर्वमवि वेकितया शाक्यादयोभुक्त्वाऽन्यवहृत्य पुन सातर्द्धिरसगौरवासक्तमनस सघनक्तादिक्रिय या तदवाप्तिकृते आर्त ध्यान ध्यायति । नहैहिकसुखैपिणा दासीदास धनधान्यादिपरिग्रहव ता धर्मध्यान नवतीति । तथाचोक्तं । ग्रामक्षेत्रगृहादीना गृहक्षेत्रजनस्य च ॥ यस्मिन्परिग्र होद्दष्टो, ध्यान तत्र कुत शुभमिति । तथा । मोहस्यायतन धृतेरपचय शाते प्रतीपो विधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवन पापस्य वासोनिज ॥ डुखस्य प्रनव सुखस्य निध नं ध्यानस्य कष्टोरिपु, प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तदेव पच नपाचनादिक्रियाप्रवृत्ताना तदेव चानुप्रेक्षमाणाना कुत शुभध्यानस्य सनवऽति । अपि च । ते तीर्थिका धर्माधर्मविवेके कर्तव्ये अखेदज्ञाश्चनिपुणा । तथाहि । शाक्यामनोज्ञाहा रवसतिशय्यासनादिक रागकारणमपि शुभध्याननिमित्तत्वेनाध्यवस्यति । तथाचोक्त । म णुसुनोयण नुच्चेत्यादि । तथा मास कदिकमित्यपदिश्य सज्ञातरसमाश्रयणान्निर्दोप म न्यते बुद्धसघादिनिमित चारन निर्दोपमिति । तडुक्त । मसनिवत्ति काउं,सेवइ दतिक्कगंतिय णिन्नेया ॥ ऽयवइक्कणारन, परवयएसा कुणऽ बालो ॥ १ ॥ नचैतावन्निर्दोपता । नहि लू तादिक शीतलिकाद्यभिधानातरमात्रेणान्यथात्व नजते विप वा मधुरकाभिधानेनेति । ए वमन्येपामपि कापिलादीनामाविर्भावतिरोभावाभिधानान्या विनाशोत्पादावभिदधताम नैपुण्यमाविष्करणीय । तदेव ते वराका शाक्यादयोमनोदिष्टभोजिन सपरिग्रहतयार्त ध्यायिनोऽसमाहितामोक्षमार्गाख्याद्भावसमाधेरसवृततया दूरेण वर्ततइत्यर्थ ॥ २६ ॥

जहा ढंकाय कंकाय कुललामगुकासिहा ॥ मच्चेसणं झियायति, ध्याणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवतु समणाएगे, मिच्छद्दिट्ठी अ णारिया ॥ विसएसण झियायति, ककावा कलुसाहमा ॥ २८ ॥

प्यसद्भूतार्थप्रतिपादनान्मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्येकांतेन जीवास्तित्वप्रतिषेधे नास्तीत्येतस्यापि प्रतिषेधस्याभावस्तदभावाच्च सर्वास्तित्वमनिवार्यमिति ॥ तथा न नमज्ञानं तद्विद्यते येषां ते ज्ञानिनस्ते ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येव वदंत्येतेपि [illegible] तथा ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येतदपि न ज्ञानमृतेऽभणितु पार्यते तदभिधानाच्चावश्य भ्युपगत तैरिति । तथा वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावा[illegible] प्रयोयतोन ज्ञानक्रियाभ्यामंतरेण मोक्षावाप्तिरिति । एषा च क्रियावाद्यादीना स्वरूपं निराकरण चाचारटीकाया विस्तरेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते । साप्रतमेतेषां सख्यानिरूपणार्थमाह । " असियसय किरियाण, अकिरियाणं च होइ चुलसीति ॥ [illegible] णियसत्तठी, वेणइयाणं च बत्तीसा " ॥ २१ ॥ (असियेत्यादि) क्रियावादिनामशी क शत नवति तच्चानया प्रक्रियया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्था परिपाट्या ते । तदध स्वत परतश्चति भेद द्वय ततोप्यधोनित्यानित्यभेद द्वयं ततोप्यधस्तात्परिपाट्य कालस्वभावनियतीश्वरात्मपदानि पंच व्यवस्थाप्यते । ततश्चैव चारणिकाप्रक्रम [illegible] था । अस्ति जीव स्वतोनित्य कालत । तथाऽस्ति जीव स्वतोऽनित्य कालतएव । व परतोपि भगद्वय । सर्वेपि च चत्वार कालेन लब्धा । स्वभावनियतीश्वर [illegible] पि प्रत्येक चत्वारएव लभंते । ततश्च पचापि चतुष्ककाविंशतिर्भवंति । साथि जीवपदा र्थेन लब्धा । एवमजीवादयोप्यष्टौ प्रत्येक विंशतिं लभते । ततश्च नवविंशतयोमीलि ता क्रियावादिनामशीत्युत्तरशत भवतीति । इदानीमक्रियावादिना नसत्येव जीवादय पदार्थाइत्येवमभ्युपगमवतामनेनोपायेन चतुरशीतिरवगतव्या । तद्यथा । जीवादीन् प दार्थान् सप्तानिलिख्य तदध स्वपरभेदद्वय व्यवस्थाप्यं । ततोप्यध कालयदृच्छानियति स्वभावेश्वरात्मपदानि षड्व्यवस्थाप्यानि । भगकानयनोपायस्त्वय । नास्ति जीव स्वत कालत । तथा नास्ति जीव परत कालत । एव यदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मनि प्र त्येक द्वौद्वौ भगकौ लभ्येते । सर्वेपि द्वादश । तेऽपि च जीवादिपदार्थसप्तकेन गुणिता श्चतुरशीतिरिति । तथाचोक्त । कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मतश्चतुरशीतिः । नास्तिक वादिगणमते न सति भावा स्वपरसस्था । साप्रतमज्ञानिकानामज्ञानादेव विवक्षितका र्यसिद्धिमिच्छता ज्ञान तु सदपि निष्फलं बहुदोषत्वाच्चेत्येवमभ्युपगमवता सप्तषष्टिरनेनो पायेनावगतव्या । जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् परिपाट्या व्यवस्थाप्य तदधोऽमी सप्त भंगका सस्थाप्या । सत् असत् सदसत् अवक्तव्य सदवक्तव्य असदवक्तव्यं सद सदवक्तव्यमिति । अभिलापस्त्वय । सन् जीव कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन १ असन् जीव कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन, २ सदसन् जीव कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ३ अव क्तव्योजीव कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ४ सदवक्तव्योजीव कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ५ अ

अनेक प्रकारेकरी जन्ममरणछेदन नेदनादिक डुखनी वेदना पामे. ॥ २९ ॥ (जहाके०) जेम (जाइअंधोके०) जात्यंध पुरुष (आसाविणिके०) शतछिद्र सहित एवी (नावके०) नावने विषे (डुरुहिया के०) वेसीने (इछति पारमागंतुके०) समुद्र तरी पार पाम वानी इछा करे पण तेवी नावा थकी समुद्रनो शीरीते पार पामे ? (अंतरायविसीयती के०) ते पुरुष अंतराले विषीदति एटले वचमाज बुडे, परंतु पार पामे नही ॥ ३० ॥

॥ दीपिका– शुद्धं निर्दोषं मोक्षमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इह संसारे एके शाक्यादयोडुर्मतयउन्मार्गगताडुःखं घातं च मृतिं ते शाक्यादयस्तया तेन प्रकारेण एषं ति अन्वेषयति डुःखमरणे शतशः प्रार्थयतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिद्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। न चासौ छिद्रनावारूढः पारगतः स्यात् किंतर्हि अंतराले जलमध्यएव विषीदति निमज्जति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (शुद्धमित्यादि) शुद्धमवदातं निर्दोषं मार्गं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं कुमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इहास्मिन्संसारे मोक्षमार्गप्ररूपणप्रस्तावे वा एके शाक्यादयः स्वदर्शनानुसारेण महामोहाकुलितांतरात्मानोडुष्टा पापोपादानतया मतिर्येषां ते डुष्टमतयः सतउन्मार्गेण संसारावतरणरूपेण गता प्रवृत्ताउन्मार्गगताडुःखं यतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्मासातोदयरूपं वा तद्दुःखं घातं चानेकशस्तथा सन्मार्गविराधनतया उन्मार्गगमनं चैषंत्यन्वेषयति। डुःखमरणे शतशः प्रार्थयतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ शाक्यादीनां चापायं दिदर्शयिषुस्तावद्दृष्टांतमाह । (जहाआसाविणिमित्यादि) यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिद्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। नचासौ सछिद्रतया पारगामी नवति किंतर्ह्यंतरालएव जलमध्यएव विषीदति निमज्जतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एवंतु समणा एगे, मिछद्दिठी अणारिया ॥ सोयं कसिणमाव न्ना, आगंतारो महप्भयं ॥ ३१ ॥ इमंच धम्ममादाय, कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं, अत्तत्ताए परिव्वए॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत अन्यतीर्थिक साथे जोडेछे (एवंतुसमणाएगे के०) एरीते कोइ एक अन्य दर्शनी श्रमण (मिछदिठी अणारिया के०) मिथ्यादृष्टी अनाचारी विपरीत मार्गना उपदेशक विपरीत बुद्धिना धणी ते (सोयकसिणमावन्ना के०) श्रोत एटले कर्मनो आश्रव तेने विषे संपूर्ण पोहोच्या थका (आगंतारोमहप्भयं के०) आवते काले महाजय एटले अत्यंत बीहामणा एवा नरकादिकना डुःख पामे ॥३१॥ (इमंचध म्ममादाय के०) एम सर्वलोक प्रसिद्ध छकाय जीवोनो वाछल कारी एवो श्रुत चारित्र

शकालादीनां च गतिस्थित्यवगाहपरत्वापरत्वादिस्वरूपापादनादिति । तथा चोक्तं । क' कंटकानामित्यादि । तथा नियतिरपि कारणत्वेनाश्रीयते । तथातथा पदार्थाना नियते रेव नियतित्वात् । तथाचोक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेणेत्यादि । तथा पुरा रुतं यच्च शुनाशुनमिष्टानिष्टफलकारण । तथा चोक्त । यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मण फलं निधान स्थमिहोपतिष्ठते ॥ तथातथा पूर्वरुतानुसारिणी प्रदीपहस्तेव मति प्रवर्तते ॥ १ ॥ तथा । स्वकर्मणा युक्तएव सर्वोह्युत्पद्यते जन ॥ सयथाऽरुष्यते तेन न यथा स्वयमि च्छतीत्यादि । तथा पुरुषकारोपि कारणं यस्मान्नपुरुषकारमत्तरेण किंचित्सिध्यति । तथा चोक्त । न दैवमिति संचित्य त्यजेदुद्यममात्मन ॥ अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्य प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ तथा । उद्यमाच्चारुचित्राणि नरोनइाणि पश्यति ॥ उद्यमात्कृमिकीटोपि निनत्ति महतोडुमान् ॥ २ ॥ तदेव सर्वानपि कालादीन् कारणत्वेनाभ्युपगच्छन् तथात्मपुण्यपापपरलोकादिकं चेच्छन् क्रियावादी सम्यग्दृष्टि त्वेनाभ्युपगतव्य । शेषकास्तु वादाअक्रियावादाज्ञानवादवैनयिकवादामिथ्यावादाइ त्येव इष्टव्या । तथाहि । अक्रियावाद्यत्यतनास्तिकोऽध्यक्षसिद्धं जीवाजीवादिपदा र्थजातमपन्हुवन् मिथ्यादृष्टिरेव नवति । अज्ञानवादी तु सति मत्यादिके हेयोपादे यप्रदर्शके ज्ञानपचके ऽज्ञानमेव श्रेयइत्येव वदन् कथं नोन्मत्त स्यात्तथा विनयवाद्य पि विनयादेव केवलात् क्रियासाध्या सिद्धिमिच्छन्नपकर्णयितव्य । तदेव विपरीतार्था निधायकाएते मिथ्यादृष्टयो ऽवगतव्या । ननुच क्रियावाद्यप्यशीत्युत्तरशतनेदोनवति तत्रतत्र प्रदेशे कालादीनभ्युपगच्छन्नेव मिथ्यावादित्वेनोपन्यस्तस्तत्कथमिह सम्यग्दृष्टित्वे नोच्यतइति । उच्यते । सतत्रास्त्येव जीवइत्येव सावधारणतयाऽभ्युपगम कुर्वन् का लएवैक सर्वस्यास्य जगत कारण तथा स्वनावएव नियतिरेव पूर्वकृतमेव पुरुषकारएवे त्येवमपरनिरपेक्षतयैकातेन कालादीना कारणत्वेनाश्रयणान्मिथ्यात्व । तथाहि । अ स्त्येव जीवइत्येवमस्तिना सह जीवस्य सामानाधिकरण्यात् । यद्यदस्ति तत्तज्जीवइति प्रा प्तमतोनिरवधारणपक्षसमाश्रयणादिह सम्यक्त्वमनिहित । तथा कालादीनामपि स मुदिताना परस्परसव्यपेक्षाणा कारणत्वेनेहाश्रयणात्सम्यक्त्वमिति । ननुच कथं कालादीना प्रत्येक निरपेक्षाणा मिथ्यात्वस्वनावत्वे सति समुदितानां सम्यक्त्वसद्भाव । नहि यत्प्रत्येक नास्ति तत्समुदायेपि नवितुमर्हति सिकतातैलवत् । नैतदस्ति प्रत्येक प्रत्येक पद्मरागादिमणिष्वविद्यमानापि रत्नावली समुदाये नवती दृष्टा । नच दृष्टे ऽनुपपन्नं नामेति यत्किंचिदेतत् । तथाचोक्त । कालो सहावणियई, पुव्वकय पुरिसकारणे गंता ॥ मिछत्त ते चेव उ, समासउ होति सम्मत्तं ॥ १ ॥ सव्वे विय कालाइ इय समुदा येण साहगा नणिया ॥ जुज्जुतियएमेवय, सम्म सव्वस्स कज्जस्स ॥ २ ॥ नहि काला

विरए गामधम्मेहिं जे केइ जगई जगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए, थामं कुव्वं परिव्वए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च, तं परिन्नाय पंमिए ॥ सव्वमेयं णिराकिच्चा, णिव्वाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

अर्थ–विरति साधु संयमानुष्ठानने शीरीते पाले ते उपर कहेठे (विरएगामधम्मेहिंके०) ग्रामधर्मजे शब्दादिक विषय ते थकी विरति थको अने (जेकेइजगईजगा के०) जेका इ जगत्रमांहे त्रस अने स्थावर जीवछे (तेसिंअत्तुवमायाए के०) तेने पोताना आत्म तुल्यनी उपमाये देखीने तेने राखवाने अर्थे (थामकुव्वं के०) बलवीर्य फोरवतो थको (परिव्वए के०) संयम पाले ॥ ३३ ॥ अइमाणचमायच के०) जे कारणे मान जे छे ते चारित्रने अतिक्रमे छे तेमाटे तेने अतिमान कहिए एना साथे क्रोध पण लेवो एम ज अतिमाया अने चशब्द थकी लोज पण लेवो (तं के०) ते चार कषायने (पंमिए के०) पंमित विवेकी जन होय ते एने संयमना शत्रु (परिन्नाय के०) ज्ञपरिज्ञाये करी जाणीने (सव्वमेयणिराकिच्चा के०) एसर्व कषायने संसारनु कारण जाणीने तेने प्रत्या ख्यान परिज्ञाये करी निराकरीने (णिव्वाणसंधएमुणीके०) साधु मोक्षने संधे वांढाकरे

॥ दीपिका–ग्राम्यधर्माः शब्दादिविषयास्तेभ्योविरताः संत्येके केचन जगति जगाः प्राणिनोजीवितार्थिनस्तेषामात्मोपमया तद्रक्षणाय स्थामं सामर्थ्यं कुर्वन् परिव्रजेत्संयमे ॥ ३३ ॥ अतिमानं च मायां चशब्दात्क्रोधलोजौ गृह्येते । एवं कषायव्रतं परिज्ञाय पंमितः सर्वमेतं जवहेतुं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत् मोक्षार्थं प्रशस्तजावानुगतः स्यात् । सतिच कषाये न संयमः सफलतां याति । यतः । सामन्नमणुचरतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति । मन्नामि उच्छुपुप्फंच, निप्फलं तस्स सामन्नं इति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–कथं संयमानुष्ठाने परिव्रजेदित्याह । (विरएइत्यादि) ग्रामधर्माः शब्दादयो विषयास्तेभ्योविरतामनोज्ञेतरेष्वरक्तद्विष्टाः सत्येके केचन जगति पृथिव्यां संसारोदरे (जगाइति) जंतवोजीवितार्थिनस्तेषां दुःखद्विषामात्मोपमया दुःखमनुत्पादयन्तद्रक्षणे सामर्थ्यं कुर्यात्कुर्वंश्च संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ ३३ ॥ संयमविघ्नकारिणामपनयनार्थमाह । (अइमाणचेत्यादि) अतीव मानोऽतिमानश्चारित्रमतिक्रम्य योवर्त्तते चकारादेतद्देश्य क्रोधोपि परिगृह्यते । एवमतिमाया चशब्दादतिलोज च तमेवजूतं कषायव्रतं संयमपरिपंथिनं पंमितोविवेकी परिज्ञाय सर्वमेनं संसारकारणजूतं कषायसमूहं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत्सति च कापायकदंबके नसम्यक् संयमः सफलतां प्रतिपाद्यते । तदुक्तं ।

द्वाक्यं प्रमाणीक्रियेत । न चासौ विद्यमानोप्युपलक्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिना । नासर्वज्ञ सर्वं
जानातीति वचनात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञान
ज्ञेयविज्ञानशून्यैर्विज्ञायते कथ॥१॥ नच तस्य सम्यक् तदुपायपरिज्ञानाभावात्सभव संभवा
भावश्चेतरेतराश्रयत्वात्।तथाहि। न विशिष्टपरिज्ञानमृते तदवाप्त्युपायपरिज्ञानमुपायमंतरे
ण नचोपेयस्य विशिष्टपरिज्ञानस्यावाप्तिरिति। नच ज्ञान ज्ञेयस्य स्वरूप परिछेत्तुमलं । त
थाहि। यत्किमप्युपलभ्यते तस्यार्वाग्भध्यपरभागैर्नोध्य । तत्रार्वाग्भावस्यैवोपलब्धेर्नेतर
योस्तेनैव व्यवहितत्वात् । अर्वाग्भागस्यापि भागत्रयकल्पनात्तत्सर्वारातीय भागपरिकल्प
नया परमाणुपर्यवसानता परमाणोश्च स्वाभाविकविप्रकृष्टत्वादर्वाग्दर्शिना नोपलब्धि
रिति । तदेव सर्वज्ञस्याभावादसर्वज्ञस्य च यथावस्थितवस्तुस्वरूपापरिछेदात्सर्ववादि
ना च परस्परविरोधेन पदार्थस्वरूपाभ्युपगमात् यथोत्तरपरिज्ञानिना प्रमादवता बहुतर
दोषसंभवादज्ञानमेव श्रेय । तथाहि । यद्यज्ञानवान् कथचित्पादेन शिरसि हन्यात्
तथापि चित्तशुद्धेर्न तथाविधदोषानुषगी स्यादित्येवमज्ञानिनएववादिन सतोऽस
बद्धानचैव विधा चित्तविप्लुतिं वितीर्णाइति । तत्रैव वादिनस्ते अज्ञानिकाश्रकोविदा
अनिपुणा सम्यक् परिज्ञानविकलाइत्यवगतव्या । तथाहि । यत्तैरभिहित ज्ञानवादि
न परस्परविरुद्धार्थवादितया न यथार्थवादिनइति तत्रचलसर्वज्ञप्रणीतागमाभ्युपगम
वादिनामयथार्थवादित्व।नचाभ्युपगमवादाएव बाधायै प्रकल्प्यते । सर्वज्ञप्रणीतागमाभ्यु
पगमवादिना तु न कचित्परस्परतोविरोध सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि । प्रक्षी
णाऽशेषावरणतया रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामभावान्न तद्वाक्यमयथार्थमित्येव
तत्प्रणीतागमवता न विरोधवादित्वमिति । ननुच स्यादेतद्यदि सर्वज्ञ कश्चित्स्यान्नचासौ
संभवतीत्युक्त प्राक्।सत्यमुक्तमयुक्त तूक्त।तथाहि । यत्तावदुक्त नचासौ विद्यमानोप्युपल
क्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिभिस्तदयुक्त।यतोयद्यपि परचेतोवृत्तीना दुरन्वयत्वात्सरागावीतरागाइव चेष्ट
ते वीतरागा सरागाइवेत्यत प्रत्यक्षेणानुपलब्धिस्तथापि संभवानुमानस्य सद्भावात्तद्बाध
कप्रमाणाभावाच्च तदस्तित्वमनिवार्य । संभवानुमान त्विदं व्याकरणादिना शास्त्राभ्यासेन
सक्रियमाणाया प्रज्ञायाज्ञानातिशयोज्ञेयावगम प्रत्युपलब्धस्तदत्र कश्चित्तथाभूताभ्या
सवशात्सर्वज्ञोपि स्यादिति । नच तदभावसाधक प्रमाणमस्ति । तथाहि । न तावदर्वा
ग्दर्शिनि प्रत्यक्षेण सर्वज्ञाभाव साधयितु शक्यस्तस्यहि तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यत्वादशू
न्यत्वाभ्युपगमेच सर्वज्ञत्वापत्तिरिति । नाप्यनुमानेन तदव्यभिचारिलिंगाभावादिति । ना
प्युपमानेन सर्वज्ञाभाव साध्यते । तस्य सादृश्यबलेन प्रवृत्ते । नच सर्वज्ञाभावे साध्ये
तादृग्विध सादृश्यमस्ति येनासौ सिध्यतीति । नाप्यर्थापत्त्या तस्या प्रत्यक्षादिप्रमा
णपूर्वकत्वेन प्रवृत्ते । प्रत्यक्षादीनां च तत्साधकत्वेनाप्रवर्तमानात्तस्याप्यप्रवृत्ति । ना

म्यंते । जूतानां प्राणिनां यथा त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेव सर्वेपि बुद्धा शातिप्रतिष्ठाना ॥३६॥

॥ टीका–किंच । (सधएइत्यादि) साधूना धर्मं क्षात्यादिकोदशविध सम्यग्दर्शनचारित्राख्योवा तमनुसधयेद्वृद्धिमापादयेत् । तद्यथा । प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानग्रहणेन ज्ञान तथा शकादिदोषपरिहारेण सम्यग्जीवादिपदार्थाधिगमेन च सम्यग्दर्शनमस्खलितमूलोत्तरगुणसपूर्णपालनेन प्रत्यहमपूर्वज्ञानग्रहणेन चारित्रवृद्धिमापादयेदिति । पागतरवा (सद्दहेसाधुधम्मच) पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टसाधुधर्मं मोक्षमार्गत्वेन श्रद्धीत नि शकतया गृण्हीयाच्चशब्दात्सम्यगनुपालयेच्च । तथा पापं पापोपादानकारण धर्मं प्राण्युपमर्देन प्रवृत्त निराकुर्यात्तथोपधान तपस्तत्र यथाशक्त्या वीर्यं यस्य सजवत्युपधानवीर्यस्तदेवजूतोनिक्षुक्रोध मान च न प्रार्थयेन्नवर्धयेद्धेति ॥ ३५ ॥ अथैवजूत जावमार्ग किं वर्धमानस्वाम्येवोपदिष्टवानुतान्येपीत्येतदाशक्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतीते नादिके कालेऽनंता समतिक्रातास्ते सर्वेप्येवजूतं जावमार्गमुपन्यस्तवतस्तथा ये चानागता जविष्यदनतकालजाविनोनताएव तेप्येवमेवोपन्यसिष्यति । चशब्दाद्वर्तमानकालजाविनश्च सख्येयाइति । न केवलमुपन्यस्तवतोऽनुष्ठितवतश्च गम्यते । तद्दर्शयति । शमनं शातिर्जावमार्गस्तेषामतीतानागतवर्तमानकालजाविनां बुद्धाना प्रतिष्ठानमाधारोबुद्धत्वस्यान्यथानुपपत्ते । यदिवा शातिर्मोक्ष सतेषा प्रतिष्ठानमाधारस्ततस्तदवाप्तिश्च जावमार्गमतरेण न जवतीत्यतस्ते सर्वेप्येन जावमार्गमुक्तवतोऽनुष्ठितवतश्च गम्यते । शातिप्रतिष्ठानत्वे दृष्टातमाह । जूताना स्थावरजगमाना यथा जगती त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेव ते सर्वेपि बुद्धा शातिप्रतिष्ठानाइति ॥ ३६ ॥

> अहण वयमावन्नं, फासा उच्चावया फुसे ॥ ण ते सुविणिहणेज्जा वाएणव महागिरी ॥ ३७ ॥ सवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ निवुमे कालमाकखी, एव केवलिणो मयंतिबेमि ॥३८॥
>
> इति मोक्षमार्गनामक एकादसममज्जयणं सम्मत्त ॥

अर्थ–(अहणंवयमावन्नके०) अथ हवे व्रतप्रतिपन्न संयम आदित साधुने (फासाउच्चावयाफुसे के०) सम विषमादिक उंचा नीचा अनुकूल प्रतिकूल एवा परिसह फरशे (णतेसुविणिहणेज्जा के०) तोपण तेणे करीने ते धर्मथकी नचुके एटले धर्म थकी भ्रष्ट नथाय, कोनी पेरे तोके (वाएणवमहागिरी के०) जेम वायरे करी मेरुपर्वत मोलायमान नथाय, तेम परिसह उपने थके साधुजन व्रत थकी मोलायमान नथाय ॥३७॥ (संवुमेसेमहापन्ने के०) ते साधु सवरवान महाप्रज्ञावत, (धीरेदत्तेसणचरे के०) वै

सच्च असच्च इति चिंतयंता, असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेणइया अणेगे, पुट्ठावि नाव विणइंसु णाम ॥३॥ अणो वसखा इति ते उदाहू, अट्ठे सउ नासइ अम्ह एवं ॥ लवाव संकीय अणागएहिं, णो किरिय माहंसु अकिरियवादी ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे विनयवादिने जुदा जुदा करी कहेछे (सच्चअसच्चइतिचित्तयंता के०) जे साचु ते जुठु एवु चितवता थका (असाहुसाहुत्तिउदाहरंता के०) तथा जे असाधु होय तेने साधु एम कहेता थका (जेमेजणावेणइयाअणेगे के०) ए पूर्वोक्त रीते जे कोइ जन एटले लोक बोले ते लोकने विनयवादि जाणवा एटले एक विनयज मोक्षनुं कारणछे, गुणागुणनो विशेष काइ नथी एवीरीते बोलता अजाण लोक सरखा एवाते विनयवादि अनेक प्रकारना एटले बत्रीश प्रकारनाछे (पुट्ठाविनावविणइंसुणाम के०) ते विनयवादिने कोइए पुछया थका एम कहेके ए विनयज सरवार्थसिद्धिनु कारकछे पण बीजु कांइ जगत्मा श्रेय नथी एम कहे अहीं नाम शब्द संभावनार्थे छे ॥ ३ ॥ (अणोवसंखाइतितेउदाहू के०) उपसंख्या एटले सम्यक् परिज्ञान ते जेने विषे नथी अर्थात् मूढमति छता एवा विनयवादि एम कहेछे के (अट्ठेसउनासइअम्हएव के०) अर्थ जे स्वर्ग अने मोक्षादिक तेनी प्राप्ति अमाराज दर्शन थकीछे पण अन्य कोई दर्शनने विषे नथी, एम कहेछे हवे अक्रियावादिनु मत कहेछे (लवावसंकियअणागएहिं के०) लव एटले कर्म तेना अपशंकी एटले साकणहार एवा लोकायित शाक्यादिक बौद्ध तेना दर्शनने विषे आम कह्युछे के अतीत अनागत कालछे अने वर्त्तमान काल नथी कारणके क्षणिकपणाने लीधे सर्व पदार्थ क्षणिकछे एवा वचन थकी अणागएहिं एटले जेकाइ कर्त्तव्य करिए ते अनागतज कहेवाय अने कर्म करिए ते तो वर्त्तमान काले होय तेज कर्मलागे तेमाटे एना मते क्रिया पण नथी एवु सिद्ध थयुं ते कारणे क्रियानुं उपजावेलु जे शुभाशुभ कर्मनु बंध ते पण केवीरीते सिद्ध थाय एवीरीते ते अक्रियावादि नास्तिक मतना धारक कर्मथकी नथी शकाता एवा थका (णोकिरियमाहंसुके०) क्रियाने कर्म बंध मानता नथी तेमाटे एने(अकिरियवादीके०)अक्रियावादि कहिए

॥ टीपिका—अथ वैनयिकान्निराकुर्वन्नाह । (सच्चमित्यादि) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति सत्यमपि असत्य मन्यमानाविनयादेव मोक्षइत्यसत्यमपि सत्यतया चिंतयंतस्तथा असाधुमपि विनयप्रतिपत्त्या साधुमुदाहरंत कथयंत । केते इत्याह । ये इमे प्रत्यक्षावैनयिकाअनेके द्वात्रिंशद्भेदास्तेच जनेन पृष्टा. सतोप्यर्नपुर्विनयं

तोमत। एतच्च जंबूस्वामिनमुद्दिश्य सुधर्मस्वाम्याह। तदेतद्यत्त्वया मार्गस्वरूपं प्रश्नित तन्मया न स्वमनीषिकया कथितं तर्हि केवलिनोमतमेतदित्येव भवता ग्राह्य। इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ इति मार्गाख्यमेकादशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ हवे समवसरण नामे बारमुं अध्ययन प्रारंभिए ठैए अगीयारमा अध्ययनने विषे मोक्ष मार्ग कह्यो ते मोक्षने तो जे कुमार्ग मूकीने सुमार्गने पडिवजे ते अंगीकार करे माटे मार्ग प्रतिपत्ति चारित्रिये कुमार्गने परिहरवो ए अधिकारे बारमो अध्ययन प्रारंभियेठैए

चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावाडुया जाइ पुढोवयंति ॥ किरियं अकिरियं विणियंति तइयं, अन्नाण माहंसु चउत्थमेव ॥१॥
अणाणिया ता कुसलावि संता, असंथुयाणो वितिगिछतिन्ना ॥
अकोविया आहु आकोवियेहिं, अणाणुवीइत्तु मुस वयंति ॥२॥

अर्थ-(चत्तारिसमोसरणाणिमाणि के०) ए आगल वखाणशे ते चार प्रकारना समोसरण एटले परतीर्थिकनो समुदाय जाणवो ते (पावाडुयाजाइपुढोवदंति के०) प्रावाडुक एटले कुवादि ते जुड जुड बोलेठे ते केवीरीते तोके एकवादि (किरिय के०) क्रियानेज सफल कहेठे. तथा बीजो वादि (अकिरिय के०) अक्रियानेज सफल कहेठे अने (विणियतितइय के०) त्रीजोवादि विनयज प्रधानठे एम बोलेठे (अन्नाणमाहंसुचउत्थमेव के०) अन्यवली चोथो अज्ञानवादि ते अज्ञाननेज प्रधान पणे मानेठे ॥ १ ॥ हवे एपूर्वोक्त चारे वादिउमाना सर्व प्रकारे असंबंध प्रलापि अज्ञातिक एवा जे अज्ञानवादि तेनेज पहेला कहेठे (असाणियाताकुसलाविसंता के०) ते अज्ञानवादि अज्ञानी ठता एम कहेठेजे अमेज पंडित ठैये एम मानेठे परंतु ते (असंथुया के०) असंबंधभाषी जाणवा ते (णोवितिगिछतिन्ना के०) चित्तनीजे भ्रांति तेथकी तर्या नथी माटे मृषावादि जाणवा ते अज्ञानवादि (अकोविया आहुअकोवियेहिं के०) सम्यक् धर्म प्ररुपवाने अनिपुण एटले साक्षात् सत्यधर्मनुं ज्ञान जाणवाने असमर्थठे माटे ए अकोविद ठे तो पण समीपे सांभले एवा जे एमना शिष्य तेपण अकोविद एटले मूर्ख जाणवा जेमाटे ते एवुं असंबंध वचन बोलेठे के अज्ञान एज श्रेयठे तो एवु तेमनुं बोलवुं जेठे तेने मूर्खज मान्य करेठे ॥ सरिसासरिसेहिंरज्जति इतिवचनात् एम ते (अणाणुवीइत्तुमुसवयंति के०) अनालोची थका सर्वकाल मृषाज बोलेठे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-सांप्रतं द्वादशमारभ्यते। पूर्वं मार्गउक्तः सच कुमार्गपरित्यागात्सम्यग्भवतीति इह कुमार्गत्यागउच्यते। यथा (चत्तारित्ति) चत्वारि समवसरणानि परतीर्थि

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थविनासनात्तेषामेव वादिनामज्ञानावृतत्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिका । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लव कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषा ते लवापशंकिनोलोकायतिका शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तक्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंध । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतका ॥ नचान्ये द्रव्यत सति, मुष्टिग्रथिकपोतका ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमभ्युपगमोयथा क्षणिका सर्वसंस्काराइत्यस्थिताना च कुत क्रियेत्यक्रियावादित्व योपि स्कंधपचकाभ्युपगमस्तेषा सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमभ्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणा पदार्थान कथंचिदप्यात्मान विज्ञानेन समर्पयितुमल तथा ह्यवयवी तत्वातत्त्वाभ्या विचार्यमाणोनघटां प्राचति । नाप्यवयवा परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यते । विज्ञानमपि ज्ञेयाभावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूप बिभर्त्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिन्त्यते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रच्छन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागते क्षणे । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासगतेर्नक्रिया नापिच तज्जनित कर्मबधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिन सर्वापलापितयालवावशंकिन सतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषा सर्वव्यापितया तेभ्यक्रियावादिन सांख्यास्तदेव लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवतस्तद्यथास्माकमेवमभ्युपगमोर्थोऽवभासते युज्यमानको भवतीति ॥ तदेवश्लोकपूर्वार्द्ध काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सभावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इम
दुपक्ख इममेगपक्ख, आहंसु छलायतणं च कम्म ॥ ५ ॥ ते एव
मक्खंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मा
यइत्ता बहवे मणूसा, भमंति संसारमणोवदग्ग ॥ ६ ॥

अर्थ–(सेके०) ते लोकायिक परवादी (वगिरागहीए के०) पोतानी वाणीये करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करता थका (सम्मिस्सभावके०) मिश्रभावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रभाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अभाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

समवसरणमधिकृत्याह । " भावसमोसरण पुण, णायवं ठविहमि भावमि ॥ अहवा वि किरिय अकिरिया, अन्नाणी नेव वेणइया ॥ १९ ॥ (भावसमवसरणमित्यादि) भावा नामौदयिकादीना समवसरणमेकत्र मेलकोभावसमवसरण । तत्रौदयिकोभावएकविंशति भेद' । तद्यथा । गतिश्चतुर्धा । कषायाश्चतुर्विधा । एव लिंगं त्रिविध । मिथ्यात्वाज्ञानाऽस यतत्वाऽसिद्धत्वानि प्रत्येकमेकैकविधानि । लेश्या कृष्णादिभेदेन षड्विधाभवति । औपशमि कोद्विविध । सम्यक्त्वचारित्रोपशमभेदात् । क्षायोपशमिकोप्यष्टादशभेदभिन्न । तद्यथा । ज्ञानं मतिश्रुतावधिमन पर्यायभेदाच्चतुर्धा । अज्ञान मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगभेदात्रिवि धं । दर्शन चक्षुरवधिदर्शनभेदात्रिविधमेव । लब्धिर्दानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदात्पं चधा । सम्यक्त्वचारित्रसयमासयमा प्रत्येकमेकप्रकाराऽति । क्षायिकोनवप्रकार । तद्यथा । केवलज्ञान केवलदर्शन दानादिलब्धय पच सम्यक्त्व चारित्रं चेति । जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्व भेदात्पारिणामिकस्त्रिविध । सान्निपातिकस्तु द्वित्रिचतु पंचकसयोगैर्भवति । तत्र द्विकसयो ग सत्सिद्धस्य क्षायिकपारिणामिकभाव द्वयसद्भावाऽवगंतव्य । त्रिकसयोगस्तु मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्ट्यविरतानामौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावसद्भावादवगतव्य । तथा भ वस्थकेवलिनोप्यौदयिकक्षायिकपारिणमिकसद्भावाद्विज्ञेयऽति । चतुष्कसयोगोपि क्षायि कसम्यग्दृष्टीनामौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावसद्भावात्तयोपशमिकसम्य ग्दृष्टीनामौदयिकोपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसद्भावाचेति । पंचकसयोगस्तु क्षायि कसम्यग्दृष्टीनामुपशमश्रेण्या समस्तोपशातचारित्रमोहानां भावपचकसद्भावाद्विज्ञेयऽति । तदेव भावाना द्विकत्रिकचतुष्कपचकसयोगात्सभविन सान्निपातिकभेदा. षड्भव त्येतएव त्रिकसयोगचतुष्कसंयोगगतिभेदात्पंचदशधा प्रदेशातरेऽभिहिताऽति । षड्विधे भावे भावसमवसरण निर्युक्तिकृदेव दर्शयति । क्रिया जीवादिपदार्थोस्तीत्यादिका वदितु शील येषा ते क्रियावादिन । एतद्विपर्यस्ताअक्रियावादिनस्तथा ज्ञानिनोज्ञान निन्हववादिनस्तथा वैनयिकाविनयेन चरति तत्प्रयोजनावा वैनयिका । एषा चतु र्णामपि सप्तभेदानामाक्षेप कृत्वा यत्र विक्षेप क्रियते तद्भावसमवसरणमित्येतच्च स्वयमेव निर्युक्तिकरोऽत्यगाथया कथयिष्यति । साप्रतमेतेषामेवाभिधानान्वर्थताद्दर्शी नद्वारेण स्वरुपमाविष्कुर्वन्नाह । "अत्थित्ति किरियवाही, वयति णत्थियकिरियवा दीया ॥ अण्णाणी अण्णाण, विणऽत्ता वेणऽयवादी" ॥ २० ॥ (अत्थित्तीत्यादि) जीवादिसद्भावपदार्थोस्त्येवेत्येव सावधारणक्रियाभ्युपगमोयेषा ते अस्तीति क्रियावादि नस्ते चैववादित्वान्मिथ्यादृष्टय । तथाहि । यदि जीवोस्त्येवेत्येवमभ्युपगम्यते तत. सावधारणत्वान्न कथचिन्नास्तीत्यत' स्वरूपसत्तावत्पररूपापत्तिरिति स्यादेवच नानेक जगत् स्यान्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथा नास्त्येव जीवादिक पदार्थऽत्येव वादिनोऽक्रियावादिनस्ते

कुर्वाणा सन्मिश्रीभावमस्तित्वनास्तित्वाभ्युपगम ते नास्तिकादय कुर्वंति । वाशब्दात्प्रति पेधे वाऽप्येऽस्तित्वमेव कथयति । तथाहि । नास्तिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यभावप्रति पादक शास्त्रं वदंतोनांतरीयकतयाऽत्मान कर्तार करण च शास्त्र कर्मतापन्नाश्च शिष्यान वश्यमगीकुर्यु । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्याभावान्मिश्रीभावोव्यत्ययोवा स्यादव । त था बौद्धादि कश्चित्स्याद्वादिना सम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीरुत सन् (मुम्मुईहोइत्ति) ग द्गदभाषित्वेनाव्यक्तभाषी स्यात् । अथवा मूकादपि मूकोमूकमूक स्यात् । प्राकृतशैल्या छादसत्वाच्चैव प्रयोग । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितु शीलमस्येत्यनुवादी तन्निषेधाद ननुवादी व्याकुलितमनाअनुवादमपि कर्तु न शक्नोतीति । स्वमतमाश्रित्याह । (इमङ्क परकमित्यादि) इदमस्मदगीरुत मतमेक पक्षोस्येत्येकपक्षं निष्प्रतिपक्षमित्यर्थ । इद च परमतं द्वौ पक्षौ यस्य तद्विपक्षं सप्रतिपक्षमित्यर्थ । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तो छलायतनं छलं नवकम्बलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवत । चशब्दादस्य च दूषणाभा सादिक कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिक । अथवा षट् आयतनानि उपादानकारणानि आ श्रवद्वाराणि श्रोत्रादीनींद्रियाणि यस्य कर्मणस्तत् षडायतन कर्मेत्येवमाहु ॥ ५ ॥ तेऽक्रि यावादिनश्चार्वाकबौद्धाद्याएवमाख्याति परमार्थमबुध्यमानाअजानतोविरूपरूपाणि नाना प्रकाराणि शास्त्राणि रूपयति । तद्यथाहि दानेन महाभोगोदेहिना सुरगतिश्च शीलेन भा वनयाच मुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यति । तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि भूतान्येव सति न कश्चिदात्मा । तथा बौद्धा सर्वं क्षणिक निरात्मकमित्यादीनि शास्त्राणि वदंति ते च मूढाअज्ञामनुष्यायदर्शनमादाय गृहीत्वाऽनवदग्रमनत ससार भ्रमति ॥ ६ ॥

॥ टीका–साप्रतमक्रियावादिनामज्ञानविजृंभितं दर्शयितुमाह । (सम्मिस्सभित्यादि) स्वकीयया गिरा वाचा स्वाभ्युपगमेनैव गृहीते तस्मिन्नर्थे नातरीयकतया वा समागते स ति तस्याऽयातस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेध कुर्वाणा सन्मिश्रीभावमस्तित्व नास्तित्वापगम ते लोकायतिकादय कुर्वंति । चशब्दात्प्रतिषेध प्रतिपाद्येऽस्तित्वमेव प्रतिपादयति । तथा हि । लोकायतिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यभावप्रतिपादक शास्त्र प्रतिपादयंतोनांतरी यकतयात्मान कर्तार करण च शास्त्रं कर्मतापन्नाश्च शिष्यानवश्यमभ्युपगच्छेयु । सर्वशू न्यत्वे त्वस्य त्रितयस्याभावान्मिश्रीभावोव्यत्ययोवा । बौद्धाअपि मिश्रीभावमेवमुपगता । तद्यथा । गता च नास्ति कश्चिन्नतय षड् बौद्धशासने प्रोक्ता ॥ गम्यतइति च गति स्या त्तुति कथ शोभना बौद्धी ॥ १ ॥ तथा कर्म च नास्ति फल चास्तीत्यसति चात्मनि का रके कथ षड्गतयोज्ञानसतानस्यापि सतानव्यतिरेकेण सद्वृतिसत्वात् क्षणस्य चास्थितत्वेन क्रियाभावान्न नानागतिसभव । सर्वाण्यपि कर्माण्यबंधनानि प्ररूपयति स्वागमे । तथा पच

सदवक्तव्योजीव' कोवेत्ति किवातेन ज्ञातेन ६ सदसदवक्तव्योजीव कोवेत्ति किवातेन ज्ञातेन ७ एवमजीवादिष्वपि सप्त नंगका । सर्वेपि मिलितास्त्रिपष्टिस्तथाऽपरे ऽमी च त्वारोनंगका । तद्यथा । सती नावोत्पत्ति कोवेत्ति किवा तया ज्ञातया १ असती नावोत्पत्ति कोवेत्ति किवा तया ज्ञातया २ सदसती नावोत्पत्ति कोवेत्ति किवा तया ज्ञातया ३ अवक्तव्या नावोत्पत्ति कोवेत्ति किवा तया ज्ञातया ४ सर्वेपि सप्तपष्टिरित्युत्तर नगकत्रयमुत्पन्ननावावयवोपेक्षमिह नावोत्पत्तौ न संनवतीति नोपन्यस्त । उक्तच । अज्ञानिकवादिमत नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् ॥ नावोत्पत्ति सदसद्द्विधा वाच्या च कोवेत्ति ॥ १ ॥ इदानीं वैनयिकानां विनयादेव केवलात्परलोकमपीक्षता द्वात्रिंशदनेन प्रक्रमेण योज्या । तद्यथा । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधममातृपितृषु मनसा वाचा कायेन दानेन चतुर्विधोविनयोविधेय । सर्वेप्यष्टौ चतुष्ककामिलिता द्वात्रिंशदिति । उक्तं च वैनयिकमत विनयश्चेतोवाक्कायदानत कार्य । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधम मातृपितृषु सदा ॥ १ ॥ सर्वे प्येते क्रियाज्ञानिवैनयिकवादिन्नेदाएकीकृतास्त्रीणि त्रिप ष्ट्यधिकानि प्रावाडुकमतशतानि नवति । तदेववादिना मतन्नेदसख्या प्रदर्श्याऽधुना ते षामध्ययनोपयोगित्व दर्शयितुमाह । " तेसि मताणुमएण पन्नवणावन्निया इहज्ञयणे॥ सन्नावणिच्छयठ्ठ, समोसरणमाहु तेण तु " ॥ २२ ॥ (तेसिमताणुमएणइत्यादि) तेषा पूर्वोक्तवादिना मतमनिप्रायस्तेन यदनुमत पक्षीकृत तेन पक्षीकृतेन पक्षीकृताश्रयणेन प्र ज्ञापना प्ररूपणा वर्णिता प्रतिपादिता इहास्मिन्नध्ययने गणधरै । किमर्थमिति दर्शयति । तेषा य सन्नाव परमार्थस्तस्य निश्चयोनिर्णयस्तदर्थं तेनैव कारणेनेदमध्ययन समवसरणाख्यमाहुर्गणधरा । तथाहि । वादिना सम्यगवसरण मेलापकस्तन्मतनिश्चयार्थ मस्मिन्नध्ययने क्रियतइत्यत समवसरणाख्यमिदमध्ययन क्रियते । इदानी तेपा सम्यग् मिथ्यात्ववादित्व विन्नागेन यथा नवति तथा दर्शयितुमाह । " सम्मदिठ्ठी किरिया. वादीमिच्छाय सेसगा वाई ॥ जहि ऊणमिच्छवाय, सेवहुवाय ऽम सव ॥ २३ ॥ (सम्मदिठ्ठीत्यादि) सम्यगविपरीता दृष्टिर्दर्शन पदार्थपरिछित्तिर्यस्यासौ सम्यग्दृष्टि । कोसावित्याह । क्रियामस्तीत्येवनूता वदितु शीलमस्येति क्रियावादी । अत्रच क्रियावादीत्येतदन्ति किरियवादीत्यनेन प्राक् प्रसाधित सदनूद्यसम्यग्दृष्टित्व विधीयते तस्याऽसिद्धत्वादिति। तथाहि । अस्ति लोकालोकविन्नाग । अस्त्यात्मा अस्ति पुण्यपापविन्नाग । अस्ति त त्फल स्वर्गनरकावाप्तिलक्षण । अस्ति काल 'कारणत्वेनाशेषस्य जगत प्रनववृद्धिस्थि तिविनाशेषु साध्येषु तथा शीतोष्णवर्षावनस्पतिपुष्पफलादिषु चेति । तथाचोक्तं । काल पचति नूतानीत्यादि । तथास्तिस्वनावोपि करणत्वेनाशेषस्य जगत स्वोनाव स्वनाव इति कृत्वा तेनहि जीवाजीवनव्यत्वमूर्तत्वाना स्वरूपानुविधानात् । तथा धर्माऽधर्माका

ते । तच्चेदं । प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत् । तथेदमेक पक्षोस्येत्येकपक्ष इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात् । तच्चेदमविज्ञोपचितं परज्ञोपचितमीर्यापथ स्वप्नादिकं चेति । तदेव स्याद्वादिनाभियुक्ता स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति । तथा स्याद्वादिना मनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवत । च शब्दादन्यच्च दूषणाभासादिक । तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिक प्रतिपादितवतइति । यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्षडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ साप्रतमेव तद्दूषणायाह । (तएवमसकतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते । सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलावृतात्मान परमात्मान च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयति । तद्यथा । दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि भूतानि विद्यते नापर कश्चित्सुखदुःखभागात्मा विद्यते । यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थत सतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकानिचयद्विचड्रादिप्रतिभासरूपत्वात्सर्वस्येति । तथा सर्वं क्षणिक निरात्मक मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्था शेषभावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति । तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्या ससारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन भ्रमति पर्यटति । तथाहि । लोकायतिकाना सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति । तथाचोक्त । तत्त्वान्युपहतानीति, युक्त्यभावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्व, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैक प्रमाण । अतीतानागतभावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्तत सर्वसव्यवहारोच्छेद स्यादिति । बौद्धानामप्यत्यतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाभाव प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थत सत् । नच क्षण क्रमेणार्थक्रियां करोति । क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नचतद्दृष्टमिष्ट वा । नच ज्ञानाधारमात्मान गुणिनमतरेण गुणभूतस्य सकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं । यच्चोक्त दानेनमहाभोगो,इत्यादि तदार्हतैरपि कथचिदिष्यतएवेति नचाभ्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते ॥ संतपि ते एवमकिरियवाई, किरिय ण पस्सति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥

दी हिंतो, केवलएहि लु जायए किंचि ॥ इह मुग्गरधणादिवि, ता सबे समुदिता हेक ॥ ३ ॥ जह णेगलरकणगुणा, वेरुलियाईमणीविसंजुत्ता ॥ रयणावलीवएस, ण लहं ति महघमुल्लावि ॥ ४ ॥ तह णिययवादसुविणि, छियावि अणाणपरकनिरवेरका ॥ स म्मदं सणसह, सवेवि णयाणपाविति ॥ ५ ॥ जह पुण तेचेव मणी, जहा गुणविसे सनागपडिबद्धा ॥ रयणावलित्तिनणइ, चयतिपाडिक्कसस्राउं ॥ ६ ॥ तह सबे णयवा या, जहाणुरूवविणिउत्तवत्तवा ॥ सम्मद सणसह, लनति ण विसेससस्राउं ॥ ७ ॥ तम्हा मिछद्दिठी, सबे विणया सपरकपडिबद्धा ॥ असोणुनिस्सिया पुण, हवति सम्म त्तसप्नावा ॥ ८ ॥ यतएव तस्मात्त्यक्त्वा मिथ्यात्ववाद कालादिप्रत्येकैकांतकारणरूप से वध्वमंगीकुरुध्व सम्यग्वाद परस्परसव्यपेक्षकालादिकारणरूपमिममिति मयोक्त प्रत्यक्षाव सन्न सत्यमवितथमिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेप । साप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणो पेतं सूत्रमुच्चारयितव्य तच्चेद । (चत्तारीत्यादि) अस्य च प्राक्तनाध्ययनेन सहायं सवं ध । तद्यथा । साधुना प्रतिपन्नभावमार्गेण कुमार्गाश्रिता परवादिन सम्यक्परिज्ञाय प रिहर्तव्यास्तत्स्वरूपाविष्करण चानेनाध्ययनेनोपदिश्यते इत्यनंतरसूत्रस्यानेन सूत्रेण सह संवधोर्य । तद्यथा । सवृतोमहाप्रज्ञोवीरोदत्तैषणा चरन्नभिनिर्वृत सन् मृत्युकालमभिका ङ्क्षेदेतत्केवलिनोनाषितं । तथा परतीर्थिकपरिहार च कुर्यात् एतच्च केवलिनो मतं । अ तस्तत्परिहारार्थं तत्स्वरूपनिरूपणमनेन क्रियते । चत्तारीति सख्यापदमपरसख्यानिवृत्त्य र्थे समवसरणानि परतीर्थिकाभ्युपगमसमूहरूपाणि यानि प्रावाडुका पृथग्वदति तानि चामूनि अन्वर्थाभिधायिभि सज्ञापदैर्निर्दिश्यते । तद्यथा । क्रियामस्तीत्यादिका वदितु शीलं येषा ते क्रियावादिनस्तथाऽक्रिया नास्तीत्यादिका वदितु शील येषा तेऽक्रिया वादिनस्तथा तृतीयावैनयिकाश्चतुर्थास्त्वज्ञानिकाइति ॥ १ ॥ तदेव क्रियाऽक्रियावैनयि काज्ञानवादिन सामान्येन प्रदर्श्याधुना तद्दूषणार्थं तन्मतोपन्यास पश्चानुपूर्व्याप्यस्ती त्यत पश्चानुपूर्व्याकर्तुमाह । यदि चैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापितयाऽत्यतमसबद्धाअ तस्तानेवादावाह । (असाणियाइत्यादि) अज्ञानं विद्यते येषामज्ञानेन वा चरतीत्य ज्ञानिका । अज्ञानिकावा तावत्प्रदर्श्यते । ते चाज्ञानिका किल वय कुशलाइत्येव वादि नोपि सतोऽसस्तुताज्ञानमेव श्रेयइत्येव वादितया असबद्धा । असस्तुतत्वादेव विचिकि त्सा चित्तविप्लुतिश्चित्तभ्राति सशीतिस्ता न तीर्णानातिक्राता । तथाहि । ते कचुर्यएते ज्ञानिनस्ते परस्परविरुद्धवादितया असबद्धाअसस्तुतत्वादेव विचिकित्सान यथार्थवा दिनोभवति । तथा ह्येके सर्वगतमात्मान वदंति तथान्ये असर्वगतं अपरे अगुष्ठपर्वमा त्रं केचन श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटव्यवस्थितमित्या द्यात्मपदार्थएव सर्वपदार्थपुर सरे तेषा नैकवाक्यता । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्तीति य

विद्यते कुतस्तस्योजमनमस्तगमनं वा । यच्च ज्वाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभासः मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपक्षीयते नसधानसलिलानि उदकानि स्यंदते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवंति तथा वाता सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्यो ऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह (जहाहि अंधेऽत्यादि) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपाणि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सहवर्तमानोन पश्यति नोपलभते एव तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादिता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येषां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्रतीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योजमं प्रत्यहं जवनुपलक्ष्यते । तत्क्रियाच देशाद्देशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्यक्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविला स्यंदत्योदृश्यते वायवश्च वातास्तृक्षभगकंपादिभिरनुमीयते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमिति तदसत् । यतः सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्वस्याभावान्मायायाएवाऽभावः स्यात् । यश्च माया प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्तद्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याश्चभावे तस्याप्यभावः स्यात्तत स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तन्नांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युपगता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिठ्ठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइ पुस्सु पावच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तदभावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे । नचाभावः कस्यचिदप्यसततुच्छरूपोस्ति । शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभावोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशमस्तकसमवायिविषाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेव संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यंतिकोवस्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिकायां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथावस्थितार्थवेदिनोभवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

प्यागमेन तस्य सर्वज्ञसाधकत्वेनापि दर्शनान्नप्रमाणपंचकाभावरूपेणाभावेन सर्वज्ञाभाव· सिध्यति । तथाहि । सर्वत्र सर्वदा न संभवति तद्ग्राहकप्रमाणमित्येतदर्वाग्दर्शिनोव कुं न युज्यते तेन हि देशकालविप्रकृष्टानां पुरुषाणां यद्विज्ञानं तस्य ग्रहीतुमशक्यत्वा त्तद्ग्रहणे वा तस्यैव सर्वज्ञत्वापत्ते । नचार्वाग्दर्शिनां ज्ञानं निवर्तमानं सर्वज्ञाभावं भाव यति तस्याऽव्यापकत्वात् । नचाव्यापकव्यावृत्त्या पदार्थव्यावृत्तिर्युक्तेति । नच वस्त्वंतर विज्ञानरूपोभाव सर्वज्ञाभावसाधनायालं । वस्त्वंतरसर्वज्ञयोरेकज्ञानससर्गप्रतिबंधाभावा त् । तदेव सर्वज्ञबाधकप्रमाणाभावात्संभवानुमानस्य च प्रतिपादितत्वादस्ति सर्वज्ञस्त त्प्रणीतागमाभ्युपगमाच्च मतभेददोषोदूरापास्तइति । तथाहि । तत्प्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामेकवाक्यतया शरीरमात्रव्यापी ससार्यात्मास्ति तत्रैव तद्गुणोपलब्धेरिति । इतरे तराश्रयदोषश्चात्र नावतरत्येव । यतो ऽभ्यस्यमानाया प्रज्ञायाज्ञानातिशय स्वात्मन्यपि दृष्टोनच दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति । यदप्यभिहितं । तद्यथा । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिच्छे त्तुमलं सर्वत्रार्वाग्भावेनेत्यवधानात्सर्वारातीयभागस्य च परमाणुरूपतयाऽतींद्रियत्वादित्ये तदपि वाङ्मात्रमेव । यत सर्वज्ञज्ञानस्य देशकालस्वभावव्यवहितानामपि ग्रहणान्ना स्ति व्यवधानसंभव । अर्वाग्दर्शिज्ञानस्याप्यवयव द्वारेणाऽवयविनि प्रवृत्तेर्नास्ति व्यवधा न । न ह्यवयवी स्वावयवैर्व्यवधीयतइति युक्तिसंगतं । अपि चाज्ञानमेव श्रेयइत्यत्राऽ ज्ञानमिति किमयं पर्युदासआहोस्वित्प्रसज्यप्रतिषेधस्तत्र यदि ज्ञानादन्यदज्ञानमिति तत्त पर्युदासवृत्त्या ज्ञानांतरमेव समाश्रितं स्यान्नाज्ञानवादइति । अथ ज्ञानं न भवतीत्यज्ञानं तुच्छोनीरूपोज्ञानाभाव सच सर्वसामर्थ्यरहितइति कथश्रेयानिति । अपिच ज्ञानं श्रेय इति प्रसज्यप्रतिषेधेन ज्ञानं श्रेयोनभवतीति क्रियाप्रतिषेधएव कृत स्यादेतच्चाध्यक्षबाधि त । यत सम्यगज्ञानादर्थ परिछिद्य प्रवर्तमानोर्थक्रियार्थी न विसंवाद्यतइति । किंचाऽ ज्ञानप्रमादवद्भि पादेन शिर स्पर्शनेपि स्वल्पदोषवता परिज्ञायैवाज्ञानं श्रेयइत्यभ्युपगम्य ते । एवंच सति प्रत्यक्षएव स्यादभ्युपगमविरोधोनानुमानं प्रमाणमिति । तथा तदेव सर्वथा तेऽज्ञानवादिनोऽकोविदाधर्मोपदेश प्रत्यनिपुणा स्वतोऽकोविदेभ्यएव स्वशिष्येभ्य आहु कथितवंत । छांदसत्वाच्चैकवचनं सूत्रेकृतमिति । शाक्याअपि प्रायशोऽज्ञानिका अविज्ञोपचितं कर्मबंधं न यातीत्येवं यतस्तेऽभ्युपगमयंति । तथा येच बालमत्तसुप्तादयो ऽस्पष्टविज्ञानाअबंधकाइत्येवमभ्युपगमं कुर्वंति ते सर्वेप्यकोविदाइद्रष्टव्याइति । तथाऽ ज्ञानपक्षसमाश्रयणाच्चाननुविचिंत्य भाषणान्मृषा ते सदा वदंति । अनुविचिंत्य भाषणं यतोज्ञाने सति भवति तत्पूर्वकत्वाच्च सत्यवादस्यातोज्ञानानभ्युपगमादननुविचिंत्य भाष णाभावस्तदभावाच्च तेषां मृषावादित्वमिति ॥ २ ॥

विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रां तमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभास मृगतृष्णिकाकल्प वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपहीयते नसधानसलिलानि उदकानि स्यंदते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवति तथा वाता सततगतयोन वाति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवध्यो ऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्र जालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामश्राह (जहाहि अंधेऽस्यादि) यथा ह्ययोजात्यंध पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षु रूपानि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सद्धर्वत मानोन पश्यति नोपलभते एव तेप्यक्रियावादिन सदपि घटपटादिक वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिका परिस्पंदादिका वा क्रिया न पश्यति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादि ता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञान येषा ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्र तीत समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योद्गम प्रत्यह नवन्नुपलभ्य ते । तत्क्रियाच देशादेशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाण समस्तक्षयं यावत्पुन कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमान संपूर्णावस्थाया यावदध्य क्षेणैवोपलभ्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविला स्यंदत्योदृश्यते वायवश्च वातात्कंपनगकपादिभिरनुमीयते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमि ति तदसत । यत सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्याभावान्मायायाएवाऽभाव स्यात् । यश्च माया प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्त द्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थाया सत्या व्यवस्थाप्यते तस्याश्चभावे त स्याप्यभाव स्यात्तत स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तन्नांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युप गता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानि । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादे सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिट्ठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइ पुसु पावच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तद भावेतु केन कस्य चेंद्रजाल व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिश्च चंद्रमस्युपलंभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे। नचाभाव कस्यचिदप्यत्यंततुच्छरूपोस्ति। शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभा वोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशम स्तकसमवायिविषाण नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेव संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यं तिकोऽसत्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेव विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिका या क्रियाया निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाश्रक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथाव स्थितार्थवेदिनोभवति । तथाहि । अवधिमन पर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

आहितवतोविनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युक्तवत· ॥ ३ ॥ न उपसंख्याऽनुपसंख्याऽप रिज्ञान तयाऽज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयिकाइति ।अथ क्रियावादिमतमाह। (लवा वसकीति) लवकर्म तस्मादपशक्तिुमपसर्तु शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाना स्तिका शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुत क्रिया। बौद्धाएवमाहु । अनागते क्ष णैश्च शब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासगतेर्नक्रिया नापि तज्जनित कर्मबंध । तदेवमक्रि यावादिनोनास्तिकान क्रियामाहु । तथाऽक्रियआत्मा येषा सर्वव्यापितया तेप्यक्रिया वादिन सांख्या । तदेव नास्तिकबौद्धसांख्याअज्ञानेन एतत्पूर्वोक्त कथितवत । अय मर्थो ऽस्माकमवजासते । पूर्वार्धमत्रापि व्याख्यातं ॥ ४ ॥

॥ टीका—साप्रत वैनयिकवाद निराचिकीर्षु· प्रक्रमते । (सञ्चमसञ्चमित्यादि) स द्भ्योहित सत्यं परमार्थोयथावस्थितपदार्थनिरूपण वा मोक्षोवा तडुपायजूतोवा संय म सत्य तदसत्यमित्येव विचितयतोमन्यमानाएवमसत्यमपि सत्यमिति मन्यमाना । तथाहि । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गं सत्यस्तमसत्यत्वेन चितयतोविनयादे व मोक्षइत्येतदसत्यमपि सत्यत्वेन मन्यमानास्तथा असाधुमप्यविशिष्टकर्मकारिण वद नादिकया विनयप्रतिपत्त्या साधुमित्येवमुदाहरत प्रतिपादयंतोऽसम्यग्यथावस्थितधर्म स्य परीक्षकायुक्तिविकल विनयादेव धर्मइत्येवमन्युपगमात्। कएते इत्येतदाह। ये इमे बु द्धया प्रत्यक्षासन्नीकृताजनाइव प्राकृतपुरुषाइव जनाविनयेन चरति वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येव वादिनोऽनेके बहवो द्वात्रिंशद्भेदभिन्नत्वात्तेषा तेच विनय चारिण केनचिद्धर्मार्थिना पृष्टा सतोऽपि शब्दादपृष्टावा जाव परमार्थं यथार्थोपलब्ध स्वा भिप्राय वा विनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येव व्यनैषुर्विनयितवत सर्वदा सर्वस्य सर्वसिद्ध ये विनय आहितवत । नामशब्द सजावनाया । सजाव्यतएव विनयात्स्वकार्यसिद्धिरि ति । तडुक्त । तस्मात्कल्याणाना सर्वेषा जाजन विनयइति ॥३॥ किचान्यत् (अणोवसखा इत्यादि) सख्यानं सख्या परिच्छेद । उप सामीप्येन सख्या उपसख्या सम्यग्यथावस्थिता र्थपरिज्ञानं नोपसख्याऽनुपसख्या तयाऽनुपसंख्यया ऽपरिज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयि का स्वाग्रहग्रस्ताइत्येतद्यथा विनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युदाहृतवतएतच्च ते म हामोहाच्चादितावदाहुरुदाहृतवत । यथैव सर्वस्य विनयप्रतिपत्त्या स्वोर्थ स्वर्गमोक्षादि कोऽस्माकमवजासते आविर्नवति प्राप्यते इति यावत् । अनुपसंख्योदाहृतिश्च तेषामेव मवगंतव्या । तद्यथा । ज्ञानक्रियान्या मोक्षसद्भावे सति तदपास्य विनयादेवैकस्मात्तदवा प्त्यन्युपगमादिति । यदप्युक्तं । सर्वकल्याणजाजन तदपि सम्यग्दर्शनादिसद्भावे सति विन यस्य कल्याणजाक्त्व जवति नैकस्येति तद्रहितोविनयोपेत सर्वस्य प्रव्हतयाऽन्यत्कारण

मित्तमधीत्य लोकेऽतीतानागतानि वस्तूनि जानंति । नच शून्यादिष्वेतद्घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरुच्यते ॥ ९ ॥ परानिप्रायमाह । (केईनिमित्तेत्यादि) द्वादसत्वाल्लिंगव्यत्यय । कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि नवति । केषांचित्तु निमित्ताना निमित्तवेदिना वा तन्निमित्तज्ञानं विपर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यनिचारोदृश्यते किंपुनस्तीर्थिकाना । तदेव निमित्ते व्यनिचारमुपलन्यतेऽक्रियावादिनोविद्यासद्भाव विद्यामनधीयाना (आहुत्तुविज्ञापलिमोरकमेव) विद्याया श्रुतस्य व्यनिचारेण तस्य परिमोर्कं परित्यागमाहु । अथवा क्रियायाअनावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्ष कर्मक्षयरूपमाहुरिति । क्वचिच्चरमपादस्यैव पाठ । (जाणासुलोगंसिवयंतिमदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोके नावान् वयं जानीमइति मदाजडावदति । मदत्व कथमिति चेडुच्यते । सम्यग्विलोकितस्य निमित्तस्य नास्ति व्यनिचार । यत्रापि दृश्यते व्यनिचार सोप्यज्ञाततादृगन्यनिमित्तसद्भावात् । यथा किल बुद्ध स्वशिष्यानाकार्यउक्तवान् । द्वादशवार्षिकमत्र दुर्निक्ष नावि । यूय देशांतर गच्छत । तेच गच्छतस्तेनैव निषिद्धा । मागच्छत यूय इहाद्यैव पुण्यवान् महासत्त्व सजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्ष नविष्यतीति । तदेवमन्यनिमित्तसद्भावान्नकथचिन्निमित्तव्यनिचारइति ॥ १० ॥

॥ टीका–तदाह । (सवत्सरमित्यादि) सावत्सरमिति ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादको ग्रथ स्वप्नस्तमधीत्य । लक्षण श्रीवत्सादिक । च शब्दादातरवाह्यनेदनिन्न निमित्त वाक्प्रशस्तशकुनादिक । देहे नव देहं मषकतिलकादि । उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहनिर्घातनूमिकपादिक । तथाष्टागच निमित्तमधीत्य । तद्यथा । नोममुत्पातमातरिक्षमाग स्वर लक्षण व्यजनमित्येव रूप नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुविनिर्गत सुखदुःखजीवितमरणलानाऽलानादिसंसूचक निमित्तमधीत्य लोकेऽस्मिन्नतीतानि वस्तूनि अनागतानिच जानति परिछिंदति । नच शून्यादिवादेष्वेतद् घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरनिधीयतइति । एवव्याख्याते सति आह पर । नतु व्यनिचार्यपि श्रुतमुपलन्यते । तथाहि । चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागमउद्घुष्यते किंपुनरष्टागनिमित्तशास्त्रविदा । अत्र चागवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुपूर्व्येन छन्दसा त्रयोदशशतानि सूत्रं तावत्येव सहस्राणि वृत्तिस्ता वत्प्रमाणलक्षणा परिनाषेति । अगस्य त्रयोदशसहस्राणि सूत्र तत्परिमाणलक्षणा वृत्तिरपरिमितं वार्तिकमिति ॥ ९ ॥ तदेवमष्टागनिमित्तवेदिनामपि परस्परत षट्स्थानपतितत्वेन व्यनिचारित्वमतइदमाह । (केइनिमित्ताइत्यादि) द्वादसत्वात्प्राकृतशैल्या वा लिंगव्यत्यय । कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि नवति । केषांचित्तु निमित्ताना निमित्तवेदिना वा बुद्धिवैकल्यात्तथाविधक्षयोपशमानावेन तन्निमित्तज्ञान वि

शास्त्र अने शिष्य ए क्याछे एम नविचारे तेमाटे ए असबध वचनना बोलनार माटे ए ने मिश्रभाव सहित जाणवा तथा साख्यदर्शनी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि छे तथा अक्रियछे ए पण असमजस बोलेछे कारणके ए दर्शनवाला एम, कहेछे के प्रकृतिने वियोगे मोक्षछे जो एमछे तो आत्माने बधमोक्षनो सद्भाव थाप्यो एम सिद्ध थयु कारणके प्रकृतिनो बध हतो तेनो वियोग थवाथी मोक्ष थयो एथी स्पष्ट मालम पडेछे के बंध मोक्षनो सद्भाव थयो अने बंध मोक्षना सद्भावने लीधे आत्मा सक्रियछे एवु एम नाज बोलवा उपरथी जणायछे तो पोतानाज वचनथी जेनु स्थापन कर्यु तेने पोतानाज वचनथी उछापेछे एरीते मिश्रभाव सर्व दर्शनीउंना जाणवो ए वणिका मात्र लख्युंछे (सेमुम्मुईहोइअणाणुवाई के०) ते अक्रियावादी आदेदेइने जे परवादीछे ते जैन मतानुसारीने अनेक हेतु दृष्टाते करी व्याकुल छतो तेनो उत्तर आपवाने असमर्थ थाय मुम्मुई एटले मूक सरखो याय अर्थात् काइपण बोली शके नही ते दर्शनी केवो जाणवो तोके अनानुवादी एटले जिनभाषित वचन साभलीने पछी बोलवा असमर्थ एवो छतो मौन भावनेज अगीकार करेइत्यर्थ हवे यद्यपि ते दर्शनीउ जैनमतानुसारीने सन्मुख बोली नशके तथापि कदाग्रहे पडया थका पोताना पक्षनु स्थापन करे तेनीरीत कहेछे (इमडुपरकइममेगपरकके०) एम अमारो एकपक्ष छे ते एम डुपक्ष जाणवो एटले ए पक्षना शु वखाण करिए ए अमारा पक्षने त्रीजो कोइ उछापी नशके एवो ए पक्ष उत्तमछे अही पूर्वापर विरोध वचनछे ते भाव पाछलना मिश्रभाव कहेवाथी कह्युछे ए डुपरक शब्दनो अर्थछे अथवा जे पोतानु खोटुं होय तेने साचु करे तेने उत्सूत्रभाषण करवाने लीवे डुपक्ष एटले आभवमा तथा परभवमा विम्बना थाय ए पण डुपरक शब्दनो अर्थ छे तथा ते परवादि जेवारे पोची नशके तेवारे (आहसुछलायतणचकम्म के०) छलायतन एटले छले करी बोले ते छल त्रण प्रकारनाछे एक वाक्छल, बीजो सामान्यछल अन त्रीजो उपचारछल एवा छले करी बोलीने पोतानो एक पक्ष स्थापन करे तथा कर्म एटले एक पक्षादि स्थापन करवाने अर्थ बोले ॥ ५ ॥ (तेएवमरकति के०) ते बौद्धादिक परवादीउं सत्यमार्गने अजाणता मिथ्यात्व पमले आवर्या थका असबध वचन बोले एवाते (अबुज्झमाणा के०) तत्वने अजाणता (विरुवरुवाणिअकिरियवाई के०) विरुपरुप नाना प्रकारना कुशास्त्रनी प्ररूपणा करे एवाते अक्रियावादि नास्तिकादिक मिथ्यात्वी छे (जेमायइत्ताबहवेमणूसा के०) जेमनो मत ग्रहण करीने घणा मनुष्य मिथ्यात्वे मोह्या थका (भमतिससारमणोवदग्ग के०) अनत ससार परिभ्रमण करेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—गिरा स्ववाचा स्वागीकारेण गृहीते तस्मिन्नर्थे तस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं

ले कहेले ते पोताने अभिप्राये लोकने जाणीने अमे यथावस्थित तत्वना जाणछैए ए वीरीते बोलीने क्रियानु स्थापन करेछे (तहातहासमणामाहणाय के०) तथा तथा ए टले ते ते प्रकारे अर्थात् जेवा जेवा प्रकारनी क्रिया प्रवर्त्ते तेम तेम एटले तेवा तेवा प्रकारनु स्वर्ग नरकादिक फल पण जाणवु एरीते ते शाक्यादिकना श्रमण ब्राह्मण क्रियायकीज सिद्धि कहेछे (सयकडंणन्नकडचडुक्खं के०) तथाजे काइ आ जगत् माहे डुःख सुखछे ते सर्व पोतानु करेलु तथा परनुं करेलु पण नथाय परतु सर्व भवितव्यतानु करेलुं थायछे हवे एमना मतनु निराकरण करेछे (आहसुविज्ञाचरणपमोरक के०) तीर्थंकर गणधरादिक विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र एणेकरी मोक्षछे एट ले ससारीजीवोने ज्ञान अने क्रियानेसयोगे करी प्रकर्षे जैनमार्गे मोक्षछे एम कहेछे ॥ ॥ ११ ॥ (तेचरकुलोगसिहणायगाउ के०) ते तीर्थंकर गणधरादिक केवाछे तोके लो कमाहे चक्षुने स्थानकेछे तथा आ लोकने विषे नायक एटले स्वामि छता (मग्गाणुसा संतिहितपयाण के०) आलोकने विषे पोताना प्रजालोकने आ भवे तथा परभवे हित कारी एवो सम्यक् धर्म मार्ग प्रकाशेछे (तहातहासासयमाहुलोएके०) तथा तथा एटले जेवा जेवा प्रकारे ए लोक पंचास्तिकायरूप ते द्रव्यास्तिक नयना अभिप्राये शाश्वतो थाय तेवा तेवा प्रकारे कहे अथवा जेम जेम रागद्वेषनी वृद्धि तेम तेम ससारनी वृद्धि थाय एम कहे (जसी के०) जे ससारने विषे (पयासपगाढा के०) प्रजा एटले जीव ते राग द्वेषे व्याप्त छता नाना प्रकारे रह्याछे (माणवके०) तो हे मानव तु एम जाण ॥१२॥

॥ दीपिका– अथ क्रियावादिमतमाह । ये क्रियातएव मोक्षमिछंति तएवमाख्यां ति । स्वाभिप्रायेण लोक स्थावरजगमात्मक समेत्य ज्ञात्वा किल वय यथावस्थितवस्तु ज्ञातारइत्यगीरुत्य सर्वमस्त्येवेति सनिश्चय कथयति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथातथा स्वर्गनरकादिफलमिति । ते श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सि द्धिमिछति। तथा यत्किंचित्ससारे डुःख तथा सुख च तत्सर्व स्वयमात्मनाऽन्येन कालेश्व रादिना । नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र हि अक्रियत्वादात्मनोऽरुतयोरेव सुखडुःखयो सभव स्यादिति । (तस्मादाहसु विज्ञाचरण पमोरकंति) विद्याज्ञान । चरणक्रिया । ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति समासरुत्वा अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच्प्रत्यय । अ सौ विद्याचरणोमोक्ष । ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थ । एवविध मोक्षमाहुस्तीर्थकृदादय॰॥११॥ ते तीर्थकरादयइहास्मिन् लोके चक्षुर्लोचनतुल्यइत्यर्थ । ते लोके नायका प्रधाना । तुर्विशेषणे । मार्ग ज्ञानादिक प्रजाना हित प्राणिनामनर्थवारक सद्गतिप्रापक चानुशासं ते कथयति तथा तथा शाश्वत लोक ससारमाहुर्जिना. । यथायथा मिथ्यात्ववृद्धि ।

जातकशतानि च बुद्धस्योपदिशति । तथा । मातापितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पा
द्य ॥ अर्हद्वधं च कृत्वा स्तूप भित्वा च पचैते ॥ १ ॥ निरंतरमावीचिनरक यात्येवमादिक
स्यागमस्य सर्वशून्यत्वे प्रणयनमयुक्तिसंगत स्यात् । तथा । जातिजरामरणरोगशोकोत्तम
मध्यमाधमत्वानि च नस्यु । एपएव च नानाविधकर्मविपाकोजीवास्तित्व कर्तृत्व कर्म
वत्त्व चावेदयति । तथा । गर्धर्वनगरतुल्या, माया स्वप्नोपपातधनसदृशा ॥ मृगतृष्णानीहारा
बुचुदिकालातचक्रसमाइति जापणाच्च स्पष्टमेव मिश्रीजावोपगमन बौद्धानामिति । यदि
वा नानाविधकर्मविपाकाभ्युपगमात्तेषा व्यत्ययएवेति । तथाचोक्त । यदि शून्यस्तव पक्षो,
मत्पक्षनिवारक कथं जवति ॥ अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्षएवासावित्यादि । त
देव बौद्धा पूर्वोक्तया नीत्या मिश्रीजावमुपगतानास्तित्व प्रतिपादयतोऽस्तित्वमेव प्रति
पादयंति । तथा साख्याअपि सर्वव्यापितया अक्रियमात्मानमभ्युपगम्य प्रकृतिवियोगा
न्मोक्षसद्भाव प्रतिपादयतस्तेप्यात्मनोबंध मोक्ष च स्ववाचा प्रतिपादयति । ततश्च बंध
मोक्षसद्भावे सति स्वकीयया गिरा सक्रियत्वे गृहीते सत्यात्मन. सन्मिश्रीजाव व्रजति य
तोन क्रियामंतरेण बधमोक्षौ घटेते । वाशब्दादक्रियत्वे प्रतिपाद्ये व्यत्ययएव सक्रियत्व
तेषा स्ववाचा प्रतिपाद्यते । तदेव लोकायतिका सर्वे जावाभ्युपगमेन क्रियाजाव प्रतिपा
दयति । बौद्धाश्च क्षणिकत्वात्सर्वशून्यत्वाच्चाक्रियामेवाभ्युपगमयत स्वकीयागमप्रणयनेन
चोदिता सत सन्मिश्रीजाव स्ववाचैव प्रतिपाद्यते । तथा साख्याश्चाक्रियमात्मानमभ्युप
गच्छंतोबंधमोक्षसद्भाव च साभ्युपगमेनैव सन्मिश्रीजाव व्रजति । व्यत्यय चैतत्प्रतिपादि
तं । यदिवा बौद्धादि कश्चित्स्याद्वादिनासम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीक्रियमाण सन् गम्यगु
त्तर दातुमसमर्थोयत्किंचन जाषितया (मुम्मुई्होइत्ति) गद्गदजाषित्वेनाऽव्यक्तजाषी जवति ।
यदिवा प्राकृतशैल्या ग्रादसत्वाज्ञायमर्थोऽद्रष्टव्य । तद्यथा । मूकादपि मूकोमूकमूकोज
वति । एतदेव दर्शयति । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितु शीलमस्येत्यनुवादी तत्प्रतिपे
धादननुवादी सद्धेतुनिर्व्याकुलितमनामौनमेव प्रतिपाद्यतइति जाव । अनुजाष्य च प्रति
पक्षसाधन तथाऽदूषयित्वा च स्वपक्षं प्रतिपादयति । तद्यथा । इदमस्मदभ्युपगतं दर्शन
मेक पक्षोस्येति एकपक्षमप्रतिपक्षतयैकांतिकमविरुद्धार्थाजिधायितया निष्प्रतिबाध पूर्वा
पराविरुद्धमित्यर्थ । इद चैवजूतमपि सदित्याह । द्वौपक्षावस्येति द्विपक्ष सप्रतिपक्षमनै
कांतिक पूर्वापरविरुद्धार्थाजिधायितयाऽविरोधिवचनमित्यर्थ । यथाच, विरोधिवचनत्वं
तेषा तथा प्राग्दर्शितमेव। यदि स्वेतदस्मदीय दर्शन द्वौपक्षावस्येति द्विपक्षं कर्मबधनिर्ज
रण प्रतिपक्षद्वयसमाश्रयणात् । तत्समाश्रयण चेहामुत्र वेदना चौरपारदारिकादीना
मिव । तेहि करचरणनासिकादिकामिहैव पुष्पकल्पां स्वकर्मणोविडंबनामनुजवत्यमुत्र
च नरकादौ तत्फलजूता वेदना समनुजवंतीति । एवमन्यदपि कर्माजयवेद्यमभ्युपगम्य

तथागतास्तीर्थंकरत्वं केवलज्ञानं च गता श्रमणा साधवोब्राह्मणा संयताऽसंयता । लौकिकी वाचोयुक्ति । किंभूतास्तएवमाख्यातीति संबंध । तथातथेति वा क्वचित्पा ठ । यथायथा समाधिमार्गोव्यवस्थितस्तथातथा कथयंति । एतच्च कथयंति । यथा यत्किंचित्संसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमसातोदयस्वभावं तत्प्रतिपक्षभूतं च सातोदया पादितं सुखं तत्स्वयमात्मनाकृतं नान्येन कालेश्वरादिना कृतमिति । तथा चोक्तं । सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं ॥ अवराहे सुगुणेसुय णिमित्तमि त्तं परो होइ ॥ १ ॥ एतच्चाहुस्तीर्थंकरगणधराद्य । तद्यथा । विद्या ज्ञानं चरणं चा रित्रं क्रिया तत्प्रधानोमोक्षस्तमुक्तवतोनज्ञानक्रियाभ्यां परस्परनिरपेक्षाभ्यामिति । तथा चोक्तं । क्रिया च सज्ञानवियोगनिष्फला क्रियाविहीना च विबोधसंपद ॥ निरस्तताक्ले शसमूहशातये, त्वया शिवाया लिखितेव पद्धति ॥ १ ॥ ११ ॥ किंच (तेचरकुलोगंसि हेत्यादि) ते तीर्थंकरगणधरादयोऽतिशयज्ञानिनोऽस्मिन् लोके चक्षुरिव चक्षुर्वर्त ते । यथाहि चक्षुर्योग्यदेशावस्थितान् पदार्थान् परिछिनत्ति । एवं तेऽपि लोकस्य यथा वस्थितपदार्थाविष्करणं कारयति । यथाऽस्मिन् लोके ते नायका प्रधाना । तुशब्दो विशेषणे । सदुपदेशदानतोवा नायकाइत्येतदाह । मार्गं ज्ञानादिकं मोक्षमार्गं अनुशास ति कथयति प्रजायतइतिप्रजा प्राणिनस्तेषां । किंभूतं । हितं सद्गतिप्रापकमनर्थनिवार कं । किंच चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके पंचास्तिकायात्मके वा येन प्रकारेण द्रव्यास्तिकनया भिप्रायेण यद्वस्तु शाश्वतं तत्तथा आहुरुक्तवंत । यदिवा लोकोयं प्राणिगण संसारां तर्वर्ती यथायथा शाश्वतोभवति तथातथैवाहु । तद्यथा । यथायथा मिथ्यादर्शनाभिवृ द्धिस्तथातथा शाश्वतोलोक । तथाहि । तत्र तीर्थंकराहारकवर्ज्या सर्वएव कर्मबंधा सं भाव्यतइति । तथाच महारंभादिभिश्चतुर्भि स्थानैर्जीवानरकायुष्कं यावन्निवर्तयति ताव त्संसारानुछेदइति । अथवा यथायथा रागद्वेषाभिवृद्धिस्तथातथा संसारोपि शाश्वतइ त्याहु । यथायथा च कर्मोपचयमात्रा तथातथैव संसाराभिवृद्धिरिति । दुष्टमनोवाक्का याभिवृद्धौ वा संसाराभिवृद्धिरवगंतव्या । तदेव संसारस्याभिवृद्धिर्भवति । यथाऽस्मिंश्च संसारे प्रजायंतइति प्रजाजंतव हे मानव । मनुष्याणामेव प्रायशउपदेशार्हत्वान्मानव ग्रहणं । सम्यग्नारकतिर्यङ्नरामरभेदेन प्रगाढा प्रकर्षेण व्यवस्थिताइति ॥ १२ ॥

जे रक्कसा वा जमलोइया वा, जे वासुरा गधव्वा य काया ॥
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणोपुणो विप्परिया सुवंति ॥
॥१३॥ जमाहु उहं सलिलं अपारगं, जाणाहि णं भवगहणं दु
मोक्खं ॥ जसी विसन्ना विसयंगणाहिं, दुहउ वि लोयं अणुसंचरंति ॥१४

अर्थ—हवे सर्व शून्यवादिनो भेद कहेछे ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो (णाइच्चो के०) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णउएइके०) उगतो नथी तथा (णअडमेति के०) अस्तपण थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मण्डल देखायछे ते मात्र चित्तनो भ्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व भ्रमछे तथा (णचंदिमावड्ढति हीयती के०) चन्द्रमानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चन्द्रमानी देखायछे ते सर्व भ्रम छे (वा के०) अथवा तथा (सलिला के०) नदीना पाणी ते (णसदति के०) नथी श्रवता एटले नदीन्हदादिक पण नथी तथा (णवयतिवाया के०) वायरो पण वातो नथी (वजोणियतो कसिणे हुलोए के०) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमान अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां काइज नथी जे काइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंद्रजाल समान जाणवु ॥ ७ ॥ (जहाहि अधेसह जोतिणावि के०) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छता पण (हीणणेत्ते के०) हीननेत्रपणाने लीधे (रूवाइ के०) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने (णोपस्सति के०) देखी शके नही (सतपिते एवमकिरियवाई के०) तेम ते अक्रियावादिउंमा छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते (किरिय के०) क्रियाने (निरुद्धपन्ना के०) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामा क्रिया विद्यमान छता पण तेने (णपस्सतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथी देखता ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—आदित्योनोद्गच्छति नास्तमेति । कोर्थ । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रप्रतिभासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंद्रमावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्पदंते न स्रवंति वाता न वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सद्वर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाआच्छादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—पुनरपि शून्यमताविर्भावनायाह । (णाइच्चो उएईत्यादि) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाप्यक्षामादित्योद्गमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविभागकालकारी सएव तावन्न

प्राधान्यख्यापनार्थं । तथा काया पृथिवीकायाद्य षडपि गृह्यंतइति । पुनरन्येन प्रकारेण सत्वान्संजिघृक्षुराह । ये केचनाकाशगामिन सप्राप्ताकाशगमनलब्धयश्चतुर्विधदेवनिकायविद्याधरपक्षिवायव । तथा येच पृथिव्याश्रिता पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतु पचेंद्रियास्ते सर्वेपि स्वकृतकर्मभि पुन पुनर्विविधमनेकप्रकार पर्यास परिक्षेपमरहट्टघटीन्यायेन परिभ्रमणमुपसामीप्येन याति गछंतीति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् । (जमाहुरित्यादि) । य ससारसागरमाहुरुक्तवतस्तीर्थंकरगणधरादय । तद्विद कथमाहु स्वयंभुरमणसलिलौघवदपार । यथा स्वयंभुरमणसलिलोघोन केनचिज्जलचरेण स्थलचरेण वा लघयितु शक्यते एवमयमपि ससारसागर सम्यग्दर्शनिनमतरेण लंघयितु न शक्यतइति दर्शयति । जानीहि अवगछ । णमिति वाक्यालंकारे । भवगहनमिद चतुरशीतियोनिलक्षप्रमाण यथासभव सख्येयाऽसख्येयानतस्थितिक दु खेन मुच्यतइतिदुर्मोक्ष दुरुत्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकाना । पुनरपि भवगहनोपलक्षित ससारमेव विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् ससारे सावद्यकर्मानुष्ठायिन कुमार्गपतिताअसत्समवसरणग्राहिणो विषण्णाअवसक्ताविषयप्रधानाअगनाविषयागनास्तान्निर्यदि वा विषयाश्चागनाश्च विषयागनास्तानिर्वशीकृता सर्वत्र सदनुष्ठाने ऽवसीदति तएवविषयागनादिके पचके विषण्णाद्विधाप्याकाशाश्रित पृथिव्याश्रितच लोक यदि वा स्थावरजगमलोकमनुसरति गछति । यदिवा द्विधापि लिंगमात्रप्रव्रज्य याऽविरत्याचरागद्वेषाभ्या वा लोक चतुर्दशरज्ज्वात्मक स्वकृतकर्मप्रेरिताअनुसचरति बभ्रम्यतइति ॥ १४ ॥

न कम्मणा कम्म खवेति बाला, अकम्मणा कम्म खवेति धीरो ॥ मेधाविणो लोभमया वतीता, पाठातरे (लोभभयावतीता) सतोसिणो नोपकरेंति पाव ॥ १५ ॥ ते तीयउप्पन्नमणागयाइ,लोगस्स जाणति तहागयाइ॥णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया, बुद्धा हु ते अंतकडा भवति ॥१६॥

अर्थ—(नकम्मणाकम्मखवेतिबाला के०) अज्ञानी एवो मिथ्यामतिवालुं जीव कर्मजे सावद्यारभ तेणे करी पूर्वकृतकर्मने खपावे नही परतु साहमा नवा कर्मनु बध करे (अकम्मणाकम्मखवेतिधीरा के०) आश्रवने सर्व प्रकारे रोधन करवा थकी सैलेसी करणावस्थाये धीर एटले महासत्ववत एवो पुरुष कर्मने खपावेछे (मेधाविणोलोभमयावतीता के०) जे मेधावि एटले पंडित महानुभाव होय ते लोभमय एटले परिग्रह तेथकी अतीत एटले रहित होय (सतोसिणोनोपकरेतिपाव के०) एम सतोषी थतो पाप नकरे ॥ १५ ॥ जे पुरुष एवा होय ते केवा थाय ते कहेछे (तेतीयउप्पन्नमणागयाइ के० ते) श्रीवीतराग अतीत, अनागत अने वर्तमान ए त्रणे काल आश्री

तिन. पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान् विदति । येऽप्यन्येऽष्टागनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिच्छेद विदधति ॥ ८ ॥

संवछर सुविणं लरकणं च, निमित्तदेह च उपाइय च ॥ अठंग मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई निमित्ता तहिया भवंति, केसि च तं विप्पडिएति णाण॥ तेविज्ज भाव अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥ (जाणासु लोगंसि वयति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ–(सवछर के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविण के०) स्वप्न शुनाशुननां शास्त्र (लरकणके०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अन्यंतर भेदरुप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहंके०) देहना लक्षण मस्स तिलकादिक जाणवा (उपाइयच के०) उत्पात ते भूमिकपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठंगमेयबहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनु घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त नणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइ के०) आलो कने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ सनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियानवति के०) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एट ले साचो थायछे वली (केसिचतविप्पडिएतिणाण के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा (तेविज्जभावअणहिज्जमाणा के०) ते ए वी विद्याना भावनो अन्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण नण्या थका कहेछे के (आहंसुविज्जापरिमोरकमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुखें एमज कहेछेके अमेज आलोक माहे अशेष एटले समस्त भावने जाणीयें छैये ॥ १० ॥

॥ दीपिका–सांवत्सर ज्योतिष । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथ. स्वप्न । लक्षण श्रीवत्सादिक । निमित्त शकुनादिक। देहे भव दैहं मषतिलकादि । उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दा हादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्त । यथा भौम १ उत्पात २ स्वप्न ३ आंतरिक्ष ४ आंग ५ स्वर ६ लक्षण ७ व्यजनमित्येव नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गत सुखदु खादिसूचक नि

तीत्यतआह । (तेतीयइत्यादि) ते वीतरागाअल्पकषायावा लोकस्य पचास्तिकायात्मकस्य प्राणिलोकस्य वाऽतीतान्यन्यजन्माचरितानि उत्पन्नानि वर्तमानावस्थायीन्यनागतानि च नवातरनावीनि सुखडुःखादीनि तथागतानि यथावस्थितानि तथैवाऽवितथं जानंति न विनंगज्ञानिनइव विपरीत पश्यति । तथाहि । आगम । अणगारेण नतेमाई मिच्छादिठी रायगिहेण यरेसमोहए वाणारसीए नयरीए रूवाइ जाणाइ पासइ जावसे दंसणे विवज्ञा से नवतीत्यादि । ते चातीतानागतवर्तमानज्ञानिन प्रत्यक्षज्ञानिनश्चतुर्दशपूर्वविदोवा ऽप्रत्यक्षज्ञानिनोऽन्येषा ससारोत्तितीर्षूणा नव्याना मोक्षंप्रति नेतार सदुपदेश प्रत्युपदेष्टारोनवति । नच ते स्वयबुद्धत्वादन्येन नीयते नत्वावबोध कार्यतइत्यनन्यनेयाहिताहितप्राप्तिपरिहारप्रति नान्यस्तेषा नेता विद्यतइति भाव । ते च बुद्धा स्वयबुद्धास्तीर्थंकरगणधरादय । तुशब्दश्च शब्दार्थे विशेषणेच । तथाच प्रदर्शितएव । तेच नवांतकरा ससारोपादानजूतस्य वा कर्मणोतकरानवतीति ॥ १६ ॥

ते णेव कुव्वति ण कारवति, नूताहिसकाइ डुगुंछमाणा ॥ सयाजता विप्पणंवंति धीरा, विस्सत्ति धीरा पाठतरे (विण्णतिवीरा) य हवति एगो ॥ १७ ॥ म्हरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते आत्तउ पासइ सव्वलोए ॥ उवेहती लोगमिणं महंतं, बुद्धेऽपमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे तेमनी क्रिया केवी होय ते कहेछे (ते के०) ते वीतराग सम्यक् ज्ञानी ते सावद्यानुष्ठानरूप एवी जे (नूताहि सकाइ डुगुंछमाणा के०) नूत एटले प्राणी तेनी हिसानी शकाये डुगंछित एटले प्राणीनी हिसाने निंदता थका (णेवकुव्वति के०) पोते हिसा करे नही तथा (णकारवति के०) अन्य पाशे हिसा करावे नही उपलक्षण थकी जे हिसा करतो होय तेने अनुमोदे नही तेमज मृषा पोते बोले नही बीजा पाशे बोलावे नही तथा बोलताने अनुमोदन आपे नही एरीते सर्व पचमहाव्रतोने सदाकाल पाले एम (सयाजता के०) सर्व काल यत्नवत एटले पाप थकी निवर्त्ते (विप्पणवतिधीरा के०) सयमने विषे नम्र होय विनयवत होय एवा धैर्यवत सुनट तुल्य ठतो सयमरूप नूमिने विषे कर्मरूप सुनटोने जीतवा समर्थ एवो (विस्सुत्तिधीरायहवतिएगोके०) कोइएक शुद्ध सम्यक् मार्ग जाणी धैर्यवत शूरवीर थाय ते परीसहादिकने जीते ॥ १७ ॥ हवे शु जाणीने सावद्यानुष्ठान नकरे ते कहेछे (म्हरेयपाणे वुड्ढेयपाणे के०) म्हरा एटले बालक ते अहीं पृथिविकायादिक तथा बेंद्रीयादिक लघुजातीना जीवो लेवा तेपण जीवछे अने वुड्ढेय एटले महोटा हस्ति प्रमुख ते पण जीवछे एवुं जाणीने (तेआत्तउपासइ सव्वलोए के०) ते सद्गुजीवने सर्व चौद रज्वात्मक

तिन पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान विदति । येऽप्यन्येऽष्टागनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेद विदधति ॥ ८ ॥

संवछर सुविणं लरकणं च, निमित्तदेह च उपाइयं च ॥ अठग मेयं वहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइ ॥ ए ॥ केई निमित्ता तहिया नवंति, केसि च तं विप्पडिएति णाए॥ तेविज्ज नाव अणहिज्जमाणा, आहसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥ (जाणासु लोगंसि वयति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ–(संवछर के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविण के०) स्वप्न शुनाशुननां शास्त्र (लरकणके०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अन्यतर नेदरूप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहके०) देहना लक्षण मतस तिलकादिक जाणवा (उपाइयंच के०) उत्पात ते नूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठगमेयवहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त नणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइ के०) आलोकने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ सनिपाती यथातथ्य वस्तुने उंजखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियानवंति के०) कोइएक निमित्तियाये पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एटले साचो थायछे वली (केसिचतंविप्पडिएतिणाए के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा (तेविज्जनावंअणहिज्जमाणा के०) ते एवी विद्याना नावनो अन्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण नण्या थका कहेछे के (आहसुविज्जापरिमोरकमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेछेके अमेज आलोक माहे अशेष एटले समस्त नावने जाणीये वैयें ॥ १० ॥

॥ दीपिका–सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नं । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे नवं देहं मषतिलकादि । उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा नौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखदुःखादिसूचकं नि

पुनस्तानि भूतानि यच्छंकयाऽरंनं जुगुप्संति संतइत्येतदाशंक्याह । (डहरेयइत्यादि) ये केचन डहरेति लघव कुंथ्वादय सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणा प्राणिनोये च वृक्षा बादरशरीरिणस्तान्सर्वानप्यात्मतुल्यान् आत्मवत्पश्यति सर्वस्मिन्नपि लोके यावत्प्रमा ण मम तावदेव कुंथोरपि यथावा मम दुःखमननिमतमेव सर्वलोकस्यापि सर्वेषामपि प्राणिना दुःखमुत्पद्यते दुःखाद्विजति । यथाचागम ।पुढविकाएण नते अक्कंते समाणे केरिसय वेयण वेएइइत्याद्या सूत्रालापकाऽति मत्वा तेपि नाक्रमितव्यान संघट्टनीया इत्येव य पश्यति तथा लोकमिम महांतमुत्प्रेक्षते षड्जीवसूक्ष्मबादरभेदैराकुल त्वान्महात । यद्विवाऽनादिनिधनत्वान्महान् लोक । तथाहि । कालतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन न सेत्स्यतीति । यद्यपि द्रव्यत षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशर ज्जुप्रमाणतया सावधिकोलोकस्तथापि कालतोजावतश्चानाद्यनिधनत्वात्पर्यायाणा चा नतत्वान्महान लोकस्तमुत्प्रेक्षतइति । एवच लोकमुत्प्रेक्षमाणोबुद्धोऽवगतव्य । सर्वा णि प्राणिस्थानान्यशाश्वतानि तथा नात्रापसदे संसारे सुखलेशोप्यस्तीत्येव मन्यमानो ऽप्रमत्तेषु संयमानुष्ठायिषु मध्ये तथाजूतएव परिसमताद्व्रजेयदिवा बुद्ध सन् प्रमत्तेषु गृहस्थेषु अप्रमत्त सन् संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ १८ ॥

जे आयउ परउ वा वि णच्चा, अलमप्पणो होति अलं परेसिं ॥
त जोइभूत च सया वसेज्जा, जे पाउकुज्जा अणुवीति धम्मं॥१९॥
अत्ताण जो जाणति जो य लोगं, गइं च जो जाणइ णागइं च॥
जो सासयं जाण असासयं च, जाति मरणं च जणोववायं॥२०॥

अर्थ-(जेआयउपरउवाविणच्चा के०) जे कोइ पोताना आत्माने तथा परना आ त्माने सम्यक् प्रकारे जाणे एटले जेवीरीते पोताना आत्माने जाणे तेवीरीते परना आत्माने पण जाणे (अलमप्पणोहोतिअलंपरेसिं के०) ते पुरुष पोताने उद्धरवाने समर्थ होय अने बीजाने पण उद्धरवाने समर्थ थाय (तजोइभूतचसयावसेज्जा के०) ते ज्योतिभूत प्रकाशवान चंद्रादित्य प्रदीपसमान गुरुने जाणीने सर्व काले सेवे (जेपा उकुज्जाअणुवीतिधम्मं के०) जे विचारीने श्रीवीतराग नाषित धर्मना स्वरूपने सम्यक् प्रकारे करी प्रगट करे ॥ १९ ॥ (अत्ताणजोजाणतिजोयलोग के०) जे पोताना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे जे लोकालोकनु स्वरूप जाणे (गइंचजोजाणइणागइंचके०) जे जीवनी गति आगति जाणे अथवा चारे गतिनुं स्वरूप जाणे तथा अनागतनु स्वरूप जाणे एटले ज्या गयो थको जीव फरी नआवे एवी जे मोक्षगति तेना स्वरूपने जाणे (जोसासयजाणअ

पर्यासि व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यभिचार समुपलभ्यते किंपुनस्तीर्थिकाना । तदेव निमित्तशास्त्रस्य व्यभिचारमुपलभ्यते ऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावमनधीयानास्ततोनिमित्तं तथा चान्यथा च भवतीति मत्वा ते (आहंसुविज्ञापलिमोरकमेव) विद्याया श्रुतस्य व्यभिचारेण तस्य परिमोक्ष परित्यागमाहुरुक्तवत । यदिवा क्रियायाश्चाभावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्ष सर्वकर्मच्युतिलक्षणमाहुरिति । क्वचिच्चरमपादस्यैव पाठ (जाणासुलोगसिवयतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोकमस्मिन् वा लोके भावान् स्वय जानीमएव मंदाजडावदति । नच निमित्तस्य तथ्यता । तथाहि । कस्यचित्क्षचित्क्षुतेऽपि गच्छत कार्यसिद्धिदर्शनाच्छकुनसद्भावेपि कार्यविघातदर्शनादतोनिमित्तबलेनादेशविधायिना मृषावादएव केवलमिति । नैतदस्ति । नहि सम्यगधीतस्य श्रुतस्यार्थे विसंवादोऽस्ति । यदपि षट्स्थानपतितत्वमुद्घोष्यते तदपि पुरुषाश्रितक्षयोपशमवशेन । नच प्रमाणानाभासव्यभिचारे सम्यक्प्रमाणव्यभिचाराशंका कर्तु युज्यते । तथाहि । मरुमरीचिकानिचये जलग्राहि प्रत्यक्षं व्यभिचरतीति कृत्वा किंसत्यजलग्राहिणोपि प्रत्यक्षस्य व्यभिचारोयुक्तिसंगतोभवति । नहि मशकवर्तिरग्निसिद्धावुपदिश्यमाना व्यभिचारिणीति सत्यधूमस्यापि व्यभिचारोनहि सुविवेचितकार्यकारण व्यभिचरतीति । ततश्च प्रमातुरयमपराधोन प्रमाणस्यैव सुविवेचित निमित्त श्रुतमपि न व्यभिचरतीति । यश्च क्षुतेपि कार्यसिद्धिदर्शनेन व्यभिचार शक्यते सोऽनुपपन्न । तथाहि । कार्याक्षुतात् क्षुतेपि गच्छत कार्यसिद्धि सापातराळेतरशोभननिमित्तबलात्सजातेत्येवमवगतव्यं । शोभननिमित्तप्रस्थितस्यापीतरनिमित्तबलात्कार्यव्याघातइति । तथाच श्रुति । किल बुद्ध स्वशिष्यानाहूयोक्तवान् यथा द्वादशवार्षिकमत्र दुर्भिक्षं भविष्यतीत्यतोदेशांतराणि गच्छत यूय ते तद्वचनाच्छतस्तेनैव प्रतिषिद्धायथा मागच्छत यूयमिहाद्यैव पुण्यवान् महासत्व सजातस्तत्प्रभावात्सुभिक्ष भविष्यति । तदेवमतरा परनिमित्तसद्भावात्तद्व्यभिचारशंकेति स्थित ॥ १० ॥

ते एवमरकंति समिच्च लोगं, तहा तहा समणा माहणा य ॥
सय कडं णन्नकड च दुक्ख, आहंसुविज्ञा चरण पमोरकं ॥ ११ ॥
ते चरकुलोगसिह णायगा उ, मग्गाणुसासंति हितं पयाण ॥ त
हा तहा सासयमाहु लोए, जसी पया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे क्रियावादीनो मत दूपवेछे (तेएवमरकतिसमिच्चलोग के०) जे एकली मात्र क्रिया करवा थकीज मोक्षनी वांछना करेछे तेक्रियावादि एवीरीते आख्याति एट

क्रिया ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । (अत्ताणमित्यादि) योह्यात्मानं परलोकयायिनं शरीरा व्यतिरिक्तं सुखदुःखाधार जानाति यश्चात्महितेषु प्रवर्तते सञ्चात्मज्ञोभवति । ये न चात्मा यथावस्थितस्वरूपोऽहप्रत्ययग्राह्योभिज्ञातोभवति तेनैवायं सर्वोपि लोक प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपोविदितोभवति सएव चात्मज्ञोस्तीत्यादिक्रियावाद नापितुमर्हतीति द्वितीयवृत्तातस्य क्रिया । यश्च लोक चराचर वैशाखस्थानस्थकटिस्थकरयुग्मपुरुषा कार चशब्दादलोक चानंताकाशास्तिकायमात्र जानाति । यश्च जीवानामागतिमागमनं कुत समागतानारकास्तिर्यंचोमनुष्यादेवा केर्वा कर्मनिर्नारकादित्वेनोत्पद्यंतइत्येवं यो जानाति । तथाऽनागत चाऽनागमन च कुत्र गतानां नागमन नवति चकारात्तज्जमनोपायं च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक योजानाति । तत्रानागति सिद्धिरशेषकर्मच्युतिरूपा लोकाग्रा काशदेशस्थानरूपा वा ग्राह्या साच सादिरपर्यवसाना । यश्च शाश्वत नित्य सर्ववस्तुजातं द्रव्यास्तिकनयाश्रयादशाश्वतं वा नित्यं प्रतिक्षणविनाशरूप पर्यायनयाश्रयणात् चकारा न्नित्यानित्यं चोभयाकार सर्वमपि वस्तुजात योजानाति । तथाहि । आगम । णेरइया दव्वठ्याएसासयाभावठ्याएअसासया । एवमन्येपि तिर्यगादयोद्रष्टव्या । अथवा निर्वाण शाश्वत ससारोऽशाश्वतस्तत्गताना ससारिणां स्वकृतकर्मवशगानामितश्चेतश्च गमनादिति । तथा जातिमुत्पत्ति नारकतिर्यङ्मनुष्यामरजन्मलक्षणा च मरणं वाऽऽयुष्कक्षयलक्षण । त था जायतइति जना सत्त्वास्तेषामुपपात जानाति सच नारकदेवयोर्भवतीति । अत्रच ज न्मचितायामसुमतामुत्पत्तिस्थान योनिर्निरूपणीया साच सचित्ताचित्तमिश्राच तथा शीता ष्णा मिश्राच तथा सवृता विवृता मिश्राचेत्येव सप्तविंशतिविधेति । मरण पुनस्तिर्यङ्म नुष्ययोश्च्यवन ज्योतिष्कवैमानिकानामुद्वर्तन भवनपतिव्यतरनारकाणामिति ॥ २० ॥

अहो वि सत्ताण विउट्टण च, जो आसवं जाणति संवर च ॥
दुक्ख च जो जाणति निज्जर च, सो भासिउ मरिहइ किरियवाद
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो, गंधेसु रसेसु अद्दुस्समा
णे ॥ णो जीवितं णो मरणाहिकंखी, आयाणगुत्ते वलया विमु
क्के तिबेमि ॥ २२ ॥ इतिश्री समवसरणमध्ययनं द्वादशम समत्त ॥

अर्थ-(अहोविसत्ताण विउट्टणच के०) अधोगतियें नरकादिकने विषे अशुभ कर्म ने विपाके जीवने शरीर पीडादिक सताप उपजे छे ते सर्व जाणे (जोआसवजाणतिसव रच के०) जे आश्रव इंद्रिय कषाय योग अने अव्रत इत्यादिक सर्व जाणे तथा सवर ते समिति गुप्ति अने परिसह इत्यादिक सर्व जाणे (दुक्कचजोजाणतिनिज्जरच के०)

तथाहि । तत्र तीर्थंकराहारकवर्ज्या सर्वएव कर्मबंधा. सनाय्यते । कर्मबंधाच्च संसारवृद्धि । अथवा यथायथा रागद्वेषवृद्धिस्तथा तथा संसारोपि शाश्वतइत्याह । यस्मिन्संसारे प्रजाजतव द्देमानव सप्रगाढा स्थिता ॥ १२ ॥

॥ टीका—साप्रतं क्रियावादिमत दुदूषयिषुस्तन्मतमाविष्कुर्वन्नाह । (तएवमक्खंती त्यादि) ये क्रियातएव ज्ञाननिरपेक्षायादीक्षादिलक्षणायामोक्षमिछति तेएवमाख्यांति तद्यथा । अस्ति माता पिता अस्ति सुचीर्णस्य कर्मण फलमिति । किंकृत्वा तएव कथयंति क्रियातएव सर्वं सिध्यतीति स्वाभिप्रायेण लोक स्थावरजंगमात्मक समेत्य ज्ञात्वा किल वय यथावस्थितवस्तुनोज्ञातारइत्येवमभ्युपगम्य सर्वमस्त्येवेत्येव सावधारण प्रतिपादयंति न कथंचिन्नास्तीति कथमाख्याति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथा तथा स्वर्गनरकादिक फलमिति ते च श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सिद्धिमिछति । किंच यत् किमपि ससारे दु ख तथा सुख च तत्सर्वं स्वयमेवात्मना कृत नान्येन कालेश्वरादिना नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र ह्यक्रियात्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखदु खयो सभव स्यादेवच कृतनाशाकृतागमौ स्याता। अत्रोच्यते । सत्यमस्त्यात्मसुखदु खादिकं । नन्वस्त्येव। तथाहि। यद्यस्त्येव सावधारणमुच्येत ततश्च न कथचिन्नास्तीत्यापन्नमेवच सति सर्वं सर्वात्मकमापद्येत । तथाच सर्वलोकस्य व्यवहारोच्छेदक स्यात् । नच ज्ञानरहिताया क्रियाया सिद्धिस्तदुपायपरिज्ञानाभावात् । नचोपायमतरेणोपेयमवाप्यतइति प्रतीतं । सर्वा हि क्रिया ज्ञानवत्येव फलवत्युपलद्यते । उक्तंच । ज्ञानस्य ज्ञानिना चैव निदाप्रद्वेषमत्सरै ॥ उपेक्षितैश्च विमैश्च ज्ञानम कर्म वध्यते ॥ १ ॥ पढमं नाणं तउ दया, एव चिठति सव्वसजए ॥ अन्नाणी किं काही, किंवा माहीछेयपावय ॥ १ ॥ इत्यतोज्ञानस्यापि प्राधान्य नापि ज्ञानादेवसिद्धि क्रियारहितस्य पगोरिव कार्यसिद्धेरनुपपत्तिरित्यालोच्याह । (आहसुविज्जाचरण पमोक्खंति) न ज्ञाननिरपेक्षाया क्रियाया सिद्धिरथस्येव नापि क्रियाविकलस्य ज्ञानस्य पगोरित्येवमवगम्याहुरुक्तवतस्तीर्थकरगणधरादय । किमाहु । मोक्षं । कथ । विद्या च ज्ञानं चरणच क्रिया ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति विगृह्यार्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच् । असौ विद्याचरणोमोक्ष । ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थ । तमेव साध्य मोक्ष प्रतिपादयति । यदिवान्यथा वा पातनिका केनैतानि समवसरणानि प्रतिपादितानि । यच्चोक्त यच्च वक्ष्यते इत्येतदाशंक्याह । (तेएवमक्खतीत्यादि) अनिरुद्धा क्वचिदप्यस्खलिता प्रज्ञायते ऽनयेति प्रज्ञा ज्ञानं येषा तीर्थकृता तेऽनिरुद्धप्रज्ञास्तएवमनतरोक्तया प्रक्रियया सम्यगाख्याति प्रतिपादयति । लोक चतुर्दशरज्ज्वात्मक स्थावरजंगमाख्यं वा समेत्य केवलज्ञानेन करतलामलकन्यायेन ज्ञात्वा

गनिरोधस्वनाव चकारात्पुण्यपापे च योजानीते तथा दुःखमसातोदयरूप तत्कारण च योजानाति सुख च तद्विपर्ययनूत योजानाति तपसा निर्जरांच । इदमुक्तं नवति । य कर्मबंधहेतून् तद्विपर्यासहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । तथाहि । यथाप्रकारायावत, स सारावेशहेतव ॥ तावतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतव ॥ १ ॥ सएव परमार्थतोना पितु वक्तुमर्हति । किंनदित्याह । क्रियावादमस्ति जीवोऽस्ति पुण्यमस्ति च पूर्वाचरितस्य कर्मण फलमित्येव वादमिति । तथाहि।जीवाजीवाश्रवसंवरबंधपुण्यपापनिर्जरामोक्षरूपान वापि पदार्था श्लोकद्वयेनोपात्तास्तत्र यश्चात्मान जानातीत्यनेन जीवपदार्थोलोकमि त्यनेनाजीवपदार्थस्तथा गत्या गति शाश्वतेत्यादिनानयोरेव स्वनावोपदर्शनं कृत । त थाश्रवसंवरौ स्वरूपेणैवोपात्तौ । दुःखमित्यनेन तु बंधपुण्यपापानि गृहीतानि तदविना नावित्वाद्दुःखस्य । निर्जरायास्तु स्वानिधानेनैवोपादानं तत्फलनूतस्य मोक्षस्योपादानं इ ष्टव्यमिति । तदेवमेतावतएव पदार्थास्तदन्युपगमे नवास्तीत्यादिक क्रियावादोऽन्युपग तोनवतीति । यश्चैतान् पदार्थान् जानात्यन्युपगह्नसपरमार्थत क्रियावाद जाना ति । ननुचाऽपरदर्शनोक्तपदार्थपरिज्ञानेन सम्यक्त्वादिक कस्मान्नान्युपगम्यते तदुक्तपदा र्थानामेवाघटमानत्वात् । तथाहि । नैयायिकदर्शनेन तावत्प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृ ष्टातसिद्धातावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितडाहेत्वानासछलजातिनिग्रहस्थानानीत्येते षो डश पदार्थाअनिहिता । तत्र हेयोपादेयप्रवृत्तिरूपतया येन पदार्थपरिछित्ति क्रियते त त्प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाण । तच्च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दनेदाच्चतुर्धा । तत्रेंडियपदार्थ संनिकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेशमव्यनिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्षं । तदत्रेंडियार्थयोर्य स बंधस्तस्माद्युत्पन्न नानिव्यक्त ज्ञान न सुखादिकमव्यपदेश्यमिति । व्यपदेशत्वेनाशब्द प्रातेरव्यनिचारि तद्विचंद्रज्ञानवद्यनिचरतीति व्यवसायात्मकमिति । निश्चयात्मक प्र त्यक्ष तत्रास्य प्रत्यक्षता न युज्यते । तथाहि । यत्रात्मार्थग्रहणप्रति साक्षाद्व्याप्रियते तदेव प्रत्यक्ष । तच्चावधिमन पर्यायकेवलात्मक। एतच्चापरोपाधिद्वारेण प्रवृत्तेरनुमानवत्प रोक्षमिति । उपचारप्रत्यक्ष तु स्यान्नचोपचारस्तत्त्वचिंताया व्याप्रियतइति। अनुमानमपि पूर्ववछेषवत्सामान्यतोदृष्टमिति त्रिधा । तत्र कारणात्कार्यानुमान पूर्ववत्कार्यात्कारणानु मान शेषवत्सामान्यतोदृष्टात्चूतमेक विकसित दृष्ट्वा पुष्पिताश्चूताजगतीति । यदिवा दे वदत्तादौ गतिपूर्वका स्थानात् स्थानातरावाप्ति दृष्ट्वाऽऽदित्ये गत्यनुमानमिति । तत्राप्यन्य थानुपपत्तिरेव गमिका न कारणादिक तयाविना कारणस्य कार्यप्रति व्यनिचारात् । य त्रतु सा विद्यते तत्र कार्यकारणादिव्यतिरेकेणापि गम्यगमकनावोदृष्ट । तद्यथा । नवि ष्यति शकटोदय कृत्तिकादर्शनादिति । तदुक्त । अन्यथानुपपन्नत्व यत्र तत्र त्रयेण किं॥ नान्यथाऽनुपपन्नत्व यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ अपिच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकस्या

अर्थ–हवे ते नाना प्रकार कहेछे (जेरक्कसावाजमलोइयावा के०) जे राक्षस व्यंतरादिक यमलोकिका जे परमाधार्मिकादिक देवो (जेवासुरा के०) जे वैमानिक ज्योतिषादिक देवो (गधव्वाय के०) गांधर्व एटले विद्याधरादिक तथा (कायके०) पृथिविकायादिक (आगासगामीय के०) आकाशगामि एवा पक्षीओ तथा वायुप्रमुख तथा (पुढोसियाजे के०) पृथिविने विषे आश्रित एवा जे अनेक बेंद्रियादिक जीव ते सर्वे (पुणोपुणोविप्परियासुवति के०) पोत पोताना कर्मे करी वलीवली चतुर्गतिक रूप ससारमा परिभ्रमण करेछे ॥ १३ ॥ (जमाहुउंहसलिलंअपारग के०) श्रीतीर्थंकर गणधरादिक ते ए जे उंघ एटले ससार तेने अपार स्वयभूरमण समुद्र सरखो कहेछे (जाणाहि के०) एम तु जाण अहीं ण वाक्यालंकारेछे (नवगहण के०) ते समान ससार गहनछे (डुमोरक के०) डुर्मोक्ष एटले अत्यत डुस्तरछे (ज सीविसन्ना विसयगणाहि के०) अस्तिवादीने पणजो एमछे एटले सम्यक् प्रवर्तकने पण आ अपार ससारसमुद्र अत्यंत डुस्तर छे तो नास्तिकवादीने तो अत्यत डुस्तर होय एम। केवुज शु जे आ ससारने विषे सावद्य धर्मना प्रवर्त्तक कुमार्गे पतित पाचेंद्रिय सबधी विषयना सेवनार तथा अगना जे स्त्री तेने वश पड्याछता रहेछे ते (डुहउविलोयअणुसचरति के०) त्रस स्थावररूप बे प्रकारनु जे लोक तेमाहे राग द्वेषकरीपरिभ्रमणकरे

॥ दीपिका–ये राक्षसा । राक्षसग्रहणात्सर्वे व्यतराज्ञेया । यमलौकिकात्मानोऽवर्ष्यादयोनवनपतय । येच सुरावैमानिका । चशब्दाज्ज्योतिष्का । ये गधर्वाविद्याधरा । काया पृथिवीकायादय षट् । पुन प्रकारातरेण जीवान् आकाशगामिन सप्राप्तलब्धय श्चतुर्विद्यादेवाविद्याधरा पक्षिणोवायवश्च । ये च पृथिव्याश्रिता पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतु पचेंद्रियास्ते सर्वेपि कर्मभि ससारे विपर्यास परिभ्रमणमुपयाति गछति ॥ १३ ॥ य ससार समुद्रमाहुर्जिना । किंभूत । स्वयभुरमणसलिलौघवदपार जानीहि त्व । णमितिवाक्यालंकारे । नवगहनं ससाराख्यं डु खेन मुच्यतइति डुर्मोक्ष डुस्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकाना । यस्मिन् ससारे सावद्याचारे विषसुआसक्ताविषयप्रधानाअगनाविषयागनास्तानिर्वशीकृताद्विधापि स्थावरजगम लोकमनुचरति गछति ससारे भ्रमतीत्यर्थ ॥ १४ ॥

॥ टीका–लेशतोजतुभेदप्रदर्शनद्वारेण तत्पर्यटनमाह । (जेरक्कसाइत्यादि) ये केचन व्यतरभेदाराक्षसात्मान । तद्ग्रहणाच्च सर्वेपि व्यंतरा गृह्यते । तथा यमलौकिकाश्चमनोऽवर्ष्यादयस्तडुपलक्षणात्सर्वेभवनपतयस्तथा येच सुरा सौधर्मादिवैमानिका । चशब्दाज्ज्योतिष्का सूर्यादयस्तथा ये गांधर्वाविद्याधराव्यतरविशेषावा । तद्ग्रहणं च

इति यत्सिद्धावन्यस्यार्थस्यानुषंगेण सिद्धिः सोधिकरणसिद्धांत । यथेंद्रियव्यतिरिक्तोज्ञानात्माऽस्ति दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । तत्रानुषंगिणोर्थाइंद्रियनानात्व नियतविषयाणींद्रियाणि स्वविषयग्रहणलिंगानि च ज्ञातुर्ज्ञानसाधनानि स्पर्शादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणमनियतविषयाश्चेतनाइति । पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थासिध्यंति नैतैर्विना पूर्वार्थः संभवतीति । अपरीक्षितार्थाभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांत । तद्यथा । किंशब्दइति विचारे कश्चिदाह । अस्तु द्रव्य शब्दःसतु किंनित्योऽथानित्यइत्येव विचार । सचायं चतुर्विधोपि सिद्धांतोन ज्ञानविशेषादतिरिच्यते । ज्ञानविशेषस्यात्मगुणत्वाद्गुणस्य च गुणिग्रहणेन ग्रहणादपृथगुपादानमिति । अवयवा प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि । तत्र साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञाय नित्य शब्दोऽनित्योवेति । हिनोति गमयति प्रतिज्ञातमर्थमिति हेतु । तथोत्पत्तिधर्मकत्वात्साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावे दृष्टांत । उदाहरण यथा घटइति। वैधर्म्योदाहरण यदि नित्य न भवति तदुत्पत्तिमदपि न भवति यथाकाशमिति । तथा न तथेति वा पक्षधर्मोपसंहारउपनय । तद्यथा । अनित्य शब्द कृतकत्वादघटवत्तथाचाय । अनित्यत्वाभावे कृतकत्वमपि नभवत्याकाशवत् तथाऽयमिति । प्रतिज्ञाहेत्वो पुनर्वचन निगमन तस्मादनित्यइति । तत्रामी पंचाप्यवयवायदि शब्दमात्रं तत शब्दस्य पौद्गलिकत्वात्पुद्गलाना चाजीवग्रहणेन ग्रहणान्नपृथगुपादान न्याय्यमथतज्ज्ञान ज्ञान ततोजीवग्रहणेनैवोपादानमिति । ज्ञानविशेषपदार्थताभ्युपगमे च पदार्थबहुत्व स्यादनेकप्रकारत्वाज्ज्ञानविशेषाणामिति। सशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्यय सदर्थपर्यालोचनात्मकस्तर्क । यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेणवेत्ययमपि ज्ञानविशेषएव । नच ज्ञानविशेषाणां ज्ञातुरभिन्नाना पृथक्पदार्थपरिकल्पन समनुजानते विद्वांस । संशयतर्काभ्यामुत्तरकालभावी निश्चयात्मक प्रत्यय ।निर्णयोयमपि प्राग्वन्न ज्ञानादतिरिच्यते । किंचास्य निश्चयात्मकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणांतर्भावान्न पृथङ्निर्देशोन्याय्यइति । तिस्र कथावादोजल्पोवितंडा चेति । तत्र प्रमाणतर्कसाधनोपालंभ सिद्धांताविरुद्ध पंचावयवोपपन्न प्रतिपक्षपरिग्रहोवाद । सच तत्त्वज्ञानार्थं शिष्याचार्ययोर्भवति । सएव विजिगीषुणा सार्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालंभोजल्प । सएव प्रतिपक्षस्थापनाहीनोवितंडेति । तत्रासा तिसृणामपि कथाना भेदएव नोपपद्यते यतस्तत्त्वचिंतायां तत्त्वनिर्णयार्थं वादोविधेयोन छलजल्पादिना तत्त्वागम कर्तुं पार्यते । छलादिक हि परवचनार्थमुपन्यस्यते । नच तेन तत्त्वावगतिरिति।सत्यपि भेदे नैषा पदार्थता यतोयदेव परमार्थतोवस्तुवृत्त्या वस्त्वस्ति तदेव परमार्थतयाऽभ्युपगंतुं युक्त । वादास्तु पुरुषेच्छावशेन भवतोऽनियतावर्तंते ते न तेषां परमार्थतेति । किंच पुरुषेच्छानुविधायिनोवादा कुक्कुटलावकादिष्वपि पक्षप्रति

(लोगस्सजाणतितहागयाइ के०) तथागत एटले यथावस्थित जेमछे तेवीरीते लोक माहे मर्व जीवोना नावी सुखडु खादिकना जाण एवा थाय परतु विनंग ज्ञानीनी पेरे आवुप.वु नजाणे (णेतारोअन्नेसिअणन्नणेया के०) एवा जीवो अन्य जीवोने ससारनो पार पमाडे परतु तेने अन्य कोइ तत्वनो देखाडनार नथाय कितुते हुडतिनिश्चे पोतेज (बुध्धाके०) तत्वना जाण थका (अतकडानवतिके०) कर्मनो अतकरनार होयछे ॥१६॥

॥ दीपिका–कर्मणा सावद्यारन्नेण कर्म पाप न क्षपयति बालामूढा । अकर्मणा आश्रवनिरोधेन तु कर्म क्षपयति धीरामहासत्त्वा । मेधाविन प्रज्ञावतोलोनमय परि ग्रहमेवातीतालोनातीतावीतरागा सतोपिण सतुष्टास्ते एवविधाअवीतरागाअपि पा प कर्म न कुर्वति । लोनन्नयादतीताइति क्वचित्पाठ । लोनश्च नय च लोना‌ह्वा नय तस्मादतीताअतएव सतोपिणइति । लोनाईनाव दर्शयताऽपरकपायेन्योनयस्याधिक त्वमुक्त ॥ १५ ॥ ते वीतरागाअतीतानि पूर्वजन्मरुतानि प्रत्युत्पन्नानि वर्तमानानि अ नागतान्यागामिनवनावीनि सुखडु खानि लोकस्य प्राणिगणस्य तथागतानि यथास्थिता नि जानति ते जिना श्रुतकेवलिनोवा ऽन्येपा प्राणिना मोक्षंप्रति नेतार प्रापकास्तेच स्वयबुध्दत्वादन्येन न नीयते तत्त्वाववोधं कार्यतइत्यनन्यनेयास्तेबुध्दाज्ञाततत्त्वास्तीर्थकर गणधरादयोहुनिश्चितमतकरा ससारपारगान्नवति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णकम्मणेत्यादि) ते एवमसत्समयसरणाश्रितामिथ्यात्वादि निर्दोषैरनिनूता सावद्येतरविशेपानन्निज्ञा सत कर्मक्षपणार्थमप्युद्यतानिर्विवेकतया सावद्यमेव कर्म कुर्वते । नच कर्मणा सावद्यारंनेण कर्म पाप क्षपयत्यपनयत्यज्ञत्वाद्वाला इव बालास्तइति । यथाच कर्म क्षिप्यते तथा दर्शयति । अकर्मणात्वाश्रवनिरोधेन तु अतश शैलेश्यवस्थाया कर्म क्षपयति धीरामहासत्त्वा सद्वैद्याइव चिकित्सयाऽऽमयानि ति । मेधा प्रज्ञा विद्यते येपाते मेधाविनोहिताहितप्राप्तिपरिहारानिज्ञालोनमय परिग्रहमे वातीता परिग्रहातिक्रमाल्लोनातीतावीतरागाऽत्यर्थ । सतोपिणोयेन केनचित्सतुष्टाअ वीतरागाअपीति । यदिवा यतएवाऽतीतलोनाअतएव सतोपिणइति । तएवन्नूतान्नगव त पापमसदनुष्ठानापादित कर्म न कुर्वति नाददति । क्वचित्पाठ । लोनन्नयादतीता । लोनश्च नय च समाहारद्वद्व । लोनाद्वा नय तस्मादतीता संतोपिणइति । न पुनरु क्ता शंका विधेयेत्यतोलोनातीतत्वेन प्रतिपेधाशोवर्शित । सतोपिणइत्यनेन च विध्यश इति । यदिवा लोनातीतग्रहणेन समस्तलोनानाव । संतोपिणइत्यनेनतु सत्यप्यवीतरा गत्वेनोत्कटलोनाइति । लोनानाव दर्शयन्नपरकपायेन्योलोनस्य प्राधान्यमाह । येच लो नातीतास्तेऽवश्य पाप न कुर्वतइति स्थित ॥ १५ ॥ येच लोनातीतास्ते किन्नूतान्नव

ज्ञात्यतरं हि सइत्यादि । अथ रूपरसगंधस्पर्शारूपिद्रव्यवृत्तेर्विशेषगुणास्तथा संख्या परिमाणानि पृथक्त्व संयोगविजागौ परत्वापरत्वे इत्येते सामान्यगुणा सर्वद्रव्यवृत्तित्वा त् । तथा बुद्धि सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराआत्मगुणा । गुरुत्व पृथिव्यु दकयोर्द्रव्यस्वजावत्वेन परोपाधिकत्व पृथिव्युदकाग्निषु स्नेहोऽजस्येव वेगाख्य संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव आकाशगुण शब्दइति । तत्र संख्यादय सामान्यगुणारूपादिवद्द्रव्यस्व जावत्वेन परोपाधिकत्वाद्गुणाएव न जवति । अथापि स्युस्तथापि न गुणानापृथक्त्व व्यवस्था । तत्पृथक्त्वजावे द्रव्यस्वरूपहानेर्गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति कृत्वा नातरीयक तया द्रव्यग्रहणेनैव ग्रहण न्याय्यमिति न पृथग्जाव । किंच तस्य जावस्तत्वमित्युच्यते। जावप्रत्ययश्च यस्य गुणस्य हि जावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदजिधाने त्वतलावित्यनेन जव ति । तत्र घटोरक्तउदकस्याहारकोजलवान् सर्वैरेव घटउच्यते । अत्र च घटस्य जावोघट त्व रक्तस्य जावोरक्तत्व आहारकस्यजावआहारकत्व जलवतोजावोजलवत्वमित्यत्र घटसा मान्यरक्तगुणक्रियाद्रव्यसबधरूपाणा गुणाना सद्भावात् द्रव्ये पृथुबुध्नाकारउदकाद्याहरण क्षमे कुटकाख्ये शब्दस्य घटादेरजिनिवेशस्तत्र त्वतलाविह रक्ताख्यकोगुणोयत्सद्भावात्कत रश्चतद् द्रव्य यत्र शब्दनिवेशोयेन जावप्रत्यय स्यादिति । किमिदानी रक्तस्य जवोरक्तत्व मिति न जवितव्य जवितव्यमुपचारेण । तथाहि । रक्तइत्येतद्द्रव्यत्वेनोपचर्य तस्य सामा न्य जावइति रक्तत्वमिति । नचोपचारस्तत्वचितायामुपयुज्यते शब्दसिद्धावेव तस्य कृता र्थत्वादिति । शब्दश्चाकाशस्य गुणएव न जवति तस्य पौद्गलिकत्वादाकाशस्य चामूर्तत्वा दिति । शेष तु प्रक्रियामात्र न साधनदूषणयोरग । क्रियापि द्रव्यसमवायिनी गुणवत्पृथ गाश्रयितु न युक्तेति । अथ सामान्य तद्द्विधा परमपरच।तत्र पर महासत्ताख्यं द्रव्यादि पदार्थव्यापि । तथाचोक्त । सदिति यतोद्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता अपर च द्रव्यत्वगुण त्वकर्मत्वात्मक । तत्र न तावन्महासत्ताया पृथक्पदार्थता युज्यते यतस्तस्या य सदि ति प्रत्यय सकिमपरसत्तानिबधनउत स्वतएव तत् । यद्यपरसत्तानिबधनस्तत्राप्ययमेव विकल्पोऽतोऽनवस्था । अथ स्वतएव ततस्तद् द्रव्यादिष्वपि स्वतएव सत्प्रत्ययोजविष्य तीति किमपरसत्तयाऽजागलस्तनकल्पया विकल्पितया। किंच द्रव्यादीना किं सता सत्तया सत्प्रत्ययउताऽसतां तत् । यदि सता स्वतएव सत्प्रत्ययोजविष्यति किंतया । असत्यप क्षेतु शशविषाणादिष्वपि सत्तायोगात्सत्प्रत्यय स्यादिति । तथाचोक्त । स्वतोर्थां सतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसगतइत्यादि । एतदे व दूषणमपरसामान्येऽप्यायोज्य तुल्ययोगक्षेमत्वात् । किंचास्माजिरपि सामान्यविशेष रूपत्वाद्वस्तुन कथंचित्तदिष्यतएवेति तस्यच कथंचित्तदव्यतिरेकात्तद्द्रव्यग्रहणेनैव ग्रह णमिति । अथ विशेषास्ते चात्यंतव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वेन परैराश्रीयते । तत्रेद चित्यते ।

लोकने विषे पोतानाआत्म समान देखे (उवेहती लोगमिण महत के०) ए महात लोक एटले ससार तेने सारीरीते आलोचीने सर्वस्थानक अशाश्वता जाणीने आ स सारमा कोइ सुख नथी एवो जाणीने (बुद्ध के०) जे पंडित तत्वना जाण होय ते (अप्पमत्तेसुपरिव्वएज्जा के०) अप्रमत्तपणे सयमने विषे प्रवर्त्ते शुद्धो सयम पाले १ ८

॥ दीपिका—ते तीर्थंकरादय पाप कर्म नैव कुर्वंति स्वयं । नवाऽन्येन कारयंति कुर्वं तमन्य नानुजानंति भूतानिशकया प्राणिघातजयेन पाप कर्म जुगुप्समाना । एव वि धास्ते सदा सर्वकालं यता सयताविप्रणमति विविधं सयमानुष्ठान प्रति प्रव्हीनवति तत्परा स्युर्धीरा । तथा एके केचन गुरुकर्माणो (विणत्ति) विज्ञप्तिर्ज्ञान तन्मात्रेणैव वीरानानुष्ठानेन स्यु । नच ज्ञानमात्रेण सिद्धि । यत । अधीत्य शास्त्राणि नवति मू र्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुष सविद्वान् ॥ सचिंत्यतामौषधमातुर हि न ज्ञानमात्रेण क रोत्यरोगम् ॥ १ ॥ १७ ॥—ये डहरालघव कुंथ्वाद्या सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणा प्राणि नोये च वृद्धाबादरास्तान् सर्वानात्मवत्पश्यति सर्वलोके । तथा लोकमिम षड्जीवैरा कुलत्वान्महातमुत्प्रेक्षते । अनाद्यनतत्वाद्वा महात । यतोनव्याअपि केचन सर्वेणा पि कालेन नमेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यत षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुमानत्वा त्परिमितोलोकस्तथापि कालतोऽनाद्यनतत्वाभावत पर्यायाणामंतत्वान्महान् लोक स्तमुत्प्रेक्षते । बुद्धोज्ञाततत्त्वोऽप्रमत्तेषु यतिषु तथाभूतएव परिव्रजेत्संयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका—यावदद्यापि भवात न कुर्वंति तावत्प्रतिपेध्यमश दर्शयितुमाह । (तेणेव कुव्वतीत्यादि) ते प्रत्यक्षज्ञानिन परोक्षज्ञानिनोवा विदितवेद्या सावद्यमनुष्ठानं भूतोप मर्दाभिशकया पाप कर्म जुगुप्सत सतोन स्वत कुर्वंति नाप्यन्येन कारयति कुर्वंतमप्य पर नानुमन्यन्ते । तथा स्वतोन मृषावाद जल्पंति नान्येन जल्पयति नाप्यपर जल्पत मनुजानत्येवमन्यान्यपि महाव्रतान्यायोज्यानीति । तदेव सदा सर्वकाल यता सयता पापानुष्ठानान्निवृत्ताविविध सयमानुष्ठान प्रति प्रणमति प्रव्हीनवति । के ते वीरामहापु रुषाइति । तथैकेचन हेयोपादेय विज्ञायाऽपिशब्दात्सम्यक् परिज्ञाय वा तदेव नि शक य ज्जिनै प्रवेदितमित्येव कृतनिश्चया कर्मणि विदारयितव्ये वीराभवति । यदिवा परीष होपसर्गानीकविजया द्वीरा इति । पागतरवा (विसुत्ति वीराय नवति एगे) एके केचन गुरुकर्माणोऽल्पसत्त्वा विज्ञप्तिर्ज्ञान तन्मात्रेणैव वीरानत्वनुष्ठाने नच ज्ञानादेवाऽभिलषिता वाप्तिरुपजायते । तथाहि । अधीत्यशास्त्राणि नवति मूर्खायस्तुक्रियावान् पुरुष स विद्वान् ॥ सचिंत्यतामौषधमातुर हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोग ॥ १ ॥ १७ ॥ कानि

क्तिक्रमेव स्वदर्शनानुरागेणाभ्युपगम्यतइति । आत्मनश्चाकर्तृत्वाभ्युपगमे कृतनाशोऽकृतागमश्च स्यात् । बंधमोक्षाभावश्च निर्गुणत्वे च ज्ञानशून्यतापत्तिरित्यतोबालप्रलापमात्रं । प्रकृतेश्चाचेतनायाआत्मार्थं प्रवृत्तिर्युक्तिविकलेति । अथ बौद्धमतं निरूप्यते । तत्रहि पदार्था द्वादशायतनानि । तद्यथा । चक्षुरादीनि पंच रूपादयश्च विषया पंच शब्दायतन धर्मायतनंच धर्मा सुखादयो द्वादशायतनपरिछेदकत्वे प्रत्यक्षानुमाने द्वेएव प्रधाने प्रमाणे । तत्र चक्षुरादीद्रियाण्यजीवग्रहणेनैवोपात्तानि । भावेंद्रियाणितु जीवग्रहणेनेति । रूपादयश्च विषयाअजीवापादनेनोपात्ताव पृथगुपादातव्या । शब्दायतनं तु पौज्ञलिकत्वाछब्दस्याजीवग्रहणेन ग्रहणं । नच प्रतिव्यक्ति पृथक्पदार्थता युक्तिसंगतेति । धर्मात्मकं सुखं डुखंच यद्यसातोदयरूपं ततोजीवगुणत्वाज्जीवेंतर्भाव । अथ तत्कारणं कर्म तत पौज्ञलिकत्वादजीवइति । प्रत्यक्षं च तैर्निर्विकल्पकमिष्यते तच्चानिश्चयात्मकतया प्रवृत्तिनिवृत्त्योरनंगमित्यप्रमाणमेव । तदप्रामाण्ये तत्पूर्वकत्वादनुमानमपीति । शेषस्त्वाक्षेपपरिहारोन्यत्र सुविचारितइति नेह प्रतन्यतइत्यनया दिशा मीमांसकलोकायतमतान्निर्हितत्वनिराकरणं सुबुध्या विधेयं । तयोरत्यंतलोकविरुद्धपदार्थाना श्रयणान्न साक्षादुपन्यास कृतइति । तस्मादपारिशेष्यसिद्धाअर्हदुक्तानव सप्त पदार्था सत्यास्तत्परिज्ञान च क्रियावादे हेतुर्नापरपदार्थपरिज्ञानमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसजिहीर्षु सम्यग्वादपरिज्ञानफलमादर्शयन्नाह । (सद्देसुइत्यादि) शब्देषु वेणुवीणादिषु श्रुतिसुखदेषु रूपेषु च नयनानंदकारिष्वासंगमकुर्वन् गार्ध्यमकुर्वाणोऽनेन रागोगृहीतस्तथा गंधेषु कुथितकलेवरादिषु रसेषु चांतप्रांताशनादिषु अद्धुष्यमाणोमनोज्ञेषु द्वेषमकुर्वन्निदमुक्तं भवति । शब्दादिष्विंद्रियविषयेषु मनोज्ञेतरेषु रागद्वेषाभ्यामनपदिश्यमानोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षेन्नापि परीषहोपसर्गैरभिद्रुतोमरणमभिकांक्षेत् । यदिवा जीवितमरणयोरनभिलाषी संयमनुपालयेदिति । तथा मोक्षार्थिनादीयते गृह्यतइत्यादान संयमस्तेन तस्मिन्वा सति गुप्तोयदिवा मिथ्यात्वादिनादीयते इत्यादानमष्टप्रकार कर्म तस्मिन्नादातव्ये मनोवाक्कायैर्गुप्त समितश्च तथा भाववलय माया तया विमुक्तोमायामुक्त । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नया पूर्ववदेव ॥ २२ ॥ समाप्त समवसरणाख्य द्वादशमध्ययनमिति ॥

हवे यथातथ्य नामे तेरमो अध्ययन प्रारंभियें ठेये बारमा अध्ययनमा जुदा जुदा दर्शनीऽना समवसरण कह्या नतर तेरमा अध्ययनमा यथातथ्य एटले सत्य स्वरूप देखाडे ठे

आहत्तहीय तु पवेयइस्सं, नाणप्पकार पुरिसस्स जात ॥ सच्चं
अधम्म असच्चं असील, संति असंति करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥

सासयचके०) तथा जे शाश्वता पदार्थ अने अशाश्वता पदार्थने पण जाणे (जातिमरणचउ णोववाय के०) तथा जे जीवना जन्म अने मरणने पण जाणे तथा जन एटले लो क तेनु उपपात एटले उत्पत्ति देव नारकादिकने विषे थायछे ते पण जाणेछे ॥ २०॥

॥ दीपिका—यश्चात्मन स्वय सर्वज्ञोगणधरादिर्वा परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्था न् ज्ञात्वा परेभ्यउपदिशति सआत्मनस्त्रातुमल समर्थ परेषाच त सर्वज्ञं गणधरादिक वा ज्योतिर्भूत पदार्थप्रकाशकत्वाच्चंद्रादित्यतुल्य सदाऽऽवसेत सेवेत नित्य गुरुसेवी भवे त् । यत । नाणस्स होइ भागी, थिरयरउंदसणाचरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवा स नमुचति ॥ १ ॥ ते के इत्याह । ये धर्म श्रुतचारित्राख्य साधुधर्म श्राद्धधर्मवाऽनुवि चिंत्य विचार्य तमेव धर्म प्राडुष्कुर्युर्यथोक्तानुष्ठानत प्रकटयेयुस्ते गुरुसेविन स्यु ॥१९॥ आत्मान यो जानाति यश्च लोक चराचरं चशब्दादलोक च जानाति । यश्च जीवाना ग तिमागतिं जानाति अनागतिं कुत्र गताना नागमन स्यादिति। यश्च शाश्वत नित्य सर्व व स्तु द्रव्यास्तिकनयादशाश्वत वा ऽनित्य पर्यायनयाश्रयणात् चशब्दान्नित्यानित्य च सर्व योजानाति । यदागम । णेरइआदव्वठया एसासयाभावठाएअसासया । एव तिर्यगाद योपि । अथवा शाश्वत मोक्षमशाश्वत भव तथा जातिमुत्पत्ति मरण च नारकादीना तथा जनाना सत्त्वानामुपपातं जानाति । उपपातोदेवनारकयोरुत्पत्तिरन्येषा ज्ञेया॥२०॥

॥ टीका—किंच । (जेआयउइत्यादि) य स्वय सर्वज्ञआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्ति पदार्थदर्शी यथावस्थित लोक ज्ञात्वा तथा यश्च गणधरादिक परतस्तीर्थकरादेर्जीवा दीन् पदार्थान् विदित्वा परेभ्यउपदिशति सएवभूतोहेयोपादेयवेद्यात्मनस्त्रातुमलमा त्मान ससारावटात्पालयितु समर्थोभवति । तथा परेषा सडुपदेशदानतस्त्राता जायते त सर्वज्ञ स्वतएव सर्ववेदिनं तीर्थकरादिक परतोवेदिन च गणधरादिक ज्योतिर्भूत पदा र्थप्रकाशकतया चंद्रादित्यप्रदीपकल्पमात्महितमिछन् समारडु खोद्विग्न कृतार्थमात्मा नं भावयन् सततमनवरतमावसेत सेवेत गुर्वंतिकएव यावज्जीव वसेत् । तथाचोक्त । नाणस्स होइ भागी, थिरयरउ दसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवास ण मुचति । कएव कुर्युरिति दर्शयति । ये कर्मपरिणतिमनुविचिंत्य माणुस्सखेत्तजाइत्या दि डुर्लभा च सद्धर्मावाप्ति सद्धर्मवा श्रुतचारित्राख्य क्षात्यादिक दशविधसाधुधर्म वा ऽनुविचिंत्य पर्यालोच्य ज्ञात्वा वा तमेव धर्म यथानुष्ठानत प्राडुष्कुर्यु प्रकटयेयुस्ते गुरु कुलवास यावज्जीवमासेवतइति । यदिवा ये ज्योतिर्भूतमाचार्य सततमासेवति तथा आगमज्ञाधर्ममनुविचिन्त्य लोक पचास्तिकायात्मक चतुर्दशरज्ज्वात्मकं वा प्राडुष्कुर्युरिति

॥ टीका–अथानंतर त्रयोदशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । इहानंतराध्ययने प रवादिमतानि निरूपितानि तन्निराकरणं चाऽकारि तच्च याथातथ्येन नवति तदिह प्रति पाद्यते इत्यनेन संबधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवति। तत्राप्युपक्रम द्वारांतर्गतार्थाधिकारोय । तद्यथा । शिष्यगुणदीपना । अथानंतराध्ययनेषु धर्मसमाधि मार्गसमवसरणाख्येषु यदवितथ याथातथ्येन व्यवस्थित यच्च विपरीत वितथ तदपि लेशतोऽत्र प्रतिपादयिष्यतइति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे याथातथ्यमिति नाम तदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । " णामतह ठवणतह, दव्वतह चेव होइ नावतह ॥ दव्वतह पुण जो ज स्स सनावोहिंति दव्वस्स " ॥ २४ ॥ (णामतहमित्यादि) अस्याध्ययनस्य याथातथ्य मिति नाम । तच्च यथाशब्दस्य नावप्रत्ययातस्य नवति । तत्र यथाशब्दोल्लंघनेन तथा शब्दस्य निक्षेप कर्तु निर्युक्तिकारस्यायमनिप्राय । इह यथाशब्दोयमनुवादे वर्तते तथा शब्दश्च विधेयार्थे । तद्यथा । यथेद तथैवेद नवता विधेयमित्यनुवादविधेययोश्च विधेया शएव प्रधाननावमनुनवतीति । यदिवा याथातथ्यमिति तथ्यमतस्तदेव निरूप्यतइति। तत्र यथानावस्तथ्य यथावस्थितवस्तुता । तन्नामादिश्चतुर्धा । तत्र नामस्थापने सुगमे। द्रव्यतथ्य गाथापश्चार्धेन प्रतिपादयति । तत्र द्रव्यतथ्य पुनर्योयस्य सचित्तादे स्वनावोद्र व्यप्राधान्याद्यस्य स्वरूप तद्यथोपयोगलक्षणोजीव कठिनलक्षणा पृथिवी द्रव्यलक्षणा आपइत्यादि । मनुष्यादेर्वा योयस्य मार्दवादिस्वनावोऽचित्तद्रव्याणा च गोशीर्षचदनकव लरत्नादीना द्रव्याणा स्वनाव । तद्यथा । उएहे करेइ सीय,सीए उएहत्तण पुण नवे इ ॥ कवलरयणादीण, एस सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ नावतथ्यमधिकृत्याह । "नावत ह पुण नियमा, णायव्व ठव्विहमि नावमि ॥ अहवा वि नाणदसण, चरित्तविणएण अ ज्झप्पे ' ॥ २५ ॥ (नावतहमित्यादि) नावतथ्य पुनर्नियमतोऽवश्यनावतया पड्विधे औ दयिके नावे ज्ञातव्य । तत्र कर्मणामुदयेन निर्वृत्तऔदयिक कर्मोदयापादितोगत्याद्यनु नावलक्षणस्तथा कर्मोपशमेन निर्वृत्तऔपशमिक कर्मानुदयलक्षणइत्यर्थ । तथा क्षया ज्जात क्षायिकोऽप्रतिपातिज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणस्तथा क्षयाउपशमाच्च जात क्षायोप शमिकोदेशोदयोपशमलक्षण । परिणामेन निर्वृत्त पारिणामिकोजीवाजीवनव्यत्वादिल क्षण पंचानामपि नावाना द्विकादिसंयोगान्निष्पन्न सान्निपातिकइति । यदिवा अध्या त्मन्यातर चतुर्धा नावतथ्य द्रष्टव्य । तद्यथा । ज्ञानदर्शनचारित्रविनयतथ्यमिति । तत्र ज्ञानतथ्यं मत्यादिकेन ज्ञानपचकेन यथास्वमवितथोविषयोपलन । दर्शनतथ्य शकाद्य तिचाररहित जीवादितत्त्वश्रद्धान । चारित्रतथ्य तु तपसि द्वादशविधे सयमे सप्तदशवि धे सम्यगनुष्ठान । विनयतथ्य द्विचत्वारिंशद्भेदभिन्ने विनये ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारिक रूपे यथायोगमनुष्ठान ज्ञानादीना तु वितथाऽसेवनेनाऽतथ्यमिति । अत्र च नावतथ्येना

तथा पापोदयथकी डुःख उत्पन्न थाय ते जाणे अने उपलक्षणथकी पुण्यना वेता लीश भेद पण जाणे वली निर्ज्जराना बारभेदने पण जाणे (सोभासिउमरिद्दइकिरय वाद के०) तथा बंधना चार भेदने पण जाणे ते परमार्थथकी क्रियावाद बोलवा योग्य थाय ॥ २१ ॥ एवा जे सम्यक् वादी तेने फल देखाडेले (सद्देसुरूवेसुअसज्जमा णो के०) शब्द जे वीणा वंश प्रमुख श्रोत्रेंद्रियने सुखना आपनार तेने विषे तथा रू प ते अनेक काष्टकर्म चित्रकर्म तथा लिप्यकर्मादिकने विषे असज्जमान एटले तेना उपर रागद्वेषने टालतो थको तथा (गंधेसुरसेसुअडुस्समाणे के०) गंधने विषे, रसने विषे अडुसमान एटले द्वेषने अण करतो थको (णोजीवितणोमरणाहिकखी के०) जीवितव्य अने मरणनी वाञ्चा नकरे समता भावे वर्ते (आयाणगुत्ते के०) आदान एटले संयम तेने विषे गुप्त एटले तेनो रक्षपाल छतो (वलयाविमुक्के के०) वलय एटले माया तेना थकी विमुक्त छतो संयम पाले तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ इतिश्री द्वितियसूत्रकृतागनेविषे समवसरण नामे बारमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो

॥ दीपिका–सत्वाना स्वकर्मभुजामधोनारकादौ विकुट्टनां पीडा योजानाति । यश्चाश्र व संवरं च जानाति तथा डुःखं चशब्दात्सुखंच तथा तपसा निर्जरां च जानाति । कोर्थः । बंधहेतून् कर्मक्षयहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । यतः । यथाप्रकारायावंतः, संसा रावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥१॥ सएव तत्त्वतोजानातु वक्तुम र्हति क्रियावादं जीवाद्यस्तित्वरूपमिति । अत्रान्यमतखंडनं वृत्तितोज्ञेयं ॥ २१ ॥ शब्दे षु रूपेषु मनोज्ञेषु असजन् संगमकुर्वन् गंधेषु रसेष्वमनोज्ञेषु अद्विष्यन् द्वेषमकुर्वन् । श ब्दादिषु इंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टेषु रागद्वेषरहितइत्यर्थः । एवंविधोजीवितमसंयमजीवितं ना भिकांक्षेत् परीषहोपसर्गैः पीडितोमरणमपि नाभिकांक्षेत् । आदानं संयमस्तेन गुप्तः स हि वलयं भाववलयं माया तया विमुक्तइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ समाप्तं सम वसरणाख्यं द्वादशमध्ययनं ॥

॥ टीका–किंच (अहोविइत्यादि) सत्वानां स्वकृतकर्मफलभुजामधस्तान्नारकादौ डु ष्कृतकर्मकारिणां विविधा विरूपा वा कुट्टना जातिजरामरणरोगशोककृता शरीरपीडा च शब्दात्तदभावोपाय योजानाति । इदमुक्तंभवति । सर्वार्थसिद्धादारतोधः सप्तमीं नरकभु वं यावदसुमंतः सकर्माणोविवर्तंते तत्रापि ये गुरुतरकर्माणस्तेऽप्रतिष्ठाननरकयायिनोभ वंतीत्येवं योजानीते तथा आश्रवत्यष्टप्रकारकं कर्म येन स आश्रवः सच प्राणातिपात रूपोरागद्वेषरूपोवा मिथ्यादर्शनादिकोवेति तं तथा संवरणमाश्रवनिरोधरूपं यावदशेषयो

त्योस्तीत्येवरूपोनिमानोवर्जनीयस्त्याज्योयतिजनेन । साधुलोकेनापरोपि ज्ञानिना जात्या दिकोमदोन विधेय किंपुनर्ज्ञानमद । तथा चोक्तं ॥ ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य कोवैद्य ॥ अगदोयस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥ गतोनामनिष्पन्नो निक्षेप साप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसर सच सूत्रे सति नवति । सूत्रच सूत्रा नुगमे सचावसर प्राप्तोऽत सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेद। (आह त्तहीत्यादि) अस्य चानतरसूत्रेण सहाय सबंध । तद्यथा । वलयाविमुक्तेत्यनिहितं । नावव लयं रागद्वेषौ ताभ्यां विनिर्मुक्तस्यैव याथातथ्य नवतीत्याद्यनेन सबधेनायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रतन्यते । यथातथानावोय याथातथ्य तत्त्व परमार्थस्तच्च परमार्थचिंताया सम्य कृज्ञानादिक तदेव दर्शयति । ज्ञानप्रकार प्रकारशब्दआद्यर्थे । आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शनचा रित्रे गृह्येते । तत्र सम्यग्दर्शनमौपशमिकक्षायोपशमिक गृह्यते । चारित्रं तु व्रतसमितिकषाया णा धारणरक्षणनिग्रहादिक गृह्यते । एतत्सम्यग्ज्ञानादिक पुरुषस्य जतोर्यज्जातमुत्पन्नं त दह प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषाश्चाविर्नावयि ष्यामि । नानाप्रकार वा विचित्र पुरुषस्य स्वनावमुच्चावचप्रशस्ताप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्या मि । नानाप्रकार स्वनावफलच पश्चार्धेन दर्शयति । सत सत्पुरुषस्य शोजनस्य सदनुष्ठा यिन सम्यग्दर्शनचारित्रज्ञानवतोधर्म श्रुतचारित्राख्य पुनर्गतिगमनधरणलक्षण वा तथा शीलमुद्युक्तविहारित्व तथा शाति निर्वृतिमशेषकर्मक्षयलक्षणा (करिस्सामिपाउति) प्रादुष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि यथावद्भावयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोजनस्य परतीर्थिक स्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा च शब्द समुच्चितमधर्म पाप तथा कुशील कुत्सितशील मशाति चानिर्वाणरूपा संसृति प्राडुर्नावयिष्यामीति । अत्र च सतोधर्म शील शातिंच प्राडुष्करिष्याम्यसतश्चाधर्ममशीलमशातिचेत्येव पदघटना योजनीया अनुपात्तस्यच चशब्दे नाक्षेपोद्रष्टव्यइति ॥१॥ जतोर्गुणदोषरूपं नानाप्रकार स्वनाव प्रवेदयिष्यामीत्युक्त तदर्श यितुकामआह । (अहोयमित्यादि) अहोरात्रमहर्निश सम्यगुत्थितानिन्ह्वबोटिका श्च सदनुष्ठानवतस्तेन्य श्रुतधरेन्यस्तथा तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्म श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलन्य संसारनिसरणोपाय धर्ममवाप्यापि कर्मोदयान्मदनाग्यतया जमालिप्रनृतयः स्वात्मोत्कर्षात्तीर्थंकरुदाद्याख्यात समाधि सम्यग्दर्शनादिक मोक्षपद्धतिमजोषयतोऽसेवत सम्यगकुर्वाणानिह्नवाबोटिकाश्च स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारेण निर्दोषं सर्वज्ञप्रणीत मार्ग विध्वंसयति कुमार्ग प्ररूपयति ब्रुवते चासौ सर्वज्ञएव न नवति । य क्रियमाण कृतमि त्यध्यक्षविरुद्ध प्ररूपयति । तथा य पात्रादिपरिग्रहान्मोक्षमार्गमाविर्नावयति । एव स र्वज्ञोक्तमश्रद्दधाना श्रद्धान कुर्वतोप्यपरे धृतिसंहननडर्बलतया यथारोपित संयमनार

प्यनुमानस्याप्रामाण्यमिति । प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं । यथा गौर्गवयस्तथा ऽत्रच सञ्ज्ञासञ्ज्ञिसंबंधप्रतिपत्तिरुपमानार्थोऽत्रापि सिद्धायामन्यथानुपपत्तावनुमानलक्षण त्वेन तत्रैवांतर्भावात्पृथक्प्रमाणत्वमनुपपन्नमेव । अथ नास्त्यनुपपत्तिस्ततोव्यभिचाराद प्रमाणतोपमानस्य । शाब्दमपि न सर्वं प्रमाणं किंतह्याप्तप्रणीतस्यैवागमस्य प्रामाण्यान्न चार्हद्व्यतिरेकेणापरस्याप्तता युक्तियुक्तेत्येतच्चान्यत्र निर्लोडितमिति । किंच सर्वमप्येत त्प्रमाणमात्मनोज्ञानं । ज्ञानं चात्मनोगुणः पृथक्पदार्थतयाभ्युपगंतु न युक्तोरूपरसादी नामपि पृथक्पदार्थतापत्तेः । अथ प्रमेयग्रहणेनेंद्रियार्थतया तेष्वाश्रिता सत्यमाश्रिता नतु युक्तियुक्ता । तथाहि । द्रव्यव्यतिरेकेण तेषामभावात्तद्ग्रहणेच तेषामपि ग्रहणं सिद्धमेवेति न युक्तं पृथगुपादानं । प्रमेयं त्वात्मशरीरेंद्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभा वफलदुःखापवर्गाः । तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टोपभोक्ता चेच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानानुमेयः । सच जीवपदार्थतया गृहीतएवाऽस्माभिरिति । शरीरं तु तस्य भोगायतनं भोगायतनानीं द्रियाणि भोक्तव्याइंद्रियार्थाः । एतदपि शरीरादिकं जीवाजीवग्रहणेनोक्तमस्माभिरिति । उपयोगोबुद्धिरित्येतच्चज्ञानविशेषः । सच जीवगुणतया जीवोपादानतयोपात्तएव । सर्वं विषयमंतःकरणं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिलिंगं मनस्तदपि द्रव्यमनः पौद्गलिकमजीवग्रहणेन गृहीतं भावमनस्त्वात्मगुणत्वाज्जीवग्रहणेनेति । आत्मनः सुखदुःखसंवेदनानां निवर्तनका रणं प्रवृत्तिः सापि पृथक्पदार्थतया नाभ्युपगंतुं युक्ता । तथाहि । प्रवृत्तिरित्यात्मेच्छा सा चात्मगुणएवात्माऽभिप्रायतया ज्ञानविशेषत्वादात्मानं दूषयतीति दोषः । तद्यथा । अ स्यात्मनो नवेदं शरीरमपूर्वमनादित्वादस्य नाप्युत्तरस्त्वात्संततेरिति । योयमात्मनोध्यवसा यः सदोषोरागद्वेषमोहादिकोवा दोषः । अयमपि दोषोजीवाभिप्रायतया तदंतर्भावीति न पृथग्वाच्यः । प्रेत्यभावः परलोकसद्भावोयमपि ससाधनोजीवाजीवग्रहणेनोपात्तः । फलमपि सुखदुःखोपभोगात्मकं तदपि जीवगुणे एवांतर्भवतीति न पृथगुपदेष्टव्यमिति । दुःखमित्येतदपि विविधबाधनायोगरूपमिति फलादतिरिच्यते । जन्ममरणप्रबंधोच्छेदरूप तया सर्वदुःखप्रहाणलक्षणोमोक्षः सचास्माभिरुपात्तएवेति । किमित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयोऽसावपि निर्णयज्ञानवदात्मगुणएवेति । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनं तदपीच्छाविशेषत्वादात्मगुणएव । अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थोदृष्टांतोऽसावपि जीवा जीवयोरन्यतरः । नचैतावतास्य पृथक्पदार्थता युक्ताऽतिप्रसंगादवयवग्रहणेन च तस्योत्त रत्र ग्रहणादिति । सिद्धांतश्चतुर्विधः । तद्यथा । सर्वतंत्राविरुद्धस्तंत्रेऽधिकृतोर्थः सर्वतंत्र सिद्धांतः । यथा स्पर्शनादीनींद्रियाणि स्पर्शादयइंद्रियार्थाः प्रमाणैः प्रमेयस्य ग्रहणमि ति समानं । तंत्रसिद्धः परतंत्रासिद्धः प्रतितंत्रसिद्धांतोयथा सांख्यानां नाऽसतआत्मला भोनच सतः सर्वथाविनाशइति । तथा चोक्तं । नासतोजायते भावोनाभावोजायते सतः

वदेयु ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वा परेण पृष्टा कस्मादाचार्यादधीत नवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन (पलिउचयतित्ति) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना पृष्टा सतोमातृस्थानेनावर्णवादभीतानिन्हुवते । ते एव कुर्वाणाआदान मोक्षमर्थ वचयंति । एव कुर्वाणास्तेऽसाधवश्हास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यत्यनतशोघातं विनाशं ससार वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीय साधुमानिन । उक्तंच । पाव काऊण सयं,अप्पाण सुद्धमेव ववहरइ॥ डुगुण करेइ पाव, वीअ बालस्स मदत्तं॥१॥तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतनवभाज प्राणिन स्युरिति॥४॥

॥ टीका–किच । (विसोहियमित्यादि) विविधमनेकप्रकार शोधित कुमार्गप्ररूपणापनयनद्वारेण निर्दोषता नीतोविशोधित सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेव नूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणात कथयत्यनुकथयंति । ये चैवनूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मनावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यानयेयुस्तेहि गनीरानिप्राय सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्था पडितमानिनउत्सूत्र प्रतिपादयति । आत्मनावव्याकरण च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवनूत स्वकीयाभिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूना ज्ञानादिगुणानामभाजन नवतीति । ते चामी गुणा । सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गेण्हइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करेइ वा सम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यग्ज्ञानावगमस्तत सम्यगनुष्ठाने च मत सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवनूताना गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठ । (अठाणिएहोतिबहूगुणेसत्ति) अस्यायमर्थ । अस्थानमभाजनमसौ नवति सम्यग्ज्ञानादीना गुणानां । किंनूतोबहुरनर्थसपादकत्वेनासदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेश । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूना दोषाणा च निवेश स्थानमाश्रयइति । किंनूता पुनरेव नवतीति दर्शयति । ये केचन दुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शका ज्ञानशका तया मृषावाद वदेयु । एतदुक्त नवति। सर्वज्ञप्रणीते आगमे शकां कुर्वत्यय तत्प्रणीतएव नभवेदन्यथा वाऽस्यार्थ स्यात् । यदिवा ज्ञानशकया पाडित्याभिमानेन मृषावादं वदेयुर्यथाह् ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (जेयाविपुट्ठा इत्यादि) ये केचनाविदितपरमार्था स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टा कस्मादाचार्यात्सकाशादधीत श्रुत नवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपर प्रसिद्ध प्रतिपादयति । यदिवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येव ज्ञानावलेपात् (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

पक्षपरिग्रहेण नवत्यतस्तेषामपि तत्त्वप्राप्ति स्यान्नचैतदिष्यतइति । असिद्धानैकातिक विरुद्धाहेत्वानासा । हेतुवदानासतइति हेत्वानासास्तत्र सम्यग्घेतूनामपि न तत्त्वव्यव स्थिति किंपुनस्तदानासाना। तथाहि। इह यन्नियतं वस्त्वस्ति तदेव तत्त्व नवितुमर्हति हे तुवस्तु। क्वचिद्वस्तुनि साध्ये हेतव क्वचिदहेतवइत्यनियतास्तइति । अथ छल अर्थविघा तोऽर्थविकल्पोपपत्तेरिति । तत्रार्थविशेषे विवक्षितेऽनिहिते वक्तुरनिप्रायादर्थांतरकल्पना वाक्छल । यथा नवकंबलोऽयं देवदत्त । अत्र च नव कंबलोऽस्येति वक्तुरनिप्राय।विग्रहे च विशेषोन समासे । तत्राय छलवादी नव कंबलोऽस्येत्येतद्भवतानिहितमिति कल्प यति नचाय तथेत्येव प्रतिपेधयति । तत्र छलमित्यसदर्थानिधान। तद्यदि छल न तर्हि तत्त्व तत्त्व चेन्न तर्हि छलं परमार्थरूपत्वात्तस्येति। तदेव छलं तत्त्वमित्यतिरिक्ता वाचोयु क्ति । दूपणानासास्तु जातयस्तत्र सम्यक्दूपणस्यापि न तत्त्वव्यवस्थितिरनियतत्वात् । अनियतत्त्व च यदेवैकस्मिन् सम्यक् दूषण तदेवान्यत्र दूपणानास पुरुपशक्त्यपेक्षत्वाच्च दूपणानासव्यवस्थितेरनियतत्वमिति । कुत पुनर्दूपणानासरूपाणां जातीनामवास्तव त्वात्तासामिति। वादकाले वादी प्रतिवादी वा येन निगृह्यते तन्निग्रहस्थान तच्च वादिनो साधनागवचन प्रतिवादिनस्तद्दोपोद्भावन विहाय यदन्यदनिधीयते नैयायिकैस्तत्प्रलापमा त्रमिति । तच्च प्रतिज्ञाहानि प्रतिज्ञातर प्रतिज्ञाविरोधइत्यादिकमेतच्च विचार्यमाण न निग्रहस्थान नवितुमर्हति नवदपिच पुरुपस्यैवापराध कर्तुमल न त्वेतत्तत्त्व नवितुमर्हति। वक्तृगुणदोषो हि परार्थे अनुमानेऽनिक्रियेते नतु तत्त्वमिति। तदेव न नैयायिकोक्त तत्त्व तत्त्वेनाश्रयितु युज्यते तस्योक्तनीत्या सदोपत्वादिति।नापि वैशेपिकोक्तं तत्त्वमिति।तथाहि। इव्यगुणकर्मसामान्यविशेपसमवायानावास्तत्त्वमिति । तत्र पृथिव्यतेजोवायुराकाश कालोदिगात्मा मनइति नव इव्याणि । तदत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां पृथग्इव्यत्वमनुपप न्न । तथाहि । तएव परमाणव प्रयोगविस्रसाभ्या पृथिव्यादित्वेन परिणमतोपि न स्व कीय इव्यत्व त्यजति। नचावस्थानेदेन इव्यनेदोयुक्तोऽतिप्रसगादिति । आकाशकाल योश्चास्मानिरपि इव्यत्वमन्युपगतमेव । दिशस्त्वाकाशावयवनूतायाअनुपपन्नत्व पृथ ग्इव्यत्वमतिप्रसगदोपादेव । आत्मनश्च स्वशरीरमात्रव्यापिनउपयोगलक्षणस्याभ्युपग तइव्यत्वमिति । मनसश्च पुद्गलविशेपतया पुद्गलइव्येऽतर्नावइति परमाणुवद्भावान्म नसश्च जीवगुणत्वादात्मन्यंतर्नावइति । यदपि तैरनिधीयते यथा पृथिवीत्वयोगात्पृथिवीति तदपि स्वप्रक्रियामात्रमेव । यतोनहि पृथिव्या पृथग्नूत पृथिवीत्वमपि येन तद्योगात्पृ थिवी नवेदपि तु सर्वमपि यदस्ति तत्सामान्यविशेपात्मक नरसिंहाकारसुनयस्वनावमिति। तथा चोक्त । नान्वय सहनेदत्वा न्न नेदोन्वयवृत्तित ॥ मृद्भेद ह्यससर्गं, वृत्तिजात्यतर घट ॥ १ ॥ तथा नरस्य सिंहरूपत्वान्न सिंहोनररूपत ॥ शब्दविज्ञानकार्याणा नेदा

॥ दीपिका–य स्वनावेन क्रोधनोरोपी नवति यश्च जगदर्थनापी योयथावस्थित पदार्थस्त तथैव नापते । तद्यथा । ब्राह्मण डोडमिति वक्ति वणिजं किराटमिति शूद्र मान्नीरमिति श्वपाक चाण्डालमिति काण काणमेव वक्ति । खज खजमेव चौर चौरमि ति । अधमधमित्यादि कविण योवक्ति सजगदर्थनापी निष्ठुरनापीत्यर्थ । व्यवसित स मार्श ६६ कलह य पुनरुदीरयेत् प्रज्वालयेत् सोऽधइव । यथायोदडमेव गोदंडमार्ग गृहीत्वा व्रजन् घृष्यते कटकश्वापदादिनि पीडयते । एव सोपि (अविओसियत्ति) अप शातकलह पापकर्मा घृष्यते पीडयते ससारपीडानि ॥ ५ ॥ योविग्रहिक कलहप्रियो ऽन्यायनापी न समोमध्यस्थोनवति अफ़फा प्राफफा माया कलहोवा मायाप्राप्त कलहप्राप्तोवा सरागद्वेषवान् मायावाश्च नवतीत्यर्थ । एतद्दोपदर्शी उपपातकारी आ चार्यादेशकर ह्रीर्लज्जासयमस्तत्र मनोयस्य सन्हीमना एकातेन तत्त्वेषु दृष्टिर्यस्य सएकातदृष्टि । एगतसड्डित्तिपाठे एकातश्रद्धावान् जिनागमे । अमायि निर्माय रूप यस्यस तथा छद्मरहितइत्यर्थ ॥ ६ ॥

॥ टीका–मानविपाकमुपदर्श्याधुना क्रोधादिकषायदोपमुद्भावयितुमाह । (जेकोहणे इत्यादि) योह्यविदितकपायविपाक प्रकृत्यैव क्रोधनोनवति तथा जगदर्थनापी यश्च नव ति । जगत्यर्थाजगदर्थाये यथा व्यवस्थिता पदार्थास्तानानापितु शीलमस्य जगदर्थना पी तद्यथा ब्राह्मण डोडमिति ब्रूयात्तथा वणिज किराटमिति शूद्रमान्नीरमिति श्वपाक चा डालमित्यादि तथा काण काणमिति तथा खज कुब्ज वडनमित्यादि तथाकुष्ठिन क्षयिण मित्यादि योयस्य दोपस्तं तेन खर परुपं ब्रूयात् य सजगदर्थनापी। यदिवा जयार्थनापी यथैवात्मनोजयोनवति तथैवाविद्यमानमप्यर्थ नापते तच्छीलश्च येन केनचित्प्रकारेणाऽ सदर्थनापणेनाप्यात्मनोजयमिच्छतीत्यर्थ । (विउसियत्ति) विविधमवसित पर्यवसितमु पशातं ६६ कलह य पुनरप्युदीरयेत् । एतडुक्तं नवति । कलहकारिनिर्मिथ्याडुष्कृतादि ना परस्पर क्षामितेपि तद्ब्रूयाद्येन पुनरपि तेपा क्रोधाद्योनवति । साप्रतमेतद्विपाक दर्शयति । यथाह्यधश्चक्षुर्विकलोदडपथ गोदडमार्गं प्रमुखोज्ज्वल गृहीत्वाऽऽश्रित्य व्र जन् सम्यगकोविदतया घृष्यते कटकश्वापदादिनि पीडयते एवमसावपि केवल लिंगधार्य नुपशातक्रोध कर्कशनाप्यधिकरणोद्दीपकस्तथा (अविउसियत्ति) अनुपशात६६ पाप मनार्य कर्मानुष्ठान यस्यासौ पापकर्मा घृष्यते चतुर्गतिके ससारे यातनास्थानगत पौन पुन्येन पीडयतइति ॥५॥ किचान्यत् । (जेविग्गहिएइत्यादि) य कश्चिदविदितपरमार्थोवि ग्रहोयुद्ध सविद्यते यस्यासौ विग्रहिकोयद्यपि प्रत्युपेक्षणादिका क्रियाविधत्ते तथापि यु द्धप्रिय कचिद्भवति तथाऽन्याप्य नापितुं शीलमस्य सोऽन्यायनापी यत्किचन नाप्यऽस्था

या तेषु विशेषबुद्धि सा नापरविशेषहेतुका ऽऽश्रयितव्याऽनवस्थानयात्। स्वत समाश्र यणेच तद्वद्द्रव्यादिष्वपि विशेषबुद्धि स्यान्किद्रव्यादिव्यतिरिक्तैर्विशेषैरिति । द्रव्यादि व्यतिरिक्तास्तु विशेषाश्चसमान्निरप्याश्रीयंते सर्वस्यसामान्यविशेषात्मकत्वादिति । एतत्तु प्रक्रियामात्र । तद्यथा । नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्याविशेषानित्यद्रव्याणिच चतुर्विधा परमा णवोमुक्तात्मानोमुक्तमनासि चेति निर्युक्तिकत्वादपकर्णयितव्यमिति । समवायस्त्वयुत सिद्धानामाधाराधेयभूताना यइह प्रत्ययहेतु ससमवायइत्युच्यते । असावपि नित्यश्चैक श्चाश्रीयते। तस्यच नित्यत्वात्समवायिनोपि नित्याआपद्येरन् । तदनित्यत्वे च तस्याप्यनि त्यत्वापत्तिस्तदाधाररूपत्वात्तस्य तदेकत्वाच्च सर्वेषा समवायिनामेकत्वापत्तिस्तस्य चानेक त्वमिति । किचाय समवाय सर्वगस्तस्य च विद्दत्वादयुतसिद्धत्वमेव दडदडिनोरिव वीर णानाच कटोत्पत्तौ तद्रूपतया विनाश कटरूपतयोत्पत्तिरन्वयरूपतया व्यवस्थानमिति दुग्धदध्नोरिवेत्येव वैशेषिकमतेपि न सम्यक्पदार्थाविस्थितिरिति । साप्रत साख्यदर्शने त त्त्वनिरूपण प्रक्रम्यते । तत्र प्रकृत्यात्मसयोगात्सृष्टिरुपजायते । प्रकृतिश्च सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था ततोमहान् महतोऽहकारोऽहकारादेकादशेंद्रियाणि पचतन्मात्राणि तन्मा त्रेन्य पचभूतानीति चैतन्य पुरुषस्य स्वरूप सचाकर्ता निर्गुणोऽभोक्तेति। तत्र परस्परवि रुद्धाना सत्त्वादीना गुणाना प्रकृत्यात्मना नियामक गुणिनमतरेणैकत्रावस्थान न युज्य ते कृष्णसितादिगुणानामिव । नच महदादिविकारे जन्ये प्रकृतिवैषम्योत्पादने कश्चिद्धेतुस्त द्व्यतिरिक्तवस्त्वतरानन्युपगमादात्मनश्चाकर्तृत्वेनाकिंचित्करत्वात्स्वभाववैषम्यान्युपगमेतु निर्हेतुकत्वापत्तेर्नित्य सत्त्वमसत्त्व वा स्यादिति । उक्तच । नित्य सत्त्वमसत्त्व वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातोहि भावाना, कादाचित्कत्वसभव ॥ १ ॥ अ पिच । महदहकारौ सवेदनादभिन्नौ पश्याम. । तथाहि । बुद्धिरध्यवसायोऽहकार श्चाह सुखदुःखीत्येवमात्मन प्रत्ययस्तयोश्चिद्रूपतयाऽऽत्मगुणत्व न जडरूपाया प्रकृते र्विकारावेताविति । अपिच येय तन्मात्रेभ्योभूतोत्पत्तिरिष्यते । तद्यथा। गधतन्मात्रा त्पृथिवी रसतन्मात्रादाप रूपतन्मात्रात्तेज स्पर्शतन्मात्राद्वायु शब्दतन्मात्रादाकाशमिति सापि न युक्तिक्षमा । यतो यदि बाह्यभूताश्रयेणैतदभिधीयते तदयुक्त । तेषा सर्वदाभा वान्नकदाचिदनीदृश जगदिति कृत्वा । अथ प्रतिशरीराश्रयणादेतदुच्यते । तत्र किल त्वगस्थिककठिनलक्षणा पृथ्वी श्लेष्मासृग्द्रवलक्षणाश्चाप पक्तिलक्षणतेज प्राणापानल क्षणोवायु सुषिरलक्षणमाकाशमिति तदपि न युज्यते । यतोऽत्रापि केषाचिच्छरीराणा शुक्रासृग्द्रवात्पत्तिर्न तत्र तन्मात्राणा गधोपि समुपलक्ष्यते।अदृष्टस्यापि कारणत्वकल्पने ऽतिप्रसग स्यात् । अडजोद्भिज्जाकुरादीनामप्यन्यतएवोत्पत्तिर्भवती समुपलक्ष्यते । तदे व व्यवस्थिते प्रधानमहदहकारादिकोत्पत्तिर्या साख्यै स्वप्रक्रिययाऽन्युपगम्यते तत्तैर्निर्यु

॥ दीपिका–क्वचित्प्रमादस्खलने सति आचार्यादिना बह्व्प्यनुशास्यमानस्तथैव स न्मार्गानुसारिणी वा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य सतथार्थ । एवभूतोय सपेशलोमृष्टवाक्य सूक्ष्मदर्शित्वात् । पुरुषजात सएव तत्त्वपुरुषार्थकारी सएव जात्यन्वित सत्कुलोत्पन्न । सुशीलोहि कुलीन स्यान्नसुकुलोत्पत्तिमात्रेण सएव सुष्ठुश्चतिशयेन ऋजु सयमस्तस्य क रणशील सएव समोमध्यस्थ ऊफा क्रोधोमाया वा तामप्राप्तोभवति ॥ ७ ॥ यश्चापि वसु इव्य सयमस्तद्वतमात्मान मत्वा तथा सख्या ज्ञान तद्वतमात्मान मत्वा परमार्थमप रीक्ष्य वादमात्मोत्कर्षवाद कुर्यात् । तथा तपसा सहितोहमिति मत्वाऽन्य जनं विव भूत जलचन्द्रवदर्थशून्य पश्यति अवगणयतीत्यर्थ ॥ ८ ॥

॥ टीका–पुनरपि सद्गुणोत्कीर्तनायाह ' (सपेशलेइत्यादि) योहि कदुससारोद्विग्न क्वचित्प्रमादस्खलिते सत्याचार्यादिना बह्व्प्यनुशास्यमानश्चोद्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारि एयर्चा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य भवतीति तथार्च ।यश्च शिक्षा ग्राह्यमाणोपि तथार्चोभवति सपेशलोमिष्टवाक्योविनयादिगुणसमन्वित सूक्ष्म सूक्ष्मदर्शित्वात्सूक्ष्मभाषित्वा द्वा सूक्ष्म सएव पुरुषजात सएव परमार्थत पुरुषकार्यकारी नापरोयोऽनायुधतपस्विजनपराजिते नापि क्रोधेन जीयते तथाऽसावेव जात्यन्वित सुकुलोत्पन्न । सच्छीलान्वितोहि कुलीन इत्युच्यते न सुकुलोत्पत्तिमात्रेण । तथा सएव सुष्ठुतिशयेन ऋजु सयमस्तत्करणशीलोऋ जुकर । यदिवा (उज्जुचारेत्ति) यथोपदेश य प्रवर्तते नतु पुनर्वक्रतयाऽचार्यादिवचन वि लोमयति प्रतिकूलयति यश्च तथार्च पेशल सूक्ष्मभाषी जात्यादिगुणान्वित क्वचिदवक्र समोमध्यस्थोनिंदाया पूजाया च न रुष्यति नापि तुष्यति तथा ऊफा क्रोधोमाया वा ता प्रा प्तोऊफाप्राप्त ।यदि वाऽऊफाप्राप्तैर्वीतरागै समस्तुल्योभवतीति ॥७॥ प्रायस्तपस्विना ज्ञान तपोऽवलेपोभवतीत्यतस्तमधिकृत्याह । (आविश्रप्पइत्यादि) यश्चापि कश्चिल्लघुप्रकृतिर ल्पतयाऽत्मान वसु इव्य तच्च परमार्थचिताया सयमस्तद्वंतमात्मान मत्वाऽहमेवात्र सयमवान् मूलोत्तरगुणाना सम्यग्विधायी नापर कश्चिन्मत्तुल्योस्तीति । तथा सख्यायते परिच्छिद्यंते जीवाद्य पदार्थायेन तज्ज्ञान सख्येत्युच्यते तद्वतमात्मान मत्वा तथा स म्यक् परमार्थमपरीक्ष्यात्मोत्कर्षवाद कुर्यात्तपसा द्वादशभेदभिन्नेनाहमेवात्र सहितोयुक्तो न मत्तुल्योविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोस्तीत्येव मत्वाऽऽत्मोत्कर्षाभिमानीत्यन्य जन साधुलोक गृहस्थलोक वा बिंबभूत जलचन्द्रवत्तदर्थशून्य कूटकार्षापणवद्वा लिंगमात्रधारिण पुरु षाकृतिमात्र वा पश्यत्यवमन्यते । तदेव यद्यन्मदस्थान जात्यादिक तत्तदात्मन्येवारो प्यापरमवभूतं पश्यतीति ॥ ८ ॥

अहोयराओअ समुठिएहि, तहागएहि पडिलप्न धम्मं ॥ समा
हिमाघातमजोसयंता, सत्थारमेव फरुसं वयंति ॥ २ ॥

अर्थ-(आहत्तहीयंतुपवेयइस्स के०) यथातथ्य सम्यक् ज्ञाननो सरूप हवे प्रवे दिसुं एटले कहीशुं तथा (पुरिसस्स के०) जीवने (नाणप्पकार के०) नानाप्रकारना ज्ञानादिक जे (जात के०) उत्पन्न थाय तेपण हवे कहीशु तथा (सओअधम्म के०) सत्पुरुषनु धर्म जे श्रुत चारित्ररूप जे डुर्गति थकी राखनार ते धर्म अने (असओअ सील के०) असत्पुरुष एटले परतीर्थिक तथा ग्रहस्थ अने पासत्थादिक तेनो सील एटले डुष्टाचार ते कहीशु तथा (संति के०) शांति एटले निर्वाणरूप अने (असंतिं के०) संसारभ्रमणरूप ए बन्नेने (करिष्यामि प्राडु के०) प्रगट करी शु ॥१॥ (अहोयराओअस मुठिएहिके०) रात्रना तेम दिवसना पण सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले सावधान थया एवा जे निन्हवादिक जमाली प्रमुख स्वदर्शनी तथा बोटिकादिक अन्यदर्शनी ते(तहागएहिप डिलप्नधम्म के०) तथा प्रकारे तीर्थकरादिक पाशेथी संसारथकी निकलवानु उपाय एवो जे पवित धर्म तेने पामीने जमाली प्रमुखनी पेरे कर्मने उदयें ते श्रीतीर्थंकर जा पित एवो (समाहिमाघात के०) समाधिवत एटले सम्यक् दर्शनादिक धर्म तेने (अ जोसयता के०) अण सेवता थका कदाग्रहि पणाने लीधे मिथ्यात्वना प्रेर्या स्वछंदे यथा तथा एटले जेम तेम बोलता श्रीसर्वज्ञना मार्गने उत्थापता अने कुमार्गनो उपदेश कर ता एरीते प्रवर्त्तता (सत्थार मेवफरुसंवयति के०) कदापि पोताने आचारना शिखावनार एवा गुरु जे महानुनाव ते प्रत्यें पण कठोर वचन बोले ॥ २ ॥

॥ दीपिका-अथ त्रयोदश याथातथ्याध्ययनमारभ्यते। तस्येदमादिसूत्रं । (अहत्ते ति) यथातथाभावोयाथातथ्य तत्त्वज्ञानादिक पुरुषस्य जतोर्जातमुत्पन्नं तदह प्रवेदयि ष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषाश्च कथयिष्यामि । नाना प्रकार वा चित्र पुरुषस्य स्वनाव प्रशस्तरूप प्रवेदयिष्यामि । तथा । सत सत्पुरुषस्य धर्म श्रुतचारित्राख्य शीलमुद्यतविहारित्व शांति निर्वृतिं मोक्ष (करिस्सामिपाउत्ति) प्राडुष्करि ष्ये प्रकटयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोननस्य परतीर्थिकस्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा चश ब्दसमुच्चितमधर्म पाप तथाऽशील कुत्सितशीलमशांतिं ससार प्राडुष्करिष्ये ॥१॥ अहोरा त्र समुत्थितानिन्हवाबोटिकाश्च तेन्य श्रुतधरेन्यस्तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्म श्रुतचा रित्राख्य प्रतिलभ्य प्राप्यापि मदनाग्यतया जमालिप्रमुखइवात्मोत्कर्षात्तीर्थकरैराख्यातं समाधि मोक्षमार्गमजोषयतोऽसेवमाना सर्वज्ञोक्त मार्गं विध्वसयंति ते निन्हवाबोटिका श्च परेणाचार्यादिना चोदिता सतस्तं शास्तार चोदक पुरुषं निष्ठुर वदंति ॥ २ ॥

र्थं प्रयोजन तेन आत्मान व्युत्कर्पयेत् मदवत कुर्यात् तथा च सु संयमस्तमादायान्य तरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन माद्यति ससर्वज्ञमत तत्त्वतोन वेत्तीति नाव ॥ ए ॥ योजात्या ब्राह्मण क्षत्रियजातीयोवा उग्रपुत्र क्षत्रियविशेष (लेछइत्ति) क्षत्रियविशेपएव। एव विशिष्टकुलोद्भूत प्रव्रजित परदत्तनोजी शुद्धाहारग्राही गोत्रे उच्चैर्गोत्रे उत्पन्नोपि नैव स्तम्न गर्व यायात्। किन्नूते गोत्रे मानवद्धे अनिमानास्पदे ॥ १० ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। (एगंतकूडेइत्यादि) कूटवत्कूटं यथा कूटेन मृगादिर्बद्ध परवश सन्नेकातडुःखनाग्नवति। एव नावकूटेन स्नेहमयेनकाततोऽसौ ससारचक्रवाल पर्येति तत्र वा प्रकर्पेण लीयते प्रलीयतेऽनेकप्रकार ससार बन्नमीति। तुशब्दात्कामादिना वा मोहेन मोहितोबहुवेदने ससारे प्रलीयते। यश्चैवनूतोऽसौ न विद्यते न कदाचन स नवति। मुनीनामिद मौन तच्च तत्पद च मौनपदं सयमस्तत्र मौनीडेवा पदे सर्वज्ञप्रणीतमार्गे नासौ विद्यते। सर्वज्ञमतमेव विशिनष्टि। गा वाच त्रायतेऽर्थाविसवादनत पालयतीति गोत्रं तस्मिन्समस्तागमाधारनूतइत्यर्थ। उच्चैर्गोत्रे वा वर्तमानस्तदनिमानग्रहग्रस्तोमौनीड्पदे न वर्तते। यश्च मानन पूजन सत्कारस्तेनार्थी प्रयोजन तेन माननार्थे न विविधमुत्कर्पयेदात्मान योहि माननार्थेन लानपूजासत्कारादिना मद कुर्यान्नासौ सर्वज्ञपदे विद्यतइति पूर्वेण सबध। तथा वसु इव्य तच्चेह सयमस्तमादाय तथान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन परमार्थमबुध्यमानोमाद्यति पठन्नपि सर्वशास्त्राणि तदर्थं वा गच्छन्नपि नासौ सर्वज्ञमत परमार्थतोजानातीति ॥ ए ॥ सर्वेपा मदस्थानानामुत्पत्तेरारन्यजातिमदोबाह्यनिमित्तनिरपेक्षोयतोनवत्यतस्तमधिकृत्याह। (जेमाहणेइत्यादि) योहि जात्या ब्राह्मणोनवति क्षत्रियोवा इक्ष्वाकुवश्यादिक। तच्चेदमेव दर्शयति। उग्रपुत्र क्षत्रियविशेपजातीय। तथा (लेछइत्ति) क्षत्रियविशेपएव। तदेवमादिविशिष्टकुलोद्भूतोयथावस्थितसंसारस्वनाववेदितया य प्रव्रजितस्त्यक्तराज्यादिगृहपाशबधन परैर्दत्त नोक्तु शीलमस्य परदत्तनोजी सम्यक्सयमानुष्ठायी गोत्रे उच्चैर्गोत्रे हरिवशस्थानीये समुत्पन्नोपि नैव स्तम्नं गर्वमुपयायादिति। किंनूते गोत्रे अनिमानवद्धे अनिमानास्पदे इति। एतडुक्तं नवति। विशिष्टजातीयतया सर्वलोकानिमान्योपि प्रव्रजित सन् कृतशिरस्तुडमुंडनोनिक्षार्थं परगृहाण्यटन् कथ हास्यास्पद गर्व कुर्यान्नैवासौ मान कुर्यादिति तात्पर्यार्थ ॥१०॥

न तस्स जाई व कुल व ताण, णसन्न विज्जा चरण सुचिन्नं ॥ णि
क्खम्म से सेवइ गारिकम्म, ण से पारए होइ विमोयणाए ॥ ११ ॥

विकार । यदि वा नावतथ्यं प्रशस्ताप्रशस्तनेदाद्विधा । तदिह प्रशस्तेनाविकार दर्शयितु माह । "जह सुत्त तह अछो, चरण चारो तहत्ति णायव्व ॥ संतमिय पससाए, असतीपगय डुगुछाए" ॥ २६ ॥ (जहसुत्तमित्यादि) यथा येनप्रकारेण यथापद्धत्त्या सूत्र व्यवस्थित तथा तेनैव प्रकारेणार्थोव्याख्येयोनुष्ठेयश्च । एतद्दर्शयति । चरणमाचरण मनुष्ठातव्य । यद्विवा सिद्धातसूत्रस्य चारित्रमेवाचरणमतोयथासूत्र तथा चारित्रमेतदेव चानुष्ठेयमेतच्च याथातथ्यमिति ज्ञातव्य । पूर्वार्धस्यैव नावार्थ गाथापश्चार्धेन दर्शयितु माह । यद्वस्तुजातं प्रकृत प्रस्तुत यथार्थमधिकृत्य सूत्रमकारि तस्मिन्नर्थे सति विद्यमाने यथावद्व्याख्यायमाने ससारोत्तारणकारणत्वेन प्रशस्यमाने वा याथातथ्यमिति न वति विवक्षिते त्वर्थे सत्यविद्यमाने ससारकारणत्वेन वा जुगुप्सायां सत्या सम्यगनुष्ठीयमाने वा याथातथ्य न नवति । इदमुक्त नवति । यदि यथासूत्रं येन प्रकारेण व्यवस्थितं तथैवार्थोयदि नवति व्याख्यायते ऽनुष्ठीयते च ससारनिस्तरणसमर्थश्च नवति ततोयाथातथ्यमिति नवति । असति त्वर्थे क्रियमाणे ससारकारणत्वेन जुगुप्सिते वा नवति याथातथ्यमिति गाथातात्पर्यार्थ । एतदेव दृष्टातगर्नं दर्शयितुमाह । "आयरियपरपरेण आगय जोउ छेयबुद्धीए ॥ कोवेइ छेयवाई जमालिनासचणासिहत्तित्ति ॥ २७ ॥ (आयरिएइत्यादि) आचार्या सुधर्मस्वामिजम्बुनामप्रनवार्यरक्षिताद्यास्तेषा प्रणालिका पारपर्य तेनागतं यद्व्याख्यान सूत्रानिप्रायस्तद्यथा व्यवहारतयानिप्रायेण क्रियमाणमपि कृत नवति। यस्तु कुतर्कदर्पाध्मातमानसोमिथ्यात्वोपहतदृष्टिकया छेकबुद्ध्या निपुणबुद्ध्या कुशाग्रशेमुषीकोहमिति मत्वा कोपयति दूषयति अन्यथा तमर्थ सर्वज्ञप्रणीतमपि व्याचष्टे कृत कृतमित्येव ब्रूयात् । वक्तिच नहि मृत्पिण्डक्रियाकालएव घटोनिष्पद्यते कर्मगुण व्यपदेशानामुपलब्धे । सएव छेकवादी निपुणोहमित्येव वादी पंडितानिमानी जमालिना समोजमालिनिन्हववत् सर्वज्ञमतविकोपकोविनश्यत्यरहघट्टघटीयन्त्रन्यायेन ससारचक्रवाले वभ्रमिष्यतीति । नचासौ जानाति वराकोयथाय लोकोघटार्थी क्रियामृत्खननाद्याघट एवोपचरति तासाच क्रियाणा क्रियाकालनिष्ठाकालयोरेककालत्वात् क्रियमाणमेव कृत नवति । दृश्यते चायं व्यवहारोलोके । तद्यथा । अद्यैव देवदत्ते निर्गते कान्यकुब्ज देवदत्तोगतइति व्यपदेशस्तथा दारुणि छिद्यमाने प्रस्थकोय व्यपदेशऽइत्यादि । साप्रतमन्यथावादिनोऽपायदर्शनद्वारेणोपदेश दातुकामआह । ण करेति डुक्खमोक्ख, उज्जममाणोवि सजमतवेसु ॥ तम्हाअत्तुक्करिसो वज्जेअवो जतिजणेण ॥ २८ ॥ (णकरेइत्यादि) योहि डुर्गृहीतविद्यालवदर्पाध्मात सर्वज्ञवचनैकदेशमप्यन्यथा व्याचष्टे सएवनूत सत्संयमतपस्सुद्यम कुर्वाणोशारीरिकमानसाना डुखानामसातोदयजनिताना मोक्ष विनाग न करोत्यात्मगर्वाध्मातमानसोपि यतएव तस्मादात्मोत्कर्षोऽहमेव सिद्धातार्थवेदी नापर. कश्चिन्मत्तु

॥ टीका—न चासौ मान क्रियमाणोगुणायेति दर्शयितुमाह । (नतस्सजाईत्यादि) नहि तस्य लघुप्रकृतेरनिमानोद्धुरस्य जातिमद कुलमदोवा क्रियमाण ससार पर्यटत स्त्राण नवति । नह्यनिमानोजात्यादिकऐहिकामुष्मिकगुणयोरुपकारीति । इहच मातृसमु द्भाजाति पितृसमुद्भ कुलं एतच्चोपलक्षणमन्यदपि मदस्थान न संसारत्राणायेति । यत्पुन ससारोत्तारकत्वेन त्राणसमर्थं तद्दर्शयति । ज्ञान च चरण च ज्ञानचरण तस्मादन्यत्र संसारोत्तारणत्राणाशा न विद्यते । एतच्च सम्यक्त्वोपबृंहित सत् सुष्टु चीर्णं सुचीर्णं ससा राडुत्तारयति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति वचनात् । एवभूते सत्यपि मोक्षमार्गे निष्क्रम्या पि प्रव्रज्या गृहीत्वापि कश्चिदपुष्टधर्मा संसारोन्मुख सेवतेऽनुतिष्ठत्यभ्यस्यति पौन पुन्ये न विधत्ते अगारिणा गृहस्थानामग कारण जात्यादिक मदस्थान पागतर वा (अगारि कम्मति) अगारिणा कर्मानुष्ठान सावद्यमारम्भ जातिमदादिक वा सेवते । नचासावगा रिकर्मणा सेवकोऽशेषकर्ममोचनाय पारगोनवति । नि शेषकर्मक्षयकारी न नवतीति ना व । देशमोचनात्तु प्रायश सर्वेषामेवासुमता प्रतिक्षणमुपजायतइति ॥ ११ ॥ पुनरप्य निमानदोषाविर्भावनायाह । (णिक्किचणेइत्यादि) बाह्येनार्थेन निष्किचनोपि निक्षण शीलोनिक्षु परदत्तनोजी तथा सुष्ठुरूक्षमतप्रात वल्लचणकादि तेन जीवितु प्राणधारण कर्तुं शीलमस्य स सुरूक्षजीवी एवनूतोपि य कश्चिद्गारवक्रियोनवति । तथा श्लोक कामी आत्मश्लाघानिलाषी नवति । सचैवनूत परमार्थमबुध्यमानएतदेवाकिंचनत्वं सुरूक्षजीवित्व वात्मश्लाघा तत्परतया आजीवमाजीविकामात्मवर्तनोपाय कुर्वाण पुन पुन ससारकातारे विपर्यास जन्मजरामरणरोगशोकोपद्रवमुपैति गच्छति तडुत्तरणा यान्युद्यतोवा तत्रैव निमज्जतीत्यय विपर्यासइति ॥ १२ ॥

जे नासव निक्कु सुसाहुवादी, पडिहाणवं होइ विसारएय ॥
अगाढपन्ने सुविनावियप्पा, अन्नं जण पन्नसा परिहवेज्जा॥१३॥
एव ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं निक्कु विउक्कसेज्जा ॥ अ
हवा वि जे लाजमयावलित्ते, अन्नं जणं खिसति वालपन्ने॥ १४ ॥

अर्थ—(जे नासवनिक्कुसुसाहुवादी के०) जे साधु नापाना गुण तथा दोषनो जाण तथा सुसाहुवादी एटले प्रिय वचननो बोलनार एटले क्षीराश्रव मध्वाश्रव लब्धीवा लो वली (पडिहाणवहोइ के०) प्रतिनाववत एटले उत्पातिकादिक चार प्रकारनी बुद्धिनो पारगामि होय तथा (विसारएय के०) विशारद एटले पंमित अर्थ ग्रहण करवाने समर्थ (आगाढपन्ने के०) आगाढप्रज्ञ एटले प्रस्ताववेता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,

वोऽक्षमसमर्था क्वचिद्विपरीतंतोऽपरेणाचार्यादिना वत्सलतया चोदिता संतस्त शास्तारम नुशासितार चोदक पुरुष वदंति कर्कश निष्ठुर निर्जर प्रतीप चोदयन्तीति ॥ २ ॥

विसोहिय ते अणुकाहयंते, जे आत्तभावेण वियागरेज्जा ॥ अठाणिए होइ बहूगुणाणं, पाठांतरे (बहूणिवेसे) जे णाणसंकाइ मुस वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुठा पलिउं चयंति, आयाणमठं खलु वंचयित्ता ॥ असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायन्नि एसति अणंतघात ॥ ४ ॥

अर्थ–ते स्वाग्रहि पुरुष (विसोहियंते के०) ते विशोधित शुद्धनिर्दोषमार्ग तेने (अणुकाहयते के०) आचार्यनी प्ररुपणा थकी उत्थापिने कहे एटले (जेआत्तभावेणविया गरेज्जा के०) जे पोताना भावे एटले स्वछंदे बोले (अठाणिएहोइबहूगुणाण के०) ते अहाछंद पणा थकी घणा गुणा जे ज्ञानादिक तेनो आस्थान थाय केमके ए स्वाभिनिवेश मिथ्यात्वना भाव थकी करीने (जेणाणसकाइ के०) जे ज्ञान शका एटले श्रीजिनागमनेविषे शका लावीने (मुसवदेज्जा के०) मृषाबोले स्वकल्पित जेवो रुचे तेवो बोले तेणे करीने घणा गुणानो आस्थान एटले कुभाजन थाय ॥ ३ ॥ (जे आविपुठापलिउंचयति के०) जे कोइ पूछे जे तमे कोनी पासेथी भण्याठो तेवारे पोताना आचार्यनु नाम गोपवीने बीजानु नाम कहे (आयाणमठखलुवचयित्ता के०) ते निश्चे थकी आत्मार्थी जे मोक्षनो अर्थ तेने वचेछे एतावता ते मुक्तिने नपामे (असाहुणोतेइहसाहुमाणी के०) परमार्थथकी ते असाधु थको पण आ जगतने विषे पोतामा साधुपणु करी माने तथा बीजाउने कहीने पोतामा साधु पणो मनावे (मायन्निएसतिअणतघात के०) ते मायावी साधु आसंसारनेविषे अनंत घात पामे एटले अनत काल पर्यंत ससारमा परिभ्रमण करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–विशोधितोमोक्षमार्गस्त ते कदाग्रहिणोगोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणात कथयति अनुकथयति । ये आत्मोत्कर्षादात्मभावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारपर्यागतमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्याग्रणीयुर्व्याख्याति । आचार्यपरपरामज्ञात्वा स्वाभिप्रायेण सूत्रार्थव्याख्यान महतेऽनर्थाय । ऽदमेव दर्शयति । सएवभूतोऽस्थानिकोऽनाधारोबहूना ज्ञानादिगुणाना स्यात् । क्वचित्पाठ । (अठाणिएहोइबहूणिवेसत्ति) अस्यार्थ । अस्थानमभाजन सम्यक्ज्ञानादीना । किंभूतोबहुरनर्थकारकत्वेनाऽसदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेश । ते पुन किंभूताऽस्याह । ये ज्ञानशकया मृषा वदेयु । कोर्थ । जिनोक्तागमे शका कुर्वत्यय तद्युक्तएव नस्यादिति । अथवा ज्ञानशकया पाण्डित्याभिमानेन मृषा

वासनया वासितआत्मा यस्यासौ सुविज्ञावितात्मा । तदेवमेभि सत्यनापादिनिर्गुणै र्गोनन. साधुर्भवति । यश्चैभिरेव निर्जराहेतुभूतैरपि मद कुर्यात्तद्यथाऽहमेव भाषाविधिज्ञ स्तथा साधुवाद्यहमेवच न मत्तुल्य प्रतिभानवानस्ति नापि मत्समानोलौकिकोलोको त्तरशास्त्रार्थविशारदोऽवगाढप्रज्ञ सुभावितात्मेति चैवमात्मोकर्षवानन्य जनं स्वकीयया प्र ज्ञया परिभवेत् एव मन्यते । तथाहि । किमनेन वाऽकुलेन डर्डुरूढेन कुडिकाकार्पासिक तुल्येन खसूचिना कार्यमस्ति क्वचित्सभाया धर्मकथावसरे वेत्येवमात्मोत्कर्षवान् भ वति । तथाचोक्त । अन्यैः स्वेच्छारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ॥ कृत्स्न वाङ्मयमितइति खादत्यगानि दर्पेणेत्यादि ॥ १३ ॥ साम्प्रतमेतद्दोषानिधित्सया ह । (एवणसेइत्यादि) एवमनतरोक्तया प्रक्रियया परपरिभवपुर सरमात्मोत्कर्षं कु र्वन्नशेषशास्त्रार्थविशारदोपि तत्त्वार्थगाढप्रज्ञोप्यसौ समाधि मोक्षमार्ग ज्ञानदर्शनचारित्र रूप धर्मध्यानाख्यं वा न प्राप्तोभवत्युपर्यवासौ परमार्थोदन्वत प्लवते । कथम्भूतोभव तीति दर्शयति । योह्यविदितपरमार्थतयात्मान सच्छेमुषीक मन्यमान स्वप्रज्ञया भिक्षु रुत्कर्षेभर्थ कुर्यान्नासौ समाधि प्राप्तोभवतीति प्राक्तनेन संबध । अन्यदपि मदस्थानदोष मुद्घट्टयति । अथवेति पक्षातरे । योह्यल्पातरायोलब्धिमानात्मकृते परस्मै चोपकरणादिक मुत्पादयितुमलं सलघुप्रकृतितया लाभमदावलिप्तोभवति तदवलिप्तश्च समाधिमप्राप्तो भवति । सचैवम्भूतोऽन्य जन कर्मोदयादलब्धिमत खिसइत्ति निंदति परिभवति वक्ति च नमत्तुल्य सर्वसाधारण शय्यासस्तारकाद्युपकरणोत्पादकोविद्यते किमन्यैः स्वोदरभरण व्यग्रतया काकप्रायैः कृत्यमस्तीत्येव बालप्रज्ञोमूर्खप्रायोऽपरजनापवाद विदध्यादिति तदेव प्रज्ञामदावलेपादन्यस्मिन् जने निद्यमाने बालसदृशैर्भूयते यतोत्त प्रज्ञामदोन विधे योन केवलमयमेव विधेयोन्यदपि मदस्थान ससारजिहीर्षुणा नविधेयमिति ॥ १४ ॥

पन्नामय चेव तवोमयंच, णिन्नामए गोयमय च भिक्खू ॥ आ
जीवग चेव चउत्थमाहु, से पमिए उत्तम पोग्गलेसे ॥ १५ ॥ ए
याइं मयाइ विगिच धीरा, ण ताणि सेवति सुधीरधम्मा ॥ ते स
व्वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गति वयेति ॥ १६ ॥

अर्थ–(पन्नामयचेवतवोमयच के०) प्रज्ञानो मद तेम वली तपनो मद एटले हु बुद्धिवान छु हु तपस्यावान छु एवो जे मद तेने (णिन्नामए के०) नमाडे एटले एवो मद नकरे तथा (गोयमयचभिक्खू के०) गोत्रनो मद साधु नकरे एटले माहरो उच गोत्रछे हुं उत्तम कुलमा जन्म पाम्योछुं एवो अहकार साधु नकरे (आजीवगचेवचउ

ष्टा॰ सतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादनयानिन्हुवते । तएव पलिउंचकानिन्हव कुर्वाणाआदी यतइत्यादानं ज्ञानादिक मोक्षोवा तमर्थं वचयंति भ्रंशयंत्यात्मन ।खलुरवधारणे। वचय त्येव । एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचा रेवा साधुमानिनश्चात्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एप्यंति यास्यंत्यनंत शोबहुशोघातं विनाशं ससार वा अनवदग्रसंसारकातारमनुपरिवर्तविप्यतीति। दोपद्वय डष्टत्वात्तेषामेक तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिन । उक्तच । पाव काऊण सय, अप्पाण शुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुण करेड पाव, वीय बालस्स मदत्त ॥ १ ॥ तदेवमा त्मोत्कर्पदोपाद्बोविलाभमप्युपहत्यानतससारभाजोनवत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगठभासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायभासी, न से समे होइ अझऊपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ-(जे कोहणेहोइजगठभासी के०) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थभाषी होय जगतार्थभाषी एटले जेमा जेवो दोप होय तेन तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर भाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली (उदीरएज्जा के०) उदीरे ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेछे (सेके०) ते पुरुष (अंधेवदमपहगहाय के०) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने वि षे जातो थको अनेक कटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम (अविउसिए के०) अ कोविद एवोजे कलहकारी (पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक ससारमाहे डुःख पामे ॥ ५ ॥ (जेविग्गहीए के०) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले युद्ध प्रिय थाय तथा (अनायभासी के०) अन्यायनो बोलनार होय (नसेसमेहोइअझंझ पत्ते के०) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समभावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परतु साधु केवो होय ते कहेछे (उववायकारीयहरीम णेय के०) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा (एगतदिठीय के०) एकातदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकात श्रद्धावत होय तथा (अमाइरूवे के०) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए ॥ ६ ॥

सुप्रतिष्ठितोधर्मः श्रुतचारित्राख्योयेषा ते सुधीरधर्माणस्ते चैवंभूता परित्यक्तसर्वमदस्थाना महर्षयस्तपोविशेषशोषितकल्मषा सर्वस्माडच्चैर्गोत्रादेरपगतागोत्रोपगता सततश्चा मोक्षाख्यां सर्वोत्तमा वा गतिं व्रजंति गच्छति चशब्दात्पचमहाविमानेषु कल्पेषु कल्पातीतेषु वा व्रजति। अगोत्रोपलक्षणाच्चान्यदपि नामकर्मायुष्कादिक तत्र नविद्यतइति इष्टव्य ॥ १६ ॥

भिक्खू मुयच्चे कय दिठधम्मे, पाठांतरे (तहदिठधम्मे) गामं च णगर च अणुप्पविस्सा ॥ से एसण जाण मणेसणं च, अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥ अरति रति च अभिभूय भिक्खू, बहूजणे वा तह एगचारी ॥ एगतमोणेण वियागरेज्जा, एगस्स जतो गति रागतीय ॥ १८ ॥

अर्थ—(भिक्खू के०) ते साधु (मुयच्चे के०) शरीर संस्काररहित (कयदिठधम्मे के०) तथा दृष्ट एटले दीठोछे यथावस्थित धर्म जेणे अथवा दृढधर्मि एटले धर्मने विषे दृढ एवो छतो कोइक अवसरे (गामचणगरचअणुप्पविस्सा के०) भिक्षादिकने अर्थे ग्राम नगर द्रोण मडादिकने विषे प्रवेश करे (सेएसणजाणमणेसणच के०) ते एषणा एटले आहारनी शुद्धि जाणतो तथा अनेषणीय एटले आहारना अशुद्धता पणाने पण जाणतो थको उद्गमादिक दोषने सम्यक् प्रकारे टालतो थको (अन्नस्स पाणस्सअणाणुगिद्धे के०) अन्नने विषे तथा पाणीने विषे अगृद्ध थको लोल्यता रहित एवो छतो साधु विचरे ॥ १७ ॥ (अरतिरतिचअभिभूयभिक्खू के०) कदाचित साधुने अतप्रात भोजने तथा अस्ताने करी कर्म योगें सयमने विषे अरति उपजे अने असयमने विषे रति उपजे तेवारे ससारनु स्वभाव अस्थिर जाणीने नरकादिकना दुःखने स्मरण करतो थको उत्पन्न थयली रति अरतिनुं निराकरण करे एम रति अरतिने जीतीने सुधो सयम पाले (बहूजणेवातहएगचारीके०) तथा घणा जन सहित छतो तथा एकचारी एटले एकलो छतो पूछ्यो अथवा नपूछ्यो थको पण (एगतमोणेणवियागरेज्जा के०) एकात निरवद्य भाषा बोले कारणके अन्यजनोनो दाक्षिण्यपणो ते जीवने त्राण शरण नथाय तेमाटे धर्मकथाने प्रस्तावें साधु एकात निरवद्य भाषा बोले अने बीजे प्रस्तावे मौन रहे (एगस्सजतोगतिरागतीय के०) जीवने गति आगति ते एकला नेज करवी पडेछे त्यारे जीवने एकलो परलोक गमनागमन करता एक धर्म विना बीजो कोइ सहायकारी नथी एवीरीते साधु पोताना मनमा जाणे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—सभिक्षुर्मृतेच स्नानादिसंस्काराभावादर्चा शरीर यस्य समृताचे । तथा

नचावी गुर्वाद्यविक्षेपकरोवा यश्चैवंभूतोनासौ समोरक्तद्विष्टतया मध्यस्थोनवति । त था नाप्यकंकाप्राप्तोकलहप्राप्तोवा नभवत्यमायाप्राप्त । यदिवा अकंकाप्राप्तैरकलहप्रा प्तै सम्यग्दृष्टिनिरसौ समोन भवति यत', अतोनैवविधेन नाव्यमपित्वक्रोधनेनाकर्कश नाविणा चोपशातयुख्यानुदीरकेण न्यायनाविणाऽकंकाप्राप्तेन मध्यस्थेन च नाव्यमिति। एवमनंतरोद्दिष्टदोषवर्जीसन्नुपपातकार्याचार्यनिर्देशकारी यथोपदेश क्रियासु प्रवृत्त । य दिवोपायकारित्ति) सूत्रोपदेशप्रवर्तकस्तथा न्हीर्लज्जासयमोमूलोत्तरगुणभेदभिन्नस्तत्र म नोयस्यासौ न्हीमना । यदिवाऽनाचार कुर्वन्नाचार्यादिन्योलज्जते सएवमुच्यते । तथैका तेन तत्त्वेन जीवादिषु पदार्थेषु दृष्टिर्यस्यासावेकातदृष्टि ।पाठांतरवा (एगतसड्ढित्ति) एका तेन श्रद्धावान् मौनीड्रोक्तमार्गे एकातेन श्रद्धालुरित्यर्थ ।चकार पूर्वोक्तदोषविपर्ययस्तगुण समुच्चयार्थ । तद्यथा । ज्ञानपलिउंचकोक्रोधीत्यादि । तावदकंकाप्राप्तइति स्वतएवाह । (अमाइरूवेत्ति) अमायिनोरूप यस्यासावमायिरूपोऽशेषछद्मरहितइत्यर्थ । न गुर्वादीन् छद्मनोपचरति नाप्यन्येन केनचित्साधं छद्मव्यवहार विधत्तइति ॥ ६ ॥

स पेसले सुहुमे पुरिसजाए, जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुपि
अणुसासिए जे तहच्चा, समे हु से होइ अकंकपत्ते ॥ ७ ॥ जे
आवि अप्प वसुमति मत्ता, संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा ॥ त
वेण वाहं सहिउत्ति मत्ता, असं जण पस्सति विबनूय ॥ ८ ॥

अर्थ–(सपेसले के०) तेने आचार्यादिके घणो शिखव्यो छतो पण यथार्थ तेवाज नावे वर्ते पण गुरु वचन विरोधि नथाय तेने पेशल एटले मनोहर विनयादिक गुणवंत जाणवो तथा (सुहुमे के०) सूक्ष्म नावनो देखनार तथा (पुरुपजात के०) परमार्थथकी पुरुषार्थनो साधक तथा (जच्चन्निए के०) तेवीज जातिसहित सत्कुलोत्पन्न जाणवो (चे व के०) निश्चय थकी (सुउज्जुयारे के०) ते ऋजु आचारी एटले सरल मार्गे प्रवर्त्ते तेवा पुरुषने (बहुपिअणुसासिएजेतहच्चा के०) आचार्यादिके घणो शिखाव्यो छतो मु खनु राग फेरवे नही अर्थात् प्रसन्न मन राखे (समेहुसेहोइअकंकपत्ते के०) ते पुरु ष श्रीवीतराग समान कलह रहित थाय ॥ ७ ॥ (जेआविअप्पवसुमतिमत्ता के०) जे कोइ लघुप्रकृति पोताने आत्माने वसुमत एटले सयमवत जाणीने (सखायवायअप रिक्खकुज्जा के०) सम्यक् परमार्थे अपरीक्ष थको आत्मोत्कर्ष अनिमान करे (तवेणवा हसहिउत्तिमत्ता के०) तथा हुज तपे करी सहितछु माहारा समान बीजो कोइ तपस्वी नथी एवीरीते जाणीने अनिमान धारण करी (असुजणपस्सतिबिंबनूय के०) अन्य जन ने बिंबनूत गुणशून्य आकार मात्र देखे एटले जलचड्मानी पेरे जाणे ॥ ८ ॥

मेन करणनूतेन व्यागृणीयात् धर्मकथावसरेऽन्यद्वा संयमाबाधया किंचिद्धर्मसंबद्धं ब्रूयात्। क्रियरिगणय्यैतत्कुर्यादित्याह। यदिवा किमसौ ब्रूयादिति दर्शयति। एकस्याऽसहायस्य जतो शुनाशुनसहायस्य गतिर्गमनं परलोके नवति तथाऽऽगतिरागमनं नवात राडुपजायते कर्मसहायस्यैवेति। उक्तंच। एकः प्रकुरुते कर्म नुनक्त्येकश्च तत्फलं॥ जायते म्रियते चैक, एकोयाति नवांतरमित्यादि। तदेव संसारे परमार्थतोन कश्चित्सहायोऽथ मैमेकं विदार्यैतद्विगणय्य मुनीनामय मौनं संयमस्तेन तत्प्रधानं वा ब्रूयादिति ॥ १८ ॥

सय समेच्चा अडुवा वि सोच्चा, नासेज्ज धम्मं हियय पयाण ॥
जे गरहिया सणियाणप्पउगा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा १९
केसिंचि तक्काइ अवुज्ज नाव,खुद्दंपि गच्छेज्ज असद्दहाणे॥आउस्स
कालाइचरं वघाए, लद्धाणु माणे य परेसु अठे ॥ २० ॥

अर्थ-(सयसमेच्चा अडुवाविसोच्चा के०) चतुर्गतिक संसारनुं कारण मिथ्यात्वादिक ठे तथा मोक्षस्वरूपनुं कारण सम्यक् ज्ञानादिकठे एवुं परोपदेशविना स्वयं पोतेज जाणीने अथवा गुर्वादिकनी पासेथी श्रवण करीने (नासेज्जधम्मंहिययपयाण के०) समस्त प्रजा एटले त्रस तथा स्थावर जीवोने हितकारक एवो श्रुतचारित्ररूप जे धर्म तेने नाषे एटले कहे एवो साधु जाणवो ए उपादेयपणुं कह्यो हवे हेयपणुं एटले जे पदार्थ बांधवा योग्यठे ते कहेठे (जेगरहिया के०) जे मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक एवा पदार्थ जे जगतमाहे गरहा एटले निंदनीक ठे तथा (सणियाण के०) नीयाणा सहित एवा जे (प्पउगा के०) प्रयोग होय तेने (णताणिसेवंति सुधीरधम्मा के०) जे धर्मने विषे धीर पुरुष होय ते नसेवे न आचरे ॥ १९ ॥ (केसिंचि तक्काइ अवुज्ज नाव के०) कोईएक मिथ्यादर्शनीनो अनिप्राय जाण्याविना साधु तथा श्रावकनो धर्म स्थापन करवानी इछाये कदाचित् साधु तेपर तीर्थिक आगल तिरस्कारना वचन बोले (खुद्दंपिगछेज्जअसद्दहाणे के०) तेवारे ते मिथ्यादर्शनी श्री वीतरागना वचनउपर असद्दहणा करतो थको क्रुद्धपणुं करे एवो ठतो विरूप करे जेम पालक प्रोहितनो स्कंद सूरिउपर क्रुद्धनाव थयो तेनी पेरे जाणवुं (आउस्सकालाइचरवघाए के०) आयुष्यना कालनुं प्रमाण घणो होय तेने घटाडे अर्थात् आयुष्यनुं विनाश करे (लद्धाणुमाणे यपरेसुअठे के०) ते माटे साधु जन आगलानुं अनिप्राय लईने पढी तेना आगल अर्थ प्रकाशे स्वपरोपकारने अर्थे बोले अन्यथा मौनमेव श्रेय ॥ २० ॥

॥ दीपिका-स्वयं नवस्वरूपं समेत्य ज्ञात्वाऽथवाऽन्यस्मात् श्रुत्वाऽन्यस्मै धर्मं नाषेत।

एगंत कूमेण उ से पलेइ,ए विज्जती मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माण
णहेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अवुज्जमाणे ॥ ए ॥ जे माह
णो खत्तियजायए वा, तहुग्गपत्ते तह लेछई वा ॥ जे पवईए
परदत्तनोई, गोत्तेण जे थप्नति माणवद्दे ॥ १० ॥

अर्थ–ते पुरुष (एगतकूमेणउसेपलेइ के०) एकांत कूटपाशे करीने जेम मृग कूटपाले पडयो थको डुखनु विनागी थायछे तेनी पेरे ते मदबुद्धि पण ससारमाहे परिन्नमण करे ते पुरुष कदापि (मोणपयंसि के०) मौनपद एटले सयमपद तेनेविपे (णविज्जती के०) सर्वथा प्रकारे विद्यमान नथी एम समजवु तथा ते पुरुष (गोत्ते के०) उचगोत्रने विपे पण न प्रवर्त्ते किंतु ते अत्यंत हीन गोत्रनेज पामे तथा (जे माणणहेणविउक्कसेज्जा के०) जे मान एटले पूजाने अर्थे व्युत्कर्प एटले विविध प्रकारे अनिमान करे तेपण सयमने विपे नथी एम जाणवु तथा जे (वसु के०) सयमने ग्रहण करीने पढी (अन्नतरेण के०) मदविपाकना उदय थकी अन्य कोइ मद स्थानकने विपे माचे ते (अवुज्जमाणे के०) निश्चे थकी परमार्थने अजाणतो अज्ञानी थको ससारमा परिन्नमण करे ॥ ए ॥ (जेमाहणोखत्तियजायएवा के०) तथा जे ब्राह्मणजाति अथवा क्षत्रियजाति ते इक्ष्वाकुवशादिक तेना नेद कहेछे (तहुग्गपत्तेतहलेछ ईवा के०) तथा जे उग्रपुत्र तथा लेछई एटले राजपुत्र विशेप नवमल्लिक नवलेछिक एटला कुलमा उत्पन्न थयला ससारने असार जाणीने राज्य प्रमुख त्यागीने (जेपवई ए के०) जे प्रव्रजित थया एटले चारित्रवान थया ते एवा बता पण (परदत्तनोई के०) पारको दीधो एवो जे आहार तेने नोगवे एटले शुद्धाहार ग्रहण करे (गोत्तेणजेथप्नतिमाणवद्दे के०) परतु गोत्रने विपे गर्व नकरे एटले शुद्धाहारनुं ग्रहण करनार एवो चारित्रीउ पोताना उच गोत्रने विपे गर्व करे नही गोत्र केवोछे तोके मानबद्ध एटले ब्राह्मण तथा क्षत्रीय वशना उपना स्वनावे पोताना वशना अनिमानी थायछे तेम बता पण चारित्र आदस्या पढी कोइपण प्रकारना गोत्रनुं आहार ग्रहण करे परतु शुद्धाहार ग्रहण करे पण पोताना गोत्रनो गर्व करीने तेवाज गोत्रनो अशुद्ध आहार लेवानी इन्ना चारित्रिउ करे नही ए अनिप्रायछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यथा कूटेन पाशेन बद्धोमृगादि परवशोडुखी स्यात्तथा नावकूटेन स्नेहेन एकाततोऽसौ ससार पर्येति बन्नमीति। मौनपदे सयमे सन् प्रवर्तते। किंनूते सयमे गोत्रे गा वाच त्रायतइति गोत्र सर्वागमाधारनूत तस्मिन्। यश्च मानन सत्कारस्तस्या

यथार्हं धर्मदेशना विधेया । यथैतदबुध्वा किंचिद्धर्मदेशना द्वारेण परविरोधकृद्वचोब्रूयात् सपरस्मादैहिकामुष्मिकयोर्मरणादिकमपकारं प्राप्नुयादिति । यतएव ततोलब्धमनुमानं येन पराभिप्रायपरिज्ञाने सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगं यथार्हप्रतिपत्त्याऽर्थान् सद्धर्मप्ररूपणादिकान् जीवादीन् स्वपरोपकाराय ब्रूयादिति ॥ २० ॥

कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे, विणइज्ज उ सव्वउ आयभावं ॥ रू
वेहिं लुप्पंति भयावहेहिं, विज्जं गहाय तसथावरेहिं ॥ २१ ॥
न पूयणं चेव सिलोयकामी, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥
सव्वे अणट्ठे परिवज्जयंते, अणाउले या अकसाइ भिक्खू ॥२२॥
आहत्तहीयं समुपेहमाणे,सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं ॥ णो जी
वियं णो मरणाहिकंखी, परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्केत्तिबेमि ॥
॥ २३ ॥ इति श्रीआहत्तहियंनाम त्रयोदशमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(कम्मंचछंदंचविगिंचधीरे के०) धैर्यवान बुद्धिमान साधु देशनाने अवसरे श्रोतानो कर्म एटले अनुष्ठान तथा छंद एटले चित्तनो भाव एने जुदा जुदा जाणीने एतावता सम्यक्रीते जाणीने यथायोग्य भाव धर्म कहे तथा (विणइज्जउसव्वउआय भावके०) तथा श्रोता पुरुषनु आयभाव एटले आत्मभाव ते विषयउपर गृद्धपणु एटले मिथ्या परिणाम तेने सर्वथा प्रकारे विशेषे करी निर्घाटे एटले दूरकरे अने गुणनेविषे तेने स्थापे (रूवेहिंलुप्पंतिभयावहेहिं के०) वली रूप जे स्त्रियादिकना अंगोपांगना जोवावाला एवा अल्प बुद्धिवान् तुछ प्राणी ते धर्मथकी लोपाए इह लोके छेदनादिक पीडा पामे परलोके नरकादिकना दुःख पामे माटे ए भयना करनारछे ए धर्मथकी भ्रष्ट करे एम कोई श्रोता कहे श्रोता स्त्रीनो गृद्ध होय तेवारे अपवाद धरे (विज्जंगहायतसथावरेहिं के०) तेवारे पंमित आगलानो भाव ग्रहण करीने त्रस तथा स्थावर जीवोने हितनो करनार एवो धर्मोपदेश करे ॥ २१ ॥ (नपूयणचेवसिलोयकामी के०) साधु देशना आपतो थको पूजन तथा वस्त्रादिकना लाभनी वांछा नकरे तथा श्लाघा एटले आत्मानी प्रशंसा तेनी पण वांछा नकरे तथा (पियमप्पियकस्सइणोकरेज्जा के०) राग अने द्वेष कोइनी साथे सर्वथा नकरे अथवा कोइनी निंदा विकथा पण नकरे (सव्वेअणट्ठेपरिवज्जयते के०) एम सर्वथा प्रकारे अनिष्ट अनर्थकारी एवी पूजा सत्कारादिक वस्तु तेने समस्तपणे वर्जे (अणाउलेयाअकसाइभिक्खू के०) तथा अनाकुल एटले क्रोधादिक रहित आलशरहित तथा कषायरहित एवो छतो

णिकिंचणे भिक्कु सुलूहजीवी, जे गारव होइ सलोगगामी ॥
आजीवमेयं तु अबुज्नमाणो, पुणोपुणो विप्परियासुवेति ॥ १२ ॥

अर्थ-(नतस्सजाईव कुलवताण के०) ते अभिमानी पोताना गोत्रसबधी मदना करनारने जाति एटले जे मातानु पक्ष अने कुल एटले पितानु पक्ष ए बनेनु मद त्रा णने अर्थे न थाय कारणके ससारमा भ्रमण करता प्राणीने मातानी जाति अने पितानु कुल ते काइ त्राण नणी नथाय हवे जे पदार्थ जीवने त्राण थाय ते कहेछे (ण सुइविज्जाचरण सुचिन्नं के०) विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र सुचीर्ण एट ले ए बनेने सारीरीते आचस्या थकी मुक्तिनु कारण थायछे अर्थात् ज्ञान अने क्रिया ए बे विना बीजो कोई जीवने शरण नथी (णिस्कम्मसेसेवऽगारिकम्म के०) माटे जे पुरुप ग्रहस्थपणा थकी णिस्कम्म एटले निकली चारित्र आदरीने फरी आ गारीनो कर्त्तव्य जे जातिमदादिक तेने सेवे अथवा सावद्यारनादिक सेवे (णसेपारए होइविमोयणाए के०) ते पुरुप ससारनो पारगामि न थाय केमके ज्ञान दर्शन अने चारित्र एज मुक्तिना कारणछे परतु जातिकुलादिकनो मद ते काई मुक्तिनो कारण नथी एम जाणवु ॥ ११ ॥ (णिक्किचणेभिस्कु सुलूहजीवि के०) जे निकिचन निपरि ग्रही सुलुक्षजीवी एटले अतप्रात आहारनो लेनार होय तेने भिक्कु एटले साधु जाणवो अने (जेगारव होइसलोगगामी के०) जे गर्ववत होय श्लाघा एटले प्रससानो कामि एटले वाछा करनार होय (आजीवमेयं तुअबुज्नमाणो के०) ते जीव आजीविका मात्र नो करनार छता शुद्ध सयमनो अजाण एवो छतो (पुणोपुणोविप्परियासुवेति के०) ते जीव फरी फरी विपर्यासने पामे एटले वली वली जन्ममरणादिके करीने घणो ससारने विपे परिभ्रमण करे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–तस्याभिमानवतोजातिमद कुलमदोवाऽत्र ससारभ्रमणे शरण नस्या त् । मातृनवा जाति पितृनव कुलमेतडुपलक्षणादन्यदपि मदस्थान न त्राणाय । यत्राण तदाह । सुचीर्ण विद्या ज्ञान चरण चारित्रच तस्मादन्यत्र त्राणाशा न विद्यते । ज्ञानक्रियाभ्यामेव मोक्षइति वचनात् । एवसत्यपि कश्चित् निष्क्रम्य प्रव्रज्या गृहीत्वापि अगारिणा गृहस्थाना कर्म सावद्यक्रिया सेवते न च कर्ममोचनाय पारगोनवति ॥ ११ ॥ वाह्यार्थेन निष्किचनोभिक्षु सुरूक्षजीवी वल्लचणकादिप्रांताहारएवनूतोपि क श्चिद्गौरवप्रियोनवति । तथा श्लोककामी आत्मश्लाघाभिलाषी च स्यात् । नचैवनूतो निष्किचनत्वादिकमाजीवमात्मवर्तनोपाय कुर्वाण परमार्थमबुध्यमान ससारे विपर्या स जन्ममरणाद्युपद्रवमुपैति ॥ १२ ॥

यातनास्थाने प्राणिनोविषयासक्तावेदनामनुनवतीत्येव विद्वान् पंमितोधर्मदेशनाभिज्ञो गृहीत्वा परानिप्राय सम्यगवगम्य पर्षद् त्रसस्थावरेन्योहित धर्ममाविर्नावयेत् ॥ २१ ॥ पूजासत्कारादिनिरपेक्षेण च सर्वमेव तपश्चरणादिक विधेय विशेषतोऽधर्मदेशनेत्येतदनि प्रायवानाह । (नपूयणचेत्यादि) साधुर्देशना विदधानोन पूजन वस्त्रपात्रादिलाजरूप मनिकाङ्क्षेन्नापि श्लोक श्लाघा कीर्तिमात्मप्रशसा कामयेदनिलपेत्तया श्रोतुर्यदप्रिय राज कथाविकथादिकं ढलितकथादिक च तथाऽप्रिय च तत्समाश्रितदेवताविशेषनिंदादिक न कथयेदरक्तद्विष्टतया श्रोतुरनिप्रायमनिसमीक्ष्य यथावस्थित कथयेत् । उपसहारमाह । सर्वानर्थान् पूजासत्कारलानानिप्रायेण स्वकृतान् परदूषणतया च परकृतान् वर्जयन् परिहरन् कथयेदनाकुल सूत्रार्थादनुत्तरन्नकषायीनिकुर्नवेदिति ॥ २२ ॥ सर्वाध्ययनोप सहारार्थमाह । (श्राहत्तहीयमित्यादि) यथातथानावोयाथातथ्यं धर्ममार्गसमवरणा ख्याध्ययनत्रयोक्तार्थ तत्त्व सूत्रानुगतं सम्यक्त्व चारित्रं वा तत्प्रेक्ष्यमाण पर्यालोचय न् सूत्रार्थ सदनुष्ठानतोन्यसन् सर्वेषु स्थावरजगमेषु सूक्ष्मबादरन्नेदनिन्नेषु पृथिवीकाया दिषु दमयते प्राणिनोयेन सदम प्राणव्यपरोपणनिवित्तन्निधाय परित्यज्य प्राणात्ययेपि याथातथ्य धर्म नोल्लघयेदिति । एतदेव दर्शयति । जीवितमसयमजीवित दीर्घायुष्कं वा स्थावरजगमजतुदण्डेन नानिकाङ्क्षी स्यात् परीषहपराजितोवेदनासमुद्घातहतोवा त द्वेदनामसहमानोजलानलसपातापादितजतूपमर्देन नापि मरणानिकाङ्क्षी स्यात् । तदेव याथातथ्यमुत्प्रेक्ष्यमाण सर्वेषु प्राणिषूपरतदमोपजीवितमरणानपेक्षी सयमानुष्ठान चरे दुद्युक्तविहारी नवेन्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितोविदितवेद्योवा वलयेन मायारूपेण मोह नीयकर्मणा वा विविध प्रकर्षेण मुक्तोविप्रमुक्तइति । इतिपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्व वत् ॥ २३ ॥ समाप्तं च याथातथ्य त्रयोदशमध्ययनमिति ॥

हवे ग्रंथ परित्याग नामा चौदमो अध्ययन कहेछे तेरमा अध्ययनमा यथा तथ्य पणो कह्यो ते यथा तथ्य पणो तो बाह्याभ्यंतररूप द्विविध परिग्रहना त्याग विना न थाय माटे आ चौदमा अध्ययनमा ग्रंथ परित्याग पणो कहेछे

गथं विहाय इह सिक्खमाणो, उठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ॥ उवा
यकारी विणयं सुसिक्खे, जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ ज
हा दियापोतमपत्तजातं, सावासगा पविउं मन्नमाणं ॥ तमचाइय
तरुणमपत्तजातं, ढंकाइ अवत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-(गथं के०) धनधान्य हिरण्यादिक बाह्य ग्रंथ अने क्रोधादिक अभ्यंतर ग्रंथ ए द्विविध ग्रंथने (विहाय के०) त्यागीने (इह के०) आ प्रवचनने विषे (सिक्ख

काल अने भावनो जाण तथा (सुविभावियप्पा के०) नानाप्रकारनी भावनाये करी ने भाव्योछे आत्मा जेमनो एवो ठतो (अन्नजणपन्नसापरिहवेज्जा के०) अन्य जन प्रत्ये पोतानी प्रज्ञाये करी एटले पोताना जाणपणे करी पराभवे अर्थात् एम जाणे जे माहारा समान कोइ जाण पुरुष नथी एरीते बीजाने तृणवत गणे ॥ १३ ॥ एवा साधुने दोष कहेछे (एवणसेहोइसमाहिपत्ते के०) एरीते अहंकारनो कर नार जे साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो न कहेवाय (जेपन्नवनिरकुविउक्कसेज्जा के०) जे साधु प्रज्ञावंत थइने व्युत्कर्ष एटले गर्वने धारण करे (अहवाविजेलाभमयावलित्ते के०) अथवा जे कोइ साधु अल्पांतराय थको लाभवान् एटले बीजाने उपकरण आ पवाने समर्थ ठतो लाभना मदे करी लिप्त थाय एटले मत्त थाय (अन्नंजणखिसति वालपन्ने के०) अन्य जनने खिसे एटले बीजानी निंदा करे अने एम विचारे जे सर्व साधारण सय्या संस्तारक प्रमुख लाववाने हुज समर्थेलुं बीजा बापडा शु ? पेट भरवाने पण समर्थ नथी एवो साधु बाल एटले मूर्ख बुद्धिवालो जाणवो ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—भाषावान् भाषागुणदोषज्ञोयोभिक्षु सुसाधुवादी हितमितवादी प्रतिभा नमुत्पत्तिक्याद्बिुद्धिस्तद्वान् विशारदोऽर्थग्रहणसमर्थ । अगाढा तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बु द्धिर्यस्य सोगाऽढप्रज्ञ सुविभावितोधर्मवासनावासितआत्मायस्य सतथा । एभिर्गुणै साधुर्भवति यश्च मदवानन्य जन स्वकीयया प्रज्ञया परिभवेत् ॥ १३ ॥ तद्दोषानाह । ए व परपरिभवकारी समाधिर्धर्मध्यान तत्र प्राप्तोन भवति । य प्रज्ञावान् भिक्षुरुत्कर्षेत् ग र्वं कुर्यात् । अथवा योलाभमदावलिप्त स्यात् लाभमदेन व्याप्त स्यात्सोन्यं जनं निंदति बालप्रज्ञोमूर्खप्रायस्तन्निंदयाच समाधिं न प्राप्नोतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—यस्मादमी दोषा समाधिमाख्यातमसेवमानानामाचार्यपरिभाविणा वा त स्मादमीभि शिष्यगुणैर्भाव्यमित्याह । (जेभासवमित्यादि) भाषागुणदोषज्ञतया शो भनभाषायुक्तोभाषावान् भिक्षु साधुस्तथा सुष्ठु साधु शोभन हित मितं प्रियं वदितु शी लमस्येत्यसौ सुसाधुवादी क्षीरमध्वाश्रववादीत्यर्थ । तथा प्रतिभा नामोत्पत्तिक्याद्बिुद्धि गुणसमन्वितत्वेनोत्पन्नप्रतिभत्व तत्प्रतिभान विद्यते यस्यासौ प्रतिभानवान् अपरेणा क्षिप्तस्तदनंतरमुत्तरदानसमर्थ । यदिवा धर्मकथावसरे कोयं पुरुष कंच देवताविशेषं प्रणत कतरद्वा दर्शनमाश्रितइत्येवमासन्नप्रतिभतया यथायोगमाचष्टे तथा विशारदोऽर्थ ग्रहणसमर्थोवहुप्रकारार्थकथनसमर्थोवा चशब्दाच्च श्रोत्रभिप्रायज्ञस्तथा अगाढाऽवगाढा परमार्थपर्यवसिता तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्यासावगाढप्रज्ञस्तथा सुष्ठु विविध भावितोधर्म

थोपुवुद्दिहोइत्यादि) ग्रंथोऽव्यनावनेदनिन्न कुल्लकनैर्ग्रंथ्य नाम उत्तराध्ययनेष्वध्ययनं। तत्र पूर्वमेव सप्रपचोऽनिहित ।इह तु ग्रथ इव्यनावनेदनिन्न य परित्यजति शिष्यश्चाचारादिक वा ग्रथ योधीते सशिष्योद्विविधोद्विप्रकारोज्ञातव्योनवति । तद्यथा । प्रव्रज्यया शिक्षया च। यस्य प्रव्रज्या दीयते शिक्षा वा यो ग्राह्यते सद्विप्रकारोपि शिष्यइहपुन शिक्षा शिष्येण प्रकृतमधिकारोय शिक्षा गृण्हाति शिक्षकस्तन्निरूपयेह प्रस्तावऽत्यर्थं । यथाप्रतिज्ञातमधिकृत्याह । " सो सिरकगो य डुविहो, गहणे आसेवणा य णायव्वो ॥ गहणमि होति तिविहो सुत्ते अत्थे तडुनएय, ॥ ३० ॥ (सोसिरकगोयडुविहोऽत्यादि) य शिक्षा गृण्हाति सद्विविधोद्विप्रकारकोनवति । तद्यथा । ग्रहणे प्रथममेवाचार्यादि सकाशाच्छिक्षा इच्छामिच्छातहकारादिरूपा गृण्हाति शिक्षति तथा शिक्षिता वाल्यम्यति अर्हानिशमनुतिष्ठति सएवविधोग्रहणासेवनानेदनिन्न शिष्योज्ञातव्योनवति । तत्रापि ग्रहणपूर्वकमासेवनमिति कृत्वाऽऽदावेव ग्रहणशिक्षामाह। शिक्षया ग्रहणे उपादानेऽधिकृते त्रिविधोनवतीति शिक्षक ।तद्यथा । सूत्रेऽर्थे तडुनयेच सूत्रादीन्यादावेव गृण्हन् सूत्रादि शिक्षकोनवतीति नाव । साप्रत ग्रहणोत्तरनाविनीमासेवनामधिकृत्याह । (" आसेवणाए डुविहो, मूलगुणे चेव उत्तरगुणेय ॥ मूलगुणे पचविहो, उत्तरगुणे वारसविहो उ" ॥ ३१ ॥ (आसेवनेऽत्यादि) यथावस्थितसूत्रानुष्ठानमासेवना तया कारणनूतया द्विविधोनवति शिक्षक । तद्यथा मूलगुणे मूलगुणविषये आसेवमान सम्यक् मूलगुणानामनुष्ठान कुर्वन् तथोत्तरगुणे चोत्तरगुणविषय सम्यगनुष्ठान कुर्वाणोद्विरूपोप्यासेवनाशिक्षकोनवति । तत्रापि मूलगुणे पचप्रकार । प्राणातिपातादिविरतिमासेवमान पचमहाव्रतधारणात्पचविधोनवति मूलगुणेष्वासेवनाशिक्षक । तथोत्तरगुणविषये सम्यक्पिंडविशुद्ध्यादिकान् गुणानासेवमानउत्तरगुणानासेवनाशिक्षकोनवति । ते चामी उत्तरगुणा । पिंडस्स जावि सोही, समिईहो नावणा तवो डुविहा ॥ पडिमा अनिग्गहाविय, उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥ यदिवा सत्स्वप्येतेषूत्तरगुणेषु प्रधाननिर्जराहेतुतया तपएव द्वादशगुणमुत्तरगुणत्वेनाधिकृत्याह । उत्तरगुणे उत्तरगुणविषये तपोद्वादशनेदनिन्न य सम्यक् विधत्ते सआसेवनाशिक्षकोनवतीति । शिष्योह्याचार्यमतरेण न नवत्यतआचार्यनिरूपणमाह । "आयरिंड विय डुविहो, पव्वावतो य सिरिकवतो य॥ सिरकावतो डुविहो गहणे आसेवणे चेव ॥ ३२ ॥ गाहावितो तिविहो, सुत्ते अत्थेय तडुनए चेव ॥ मूलगुणउत्तरगुणो, डुविहो आसेवणाए उ" ॥ ३३ ॥ (आयरिंड वियइत्यादिगाथाद्वय शिष्यापेक्षया हि आचार्योद्विविधोद्विनेद । एकोय प्रव्रज्या ग्राहयत्यपरस्तु य शिक्षामिति । शिक्षयन्नपि द्विविध । एकोय शिक्षाशास्त्रं ग्राहयति पाठयत्यपरस्तु तदर्थं दशविधचक्रवालसमाचार्यनुष्ठानत सेवयति सम्यगनुष्ठान कारयति ।

छमाडु के०) आसमतथी जीते आजीविकाअर्थे एटले चोथो आजीविक एटले अर्थे अर्थात् धन तेनो मद साधु नकरे एम बीजो पण कोइ प्रकारनो मद नकरे (सेपन्नि एउत्तमपोग्गलेसे के०) ते पन्नित उत्तम पुजलने विषे पोते निस्पृह एवा आत्मावालो ते साधु जाणवो ॥ १५ ॥ (एयाइमयाइविगिंचधीरा के०) ए पूर्वोक्तजे प्रज्ञादिक मद ना स्थानक कह्या तेने धैर्यवान साहसीक पुरुष संसारना कारण जाणीने पोताना आत्मा थकी जूदा करे (णताणिसेवतिसुधीरधम्मा के०) एटला मदना स्थानकने सुप्र तिष्ठित जेनो धर्मछे एवा पुरुष नसेवे एटले आदरे नही (तेसव्वगोत्तावगयामहेसी के०) ते समस्त गोत्रादिक मदरहित एवो महाऋषीश्वर जे होय एवाने फल कहेछे (उच्चंअ गोत्तचगतिवयंति के०) उच्च अने अगोत्र एटले जेने विषे नामगोत्रादिक कर्म नथी तेवी गति पामे एटले ते साधु मोक्षने विषे जाय ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–प्रज्ञा बुद्धिस्तया मदस्तं तपोमदं च निर्नामयेन्निश्चयेनापनयेत् गोत्रमदं च निर्नामयेत् । आजीवोर्थनिचयस्तं गच्छत्याजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नामयेत् ॥ तु शब्दाक्षेपानपि मदान् वर्जयेत् सपुजलआत्मा पंडितउत्तमश्च स्यात् ॥ १५ ॥ एतानि प्र ज्ञादीनि मदस्थानानि विगिंच पृथक्कुर्याद्वर्जयेत् । धीराज्ञाततत्त्वा । सुधीरं सुप्रतिष्ठि तोयर्मोयेषां ते सुधीरधर्माणएवंभूतास्तानि मदस्थानानि नासेवते ते सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रा देरपगतामहर्षयउच्चां मोक्षाख्यां गतिं व्रजति । अगोत्रा गोत्रकर्मोपलक्षणादन्यदपि कर्म तत्र न विद्यतइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–तद्दर्शयितुमाह । (पन्नामयचेवेत्यादि) प्रज्ञया तीक्ष्णबुध्या मदं प्रज्ञाम दस्तंच तपोमदं निश्चयेन नामयेन्निर्नामयेदपनयेदहमेव यथाविधशास्त्रार्थस्य वेत्ता तथा हमेव विकृष्टतपोविधायी नापि तपसोग्लानिमुपगच्छामीत्येवं रूपं मदं न कुर्यात्तथोच्चै र्गोत्रे इक्ष्वाकुवंशहरिवंशादिके संभूतोहमित्येवमात्मकं गोत्रमदंच नामयेदिति । आसम ताज्जीवत्यनेनेत्याजीवोऽर्थनिचयस्तं गच्छत्याश्रयत्यसावाजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नाम येच्चशब्दाक्षेपानपि मदान्नामयेत्तन्नामनाच्चा सौ पंडितस्तत्त्ववेत्ता भवति । तथाऽसावेव स मस्तमदापनोदकउत्तमपुजलआत्मा भवति । प्रधानवाची वा पुजलशब्दस्ततश्चायमर्थः । उत्तमोत्तमोमहतोपि महीयान् भवतीत्यर्थः ॥१५॥ सांप्रतं मदस्थानानामकरणीयत्वमुप दर्शयोपसंजिहीर्षुराह । (एयाइंइत्यादि) एतानि प्रज्ञादीनि मदस्थानानि संसारकारणत्वेन सम्यक्परिज्ञाय (विगचत्ति) पृथक्कुर्यादात्मनोऽपनयेदिति यावत् । धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीराविदितवेद्यानेतानि जात्यादीनि मदस्थानानि सेवंत्यनुतिष्ठति । के एते । ये सुधीरा

पछी तेने अनेक क्षुद्र पाखंडीरूप जे ढंकपक्षीउं ते पोताने वसगामी जाणता थका तेने विप्रतारीने संयमरूप जीवितव्य थकी चुकावे (हियस्सगावचअपत्तजाय के०) पा खरहित एवो जे पक्षीनो बालक तेनी पेरे ते अगीतार्थ शिष्यने (हरिंसुणपावधम्माअ णेगे के०) ते पापधर्मि एवा अनेक पाखंडी तेने संयम थकी हरण करे ॥ ३ ॥ ए माटे चारित्रवान साधुए सर्वकाल गुरुपासे रहेवो ते कहेछे (उसाणमिछेमणुएसमा हि के०) जावजीव सुधी गुरुनी पासे रहेवानी वांछा करे जे सुसाधु ते ते एवीज स न्मार्गरूप समाधिनी वांछा करे एटले परमार्थथकी मनुष्य तेनेज कहिए के जे गुरुकु लवासे वसतो थको पोताना मापेला अंगीकार करेला सन्मार्गनो निर्वाह करे (अणो सिएणंतकरितिणच्चा के०) गुरुकुलवासे अणवसतो एटले स्वछंदाचारी छतो संसारनो अंत नकरे उलटो अनंत संसारी थाय संसारनी वृद्धि करे एवुं जाणीने (उभासमा णेदवियस्सवित्त के०) सर्वकाल गुरुकुलवासे वसे गुरुनी सेवा करे एम मुक्तिगमन योग्य साधुना आचारने अत्यंत दीपावतो थको जिनभाषित धर्मने दीपावे एवुं जा णीने (णणिक्कसेबहिया आसुपन्ने के०) आसुप्रज्ञ एटले जे पंमित होय ते गछथकी बाहेर नीकले नही अर्थात् स्वछंदी नथाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दृष्टांतयोजनामाह । एवमुक्तप्रकारेण शिक्षकं नवदीक्षितं सूत्रार्थविकल मगीतार्थमपुष्टधर्माणं पाखंडिकाः प्रतारयंति प्रतार्यच गच्छान्निःसारयति निःसारितंच स तमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावं पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापक र्माणः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके हृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयो पलक्षणार्थं भूतनिर्देशः ॥ ३ ॥ अवसानं गुरोरंतिके स्थानं समाधिसन्मार्गानुष्ठानरूपं यावज्जीवमिछेन्मनुजः साधुर्यावज्जीवं गुरुकुलवासी स्यादित्यर्थः । गुरोरंतिकेऽनुषितो ऽव्यवस्थितः कर्मणोऽनंतकरोऽतकारी नस्यादिति ज्ञात्वा गुरुं सेवेत तदहितस्य विज्ञानमु पहासोभवेत् । यतः । नहि भवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रक टितपश्चाद्भागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ द्रव्यस्य मुक्तियोग्यस्य साधोर्वृत्तमनुष्ठानमु द्भासयन्ननुतिष्ठन् ननिष्कसेन्निर्गछेद्गछाद्बहिराशुप्रज्ञः पंडितः ॥ ४ ॥

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं प्रदर्शयितुमाह । (एवंतुसेहंपीत्यादि) एवमि त्युक्तप्रकारेण । तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषं दर्शयति । पूर्वं ह्यसंजातपक्षत्वादव्यक्तता प्रतिपा दिता इहत्वपुष्टधर्मतेयति । अयं विशेषोयथा द्विजपोतमसंजातपक्षं स्वनीडान्निर्गतं क्षुद्र सत्वाविनाशयंति एवं शिष्यकमभिनवप्रव्रजितं सूत्रार्थानिष्पन्नमगीतार्थमपुष्टधर्माणं सम्यगपरिणतधर्मपरमार्थं संतमनेकपापधर्माणः पाषंडिकाः प्रकारयंति प्रतार्यच गच्छस

कृतआचरितोदृष्टोऽव्यवस्थितोऽवगतश्च धर्मोयेन सतथा । एवभूतोग्रामं नगर वाऽनुप्र विश्य भिक्षार्थमेपणा गवेपणग्रहणैपणा तथाऽनैपणामुज्ञमदोपादिका च जानन्नन्नस्य पानस्य वाऽननुगृद्धोऽनासक्त सम्यग्विहरेत् ॥ १७ ॥ अरति रति वाऽभिभूय त्यक्त्वा भि क्षुरेकातमौनेन सयमेन व्यागृणीयात् धर्मसबधं ब्रूयात् । किभूत साधु । बह्वोजना सयमसहायायस्य सबहुजनोगच्छवासी। अथवा एकचारी एकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा । किब्रूयादित्याह । एकस्य जतो कर्मानुगतस्य परलोके गतिरागतिश्च स्यादिति ॥ यत । ए क प्रकुरुते कर्म,भुनक्त्येकश्च तत्फल ॥ जायते म्रियते चैक,एकोयाति भवातरमिति ॥१८॥

॥ टीका–किच । (भिक्खूमुयच्चेइत्यादि) सएव मदस्थानरहितोभिक्षणशीलोभिक्षु । तं विशिनष्टि । मृतेच स्नानविलेपनादिसस्काराभावादर्चा तनु शरीर यस्य समृतार्च । यदिवा मोदन मुत् तद्भूता शोभनाऽर्चा पद्मादिका लेश्या यस्य सभवति मुदर्च प्रशस्तदर्शी लेश्य । तथा दृष्टोऽवगतोयथावस्थितोधर्म श्रुतधर्मचारित्राख्योयेन सतथा चैवभूत क्वचिदवसरे ग्राम नगरमन्यद्वा मगादिकमनुप्रविश्य भिक्षार्थमसावुत्तमधृतिसहननोपप न्न सन्नेपणा गवेपणग्रहणैपणादिकां जानन् सम्यगवबुध्यन्नेनैषणा चोद्गमदोपादिका तत्प रिहार विपाक च सम्यगवगच्छन्नन्नस्य पानस्य वा नतु गृद्धोऽनध्युपपन्न सम्यग्विहरेत् । त थाहि । स्थविरकल्पिकाद्विचत्वारिंशद्दोपरहिता भिक्षा गृण्हीयुर्जिनकल्पिकाना तु पचस्व भिग्रहो द्वयोर्ग्रहस्ताश्चेमा । संसट्ठमसंसट्ठा,उद्धड तह होति अप्पलेवाय ॥ उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्माय सत्तमीया ॥ १ ॥ अथवा योयस्याभिग्रह सतस्यैपणा अप रात्वनैषणेत्येवमेदणानैपणाभिज्ञ क्वचित्प्रविष्ट सन्नाहारादावमूर्छित सम्यक्शुद्धा भि क्षा गृण्हीयादिति ॥ १७ ॥ तदेव भिक्षोरनुकूलविपयोपलब्धिमतोप्यरक्तद्विष्टतया तथा दृष्टमप्यदृष्टं श्रुतमप्यश्रुतमित्येव भावयुक्ततया च मृतकल्पदेहस्य सुदृष्टधर्मणएषणानेप णाभिज्ञस्यान्नपानादावमूर्छितस्य सत क्वचिद्ग्रामनगरादौ प्रविष्टस्याऽसयमे रतिररतिश्च सयमे कदाचित्प्राद्रुष्यात्सा चापनेतव्येत्येतदाह । (अरइरईचेत्यादि) महामुनेरप्यस्ना नतयामलाविलस्यांतप्रातवल्लचणकादिभोजिन कदाचित्कर्मोदयाऽरति सयमे समुत्पद्ये त तां चोत्पन्नामसौ भिक्षु संसारस्वभाव परिगणय्य तिर्यङ्नारकादिदु खं चोत्प्रेक्षमाण श्चल ससारिणामायुरित्येव विचित्याभिभवेदभिभूय वाऽसावेकातमौनेन व्यागृणीयादित्यु त्तरेण सबंध । तथा रति वाऽसयमे सावद्यानुष्ठाने अनादिभवाभ्यासादुत्पन्नामभिभवेदभि भूय सयमोद्युक्तोभवेदिति । पुन साधुमेव विशिनष्टि । बह्वोजना साधवोगच्छवासितया सयमसहायायस्य सबहुजनस्तथैकएव चरति तच्छीलश्चैकचारी सच प्रतिमाप्रतिपन्नएकल्ल विहारी जिनकल्पादिर्वा स्यात्सच बहुजनएकाकीवा केनचित्पृष्टोऽपृष्टोवैकातमौनेन संय

जे ठाणउ य सयणासणे य, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते॥समितीसु गुत्तीसु य आयपन्ने, वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥ ५ ॥ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि, अणासवे तेसु परिवएज्जा ॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा, कहंकह वा वितिगिच्छ तिन्ने ॥ ६ ॥

अर्थ–(जेके०) जे वैराग्य आदरी चारित्रवत थको (ठाणउय के०) स्थान आश्री कायोत्सर्गादिकने विषे (सयणासणेय के०) तथा शयन अने आशनने विषे चकार शब्दथकी गमनने विषे (परक्कमेयावि के०) पराक्रम एटले बल फोरवे ते केवो थको फोरवे तोके (सुसाहुजुत्ते के०) रुडा आचारसहित एवो छतो (समितीसुगुत्तीसुयआयपन्ने के०) पाच समिति अने त्रण गुप्तिने विषे आयपन्न एटले सम्यक् जाण (वियागरिंतेयपुढोवएज्जो के०) अथवा अन्यने उपदेश देतो ते उपदेशने गुरु प्रासाद थकी जाणीने तेने जुदो जुदो विचार कहे ॥५॥ (सद्दाणिसोच्चाअदुभेरवाणि के०) शब्द ते वशना वीणादिक कर्णने सुखना करनार तथा भैरव एटले कर्णने दुःखना करनार एवा शब्द सांभळीने (अणासवे के०) ते शब्दादिकने विषे राग द्वेष रहित एवो छतो (सुपरिवएज्जा के०) रुधो संयम पाले (निद्दचभिक्खूनपमायकुज्जा के०) तथा निद्रारूप जे प्रमाद ते पण भिक्षु नकरे ए प्रकारे प्रवर्त्ततो (कहकहवावितिगिच्छतिन्ने के०) कोई पण प्रकारे वितिगिछ एटले संदेह तेथकी निःक्रांत थाय एटलेसदेह रहित थाय. ॥६॥

॥ दीपिका–प्रव्रज्या प्रति उद्यतोनित्यं गुरुकुलवासत स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा शयनतआसनत । चकाराद्गमनमाश्रित्य तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्यतविहारिणोये समाचारास्तै समायुक्त स्थानशयनासनादावुपयुक्तइत्यर्थ । समितिषु गुप्तिषु चागताउत्पन्ना प्रज्ञा यस्य सआगतप्रज्ञ सजातकृत्याकृत्यविवेक स्वत स्यात् । परस्यापि व्याकुर्वत् कथयत् पृथक् समितिगुप्तीना पालनं तत्फलंच वदेत् ॥५॥ शब्दान् मनोहरान् श्रुत्वाऽथवा भैरवान् कर्णकटून् श्रुत्वा तेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोभूत्वा परिव्रजेत्सयमानुष्ठायी स्यात् । तथा निद्रा प्रमादरूपां भिक्षुर्नकुर्यात् । तदेव गुरूपदेशात् कथंकथमपि विचिकित्सां विप्लुतिरूपा वितीर्णोनिष्क्रात स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–तदेव प्रव्रज्यामभ्युद्यतोनित्य गुरुकुलमावसन् सर्वत्र स्थानशयनासनादावुपयुक्तोभवति तदुपयुक्तस्य च गुणमुद्भावयन्नाह । (जेठाणउ यइत्यादि) योहि निर्विण्णसंसारतया प्रव्रज्यायामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलवासत स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा

किंभूत धर्मं प्रजाना जीवाना हितद। ये च गर्हितानिवा सह निदानेनाऽऽशंसारूपेण वर्तंते ते सनिदाना प्रयोगाव्यापारा कर्मबंधहेतवस्तान् सुधीरधर्माणोनिक्षवोन सेवते ॥ १९ ॥ केषाचिन्मिथ्यादृशा भावमभिप्रायमबुध्वाऽज्ञात्वा तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोवदेत् कश्चित्साधु श्रावकोवा सच तद्वचोश्रद्दधान क्षुद्दत्वमपि गछेत् विरूप कुर्यात् पालकपुरोहितइव स्कंदकाचार्यस्य सकुपितोवक्तुर्यदायुस्तस्य व्याघातरूप क्षयस्वभाव कालातिचार दीर्घस्थितिकमप्यायु सवर्तयेत् ।कोर्थ ।पुरुषविशेष ज्ञात्वा हि देशना कार्या।अन्यथा श्रोता॰ विरुद्धिवच श्रवणकुपितोमरणाद्युपसर्गमपि वक्तु कुर्यादिति तस्माल्लब्धमनुमान पराभिप्रायज्ञान येन सलब्धानुमान परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगमर्थान् जीवादिकान् वदेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–किचान्यत् । (सयसमेच्चेत्यादि) स्वयमात्मना परोपदेशमतरेण समेत्य ज्ञात्वा चतुर्गतिक ससार तत्कारणानि च मिथ्यात्वाविरत्यतिप्रमादकषाययोगरूपाणि तथाऽशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षं तत्कारणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्येतत्सर्वं स्वत एवाववुध्यान्यस्माद्वाचार्यादे सकाशाछ्रुत्वाऽन्यस्मै मुमुक्षवे धर्मं श्रुतचारित्राख्य भाषेत। किंभूत । प्रजायतइति प्रजा स्थावरजगमाजतवस्तेभ्योहित सदुपदेशदानत सदोपकारिण धर्मं ब्रूयादिति । उपादेय प्रदर्श्य हेयं प्रदर्शयति । ये गर्हिताजुगुप्सितामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा कर्मबंधहेतव सह निदानेन वर्ततइति सनिदाना प्रयुज्यंतइतिप्रयोगाव्यापाराधर्मकथाप्रबंधावा ममास्मात्सकाशात्पूजालाभसत्कारादिक भविष्यतीत्येवभूतनिदानाऽऽशसारूपास्ताश्चारित्रविघ्नभूतान् महर्षय सुधीरधर्माणोन सेवते नानुतिष्ठति । यदि वा ये गर्हिता सनिदानावाक्प्रयोगास्तद्यथा कुतीर्थिका सावद्यानुष्ठानविरतानि शीलानिर्व्रता कुटलवेटलकारिणइत्येवभूतान्परदोषोद्घट्टनया मर्मवेधिन सुधीरधर्माणोवाक्कटकान् नसेवते नब्रुवनइति ॥ १९ ॥ किचान्यत् । (केसितक्कायेत्यादि) केषाचिन्मिथ्यादृष्टीना कुतीर्थिकभाविताना स्वदर्शनाग्राहिणा तर्कया वितर्केण स्वमतिपर्यालोचनेन भावमभिप्राय दुष्टात करणवृत्तित्वमबुध्वा कश्चित्साधु श्रावकोवा स्वधर्मस्थापनेछया तीर्थिकतिरस्कारप्राय वचोब्रूयात् सच तीर्थिकस्तद्वचोऽश्रद्दधानोरोचयन्नप्रतिपाद्यमानोऽति कटुक भावयेत् क्षुद्दत्वमपि गछेद्विरूपमपि कुर्यात् । पालकपुरोहितवत् स्कंदकाचार्यस्येति । क्षुद्दत्वगमनमेव दर्शयति । सनिदावचनकुपितोपि वक्तुर्यदायुस्तस्यायुषो व्याघातरूप परिक्षयस्वभाव कालातिचार दीर्घस्थितिकमप्यायु सवर्तेत्।एतदुक्तं भवति । धर्मदेशनाहि पुरुषविशेष ज्ञात्वा विधेया ।तद्यथा । कोय पुरुषोराजादि कचन देवताविशेष नत॰ कतरद्वा दर्शनमाश्रितोऽभिगृहीतोनभिगृहीतोवाऽयमित्येव सम्यक् परिज्ञाय

मादे खलना पाम्यो ठतो तेने न्हाने अथवा वडेराये शीखामण दीधी ठता (रायणिए णाविसमव्वएण के०) अथवा रत्नाधिक जे आचार्य अथवा सरखा पर्याय वालाये शीखामण आपीठता (सम्मतयंथिरतोणाभिगछे के०) तेमनी शीखामण सम्यक् प्र कारे नमाने (णिज्जंतएवाविअपारएसे के०) ते ससार प्रवाहे वाहाडीजतो संसारनो पारगामी नथाय एटले मुक्तिगामी नथाय ॥ ७ ॥ (विउछिते के०) अन्यतीर्थिक अ थवा गृहस्थ तेणे साधुने (समयाणुसिठे के०) सिद्धातने अनुसारे शीखव्यो ठतो ए टले जेवीरीते तमे समाचरोठो तेम तमारा आगमने विषे कह्यु नथी (महरेणवुड्ढेण उचोइएया के०) तथा न्हाने अथवा महोटे शीखामण चोयणा आपी ठता (अञ्च ठियाएवडदासिएवा के०) एटले अत्यत कार्यनी करनारी तथा पाणीनी नरनारी ए वी दासी तेणे (आगारिणवासमयाणुसिट्ठे के०) सिद्धांतने अनुसारे चोयणा कस्यो ठतो एटले जेम तमे चालोठो तेम गृहस्थ पण नचाले इत्यादिक वचने करी चोयणा कस्यो ठतो शु करे ते कहेछे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–ससाधुर्गुरुसमीपे वसन् डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनुशाशित प्रमादाच रणनिषिद्ध । अथवा वयोधिकेन पर्यायज्येष्ठेन समवयसा वाऽनुशासित कुप्यति तद नुशासन सम्यक्स्थितोऽपुन करणतया नाभिगछेन्नप्रतिपद्येत । अप्रतिपद्यमानश्च ससार प्रवाहे नीयमानोन ससारपारग स्यात् ॥ ७ ॥ विरुद्धोत्थानेनोछितोव्युछितोऽन्यतीर्थि कोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदित स्वसमयेन । तद्यथा । नैवविधम नुष्ठान नवतामागमेव्यवस्थितमिति । तथा डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनाचारे प्रवृत्त श्चोदितस्तथाऽतीवाऽकार्यकरण प्रति उछिताऽथवा दासीत्वेनात्यतमुछिता तया । तथा दास्या अपिदासीत्वेन घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोध कुर्यात् तथाऽगारि णां गृहस्थानां य समयोनुशासितोगृहस्थानामप्येतन्नयुज्यते कर्तु किं पुन साधूनामि तिचोदितोपि न कुप्येत् ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (डहरेणेत्यादि) सगुर्वतिके निवसन् क्वचित् प्रमादस्खलि त सन् वय पर्यायान्या क्षुल्लकेन लघुना चोदित प्रमादाचरण प्रतिषिद्धस्तथा वृद्धेन वा वयोधिकेन श्रुताधिकेनवाऽनुशासितोऽभिहित । तद्यथा । नवद्विधानामीदृक्प्रमा दाचरणमासेवितुमयुक्त । तथा रत्नाधिकेनवा प्रव्रज्यापर्यायाधिकेन श्रुताधिकेनवा स मवयसा वाऽनुशासित प्रमादस्खलिताचरणप्रति चोदित कुप्यति । यथाहमप्यनेन र कप्रायेणोत्तमकुलप्रसूत सर्वजनसमतइत्येव चोदितइत्येवमनुशास्यमानोन मिथ्याडुष्कृ तं ददाति न सम्यगुत्थानेनोत्तिष्ठति नापि तदनुशासन सम्यक्स्थितोऽपुन करणतया नि

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ (आहत्तहीयसमुपेहमाणे के०) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत ठे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारे अनुष्ठानने अन्यासतो थको (सवेहिं पाणेहिंणिहायदंमेके०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोठे तेनो दंम एटले विना शत्रु त्याग करीने प्राणाते पण धर्मनुं उलंघन नकरे (णोजीवियणोमरणाहिकखीके०) जीवितव्य अने मरणनी वांगरहित समतानावसहित थको (परिव्वएज्जावलयाविप्पमुक्के के०) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्रमुक्त थाय तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतागना प्रथमश्रुतस्कंध नेविषे यथातथ्य नामे तेरमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

॥ दीपिका–धीरोबुद्धिमान् श्रोतु कर्मानुष्ठान गुरुलघुकर्मत्व वा तथा ठंदमनिप्राय (विगिंच) विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मनाव मिथ्यात्वादिक व्यपनयेत् विषयासक्ति व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहारिनिर्नयावहे ससारनयकारिनिस्तुच्छसत्त्वाविलुप्यते धर्मात् बाध्यंते एव विद्वान् पंडितो गृहीत्वा परानिप्राय त्रसस्थावरेन्योहित धर्म वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशना कुर्वन् पूजन वस्त्रपात्रादिलानरूपं न वाठेत् नापिश्लोक श्लाघा कामयेत् तथा श्रोतु' प्रिय राजकथादिकमप्रिय तदाश्रितदेवनिंदादिरूप न कथयेत् । एव सर्वान् दोषान् परिवर्जयेदनाकुल साधुरकषायी नवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्य सम्यक्चारित्र प्रेक्षमाण पर्यालोचयन् सर्वेषु प्राणिषु दंड हिंसा निधाय त्यक्त्वा जीवितमसयमजीवितं न काङ्क्षेन्नापि मरणानिकाङ्क्षी स्यात् । तदेव वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्त परिव्रजेत्संयमानुष्ठान चरेत्साधु । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्य त्रयोदशमध्ययन समाप्त ॥

॥ टीका–अपिच । (कम्मचठंदचेत्यादि) धीरोऽक्षोन्य सद्बुध्यर्लकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतु कर्मानुष्ठान गुरुलघुकर्मनाव वा तथा ठंदमनिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशना कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादिपदार्थावगमोनवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नता व्रजत्येतदनिसंधिमानाह । विशेषेण नयेदपनयेत्पर्षद पापनावमशुद्धमत करण तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात । आयनाव ति क्वचित्पाठ । तस्यायमर्थ । आत्मनावोऽनादिनवान्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तमपनयेद्यदिवात्मनावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारिनि स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिनिरल्पसत्त्वाविलुप्यते सद्धर्माद्वाध्यंते । किनूतैरूपैर्नयावहे । नयमावहति नयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगुप्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविमंबना' प्राडुर्नवति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

ए दृष्टाते शिष्य पण एम जाणे जे (तेणेवमज्झंइणमेवसेयं के०) मुजने एहिज शिक्षानो मार्ग श्रेयकारी कहेछे (जमेवुहासमणुसासयति के०) जे मुजने वुद्ध पंडित गुरु आचार्यादिक सम्यक् रीते पुत्रनीपरे शिखामण शिक्षा आपेछे ते शिखामणने श्रेयकारी मानीने आदरे ॥ १० ॥

॥दीपिका–तेषु स्खलितनोदकेषु न क्रुध्येत्। यत ।आकुष्टेनमतिमतातत्वार्थविचारणे मति कार्या । यदि सत्य क कोप स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा तं नोदकं न प्रव्यथेत न दमादिप्रहारेण पीमयेत् । नचापि किंचित्परुप पीडाकारि वदेत् नोदितश्च तथा करिष्यामीति प्रतिशृणुयादगीकुर्यात् इद नोदन ममश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्प्रमादं न कुर्यात् ॥ ए ॥ वनें मूढस्य दिग्भ्रांतस्य कस्यचिद्यथाऽमूढामार्गज्ञामार्गमनुशासंति कथयंति । किंनूतं मार्ग प्रजाना हितं । एव तेनाप्यसदनुष्ठायिना नोदिते न कुपितव्य किंतु ममैव श्रेयइति मतव्यं । यदेतद्बुधा सम्यगनुशासयति सन्मार्गे प्रापयंति ॥ १० ॥

॥ टीका–एतदेवाह । (णतेसुकुज्झेइत्यादि) तेषु स्वपरपक्षेषु स्खलितचोदकेष्वात्महितं मन्यमानोन क्रुध्येदन्यस्मिन् वा डुर्वचनेऽनिहिते न कुप्येदेव चितयेत् । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थविचारणे मति कार्या ॥ यदि सत्यं क कोप स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा नाप्यपरेण सतोऽधमेनापि चोदितोऽर्हन्मार्गानुसारेण लोकाचारगत्या वाऽनिहित परमार्थ पर्यालोच्य त चोदक प्रकर्षेण व्यथेद्दडादिप्रहारेण पीमयेन्न चापि किंचित्परुप तत्पीडादिकारि वदेत् ब्रूयात् । ममैवायमसदनुष्ठायिनोदोपोयेनायमपि मामेव चोदयति चोदितश्चैवविध नवता असदाचरण न विधेय । एवविधे च पूर्वापिरनुष्ठितमनुष्ठेयमित्येवविधवाक्यं तथा करिष्यामीत्येव मध्यस्थवृत्त्या प्रतिशृणुयादनुतिष्ठेच्च मिथ्याडुष्कृतादिना निवर्तेत । यदेतच्चोदन नामैतन्ममैवश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्पुन प्रमाद न कुर्यान्नैवासदाचरणमनुतिष्ठेदिति ॥ ए ॥ अस्यार्थस्य दृष्टातं दर्शयितुमाह । (वणसीत्यादि) वने गहने महाटव्या दिग्भ्रमेण कस्यचिद्व्याकुलितमतेर्नष्टसत्पथस्य यथा केचिदपरे कृपाकृष्टमानसाअमूढा सदसन्मार्गज्ञा कुमार्गपरिहारेण प्रजानां हितमशेषापायरहितमीप्सितस्थानप्रापक मार्ग पथानमनुशासति प्रतिपादयति।सच तै सदसद्विवेकिनि सन्मार्गावतरणमनुशासितआत्मन श्रेयोमन्यते । एव तेनाप्यसदनुष्ठायिना चोदितेन नकुपितव्यमपितु ममायमनुग्रहइत्येव मतव्य । यदेतद बुद्धा सम्यगनुशासयत्ति सन्मार्गेऽवतारयति पुत्रमिव पितरस्तन्ममैवश्रेय इति मतव्य ॥ १० ॥

अह तेण मूढेण अमूढगस्स, कायव पूया सविसेसजुत्ता ॥ एत्रे
वम तत्र उदाहु वीरे, अणुगम्म अत्र उवणेति सम्म ॥ ११ ॥

माणो के०) सम्यक् प्रकारे संयममार्ग शुद्धक्रियारूप शीज सीखतो थको (उद्वायसु के०) संयमने विषे उद्यम करीने सुशोजन एवा (बंजचेरवसेज्जा के०) ब्रह्मचर्यव्रतनु नव वाडसहित आश्रय करे (उवायकारीविणयसुसिरके के०) तथा जावजीव शुधी उपायकारी एटले गुरुनी आज्ञा पाजतो शोजन प्रकारे करीने विनयज शीखे (जेढेय विप्पमायंनकुज्जा के० जे माह्या पुरुष ढे ते ए कार्यने विषे प्रमाद नकरे ॥ १ ॥ हवे गुरु उपदेशविना पोताने ठदे गच्छथकी निकलीने जे एकाकी पणे विचरे तेने घणा दोषनी प्राप्ति थाय ते उपर दृष्टांत कहेढे (जहादिया के०) यथा दृष्टांते जेम पक्षी ना (पोतअपत्तजात के०) बालक ने ज्यां सुधी पांख आवी नथी त्यांसुधी ते पांख विनानो एवो ठतो (सावासगापविउंमन्नमाण के०) पोताना माला थकी उडवानी वा ठा करतो थको पांख फडफडावे परंतु (तमचाइय तरुणमपत्तजातं के०) आकरो उ डीजवाने असमर्थ थाय अने तेने पांखो थकी हीन मांसपेसी समान एवो न्हानो तरु ण देखीने (ढकाइअव्वत्तगमहरेज्जा के०) मांसाहारी एवा ढकादिक पक्षीउ तेने अप हरीने तेनो विनाश करे ते बालक केवोढे तो के अव्यक्तगतासिवा असमर्थ एटले त्यां थी नाशी जवाने असमर्थ एवोढे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ चतुर्दश ग्रंथाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्र । (गथमिति) इह प्रवचने ग्रंथ धनादिकं त्यक्त्वा शिक्षमाणोग्रहणसेवनाशिक्षा सेवमान सडुत्थानेनोत्थाय सुष्ठु शोजन ब्रह्मचर्यमाश्रित्य वसेत्तिष्ठेदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्तत्कारी आचार्यक थितकारी विनयं सुष्ठु शिक्षेत् कुर्यात् तथा यश्छेकोनिपुण स विप्रमाद विविध प्रमाद न कुर्यात् ॥ १ ॥ यथाद्विजपोत पक्षिशिशुर्नविद्यते पत्रजातं पक्षोद्भवोयस्य सोऽपत्र जात पक्षहीनस्त स्वकीयादावासकात् प्लवितुमुत्पतितु मन्यमान तत्र पतंतमुपलभ्य तं (अचाइयति) पक्षाजावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजातमिति कृत्वा ढंकादयोमांसाहारा सत्वा अव्यक्तगम गमनाजावे नष्टुमसमर्थ हरेयुर्व्यापादयेयु ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्त त्रयोदशमध्ययन सांप्रतं चतुर्दशमारभ्यते । अस्य चायमजिसबंध । इहानंतराध्ययने याथातथ्यमिति सम्यक्चारित्रमजिहितं तच्च बाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागा दववदात जवति । तत्त्यागश्चानेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन सबंधेनायातस्यास्याध्ययन स्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि जवति। तत्रोपक्रमद्वारांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । त द्यथा। सबाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागोविधेयइति नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे आदानपदाद्गुणनिष्प न्नत्वाच्च ग्रंथइति नाम त ग्रंथमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह् । " गंथोपुव्वुद्दिठो, डुविहो सि स्सो य होति णायव्वो ॥ पव्वावण सिरकावण, पगव सिरकावणाए उ " ॥ २९ ॥ (गं

पूजा विधेयेति ॥ अस्मिन्नर्थे बह्वोदृष्टांता संति । तथा । गेहंमि अग्गिजाला, उलंमि ज हणामज्झमाणंमि । जो बोहेइ सुयंतं सो तस्स जणो परमबधू ॥१॥ जह्वा विसज छु तं, नत्तमिह्मिद्नोतुकामस्स ॥ जोवि सदोसं साहइ, सो तस्स जणो परमबंधू ॥ २ ॥ ॥ ११ ॥ अयमपर सूत्रेणैव दृष्टातोऽनिधीयते । (णेयाजहेत्यादि) यथाहि सजलज लधराच्छादितबहलाधकाराया रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशेपि मार्गं पंथानम धकारावृतत्वात्स्वहस्तादिकमपश्यन्न जानाति न सम्यक् परिछिनत्ति । सएव प्रणेता सूर्यस्या दित्यस्याभ्युद्गमेनापनीते तमसि प्रकाशिते दिक्चक्रे सम्यगाविर्भूते पाषाणदरीनिम्नोन्नता दिके मार्गं जानाति विवक्षितप्रदेशप्रापकं पंथानमभिव्यक्तचक्षु परिछिनत्ति दोषगुणवि चारणत सम्यगवगच्छतीति ॥ १२ ॥

एवं तु सेहेवि अपुट्ठधम्मे, धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से
कोविए जिणवयणेण पच्छा, सूरोदए पासति चक्खुणे वा ॥१३॥
उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावरा जे य पाणा ॥
सया जए तेसु परिव्वएज्जा, मणप्पउसं अविकंपमाणे ॥ १४ ॥

अर्थ-(एवतुसेहेविअपुट्ठधम्म के०) एरीते नवदीक्षित शिष्य पण प्रथमतो धर्मने अण फरसवाने लीधे अपंडित (धम्मनजाणातिअबुज्झमाणे के०) अगीतार्थ अबुझ थको धर्मने नजाणे सुद्ध सिद्धांतना जे अर्थ ते थकी रहित होय पछी (सेके०) ते क्षिज शिष्य गुरुकुल वासे वसतो थको (जिणवयणेणपछा के०) जिनवचन थकी सम स्त सूत्रार्थ विचारने समजीने (कोविए के०) पंडित थाय (सूरोदएपासतिचक्खुणेवा के०) जेम सूर्योदय थकी निर्मल नेत्र वालो पुरुष सर्व मार्गने जाणे तेम सुशिष्य प ण हृदयरूप नेत्रे करी आगमरूप सूर्य प्रकाशित यथार्थ निर्मल धर्मरूप मार्गने जा णे ॥ १३ ॥ ते शिष्य जाण थयो थको शुं देखे ते कहेछे (उड्ढअहेयंतिरियंदिसासुके०) उंचो नीचो अने तिर्छो एतावता सर्व लोकमाहे (तसायजेथावराजेयपाणा के०) त्रस अने स्थावर जे जीवोछे तेने विषे (सयाजएतेसुपरिव्वएज्जा के०) ते सर्वकाल यत्नकरतो संयम पाले रूडी क्रिया करे तेने विषे (मणप्पउसअविकंपमाणेके०) मने करी प्रद्वेष न करे अविकंप एटले) शुद्ध संयमने विषे अमोल निश्चल एकाग्रभावसहित एवो रहे॥१४

॥ दीपिका-एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शिष्यकोप्यपुष्टधर्मा अगीतार्थ सूत्रार्थमबुध्यमानोधर्मं न जानाति सएव पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविद. स्यात् । यथा सूर्योदये गता

तत्र सूत्रार्थे तडुनयजेदाद्याद्यन्नप्याचार्यस्त्रिधा नवति । आसेवनाचार्योपि मूलोत्तर जेदाद्विविधोजवति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेद । (गयविहेत्यादि) इह प्रवचने ज्ञातसंसारस्वजाव सन् सम्यगनुष्ठानेनोत्थितोग्रष्यते आत्मा येन सग्रंथोधनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदादिकस्त विहाय त्यक्त्वा प्रव्रजित सन् उत्थानेनोत्थाय च ग्रहणरूपामासेवनारुपा च शिक्षा च कुर्वाण सम्यगासेवमाना सुष्ठु शोजन नवनिर्ब्रह्मचर्यगुप्तिनिर्गुप्तमाश्रित्य ब्रह्मचर्य वसे त्तिष्ठेत् यदिवा ब्रह्मचर्यमिति संयमस्तदावसेत्त सम्यक् कुर्यात् । आचार्यांतिके याव ज्जीव वसमानोयावदन्युद्यतविहार न प्रतिपाद्यते तावदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्त त्कार्यावपातकारी वचननिर्देशकारी सदाज्ञाविधायी विनीयतेऽपनीयते कर्म येन सवि नयस्त सुष्ठु शिक्षेद्विदध्यात् ग्रहणासेवनाख्या विनय सम्यक्परिपालयेदिति । तथा य श्छेकोनिपुण सयमानुष्ठाने सदाचार्योपदेशे वा विविध प्रमाद न कुर्यात् । यथाहि आतुर सम्यग्वैद्योपदेश कुर्वन् श्लाघा लजते रोगोपशमचैव साधुरपि सावद्यग्रथपरि हारी पापकर्मजेपजस्थानजूतान्याचार्यवचनानि निदधदपरसाधुन्य साधुकारमशेषकर्म क्षय वा प्राप्नोतीति ॥ १ ॥ य पुनराचार्योपदेशमतरेण स्वच्छदतया गच्छान्निर्गत्य एका किविहारिता प्रतिपद्यते सच बहुदोषजाग् नवतीत्यस्यार्थस्य दृष्टातमाविर्नावयन्नाह । (जहादियाइत्यादि) यथेति दृष्टातोपप्रदर्शनार्थ । यथा येन प्रकारेण द्विजपोत प क्षिशिशुरव्यक्तस्तमेव विशिनष्टि । पतति गच्छति तेनेति पत्रं पक्षपुटं नविद्यते पत्रजात प क्षोद्भवोयस्यासावपत्रजातस्तत्र स्वकीयादावासकात् स्वनीडात् प्लवितुमुत्पतितु मन्यमान तत्रतत्र पततमुपलन्य तं द्विजपोत (अचाइपति) पक्षाजावाद्गतुमसमर्थमपत्रजात मिति कृत्वा मासपेशीकल्पं ढंकादय क्षुद्रसत्त्वा पिशिताशिनोऽव्यक्तगम गमनाजावे नष्टुमसमर्थ हरेयुश्चंच्वादिनोत्क्षिप्य नयेयुर्व्यापादयेयुरिति ॥ २ ॥

एव तु सेहपि अपुट्ठधम्मं, निस्सारियं वुसिम मन्नमाणा ॥ दि
यस्स गवं च अपत्तजायं, हरिसुण पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥
उसाणमिछे मणुए समाहि, अणोसिए णतकरिति णञ्चा ॥ उ
जासमाणे दवियस्स वित्त, ण णिक्कसे वहिया आसुपन्नो ॥ ४ ॥

अर्थ-(एवतु के०) एरीते जेम ते अव्यक्त एवोजे पक्षीनो बालक तेनो बीजा ढ कादिक क्षुद्र पक्षीउ विनाश करे तेम ते (सेहपिअपुट्ठधम्म के०) अगीतार्थ नवदिक्षी त शिष्य पण (निस्सारिय वुसिममन्नमाणा के०) गछरूप माला थकी नीकल्यो तो

कालेण पुछे समियं पयासु, आइक्कमाणो दवियस्स वित्तं ॥ तं सोय कारी पुढो पवेसे, सखा इमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥ अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण तायी, एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एवमक्खंति तिलोगदंसी, ण भुज्जमेयंति पमायसगं ॥ १६ ॥

अर्थ-(कालेण के०) ते साधु काल प्रस्तावे एटले अवशर लइने जे आचार्य (पयासु के०) प्रजा एटले जीवोने विषे (समिय के०) सम परिणामे वर्त्तता होय तेवा आचार्यनी पासे सूत्र अने अर्थ (पुछे के०) पूछे (आइक्कमाणोदवियस्सवित्त के०) अने ते आचार्य पण मुक्तिगमनयोग्य जे पुरुष एवा पुरुषना शुद्ध व्रत आचारने नापतो थको वंदनीक पूजनीक होय पंचाचारनो पालनार होय (तसोयकारीपुढोपवेसे के०) तेवा आचार्य गुरुना वचन श्रवण करतो थको जुदा जुदा अर्थ विचार कदयने विषे धारण करी राखे (सखाइमंकेवलियसमाहि के०) सन्मार्ग रूप केवली नापित सम्यक् ज्ञानादि लक्षण धर्म तद्रूप समाधि ने पोताना हृदयने विषे स्थापन करे ॥ १५ ॥ (अस्सिसुठिच्चातिविहेणतायी के०) एरीते गुरुकुल वासे वसतो एवो चारित्रिउ ते पूर्वोक्त श्रुतरूप धर्म मार्ग सांभलीने मोक्ष मार्ग ग्रहण करीने त्रिविध प्रकारे त्रायी थाय एटले मन वचन अने कायाये करी छकायनो रक्षपाल थाय (एएसुयासंतिनिरोहमाहु के०) ए समिति गुप्तिने विषे स्थित रहिने शांति तथा निरोध एटले समस्त कर्मनो क्षय करे एम कहेछे (तेएवमक्खंतितिलोगदंसी के०) ते कोण कहेछे तोके त्रैलोक दर्शि एटले सर्वज्ञ पुरुषो एम कहेछे (णभुज्जमेयंतिपमायसंग के०) वली ते साधु कदापि क्षण मात्र पण प्रमादनो संग करेनही तथा ए प्रमाद करवो एवो उपदेश पण करे नही ते पंमित साधु जाणवो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-सम्यगित सदाचारानुष्ठायिनं कंचिदाचार्यादिकं प्रजासु जंतुविषये चतुर्दशभूतग्रामविषयं किंचित् कालेनावसरं ज्ञात्वा पृछेत् । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः सेव्यः स्यात् । किमाचक्षाणइत्याह । द्रव्यस्य वीतरागस्य वृत्तमनुष्ठानं संयमं वाऽचक्षाणोमान्यः स्यात् । आचार्यवचनं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी आज्ञाविधायी सन् पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेत् । केवलिकं केवलिना कथितं समाधिं सन्मार्गमिमं वक्ष्यमाणं संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा यथोपदेशं प्रवर्तकं सम्यक् चेतसि धारयेदिति ॥ १७ ॥ अस्मिन् गुरुकुलवासे सुष्टु स्थित्वा त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा जंतूनां त्रायी रक्षकः । एतासु समितिगुप्तिषु स्थितस्य शांतिः सर्वद्वंद्वविनाश

मुङान्नि सारयंति नि सारितंच सत विपयोन्मुखतामापादितमपगतपरलोकन्नयमस्माकं वश्यमित्येव मन्यमाना । यदिवा (वुसित्ति) चारित्रं तत्सदनुष्ठानतोनि सार मन्यमा नाश्रजातपक्ष द्विजशावकमिव पक्षिपोतमिव ढकादय पापधर्माणोमिथ्यात्वाविरति प्रमादकपायकलुपितातरात्मान कुतीर्थिका स्वजनाराजादयोवाऽनेके बहवोहृतवतोहर ति हरिष्यति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थ नूतनिर्देशइति । तथाहि । पापडिकाएवमगीता र्थं प्रतारयति । तद्यथा । युष्मद्दर्शनेनाग्निप्रज्वालनविपापहारशिखाछेदादिका प्रत्यया दृश्यंते तथाऽणिमायष्टगुणमैश्वर्यंच नास्ति तथा न राजादिनिर्बहुनिराश्रित । याप्यहि सोच्यते नवदागमे सापि जीवाकुलत्वाल्लोकस्य डु साध्या नापि नवता स्नानादिक शौच मस्तीत्यादिकानि शग्नोक्तिनिरिङजालकल्पानिर्मुग्धजनं प्रतारयति स्वजनादयश्चैव विप्र लंनयंति । तद्यथा । न नवतमतरेणास्माक कश्चिदस्ति पोपक पोष्योवा त्वमेवास्माकं सर्वस्व त्वया विना शून्यमानाति तथा शब्दादिविषयोपनोगामन्त्रणेन सद्धर्माद्द्यावयंति। एव राजादयोपि ङष्टव्यास्तदेवमपुष्टधर्माणमेकाकिन बहुनिः प्रकारै प्रतार्यापहरेयुरिति। ॥ ३ ॥ तदेवमेकाकिन साधोर्यताबहवोदोपा प्राडुर्नवत्यत सदा गुरुपादमूले स्थातव्य मित्येतद्दर्शयितुमाह । (वंसाणमिछेइत्यादि) अवसान गुरोरतिके स्थान तद्यावज्जीव समाधिं सन्मार्गानुष्ठानरूपमिछेदनिलपेन्मनुजोमनुष्य साधुरित्यर्थ । सएव परमार्थ तोमनुष्योयोयथाप्रतिज्ञातं निर्वाहयति । तच्च सदागुरोरतिके व्यवस्थितेन सदनुष्ठान रूप समाधिमनुपालयता निर्वाह्यते नान्यथेत्येतद्दर्शयति । गुरोरतिकेऽनुपितोव्यवस्थि त स्वछंदविधायी समाधि सदनुष्ठानरूपस्य कर्मणोयथाप्रतिज्ञातस्य वा नातकरोन्नव तीति ज्ञात्वा सदा गुरुकुलवासोऽनुसर्तव्यस्तद्रहितस्य विज्ञानमुपहास्यप्रायं नवतीति । उक्तंच । नहि नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञान ॥ प्रकटितपश्चाद्भागं प श्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ तथा नागलविलग्नवालुका पार्ष्णिप्रहारेण प्रगुणा दृष्टाऽपरो ऽनुपासितगुरुरङ्गोराङ्गी संजातगलगडा पार्ष्णिप्रहारेण व्यापादितवानित्यादयोऽनुपासि तगुरोर्बहवोदोपा ससारवर्धनाद्यान्नवतीत्यवगम्यानया मर्यादया गुरोरतिके स्थातव्यमि ति दर्शयति । अवनासयन्नुन्नासयन् सम्यगनुतिष्ठन् ङव्यस्य मुक्तिगमनयोग्यस्य सत्सा धोरागद्वेपरहितस्य सर्वज्ञस्य व्यावृत्तमनुष्ठान तत्सदनुष्ठानतोऽवन्नासयेद्धर्मकथिक कथ नतोवोन्नासयेदिति । तदेव यतोगुरुकुलवासोबहूना गुणानामाधारोन्नवत्यतोन निष्कसे न्ननिर्गछेत गहाजुर्वेतिकाद्वा बहि: स्वेछाचारी ननवेद्गाशुप्रज्ञऽति क्षिप्रप्रज्ञस्तदतिके निव सन् विषयकपायाभ्यामात्मान ह्रियमाण ज्ञात्वा क्षिप्रमेवाचार्योपदेशात्स्वतएव वा निव र्तयति सत्समाधौ व्यवस्थापयतीति ॥ ४ ॥

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्य क् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिजाणवहोईविसारएय के०) प्रतिनावंत एट ले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे ए वो (आयाणअठी के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाण के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोण के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरक के०) शूधो निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसताजे करे ते देखाडेछे (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पढी ते ने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकरानवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोएहविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोता ने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारगामी थाय (संसोधितपएहमु दाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध इव्य क्षेत्र काल नाव जाणी ने प श्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुढनारने समाधिना करनार थाय ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–सगुरुकुलवासी निक्षु साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिनानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च नवति । आदीयते मोक्षार्थिनिरित्यादा नं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं त पः । मौनं संयमः । तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापय न् मोक्षमुपैति । (नउवेऽमारकंचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न ज्रमतीति ॥ १७ ॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्म णामंतकरानवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपकाद्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपार गाः स्युः । ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । कोर्थः परेण कश्चिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णिसम्मेत्यादि) सगुरुकुलवासी निक्षुः इव्यस्य वृत्तं निश म्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकु लवासतः प्रतिनानवानुत्पन्नप्रतिनोनवति । तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतृणां य थावस्थितार्थानां विशारदोनवति प्रतिपादकोनवति । मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवनूतो

शयनतश्चासनत । एकश्चकार समुच्चये द्वितीयोऽनुक्तसमुच्चयार्थे । चकाराद्गमनमाश्रि त्यागमनच तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्युक्तविहारिणोये समाचारास्तै समा युक्त सुसाधुर्हि यत्र स्थान कायोत्सर्गादिक विधत्ते तत्र सम्यक्प्रत्युपेक्षणादिका क्रियां करोति कायोत्सर्ग च मेरुरिव निष्प्रकंपशरीरोनिस्पृहोविधत्ते तथा शयन च कुर्वन् प्रत्युपे क्ष्य सस्तारकं तद्भुव काय वोचितकाले गुरुभिरनुज्ञात स्वपेत्तत्रापि जाग्रदिव नात्यंत नि सहइति । एवमासनादिष्वपि तिष्ठता पूर्ववत्सकुचितगात्रेण स्वाध्यायध्यानपरायणे न सुसाधुना नवितव्यमिति । तदेवमादिसुसाधुक्रियायुक्तोगुरुकुलनिवासी सुसाधुर्नव तीति स्थितं । अपिच गुरुकुलवासे निवसन् पचसु समितिष्वीर्यासमित्यादिषु प्रविचा राऽप्रविचाररूपासु तथा तिसृषु च गुप्तिषु प्रविचाराप्रविचाररूपासु आगतोत्पन्ना प्रज्ञा य स्यासावागतप्रज्ञ संजातकर्तव्याकर्तव्यविवेक स्वतोनवति परस्यापिच व्याकुर्वन् कथय न् पृथक्पृथग्गुरो प्रसादात्परिज्ञातस्वरूप समितिगुप्तीना यथावस्थितस्वरूपप्रतिपालन तत्फलच वदेत्प्रतिपादयेदिति ॥ ५ ॥ ईर्यासमित्याद्युपेतेन यद्विधेय तद्दर्शयितुमाह । (सद्दाणीत्यादि) शब्दान् वेणुवीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् श्रुत्वा समाकर्ण्याऽथ नरवान् नयावहान् कर्णकटूनाकर्ण्य शब्दानाश्रवति तान् शोननत्वेनाशोननत्वेनवा गृह्णातीत्याश्रवोनाश्रवोऽनाश्रवस्तेष्वनुकूलेषु प्रतिकूलेषु श्रवणपथमुपगतेषु शब्देष्वना श्रवोमध्यस्थोरागद्वेषरहितोनूत्वा परिसमताद् व्रजेत्परिव्रजेत् सयमानुष्ठायी नवेत्तथा निद्रांच निद्राप्रमादच निक्षु सत्साधु प्रमादागत्वान्न कुर्यात् । एतदुक्तनवति । शब्दा श्रवनिरोधेन विषयविषयप्रमादोनिषिद्धोनिद्रानिरोधेन निद्राप्रमादश्चशब्दादन्यमपि प्रमा द विकथाकषायादिक न विदध्यात् । तदेव गुरुकुलवासात् स्थानशयनासनसमितिगुप्ति ष्वागतप्रज्ञ प्रतिषिद्धसर्वप्रमाद सद्गुरोरुपदेशादेव कथकथमपि विचिकित्सां चित्तविप्लुति रूपा वितीर्णोऽतिक्रातोनवति। यदिवा मद्गृहीतोय पचमहाव्रतनारोऽतिदुर्वह कथकथमप्यं तं गच्छेदित्येवनूता विचिकित्सा गुरुप्रसादाद्वितीर्णोनवति।अथवा या कांचिच्चित्तविप्लुतिं देश सर्वगता ता कृत्स्ना गुर्वतिके वसन् वितीर्णोनवत्यन्येषामपि तदपनयनसमर्थ स्यादितिद्द

डहरेण वुड्ढेण णुसासिए ७, रातिणिएणावि समव्वएण ॥ स
म्मं तयं थिरतो णाभिगच्छे, णिज्जतए वा वि अपारएसे॥ ७ ॥
विउछितेणं समयाणुसिठे, डहरेण वुड्ढेणउ चोइएय ॥ अत्तु
. ठियाए घडदासिए वा, अगारिण वा समयाणुसिठ्ठे ॥ ८ ॥

अर्थ–डहरेणवुड्ढेणणुसासिएउराके०) ते साधु गुरु सन्मुख वसतो कोइ कारणे प्र

न नसेवे एटले अहंकार नकरे पोतानी मोहोटाइ प्रकाशे नही तथा हु बहुश्रुतछुं एम पण नकहे (णयाविपन्नेपरिहासकुज्जा के०) तथा पोताने प्रज्ञावत जाणीने परनो परिहास्य एटले उपहास्य नकरे एटले कोइने अज्ञानी जाणीने तेने हास्यना वचन बोले नही (णयासियावायवियागरेज्जा के०) तथा कोइने आशीर्वादना वचन नबोले एटले तमे बहु धनवान् बहु पुत्रवान् दीर्घायुष्यवान् हो इत्यादिक वचन नकहे ॥ १९ ॥ तथा (भूतानिसंकाए के०) भूत एटले प्राणी तेनी हिसानी शकाये सावद्य वचन जाणीने आशीर्वाद न आपे (डुगुछमाणे के०) पापने निंदतो थको (णणिव्वहेमतपदेणगोयं के०) तथा मत्रपद एटले विद्यामत्रे करीने गोत्र एटले संयम तेने नि सार नकरे (णकिंचिमिछेमणुएपयासु के० वली धर्मनो प्ररूपक साधु ते धर्मनो प्रकाश करतो थको साभलनार पुरुषोनी पाशेथी वस्त्रादिकना लाभनी इछा करे नहि निरीह छतो धर्म प्रकाशे तथा (असाहुधम्माणि के०) असाधुनो हिसारूप वस्तुदान तर्पणादिक एवो जे धर्म तेने सेवे नही एटले (णसवएज्जा के०) एवो सावध धर्म नबोले ॥ २० ॥

॥ दीपिका–सप्रश्नस्योदाहर्ता कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतु कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेत् स्वाचार्यं वा नापलपेत् परगुणान् वा न छादयेत्। शास्त्रार्थं नोलूपयेत् न विडंबयेत् मौन न सेवेत नाप्यात्मगुणाना प्रकाशनं कुर्यात् न च प्रज्ञावान् परिहास कुर्यात् न चाशीर्वाद बहुपुत्रोबहुधान्योदीर्घायुस्त्व भूयाइत्यादि व्यागृणीयात ॥ १९ ॥ भूतेषु प्राणिषु भूतानिशका उपमर्दशका तयाऽऽशीर्वाद सावद्य जुगुप्सा न ब्रूयात् तथा गोत्र मौन मत्रपदेन विद्यासाधनविधिना ननिर्वाहयेत् न नि सार कुर्यात् । प्रजासु जीवेषु मनुजोव्याख्या कुर्वन्नकिमपि लाभमिछेत् तथाऽसाधूना धर्मान्स्नानतर्पणादिकान् न सवदेन्न ब्रूयात् ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सच प्रश्नमुदाहरन् कदाचिदन्यथापि ब्रूयादतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह । (णोछायएइत्यादि) सप्रश्नस्योदाहर्ता सर्वार्थाश्रयत्वाद्रत्नकरडकल्प कुत्रापि कुत्तिकापणकल्पोवा चतुर्दशपूर्विणामन्यतरोवा कश्चिदाचार्यादिभि प्रतिभानवानर्थविशारदस्तदेवभूत कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतु कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेन्नान्यथा व्याख्या नयेत्स्वाचार्यं वा नापलपेद्धर्मकथा वा कुर्वन्नार्थं छादयेदात्मगुणोत्कर्षाभिप्रायेण वा परगुणान्नछादयेत्तथा परगुणान्नलूपयेन्नविडबयेच्छास्त्रार्थं वा नापसिद्धातेन व्याख्यानयेत्तथा समस्तशास्त्रवेत्ताहं सर्वलोकविदित समस्तसशयापनेता न मत्तुल्योहेतुयुक्तिभिरर्थप्रतिपादयितेति एवमात्मक मानमभिमान गर्व नसेवेत नाप्यात्मनोबहुश्रुतत्वेन तपस्वित्वेन वा प्रकाश न कुर्याच्चशब्दादन्यदपि पूजासत्कारादिक परिहरेत्तथा नचापि प्रज्ञावान् सश्रुतिक परि

गच्छेत् प्रतिपद्यते चोदितश्च प्रतिचोदयेदसम्यक्प्रतिपाद्यमानश्चासौ संसारस्रोतसा नीय मानउह्यमानोऽनुशास्यमान कुपितोसौ न संसारार्णवस्य पारगोनवति । यदिवाऽऽचा र्यादिना सदुपदेशदानत प्रमादस्खलितनिवर्तनतोमोक्षं प्रति नीयमानोप्यसौ संसारस मुद्रस्य तदकरणतोऽपारगएव नवतीति ॥ ७ ॥ सांप्रतं स्वपक्षचोदनानतरत स्वपरचोद नामधिकृत्याह । (विउहिएणमित्यादि) विरुद्धोत्थानेनोत्थितोव्युत्थित परतीर्थिकोगृह स्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदित स्वसमयेन तद्यथा नैवविधमनुष्ठानं नव तामागमे व्यवस्थितं येनाभिप्रवृत्तोसि । यदिवा व्युत्थित सयमाद्भ्रष्टस्तेनापर' साधु. स्खलित सन् स्वसमयेनार्हत्प्रणीतागमानुसारेणानुशासितोमूलोत्तरगुणाचरणे स्खलित संचोदितश्चागम प्रदर्श्याभिहित । तद्यथा । नैतत्त्वरितगमनादिक नवतामनुज्ञातमि ति । तथान्येन वा मिथ्यादृष्ट्यादिना क्षुल्लकेन लघुतरेण वयसा वृद्धेन वा कुत्सिताचा रप्रवृत्तश्चोदितस्तुल्यात्समानवयसावा तथातीवाकार्यकरणं प्रति उत्थिता अत्युत्थिता । यदि वा दासीत्वेन अत्यतमुत्थिता दास्याअपि दासीति । तामेव विशिनष्टि । घटदास्या जल वाहिन्यापि चोदितोन क्रोध कुर्यात् । एतदुक्तनवति । उत्थितयापि कुपितयापि चोदि त स्वहितं मन्यमान सुसाधुर्नकुप्येत् किंपुनरन्येनेति । तथा अगारिणा गृहस्थानां य समयोनुष्ठान तत्समयेनानुशासितोगृहस्थानामपि एतन्नयुज्यते कर्तुं यदारब्धं नवतेत्ये वमात्मावमेनापि चोदितोममैवतछ्रेयइत्येवमन्यमानोमनागपि न मनोदूषयेदिति ॥ ८ ॥

ण तेसु कुज्झे ण य पव्वहेज्जा, ण यावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥ तहा करिस्संति पडिस्सुणेज्जा, सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ ९ ॥ व णंसि मूढस्स जहा अमूढा, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणे व मज्झं इणमेव सेयं, जमे बुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

अर्थ-(णतेसुकुज्झेणयपव्वहेज्जा के०) ते शीखामण आपनारना उपर ते साधु क्रो ध नकरे तथा तेने व्यथे नही एटले दंडादिके प्रहार करीने तेने पीडा उत्पन्न करे न ही तथा (णयाविकिंचीफरुसंवदेज्जा के०) तथा किंचित् मात्र कठोर वचन बोले नही परंतु तेमना वचन सांजलीने आवीरीते कहे के (तहाकरिस्संतिपडिस्सुणेज्जाके०) जेम तमे कहोगो हु तेमज करीश एम तेना वचन मान्य करे (सेयंखुमेयंणपमायकु ज्जा के०) मनमां एम विचारेजे मने एहिज शिक्षारूप श्रेयकारी दान आपेले एवुं जा णीने प्रमाद नकरे ॥ ९ ॥ (वणंसिमूढस्सजहाअमूढा के०) जेम वन एटले गहन अटवीने विषे कोइएक मूर्ख दिशिमूढ थइ नूले पड्यो तेने कोइक अमूढ पुरुष मार्गनुं देखामनार (मग्गाणुसासंतिहितंपयाणं के०) प्रजालोकने हितकारी एवो मार्ग देखाडे

बीजी असत्यामृषा एटले एकतो सत्य नापा अने बीजी व्यवहारारिक ए रीते बे नापा बोले (वियागरेज्जा समयासुपन्ने के०) तथा राजाये अने राके पुढयो थको प्रज्ञावंत महानुनाव एवो साधु बन्नेने समनावे धर्म कहे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हास्य न सं नयेन्नकुर्यान्नकारयेत् । तथा पापधर्मान् सावद्यरूपान्नकुर्यात् तथा उंजानिष्किंचन सन् तथ्यमपि परुष वच कठिनं वाक्यं ज्ञपरिज्ञया विजानीय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । तथा पूजासत्काराविकमवाप्य न तुच्छोनवेनोन्मादं गच्छेत् । तथा नविकच्छयेन्नात्मान श्लाघयेत् तथा व्याख्यानावसरेऽनाविलोलोनादिनिरपेक्ष स्यात्तथाऽकपायोनिक्षु स्यात् ॥ २१ ॥ साधुर्व्याख्यान कुर्वन्नशंकितनावोप्यर्थनिर्णयवेत्तापि शंकेत औद्धत्य परिहरेत् तथा विनज्यवादं स्याद्वादं व्यागृणीयात् कथयेत् । सत्या असत्या मृपावेति नापाद्वय वदेत् समुत्थितै साधुनि सह विहरन् सुप्रज्ञ सन्मतिर्नृपतिद्रमकयो समतया रागद्वेपरहितोधर्मं व्यागृणीयात् ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (हासपीत्यादि) यथा परात्मनोर्हास्यमुत्पद्यते तथा शब्दादिक शरीरावयवमन्यान् वा पापधर्मान् सावद्यान्मनोवाक्कायव्यापारान्नसधयेन्नविदध्यात् । तद्यथा । इद छिंधि निंधि तथा कुप्रावचनिकान् हास्यप्राय नोत्प्रासयेत्तद्यथा शोननीय नवदीय व्रतं । तद्यथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया, मध्ये नक्त पानक चापराह्णे । द्राक्षाखड शर्करा चार्धरात्रे, मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइत्यादिक परदोपोद्भावनप्राय पापबंधकमिति कृत्वा हास्येनापि नवक्तव्य । तथा उंजारागद्वेपरहित सबाह्याभ्यतरग्रंथत्यागाद्वा निष्किंचन सत्तथ्यमिति परमार्थत सत्यमपि परुष वचोपरचेतोविकारि ज्ञपरिज्ञया विजानीयात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । यदिवा रागद्वेपविरहादोजास्तथ्य परमार्थनूतमकृत्रिममप्रतारकं परुष कर्म मश्लेपानावान्निर्ममत्वादंतप्रांतैर्वल्लचणकादिनिरनुष्ठेयत्वाद्वा कर्कशमंतप्रांताहारोपनोगाद्वा परुष संयम विजानीयात्तदनुष्ठानत सम्यगवगच्छेत्तथा स्वत किंचिदर्थविशेप परिज्ञाय पूजासत्काराविकमवाप्य न तुच्छोनवेन्नोन्माद गच्छेत्तथा नविकच्छयेन्नात्मान श्लाघयेत् पर वा सम्यगवबुध्यमानोनोविकच्छयेन्नात्यंत च मदयेत् तथा नाकुलोव्याख्यानावसरे धर्मकथनावसरे वा नाविलोलानादिनिरपेक्षोनवेत् । तथा सर्वदा अकपाय कपायरहितोनवेन्निक्षु साधुरिति ॥ २१ ॥ साप्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह । (सकेज्जेत्यादि) निक्षु साधुर्व्याख्यान कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णय प्रति अशकितनावोपि शकेत औद्धत्यपरिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापर कश्चिदित्येव न गर्व कुर्वीत किंतु विपममर्थ प्ररूपयन् साशकमेव कथयेद्यदिवा विनज्यवाद स्याद्वादस्त सर्वत्रास्खलित लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिन स्वानुनव

ऐता जहा अंधकारंसि राउं, मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे॥
से सूरिअस्स अप्नुग्गमेण, मग्ग वियणाइ पागसियंसि ॥१२॥

अर्थ–(अहतेणमूढेण अमूढगस्स के० हवे ते मूर्ख पुरुषे मार्ग पामे ठते मार्गनो देखाडनार जे अमूढ पुरुष तेनो उपकार जाणीने (कायवपूयासविसेसजुत्ता के०) तेनी सविशेष विस्तार युक्त पूजा करवी (एउंवमतउउदाहुवीरें के०) उपमा त्या कही को णे कही तोके श्रीवीरपरमेश्वरे कही (अणुगम्मअउ उवणेतिसम्म के०) ते पुरुष अ र्थ एटले परमार्थ जाणी सम्यक् प्रकारे पोताने तेनो करेलो उपकार जाणी एम वि चारे जे आ पुरुषे मने मिथ्यात्वरुप गहन वनना डुःख थकी रुमो उपदेश आपीने ठोमाव्योठे तेमाटे एनी नक्ति करवी ॥ ११ ॥ (ऐताजहाअंधकारसिराउं के०) जेम ऐता एटले मार्गनो जाण पुरुष चक्षु सहित ठतां पण अत्यंत अंधकारमय रात्रीने विषे (मग्गंणजाणातिअपस्समाणे के०) मार्गने नजाणे केमके अधकारमा दृष्टी पडे नही माटे अणदेखतो ठतो मार्गनजाणे (सेसूरिअस्सअप्नुग्गमेण के०) परतु तेज पु रुष सूर्योदय थयाथी अंधकार विनाश पामे तेवारें (मग्गवियाणातिपगासियंसि के०) सर्व जगतमां विशेष प्रकाश थयो ठता वली सम्यक् प्रकारे तेमार्गने जाणे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–यथा तेन मूढेन सन्मार्गे प्रापितेन तस्यामूढस्य सन्मार्गोपदेष्टु पुलिदा देरपि पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एतामुपमामुदाहृतवान् कथितवान् वीरस्तीर्थकृत् अ नुगम्य ज्ञात्वार्थं परमार्थं सम्यगात्मन्युपनयति परमोपकारं । कोर्थः । अहमनेन मिथ्या त्ववनाज्जन्ममरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारि णोविनयादिभिः पूजा कर्तव्येति । यथा । गेहम्मि अग्गिजालो, उलंमि जहाण मउक्त माणंमि ॥ जो बोहेइ सुयंतं, सो तस्स जणो परमबंधूइति ॥११॥ यथा महांधकारा यां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशोपि मार्गं न जानाति स्वहस्तादिकमप्यपश्य न् । सएव नेता सूर्यस्याभ्युद्गमेनोदयेन प्रकाशिते दिक्चक्रे मार्गं विशेषेण जानाति॥१२

॥टीका–पुनरप्यस्यार्थस्य पुष्ट्यर्थमाह । (अहतेणेत्यादि) अथेत्यानतर्यार्थे वाक्योपन्या सार्थेवा । यथा तेन मूढेन सन्मार्गावतारितेन तदनतर तस्यामूढस्य सत्पथोपदेष्टु पुलि दादेरपि परमुपकारं मन्यमानेन पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एवमेतामुपमामुदाहृतवा नभिहितवान् वीरस्तीर्थकरोन्योवा गणधरादिकोऽनुगम्य बुध्वाऽर्थं परमार्थं चोदनाकृतं पर मोपकारं सम्यगात्मन्युपनयति । तद्यथाऽहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्मजरामरणाद्यनेको पद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोऽभ्युत्थानविनयादिभि·

॥ दीपिका–तस्यैव नापाद्वयेन वदत कश्चिन्मेधावी तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते । अन्यस्तु मंदमतिर्वितथमन्यथैव विजानीयात् । तच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन प्रकारेण कर्कशवचनेन वदेत् । यथाऽसौ तमर्थं बुध्यते न कुत्रचित्क्रुद्धमुखोनादरेण कथयेन्मन पीडामुत्पादयेत् । तथा प्रश्नकर्तुर्नापा नविहिंस्यान्नतिरस्कुर्यात् निरुद्ध स्तोकमर्थं न दीर्घयेत् अन्योन्यकथनेन दीर्घं कुर्यात् । तथा चोक्त । सोअच्छो वत्तवो, जो नसइ अक्करेहि थोवेहिं ॥ जो पुण थोवा बहु अ,क्करेहि सो होइ नि सारोऽति ॥ २३ ॥ य स्तोकाक्षरैर्नावबुध्यते तं प्रतिपूर्णनापी पर्यायशब्दैर्नावार्थकथनश्च समालपेत् समतान्नापेत यथा सम्यवबुध्यते तथा कुर्यादित्यर्थः । तथाऽचार्यादि सकाशादर्थं निशम्य श्रुत्वा सम्यगर्थदर्शी सत्पदार्थवेत्ता तीर्थकृताज्ञया निरवद्यं शुद्ध वचनमभियुंजीत वदेत् । एव वाऽनियुंजन् निक्षु पापविपाकं लाभसत्कारादि निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसथयेत् ॥ २४ ॥

॥ टीका–(किंचान्यत् । (अणुगच्छमाणेइत्यादि) तस्यैव नापाद्वयेन कथयत कश्चिन्मेधावितया तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते । अपरस्तु मदमेधावितया वितथमन्यथैवाभिजानीयात्तच सम्यगनवबुध्यमान तथातथा तेन हेतूदाहरणसद्युक्तिप्रकटनप्रकारेण मूर्खस्त्वमसि तथा डुर्डुरूढ खसूचिरित्यादिना कर्कशवचनेनाभिनर्त्सयन् यथातथासौ बुध्यते तथा साधु' सुष्ठु बोधयेन्न कुत्रचित्क्रुद्धमुखहस्तौष्ठनेत्रविकारैरनादरेण कथयन् मन पीडामुत्पादयेत्तथा प्रश्नयतस्तन्नापामपशब्दादिदोषडुष्टामपि धिग्मूर्खासंस्कृतमते किंवाऽनेन संस्कृतेन पूर्वोत्तरव्याहृतेन वोच्चारितेनेत्येव नविहिंस्यान्न तिरस्कुर्यादसंबद्धोद्घट्टनैस्तं प्रश्नवितार न विडंबयेदिति । तथा निरुद्धमर्थं स्तोक दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददर्दुरेणार्कविटपिकोटिकान्यायेन नकथयेन्निरुद्धं वा स्तोककालीन व्याख्यान व्याकरणतर्कादिप्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या नदीर्घयेन्नदीर्घकालिक कुर्यात् । तथाचोक्त । सो अच्छो वत्तवो, जो नसइ अक्करेहि थोवेहि ॥ जो पुण थोवो बहु अ, क्करेहि सो होइ नि सारो ॥ तथा ॥ किंचित्सूत्रमल्पाक्षरमल्पार्थं वा इत्यादि चतुर्भंगिका तत्र यदल्पाक्षर महार्थं तदिह प्रशस्यतइति ॥ २३ ॥ अपिच । (समालवेज्जाइत्यादि) यत्पुनरतिविषमत्वादल्पाक्षरैर्न सम्यगवबुध्यते तत्सम्यक् शोननेन प्रकारेण समतात्पर्यायशब्दोच्चारणतोनावार्थकथनतश्चालपेन्नापेत समालपेन्नाल्पैरेवाक्षरैरुक्त्वा कृतार्थोभिवेदपितु ज्ञेयगहनार्थनापणे सद्धेतुयुक्त्यादिभि श्रोतारमुपेक्ष्य प्रतिपूर्णनापी स्यादस्खलिताहीनाक्षरार्थवादी नवेदिति । तथाचार्यादि सकाशाद्यथावदर्थं श्रुत्वा ऽवगम्य निशम्य च यथावस्थितमर्थं यथागुरुसकाशादवधारितमर्थं प्रतिपाद्य इष्टं

वतरणश्चक्षुपा घटादीन् पश्यति जनस्तथा जिनागमेनापि जीवादय पदार्थाल्लक्ष्यंतइ त्यर्थ ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च दिक्षु त्रसाश्च ये स्थावरा सूक्ष्मबादरादिभेदाश्च ये प्राणिनस्तेषु सदायत्त परिव्रजेत् सयमानुष्ठायी भवेत् तथाऽविकपमान सयमादविचलन् तेषु प्राणिषु मनसापि प्रद्वेष न गच्छेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका—एव दृष्टांत प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमधिकृत्याह् । (एवतुसेहेत्यादि) यथा ह्यसा वधकारावृताया रजन्यामतिगह्नायामटव्या मार्ग न जानाति सूर्योद्गमेनापनीते तमसि पश्चाज्ज्ञानात्येव तु शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितोपि सूत्रार्थानिष्पन्नोऽपुष्टोऽपुष्कल सम्यगपरिज्ञातोधर्म श्रुतचारित्राख्योडुर्गतिप्रसृतजतुधरणस्वनावोयेनासावपुष्टधर्मा सचाऽगीतार्थसूत्रानिश्रत्वादबुध्यमानोधर्म जानातीति नसम्यक् परिछिनत्ति । सएव तु पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदोऽन्यस्तसर्वज्ञप्रणीतागमत्वान्निपुण सूर्योदयेऽपगतावरणश्चक्षुपेव यथावस्थितान् जीवादीन् पदार्थान् पश्यति । इदमुक्तंनवति । यथाहि इंद्रियार्थसपर्कात्साक्षात्कारितया परिस्फुटाघटपटादय पदार्था प्रतीयते एव सर्वज्ञप्रणीतागमेनापि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्वर्गापवर्गदेवतादय परिस्फुटानि शक प्रतीयतइति । अपिच कदाचिच्चक्षुपान्यथानूतोप्यर्थोऽन्यथा परिछिद्यते । तद्यथा । मरुमरीचिकानिचयोजलभ्रात्या किंशुकनिचयोग्न्याकारेणापीति । नच सर्वज्ञप्रणीतागमस्य क्वचिदपि व्यनिचार । तव्द्यनिचारे हि सर्वज्ञत्वहानिप्रसगात् तत्सनवस्य चासर्वज्ञत्वेन प्रतिपेद्धुमशक्यत्वादिति ॥१३॥ शिक्षकोहि गुरुकुलवासितया जिनवचनाभिज्ञोनवति तत्कोविदश्च सम्यक् मूलोत्तरगुणान् जानाति । तत्र मूलगुणानधिकृत्याह् । (उड्ढ्महेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् दिक्षु विदिक्षु चेत्यनेन क्षेत्रमगीकृत्य प्राणातिपातविरतिरभिहिता । द्रव्यतस्तु दर्शयति । त्रस्यतीति त्रसास्तेजोवायुद्वींद्रियादयश्च तथा ये च स्थावरा स्थावरनामकर्मोदयवर्तिन पृथिव्यब्वनस्पतयस्तत्त्वाचैतद्भेदा सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपादशविधप्राणधारणात्प्राणिनस्तेषु सदा सर्वकालमनेन तु कालमधिकृत्य विरतिरभिहिता । यत्त परिव्रजेत्परिसमता व्रजेत् सयमानुष्ठायी नवेत् । नावप्राणातिपातविरति दर्शयति । स्थावरजगमेषु प्राणिषु तदपकारे उपकारेवा मनागपि मनसा प्रद्वेष नगच्छेदास्तातावद्दुर्वचनदडप्रहारादिक तेष्वपकारिष्वपि नामगल चितयेदविकप्यमान सयमादचलन् सदाचारमनुपालयेदिति । तदेव योगत्रिककरणत्रिकेण द्रव्यक्षेत्रकालनावरूपा प्राणातिपातविरति सम्यगरक्षणतया ऽनुपालयेदेव शेषाण्यपि महाव्रतान्युत्तरगुणांश्च ग्रहणासेवनाशिक्षासमन्वित सम्यगनुपालयेदिति ॥ १४ ॥

निपुण तथा व्यक्त स्पष्ट ते अविमास्यो नकरे (तथ्ररिहइनालिउंतंसमाहिंत्तिवेमिके०)ते साधु श्रीवीतराग प्रणीत स्थो समाधि धर्म मार्ग नापवाने योग्य थाय त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २७ ॥ एरीते ग्रथनामा चौदमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–(यथोक्तानि जिनैस्तानि सुष्टु शिक्षेत शिक्षितश्च देशनायां यतते । देशनोद्यतोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालस्ता वेलामतिक्रम्य न वदेत् कर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेदित्यर्थः । सद्दष्टिमान् यथावस्थितपदार्थान् श्रद्दधानोदृष्टि सम्यक्दर्शन नलूषयेन्नदूषयेत् । कोर्थः । देशना व्याख्यान वा कुर्वन् तथा कथयेद्यथाश्रोतु सम्यक्त्वं स्थिरीभवति । यश्चैवभूत सजानाति नापितु तं सर्वज्ञोक्त समाधि ज्ञानदर्शनचारित्राख्य २५ सर्वज्ञोक्तं नलूषयेन्नदूषयेत्प्रछन्नभाषी नवेत्सिद्धातार्थं शुद्धं प्रछन्नंवा न गोपयेदथ प्रछन्नमर्थमपरिणताय न नाषेत । तथाचोक्तं । अप्रशातमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादन ॥ दोषायाभिनवोदीर्ण,शमनीयमिव ज्वरे ॥ १ ॥ त्रायी स्वपररक्षकोन सूत्रमतिकल्पनया कुर्वीत । परहितकर शास्ता तस्मिन् शास्तरि यानक्तिर्बहुमानस्तयाऽनुचिन्त्य वादं वदेत् । अनेनोक्तेनागमबाधा कापि न स्यादिति । तथा श्रुतं सम्यगाराधयन् प्रतिपादयेत् सुखशील स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ शुद्धं सूत्रं प्रवचनं यस्य सशुद्धसूत्र उपधानवान् तपश्चरणयुक्तोयोधर्म सम्यक् वेत्ति तत्रतत्रोत्सर्गापवादादौ आदेयवाक्योग्राह्यवचन स्यात् तथा कुशलोनिपुणोव्यक्तोनासमीक्ष्यकारी समाधि ज्ञानादिक नापितुमर्हति योग्य स्यादिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्दश ग्रंथाध्ययनं समाप्तं ॥ ६ ॥

॥ टीका–पुनरपि नाषाविधिमधिकृत्याह । (अहोबुद्दियाइइत्यादि) यथोक्तानि तीर्थकरगणधरादिभिस्तान्यहर्निशं सुष्टु शिक्षेत ग्रहणशिक्षया सर्वज्ञोक्तागम सम्यक् गृण्हीयादासेवनाशिक्षया त्वनवरतमुद्युक्तविहारितया सेवेताऽन्येषाच तथैव प्रतिपादयेदिति । प्रसक्तलक्षणनिवृत्तये त्वपदिश्यते सदा ग्रहणासेवनाशिक्षयोर्देशनाया यतेत सदा यतमानोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालोऽध्ययनकालोवा ता वेलामतिलंघ्य नातिवेल वददध्ययनकर्तव्यमर्यादा नातिलंघयेत्सदनुष्ठान प्रतिव्रजेद्वा यथावसर परस्पराबाधया सर्वा क्रिया कुर्यादित्यर्थः । सएवगुणजातीयोयथाकालवादी यथाकालचारी च सम्यक् दृष्टिमान् यथावस्थितार्थान् पदार्थान् श्रद्दधानोदेशनां व्याख्यान वा कुर्वन् दृष्टि सम्यक्दर्शन नलूषयेन्नदूषयेत् । इदमुक्तनवति । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा तथातथा कथनीयमपसिध्धातदेशनापरिहारेण यथायथा श्रोतु सम्यक्त्व स्थिरीनवति । नपुन शंकोत्पादनतोदूष्यते यश्चैवंविध सजानात्यवबुध्यते नापितु प्ररूपयितु समाधि सम्यक्दर्शनचारित्राख्यं सम्यक्

स्यात्। तथा च निरोधं कर्मक्षयमाहुस्तद्विद'। एव त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थंकरास्ते आख्याति कथयति न पुनर्नूय एतं प्रमादसंगं विषयादिक विधेयत्वेन कथितवत ॥ १६ ॥

॥ टीका–गुरोरंतिके वसतो विनयमाह । (कालेणेत्यादि) सूत्रमर्थं तदुनय वा विशिष्टे न प्रष्टव्यकालेनाचार्यादेरवसर ज्ञात्वा प्रजायंतइति प्रजाजलवस्तासु जतुषु विषये चतुर्दश नूतग्रामसबध कचिदाचार्यादिक सम्यगित सदाचारानुष्ठायिन सम्यक् वा समंताद्वा जतु गत पृच्छेदिति । सच तेन पृष्टआचार्यादिराख्याण शुश्रूषयितव्योनवति। यदाचक्षाणस्तद्द र्शयति । मुक्तिगमनयोग्योनव्योऽव्यरागद्वेषविरहाद्वा ऽव्य तस्य ऽव्यस्य वीतरागस्य तीर्थंकरस्य वा वृत्तमनुष्ठानं सयम ज्ञानं वा तत्प्रणीतमागम वा सम्यगाचक्षाण सपर्यया ऽय माननीयोनवति । कथमित्याह । तदाचार्यादिना कथित श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी यथोपदेशकारी सदाज्ञाविधायी सन् पृथक्पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेश येच्चेतसि व्यवस्थापयेत् । व्यवस्थापनीय दर्शयति । सख्याय सम्यक् ज्ञात्वा इममिति वक्ष्यमाण केवलिनइद कैवलिक केवलिना कथित सन्मार्ग सम्यक् ज्ञानादिक मोक्षमार्ग माचार्यादिना कथित यथोपदेश प्रवर्तक पृथग्विविक्तं हृदये पृथग्व्यवस्थापयेदिति ॥ ॥ १७ ॥ किंचान्यत् । (अस्सिंऽत्यादि) अस्मिन् गुरुकुलवासे निवसता यच्छ्रुत श्रुत्वा च सम्यक् हृदयव्यवस्थापनद्वारेणावधारित तस्मिन् समाधिनूते मोक्षमार्गे सुष्ठुस्थित्वा त्रिविधेनेति मनोवाक्कायगुप्तिभि कृतकारितानुमतिभिर्वाऽत्मान त्रातु शीलमस्येति त्रा यी जतूना सडुपदेशदानतस्त्राणकरणशीलोवा तस्य स्वपरत्रायिणएतेषु च समितिगु प्त्यादिषु समाधिमार्गेषु स्थितस्य शातिर्नवत्यशेषद्वंद्वोपरमोनवति । तथा निरोधमशेष कर्मक्षयरूपमाहुस्तद्विद' प्रतिपादितवत । कएवमाहुरित्यादि । त्रिलोकमूर्ध्वाधस्तिर्यग् लक्षण दृष्टु शील येषाते त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकृत सर्वज्ञास्ते एवमनतरोक्तया नीत्या सर्व नावान् केवलालोकेन दृष्ट्वाचक्षते प्रतिपादयंतीति । एतदेव समितिगुप्त्यादिक ससारो त्तारणसमर्थ ते त्रिलोकदर्शिन कथितवतोन पुनर्नूयएव प्रमादसग मद्यविषयादिक स वधविषयत्वेन प्रतिपादितवत ॥ १६ ॥

निसम्म से भिक्खु समीहियठं, पडिनाणवं होई विसारए य ॥
आयाणअठी वोदाणमोणं, उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥
संखाइ धम्म च वियागरंति, बुद्धा हु ते अंतकरा नवंति ॥
ते पारगा दोएहवि मोयणाए, ससोधित पएह मुदाहरंति ॥ १८ ॥

अर्थ–(सेभिक्खु के०) ते गुरुकुलवासी साधु (निसम्मसमीहियठ के०) मुक्तिग

अर्थ-(जमतीतपडुप्पन्नं के०) जे द्रव्यादिक पदार्थ अतीतकाले थया तथा जे वर्तमान काले वर्त्तेछे (अगमिस्सं चणायर्ड के०) तथा अगमिक कालें जे थशे तेना यथावस्थित स्वरूपनो प्ररुपवो तेथी प्ररूपणाना अधिकारी पणा माटे नायक कहियें (सव्वमन्नतितंताई के०) ते सर्व द्रव्यादिक चतुष्क सपूर्ण जाणे ते जाणतो वतो सर्व प्राणीर्डनो रक्षपाल (दंसणावरणतए के०) ते दर्शनावरणीय कर्मनो अंतकरनार जाणवो अर्थात् ते दर्शनावरणादिक घातीकर्म चतुष्कने खपावे ॥ १ ॥ (वितिगिछाए के०) संदेह एटले मिथ्याज्ञान तेनो (अंतए के०) अंतकारक (जे जाणतिअणेलिसं के०) जे घातीकर्मनो खपावनार ते सर्व निरुपम जाणे एटले तेना जेवो ज्ञानवत बीजो कोइ नही (अणेलिसस्स अरकाया के०) एम जे निरुपम ज्ञानेकरी पदार्थनो प्रकाश करनार (णसेहोइतहितहि के०) ते तिहां तिहा बौद्धादि दर्शनीने विषे न प्रवर्त्ते एटले ते प्राणी जिनमत टालीने अन्य दर्शनीने विषे तत्व न जाणे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-अथ पचदशमादानीयाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (जमतीत्यादि) यदतीतं प्रत्युत्पन्नं वर्तमान यदनागतमेष्यत्कालनाविद्रव्य तस्य सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनिरूपणतोनायक प्रणेता त्रायी सर्वप्राणिरक्षक सर्व मन्यते जानाति यो दर्शनावरणातकोमध्यग्रहणादघातिकर्मचतुष्कस्यातकृद्द्रष्टव्य सएव सर्वज्ञइति ॥१॥ विचिकित्साया सशयस्यातक क्षयकृत्य सअनीदृश जगज्जानाति । यादृश कर्मक्षयत सर्वज सामान्यविशेपात्मक जगज्जानाति तादृशमन्योबौद्धादिर्न जानातीत्यनीदृशमित्युक्त । अनीदृशस्य च यथाख्याता प्ररूपकोनासौ तत्र तत्र बौद्धादिके दर्शन स्यात् । किंतु जिनप्रवचनेऽर्हन्नेव त्रिकालवर्तिवस्तूनामाख्यातेति ॥ २ ॥

॥ टीका-अथ चतुर्दशाध्ययनानतर पंचदशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । इहानतराध्ययने सबाह्यान्यतरस्य ग्रथस्य परित्यागोविधेयइत्यनिहितं । ग्रंथपरित्यागाच्चायतचारित्रोनवति साधुस्ततोयादृगसौ यथासंपूर्णमायतचारित्रता प्रतिपाद्यते तदनेनाध्ययेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि नवति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । आयतचारित्रेण साधुना नाव्य । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे आदानीयमिति नाम।मोक्षार्थिनाऽशेपकर्मक्षयार्थं यज्ज्ञानादिकमादीयते तदत्र प्रतिपाद्यतइति कृत्वा आदानीयमिति नाम सवृत्तं। पर्याय द्वारेणच प्रतिपादितं सुग्रहं नवतीत्यतआदानशब्दस्य तत्पर्यायस्य च ग्रहणशब्दस्यच निक्षेपं कर्तुकामोनिर्युक्तिकृदाह । "आदाणे गहणंमि य णिखेवो होंति दोन्नवि चउक्को । एगठ नाणठ, च होज्ज पगयं तु आदाणे" ॥३४॥ (आदाणेइत्यादि) अथवा (जमतीयंति) अस्याध्ययनस्य नाम

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इत्यादान द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमश्चाश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतप'संयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वित सर्वत्र प्रमाद रहित प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उद्गमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति । नचैवेऽमारतिक्कचित्पाठ । बहुशोम्रियते स्वकर्मपर वशा प्राणिनोयस्मिन् समार ससारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् नपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति । तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टत सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेव गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थितावहुश्रुता प्रतिज्ञानवतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त दर्शयितुमाह । (संखाऽइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्म परिज्ञायापरेषा यथावस्थितं धर्म श्रुतचारित्राख्य व्यागृणति प्रतिपादयति । यदिवा स्वपरशक्ति परिज्ञाय पर्षद वा प्रतिपाद्य चार्थ सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयति । ते चैवविधाबुद्धा कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचिताना कर्मणामतकराभवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थाभवंतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात द्वयोरपि परा त्मनो कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणभूतया संसारसमुद्रस्य पारगाभवंति । ते चैवभूता सम्यक्बोजित पूर्वोत्तराविरुद्ध प्रश्नशब्दमुदाहरति । तथाहि । पूर्व बुद्ध्वा पर्यालोच्य कोय पुरुष कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहवा किंभूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थ पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तर दद्यादिति । तथाचोक्त । आयरियसयासारि एण अच्छेण सरियमुणिएण ॥ तोसघमभ्यारे, ववहरिउंजेसुदंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयत स्वपरतारकाभवंतीति ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माण ण सेवज्ज पगासण च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
भूताभिसंकाइ दुगुंछमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण कि
चिमिच्छे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ– ते प्रश्न कहेता थका कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे छे ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूछता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अभिमाने करी अन्यने विटवना करे नहीं तथा (माणणसेवज्ज्पगासणंच के०) मा

बाधितमिति नैषदोष । यस्य हि वादिन क्षणमात्रं वस्तु तस्यायं दोषोयस्यतु पूर्वोत्त रक्षणानुगतमन्वयि द्रव्यमस्ति अस्यायं दोषएव न नवति । तथाहि । तत्परिणामि द्रव्य मेकस्मिन्नेव क्षणे एकेन स्वनावेनोत्पद्यते परेण विनश्यत्यनतयमेत्वा द्वस्तुनइति । य त्किंचिदेतत् । तदेव द्रव्यस्य विवक्षितपरिणामेन परिणमतोयआद्य समय सद्व्यादि रिति स्थितं द्रव्यस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति । सांप्रतं नावादिमधिकृत्याह । " आ गमणो आगमर्ज नावादी त डुहा उवदिसंती ॥ णो अगमर्ज नावो, पंचविहो होइ णायवो ॥ ३ ॥ आगमर्ज पुण आदी, गणिपिंमगं होइ बारस गंतु । गन्नसि लोगो पठपादअरकराइ चउ तन्नादी " ॥ ३० ॥ (आगमइत्यादि) नावोंत करणस्य परिणति विशेषस्तं बुद्धास्तीर्थकरगणधरादयोव्यपदिशंति प्रतिपादयंति । तद्यथा आगमतोनोआगम तश्च । तत्र नोआगमत प्रधानपुरुषार्थतया चिंत्यमानत्वात्पचविध पंचप्रकारोनवति । तद्यथा । प्राणातिपातविरमणादीनामाद्य. प्रतिपत्तिसमयइति । तथा (आगमर्जइत्यादि) आगममाश्रित्य पुनरादिरेव द्रष्टव्य । तद्यथा । यदेतज्ञणिनआचार्यस्य पिटक सर्व स्वमाधारोवा तद्द्वादशाग नवति । तुशब्दादन्यदप्युपांगादिक द्रष्टव्यं । तस्य प्रवचनस्यादि नूतोयोग्रथस्तस्याप्याद्य श्लोकस्तत्राप्याद्यं पदं तस्यापि प्रथममक्षरमेवविधोबहुप्रकारो नावादिर्द्रष्टव्यइति । तत्र सर्वस्यापि प्रवचनत्वसामायिकमादिस्तस्यापि करोमीति पद तस्यापि ककारो द्वादशानां त्वगानामाचारागमादिस्तस्यापि शास्त्रपरिज्ञाध्ययनमस्यापि च जीवोद्देशकस्तस्यापि सुयतिपद तस्यापि सुकारइति पदमादिरित्यस्य च प्रकृतागस्य सम याध्ययनमादिस्तस्यापि उद्देशकश्लोकपादपदवर्णादिर्द्रष्टव्यइति । गतोनामनिष्पनोनिक्षे पस्तदनतरमस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेदं । (जमतीयमित्यादि) अ स्य चानतरसूत्रेण सबंधोवक्तव्य सचाय । तद्यथा । आदेयवाक्य कुशलोव्यक्तोर्हति त थोक्त समाधिं नाषितु यश्च यदतीतं प्रत्युत्पन्नमागामिच सर्वमवगच्छति सएव नाषितुमर्ह ति नान्यइति । परपरसूत्रसंबधस्तु यएवातीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी सएवाशेषबंधना ना परिज्ञात्वात्रोटयिता वेत्येतद्बुध्येतेत्यादिक सबंधोऽपरसूत्रैरपि स्वबुध्या लगनीयइ ति । तदेव प्रतिपादितसंबधस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रस्तूयते । यत्किमपि द्रव्यजातमती तं यच्च प्रत्युत्पन्नं यच्चानागतमेष्यत्कालनावि तस्यासौ सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनि रूपणतोनायक प्रणेता । यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रणेतृत्व च परिज्ञानेसति नवत्यत स्तदपदिश्यते सर्वमतीतानागतवर्तमानकालत्रयनावतोद्रव्यादिचतुष्कस्वरूपतोद्रव्यपर्या यनिरूपणतश्च मनुतेऽसौ जानाति सम्यक् परिछिनत्ति तत्सर्वमवबुध्यते जानानश्च विशि ष्टोपदेशदानेन ससारोत्तारणत सर्वप्राणिना त्राय्यसौ त्राणकरणशील । यदिवा अयव चयपयमयतयणयगतावित्यस्य धातोर्णुट् प्रत्यय । तयन ताय सविद्यते यस्यासौ तायी ।

हासं केवलिप्रायं ब्रूयाद्यदिवा कथचिदवबुध्यमाने श्रोतरि तडुपहासप्रायं परिहासं न विदध्यान्नापि चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधनोबहुधर्मोदीर्घायुस्त्वं नूयाइत्यादिव्यागृणीयात् नापासमितियुक्तेन नाव्यमिति ॥ १९ ॥ किंनिमित्तमाशीर्वादोन विधेयइत्याह । (नूया निसकाइइत्यादि) नूतेषु जतुरूपमर्दशंका तयाशीर्वादं सावद्य' सपाप जुगुप्समानोन ब्रू यात्तथा गात्रायतइति गोत्रं मौनं वाक्संयमस्तं मत्रपदेन विद्यापमार्जनविधिना न नि र्वाहयेन्न नि सार कुर्यात् । यदिवा गोत्रं जतूना जीवित मत्रपदेन राजादिगुप्तनापणपदे न राजादीनामुपदेशदानतोननिर्वाहयेन्नापनयेत् । एतडुक्त नवति । नराजादिना साधं जतुजीवितोपमर्दकं मत्र कुर्यात्तथा प्रजायतइति प्रजाजतवस्तासु प्रजासु मनुजोमनुष्यो व्याख्यानं कुर्वन् धर्मकथा वा नकिमपि लाजपूजासत्कारादिकमिच्छेदनिलपेत्तथा कुत्सि तानामसाधूना धर्मान् वस्तुदानतर्पणादिकान्नसवदेन्नब्रूयाद्यदिवा नासाधुर्धर्मान् ब्रुवन् सवा दयेदथवा धर्मकथा व्याख्यानंवा कुर्वन् प्रजासात्मश्लाघारूपा कीर्तिं नेच्छेदिति ॥ २०॥

हासं पि णो संधति पावधम्मे, उए तहीयं फरुसं वियाणे ॥
णो तुच्छए णो य विकथइज्जा, अणाइले या अकसाइ निरकू ॥२१॥
संकेज्ज या संकितनाव निरकू, विनज्जवाय व वियागरेज्जा ॥ ना
साउय धम्म समुट्ठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपन्ने ॥ २२ ॥

अर्थ-(हासपिणोसंधति के०) तथा जे थकी पोताने अने परने हास्य उपजे ते नकहे तथा (पावधम्मे के०) पापधर्म एटले सावद्य धर्म नबोले (उएतहीयं के०) तथा राग द्वेष रहित अकिंचन एवो उतो साधु सत्य वचनज बोले अनेजे (फरुसवि याणे के०) परुष एटले कठण निठुर वचन होय तेने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे तथा (णोतुच्छए के०) पूजा सत्कारादिकने पामतो थको उन्माद न करे तथा (णोयविकथइज्जा के०) पोतानी यश कीर्ति देखीने श्लाघा नकरे तथा (अ णाइलेया के०) अणाकुल होय एटले धर्म करतो थको आकुल नथाय तथा (अक साइनिरकू के०) कषाय रहित एवो साधु जाणवो ॥ २१॥ (सकेज्जयासकित नावनिरकू के०) साधु सूत्र अर्थने विषे नि शंकित उतो पण शका राखे एटले सगर्व नथाय ए अर्थ जेरीते हु जाणुछु तेरीते बीजो कोइ जाणतो नथी एम नकहे एकात वाद टाले तथा (विनज्जवाय ववियागरेज्जा के०) स्याद्वादवचन बोले सिद्धातनो सर्व प्रथक् प्रथक् अर्थ वेचीने व्याख्या करे तथा (नासाउय धम्मसमुट्ठितेहिं के०) सयमने विषे सम्यक् प्रकारे उठ्या एवा साधु धर्म कथाने अवसरे बे नाषा बोले एकतो सत्या नाषा अने

मोक्ष मार्गने त्यां त्यां (सेयसवेसुश्राहिए के०) तेहिज नावने सत्यकरी जाणवा (सयासच्चेणसपन्नेके०) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शुकरे तेकहेछे (मित्तिनूएसुकप्पएके०) नूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीनाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (नूएहिनविरुझेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जेनूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेवुसीमउके०) एवो धर्म वुसीमउ एटले संयमवतनो जाणवो (साहूजगपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमाहे त्रस अने स्थावर जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिजीवितनावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे नावना नावे ॥४॥

॥ दीपिका—तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोध । सच सर्वज्ञ सत्य स्वाख्याता । तथाचोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वच ॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषा, तथानूतार्थदर्शिना ॥१॥ सदा सर्वकाल सत्येन संपन्न. ससर्वज्ञो नूतेषु प्राणिषु मैत्री कल्पयेत् कुर्यात् । यत मातृवत्परदाराणि, परद्व्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि, य पश्यति सपश्यतीति ॥२॥ नूतै प्राणिनि सह न विरुध्येत । न विरोध कुर्यात् एष धर्म (वुसीमउत्ति) तीर्थकस्य साधोर्वा तथा वुसीम साधुस्तीर्थकृद्वा जगद्विश्व परिज्ञाय आगमत स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् नावना पचविंशतिर्द्वादशवा ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणीर्नावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका—साप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्व यथानवति तथा सोपपत्तिक दर्शयितुमाह । (तहितहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापद । यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिक पदार्थजात तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवइति कृत्वा ससारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षागतयेत्येतत्सर्व पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिनिरुपपन्नतया सुष्ठ्वाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थिकवचनं तु नहिंस्या नूतानीति नणित्वा तडपमर्दकारन्नान्यनुष्ठानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमान निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं नवति । सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामसन्नवात्सद्भूयोदितत्वाच्च सत्य स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भि प्रतिपादित ॥ रागादयो ह्यनृतकारणं ते च तस्य न सत्यत कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा तद्वचोनूतार्थप्रतिपादक ॥ तथा चोक्त । वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वच । यस्मात्तस्माद्वचस्तेषा, तथानूतार्थदर्शिना । ननु च सर्वज्ञत्वमतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता नवत्येव । तथा चोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्ट तु पश्यति । कीट

सिद्ध वदेदथवासम्यगर्थान् विनज्य पृथक्रुत्वा तद्वादं वदेत्तयथा नित्यं वादं इव्यार्थत या पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्तथा स्वइव्यक्षेत्रकालनावै सर्वेपि पदार्थाः संति पर इव्यादिनिस्तु न सति। तथाचोक्त । सदेव सर्व कोनेछेत्स्वरूपादिचतुष्टयात् । असदेव विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्टतइत्यादिक विनज्यवादं वदेदिति । विनज्यवादमपि नापा छितयेनैव ब्रूयादित्याह् । नापयोराद्यचरमयो सत्यासत्यामृपयोर्छिक नापाछिकं त नापा छय कचित्पृष्टोऽपृष्टोवा धर्मकथावसरेऽन्यदावा सदा वा व्यागृणीयात् नापेत । किंनू त सन् सम्यक् सत्तसयमानुष्ठानेनोछिता समुछिता सत्सावयद्युक्तविहारिणोन पुन रुदायिनृपमारकवत्कत्रिमास्ते सम्यगुछिते सह विह्रश्चक्रवर्तिड्मकयो समतया रागद्वेष रहितोवा शोननप्रज्ञोनापाछयोपेत सम्यग्धर्म व्यागृणीयादिति ॥ २२ ॥

अणुगछमाणे वि तहंवि जाणे, तहातहा साहु अ ककसेणं ॥
ए कुवईनास विहसइज्जा, निरुद्धग वावि न दीहइज्जा॥ २३ ॥
समालवेज्जा पडिपुन्ननासी, निसामिया समिया अठदंसी ॥
आणाइसुद्धं वयण निउंजे अनिसंधए पावविवेगनिक्कु ॥ २४॥

अर्थ-(अणुगछमाणे वि तहंवि जाणेके०) हवे तेने वे नापायेकरी धर्म कहेता थका कोइ एक पंमित होय ते सभी रीते समजे अने कोइएक मूर्ख होय ते विपरीत पणे समजे एटले तेने अर्थनी पूरे पूरी समजण न पडे तो (तहातहा साहुअककसेण के०) तेम तेम साधु ते श्रोताने मधुर नापाये करी सम्यक् समजावे सत्यमार्ग देखाडे परंतु (एकुवईनासविहसइज्जा के०) तेनी नापाने अवहिले नही तथा तेने तिरस्कार नकरे तथा तेनी नापाने निंदे नही (निरुद्धगवाविनदीहइज्जा के०) थोडो सूत्रार्थ थोडा काल सुधी कहे पण व्याकर्ण तर्के करी घणो काल सुधी आलजाल कही विस्तारे नही यत सोअछोवत्तवो, जोनणई अरकरेहि थोवेहि। जाउण थोवोबहु अरकरेहि सोहोईनिस्सारो ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ २३ ॥ (समालवेज्जापडिपुन्ननासीके०) जे अत्यंत विपम अर्थ होय ते सम्यक् प्रकारे विस्तारीने बोले जेम श्रोता पुरुष सुखे समजे तेम प्रतिपूर्ण नापाये करी बोले अरकलिर्य अविच्चामेलिर्य इत्यादिक पूरण नापे (निसामियासमिया अठदंसी के०) तथा गुरुने समीपे सानलीने सम्यक् प्रकारे अर्थ देखीने नलीरीते ते अर्थने विचारीने (आणाइसुद्धं वयण निउंजे के०) आज्ञा विशुद्ध वचन प्रयुंजे एम उत्सर्ग अपवाद मार्गने दर्शावनारि एवि शुद्ध वाणी कहेतो थको (अनिसंधए पावविवेगनिकुके०) साधु पापनु विवेक करे एटले पापनु परिहार करे ॥२४

मोक्ष मार्गने त्या त्या (सेयसव्वेसुश्राहिए के०) तेहिज नावने सत्यकरी जाणवा (स यासच्चेणसंपन्नेके०) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शु करे तेकहेछे (मित्तिनूएसुकप्पएके०) नूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीनाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (नूएहिनविरुझेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जेनूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेवुसीमउके०) एवो धर्म वुसीमउ एटले संयमवतनो जाणवो (सादूजगंपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमाहे त्रस अने स्थाव र जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिजीवितनावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे नावना नावे ॥४॥

॥ दीपिका–तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोध । सच सर्वज्ञ सत्य स्वाख्याता । तथाचोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वच ॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषा, तथानूतार्थदर्शिनां ॥१॥ सदा सर्वकाल सत्येन सपन्न ससर्वज्ञो नूतेषु प्राणिषु मैत्री कल्पयेत् कुर्यात् । यत. मातृवत्परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि, य पश्यति सपश्यतीति ॥३॥ नूतैः प्राणिनि सह न विरुध्येत । न विरोध कुर्यात् एष धर्म (वुसीमउत्ति) तीर्थकस्य साधोर्वा तथा वुसीम साधुस्तीर्थकृद्वा जग द्विश्व परिज्ञाय आगमत स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् नावना पचविंशतिर्द्वादशवा ताजी वितनावनाजीवसमाधानकारिणीर्नावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका–साप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्व यथानवति तथा सोपपत्तिक दर्शयितुमाह । (तहिंतहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापदं । यद्यत्तेनार्हता जी वाजीवादिक पदार्थजात तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतवइति कृत्वा ससारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षागतयेत्येतत्सर्व पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिनिरुपपन्नतया सुष्ठाख्यात स्वाख्यातं तीर्थिकवचन तु नहि स्या नूतानीति नणित्वा तडुपमर्दकारनान्यनुज्ञानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमान निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं नवति । सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणा नामसनवात्सद्भूत्योहितत्वाच्च सत्य स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भि' प्रतिपादित ॥ रागादयो ह्यनृतकारण ते च तस्य न सत्यत कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा तद्वचोनूतार्थप्र तिपादक ॥ तथा चोक्त । वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वच । यस्मात्तस्माद् चस्तेषा, तथानूतार्थदर्शिना । ननु च सर्वज्ञत्वमतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता नवत्येव । तथा चोक्त । सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्टं तु पश्यति । कीट

शीलमस्य सनवति सम्यगर्थदर्शी सएवनूत सत्तीर्थकराज्ञया सर्वज्ञप्रणीतागमानुसारे ण शुद्धमवदातं पूर्वापराविरुद्धं निरवद्यं वचनमनियुजीलोत्सर्गविषयेसति उत्सर्गमवाद विषये वा ऽपवाद तथा स्वपरसमययोर्यथास्व वचनमनिवदेत् । एव चानियुजन् निक्षु पापविवेकलाजं सत्कारादिं निरपेक्षतया काङ्क्षमाणोनिर्दोषं वचनमनिसंधयेदिति ॥ २४ ॥

अहाबुइयाइं सुसिरकएज्जा, जइज्जया णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिठिम दि ठिण लूसएज्जा, से जाणई नासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पञ्चन्ननासी, णो सुत्तमत्र च करेज्ज ताई ॥ सत्थारनत्ती अणुवीइ वायं सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तत्थतत्थ ॥ आदेज्जवके कुसले वियत्ते, स अरिहइ नासिउ तं समाहित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इतिग्रथनामा चउदसमज्झयणं सम्मत्त ॥

अर्थ– (अहाबुइयाइंसुसिरकएज्जा के०) श्रीतीर्थकरादिके जेम वचन कह्याछे तेम ज नलीरीते शीखे (जइज्जयाणातिवेलंवदेज्जा के०) तेमज पाले तेमज मुखथी नाषे एटले प्रकाशे तथा वेल एटले मर्यादा उल्लघे नही वली सावद्य वचन बोले नही (सेदिठिमदिठिणलूसएज्जा के०) एवो ते दिठिम एटले सम्यक् दृष्टीवत ते पोतानो स म्यक् दर्शन लूसाए नही तेवी रीते प्ररूपणा करे (सेजाणईनासिउतंसमाहिं के०) ते पुरुष श्रीतीर्थकरनाषित समाधि मार्ग बोली जाणे ॥ २५ ॥ (अलूसएणोपञ्चन्नना सी के०) आगमार्थ कहेतो थको लूसे नही एटले अपशब्द बोली सूत्रार्थ डुषवेनही तथा प्रछन्ननाषी नथाय एटले सूत्रार्थ गोपवे नही सूत्रनो नलो अर्थ प्रकाशे (णोसु त्तमत्रच करेज्जताई के०) तथा त्राई एटले छकायनो रक्षपाल एवो साधु सूत्र अर्थ अन्यथा नकरे (सत्थारनत्तीअणुवीइवायंके०) गुरूनी नक्तिआलोचीने बोले पण गुरूनी अनक्ति थाय तेम नबोले (सुयंचसम्मंपडिवाययतिके०) जेरीते श्रुतने सम्यक् प्रकारे करीने गुरूसमीपेसानाल्यु होय तेरीतेज अर्थ बोले अन्यथाक्षणोवंदोनवति ॥ २६ ॥ (सेसुद्धसुत्ते के०) ते साधुनु ए रीते उपदेशादिक अवशरे प्रकाशतो सूत्र शुद्ध कहेवाय (उवणावंचके०) तथा उपधानवंत एटले जे सूत्रनो जे तप सिद्धातोमा कह्योछे तेने उपधान कहियें तेनो करनार (धम्मचजेविदतितत्थतत्थके०) जेजे धर्म सम्यक् जाणे तेते धर्म त्यां त्या अगीकार करे जेम जेम श्रीवीतरागनी आज्ञा मले तेम तेम धर्मनाषे पण श्रीवीतरागनी आज्ञा विरूद्ध नबोले (आदेज्जवक्केकुसलेवियत्तेके०) एवो जेथाय ते आदेय वचन एटले समस्त लोकने ग्राह्य माननीक वचन बोले तथा कुशल

॥ दीपिका–नावनानियोंग सध्यानरूपोनावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा यस्य सतथा एवविध सन् त्यक्तससारस्वनावोनौरिव जलोपरि तिष्ठति । एवमाख्याता नौरिवानु कूलवातप्रेरिता तीरं प्राप्ता स्यादेव चारित्रवान् जीवपोतस्तपोवायुवशात्सर्वड खात्मक ससारोत्त्रुटयत्यपगच्छति ॥ ५ ॥ मेधावी मर्यादावान् त्रुटयति मुच्यते सर्वबंधनेन्य·। किंकुर्वन् पापकं सावद्यकार्यं लोके ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ तस्य नव कर्म अकुर्वत पूर्वसंचितानि पापकर्माणि त्रुटयंति ॥ ६ ॥

॥ टीका–सद्भावनानावितस्य यद्भवति तद्दर्शयितुमाह । (नावणाइत्यादि) नावना नियोंग सम्यक् प्रणिधानलक्षणोनावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा अंतरात्मा यस्य सतथा। सच नावनायोगशुद्धात्मा परित्यक्तसंसारस्वनावोनौरिव जलोपर्यवतिष्ठते संसारोदन्व तऽति नौरिव यथा जले निमज्जनत्वेन प्रत्याख्याता एवमसावपि संसारोदन्वति न नि मज्जतीति । यथा चासौ नियामकाधिष्ठाताऽनुकूलवातेरिता समस्तद्वन्द्वापगमात्तीरमास्कं दत्येवमायतचारित्रवान् जीवपोत सदागमकर्णधाराधिष्ठितस्तपोमारुतवशात्सर्वड खा त्मकात्संसाराच्चुटयत्यपगच्छति मोक्षाख्य तीरं सर्वदं द्वोपरमरूपमवाप्नोतीति ॥ ५ ॥ अपिच । (तिउट्टइत्यादि) सहि नावनायोगशुद्धात्मा नौरिव जले ससारे परिवर्तमा नस्त्रिन्योमनोवाक्कायेन्योऽशुनेन्यस्त्रुटयति यदिवातीव सर्वबंधनेन्यस्त्रुटयति मुच्यते। अतित्रुटयति ससारादतिवर्तेत मेधावी मर्यादाव्यवस्थित सदसद्विवेकी वाऽस्मिन् लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके नूतस्य ग्रामलोकेवा यत्किमपि पापकं कर्म सावद्यानुष्ठानरूप तत्कार्यंवा अष्टप्रकार कर्म तत् ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तडुपादानं प रिहरन् ततस्त्रुटयति तस्यैव लोक कर्मवा जानतोनवानि कर्माण्यकुर्वतोनिरुद्धाश्रवद्वार स्य विप्रकृष्टतपश्चरणवत पूर्वसचितानि कर्माणि त्रुटयंति निवर्ततेवा नव च कर्माकुर्वतो ऽशेपकर्मक्षयोनवतीति ॥ ६ ॥

अकुवर्ज णवं णत्थि, कम्म नाम वि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे, जेण जाइ ण मिज्जइ ॥ ७ ॥ णमिज्जइ महावीरे, जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वा ज्वं जलमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थि ॥ ८ ॥

अर्थ–(अकुवर्जणवणत्थि के०) कारण के जे समस्त क्रिया रहित होय एवा अण करताने नवा कर्मनो बंध नथी (कम्मनामविजाणइ के०) तेवारे अष्ट प्रकारना जे कर्म तेना विपाकनु निर्ज्जरवो ते सम्यक् जाणे (विन्नायसेमहावीरे के०) ते कर्म रूप शत्रुनो विदारण करवा थकी श्रीमहावीरदेव कर्मना बंधने तथाकर्मनी निर्ज्जराने जाणी

व्यवस्थानाख्यं वा त सर्वज्ञोक्त समाधि सम्यगवगच्छतीति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् (अजू सएइत्यादि) सर्वज्ञोक्तमागम कथयन्नोजूपयेन्नान्यथापसिद्धांतव्याख्यानेन दूषयेत्तथा न प्रछन्नभाषी भवेत् सिद्धातार्थमविरुद्धमवदातं सार्वजनीन तत्प्रछन्नभापणेन न गोपये त्। यदिवा प्रछन्नं वाऽर्थपरिणताय न भाषेत नसिद्धातरहस्यमपरिणतशिष्यविध्वसनेन दोषायैव संपद्यते। तथाचोक्त। अप्रशातमतौ शास्त्र, सद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायाभि नवोदीर्ण. शमनीयमिव ज्वरेइत्यादि। नच सूत्रमन्यत् स्वमतिविकल्पनत स्वपरत्रायी कुर्वीतान्यथा सूत्र तदर्थवा ससारत्रायी त्राणशीलोजंतूना नविदधीत । किमित्यन्यथा सूत्रं नकर्तव्यमित्याह। परहितकरत शास्ता तस्मिन् शास्तरि या व्यवस्थिता भक्तिर्बहु मानस्तया तद्भक्त्या ऽनुविचिंत्यमानेनोक्तेन न कदाचिदागमबाधा स्यादित्येव पर्यालो च्य वाच वदेत्तथातया तच्छ्रुतमाचार्यादिभ्य सकाशात्तत्तथैव सम्यक्त्वाराधनामनुवर्तमानो ऽन्येभ्यक्रुणमोक्ष प्रतिपद्यमान प्रतिपादयेत् प्ररूपयेन्न सुखशीलता मन्यमानोयथाकथ चित्तिष्ठेदिति ॥ २६ ॥ अध्ययनोपसहारार्थमाह। (सेसुद्धसुत्तेइत्यादि) ससम्यग्दर्श नस्याखूपकोयथावस्थितागमस्यप्रणेता ऽनुविचित्य भाषक शुद्धमवदात्त यथावस्थित वस्तुप्ररुपणतो ऽ ध्ययनतश्च सूत्र प्रवचन यस्यासौ शुद्धसूत्र । तथोपधान तपश्चरणं यद्यस्य सूत्रस्याभिहितमागमे तद्विद्यते यस्यासावुपधानवान् तथा धर्म श्रुतचारित्राख्य य सम्यक् वेत्ति विदत्तेवा सम्यक् लभते तत्र तत्रेति यआज्ञाग्राह्योर्थ सआज्ञयैव प्रति पत्तव्योहेतुतस्तु सम्यग्धेतुना। यदिवा स्वसमयसिद्धोर्थ स्वसमये व्यवस्थापनीय पर सिद्धश्च परस्मिन्नथवोत्सर्गापवादयोर्व्यवस्थितोर्थस्ताभ्यामेव यथास्वप्रतिपादयितव्यए तद्गुणसपन्नश्चादेयवाक्योग्राह्यवाक्योभवति । तथा कुशलोनिपुणआगमप्रतिपादने स दनुष्ठाने च व्यक्त परिस्फुटोनासमीक्ष्यकारी। यश्चैतद्गुणसमन्वित सोर्हति योग्योभव ति तं सर्वज्ञोक्तं ज्ञानादिक वा भावसमाधि भाषितु प्रतिपादयितु नापर कश्चिदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। गतोनुगमोनया प्राग्वद्याख्येया ॥ २७ ॥ समाप्त चतुर्दशं ग्रथाख्यमध्ययनमिति ॥

हवे पंदरमुं आदान नामे अध्ययन प्रारंभिये छैयें आदान एटले ग्रहण करवु एटले रूडी शिक्षारूप चारित्रानुष्ठानने ग्रहण करवुं तेनु द्रव्ये करी तथा भावे करी शुद्ध स्वरूप कहेछे•

जमतीत पडुप्पन्नं, आगमिस्सं च णायर्ड ॥ सबमन्नति तं ताई,
दंसणावरण तए ॥ १ ॥ अंतए वितिगिछाए, जे जाणति अ
णेलिस ॥ अणेलिसस्स अरकाया, ण से होइ तहि तहि ॥२॥

न्संसारोदरे नपुनर्जायते नपरिच्छियते तदनावाच्च नम्रियते । यदिवा जात्या नारकोयं तिर्यग्योनिकायमिति । एव नमीयते न परिच्छियते ऽनेनच कारणानावात्संसाराविर्नाव नेन । यत्कैश्चिदुच्यते । ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं च जगत्पते ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्ध चतुष्टयमित्येतदपि व्युदस्त नवति । संसारस्वरूपं विज्ञाय तदनाव क्रियते नपुन. सासिद्धिक कश्चिदनादिसिद्धोस्ति तत्प्रतिपादकायायुक्तेरसंनवादिति ॥ ७ ॥ किंपुन कारणमसौन जात्यादिना मीयते इत्याशक्याह । (णमिज्जतीत्यादि) असौ महावीर परित्यक्ताशेषकर्मा न जात्यादिना मीयते परिच्छियते न म्रियते वा जातिजरामरणरोगशोकैर्वा संसारचक्रवाले पर्यटन् न म्रियते न पूर्यते किमिति । यतस्तस्यैव जात्यादिकं नवति यस्य पुरस्कृतं जन्मशतोपात्तं कर्म विद्यते यस्य तु नगवतोमहावीरस्य निरुद्धाश्रवद्वारस्य नास्ति न विद्यते पुरस्कृतं पुरस्कृतकर्मोपादानानावाच्च न तस्य जातिजरामरणैर्नेरण सनाव्यते । तदाश्रवद्वारनिरोधाश्रयाणा च प्रधान स्त्रीप्रसंगस्तमधिकृत्याह । वायुर्यथा सततगतिरस्खलिततयाऽग्निज्वाला दहनात्मकामप्येत्यतिक्रामति पराजवति न तया परानूयते । यएव लोके मनुष्यलोके हावनावप्रधानत्वात्प्रियादयितास्तत्प्रियत्वाच्च डुरतिक्रमणीयाअत्येत्यतिक्रामतिनतानि जीयते तत्स्वरूपावगमात्तज्जयविपाकदर्शनाच्चेति । तथाचोक्त । स्मितेन नावेन मदेन लज्जया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षितै ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तनावै खलु बंधनं स्त्रिय ॥ १ ॥ स्त्रीणा कृते भ्रातृयुगस्य नेद, सवधिनेदे स्त्रियएव मूल ॥ अप्राप्तकामाबह्वोनरेन्द्रा, नारीनिरुत्सादितराजवशा ॥२ इत्येव तत्स्वरूप परिज्ञाय तज्जय विधत्ते नैतानिर्जीयतइति स्थित । अथ किंपुन कारण स्त्रीप्रसगाश्रवद्वारेण शेपाश्रवद्वारोपलक्षण क्रियते नप्राणातिपातादिनेति । अत्रोच्यते । केपाचिद्दर्शनिनामगनोपनोगश्चाश्रवद्वारमेव नवति । तथाचोचु । न मासनक्षणे दोपो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेपा नूताना, निवृत्तिस्तु महाफला इत्यादि तन्मतव्युदासार्थमेवमुपन्यस्तमिति । यदिवा मध्यमतीर्थकृताचतुर्यामएव धर्मइहतु पचयामोधर्मइत्यस्यार्थस्याविर्नावनायानेनोपलक्षणमकारि । अथवा पराणि व्रतानि सापवादानीहतु निरपवादमित्यस्यार्थस्याविर्नावनाय प्रकटनायैवमकारि । अथवा सर्वाण्यपि व्रतानि तुल्यानि एकखडेन सर्वविराधनमिति कृत्वा येन केनचिन्निर्देशेन दोपायेति॥ ८॥

इत्थिउ जे ण सेवंति, आइमोरका हु ते जणा ॥ ते जणा वंधणुम्मुक्का, नावकखंति जीवियं ॥ ए॥ जीवित पिठउकिच्चा, अंत पावंति कम्मुण॥ कम्मुणा समुहीनूता, जे मग्गमणुसासई॥ १० ॥

अर्थ-(इत्थिउजेणसेवंति के०) जे पुरुषो स्त्रीने नथी सेवता (आइमोरकाहुतेजणा

तन्नादानपदेनादावादीयते इत्यादानं तच्च ग्रहणमित्युच्यते । तत्रादानग्रहणयोर्निक्षेपार्थ निर्युक्तिरुवाह । (आदाणेइत्यादि) आदीयते कार्यार्थिना तदित्यादान । कर्मणिल्युट् प्र त्यय करणेवा । दीयते गृह्यते स्वीक्रियते विवक्षितमनेनेति कृत्वा आदान च पर्यायतोग्र हणमित्युच्यते ॥ तत आदानग्रहणयोर्निक्षेपोजवति क्षौचतुष्कौ । तद्यथा । नामादान स्थापनादान ड्व्यादानं नावादानच । तत्र,नामस्थापने कुसे । ड्व्यादान वित्तं यस्माज्जौ क्रिके परित्यक्तान्यकर्तव्यैर्महता क्लेशेन तदादीयते तेन वाऽपरद्विपदचतुष्पदादिकमादी यतइति कृत्वा । नावादानतु द्विधा प्रशस्तमप्रशस्त क्रोधाद्युदयमिथ्यात्वाविरत्यादिक वा । प्रशस्त तूत्तरोत्तरगुणश्रेण्या विशुद्धाध्यवसायकडकोपाख्यान सम्यक्ज्ञानादिक वेत्येतदर्थप्र तिपादनपरमेतदेव चाध्ययन ड्रष्टव्यमित्येव ग्रहणेपि नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपोड्रष्टव्य । नावार्थोप्यादानपदस्येव ड्रष्टव्यस्तत्पर्यायत्वादस्येति । एतच्च ग्रहण नैगमसंग्रहव्यवहा रर्जुसूत्रार्थनयानिप्रायेणादानपदेन सहालोच्यमान शक्रेन्द्रादिवदेकार्थमनिन्नार्थ नवेत् शब्द समनिरूढेवंनूतशब्दनयानिप्रायेण च नानार्थ नवेत् । इहतु प्रकृतं प्रस्तावआदाने आदान विषये आदानपदमाश्रित्यास्यानिधानमाकार्यादानीय वा ज्ञानादिकमाश्रित्य नाम कृतमि ति आदानीयानिधानस्यान्यथा वा प्रवृत्तिनिमित्तमाह । “ ज पढमस्सतिमए, बितियस्स उं तह वेज्जआदिमि ॥ एतेणादाणिज्जं, एसो अनोवि पज्जाउ ” ॥ ३५ ॥ (जपढमस्से त्यादि) यत्पद प्रथमश्लोकस्य तदर्धस्य वाते पर्यंते तदेव पद शब्दतोर्थतश्चनयतश्च द्वि तीयश्लोकस्यादौ तदर्धस्य वादौ नवत्येतेन प्रकारेणाद्यपदसदृशत्वेनादानीयं नवत्येष आदानीयानिधानप्रवृत्ते पर्यायोऽन्योवा विशिष्टज्ञानाद्यादानीयोपादानादिति । केचित्तु पु नरस्याध्ययनस्याताादिपदयो सकलनात्सकलिकेति नाम कुर्वते । तस्याअपि नामादिक श्चतुर्धानिक्षेपोविधेय । तत्रापि ड्व्यसकलिका निगडादौ नावसकलनात्तूत्तरोत्तरविशि ष्टावसायसकलनमिदमेव वा ऽध्ययनमाद्यंतपदयो संकलनादिति । येपामादानपदेनानि धान तन्मतेनादौ यत्पद तदादानपदमतआदेर्निक्षेपं कर्तुकामआह । “ णामादी ठव णादी, दवादी चेव होति नावादी ॥ त दवादी पुण दवस्स जो सनावो सएहाणे ३६ (णामादी इत्यादि) आदेर्नामादिकश्चतुर्धा निक्षेप । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य ड्व्यादि दर्शयति । ड्व्यादि पुनर्ड्व्यस्य परमाण्वादेर्यं स्वनाव परिणतिविशेष स्वके स्थाने स्वकीये पर्याये प्रथममादौ नवति सड्व्यादिर्ड्व्यस्य दध्यादेर्यआद्य परिणतिविशे प क्षीरस्य विनाशकालसमकालीनएवमन्यस्यापि परमाण्वादेर्ड्व्यस्य योय परिणतिवि शेप प्रथमसुत्पद्यते ससर्वोपिड्व्यादिर्नवति । ननुच कथं क्षीरविनाशसमयएव दध्यु त्पाद । तथाहि । उत्पादविनाशौ नावानावरूपौ वस्तुधर्मौ वर्तेते । न च धर्मोधर्मिण मतरेण नवितुमर्हत्यतएकस्मिन्नेव क्षणे तर्द्धर्मिणोर्दधिक्षीरयो सत्तामाप्नोत्येतच्च दृष्टेष्ट

अणुसासणं पुढो पाणी, वसुमं पूयणासुते ॥ अणासए जते द
ते, दढे आरयमेहुणे ॥ ११ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा, छिन्नसोए
अणाविले ॥ अणाइले सया दंते, संधि पत्ते अणेलिसं ॥१२॥

अर्थ-(अणुसासण पुढोपाणी के०) जेनो अनुशासन एटले उपदेश दान ते सर्व प्राणिने विषे पृथक् पृथक् जुदो जुदो परणमे कोनी पेरे तोके पृथ्वीने विषे जेम उदक जुदो जुदो परणमे तेनी पेरे जेनो उपदेश परणमेछे तथा (पूयणासु के०) पूजानेविषे (वसुम के०) इव्यवत एनो नावार्थ कहेछे जे देवतादिक समवसरणादिक पूजा करे छे त्यां त्यां तेने इव्य थकी नोगछे परतु ते नाव थकी नोग नथी तेकारण माटे सय मवत (ते के०) तेहिज जाणवा ए वचन श्रीतीर्थंकर देव आश्री कह्याछे वली (अ णासएजतेदते के०) आश्रव रहित जयणावत तथा इंड्रियनो दमन करनार (दढे आरयमेहुणे क०) सयमने विषे दृढ अने मैथुन थकी विरत एटले विषय रहित ॥ ११ ॥ (णीवारेवणलीएज्जा के०) मैथुनने नीवार समान जाणे जेम सूकरादिकने खावानी वस्तु आपी लोनावीने मारी नाखीये अथवा डु ख आपीये तेम मैथुनने एवो जाणीने स्त्रीनो सग नकरे ते केवो पुरुष जाणवो तोके (छिन्नसोए अणाविले के०) स्रोत एटले जे ससार तेमां अवतरवाना द्वारजे विषय कषायादिकछे ते जेणे छेद्याछे वली राग द्वेष थकी रहित तथा (अणाइलेसयादते के०) अनाकुल एटले अक्षोन सदा दांत गुणवान् एवोछतो (संधिपत्ते अणेलिस के०) कर्म विवर लक्षणनी सिद्धि पामे एवी बीजी वस्तु कोइ जगतमा नथी तेमाटे ए सिद्धिने कोइ उपमा नथी ॥१२॥

॥ दीपिका-अनुशासन देशनाकरण पृथक् पृथक् नव्यानव्यप्राणिषु सर्वज्ञ करोति । नव्येषु देशना न सम्यक् परिणमति तथापि न सर्वज्ञस्य दोष । तडुक्त । सद्धर्मबीजव पनानघकौशलस्य सल्लोकबांधव तवापि खिलान्यनूवन् ॥ तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विहतामसे षु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताइति । किंनूत सर्वज्ञोवसुमान् चारित्री । पुन किंनूत पूजन देवादिकृताशोकादिकमास्वादयति उपभुक्ते पूजनास्वादक । ननु देवादिकृतस्या धाकर्मण समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ चारित्रीत्याशक्याह । (अणासएत्ति) न विद्यते आशय पूजानिप्रायोयस्य स अनाशय इव्यतः समवसरणादिके विद्यमानेपि नावतोसौ नास्वादकोगार्ध्यानावात् । यस्मादसौ यतोयत्नवान दात संवृतेंड्रिय दृढ सयमे आरतमपगतं मैथुन यस्य सतथा गतकामानिलाष ॥ ११ ॥ नीवार पशूना व ध्यस्थानप्रापणीयनूतोनक्ष्यविशेषस्तत्तुल्य मैथुन ततोनीवारे मैथुन न लीयेत न प्रस

सर्वं गत्यर्थाज्ञानार्थाइति कृत्वा सामान्यस्य परिछेदकोमनुते इत्यनेकविशेषस्य तदनेकसर्वज्ञ सर्वदर्शी चेत्युक्त नवति । नच कारणमंतरेण कार्य नवतीत्यतइदमपदिश्यते । दर्शनावरणीयस्य कर्मणोंतकोमध्यग्रहणेतु घातिचतुष्टयस्यांतकृद्द्रष्टव्यइति ॥ १ ॥ यश्च घातिचतुष्टयांतकृत्सर्हन्नवतीत्याह । (अतएइत्यादि) विचिकित्सा चित्तविप्लुति संशयज्ञानं तस्यासौ तदावरणक्षयादंतकृत् सशयविपर्ययमिथ्याज्ञानानामविपरीतार्थपरिछेदादतेवर्तते । इदमुक्तंनवति । तव दर्शनावरणक्षयप्रतिपादनात् ज्ञानाद् निन्न दर्शनमित्युक्त नवति । ततश्च येपामेव सर्वज्ञस्य ज्ञान वस्तुगतयो सामान्यविशेषयोरचिंत्यशक्त्युपेतत्वात्परिछेदकमित्येषोयेषामन्युपगम सोऽनेन पृथगावरणप्रतिपादनेन निरस्तोनवतीति । यश्च घातिकर्मांतकृदतिक्रांतसंशयादिज्ञान सोऽनीदृशमनन्यसदृशं जानीते नतत्तुल्योवस्तुगतसामान्यविशेषाशपरिछेदकवन्नयरूपेणैव विज्ञानेन विद्यतइतीदमुक्त नवति । न तज्ज्ञानमितरजनज्ञानतुल्यमतोयडुक्तं मीमांसकै सर्वज्ञस्य सर्वपदार्थपरिछेदकत्वेऽन्युपगम्यमाने सर्वदा स्पर्शरूपरसगंधवर्णशब्दपरिछेदादनिमतद्रव्यरसास्वादनमपि प्राप्नोति तदनेन क्षुदस्तं द्रष्टव्यं । यदप्युच्यते सामान्येन सर्वज्ञसन्नावेपि शेषहेतोरन्नावादर्हत्येव सप्रत्ययोनोपपद्यते । तथा चोक्त । अर्हन्न यदि सर्वज्ञो, बुद्धोनेत्यत्र का प्रमा । अथोनावपि सर्वज्ञौ मतनेदस्तयो कथमित्यादि । एतत्परिहारार्थमाह । अनीदृशस्यानन्यसदृशस्य य परिछेदकआख्याताच नामासौ तत्र तत्र दर्शने बौद्धादिकोनवति तेषां द्रव्यपर्याययोरनन्युपगमादिति । तथाहि । शाक्यमुनि सर्व क्षणिकमिछन् पर्यायानेवेछति न द्रव्यं । द्रव्यमतरेण च निर्बीजत्वात् पर्यायाणामप्यन्नाव प्राप्नोत्यत पर्यायानिछताऽवश्यमकामेनापि तदाधारन्नूतं परिणामिद्रव्यमेष्टव्यं तदनन्युपगमाच्च नासौ सर्वज्ञइति । तथा अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वन्नावस्य द्रव्यस्यैवैकस्यान्युपगमादव्यक्तावसीयमानानामर्थक्रियासमर्थानां पर्यायाणामनन्युपगमान्निष्पर्यायस्य द्रव्यस्याप्यन्नावात्कपिलोपि न सर्वज्ञइति तथा क्षीरोदकवद निन्नयोर्द्रव्यपर्याययोरन्नेदेनान्युपगमाडुलूकस्यापि न सर्वज्ञत्वाच्च तीर्थांतरीयाणां मध्ये न कश्चिदप्यनीदृशस्यानन्यसदृशस्यार्थस्य द्रव्यपर्यायोन्नयरूपस्याख्याता नवतीत्यर्हन्नेवातीतानागतवर्तमानत्रिकालवर्तिनोर्थस्य साख्यातेति न तत्रतत्रेति स्थित ॥ २ ॥

ताहि ताहि सुयक्खायं, से य सच्चे सुआहिए ॥ सया सच्चेण संपन्ने, मित्ति नूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ नूएहि न विरुझेज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ साहू जग परिन्नाय, अस्सि जीवितन्नावणा ॥ ४ ॥

अर्थ-(तहितहिसुयक्खायके०) जे जे नाव श्रीवीतरागे ज्या ज्या नलीपेरे कह्या ले एटले मिथ्यात्व अविरत प्रमादादिकते ससारनु कारणले अने ज्ञान दर्शन चारित्र ते

अणेलिसस्स खेयन्ने, ण विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव चक्खुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साणं, जे कखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहती, चक्कं अंतेण लोट्टती॥१४॥

अर्थ- (अणेलिसस्सखेयन्नके०) अणेलिस एटले संयम तेने विषे जे खेदज्ञ एट ले निपुण होय ते (णविरुज्झिज्जकेणइके०) कोइजीवनी साथे विरोध नकरे सर्वजीवो नी साथे मैत्री भाव आणे (मणसावयसाचेवके०) मन वचन पुन । (कायसाचेव चक्खुमके०) कायाए करी त्रिकरण शुद्धे जे एम करे तेनेज परमार्थ थकी चक्षुवत निर्मल दृष्टीवालो जाणवो ॥ १३ ॥ (सेहुचक्खूमणुस्साणंके०) हुइति निश्चे तेहिज पुरुष संयमी मनुष्योनी चक्षु जेवो जाणवो (जेकखाएयअंतएके०) जे पुरुष कांक्षा एटले विषय तृष्णानो अंतकरे ते संसार अने कर्मनो अंतकारी जाणवो तेनाउपर दृष्टांत कहेछे (अंतेणखुरोवहतीके०) छेहडे जेम.तुरी कोइ पदार्थ छेदवाने अर्थे अत्यंत तीक्ष्ण धाराये वहे धारने अंते छेदन क्रियामा समर्थ होय (चक्कंअंतेण लोट्टतीके०) जेम गा डानोपइडो पण अंते प्रवर्त्ते तेम मोहादिकने अंते मुक्तिरूप कार्य सिद्ध थाय ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–अनीदृश संयमस्तस्य खेदज्ञोनिपुण केनचित्सार्द्धं नविरोध कुर्वीत म नोवच काये सएव परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवति ॥ १३ ॥ सएव संयमी मनुष्याणां चक्षु र्भूतोय काङ्क्षायाभोगेछायाअंतकोंतवर्ती । यथा क्षुरोनापितोपकरणमंतेन वहति च क्र रथांगमंतेनैव मार्गे वर्तते तथा साधुरपि विषयाद्यंतवर्ती मोक्षसाधक ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच । (अणेलिसस्सेत्यादि) अनीदृशोऽनन्यसदृश· संयमोमौनीन्द्रधर्मो वा तस्य तस्मिन् वा खेदज्ञोनिपुणोऽनीदृशखेदज्ञश्च केनचित्सार्धं न विरोधं कुर्वीत सर्वे षु प्राणिषु मैत्री नावयेदित्यर्थः । योगत्रिककरणत्रिकेणेति दर्शयति । मनसाऽत करणेन प्रशांतमनास्तथावाचोहितमितनाषी तथा कायेन निरुद्धोद्धुष्प्रणिहितसर्वकायचेष्टोदृष्टि पूतपादचारी परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवतीति ॥ १३ ॥ अपिच । (सेहुचक्खूइत्यादि) हुरवधारणे । सएव प्राप्तकर्मविवरोऽनीदृशस्य खेदज्ञोनव्यमनुष्याणां सदसत्पदार्थावि र्भावनान्नेत्रनूतावर्तते । किंनूतोसौ य काङ्क्षायाभोगेछायाअंतकोविषयतृष्णाया· पर्यंतव र्ती । किमंतवर्तीति विवक्षितमर्थं साधयत्येवेत्यमुमर्थं दृष्टांतेन साधयन्नाह । अंतेन पर्यंतेन क्षुरोनापितोपकरणं तदंतेन वहति तथा चक्रमपि रथांगमंतेनैव मार्गे प्रवर्तते । ऽदमुक्तंनवति । यथा क्षुरादीनां पर्यंतएवार्थकार्येव विषयकषायात्मकोमोहनीयांतएवा ~ पसदससारक्षयकारीति ॥ १४ ॥

सख्यापरिज्ञानं, तस्य नक्कोपयुज्यते इत्याशंक्याह् । सदा सर्वकालं सत्येनावितथनाप ऐन संपन्नोसौ । अवितथनापणत्व च सर्वज्ञे सति नवति नान्यथा । तथाहि । की टसख्यापरिज्ञानासंनवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशकेत । तथा चोक्त । सदृशे बाधासंनवे त ल्लक्षणमेव दूषित स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्व तस्य नगवतोऽन्युपेयमन्यथा त द्वच सत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसयम संत प्राणिनस्तेन्योहितत्वादतस्तेन तप प्रधानसयमेन नूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं संपन्नोयुक्तएतद्गुणसंपन्नश्चासौ नूतेषु जतुषु मैत्री तल्लक्षणपरतया नूतदयां कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्त नवति । परमार्थत सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योनूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्त। मातृवत्परदाराणि परद्रव्या णि लोष्टवत्॥ आत्मवत्सर्वनूतानि य पश्यति सपश्यति ॥३॥ यथा नूतेषु मैत्री सपूर्णनाव मनुनवति तथा दर्शयितुमाह । (नूएहिंइत्यादि) नूतै स्थावरजगमै सह विरोध नकुर्यात्त दुपघातकारिणमारनं तद्विरोधकारण दूरत परिवर्जयेदित्यर्थ । सएषोऽनतरोक्तोनूताविरो धकारी धर्म स्वनाव पुण्याख्योवा (वुसीमउत्ति) तीर्थकृतोयं सत्सयमवतोवेति । तथा सत्स यमवान् साधुस्तीर्थकृज्जगच्चराचरनूतग्रामाख्य केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञाने न वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनीन्द्रेवा धर्मे नावना पचविंशतिरूपा द्वा दशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणी सत्सयमागतया मोक्षकारिणीर्नावयेदिति ॥ ४ ॥

नावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना, सवडुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाण लोगंसि पावग ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नव कम्ममकुवए ॥ ६ ॥

अर्थ–जे नावनानावे तेने जे होय ते देखाडेछे (नावणाजोगसुद्धप्पा के०) नाव नाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माछे (जलेणावावआहिया के०) ते पुरुष ससार रूप समुद्रने विषे नौका समान कह्याछे ते उपर दृष्टात कहेछे (नावावतीरस पन्ना के०) जेम नावा समुद्रने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुक्खातिउट्टइ के०) संसारना सर्व डुःख थकी मुकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ (मेधावी के०) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पमित केवो होय तोके (जाणलोगसिपावगके०) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने (तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना सं चित सर्व पाप कर्म त्रूटे (नवकम्ममकुवएके०) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

त्तरीये प्रवचने श्रुतमागमे । एवनूत· सुधर्मस्वामी वा जंबूस्वामिनमुद्दिश्यैवाह । यथा मयैतल्लोकोत्तरीये नगवत्यर्हत्युपलब्धं तद्यथा अवाप्तसम्यक्त्वादिसामग्रीक· सिध्यति वै मानिकोवा नवतीति । मनुष्यगतावेवैतन्नान्यत्रेति दर्शयितुमाह ॥ सुयंमेइत्यादि पश्चार्द्धं । तच्च मया तीर्थकरांतिके श्रुतमवगतं । गणधर स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । यथा मनुष्यएवाशेषकर्मक्षयात्सिद्धिगतिनाग्नवति नामनुष्यइति । एतेन यच्चाक्यैरनिहितं । तद्यथादेवएवाशेषकर्मप्रहाणं कृत्वा मोक्षनाग्नवति तदपास्तं नवति । नह्यमनुष्येषु गतित्रयवर्तिषु सच्चारित्रपरिणामानावाद्यथा मनुष्याणां तथामोक्षावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

अंत करंति दुक्खाणं, इहमेगेसि आहियं ॥ अघायं पुण एगेसिं, दुल्लने य समुस्सए ॥ १७ ॥ इउविद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि दुल्लना ॥ दुल्लहाउ तहच्चाउ, जे धम्मठ वियागरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(अंतंकरतिदुक्खाण के०) मनुष्य सर्व दु खनो अंत करे पण मनुष्यनी जाति विना अन्य जातीने मुक्ति नथी (इहमेगेसिआहियंके०) एम कोइएके कह्योछे तथा गणधरादिके एम कह्योछेके (आघायंपुणएगेसिके०) ए मनुष्य संबंधी देह पामवो एक एक वहुल कर्मिजीवोने अत्यंत (दुल्लनेयसमुस्सएके०) दुर्लनछे वली वली मनुष्य जन्म पामवो दुर्लनछे चुलग पासके इत्यादिक दृष्टांते दुर्लनछे ॥ १७ ॥ (इउविद्धसमाणस्सके०) ए मनुष्य देह थकी विध्वस्त एटले भ्रष्ट थयलाने एटले जे मनुष्य जन्म हारा एवाने (पुणोसबोहिदुल्लनाके०) अन्यगतीने विषे बोधी एटले सम्यक्त्व ज्ञान पामवो दुर्लनछे (तहच्चाउके०) तथाच्चा एटले लेश्या चित्तना परिणाम अथवा अर्चा एटले मनुष्यनुं शरीर ते (दुल्लहाउके०) दु प्राप्यछे (जेधम्मठवियागरेके०) वली धर्मनो अर्थजे वियागरे एटले शुधो प्रकाशे एवो शरीर धारी मनुष्य पणु पण दुर्लनछे ॥१८॥

॥ दीपिका-इह एकेषां वादिनामारव्यातं यत् देवाएवांतकरामोक्षगामिन· स्युरिति न तथा इहार्हते प्रवचने । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनामाख्यातं यदयं मानुष्य शरीरसमुच्छ्रयोदुर्लन । यत· । ननु पुनरिदमतिदुर्लनं, मगाधससारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥ १७ ॥ इतोमनुष्यनवाद्विध्वसमानस्य जीवस्य पुन सबोधिधर्मप्राप्तिर्दुर्लना तथानूता सम्यक्त्वप्राप्तियोग्याऽर्चा लेश्या दुर्लना । जतूनां ये धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथानूताचा दुर्लना स्यात् ॥ १८ ॥

संख्यापरिज्ञानं, तस्य नकोपयुज्यते इत्याशंक्याह् । सदा सर्वकाल सत्येनावितथनाप णेन सपन्नोसौ । अवितथनापणत्व च सर्वज्ञे सति नवति नान्यथा । तथाहि । की टसख्यापरिज्ञानासंनवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशकेत । तथा चोक्त । सद्दशे बाधासनवे त ल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्व तस्य नगवतोऽष्टव्यमन्यथा त द्व सत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसयम· सत प्राणिनस्तेन्योहितत्वादतस्तेन तप प्रधानसंयमेन नूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं सपन्नोयुक्तएतगुणसपन्नश्चासौ नूतेषु जतुषु मैत्री तल्लक्षणपरतया नूतदया कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्त नवति । परमार्थत सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योनूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्तं। मातृवत्परदाराणि परद्रव्या णि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि य पश्यति सपश्यति ॥१॥ यथा नूतेषु मैत्री सपूर्णनाव मनुनवति तथा दर्शयितुमाह । (नूएहिंइत्यादि) नूतैं स्थावरजंगमैं सह विरोध नकुर्यात्त डुपघातकारिणमारन्न तद्विरोधकारण दूरत पग्विर्जयेदित्यर्थ । सएषोऽनतरोक्तोनूताविरो धकारी धर्म स्वनाव· पुत्यारव्योवा (वुसीमउत्ति) तीर्थरुतोयं सत्सयमवतोवेति । तथा सत्सं यमवान् साधुस्तीर्थरुज्जगच्चराचरनूतग्रामाख्यं केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञाने न वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनींडिवा धर्मे नावना पचविंशतिरूपा द्वा दशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणी सन्सयमाधतया मोक्षकारिणीर्नावयेदिति ॥ ४ ॥

नावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना, सवडुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाणं लोगंसि पावग ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुवए ॥ ६ ॥

अर्थ–जे नावनानावे तेने जे होय ते देखाडेचे (नावणाजोगसुद्धप्पा के०) नाव नाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माचे (जलेणावावआहिया के०) ते पुरुष संसार रूप समुद्रने विषे नौका समान कह्याचे ते उपर दृष्टांत कहेचे (नावावतीरसं पन्ना के०) जेम नावा समुद्रने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुक्खातिउट्टइ के०) ससारना सर्व डुःख थकी मुकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ (मेधावी के०) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पंमित केवो होय तोके (जाणंलोगसिपावगके०) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने (तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना सं चित सर्व पाप कर्म त्रूटे (नवंकम्ममकुवएके०) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

स्याज्ञानक्रियोपेतस्य यत् स्थानं तत्प्राप्तस्य जन्मकथा कुतः । तस्य जन्ममरणे न नव तइत्यर्थः ॥ १९ ॥ मेधाविनोज्ञानिनस्तथा नवन्नमणेन गतास्तथागता कुत कदाचि छुत्पद्यते नवेनोत्पद्यंतएवेत्यर्थः । तथागताअर्हद्गणधरादयोऽप्रतिज्ञाअनिदानाअनुत्तराः सर्वज्ञत्वात्ते लोकस्य चक्षुर्भूता स्युः ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जेधम्ममित्यादि) ये महापुरुषावीतरागा करतलामलकवत्स कलजगद्द्रष्टारस्तएवंभूताः परहितैकरता शुद्धमवदातं सर्वोपाधिविशुद्धं धर्ममाख्यांति प्र तिपादयंति स्वत समाचरति च प्रतिपूर्णमायतचारित्रसद्भावात्संपूर्णं यथाख्यातचारित्र रूप वाऽनीदृशमनन्यसदृश धर्ममाख्यात्युपतिष्ठंति । तदेवमनीदृशस्यानन्यसदृशस्य ज्ञा नचारित्रोपेतस्य यत् स्थानं सर्वद्वन्द्वोपरमरूप तदवाप्तस्य कुतोजन्मकथा जातोमृतोवे त्येवरूपा कथा स्वप्नांतरेपि तस्य कर्मबीजाभावात् कुतोविद्यतइति । तथोक्तं । दग्धे बीजे यथाऽत्यंतं, प्राडुर्नवति नांकुर ॥ कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरइत्यादि ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । (कउकयाइत्यादि) कर्मबीजाभावात्कुत कस्मात्कदाचिदपि मेधा विनोज्ञानात्मकास्तथा पुनरावृत्त्याऽगतास्तथागताः पुनरस्मिन् ससारेऽशुचिगर्भाधाने स मुत्पद्यते न कथंचित्कदाचित्कर्मोपादानाभावाडुत्पद्यंतइत्यर्थः । तथा तथागतास्तीर्थकृग णधरादयोन विद्यते प्रतिज्ञा निदानबंधनरूपा येषा तेऽप्रतिज्ञानिदानानिराशंसा सत्वहि तकरणोद्यताअनुत्तरज्ञानत्वादनुत्तरालोकस्य जंतुगणस्य सदसदर्थनिरूपणकारणतश्चक्षुर्भू ताहिताहितप्राप्तिपरिहार कुर्वंत सकललोकलोचनभूतास्तथागता सर्वज्ञाभवंतीति॥२०॥

अणुत्तरे य ठाणे से, कासवेण पवेदिते। जं किच्चा णिव्वुमा एगे, निठ्ठं पावंति पंमिया ॥ २१ ॥ पंमिए वीरियं लद्धुं, निग्घायाय पवत्तगं॥ धुणे पुव्वकडं कम्मं, णवं वा वि ण कुव्वती ॥ २२ ॥

अर्थ–(अणुत्तरेयगणेसेके०) अनुत्तर एटले प्रधान संयमरूप स्थानक ते (कास वेणपवेदितेके०) काश्यप श्रीमहावीर देवे कह्यो (जकिच्चाके०) जे सयम स्थानक पा लीने (णिव्वुमाएगेके०) एक महापुरुष उपशांत कषायवंत एवा थता (निठ्ठपावंतिपंमिया के०) पंमित विवेकना जाण संसारनो अंत पामे ॥ २१ ॥ (पंमिएवीरियंलद्धुंके०) पंमित एटले सदसद्विवेकना जाण ते संयमनो वीर्य बल पामीने नि शेष समस्त कर्मनो (निग्घायायके०) निर्घातन करवाने अर्थें (पवत्तगके०) प्रवर्त्तक ए पंमित वी र्य घणा नवे पामवो डुर्लन तेने पामीने (धुणेपुव्वकडंकम्मके०) पूर्वेकृत कर्मने धुणे एटले खपावे (णववाविणकुव्वतीके०) कोइ नवा कर्मने नकरे ॥ २२ ॥

ने ते प्रमाणे करे (जेणजाइणमिज्जइ के०) जे करे थके फरी संसारमां नउपजे अने उपजवाने अनावे फरी मरण पण न पामे ॥ ७ ॥ (णमिज्जइमहावीरें के०) ए महा सुनट तुल्य श्रीमहावीर ससार चक्रमा मरण पामे नही (जस्सनछिपुरेकडं के०) जेने पूर्वना करेला कर्म रह्या नथी तो ते नवाकर्म बांधवानी वांछा नकरे ए कारण जाणवो जे कारण माटे आ ससारमाहे स्त्रीनो संग प्रधानछे परतु तेने स्त्री पराजयी नशके. द्दष्टांत कहेछे (वाउव्वजालमच्चेति के०) जेम वायु अग्नीनी ज्वालामां प्रवेश करीने तेने अतिक्रमि जाय परतु वायु पोते प्रज्वले नही (पियालोगंसिइछिउं के०) तेम लोकने विषे स्त्री प्रियछे ते स्त्री अग्नि ज्वाला समानछे परतु वायु सरखा साधुने जीपी नशके तेमाटे महावीर सुनटने कर्मनो बंध नथी ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–कामपि क्रियामकुर्वतोयोगप्रत्ययानावान्नव कर्म नास्ति न नवति । एतद्गुणोपेतश्च नमन नाम कर्मनिर्जरण कर्मच जानाति ज्ञात्वाच कर्मबंध समहावीर कर्म दारणक्षमस्तत्करोति येन कृतेन न पुनर्जायते जन्मानावाच्च नम्रियते ॥ ७ ॥ महावीरस्त्यक्ताशेषकर्मा न म्रियते जन्ममरणे न प्राप्नोति यस्य नास्ति पुरस्कृतं कर्म वायुर्यथाग्निज्वालामत्येति अतिक्रामति न तया जीयते एव लोके प्रियावल्लनास्त्रियोडुरतिक्रमणीयास्ताअतिक्रामति न तानिर्जीयते। यडुक्तं। स्मितेन नावेन मदेन लज्जया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तपाश खलु बधन स्त्रिय ॥१॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य नेद सबधिनेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंडानारीनिरुत्सादितराजवंशाइत्यादि ॥ ८ ॥

॥ टीका–केषाचित्सत्यामपि कर्मक्षयानतरं मोक्षावाप्तौ तथापि स्वतीर्थनिकारदर्शनत पुनरपि ससारानिगमन नवतीदमाशंक्याह । (अकुव्वउ इत्यादि) तस्याऽशेषक्रिया रहितस्य योगप्रत्ययानावात्किमप्यकुर्वतोपि नव प्रत्यग्रं कर्म ज्ञानावरणीयादिक नास्ति ननवति कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा कर्मनावे च कुत ससारानिगमन कर्म कार्यत्वात्संसारस्य तस्य चोपरताशेप द्वंद्वस्य स्वपरकल्पनानावाद्रागद्वेपरहिततया स्व दर्शननिकारानिनिवेशोपि ननवत्येव । सचैतद्गुणोपेत कर्माष्टप्रकारमपि कारणतस्तद्विपाकतश्च जानाति नमन नाम कर्मनिर्जरण तच्च सम्यक् जानाति। यदिवा कर्म जानाति तन्नामास्य चोपलक्षणार्थत्वात्तन्नेदांश्च प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशरूपान्सम्यगवबुध्यते । संनावनाया वा नामशब्द । संनाव्यते चास्य नगवत कर्मपरिज्ञान विज्ञायच कर्मबधन तत्सचरणनिर्जरणोपाय चासौ महावीर कर्मदारणसहिष्णुस्तत्करोति येन कृतेनास्मि

समुद्र थकी तस्या (देवावाअनविसुतेकें०) अथवा सर्वथा कर्मना क्ष्यना अनावे देवत्व पणे वैमानिकमा जइ उपना एकावतारी प्रमुख थया ॥ २४ ॥ (अनविसुपुराधीराके०) पूर्वे अतीतकाले घणा चारित्रिया थया अने वर्त्तमान काले पणछे तथा (आगमिस्साविसुव्वताके०) आगमिक काले पण घणा सुव्रत संयमानुष्ठानी थशे ते केवा थशे तोके (डुन्निबोद्दस्समग्गस्सके०) डुर्निबोध एटले डुर्लन एवोजे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररुप मार्ग ते (अंतपाउकरातिन्नेकें०) परम उत्कृष्टो पामीने तेह्नि मार्गना प्रकाशक ठता संसार समुड्रने पूर्वे तस्या वर्त्तमाने तरेछे अने आगमिक काले तरशें तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५॥ एरीते पंदरमा यतिनामा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो

॥ दीपिका–अन्यजीवैर्यदनुपूर्वं कर्म आश्रित्य संयमात्संमुखीनूतोयन्मतमष्टन्नेदं तत् कर्म हित्वा मोक्षस्यानिमुखीनूत ॥ २३ ॥ सर्वसाधूना यन्मतमनिप्रेत तत्संयमस्थानं शल्यकर्तन कर्मछेदक । तत्संयमस्थान साधयित्वा बह्व ससार तीर्णामोक्ष प्राप्ता । अथवा देवाअनूवन् नवति नविष्यंतिच ॥ २४ ॥ पुरा पूर्वं बह्वोधीराअनूवन् अनागते काले सुव्रतानविष्यंति च वर्तमानकाले तथानूता संतिच। ये डुर्निबोधस्य डुष्प्रापस्य मार्गस्य दर्शनचारित्राख्यस्यांत परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव प्राडुष्करा स्वत सन्मार्गसेविनोऽन्येषा च प्राडुर्नावका सत संसार तीर्णास्तरति तरिष्यंति चेति ॥ २५ ॥ इति आदानीयाख्यं पचदशमध्ययन समाप्तं ॥

॥ टीका–किंच (नकुव्वतीत्यादि) महावीर कर्मदारणसहिष्णु सन्नानुपूर्व्येण मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषाययोगैर्यत्कृतं रजोऽपरजतुनिस्तदसौ न करोति न विधत्ते । यतस्तत्प्राक्तनोपात्तरजसैवोपादीयते सच तत्प्राक्तन कर्मावष्टभ्य सत्सयमात्संमुखीनूतस्तदनिमुखीनूतश्च यन्मतमष्टप्रकार तत्सर्वं हित्वा त्यक्त्वा मोक्षस्य सत्सयमस्य वा सम्मुखीनूतोऽसाविति ॥ २३ ॥ अन्यच्च (जम्मयमित्यादि) सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तदेतत्सयमस्थान । तद्विशिनष्टि। शल्यं पापानुष्ठानं तज्जनितं वा कर्म तत्कर्तयति छिनत्ति तच्छटयकर्तन तच्च सदनुष्ठान तद्युक्तविहारिण साधयित्वा सम्यगाराध्य बह्व ससारकातार तीर्णा । अपरे तु सर्वकर्मक्षयानावात् देवाअनूवन् ते चाप्तसम्यक्त्वा सच्चारित्रिणोवैमानिकत्वमवापु प्राप्नुवति प्राप्स्यतिचेति ॥ २४ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (अनविसुइत्यादि) पुरा पूर्वस्मिन्ननादिके काले बह्वोमहावीरा. कर्मविदारणसहिष्णव अनूवन् नूतास्तथा वर्तमाने च काले कर्मनूमौ तथानूतानवति तथागामिनि चानते काले तथानूता सत्सयमानुष्ठायिनोनविष्यति । किंनूतवत. कुर्वंति करिष्यंतिचेत्याह । यस्य डुर्निबोधस्याती

के०) ते पुरुषोने आदि एटले प्रथम मोक्षगामी जाणवा (तेजणाबंधणुम्मुक्का के०) तेपुरुषो स्त्रीना बंधन थकी मूकाणा थका (नावकंखंतिजीवियंके०) जीवित श ब्दे बीजो असंयमपणोकाइ पण वाछे नही कारणके परिग्रहादिकनु मूल कारण सर्व स्त्रीजछे ॥ ए ॥ (जिवितंपिठ्ठंकिच्चाके०) ते पुरुष असंयमने निषेधिने (अंतंपाव तिकम्मुणकें०) सर्व कर्मनो अंत करे (कम्मुणासंमुहीनूताके०) ते रुडा अनुष्ठाने करी मोक्षने सन्मुख थका (जेमग्गमणुसासईके०) जे श्रीवीतराग प्रणीत मार्गछे तेमार्गने लोकोना हितने अर्थे प्रकाशे अने पोते पण तेहिज समाचरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–ये नरा स्त्रियोनासेवते स्त्रीप्रसग त्यजति ते जनाआदि प्रधानोमोक्षो येषा ते आदिमोक्षा प्रधानजूतमोक्षपुरुषार्थसाधका स्यु । तथा ते जना कर्मबंधनो न्मुक्ताजीवित नावकांक्षति ॥ ए ॥ जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठत कृत्वा निराकृत्य कर्म णामत प्राप्नुवति मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य सन्मुखीजूताये मार्गम नुशासति अन्येन्योवदति स्वयच कुर्वति ॥ १० ॥

॥ टीका–अधुना स्त्रीप्रसगाश्रवनिरोधफलमाविर्नावयन्नाह । (इछिर्ठइत्यादि) येम हासत्वा कटुविपाकोयं स्त्रीप्रसगइत्येवमवधारणतया स्त्रिय सुगतिमार्गार्गला संसारवी थीजूता सर्वाविनयराजधान्य कपटजालशताकुलामहामोहनशक्तयोन सेवते नतत्प्रसग मनिलपति । तएवजूताजनाइतरजगातीता साधवआदौ प्रथम मोक्षोऽशेष द्वंद्वोपरमरू पोयेषांते आदिमोक्षा । हुरवधारणे । आदिमोक्षाएव तेऽवगतव्या । इदमुक्तं नवति । सर्वाऽविनयास्पदजूत स्त्रीप्रसगोयै परित्यक्तस्तएवादिमोक्षा प्रधानजूतमोक्षाख्यपुरुषा र्थोद्यता । आदिशब्दस्य प्रधानवाचित्वान्न केवलमुद्यतास्तेजना स्त्रीपाशबधनोन्मुक्त तयाऽशेषकर्मबंधनोन्मुक्ता सतोनावकांक्षति नाजिलषति असयमजीवितमपरमपि परि ग्रहादिक नाजिलपते । यदिवा परित्यक्तविषयेच्छा सदनुष्ठानपरायणामोक्षैकताना जीवित दीर्घकालजीवितं नाजिकांक्षतीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जीवियमित्यादि) जीवितमसयमजी वितं पृष्ठत कृत्वाऽनादृत्य प्राणधारणलक्षण वा जीवितमनादृत्य सदनुष्ठानपरायणा कर्म णा ज्ञानावरणादीनामत पर्यवसान प्राप्नुवति । अथवा कर्मणा सदनुष्ठानेन जीवितनिरपे क्षा संसारोदन्वतोऽतं नवद्वंद्वोपरमरूप मोक्षाख्यमाप्नुवति । सर्वेडःखविमोक्षलक्षण मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य संमुखीजूताघातिचतुष्टयक्षयया त्पन्नदिव्यज्ञाना. शाश्वतपदस्याजिमुखीजूता· । कएवजूता इत्याह । ये विपच्यमानतीर्थक न्नामकर्माण समासादितदिव्यज्ञानामोक्षं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमनुशासंति स त्वहिताय प्राणिना प्रतिपादयंति स्वतश्चानुतिष्ठंतीति ॥ १० ॥

योग्योव्युत्सृष्टकायोनिष्प्रतिकर्मशरीर समाहनइति श्रमणइति भिक्षुरिति निर्ग्रंथइति भगवतोक्ते शिष्य. प्रत्याह। हेभगवन् योऽसौ पूर्वोक्तपंचदशाध्ययनार्थानुष्ठायी साधुर्माहनादिशब्दवाच्यइति तत्कथं स्यादिति नोऽस्माकं ब्रूहि हेमहामुने ॥ १ ॥

॥ टीका—उक्तं पंचदशमध्ययनं सांप्रतं षोडशमारभ्यते। अस्य चायमभिसंबंध । ईहानंतरोक्तेषु पचदशस्वप्यध्ययनेषु येऽर्थाअभिहिताविधिप्रतिषेधद्वारेण तान् तथैवाचरन् साधुर्भवतीत्येतदनेनाध्ययनेनोपदिश्यते। ते चामी अर्था । तद्यथा। प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयपरिज्ञानेन सम्यक्त्वगुणावस्थितोभवति। द्वितीयाध्ययने ज्ञानादिभि कर्मविदारणहेतुभिरष्टप्रकारक कर्म विदारयन् साधुर्भवति। तथा तृतीयाध्ययने यथानुकूलं प्रतिकूलोपसर्गान् सहमान साधुर्भवति। चतुर्थे तु स्त्रीपरीषहस्य दुर्जयत्वात्त्यजयकारीति। पंचमेतु नरकवेदनाभ्य समुद्विजमानस्तत्प्रायोग्यकर्मणोविरत सन्साधुत्वमवाप्नुयात्। षष्ठेतु यथा श्रीवीरवर्धमानस्वामिना कर्मक्षयोद्यतेन चतुर्ज्ञानिनापि संयम प्रति प्रयत्न कृतस्तथान्येनापि छद्मस्थेन विधेयमिति। सप्तमे तु कुशीलदोषान् ज्ञात्वा तत्परिहारोद्यतेन सुशीलावस्थितेन भाव्य। अष्टमेतु बालवीर्यपरिहारेण पंडितवीर्योद्यतेन सदा मोक्षाभिलाषिणा भाव्यं। नवमे तु यथोक्त क्षात्यादिक धर्ममनुचरन् ससारान्मुच्यतइति। दशमे तु सपूर्णसमाधियुक्त सुगतिभाग्भवत्येकादशेतु सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्य सन्मार्गं प्रतिपन्नोऽशेषक्लेशप्रहाण विधत्ते। द्वादशेतु तीर्थिकदर्शनानि सम्यग्गुणदोषविचारणतोविजानन्न तेषु श्रद्धान विधत्ते। त्रयोदशे तु शिष्यगुणदोषविज्ञ सद्गुणेषु वर्तमान कल्याणभाग्भवति। चतुर्दशे तु प्रशस्तभावग्रंथितभावितात्मा विस्रोतसिकारहितोभवति। पचदशेतु यथावदायतचरित्रोभवति भिक्षुस्तदुपदिश्यतइति। तदेवमनंतरोक्तेषु पंचदशस्वध्ययनेषु येऽर्था प्रतिपादितास्तेत्र सक्षेपत प्रतिपाद्यतइत्यनेन सबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि भवति। तत्रोपक्रमातर्गतोर्थाधिकारोऽनतरमेव संबधप्रतिपादनेनैवाभिहित। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे गाथाषोडशकमिति नाम। तत्र गाथानिक्षेपार्थं निर्युक्तिरुदाह। "णाम ठवणा गाहा, दव्वगाहा य भावगाहा य॥ पोछगपत्तगलिहिया, सो होइ दव्वगाहाउ ॥ १३ए ॥ (णामठवणेत्यादि) तत्र गाथायानामादिकश्चतुर्धा निक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुसत्वादनादृत्य द्रव्यगाथामाह। तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यगाथा पत्रकपुस्तकादिन्यस्ता । तद्यथा। जयतिणवणलिणकुवलयवियसियसरावत्तपत्तलदलछो ॥ वीरोगयदमयगल सुललियगयविक्कमो भगव ॥ १ ॥ अथ चेयमेव गाथा षोडशाध्ययनरूपा पत्रकपुस्तकन्यस्ता द्रव्यगाथेति। भावगाथामधिकृत्याह। " होंति पुण भावगाहा, सागारुवउगभावणिप्पन्ना ॥ महुराभिहाणजु

ज्येत । किंनूत छिन्नानि स्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोता । अनाविलोऽक लुष । एवनूतोऽनाविल सन् सदा दांत स्यात् । एवविधश्च कर्मविवररूपं नावसंधिम नीदृशमनन्यसदृशं प्राप्त स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—अनुशासनप्रकारमधिकृत्याह । (अणुशासणमित्यादि) अनुशास्यते सन्मार्गे ऽवतार्यते सदसद्विवेकत. प्राणिनोयेन तदनुशासन धर्मदेशनया सन्मार्गावतारण तत्पृथ क् पृथक् नव्यादिषु प्राणिषु क्ष्वित्युदकवत्स्वाशयवशादनेकधा नवति । यद्यपि च अनव्ये तदनुशासन न सम्यक् परिणमति तथापि सर्वोपायज्ञस्यापि नसर्वज्ञस्य दोष । तेषामेव स्वनावपरिणतिरियं यया तद्वाक्यममृतनूतमेकांतपथ्यं समस्तद्वंद्वोपघातकारि न य थावत् परिणमति । तथा चोक्त । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबांधवतयाप्य खिलान्यनूवन् । तन्नानुत खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाता ॥१॥ किंनूतोसावनुशासकइत्याह । वसु द्रव्य सच मोक्षप्रति-प्रवृत्तस्य संयमस्तद्विद्यते यस्यासौ वसुमान् पूजनं देवादिकृतमशोकादिकमास्वादयत्युपनुंकइति पूजनास्वादक । ननु चाधा कर्मणोदेवादिकृतस्य समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ सत्संयमवानित्याशक्याह । न वि द्यते आशय पूजानिप्रायोयस्यासावनाशय । द्रव्यतोविद्यमानेपि समवसरणादिके नाव तोनास्वादकोसौ तत्रतगार्ध्यानावात् सत्यप्युपनोगे । यत सत्संयमवानेवासावेकांते स यमपरायणत्वात्कुतोयतइंद्रियनोइंद्रियान्या दांत । एतद्गुणोपि कथमित्याह । दृढ संयमे । आरतमुपरतमपगतं मैथुन यस्यसआरतमैथुनोऽपगतेछामदनकाम । इछामद नकामानावाच्च संयमे दृढोसौ नवति आयतचारित्रत्वाच्च दांतोसौ नवति । इंद्रियनोइंद्रि यदमाच्च प्रयत प्रयत्नवत्वाच्च देवादिपूजनास्वादकस्तदनास्वादनाच्च सत्यपि द्रव्यत परि नोगे सत्संयमवानेवासाविति ॥११॥ अथकिमित्यसावुपरतमैथुनइत्याशक्याह । (णीवारे इत्यादि) नीवार सूकरादीना पशूना वध्यस्थानप्रवेशननूतोनक्ष्यविशेषस्तत्कल्पमेतन्मैथु न । यथाहि असौ पशुर्नीवारेण प्रलोन्य वध्यस्थानमतिनीयमानोनानाप्रकारावेदना प्राप्यते एवमसावप्यसुमान् नीवारकल्पेनानेन स्त्रीप्रसगेन वशीकृतोबहुप्रकारायातना प्राप्नोत्यतोनीवारप्रायमेतन्मैथुनमवगम्य न तस्मिन् ज्ञाततत्त्वोलीयेत न स्त्रीप्रसग कु र्यात् । किंनूत सन्नित्याह । छिन्नान्यपनीतानि स्रोतासि ससारावतरणद्वाराणि यथावि षयमिंद्रियवर्तनानि प्राणातिपातादीनि वा आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोता । यथाऽ नाविलोकलुषोरागद्वेषासंपृक्ततया मलरहितोनाकुलोवा विषयाप्रवृत्त स्वछचेताएवनूत श्चानाकुलोवा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियान्या दांतोनवति ईदृग्विधश्च कर्म विवरलक्ष् णं नावसंधिमनीदृशमनन्यतुल्य प्राप्तोनवतीति ॥ १२ ॥

त्वाद्दा जात्यसुवर्णवत् शुद्धद्रव्यभूतस्तथा व्युत्सृष्टोनिष्प्रतिकर्मशरीरतया काय शरीर येन सनवति व्युत्सृष्टकाय । तदेवभूत सन् पूर्वोक्ताध्ययनार्थेषु वर्तमान प्राणिन. स्था वरजंगमसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नान् (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनोनव ब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तोब्रह्मचर्यधारणाद्दा ब्राह्मणइत्यनंतरोक्तगुणकदंबकयुक्त साधुमर्हितोब्राह्म णइति वा वाच्य । तथा श्राम्यति तपसा खिद्यतइति कृत्वा श्रमणोवाच्योऽथवा सम तुल्यं मित्रादिषु मनोंत करण यस्य ससमना. सर्वत्रवासी चदनकल्पइत्यर्थः । तथाचोक्त । ण त्थियसिकोइवेसो, इत्यादि । तदेव पूर्वोक्तगुणकलित श्रमण सममनावा इत्येव वाच्य. सा धुरिति । तथा भिक्षणशीलोभिक्षुर्भिनत्ति वा ऽष्टप्रकार कर्मेति भिक्षु ससाधुर्दांतादिगुणोपे तोभिक्षुरिति । तथा सबाह्याभ्यंतरग्रंथाभावान्निर्ग्रंथ । तदेवमनंतरोक्तपंचदशाध्ययनोक्ता र्थाऽनुष्ठायी दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायश्च सनिर्ग्रंथइति वाच्यइति । एव भगवतोक्ते सति प्र त्याह तच्छिष्योभगवन् भदत भयात भवात इति वा योऽसौ दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकाय सन् ब्राह्मण श्रमणोभिक्षुर्निर्ग्रंथइति वाच्य । तदेतत्कथ यद्भगवतोक्त ब्राह्मणादिशब्दवा च्यत्व साधोरित्येतन्नोऽस्माक ब्रूहि आवेदय महामुने यथावस्थितत्रिकालवेदिन् ॥ १ ॥

इतिविरए सव्वपावकम्मेहिं, पिज्जदोसकलह, अप्नक्खाण, पेसु न्न, परपरिवाय, अरतिरति, मायामोस, मिछादंसणसल्ल, विरए, समिए सहिए, सयाजए, णो कुज्जे, णो माणी, माहणेत्ति, वच्चे॥२॥

अर्थ–एम शिष्ये पूछे थके हवे भगवत ब्राह्मणादिक चार नामनो यथाक्रमे भेद सहित अर्थ कहेछे (इतिविरएसव्वपावकम्मेहिंके०) जेणे प्रकारे सर्व पाप कर्मारंभक्रिया थकी निवर्त्या (पिज्जके०) प्रेम ते राग अने (दोसके०) द्वेष ते अप्रीति (कलहके०) कुवचननुं बोलवु (अप्नक्खाणके०) अभ्याख्यान एटले अछता दोषनु प्रकाशवु (पेसुन्नके०) पर ना गुणनु अण सहेवु अने पारका दोषने प्रकाशवु (परपरिवायके०) पारका दोष बी जा आगल प्रकाशवा (अरतिके०) सयमने विषे अरति (रतिके०) असयम विषया दिकने विषे रति (मायामोसके०) परवचना मृषा अलिक भाषानुं बोलवु (मिछादं सणसल्लके०) मिथ्यादर्शन शल्य एटले अतत्वने विषे तत्वनी बुद्धि तेनेज शल्य कहिए ए सर्व थकी (विरएके०) विरत एटले निवर्त्याछे वली (समिएसहिएके०) पाच समिति ए समिता थका ज्ञान दर्शन अने चारित्र सहित प्रवर्ते (सयाजएके०) सदा सयमने विषे प्रयत्न करे एटले सावधान थको रहे एवो छतो (णोकुज्जेके०) कोइना उपर क्रोध नकरे तथा (णोमाणीके०) अभिमान रहित होय उपलक्षणथकी माया तथा लोभरहित एवा गुणे सहितजे होय ते (माहणेत्तिवच्चेके०)माहण एटले ब्राह्मण जाणवा ॥ २ ॥

अंताणि धीरा सेवंति, तेण अंतकरा इह ॥ इह माणुसए ठाणे,
धम्ममाराहिउ णरा ॥ १५ ॥ णिट्ठियठा व देवावा, उत्तराए इ
मं सुय ॥ सुत्तं च मेयमेगेसिं, अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥

अर्थ- (अताणिधीरासेवतिके०) तेम धीर पुरुष पण अंत सेवे एटले विषयनो अत करे तथा अंत प्रात आहार सेवे (तेणअंतकराइहके०) ते कारणे आ ससारने विषे अंतना करनार जाणवा (इहमाणुसएठाणेके०) आमनुष्य लोक रूप स्थानकने पाम्या थका (धम्ममाराहिउणराके०) एवा मनुष्य धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्ररूप तेने आराधीने मुक्ति गामी थाय ॥ १५ ॥ (णिट्ठियठावदेवावाके०) एवा संयमना पालनार पुरुषो निष्ठितार्थ एटले सिद्धिने पामे अथवा प्रचुर कर्मने सद्भावे देवत्व पणाने विषे सौधर्मादिक विमाने उपजे (उत्तराएइमसुयंके) ए वचन उत्तरा एटले लोकोत्तर प्रवचने में सांभळ्युंछे एरीते श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. (सुत्तचमेयमेगेसिंके०) मे श्रीतीर्थंकरादिक समीपे सांभळ्युंछे जे (अमणुस्सेसुणेतहाके०) ए मोक्षनी प्राप्ति ते मनुष्यनी गति टालीने अन्यत्र नथी ते कारण माटे मनुष्य पणे सयम पालवाने विषे प्रमाद नकरवो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-अतान् अतप्रांताहारान् सेवते धीरास्तेन संसारस्यांतकरास्ते इहार्यक्षेत्रे स्यु । यतइह मनुष्यलोके स्थाने नराधर्ममाराध्य निष्ठितार्था स्यु ॥ १५ ॥ केचिन्निष्ठितार्था कृतकृत्या स्यु केचिद्देवा । एतल्लोकोत्तरीये प्रवचने श्रुतं मयेति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । एतच्च मया तीर्थंकरांते श्रुतं । गणधर स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । अमनुष्येषु मनुष्यवर्जितेषु नतथा नमोक्षावाप्ति स्यादित्यर्थ ॥ १६ ॥

॥ टीका-अमुमेवार्थमाविर्भावयन्नाह । (अताणीत्यादि) अतान् पर्यंतान् विषयकषायतृष्मायास्तत्परिकर्मणार्थमुद्यानादीनामाहारस्य वांतप्रांतादीनि धीरामहासत्वा विषयसुखनिस्पृहा सेवते ऽभ्यस्यंति तेन चांतप्रांताभ्यसनेनांतकरा संसारस्य तत्कारणस्य वा कर्मण क्षयकारिणोभवति । इहेति मनुष्यलोके आर्यक्षेत्रे न केवलं तएव तीर्थंकरादयोऽन्येऽपीह मानुष्यलोके स्थाने प्राप्ता' सम्यग्दर्शनभावज्ञानचारित्रात्मकं धर्ममाराध्य नरामनुष्याः कर्मभूमिगर्भव्युत्क्रांतिजसंख्येयवर्षायुष संत सदनुष्ठानसामग्रीमवाप्य निष्ठितार्थाउपरतसर्वद्वंद्वाभवति ॥ १५ ॥ इदमेवाह । (णिट्ठियट्ठाइत्यादि) निष्ठितार्था कृतकृत्याभवति केचन प्रचुरकर्मतया सत्यामपि सम्यक्त्वादिकाया सामग्र्या न तद्भवएव मोक्षमास्कदंति । अपितु सौधर्माद्या पचोत्तरविमानावसानादेवाभवतीति । एतल्लोको

अर्थ-(एवविसमणे के०) जे माहणना लक्षण कह्या ते अंहीं सर्व जाणवा वली श्रमणना विशेष कहेछे जे (अणिस्सिए के०) अनाश्रित अप्रतिबंध विहारी तथा (अणियाणे के०) नियाणा रहित (आदाणंच के०) कषाय थकी रहित (अतिवायं च के०) अतिपातंच एटले जीवहिंसा तथा (मुसावायंचके०) मृषावाद (बहिद्धंचके०) मैथुन परिग्रह ए सर्वेने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तर गुण कहेछे (कोहंचमाणचमायंचलोहंच के०) क्रोध मान, माया तथा लोज अने (पिज्जच के०) प्रेम शब्दे राग (दोसंच के०) द्वेष एने पण सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने परिहरे (इच्चेव के०) एरीते (जउजउ के०) जे जे (आदाणाउ के०) कर्मनो बंध (अप्पणोपद्देसेहेऊ के०) जे थकी पोताना आत्माने प्रदोष हेतु एटले अ वगुणना कारण देखे (तउतउआदाणतो के०) ते ते सावद्यानुष्ठान थकी चारित्रिउ (पुव्वपडिविरते के०) पूर्वेज एटले आगल थकीज आत्म हित वाछतो थको विरति करे (पाणाइवायाए के०) प्राणातिपात नकरे एवो छतो (दंते के०) दात एटले इंद्रि यनो दमनार (दविए के०) द्रविक एटले मुक्तिगमन योग्य (वोसठ्ठकाए के०) निष्प्र तिकर्म शरीरवालो एटले शरीरनी शुश्रूषाये रहित (समणेत्तिवच्चे के०) एवा गुणे स हित विशिष्ट श्रमण कहेवो ॥ ३ ॥

॥ दिपीका-अत्रापि पूर्वोक्तगुणसमूहे वर्तमान श्रमणोपि वाच्य । एतद्गुणयुक्तेना पि नाव्यमित्याह । अनिश्रितोऽप्रतिबद्धशरीरादौ अनिदानोनिराकांक्ष । आदानं कषाय. परिग्रहोवा अतिपातोहिंसा मृषावाद बहिद्ध मैथुन । उक्तामूलगुणा । उत्तरगुणानाह । क्रोधं मानं माया लोज च प्रेम द्वेष च इत्यादिक सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एव यतो यत. कर्मोपादानादपाय पश्यति प्रद्वेषहेतूश्च ततस्ततोहिंसादिकादानात्पूर्वमेव प्रतिविरतो जवेत् विरति कुर्यादित्यर्थ । एवनूतोदात शुद्धोऽव्यनूतोव्युत्सृष्टकाय श्रमणोवाच्य ॥३॥

॥ टीका-सांप्रतं श्रमणशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमुद्भावयन्नाह । अत्राप्यनतरोक्ते विरत्या दिके गुणसमूहे वर्तमान श्रमणोपि वाच्य । एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह । निश्रये नाधिस्येन चाश्रितोनिश्रित ननिश्रितोऽनिश्रित क्वचिच्छरीरादावप्यप्रतिबद्धस्तथा न वि द्यते निदानमस्येत्यनिदानोनिराकांक्षोऽशेषकर्मक्षयार्थी संयमानुष्ठाने प्रवर्तेत तथा दीय ते स्वीक्रियते ऽष्टप्रकार कर्म येन तदादानं कषाय परिग्रह सावद्यानुष्ठानं वा तथाऽ तिपातनमतिपात प्राणातिपातइत्यर्थ । त च प्राणातिपातं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्या नपरिज्ञया परिहरेदेवमन्यत्रापि क्रिया योजनीया । तथा मृषावादोऽलीकवादस्तं च तथा बहिद्धति मैथुनपरिग्रहौ तौच सम्यक् परिज्ञाय परिहरेत् । उक्तामूलगुणा । उत्तरगुणान

॥ टीका–इदमेव स्वनामग्राहमाह् । (अंतकरेतीत्यादि) नह्यमनुष्याअशेषडुःखानामं तं कुर्वंति तथाविधसामग्र्याभावाद्यथैकेषां वादिनामाख्यातं । तद्यथा । देवाएवोत्तरोत्त र स्थानमास्कंदतोऽशेषक्लेशप्रहाणं कुर्वंति न तथेहार्हते प्रवचने इति । इदमन्यत् पुन रेकेषां गणधरादीनां स्वशिष्याणां वा गणधरादिनिराख्यातं । तद्यथा । युगसमिलादिन्या यावाप्त कथचित्कर्मविवरात् योयं शरीरसमुच्छ्रय सोऽकृतधर्मोपायैरप्यसुमद्भिर्महासमुद्र प्रभ्रष्टरत्नवत्पुनर्डुर्लभोभवति । तथाचोक्तं । नुनु पुनरिदमतिडुर्लभ,मगाधसंसारजलधिविभ्र ष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥१७॥ अपिच (इउविद्धंसेइत्या दि) इतोऽमुष्मात् मानुष्यभवात्सद्धर्मतोवा विध्वसनस्याकृतपुण्यस्य पुनरस्मिन् ससारे पर्यटतोबोधिः सम्यक्दर्शनावाप्ति सुडुर्लभोत्कृष्टत अपार्धपुद्गलपरावर्तकालेन यतोभवति तथा डुर्लभा डुरापा तथाभूता सम्यक्दर्शनप्राप्तियोग्यर्चा लेश्यात परिणतिरकृतधर्माणा मिति । यदि वाऽर्चा मनुष्यशरीर तदप्यकृतधर्मबीजानामार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिसकलेंद्रिय सामग्र्यादिरूपं डुर्लभं भवति । जतूना धर्मरूपमर्थ व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्य र्थ । तेषा तथाभूतार्चा सुडुर्लभा भवतीति ॥ १८ ॥

जे धम्म सुद्धमक्खंति, पडिपुन्नमणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जं
ठाण, तस्स जम्मकहा कउ ॥ १९॥ कउ कयाइ मेधावी, उप्प
ज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना, चक्खू लोगस्सणुत्तरा ॥२०॥

अर्थ–(जेधम्मंसुद्धमक्खंतिके०) जे श्रीवीतरागादिक महापुरुषो शुद्ध निर्मल ध र्म कहे अने पोते पण तेजरीते समाचरे (पडिपुन्नके०) प्रतिपूर्ण (अणेलिसंके०) अनीदृश एटले सम्यक् चारित्रिउ (अणेलिसस्सजंठाणके०) जेनो ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मोक्ष स्थानकछे परतु बीजो स्थानक नथी (तस्सजम्मकहाकउके०) ते ने जन्मकथा क्याथी होय एटले कर्मने क्षये जन्म मरणनो अभाव होय ॥ १९ ॥ (कउकयाइमेधावीके०) कदाचित् मेधावी एटले सम्यक् ज्ञानवत क्यायकी आवीने (उप्पज्जतिके०) उपजे खरा परतु ते केवा होय तोके (तहागयाके०) तेमज कर्म खपावीने गया (तहागयाअप्पडिन्नाके०) जे कर्मखपावीने गया जेने निदान प्र तिज्ञा नही ते अप्रतिज्ञ निराशस एवा होय तेने ससार मांहे उत्पत्ति अने मरण नथी जे कारणे तथागत श्रीतीर्थंकरादिक निदान रहित निराशंस (चक्खूलोगस्सणुत्तराके०) तथा लोकने अनुत्तर सर्वोत्तम प्रधान ज्ञानथकी चक्षुभूत जाणवा ॥ २० ॥

॥ दीपिका–ये सर्वज्ञा शुद्धं धर्ममाख्यांति परिपूर्णमनन्यसदृशं । तदेवमनन्यसदृश

मार्गे आत्मा यस्य सुस्थितात्मा संख्याय ज्ञात्वा संसारासारतां परदत्तभोजी एवंगुण युतोभिक्षुर्वाच्य ॥ ४ ॥

॥ टीका- सांप्रत भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमधिकृत्याह । अत्रापीति । ये ते पूर्वमु क्ता: पापकर्मविरत्यादयोमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोऽत्रापि भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते तए वावगंतव्या । अमी चान्ये। तद्यथा । न उन्नतोऽनुन्नत: शरीरेणोच्छ्रित भावोन्नतस्त्वभि मानग्रहग्रस्तस्तत्प्रतिषेधात्तपोनिर्जरांमदमपि न विधत्ते । विनीतात्मतया प्रश्रयवान् यतएतदेवाह । विनयालंकृतोगुर्वादावादेशदानोद्यतोऽन्यदा वात्मानं नामयतीति नामक सदा गुर्वादौ प्रह्वोभवति । विनयेन चाष्टप्रकारं कर्म नामयति वैयावृत्त्योद्य तोऽशेषमप्यपनयतीत्यर्थ । तथा दांतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां तथा शुद्धात्मा शुद्धद्रव्यभू तोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायश्च परित्यक्तदेहश्च। यत्करोति तद्दर्शयति । सम्यक् विधूया पनीय विरूपरूपान् नानारूपाननुकूलप्रतिकूलानुच्चावचान् द्वाविंशतिपरीषहान् तथा दिव्यादिकानुपसर्गांश्चेति । तद्विधूननं तु यत्तेषां सम्यक् सहनं तैरपराजितता परीषहोप सर्गांश्च विधूयाध्यात्मयोगेन सुप्रणिहितांत करणतया धर्मध्यानेन शुद्धमवदातमादान चरित्रं यस्य सशुद्धादानोभवति । तथा सम्यगुत्थानेन सच्चारित्रोद्यमेनोत्थितस्तथा स्थि तोमोक्षाध्वनि व्यवस्थित परीषहोपसर्गैरप्यधृष्यआत्मा यस्य सस्थितात्मा तथा सं ख्याय परिज्ञायाऽसारतां संसारातस्य दुष्प्रापतां कर्मभूमेर्बोधे सुदुर्लभत्वं चावाप्य च सक लां संसारोत्तरणसामग्री सत्संयमकरणोद्यत परैर्गृहस्थैरात्मार्थं निर्वर्तितमाहारजातं तैर्दत्तं भोक्तु शीलमस्य परदत्तभोजी सएव गुणकलितोभिक्षुरिति वाच्य ॥ ४ ॥

एत्थवि णिग्गंथे, एगे, एगविऊ बुद्धे, संछिन्नसोए सुसंजते सु समिते, सुसामाइए, आयवायपत्ते, विऊ दुहओवि सोयपलि छिन्ने, णोपूयणसक्कारलाभट्ठी, धम्मट्ठी धम्मविऊ णियोगपडि वन्ने, समियंचरे, दंते दविए, वोसट्ठकाए निग्गथेत्ति वच्चे,॥ ५ ॥

अर्थ-(एत्थविणिग्गंथेके०) हवे निर्ग्रंथनो विशेष कहेछे अहींयां पण पूर्वला गुण सर्व लेवा वलीजे विशेष गुणछे ते कहेछे (एगेके०) एकलो राग द्वेष रहित तथा (ए गविऊबुद्धेके०) पोताने एकलोज जाणे एटले संसारमां महारो कोइ संबधी नथी ए वो बुद्ध एटले तत्वनो जाण (संछिन्नसोएके०) सम्यक् प्रकारे जेणे आश्रवने छेद्योछे तथा (सुसंजतेके०) सुसंयत एटले काछवानी पेरें गुप्तेंद्रिय (सुसमितेके०) रुडी स मितिए करी समितो (सुसामाइएके०) सुसामायिकवंत एटले जेने शत्रु मित्र समानछे

॥ दीपिका–अनुत्तर स्थानं संयमरूपं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं कथितं यत्संयम स्थानं कृत्वाऽनुपाल्यैके निर्वृतामोक्षं गतानिष्ठां जवपर्यंतं प्राप्नुवंति पंडिता ॥ २१ ॥ पंडित सयमवीर्यं लब्ध्वा पूर्वकृतं कर्म धुनीयादपनयेत् । वीर्यं किंभूतं निर्घाताय निर्जरणाय प्रवर्तक । नव च कर्म न कुर्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (अणुत्तरेयइत्यादि) न विद्यते उत्तर प्रधान यस्मादनुत्तरं तच्च तत्संयमाख्यं काश्यपेन काश्यपगोत्रेण श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदितमाख्यातं । तदस्य चानुत्तरत्वमाविर्नावयन्नाह । यदनुत्तर संयमस्थान एके महासत्वा सदनुष्ठायिन कृत्वाऽनुपाल्य निर्वृतानिर्वाणमनुप्राप्ता. । निर्वृताश्च सत ससारचक्रवालस्य निष्ठा पर्यवसानं पडिता पापाङ्डीना प्राप्नुवंति । तदेव नूतं संयमस्थान काश्यपेन प्रवेदित सदनुष्ठायिन संत सिद्धिं प्राप्नुवंतीति तात्पर्यार्थ ॥२१॥ अपिच (पडिएइत्यादि) पंडित सदसद्विवेकज्ञोवीर्यं कर्मोद्दलनसमर्थ सत्संयमवीर्यं तपोवीर्यंवा लब्ध्वाऽवाप्य । तदेव वीर्यं विशिनष्टि । नि शेषकर्मणोनिर्घातायनिर्जरणाय प्रवर्तक पडितवीर्यं तच्च बहुजवशतडुर्लनं कथंचित्कर्मविवरादवाप्य धुनीयादपनयेत् । पूर्वजवेष्वनेकेषु यत्कृतमुपात्त कर्माष्टप्रकार तत्पंडितवीर्येण धुनीयात् नव चानिनव चाश्रवनिरोधान्नकरोत्यसाविति ॥ २२ ॥

ण कुव्वती महावीरे, अणुपुव्वकडं रय ॥ रयसा संमुहीनूता, कम्म
हेच्चाण जं मय ॥ ९३॥ ज मयं सव्वसाहूण, तं मयं सल्लगत्तणं॥
साहइत्ताण तं तिन्ना, देवावा अनविसु ते ॥ ९४ ॥ अनविसु
पुरा धीरा, आगमिस्सावि सुव्वता ॥ डन्निबोहस्स मग्गस्स, अं
तं पाउकरातिन्नेतिबेमि ॥९५॥ इतिपनरसमंजमइयंनामश्रयणं सम्मत्तं॥

अर्थ–(णकुव्वतीमहावीरेके०) श्रीमहावीर उत्तम साधु ते नकरे शु नकरे तोके (अणुपुव्वकडंरयंके०) आनुपूर्वी मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अनुक्रमे कीधुं जे पापरूप रज ते नकरे (रयसासंमुहीनूताके०) पापरूप रजेकरी समुहीनूत एटले एकठा कीधा जे अष्टप्रकारना कर्म (कम्महेच्चाणजमयंके०) ते कर्मने हिला एटले हणीने सत्य संयम पालीने मोक्षने संमुख थाय ॥ २३ ॥ (जमयंसव्वसाहूणके०) जे संयम रूप स्थानक ते सर्व साधु चारित्रियानो मनो वांछित स्थानक जाणवो (तंमयंसल्लगत्तणके०) वलीते संयमानुष्ठान केहेवो तोके शल्यकर्तन एटले शल्यनो छेदनार (साहइत्ताणतंतिन्नाके०) एवा सयमने सम्यक्क प्रकारे आराधीने घणा प्राणी सर्वथा कर्मने अनावे संसार

यिकं समशत्रुमित्रभावोयस्य ससुसामायिक. । तथात्मनउपयोगलक्षणस्य जीवस्यासख्येयप्रदेशात्मकस्य सकोचविकाशभाजः स्वकृतफलभुज प्रत्येकसाधारणतया व्यवस्थितस्य द्रव्यपर्यायतया नित्यानित्याद्यनंतधर्मात्मकस्य वा वादआत्मवादस्तं प्राप्तआत्मवादप्राप्त सम्यग्यथावस्थितात्मस्वतत्त्ववेदीत्यर्थः । तथा विद्वानवगतसर्वपदार्थस्वभावोन व्यत्ययेन पदार्थानवगच्छति । यतोयत् कैश्चिदभिधीयते तद्यथैकएवात्मा सर्वस्वभावतया विश्वव्यापी श्यामाकतंडुलमात्रोंऽगुष्ठपर्वपरिमाणोवेत्यादिकोसद्भूताभ्युपगम परिहृतोभवति । तथाविधात्मसद्भावप्रतिपादकस्य प्रमाणस्याभावादित्यभिप्राय । तथा छिन्नापीति द्रव्यतोभावतश्च । तत्र द्रव्यस्रोतांसि यथा स्वविषयेष्विंद्रियप्रवृत्तय । भावस्रोतांसि तु शब्दादिष्वेवानुकूलप्रतिकूलेषु रागद्वेषोद्भवस्ताभ्युभयरूपाण्यपि स्रोतांसि संवृतेंद्रियतया रागद्वेषाभावाच्च परिछिन्नानि स्रोतांसि येन परिछिन्नस्रोतास्तथानपूजासत्कारलाभार्थी किंतु निर्जरापेक्षी सर्वास्तपश्चरणादिका क्रियाविदधाति । एतदेव दर्शयति । धर्म श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थ सएवार्थोधर्मार्थं सविद्यते यस्यासौ धर्मार्थीति । किमिति । इदमुक्तं भवति । नपूजार्थं क्रियासु प्रवर्तते अपितु धर्मार्थीति । किमिति । यतो धर्मं यथावत्तत्फलानि च स्वर्गावाप्तिलक्षणानि सम्यक् वेत्ति धर्मं च सम्यक् ज्ञानत । यत्करोति तद्दर्शयति । नियोगो मोक्षमार्ग सत्संयमोवा तं सर्वात्मना भावत (प्रतिपन्ननियोगपडिवन्नोत्ति) तथाविधश्च यत्कुर्यात् तदाह । (समियंति) समता समभावरूपा वा शीतचंदनकल्पा चरेत् सततमनुतिष्ठेत् । किंभूत सन्नाह । दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायश्चैतद्गुणसमन्वित. सन् यत्पूर्वोक्तमाहनश्रमणभिक्षुशब्दाना प्रवृत्तिनिमित्त तत्समन्वितश्च निग्रथइति वाच्य । तेपि माहनादय शब्दानिग्रथशब्दप्रवृत्तिनिमित्ताश्चविनाभाविनोभवति । सर्वेप्येते भिन्नव्यंजनाअपि कथंचिदेकार्थाइति ॥ ५ ॥

से एवमेव जमह जाणहं भयतारो त्तिबेमि ॥ ६ ॥ इतिखोडस
म गाहानामज्झयण सम्मत ॥ पढमो सुअखंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

अर्थ–हवे श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रभृति साधु प्रत्ये कहेछे के (सेएवमेवजाणहंजमह के०) तमे एम जाणोके जे मे कह्यो ते निश्चे करी सत्य छे एम जाणो कारणके हुं सर्वज्ञनी आज्ञाये कहुंछु ते सर्वज्ञ भगवत तीर्थंकर देव परोपकारी केवाछे तोके (भयतारो के०) महाभय थकी राखनारछे माटे तेमना कहेला वचन हु तमने कहुंछुं त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो एरीते श्रीसुधर्म स्वामिये जबूस्वामि प्रत्ये कह्यो ए गाहानामे सोलमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. इति श्रीसुयगडांग सूत्रना प्रथम श्रुतस्कधनो बालावबोध लेश्यार्थे समाप्त ॥

वडुप्रापकस्य ज्ञानदर्शनचारित्राख्यस्यांत परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव मार्गस्य प्राडु प्राका श्यं तत्करणशीला प्राडुष्करा स्वत सन्मार्गानुष्ठायिनोऽन्येषाच प्राडुर्नाविका सत स सारार्णव तीर्णास्तरति तरिष्यंतिचेति । गतोऽनुगम । सांप्रत नयास्तेच प्राग्वत् इष्ट व्या । इतिरध्ययनपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति आदानीयाख्य पंच दशाध्ययन समाप्तं ॥

हवे सोलमुं गाहा नामे अध्ययन प्रारंनिये ठेए पदरमा अध्ययनमा जे विधिरूप तथा प्रति निषेधरूप नाव कह्या ते यथोक्त विधि आचरतो सुसाधु कहेवाय एवा नावे आ सोलमो अध्ययन कहेठे

अहाह नगवं एवं, से दंते दविए, वोसठकाएत्ति वच्चे, माहणे त्ति वा, समणेत्तिवा निक्खूत्तिवा, णिग्गथेत्तिवा, पडिआह नंते कहं तु दंते दविए वोसठकाएत्ति वच्चे माहणेत्तिवा समणेत्ति वा निक्खूत्तिवा णिग्गंथेत्तिवा तंनो बूहि महामुणी ॥ १ ॥

अर्थ-(अहाहनगव एव के०) यथाह नगवान् हवे श्री नगवत महावीरदेव सना माहे एम कहेठे (सेदते दविए के०) ते साधु इंडियोने दमवे करी दात तेणे करी मुक्तिगमन योग्य तथा (वोसठ के०) नि प्रतिकर्म एवो (काएत्तिवच्चे के०) शरीरठे जेहनो तेने एम कहेवो (माहणेत्तिवा के०) त्रस अने स्थावर जीवोने माहणो एवो जेनो उपदेशठे ते माहण कहिये अथवा नव विध ब्रह्मचर्यनी गुप्ति थकी माहण एटले ब्राह्मण कहिए (समणेत्तिवा के०) तथा श्रमण एटले तपस्वी शुद्ध क्रिया अनुष्ठान ना करनार (निक्खूत्तिवा के०) आरंननो त्याग करे निर्दोष निक्षाये प्रवर्ते अथवा अष्ट प्रकारना कर्मने नेदे तेमाटे निक्षु कहिए (णिग्गथेत्तिवा के०) तथा बाह्य अन्यतर परिग्रह रहित माटे निर्ग्रंथ कहिए (एम श्री नगवाने कहे थके शिष्य पूठे ठे के केवीरी ते (दंतेदविए के०) दांत मुक्तिगमन योग्य (वोसठकाएत्ति के०) तथा शरीरनी शो ना शुश्रूषा रहित तेने (वच्चे के०) कहिये शु कहिये तोके (माहणेत्तिवा के०) माह ण कहिये तथा (समणेत्तिवा के०) श्रमण कहिए तथा (निक्खूत्तिवा के०) निक्षु क हिए (णिग्गथेत्तिवा के०) तथा निग्रथ कहिए (तनोबूहिमहामुणी के०) ते हे महा मुनि ए चार शब्दनो अर्थ अमने कहो. ॥ १ ॥

॥ दीपिका-अधुना गाथाषोडशाख्यं षोडशाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्र । (अ हेति) । अथाह नगवान् सर्वज्ञ । एवमसौ साधुर्दांत सवृतेंद्रिय । द्रव्य मुक्तिगमन

त्ता, तेणं गाहाति णं बिंति "॥ ४० ॥ (होंतिपुंणइत्यादि) नावगाथा पुनरियं नवति। तद्यथा । योऽसौ साकारोपयोग क्षायोपशमिकनावनिष्पन्नोगाथां प्रति व्यवस्थित सा नावगाथेत्युच्यते । समस्तस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकनावे व्यवस्थितत्वात् । तत्र चानाकारोपयोगस्यासनवादेवमनिधीयते इति । पुनरपि तामेव विशिनष्टि । मधुर श्रुति पेशलमनिधानमुच्चारण यस्याः सा मधुरानिधानगाथा युक्ता । गाथा ढदसोपनिबद्धस्य प्राकृतस्य मधुरत्वादित्यनिप्रायोगीयते पठ्यते मधुराक्षरप्रवृत्त्या गायंति वा तामिति गाथा । यतएवमतस्तेन कारणेन गाथामिति ता ब्रुवते । णमिति वाक्यालंकारे । एनां वा गाथामिति । अन्यथावा निरुक्तमधिकृत्याह । " गाहीकयावअहा,अहवणसामुद्दएण ढंदेण ॥ एएण होंति गाहा, एसो अन्नोवि पज्जाउ,, ॥ ४१ ॥ (गाहीकयावइत्यादि) गाथीकृता पिंडीकृताविक्षिप्ता सतएकत्र मीलिताअर्थायस्या सा गाथेत्यथवा सामुद्रेण ढदसा वा निबद्धा सा गाथेत्युच्यते । तच्चेदं ढंदोऽनिबद्ध च यल्लोकेगाथेति तत्पंडितैः प्रोक्त । एपोऽनतरोक्तोगाथाशब्दस्य पर्यायोनिरुक्तस्तात्पर्यार्थोऽद्रष्टव्य । तद्यथा । गीयतेऽसौ गायंति वा तामिति गाथीकृतावार्था सामुद्रेण वा ढदसे ति गाथेत्युच्यते।अन्योवास्वयमन्यूह्य निरुक्तविधिना विधेयइति । पिंडितार्थग्राहित्वमधिकृत्याह ।,, पत्तुरससुअज्ञयणे,पिंडित्तवेसुजो अवितहत्ति ॥ पिंडियवयणेणत्थं गेहेत्तिम्हा ततो गाहा,, ॥४२॥ (पत्तुरससुइत्यादि) पचदशस्वप्यध्ययनेषु अनतरोक्तेषु पिंडितार्थानि तेषु सर्वेष्वपि यएव व्यवस्थितोऽर्थस्तमवितथ यथावस्थितपिंडितार्थवचनेन यस्माद्ग्रथ्नात्येतदध्ययन पोमशं तत पिंडितार्थग्रथनाज्ञाथेत्युच्यतइति । तत्त्वचेदपर्यायैर्व्याख्येति कृत्वा सूत्रार्थमधिकृत्याह । "सोलसमे अज्ञयणे, अणगारगुणाणवणण नणिया ॥ गाहा सोलसणाम, अज्ञयणमिणं उवदिसंति ॥ ४३ ॥ (सोलसमेइत्यादि) पोमशाध्ययने ऽनगारा साधवस्तेषा गुणा क्षांत्यादयस्तेषामनगारगुणाना पचढशस्वप्यध्ययनेष्वनिहितानामिहाध्ययने पिंडितार्थवचनेन यतोवर्णनानिहिताऽतोगाथापोमशानिधानमध्ययनमिदं व्यपदिशाति प्रतिपादयंति। उक्तोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोनिर्युक्त्यानुगमस्तदनतर स्पर्शिकनिर्युक्त्याऽनुगमस्यावसर सच सूत्रे सति नवति सूत्र च सूत्रानुगमेऽसावप्यवसरप्राप्तएवातोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीय । तच्चेद । (अहाहनगवमित्यादि) अथेत्यय शब्दोऽवसानमगलार्थ । आदिमगल तु बुध्यतेत्यनेनानिहितं । तेनाद्यतयोर्मंगलत्वात्सर्वोपि श्रुतस्कंधोमगलमित्येतदनेनावेदितं नवति । आनतर्येवा शब्द । पचदशाध्ययनानतर तदर्थसग्राहीदं पोमशमध्ययनं प्रारन्यते । अथानंतरमाह नगवानुत्पन्नदिव्यज्ञान सदेवमनुजाया पर्षदि वक्ष्यमाणमाह । तद्यथा । एवमसौ पचदशाध्ययनोक्तार्थयुक्त ससाधुर्दांतइंद्रियदमनेन इव्यनूतोमुक्तिगमनयोग्यत्वात् इव्यच नव्येइति वचनात् रागद्वेषकालिकायइव्यरहित

सांजलुं छे मे आयुष्यवत एवा (जगवया के०) जगवते (एवमरकाय के०) एम कह्यु छे (इह के०) ए वचन थकी सुयगडांगने बीजे श्रुतस्कंधे (खलु) ए शब्द वाक्यालंकारने अर्थे (पोंमरीएणामज्झयणे के०) पुंमरीक नामे अध्ययन ते पुंमरीक कमलनी उपमायें थशे (तस्सण के०) ते कारणे एवो नाम कह्यो तेनुं (अयमठेपसुते के०) एंजे आगल कहेशे ते अर्थ जाणवो ॥ १ ॥ (सेज हाणामए के०) ते जेमछे तेम कहेवो. नाम इति संजावनाने अर्थेछे. जेम कोइ एक (पुस्करिणीसिया के०) पुष्करणी एटले कमल सहित वावडीछे ते केवीछे तोके (बहुउदगाके०) घणो अगाध जेमां पाणीछे (बहुसेयाके०) घणो जेमा कर्दमछे (बहुपुक्खलजलदा के०) घणो पुष्करणी पणो संपूर्णछे अर्थात् पुष्करणीनो अर्थ जेणे जाणोछे एटले जेवो नाम तेवा परिणामे एवी (पुंमरिकिणी के०) पुंमरिकिणी एटले श्वेत कमल सहित वावडीछे (पासादिया के०) निर्मल जले करीने प्रसन्न चित्त कारणीछे (दरिसणिया के०) घणा लोकने देखवा योग्यछे (अनिरूवा के०) जेने विषे सर्व काल हंस चक्रवाक गजमहिषादि रूपछे ते कारणे अनिरूपछे (पडिरूवा के०) स्वछ जाव थकी सर्व रूप प्रत्ये वचेछे ते माटे प्रतिरूपछे ॥ २ ॥ (तीसेणपुस्करिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तह्नतह्नदेसेदेसे के०) त्यां त्या ते ते प्रदेशे (तहितहिंबहवेपउमरपोंमरीयाबुइया के०) त्या त्या घणा प्रधान पुंमरीक नामे पद्म एटले कमल जगवत श्रीमहावीर देवे कह्याछे (अणुपुव्वुठिया के०) ते कमल आनुपूर्विये उग्या (कसियाके०) पाणी थकी उपर वर्त्तेछे (रुइलाके०) दीपता (वन्नमताके०) प्रधान वर्ण वाला कमलछे (गंधमता के०) सुगधवाला (रसमता के०) रसवाला (फासमता के०) सुकोमल स्पर्श सहित छे (पासादिया के०) प्रासादनीक प्रसन्नचित्तकारणीक (दरिसणिया के०) लोकने देखवा योग्य (अनिरूवा के०) अनिरूप (पडिरूवा के०) प्रतिरूप ॥ ३ ॥ (तीसेणपुस्करिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (बहुमज्झदेसनाए के०) घणा मध्य प्रदेशना जागने विचाले (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइए के०) एक महोटु प्रधान पोंमरीक नामा कमल बोल्युछे (अणुपुव्वुठिए के०) ते आनुपूर्वियें चडती चडती पाखडीये करी उग्योछे उस्सिते रुइले वन्नमते गधमते रसमते फासमते पासादीए जाव पडिरूवे एम यावत् प्रतिरूप सुधीना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ॥ ४ ॥ (सबावतिचणं के०) इत्यादिक सर्व समग्र जाव ण एवे वाक्यालकारे जाणवा (तीसेणपुस्करिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तह्नतह्नदेसेदेसे के०) त्या त्या प्रदेशे एटले एवा समग्रजागोने विषे (तहितहिबहवेपउमवरपोंमरीयाबुइयाके०) त्या त्या पूर्वोक्त गुण सहित एवा घणा पुंमरीक कमल बोल्याछे ते सर्व अणुपुव्वुठिया कसिया रुइला जावपडि

॥ दीपिका–इति पृष्टे भगवान् माहनादीना चतुर्णामभिधानानामर्थमाचष्टे। इत्येव पूर्वोक्ताध्ययनार्थेवृत्तिर्विरत सर्वपापकर्मभ्यस्तथा प्रेम राग द्वेपोऽप्रीतिरूप. कलहोराटि अभ्याख्यानमसदभियोग पैशुन्य परगुणमत्सरेण तद्दोपोद्घट्टनं । परपरिवाद काक्का परदोपापादनं अरति सयमे रतिर्विपयेपु । माया परवचन मृषावादोऽसदर्थाभिधान मिथ्यादर्शनं तत्वेऽतत्त्वमतत्वेच तत्वमिति मति । तदेव शल्यं एतेभ्योविरत । तथा समित संगत पचसमितिभि सहितोज्ञानादिभि सदा यत्त संयमे कस्यापि न कुप्येत नापि मानी। उपलक्षणात् मायालोभाभ्यामपि निवृत्तइत्यादि गुणकलिपत साधुर्माहनइति वाच्य ॥ २ ॥

॥ टीका–इत्येव पृष्टोभगवान् ब्राह्मणादिना चतुर्णामप्यभिधानाना कथंचिद्भेदाभिन्नार्नां यथाक्रम प्रवृत्तिनिमित्तमाह । इत्येव पूर्वोक्ताध्ययनार्थेवृत्ति सन् विरतोनिवृत्त सर्वेभ्य पापकर्मभ्य सावद्यानुष्ठानरूपेभ्य सतथा तथा प्रेम रागाभिष्वगलक्षण द्वेपोऽप्रीतिलक्षण कलहो द्वंद्वाधिकरणमभ्याख्यानमसदभियोग पैशुन्य परगुणासहनतया तद्दोपोद्घट्टनमितियावत्। परस्य परवाद काक्कापरदोपापादन अरतिश्चित्तोद्वेगलक्षणा सयमे तथा रतिर्विपयाभिष्वगोमाया परवचनतया कुटिलमतिर्मृषावादोऽसदर्थाभिधानं गामश्वं ब्रुवतोभवति मिथ्यादर्शनमतत्त्वे तत्त्वाभिनिवेशस्तत्वेवा तत्त्वमिति । यथा । णत्थिणिच्चो कुणइकयं वेइ णत्थि णिव्वाण ॥ णत्थिय मोक्खो वाउ छमिछत्तस्सठाणाइइत्यादि । एतदेव शल्य तस्मिंस्ततोवा विरतइति । तथा सम्यगित समितईर्यासमित्यादिभि पचभिसमितिभि समितइत्यर्थ । तथा सह हितेन परमार्थभूतेन वर्ततइति सहित । यदिवा सहितोयुक्तोज्ञानादिभिस्तथा सर्वकाल यत प्रयत सत्सयमानुष्ठानेन तदनुष्ठानमपि न कपायैर्भि सारी कुर्यादित्याह । कस्यचिदप्यपकारिणोपि न कुप्येत आकुष्ट सन्न क्रोधवशगोभूयात् नापि मानी भवेत् डुष्कततपोयुक्तोपि न गर्व विदध्यात्। तथा चोक्त। जइ सो वि निज्जरमउ, पडिसिद्धो अठमाणमहाणेहिं ॥ अवसेसमयठाणा परिहरियव्वा पयत्तेण । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्रागोपि मायालोभात्मकोन विधेयइत्यादिगुणकलित साधुर्माहनइति नि शंक वाच्यइति ॥ २ ॥

एत्थवि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणंच, अतिवायं च, मुसावायंच वहिद्धंच,कोहंच,माणंच मायच,लोहच, पिज्जच, दोसंच,इच्चेव जउजउ आदाणं अप्पणोपद्देसेहेउ तउतउ आदाण तो पुव्व पडिविरते,पाणाइवायाए दते दविए वोसट्ठकाए समणेत्ति वच्चे ॥३

स्य सप्ताध्ययनानि । तेषु प्रथमं पुंडरीकाध्ययनं तस्येदमादिसूत्रं । (सुश्रंमेऽति) श्रुतं मया आयुष्मता जगवता एवमाख्यातं । इह प्रवचने । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पौंड रीकाख्यमध्ययनं पुंडरीकेण श्वेतपद्मेन उपमा यत्र तत्पौंडरीकं । तस्यायमर्थं प्रज्ञप्त । ण वाक्यालंकारे ॥ १ ॥ तद्यथा । नामशब्द संजावनायां । संजाव्यते पुष्करिणीदृष्टांत. पुष्कराणि पद्मानि यस्या सा पुष्करिणी वापी स्यात् । किंजूता । बहूदका बहूदकप्रचुरा । सीयंते यस्मिन्नसौ सेय कर्दम. सयस्यां बहुसेया बहुपुष्कला बहुसपूर्णा लब्धोनामानु गतोर्थोयया सा लब्धार्था पुंडरीकिणी श्वेतपद्मप्रचुरा प्रासादिका निर्मला दर्शनीया शो जना । अजित. सर्वतोरूपाणि हंसचक्रादीनि यस्यां सा तथा प्रतिरूपा प्रतिबिंबवती नि र्मलत्वात्तस्यां सर्वत्र प्रतिबिंबानि वीक्ष्यंते ॥ २ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । तत्रतत्रेति पुंडरी कैर्व्याप्तिमाह । देशेदेशे इत्यनेन तु एकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ प्रदेशोयत्र तानि न संतीति । अथवा अत्यादरज्ञापनाय एकार्थान्येवैता नि त्रीणि पदानि । तेषु पुष्करिण्या. सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मान्येव वराणि पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राण्युक्तानि आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि उत्थितानि पंकजले अति लंघ्य उपरि व्यवस्थितानि रुचि कांति लातीति रुचिलानि दीप्तिमंति शोजनवर्णगंधरस स्पर्शवंति प्रासादीयानि दर्शनीयानि अजिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्यां पुष्करि ण्या । ण वाक्यालंकारे । मध्यदेशे एकं पद्मवरमेव पुंडरीकमुक्त शेषव्याख्या पूर्ववत् ॥४॥ (सब्बावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्या पुष्करिण्या सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मानि तथा सर्व स्याश्च तस्याबहुमध्यदेशे पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं वियतइति ॥ ५ ॥ अ थ पूर्वस्यादिश कश्चिदेक पुरुष समागम्य ता पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा त तत्पद्मं प्रासादीयादिविशेषण सपुरुषएव वक्ष्यमाण वदेत् । (अहमसित्ति) अहमस्मि पुरुष कुशल पंडित क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबाल्यादतिक्रांतोमेधावी अबालोमध्यमवयामार्ग स्थ सन्निराचीर्णमार्गस्थोमार्गवित् मार्गस्य या गतिर्गमनं तया पराक्रम विवक्षितदेश गमनं तज्जानातीति मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञ. एवंविधोऽहमेतत्पद्मवरपुंडरीकं पुष्करिणी मध्यस्थं उत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामीति कृत्वा इहागतइत्युक्त्वा सपुरुषस्तां पुष्करिणीम निक्रामेत् संमुख गछेत् । यावञ्च यावञ्च तदवतरणेन संमुख गछेत्तावत्तावञ्च । ण वा क्यालंकारे । तस्या पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं महांश्च सेयः कर्दम । तत समहाकर्दमोद काज्यामाकुल प्रहीणस्तीर विजक्तिव्यत्ययात्तीराद्भ्रष्ट । अप्राप्तश्च पद्मवरपुंडरीकं । तस्या सेय कर्दमस्तस्मिन्निपस्योनिमग्नस्तीरपद्मयोरंतरतरालएव तिष्ठति (नोहव्वाएत्ति) नार्वाक् तटवर्ती (नोपाराएत्ति) नापि पारगमनाय समर्थः । एवमसावुजयभ्रष्ट प्रथमः पुरु षजात पुरुषजातीय. ॥ ६ ॥

विरुत्वात् । क्रोधमप्रीतिलक्षणं मानं स्तंनात्मकं मायां च परवचनात्मका लोनं मूर्बास्व नाव तथा प्रेमानिष्वगलक्षण तथा द्वेषं स्वपरात्मनोर्बाधारूपमित्यादिक ससारावतरणमार्गं मोक्षाध्वनोपध्वसकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवमन्यस्मादपि यतोयत कर्मोपादनादिहामुत्र चानर्थहेतोरात्मनोपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततःप्राणातिपातादिकादनर्थदंडदानात् पूर्वमेवानागतमेवात्महितमिच्छन् प्रतिविरतोनवेत् सर्वस्मादनर्थहेतुनूताडुनयलोकविरुद्धाद्वा सावद्यानुष्ठानान्मुमुक्षुर्विरति कुर्यात् । यश्चैवनूतोदांत शुद्धोद्व्यनूतोनिष्प्रतिक्रमेतया व्युत्सृष्टकाय सश्रमणोवाच्य ॥ ३ ॥

एत्ववि निक्कू अणुन्नए, विणीए, नामए दंते दविए, वोसठ्ठकाए, सविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अज्झप्पजोगसुद्धादाणे, उवठिए, ठिअप्पा, सखाए परदत्तनोई निक्कूत्ति वच्चे ॥४॥

अर्थ–हवे निक्कु शब्दनो विशेष कहेछे (एत्ववि निक्कू के०) अहीया निक्कुने विषे पण जे पूर्वे ब्राह्मण श्रमणना गुण कह्या ते सर्वे जाणवा अने वली अनेरा विशेष कहेछे (अणुन्नए के०) अनिमान रहित (विणीए के०) विनीत एटले विनयवत (नामए के०) सयमने विषे आत्मानो नमाड नार (दंतेदविएवोसठ्ठकाए के०) ए त्रण शब्दना अर्थ पूर्ववत् जाणवा (सविधुणीय के०) सम्यक् प्रकारे सहन करे शुं सहन करे ते कहेछे (विरूवरूवे के०) विरूपरूप एटले अनुकूल प्रतिकूल एवा नाना प्रकारना (परीसहोवसग्गे के०) उपसर्ग परीसहने सहन करे तथा (अज्झप्पजोगसुद्धादाणे के०) अध्यात्मयोगे करी निर्मल चित्तने परिणामे शुद्ध चारित्रवत थको (उवठिए के०) उपस्थित एटले चारित्रने विषे उठ्यो सावधान थयो (ठिअप्पाके०) परीसह उपसर्गे करी अगजीतछे जेहनो आत्मा (संखाए के०) ससारनी असारता बोधिनु डुर्लन पणु जाणतो (परदत्तनोई के०) पारका दीधेला आहारनु जमनार एटले निर्दोष अहारी (निक्कूत्तिवच्चे के०) एवाने निक्कु कहेवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–अत्रापि पूर्वोक्तमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोत्रापि निक्कुशब्दप्रवृत्तिहेतवस्तएव ज्ञेया । अमी चान्ये अनुन्नतोमदरहितोनावनीतोनदीन दांतोविनयेन नामकोगुर्वादौ प्रह्वोद्व्यनूतव्युत्सृष्टकाय सम्यक् विधूयापनीय विरूपान् नानाविधान् परीषहोपसर्गान् । परीषहा द्वाविंशति उपसर्गादेवादिकृतास्तद्विधूनन सम्यक् सहनं अध्यात्मयोगेन शुनचेतसा शुद्ध आदानं चारित्रं यस्य सतथा सम्यगुत्थित सयमोद्यत स्थितोमोक्ष

ता। अर्थाधिकार पौंडरीकोपमया स्वसमयगुणव्यवस्थापन । समवतारेतु यत्र यत्र स मवतरति तत्रतत्र लेशत समवतारितमेवेति। उपक्रमानतर निक्षेप सच नामनिष्पन्ने निक्षेपे पौंडरीकमित्यस्याध्ययनस्य नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "णामठवणा द विए, खेत्ते कालेय गणणसंगणे ॥ नावेय अट्ठमे खलु, णिक्खेवो पुंडरीयस्य" ॥ ३ ॥ (णामठवणेत्यादि) पौंडरीकस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालगणनासंस्थापननावात्म कोऽष्टधा निक्षेप । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यपौंमरीकमनिधित्सुराह। "जो जीवो नविउं खलु, ववक्खि कामो पुंडरीयस्य ॥ सोदवपुंडरीउं, नावमि विजा णउं नणिउं" ॥४॥ (जोजीवोऽत्यादि) य कश्चित्प्राणधारणलक्षणोजीवोनविष्यतीति नव्यस्तदेव दर्शयति। उत्पतितुकाम समुत्पित्सुस्तथाविधकर्मोदयात्पौंडरीकेषु श्वेतपद्मेषु वनस्पतिकायविशेषेष्वनतरनवे नावी सद्रव्यपौंमरीक । खलुशब्दोवाक्यालंकारे। नावपौं मरीक त्वागमत । पौंडरीकपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तइति । एतदेव द्रव्यपौंडरीक विशेषत र दर्शयितुमाह। "एगनविएयबद्धा, उणय अनिमुहिय नामगोएय ॥ एते त्तिन्न देसा, दवमिय पोमरीयस्स" ॥ ५ ॥ एकेन नवेन गतेनानतरनवएव पौंडरीकेषूत्पत्स्यते स एकनविकस्तथा तदासन्नतर पौंडरीकेषु बद्धायुष्कस्ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोऽ नतरसमयेषु य पौंडरीकेषूत्पद्यते। अनतरोक्ताएते त्रयोदेशविशेषाद्रव्यपौंमरीकेऽवगत व्याइति। नूतस्य नाविनोवा नावस्य हि कारण तु यल्लोके। तद्द्रव्य तत्त्वज्ञै सचेतना चेतन कथितमिति वचनात्। इहच पुंडरीककंडरीकयोर्भ्रात्रोर्महाराजपुत्रयो सदसद्गुण नपरायणतया शोननत्वमवगम्य तदुपमयाऽन्यदपि यच्छोनन तत्पौंडरीकमितरत्तु कंमरीकमि ति। तत्र च नरकवर्जासु तिसृष्वपि गतिषु ये शोनना पदार्थास्ते पौंमरीका शेषास्तु कामरीकाइत्येतत्प्रतिपादयन्नाह। "तेरिक्खिया मणुस्सा, देवगणा चेव होंति जेय व रा ॥ ते होंति पुंमरीया, सेसा पुण कंमरीयाउ" ॥ ६ ॥ (तेरिक्खियाऽत्यादि) कण्ठ्या तत्र तिर्यक्षु प्रधानस्य पौंमरीकत्वप्रतिपादनार्थमाह । "जलयर थलयर खयरा, जे पवराचेव होंति कताय। जे वसनावमणुमया, ते होंति पुंमरीयाउ" ॥ ७ ॥ जलचरेषु मत्स्यकरिमकरादय स्थलचरेषु सिंहादयोवलवर्णरूपादिगुणयुक्ताउर परिसर्पे मणिफणि नोनुजपरिसर्पेषु नकुलादय खचरेषु हंसमयूरादय इत्येवमन्येपि स्वनावेन प्रकृत्या लो कानुमतास्ते च पौंमरीकाइउ प्रधानान्नवति। मनुष्यगतौ प्रधानाविष्करणायाह । "अ रिहंत चक्कवट्टी जारणविज्जाहरा दसाराय ॥ जे अन्ने इतिमंता, तेहोंति पोंमरीया उ ॥ ८ ॥ सर्वातिशायिनी पूजामर्हतीत्यर्हंत । ते निरुपमरूपादिगुणोपेतास्तथा चक्रव र्तिन पट्खंडनरतेश्वरास्तथाचारश्रमणाबहुविधैश्वर्यनूतलब्धिकलापोपेतामहातपस्विनस्त था विद्याधरावैताढ्यपुराधिपतयस्तथा दाशार्हाहरिवंशकुलोद्भवा । अस्य चोपलक्षणार्थ

(आयवायपत्तेके०) आत्म वादे पहोतो एटले आत्माने वादे उपयोग लक्षण जीव असंख्य प्रदेशी जीव संकोच्च विकाशनो नजनार द्रव्य पर्यायरूप नित्यानित्य नेद निन्न पोताना करेंला कर्मनुं नोगवनार इत्यादिक आत्मवादे पहोतो एटले आत्म तत्वनो जाण (विऊके०) तथा विद्वान् पंमित शुद्धमार्गनो जाण (डुहउविसोयपलिच्छिन्नेके०) तथा द्रव्य अने नावना नेदे करी बन्ने प्रकारना आश्रव रूपिया स्रोत जेणे परिछेद्याछे तथा (णोपूयणसक्कारलानछीके०) पूजा सत्कारना लाननो अर्थी न थाय किंतु निर्जरानो अर्थी थाय (धम्मछीके०) धर्मनो अर्थी (धम्मविऊके०) धर्मनो जाण शुद्धमार्गनो गवेषण हार (णियोगपडिवन्नेके०) नियोगप्रतिपन्न एटले मोक्षमार्गे पहोतो एवो छतो (समियंचरेके०) समता आचरे एवो थको (दंतेदविएवोसछ्काएके०) दांत द्रविक वोसछ्काए तेने (निग्गथेत्तिवच्चेके०) निर्ग्रंथ कहेवो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका–अत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिग्रंथोवाच्य । अमी चान्ये गुणा । एकोरागद्वेषरहित. । एकमेव परलोकगामितयात्मानं वेत्तीत्येकवित् बुद्धस्तत्त्वज्ञ सम्यक् छिन्नानि नावस्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन ससंछिन्नस्रोता सुसयत सुसमित समितिनि सुष्ठु सामायिक समनावोयस्य स तथा आत्मवादप्राप्त सम्यगात्मस्वरूपवेदी विद्वान् ज्ञातसर्वपदार्थ द्विधा द्रव्यतोनावतश्च स्रोतांसि परिछिन्नानि येन सतया द्रव्यस्रोतांसि विषयेंद्रियप्रवृत्तय । नावस्रोतांसि तु शब्दादिषु शुनाशुनेषु रागद्वेषोत्पत्ति । तानि येन त्यक्तानि तथा नोपूजासत्कारार्थी तथा धर्मार्थी धर्मवित् नियोगोमोक्षस्त प्रतिपन्न· समता चरेत् कुर्यात् दातोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकाय । एवनूत पूर्वोक्तमाहनादिगुणयुतश्च निर्ग्रंथोवाच्य ॥ ५ ॥

॥ टीका–तथाऽत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथइति वाच्य । अमी चान्ये अपदिश्यंते। तद्यथा। एकोरागद्वेषरहिततया उंजा । यदिवाऽस्मिन् ससारचक्रवाले पर्यटन्नसुमान् स्वकृतसुखडुखफलनाक्त्वेनैकस्यैव परलोकगमनतया सदैककएव नवति । तत्रोद्यत विहारी द्रव्यतोप्येककोनावतोपि गछातर्गतस्तु कारणिकोद्रव्यतोनाज्योनावतस्त्वेककएव । तथैकमेवात्मान परलोकगामिनं वेत्तीत्येकवित् न मे कश्चिद्दु·खपरित्राणकारी सहायोस्तीत्येवमेकवित् । यदिवैकातेन विदितससारस्वनावतया मौनींद्रमेव शासन तथ्यं नान्यदित्येवं वेत्तीत्येकातवित् अथवैकोमोक्ष संयमोवा त वेत्तीति । तथा च बुद्धोऽवगततत्त्व· सम्यक् छिन्नान्यपनीतानि नावस्रोतासि सवृतत्वात्कर्माश्रवद्वाराणि येन सतथा सुष्ठु सयत कूर्मवत्संयतगात्रोनिरर्थककायक्रियारहित सुसयतस्तथा सुष्ठु पंचनि समितिनि सम्यगित प्राप्तोज्ञानादिकं मोक्षमार्गमसौ सुसमितस्तथा सुष्ठु समनावतया सामा

धपरिमण्डलादीनि च संस्थानानि इतराणि कंण्डरीकान्यप्रवराणि नवतीति यावत् । सांप्रतं नावपौण्डरीकप्रतिपादनाजिघित्सयाह । " उदएयउ वसमिए खलु, खइए य तहा खउ वसमिएय ॥ परिणामसन्निवाए, जे पवरा ते वि ते चे व ॥ १४ ॥ (उदयेइत्यादि) औदयिके नावे तथौपशमिके क्षायिकक्षायोपशमिके पारिणामिके सान्निपातिकेच नावे चिन्त्यमानेषु तेषु वा मध्ये ये प्रवरा प्रधानास्तेष्वौदयिकादयोनावास्तएव पौंडरीकाएवावगंतव्यास्तथौदयिके नावे तीर्थकराञ्चनुत्तरोपपातिकसुरास्तथान्येपि सितशतपत्रादय पौण्डरीका औपशमिके समस्तोपशांतमोहा क्षायिके केवलज्ञानिन क्षायोपशमिके विपुलमतिश्चतुर्दशपूर्वविदपरमावधयोन्यस्ता समस्तावा पारिणामिके नावे नव्या सान्निपातिके नावे द्विकादिसंयोगा सिद्धादिषु स्वबुध्या पौंडरीकत्वेन योजनीया शेषास्तु कांडरीका इति। सांप्रतमन्यथानावपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " अहवावि नाणदंसण, चरित्तविणए तहेव अज्झप्पे ॥ जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीयाउ ॥१५॥ (अहवेत्यादि) अथवापि नावपौंडरीकमिदं। तद्यथा। सम्यक्ज्ञाने तथा सम्यग्दर्शने सम्यक्चारित्रज्ञानादिके विनये तथाऽध्यात्मनि च धर्मध्यानादिके प्रवरा श्रेष्ठामुनयोनवति ते पौण्डरीकत्वेनावगतव्यास्तोऽन्ये कंण्डरीकाइति । तदेव सनविनमष्टधा पौंडरीकस्य निक्षेप प्रदर्श्याधुनेह येनाधिकारस्तमाविर्नावयन्नाह । " एत्थं पुण अहिगारो, वणस्सतीकायपुण्डरीएण ॥ नावमि य समणेण, अज्झयणे पुण्डरीए य " ॥१६॥ (एछपुणेत्यादि) अत्र पुनर्दृष्टांतप्रस्तावे ऽधिकारोव्यापार सचित्ततिर्यग्योनिकेकेंद्रियवनस्पतिकायद्रव्यपौंडरीकेन जलरुहेणवा औदयिकनाववर्तिना वनस्पतिकायपौंडरीकेण सितशतपत्रेण तथा नावे श्रमणेन सम्यग्दर्शनचारित्रविनयाध्यात्ममूर्तिना सत्साधुनाऽस्मिन्नध्ययने पौंडरीकाख्ये ऽधिकारइति। गता निक्षेपनिर्युक्तिरधुनासूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तेरवसर । साच सूत्रे सति नवति । सूत्रच सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्तोऽतोऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य। तच्चेद। (सुयंमेआउसतेणमित्यादि) अस्य चानंतर सह सूत्रेण संबंधोवाच्य । सचाय । (सेएवमेव जाणह जमहं नयंता रोत्ति) तमेव देव जानीत नयस्य त्रातार। तद्यथा।श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नवतैवमाख्यातमादिसूत्रेण च सह संबंधोय । तद्यथा । यन्नगवताख्यातं मया च श्रुतं तद्बुध्येतेत्यादि । किं तन्नगवताख्यातमित्याह । इह प्रवचने सूत्रकृत् द्वितीयश्रुतस्कंधे वा । खलुशब्दो वाक्यालंकारे। पौंडरीकानिधानमध्ययन पौंडरीकेण सितशतपत्रेणात्रोपमा नविष्यतीति कृत्वाऽतोस्याध्ययनस्यपौंडरीकमिति नाम कृतं तस्य चायमर्थ । णमिति वाक्यालंकारे। प्रज्ञप्त प्ररूपित ॥१॥ (सेजहत्ति) तद्यथार्थ सच वाक्योपन्यासार्थ । नामशब्द संनावनाया । संनाव्यते पुष्करिणी दृष्टांत । पुष्कराणि पद्मानि तानि विद्यते यस्यामसौ पुष्करिणी स्यान्नवेदेवनूता । तद्यथा बहुप्रचुरमगाधमुदक यस्या सा बहूदका बहूदकप्रचुरा

॥ दीपिका—एते चत्वारोभिन्नाअपि कथंचिदेकार्थाइति । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । सेतत् यन्मयोक्तं एवमेव जानीत यूयं यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया वच्मि । नच भगवन्तयाख्यातारोवा सर्वज्ञाअन्यथा वदंति अतोमडुक्तमेवमेवावगछतेति । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीतपागछाधिराजश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्य हर्षकुलपंडितप्रणीतायां सूत्रकृतांगदीपिकायां गाथाषोडशाख्यं षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारार्थमाह । (सेएवमेवजाणहइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतीनुद्दिश्येदमाह । सेइति । तद्यन्मया कथितमेव जानीत यूय । नान्योमद्वचसि विकल्पोविधेय । यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया ब्रवीमि । नच सर्वज्ञाभगवत परहितैकरतायाख्यातारोरागद्वेषमोहान्यतरकारणाभावादन्यथा ब्रुवते । अतोयन्मयाऽऽदित्त प्रभृति कथितं तदेवमेवावगछेदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उक्तोनुगम सांप्रतं नयास्ते च नैगमादय सप्त । नैगमस्य सामान्यविशेषात्मतया सग्रहव्यवहारप्रवेशात्संग्रहादय षट् । समभिरूढेवंभूतयो शब्दनयप्रवेशान्नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा पंच । नैगमनस्याप्यतर्भावाच्चत्वारोव्यवहारस्यापि । सामान्यरूपविशेषतया सामान्यविशेषात्मनो सग्रहर्जुसूत्रयोरतर्भावात्सग्रहर्जुसूत्रशब्दास्त्रयस्तेपि च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकातर्भावाद्द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाभिधानौ द्वौ नयौ । यदि वा सर्वेषामेव ज्ञानक्रिययोरतर्भावात् ज्ञानक्रियाभिधानौ द्वौ तत्रापि ज्ञाननयोज्ञानमेव प्रधानमाह क्रियानयश्च क्रियामिति । नयानांच प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वाज्ज्ञानक्रियाश्च परस्परापेक्षतया मोक्षागत्वाडुभयमात्रप्रधान । तच्चोभयं सत्क्रियोपेते साधौ भवतीति । तथाचोक्तं । णायम्मिगिण्हियव्वे, अगिण्हियव्वंमि चेव अछमि ॥ जइ यव्वमेव इति जो उवएसो सो नओ नाम ॥ १ ॥ सव्वेसिंपि णयाण, बहुविहवत्तव्वय णिसामेत्ता ॥ तं सव्वनयविसुद्ध ज चरणगुणट्ठीओ साहुत्ति ॥ ६ ॥ समाप्तं षोडशाख्यं षोडशमध्ययन तत्समाप्तौ च समाप्त प्रथम श्रुतस्कधइति ॥

॥ इति श्रीद्वितीये सूत्रकृतांगे, गुर्जरभाषासहित श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्त शीलंगाचार्यकृतटीकासंयुतश्च, प्रथम श्रुतस्कध समाप्त ॥

रे ॥ ५ ॥ अथानंतरमेवभूतपुष्करिण्या पूर्वस्यादिश कश्चिदेक पुरुप समागत्य तां पुष्क रिणी तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तदेतत्पद्मप्रासादादिप्रतिरूपांतविशेषणकलापोपेतं स पुरुप पूर्वदिग्भागव्यवस्थितएवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् ब्रूयात् । (अहमसेत्ति) अह मस्मि पुरुप. । किंभूत कुशलोहिताहितप्रवृत्तिनिपुणस्तथा पापाद्धीन पडितोधर्मज्ञो देशकालज्ञ क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबालभावान्निष्क्रांत परिणतबुद्धिर्मेधावी प्लवनोत्प्लवनयोरुपाय ज्ञस्तथा बालोमध्यमवया षोडशवर्षोपरिवर्ती मार्गस्थ सद्भिराचीर्णमार्गेव्यवस्थितस्त था सन्मार्गज्ञस्तथा मार्गस्य या गतिर्गमन वर्तते तया यत्पराक्रमण विवक्षितदेशगमन तज्जानातीति पराक्रमज्ञ । यदिवा पराक्रम सामर्थ्यं तज्ज्ञोहमात्मज्ञइत्यर्थ । तदेवंभू तविशेषणकलापोपेतोऽहमेतत्पूर्वोक्तविशेषणकलापोपेतं पद्मवरपौंडरीक पुष्करिणीमध्य देशावस्थितमहमुत्क्षेप्स्यामीति कृत्वेहागतइत्येतत्पूर्वोक्त तत्प्रीत्योक्त्वाऽसौपुरुपस्तां पु पुष्करिणीमभिमुख क्रामेत् अभिमुखं गच्छेद्यावद्यावच्चासौ तदवतरणाभिप्रायेणाभिमुख क्रामेत्तावत्तावच्च । णमिति वाक्यालकारे । तस्याश्च पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं तथा महा श्च सेय कर्दमस्ततोऽसौ महाकर्दमोदकाभ्यामाकुलीभूत प्रहीणस्तद्विवेकेन रहितस्त्य क्त्वा तीर सुब्व्यत्ययाद्वा तीरात्प्रहीण प्रभ्रष्टोऽप्राप्तश्च विवक्षितं पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यास्तस्या वा य सेय कर्दमस्तस्मिन्निपन्नोनिमग्नआत्मानमुद्धर्तुमसमर्थस्तस्माच्च तीरादपि प्रभ्रष्टस्ततस्तीरपद्मयोरतरालएवावतिष्ठते । यतएवमत (नोहव्वाएत्ति) नार्वा क्तटवर्त्यसौ भवति (नोपाराएत्ति) नापि विवक्षितप्रदेशप्राप्त्या पारगमनाय समर्थोभ वति । एवमसावुभयभ्रष्टोमुक्तमुक्तोलीवदनर्थायैव प्रभवतीत्यय प्रथम पुरुपएव पुरुप जात पुरुपजातीयइति ॥ ६ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए अह पुरिसे दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म त पुक्खरिणि तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति त महं एग पउमवर पोंमरीयं अणुपुव्वुठिय पासादीय जाव पडिरूव तंच एठ एगं पुरिसजा तं पासति त पहीणे तीर अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपारा ए अतरा पोक्खरिणीए सेयसि णिसन्ने तएण से पुरिसे तं पुरिस एव वयासी अहो ण इमे पुरिसे अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गठे णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्न एस पुरिसे अहखेयन्ने अहंकुसले जाव पउमवरपोंमरीयं उन्नि क्खिस्सामि णो खलु एय पउमवरपोंमरीयं एव उन्निक्खेयव्व जहा णं

ॐ नमो श्री वीतरागाय

अथश्री द्वितीय सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कंधस्य बालावबोध

दीपिकासहितस्य टीकायुतस्य प्रारंभ'

मूल गद्य--सुय मे आउसंतेणं जगवया एव मरकाय इह खलु पोंमरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पसत्ते ॥१॥ से जहा णामए पुरकरिणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुरकला लध्दठा पुंमरिकिणी पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥२॥ तीसेण पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहि तहि बहवे पउमवरपोमरीया वुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला वन्नमंता गंधमता रसमंता फासमंता पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥३॥ तीसेणं पुरकरिणीए बहुमझ्देसजाए एगेमहं पउमवरपोंमरीए वुइए अणुपुव्वुठिए उस्सिते रुइले वन्नमंते गधमंते रसमंते फासमंते पासादीए जावपडिरूवे ॥ ४ ॥ सवावतिचण तीसेणं पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहि तहि बहवे पउमवरपोमरीया वुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला जावपडिरूवा सवावंतिचणं तीसेण पुरकरिणीए बहुमझ्देसजाए एगं मह पउमवरपोमरीए वुइए अणुपुव्वुठिए जावपडिरूवे॥५॥ अह पुरिसे पुरिछिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुरकरिणी तीसे पुरकरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एग पउमवरपोमरीयं अणुपुव्वुठिय ऊसिय जावपडिरूव तएणं से पुरिसे एवं वयासि अहमंसी पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्ते मग्गविऊ मग्गस्सगतिपराकमण्णू अहमेय पउमवरपोंमरीयं उन्निरिकस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुरकरिणी जावजावंचणं अभिक्कमेइ तावंतावंचण महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमपरपोमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अतरा पोरकरिणीए सेयंसि निसन्ने पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥

अर्थ--हवे श्री सुधर्म स्वामि जंबू स्वामि प्रत्ये कहेछे (सुयंमेआउसतेण के०)

णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निरकेयव्व जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमं सि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमण्णु अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निरिकस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे तं पुक्करिणि जावजावचणं अन्निक्कमे • ताव तावचणं महते उदए महते सेए जाव णिसन्ने चउडे पुरिसजाए ॥ ए ॥

अर्थ– (अहावरे के०) अथ हवे प्रथम पुरुष अनंतर (दोच्चेपुरिसजाए के०) वीजो पुरुष जात कहेठे (अहपुरिसेके०) अथ हवे ए वीजो पुरुष (दक्किणाउदिसाउ आगम्म के०) दक्षिण दिशा थकीआव्यो (तंपुक्करिणिके०) ते पुष्करणीने विषे (तीसेपुक्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने काठे उनो रहीने (तमहएगपउमवरपोंमरीयंके०) ते महोटो प्रधान पोंमरीक कमलने (पासति के०) दीठो ते कमल केवोठे तो के अणुपुव्वुठिय पासादीय जावपडिरूव) इत्यादिक पूर्ववत् शोनाये करी सहित ठे (तंच के०) त्या ते पुरुषे (एत्थके०) अहीया (एगंपुरिसजातंपासतिके०) एक पुरुष जात दीठो (तपहीणेतीरेके०) ते पुरुष वावडीना कागथी भ्रष्ट (पउमवरपोंमरीपके०) प्रधान पुमरीक कमलने (अपत्तेके०) अण पाम्यो थको (णोहच्चाएके०) वावडीनो वीजो कागो अणपाम्यो (णोपाराएके०) कमल उद्धरवाने पण असमर्थ (अतरापोक्करिणीएके०) पुष्करणीने विचाले (सेयंसिके०) कादवमाहे (णिसन्नेके०) खुतोठे (तएणसेपुरिसेके०) तेवार पठी ते पुरुष (तपुरिसके०) ते कादवमा खुचेला पुरुष प्रत्ये (एवंवयासीके०) एम कहेवा लागो के (अहोणऽमेपुरिसेके०) अहो हे पुरुष अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी वाले णोमग्गच्छे णोमग्गविऊ णोमग्गस्स गति परक्कमण्णु ए नव पदनु अर्थ सुगमठे (जन्नंएसपुरिसेके०) जे कारणे ए पुरुष पोताना आत्माने (अहखेयन्नेके०) हु खेदज्ञठुं (अहकुसलेके०) हुकुसलठुं (जावपउमवरपोंमरीयउन्निक्किस्सामिके०) इत्यादिक जाणतो यावत् प्रधान पुमरीक कमल हु उद्धरीश एवा नावे अहीं आव्यो परतु (णोखलुएयंपउमवरपोंमरीयं के०) निश्चे थकी पुमरीक कमल उद्धरी शक्यो नथी अने कादवमांज खूतोठे (एवउन्निक्केयव्व जहाणएसपुरिसेमन्नेके०) जेम तेपुरुष पोताने महोटो माह्यो मानीने कमल उद्धरवा गयो तेज विधिये ए वीजो पुरुष पण पोताने माने ॥७॥ (अहमसिपुरिसेके०) हु पुरुष खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अवाले मग्गठे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरिक्कमण्णू इत्यादिक पोतामा माह्या पणो मानतो (अहमेयंके०) हुं ए (पउमवरपोंमरीयंउन्निक्किस्सामित्तिके०) प्रधान पुमरीक कमलने उद्धरीश (कट्टुके०) एमकरी (इतिवच्चा के०) एवु कहीने (सेपुरिसे

रूवा सद्यावतिचण इत्यादिक उपमाये जाणवा (तीसेणपुस्करिणीएवहुमज्ञदेसनाएके०) ते पुष्करणीना वहु मध्यदेश नागने विषे (एगंमह के०) एक महोटु (पउमवरपोमरि एवुइए के०) प्रधान पौमरिक कमल बोट्योछे अणुपुत्तुठिए जावपडिरूवे सुधी अर्थ पूर्वे लखाइ गयुंछे ॥५॥ (अहपुरिसेके०) अथ हवे एक पुरुष (पुरिछिमाउदिसाउके०) पूर्वदिशा थकी (आगम्मके०) आवीने (तके०) ते (पुस्करिणींके०) पुष्करणी (तीसे पुस्करिणीएके०) तेपुष्करणीना (तीरेठिच्चाके०) तीरने विषे उन्नो रहीने (तमहएगंपउमवर पोमरीयके०) ते महोटु एक पौमरीक कमल पूर्वोक्त गुण सहित तेने (पासंतिके०)देखे ते क मलकेवो तोके अणुपुत्तुठियं उस्सिय जावपडिरूव इत्यादिकना अर्थ पूर्वे लखाइ गयाछे एवी शोना सहित ते पौमरीक कमलने देखीने (तत्तेण के०) तेवारे (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (एववयासि के०) एम बोल्यो शु बोल्यो ते कहेछे (अहमसीपुरिसे के०) हुं पुरुषछुं परतु केवोछु तोके (खेयन्ने के०) परपीडानो जाण तथा अवसरनो जाण छु (कुसलेपंमिते के०) डाह्यो पंमितछुं (वियत्ते के०) विवेक युक्त (मेहावी के०) परिणत बुद्धिवालो छुं (अबाले के०) बाल पणा रहित (मग्गछे के०) मार्गस्थ ए टले मार्गने विषे स्थित रह्यो (मग्गविऊ के०) रुडा मार्गनो जाण (मग्गस्सगति के०) मार्गनी गतिना (पराक्कमण्णू के०) पराक्रम तेनो जाणछु (अहमेयंके०) तेन णी हु ए (पउमवरपोमरीयके०) प्रधान पौमरीक कमलने ए पुष्करणी थकी (उन्नि क्खिस्सामित्ति के०) उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) ए पूर्वो क्त वचन बोलतो जेटले (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (अनिक्कमेति के०) पुष्करणी मांहे प्रवेश करेछे (तंपुस्करिणीके०) ते पुष्करिणी मांहे (जावजावचणअनिक्कमेइके०) जेम जेम जायछे अतिक्रमेछे (तावतावचणके०)तेम तेम ते पुरुष पुष्करणी माहे (महते उदए के०) महोटा अगाध पाणीने विषे (महंतेसेए के०) घणा कादवने विषे (प हीणेतीर के०) एक कांठो मूकी बीजे कांठे (अपत्तेके०) अण पहोतों एटले न पहो तो अने (पउमवरपोमरीयंके०) पौमरीक कमले पण पहोतो नही तेने उद्धरी पण शक्यो नही (णोहव्वाए के०) कांठे रह्यो नही (णोपाराएके०) पार पण पाम्यो नही कमलपण लइ नशक्यो (अंतरापोस्करिणीए के०) विचाले पुष्करणी माहेज (सेयसि के०) का दवने विषे (निसन्ने के०) खुची रह्यो एटले वेहु तीर थकी भ्रष्ट थयो अने कम लने पण उद्धरी न शक्यो अने पोते पण कादवमा खुची रह्यो नीकली शक्यो नही (पढमेपुरिसजाए के०) एटले प्रथम पुरुष जात जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—श्रीसूत्रकृतांगस्य प्रथम श्रुतस्कधउक्त ॥ अथ द्वितीय. प्रारभ्यते । त

पश्यति। किंनूत । तीरात्परिचष्टमनवाप्तपद्मवरपौंडरीकमुन्नयच्रष्टमतरालएवावसीदंत च दृष्ट्वा तमेवमवस्थं पुरुष ततोसौ द्वितीय पुरुषस्तं प्राक्तन पुरुषमेव वदेत् ॥ अहोइति खेदे। सर्वत्र णमिति वाक्यालकारे। इत्थ्योयोयं कर्दमे निमग्नः पुरुष सोखेदज्ञोऽकुशलोऽ पंडितोव्यक्तोमेधावी बालोनमार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञ । अकुशलत्वा दिके कारणमाह । यद्यस्मादेषपुरुषएतत्कृतवान् । यद्यह खेदज्ञ कुशलइत्यादि नणित्वा पद्मवरपौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामीत्येव प्रतिज्ञातवान् । नचैतत्पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथाऽनेनोत्क्षेप्तुमारब्ध नैवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरुषोमन्यतइति ॥७॥ ततोहमेवा स्योत्क्षेप णे कुशलइति दर्शयितुमाह । (अहमंसीत्यादि) जावदोच्चेपुरिसाजाएत्ति। सुगम ॥ ८॥ तृतीयं पुरुषमधिकृत्याह।(अहावरेतच्चेइत्यादि) सुगम यावच्चतुर्थ. पुरुष जातइति ॥ ए॥

अह निक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव परक्कमण्णू अन्नतराउ दिसाउ वा अणुदिसाउ वा आगम्म तं पुक्खरिणि तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पा सति तं एग महत पउमवरपोंमरीयं जावपडिरूव ते तञ्च चत्तारि पुरि सजाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवर पोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरापुक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से निक्खू त एव वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स गति परक्कमण्णू जन्न एते पुरिसा एव मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एय पउमवपोंमरीय एय उन्निखेतव्व जहा ण एते पुरिसा मन्ने अहमंसि निक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव मग्ग स्स गतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उण्णिक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से निक्खू णो अन्निक्कमे त पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु नो पउमवरपोंमरीया उप्पया हि अहसे उप्पति ते पउमवरपोंमरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए सम णाउसो अहे पुण से जाणितव्वे नवति नतेति समणं नगवं महावीर वहवे निग्गथाय निग्गंथीउय वदति नमसति वंदेत्ता नमसित्ता एवं वयासि किट्टिए नाए समणाउसो अहं पुण से ण जाणामो स मणाउसोत्ति समणे नगव महावीरे तेय वहवेनिग्गथेय निग्गथीउय आ

टीका—प्रथमश्रुतस्कधानंतरं द्वितीय. समारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । इहान तरश्रुतस्कंधे योर्थ समासतोऽनिहितोऽसावेवानेन श्रुतस्कधेन सोपपत्तिकोव्यासेनानि धीयते । तएव विधय. सुसंगृहीताजवति येपा समासव्यासाञ्यामनिधानमिति । यदि वा पूर्वश्रुतस्कंधोक्तएवार्थोऽनेन दृष्टांतद्वारेण सुखावगमार्थ प्रतिपाद्यतइत्यनेन सबंधे नायातस्यास्य श्रुतस्कन्धस्य संबधीनि सप्त महाध्ययनानि प्रतिपाद्यते । महांति च ता न्यध्ययनानि च पूर्वश्रुतस्कधाध्ययनेन्योमहत्वादेतेपामिति । तत्र महच्छब्दाध्ययनशब्दयो र्निक्षेपार्थं निर्युक्तिरुदाह । णामठवणा दविए खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसो खलु म ह तमि निरकेवो ठविहो होति ॥ १ ॥ (णामठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रका लनावात्मकोमहति पड्विधोनिक्षेपोनवत्ति । तत्र नामस्थापने सुज्ञाते द्रव्यमहदागमतो नोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्त । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्य तिरिक्तं सचित्तमिश्रनेदास्त्रिधा । तत्रापि सचित्तद्रव्यमहतऔदारिक शरीर तत्रौदारिकं योज नसहस्रपरिमाण मत्स्यशरीर वैक्रियं तु योजनशतसहस्रपरिमाण । तैजसकार्पणे तु लोका काशप्रमाणे । तदेतदौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणरूप चतुर्विध द्रव्य सचित्तमहदचित्तमहत् समस्तलोकव्याप्यचित्तमहास्कध । मिश्रं तु तदेव मत्स्यादिशरीर क्षेत्रमहत् लोकाकाश कालमहत्सर्वाद्धानावमहदौदयिकादिनावरूपतया पोढा । तत्रौदयिकोनाव सर्वससा रिषु विद्यतइति कृत्वा बह्वाश्रयत्वान्महान् नवति । कालतोप्यसौ त्रिविध । तद्यथा । अनाद्यपर्यवसितोऽनव्यानामनादिसपर्यवसितोनव्याना सादिसपर्यवसितोनारकादीनामि ति । क्षायिकस्तु केवलज्ञानदर्शनात्मक साद्यपर्यवसितत्वात्कालतोमहान् क्षायोपशमि कोप्याश्रयबहुत्वादनाद्यपर्यवसितत्वाच्च महानिति । औपशमिकोपि दर्शनचारित्रमोहनी यानुदयतया शुननावत्वेन च महान् नवति । पारिणामिकस्तु समस्तजीवाजीवाश्रयम हत्वान्महानिति । सान्निपातिकोप्याश्रयबहुत्वादेव महानिति वक्त । महदध्ययनस्यापि नामादिक पोढानिक्षेप दर्शयितु निर्युक्तिरुदाह । "णामठवणा दविए खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसो खलु अस्रयणे निरकेगे ठविहो होति" ॥ २ ॥ (नामठवणेत्यादि) अध्ययनस्य नामादिक पोढा निक्षेप । सचान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादितइति नेह प्रतन्य ते । अत्रच श्रुतस्कधे सप्त महाध्ययनानि तेपामाद्यमध्ययन पौण्डरीकाख्य तस्य चोपक्र मादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपणीयानि । तत्रोपक्रमआनुपूर्वी,नाम,प्रमाण,वक्त व्यता,र्थाधिकार, समवतार, नेदात्पोढा । तत्र पूर्वानुपूर्व्या प्रथममिद पश्चानुपूर्व्या स प्तमगन्नगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासोने द्विरूपोने सति पंचाशच्छतान्यष्टात्रिंशदधिकानि न वति नाम्नितु पट् । तत्रापि क्षायोपशमिके नावे सर्वस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वा त्प्रमाणचिंतायां जीवगुणप्रमाणे वक्तव्यतायां सामान्येन सर्वेष्वध्ययनेषु स्वसमयवक्तव्य

रिणि के०) ते पुष्करणी माहे पेठो नहीं (तीसेपुरकरिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीनेज (सद्दकुज्जा के०) शब्द करेछे (उप्पयाहिखलुनोपउमवपोमरीयाउप्पयाहि के०) अहोपुंमरीक कमल ए पुष्करणी मांहेथी उपडीने बाहेर आव बाहेर आव एम बे वार कह्यो (अहसेउप्पतितेपउमवरपोमरीएके०) हवे ते पुमरीक कमल त्याथी उपड्यो ॥१०॥ (किट्टिए के०) हवे ए दृष्टांत देखाडीने (नाएसमणाउसोके०) श्रीमहावीर देव शिष्य आगले अंतर जाव मेलवेछे के अहो आयुष्यमंत श्रमण महात्मा उ तमने ए दृष्टांत कह्यो तेना (अठे के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (जाणितवे नवति के०) जाणोछो एम कहे थके तेवारे (नंतेति के०) हे नगवान् एवो शब्द कहीने (समणनगवमहावीर के०) तपस्वी नगवंत श्रीमहावीरदेवने (बहवेनिग्गथाय के०) घणानिर्ग्रंथ (निग्गथीउंयवदंति के०) घणी साधवी ते श्रीमहावीर देवने वांदे (नमंसति के०) नमस्कार करे (वंदेत्ता के०) वंदना करीने (नमंसित्ता के०) नमस्कार करीने (एववयासि के०) एम बोल्या (किट्टिएनाएसमणाउसो के०) के हे नगवंत श्रमणआयुष्यमंत तमे जे दृष्टांत कह्यो तेना (अठ के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (णजाणामो के०) अमे नथी जाणता तेवारे श्रीमहावीर देव (समणाउसोत्ति के०) हे श्रमणो आयुष्यमंत साधुउ एवो शब्द कहीने (समणेनगवमहावीरे के०) श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देव (तेयबहवेनिग्गंथेय के०) ते घणा निग्रंथ (निग्गथीउंय के०) घणी साधवीने (आमंतेता के०) आमंत्रण करीने (एववयासी के०) एम कहेछे (हंनोसमणाउसोते के०) अहो साधुउ तमे पुछ्यो ते (आइरकामि के०) हुं तमने कहुंछुं (विनावेमि के०) प्रगटार्थे कहुंछुं (किट्टेमि के०) तेना पर्याय कहुंछुं (पवेदेमिके०) हेतु दृष्टांते करी तमारे चित्तने सुगम थाय तेम कहुंछुं (सअठं के०) अर्थ सहित (सहेउके०) हेतुये सहित (सनिमित्तंके०) कारण सहित (जुज्जोजुज्जो के०) वली वली (उवदंसेमिके०) देखाडीश (सेबेमिके०) ए हुं कहुंछुते तमे सानलो॥११॥

॥ दीपिका–अथ पंचम पुरुषमाश्रित्याह । अथ निक्षुर्निर्दोषाहारनोजी रूक्षोरागद्वेषरहितस्तीरार्थी संसाराब्धितीरानिलाषी । खेदज्ञइत्यादिविशेषणानि पूर्वं व्याख्यातानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोवा आगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा तन्मध्यदेके पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान्पश्यति पंकनीरमग्नान् । दृष्ट्वा च सनिक्षुरेवं वदेत् अहो इमे चत्वारोपि पुरुषाअक्षेत्रज्ञाअकुशलान मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञा । यस्मात्ते पुरुषाएव ज्ञातवंतोयथा वयं पुंडरीकमुन्निक्षेप्स्यामउतुखनिप्याम. । नच तत्पुंडरीकमेवमुत्क्षेप्तव्यं यथैते मन्यते । किंतु अहमस्मि निक्षुरूक्षोयावन्मार्गस्य ग

त्वादन्येपीक्ष्वाकादय परिगृह्यते । एतदेव दर्शयति । ये चान्ये महर्धिमंतोमहेन्य को टीश्वरास्ते सर्वेपि पौंडरीकान्नवति । तु शब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । येचान्ये विद्याक लापोपेतास्ते पौंडरीकाइति । साम्प्रत देवगतो प्रधानस्य पौंडरीकत्व प्रतिपादयन्नाह । नव णवइयाणमतर. जोतिसवेमाणियाणि देवाणं ॥ जे तेसि पवरा खलु, ते होंति पुंडरीयाउ ॥ ए ॥ नवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकाना चतुर्णा देवनिकायानां मध्ये ये प्रवरा प्रधानाइंद्रसामानिकादयस्ते प्रधानाइति कत्वा पौंडरीकान्नियानान्नवति । साप्रतमचित्त द्रव्याणा यत्प्रधान तत्पौंमरीकत्वप्रतिपादनायाह । " कसाण दूसाण, मणिमोत्तियसि लप्पवालमादीण ॥ जे तेसिं पवरा खलु ते होंति पोंमरीयाउ ॥ १० ॥ कांस्याना म ध्ये जयघटादीनि दूष्याणा चीनांशुकादीनि मणीनामिंद्रनीलवैदूर्यपद्मरागादीनि रत्नानि मौक्तिकाना यान्यनेकवर्णसस्थानप्रमाणाधिकानि । तथा शिलाना मध्ये पांडुकबला दय शिलास्तीर्थकज्जन्माभिषेकसिंहासनाधारनूतास्तथा प्रवालाना यानि वर्णादिगुणोपे तान्यादिग्रहणाज्जात्यचामीकर तद्विकाराश्चानरणविशेषा परिगृह्यते । तदेवमनतरोक्ता नि कास्यादीनि प्रवराणि तानि चित्तपौंमरीकाण्यनिधीयतइति। मिश्रद्रव्यपोंमरीक तु ती र्थकच्चक्रवर्त्यादयएव प्रधानकटककेयूराद्यलंकारालकृताइति । द्रव्यपौंडरीकानतर क्षेत्र पौंमरीकानिधित्सयाह । " जाइ खेत्ताइ खलु, सुहाणुनावाइ होंति लोगमि ॥ देवकु रुमादियाइ, ताइ खेत्ताइ पवराइं " ॥ ११ ॥ (जाइमित्यादि) यानि कानिचिदिह देव कुर्वादीनि शुनानुनावानि क्षेत्राणि तानि प्रवराणि पौंडरीकानि गानानि नवति । सां प्रतं कालपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " जीवा नवट्ठितीए, कायठितीए य होंति जे पवरा॥ ते होंति पौंमरीया, अवसेसा कडरीयाउ ॥ १२ ॥ (जीवाइत्यादि) जीवा प्राणिनोन्न वस्थित्या च ये प्रवरा प्रधानास्ते पौंडरीकान्नवति शेषास्त्वप्रधाना कमरीकाइति । तत्र नवनस्थित्या देवाअनुत्तरोपपातिका प्रधानान्नवति । तेषा यावद्भव शुनानुनावत्वात्का यस्थित्या तु मनुष्या शुनकर्मसमाचारा सप्ताष्टनवप्रमाणानि मनुष्येषु पूर्वकोट्यायुष्के ष्वनुपरिवर्त्यानतम्नवे त्रिपल्योपमायुष्केषूत्पादमनुनूय ततोदेवेषूत्पद्यतइति कत्वा ततस्ते कायस्थित्या पोंमरीकान्नवत्यवशिष्टास्तु कडरीकाइति । कालपौंडरीकानतर गणनासस्था नपौंडरीकद्वयप्रतिपादनायाह । " गणणाए रज्जू खलु सवाण चेव होंति चउरस । ए याइ पोंमरीगाइ होंति सेसाइ इयराइ " ॥ १३ ॥ (गणणाएइत्यादि) गणनया सख्य या पोंमरीक चित्यमान दशप्रकारस्य गणितस्य मध्ये रज्जुगणित प्रधानत्वात्पौंमरीक । दशप्रकार तु गणितमिद । परिकम्मुरज्जुरासी, ववहारे तह कलासवणे य ॥ पुग्गलजाव तावे, घणे य घणवग्ग वग्गेय । एषा सस्थानाना मध्ये समचतुरस्र सस्थान प्रवर त्वात्पौंमरीकमित्येवमेते द्वे अपि पौंमरीके शेषाणि तु परिकर्मादीनि गणितानि न्यग्रो

व्यापारा । सकर्दम । यथा पंकेमग्नमात्मानमुद्धर्तु डुःशक्यं । एवविषयेष्वपीति विषय पंकयो साम्य । जनं सामान्यलोकं जानपदा आर्यदेशजातास्तानाश्रित्य तानिबहूनि पु डरीकाणि उक्तानि राजान चक्रवर्त्यादिकमाश्रित्य पद्मवरपुंडरीकमुक्त । अन्यतीर्थिकानाश्रि त्य ते चत्वार पुरुषाउक्ता । तेषा राजपुंडरीकोद्धरणे सामर्थ्याभावाद्धर्मं चाऽऽत्मन्याश्रित्य सनिक्षुरुक्त । तस्यैव राजपुंडरीकोद्धरणेसमर्थत्वात् धर्मतीर्थं च खल्वाश्रित्य मया तत्ती रमुक्तं धर्मदेशनां चाश्रित्य मया सनिक्षो सबधी शब्दउक्त. । निर्वाण मोक्षंचाश्रित्य पु डरीकस्योत्पातउक्त । एवमेतल्लोकादिक च खल्वात्मन्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से ए तत्पुष्करिण्यादिक दृष्टांतत्वेनकिंचित्साधर्म्यादेवमुक्तं ॥ १२ ॥

॥ टीका–तदधुना भगवान् पूर्वोक्तस्य दृष्टांतस्य यथास्व दार्ष्टांतिके दर्शयितुमाह ॥ (लोगंचेत्यादि) लोकमिति मनुष्यक्षेत्र । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थ । खल्विति वाक्यालंकारे । मयेत्यात्मनिर्देश । योयं लोकोमनुष्याधारस्तमात्मन्याहृत्य व्यवस्थाप्य अपाहृत्य वा आयुष्मन् श्रमण आत्मनावा मयाऽऽहृत्य न परोपदेशत. सा पुष्करिणी प आधारभूतोक्ता । तथा कर्म चाष्टप्रकार यद्बलेन पुरुषपौंडरीकाणि भवति । तदेवभूतं क र्म मयात्मन्याहृत्य आत्मनावा आहृत्यअपाहृत्य वा । एतडुक्तं भवति । हेश्रमण आयु ष्मन् सर्वावस्थाना निमित्तभूतं कर्माश्रित्य तडुदक दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं कर्मचात्र दार्ष्टा तिक भविष्यति । तत्रेञ्छामदनकामा शब्दादयोविषयास्ते एव भुज्यंतइतिभोगा । यदि वा कामाइञ्छारूपामदनकामास्तु भोगास्तान् मयात्मन्याहृत्य सेय कर्दमोऽभिहितस्तथा पके निमग्नोडुःखेनात्मानमुद्धरत्येव विषयेष्वासक्तोनात्मानमुद्धर्तुमलमित्येतत्कर्दमविष ययो साम्यमिति । यथा जनं सामान्येन लोक तथा जनपदे भवाजानपदाविशिष्टार्यदे शोत्पन्नागृह्यते । ते चार्धषड्विंशतिजनपदोद्भवाइति तांश्च समाश्रित्य मया दार्ष्टांतिकत्वे नांगीकृत्य तानि तानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि दृष्टांतत्वेनाभिहितानि । तथा राजा नमात्मन्याहृत्य तदेकं पद्मवरपौंडरीक दृष्टांतत्वेनाभि हित तथान्यतीर्थिकान् समाश्रित्य ते चत्वार पुरुषजाताअभिहितास्तेषा राजपौंडरीकोद्धरणे सामर्थ्यवैकल्यात् । तथा धर्मच खल्वात्मन्याहृत्य श्रमणायुष्मन सनिक्षु रूक्षवृत्तिरभिहितस्तस्यैव चक्रवर्त्यादिराज पद्मवरपौंडरीकोद्धरणसामर्थ्यसद्भावाद्धर्मं तीर्थंच खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं । तथा सद्धर्म देशना चाश्रित्य मया सनिक्षुसबंधी शब्दोऽभिहितस्तथा निर्वाण मोक्षपदञोप कर्मक्षयरूपमीषत् प्राग्भाराख्य भूभागोपर्यवस्थितक्षेत्रखम चात्मन्याहृत्य सपद्मवरपौ डरीकस्योत्पातोऽभिहितइति । साप्रतं समस्तोपसहारार्थमाह । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एत ल्लोकादिकंच खल्वात्मन्याहृत्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करि ण्यादिक दृष्टांतत्वे न किंचित्साधर्म्यादेवमेतडुक्तमिति ॥ १२ ॥

तथा सीयतेऽववध्यंते यस्मिन्नसौ सेय कर्दम सयस्या सा बहुसेया प्रचुरकर्दमा च ब हुश्वेतपद्मसद्भावात् स्वछोदकसन्नवाच्च बहुश्वेता वा तथा बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा प्रचु रोदकभृतेत्यर्थ । तथा लब्ध प्राप्त पुष्करिणीशब्दान्वर्थतयार्थोयया सा लब्धार्थाऽथवाऽऽ स्थानमास्था प्रतिष्ठा सा लब्धा यया सा लब्धास्था तथा पौडरीकाणि श्वेतशतपत्राणि विद्यंते यस्यां सा पौडरीकिणी। प्रचुरार्थेन मत्वर्थीयोत्पत्तेर्बहुपद्मेत्यर्थ.। तथा प्रसाद प्र सन्नता निर्मलजलता सा विद्यते यस्या सा प्रसादिका प्रासादावा देवकुलसन्निवेशा स्ते विद्यते यस्या समतत· प्रासादिका दर्शनीया शोभना सत्सनिवेशतोद्रष्टव्या दर्शन योग्या तथाऽनिमुख्ये च सदावस्थितानि रूपाणि राजहंसचक्रवाकसारसादीनि गजमहि षमृगयूथादीनि वा जलातर्गतानि वा करिमकरादीनि वा यस्या साऽनिरूपेति तथा प्र तिरूपाणि प्रतिबिंबानि विद्यंते यस्या सा प्रतिरूपा। एतडुक्तं नवति । स्वछत्वात्तस्या सर्व प्रतिबिंबानि समुपलन्यते तदतिशयरूपतया वा लोकेन तत्प्रतिबिंबानि क्रियते सा प्र तिरूपेति । यदिवा (पासादीयादरिसणीयाअनिरूवापडिरूवत्ति) पर्यायाइत्येते चत्वारो प्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ता ॥ २ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्या । णमिति वाक्याल कारे । तत्र तत्रेत्यनेन वीप्सापदेन पौमरीकैर्व्यापिकत्वमाह। देशेदेशे इत्यनेन त्वेकैकप्रदे शे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ पुष्करिण्या प्रदेशोयत्र तानि न सतीति । यदिवा देशेदेशइत्येतत्प्रत्येकमनिसबध्यते । तत्रतत्रेति । कोर्योदेशेदेशे तस्मिंस्त स्मिन्निति चार्योदेशैकदेशइति । यदिवा श्रत्यादरख्यापनायैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदा नि । तेषु च पुष्करिण्या सर्वप्रदेशेषु बहूनि प्रचुराणि पद्मान्येव वराणि श्रेष्ठानि पौडरी काणि पद्मवरपौडरीकाणि । पद्मग्रहण ब्रव्याग्रव्यवछेदार्थ। पौंडरीकग्रहण श्वेतशतपत्र प्रतिपत्त्यर्थ। वरग्रहणमप्रधाननिवृत्त्यर्थ। तदेवभूतानि बहूनि पद्मवरपौडरीकाणि (वुड्य त्ति) उक्तानि प्रतिपादितानि विद्यतइत्यर्थ । आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि त थोछ्रितानि पंकजले अतिलंघ्योपरि व्यवस्थितानि तथा रुचिर्दीप्तिस्ता लात्याददति रुचि लानि सद्दीप्तिमति तथा शोभनवर्णगंधरसस्पर्शवति तथा प्रसादीयानि अनिरूपाणि प्र तिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्या सर्वत पद्मावृताया । णमिति वाक्यालंकारे । ब हुदेशमध्यनागे निरुपचरितमध्यदेशे एक महत्पद्मवरपौडरीकमुक्तमानुपूर्व्येण व्यवस्थित मुछ्रितं रुचिलवर्णगंधरसस्पर्शवत् तथा प्रासादीयं दर्शनीयं अनिरूपतर प्रतिरूपतरमि ति ॥ ४ ॥ सांप्रतमेदेवानतरोक्त सूत्रचर्यं सवावत्तिचणतीत्यनेन विशिष्टमपर सूत्रचय द्रष्टव्यं। अस्यायमर्थ (सवावतित्ति) सर्वस्याअपि तस्या पुष्करिण्या सर्वप्रदेशेषु यथो क्तविशेषणविशिष्टानि बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशनागे यथोक्तवि शेषणविशिष्टं महदेक पौडरीक विद्यतइति। उनयत्रापि च समुच्चये। णमिति वाक्यालंका

तेना पुत्र (सेणावइसेणावइपुत्ताके०) सेनाधिपतिना पुत्र इत्यादिक सर्वावर्णन थकी जाणवो.॥१३॥(तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगतीएके०) कोइ एक पुरुष (सड्ढानवइके०) धर्म करवाने श्रद्धावंत धर्मार्थी होय तेने एवो (कामंतं के०) धर्मार्थी जाणीने (समणावा माहणावाके०) श्रमण ब्राह्मण मली (संके०) सम्यक् प्रकारे पोतानो धर्मप्रतिबोधवानि मित्त (पहारिंसुगमणाए के०) तेना समीपे आलोचवो चिंतवे ते केवो (तन्नअन्नतरेणध म्मेणपन्नत्तारोवयं के०) त्यां अमे अमारा धर्मना प्ररूपणहार आपणो धर्म प्ररूपशुं एवो आलोची राजाने सन्मुख आवी बोल्या (इम्मेणधम्मेणपन्नवइस्सामो के०) ए आगल कहे छे ते धर्म परूपशुं तेज कहेछे (सेएवमायाणह के०) अमे धर्म कहीशु ते एम जाणो (नयंतारो के०) अहो जय थकी राखनार (जेहामए के०) जेम ए प्रकारे अमारो (एसधम्मेसुयरकाएसुपन्नत्तेनवइ के०) ए धर्म स्वाख्यात स्वप्रज्ञसछे ॥१४॥

॥ दीपिका–एवसामान्येन दृष्टांतयोजनामुक्त्वा विशेषेण तामाह । (इहेति) इहा स्मिन् लोके । खलुर्वाक्यालंकारे । प्राच्या प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि सति विद्यते एके केचन मनुष्यानवति । आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्प न्ना । तद्यथा । आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तदन्येऽनार्याएके उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राएके कायो महाकाय प्रांशुत्व तद्विद्यते येषां ते कायवतोन्हस्ववतोवामनकुब्जादय· सुव र्णा शोभनकांतयोऽवर्णा कृत्स्नरूक्षादिवर्णाएके सुरूपाएके डुष्टरूपास्तेषामध्ये म हान् कश्चिदेकोराजा नवति । किंनूत । महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सा र सामर्थ्यं धनं वा यस्य सतथा । इत्येव राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्र साधयन् तिष्ठति । तत्र डिंबं परानीकनयं डमरं स्वराष्ट्रक्षोन । तस्य च राज्ञ पर्षत् स, ना नवति । तद्यथा । उग्रातत्कुमाराश्च उग्रपुत्रा । एवं नोगपुत्रादयोपि ज्ञेया । (ले च्छइत्ति) लिप्सुकोवणिगित्यर्थः । प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्र्यादय सेनापतयश्च एके ॥ १३ ॥ तेषा मध्ये कश्चिदेवैक श्रद्धावान् धर्मलिप्सुर्नवति । कामं निश्चितं तं श्रद्धाव तं श्रमणावा तदंतिकगमनाय प्रधारितवतस्तत्प्रतिबोधाय तत्समीपे गमन चिंतितवत । तत्रान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमिति विचिंत्य तं राजानं स्वकीये न धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राजांतिकं गत्वा एवमूचु । यथाहं वदामि एवं न वंतोयूयं जानीत यथा येन प्रकारेण मयैषधर्म स्वाख्यात सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिक· स्वमतानुरागी राजादे स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्य पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी रा जानमुद्दिश्यैव धर्मदेशना चक्रे ॥ १४ ॥

॥ टीका–तदेवं सामान्येन दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्योजना कृत्वाऽधुना विशेषणप्रधानभूत

एस पुरिसे मन्ने ॥ ७ ॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्ते मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेय पउमवरपोमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अन्निक्कमे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अन्निक्कमेइ तावतावचण महते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अ तरा पोक्करिणीए सेयसि णिसन्ने दोच्चे पुरिसजाते अहावरे तच्चे पुरिस जाते अह पुरिसे पच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणी ए तीरे ठिच्चा पासति त एगं महं पउमवरपोमरीयं अणुपुब्बुट्ठिय जाव प डिरूवं ते तत्र दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीर अपत्ते पउमवरपो मरीय णोहव्वाए णोपाराए जाव सेयसि णिसन्ने तएणसे पुरिसे एवं वया सी अहो ण इमे पुरिसा अखेयन्ना अकुसला अपमिया अवियत्ता अ मेहावी बाला णोमग्गत्था णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्न एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोमरीय उखिक्खिस्सामो नोय खलु एय पउमवरपोमरीयं एवं उन्निक्केतव जहाणं एए पुरिसा मन्ने अह मंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्ते मग्ग विऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेय पउमवरपोमरीय उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा सेपुरिसे अन्निक्कमे त पुक्करिणिं जाव जावचण अन्निक्कमे तावतावचणं महते उदए महंते सेए जावअतरा पोक्करिणीए सेयसि णि सन्ने तच्चे पुरिसजाए ॥ ८ ॥ अहावरे चउत्ते पुरिसजाए अह पुरिसे उत्त राउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति त महं एग पउमवरपोमरीय अणुपुब्बुट्ठियं जावपडिरूव ते तत्र तिन्नि पुरिस जाते पासति पहीणे तीर अपत्ते जाव सेयसि णिसन्ने तएण से पुरिसे ए वं वयासी अहो ण इमे पुरिसा अखेयन्ना जावणोमग्गस्सगतिपरिक्कम ण्णू जन्न एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे त पउमवरपोमरीय उन्निक्खिस्सामि

स्वदर्शनानुरजितोन्यस्यापि राजादे स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्य पुरुषजातस्त ज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैव धर्मदेशना चक्रे ॥ १४ ॥

तं जहा उड्ढपादतला अहे केसग्गमछया तिरियंतेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एसजीवे जीवति एसमय णोजीवइ सरीरे धरमाणे धरइ विणठमिय णोधरइ एयं त जीविय भवति अदहणाए परेहिं निज्जइ अगणिज्जामिए सरीरे कवोतवन्नाणि अठीणि भवंति आसंदीपं चमापुरिसा गाम पच्चागच्छंति एवं असंते असंविज्जमाणे जेसितं असं ते असविज्जमाणे तेमित सुयरकाय भवति अन्नोभवति जीवो अन्नं सरीर तम्हा तेएव नोविपडिवेदेति अयमाउसो आयादीहेतिवा हस्सेतिवा परिमंमलेतिवा वट्टेतिवा तसेतिवा चउरंसेतिवा आयतेतिवा छलंसिए तिवा अठसेतिवा किण्हेतिवा णीलेतिवा लोहियहालिद्दे सुक्किलेतिवा सुब्भिगंधेतिवा डुब्भिगधेतिवा तित्तेतिवा कडुएतिवा कसाएतिवा अंबि लेतिवा महुरेतिवा कक्कडेतिवा मउएतिवा गुरुएतिवा लहुएतिवा सि एतिवा उसिणेतिवा निद्धेतिवा लुक्खेतिवा एव असते असंविज्जमाणे जे सित सुयरकायं भवति अन्नोजीवो अन्नसरीर तम्हा तेणो एव उवलब्भति १५

अर्थ–हवे त्या आदि पुरुषजात ते तज्जीव तच्छरीरवादी जीव छे ते राजाने उद्देशी पोताना धर्मनी देशना आपेछे (तजहा के०) ते जेमछे तेम कहेछे (उड्ढपादतला के०) पगना तलीआ थकी उपरे अने (अहेकेसग्गमछया के०) मस्तकना केशाग्र थकी नीचे त था (तिरियतेयपरियंते जीवेके०) तिर्छो त्वचा जे चामडी ते पर्यंत जीव जाणवो एटला सी म शरीर थकी निकलतो जीव जुदो देखातो नथी तेथीज जणायछे के तेज शरीर अने तेज जीव एटले एशरीर तेहज जीवछे परतु ए शरीर थकी आत्मा जुदोछे एम न जाणवु (एसआयापज्जवेकसिणे के०) ए जे शरीरछे तेहिज आत्मानु सपूर्ण पर्याय अवस्था विशेष जाणवो (एसजीवेजीवति के०) जेटलो काल ए काया जीवे तेटलो काल ए जीव पण जीवे (एसमयणोजीवइ के०) ए शरीर मरण पामे तेवारे जीव पण म रण पामे पण णोजीवइ एटले जीवे नहीं (सरीरेधरमाणेधरइ के०) ए शरीर ज्यां सुधी पाचभूतने धरे त्या सुधी आत्माने पण धरे (विणिठमिय णोधरइके०) ए शरीर विणठे

के०) ते पुरुष (अनिक्कमेतंपुरकरिणिंके०) ते पुष्करणीमां चाल्यो (जावजावचणंअ निक्कमेइके०) जेम जेम ते कमल सामो आवीने माहे प्रवेश कस्यो (तावतावचण के०) तेमतेम (महंतेउदएके०) उंमापाणी माहे (महतेसेएके०) महोटा कादवमा हे खूतो (पहीणेतीरके०) वाव्यनातीर थकी पण च्रष्ट थयो (अपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अने प्रधान पुमरीक कमलने पण अण पाम्यो (णोहवाएके०) एक कांठा थकी च्रष्ट (णोपाराएके०) अने बीजा कांठाने पण नपाम्यो तथा कमल पण उध्दरी नशक्यो (अंतरापोरकरिणीएके०) पुष्करणीने विचाले ज (सेयंसिके०) कादव माहे (णिसन्ने के०) खूची रह्यो (दोच्चेपुरिसजातेके०) एटले बीजो पुरुष जात कह्यो ॥ अथ हवे ए बीजो पुरुष कह्यानंतर त्रीजो पुरुष कहेछे ए त्रीजो पुरुष पश्चिमदिशा थकी आवी पुष्करणीने कांठे उन्नो रहीने आगला पुरुषनी पेरे समस्त वचन बोली कमल उध्दरवा ने अर्थे पुष्करणीमां प्रवेश कर्युं पण ते कमलने उध्दरी नशक्यो पोते पुष्करणीने अ तराले पाणी अने कादव माहे खूतो एटले त्रीजो पुरुष जात कह्यो॥ ८ ॥ हवे चोथो पुरुष उत्तर दिशा थकी आवीने पुष्करणीने तीरे उनो रही आगला त्रण पु रुषनी रीतेज वचन बोली तेमनी पेरेज कमल उध्दरवाने पुष्करणी माहे प्रवेश कस्यो परतु तेपण कमल उध्दरी नशक्यो अने वाव्यने अतराले ते त्रण पुरुषोनीपेरे कादव माहेज खूची रह्यो एटले चोथो पुरुष जात कह्यो ॥ ए ॥

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीय पुरुषजात पुरुषइति । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्ना गादागत्य ता पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा पश्यति पद्मं तीरस्थश्च तं पूर्वस्थित पुरु षमेकं पश्यति । तीराद्भ्रष्टं पद्मप्राप्त उनयभ्रष्ट दृष्ट्वा सद्वितीय पुरुषस्तमेव वदेत् अहोखेदे । णं वाक्यालकारे । योयं कर्दमे निमग्न पुरुष सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपडितोऽ व्यक्तोमेधावी बालोन मार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञ ।यस्मादेषपुरुष कुश लइत्युक्त्वा पद्ममुत्क्षेप्स्यामीत्येव प्रतिज्ञा कृतवान् । नचैतत् पद्ममेवमुत्क्षेप्तव्य यथायं पुरु षोमन्यतइति नाव । शेष सुगम ॥ ७ ॥ तत (अहमसीत्यादि) अहमेवास्य पुडरी कस्योत्क्षेपणे कुशलइतिनाव । शेषं सुगमं (अहावरेतच्चेत्ति) सुगम । ॥ ८ ॥ (अहा वरेचउत्थेत्ति) सुगमं ॥ ए ॥

॥ टीका—अथ प्रथमपुरुषादनतरमपरोद्वितीय पुरुषजात पुरुषइति । अथवेति वा क्योपन्यासार्थे । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिनागादागत्य ता पुष्करिणीं तस्याश्च पुष्करि ण्यास्तीरे स्थित्वा तत्रस्थश्च पश्यति । महदेक पद्मवरपौडरीकमानुपूर्व्येण व्यवस्थितं प्रा सादीयं यावत्प्रतिरूपमत्र चास्मिश्च प्रतीते तीरे व्यवस्थितस्तंच पूर्वव्यवस्थितमेक पुरुषं

आकतुल समान सुंहालो फरशछे (गुरुएतिवा के०) लोहवत् नारी फरशछे (लहुएति वा के०) अर्कतुलवत् हलवो फरशछे (सिएतिवा के०) शीतल फरशछे (उसिणेति वा के०) उष्ण फरशछे (निद्धेतिवा के०) चीकणो फरशछे (लुक्खेतिवा के०) लुखो फरशछे एटला फरश मांथी आत्मानो कयो फरशछे (एवमसंतेअसंविद्धमाणेजेसिं के०) ए कारण माटे जे आत्माने असतो अविद्यमान कहे (तंसुयरकायंनवति के०) तेनो पक्ष नलो स्वाख्यात जाणवो वली जे (अन्नोजीवो के०) अन्य जीव (अन्नंस रीर के०) अने शरीर पण अन्यछे एम कहेछे (तम्हाके०) तस्मात् (तेणो एववलम्र ति के०) ते एवातना अजाण पणाने लीधे नथी जाणता माटे ते नास्तिकछे ॥ १५ ॥

॥ दीपिका-तद्यथा । ऊर्ध्वं पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक्च त्वक्पर्यंतो जीव । कोर्थ । यदेव शरीर सएव जीव । न शरीरादन्य कश्चिदात्मास्ति । अयं कायएवात्मन. पर्यंतोऽवस्थाविशेष कृत्स्न संपूर्ण शरीरोपलंभे जीवएवोपलब्धइत्य र्थ । एषकायोयावज्जीवति तावज्जीवोपि जीवतीत्युच्यते । एषकायोयदा मृतस्तदा जीवोपिमृतइति व्यपदिश्यते । यावच्छरीरमव्यंगं धरति तिष्ठति तावज्जीवोपि विनष्टे शरी रे जीवोपि न धरति विनष्टइत्यर्थ । तदेव यावदेतच्छरीरमच्युतं तावदेव जीवस्य तज्जीवि तं नवति विनष्टे शरीरे तद्रूपोजीवोपि विनष्टइति कृत्वाऽऽदहनायासमतादहनार्थं श्म शानादौ नीयतेऽसौतस्मिश्च शरीरेऽग्निना ध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलभ्यते न कश्चित्तदपरोजीव' । ते च तद्वाधवाजघन्यतोपिच चत्वार । आसंदी मचक सपचमो येषांते आसदीपचमा पुरुषास्त कायमग्निना ध्मापयित्वा स्व ग्राम प्रत्यागच्छति । यदि पुन रात्मा कायाद्भिन्न स्यात्तदा निर्गच्छन् दृश्येत नच दृश्यते तस्मात्तज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । एवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानोयेषामयं पक्षोयत्काये तिष्ठन् गवश्च संवे द्यमानोऽननुभूयमानोजीवइति तेषा तत् स्वाख्यातं नवति । येषा पुनरन्योजीवोऽन्यच्छरीर मेवभूतोऽप्रमाणकएवांगीकारस्तस्मात्ते मूढतया प्रवर्तमानाएव वक्ष्यमाण न विप्रतिवेदयंति जानंति । यथा हे आयुष्मन् अयमात्मा शरीराद्भिन्न स्वीक्रियमाण किंपरिमाण स्या दिति वाच्य । किंदीर्घ किंन्हस्वइत्यादि संस्थानेषु किंपरिमंडलइत्यादि वर्णेषु किंकृष्णइ त्यादि गधयो किं सुरनिगंधइत्यादि । रसेषु किं तिक्तइत्यादि स्पर्शेषु किंकर्कशइत्यादि । तदेव संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शानामनावादसन्नविद्यमानोऽसंवेद्यमानोपि येषा तत् स्वा ख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरमिति पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात् ते जीववादि नोनैवात्मानमुपलभंते ॥ १५ ॥

॥टीका-तद्यथोर्ध्वमुपरि पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक् च त्वक्पर्यंतोजीव । एत

मंतेत्ता एवं वयासी दं नोसमणाउसो ते आइरकामि विन्नावेमि किट्टेमि पवेदेमि सच्चठ सहेउ सनिमित्तं नुज्जोनुज्जो उवदसेमि सेवेमि ॥ ११ ॥

अर्थ-(अहके०) हवे चोथा पुरुष नंतर पाचमो पुरुष कहेछे ते केवोछे तोके (नि रकू के०) निक्षण शील पचन पाचनादिक सावद्यानुष्ठान रहित निर्दोष आहार नो जी (लूहे के०) राग द्वेष रहित (तीरठी के०) संसार समुद्रना तीरनो अर्थी (खेयन्ने के०) खेदज्ञ एटले समस्त जीवोना खेदनो जाण (जावपरक्कमस्सू के०) यावत् मा र्गनी गतिना पराक्रमनु जाण अहीबीजो आगलनो वर्णन सर्व करवो एवो जाण पुरु षते (अन्नतराउदिसाउवाअणुदिसाउवा के०) अन्य कोइएक दिशा थकी अथवा वि दिशा थकी (आगम्म के०) आवीने (तपुरकरिणि के०) ते पुष्करणी (तीसेपुरकरि णीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने काठे रहीने (तएगंमहलपउमवरपोमरीयंके०) ते एक महोटु प्रधान पुमरीक कमलने (पासति के०) दीठो (जावपडिरूव के०) ते क मल ज्यांलगे प्रतिरूप सुधी पूर्वे वर्णन करेलुछे तेवो कमल दीठो (तेतछचत्तारिपुरिसजा एपासंति के०) तेणे त्यां चार पुरुषजात पूर्वोक्त चारदिशाना आवेला दीठा ते चारे पु रुष (पहीणेतीर के०) वाव्यना तीर थकी भ्रष्ट अने (अपत्तेजावपउमवरपोमरीयंणो हव्वाएणोपाराए के०) पुमरीक कमलने पण यावत् नथी पाम्या (अतरापुरकरिणीएके०) वाव्यने विचाले (सेयंसि के०) कादव माहे (णिसन्ने के०) खुताछे तेने देखीने (तएणंसे निरकू के०) तेवार पठी ते निक्षु साधु (त के०) ते चार पुरुषोने (एववयासि के०) एम बोल्यो (अहोणइमेपुरिसा के०) अहो ए पुरुष बापडा (अखेयन्ना के०) अखेदज्ञ (जाव णोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गनी गतिना पराक्रमना अजाण (जन्नएतेपु रिसाके०) जेम ए पुरुष (एवमन्नेके०) एम जाणे जे (अम्हेतंपउमवरपोमरीयंउन्निरिकि स्सामो के०) अमे ए कमल उद्धरी सुं तेवा विधिये उद्धरवाने अर्थे गया परतु (णोख लु के०) निश्चे थकी नहीज (एयपउमवरपोमरीयके०) ए पोमरीक कमलने (एयउन्निरिकेत व के०) एम उद्धरी शके नही (जहाणएतेपुरिसामन्ने के०) जेम ए चार पुरुष जाणे छे ते विधिये कमल उद्धरी शकाय नही (अहमंसिनिरकुलूहे के०) जेमाटे हु साधु राग द्वेष रहित (तीरठी के०) संसारना तीरनो अर्थी (खेयन्नेके०) खेदज्ञ (जावमग्ग स्सगतिपरक्कमस्सूके०) यावत् मार्गनी गतिना पराक्रमनु जाण (अहमेयपउमवरपो मरीयउन्निरिकिस्सामित्ति के०) हु ए पुमरीक कमल निश्चे थकी उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) एवु वचन कहीने (सेनिरकु के०) तेसाधु (णोअनिक्कमे त पुरक

सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मसाउअोि अभिनिवटित्ताण उवदं सेज्जा अयमाउसो मंसे अय अठी एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसे त्तारो अयमाउसो आया इय सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे करय लाउ आमलकं अभिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अय आमलए एवमेव णत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीर से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहिउ नवनीयं अभिनिव टित्ताणं उवदसेज्जा अयमाउसो नवनीय अयतु दही एवमेव णत्थि केइपुरिसे जाव सरीर से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहितो तिल्ल अभि निवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो तेल्ल अयं पिन्नाए एवमेव जाव स रीरं से जहा णाम एकेइपुरिसे इक्कूतोखोतरस अभिनिवटित्ताण उवदं सेज्जा अयमाउसो खोतरसे अय गेए एवमेव जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे अरणीतोअग्गि अभिनिवटित्ताण उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अय अग्गी एवमेव जाव सरीर एव असते असंविज्जमाणे जेसि तं सुयक्खायं नवति त अन्नोजीवो अन्न सरीर तम्हा ते मिछा ॥ १६ ॥

अर्थ-(सेजहाणामए के०) ते जेम यथा दृष्टांते छे तेम कही देखाडे छे नाम इति सनावनायेछे (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष (कोसीउ के०) पडीयार थकी (असिंके०) खड्ग काटीने (अभिनिवटित्ताणके०) देखाडे अने (उवदसेज्जा के०) कहे (अयमाउसो के०) हे आयुष्मतो आ (असी के०) तलवार (अयकोसी के०) ए पडियार एम जुदा जुदा देखाडी आपे (एवमेवणत्थिकेइपुरिसेअभिनिवटित्ताणउवदंसे त्तारोअयमाउसोआयाइयसरीर के०) जेम ए पडिहार अने ए खड्ग एम बन्ने जुदा जु दा करी देखाडे तेम एवो कोइ पुरुष शरीर अने जीवने जुदो जुदो करी देखाडनार जगत माहे नथी (सेजहाणामए के०) ए वचन यथा दृष्टांते करी देखाडेछे नाम इति सनाव नायेंछे (केइपुरिसेमुंजाउइसिय के०) जेम कोइ एक पुरुष मुज एटले तृण थकी तेनो गर्न नूत जे शली तेने (अभिनिवटित्ताण के०) जुदा जुदा काढीने (उवदसेज्जा के०) देखाडे जे ए तृण अने ए शली एम देखाडे के (अयमाउसोके०) अहो आयुष्मंत (मुं जेइपइसिय के०) ए तृण अने ए शली (एवामेवनत्थिकेइपुरिसेउवदसेत्तारोअयमाउ सोआयाइयसरीर के०) एम आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष

तिपराक्रमज्ञोऽहमेवैतत्पुंडरीकमुत्खनिष्यामीत्युक्त्वा सनिक्षुर्नातिक्रामेत्तां पुष्करिणीं न प्रविशेत्तस्यास्तीरे स्थित्वा तटस्थएव शब्दंकुर्यात् । तद्यथा । उत्पत हेपुंडरीक उत्पत इति शब्दश्रवणात्तडुत्पतितं पुंडरीकं ॥ १० ॥ दार्ष्टांतिकं योजयन् श्रीवीर शिष्यानाह । कीर्तिते कथिते ज्ञाते दृष्टांते हेश्रमणाआयुष्मंतोऽर्थं पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नव ङ्गि । एवमुक्ते नगवता बहवोनिर्ग्रंथानिग्रंथ्यश्च श्रमणं नगवंतं महावीरं वदंति कायेन नमस्यंति शब्दैः स्तुवंति । वंदित्वा नमस्कृत्वाच एवं वदेयु । तद्यथा । कीर्तितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता । अर्थं पुनरस्य न जानीमइति पृष्टोनगवान् तान् बहून्निग्रंथादीनेव वदेत् । हंतेति आमंत्रणे । हेश्रमणाआयुष्मतोयन्नवङ्गिरहं पृष्टस्तदाख्यामि आविर्नावयामि प्रकटयामि कीर्तयामि पर्यायैः प्रवेदयामि हेतुदृष्टांतैः । एकार्थिकान्येव वा एतानि कथमाख्यामीत्याह । सार्थं सहेतुरन्वयव्यतिरेकरूपः कारणं कार्यसाधनं तेन युतं नूयोनूयउपदर्शयामि ॥ ११ ॥

॥ टीका—सांप्रतमपरं पचमं तद्विलक्षणं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहनिक्खूलूहे इत्यादि) अथेत्यानंतर्ये । चतुर्थपुरुषादयमनंतरं पुरुषस्तस्यामूनि विशेषणानि । निक्षणशीलोनिक्षुः पचनपाचनसावद्यानुष्ठानरहिततया निर्दोषाहारनोजी तथा रूक्षोरागद्वेषरहितः । तौहि कर्मबंधहेतुतया स्निग्धौ । यथाहि स्नेहानावाड्जोन लगति तथा रागद्वेषानावात्कर्मरेणुर्नलगत्यतस्तड्हितोरूक्षइत्युच्यते । तथा संसारसागरस्य तीरार्थी तथा क्षेत्रज्ञः खेदज्ञोवा । पूर्वं व्याख्यातान्येव विशेषणानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोनुदिशोवाऽऽगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा समंतादवलोकयेदा बहुमध्यदेशनागे तन्महदेकं पद्मवरपौंमरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान् पश्यति यत्र च व्यवस्थितानिति । किंनूतास्त्यक्ततीरानप्राप्तपद्मवरपुंमरीकान् पंकजलावमग्नान् पुनस्तीरमप्यागतुमसमर्थान् दृष्ट्वाच तांस्तदवस्थान् ततोसौ निक्षुरेवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् । तद्यथा । अहोइति खेदे णमितिवाक्यालंकारे । इमे पुरुषाश्चत्वारोपि अखेदज्ञायावन्नोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञायस्मात्ते पुरुषाएव ज्ञातवंतोयथा वयं पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथैते मन्यंते तथोत्क्षेप्तव्यं । अपि त्वहमस्मिन् निक्षुरूपोयावन्गतिपराक्रमज्ञएतद्गुणविशिष्टोऽहमेतत्पौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामि समुद्धरिष्यामीत्येवमुक्त्वाऽसौ नातिक्रामेत् तां पुष्करिणीं न प्रविशेत् । तत्रस्थएव यत्कुर्यात्तदर्शयति । तस्यास्तीरे स्थित्वा तथाविधं शब्दं कुर्यात्तद्यथा ऊर्ध्वमुत्पततोत्पत । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हे पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यामध्यदेशात्त्वमुत्पततोत्पत । अथ तच्छब्दश्रवणानंतरं तडुत्पतितमिति ॥ १० ॥ तदेव दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुकामः श्रीमन्म

कायाद्भिन्नोजीवइति । अत्रार्थे बहून् दृष्टातानाह । तद्यथा । कश्चित्पुरुषोमुंजात्तृणविशेषात् (इसिअति) तद्गर्भनूता शलाका पृथक् कृत्य दर्शयेत् तथा मासादस्थि करतलादामलक दध्नोनवनीत तिलेभ्यस्तैलं इक्षोरसमरणितोऽग्निमनिनिर्वृत्य पृथक् कृत्य दर्शयेदेव शरीरादपि जीव नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोसन्नात्मा शरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । येषा च स्वमतानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । यदन्योजीवोन्यच्च शरीरमिति । एव मात्मा च पृथक् नोपलन्यते तस्मात्तन्मिथ्या ॥ १६ ॥

॥टीका–तद्यथा नाम कश्चित्पुरुष कोशत परिवारादसि खड्गमनिनिर्वर्त्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत्तद्यथाऽयमायुष्मानसि खड्गोयं च कोश परिवारएवमेव जीवशरीरयोरपिनास्त्युपदर्शयिता । तद्यथाऽय जीवइदंच शरीरमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदत कायान्निन्नोजीवइति । अस्मिंश्चार्थे बह्वोदृष्टाता सतीत्यतोदर्शयितुमाह । तद्यथा वा कश्चित्पुरुषोमुजात् तृणविशेषात् (इसियति) तद्गर्भनूतां शलाका पृथक्कृत्य दर्शयेत् । तथा मासादस्थि तथा करतलादामलक तथा दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलमिति । तथेक्षोरस तथाऽरणितोऽग्निमनिनिर्वर्त्य दर्शयेदेवमेव शरीरादपि जीवमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता तोऽसन्नात्माशरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । प्रयोगश्चात्र सुखडु खनाक् परलोकायायीनास्त्यात्मा तिलशश्छिद्यमानोपि शरीरकेपृथगनुपलब्धेर्घटात्मवत् व्यतिरेकेणच कोशखड्गवत्तदेवयुक्तिनि प्रतिपादितोप्यात्मानवेत् । येषा पृथगात्मदिना स्वदर्शनानुरागादेतत्स्वाख्यात नवति । तद्यथा । अन्योजीव परलोकानुयायी अमूर्तोऽन्यच्च तद्भवतृत्तिमूर्तिमच्छरीरमेतच्च पृथङ्नोपलन्यते तस्मात्तन्मिथ्या ये कैश्चिडुच्यते यथास्त्यात्मा परलोकानुयायीति ॥ १६ ॥

सेहता तहणह खणह छणह मुहह पयह आलुंपह विलुपह सहसाकारेह विपरामुसह एतावतावजीवे णत्थि परलोएवा ते णो एव विप्पडिवेदेंति तंकिरियाइवा अकिरियाइवा सुक्कडेइवा डुक्कडेइवा कल्लाणेइवा पावएइवा साढुइवा असाढुइवा सिद्धाइवा असिद्धाइवा निरएइवा अनिरएइवा एवतेविरूवरूवेहिं कम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाइं कामनोगाइं समारंनंति नोयणाए ॥ १७ ॥ एव एगेपागप्भिया णिक्कम्म मामगं धम्म पन्नवेंति तंसद्दहमाणा तंपत्तियमाणा तंरोयमाणा साढु सुयक्खाए समणेतिवा माहणेतिवा कामं खलु आउसो नम ... असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवा

इह् खलु पाईणवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवति अणुपुव्वेणं लोगं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोत्तावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे रहस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिचणं मणुयाणं एगे राया भवइ महयाहिमवंतमलयमदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरतररायलक्खणविराइयंगमगे बहुजणबहुमाणपूइए सव्वगुणस मिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धाभिसित्ते माउपिउसुजाए दयप्पिए सीमकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुरिसदे जणवयपिया जणवयपरोहिए सेउकरे केउकरे नरपवरे पुरिसपवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवर पोंमरीए पुरिसवरगंधहत्थी अद्धे दित्ते वित्ते विछिन्नविउलभवणसय णासणजाणवाहणाइसे बहुधणबहुजातरूवरतए आउगपउगसंपउत्ते विछडियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूते पडिपुणकोसकोठागाराउधागारे बलवं डुबल्लपव्वामिए उहयकंटय मलियकंटयं उहयकटय निहयकंटयं अकंटयं उहयसत्तू निहयसत्तू मलियसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू ववगयडुभिक्खमारिभयविप्पमुक्क रायवन्नउ जहाउववाइए जावपसंतडिंबडमररज्जं पसाहेमाणे विहरति तस्सणं रन्नो परिसा भवइ उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता इक्खागाइ इक्खागाइ नायना नायना कोरवा कोरवा भट्टा भट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता लेछइ लेछइपुत्ता पसत्थारो पसत्थारोपुत्ता सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तेसिचण एगतीए सड्ढाभवइ कामत समणावा माहणावा सपहारिसु गमणाए तत्थ अन्नतरेण धम्मेणं पन्नत्तारोवयं इम्मेणं धम्मेण पन्नवइस्सामो सेएवमायाणह भयतारो जेहामए एस धम्मे सुयक्खाए सुपन्नते भवइ ॥ १४ ॥

अर्थ—(इहखलुके०) ए मनुष्य लोक माहे खलुइति वाक्यालंकारे (पाईणवाके०) पूर्वदिशि (पडीणवाके०) पश्चिमदिशि (उदीणवाके०) उत्तरदिशि (दाहिणवाके०) दक्षणदिशि ए चार दिशि अथवा विदिशिए (सतेगतियामणुस्साभवतिके०) कोइ एक मनुष्य होय ते (अणु

थका तथा (सादुसुयरकाएके०) ए अमारो धर्म नलो रुडो स्वाख्यातछे अने अनेरा दर्शनी बापडा मुगध लोकने परलोकनो नय देखाडी आ लोकना सुख थकी वचेछे ते कारणे (समणेतिवाके०) अहो श्रमणो (माहणेतिवाके०) अहो ब्राह्मणो तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए धर्मने घणोज सारो कहीने (कामखलुके०) निश्चे थकी ए धर्मने इछो (आउसोके०) अहो आयुष्यमतो अमे तमने उधस्या नहीका क्या एक कपटी दर्शनीये तमने वेच्यो हतो तेकारणे अमे तमारा उपकारी छैए माटे अमने (तुमंपूययामि के०) तुमे पूजो प्रत्युपकार करो (तजहाके०) तेहिज कहेछे (असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवाके०) अशने करी पाने करी खादिमे करी स्वादिमे करी ए चतुर्विध आहारे करी पूजो (वत्थेणवाके०) वस्त्रे करी (पडिग्गहेणवाके०) पात्रादिके करी (कबलेणवाके) कबले करी (पायपुछणेणवाके०) पायपुछणे करी पूजो प्रतिलानो (तछेगेपूयणाएके०) त्या कोइ एक एवी पूजाने विषे (समाउंछिसुके०) गृद्ध थया अथवा (तछेगेपूयणाएनिकाइसु के०) त्या कोइ एक पूजाने विषे प्रवर्त्तमान थका एवा राजादिक लोकने ते नास्तिको पोताना धर्मने विषे निश्चल करे अने तेने कहेके ए अमारो उपदेश्यो धर्म टालीने अनेरो धर्म आदरशो नही ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एतदध्यवसायी सनास्तिक स्वत प्राणिना हता व्यापादकः स्यात् अन्येषामपिवक्ति । हणहइत्यादि । घातयत क्षणत क्षणन हिंसा दहत पचत आलुंपत विलुपत सहसा कारयत विपरामृशत एतावान् शरीरमात्रएव तावज्जीवोजीवानावाच्च नास्ति परलोक । ततस्तेन न तज्जीवतच्छरीरवादिनोनास्तिकाए तन्न विप्रतिवेदयते नागीकुर्वंति । तद्यथा । क्रिया सदनुष्ठानात्मिकामक्रिया वाऽसदनुष्ठानरूपा सुकृत वा डुष्कृत वा कल्याणवा पापकवा साधुकृतमसाधुकृतंवा इत्यादिका चिंतैव नास्ति । कोर्थ । सुकृतानि साधुत्वात्कल्याणफलानि डुष्कृतान्यसाधुत्वाद्विरूपफलानीति । आत्मान विनाऽसौ चिता न युज्यतइत्यर्थ । तथा सुकृतेन सिद्धिर्डुष्कृते नासिद्धिस्तथा डुष्कृतेनैव नरक अनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिरूप स्यादित्यादिका चिता न युक्ता।जीवस्यैवानावात् (एवतेत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते नास्तिकाविरूपरूपै कर्मसमारनै सावद्यानुष्ठानैर्विरूपान् कामनोगान् समारनंते समाददति तडपनोगार्थ ॥ १७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणैके नास्तिका प्रागल्निका प्रागल्न्येन चरति धृष्टता प्राप्ताघ्रात्मा नास्तीति वदति । तथा निष्क्रम्य स्वतानुगता प्रव्रज्या गृहीत्वा मामक धर्म मदीयोऽय धर्मइत्यंगीकृत्य परेन्य प्रज्ञापयति । यद्यपि नास्तिकाना नास्ति दीक्षा तथापि बौद्धादिमते प्रव्र

राजदार्थ इतिकं तडुद्धरणार्थत्वात्सर्वप्रयासस्येति दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यलोके । खलु वाक्यालंकारे । इहास्मिन् लोके प्राच्या प्रतीच्या दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यते एके केचन तथाविधामनुष्या आनुपूर्व्येणेम लोकमाश्रित्योत्पन्नाभवति तानेवानुपूर्व्येण दर्शयति । तद्यथेत्युपन्यासार्थे । आराद्याता सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यास्तत्र क्षेत्रार्याअर्धषड्विंशतिजनपदोत्पन्नास्तद्व्यतिरिक्तास्त्वनार्याएके केचन भवति । ते चानार्या क्षेत्रोत्पन्नाअमी दृष्टव्या ॥ सगजवणसवरबव्वर,कायमुरुंडोड्डगोड्डपक्किणिया ॥ आवगाहो णरोमय,पारसखसखासिया चेव ॥ १ ॥डोंबिलयलउसबोक्स,भिल्लंधपुलिंदकोंचभमररुया ॥ कोंचाय चीण चंचुय,मालव दमिलाकुलंघाय ॥ २ ॥ केकयकिरीयहयमुह,खरमुह तह तुरगमेढयमुहाय ॥ हयकसा गयकसा, असे य अणारिया बहवो ॥ ३ ॥ पावायचंडदंडा,अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अक्खराइ, जे सुण णज्जंतिसुमिणेविइत्यादि । तथोच्चैर्गोत्रमिक्ष्वाकुवंशादिकं येषां ते तथाविधाएके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिन. । वाशब्दउत्तरापेक्षया विकल्पार्थे ।तथा नीचैर्गोत्र सर्वजनावगीतं येषाते तथा एके केचन नीचैर्गोत्रोदयवर्तिनोन सर्वे । वाशब्द. पूर्ववदेव । ते चोच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा वा । कायोमहाकाय प्रांशुत्व तद्विद्यते येषां ते कायवतस्तथा ह्रस्ववतोवामनककुब्जवडभादयएके केचन तथाविधनामकर्मोदयवर्तिनस्तथाशोभनवर्णा सुवर्णा प्रतप्तचामीकरचारुदेहास्तथा डुर्वर्णा कृष्णरुक्षादिवर्णाएके केचन तथा सुरूपा सुविभक्तावयवचारुदेहास्तथा डुष्टरूपाडुरूपाबीभत्सदेहास्तेषां चोच्चैर्गोत्रादिविशेषणविशिष्टानां महान् कश्चिदेवैकस्तथाविधकर्मोदयाद्राजा भवति सविशेष्यते महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सार सामर्थ्यं विभवोवा यस्य सतथा इत्येव राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमर राज्यं प्रसाधयंस्तिष्ठतीति । तत्र डिंब परानीकसृगालिकोडमर स्वराष्ट्रक्षोभ । पर्यायावेतावत्यादरख्यापनार्थमुपात्तौइति । तस्य चैवंविधगुणसंपडुपेतराज्ञएवंविधा पर्षद्भवतीति ।तद्यथा । उग्रास्तत्कुमाराश्चोग्रपुत्रा । एवं भोगपुत्रादयोपि दृष्टव्या ॥ शेषंसुगम । यावत्सेनापतिपुत्रइति । णवरलेच्छइत्ति । लिप्सुकसवणिगादिस्तथा प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्रिप्रभृतय ॥ १३ ॥ तेषां च मध्ये कश्चिदेवैक श्रद्धावान् धर्मलिप्सु काममित्येवधृतार्थेऽवधृतमेतद्यथायं धर्मश्रद्धालुरवधार्य च तं धर्मलिप्सुतया श्रमणाब्राह्मणावा संप्रधारितवंत समालोचितवंतोगमनंनिश्चयेनिमित्त तदतिकगमनाय तत्र चान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमित्येवं नाम संप्रधार्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएव संप्रधार्य गतोनिकं ममैवं सूचु । तद्यथा। एतद्यथाह कथयिष्यामि एवमितिच वक्ष्यमाणनीत्या भवतोपूर्वं भयात्रातारोवा यथा येन प्रकारेण मयैपधर्म स्वाख्यात सुप्रज्ञप्तोभवतीत्येवं

मूर्तिमत शरीरादन्यदमूर्तं ज्ञानमात्मन्यनुनूयते तस्य चामूर्तेनैव गुणिना नाव्यमत· शरीरात्पृथग्नूतश्चात्माऽमूर्तोज्ञानवत्तदाधारनूतोस्तीति । नचात्मान्युपगममंतरेण तज्जीव तच्छरीरवादिन किंचिद्विचार्यमाण मरणमुपपद्यते । दृश्यंते च तथानूतएवशरीरे म्रियमाणामृताश्च । कुत समागतोहं कुत्र चेदं शरीर परित्यज्य यास्यामि तथेदं मे शरीरं पुराण कर्मेत्यधमादिकाः शरीरात्पृथग्नावेनात्मनि सप्रत्ययाश्चनुनूयंते । तदेवमपि स्वानुनवसिद्धेप्यात्मनि एके केचन नास्तिका· पृथक्जीवास्तित्वमश्रद्दधाना प्रागल्भिका प्रागल्भ्येन चरंति धृष्टतामापन्नाश्चनिदधति । तद्यथा । श्चयमात्मा शरीरात्पृथग्नूत स्याचत संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यतमगुणोपेत स्यात् । नच ते वराका स्वदर्शनानुरागावतमसावृतदृष्टयएतद्विदंति । तथा मूर्तस्यायं धर्मोनामूर्तस्य । नहि ज्ञानस्य संस्थानादयोगुणा सनाव्यंते । नच तत्तदनावेपि नास्तीत्येवमात्मापि संस्थानादिगुणरहितोपि विद्यतइति । एव युक्तियुक्तमप्यात्मानं धाष्टर्यान्नान्युपगछंति तथा निष्क्रम्यच स्वदर्शनविहिता प्रव्रज्या गृहीत्वा नान्योजीव शरीराद्वियतइत्येव योधर्मोमदीयोधमित्येवमन्युपगम्य सतोऽपरेषा च त तथानूत धर्मं प्रतिपादयंति । यद्यपि लोकायतिकाना नास्ति दीक्षादिक तथाप्यपरेण शाक्यादिना प्रव्रज्याविधानेन प्रव्रज्य पश्चाल्लोकायतिकमधीयानस्य तथाविधपरिणतेस्तदेवाजिरुचितमतोमामकोयं धर्म· स्वयमन्युपगछंत्यन्येषा च प्रज्ञापयति । यदिवा नीलपटाद्यन्युपगतु कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्याविशेषइत्यदोषइति । सांप्रत तत्प्रतिज्ञापितशिष्यव्यापारमधिकृत्याह । (तसदहमाणेत्यादि) तं नास्तिकवादुपन्यस्त धर्मं विषयिणामनुकूलं श्रद्दधाना समंतावतिशयेन रोचयंतस्तथा प्रतिपादयतो वितथनावेन गृह्णतस्तथा तत्र रुचि कुर्वतस्तथा साधुशोननमेतद्यथास्वाख्यातोयथावस्थितोनवतोधर्मोन्यथा सति हिंसादिष्ववर्तमान परलोकनयात्सुखसाधनेषु मांसमद्यादिष्वप्रवृत्ति कुर्वतोमनुष्यजन्मफलवर्जितानवेयु । तत शोननमकारि नवता हे श्रमण ब्राह्मण इतिवा यदयं तज्जीवतच्छरीरधर्मोऽस्माकमावेदित काममिष्टं तदस्माकं धर्मकथन । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हेआयुष्मस्त्वया वयमन्युद्धृता कार्पटिकैस्तीर्थिकैर्वंचिता स्युरिति । तस्मादुपकारिणं त्वा नवतं पूजयामोहमपि कंचिदायुष्मतोनगवत प्रत्युपकार करोमि । तदेव दर्शयति । तद्यथा । (असणेत्यादि) सुगम यावत्पादपुंछनकमिति । तत्रैके पूर्वोक्तया पूजया पूजायां वा (समाउदिंसुत्ति) समावृता प्रव्हीनूतास्ते राजान पूजां प्रति प्रवृत्तास्तदुपदेष्टारोवा पूजामभ्युपपन्ना सततस्त राजादिक स्वदर्शनप्रतिपन्नमेके केचन स्वदर्शनस्थित्या हिताहितप्राप्तिपरिहारेषु निकाचितवतोनियमितवत । तथाहि । नवतेद तच्छरीरमित्यन्युपगंतव्यमन्योजीवोन्यच्च शरीरमित्येतत् परित्याज्यमनुष्ठानमपि एतदनुरूपमेतद्विधेयमित्येव निकाचितवतइति ॥ १० ॥

ठते जीवनो पण विनाश थाय एोधरऽ एटले पठी जीवने धरी न शके (एयंतजीवियंनवति के०) ए जीवनो जीवितव्य ठे तेथी शरीर विणठो थके आत्मा पण विणठो एवो करीने (अट्ट णाएपरेहिनिज्जऽके०) अन्यलोक बालवाने अर्थे स्मशानादिकने विषे लेइजाय (अगणि ज्जामिएसरीरे के०)तेवारे अग्नीये करी शरीर प्रज्वाले ठते त्या नि केवल(कवोतवन्नाणिके०) कपोत वर्णे (अठीणिनवति के०) अस्थि एटले हाम्म देखायठे परंतु तेयकी अन्य आ त्मादिक पदार्थ कोइ देखाय नहीं के जे थकी आत्मानु अस्तिपणु अमे जाणीये (आ सदीपचमापुरीसागामपञ्चागछंति के०) तथा पाचमो जेनो माचोठे एवा चार पुरुष ते मुवेलाने प्रज्वालीने पोताने गामे आवे माटे जो आत्मा शरीर थकी जुदो होय तो श रीर थकी निकलतो देखाय अने ते जेवारे नथी देखातो तो जाणिये ठैए जे तेहिज शरीर अने तेहीज जीवठे (एवके०) एरीते (असतेके०) जीव अठतोठे (असविज्जमाणे के०) अविद्यमान जातो थको जाणवामा नथी आवतो (जेसितयसते के०) जेनो ए पक्षठे के जीव अठतोठे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमानठे जेनो एवो पक्षठे (तेसितं के०) तेनो ए पूर्वोक्त वचन (सुयरकायनवति के०) स्वाख्यातठे एम जाण वो अने जेनो (अन्नोनवतिजीवो के०) जीव अन्यठे अने (अन्नंसरीर के०) शरीर पण अन्यठे एवु जे कहेठे ते गामरी प्रवाहे पड्या थका (तम्हा के०) तस्मात् (ते एव के०) ते एवो (नोविपडिवेदेंति के०) जे आगल कहेशे ते नथी जाणता. तेज कहेठे (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंत ए जीव शरीर थकी जुदो गणीए तो एनो शो प्रमाणठे (आयादीहेतिवा के०) आत्मा शु दीर्घ एटले लाबोठे (हस्से तिवा के०) किंवा ह्रस्व एटले अगुग अथवा तडुल प्रमाण न्हानोठे (परिमम्लेति वा के०) किंवा चुडी अथवा चड मम्लने आकारेठे (वट्टेतिवा के०) किंवा वाटला लाडुने आकारेठे (तसेतिवा के०) किंवा त्रिखूणा सीघोडाने आकारेठे (चउरसेति वा के०) चोखूणोठे (आयतेतिवा के०) घाना सरीखो लाबोठे (ठञसिएतिवाके०) ठखूणा ठहाशनोठे (अठंसेतिवा के०) आठहासनो आठ ग्खूणोठे (किण्हेतिवाके०) काले वर्णेठे (णीजेतिवा के०) नीले वर्णेठे (लोहियहालिदेसुक्किलेतिवा के०) लाल वर्णेठे किंवा हलदर जेवा पीले वर्णेठे किंवा उज्वले वर्णेठे (सुन्निगधेतिवा के०) सु रनिगध कपूर समानठे (डुन्निगधेतिवा के०) डुर्गंध गुमडादि समानठे अथवा रस आश्री (तित्तेतिवा के०) तीखो रस मिरची समानठे (कडूएतिवा के०) कडवुरस नीमडा समानठे (कसाएतिवा के०) कसायलो काचाफल समान रसवालोठे (अंबिलेति वा के०) खाटा रस समानठे (महुरेतिवा के०) मिसरी समान मधुर रसेठे तथा स्पर्शआश्री (करकडेतिवा के०) कर्कश खरखरो फरशठे (मउएतिवा के०)

वादि (पहीणापुव्वसंजोग के०) पूर्व संयोगजे पुत्र कलत्रादिक ते थकी पण ज्रष्ट थया अने (आयरियंमग्गं के०) आर्य मार्गनेपण (असंपत्ता के०) अणपाम्या एटले नपाम्या (इतिके०) एम उजय ज्रष्ट थया थका (तेणोहव्वाएके०) ते एवा प्रकारे पुष्करणीने तीरे पण रह्या नहीं अने (णोपाराएके०) पार पण पहोता नहीं (अंतराकामजोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामजोगरूप कादवने विषेज खूता थका रह्या ते पुंमरीक कमल सरखा राजा ने उद्धरी नशके (इतिपढमपुरुषजाएतज्जीवतच्छरीरएतिआहिएके०) इति तज्जीव तच्छरी रवादिनामा एम प्रथम पुरुष जात कह्यो ॥ १ए ॥

॥ दीपिका—ये जागवतादिलिंगमंगीकृत्य पश्चान्नास्तिकाः संवृतास्तेषां पूर्वमादौ प्रव्रज्याग्रहणावसरएतत् परिज्ञातं जवति । यत् श्रमणायतयोजविष्यामोऽनगाराः किंचन द्रव्य तद्रहितानिष्किंचनाअपुत्राअपशव परदत्तजोजिनोजिक्षव. किंचित्पाप कर्म सावद्यं नकरिष्यामइति समुबाय पश्चान्नास्तिकतां प्राप्तास्ते आत्मना स्वयं सावद्यादप्रतिविरताअनिवृत्ताजवंति । स्वयं सावद्यमाददते स्वीकुर्वंति अन्यानप्यादापयंति ग्राहयंत्यादानं समनुजानंति । एवमेव स्त्रीप्रधाना कामजोगा स्त्रीकामजोगास्तेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपपन्नाअधिकयेन जोगेषु लुब्धारागद्वेषार्ता सतोनात्मानं संसारात्समुच्छेदयंति । नापि परं समुच्छेदयंति नाप्यन्यान् प्राणिनोजूतानि जीवान् सत्वान् समुच्छेदयंत्यसदजिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधालोकायतिका पूर्वसंयोगात्पुत्रादिकात्प्रहीणाज्रष्टाआर्यमार्गं सदनुष्ठानरूपमसंप्राप्ताइति लोकद्वयसदनुष्ठानज्रष्टाअंतरालएव जोगेषु विषण्णास्तिष्ठंति न पुंडरीकोत्क्षेपादिकार्यं साधयंतीत्ययं तज्जीवतच्छरीरवादीप्रथम पुरुष समाप्त ॥ १ए ॥

॥ टीका—तत्र ये जागवतादिकं लिंगमन्युपगता पश्चाल्लोकायतग्रंथश्रवणेन लोकायता संवृतास्तेषामादौ प्रव्रज्याग्रहणकालएवैतत्परिज्ञातं जवति । तद्यथा । परित्यक्तपुत्रकलत्राः श्रमणायतयोजविष्यामोऽनगारागृहरहितास्तथा निष्किंचना किंचनद्रव्य तद्रहितास्तथाऽपशवोगोमहिष्यादिरहिता. परदत्तजोजिन स्वत पचनपाचनादिक्रियारहितत्वात् जिक्षणशीलाजिक्षव किंच द्रक्ष्यतेऽन्यदपि यत्किंचित्पाप सावद्यं कर्मानुष्ठानं तत्सर्वं नकरिष्यामीत्येवं सम्यगुबानेनोबाय पूर्वं पश्चाल्लोकायतिकमुपगताआत्मन स्वत. कर्मन्योऽप्रतिविरताजवंति । विरत्यजावेपि यत्कुर्वंति तदर्शयति । पूर्वं सावद्यारंजान्निवृत्ति विधाय नीलपटादिकं च लिंगमास्थाय च स्वयमात्मना सावद्यमनुष्ठानमाददते स्वीकुर्वंति अन्यान्प्यादापयंति ग्राहयंत्यन्यमप्यादानं परिग्रहं स्वीकुर्वंतं समनुजानंति । एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेण स्त्रीप्रधाना स्त्रियोपलक्षितावा काम्यंतइति कामाजुज्यंतइति जोगास्तेषु सातबहु

डुर्क भवति। यदेवेतच्छरीर सएव जीवोनैतस्माच्छरीरा द्व्यतिरिक्तोस्त्यात्मेत्यतस्तत्प्रमाणएव भवत्यसावित्येवच कृत्वैषआत्मायोयं कायोऽयमेव च तस्यात्मन पर्यव कृत्स्न सपूर्ण पर्यायोऽवस्थाविशेष तस्मिश्च कायात्मन्यवाप्ते तदव्यतिरेकाज्जीवोप्यवाप्तएव भवति । ए पच कायोयावतं कालं जीवेदविकृतश्चास्ते तावतमेव काल जीवोपि जीवतीत्युच्यते । तदव्यतिरेकात्तथैव कायोयदा मृतोविकारभाग्भवति तदा जीवोपि न जीवति जीवशरीर योरेकात्मकत्वात् । यावदिद शरीर पंचभूतात्मकमव्यंगं चरति तावदेव जीवोपीति । त स्मिंश्च विनष्टे सत्येकस्यापि भूतस्यान्यथाभावे विकारे सति जीवस्यापि तदात्मनोविनाश स्तदेव यावदेतच्छरीर वातपित्तश्लेष्माधार पूर्वस्वभावादप्रच्युतं तावदेव तज्जीवस्य जीवित भ वति । तस्मिंश्च विनष्टे तदात्मा जीवोपि विनष्टइतिकृत्वा आदहनायासमन्ताद्दहनार्थ श्मशानादौ नीयते यतोऽसौ तस्मिंश्च शरीरेऽग्निध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुप लभ्यते न तदतिरिक्तोऽपर कश्चिद्विकार समुपलभ्यते यतआत्मास्तित्वशंकास्यात् । ते च तद्वाधवाजघन्यतोपि चत्वार । आसंदी मचक सपंचमोयेपाते आसंदीपंचमा पुरु षास्त कायमग्निनाध्मापयित्वा पुन स्वग्राम गच्छति। यदि पुनस्तत्रात्मा निजशरीराद्भिन्न स्यात्तत शरीरान्निर्गच्छन्दृश्येत नचोपलभ्यते तस्माज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थित। तदेव मुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानस्तत्र तिष्ठन् गच्छश्चासंवेद्यमानोयेषामय पक्षस्तेषा त त्स्वाख्यातं भवति । येषा पुनरन्योजीवोन्यच्छरीरमेवभूतोऽप्रमाणकएवाभ्युपगमस्तस्मात्ते स्वयमूह्याप्रवर्तमानाएवमिति वक्ष्यमाण तेनैव विप्रतिवेदयति जानति । तद्यथा । आ युष्मन् शरीराद्बहिरभ्युपगम्यमान. किंप्रमाणक स्यादितिवाच्यं । तत्र किं दीर्घ शरीरा त्प्राग्युतर उत ह्स्वोगुप्तश्यामाकतंडुलादिपरिमाणोवा । तथा सस्थानाना परिमडलादी ना मध्ये किंसस्थानस्तथा कृष्णादीना वर्णाना मध्ये कतमवर्णवर्ती तथा किंग ‍ ध‍ ‍ सा‍ र साना मध्ये कतमरसवर्ती तथा ऽष्टाना स्पर्शाना मध्ये कतमोयस्पर्शोवर्तते। तदेव सस्था नवर्णगंधरसस्पर्शान्यरूपतया कथमप्यसावगृह्यमाणोऽसन्नसौ तथापि केनापि प्रकारेण सवेद्यमानोपि येषा तत्स्वाख्यातं भवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरकमित्ययं पक्षस्तस्मात्पृथ गविद्यमानत्वात्ते शरीरात्पृथगात्मवादिनोनैव वक्ष्यमाणनीत्यात्मानमुपलभंते ॥ १५ ॥

से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीउ असि अभिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइपुरिसे अभिनिवटित्ता णं उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुजाउ इसियं अभिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो मुजे इय इ सिय एव मेव नत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इय

एम यावत् कोइएक मनुष्य कुरूपवत छे इत्यादिक अर्थ आगल लखाइ गयाछे (ते सिंचण के०) ते मनुष्य मांहे (मदंएगेरायानवइ के०) एक महोटो राजा होय तेके वो तोके (महाएवचेव के०) महोटो हिमवत पर्वतादिक समान होय (णिरविसेस के०) एमज पूर्ववत निरविशेष (जावसेणावइपुत्ता के०) यावत् सेनापतिना पुत्र केवा (तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगेतिएसड्ढानवति के०) कोइ एकने धर्म करवानी श्रद्धा होय एटले धर्मार्थी होय (कामतं के०) तेने धर्मार्थी जाणीने (समणा य माहणाय के०) श्रमण अने ब्राह्मण मलीने तेना समीपे धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते (पहारिंसुगमणाए के०) आलोचवो चितवीने आवे (तत्र के०) त्या (अन्नयरेणध म्मेणपन्नत्तारोवय के०) अनरो पोतानो धर्म प्ररूपण हार एटले धर्मोपदेशक थइने (इमेण के०) ए आगल कहेशे तेरीते (धम्मेणपन्नवइस्सामो के०) राजानी आगल धर्म कहीशु एम आलोचीने (सेएव के०) तेएम (मायाणहनयंतारो के०) माहरो धर्म क हुंछु अहो नयथकी राखनार ते (जहाए के०) जेम (एसधम्मे के०) महारो एधर्म (सुअरकाए के०) स्वाख्यात (सुपन्नत्तेजवति के०) रुडो प्ररूपवो होय ॥२०॥ हवे ते राजा आगल जेवी रीते धर्म प्ररूपे तेवी रीते आगल कहेछे.

॥ दीपिका–अथापरोद्वितीय पुरुषजात पंचभिर्भूतै पृथिव्यप्तेजोवायुव्योमाख्यैश्चर ति पांचभौतिक । साख्याजीवस्य तृणमोटनेप्यसामर्थ्यं । भूतरूपाया प्रकृतेरेव सर्वकर्तृ त्वमिति तन्मतं । नास्तिकविशेषोवा पचभूतव्यतिरिक्तनास्तित्वांगीकारात् । (आहिज्जइ) आख्यायते । अत्र च प्रथमपुरुषगमेन इह खलु पाईणवा इत्यादिकोग्रंथ सुपन्नत्ते भ वतीत्येतदतोज्ञेय ॥ २० ॥

॥टीका–प्रथमपुरुषानतर द्वितीयं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेदोच्चे इ त्यादि) अथशब्दआनतर्यार्थे । प्रथमपुरुषानतरमपरोद्वितीय पुरुषएव पुरुषजात पचभि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यैश्चरति पाचभौतिक । पंचवा भूतानि अभ्युपगमद्वारे ण विद्यते यस्यसपचभूतिको मत्वर्थीयष्ठन् । सच सांख्यमतावलंब्यात्मनस्तृणकुब्जीकर णेप्यसामर्थ्याभ्युपगमात् इष्टव्योलोकायतमतावलबी नास्तिकोभूतव्यतिरिक्तत्वाभ्युपगमा दाख्यायते प्रथमपुरुषानतरमय पचभूतात्मवाद्यनिधीयते चेति । अत्र च प्रथमपुरुषगम ने (इहखलुपाईणं) चेत्यादिकोग्रथ· सुपण्णेत्तेभवतीत्येतत्पर्यवसानोवगतव्यइति ॥ २० ॥

इहखलु पंचमहब्भूता जेहिं नोकज्जइ किरियातिवा अकिरियातिवा सु कडेतिवा दुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा इति अंतसो तणमायमवि ॥२१॥

नथी (सेजहाणामए के०) ते वली यथा दृष्टाते करी देखाडेछे (केइपुरिसेमंसाउअट्ठी अभिनिव्वट्टित्ताणउवदसेज्जा के०) कोइक पुरुष मांस थकी हाड जुदा काढीने देखाडेके (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमतो (मसेअयंअट्ठीके०) आ मास अने ए हाड (एवामेवणत्थिकेइपुरिसेउवदसेत्तारोअयमाउसोआयाइयसरीर के०) एम आ आत्मा अने ए शरीर एने जुदो जुदो देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेकरयलाउआमलकअभिनिव्वट्टित्ताणउवदसेज्जा के०) यथा दृष्टाते कोइ एक पुरुष करतल एटले हथेली थकी आमलो जुदो करी देखाडे (अयमाउसोकरतलेअयंआमलए के०) हे आयुष्यमंतो आ हथेली अने आ आमलो (एवमेवनत्थिकेइपुरिसेउवदसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरके०) एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेदहीउनवनीयंअभिनिव्वट्टित्ताणउवदंसेज्जाअयमाउसोनवनीय अयं तुदहीएवामेवनत्थिकेइपुरिसेजावसरीर के०) यथा दृष्टाते केइ एक पुरुष दही थकी माखण जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमतो आ माखण अने आ दही एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. एमज यथा दृष्टाते कोइ एक पुरुष तिल थकी तेलने जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमतो आ तेल अने आ खल एम आत्मा अने शरीरने कोइ पुरुष जुदो करी देखाडनार नथी एमज यथा दृष्टांते कोइ एक परुष सेलडी थकी सेलडीनो रश जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमतो आ इक्षुरस अने आ छोतरा एम आत्मा अने शरीरने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी यथादृष्टाते कोइ एक पुरुष अरणी थकी अग्नी जुदो काढीने देखाडे के हे आयुष्यमतो आ अग्नि अने आ अरणी एम शरीर अने अत्माने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी ॥ (एवअसतेके०) एम अछतो अने (असविज्जमाणे के०) अविद्यमान जे आत्माछे तेने पूर्वोक्त पदार्थोने जेम जुदा जुदा करी देखाडे तेम ए आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार जगतमा कोइ पुरुष नथी (जेसिंतंसुयखायन्नवतितंके०) ते कारण माटे तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए पक्ष सत्य स्वाख्यात जाणवो (तम्हाके०) तस्मात् (अन्नोजीवोके०) अन्य जीव अने (अन्नसरीरके०) शरीर पण अन्यछे ए वचन (तेमिच्छाके०) तेमिथ्याछे ॥१६॥

॥ दीपिका–आत्मनास्तित्व दृष्टातैराह । (सेजहा इत्यादि) तद्यथा नाम कश्चित्पुरुष कोशत प्रत्याकारादसि खड्गमभिनिर्वृत्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत् । तद्यथा । अयमायुष्मन् असि खड्ग. । अयं च कोशप्रत्याकार । एवमेव जीवशरीरयोर्नास्त्युपदर्शयिता तथायं जीवइदंच शरीरमिति नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोन

तथा डुष्टं कृतं डुष्कृतमेतदपि रजस्तमसोरुत्कटतया प्रवर्तते । एव कल्याणमिति वा पापकमितिवा साध्वितिवा असाध्वितिवा इत्येतत्सत्वादीनां गुणानामुत्कर्षानुत्कर्षतया यथा संनवमायोजनीयं । तथेप्सितार्थनिष्पान सिद्धिविपर्यय· स्वसिद्धिर्निर्वाण वा सिद्धि संसार ससारिणा तथा नरक पापकर्मिणा यातनास्थानमनरकस्तिर्यङ्मनुष्यामराणामेतत्सर्वं सत्वादिगुणाधिष्ठिता नूतात्मिका प्रकृतिर्विधत्ते । लोकायतानिप्रायेणापीहैव तथाविधसुखडुःखावस्थाने स्वर्गनरकावितीत्येवमतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तन्नूतैरेव प्रधानरूपापन्नै क्रियते । तथा चोक्तं । सत्व लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंनकं चलंच रज ॥ गुरुचरणकमेव तम प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरित्यादि । तदेव सांख्यानिप्रायेणात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याल्लोकायतिकानिप्रायेण त्वात्मनएवानावान्नूतान्येव सर्वकार्यत्वात्कर्तृणीत्येवमन्युपगमस्तानिच समुदायरूपापन्नानि नानास्वनाव कार्यं कुर्वंति ॥ २१ ॥

तं च पिहुद्देसेणं पुढोन्नूतसमवात जाणेज्जा तं जहा पुढवी एगे महन्नूते आउ दुच्चे महन्नूते तेऊतच्चेमहन्नूते वाऊचउत्थेमहन्नूते आगासे पंचमे महन्नूते इच्चेते पंचमहन्नूया अणिम्मिया अणिम्माविता अकडा णोकित्तिमा णोकडगा अणाइया अणिहणा अवंका अपुरोहिता सतता सासता आयछ्ठा पुण एगे एवमाहु सतो णत्थि विणासो असतो णत्थि संनवो ॥ २२ ॥

अर्थ–(तंचपिहूद्देसेणपुढोनूतसमवातंजाणेज्जाके०) ते पाचनूतनो समवाय पृथक् एटले जुदो जुदो जाणवो (तंजहाके०) ते कहेछे (पुढवीएगेमहन्नूते के०) पृथवी पर्वतादिक ए एक महानूत जाणवो (आउडुच्चेमहन्नूते के०) पाणी नदी सरोवर समुड्रादिकनो ए बीजो महानूत जाणवो (तेऊतच्चेमहन्नूते के०) अग्नि ते उष्ण अजवालानो कारण ए त्रीजो महानूत जाणवो (वाऊचउत्थेमहन्नूते के०) वायु वृक्ष कपननो लक्षण ए चोथो महानूत जाणवो (आगासेपचमेमहन्नूते के०) आकाश अवकाश लक्षण ए पाचमो महानूत जाणवो (इच्चेतेपचमहन्नूया के०) ए पांच महानूत ते (अणिम्मिया के०) ईश्वरादिके नीपजाव्या नथी (अणिमाविता के०) हवे नीपजाववा पण नथी (अकडा के०) कोइना करेला नथी (णोकित्तिमा के०) घटादिकपदार्थनी पेरे कृत्रिम नथी (णोकडगा के०) तेनी निष्पत्तिने विषे अन्य कोइनी अपेक्षा नथी (अणाइया के०) तेनी आदि नथी (अणिहणा के०) तेनो अंत नथी (अवंका के०) अवध्यते समस्त कार्यना करनार जाणवा (अपुरोहिता के०) तेथोने कार्यने विषे प्रवर्त्तावनार कोइ नथी (सतंता के०) स्वाधीनछे (सा

वछेणवा पडिग्गहेणवा कवलेणवा पायपुंछणेणवा तछेगे पूयणाए समाउंहिसु तछेगेपूयणाए निकाइसु ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे ए पक्ष ग्रहण करनार नास्तिकछे ते देखाडेछे एवा अध्यवसायें प्रवर्त्ततो एवो नास्तिकवादि (सेहंताके०) ते पोते पण प्राणीओने हणे केमके ते प्राणातिपातने विषे दोष ने अण जाणतो थको छे माटे बीजाने पण जीवघात करवानो उपदेश आपे ते उपदेश क हेछे (तंहणहके०) ते खड्गादिके करी प्राणीउने हणो एमा दोष नथी (खणहके०) पृथिव्यादिकने खणो (छणहके०) छेदो (महहके०) बालो दहन करो (पयहके०) पचावो रसोइ करो (आलुपहके०) लूंटो (विलुंपहके०) विशेषे लूटो (सहसाकारे हके०) वस्त्र पात्रादिक सर्व अण विमास्या करो (विपरामुसहके०) इत्यादिक विपरी त मतिनु उपदेश आपे (एतावतावजीवेणछिके०) एटले जीव नथी जेटले शरीर ते टलेज जीवछे (परलोएवाके०) परलोक पण नथी तो परलोकने अनावे पोतानी इछा प्रमाणे खाउ पीउ लाड करो (तेणोएवविप्पडिवेदेंतिके०) अंही श्री सुधर्म स्वामि श्रीजबू स्वामिने कहेछे केपरलोकने अनावे पुण्य पाप पण नथी जेनो एवो पक्षछे ते बापडा नास्ति क मतिना धणी एवाछे ते आगल वक्ष्यमाण एटले जे आगल हुं कहीश तेने नथी जा णता (तंकिरियाइवाके०) ते क्रिया एटले रुडा अनुष्ठानने नथी जाणता (अकिरिया इवाके०) माठा अनुष्टानने नथी जाणता (सुक्कडेइवाडक्कडेइवाके०) रुडुंकरयु नथी जाणता तथा माठुकरयु नथी जाणता (कल्लाणेइवापावएइवा के०) पुण्यने नजा णे पाप नजाणे (साहुइवाअसाहुइवा के०) साधु तथा असाधुने नथी जाणता (सिद्धाइवाअसिद्धाइवा के०) सिद्धने नजाणे असिद्ध एटले संसारने नजाणे (निरए इवाअनिरएइवाके०) नारकी अने अनारकी जे तिर्यंच मनुष्य अने देवता तेने पण नजा णे (एवतेविरूवरूवेहि के०) एरीते ते नास्तिकवादि विरुपरूप आत्मानो अनाव पडिवजीने (कम्मसंमारनेहिंके०) नाना प्रकारना कर्मने समारने ते नाना प्रकारना कर्म ने करवे करीने (विरूवरूवाइकामनोगाइसमारनतिनोयणाएके०) नाना प्रकारना काम नोगने समारने नोजननेअर्थेनोगवे ॥ १७ ॥ (एवएगेपागप्रियाके०) एरीते एक नास्तिक वादि अत्यंत धृष्ट थका एम कहे छे के (णिरकम्मके०) ए आत्मा शरीर थकी जुदो नथी एटले तेहिज शरीर अने तेहिज जीव एवा धृष्ट पणे प्रवर्त्ते तथा पोताना दर्शन ने अनुसारे प्रवर्ज्या ग्रहण करीने (मामगधम्मपन्नवेतिके०) महारो धर्म सत्यछे एवी प्ररूपणा करे (तसद्दहमाणाके०) तेनास्तिकवादिनो नापेलो जे धर्म तेने सर्दहता (त पत्तियमाणा के०) तथा तेने सत्य करीमानता (तंरोयमाणा के०) तेने विषे रुचि करता

प्रति प्रवर्तयिता येषा तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि स्वकार्यकर्तृत्व प्रत्यपरनिरपेक्षाणि शाश्वतानि नित्यानि वा नकदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात्तदेवनूतानि पंच महानूतान्यात्मषष्ठानि। पुनरेके एवमाहुरात्मावा किंचित्कार सांख्यानां लोकायतिकानां पुन कायाकारपरिणतान्येव नूतान्यनिव्यक्तचेतनानि आत्मव्यपदेशं नजतइति । तदेव सांख्यानिप्रायेण सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्ति विनाशोऽत्यंतानावरूपोनाप्यसत शशविषाणादे संनव समुत्पत्तिरस्ति कार्यस्य विद्यमानस्यैवोत्पत्तिरिष्टा नासत सर्वस्मात्सर्वस्योत्पत्तिप्रसंगात् । तथाचोक्तं । नासतोजायते नावोऽनानावोजायते सतइत्यादि तथा असतखरविषाणादेरकरणाडुपादानकारणस्यच मृत्पिंडादेर्घटार्थिनोपादानादिन्यश्च हेतुन्य कारणे सत्कार्यवाद. ॥ २२ ॥

एतावतावजीवकाए एतावतावअत्थिकाए एतावतावसव्वलोए ए
त मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि ॥ २३ ॥

अर्थ–(एतावतावजीवकाए के०) ते सांख्य एम कहेडे के जीवकाय जे बे एटलोज पांच नूत जाणवो कार्यनो करनार पण एटलोज जाणवो (एतावतावअत्थिकाए के०) वली एटलोज अस्तिकाय टाली बीजो पदार्थ पण कोइ नथी (एतावतावसव्वलोए के०) एटलोज सर्वलोक पाचनूत आत्मिक जाणवो (एतंमुहंलोगस्सकरणयाए के०) लोकने करवे एहिज मुख्य प्रधान कारण जाणवो (अवियंतसोतणमायमवि के०) तृण मात्र कार्यनु करनार पण ए पाचनूत टाली बीजो कोइ नथी ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–एतावानेव नूतमात्रएव जीवकाय । एतावानेवास्तिकायोनापर कश्चित्पदार्थ एतावानेव सर्वलोक । तथा एतदेव पंचनूतास्तित्व मुख्यं कारण लोकस्य सांख्यस्य हि प्रधानात्मन्यांसृष्टेरुत्पत्तिर्नास्तिकस्यतु नूतान्येवांतशस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति ॥ २३ ॥

॥ टीका–तदेवमेतावानेव तावदिति साख्योलोकायतिकोवा माध्यस्थ्यमवलंब्यमानएवमेवाह । तद्यथा । निर्युक्तिनिर्विचार्यमाणस्तावदेतावानेव जीवकायोयडुत पंचमहानूतानि यतस्तान्येव साख्यानिप्रायेण प्रधानरूपतापन्नानि सत्वादिगुणोपचयापचयान्यां सर्वकार्यकर्तृण्यात्मा वा किंचित्करत्वादसत्कल्पएव लोकायतस्यतु सनास्त्येवेत्यतएतावानेव नूतमात्रएव जीवकायस्तथा एतावानेव नूतास्तित्वमात्रएवास्तिकायोनापर. कश्चित्तीर्थिकानिप्रेत पदार्थोस्तीति । तथा एतावानेव सर्वलोकोयडुत पचमहानूतानि प्रधानरूपापन्नान्यात्मा चाकर्ता निर्गुण साख्यस्य लोकायतिकस्यतु पचनूतात्मकाएव लोकास्तदतिरिक्तस्यापरस्य पदार्थस्यानावादिति । तथा एतदेव पचनूतास्तित्व मुख्यं कारण लोक

ज्य पश्चान्नास्तिकीनूते सनवति प्रव्रज्या। अथवा नीजपटाद्यंगीकृत: कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्या विशेषइति। त नास्तिकधर्मं श्रद्दधानारोचयंत. समतो प्रतियतोऽवितथनावेन गृएहत साधुशोननमेतद्यथा स्वाख्यातोनवता धर्म। हेश्रमण ब्राह्मण शोजन कृतं यदयं तज्जीव तन्नरीरधर्मोऽस्माकमुक्त. काममिष्टमेतदस्माकं। खल्लुर्वाक्यानंकारे। हे आयुष्मन् उप कारिणं त्वा पूजयाम्यहमिति तच्छिष्यावदंति। पूजामेवाह। (असणेत्यादि) सुगम। यावत् पादपुछनकमिति। तत्रैके पूजाया (समाउट्टिंसु) समावृत्ता प्रव्हीनूताराजाद य। एके तत्र स्वमतस्थित्या निकाचितवतस्त नृपादिक स्वधर्मे नियमितवतइत्यर्थः १८

॥ टीका—एतदध्यवसायीच सलोकायतिक. स्वत प्राणिनामेकेंद्रियादीना हता व्यापादको नवति प्राणातिपाते दोषानावमन्युपगम्यान्येषामपि प्राण्युपघातकारिणामुपदेश ददाति। तद्यथा। प्राणिन खङ्गादिना घातयत पृथिव्यादिक खनतेत्यादिसुगम। यावदेतावानेव शरीरमात्रएव जीवस्तत परलोकिनोऽनावान्नास्ति परलोकोऽतस्तदनावाच्च यथेष्टमासत। तथाचोक्त। पिब खादच साधु शोनने यदतीत वरगात्रि तन्न ते॥ नहि नीरुगत निवर्त ते समुदयमात्रमिदकलेवर। तदेव परलोकयायिनोजीवस्यानावान्नपुण्यपापे स्तोनापि पर लोकइत्येव येषा पक्षस्ते लोकायतिकास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोनैवेत वक्ष्यमाण प्रतिवेदयति अन्युपगछति। तद्यथा। क्रियावा सदनुष्ठानात्मिकामक्रियावा असदनुष्ठानरूपा एव नैव ते विप्रतिवेदयति। यदिहि आत्मा तत्क्रियावान्नकर्मणोनोक्ता स्यात्ततोपापनयात्सदनुष्ठान चिता स्यात्तदनावाच्च सत्क्रियादिचितापि दूरोत्सादितैव। तथा सुकृत डुष्कृत वा कल्या णमिति पापमिति वा साधुकृतमसाधुकृतमित्यादिका चितैव नास्ति। तथाहि। सुकृता नां कल्याणविपाकिना साधुतयाऽवस्थान डुष्कृताना च पापविपाकिनामसाधुत्वेनावस्था नमेतडुनयमपि सत्यात्मनि तत्फलनुजि सनवति तदनावाच्च कुतोनर्थकौ हिताहितप्रा प्तिपरिहारौ स्याता। तथा सुकृतेन कल्याणेन साध्वनुष्ठानेनाशेषकर्मक्षयरूपासिद्धिस्तथा डुष्कृतेन पापानुबंधिना असाध्वनुष्ठानेन नरकोनरकेवा तिर्यक्नरामरगतिलक्षण स्यादित्ये वमात्मिका चितैव न नवेत्तदाधारस्यात्मसज्ञावस्यानन्युपगमादिति नाव। पुनरपि लोकाय तिकानुष्ठानदर्शनायाह। (एवतेइत्यादि) एवमनतरोक्तेन प्रकारेण ते नास्तिकाआत्मानाव प्रतिपाद्य विरूपं नानाप्रकार रूप स्वरूप येषाते तथा कर्मसमारना सावद्यानुष्ठानरूपा पशुघातमासनक्षणसुरापाननिर्लाछनादिकास्तैरेवनूतैर्नानाविधे कर्मसमारने. कृषीवलानु ष्ठानादिनिर्विरूपकान् कामनोगान् समारनतेसमाददति तडुपनोगार्थमिति॥ १७॥ साप्रत तज्जीवतच्छरीरवादिमतमुपसजिहृर्षुः प्रस्तावमारचयन्नाह। (एवचेगइत्यादि)

अने (णोपाराए के०) पार पण पाम्या नही इहलोक परलोकथी भ्रष्ट थया थका (अ तराकामभोगेसुविसण्णा के०) विचाले कामभोगने विषे ससार माहेज खूता रहे पण पुमरक कमल सरखा राजाने उद्धरी शके नही (दोच्चेपुरिसजाए के०) ए बीजो पुरुष जात (पंचमहब्भूतिएतिआहिए के०) ए पचमहाभूतिक नामे कह्यो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–आत्मनोऽकिंचित्करत्वात्साख्यमतेऽसत्वान्नास्तिकमते न कर्मनिर्बंधइत्याह। सक्रयार्थी पुरुष क्रीणन् किंचि द्वस्तु मूल्येन गृण्हन् पर क्रीणयन् मूल्येन ग्राहयन् तथा प्राणिनोघ्नन् हिसन् परैर्घातयन् तथा पचन् पाचयन् एतानि कुर्वतोन्यानप्यनुजानन्नप्य तश पुरुषमपि पचेंद्रियं विक्रीय हत्वा घातयित्वाऽत्रापि पचेंद्रियवधे नास्ति दोष.। अत्रैव जानीहि किंपुनरेकेंद्रियवधइत्यपिशब्दार्थ । ततस्ते नैवैतद्विप्रतिवेदयति जानंति। तद्यथा। क्रिया वलनात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपा अक्रिया स्थानरूपा यावदेवमेव विरूपविरूपैर्नाना रूपै कर्मसमारंभै सावद्यानुष्ठानैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् कामोपभोगान् समारभंते स्वयं अन्याश्च कारयति नास्त्यत्र दोषइति प्रतार्य एवमेव तेऽनार्याविप्रतिपन्नाविरुद्ध मार्ग प्रति पन्नास्तमात्मीयं धर्म श्रद्दधानाआत्मीयागीकार रोचयतस्तद्धर्मस्याख्यातार प्रशंसयंत ।त द्यथा। स्वाख्यातोभवता धर्मइत्यादितावन्नेय। यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णाइह परलोकभ्र ष्टानात्मत्राणाय नापि परेषामिति द्वितीय पुरुषजात. पचमहाभौतिकोव्याख्यात ॥२४॥

॥ टीका– सचैववाद्येकत्रात्मनोऽकिंचित्करत्वादन्यत्र वात्मनोसत्वादसदनुष्ठानैरप्या त्मा पापै कर्मभिर्न वध्यतइति दर्शयितुमाह (सेकिणमित्यादि) सेतिय कश्चित्पुरुष क्रयार्थी क्रीणन् किंचित् क्रयेण गृण्हस्तथापर क्रापयस्तथाहि प्राणिनोघ्नन् हिसन तथा परैर्घातयन् व्यापादयन् तथा पचन् पाचनादिका क्रिया कुर्वस्तथाऽपरैश्च पाचयन् ।अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् क्रीणत क्रयतोघ्नतोघातयत पचत पाचयतश्चापरास्तथाप्यतश पुरुष मपि पचेंद्रिय विक्रीय घातयित्वापि पचेंद्रियघाते नास्ति दोषोत्रैवजानीहि अवगच्छ किंपुन रेकेंद्रियवनस्पतियातइत्यपिशब्दार्थ । ततश्चैववादिन साख्यावार्हस्पत्यावा नोनैवैत द्वय माण विप्रतिवेदयति जानति । तद्यथा । क्रिया परिस्पदात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपाएवम क्रिया स्थानादिलक्षणा यावदेवमेव विरूपरूपैरुच्चावचैर्नानाप्रकारैर्जलस्नानावगाहनादिकै स्तथा प्राण्युपमर्दकारिभि कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् सुरापानमासभक्षणाग म्यागमनादिकान् कामोपभोगान् समारभते स्वत पराश्चोदयति नास्त्यत्र दोषइत्येव प्रता र्यासत्कारणाय प्रेरयत्येव च तेऽनार्याअनार्यकर्मकारित्वादार्यान्मार्गाद्विरुद्ध मार्ग प्रतिप न्ना । तथाहि । साख्यानामचेतनत्वात्प्रकृते कार्यकर्तृत्व नोपपद्यते । अचेतनत्व तु त

पुव्वमेव तेसिं णायं भवति समणा भविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तभोइणो भिक्कुणोपावं कम्म णोकरिस्सामि समुठीए ते अप्पणो अप्पडिविरया भवंति सयमाइयंति अन्नेवि आदियावेति अन्नंपि आयतं त समणुजाणंति एवमेव ते इछिकामभोगेहि मुछिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना लुद्धा रागदोसवसट्टा ते णोअप्पाए समुछेदेति ते णोपर समुछेदेति णोअन्नाइं पाणाइं भूताइ जीवाइ सत्ताइं समुछेदेति पहीणा पुव्वसंजोगं आयरियं मग्ग असपत्ता इति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतराकामभोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीव तछरीरएति आहिए ॥ १ए ॥

अर्थ-(पुव्वमेवके०) एरीते पहेलोज (तेसिंके०) तेनास्तिक मतिओने (णायंभवति के०) एवो विपरीत ज्ञान होय के (समणाभविस्सामोके०) अमे श्रमण सयति थइशुं (अणगाराके०) घर रहित थइशु (अकिचणाके०) परिग्रह रहित थइशु (अपुत्ता के०) पुत्र मित्र कलत्रादिथी रहित थइशु (अपसूके०) गोमहिषादिकथी रहित थइशु (पर दत्तभोइणोके०) अन्यनो दीधेलो आहार भोगवीशु पोते पचन पाचनादिक क्रियाथी रहित थइशु (भिक्कुके०) भिक्षाचर छता (णोपावकम्मणोकरिस्सामिके०) पाप कर्म सावद्यानुष्ठान करीशु नहीं (समुठीएके०) ऐवो भाव पडिवजीने सम्यक्प्रकारे उठी सावधान थइने पछी नास्तिक भाव प्राप्त करे लोकायतिक मार्गे आव्या थका (तेअप्पणोअप्पडिविरया भवतिके० (ते आप पोते पापकर्म थकी अविरत थाय पोतानीज प्रतिज्ञा थकी भ्रष्ट थाय एवा थका जे करे ते कहेछे (सयमाइयतिके०) सावद्यानुष्ठान हिंसा मृषावादादिक स्वय पोते आदरे (अन्नेविआदियावेतिके०) अन्यने आदरावे (अन्नपिआयतं के०) अन्यकोइ आदरतो होय (तसमणुजाणतिके०) तेने अनुमोदे (एवमेवतेके०) एरीते ते (इछिकामभोगेहिमुछियाके०) स्त्री सबधी काम भोगने विषे मूर्छित (गिद्धा के०) गृद्ध एटले तेना अभिलाषी (गढियाके०) अधिक काम भोगने विषे बधाणा (अज्झोववन्ना के०) कामभोगने विषे एकाग्र चित्ते थया (लुद्धा के०) लुब्ध थया (रागदोसवसट्टा के०) राग द्वेषने विषे पडोता (तेणोअप्पाणसमुछेदेति के०) ते पोताना आत्माने कर्म पास थकी न छोडावे (तेणोपरसमुछेदेति के०) ते अन्यने पण कर्म बध थकी नछोडावे (णोअन्नाइ पाणाई भूताइ जीवाइ सत्ताइ समुछेदेतिके०) ते अन्य प्राणी भूत जीव सत्व तेने पण कर्म पास थकी छोडावी नशके एवा नास्तिक

अर्थ–हवे अपर त्रीजो पुरुष जात कहेछे जे ईश्वर लोकनो करनार छे एवु मानेछे ते मते एने ईश्वर कारणिक कहेछे खलु इति निश्चें आ मनुष्य लोकने विषे पूर्वोक्तरीते पूर्वादिक चार दिशिये कोइएक मनुष्य होय ते अनुक्रमे लोक माहे उपना तेमां कोइ एक आर्य देशना उपना ते ज्या सुधी महोटो राजा होय तेने परषदा होय ते वली ज्या सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परखदा सुधी कहेवु तेमाहे कोइ एक धर्मनी श्र द्धावान होय धर्मार्थी होय तेने धर्मार्थी जाणीने श्रमण ब्राह्मण मली धर्म प्रतिबोध वा निमित्ते आलोचीने ते पूर्वोक्त राजादिकने सन्मुख जइने अहीं यावत् पूर्वोक्त रीते सनादिकनु प्रस्ताव सर्व कहेवो पछीते राजादिकने तेईश्वरकारणिक पुरुष आवी पोता नो स्वाख्यात सुप्रज्ञ धर्म वर्णवेछे. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका–अथापरस्तृतीयः पुरुषजातईश्वरोजगतः कारण यस्य सईश्वरकारणिक आत्माऽद्वैतवादी व्याख्यायते । (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु दिक्षु एकस्या दिशि स्थि तः कश्चिदेव ब्रूयात् । यथा राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति॥२५॥

॥ टीका–साम्प्रतमीश्वरकारणिकमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ द्वितीयपुरु षानतरं तृतीयईश्वरकारणिकआख्यायते । समस्तस्यापि चेतनाचेतनरूपस्य जगतईश्वर कारण। प्रमाण चात्र तनुभुवनकरणादिक धर्मित्वेनोपादीयते ईश्वरकर्तृकमिति साध्योधर्म संस्थानविशेषत्वात्कूपदेवकुलादिवत्तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वास्यादिवत्। उक्तच। अज्ञोजतुरनी श स्या,दात्मन सुखदु खयो ॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छे,त्स्वर्ग वा श्वभ्रमेव वा इत्यादि। तथा पुरुष एवेद यद्भूत यच्च भव्यमित्यादि। तथा चोक्तं। एकएव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठित ॥ एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचद्रवदित्यादि। तदेवमीश्वरकारणिकआत्मा द्वैतवादी वा तृतीय पुरुषजातआख्यायते। (इहखलुइत्यादि) इहैव पुरुषजातप्रस्तावे । खलुश ब्दोवाक्यालकारे। प्राच्यादिषु दिक्ष्वन्यतमस्या व्यवस्थितः कश्चिदेव ब्रूयात् । तद्यथा। रा जानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यात सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति ॥ २५ ॥

इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया पुरिसप्पणीया पुरिससंभूया पु रिसपज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए गंमेसिया सरीरे जाए सरीरे संवुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागए सरीर मेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभू य चिठति सेजहा णाम ए अरईसिया सरीरे जाया सरीरे संवुड्ढा सरीरे अ

लतया ऽजितेंद्रिया संतस्तेषु कामभोगेषु मूर्छिताएकीभावतामापन्नागृद्धा काङ्क्षावंतो ग्रथिताअवबद्धाअ्युपपन्नाआधिक्येन भोगेषु लुब्धारागद्वेषार्त्तारागद्वेषवशगा कामभोगाधावा तएव कामभोगेषु आश्रवबद्धा सतोनात्मान संसारात्कर्मपाशाद्वा समुच्छेदयति मोचयंति नापि पर सदुपदेशदानत· कर्मपाशावपाशित समुच्छेदयति कर्मबंधात्रोटयंति नाप्यन्यान् दशविधप्राणवर्तिन प्राणान् प्राणिनस्तथा बाभूवन् भवति भविष्यतिच भूतानि तथा वा आयुष्कधारणाज्जीवास्तास्तथा सत्वास्तथाविधवीर्यांतरायक्षयोपशमापादितवीर्यगुणोपेतास्तान्नसमुच्छेदयंति । असदभिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवविधास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोलोकायतिकाअजितेंद्रियतया कामभोगावसक्ता पूर्वसयोगात्पुत्रदारादिकात्प्रहीणा प्रभ्रष्टाआरात्याता सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गे सदनुष्ठानरूपस्तमसप्राप्ताइत्येव पूर्वोक्तया नीत्या ऐहिकामुष्मिकलोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव भोगेषु विषण्णास्तिष्ठति । न विवक्षित पौष्करीकोत्क्षेपणादिक कार्य प्रसाधयतीति । अथ च प्रथम पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी परिसमाप्तइति ॥ १९ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए पंचमहब्भूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाइणंवा सतेगतियामणुस्सा भवति अणुपुव्वेणं लोय उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे एवं जाव दुरूवावेगे तेसिचणं महएगे राया भवइ महाएवंचेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिचणं एगेतिए सड्ढा भवंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तत्त अन्नयरेणं धम्मेणं पन्नत्तारो वय इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवं मायाणहभयंतारो जहाए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते भवति ॥ २० ॥

अर्थ—(अहावरेदोच्चेपुरिसजाए के०) अथ हवे अपर एटले बीजो पुरुषजात कोणछे ते हुं कहुंछु माटे हे श्रमणो तमे सांभलो (पचमहब्भूतिएति के०) जे पुरुष पृथ्व्यादिक पाच महाभूत तत्वे करी माने ते पाच महाभूतिक पुरुष साख्यमति (आहिज्जइ के०) कहिए ते प्रथम पुरुषनी परे ज्यांलगे राजसभामां आवी राजा प्रत्ये पोतानो धर्म रुडो करी प्रकाशे तेनी पेरे कहेछे (इहखलुपाइणंवाके०) निश्चे आ संसारमां पूर्वादिक दिशिने विषे (सतेगतियामणुस्साभवतिके०) कोइएक मनुष्य पचमहाभूतिक साख्यमतिछे (अणुपुव्वेणंलोयउववन्ना के०) ते अनुक्रमे लोकमाहे उपना (तजहाके०) ते कहेछे (आरियावेगेके०) एक आर्य मनुष्यते साडा पचीश आर्य देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य मनुष्यते अनार्य देशना उपना (एवजावदुरूवावेगे के०)

के०) पुरुष जे ईश्वर ते थकी उत्पन्न थया ते (जावअनिनूयचिठंति के०) यावत् ईश्वरनेज व्यापि रहेछे परतु ईश्वर थकी कांइ जुदा नथी

वली वीजो दृष्टात कहेछे. जेम (अरइतियाके०) अरति एटले चित्तनो उद्वेग पणो ते शरीर थकीज उपजे अने शरीर थकीज वृद्धि पामे अने शरीर माहेज व्यापि रहेछे तेम ए धर्म जे पदार्थ ते पण पुरुष थकीज उपजे पुरुष थकीज वृद्धि पामे अने पुरुष माहेज व्यापिरहेछे वली त्रीजो दृष्टात कहेछे (वम्मिएसियाके०) जेम वम्मिजे पृथवी तेनो विकार होय ते पृथवीने विषेज उपजे पृथवी थकीज वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापिने रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली चोथो दृष्टात कहेछे जेम कोइएक वृक्ष होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवीने विषेज वृद्धि पामे अने पृथवीनेज व्यापि रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली पाचमो दृष्टात कहेछे. जेम पुष्करिणी होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवी थकी वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थ अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली छठो दृष्टात कहेछे. जेम घणा पाणी माहे कमल होय ते कमल जल थकी नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेमज ए पदार्थ पण ईश्वर थकीज नीपजे ईश्वर थकीज वृद्धि पामे अने ईश्वरनेज व्यापि रहे वली सातमो दृष्टात कहेछे जेम पाणीनु बुदबुदो होय ते जल थकीज नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल माहेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थो सर्व ईश्वर थकीज उपजेछे इत्यादिक सर्व जाणी लेवु ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–इह खलु धर्मा स्वनावाश्चेतनाचेतनरूपा पुरुषईश्वरआत्मा वा कारण मादिर्येषा ते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएव उत्तर कार्यं येषाते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीता पुरुषेण द्योतिता प्रकाशीकृतायथा सूर्येण घटादय । ते च धर्माजीवाना जन्ममरणरोगशोकादय । अजीवधर्मास्तु मूर्तद्र्व्याणां वर्णगंधरसस्पर्शा । अमूर्तद्र्व्याणा धर्माधर्माकाशाना गत्यादिकाधर्मा: सर्वेपीश्वरकृता । आत्माद्वैतवादे चात्मविवर्ता । सर्वेऽप्येते पुरुषमेवाभिनूय व्याप्य तिष्ठति । अत्रार्थे दृष्टातान् बहूनाह । (सेजहानामएइत्यादि) सेजहा तद्यथा । नामेति सनावनायां । गड स्यात् । सनाव्यते हि प्राणिना कर्मवशगाना गडादिरोगइति । गंडं च शरीरे जातं शरीरावयवनूत तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरवृध्या तस्य वृद्धिरिति। शरीरेऽनिसमत्वागतं न तदवयवोपि शरीरात्पृथक्नूतइति । शरीरमेवानिनूय पीडयित्वा तिष्ठति । एवमेव येऽमी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृका । न ते ईश्वरात्पृथक्कर्तु न शक्यते यथा गडं शरीरविकारनूतं तद्विनाशेच शरीरमेव तिष्ठति एव धर्मा पुरुषादिका पुरुषवि

अर्थ—(इहखलु के०) निश्चे आसंसारने विषे (पंचमहभूता के०) पांच महोटा नूत सर्व जगतमा व्यापी रह्याछे (जेहिंनोकज्जइकिरियातिवाअकिरियातिवा के०) ते हिज पांच नूते अमे क्रिया अक्रिया सर्व करियें परतु जेहिं एटले जे ठगे आत्मा ए वे नामे पदार्थछे ते क्रिया अक्रिया नोकज्जइ एटले नथी करतो तथा सुक्कडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा एटले सुकृत करणी डुष्कृत करणी कल्याण कारी क्रिया पापकारी क्रिया साधु एटले नली क्रिया असाधु एटले माठी क्रिया सिद्धि एटले मोक्ष जवा योग्य क्रिया असिद्धि एटले मोक्ष न जवा योग्यक्रिया नरक जवा योग्य क्रिया नरके नजवा योग्य क्रिया ए सर्व आत्मा नथी करतो (अंतसोतणमायमवि के०) ए कारणे सांख्यने मते जे काइ सूक्ष्म तृणनु नमाववो तेनो पण उपदेश पाच नूतज करेछे पण आत्मा सर्वथा कांइ पण नथी करतो ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—सांख्यनास्तिकयोर्मतमाह । इह मते पच महानूतानि यैर्नोऽस्माकं क्रिया व्यापारता वा नक्रियते सुकृतं डुष्कृतंवा कल्याण पापकमिति या साध्वितिवा सिद्धिर्मुक्तिरसिद्धि संसारोनरकोऽनरकस्तिर्यङ्नरामरगति । एतत्सर्वं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिरेव नूतरूपा करोति । आत्मा केवलमुपजुक्ते नतु करोति किंचित् । नास्तिकाभिप्रायेणापि इहैव सुखडुःखे स्वर्गनरकौ इत्युच्यतइति । एवमतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तद्भूतैरेव प्रकृतिरूपापन्नैः क्रियते । एव सांख्यमते आत्मा किंचित्कर । नास्तिकमतेतु आत्मन सर्वथाप्यनावस्ततो द्वयोरपि नूतान्येव सर्वकार्यकर्तृणीति ॥ २१ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सांख्यस्य लोकायतिकस्य चान्युपगम दर्शयितुमाह । (इहखलुपंच महभूताइत्यादि) इहास्मिन् ससारे द्वितीयपुरुषवक्तव्यताधिकारे वा । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पृथिव्यादीनि पंचमहानूतानि विद्यते महांति च तानिच महानूतानि सर्वव्यापितयान्युपगमात् महत्व । तानिच पचैव। परस्य पष्ठस्य क्रियाकर्तृत्वेनानन्युपगमाद्यैर्हि पंचनिर्नूतैरन्युपगम्यमानैर्नोऽस्माक क्रिया परिस्पंदात्मिका चेष्टारूपा क्रियते क्रिया वा निर्व्यापारतया स्थितिरूपा क्रियते । तथाहि । तेषा दर्शने सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिर्भूतात्मनूता सर्वाथर्थक्रिया करोति पुरुष केवलमुपजुक्तेऽध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयतीति वचनात् । बुद्धिश्च प्रकृतिरेव तद्विकारत्वात्। तस्याश्च प्रकृतेर्भूतात्मिकाया सत्वरजस्तमसां चयापचयान्या क्रियाक्रिये स्यातामिति कत्वा नूतेन्यएव क्रियादीनि प्रवर्तंते तद्व्यतिरेकेणापरस्यानावादिति नाव । तथा सुष्ठु कृतं सुकृतमेतच्च सत्वगुणाधिक्येन नवति ।

रूपं स्यात्तच्च पृथिव्यां जातं पृथिवीसंबद्धं पृथिव्यभिसंवर्धितं पृथिवीमेवाभिसंभूय ति ष्ठत्येव दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । एवमेव यदेतच्चेतनरूपं तत्सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्त रूपं वा नात्मनः पृथग्भवितुमर्हति पृथिव्यां वल्मीकवत्तथा तद्यथा नाम वृक्षोऽशोका दिकः स्यात्सच पृथिवीजातइति दृष्टांतदार्ष्टांतिके पूर्ववदायोज्ये । तद्यथा । नामपुष्क रिणी स्यात्तडागरूपा भवेत्साच पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वच्चर्च्यस्तथा तद्यथा नामपु ष्कलं प्रचुरमुदक पुष्कलमुदकप्राचुर्य तच्च तद्धर्मत्वादुदकमेव यावदुदकमेवाभिभूय तिष्ठ त्येव दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । तथा तद्यथा नामोदकबुद्बुदः स्यादत्रापि दृष्टांतदार्ष्टांतिके न तस्मादवयविन पृथग्भूतइति सुगमं ॥ २६ ॥

जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिठं पणियं वियं जियं डुवालसंगं गणिपिम्हयं तजहा आयारो सूयगडो जाव दिठिवातो सवमेवं मिछा ए एय तहियं णएयं आहातहिय इम सच्च इम तहियं इमं आहात हियं एव सन्न कुवंति ते एव सन्न संठवेति तेएवं सन्नं सोवठवयंति तमेवं ते तज्जाइयं डुक्कं णातिउद्दति सउणी पजरं जहा ॥२७॥ ते णो एवं विप्पडि वेदेति तंजहा किरियाइवा जाव अणिरएइवा एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइ कामभोगाइ समारभंति भोयणाए एव मेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सद्दहमाणा जावइति ते णोहच्चाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसएोति तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणि एत्ति आहिए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे जे ईश्वरे कह्यो ते सर्व सत्यछे अने बीजो सर्व मिथ्या छे एवो भाव कहेछे (जपियइमके०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण (समणाणणिग्गथाणके०) श्रमण निग्रथनो (उ दिठ्के०) उद्देस्यो एटले ते निग्रंथने अर्थे भाख्यो (पणियंवियंजियं के०) तेने अर्थे प्रग ट कह्यो (डुवालसगगणिपिम्हयं के०) द्वादशागी गणि पिटक एटले आचार्यनो भंडा र (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे (आयारो के०) आचाराग (सूयगडो के०) सू त्ररुताग इत्यादिक (जावदिठिवातो के०) ज्यासुधी दृष्टिवाद लोक बिंदुसार नामा पूर्व पर्यंत (सवमेवमिछा के०) ए सर्वे मिथ्याछे कारण के ए काइ ईश्वरकृत नथी एतो सर्वे पोतानी इछाये कल्पितछे माटे मिथ्याछे जेम कोइ छताने अछतो कहे अछताने छतो कहे जेम कोइ साधुने चोर कहे अने चोरने साधु कहे तथा गायने घोडो कहे अने घोडाने गाय कहे तेमज आत्मा कर्त्ता नथी तेने जे कर्त्ता कहेछे अने जे ईश्वर कर्त्ताछे

सता के०) शाश्वता छे (आयछहा के०) आत्माछे जेने छहो एवा ए पांचमहाभूत जाणवा (पुणएगेएवमाहु के०) एक वली एम कहेछे (सतोणछिविणासोके०) छतो विद्यमान पदार्थ तेनो विनाश नथी (असतोणछिसनवो के०) अविद्यमान शशशृंगादिकनो उत्पत्तिनो संनव नथी ए कारणे साख्य दर्शनवालो आत्माने कर्त्ता नथी मानतो जो आत्मा कर्त्ता होय तो अछति वस्तु उपजावे ते कारणे आत्मा कर्त्ता नथी ॥२२॥

॥ दीपिका-त च नूतानां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येका महानूतमित्यादि । एषा कायाकारतया य समवाय सएकत्वे लक्ष्यते । इत्येतानि पंच महानूतान्यनिर्मितानि कालेश्वरादिना केनचिदकृतानि परेणाऽनिर्मापयितव्यानि अकृतानि विश्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात् । तथा न घटवत्कृत्रिमाणि अनादीनि अनिधनानि आद्यतरहितानि अवध्यान्यवश्यकार्यकर्तॄणि नविद्यते पुरोहित कार्यं प्रतिवर्तयिता येषा तान्यपुरोहितानि स्वतत्राणि शाश्वतानि नित्यानि आत्मपष्ठानि पच महानूतानीत्येकआहु । सांख्यानामात्मा किंचित्कर' । नास्तिकानातु कायाकारपरिणतानि नूतान्येवाभिव्यक्तचैतन्यान्यात्मव्यपदेशं लनते । तदेव साख्यमते सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्तिविनाशोऽसत शशविषाणादेर्नास्ति सनव । यदुक्तं । नासतोजायतेनावो नानावोजायतेसतइति ॥ २२ ॥

॥ टीका-तंच तेषा समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येकाकाठिन्यलक्षणा महानूतं । तथापोद्रवलक्षणामहानूत तथा तेजउष्णोद्योतलक्षण तथा वायुर्धृतिकंपलक्षणस्तथावगाहदानलक्षण सर्वद्रव्याधारनूतमाकाशमित्येव पृथग्नूतपदोद्देशेनकायाकारतया यस्तेषा समवाय सएकत्वेपि लक्ष्यते इत्येतानि पूर्वोक्तानि पृथिव्यादीनि संख्याह्युपादीयमाना सख्यातर निवर्तयन्तीति कृत्वा नन्यूनानि नाप्यधिकानि विश्वव्यापितया महाति त्रिकालनवनाद्भूतानि । तदेवमेतान्येव पच महानूतानि प्रकृतेर्महान् महतोहकारस्तस्माच्च गण पोडशकस्तस्मादपि पोडशकात्पचन्य पचनूतानीत्येव क्रमेण व्यवस्थितान्यपरेण लोकेश्वरादिना केनचिदनिर्मितान्यनिष्पादितानि । तथा परेणानिर्मापयितव्यानि तथा कृतानि न केनचित्तानि क्रियते । अत्रेऽधनुरादिवद्विस्रसा परिणामेन निष्पन्नत्वात्तथा नघटवत्कृत्रिमाणि कर्तृकरणव्यापारसाध्यानि ननवतीत्यर्थ. । तथा परानावतया नोनैव कृतकानि । अपेक्षितपरव्यापारस्वनावनिष्पत्तौ नाव कृतकइतिव्यपदिश्यते । तानि च विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्कृतकव्यपदेशनांजि न नवति तथा नाद्यनिधनानि अवध्यान्यवश्यकार्यकर्तॄणि तथा न विद्यते पुरोहित कार्यं

व वादिनस्तदंगीकारजातीयं दुःखं दुःखहेतुत्वान्नातिवर्तते न त्रोटयंति । यथा शकुनि पक्षी पंजर न त्रोटयति एव तेपि तदुपदेशात्कर्मबंधनं नातिवर्तते ॥ २४ ॥ ते कदाग्र हग्रस्ताएत दृद्यमाण नविप्रतिवेदयंति न जानति । तद्यथा । इयंक्रियाइत्यादि यावदन रकइत्येव निर्विवेकत्वान्न जानति । एवमेव यथाकथचित्ते विरूपरूपै कर्मसमारंभैर्वि रूपरूपान् कामनोगान् समारजंते नोजनाय उपनोगाय । एव ते अनार्याविप्रतिपन्ना स्वपक्ष प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववत् । यावत्ते कामनोगेषु विषएणा । इत्ययमीश्वरकार णिकआत्माद्वैतवादी तृतीय पुरुषजात संपूर्ण ॥ २८ ॥

॥ टीका–तदेव यदीश्वरकृतत्वेनाभ्युपगम्यते तत्सर्वं तथ्यमपर मिथ्या इत्येतदाविर्नाविय न्नाह । (जपियेत्यादि) यदपि चेदं सव्यवहारत प्रत्यक्षासन्ननूतं श्रमणाना यतीना निर्ग्र थानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं तदर्थं प्रणीतं व्यंजितं तेषामनिव्यक्तीकृतं द्वादशांग गणिपिटकं तद्यथाचारइत्यादि यावद्दृष्टिवाद सर्वमेतन्मिथ्या अनीश्वरप्रणीतत्वात्स्वरुचिविरचितरथ्या पुरुषवाक्यवत्तथ्यं नैतत्तथ्यंमिथ्येत्यनेनोद्भूतोद्भावनमाविष्कृतमचौरत्ववत् । नैतत्तथ्यमित्य नेन तु संभूतार्थनिन्हवोयथानास्त्यात्मेति तथा नैतद्याथातथ्यमवस्थितोर्थ । तथावस्थि तमिति नावोनेन सद्भूतार्थनिन्हवेनासद्भूतार्थारोपणमाविष्कृत । तद्यथा । गामश्व ब्रुवतो श्व वा गामित्येकार्थिकानि चैतानि शक्रेंद्रादिवद्द्रष्टव्यानि । तदेव यदि तद्वादशांग गणि पिटक तदनीश्वरप्रणीतत्वान्मिथ्येति स्थितमिद तु पुनरीश्वरकर्तृकत्व नामात्माद्वैतं वा सत्यं यथावस्थितार्थप्रतिपादनात् । तथेदमेव तथ्यं सद्भूतार्थोद्भासनात्तदेव ते ईश्वरकार णिकाआत्माद्वैतवादिनोवा । एव मनंतरोक्तया नीत्या सर्वं तनुभुवनकारणादिकमीश्वर कारणिक तथा सर्वं चेतनमचेतन वाऽऽत्मनि निवर्तितस्वजावमात्मनएव सर्वाकारतयोत्प त्तेरित्येव संज्ञान सज्ञा तामेव कुर्वत्यन्येषाच ते स्वदर्शनानुरक्तमनस सज्ञां स्थापयंति तथा एवनूता सज्ञा वक्ष्यमाणेन न्यायेन निर्युक्तिकामपि सुष्ठूपसामीप्येन तदाग्राहितया तदानिमुखायुक्तीर्निर्णीयव स्थापयंति प्रतिष्ठापयति । ते चैव वादिनस्तमीश्वरकर्तृत्ववाद मात्माद्वैतवादवा नातिवर्तंते तदन्युपगमजातीय च दुःख दुःखहेतुत्वादुःख नातिवर्तते न त्रोटयति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह । यथा शकुनि पक्षिविशेषोलावकादिक पंजर ना तिवर्तते पौन पुन्येन भ्राता तत्रैव वर्तते एव तेप्येवनूताभ्युपगमवादिनस्तदापादितक र्मबंध नातिवर्तते नवा त्रोटयंति ॥२७॥ तेच स्वाभिमानग्रहग्रस्तानैत दृक्ष्यमाण विप्रतिवे दयति न सम्यक् जानति । तद्यथेय क्रियासदनुष्ठानरूपेयं चाक्रिया तद्विपरीतेत्येव स्वाग्रहि णोनान्यत् शोननमशोनन वा यावदयमनरकइत्येव सद्विवेकरहितत्वान्नावधारयंत्येवमेव य थाकथचित्ते विरूपरूपै कर्मसमारंभैर्नानाप्रकारै सावद्यानुष्ठानैर्द्रव्योपार्जनोपायनूतैर्द्रव्य मुपादाय विरूपरूपान्कामनोगानुच्चावचान्समाचरति नोजनायोपनोगार्थमित्येवमनार्यास्ते

स्यैतदेव चरणकरणतया सर्वकार्येषु व्याव्रियते । तथाहि । सांख्यस्य प्रधानात्मन्या सृष्टिरुपजायते । लोकायतिकस्यतु नूतान्येवातस्तृणमात्रमपि कार्य कुर्वंति तदतिरिक्तस्यापरस्यानावादिति नाव ॥ २३ ॥

से किणकिणावेमाणे हणघायमाणे पयपयावेमाणे अविअंतसो पुरिसमविक्किणित्ता घायइत्ता एछंपि जाणाहि णत्थिछदोसो ते णोएव विप्पडिवेदेति तजहा किरियाइवा जाव णिरएइवा एवते विरूवरूवेहि कम्मसमारंनेहि विरूवरूवाइं कामनोगाइं समारनंति नोयणाए एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना तं सद्दहमाणा त पत्तियमाणा जावइति ते णो हव्वाए णोपाराए अंतरा कामनोगेसु विसणा दोच्चे पुरिसजाए पंचमहनूतिएत्ति आहिए ॥ २४ ॥

अर्थ–हवे एक वादी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि नथी वली एक वादी एम कहेछे के आत्माछे परतु क्रिया काइ करतो नथी तो तेने मते आत्माने शुनाशुन कर्मनो वध नथी एवो देखाडेछे (सेकिणकिणावेमाणे के०) ते क्रियानो अर्थी पुरुष कोइएक जातनो क्रियाणो लेतो अथवा अन्य पाशे लेवरावतो (हणघायमाणे के०) तथा प्राणीउने हणतो अथवा अनेरा पाशे हणावतो (पयपयावेमाणे के०) पचन पाचनादि क्रिया पोते करतो अथवा अनेरा पाशे करावतो थको (अविअतके०) पण निश्चेकरी जाणे (सोपुरिसमविक्किणित्ताके०) अथवा ते पुरुष पचेडीने मोले वेचातु लेइने (घायइत्ताके०) हणतो थको (एछपिजाणाहिके०) अहींया पण ते एवु जाणे के (णत्थिछदोसो के०) ते हिसाना दोषनो विनागी न थाय एवो जाणी यथाछंदे हिसादिक सावद्य व्यापारमा प्रवर्त्ते (तेणोएवविप्पडिवेदेतिके०) ते वापडा मूर्ख एटलो न जाणे शु नजाणे (तंजहाके०) ते कहेछे (किरियाइवाके०) क्रिया एटले रूडो अनुष्ठान ते नजाणे (जावणिरएइवाके०) ज्या शुरी नरक नजाणे एम सर्व पूर्ववत् जाणवो (एवतेविरूवरुवेहि के०) एम ते नाना प्रकारना (कम्मसमारनेहिके०) कर्मनो समारन करता (विरूवरुवाइकामनोगाइसमारनति के०) न्हाना प्रकारना कामनोगने समारंने (नोयणाए के०) आहारने अर्थे नोगवता (एवमेवतेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) एरीते ते अनार्य पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता कामनोगने विषेमूर्छाणा थका (तसद्दहमाणा के०) ते पाखंमी धर्म ने सर्दहता थका (तंपत्तियमाणा के०) तेनी प्रतीत करता थका (जावइतिते के०) ज्या शुधी ए प्रकारे ते (णोहव्वाए के०) तीरे पण रह्या नही

अहावरे चउत्थे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाईणं वा तहेव जावसेणावईपुत्तावा तेसिंचणं एगताए सट्ठा नवइ कामं तं समणाय माहणाय संपहारिं सुगमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते नवइ ॥ २ए ॥

अर्थ-अथ हवे अनेरो चोथो पुरुषजात नियतवादि कहिये ठेयें जे कार्य सिद्धिने विषे नवितव्यता टालीने बीजो कारण काइ पण न माने ते नियतवादि कहिए. खलु एवे वाक्यालंकारे ए मनुष्य लोकने विषे पूर्वादिक चारदिशि माहेलो कोइएक पुरुष होय ते ज्या सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परषदा कहेवी तेमांहे कोइएकने धर्मनी श्रद्धा होय धर्मार्थी होय एवो धर्मार्थी जाणीने ब्राह्मण श्रमण मली तेने धर्म प्रति बोधवा निमित्ते आलोची राजादिकने समुख जइने पोतानो धर्म प्ररूपे ते नियतवादि राजादिकनी पाशे पोताना धर्मनी स्थापना जे रीते करे तेरीते कहेठे ॥ २ए ॥

॥ दीपिका-अथापरश्चतुर्थ पुरुषजातोनियतिवादी आख्यायते । इह खलुपाईण इत्यादिप्राग्वत् । यावदेषधर्म स्वाख्यातोनवतीति ॥ २ए ॥

॥ टीका-सांप्रत चतुर्थपुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ तृतीयपुरुषानंतरमपरश्चतुर्थ पुरुषएव पुरुषजातो नियतिवादिकआख्यायते प्रतिपाद्यते सचैवमाह। नात्र कश्चित्कालेश्वरादिक कारण नापि पुरुषकार समानक्रियाणामपि कस्यचिदेव नियतिवादबलादर्थसिद्धेरतोनियतिरेव कारण । उक्तंच । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः सोवश्य नवति नृणां शुनोऽशुनोवा ॥ नूताना महति कृतेपि हि प्रयत्ने नानाव्य नवति न नाविनोस्ति नाशइत्यादि ॥ २ए ॥

इह खलु ड्वे पुरिसा नवंति एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णो किरियामाइक्खइ जेयपुरिसे किरियामाइक्खइ जेपुरिसे णोकिरियामाइक्खइ दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगट्ठा कारणमावन्ना ॥ ३० ॥

अर्थ-(इहखलुड्वेपुरिसानवति के०) आ संसार मांहे खलु एवे वाक्यालंकारे बे पुरुष होय तेमाहे (एगेपुरिसेकिरियामाइक्खइ के०) एक पुरुष क्रिया बोले (एगेपुरिसेणोकिरियामाइक्खइ के०) अने एक पुरुष अक्रिया बोले त्या एक देश थकी बीजे देशे जइये ते क्रिया जाणवी अनेजे देशांतरने विषे नजावु एम उपक्रम विना कार्य प्रा

स्याश्चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति वचनात् आत्मैव प्रतिबिंबोदयन्यायेन करिष्यतीति चेत्त दपि न युक्तिसंगत । यतोऽकर्तृत्वादात्मनोनित्यत्वाच्च प्रतिबिंबोदये न युज्यते । किंचानि त्यत्वात्प्रकृतेर्महदादिविकारतया नोत्पत्तिः स्यात् । अपिच । नासतोजायते नावोनाना वोजायते सतइत्याद्यन्युपगमात्प्रधानात्मनोरेव विद्यमानत्वान्महदहंकारादेरनुत्पत्तिरेवैक त्वाच्च प्रकृतेरेकात्मवियोगेसति सर्वात्मना वियोगः स्यादेकसंबंधेवा सर्वात्मना प्रकृतिसंयो गोन पुनः कस्य चित्तत्त्वपरिज्ञानात् प्रकृतिवियोगे मोक्षोऽपरस्य तु विपर्ययात्संसारइत्येवं जगद्वैचित्र्य नस्यादात्मनश्चाकर्तृत्वे तत्कृतौ बंधमोक्षौ नस्यातामेतच्च दृष्टेष्टबाधित नापि कारणे सत्कार्यवादोयुक्तिनिरनुपपाद्यमानत्वात् । तथाहि । मृत्पिंडावस्थाया घटोत्पत्ते प्राग्घटसंबंधाना कर्मगुणव्यपदेशानामनावाद्घटार्थिना च क्रियासु प्रवृत्तेर्न कारणे कार्यमि ति लोकायतिकस्यापि नूतानामचेतनत्वात्कर्तृत्वानुपपत्तिः । कायाकारपरिणताना चै तन्याभिव्यक्त्यन्युपगमेच मरणानावप्रसंगः स्यात्तस्मान्न पचनूतात्मक जगदिति स्थितं। अपि चेदं ज्ञान स्वसंवित्तिसिद्धमनात्मधर्मिणमुपस्थापयति । नच नूतान्येव धर्मित्वेन परिकल्पयितु युज्यते तेषामचेतनत्वादथ कायाकारपरिणताना चैतन्यधर्मोनविष्यती त्येतदप्ययुक्त । यतः कायाकारपरिणामएव तेषामात्मानमधिष्ठातारमंतरेण न नवितुम र्हति निर्हेतुकत्वप्रसंगान्निर्हेतुकत्वेच नित्यं सत्वमसत्ववा स्यादिति । तदेवनूतव्यतिक्त आत्मा तस्मिंश्च सति सदनुष्ठानतः पुण्यपापे ततश्च जगद्वैचित्र्यसिद्धिरिति । एव व्यवस्थि ते तेऽनार्याः साख्यालोकायतिकावा पंचमहानूतप्रधानान्युपगमेन विप्रतिपन्नायत्कुर्यु स्तद्दर्शयितुमाह । (तसद्दहमाणाइत्यादि) तमात्मीयमन्युपगमं ये चोक्तया नीत्या निर्युक्ति कत्वमपि श्रद्दधाना पचमहानूतात्मप्रधानस्य सर्वकार्याणि उपगच्छंति । तदेवच सत्य मित्येव प्रतिपादयतः प्रतिपद्यमानास्तदेव चात्मीयमन्युपगमं रोचयतस्तद्धर्मस्याख्यातार प्रशंसयतः । तद्यथा । स्वाख्यातोनवता धर्मोऽस्माकमयमत्यंतमनिप्रेतइत्येव ते तदध्यव साया सावद्यानुष्ठानेनाप्यधर्मोन नवतीत्यध्यवसायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छिताइत्येव पूर्ववज्ज्ञे यं। यावत्तदंतरे कामनोगेषु विषम्माऐहिकामुष्मिकोनयकार्यभ्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेषा मिति । नवत्येव द्वितीयः पुरुषजातः पचमहानूतान्युपगमिकोव्याख्यातइति ॥ २४ ॥

अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ इह खलु पासा ईणवा संतेगतिया मणुस्सा नवति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना त आरि यावेगे जाव तेसिंचण महंते एगे राया नवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं चण एगतीए सद्धा नवइ काम त समणाय माहणाय पहारिंसुगमणाए जाव जहा मए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते नवइ॥ २५ ॥

अनुनवुं (अहमेय मकासिके०) ए सुख दु खादिक अनुनवुं ते माहाराज करेलाछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो पण (ज के०) जे दु ख अनुनवेछे शोक अनु नवेछे जूरेछे तेना शरीरनो बल उंबु थायछे पीडा अनुनवेछे परितापना अनुनवेछे ते (परोएवमकासिके०) तेणेज अनरे एम कीधोछे अथवा माहारे विषे बीजो कोइ सुख दु खादिक उपजावे तेपण माहाराज करेलाछे (एवके०) एम (सेवालेके०) ते बाल अ ज्ञानी (सकारणवा के०) स्वकारण अथवा (परकारणंवाके०) पर कारण सर्व दु खादिक जे छे ते पुरुषकार कारणकरी मानेछे (एव के०) एम (विप्पडिवेदेति के०) जाणेछे (कारणमावन्ने के०) ए जे पुरुषकार कारणने मानेछे ते बाल जाणवा ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—बालोज्ञ पुनरेव विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्न कारणमुद्दिश्य । तद्यथा । योहमस्मि (दु खामित्ति) दु खमनुनवामि (सोयामित्ति) शोकमनुनवामि (जूरामित्ति) दुष्कृतप्रवृत्तमात्मान गर्हामि अनर्थावासौ विस्तरयामीत्यर्थ । तिप्पामि शरीरबलात्क्षरामि पीडामि पीडामनुनवामि परितापमनुनवामि । एव यत्सुखदु खादि कमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परोवा य दुखादिकमनुनवति मयिवाऽऽपादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । एव सपुरुषकारणमापन्न स्वकृतं परकृतं वा दु खादि सर्व पुरुषकारकृतमिति जानीते बालइत्यर्थ ॥ ३१ ॥

॥ टीका—नियतिवादी परमतोद्भिनावविषयाह । (बालेपुणइत्यादि) बालोज्ञ पुरुष कालेश्वरवादीत्यादिक । पुनरिति विशेषणार्थस्तदेव दर्शयति । एवमिति । वक्ष्यमाणनी त्या विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्न सुखदु खयो स्वकृतएव पुरुष कालेश्वरादि र्वा कारणमित्येवमन्युपपन्नोनान्यन्नियत्यादिक कारणमस्तीति । तदेवाह । तद्यथा । यो हमस्मिन् दु खमिति शारीर मानसं दु खमनुनवामि तथा शोचामीष्टानिष्टवियोगसप्रयो गकृत शोकमनुनवामि तथा (तिप्पामित्ति) शारीरबल क्षरामि तथा (पीडामित्ति) सबा ह्यान्यतरया पीडया पीडामनुनवामि तथा (परितप्पामित्ति) परितापमनुनवामि तथा (जूरामित्ति) अनार्यकर्मणि प्रवृत्तमात्मान गर्हामि अनर्थावासौ विस्तरयामीत्यर्थ । तदेव यदह दु खमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परपीडया कृतवानस्मीत्यर्थ । तथा परोपि यद्दु ख शोकादिकमनुनवति मयि चापादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । तदेव दर्शयति । परोवेत्या दि । तथा परोपि यन्मा दु खयति शोचयतीत्यादि प्राग्वन्नेय । तत्सर्वमहमकार्षमित्येव द्वान्यामाकलितोऽज्ञोज्ञोवा बालएव विप्रतिवेदयते जानीते स्वकारणवा परकारणवा सर्व दु खादिपुरुषकारणमिति जानीते एव पुरुषकारकारणमापन्नइति ॥ ३१ ॥

भिसमणागया सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठति सेजहा णामए वम्मिएसिया पुढविजाए पुढविसवुड्ढे पुढविअभिरसमणागए पुढविमेव अभिभूय चिठइ एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठति सेजहा णामए रुक्के सिया पुढविजाए पुढविसवुड्ढे पुढविअभिसमणागए पुढविमेव अभिभूय चिठति एवमेव ,धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठति सेजहा णामए पुक्करिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव अभिभूय चिठति एवमेव धम्माविपुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति से जहा णामए उदगपुक्कलेसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठं ति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए उदगवुब्बुएसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठति एव मेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठति ॥ २६ ॥

अर्थ-(इहखलुधम्मापुरिसादियाके०) आ संसारने विषे खलु एवे वाक्यालंकारे धर्म जे सचेतना अचेतनारूप स्वभाव ते पुरुषादिक जाणवा एटले एम कह्युजे एनी आदिनुं करनार पुरुष शब्दे ईश्वरछे तेकारणे पुरुषादिक एम पाठ कह्यो तथा (पुरिसोत्तरायाके०) पुरुषज जेने उत्तर एटले प्रधानछे तथा (पुरिसप्पणीया के०) पुरुष प्रणीत एटले ए नो अधिष्ठाता पण पुरुष ईश्वरजछे तथा (पुरिससभूयाके०) पुरुष थकीज उपना (पुरिस पज्जोतिता के०) पुरुषजे ईश्वर तेणेज प्रगट कस्या जेम प्रदीप मणी अने सूर्यादिके घटपटादिक पदार्थ प्रगट कस्या तेनी पेरे जाणी लेवु (पुरिसअभिसमणागया के०) जीवने जन्म जरा मरण रोग शोक वर्ण गंध रस स्पर्श मूर्त्तिपणो ए अनागतादिक धर्म ते सर्व पदार्थ ईश्वरना अनुगामीछे (पुरिसमेवअभिभूयचिठति के०) किबहुना ए सर्व पुरुषनेज व्यापीने रहेछे (सेजहाणामए के०) ए अर्थ उपर दृष्टांत देखाडेछे जेम णाम एवे सभावनाये (गमेसिया सरीरेजाएके०) पुरुषने शरीरे गम एटले गुबडो रोग विशेष थाय ते तेज शरीरने विषे उपनो (सरीरेसवुड्ढे के०) तेज शरीरने विषे वृद्धि पाम्यो (सरीरें अभिसमणागए के०) शरीरने पठवाडेज अनुगत गामिछे (सरीरमेवअ भिभूयचिठंति के०) शरीरने विषेज व्यापि रहेछे पण तेनो अवयव शरीर थकी बाहेर नथी (एवमेव के०) एमज (धम्मावि के०) ए पदार्थ मात्रजेछे ते पण (पुरिसादिया

छे ते सर्व नियतनेज वशेंछे एवो देखाडेछे (सेबेमि के०) ते नियतवादी युक्तियें निश्चे करी बोलेछे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चार दिशिने विषे (जे तसथावरापाणाके०) जे काइ त्रस अने स्थावर प्राणीछे (ते एवसंघायमागछति के०) ते एम जे कांइ शरीरादिक संबंध पामेछे ते नियतिनेज वशें पामेछे परतु बीजो कर्मादिक कारण तेने काइ नथी (ते एवविपरियासमावज्ञति के०) ते एम बाल कुमार यौवन अने वृद्ध अवस्थादिक नानाप्रकारना पर्याय पामेछे ते सर्व नियति थकीज अनुभवेछे (ते एवविवेगमागछतिके०) तथा ते एम नियति थकीज विवेक एटले शरीर ते थकी पृथक् भाव पामेछे (ते एवविहाणमागछति के०) तथा ते एम नियति थकीज विधान एटले अवस्था विशेष अर्थात् कुब्ज काणो खंज वामन जरा मरण रोग शोकादिक पामेछे (ते एवसंगतिर्यंतिउवेहाए के०) एरीते ते त्रस अने स्थावर प्राणी नियतने बले एटला भावने अनुभवेछे हवे श्रीसुधर्म स्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के एवा नियतवादि पुरुषो मात्र एक नियतनोज पक्ष अनुसरीने परलोकनी बीक नराखता सावद्यानुष्ठान करेछे परतु (णोएवविप्पडिवेदेंतिके०) ते एवो नथी जाणता शु नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे (किरियातिवा जाव अणिरएतिवा के०) क्रिया अक्रिया सिद्धि असिद्धि इत्यादिक यावत् नरक अनरक पर्यंतने नथी जाणता (एवते के०) एम ते सर्व दोष एक नियत उपरे स्थापन करीने (विरूवरूवे हिकम्मसमारंभेहि विरूवरूवाइंकामभोगाईसमारभंति भोयणाए के०) नानाप्रकारना कर्म समारंभे भोजनने अर्थें अने भोगने अर्थे नाना प्रकारना कामभोगने समारंभे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—मेधावी नियतिवादी कारणमापन्न स्वकारण परकारणं वा उद्दिश्य प्रवृत्तिर्न पुरुषकारकृता यतोनहि कस्यचिदात्माऽनिष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिका क्रिया समारभंते किंतुनियत्यैवायमनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखनाग्भवति । एवमसौ कारणमापन्नोवेत्तीति कारणं वात्र एकस्याऽसदनुष्ठानपरस्यापि न डुःखमुत्पद्यते ततोनियतिरेव कर्त्रीति । एतदेवाह । (सेबेमित्ति) सोहं नियतिवादी ब्रवीमि ये केचित्त्रसा स्थावराश्च प्राणिनस्ते नियतितएव औदारिकादिशरीरसबंधमागछंति बालकुमारादिक विविध पर्याय नियतितएवानुभवति नियतितएव विवेक शरीरात्पृथग्भाव प्राप्नुवति । विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणांधत्वजरामरणादिकमागछंति तदेव ते प्राणिनोनियत्यैव सगतिं यांति नानानाविधसुखडुःखभाज स्यु । एव नियतिवादोत्प्रेक्षया एतद्वक्ष्यमाण न विप्रतिवेदयति न जानति । तद्यथा । क्रियाअक्रियाइत्यादि यावद्विरूपरूपान् कामान् भोगान् भोजनायोपभोगार्थं समारभते ॥ ३२ ॥

काररूपान पुरुषात् पृथग्नवति तद्विकारापगमे चात्मानमेवाश्रित्य तिष्ठंति । एवम न्यदृष्टांताअपि जाव्या । (सेजहेत्यादि) अरतिश्चित्तोद्वेगरूपा साच शरीरजातेत्यादि। यथावा वल्मीकं पृथिवीविकाररूप पृथिव्या जातमित्यादि । एव सर्वमीश्वरकारणिक मात्मविवर्त्तरूपं वा । यथा वा वृक्षोऽशोकादि पृथिवीजात । यथा वा पुष्करिणी तडा गरूपा पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वत् । तथा उदकपुष्कलमुदकप्राचुर्य मुदकजातमि त्यादि यथावा उदकबुहुदइत्यादि सुगम ॥ २६ ॥

॥ टीका-सचायं । इह खलु धर्मा स्वजावाश्चेतनाचेतनरूपा पुरुषईश्वरआत्मावा कारणमादिर्येषाते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएवोत्तर का र्यं येषाते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीता सर्वस्य तदधिष्ठितत्वात् तदात्मकत्वाद्वा त था पुरुषेण द्योतिता प्रकाशीकृता प्रदीपमणिसूर्यादिनेव घटपटादयइति । तेच धर्मा जीवाना जन्मजरामरणव्याधिरोगशोकसुखड खजीवनादिका । अजीवधर्मास्तु मूर्तिमता ड्व्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाअमूर्तिमता ड्व्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्मा । स र्वेपीश्वरकृताआत्माद्वैतवादेवाऽत्मविवर्ता सर्वेप्येते पुरुषमेवाजिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अ स्मिन्नर्थे दृष्टांतानाविर्जावयन्नाह । (सेजहाणामएइत्यादि) सेशब्दस्तच्छब्दार्थे । नामश ब्द संजावनाया । तद्यथा । नाम गड स्याद्भवेत्संजाव्यते च शरीरिणा ससारांतर्गता ना कर्मवशगानां गंडादिसमुद्भवस्तच्च शरीरे जातं शरीरावयवसजूत तथा शरीरे वृद्धिमुप गत शरीराजिसृतौ च तस्याजिवृद्धिस्तथा शरीरेऽजिसबंधागत शरीरमाजिमुख्येन व्याप्य व्यवस्थितं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्नूतइति जाव. । तथा शरीरमेवाजिनूयाजिमुख्येन पीडयित्वा तिष्ठति । यदिवा तडुपशमे शरीरमे वाश्रित्य तगड तिष्ठति न शरीराद्बहिर्नव ति । एतडुक्तं नवति । यथा तत्पिटक शरीरैकदेशनूतं नयुक्तिशतेनापि शरीरात्पृथग्दर्श यितु शक्यते एवमेवामी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकान ते शरीरात्पृथक्कर्तुं पार्यंते। यदिवा सर्वव्यापिनआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थात्मनोये केचन धर्मा प्रा ड्डुःपति ते पृथक्कर्तुं नशक्यंते तथा तगडं शरीरविकारजूतं तदपृथग्नूतं तद्विनाशेच शरीरमेवा वतिष्ठते । एवमेव सर्वेपि धर्मा पुरुषादिका पुरुषकारणिका पुरुषविकाररूपा नपुरुषा त्पृथग्नवितुमर्हंति तद्विकारापगमेवाऽत्मानमेवाश्रित्यावतिष्ठति न तस्माद्बहिर्नवतीति शास्त्रेच दृष्टांतप्राचुर्यमविरुद्ध। यदिवाऽस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांता ।सन्नवतीश्वरकर्तृत्ववादस्या द्वैतवादस्यच सुप्रसिद्धत्वाद्दृष्टांतबहुलमित्याह । (सेजहाइत्यादि) तद्यथा नामारतिश्चि त्तोद्वेगलक्षण स्याद्भवेत्। साच शरीरजाताइत्यादि गडवन्नेया । दार्ष्टांतिकेप्येवमेव सर्वे धर्मा. पुरुषादिका. पुरुषप्रनवाइत्यादिपूर्ववन्नेय । तथा यथा नाम वल्मीक पृथ्वीविकार

नही अने पार पण पोता नही विचाले कामभोगने विषे खूता रहे ते पोताने पण उ द्धरी शके नही अने राजारूप पुंमरीक कमलने पण उद्धरी शके नही ते आ लोक थ की पण भ्रष्ट थया अने मुक्तिये पण पोचे नही परतु विचाले ससार मांहेज खुची रहे ए चोथो पुरुषजात नियत वादी कह्यो ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—तदेव ते नियतिवादिनो ऽनार्याविप्रतिपन्नास्त निर्युक्तिकं नियतिवाद श्रद्धधा नाइत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णा इति चतुर्थः पुरुषजात सपूर्णः ॥३३॥

॥ टीका—तदेवमेव पूर्वोक्तया नीत्या तेऽनार्याविरूपं नियतिमार्गं प्रतिपन्नाविप्रतिपन्नाः। अनार्यत्व पुनस्तेषा निर्युक्तिकस्यैव नियतिवादस्य समाश्रयणात् । तथा ह्यसौ नियति किं स्वतएव नियतिस्वभावा उतान्यया नियत्या नियम्यते किंवाऽतस्तत्र यद्यसौ स्वयमेव तथा स्वभाव सर्वपदार्थानामेव तथा स्वभावत्व किं न कल्प्यते किं बहुदोषया नियत्या समाश्रितया । अथान्यया नियत्या तथा नियम्यते साप्यन्ययेत्येवमनवस्था । तथा नियतेः स्वभावत्वान्नियतिस्वभावया तथा भवितव्य न नानास्वभावयेति । एकत्वाच्च नियतेस्तत्का र्येणाप्येकाकारेणैव भवितव्यं । तथाच सति जगद्वैचित्र्याभावः । नचैतद्दृष्टमिष्टवा । त देव युक्तिभिर्विचार्यमाणा नियतिर्नकथंचिद्घटते । यदप्युक्त । द्वावपि तौ पुरुषौ क्रियाक्रि यावादिनौ तुल्यौ एतदपि प्रतीतिबाधित । यतस्तयोरेक क्रियावाद्यपरस्त्वक्रियावादीति कथमनयोस्तुल्यत्वमथैकया नियत्या तथा नियतित्वात्तुल्यता अनयोरेतच्च निरतरा सुल्ह व प्रत्येष्यंति । नियतेरप्रमाणत्वात् । अप्रमाणत्व च प्राग्लेशत प्रदर्शितमेव । यदप्युक्त । यद्दु खादिकमहमनुभवामि तन्नाहमकार्षमित्यादि तदपि बालवचनप्रायं । यतोजन्मातरकृ तं शुभमशुभंवा तदिहोपभुज्यते स्वकृतकर्मफलेश्वरत्वादसुमता । तथा चोक्तं । यदिह क्रिय ते कर्म, तत्परत्रोपभुज्यते । मूलसिक्तेषु वृक्षेषु, फल शाखासु जायते । तथा यदुपात्तमन्य जन्मनि शुभाशुभ वा स्वकर्मपरिणत्या तच्छक्यमन्यथा नोकर्तु देवासुरैरपि हि । तदेव ते नियतिवादिनोनार्याविप्रतिपन्नास्तमेव निर्युक्तिकं नियतिवाद श्रद्धधानास्तमेव च प्रतीयते इत्यादि तावन्नेय यावदतरा कामभोगेषु विषण्णाइति । चतुर्थ पुरुषजात समाप्तः ॥ ३३ ॥

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठ्ठी णाणारुई णाणारम्भा णाणाअज्झवसाणा संजुत्ता प हीणपुव्वसजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णो पाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा ॥ ३४ ॥

तेने अकर्त्ता कहेछे तेमाटे (णएयंतह्यिंके०) ए तथ्य नथी (णएयंआहातह्यिंके०) ए यथातथ्य नथी हवे ए दर्शनी जेने सत्य करी माने ते कहेछे (इमके०) ए ईश्वर कारणिक छे एमजे मानीये तेहिज (सच्चके०) सत्यछे (इमंतह्यिंके०) तेहिज तथ्य जाणवो (इमआहातह्यिके०) एज यथा तथ्यविशेषे जाणवो एरीते ते ईश्वर कारणिक पोताना दर्शनने अनुरागे (एवसन्नकुवति के०) एवी सज्ञा करे (तेएवसन्नसठवेति के०) ते बीजा आगल पण एवीज सज्ञा स्थापन करे यद्यपि एवात युक्ति शून्यछे तथापि (तेएव सन्न सोवट्ठवयंतिके०) ते एवी सज्ञाने अनेक हेतु युक्ति दृष्टाते करी स्थापेछे (तमेवते तज्जाइयंडुरक के०) ते कारणे ते उत्सूत्रने स्थापवे करी उत्पन्न थाय जे डुख ते डुखने (णातिउट्टंति के०) त्रोडी नशके तेना उपर दृष्टात कहेछे (सवणीपजरजहा के०) जेम शकुनी एटले पक्षी ते पाजराने त्रोडी नशके भ्रमण करी करीने वली तेहिज पाजरा माहे रहे तेम ते पूर्वोक्त अन्य दर्शनीउं पण ससार रूप पांजरा मांहेज रहे परतु मोक्षे जइ शके नही अने बीजाने पण मोक्षे पोचाडी नशके ॥ १७ ॥ (तेणोएव विप्पडिवेदेंति के०) ते अन्य दर्शनी पाखमी बापडा आटली वात नथी जाणता ग्र नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे (किरियाइवा के०) रुडो अनुष्ठान नथी जाणता (जावअणिरएतिवा के०) यावत् अनरक पर्यत नथी जाणता (एवमेव के०) एम अणजाणता थका (तेविरूवरूवेहिकम्मसमारंभेहिं के०) ते नाना प्रकारना सावद्यकर्मने करवे करी (विरूवरूवाइकामभोगाइसमारभंति के०) अनेक प्रकारना कामभोग समारंभे भोगवे (भोयणाए के०) भोजनने अर्थे एरीते ते अनार्य पोताना धर्मने रुडो देखाडी प्ररूपता छता कामभोगने विषे मूर्छाणा थका एमते पाखमी धर्मे राजादिकने सद्दहावता थका ज्यालगे ते तीरे पण रह्या नही अने पारपण पाम्या नही एम आलोक थकी चूका अने परलोके पण पोता नही विचाले ससार मांहे काम भोग रूप कादवने विषेज खुता थका रहे ते राजारूप पुन्डरीक कमलने उद्धरी शके नही ए त्रीजो पुरुष जात ईश्वर कारणिक कह्यो ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–ईश्वरकृत सत्यमन्यन्मिथ्येत्याह । यदपि चेदं श्रमणानां यतीना निग्रथानां निष्किचनानामुद्दिष्टं प्रणीत व्यक्तीकृतं द्वादशाग गणिपिटक । तद्यथा । आचार सूत्रकृतागमित्यादि यावद्दृष्टिवाद । सर्वमेतन्मिथ्याऽनीश्वरप्रणीतत्वात् नैतत्तथ्यं नैतद्यातथ्यं न यथास्थितार्थकथक। इद पुनरीश्वरकर्तृत्व आत्माद्वैतच सत्यं इदमेव तथ्यं इदमेव याथात-य । तदेव ते पूर्वोक्तनीत्या सज्ञा कुर्वंति ज्ञान दधते अन्येभ्यश्च सज्ञा स स्थापयंति । ते एव सज्ञामुपस्थापयति सुष्ठु उपसामीप्येन युक्तिभि स्थापयति । ते च

न्नावेगे डवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहिया णि नवति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तेसिंचणं जण जाणवयाइ परिग्ग हियाइ नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म अनिनूय एगे निरकायरियाए समुहिता सतोवावि एगे णाय उय उवग रणच विप्पजहाय निरकायरियाए समुहिता असतोवा वि एगे णाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुहिता जेते सतोवा असतोवा णाय उय अणाय उय उवगरणच विप्पजहाय निरकायरियाए सुमुहिता॥३५

अर्थ–हवे पाचमो पुरुष स्वतीर्थिक कहियेंछेयें (सेवेमि के०) जे पुरुष कामनोगने विषे अनासक्तछतो अतराले नखुचे पुमरीक कमलने उद्धारवा समर्थ ते हुं कहुं (पाईणवासतेगतियामणुस्सा के०) पूर्वादिक दिशिये कोइ एक मनुष्य होय ते कहे वो होय (तंजहा के०) ते कहेछे एक आर्य एक अनार्य एक उचगोत्रना उपना एक नीचगोत्रना उपना एक महोटी कायाना धणी एक न्हानी कायाना धणी एक सारावर्ण वाला एक मागवर्ण वाला एक सरूपवान् एक कुरुपवान् (तेसिंचण के०) ते पूर्वोक्त आर्यादिक पुरुपने (खेत्तवत्थूणिपरिग्गहियाणिनवति के०) क्षेत्रते उघाडी नूमिका शाली क्षेत्रादिक तथा वस्तु ते घर हाट प्रमुख ढाकेली नूमिका ए परिग्रह होय (तंअप्प यरोवानुज्जयरोवा के०) तेअल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय वली (तेसिचणजणजाणवयाइपरिग्गहियाइनवति के०) तेने जन एटले लोक जानपद एटले देश ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवानुज्जयरोवा के०) तेपण अल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय (तहप्पगारेहिंकुलेहिं आगम्मअनिनूय के०) तथा ते आर्यादिक तथा प्रकारना कुलने विषे आगम्म एटले जन्म पामीने कोइ एक महासत्ववत पुरुप विषय कपायने जीपीने (एगेनिरकायरियाए के०) कोइएक निक्षाचर्याने विषे (समुहिता के०) सम्यक् प्रकारे उह्या सावधान थया (सतोवाविएगेणायउयउवगरणच के०) कोइएक महा सत्ववत पुरुप विद्यमान एवा णायउय एटले ज्ञाति सजनादिक तथा उपकरण ते धन धान्य सुवर्ण रूपादिक अनेक प्रकारनाछे तेने (विप्पजहाय के०) त्यागीने (निरकायरियाए के०) निक्षाचर्याने विषे (समुहिता के०) सम्यक् प्रकारे उह्या एटले चारित्रिया थया (असतोवाविएगेणायउवगरणचविप्पजहायनिरकायरियाएसमुहिता के०) कोइ एक महा सत्ववत पुरुप ते अछता ज्ञाति स्वजन उपकरणादिक अनेक प्रकारनाछे तेने त्यागीने निक्षाचर्याने विषे सम्यक् प्रकारे सावधान

विरुद्धं मार्गं विप्रतिपन्नान सम्यग्वादिनोजवति । तथाहि । सर्वमीश्वरकर्तृकमित्यत्राच्यु पगमे किमसावीश्वर स्वतएवापरान् क्रियासु प्रवर्तयेडुतापरेण प्रेरितस्तत्र यद्याद्य पक्षस्त द्दन्येषामपि स्वतएव क्रियासु प्रवृत्तिर्जविष्यति किमंतर्गडुनेश्वरकल्पनेन । अथासावप्यपर प्रेरित सोप्यपरेणेत्येवमनवस्थालता नजोमंडलमालिनी प्रसर्पति । किंचासावीश्वरोमहा पुरुषतया वीतरागोपेत सन्ननेकान्नरकयोग्यासु क्रियासु प्रवर्तयत्यपरास्तु स्वर्गापवर्गयोग्या स्वित्यथ ते पूर्वशुजाशुजचरितोदयादेव तथाविधासु तासु क्रियासु प्रवर्तंते सतु निमित्त मात्रमेतदपि नयुक्तिसगत । यत प्राक्तनाशुजाशुजप्रवर्तनमपि तदायत्तमेव । तथा चो क्त । अज्ञोजतुरित्यादि । अथ तदपि प्राक्तनमन्येन प्राक्तनतरेण कारितमित्येवमनादिहे तुपरपरेत्येव च सति ततएव शुजाशुजे स्थाने जविष्यत किमीश्वरपरिकल्पनेन । तथा चो क्तं । शास्त्रौषधादिसंवधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असवद्धस्य क स्थाणो कारणत्व नक ल्पतइत्यादि । यच्चोक्तं । सर्वं तनुजुवनकरणादिक बुद्धिमत्कारणपूर्वक सस्थानविशेषत्वा त् देवकुलवदित्येतदपि नयुक्तिसगत । यतएतदपि साधन जवदजिप्रेतमीश्वर साधयति तेन सार्धं व्याप्त्यसिद्धे । देवकुलादिके दृष्टातेऽनीश्वरस्यैव कर्तृत्वेनाच्युपगमात् । नच सं स्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्व सिध्यति । अन्यथानुपपत्तिलक्षण स्य साध्यसाधनयो प्रतिवधस्याजावात् । अथाविनाजावमतरेणैव सस्थानमात्रदर्शना त्साध्यसिद्धि स्यादेवच सत्यतिप्रसग स्यात् । उक्तच । अन्यथा कुजकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् ॥ घटादे कारणात्सिद्धेर्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरित्यादि । नचेश्वरकर्तृत्वे जगद्वै चित्र्यं सिध्यति तस्यैकरूपत्वादित्युक्तप्रायमिति । आत्माद्वैतपक्षस्त्वत्यतमयुक्तिसगतत्वा न्नाश्रयणीय । तथाहि । तत्र न प्रमाण न प्रमेयं नप्रतिपाद्यं न प्रतिपादकोन हेतुर्न दृष्टातोन तदाजासोजेदेनावगम्यते । सर्वस्यैव जगतएकत्व स्यादात्मनोजिन्नत्वात् तदजा वेच क केन प्रतिपाद्यते इत्यप्रणयनमेव शास्त्रस्यात्मनश्चैकत्वात्तत्कार्यमप्येकाकारमेव स्यादित्यतोनिर्हेतुक जगद्वैचित्र्य । तथाच सति । नित्य सत्वमसत्व वा, हेतोरन्यानपेक्ष णात् ॥ अपेक्षातोहिजावाना, कादाचित्कत्वसजवइत्यादि । तदेवमीश्वरकर्तृत्वमात्माद्वैतप क्षश्च युक्तिविचार्यमाणोन कथचिद्घटा प्राचति । तथा ते स्वदर्शनमोहमहितास्तज्जातीया द्वु खात् शकुनि पजरादिव नातिमुच्यंते विप्रतिपन्नाश्च तत्प्रातिपादिकानिर्युक्तिनस्तदेव स्वपक्ष प्रतियति श्रद्दधतीति पूर्ववन्नेय । (यावत् णोहव्वाएणोपाराएअतराकामजोगेसु विसन्नुत्ति) इत्यय तृतीय पुरुषजातईश्वरकारणिकइत्ति । सद्येवमाह । यस्य बुद्धि र्न लिप्येत हत्वा सर्वमिद जगत् ॥ आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन लिप्यतइत्याद्यसमज सजापितया त्यक्त्वा पूर्वसयोगमप्राप्तोविवक्षित स्थानमतरालएव कामजोगेषु मूर्छितोवि षसइत्यवगतव्यमिति ॥ २७ ॥

नांस्तथोपकरणं च कामभोगांगं धनधान्यहिरण्यादिकं विविधं प्रकर्षेण हित्वा त्यक्त्वा भिक्षाचर्यांया सम्यगुत्थिताअसतोवा ज्ञातीनुपकरणंच विप्रहाय भिक्षाचर्यायामेके केच नापगतस्वजनविभवाः समुत्थिता. ॥ ३५ ॥

पुव्वमेव तेहिं णायं भवइ तं जहा इह खलु पुरिसे अन्नमन्नं ममठ्ठाए एवं विप्पडिवेदेंति तं जहा खेत्तंमे वत्थूमे हिरणंमे सुवन्नंमे धणंमे धणंमे कंसंमे दूसंमे विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरय णसंतसारसावतेयमे सद्दामे रूवामे गंधामे रसामे फासामे एते खलु मम कामभोगा अहमवि एतेसिं ॥ ३६ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो एवं समभिजाणेज्जा तं जहा इह खलु मम अन्नयरे डुक्खे रोयातंके समुप्पज्जेज्जा अणिठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुन्ने अमणामे डुक्खे णोसुहे सेहता भयंतारो कामभोगाइ मम अन्नयरं डुक्खं रोयातंकं परियाइय ह अणिठं अकंते अप्पियं असुभ अमणुन्नं अमणामं डुक्ख णोसुहं तहिं डुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामि वा इमाउ ममे अण्णयराउ डुक्खाउ रोगातंकाउ पडिमोयह अणिठाउ अकंताउ अप्पियाउ असुभाउ अमणुन्नाउ अमणामउ डुक्खाउ णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्व भवइ ॥ ३७ ॥

अर्थ—(तेहिं के०) ते पुरुषने (पुव्वमेव के०) प्रथम चारित्र लेवाना वखतेज एवो (णायभवइ के०) जाण्युंछे (तजहा के०) ते कहेछे. (इह के०) आ जगत मांहे खलु इति वाक्यालंकारे (पुरिसे के०) ते पुरुषे (अन्नमन्नं के०) अनेरी अनेरी वस्तु एटले अमुक अमुक जुदी जुदी वस्तु (ममठाए के०) महारा उपभोगने अर्थे थशे (एव के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) वेद प्रवितियति एटले जाण्युंछे (तंजहा के०) ते वस्तुना नाम कहेछे (खेत्तंमे के०) आ क्षेत्र महारुंछे (वत्थूमे के०) ए घर हाट महाराछे (हिरणंमे के०) आ रूपु महारुंछे (सुवणंमे के०) आ सोनु महारु छे (धणमे के०) आ धन महारुंछे (धन्नमे के०) आ धान्य महारुंछे (कंसंमे के०) आ कासाना भाजन महाराछे (दूसमे के०) आ डुष्य एटले वस्त्र महाराछे (विपुल, धण, कणग, रयण, मणि, मोत्तिय, सख, सिल, प्पवाल, रत्त, रयण, सत सार साव तेयंमे के०) एम विस्तीर्ण धन कनक सोळजातिना रत सात जातना मणी मोतिको सख

ति थाय तेने अक्रिया कहिए (जेयपुरिसेकिरियामाइरकइ के०) जे पुरुष क्रिया कहेठे अने (जेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के०) जेपुरुष अक्रिया कहेठे (दोवितेपुरिसातुल्ला के०) ए क्रियावादि अने अक्रियावादि बने पुरुष तुल्य एटले सरखा जाणवा (एगठ्ठा कारणमावन्ना के०) ए बेनु एकज अर्थठे कारणके ते नियतने वशें वर्त्ते जो ते पोता ने वशें होय तो सरखा नकहेवाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–नियतिवादी स्वमतमाह । इह द्वौ पुरुषौ नवत । एक क्रियामाख्याति। देशादेशातरप्राप्ति क्रिया सा नियतेरेवस्यात् एवमक्रियापि । द्वावेतौ नरौ तुल्यौ नियतिव शवर्तित्वात् एकार्थौ एककारणापन्नत्वात् क्रियाक्रिये नियत्येककारणाधीनेइत्यर्थ ॥ ३० ॥

॥ टीका–इह खलु (डुवेपुरिसानवतीत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलुशब्दोवाक्या लकारे । द्वौ पुरुषौ नवतस्तत्रैक क्रियामाख्याति । क्रिया हि देशादेशातरावाप्तिलक्षणा पुरुषस्य नवतीति न कालेश्वरादिना चोदितस्य नवत्यपितु नियतिप्रेरितस्यैवमक्रियापि । यदि तावतंत्रौ नवत । तत क्रियावादमक्रियावादच समाश्रितौ द्वावपि नियत्य धीनत्वात्तुल्यौ । यदि पुनस्तौ स्वतत्रौ नवतस्तत क्रियाक्रियानेदान्नतुल्यौ स्यातामित्यत एकार्थावेककारणापन्नत्वादिति नियतिवशेनैव तौ नियतिवादमनियतिवाद चाश्रिताविति नाव । उपलक्षणार्थत्वाच्चान्योपि य कश्चित्कालेश्वरादिपक्षातरमाश्रयति । सोपि नियति चोदितएव डष्टव्यइति ॥ ३० ॥

वाले पुण एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने अहमंसि डुरकामिवा सोयामि वा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा अहमेयमकासिपरोवा ज डुक्कइवा सोयाइवा जूराइवा तिप्पाइवा पीडाइवा परितप्पाइवा परोए वमकासि एवं सेबाले सकारणंवा एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी परमतने विनावेठे (वालेपुणएव विप्पडिवेदेतिके०) ते पर मतवादी बाल एटले अज्ञाने करी वली गुजाणे ते कहेठे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुखादिकने उपजवे ईश्वरादिकनु कारण माने ते कहेठे (अहमसि डुरकामिवा के०) डु ख्रा जगत माहे शारीरिक तथा मानसिक डु ख अनुनवुं (सोयामिवाके०) इष्ट वियो ग अने अनिष्ट सयोगनो करेलो शोक अनुनवुं (जूरामिवा के०) अनर्थनी प्राप्तियें स्मरणाये झुरवुं अथवा अर्थ प्रातियें विचरवु (तिप्पामिवा के०) शरीरनो बल उवु थायठे (पीडामिवाके०) बाह्यान्तर पीडा अनुनवुं (परितप्पामिवाके०) परितापना

त कारी (अप्पियाउ के०) अप्रियकारी (असुनाउ के०) असुनकारी (अमणुन्नाउ के०) अमनोज्ञ (अमणामउके०) अरुचता विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी एवा (डुरकाउ के०) डुःख (णोसुहाउ के०) नथी जेमांहे लेश मात्र सुख एवा जे डुःख ते थकी हे काम नोगादिको तमे मने मूकावो (एवमेव के०) एवीरीते जे कामनोगादिकने प्रार्थना करेछे तोपण (णोलद्धपुव्वंनवइ के०) ते कामनोगापूर्वलब्धोननवति एटले ते काम नोगादिक जेछे तेणे कोइ मनुष्यने पूर्वोक्त डुःख थकी मूकाव्यो छे एवो पूर्वे क्यां जाणवामा आव्यु नथी. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका–ये निक्षाचर्योद्यतास्तै पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएतज्ज्ञातं स्यात् । तद्यथा । अन्यदस्तूद्दिश्य पुरुष प्रव्रजित प्रव्रज्या ग्रहीतुकामोवा एव विप्रतिवेदयति जानाति । तद्यथा । क्षेत्रं वास्तुगृह हिरण्यं सुवर्णं कनक धनंगोमहिष्यादि धान्यं शा ल्यादि कास्यं कास्यपात्रादि दूष्यं वस्त्रादि । तथा विपुलानि धनकनकादीनि शरवादकि णावती मुक्तशैलादिका शिला प्रवालंविद्रुम रक्तरत्नं पद्मरागादि सत्सार शोननसार शूलमल्यादि स्वापतेयं इव्य सर्वमेतन्ममोपनोगाय नविष्यति । तथा शब्दरूपगधरसस्प र्शामे कामनोगाअहमप्येतेषा नोगाना सबधी ॥ ३६ ॥ अयमपि नोगसबंधीति विचा र्ये समेधावी पूर्वमेवात्मना एव समनिजानीयात् । तद्यथा । इह जन्मनि ममान्यत् डुःखं शिरोवेदनादिक आतंकोवा आशु जीवितापहारी शूलादिक । सकिंनूत । अनिष्टो ऽकातोऽशुनोऽमनोज्ञ । अवनामयतीत्यवनाम. पीडाविशेषकारी डुःखरूप । नशुनो ऽशुनकर्मकृतत्वात् । पुनर्डुखोत्पादनमत्यतडुःखज्ञापनार्थं । तदेवनूतं डुःख रोगातंक वा हंतइति खेदे हेनगवत कामनोगायूय मया पालितास्ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंक वा (परियाइयह) विनज्य गृएहीत । अत्यंतडुःखपीडित पुनस्तान्येव विशेषणान्याह । अनिष्टादिविशेषणानि पूर्वं प्रथमातानि पुनर्द्वितीयातानि साप्रतं पंचम्यंतानि । सचायमर्थ पूर्वं लब्धोन नवति । कोर्थ । नहि ते नोगादयोनर डुःखान्मोचयंतीतिपूर्वं नज्ञातं॥३७॥

॥ टीका –ते पूर्वोक्तविशिष्टानिक्षाचर्यायामन्युद्यता पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएव तैरेतज्ज्ञातं नवति । तद्यथा (इहेत्यादि) इह जगति । खलुवाक्यालंकारे । अन्यदन्यदस्तू द्दिश्य ममैतद्भोगाय नविष्यतीत्येवमसौ प्रव्रज्या प्रतिपन्न प्रवव्रजिषुर्वा प्रवेदयति जाना त्येव परिछिनत्ति । तद्यथा । क्षेत्रं शालिक्षेत्रादिकं वास्तु खातोच्छ्रितादिक हिरण्यं धर्मेला नादिक सुवर्णकनकं धनगोमहिष्यादिकं धान्यगोधूमादिक कांस्यकांस्यपात्रादिक तथा विपुलानि प्रनूततराणि धनकनकरत्नमणिमौक्तिकानि (शंखशिलंति) मुक्तशैला

मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने अहमंसि डुरकामिवा सो यामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा णोअह एव मकासि परोवा जं डुरकाइवा जाव परितप्पाइवा णोपरो एवमकासि एव से मेहावि सकारणंवा परकारणंवा एवंविप्पडिवेदेति कारणमावन्ने से बे मि पाईणंवा जे तसथावरा पाणा तेएव संघायमागच्छंति ते एवं विपरिया समावज्जति तेएवं विवेगमागच्छति तेएव विहाणमागच्छति तेएवं संगतियं ति उवेहाए णोएवं विप्पडिवेदेति तंजहा किरियातिवा जावणिरएतिवा अणिरएतिवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाइं काम नोगाइ समारनंति नोयणाए ॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी लोक ते पूर्वोक्त पुरुषकार कारणने बालत्व पणो मानीने पोताना मतनी स्थापना करेछे (मेहाविपुणएवविप्पडिवेदेति के०) वली पंमित एवा नियत पक्ष ग्राही एम जाणेछे शु जाणेछे ते कहेछे (कारणमावन्ने के०) सुख डुख जे उपजेछे तेने नियतटाली बीजो कारण काइ जाणवो नही ते उपर कहेछे डुरकामिवा सोयामिवा इत्यादि पाठनो अर्थ पूर्व प्रमाणे लखेछे डु सुख डुख अनुनववु डु शोक अनुनववुं जुरवु शरीरनो बल ओछु थायछे पीडा अनुनववु परितापना अनुनववु (णो अहएवमकासि के०) ते में नथी कर्यु किंतु नियतने नवितव्यताना बलथकी माहारे विषे आव्योछे परतु पुरुषकारादिक प्रमाण काइ नथी जे कारण माटे कोइपुरुष पोता ना आत्माने अनिष्ट नथाय एम वाछेछे तो शावास्ते ते शु करवाने एवो करे के जे थ की ते डुखी थाय परंतु अहींया नियतज प्रमाणछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बी जो (जडुरकाइवा के०) जे कांइ डुख अनुनवेछे (जावपरितप्पाइवा के०) यावत् परितापना अनुनवेछे ते पण (णोपरोएवमकासि के०) तेणे कीधो नथी परतु नियति अने नवितव्यताने योगेंज सर्व उपजेछे)एवसेमेहाविके०) एम ते मेधावि एटले पमित पुरुष (सकारणवापरकारणवा के०) पोताने डुखनो कारण अथवा परने डुखनु का रण नवितव्यता छे परंतु नवितव्यता टाली बीजो कोइ पण कारण नथी (एवविप्प डिवेदेति के०) एम ते नियतवादि जाणेछे के जगत माहे कोइ एक पापना कर नारने पण डुख उपजतु नथी अने कोइएक सुकृतना करनारने डुख उपजेछे माटे अं हींया पुरुषजे ईश्वर तेनुं कारण काइपण नथी देखातु किंतु (कारणमावन्न के०) निय तज कारण देखायछे एमाटे नवितव्यता बलीष्ठछे हवे बीजो पण जे काइ जगत माहे

॥ अर्थ-(इहखलु के०) आ जगत् माहे निश्चे थकी (कामजोगा के०) ते काम जोगादिकजेछे ते, पूर्वोक्त दुःखिया जीवने (णोताणाएवाके०) त्राणजणी नथाय (णोसरणाएवा के०) अथवा शरण जणी नथाय (पुरिसेवा के०) ते पूर्वोक्त दुःखी पुरुषने पूर्वोक्त रोगादिक उपने थके त्राण शरण जणी नथाय. हवे रुडा कामजोगनी लीलानो अंत देखाडे छे (एगता के०) एकदा (पुव्वि के०) प्रथम व्याधि उत्पन्न काले, अथवा जरा जीर्ण काले, अथवा राजादिकना उपद्रवने काले पुरुष, (कामजोगेविप्पजहति के०) ए कामजोगने मूके छे (कामजोगावाएगतापुव्वपुरिसविप्पजहंतिके०) अथवा ए काम जोग पोतेज एकदा द्रव्यादिकने अजावे विषयाभिलाषी पणुं छताज ते पुरुषने त्यागी मूकेछे, ते कारण माटे जे पंमित पुरुष होय ते एवीरीते अवधारण करे के, (अन्नेखलुकामजोगा के०) निश्चे करी ए कामजोगादिक जेछे ते, महारा थकी अन्यछे जुदाछे (अन्नोअहमसि के०) हुं पण ए कामजोगथकी अन्यछु जुदोछु जो एमछे तो, (सेकिमगपुणवयं के०) ते शा अर्थे वली अमे (अन्नमन्नेहिकामजोगेहि मुछामो के०) अनित्य अशाश्वत एवा जे ए कामजोग, तेने विषे मूर्छा एटले ममत्व करिये, केमके एवु ए ममत्व करवुं तेतो व्यर्थछे (इतिसखाएणके०) एरीते कोइ महा सत्ववत पुरुष ते कामजोगादिकने पूर्वोक्त रीते व्यर्थ जाणीने, (वयचकामजोगेहिंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ए कामजोगादिकनो त्याग करशु एवो अध्यवसाय करे ते महापुरुष जाणवो वली अन्य बीजु वैराग्यनुं कारण कहेछे (सेमेहाविजाणेज्जा के०) ते पंमित एम जाणे जे, (बाहिरगमेत्त के०) ए नव विध परिग्रह तथा शब्दादिक विषय जे छे ते दुःखथकी राखनार नथी, एतो सर्वे बाहिरंग सयोगि छे एटले बाह्यरूपछे, एवु पंमित जाणेछे ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका-एतदेवाह । इह जवे खलु कामजोगान त्राणाय वा स्यु । पुरुष प्राणी एकदा पूर्व कामजोगान् त्यजति कामजोगावा एकदा कदाचित्पुरुष त्यजति । सचैव जानाति अन्ये भिन्ना खलु मत्त कामजोगाएतेन्यश्च भिन्नोऽह एव सति वयमेतेषु अन्यन्नूतेषु कामजोगेषु मूर्छा कुर्मइत्येव केचिन्महापुरुषा परिसख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामजोगान् वय विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्यध्यवसायिन स्यु । पुनर्वैराग्यकारणमाह । समेधावी एतत्क्षेत्रादिक बाह्याग वर्ततइति जानीयात् ॥ ३७ ॥

॥ टीका-एतदेव लेशतोदर्शयति (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन् । खलुवाक्यालंकारे । ते कामजोगाअत्यतमन्यस्तान तस्य दुःखितस्य त्राणाय शरणाय वा जवति । सुलालितानामपि कामजोगाना पर्यवसान दर्शयितुमाह । (पुरिसेवाइत्यादि) पुरिशयनात्पुरुष एकदा व्याध्युत्पत्तिकाले वाऽन्यस्मिन्वा राजाद्युपद्रवे तान्कामजोगान् परित्यजति । सवा पुरुषोद्रव्याद्यजावे

॥ टीका—तदेव नियतिवादी पुरुषकारकारणवादिनोबालत्वमापाद्य स्वमतमाह् । (मे हावीत्यादि) मेधा मर्यादा प्रज्ञा वा तद्वान् मेधावी नियतिवादपक्षाश्रय्येव विप्रतिवेद यति जानीते कारणमापन्नइति नियतिरेव कारण सुखाद्यनुनवस्य । तद्यथा योह्मस्मि न् डुखयामि शोचयामि तथा (तिप्पामित्ति) क्करामि (पीडामित्ति) पीडामनुनवामि (परितप्पामित्ति) परितापमनुनवामि नाह्मेवाकार्षं डुखमपि तु नियतितएवैतन्मध्या गतं न पुरुषकारादिकृतं । यत्तोनह्ि कस्यचिदात्मानिष्टोयेनानिष्टाडुखोत्पादिता क्रिया. समारनंते नियत्यैवासावनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुखपरंपराजाग्नवति कारणमापन्नइ ति परेप्येवमेव योजनीयं । एव सति नियतिवादी मेधावीति सोल्लुठमेतत्सक्रिल नियति वादी दृष्ट पुरुषकार परित्यज्यादृष्टनियतिवादाश्रयेण महाविवेकीत्येवमुल्लप्यते स्वकार ण परकारण च डुखादिकमनुनवन्नियतिकृतमेतदेव विप्रतिवेदयति जानाति कारणमापन्न नियतिकारण चात्रैकस्यासदनुष्ठानरतस्यापि नडुखमुत्पद्यते परस्य तु सदनुष्ठायिनोपि तन्नवति यतोनियतिरेव कर्त्रीति । तदेव नियतिवादे स्थिते परमपि यत्किंचित्तत्सर्वं निय त्यधीनमिति दर्शयितुमाह् (सेवेमीत्यादि) सोह् नियतिवादी युक्तितोनिश्चित्य ब्रवीमीति प्र तिपादयामि । ये केचन प्राच्यादिषु दिक्षु त्रस्यतीति त्रसाद्वीन्द्रियादय स्थावराश्च पृथिव्या दय प्राणिनस्ते सर्वेप्येव नियतितएवौदरिकादिशरीरबंधमागछति नान्येन केनचित्कर्मा दिना शरीर ग्राह्यते तथा बालकौमारयौवनस्थविरवृद्धावस्थादिक विविधपर्यायं नियति तएवानुनवति तथा विवेक शरीरात्पृथग्नावमनुनवति । तथा नियतितएव विविध विधान मवस्थाविशेष कुब्जकाणखजवामनकजरामरणरोगशोकादिक बीनत्समागछति । तदेव ते प्राणिनस्त्रसा स्थावराएव पूर्वोक्तनीत्या सगतिं याति नियतिमापन्नानानाविधविधान नाजोनवति । तएव वा नियतिवादिन संगश्यति नियतिमाश्रित्य तडुत्प्रेक्षया नियतिवा दोत्प्रेक्षया यत्किंचन कारितया परलोकनीरवोनो नैव तद्वक्ष्यमाण विप्रतिवेदयंति । त द्यथा । क्रिया सदनुष्ठानरूपा अक्रियाऽसदनुष्ठानरूपाइत्यादि यावदेव ते नियतिवादिन स्तडुपरि सर्वं दोषजातं प्रक्षिप्य विरूपरूपै कर्मसमारनैर्विरूपरूपान् कामनोगान्नोजना योपनोगार्थं समारनतइति ॥ ३२ ॥

एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तंसद्दह्माणा जावइति ते णोहच्चाए णोपाराए अंतरा कामनोगेसु विसणा चउठे पुरिस जाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ ३३ ॥

अर्थ—एरी ते ते अनार्य पुरुष कामनोगने विषे गृद्ध थता पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता ते पाखंडी धर्म राजादिकने सद्दावता थका ज्यां सुधी एम ते काठे पण रह्या

अर्थ-(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा व र्त्ते छे (तंजहा के०) ते कहे छे (मायामे के०) माता महारी, पिता महारो, नाइ म हारो, बहेन महारी,नार्या एटले स्त्री महारी,पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, (नत्तामे के०) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा न्यातमहारी (सुन्हामेके०) सुपा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय (सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगथसंथुयामेके०) स्वजन सस्तुत श्वशुरकुलादिक पितरियादिक ए सर्व महारा,तथा जेनी साथे घणो आलाप संला प परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञाति ना घणाज टूकडा संबंधी छे अने (अहमवि के०) हुपण (एतेसि के०) एहोनो हु ए मने उपकार करशे, हु एने उपकार करीश (एव के०) एरीते (सेमेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणा के०) पोताना आत्माने विपे (एवसमनि जाणेज्जा के०) एम समस्त प्रकारे जाणे मनमाहे विचारे जे, (इहखलुमम के०) आ नवने विपे निश्चे मुजने (अन्नयरे के०) अनेरो कोइ (डुक्केरोयातकेसमुपज्जेज्जाअ णिठेजावडुक्केणोसुहे के०) डु:ख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् डु:ख कारी, अने नथी जेमा लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते डु:खे डु:खित छतो, (सेहृताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (नयंतारोके०) अहो नय थकी राखनारा एवा (णायउ के०) ज्ञाति गोत्रीउ ! (इम के०) एम (म म के०) मने (अन्नयर के०) अनेरो डु:ख रोगातक शूलादिक उपनुं छे ते तमो वहें ची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही (तहिडुक्खामिवा के०) तेवा डु:खे करी अत्यत डुखीडुं सोचुडुं, यावत् पीडा अनुनवुडुं (इमाउणअन्न यरातोडुक्कातो के०) एमज अनेरे डु:खे अत्यत डु:खीडुं, शोक परिताप पीडा अनुनवु डुं, ते कारणे ए डु:ख तथा रोग आतक थकी मुजने (परिमोएह के०) मूकावो प रंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेमाहे लेश मात्र सुख नथी एवा डु:ख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुव्वनवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते डु:खने वहेंचीलीये नही, अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने डु:ख थकी मूकववाने समर्थ नथाय ॥२१॥ (तेसिवावि नयंताराण के०) अथवा ते नयथकी राखनारा एवा जे (ममणाययाण के०) महा रा ज्ञाति, गोत्री, तेने पण अनेरो कोइएक डु:ख रोगांतक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमा लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुपण ते नयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो डु:ख रोगातंक वहेची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी जेमाहे लेशमात्र सुख नथी एवा डु:ख थकी महारा ज्ञाती गोत्री डु:खी थाय यावत्

अर्थ–(इच्चेतेचत्तारिपुरिसजाया के०) एरीते ते पूर्वोक्त चार पुरुष जात तेमां एक जीव तच्छरीरवादी बीजो पंचमहाभूतिक त्रीजो ईश्वरकारणी अने चोथो नियतवादी ए चार पुरुषते (णाणापन्ना के०) नानाप्रकारनी प्रज्ञा एटले बुद्धिवाला तथा नाना प्रकारना अभिप्राय वाला नाना प्रकारना शील एटले आचार वाला नाना प्रकारनी दृष्टी वाला नाना प्रकारनी रुची वाला नाना प्रकारना आरंभना करनार नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी (संजुत्ता के०) सयुक्त हता पोताना धर्मनेविषे सावधान थया (पहीणपुव्वसजोगा के०) पूर्व संयोगजे माता पिता पुत्र कलत्रादिकनो सबंध तेनेत्यागीने (आरियमग्गअसंपत्ता के०) आर्य मार्गने अण पाम्या एमते कांठे पण न रह्या पार पण नपाम्या विचाले कामभोगने विषे खूता एटले परतीर्थिक चार पुरुष कह्या॥ ३४ ॥

॥ दीपिका–इत्येते चत्वार पुरुषानानाप्रज्ञानानामतयोनानाछदानानाभिप्रायानानाशीलाअनेकाचारानानादृष्टयोऽनेकदर्शनानानारुचयोनानाप्रकारआरंभोधर्मानुष्ठान येषा ते तथा नानाप्रकारेणाध्यवसायेन सयुक्ताधर्मार्थमुद्यता प्रहीणपूर्वसयोगामातापितृकलत्रादिसंबधरहिताआर्य निर्दोष मार्गमसप्राप्ता (णोहव्वाएत्ति) ऐहिकसुखभाज (णोपराएत्ति) नापि भवपारगा स्यु किंतु अतरालएव कामभोगेषु विषण्णा ॥ ३४ ॥

॥ टीका–साप्रतमुपसजिघृक्षुराह् । (इच्चेतेइत्यादि) इत्येते पूर्वोक्तास्तज्जीवतच्छरीरपचमहाभूतेश्वरकर्तृनियतिवादपक्षाश्रयिणश्चत्वार पुरुषानानाप्रकारा प्रज्ञा मतिर्येषा ते तथा नानाभिन्नश्छदोऽभिप्रायोयेषा ते तथा नाना प्रकार शीलमनुष्ठान येषा तथा नानारूपा दृष्टिर्दर्शन येषां ते तथा नानारूपा रुचिश्चेतोभिप्रायोयेषा ते तथा नानाप्रकारआरंभो धर्मानुष्ठान येषा ते तथा नानाप्रकारेण परस्परभिन्नेनाध्यवसायेन सयुक्ताधर्माधर्मार्थमुद्यता प्रहीण परित्यक्त पूर्वसयोगोमातृपितृकलत्रपुत्रसंबधोयैस्ते तथा । आराद्यात सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गोनिर्दोष पापलेश्यासपृक्तस्तमार्य मार्गमसप्राप्ताऽति पूर्वोक्तया नीत्या ते चत्वारोपि नास्तिकादयो (णोहव्वाएइत्ति) परित्यक्तत्वान्मातृपित्रादिसर्वंधस्य धनधान्यहिरण्यादिसचयस्य च नैहिकसुखभाजोभवति । तथा (णोपाराएत्ति) असप्राप्तत्वादार्यस्य मार्गस्य सर्वोपाधिविशुद्धस्य प्रगुणमोक्षपद्धतिरूपस्य न ससारपारगामिनोभवति न परलोकसुखभाजोभवतीति किंत्वतरालएव गृहवासार्यमार्गयोर्मध्यवर्तिनएव कामभोगेषु विषण्णाअध्युपपन्नाडुष्पारपकमग्नाइव करिणोविषीदतीति स्थितं ॥ ३४ ॥

सेबेमि पाईणवा सतेगतिया मणुस्सा भवति तंजहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समतावेगे सुव

अणुपुवेणं विप्पजहियवं नविस्सति एयं संखाए सेन्निक्कू न्निकायरियाए स मुठिए डहर्ज लोग जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥४१॥

अर्थ–हवे वली बीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जाबाहिरग मेयं के०) ते पंमित एवु जाणजे ए आगल कहेशे ते सर्व बाह्यछे. ए स्वजनादिक स र्व बाह्यछे. एवु पूर्वे कह्यु, वली (इणमेव के०) ए थकी (उवणीयतरागके०) आस न ढुकडा एटले घणा नजीक जे छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (हत्थामे के०) हाथ महारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउंना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना म नोरथ पूरणहार, एवा हस्त बीजाना नथी एम चिंतवना करे (पायामे के०) पग म हारा काछवा सरखा उचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा बीजाना नथी (बाहामे के०) तथा बाहू महारा जोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा बी जाना नथी (ऊरूमे के०) साथल महारा केलना गर्न समानछे (उदरंमे के०) पेट महारु अत्यत सुवालुं मावला समानछे. (सीसंमे के०) मस्तक महारुं अत्यत सुंद रछे. (सीलम्मे के०), आचार महारो बहुज रूडोछे (आउमेके०) आयुष्य महारुं सब लछे एटले घणुंछे (बलंमे के०) शरीरनु बल महारुं घणुंछे. (वस्रोमेके०) वर्ण मा हारो गोर ले (तयामे के०) त्वचा महारी शीघ्रछे (छायामे के०) काती महारी सुंदर छे (सोयमे के०) श्रोत्र एटले कान महारा नलाछे (चरकूमे के०) चक्षु महारी नि र्मलछे. (घाणमे के०) नासिका महारी नली तीक्ष्ण छे (जिप्नामे के०) जिव्हा महा री रुडीछे. (फासामेके०) स्पर्शेंद्रिय महारी सुंदरछे. (ममातिक्कंति के०) एटला ए वाना महारा घणाज सारांछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा महारा शरीरना अवयव छे तेवा बीजाना नथी एम जाणे. (वयाउपडिजूरत्ति के०) परतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परियाम थकीज जीर्ण थायछे. ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी भ्रष्ट थाय (तंजहा के०) जे थकी भ्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे आयुष्य थकी, बल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, काति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंद्रियादिक पाचेइंद्रिय थकी, उलुं थाय. (सुसंधितासधीवि सधीनवइके०) जेरुडी रीते जानु कूर्परादिकनी सधि मलीछे ते विसधि एटले विपरित्त संधि थाय (वलितरंगेगाएनवतिके०) शरीर सर्व वलियां रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवु थाय जे, पोतानेज उद्वेग करे तो पछी बीजाने उद्वेग करे तेमा केवुजवुं? (किएहाके सापलियानवति के०) काला केशछे ते सपेत थाय (तंजहाके०) ते कहेछे किबहुना (जंपियइमसरीरगं के०) जे ए शरीर सारु मनोहर (उरालंआहारोवइयं के०) उदा

थया (जेते के०) हवे जे तें (सतोवा असतोवा के०) छतो अथवा अछतो एवो (णायउय के०) ज्ञाति स्वजनादिक नोपरिग्रह (अणायउय के०) ज्ञाति स्वजनादिकथी रहित पणानोपरिग्रह (उवगरणच के०) तथा धन धान्य सुवर्णादिक नोपरिग्रह तेने (विप्पजहाय के०) त्यागीने (निरकायरियाए के०) निक्षाचर्याने विषे एटले चारित्रने विषे (समुठ्ठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका–अथलोकोत्तरं पंचम निक्षुं पुरुषमाह । तदहं ब्रवीमि । यत्प्राच्यादिदिशमुद्दिश्य एके केचन मनुजा सति नवति । तद्यथा आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तद्विपरीताअनार्याउच्चैर्गोत्रोद्भवानीचैर्गोत्रोद्भवा कायवतउच्चशरीरान्हस्वावामनादयः सुवर्णाडुर्वर्णा सुरूपाडुरूपास्तेषां वाऽऽर्यादीनां क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि गृहाणि परिगृहीतानि स्वीकृतानि नवति । किंनूतानि अल्पतराणि प्रनूततराणि वा । तथा तेषा जनपदा स्वीकृता नवति तेप्यल्पतरा प्रनूततरावा । तेष्वार्यादिषु तथा प्रकारेषु कुलेषु आगम्य जन्म लब्ध्वा ऽनिनूय विषयादीन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा एके केचन सत्ववतोनिक्षाचर्यायां समुछिताउद्यता । तथा सतोविद्यमानान् ज्ञातीन् स्वजनानुपकरण च धनधान्यादिकं विप्रहाय त्यक्त्वा असतोवा ज्ञातीनुपकरणच त्यक्त्वा समुछिता प्रव्रज्योद्यता ॥ ३५ ॥

॥ टीका–उक्ता परतीर्थिका. सांप्रतं लोकोत्तर निक्षावृत्ति निक्षु पंचम पुरुषजातमधिकृत्याह । (सेवेमीत्यादि) याहकामनोगेष्वसक्त सन्नतरा नोवसीदति पद्मवरपौंडरीकोद्धरणाय च समर्थोनवति तदेतदहं ब्रवीमीति । अस्य चार्थस्योपदर्शनाय प्रस्तावमारचयन्नाह । प्राच्यादिकामन्यतरा दिशमुद्दिश्यैके केचन मनुष्या सति नवति । तद्यथा । आर्यदेशोत्पन्नामगधादिजनपदोद्भवास्तथाऽनार्या शकयवनादिदेशोद्भवास्तथा चोच्चैर्गोत्रोद्भवाइक्ष्वाकुहरिवंशादिकुलोद्भवास्तथा नीचैर्गोत्रोद्भवावर्णापसदसनूतास्तथा कायवत प्रांशवस्तथा ऱ्हस्वावामनकादयस्तथा सुवर्णाडुर्वर्णा सुरूपा कुरूपावा एके एव केचन परवशान्नवति तेषा चार्यादीनां । णमितिवाक्यालंकारे । क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि खातोछ्रितादीनि तानि परिगृहीतानि स्वीकृतानि नवति । तान्येव विशिनष्टि । अल्पतराणि स्तोकतराणि वा प्रनूततराणिवा नवति । तथा तेषामेव च जानपदा परिगृहीतान्नवति तेऽल्पतरा प्रनूततरावा नवेयुस्तेषु चार्यादिविशिष्टेषु तथाप्रकारेषु कुलेष्वागम्यैवन्नूतानि गृहाणि गत्वा तथा प्रकारेषु वा कुलेष्वागम्य जन्म लब्ध्वाऽनिनूयच विषयकषायादीन् परीषहोपसर्गान् वा सम्यगुछानेनोछाय प्रव्रज्यां गृहीत्वैके केचन तथाविधसत्ववतोनिक्षाचर्याया सम्यगुछितास्तथा सतोविद्यमानानपिवा एके केचन महासत्वोपेताज्ञातीन् स्वज

अणुपुवेणं विप्पजहियव्वं नविस्सति एयं संखाए सेन्निक्खू न्निक्खायरियाए स मुठिए इहवे लोगं जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥४१॥

अर्थ–हवे वली बीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे (सेमेहाविजाणेज्जाबाहिरग मेयं के०) ते पंमित एवु जाणेजे ए आगल कहेशे ते सर्व बाह्यछे. ए स्वजनादिक स वे बाह्यछे. एवु पूर्वे कह्यु, वली (इणमेव के०) ए थकी (उवणीयतरागंके०) आस न ढुकडा एटले घणा नजीक जे छे (तजहा के०) ते देखाडेछे (हवामे के०) हाथ महारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना म नोरथ पूरणहार, एवा हस्त बीजाना नथी एम चितवना करे (पायामे के०) पग म हारा काछवा सरखा उंचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा बीजाना नथी (बाहामे के०) तथा बाहू महारा नोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा बी जाना नथी (करूमे के०) साथल महारा केलना गर्न समानछे (उदरमे के०) पेट महारुं अत्यत सुवालुं माछला समानछे (सीसमे के०) मस्तक महारु अत्यत सुंद रछे (सीलम्मे के०) आचार महारो बहुज रूडोछे (आउमेके०) आयुष्य महारु सब लछे एटले घणुंछे (बलमे के०) शरीरनु बल महारुं घणुंछे (वस्रोमेके०) वर्ण मा हारो गौर छे (तयामे के०) त्वचा महारी शीघ्रछे (छायामे के०) कांती महारी सुंदर छे (सोयंमे के०) श्रोत्र एटले कान महारा नलाछे (चरकूमे के०) चक्षु महारी नि र्मलछे (घाणमे के०) नासिका महारी नली तीक्ष्ण छे (जिप्नामे के०) जिव्हा महा री रुडीछे (फासामेके०) स्पर्शेंद्रिय महारी सुंदरछे (ममातिक्कतिके०) एटला ए वाना महारा घणाज साराछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा महारा शरीरना अवयव छे तेवा बीजाना नथी एम जाणे (वयाउपडिजूरत्ति के०) परंतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परिणाम थकीज जीर्ण थायछे ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी भ्रष्ट थाय (तंजहा के०) जे थकी भ्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे आयुष्य थकी, बल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, कांति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंद्रियादिक पांचेइंद्रिय थकी, उंछु थाय. (सुसंधितासंधीवि संधीनवइके०) जेरुडी रीते जानुं कूर्परादिकनी संधि मलीछे ते विसंधि एटले विपरित संधि थाय (वलितरंगेगाएनवतिके०) शरीर सर्व वलिया रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवु थाय जे, पोतानेज उद्वेग करे तो पछी बीजाने उद्वेग करे तेमां केवुंजकवु? (किण्हाके सापलियानवंति के०) काला केशछे ते सपेत थाय (तजहाके०) ते कहेछे किबहुना (जपियइमसरीरग के०) जे ए शरीर सारु मनोहर (वरालंआहारोवइयं के०) वदा

ते दक्षिणावर्त्त प्रमुख शीलते कशवटी प्रवाला रक्तरत्न तथा संत एटले छतो सार एटले प्रधान एवो सावतेयं एटले धन ए सर्व मह्वारा उपन्नोगने अर्थे थशे (सद्दामे के०) शब्द वशादिकना (रूवामे के०) रूप स्त्रियादिकना (गंधामे के०) गंध ते कस्तूरी कर्पूरादिक वस्तुना (रसामे के०) रसमधुरादिक वस्तुना (फासामे के०) स्पर्श मृडु कठणादिक वस्तुना (एते कें०) ए समस्त वस्तु ते खलु इति निश्चे (ममकामन्नोगा के०) ए कामन्नोग ते माह्वाराछे अने (अहमवि के०) हुपण (एतेसि के०) एनोडु ॥३६॥ हवे (से मेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणो के०) पोताना हृदय साथे (एव के०) एवु (समनिजाणेज्जा के०) सम्यक् प्रकारे जाणे आलोचे एटले प्रथम थीज पोताना हृदयसाथें विचारे के ए महाराछे किंवा नथी एवो विचारे ते शुं विचारे (तंजहा के०) ते कहेछे (इहखलु के०) आ संसारनेविषे निश्चे (ममअन्नयरे के०) मह्वारा शरीरने विषे अन्य कोइ एक (डुक्के के०) डुःख मस्तक पीडादिक (रोयातंके के०) रोगातंक एटले असाध्य रोग शूलादिक (समुप्पज्जेज्जा के०) उपजे ते रोग केवोहोय ते कहेछे. (अणिठे के०) अनिष्टकारी (अकांते के०) आक्रांतकारी (अप्पिए के०) अप्रिय कारी (असुन्ने के०) असुन्नकारी (अमणुन्ने के०) अमनोज्ञ एटले मनने गमे नही (अमणामे के०) विशेष प्रकारें पीडानो करनार (डुक्के के०) डुःख रूप (णोसुहेसेहता के०) नथी ज्या लवलेशमात्र सुख, एवो डुःख उपने थके ते पूर्वोक्त कामन्नोगादि योग्य जे वस्तुछे ते प्रत्ये एवु कहे के (न्नयतारो के०) अहो न्नय थकी राखनाराउ (कामन्नोगाइ के०) धन धान्यादिक तथा शब्दादिक कामन्नोगो तुमे (मम के०) मह्वारे शरीरे (अन्नयरडुःख के०) अनेरा डुःख जे (रोयातंकं के०) रोगातंक शूलादिक उपनाछे (परियाइयह के०) तेने तमे वेहेंची ल्यो मह्वारे अर्थे (अणिठं के०) अनिष्ट कारी (अकंतं के०) अक्रांत कारी (अप्पियं के०) अप्रियकारी (असुन्न के०) असुन्नकारी (अमणुन्न के०) अमनोज्ञ (अमणाम के०) विशेपे अमनोज्ञ पीडाकारी (डुक्कं के०) डुःखरूप (णोसुह के०) नथी ज्यां लव लेश मात्र सुख (तहि के०) तेणेकरी (डुक्कामिवा के०) आकरो डुःखी छु (सोयामिवा के०) शोक अनुन्नवुछु (जूरामिवा के०) जुरुंछु (तप्पामिवा के०) मह्वारो रूदय तपेछे छीजायछे (पीडामिवा के०) पीडा अनुन्नवुछु (परितप्पामिवा के०) विशेपे पीडा अनुन्नवुछुं इत्यादिक (इमाउ के०) ए (ममे के०) मने (अमुयराउ के०) अनेरा (डुक्काउ के०) डुःख जे पूर्वोक्त मस्तक पीडादिक असाध्य (रोगातंकाउपडीमोहय के०) रोग आतंक शूलादिक जे थकी तत्काल प्राणनो नाश थाय ते थकी तमे मने मूकावो एवा (अणिठाउ के०) अनिष्टकारी (अकंताउ के०) आक्रां

त्त्रवसदृशौ तथा जुजौ करिकराऽकारौ परपुरंजयौ प्रणयिजनमनोरथपूरकौ शत्रुशतजीवितांतकरौ यथा मम न तथान्यस्य कस्यापीत्येव पादावपि पद्मगर्भसुकुमारावित्यादि सुगम । यावत्स्पर्शा· स्पर्शनेंद्रियं ममाति ममीकरोति । यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नाव । एतच्च हस्तपादादिक स्पर्शनेंद्रियपर्यवसानं शरीरावयवसंबंधित्वेन विवक्षितं यत्किमपि वयस परिणामात्कालकृतावस्थाविशेषात् (परिजूरइत्ति) जीर्णता याति प्रतिक्षणं विशरारुता याति तस्मिश्च प्रतिशरीर विशीर्यति शरीरे प्रतिसमयमसौ प्राणी एतस्माद्भ्रश्यते । तद्यथा । आयुष पूर्वनिबद्धात्समयादिहान्याऽपचीयते आवीचीमरणाभ्युपगमात् । तथा बलादपचीयते तथा वयसोयौवनावस्थायाश्चवमाने शरीरे प्रतिक्षण शिथिलीभवत्सु सधिबंधनेषु बलादवश्यं भ्रश्यते । तथा वर्णात्त्वचश्छायातोऽपचीयते तत्र च सनत्कुमारदृष्टांतोवाच्य तथा जीर्यति शरीरे श्रोत्रादीनींद्रियाणि सम्यक् स्वविषयं परिछेत्तुमलं । तथाचोक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा, त्वक्चक्षु·शुक्रविक्रमा ॥ दशकेषु निवर्तंते मन सर्वेंद्रियाणि च ॥ १ ॥ विशिष्टवयोहान्या सुसधित सुबद्ध संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्भवति विगलितबंधनोभवतीत्यर्थ । तथा वलितरगाकुलं सर्वत शिराजालवेष्टितमात्मनोपि शरीरमिदमुद्वेगकृद्भवति किंपुनरन्येषा । तथाचोक्तं । वलिसततमस्थिशेषितं शिथिलस्नायुवृत कलेवर ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कांता कमनीयविग्रहा ॥ १ ॥ तथा कृष्णा केशाश्च परिणामे जलप्रक्षालिताधवलता प्रतिपद्यते । तदेव वय·परिणामापादितसन्मतिरेतद्भावयेत् । तद्यथा । यदपीद शरीरमुदारं शोभनावयवरूपोपेतं विशिष्टाहारोपचितमेतदपि मयावश्य प्रतिक्षण विशीर्यमाणमायुष क्षये विप्रहातव्य भविष्यतीत्येतदवगम्य शरीरानित्यतया संसारासारतां सम्यगवगम्य परित्यक्तसमस्तगृहप्रपंचो निष्किंचनतामुपगम्य सन्निकुर्देहदीर्घसयमयात्रार्थं भिक्षाचर्यायां समुद्यित सन् द्विधा लोकं जानीयादिति । तदेव लोकद्वैविध्यं दर्शयितुकामआह । तद्यथा । जीवाश्च प्राणधारणात्तद्विपरिताश्चाजीवाधर्माधर्माकाशादय । तत्र तस्य भिक्षोरहिंसाप्रसिद्ध्ये जीवान् विभागेन दर्शयितुमाह । जीवाअप्युपयोगलक्षणा द्विधा । तद्यथा । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादय तथा तिष्ठतीति स्थावरा पृथिवीकायादय । तेपि सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकादिभेदेन बहुधाऽद्रष्टव्या । एतेषु चोपरि बहुधा व्यापार· प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

इह खलु-गारत्था सारम्भा सपरिग्गहिया सतेगतिया समणा माहणावि सारम्भा सपरिग्गहावि जेइमे तसा थावरा पाणा ते सय समारम्भंति अन्नेणावि समारम्भावेति अन्नंपि समारम्भ त समणुजाणंति ॥ ४३ ॥ इह खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा सतेगतिया समणा माहणावि सा

दिका शिला प्रवालं विद्रुमं । यदिवा (शिलप्पवालंति) श्रियायुक्त प्रवालं श्रीप्रवाल वर्णादिगुणोपेत तथा (रत्तरयणति) रक्तरत्न पद्मरागादिकं तथा सत्सार शोजन सारमित्यर्थः । शूलमण्यादिक तथा स्वापतेय शुद्धं ड्रव्यजातं सर्वमेतत्पूर्वोक्त मे ममोपजोगाय जविष्यति •। तथा शब्दावेएवादयोरूपाण्यंगनादीनि, गधा कोष्टपुटाद योरसामधुरादयोमासरसादयोवा, स्पर्शामृ६ादयएते सर्वेपि खलु मे कामजोगायाह्मप्ये पा योगक्षेमार्थं प्रजविष्यामीत्येव सप्रधार्य, ॥ ३६ ॥ समेधावी पूर्वमेवात्मान विजानीया देव पर्यालोचयेत् । तद्यथा । इह संसारे । खलुशब्दोऽवधारणे । इहैवास्मिन्नेव जन्मनि म नुष्यजवे मम्रान्यतरद्दुःख शिरोवेदनादिकं आतंकोवाऽऽशु जीवितापहारी शूलादिक समु त्पाद्यते । तमेव विशिनष्टि । अनिष्टोऽकांतोऽप्रियोऽशुजोऽमनोज्ञोऽवनामयतीत्यवनाम पीडाविशेषकारी डुःखरूपोयदि वा नमनागमनाक् मे मम नितरामित्यर्थः । डुःखयतीति डुःखं पुनरपि डुःखोत्पादन अत्यतडुःखप्रतिपादनार्थं सुखलेशस्यापि परिहारार्थं च नोनै व शुजकर्मविपाकोदितत्वादिति । अत्रच यडुक्त पुनरुच्यते तदत्यादरख्यापनार्थं तद्विशे षप्रतिपादनार्थं वेति । तदेवजूतं डुःख रोगातंक वा हतइतिखेदे जयात्रातारोयूय क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यादिका परिग्रहविशेषा शब्दादयोवा विषयास्तथा हे जगवत! कामजोगायूयं मया पालिता परिगृहीताश्च ततोयूयमपीद डुःख रोगातक वा (परि याइयहत्ति) विजागश परिगृह्णीत यूयं । अत्यंतपीडयोद्विग्न पुनस्तदेव डुःख रोगातंकं वा विशेषण द्वारेणोच्चारयति । अनिष्टमप्रियमकांतमशुजममनोज्ञममनाग्जूतमवनामकं वा डुःखमेवैतन्नोशुजमित्येवजूत ममोत्पन्नं यूयं विजजताह्ममनेनातीव डुःखामीति डुःखि तइत्यादि पूर्ववन्नेयमित्यतोऽमुष्मान्मामन्यतरस्माद्दुःखाड्रोगातका द्वा प्रतिमोचयत यूयं । अनिष्टादिविशेषणानि तु पूर्वव द्व्याख्येयानि। प्रथम प्रथमातानि पुनर्द्वितीयातानि सा प्रतं पचम्यंतानीति । नचायमर्थस्तेन डुःखितेनैवमेवेति यथाप्रार्थितस्तथैव लब्धपूर्वोज वति । इदमुक्तजवति । नहि ते क्षेत्रादय परिग्रहविशेषानापि शब्दादय कामजोगास्त डुःखितं डुःखाद्विमोचयंतीति ॥ ३७ ॥

इह खलु कामजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं कामजोगे विप्पजहति कामजोगावा एगता पुविं पुरिस विप्पजहंति अन्ने खलु कामजोगा अन्नो अहमंसि से किमगपुण वय अन्नमन्नेहिं काम जोगेहिं मुछामो इति संखाएणं वयंच कामजोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जाणेज्जा बाहिरगमेत्त ॥ ३८ ॥

८०

प्रवर्ज्या पालशुं इत्यर्थ । (कस्सणंतंहेउं के०) वली तेनी निश्रायें विचरवु ते नु कारण शुं? एवा संदेहें शिष्यें पूछे थके तदनंतर आचार्य ते शिष्यनो अनि प्राय जाणीने तेने उत्तर आपेछे. (जहापुवंतहाअवर के०) जेम ग्रहस्थने सारं नि सपरिग्रही पणु प्रथम होय तेम पछी पण होय (जहाअवरतहापुवं के०) अने कोइ एकश्रमण ब्राह्मण पण ग्रहस्थने नावें होय तेवारे सारंनि सपरिग्रही होय तेमज पछी प्रवर्ज्याना अवसरे पण तेवाज सारंनी सपरिग्रही थका वर्त्ते तो ते पण ग्रहस्थ सरखाज जाणवा केमके जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरेछे तेम प्रथम ग्रहस्थने नावे पण तेवाज ह ता ए कारणे निरारंनि थका चारित्रियायें सारंनिनो आश्रय ग्रहण करवो जेम ए गृह स्थ सारंनि सपरिग्रही प्रत्यक्ष देखायछे तेम देखाडेछे. (अंजूएतेअणुवरयाअणुवछिया के०) ए वात प्रगट पणेछे के ए गृहस्थादिक सावद्यानुष्ठान थकी अनुपरत एटले नि वर्त्या नथी जे कारण माटे ते सारंनी, सपरियही प्रत्यक्ष पणेछे अने जे कोइ चारित्र ल हिने पछी सावद्यानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते आधाकर्मादिक आहार लिये तेपण (पुणरवि के०) वली पण (तारिसगाचेवके०) तादृश तेवाज जाणवा जेम पछी प्रवर्ज्याने अव सरे वर्त्तेछे तेम प्रथम गृहस्थने नावे पण वर्त्तता हता ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका–तमेवाह । इह संसारे खलु गृहस्था सारंना सपरिग्रहा संति विद्यंते। एके केचन श्रमणा शाक्यादयोब्राह्मणाश्च सारंजा सपरिग्रहा । यतोयइमे त्रसा. स्था वरा प्राणिनएतान् स्वय समारंनंते अन्याश्च समारंनयंति समारंनं कुर्वतश्चान्यान् सम नुजानंति॥४३॥ एव प्राणातिपातं प्रदर्श्य परिग्रहमाह् । इह खलु गृहस्था सारंना सप रिग्रहा संति श्रमणाब्राह्मणाअपि तादृशा । यइमे कामनोगा कामा स्त्रीसगादयो नोगा स्रक्चंदनगीतादय । एते सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं परिगृएह्ति अन्यान् प रिग्राहयंति परंच परिगृएह्त समनुजानंति ॥४४॥ उपसंहारमाह् । इह खलु गृहस्था. श्रम णाब्राह्मणाश्च सारंना सपरिग्रहाइति ज्ञात्वा सनिक्षुरेव चिंतयेत्. अहमेव खलु अनार ंन्नोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादय सारंना सपरिग्रहास्तदेतन्निश्रयाब्रह्मचर्य श्राम एय वत्स्यामआचरिष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहा सतोधर्माधारदेहधारणार्थमाहारादिकृते सारंनसपरिग्रहगृहस्थनिश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थ । शिष्य. प्राह । कस्य हेतोर्गृह स्थस्य श्रमणादिनिश्राकरण? आचार्यआह । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्व तेषा तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्था सारंनादिदोषडष्टा श्रमणाश्च पूर्व गृहस्थत्वे सारंनास्त था परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव ते यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याकाले तथा पूर्व गृहस्थत्वेपीति । तत साधुनिरनारंनै सारंनाश्रयण कार्य । गृहस्थासारंनत्वमाह (अंजू

तै कामनोगैर्विषयोन्मुखोपि त्यज्यते । सचेवमवधारयति अन्ये मत्तोभिन्ना खल्वमी कामनोगास्तेन्यश्चान्योहमस्मि । तदेव व्यवस्थिते "किमिति वय पुनरेतेष्वनित्येपु परनूतेष्वन्येपु कामनोगेपु मूर्छा कुर्म" इत्येव केचन महापुरुपा परिसख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामनोगान्वय विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्येवमध्यवसायिनोजवति । पुनरपर वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (सेमेहावी) समेधावी श्रुतिक एतज्जानीयात् । यदेतत्क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णशब्दादिविपयादिक डुखपरित्राणाय न नवतीत्युपन्यस्त तदेतद्वाह्यातर वर्तते ॥ ३ ०॥

इणमेव उवणीयतरागं त जहा मायामे पितामे नायामे नगिणीमे नज्जामे पुत्तामे धूतामे पेसामे नत्तामे सुण्हामे सुहामे पियामे सहामे सयणसंगथसंथुयामे एते खलु मम णायउ अहमवि एतेसि एव से मेहावि पुव्वमेव अप्पणाएव समभिजाणेज्जा इह खलु मम अन्नयरे डुक्के रोयातके समुप्पज्जेज्जा अणिठे जाव डुक्के णोसुहे सेहता नयतारो णायउ इम मम अन्नयर डुक्कं रोयातक परियाइयह अणिठ जाव णोसुहं ताहि डुक्कामिवा सोयामिवा जाव परितप्पामिवा इमाउमे अन्नयराती डुक्काती रोयातको परिमोएह अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्ध पुव नवइ ॥३९॥ तेसिवावि नयताराण मम णाययाए अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुपज्जेज्जा अणिठे जाव णोसुह सेहता अहमेतेसि नयताराण णाययाएं इमं अन्नयर डुक्क रोयातक परियाइयामि अणिठ जाव णोसुह मामे डुक्कतुवा जाव मामे परितप्पतुवा इमाउणं अण्णयराउ डुक्काती रोयातकाउ परिमोएमि अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्व नवइ अन्नस्स डुक्क अन्नोन परियाइयति अन्नेन कड अन्नो नोपडिसवेदेति॥४०॥ पत्तेयं जायतिय पत्तेय मरइ पत्तेय चयइ पत्तेय उववज्जइ पत्तेय झझा पत्तेयं सन्ना पत्तेय मन्ना एवं विन्नू वेदणाइति खलु णातिसंजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं णातिसजोए विप्पजहति णातिसजोगावा एगता पुवि पुरिस विप्पजहति अन्ने खलु णातिसजोगा अन्नो अहमंसि सेकिमंग पुणवय अन्नमन्नेहि णातिसजोगेहि मुच्चामो इति सखाएणं वय णातिसंजोग विप्पजहिस्सामो ॥ ४१ ॥

ष्ठानेभ्योऽनुपरता परिग्रहारम्भाच्च सत्संयमानुष्ठानेन चानुपस्थिता सम्यगुष्ठानमकृतवंतो पि कथंचिद्धर्मकरणायोद्यितास्तेप्युद्दिष्टभोजित्वात्सावद्याऽनुष्ठानपरत्वाच्च गृहस्थाभावेऽनुष्ठानमनतिवर्तमाना पुनरपि तादृशाएव गृहस्थकल्पाएवेति ॥ ४५ ॥

जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा दुहतो पावाइ कुवंति इति संखाए दोहिवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा ॥ ४६ ॥ सेबेमि पाईणंवा जाव एवं से परिण्णायकम्मे एवं से ववेयकम्मे एवं सेविअंतकारए भवतीति मक्खायं॥४७॥

अर्थ-(जेखलुगारत्थासारंभासपरिग्गहा के०) जे निश्चे थकी गृहस्थ सारंभी सपरिग्रही छे (संतेगतियासमणामाहणाविसारंभासपरिग्गहा के०) अने कोइ एक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी अने सपरिग्रही छे (दुहतोपावाइंकुवंति के०) ए कारणे ए बन्ने पापना करनारा जाणवा (इतिसंखाए के०) एवु जाणीने (दोहिविअंतेहिं के०) आरंभ अने परिग्रह ए बेउ थकी अंत एटले दूर रहे (अदिस्समाणो के०) आरंभ अने परिग्रह थकी अदृश्य मान छतो (इतिभिक्खूरीएज्जा के०) एम चारित्रवान् साधु निरवद्य आहारनुं भोजन करनार थको संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते ॥४६॥ (सेबेमिके०) वली तेज अर्थ विशेषे करी कहुंछुं (पाईणवा के०) पूर्व पश्चिम उत्तर अने दक्षण दिशि थकी आव्यो एवो साधु निरारंभी निःपरिग्रही संयमने विषे प्रवर्त्तमान थको (जावएवसेपरिण्णायकमे के०) ज्या सुधी एम ते साधु ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये पच्चखीने (एवसेववेयकम्मे के०) एम ते कर्मना अंतनो करनार थाय (एवसेविअंतकारएभवतीतिमक्खाय के०) ए प्रकारे ते योगनिरोधे करी विशेष अंतकारी थाय एम श्री तीर्थंकर गणधरे कह्युंछे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका-उपसंहारमाह । (जेखलुत्ति) येइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि रागद्वेषाभ्यामुभाभ्यां पापानि कुर्वंति इति संख्याय ज्ञात्वा द्वयोरप्यंतयोरागद्वेषयोरनुपलभ्यमान सन् इत्येवंभूतोभिक्षु संयमे रीयेत प्रवर्तेत । कोर्थः । यइमे ज्ञातिसंयोगायश्चार्थ धनादिपरिग्रह यच्चेदं हस्ताद्यवयवयुक्त शरीरं यच्चायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमसारमनित्यं । गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभपरिग्रहा एतत्सर्वं ज्ञात्वा भिक्षु संयमे रीयेत तिष्ठेदितिस्थितं ॥४६॥(सेबेमि) सोहं ब्रवीमि प्राच्यादिशोन्यतरस्या समागत सभिक्षुर्द्वयोरपि रागद्वेषयोरदृश्यमान संयमे रीयमाण सन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परिज्ञातकर्मा स्यात् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया [illegible] । एवं सयोगनिरोधेन व्यं [illegible] विशेषेणकर्मणामंतकृ[illegible] [illegible] ॥ ४७ ॥

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुनवे माटे एने पण अनेरा कोइ डुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावशु एवु यद्यपि ते पोताना मन माहे जाणे परतु ते अनिष्टकारी जेमा लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते माहेथी वहेंची नशके, एट ले तेमनु डुःख पोते लइ शके नही कारणके, (अन्नस्सडुरकंअन्नोनपरियाइयतिके०) अनेरानु डुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनु डुःख बीजो वहेंची लइ शके नही (अन्नेनकड के०) अनेरानुं करेलुं कर्म (अन्नोनोपडिसेवेदेंति के०) अनेरो नो गवे नही जेणे जे कीधु होय ते तेहिज नोगवे ॥४०॥ (पत्तेयजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. (पत्तेयमरइ के०) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे (पत्तेयचयइ के०) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने छांमेछे (पत्तेयंउववज्जइ के०) प्रत्येक प्रत्येक उपार्ज न करेछे संग्रहेछे (पत्तेयंझंजा के०) प्रत्येक प्रत्येक झंजायक कलह लहेछे (पत्तेयंसन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येकने सज्ञा एटले पदार्थनु परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. (पत्तेयमन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चि तवनछे (एवविन्नूवेदणाइतिके०) एरीते विन्नू एटले जाणवु प्रत्येक प्रत्येक सुख डु खरूप वेदनानो अनुनव थायछे, एतावता एकनु करेलु बीजो न नोगवे (एव के०) ए कारणे खलु इति निश्चे (णातिसजोगा के०) ज्ञातिनो जे सयोगछे ते जीवने (णोत्ता णाएवा के०) त्राण नणी नथाय (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण नणी न थाय (पुरिसेवाएगतापुव्विणातिसजोएविप्पजहंति के०) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति सयोगने ते पु रुप प्रथम छांमे (णातिसंजोगावाएगतापुव्विंपुरिसविप्पजहति के०) अथवा एकदा प्र स्तावे ज्ञाति सयोग ते पुरुषने प्रथमथीज छांमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे (अन्नोअहमसि के०) अने हुं एना थकी अन्यछु एटले जुदोछु जो एमछे तोपण (सेकिमगपुणवयके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते (अनमन्नेहि के०) माहो माहे (णातिसयोगेहि के०) ज्ञाति ना संयोग साथे (मुछामो के०) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसखा एण के०) एवु जाणीने (वयंणातिसजोगविप्पजहिस्सामो के०) अमे ज्ञाति सयोग छांमशु एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पमित जाणवो. ॥४१॥

॥ दीपिका—इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतर वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, भ्राता, नगिनी, नार्या, पुत्र, सुता, स्नुषा, प्रिय, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातय पूर्वापरसस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय नविष्यति अहमप्येतेषा ज्ञातीनामुपकरि ष्यामीत्येव समेधावी पूर्वमेवात्मना एव समनिजानीयाद्विचारयेत् । इह नवे ममानिष्ट

परूवेंति सवेपाणा जावसत्ता णहंतवा णअज्जावेयवा णपरिघेतवा ण परितावेयवा णउद्दवेयवा एसधम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्च लोगं खे यन्नेहिं पवेदेति एवंसे भिक्कू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा तो णोढतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा णोअजणं णोवमणं णोधूवणे णोत परिआविएज्जा ॥ ४ए ॥

अर्थ–(तब के०) त्या कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (भगवता के०) भगवत श्रीतीर्थकरदेवे (ढ जीवनिकायहेडं के०) ढजीवनिकाय कर्मबंधना कारण (पन्नत्ता के०) कह्याढे (तंजहा के०) ते ढ कायना नाम कहेढे (पुढवीकाएजा वतसकाए के०) पृथ्वी कायथी मान्नीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ढ जीव निकाय जाणवा तेने पीडता पीडावता जेम डुःख ऊपजे तेम दृष्टाते करी देखाडेढे (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनाये (मम के०) मुजने (असातं के०) असाता ऊपजे शा थकी असाता ऊपजे ते कहेढे (दंमेणवा के०) दंमादिकेकरी हणता थका (अठीणवा के०) अस्थिखमे करी हाडकाये करी (मुठीणवा के०) मुष्टीयें करी (लेलूणवा के०) पाषाणे करी (कवालेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्जमाणस्सवा के०) आक्रोश करताथका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणता थका (तज्जिज्जमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणस्सवा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणस्सवा के०) किलामणाकरताथका (उद्दविज्जमाणस्सवा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करताथका (जावलोमुक्कणणमायमवि के०) यावत् शरीर मांहेथी एक रोम उखेडवा मात्र एवु पण (हिंसाकारग के०) हिंसानु कारण तेथी पण (डुक्खंभयंपडिसवेदेमि के०) डुःख अने भय हुं वेडु अनुभवु (इच्चेवजाण के०) ए प्रकारे तेजाणे के (सवेजीवा के०) सर्व जीवते सर्व पंचेंडियजीव जाणवा (सवेभूता के०) सर्व भूतते सर्व वनस्पति प्रमुखना जीव जाणवा (सवेपाणा के०) सर्व प्राणी ते सर्व बे इंडियादिक विकलेंडि जीव जाणवा (सवेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्वजीव जाणवा ते जीवोने (दंमेकरी हणता थका (जावकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीये करी हणता थका (आउट्टिज्जमाणावा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्जमाणावा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणावा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणावा

र रुडा आहारे करी वृद्धिने पमाड्युं (एयंपियं के०) एने पण (अणुपुवेणं के०) अनुक्रमे वयने परिणामे (विप्पजहियवज्जविस्सति के०) गमतु थशे (एयंसंख्काए के०) एवु जाणीने (सेनिख्कू के०) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह गमीने तथा राग द्वेषादिक अतरग परिग्रह गमीने (निख्कायरियाएसमुठ्ठिए के०) निक्षाचर्याने विषे सावधान थाय (डुहउलोगंजाणेज्जा के०) ते साधु बे प्रकारे लोकने जाणे (तंके०) ते बे प्रकार कहेठे (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणिमात्र जाणवा बीजो (अजीवाचेव के०) धर्मास्तिकायादिक पाचद्रव्य अजीव जाणवा. हवे ए निक्षु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना नेद कहेठे (तसाचेवथावराचेव के०) एक त्रस ते बेइंद्रियादिक जाणवा बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाणवा ते वली सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना नेदेंकरी घणा प्रकारे जाणवा ॥ ४२ ॥

॥ दीपिका–वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतत् यज्ज्ञातिसंबंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतर ज्ञातिन्य शरीरावयवानामासन्नतरत्वात् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एव पादौ बाहू ऊरू शीर्षमुदरमायुर्बलं वर्णस्त्वक् गया श्रोत्रं चक्षुर्घ्राण जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नाव ।एतच्च हस्तपादादिकं वयस परिणामात् (परिजूरइत्ति) परिजीर्णता याति। तद्यथा। आयुष सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्गायात श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अत्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्य । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींद्रियाण्यपि हीयंते । यडुक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षु शुक्रविक्रमा ॥ दशकेषु निवर्तते मन सर्वेंद्रियाणि च । तथा सुसधित सुबद्ध सधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति। गात्रं शरीर वलितरगाकुल शिराजालवेष्टित नवति । यत । वलिसंततमस्थिशेषित,शिथिलस्नायुवृत कलेवर॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकांता कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णा केशा पलिता श्वेता स्यु । यदपीदं शरीरमुदार शोनन विशिष्टाहारोपचित एतदपि मयाऽवश्य विप्रहातव्यं त्यक्तव्य नविष्यति इत्यवगम्य ससारासारता सख्याय ज्ञात्वा सनिक्षुर्निक्षाचर्यायां समुत्थित सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाअजीवाश्च। जीवाद्विविधा त्रसा स्थावराश्च । एतेषामुपरि बहुधा व्यापार प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

॥ टीका–साम्प्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (समेहावीत्यादि) सश्रुतिकएत द्वक्ष्यमाण जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतयज्ज्ञातिसबधनमिदमेवान्यडुपनीततरमासन्नतर शरीरावयवाना निन्नज्ञातिन्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

वाद थकी, तथा अदत्तादान थकी, तथा मैथुन एटले कुशील थकी, (जावविरतेपरिग्गहातो के०) यावत् परिग्रह थकी, विरति करतो थको जेवा आचारे प्रवर्त्ते, ते आचार कहेछे (णोदतपक्खालणेणं दतपक्खालेज्जा के०) दंत पक्षालने करी दंत धोवे नही, एतावता जावजीव सुधी दातण न करे. (णोअंजण के०) जावजीव सुधी सौनाग्यने अर्थे आखमा अजन नाखे नही (णोवमणं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे, (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (णोतंपरिआविएज्जा के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे, ते निक्षु एटला वाना पोते आचरे नही.॥४९॥

॥ दीपिका–प्राणातिपातेन कर्मबंधप्रस्तावे खलु नगवता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोक्ता । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसकाय । एतेषां डुःखं दृष्टांतेनाह । तद्यथा नाम ममासात डुःखं दडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना लोष्टेन कर्परेण आकोट्यमानस्य सकोच्यमानस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्ताड्यमानस्य कुड्यादावनिघातादिना परिताप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण परिक्रम्यमाणस्यापड्राव्यमानस्य मार्यमाणस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकर डुःख नयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं सवेदयामि इत्येव जानीहि । तथा सर्वे प्राणाजीवानूतानि सत्वाइत्येकार्थिका कथचिद्भेदेन वा व्याख्येया । तथाहि । प्राणाद्वित्रिचतुःखा.स्तु,नूतानि तरव स्मृता ॥ जीवा पचेंद्रिया प्रोक्ता शेषा सत्वाइतीरिताःइति । एषां दडादिना कोट्यमानाना यावल्लोमोत्खननमात्रमपि डुःखं प्रतिसवेदयता । एतच्च हिंसाकर डुःखं नयं चोत्पन्नं ते सर्वेपि प्राणिन साक्षादनुनवत्यत सर्वेपि प्राणिनोन हतव्यान आज्ञापयितव्याबलान्न कार्ये प्रयोक्तव्यान परिग्राह्यान परितापयितव्यानापड्रावयितव्या.॥४८॥ सोहं साधुर्ब्रवीमि न स्वमत्या किंतु तीर्थकृदाज्ञयेत्याह । येअतीताये च प्रत्युत्पन्नावर्तमाना सीमधरादयोये चागमिष्याअनागता. पद्मनानादयोऽर्हंतोनगवत सर्वेप्येवमाख्यांति एव नाषंते स्वत एव प्रज्ञापयंति हेतुनिरेव प्ररूपयति नामादिनिर्यथा सर्वेप्राणा न हतव्याइत्यादि । एषधर्मो ध्रुवोनित्य शाश्वत समेत्य ज्ञात्वा, लोक खेदज्ञैस्तीर्थकरै प्रवेदित । एव ज्ञात्वा सनिक्षुर्विरत प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहान्महाव्रतपालनार्थमुत्तरगुणा कथ्यंते । (नोदतइत्यादिना) निष्किंचन सन् साधुर्नो दंतप्रक्षालनेन काष्ठेन दतान् प्रक्षालयेत् नोअंजन नेत्रयोर्विनूषार्थं कुर्यात्, वमनं विरेचनादि न कुर्यात्, वस्त्राणां धूपन न कुर्यात् कासाद्यपनोदनार्थं धूम न पिबेत् ॥४९॥

॥ टीका–कथ पुन प्राणातिपातविरतिव्रतादिव्यवस्थितस्य कर्मापगमोनवतीत्युक्तं यतस्तत्प्रवृत्तस्यात्मौपम्येनप्राणिना पीडोत्पद्यते तया च कर्मबधइत्येव सर्वं मनस्याधा

र रुडा आहारे करी वृद्धिने पमाड्युं (एयंपियं के०) एने पण (अणुपुवेणं के०) अनुक्रमे वयने परिणामे (विप्पजहियव्वंनविस्ससति के०) छांमवु थशे (एयंसंकाए के०) एवुं जाणीने (सेनिरकू के०) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक वाह्य परिग्रह छामीने तथा राग द्वेषादिक अंतरंग परिग्रह छामीने (निरकायरियाएसमुहिए के०) निक्षाचर्याने विषे सावधान थाय (डुहर्उलोगंजाणेज्जा के०) ते साधु वे प्रकारे लोकने जाणे (तंके०) ते वे प्रकार कहेछे (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणिमात्र जाणवा बीजो (अजीवाचेव के०) धर्मास्तिकायादिक पांचद्रव्य अजीव जाणवा. हवे ए निक्षु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना नेद कहेछे. (तसाचेवथावराचेव के०) एक त्रस ते बेइंद्रियादिक जाणवा बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाणवा ते वली सूक्ष्म वादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना नेदेंकरी घणा प्रकारे जाणवा ॥ ४२ ॥

॥ दीपिका–वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । वाह्यतरमेतत् यज्ज्ञातिसंवंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतर ज्ञातिन्य. शरीरावयवानामासन्नतरत्वात् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एव पादौ वाहू ऊरू शीर्षमुदरमायुर्वलं वर्णस्त्वक् ग था श्रोत्रं चक्षुर्घ्राणं जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. याहृड् मे, न ताहृगन्यस्येति नाव ।एतच्च हस्तपादादिकं वयस परिणामात् (परिजूरइत्ति) परिजीर्णता याति। तद्यथा। आयुष सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्छायात श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अत्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्य । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींद्रियाण्यपि हीयते । यडुक्तं । वाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षु शुक्रविक्रमा ॥ दशकेषु निवर्तते मन सर्वेंद्रियाणि च । तथा सुसवित' सुवद्ध संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति। गात्रं शरीर वलितरगाकुल शिराजालवेष्टितं नवति । यत । वलिसंततमस्थिशेषितं,शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकाता' कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णा केशा पलिता श्वेता स्यु । यदपीदं शरीरमुदार शोननं विशिष्टाहारोपचितं एतदपि मयाऽवश्य विप्रहातव्यं त्यक्तव्यं नविष्यति इत्यवगम्य ससारासारता संख्याय ज्ञात्वा सनिक्षुर्निक्षाचर्यायां समुत्थित सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाश्चजीवाश्च। जीवाद्विविधा त्रसा' स्थावराश्च । एतेषामुपरि वहुधा व्यापार प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

॥ टीका–साप्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (समेहावीत्यादि) सश्रुतिकएत द्वक्ष्यमाण जानीयात् । तद्यथा । वाह्यतरमेतद्यज्ज्ञातिसंवधनमिदमेवान्यडुपनीततरमासन्नतर शरीरावयवाना निन्नज्ञातिन्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

वा णाएणवा विन्नाएणवा इमेणवा सुचरिय तवनियमबंनचेरवासेण इमेणवा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं इउवए पेच्चा देवेसिया कामजोगा वसवत्ति सिद्धेवा अडुक्खमसुने एहविसिया एहविणोसिया ॥ ५० ॥

अर्थ-(सेनिरकू के०) ते चारित्रियो (अकिरिए के०) सावद्य क्रिया रहित, (अलूसए के०) जीवनो अहिंसक, (अकोहे के०) क्रोधरहित (अमाणे के०) मानरहित (अमाए के०) मायारहित (अलोहे के०) लोजरहित (उवसंतेपरिनिवुडे के०) एकारणे उपशांत परिनिवृत समाधिवंत एवो उतो, (णोआसंसंपुरतोकुज्ञा के०) आशंसा न करे एटले जन्मांतरे कामनोगनी प्रार्थना न करे (इमेणमेदिहेणवा के०) वली आ जन्मने विषे आमोसही इत्यादिक लब्धि पाम्या तेथी तपस्यानुं फल प्रत्यक्ष दीठुं तथा वली (सुएणवा के०) सिद्धांत जणवा थकी (मुएणवा के०) मनन करवाना (णाएणवा के०) ज्ञानेकरी (विन्नाएणवा के०) विज्ञानेकरी, (इमेणवा के०) एवा धर्मेकरी (सुचरिय के०) सुकृतरूप आचरण (तव के०) तप अनशनादिक (नियम के०) नियम अनिग्रहादिक (बंनचेर के०) ब्रह्मचर्यने विषे (वासेण के०) वसवा थकी (इमेणवा के०) ए धर्मेकरी (जायामायावुत्तिएण के०) संयमयात्रामात्रा वृत्तिरूप एटले मानोपेत आहार लेवे करी (धम्मेणइउवएपेच्चादेवेसिया के०) एवा धर्मेकरी अहींया थकी चवीने परजवांतरे देवत्व पणु पामुं एवी आशंसा पण न करे (कामनोगावसवत्ति के०) अथवा नाना प्रकारना कामजोग महारे वशवर्ति थाउं एवी प्रार्थना पण नकरे (सिद्धि के०) अष्ट प्रकारनी अणिमा महिमादिकजे सिद्धि उजे ते सिद्धियें करी सिद्धियें सहित थाउं, एवी आशंसा नकरे (अडुक्खमसुने के०) दुःख रहित थाउं, शुनाशुन कर्मरहित थाउं, तथा मध्यस्थ थाउं, एवी आशंसा पण न करे एवी आशंसाने न करवानुं कारण कहेजे (एहविसियाएहविणोसिया के०) तपश्चरण करता मन प्रार्थितसिद्धि होय अथवा न होय ए कारणे वांछा न करे ॥ ५० ॥

॥ दीपिका–मूलोत्तरगुणसंग्रहमाह । सनिक्कु नविद्यते सावद्या क्रिया यस्य सोऽक्रिय सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः । यत प्राणिनामलूषकोऽहिंसकस्तथाऽक्रोधोऽमायोऽलोनश्च पशांत परिनिर्वृत शीतीनूतआशंसा जन्मांतरे कामनोगावाप्तिवांछां न पुरस्कुर्यात् । (इमेणत्ति) अमुना तपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना श्रुतेन पारलौकिकेनाईकधम्मिलब्रह्मदत्तादीना तपश्चरणफलेन (मएणत्ति) मननं च जातिस्मरणादिज्ञानेन आचार्यादे सकाशाद्विज्ञातेनावगतेन ममापि विशिष्टं फल नविष्यतीत्येव नाशंसा विदध्यात् । त

रंभा सपरिग्गहा जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते सयं परि गिण्हति अन्नेणवि परिगिण्हावेति अन्नपि परिगिण्हंतं समणुजाणति ॥ ४४ ॥ इह खलु गारभा सारंभा सपरिग्गहा संते गतिया समणा माहणावि सारभा सपरिग्गहा अह खलु अणारभे अपरिग्गहे जे खलु गारभा सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा स परिग्गहा एते चेव निस्साए बंभचेरंवा सवसिस्सामो कस्सणं तं हेउं जहा पुवं तहा अवरं जहा अवरं तहा पुवं अंजू एते अणुवरया अणुवठिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ–हवे ए जीवोना उपमर्दक देखाडेछे (इहखलु के०) आ संसारने विषे निश्चे थकी (गारभासारभा के०) ग्रहस्थ जेछे ते सारंभी, तथा (सपरिग्गहिया के०) सपरिग्रहिया जाणवा (सतेगतियासमणामाहणावि के०) तथा कोइ एक श्रमण अने ब्राह्मणछे तेपण (सारभासपरिग्गहावि के०) सारंभी अने सपरिग्रहीछे. ते सारंभी सपरिग्रही केवाछे ते कहेछे (जेइमेतसाथावरापाणा के०) जे कोइ ए त्रस अने स्थावर प्राणीछे (तेसयसमारभंति के०) तेनो स्वय पोते समारंभ करेछे (अन्नेणाविसमारभा वेंति के०) अन्य बीजापासे आरंभ करावेछे (अन्नपिसमारभंतसमणुजाणति के०) बीजो कोइ आरंभ करतो होय तेने अनुमोदन आपेछे. ॥४३॥ हवे ए सारंभी सपरिग्रहिने प्राणातिपात देखाडीने भोगागभूत परिग्रह देखाडेछे अही इहखलु इत्यादिकनो अर्थ लखेछे आ जगत् माहे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रही होयछे अने कोइएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रहीछे (जेइमेकामभोगासचित्तावाअचित्तावाके०) जे ते स्त्रिया दिकना भोगने अर्थे पुष्प, चदन, गीत, वाजित्रादिक करावे ते सचित्त अने अचित्त परिग्रह जाणवो (तेसयंपरिगिण्हतिके०) ते स्वय पोते कामभोगना अर्थी थका सचित्ताचित्तरूप परिग्रह अगीकार करे (अन्नेणविपरिगिण्हावेतिके०) बीजा पासे परिग्रहावे (अन्नंपिपरिगिण्हंतंसमणुजाणतिके०) बीजोजे परिग्रहे तेने अनुमोदन आपे. ॥ ४४ ॥ एम आ जगत् मा ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे अने केटलाएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रही छे एवु जाणीने भिक्षु चारित्रिउ एवु चितवे जे (अहं के०) हुं खलु इति निश्चे निरारंभी नि परिग्रहीछुं. तो जे ए ग्रहस्थ तथा श्रमण ब्राह्मण सारंभी सपरिग्रहीछे एनी निश्राये अमे ब्रह्मचर्य आदरशु एतावता निरारंभ नि परिग्रही थका धर्माधारभूत देहने प्रतिपालवा निमित्ते आहारादिकने अर्थे सारंभी सपरिग्रही एवा ग्रहस्थनी निश्रायें

सेनिक्खू सद्देहिं अमुछिए रूवेहिं अमुछिए रसेहिं अमुछिए गंधेहिं अमुछिए फासेहिंअमुछिए विरए कोहाउ माणाउ मायाउ लोनाउ पेज्जाउ दोसाउ कलहाउ अप्नक्खाणाउ पेसुन्नाउ परपरिवायाउ अरइरइउ मायामोसाउ मिछादंसणसल्लाउ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेनिक्खू ॥ ५१ ॥ जेइमे तसथावरा पाणा नवंति ते णो सयं समारनइ णोवसेहिं समारंनावेति अन्नं समारनंतं नसमणुजाणंति इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेनिक्खू ॥ ५२ ॥ जेइमे कामनोगा सचित्तावा अचित्तावा ते णो सयं परिगिएहंति णोअन्नेण परिगिएहावेंति अन्न परिगिएहंतंपि णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरतो सेनिक्खू ॥ ५३ ॥

अर्थ-(सेनिक्खू के०) ते साधु (सद्देहिंअमुछिए के०) शब्दने विषे अमूर्छित (रूवेहिंअमुछिएके०) रूपने विषे अमूर्छित (रसेहिंअमुछिए के०) रस मधुरादिकने विषे अमूर्छित (गधेहिंअमुछिए के०) सुरनिगंधादिकने विषे अमूर्छित (फासेहिंअमुछिएके०) स्पर्शने विषे अमूर्छित (विरएके०) निवर्त्यो, शा थकी निवर्त्यो ? ते कहेछे क्रोध थकी, मान थकी, माया थकी, लोन थकी, राग थकी, द्वेष थकी, कलह थकी, अन्याख्यान एटले जुठुं आल देवा थकी, चाडी करवा थकी, परना अवर्णवाद बोलवा थकी, अरति थकी, रति थकी, माया सहित मृषावाद बोलवा थकी, अने मिथ्यात्वदर्शन शल्य ए थकी निवर्त्यो (इतिसेमहतोआयाणाउके०) एवो ते चारित्रि महोटा कर्मबंधना कारण थकी, (उवसंतेके०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषे निवर्त्यो (सेनिक्खू के०) ते चारित्रि ॥५१॥ (जेइमेतसथावरापाणानवति के०) जे ए त्रस अने स्थावर प्राणीउने (तेणोसयंसमारनंति के०) तेनो पोते समारंन करे नही (णोवसेहिंसमारनावेति के०) बीजा पासे समारंन करावे नही (अन्नंसमारनंतंनसमणुजाणति के०) बीजा समारंन करता होय तेने अनुमोदे नही (इतिसे के०) एवो ते चारित्रि (महतो के०) महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरते के०) विशेषे निवर्त्यो (सेनिक्खूके०) ते चारित्रि ॥५२॥ (जेइमेकामनोगा के०) जे आ जगत् माहे काम नोगछे ते कहेछे (सचित्तावा के०) सचित्त (अचित्तावा के०)

इति) व्यक्तमिदं ये गृहस्था सावद्यादनुपस्थिताअनुद्यता । येपि शाक्यादय प्रव्रजिता स्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्यानुष्ठानपरत्वात्पुनरपि तादृशाएव गृहस्थतुल्याएव ॥ ४७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तडुपमर्दकव्यापारकर्तॄन् दर्शयन्नाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्नसंसारे । खलुवाक्यालंकारे । गृहमागार तत्र तिष्ठंतीति गृहस्थास्तेच सहारंनेण जीवोपमर्दकारिणा वर्तंते सारंनास्तथा सहपरिग्रहेण द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिना वर्ततइति स परिग्रहा । न केवलं तएवान्येपि संति विद्यते एके केचन श्रमणा शाक्यादयस्तेच पचनपाचनाद्यनुमते सारंनाद्दास्यादिपरिग्रहाच्च सपरिग्रहास्तथा ब्राह्मणाश्चैवविधाएव । एतेपा च सारंनकत्व स्पष्टतरं सूत्रेणैव दर्शयति । यइमे प्राग्वर्णितास्त्रसा स्थावराश्च प्राणिनस्तावत्स्वयमेवापरप्रेरिताएव समारंनते तडुपमर्दक व्यापार स्वतएव कुर्वंतीत्यर्थ । तथान्याश्च समारंनं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंते ॥ ४३ ॥ तदेवप्राणातिपातं प्रदर्श्य नोगाङ्गनूतं परिग्रह दर्शयितुमाह । यइमे प्रत्यक्षा कामप्रधानानोगा कामनोगा काम्यंतइति कामा स्त्रीगात्रपरिष्वंगादयोनुज्यतइति नोगा स्रक्चंदनवादित्रादयस्तएते सचित्ता सचेतनाअचेतनावा नवेयुस्तडुपादाननूतार्थास्ताश्च सचित्तानचित्तान्वाऽर्थास्ते कामनोगार्थिनोगृहस्थादयस्ततएव परिगृण्हति अन्येनच परिग्राहयंति अपरच परिगृण्हंतं समनुजानतइति ॥ ४४ ॥ साप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । इहास्मिन् जगति विद्यंते गृहस्थास्तथाविधश्रमणाब्राह्मणाश्च सारंना सपरिग्रहाइत्येव ज्ञात्वा सनिक्षुरेवमवधारयेदहमेवात्र खल्वनारंनोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादय सारंनादिगुणयुक्तास्तदेतन्निश्रयास्तदाश्रयेणच ब्रह्मचर्य श्रामण्यमाचरिष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहा सतोधर्माधारदेहप्रतिपालनार्थमाहारादिकृते सारंनपरिग्रहस्थनिश्रया प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थ । ननु च यदि तन्निश्रयापुनरपि विहर्तव्य किमर्थ ? तेत्यज्यतइति जाताशंक पृच्छति। कस्य हेतो केन कारणेन तदेतद्गृहस्थश्रमणब्राह्मणत्यजनमनिहितमित्याचार्योपि विदितानिप्रायउत्तर ददाति । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेपा तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्था सारंनादिदोपडुष्टा श्रमणाश्च केचन यथा पूर्वं गृहस्थानावे सारंना सपरिगृहास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव तइति । अधुनोनयपदाव्यनिचारित्वप्रतिपादनार्थमाह । यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याप्रतिपत्तिकाले तथा पूर्वमपि गृहस्थनावादावपीति । यदि वा कस्य हेतोस्तद्गृहस्थाद्याश्रयण क्रियते यतिनेत्याह । यथा पूर्वं प्रव्रज्यारंनकाले सर्वमेव निक्षादिकं गृहस्थायत्त तथा पश्चादप्यत. कथंनु नामानवद्यावृत्तिर्नविष्यतीत्यत साधुनिरनारंनै सारंनाश्रयणं विधेय । तथा चेते गृहस्थादय सारंना सपरिग्रहाश्च । तथा प्रत्यक्षेणैवोपलन्यंतइति दर्शयितुमाह । (अञ्जूइत्ति) व्यक्तमेतदेते गृहस्थादयोयदि वाजूइति प्रगुणेन न्यायेन स्वरसप्रव्रज्यासावद्यानु

जपियं इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ णो तं सयं करेति णोअसाणं कारवेति अन्नंपिकरे तं णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥५४॥ से भिक्खूजाणेज्जा असणंवा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुदिस्स पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं पामिच्च अछिज्ज अणिसठं अभिहडं आहट्टुदेसिय तंचेतियसियातं णो सयं भुजई णोअसेणं भुंजावेति अन्नपि भुंजतं णसमणुजाणइ इति से महतो अयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥ ५५ ॥

अर्थ–(सेभिक्खू के०) ते चारित्रिउ (जंपियं के०) जे (इमं के०) ए (संपराइयं कम्मकज्जइ के०) सांपरायिक एटले जे कर्मे करी संसार मांहे परिभ्रमण करियें ते सांपरायिक कर्म कहिए जे कारणे करी बधाय ते कारण प्रद्वेष निन्हव मात्सर्य अंतराय आशातना उपघातादिक ए कर्मबंधना कारणछे (णोतंसयंकरेति के०) ते स्वयं पोते नकरें (णोअसाणकारवेति के०) बीजा पासे करावे नही (अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइके०) बीजो करतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआयाणाउ के०) एवो ते मोहोटा कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिए के०) सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो ते भिक्षु कहिए ॥५४॥ हवेचारित्रियानी आहार विशुद्धि कहेछे (सेभिक्खूजाणेज्जा के०) ते चारित्रिउ एम जाणे ते कहेछे जे (असणवाके० एवभूत आहार अशन पान खादिम स्वादिम जाणे (अस्सिंपडियाए के०) साधुने निमित्ते कोइएक प्रकृति भद्रक श्रावक गृहस्थ ते (एगसाहम्मियं समुद्दिस्स के०) एक साधर्मिक साधुने समुद्देशीने (पाणाइ भूताइ जीवाइ सत्ताइ समारभ के०) प्राणी भूत जीव सत्वनो आरंभ करे मर्दन करे (समुद्दिस्स के०) तथा साधुने निमित्ते उद्देशीने (कीत के०) वेचातु लीधे (पामिच्च के०) उछीतु लावे (अछिज्ज के०) बीजानु पाडीजीए (अणिसट्ठ के०) बीजानी वस्तु होय ते तेना धणीने कह्या विना साधुने आपे (अभिहडआहट्टुदेसियं के०) ग्रामादिक थकी साधुने सन्मुख लावे एवो आहार आधाकर्मादिक दोषें करी दुष्ट (तचेतियंसिया के०) ते आहार साधुने दीधो अने साधुए पण अजाणता लीधो परंतु एवो दोष दुष्ट आहार जाणीने (तेणोसयंभुजइ के०) ते आहार साधु पोते जमे नही (णेवअसेणंभुंजावेति के०) तथा बीजाने [illegible] जमाडे नही अने (अन्नंपिभुजतणसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ एवं [illegible] होए तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआ

॥टीका–सांप्रतमुपसंहरति। (जेखलुइत्यादि) यइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि सारंजसपरि ग्रहत्वान्यामुनान्यामपि पापान्युपाददते। यदिवा राग द्वेषान्यामुनान्यामपि पापान्युपाददते यदिवा गृहस्थप्रव्रज्यापर्यायान्यामुनान्या पापानि कुर्वतइत्येव सख्याय परिज्ञाय द्वयोरप्येत योरारंनपरिग्रहयोराग द्वेषयोर्वा दृश्यमानोनुपलन्यमानोयदिवा रागद्वेषयोर्यावत्तावन्नावो तयोरादिश्यमाने राग द्वेषाजावव्रत्तित्वेनापदिश्यमान सन्नित्येवन्नूतोनिकुणशीलोऽनवद्या हारनोजी सत्संयमानुष्ठाने रीयेत प्रवर्तेत। एतडुक्त नवति। ये इमे जातिसयोगायश्चायं ध नधान्यादिक परिग्रहोयच्चेदं हस्तपादाद्यवयवयुक्तं शरीर यच्च सदायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वम शाश्वतमनित्यं स्वप्नेंड्जालसदृशमसार। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंना सपरिग्रहाश्चै तत्सर्व परिज्ञाय सत्संयमानुष्ठाने निक्कुरीयेतेति स्थित॥ ४६ ॥ सपुनरप्यहमविकृतमेवार्थ विशेषिततर सोपपत्तिकं ब्रवीमीति। तत्र प्रज्ञापकापेक्षया प्राच्यादिकायादिशोन्यतरस्या· स मायात सनिकुर्द्वयोरप्यंतयोरदृश्यमानतया सत्संयमे रीयमाण सन् एवमनंतरोक्तेन प्रका रेण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिज्ञातकर्मा नवति। पुनरप्येवमिति परि ज्ञातकर्मत्वा द्व्यपेतकर्मा नवति अपूर्वस्याबंधकोनवतीत्यर्थः। पुनरेवमित्यवधकयोगनिरो धोपायत पूर्वोपचितस्य कर्मणोविशेषेणांतकारकोनवतीत्येतच्च तीर्थकरगणधरादिनि र्ज्ञातज्ञेयैर्व्याख्यातमिति ॥ ४७ ॥

तत्र खलु नगवंता छजीवनिकायहेऊ पसत्ता तंजहा पुढवीकाए जाव त सकाए से जहा णामए मम अस्साय दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलू णवा कवालेणवा आउट्टिज्जमाणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्स वा ताडिज्जमाणस्सवा परियाविज्जमाणस्सवा किलाविज्जमाणस्सवा उद्द विज्जमाणस्सवा जावलोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्खं नयंपडिसं वेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वेनूता सव्वेपाणा सव्वेसत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा ताडिज्ज माणावा परियाविज्जमाणावा किलाविज्जमाणावा उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्खं नय पडिसवेदेति एव नच्चा स व्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा॥ ४८ ॥ सेवेमि जेयअतिता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा मि अरिहंता नगवंता सव्वे ते एवमाइक्खंति एवंनासंति एवंपण्णवेंति एवं

ए तत्र निक्खू परकडं परणिट्ठितं नुग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइयं सत्थ परिणामियं अविहिंसिय एसियं वेसिय सामुदाणियं पन्नमसणं कारण द्वा पमाणजुत्तं अक्खोवजणवणलेवणनूय संजमजायामायावत्तियं बिलमिव पन्नगनूतेण अप्पाणेणं आहारं आहारेज्जा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणं लेणकाले सयणं सयणकाले ॥ ५६ ॥

अर्थ-(सेनिक्खू के०) ते चारित्रिउं (अह के०) हवे (पुणेवजाणेज्जा के०) व ली एवु जाणे ते कहेछे. (तंविज्जतितेसिंपरक्कमे के०) ते गृहस्थने एवो पराक्रम आ हार करवानोछे के जे पराक्रमे करी (जस्सट्ठातेचेइयंसिया के०) जेने अर्थे ते आहार नीपजाव्यो होए (तंजहा के०) ते कहेछे (अप्पणोसेपुत्ताण के०) पोताने अर्थे त था पुत्रने अर्थे (धूयाण के०) दीकरीने अर्थे (सुण्हाणं के०) ठोकरानी वहुने अ र्थे (धातीण के०) धाव्यने अर्थे (णातीण के०) ज्ञातीने अर्थे (राईण के०) राजा ने निमित्तें (दासाणं के०) दासने अर्थे (दासीण के०) दासीने अर्थे (कम्मकराण के०) कर्म करने अर्थे (कम्मकरीण के०) परोणाने अर्थे (आदेसाणंपुढोपेहेणाए सामासाए के०) अन्यत्र स्थानके बीजाने मोकलवाने अर्थे नीपजाव्याछे रात्रे जमवाने निमित्तें तथा लोकोक्तिए व्यालुने अर्थे (पातरासाए के०) कलेवा निमित्ते (स न्निहिसचएकज्जति के०) एप्रकारे आहारनो सनिधि सचय करे एटले दही उद नादिक विनाशी द्रव्य, अने हरडे शर्करादिक अविनाशी द्रव्यनो संचय करे (इहमेगेसि माणवाणनोयणाए के०) आ मनुष्य लोक माहे कोइएक मनुष्यने एवो आहार नोज नने अर्थे थाय (तत्थनिक्खू के०) त्या चारित्रिउं (परकड के०) परनो करेलो (पर णिट्ठितं के०) परनिष्ठित एटले अन्यने अर्थे नीपजाव्यो (नुग्गमुप्पायणेसणासुद्धं के०) उद्गमना सोल दोषने दातार अजाणतो लगावे, अने उत्पादनना सोल दोष ते साधु लगा वे, वली एषणाविशुद्धना दश दोष रहित एटले सर्वमली बेंतालीश दोष रहित (सत्थाइयं के०) शस्त्रातीत एटले अग्न्यादिकें करी अचित्त कीधो (सत्थपरिणामियं के०) शस्त्रें क री वर्ण गंध रसादिके करी परिणाम्यो (अविहिंसियं) निर्जीव एटले जीव रहित तेपण (एसिय के०) गवेष्यु निक्षाचर्या करता पाम्यो तेपण वली (वेसियं के०) नि केवलसाधुने वेषे प्राप्त थयो तेपण वली (सामुदाणियं के०) माधुकरी वृत्तिए घणा घ र फरता प्राप्त थयो तथा (पन्नमसणं के०) गीतार्थनो आणेलो, एवो आहार अशना दिक तेवली (कारणट्ठा के०) वैयावच्चादिक कारणने अर्थे तेवली (पमाणजुत्तं के०) प्रमाणयुक्त एटले प्रमाणोपेत आहार जाणवो तेवली वर्णबलादिकने अर्थे नही किंतु

के०) किलामणा करता थका, (उद्दविज्जमाणावा के०) उद्वेग करता थका, तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका, (जावलोमुक्खणणमायमवि के०) यावत् एक रोम उखेडवा मात्र एवु पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण ते थकी पण, (दुक्खं जयंपडिसवेदेंति के०) ते जीवो दु ख अने भय एवुंज वेदे अनुभवे एटले जेवु दु ख मने वेदवु पडे, तेवु दु ख सर्व जीवने वेदवु पडे एम सर्व जीवोने पोता सरखु दु ख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेछे (एवनच्चा के०) एवु जाणीने (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव अने सर्व सत्वने (णहंतवा के०) हणवा नही, (णअज्जावेयव्वा के०) दंभादिके करी ताडवा नही, (णपरिघेतव्वा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा नही, एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठे कोइ कार्यने विषे प्रेरवा नही (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नही (किलविघमाणवा णउद्दवेयवा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नही, तथा काया थकी रहित करवा नही ॥४७॥ हवे सुधर्म स्वामी कहेछे (सेवेमिके०) ए वचन जे हुं कहुं छुं, ते पोतानी मतिये नथी कहेतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाछे, ते देखाडेछे, (जेयअतीता के०) जे अतीत कालें तीर्थंकर थया, (जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्त्तमान कालें तीर्थंकर वर्त्तेछे, (जेयआगमिस्सामि के०) जे आगमिक कालें थशे ते (अरिहंत के०) पूजा सत्कार योग्य (भगवता के०) ज्ञानवंतआश्चर्यादिक गुणे करी संयुक्त एवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहंत भगवंत ते (एवमाइक्खति के०) एम सामान्य थकी कहेछे (एवभासति के०) एम अर्धमागधीभाषाये भाखेछे (एवपण्णवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेछे (एवपरूवेंति के०) एम सम्यक् प्रकारे प्ररूपे छे के, (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्वे प्राणीथी मांडीने यावत् सर्व सत्व ने (णहतवा के०) हणवा नही, दंभादिके करी ताडवा नही, वली बलात्कारें दासनी पेठें परिग्रहवा नही, शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने, परितापवा नही उपद्रववा नही, जीव काया थकी रहित करवा नही, (एसधम्मेधुवे के०) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण दुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोछे तोके, ध्रुव एटले निश्चल (णीतिए के०) नित्य सदा सर्वकालछे, कोइ काले जेनो क्षय नथी (सासएके०) शाश्वतछे, तेने (समिच्चके०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने ? तो के, (लोग के०) चौद रज्वात्मक लोक एटलें षट् जीव निकायरूप लोक तेने दु खरूप समुद्रमांहे पड्यो देखीने (खेयन्नेहिं के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोना दु खोना जाणनार, एवा श्रीतीर्थंकर भगवते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीवदयालक्षण धर्म भाख्यो. (एव के०) ए प्रकारे जाणीने (सेभिक्खूविरते के०) ते साधु निवर्त्यो (पाणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी, तेमज मृषा

परिणामितमविहिंसितं सम्यक् निर्जीवमित्यर्थः । एषित भिक्षाचर्याविधिप्राप्त वेषिकं केवलसाधुवेषप्राप्तं नपुनर्निमित्तादिनोत्पादित सामुदानिक मधुकरवृत्त्यास्तोक स्तोकं गृहीत प्रज्ञस्येद प्राज्ञ गीतार्थोपात्तमशनं तदपि वेदनावैयावृत्त्यादिकारणे सति । यदुक्त । वेयण १ वेयावच्चे, २ इरियछाएय ३ संजमछाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ छठ्ठं पुण धम्मचिंताए ।६। एषु कारणेष्वाहार गृह्णीयात्। तदपि प्रमाणयुक्त नातिमात्रं । यदुक्तं । अद्धम सणस्स सवंजणस्स कुज्जादवस्सदोन्नाए ॥ वायपवियारणछा, छन्नाग ऊणगं कुज्जाइति ॥१॥ अक्षस्य शकटस्य उपाञ्जनमभ्यंग व्रणस्यच लेपनं तदुपमयाऽऽहारमाहरेत् । यत । अप्लंगे णवलगम णतरऽविणाउजो साहू ॥ सो रागदोसरहिउं, मत्ताइविहीइ तंसेवे ॥१॥ एतदेवाह । संयमयात्राया मात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तया । तदपि बिलप्रवेशपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । कोर्थ । यथा बिलं प्रविशन् सर्पस्तूर्णं प्रविशति एव साधुनापि स्वादमगृह्णताऽऽहार. शीघ्र प्रवेशयितव्य । अथवा सर्पेणेवाहारोऽलब्धास्वाद नक्षणीयइति । तद्यथा । अन्नमन्नकाले सूत्रार्थपौरुषीकरणोत्तरकालं पानक पानकाले न तृषितोभुंजीत न बुभुक्षित पानक पिबेत् । वस्त्र वस्त्रकाले ग्राह्य लयन गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्वव्यवश्यमुपादानमन्यदानियम. । शयन संस्तारक शयनकाले तत्रागीतार्थाना प्रहरद्वय निद्राविमोक्षोगीतार्थाना तु प्रहरमेकमिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका–पुनरेव जानीयादित्यादि । तद्यथा । गृह विद्यते येषां तेषा गृहस्थानामेवंभूतोवक्ष्यमाण पराक्रम सामर्थ्यमाहारनिवर्तन प्रत्यारम्भस्तेनच यदाहारजात निवर्तित यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तमिति दत्त निष्पादित स्यान्नवेत् । यत्कृते च निष्पादित तत्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । आत्मन स्वनिमित्तमेवाहारादिपाकनिर्वर्तन कृतमिति तथा पुत्रार्थं यावदादेशायादिश्यते यस्मिन्नागते सत्रमेण परिजनस्तदातदाशनदानादिव्यापार सआदेशक. प्राघूर्णकस्तदर्थंवा पृथक् प्रग्रहणार्थं विशिष्टाहारनिर्वर्तन क्रियते तथा श्यामा रात्रिस्तस्यामशनमाश· श्यामाशस्तदर्थं प्रातरशन प्रातराश प्रत्यूषस्येव भोजन तदर्थ सन्निधि सनिचयोविशिष्टाहारसंग्रहस्य सचय· क्रियते । अनेन चैतत्प्रतिपादितं भवति। बालवृद्धग्लानादिनिमित्त प्रत्यूषादिसमयेष्वपि भिक्षाटन क्रियते तस्य चायमभिहित सभव । सच (सनिहिति) सचयइहैकेषा मानवाना भोजनार्थं भवति तत्र भिक्षुरुद्यतविहारी परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत् । अत्र च परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोभगा । तद्यथा । तस्य कृत तस्यैव च निष्ठित तस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमन्यस्य कृतं तस्यैव निष्ठितमन्यस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमित्ययं चतुर्थोभग सूत्रे

याह् । (तत्रखलुइत्यादि) तत्रेति कर्मबंधप्रस्तावे । खलुवाक्यालंकारे । भगवतोत्पन्न ज्ञानेन तीर्थकृता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसका योपीति । तेषांच पीड्यमानानां यथा दुःखमुत्पद्यते तथा स्वसंवित्तिसिद्धेन दृष्टांतेन द र्शयितुमाह् । तद्यथाच मे ममासातं दुःखं वक्ष्यमाणै प्रकारैरुत्पद्यते तथान्येषाममपीति तद्यथा । दंडेनास्थ्ना मुष्टिना लेलुनाळोष्टेन कपालेन कर्परेण आकोट्यमानस्य सकोच्यमा नस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्तर्जमानस्यांगुल्यादिनिस्ताड्यमानस्य कुड्यदावभिघातादिना परितप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण वा परिक्लाम्यमानस्य तथापद्राव्यमाणस्य मार्यमा णस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकर दुःख भयच यन्मयि क्रियते तत्सर्वमह् सवेद यामीत्येव जानीहि । यथा सर्वे प्राणाजीवाभूतानि सत्वाइत्येते एकार्थिका कथंचिद्भेद माश्रित्य व्याख्येयास्तत्रैतेषा दंडादिना कुट्यमानाना यावल्लोमोत्खननमात्रमपि दुःखं प्रतिसवेदयतामेतच्च हिंसाकर दुःखं भय चोत्पन्नं ते सर्वे प्राणिनः प्रतिसवेदयति सा क्षादनुभवतीत्येवमात्मोपमया पीड्यमानाना जतूनां यतोदुःखमुत्पद्यतेऽत सर्वे प्राणि नोन हंतव्यान व्यापादयितव्याबलात्कारेण व्यापारे न प्रयोक्तव्यास्तथा न परिग्राह्यान परितापयितव्यानापद्रावयितव्या ॥ ४८ ॥ सोहं ब्रवीम्येतन्न स्वमनीषिकतया किंतु सर्वे तीर्थकराज्ञयेति दर्शयति (येअतीएइत्यादि) ये केचन तीर्थकृतऋषभादयोऽतीतायेच विदेहेषु वर्तमाना सीमंधरादयोये चागामिन्यामुत्सर्पिण्यां भविष्यति पद्मनाभादयोऽर्हं तोऽमरासुरनरेश्वराणा पूजार्हान्भगवतऐश्वर्यादिगुणकलापोपेता सर्वेप्येव ते व्यक्तवाचा आख्याति प्रतिपादयंति । एव सदेवमनुजाया पर्षदि भाषते स्वतएव न यथा बौद्धाना बोधिसत्वप्रभावात् कुड्यादिदेशनतइत्येव प्रकर्षेण ज्ञापयति हेतूदाहरणादिभि । एव प्ररूपयंति नामादिभिर्यथा सर्वे प्राणान हंतव्याइत्यादि । एषधर्मे प्राणिरक्षणलक्षण प्राग्व्यावर्णितस्वरूपोध्रुवोऽवश्यंभावी नित्य क्षांत्यादिरूपेण शाश्वतइत्येव चाभिसमेत्य केवलज्ञानेनावलोक्य, लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैस्तीर्थकृद्भि प्रवेदित कथितइत्ये व सर्वं ज्ञात्वा, सभिक्षुर्विदितवेद्योविरत प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहादिति । एतदेव दर्शयितुमाह् । (णोदंतइत्यादि) इह पूर्वोक्तमहाव्रतपालनार्थमनेनोत्तरगुणा प्रतिपा द्यते । तत्रापरिग्रहोनिष्किंचन ससाधुर्नो दंतप्रक्षालनेन कदंबादिकाष्ठेन दंतान् प्रक्षाल येत्तथा नो अंजन सौवीरादिकं विभूषार्थमक्ष्णोर्दद्यात्तथा नो वमनविरेचनादिका क्रि याः कुर्यात्तथा नो शरीरस्य स्वीयवस्त्राणां वा धूपनं कुर्यान्नापि कासाद्यपनयनार्थं त धू मं योगवर्तिनिष्पादितमापिवेदिति ॥ ४९ ॥

सेभिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाए अलोहे उवस

ते परिनिवुडे णोआसंसं पुरतोकुज्जा इमेणमे दिट्ठेणवा सुएणवा मुएण

अर्थ-(तेनिरकूके०) ते चारित्रिउं आहार, उपधी, शयन, स्वाध्याय, अने ध्यानादि कना (मायन्नेके०) मात्रा एटले विधिनो जाण उतो (अन्नयरदिसंअणुदिसंवाके०) अन्य दिशि अथवा विदिशि प्रत्यें (पडिवन्ने के०) आश्रित होतो एटले अंगीकार क रतो उतो (धम्मंआइरके के०) धर्म कहे जे धर्म जेने करवा योग्य होय तेने तेवो उ पदेश आपे (विनए के०) धर्म अने अधर्मना फल जुदा जुदा करी देखाडे (किट्टे के०) धर्मनी कीर्त्ति करे, प्रशंसा करे वली परना हितने अर्थे साधु चारित्रिउं (उवट्टि एसुवा के०) उपस्थित एटले उद्यमवत एवा शिष्यने विषे तथा (अणुवट्टिएसुवा के०) अनुपस्थित एटले कौतुकार्थी शिष्यने विषे (सुस्सूसमाणेसु के०) सांजलवा वांउताने विषे पोताना आत्माना तथा परना हित जणी (पवेदए के०) धर्म कहे. जे धर्म कहे ते देखाडेले. (संतिं के०) उपशम ते कषायनुं जीपवुं तथा (विरतिं के०) विरति ते प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्तवु एवो धर्म प्ररूपे (उवसमंके०) इंद्रिय तथा नोइंद्रि यनु उपशमाववु एटले राग द्वेषनो अजाव करवो (निव्वाण के०) तथा निरवाणते सर्व जीवोने समाधिरूप एटले मोक्ष कहे तथा (सोयवियं के०) शौचते व्रतनु निर्म ल पणु एटले जेम व्रतने मल नलागे तेवीरीते धर्म कहे (अज्जवियं के०) आर्जव एटले सरलता मायानो अजाव (मद्दवियं के०) कोमल मृडुजावयुक्त तेवा विधिये धर्म कहे (लाघवियं के०) तथा कर्म हलवा थाय तेवा विधिये धर्म कहे हवे सर्व शुजानुष्ठाननु मूल कारण कहेले (अणतिवातियं के०) अहिं सा आदरवानो उपदेश आपे ते कोनी अहिंसा? ते कहेले (सव्वेसिंपाणाणंके०) सर्व प्राणीनी (सव्वेसिनूताण के०) सर्वनूत सर्वजीव (जावसत्ताणं के०) यावत् सर्व स त्वनी अहिंसाने (अणुवाइकिट्टिएधम्म के०) विचारीने धर्मोपदेश आपे एटले समस्त जीवमात्रनी जे प्रकारे हिंसा नथाय ते प्रकारे धर्म कहे ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका-आहारादिमात्रज्ञ स्तनिक्षु अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नोधर्ममा ख्यापयेत् कथयेत् यथेन साधुना गृहस्थेन वा विधेयं तद्यथायोगं विनजेत् धर्मफलानि कीर्तयेत् उपस्थितेपूद्यतेषु अनुपस्थितेषु कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतु प्रवृत्तेषु प्रवेदयेत् । यत्कथयेत्तदाह । शांति क्षमा तत्प्रधाना विरतिस्तां कथयेत् । उपशममि इयिदम निर्वाण मोक्षं (सोयवियं) शौच जावशौचमित्यर्थः । आर्जव निर्मायत्व मार्द व मृडुजावोविनीतत्वमितिनाच । लाघव कर्मलघुत्वक्रिया । अतिपातोहिंसा सविद्यते यस्यसोतिपातिकस्तन्निषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषा प्राणिनां यावत्सत्वाना धर्ममनुविवि च्य विचित्य, कीर्तयेत् । कोर्थ । सर्वप्राणिरक्षानूतं धर्मं कथयेदित्यर्थः ॥ ५३ ॥

थाऽमुना सुचरितेन तपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना यात्रामात्रावृत्तिना धर्मेण इतोऽस्माद्भवात् च्युतस्य प्रेत्य, जन्मांतरे देव स्यामह तत्रस्थस्यच कामभोगावशवर्तिन स्यु'। सिद्धोवाऽदु ख अशुभ शुभाशुभकर्मापेक्षया एवभूतोहं स्यामिति एवमाशसा न विदध्यात् । अत्रापि तपश्चरणे सत्यपि डुर्ध्यानसद्भावात्कदाचित्सिद्धिर्मुक्तिरणिमादिसिद्धिर्वा स्यात्कदाचिच्च न स्यात् एव सति साधोराशंसां कर्तुं न युक्तेति इहलोकार्थं परलोकार्थं कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

॥ टीका–सांप्रतं मूलगुणोत्तरगुणप्रस्तावमुपसंजिघृक्षुराह । (सेनिक्खूइत्यादि) समूलोत्तरगुणव्यवस्थितोभिक्षुर्नास्य क्रिया सावद्या विद्यतेइत्यक्रिय संवृतात्मकतया सापरायिककर्मबंधकइत्यर्थ । कुतएवभूतोयत प्राणिनामलूपकोऽहिंसकोऽनुपमर्दकइत्यर्थ । तथा न विद्यतेक्रोधोयस्येत्यक्रोधएवममानोऽमाय्यलोभ कषायोपशमाच्चोपशात शीतीभूतस्तडुपशमाच्च परिनिर्वृतइव परिनिर्वृत । एव तावदैहिकेभ्य कामभोगेभ्योविरत पारलौकिकेभ्योपि विरतइति दर्शयति ।(नोआससंइत्यादि) नो नैवाशंसा पुरस्कृत्य ममानेन विशिष्टतपसा जन्मांतरे कामभोगावाप्तिर्भविष्यतीति।एवभूतामाशंसा न पुरस्कुर्यादित्येतदेव दर्शयितुमाह । (इमेणमेइत्यादि) अस्मिन्नेव जन्मन्यमुना विशिष्टतपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्पोपध्यादिना पारलौकिकेन च श्रुतेनाईकधम्मिल्लब्रह्मदत्तादीनां तथा (सुणणवत्ति) मननंज्ञानं जातिस्मरणादिना ज्ञानेन तथाऽचार्यादे सकाशाद्विज्ञानेनावगतेन ममापि विशिष्ट भविष्यतीत्येव नाशसां विदध्यात् । तथाऽमुना सुचरित्रतपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना वा यात्रावृत्तिना धर्मेणानुष्ठितेनातोस्माद्भवाच्चुतस्य प्रेत्य जन्मातरे स्यामह देवस्तत्रस्थस्यच मे वशवर्तिन कामभोगाभवेयुरशेषकर्माऽविमुतोवा सिद्धोऽदु खोशुभाशुभकर्मप्रकृत्यपेक्षयेत्येव भूतोहं स्यामागामिकालइत्येवमाशसा न विदध्यादिति । यदिवा विशिष्टतपश्चरणादिनाऽऽगामिनि काले ममाणिमा लघिमेत्यादिकाऽष्टप्रकारा सिद्धिर्भविष्यतीत्यनया च सिद्ध्या सिद्धोहमडु खोऽशुभोवाम ध्यस्यइत्येवरूपामाशंसां न कुर्यात् । तदकरणे च कारणमाह । (एत्तविइत्यादि) अत्रापि विशिष्टतपश्चरणे सत्यपि कुतश्चिन्निमित्ताडुष्प्रणिधानसद्भावे सति कदाचित्सिद्धि स्यात्कदाचिच्च नैवाशेषकर्मक्षयलक्षणा सिद्धि स्यात् । तथाचोक्त । जे जत्तियाचहेऊ भविस्स ते चे व तत्तिया मोस्केइत्यादि । यदिवाऽत्राप्यणिमाद्यष्टगुणकारणे तपश्चरणादौ सिद्धि स्यात्कदाचिच्च न स्यात् तद्विपर्ययोपि वा स्यादित्येव व्यवस्थिते प्रेक्षापूर्वकारिण। कथमाशसा कर्तु युज्यते इति । सिद्धिश्चाष्टप्रकारेयं । अणिमा १ गरिमा २ लघिमा ३ महिमा ४ प्राप्ति ५ प्राकाम्यं ६ ईशित्व ७ वशित्व ८ यत्र कामावसायित्वमिति । तदेवमैहिकार्थमामुष्मिकार्थं च कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

म्ममाइक्केज्जा के०) पाणीने हेतुये पण धर्म नकहे एवो संयति होए (णोवत्थस्सहे उधम्ममाइक्केज्जा के०) तथा वस्त्रने हेतुये धर्म न कहे (णोलेणस्सहेउ धम्ममाइक्केज्जा के०) उपाश्रय वस्ति पामवाने हेतुये धर्म न कहे (णोसयणस्सहेउधम्ममाइक्केज्जा के०) तथा पाट पाटलादिक सयनने हेतुये धर्म नकहे (णोअन्नेसिंविरूवरूवाणंकाम नोगाणहेउ धम्ममाइक्केज्जा के०) नाना प्रकारना कामनोगने हेतुयें धर्म नकहे (अ गिलाएधम्ममाइक्केज्जा के०) अग्लान पणे धर्मकहे एटले पूठ्यो थको धर्म कहेवानो प्रमाद नकरे (नन्नत्थकम्मनिज्जरठाएधम्ममाइक्केज्जा के०) एक कर्मनिर्ज्जरानु कारण टाली, अनेरे अर्थे धर्म नकहे ॥५८॥ हवे एवी रीते धर्म कहेवा थकी जे फल थाय ते देखा डेठे (इहखलुतस्सनिरकुस्स के०) आ जगत् मांहे खलु इति वाक्यालकारे ते गुणवं त साधुने (अतिए के०) समीपे (धम्मंसोच्चा के०) धर्म सानलीने (णिसम्मउ ठाणेण के०) सम्यक् हृदयने विषे धारण करीने, संयमने विषे सावधान थइने, (उ ठायवीरा के०) धर्ममार्गे प्रवर्त्तता वीर एटले कर्म विदारवाने समर्थ (अस्सिधम्मे समुठियाके०) एवो धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप तेने विषे पहोता (जेत स्सनिरकु के०) जे ते साधुने समीपें धर्म सांनलीने ते साधु केवाठे तोके सम्यक् हृ दय धरीने सयमने विषे सावधान थइ धर्म मार्गे प्रवर्त्तता कर्मविदारवाने समर्थ ए स म्यक् ज्ञानादिक ने विषे सावधान थया (तेएवसव्वोवगता के०) ते एम सर्व कर्म खपावीने मोक्षे पहोता (तेएवसव्वोविरता के०) ते एम सर्व अढारे पापस्थानक थकी निवर्त्त्या (तेएवसव्वोवसता के०) ते एम सर्व प्रकारे उपशात एटले कषा य जीपीने (तेएवसव्वताएपरिनिव्वुमे के०) ते एम सर्व प्रकारें समर्थ पणे करीने शी तलीनूत थइ मोक्षे पहोता (त्तिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे ठे के साधुने समीपे धर्म सानव्यानु फल मे कह्यु ते जेवीरीते श्रीनगवंत श्रीमहावीर देव पासेथी मे सानव्युठे तेवीरीते तमने कह्यु ॥ ५९ ॥

॥ दीपिका–सनिक्षुर्धर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्धर्ममाचक्षीत । तथा पानवस्त्रलयनशय ननिमित्त न धर्ममाख्याति । विरूपरूपाणां शुनाशुनाना कामनोगानां हेतोर्न धर्ममाख्या ति । अग्लानतया धर्ममाख्याति । निर्जरा विनाऽन्यकार्यार्थे न धर्मं वदेत् ॥५८॥ अथोप सहारमाह । इह जगति खलु तस्य निक्षोरंतिके समीपे धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्य गुबानेनोत्थाय वीरा समर्थाये ते चैवनूता सर्वस्मिन् मोक्षकारणे उपगता प्राप्ता स र्वोपगतास्तेचैव सर्वेन्य पापस्थानेन्यउपरतानिवृत्ता सर्वोपरतास्तेचैव सर्वोपशांता

अचित्त (तेणोसयंपरिगिएहृति के०) ते कामनोगने पोते परिग्रहे नही अंगीकार करे नही (णोअन्नेणपरिगिएहावेति के०) बीजा पासे परिग्रहावे नही (अन्नंपरिगिएहृत पि एसमणुजाणइ के०) बीजो परिग्रहतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहंतो के०) एवोते चारित्रिउं महोटा (आयाणाउं के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसते के०) उपशम्यो (उवछिए के०) सावधान थयो (पडिविरए के०) विशेषे निवर्त्त्यो (सेनिरकू के०) ते चारित्रिउं ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका–अथ रागद्वेषानावमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिकु शब्देषु शुनाशुनेष्व मूर्छितोऽद्विष्टश्च । एव रूपगंधरसस्पर्शेष्वपि वाच्यं । तथा विरत क्रोधमानमायालोनेन्य स्तथा प्रेमतोदोषात् कलहादन्याख्यानात् पैशुन्यात् परपरिवादात् अरतितोरतितोमाया मृषातोमिथ्यादर्शनशल्याद्विरत सनिकुर्योमहत कर्मोपादानाडुपशातसयमे उपस्थित सावद्येन्य. प्रतिविरत सनिकु स्यात् ॥५१॥ येइमे त्रसा स्थावरा प्राणिनोनवति तान् स्वय न समारनते नैवान्यै समारनयंते अन्यं समारनमाण न समनुजानाति इत्येव म हत कर्मोपादानाडुपशात प्रतिविरत सनिकु·स्यात् ॥५२॥ येमी कामनोगा सचित्ताश्च चित्तावा तान् स्वयं न परिगृएहाति नान्येन परिग्राहयति अन्यं परिगृएहत न समनुजा नाति इत्येव कर्मोपादानाद्विरत सनिकु स्यात् ॥ ५३ ॥

॥ टीका–साप्रतमनुकूलप्रतिकूलेषु शब्दादिषु विषयेषु रागद्वेषानाव दर्शयितुमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिकु सर्वाशसारहितोवेणुवीणादिषु शब्देष्वमूर्छितोऽगृद्धोऽनव्युप पन्नस्तथा रासनादिशब्देषु कर्कशेषु द्विष्ट एव रूपरसगंधस्पर्शेष्वपि वाच्यमिति । पुनरपि सामान्येन क्रोधाद्युपशमं दर्शयितुमाह (विरएकोहाउइत्यादि) क्रोधमानमायालोनेन्यो विरतइत्यादिसुगम । यावदिति । (सेमहयाआयाणाउवसतेउवछिएपडिविरएसेनिरकू त्ति) सनिकुर्नवति योमहत कर्मोपादानाडुपशात. सन्स्वयमेवोपस्थित सर्वपापेन्यश्च विर तइति ॥५१॥ एतदेवमहत कर्मोपादनाद्विरमणं साक्षाद्दर्शयितुमाह । (जेइमेइत्यादि) ये केचन त्रसा स्थावराश्च प्राणिनोनवति तान् सर्वानपि नोनैव स्वयं सत्साधव समारनं ते प्राण्युपमर्दकमारनंतइतियावत् । तथा नान्यै समारंनयंते नचान्यान् समारनमाणान् समनुजानतइत्येव महत· कर्मोपादानाडुपशात प्रतिविरतोनिकुर्नवतीति ॥५२॥ सांप्रतं सामान्यत· सापरायिककर्मोपादानकामनोगनिवृत्तिमधिकृत्याह । (जेइमेइत्यादि) ये केच नामी काम्यंतइति कामाशुज्यंत इतिनोगास्तेच सचित्ताअचित्तावा नवेयुस्ताश्च नस्वतो गृएहीयान्नाप्यन्येन ग्राहयेत् नाप्यपर गृएहतं समनुजानीयादित्येव कर्मोपादानाद्विरतो निकुर्नवतीति ॥ ५३ ॥

लें न पहोतो. परमार्थथकी प्रधान पौंमरीक कमल समान चक्रवर्त्यादिक पुरुष जाणवा तेनी प्राप्ति केवलज्ञानीने होय, अथवा न होय किंतु केवलज्ञान विना पण चारित्रिउ कहे वाय तेकारणे पत्ते अपत्ते एवुं स्याद्वाद पद कह्यु (एवसेभिरक् परिसायकम्मेपरिसायसगे के०) एरीते ते साधुयें परिज्ञायें करी जाण्यु अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी पच्चरव्यु छे एवा कर्मबंधना कारणने तथा बाह्याभ्यंतर सगने जेणे वली (परिसायगेहवासेके०) परिज्ञात गृहवास जेणे असार करी जाण्यो तथा (उवसंते के०) इंद्रिय अने नोइंद्रिय जेणे उप शमाव्या (समिएके०) पांच समितिए समित (सहिएके०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित (सयाजएके०) सर्वकाल सयत यत्नवत (सेववयणिज्जके०) एवो ते चारित्रिउ सर्व गुणेयुक्त होय ते केवो होय? (तजहा के०) ते कहेछे (समणेतिवा के०) श्रमण तप स्वी सममन एटले शत्रु मित्र उपर समभाव होय ते श्रमण जाणवो (माहणेतिवाके०) कोइपण प्राणीमात्रने महणो एवो जेनो उपदेश होय तेने माहण ब्राह्मण कहिए (खते तिवा के०) क्षमावत (दतेतिवाके०) दात एटले इंद्रियोनो दमनार (गुत्तेतिवा के०) त्रणगुप्ते गुप्तो (मुत्तेतिवा के०) मुक्ति एटले निर्लोभी (इसीतिवा के०) ऋषी विशिष्ट तपश्चर्या सहित जीवनो रक्षा करनार (मुणीतिवा के०) जगत्नी त्रिकालावस्थाना स्व रूपनो ज्ञाता (कतीतिवा के०) परमार्थ थकी पंमित जेनु सर्व कोइ कीर्त्तन करे तेजा णवो (विऊतिवा के०) रूडी विद्यासहित विद्वान् सद्विद्योपेत तथा (भिरकूतिवा के०) निरवद्याहारनो लेनार (लूहेतिवा के०) लूक्ष अतप्रात आहारी (तीरठीति वा के०) तथा ससारनो तीररूपजे मोक्ष तेनो अर्थी (चरणकरणपारविउ के०) च रण एटले मूलगुण, अने करण एटले उत्तरगुण, तेनो पारपर्यंत गमन जाणे एटले च रण करनो पारगामि जाणवो तेमाटे चरणकरण पारविउ एम कह्यु (इतिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के ए वचन हुं श्रीतीर्थंकरना वचनने अनुसा रे कहुवु एरीतें श्री सूयगडागसूत्रना बीजा श्रुतस्कधने विषे प्रथम पौमरीकनामा अध्य यननो बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६० ॥

॥ दीपिका–एव पूर्वोक्तगुण सनिकुर्धर्मार्थी धर्मवित् नियाग सयमोमोक्षोवा तं प्रतिपन्न सचंवभूत पचमपुरुपस्त वाऽश्रित्य तद्यथेद प्राग्दर्शित तत्सर्वमुक्त। सच प्राप्तो अप्राप्तोवा स्यात् मतिश्रुतावधिमन पर्यायज्ञानैर्व्यस्तै समस्तैर्वा युत सचैवभूतोभिक्षु परिज्ञातकर्मविपाक परिज्ञातसगस्त्यक्तसबध परिज्ञातोभि सारतया गृहवासोयेन सतथा उपशातोदातेंद्रिय समित समितिभि सह हितेन वर्ततेय ससहित सदायत सयत

याणाउंत्तवसंतेउत्तचिए पडिविरतेके०) एरीते ते महोटा कर्मबंधना कारण एवा जे श्रा हारना दोष ते थकी उपशम्यो सावधान थयो विशेषे निवर्त्यो तेने साधु कहिए ॥५५॥

॥ दीपिका–यदपीदं सांपरायिक कर्म तच्च प्रद्वेषनिन्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातै र्बध्यते तत्कर्म कारणवा न कृतकारितानुमतिभि करोति सभिक्षु कथ्यते ॥५४॥ सभि क्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारं जानीयात् (अस्सिंपडियाए) एतत्प्रतिज्ञया एकं साधुं सार्धर्मिकं समुद्दिश्य कश्चित्प्रकृतिभद्रकः श्रावकः साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः समारभ्य प्राणिघात कमारंभं कृत्वा समुद्दिश्य तत्पीडा सम्यगुद्दिश्य क्रीतं (पामिच्चं) उच्छिन्नकमाछेद्यमन्य स्मादाछिद्य गृहीतमनिसृष्टं परेणाननुमतमभ्याहृत साधुसंमुखमानीतमाहृत्य उपेत्य ज्ञा त्वा साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमेवंभूतमाहारं साधवे दत्तं स्यात्साधुनावाऽकामेन गृहीतं स्या त्तद्दोषदुष्टं ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत अन्येन न भोजयेत् नच भुंजानमन्यं समनुजानीयात् एवं दुष्टाहारान्निवृत्तोभिक्षु स्यात् ॥ ५५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादाननिषेधमधिकृत्याह । (जंपियइय इत्यादि) यदपीदं सपर्येति तासुतासु गतिष्वनेककर्मणेति सांपरायिकं तच्च तत्प्रद्वेषनि न्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुमतिभि क रोति सभिक्षुरभिधीयतइति ॥५४॥सांप्रतं भिक्षाविशुद्धिमधिकृत्याह । (सेभिक्खूइत्यादि) स भिक्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारजातं जानीयात् (अस्सिंपडियाएत्ति) एतत्प्रतिज्ञयाऽऽहारदानप्र तिज्ञया यदि वास्मिन्पर्याये साधुपर्याये व्यवस्थितमेकं साधुं सार्धर्मिकं समुद्दिश्य कश्चिच्छ्रा वकः प्रकृतिभद्रकोवा साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः प्रव्यक्तेंद्रियान् भूतानि त्रिकालभाविनि जीवानायुष्कधरणलक्षणान्सत्वान्सदा सत्वोपेतान्समारभ्य तदुपमर्दकमारंभं विधाय स मुद्दिश्य तत्पीडा सम्यगुद्दिश्य, क्रीतं क्रयेण द्रव्यविनिमयेन (पामिच्चति) उच्यतकमाछे द्यमित्यन्यस्मादाछिद्य निसृष्टमिति परेणानुत्सकलितमभ्याहृतमिति साध्वभिमुखं ग्रामा देरानीतमाहृत्योपेत्य साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमित्येवंभूतमाहारजातं साधवे दत्तं स्यात्तच्चा कामेन तेन परिगृहीतं स्यात्। तदेव दोषदुष्टं च ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत नाप्यपरेण भोजये न्नच भुंजानमपरं समनुजानीयादित्येवं दुष्टाहारदोषान्निवृत्तोभिक्षुर्भवतीत्यर्थ ॥ ५५ ॥

सेभिक्खू अह पुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे जस्सट्ठा तेवेइयं सियातं जहा अप्पणो से पुत्ताण धूयाण सुण्हाणं धातीण णातीणं राईणं दासाणं दासीण कम्मकराण कम्मकरीण आदेसाण पुढोपहेणाए सा मासाए पातरासाए सन्निहीसंचएकज्जति इहमेगेसिं माणवाणं भोयणा

अधिगारो ॥ २ ॥ अवियहुजारियकम्मा, नियमा उक्कस्स निरयठितिगामी । ते विहुंजि णोवदेसेण तेणेव जवेण सिझंति ॥ ३ ॥ जलमालकद्दमाल, बहुविहवल्लिगहणं च पुक्करणी । जंघाहिव बाहाहिव नावाहिवतं डुरवगाहा ॥ ४ ॥ पउम उप्लघेत्तुं, उपरमाण स्सहोनवावत्ती । किंनविसेउवाउ, जेणुप्लघेज्ज अविवन्नो ॥ ५ ॥ विज्जावदेव कम्म, अहवा आगासियाविउवणया । पउमं उप्लघेत्तुं नएसइणमोजिणुस्काउ ॥ ६ ॥ सुद्धप्पउंग विज्जासिध्दाउ जिणस्स जाणणेविज्जा । नवियजणपोंडरीयाउ जाए सिद्धिगतिमुवेति ॥ ॥ ७ ॥ (उवमाइत्यादि) इहोपमा दृष्टांत पौंडरीकेण श्वेतशतपत्रेण कृतस्तस्येहान्यहितत्वात् तस्यैव चोपचयेन सर्वावयवनिष्पत्तिर्याविद्धिशिष्टोपायेनोध्दरण । दार्ष्टांतिकाधिकारस्तु पुनरत्र जणितोनिहितश्चक्रवर्त्यादि निर्जव्यस्य जिनोपदेशेन सिद्धिरिति तस्यैव पूज्यमानत्वादिति । पूज्यमेव दर्शयितुमाह । (सुरमणुएइत्यादि) सुरादिपु चतुर्गतिकेपु जंतुपु मध्ये मनुजाश्चरित्रस्य सर्वसंवररूपस्य प्रजव शक्तावर्तते न शेपा सुरादय । तेष्वपि मनुजेपु महाजननेतारश्चक्रवर्त्यादयोवर्तते तेपु प्रबोधितेपु प्रधानानुगामित्वात् इतरजन सुप्रतिबोधएव, नवतीत्यतोत्र चक्रवर्त्यादिना पौंडरीककटपेनाधिकारइति । पुनरप्यन्यथामनुजप्राधान्यं दर्शयितुमाह । (अविपडुइत्यादि) गुरुकर्माणोपि मनुजाश्चासकलितनरकायुपोपि नरकगमनयोग्याश्चपि तेष्वेवजूतजिनोपदेशात्तेनैव जवेन समस्तकर्मक्षयात् सिद्धिगामिनोनवतीति । तदेव दृष्टातदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं प्रदर्श्य दृष्टातजूतपौंडरीकाऽधाराया पुष्करिण्याडुरवगाहित्व सूत्रालापकोपात्तनिर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । (जलमालेत्यादि) जलमालामित्यर्थप्रचुरजला तथा कर्दममालामप्रतिष्ठिततलता प्रजूततरपंका तथा बहुविधवल्लिगहना च पुष्करिणी जघान्या वा बाहुन्या नावा वा डुस्तरा पुष्करिणीं दृष्ट्वेति क्रियाध्याहार –किंचान्यत् । (पउमइत्यादि) तन्मध्ये पद्मवरपौंडरीक गृहीत्वा समुत्तरतोऽवश्य व्यापत्ति प्राणाना नवेत् किं तत्र कश्चिडपाय सनास्ति येनोपायेन गृहीतकमल सन् ता पुष्करिणीमुल्लंघयेन्नविपन्नइति । तडुल्लघनोपाय दर्शयितुमाह । (विद्यावेत्यादि) विद्या वा काचित्प्रज्ञप्त्यादिका देवता कर्मवाऽथवाऽकाशगमनलब्धिर्वा कस्यचिन्नवेत्तेनासावविपन्नोगृहीतपौंडरीक सन्नुल्लघयेत्तां पुष्करिणीमेपच जिनैरुपाय समाख्यात । सर्वोपसहारार्थ माह । (सुद्धप्पेत्यादि) शुद्धप्रयोगविद्यासिद्धा जिनस्यैव विज्ञानरूपा नान्यस्य कस्यचिद्यया विद्यया तीर्थकरदर्शितया नव्यजनपौंडरीका सिद्धिमुपगच्छतीति । गतोनुगम सांप्रत नयास्तेच पूर्ववद्दृष्टव्याइति ॥ समाप्त पौंडरीकाख्य द्वितीयश्रुतस्कंधप्रथमाध्ययनमिति ॥ ६० ॥ ॥

जेटले आहारें करी शरीर क्रियाने विषे प्रवर्ते तेटलोज आहार लेवो ते उपर दृष्टांत कहेछे (अरकोवज्जण के०) जेटलो गाडानी धरीने जोइए तेटलो किल आपि ए चोपडीए तेटलुंज गाडु पण चाले तथा (वण के०) व्रण एटले गुंवडा उपर (ले वणनूयंके०) जेटलो लेप लागे तेटलोज लगाडीए ए उपमाये चारित्रिउं पण आहार लीए (संजमजायामायावत्तियंके०) जेटले आहारें संयम जात्रायें प्रवृत्ताय तेटली मा त्राये तेटलो आहारलीए, ते वली तेटली मात्रा टालीने अधिक आहार न लेवो (बिलमि वपन्नग नूतेणके०) ते आहार वली बिलप्रवेश सर्पनी पेठे (अप्पाणेण के०) पोतें (आ हारंआहारेक्काके०) आहार आहारे,एटले जेम सर्प बिल माहे प्रवेश करे तेवारे उताव लो प्रवेश करे तेम साधु पण, आहार करतो सुस्वाद निरास्वाद अण जोतो आहार ली ए (अन्नअन्नकाले के०) ते अन्न अन्नने काले लीए, उत्सर्गे मार्गे सूत्र अर्थ पोरसीनुं अनंतर अहार काल जाणवो (पाणपाणकालेके०) एवीज रीते पाणी, पाणीने कालें पीए एटले तृषा लागे थके जमवुं नही, अने क्षुधातुर थके पाणी पीवु नही इत्यर्थ (वञ्चंवञ्चकाले के०) तथा वस्त्र वस्त्रने कालें लेवु उढवु (लेणलेणकाले के०) उपाश्रय उपाश्रयने काले लीये, एटले वर्षादिकाल समये अवश्य उपाश्रयने विषे रहे बीजाका लने विषे नियम नथी (सयणसयणकालेके०) शयन कालें शयन करे त्या अगीतार्थने बे पहोर निद्रा जाणवी अने निद्रा थकी विमुक्त गीतार्थने एक पहोर निद्रा जाणवी॥५६॥

॥ दीपिका–सभिक्षुरथ पुनरेव जानीयात् । तद्यथा । तेषां गृहस्थाना वक्ष्यमाण प राक्रम सामर्थ्य आहारकरणारनइति यावत् । यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति त दत्तं नि ष्पादितं स्यात् । तद्यथा । आत्मन कृते से तदाहारजात कृतस्यात्तथा पुत्राणां सुतानां स्नुषाणा वधूनां धात्रीणा राज्ञा दासीना कर्मकरीणामादेशक प्राघूर्णकस्तस्यार्थं तथा पृथ क् प्रग्रहणार्थं (सामासाएत्ति) श्यामारात्रिस्तत्राशनं श्यामाशोरात्रिनोजनार्थ प्रातरश न प्रातराशस्तदर्थं सन्निचयोविशिष्टाहारनिष्पादनं क्रियते । अनेन चैतत्सूच्यते यद्बालवृ द्धग्लानादिनिमित्त प्रजातादिसमयेष्वपि निष्काटन क्रियते तस्यावसुक्त सचव ससन्नि धिसंनवइहैकेषा मानवाना नोजनाय स्यात् । तत्र निक्षु परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादने षणाशुद्धमाहारमाहरेत् । अत्र परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोनंगा । तद्यथा । तस्यकृतं तस्यै वनिष्ठितं १ तस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं २ अन्यस्य कृत तस्य निष्ठितं ३ अन्यस्य कृतमन्य स्यनिष्ठितं ४ । तत्र चतुर्थनंग सूत्रोपात्तः शुद्ध. । द्वितीयोपिशुद्ध । उद्गमदोषा १६ उत्पादनादोषा अपि १६ एषणादोषा १० इतिद्विचत्वारिंशता दोषै शुद्धं शास्त्रातीतं प्रासुकीकृत शस्त्रपरिणामितं स्वकायपरकायादिशस्त्रेण निर्जीवीकृत वर्णगंधरसादिनिश्च

स्थानक, अने बीजो अनुपशांत स्थानक ॥१॥ (तत्थणं के०) त्यां (जेसे के०) जे कहेशे ते (पढमस्सठाणस्सअहम्मपरकस्सविनंगेके०) प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विनंग एटले विचार (तस्सणअयमठेपसुतेके०) तेनो ए अर्थ कहेले (इहखलुपाईणवाके०) ए संसार माहे पूर्वादिक दिशिमांहे अनेरी दिशाये (संतेगतियामणुस्साभवंति के०) केटलाएक मनुष्यले ते केवाले (तजहाके०) ते कहेले एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायावाला, एक न्हानी काया वाला, एक शुनवर्णना शरीरवाला, एक माठावर्णवाला, एक सुरूपवान् अने एक कुरूपवान् ॥२॥ (तेसिंचणइमंएतारूवके०) ते आर्यादिक मनुष्यने एवो एतादृशरूपजे आगल कहेशे (दंमसमादाणं के०) दंम समादान एटले पापरूप सकल्पनुं ग्रहणते, (सपेहाए के०) आलोचवु ते चतुर्गतिक, जीवने होय (तजहा के०) ते चारगतिना नाम कहेले. (णेरइएसुवा के०) एक नारकीमांहे (तिरिरकजोणिएसुवाके०) तिर्यचनी योनी माहे (मणुस्सेसुवाके०) मनुष्य माहे (देवेसुवाके०) देवतामाहे ए चतुर्गतिक जीव जाणवा तेमाहे (जेयावन्नेके०) जे अनेरा (तहप्पगारा के०) तथा प्रकारना (पाणाविन्नू के०) प्राणि जाणवा (वेयणंवेयंति के०) ते प्राणी एवा थका वेदना जे साता असातारूप तेने वेदे एटले अनुनवे अत्र चतुर्नगी कहेले एक सज्ञिया जीवजेले ते वेदनाने अनुनवे तथा जाणे पण, अने बीजा सिद्धना जीव जेले ते वेदनाने मात्र जाणे, पण अनुनवे नहीं. तथा त्रीजा असज्ञिया जीव जेले ते वेदनाने अनुनवे, पण जाणे नही चोथा अजीव जेले ते वेदनाने अनुनवे पण नहीं, अने जाणे पण नही, तेमाहें अहीं पहेला अने त्रीजा नंगनो अधिकारले ॥३॥ (तेसिपियण इमाइ के०) ते नारकियादिकने एजे आगल कहेशे ते (तेरसकिरियाठाणाइ नवतीतिमरकाय के०) तेर क्रियाना स्थानक होय, ते श्रीतीर्थंकर गणधरे एम कह्या (तजहा के०) तेना नाम कहेले एक (अठादंमे के०) अर्थ दंम, बीजो (अणठादंमे के०) अनर्थदंम, त्रीजो (हिंसादंमेके०) हिंसादंम, चोथो (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम, पाचमो (दिठीविपरियासियादंमे के०) दृष्टि विपर्यास दंम, ठठो (मोसवत्तीए के०) मृषावाद प्रत्ययिक दंम, सातमो (अदिन्नादाणवत्तिए के०) अदत्तादान प्रत्ययिक दंम, आठमो (अभ्रत्र वत्तिएके०) अध्यात्मिक ते मननु डुर्ध्यान प्रत्ययिक तेरूप दंम, नवमो (माणवत्तिएके०) मान प्रत्ययिक दंम, दशमो (मित्तदोसवत्तिए के०) मित्र उपर द्वेष करवो ते मित्रदोष प्रत्ययिक दंम, अगीयारमो (मायावत्तिए के०) परने वचवु ते मायाप्रत्ययिक दंम, बारमो (लोनवत्तिए के०) लोन प्रत्ययिक दंम, तेरमो (इरियावहिए के०) इरियापथिक प्रत्ययिक दंम. हवे अनुक्रमे ए तेर क्रिया स्थानकोनो विचार कहेले ॥ ४ ॥

णोपात्तोऽयं च शुद्धोद्वितीयश्चान्यस्य निष्ठितत्वात्तत्राधाकर्मौद्देशिकादयउद्गमदोषा षोड श तथोत्पादनादोषाधात्रीदूत्यादिका. षोडशैव तथैषणादोषा शंकितादयोदश । एवमेनि र्द्विचत्वारिंशद्दोषैरहितत्वाच्छुद्धं । यथाशस्त्रमग्न्यादिकं तेनानीतं प्रासुकीकृत शस्त्रपरिणा मितमिति शस्त्रेण स्वकायपरकायादिना निर्जीवीकृतं वर्णगधरसादिनिश्च परिणमितं हिं साप्राप्तं हिंसित विरूपं हिंसितं विहिसितं नसम्यक् निर्जीवीकृतमित्यर्थं । तत्प्रतिषेधाद विहिंसितं निर्जीवमित्यर्थ । तदप्येषितमन्वेषितं भिक्षाचर्याविधिना प्राप्तं वैषिकमिति केवल साधुवेषावाप्त नपुनर्जात्याद्याजीवनतोनिमित्तादिना चोत्पादितं तदपि सामुदानिक समुदा नं भिक्षासमूहस्तत्र भव सामुदानिक। एतडुक्तं भवति। मधुकरवृत्त्यावाप्तं सर्वत्र स्तोकंस्तोक गृहीतमित्यर्थ । तथा प्राज्ञस्येद प्राज्ञं गीतार्थेनोपात्तमशनमाहारजातं तदपि वेदनावैय्या वृत्त्यादिके कारणेसति तत्रापि प्रमाणयुक्तं नातिमात्र। प्रमाणं चेदं । अद्धमसणस्स स व्वं जणस्स कुज्जादवस्स दोनाए । वाउपवियारणठाएभागं कणयं कुज्जत्ति । एतदपि न व र्णबलाद्यर्थ किंतु यावन्मात्रेणाहारेण देह' क्रियासु प्रवर्तते । तत्र दृष्टांतद्वयमाह । त द्यथा । अक्षस्योपाजनमभ्यंगोव्रणस्य च लेपन प्रलेपस्तडुपमया आहारमाहरेत् । तथाचो क्तं । अप्पंगेण वसगमं णतरइ विगइं विणाइ जो साहू । सो रागदोसरहिउ मत्ताढविही इत सेवे । एतदेव दर्शयति । सयमयात्रायामात्रा सयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते सा तथा तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तया तदपि बिलप्रवे शपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । एतडुक्त भवति । यथाहिर्बिलं प्रविशन् तूर्णं प्रविश त्येवसाधुनाप्याहारस्तत्स्वादमनास्वादमन्यवहार्यतइति । तदेवाहारजातं दर्शयितुमाह । अन्न भक्तमन्नकाले सूत्रार्थपौरुष्युत्तरकाल भिक्षाकाले प्राप्ते पुर पश्चात्कर्मपरित्द्दत भव ति। यथोक्तभिक्षाटनेन ग्रहणकालावाप्तं भैक्षं परिभोगकाले भुंजीत । तथा पानक पान काले नातितृषितोभुंजीत नाप्यतिबुभुक्षित. पानक पिबेदिति । तथा वस्त्र वस्त्रकाले गृ ह्णीयाडुपभोगंवा कुर्यात्तथा लयन गुहादिकमाश्रयत्तस्य वर्षास्ववश्यमुपादानमन्यदाल्व नियमस्तथा शय्यतेऽस्मिन्निति शयन सस्तारक सच शयनकाले । तत्राप्यगीतार्थाना प्र हर द्वय निद्राविमोक्षोगीतार्थाना प्रहरमेकमिति । ॥ ५६ ॥

सेभिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिस अणुदिसंवा पडिवन्ने धम्मं आ इक्खे विभए किट्टे उवठिएसुवा अणुवठिएसुवा सुस्सूसमाणेसु प वेदए संतिविरति उवसमं निवाण सोयवियं अज्जवियं मद्दवि यं लाघविय अणतिवातियं सर्वेसि पाणाण सर्वेसि भूताणं जा व सत्ताणं अणवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ५७ ॥

धकारणानि सम्यक्परिहर्तव्यानि तद्विपरीतानि च मोक्षसाधनानि आसेवितव्यानि इत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा कर्मणा संबंधोऽनेन प्रतिपाद्यते तद्विमोक्षश्चेति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे क्रियास्थानमिति द्विपदं नाम । तत्रापि क्रियापदनिक्षेपार्थं प्रस्तावमारचयन्निर्युक्तिकृदाह । "किरियाउनणियाउ, किरियाठाणति तेण अज्झयणं ॥ अहिगारो पुण नणिउ, बंधे तह मोरकमग्गेय" ॥ १५७ ॥ (किरियाउ इत्यादि) तत्र क्रियंतइति क्रियास्ताश्च कर्मबंधकारणत्वेनावश्यकांतर्वर्तिनि प्रतिक्रमणाध्ययने (पडिक्कमामितेरसहिंकिरियाठाणेहिं ति) अस्मिन्सूत्रेऽनिहिता । यदि वैहिकक्रियानणिताअनिहितास्तेनेदमध्ययनं क्रियास्थानमित्युच्यते । तच्च क्रियास्थानं क्रियावत्स्वेव नवति नाक्रियावत्सु । क्रियावतश्च केचिद्बध्यंते केचिन्मुच्यतेऽतोध्ययनार्थाधिकार पुनरनिहितोबंधे तथा मोक्षमार्गेचेति । तत्र नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादिका क्रिया प्रतिपादयितुमाह । " दव्वे किरिए अवणय, पयोगुवायकरणिज्ज समुदाणे ॥ इरियावहसंमत्तो, सम्मत्तेचेव मिठत्ते " ॥ १५८ ॥ दव्वेइत्यादि) तत्र द्रव्यविषये या क्रिया एजनता । एजृकंपने । जीवस्याजीवस्य वा कंपनरूपा चलनस्वनावा सा द्रव्यक्रिया । सापि प्रयोगाद्विस्रसया वा नवेत् । तत्राप्युपयोगपूर्विका वाऽनुपयोगपूर्विका वाऽक्षिनिमेषमात्रादिका वा सा सर्वा द्रव्यक्रियेति । नावक्रियात्वियं । तद्यथा प्रयोगक्रिया उपायक्रिया करणीयक्रिया समुदानक्रिया ईर्यापथक्रिया सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रिया चेति । तत्र प्रयोगक्रिया मनोवाक्कायलक्षणा त्रिधा । तत्र स्फुरन्निर्मनोद्रव्यैरात्मनउपयोगोनवत्येव वाक्काययोरपि वक्तव्यं । तत्र शब्दे निष्पाद्ये वाक्काययोर्द्वयोरप्युपयोग । तथा चोक्तं । गिण्हइ य काइएण, णिसिरइ तहवा इएण जोगेण ॥ गमनादिका तु कायक्रियैव । उपायक्रियातु घटादिकं द्रव्यं येनोपायेन क्रियते । तद्यथा । मृत्खननमर्दनचक्रारोपणदंडचक्रसलिलकुंनकारव्यापारयावद्भिरुपायैः क्रियते सा सर्वोपायक्रिया । करणीयक्रियातु यद्येन प्रकारेण करणीयं तत्तेनैव क्रियते नान्यथा । तथाहि । घटोमृत्पिंडादिकयैव क्रियते न पाषाणसिकतादिकयेति ३ समुदानक्रियातु यत्कर्म प्रयोगगृहीत समुदायावस्थं सत्प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशरूपतया यया व्यवस्थाप्यते सा समुदानक्रिया । साच मिथ्यादृष्टेरारन्य सूक्ष्मसंपरायं यावत् नवति । ४ ईर्यापथक्रिया तूपशांतमोहादारन्य सयोगिकेवलिनं यावदिति ५ सम्यक्त्वक्रिया तु सम्यग्दर्शनयोग्या कर्मप्रकृती सप्तसप्ततिसंख्या यया बध्नाति साऽनिधीयते । मिथ्यात्वक्रिया तु सर्वा प्रकृतीर्विंशत्युत्तरसंख्यास्तीर्थकराहारकशरीरतदंगोपांगत्रिकरहिता यया बध्नाति सामिथ्यात्वक्रियेत्यनिधीयते । सांप्रतं स्थाननिक्षेपार्थमाह ।" नाम ठवणा दविए, खेत्ते द्धाउड्ढ उवरवीवसहि । सजम प

॥ टीका–सन्निकुराहारोपधिशयनस्वाध्यायादीनां मात्रां जानातीति तद्विधिज्ञ सन् अन्यतरा दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नः समाश्रितोधर्ममाख्यापयेत् यद्येन विधेयस्तद्यथा नोगं विनजेत्कर्मफलानि च कीर्तयेदाविर्नावयेत्तच्चैकार्थप्रवृत्तेन साधुना सम्यगुपस्थितेषु वा कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु स्वपरानिप्रायं वेदयेदावेदयेत्प्रकथयेदितियावत् । श्रोतुमुपस्थितेषु यत्कथयेत्तद्दर्शयितुमाह । (संतिविरइइत्यादि) शांतिरुपशम क्रोधजयस्तत्प्रधाना प्राणातिपातिन्योविरति शांतिविरति । यदिवा शांतिरशेषक्लेशापगमरूपा तस्यै तदर्थं विरतिस्ता कथयेत्तथोपशममिंद्रियोपशमरूप रागद्वेषानावजनितं तथा निर्वृतिं निर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपं तथा (सोयवियति) शौच तदपि नावशौचं सर्वोपाधिशुद्धता व्रतामालिन्य । (अज्जवियंति) आर्जवममायित्व तथा मार्दव मृदुनाव सर्वत्र प्रश्रयवत्व विनयनम्रतेति यावत् । तथा (लाघवियंति) कर्मणां लाघवापादनं कर्मगुरोर्वात्मन. कर्मापनयनतोलघ्ववस्थासंजननं । साप्रतमुपसंहारद्वारेण सर्वगुनानुष्ठानानां मूलकारणमाह । अतिपतनमतिपात प्राण्युपमर्दनं तद्विद्यते यस्यासावतिपातिकस्तत्प्रतिषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषा प्राणिना नूताना यावत्सत्वाना धर्ममनुविचिमनुविचिन्त्य, वा कीर्तयेत्कथयेत् । इदमुक्त नवति सर्वप्राणिनां रक्षानूतं धर्मं कथयेदिति ॥ ५७ ॥

सेन्निक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा णोपाणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोवत्थस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोलेणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोसयणस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोअन्नेसिं विरूवरूवाणं कामनोगाणं हेउं धम्ममाइक्खेज्जा अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा नन्नत्थ कम्मनिज्जरट्ठाए धम्ममाइक्खेज्जा ॥५८॥ इहखलु तस्स निक्खुस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म उट्ठाणेणं उट्ठाय वीरा अस्सिं धम्मे समुट्ठिया जे तस्सन्निक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उट्ठाणेण उट्ठायवीरा अस्सिंधम्मे समुट्ठिया तेएव सव्वोवगता तेएवं सव्वोवरता तेएवं सव्वोवसंता तेएवं सवताए परिनिव्वुडेत्तिबेमि ॥ ५९ ॥

अर्थ–(सेन्निक्खू के०) ते साधु (धम्मंकिट्टमाणे के०) धर्म कहेतो थको (णोअन्नस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा के०) अन्न एटले आहारने हेतुयें धर्म न कहे ते आवी रीते के आ अमुक मनुष्य धनवंतछे माटे महारी पासेथी धर्म सानलीने मने मनो वांछित आहार आपशे, एवो विचार करे नही तथा वली (णोपाणस्सहेउंध

तीति दंडः पापोपादानसंकल्पस्तस्य समादानं ग्रहणं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य । तच्चतुर्गतिकानामन्यतमस्य नवतीति दर्शयति । (तजहेत्यादि) तद्यथा नारकादिषु ये चान्ये तथाप्रकारास्तद्देदवर्तिन सुवर्णदुर्वर्णादय प्राणा. प्राणिनोवि ध्वंसोवेदनाज्ञानं तद्देदयंत्यनुनवति । यदिवा सातासातरूपा वेदनामनुनवतीत्यत्र चत्वारोनंगाः । तद्यथा । सञ्ज्ञिनोवेदनामनुनवति विदतिच १ सिद्धास्तु विदति नानुनवति २ असंज्ञिनोऽनुनवति न पुनर्विदंति ३ अजीवास्तु न विदंति नाप्यनुनवतीति ४ इह पुन प्रथमतृतीयान्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थावस्तुनूताविति । तेषाच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवाना तथाविधज्ञानवतामिमानि वक्ष्यमाणलक्षणानि त्रयोदशस्थानानि नवंतीत्येवमाख्यात तीर्थकरगणधरादिनिरिति । कानि पुनस्तानीति दर्शयितुमाह । (तजहेत्यादि) तद्यथेत्ययमुदाहरणवाक्योपन्यासार्थ । आत्मार्थाय सप्रयोजनकृते दंडोऽर्थदंड पापोपादानं १ तथाऽनर्थदंडइति निष्प्रयोजनमेव सावद्यक्रियानुष्ठानमनर्थदंड । तथा हिंसन हिंसा प्राण्युपमर्दरूपा तया सैव वा दंडोहिंसादंड. तथा ऽकस्मादनुपयुक्तस्य दंडो ऽकस्मादंडोऽन्यस्य क्रिययान्यस्य व्यापादनमिति ४ तथा दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुमिव सर्पबुद्धिस्तया दंडोदृष्टिविपर्यासोऽबुद्धिदंडस्तद्यथा लेष्टुकादिबुध्या शराद्यनिपातेन चटकादिव्यापादनं । तथा मृषावादप्रत्ययिक सच सनूतनिन्हवासनूतारोपण ६ तथा अदत्तस्य परकीयस्यादान स्वीकरणमदत्तादानंस्तेय तत्प्रत्ययिकोदंडइति ७ तथाऽत्मन्यध्यध्यात्म तत्र नव अत्यात्मिकोदंडस्तद्यथा निर्निमित्तमेव दुर्मनाउपहतमन संकल्पोहृदयेन म्लियमाणश्चितासागरावगाढ सतिष्ठते ८ तथा जात्याद्यष्टमदस्थानोपहतमना परावमदर्शी तस्य मानप्रत्ययिकोदंडोनवति ए तथा मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडोनवति १० तथा माया परवचनबुद्धिस्तया दंडोमायाप्रत्ययिक ११ तथा लोनप्रत्ययिकोलोननिमित्तोदंडइति १२ तथा एव पचनि समितिनि समितस्य तिसृनिर्गुप्तिनिर्गुप्तस्य सर्वोपयुक्तस्येर्याप्रत्ययिकः सामान्येन कर्मबंधोनवति । एतच्च त्रयोदशं १३ क्रियास्थानमिति ॥ ४ ॥

पढमे दंम समादाणे अठादंम वत्तिएत्ति आहिज्जइ सेजहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउवा आगारहेउवा परिवारहेउंवा मित्तहेउंवा णागहेउंवा नूतहेउंवा जक्खहेउवा तं दंम तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति असेणविणिसिरावेति असंपि णिसिरितं समणुजाणइ एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पढमे दंमसमादाणे अठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥

स्तेचैव सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठाने उद्यता परिनिर्वृतानिर्वाणं प्राप्ताइ ति ब्रवीमीति ॥ ५ए ॥

॥ टीका–साप्रत धर्मकीर्त्तन यथा निरुपधि नवति तथा दर्शयितुमाह। (सेनिक्खूइत्यादिं) सनिक्खु परकृतपरनिष्ठिताहारनोजी यथाक्रियाकलानुष्ठायी शुश्रूषन् सुधर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्ममायमीश्वरोधर्मकथाप्रश्रवणे विशिष्टमाहारजात दास्यतीति। एतन्निमित्तं न धर्ममाचक्षीत तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाचक्षीत । नान्येषा विरूपरूपाणामुच्चावचानां कार्याणा कामनोगाना वा निमित्त तथा धर्ममाचक्षीत ग्लानिमनुपगछन् न धर्ममाचक्षीत कर्मनिर्जरायाश्चान्यत्र न धर्मं कथयेदपरप्रयोजननिरपेक्षएव धर्मकथयेदिति ॥५ठ॥ धर्मकथाश्रवणफलदर्शन द्वारेणोपसंजिघृक्षुराह।(इहखलुनस्सेत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलु वाक्यालकारे । तस्य निक्षोर्गुणवतोतिके समीपेपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुत्थानेनोत्थाय धीरा कर्मविदारणसहिष्णवोये चैवनूतास्ते एव पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टानुष्ठानतया सर्वस्मिन्नपि मोक्षकारणसम्यग्दर्शनादिके उपसामीप्येन गता सर्वोपगतास्तथैव सर्वेन्य उपरता सर्वोपरतास्तथा तएव सर्वोपशाताजितकषायतया शीतलीनूतास्तथा एव सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठानेनोद्यम कृतवतोये चैवनूतास्ते ऽशेषकर्मक्षय कृत्वा परि समतान्निर्वृताअशेषकर्मक्षय कृतवतइति ब्रवीमीति पूर्ववत्५ठ

एवं सेनिक्खू धम्मट्ठी धम्मविऊ णियागपडिवण्णे से जहेयं वुत्तियं अडुवा पत्ते पउमवरपोंमरीय अडुवा अपत्ते पउमवरपोमरीयं एवं सेनिक्खू परिणायकम्मे परिणायसंगे परिणायगेहवासे उवसंते समिए सहिए सयाजए सेवं वयणिज्जं तंजहा समणेतिवा माहणेतिवा खंतेतिवा दंतेतिवा गुत्तेतिवा मुत्तेतिवा इसीतिवा मुणीतिवा कतीतिवा विऊतिवा निक्खूतिवा लूहेतिवा तीरट्ठीतिवा चरणकरणपारविउत्तिबेमि॥ ॥ इति बितियं सुयक्ख धस्स पोमरीय नाम पढमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६० ॥

अर्थ–हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेले (एवसेनिक्खूधम्मट्ठीके०) एम पूर्वोक्त गुण युक्त ते साधु धर्मनो अर्थी (धम्मविऊ के०) धर्मनो जाण, (णियागपडिवण्णे के०) मोक्ष अथवा सयमने विषे प्रतिपन्न एवो पाचमो पुरुष, (सेजहेयवुत्तियं के०) ते आश्रीने जेम पूर्वें कह्यु (अडुवापत्तेपउमवरपोमरीयं के०) ते अथवा प्रधान पौमरीक कमले पहोंतो (अडुवाअपत्तेपउमवरपोमरीयं के०) अथवा प्रधान पौमरीक कम

अहावरे दोच्चे दंमसमादाणे अणट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा नवंति ते णो अच्चाए णोअजिणाए णो मंसाए णोसोणियाए एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिछाए पुछाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए एहारुणिए अठीए अठिमंजाए णोहिंसमुमेत्ति णोहिंसिंतिमेत्ति णोहिंसिस्संतिमेत्ति णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणयाए णोआगारपरिवूहणताए णोसमणमाहणवत्तणाहेउं णोतस्स सरीरगस्स किंचिविप्परियादित्ता नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता उझिउं वाले वेरस्स आनागी नवंति अणट्ठादंमे ॥ ६ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा नवंति तंजहा इक्कडाइवा कडिणाइवा जंतुगाइवा परगाइवा मोक्काइवा तणाइवा कुसाइवा कुलगाइवा पप्पगाइवा पलालाइवा ते णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणाए णोआगारपडिबूहणयाए णोसमणमाहणपोसणयाए णोतस्स सरीरगस्स किंचिविपरियाइ नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दविइत्ता उझिउ वाले वेरस्स आनागी अणट्ठादंमे ॥ ७ ॥ सेजहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसिवा दहंसिवा उदगंसिवा दवियंसिवा वलयंसिवा णूमंसिवा गहणंसिवा गहणविडुग्गंसिवा वणंसिवा वणविडुग्गंसिवा पव्वयंसिवा पव्वयविडुग्गंसिवा तणाइ ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति अन्नेणवि अगणिकायं णिसिरावेति अन्नंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ अणट्ठादंमे एव खलु तस्स तप्पत्तियंसावज्जेति आहिज्जइ दोच्चे दंमसमादाणे अणट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥

अर्थ-(अहावरेदोच्चेदंमसमादाणेअणट्ठादंमवत्तिएत्तिआहिज्जइ के०) हवे अपर बीजो क्रिया स्थानक अनर्थदंम, प्रत्ययिक कहियें ठेयें (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी सन्नावनायें जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, नि.कारणे, निर्विवेक पणे, जीवहिंसा करे, तें कहेठे (जेइमेतसापाणानवंति के०) जे ए संसार मांहे प्रत्यक्ष जरूण त्रस प्राणी, गगादिक ठे ते प्राणीने निरर्थक हणे, ते केवीरीते हणे तोके (तेणोअचाए के०) तेजीवोने शरीरने अर्थे न हणे, (णोअजिणाए के०) चर्मने अर्थे न ह

सएवनूतगुणएतद्वचनीयएतैर्नामभिर्वाच्य स्यात् । तद्यथा । श्रमणोवा माहनोवा ब्र ह्मचारित्वाद्ब्राम्हणोवा, क्षातोवा, दांतोवा, गुप्तिभिर्गुप्तोवा, निर्जोनत्वान्मुक्तोवा, ऋषिर्वा, कृत मस्यास्तीति कृती पुण्यवान् वित् विद्योपेतोभिक्षुर्वा, अंतप्रांताहारत्वेन रूक्षोवा, संसाराद्येस्ती रार्थीवा, चरण मूलगुणा, करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं पर्यंतगमनं वेत्तीति चरणकरणपा रवित् । इति समासौ । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह ॥ ॥ इतिद्वि तीयश्रुतस्कंधस्य पुंडरीकाध्ययनं प्रथमं समाप्तम् ॥ ६० ॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनोपसंहारार्थमाह । (एवसेभिरकूइत्यादि) एवमिति पूर्वो क्तविशेषणकलापविशिष्टः सभिक्षुः पुनरपि सामान्यतोविशिष्यते । धर्म श्रुतचारित्राख्य स्तेनार्थी यथावस्थितं परमार्थतोधर्मं सर्वोपाधिविशुद्धं जानातीति धर्मवित्तथा नियाग· संयमोमोक्षोवा कारणे कार्योपचारं कृत्वा तं प्रतिपन्नोनियागप्रतिपन्नः सचैवनूतः पंचमं पुरुषजातस्तं चाश्रित्य यथेदं प्राक् प्रदर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तोवा स्यात्पद्मवरपौंड रीकमनुग्राह्यं पुरुषविशेषं चक्रवर्त्यादिकं । तत्प्राप्तिश्च परमार्थतः केवलज्ञानावाप्तौ सत्यां नवति । साक्षाद्यथावस्थितवस्तुस्वरूपपरिच्छित्तेरप्राप्तोवाम्यान्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानै र्यस्तैः समस्तैर्वा समन्वितः सचैवनूतः प्राग्व्यावर्णितगुणकलापोपेतोभिक्षुः परि सम तात् ज्ञातं कर्म स्वरूपतोविपाकतस्तदुपादानतश्च येन सज्ञातकर्मा तथा परिज्ञातः संगः सं बंधः सबाह्याभ्यंतरोयेन सतथा परिज्ञातोभिः सारतया गृहवासोयेन सतथोपशांतइंद्रियनो इंद्रियोपशमात्तथा समितः पंचभिः समितिभिस्तथा सह हितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादि भिर्वा सहितः समन्वितः सदा सर्वकालं यतः संयतः एतद्वचनीयस्तद्यथा श्राम्यतीति श्रम णः समनावा तथा मा प्राणिनोजहि व्यापादयेत्येवं प्रवृत्तिरुपदेशोयस्य समाहनः सब्रह्मचा रीवा ब्राम्हणः क्षांतः सक्षमोपेतोदांतइंद्रियनोइंद्रियदमनेन तथा तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः तथा मुक्तइवमुक्तस्तथा विशिष्टचरणोपेतोमहर्षिस्तथा । मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिस्त था कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् परमार्थपंडितोवा तथा विद्वान् सद्विद्योपेतस्तथा भिक्षु र्निरवद्याहारतया भिक्षणशीलस्तथाऽंतप्रांताहारत्वेन रूक्षस्तथा संसारतीरनूतोमोक्षस्तदर्थी तथा चर्यतइति चरणं मूलगुणाः क्रियतइति करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं तीरं पर्यंतगमनं तद्वे त्तीति करणचरणविदिति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतितीर्थंकरवचनादार्यः सुधर्मस्वा मी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य एवं नणति तथाह न स्वमनीषिकया ब्रवीमीति ॥ सांप्रतं समस्ताध्य यनोपात्तदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं गाथाभिर्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । उवमयपुंडरीए, तस्सेवयउववएणनिक्कुत्ती । अविगारो पुण नणिर्ज, जिणोवदेसेण सिद्धित्ति ॥ १ ॥ सु रमणुयतिरियनिरर्ज, वगेसुमणुया पहूचरित्तम्मि ॥ अवियमहाजणनेयत्तिचक्कवट्टिंमि

प्पगाइवा के०) प्रसिद्ध तृण विशेष, एटला मांहे सर्वकाष्ट जाणवा (पलालएइवा के०) पलाल इत्यादि अनेक जगत् मांहेछे ते, पुत्र पोषवाने निमित्ते नहीं, तथा पशु पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, आगार समारवाने अर्थे पण नहीं, श्रमण ब्राह्मणना पोष ण करवाने अर्थे पण नहीं, पोताना शरीरना पोषण करवाने अर्थे पण नही, एटले आत्मा ना त्राणने अर्थे पण नहीं किंतु ? क्रीडा निमित्ते अथवा व्यसने करी निरर्थक ते जीव नो हणनार थाय ते दंमादिके प्रहार करी छेदे, नेदे, अनेरा अगनो अवयव कापे, ठा ल उतारे, नाना प्रकारना पीडा कारी उपद्रव करे, एरीते ते बाल अविवेकी निःकेवल वैरनो विनाशी थाय एम वनस्पतिकाय आश्रि अनर्थ दंम कह्यो ॥७॥ (हवे अग्निकाय आ श्रि अनर्थ दंम कहेछे ते यथा दृष्टाते नाम एवी संनावनायें जेम कोइएक पुरुष विवे क विकल थको (कढंसिवा के०) कच्छादिकने विषे, (उदगंसिवा के०) पाणीने विषे, (दहंसिवा के०) द्रहने विषे, (दवियंसिवा के०) समुद्र तथा नदीने विषे, (वलयंसि वा के०) नदियें वेष्टित नूमिकाने विषे, णूमसिवा के०) गर्त्तादिक तथा नीचीनूमिका ने विषे, (गहणसिवा के०) जल रहित स्थानक तथा अटवी माहेला क्षेत्रने विषे, (गहणविडुग्गसिवा के०) गहन अटवीमा वली विषम स्थानकने विषे (वण सिवा के०) वनने विषे, (वणविडुग्गंसिवा के०) वनमाहे विषम स्थानकने वि षे, (पव्वयसिवा के०) पर्वतने विषे, (पव्वयविडुग्गसिवा के०) पर्वतमांहे विषम स्था नकने विषे, इत्यादिक देशस्थानकनेविषे, वर्त्ततो (तणाइंकसविय के०) तृण दर्नादिक ए कवा करी करीने (सयमेवअगणिकायंणिसिरति के०) वलीवली पोते अग्नि करवाने अ र्थें अग्निकायने तेमां प्रक्षेपे (असेणविअगणिकायंणिसिरावेति के०) अन्य पासेअग्नि प्र क्षेपावे एटले बीजा पासे जलावे, (असंपिअगणिकायंणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्निकायने तेमाहे प्रक्षेपतो होय तेने अनुमोदे,(अणछादंमेएवखलु के०) अनर्थ दंम एम निश्चे तेने (तस्सतप्पत्तिय के०) तत्प्रत्ययिक एटले ते आश्रित (सावज्जेति के०) साव द्य कर्म (आहिज्जइ के०) बधाय एटले (दोच्चेदंमसमादाणेअणछादंमवत्तिएतिआहिए के०) ए बीजो क्रियास्थानक अनर्थ दंम समादान प्रत्ययिक कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथापर द्वितीय दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते । तद्य थानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव प्राणिनोहंति । तदेवाह । ये इमे त्रसा प्राणिनस्तान् अर्चाशरीर तदर्थं नहति । अजिन चर्म नापि तदर्थं । एव मांसशोणितहृदयपित्तव सापिच्छपुच्छवालशृंगविषाणदंतदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थिमज्जाइत्यादिनिमित्तमुद्दिश्य नैवाऽहिंसि पुर्नापि हिंसति नापि हिंसयिष्यति मा मदीय चेति तथा नो पुत्रपोषणाय नापि पशु

॥ अथ द्वितीयक्रियास्थानाख्याध्ययनस्य प्रारंभ ॥

हवे बीजुं अध्ययन प्रारंनिये डैये पहेला अध्ययनमा पौन्मरीक कमलने दृष्टाते अन्यतीर्थिकने कर्मना बधक कह्या, तथा साधुने कर्मथी मूकावनारा कह्या हवे ते कर्म बार क्रिया स्थानके करी बांधीये अने तेरमे क्रिया स्थानके मूकीये तेकारणे बीजा अध्ययनमा क्रियास्थानक कहेडे

सुयंमे आउसंतेणं नगवया एवमरकायं इह खलु किरियाठाणे णामझयणे पणत्ते तस्सणं अयमठे इह खलु संजूहेणं डुवे ठाणे एवमाहिज्जति तजहा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव ॥१॥ तत्र ण जेसे पढमस्स ठाणस्स अहम्मपरकस्स विनंगे तस्स णं अयमठे पणत्ते इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमतावेगे हस्समतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे॥२॥ तेसिंचणं इमं एतारूवं दंमसमादाणं सपेहाए तं जहा णेरइएसुवा तिरिरकजोणिएसुवा मणुस्सेसुवा देवेसुवा जेयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयति॥३॥तेसिं पियणं इमाइ तेरसकिरियाठाणाइ नवंतीति मरकाय तंजहा अघादंमे अणठादंमे हिंसादंमे अकम्मादंमे दिठीविपरियासियादंमे मोसवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अज्ञत्तवत्तिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोनवत्तिए इरियावहिए ॥ ४ ॥

अर्थ–(सुयंमे के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामि प्रत्ये कहेडे के, मे सानल्युंडे (आउसंतेणंनगवयाएवमरकायं के०) आयुष्यवंत नगवते मने एम कह्यु डे ते मे जेम सानल्युंडे तेम हु तुज प्रत्ये कहुंडु (इहखलु के०) निश्चेकरी आ जिनशासनने विषे (किरियाठाणेणामज्ञयणेपण्णत्ते के०) क्रियास्थान नामे अध्ययन प्ररूप्यु (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थडे (इहखलु के०) अहिया खलु एवी सनावनाये (संजूहेण के०) संक्षेपें करी (डुवेठाणेएवमाहिज्जति के०) एकशुन, बीजोअशुन एम बे स्थानक, कहिये (तजहा के०) तेना नाम कहेडे (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्मस्थानक अने बीजो अधर्मस्थानक, (उवसंतेचेवअणुवसंतेचेव के०) एक उपशा

रपादादिछेदनत परमाऽधार्मिकवत्प्राणिनां निर्निमित्तमेव नानाविधोपायैः पीडोत्पादको नवति तथा जीविताटप्यपद्रावयिता नवति सच सद्विवेकमुज्झित्वात्मानं वा परित्यज्य बालवद्बालोऽज्ञोऽसमीक्षितकारितया जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य जागी नवति ॥ ६ ॥ तदेव निर्निमित्तमेव पंचेंद्रियप्राणिपीडनतोयथानर्थदंडोनवति तथा प्रतिपादितं । अधुना स्थाव वरानधिकृत्योच्यते । (सेजहेत्यादि) यथाकश्चित्पुरुषोनिर्विवेक पथि गछन् वृक्षादे प ल्लवादिक दंडादिना प्रध्वंसयन् फलनिरपेक्षस्तछीलतया व्रजति । एतदेव दर्शयति (जे इमेइत्यादि) ये केचनामी प्रत्यक्षा स्थावरावनस्पतिकाया प्राणिनोनवंति तद्यथेक्क डादयोवनस्पतिविशेषास्तानार्थास्तदिहेक्कडा ममानया प्रयोजनमित्येवमनिसंधाय न छिनत्ति केवलं तत्पत्रपुष्पादिनिरपेक्षस्तछीलतया छिनत्तीत्येतत्सर्वत्र योजनीयमिति । त था न पुत्रपोषणाय नो पशुपोषणाय नागारप्रतिवृद्दणाय नश्रमणब्राह्मणप्रवृत्तये नापि शरीरस्य किंचित्त्राण नविष्यतीति केवलमेवासौ वनस्पतिर्हंताछेत्त्यादियावज्जन्मांतरानु बंधिनोवैरस्य जागी नवति । अयं वनस्पत्याश्रयोऽनर्थदंडोऽनिहित ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रि तमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुष सदसद्विवेकविकलतया कछादिकेषु दशसु स्थानेषु वनडुर्गपर्वतेषु तृणानि कुशश्पीकादीनि धान पुन्धेनोर्ध्वाधस्थानि कृत्वा ऽग्निकाय हुतजुज निसृजति प्रक्षेपयत्यन्येन वाग्निकाय बहुसत्वापकारी दवाग्निं निसर्जय ति प्रक्षेपयत्यन्यच निसृजतं समनुजानीते । तदेव योगत्रिकेण कृतकारितानुमतिनिस्तस्य यत्किंचनकारिणस्तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्म महापातकमाख्यात द्वितीय मनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

आहावरे तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे ममवा मंमिवा अन्नंवा अन्निवा हिंसंसुवा हिंसइवा हिंसि स्संइवा तंदंम तसथावरोहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिति अन्नेणवि णिसि रावेति अन्नपि णिसिरित समणुजाणइ हिंसादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तिय सावज्जंति आहिज्जइ तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिए॥ ए॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो क्रियास्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक कहेछे ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (ममवा के०) मुजने (ममिवा के०) महारा पिताने ह णेछे, हण्योछे, हणशे, एम पुरुषाकार वहेतो पोताना मरण थकी मरतो बीकराख तोके, ए महारो विनाश करशे एवु जाणीने सर्प्प सिंहादिक जीवोने हणे, जेम कंसें देवकीना पुत्रने हण्या तेनी पेठे जाणी लेवु. (अन्नंवाके०) अथवा अन्य महारा गोत्री

॥ दीपिका—अथ द्वितीयं क्रियास्थानाध्ययनमारन्यते तस्येदमादिसूत्र (सुयमेऽत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । श्रुत मया आयुष्मता नगवतैवमाख्यात । इह खलु क्रियास्थान नामाध्ययनं नवति । अस्य चायमर्थः । (संजूहेण) सामान्येन सक्षेपेण द्वे स्थाने नवत । ये केचन क्रियावतस्तेऽनयोरेव स्थानयोराख्यायते । तद्यथा । धर्मे चैव अधर्मेचैव । उपशातं धर्मस्थानमनुपशातमधर्मस्थान ॥१॥ तत्र णमितिवाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुप्रेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविचार । तस्यायमर्थः । इह जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्या दिशि सति विद्यंते एके केचन मनुष्या । तद्यथा । आर्याअनार्या उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा कायवतउन्नतान्हस्ववतोनीचशरीरा सुवर्णा. सुकांतयोऽदुर्वर्णानिस्तेजस सुरूपाविरूपाश्च ॥२॥ तेषामार्यादीनामिद वक्ष्यमाणमेतद्रूपं दंडसमादानं पापोपादान (संपेहाएत्ति) सप्रेक्ष्य तद्यथा नारकेषु तिर्यग्योनिषु मनुष्येषु ये चान्ये तथा प्रकारा सुवर्णदुर्वर्णा प्राणिनोविद्वासोवेदना सातासातरूपा विदंति अनुनवति । अत्र चत्वारोनंगा । तथाहि । सज्ञिनोवेदनामनुनवति जानंतिच १ सिद्धास्तु वेदनाजानति नानुनवति २ असज्ञिनोऽनुनवति न पुनर्जानंति ३ अजीवास्तु न जानति नाप्यनुनवति ४ इह प्रथमतृतीयान्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुनूताविति ॥३॥ तेषा नारकादीनामिमानि वक्ष्यमाणानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नवतीत्याख्यात तीर्थकृदादिनि । तद्यथा । स्वार्थायदंड पापोपादानमर्थदंड १ निष्प्रयोजन सावद्यक्रियानर्थदंड २ हिंसा प्राणिघातस्तयादंडोहिंसादंड ३ अकस्मादनुपयुक्तस्य दंडोऽकस्माद्दंड । अन्यस्य क्रिययाऽन्यस्य घातइत्यर्थः ४ दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुविषये यथा सर्पबुद्धिस्तया दंडो दृष्टिविपर्यासदंड. यथा शरादिक्षेपेण लेष्टुकादिबुध्या चटकादिहननं ५ मृषावादप्रत्ययिक ६ अदत्तादानप्रत्ययिक ७ अध्यात्मिकोदंडोयथा निर्निमित्तमेव दुर्मनाश्चितातुरस्तिष्ठति ८ मानप्रत्ययिकोदंडोयथाऽष्टमदस्थानोपगत पर हीन मन्यते ९ मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंड १० माया परवचनबुद्धिस्तयादंड ११ लोनप्रत्ययिक. १२ ईर्याप्रत्ययिकोदंड समितिगुप्तियुतस्य दोषयुक्तस्य सामान्येन कर्मबंध स्यात्॥ ४ ॥

॥ टीका—व्याख्यात प्रथमाध्ययन सांप्रत द्वितीयमारन्यते । अस्य चायमनिसबध । इहानंतराध्ययने पुष्करिणीपौंडरीकदृष्टातेन तीर्थिका सम्यङ्मोक्षोपायानावात्कर्मणा बंधका प्रतिपादिता सत्साधवश्च सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गप्रवृत्तत्वान्मोचका सदुपदेशदानतोपरेषामपीति । तदिहापि यथा कर्म द्वादशनि क्रियास्थानैर्बध्यते यथाच त्रयोदशेन मुच्यते तदेतत्पूर्वोक्तमेव बंधमोक्षयो. प्रतिपादन क्रियते । अनतरसूत्रेण चाय सबध । तद्यथा । निक्षुणा चरणकरणविदा कर्मक्षपणायोद्यतेन द्वादश क्रियास्थानानि कर्मबं

वइ इहखलु से अन्नस्स अठाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे॥१०॥से जहा णा मए केइ पुरिसे सालीणिवा वीहीणिवा कोद्दवाणिवा कंगूणिवा परगाणिवा रालाणिवा णिलिज्जमाणे अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थ णिसिरेज्जा से सामग तणगं कुमुदग वीहीऊसिय कलेसुयं तणं छिंदिस्सामित्ति कट्टु सा लिवा वीहिवा कोद्दवंवा कगुवा परगंवा रालयंवा छिंदित्ता नवइ इति खलु से अन्नस्स अठाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्ति यं सावज्जं आहिज्जइ चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिए आहिए॥११॥

अर्थ–हवे चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् प्रत्ययिक दंम कहियेछेये जेम कोइएक लुब्धकादिक पुरुष कच्छने विषे, अथवा यावत् वन गहन पर्वतादिकने विषे. (मियव त्तिए के०) मृगे करी जेनी आजीविका वर्त्तेछे ते मृगवार्त्तिक (मियसकप्पे के०) तथा मृ गने विषे, जेनो संकल्पछे (मियपणिहाणे के०) मृगनेविषे जेनो प्रणिधान एटले अंतःक रणछे एवो छतो (मियवहाएगंता के०) मृगना वधने अर्थे वन पर्वतादिकने विषे जइने, (एएमियत्तिकाउ के०) आ अमुक मृग नजीक देखायछे एमकरीने (अन्नयरस्समिय स्सवहाए के०) ते अन्य मृगना वधने अर्थे (उसुआयामेत्ताणणिसिरेज्जा के०) धनुष्य बाण ताकीने मूके चलावे. (तेमियंवहिस्सामित्तिकट्टु के०) ते मृगनो वध करीश, एम करीने एटले ते मृगने वेधशु एवा नावे बाण मूके थके वचालें अन्य जीव हणाए. ते कहेछे (तित्तिरवा के०) तित्तर, (वट्टगवा के०) वर्त्तक, (चडगंवा के०) चकलो, (लाव गवा के०) लावक, (कवोयगवा के०) कपोत, (कविवा के०) होलो, (कविंजलवा के०) कपिंजल, ए मादेला जीवोने (विंधित्तानवइ के०) विंधनारो होयछे (इहख लुसेअन्नस्सअठाए के०) अहीं निश्चे ते अन्यने अर्थे प्राणघात चिंतव्यो, अने वचमां (अ जा प्राणीनो घात करे, ते कारणे एने (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम कहिये.॥१०॥

हवे वनस्पति आश्रित अकस्मात् दंम कहेछे जेम नाम एवी संभावनाये कोइएक करसणी पुरुष (सालीणिवा के०) सालधान (वीहीणिवा के०) व्रीहीधान्य (कोद्दवा णिवा के०) कोद्राधान्य, (कगूणिवा के०) कागणीधान्य, (परगाणिवा के०) बंटीधा न्य, (रालाणिवा के०) रालो धान्य, इत्यादिक सर्व चोवीश जातना धान्यछे, ते धान्यनुं (णिलिज्जमाणे के०) निंदान करतो थको (अन्नयरस्सतणस्सवहाए के०) ते धान्य मादेलु शाल्यादिक तृण कापवाने अर्थे (सत्थणिसिरेज्जा के०) दात्रादिक शस्त्र, वाहे एट

ङ्गगद्दजोहे, श्रचल गणण संवणा नावे, ॥ १६० ॥ (नामठवणेत्यादि) इयंच गाथा ऽऽचारप्रथमश्रुतस्कंधे द्वितीयाऽध्ययने लोकविजयाख्ये (जेगुणे से मूलगणे) इत्यत्र स्थानशब्दस्य सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्या प्रबंधेन व्याख्यातेति नेह प्रतन्यते । इह पुनर्यया क्रियया येन च स्थानेनाधिकारस्तद्दर्शयितुमाह । " समुदाणियाणिह तउ, समं पउत्तेय नावगणमि ॥ किरियाहिं पुरिस यावा, इएउ सवेपरिरकेवो,, ॥ १६१ ॥ (समुदाणीत्यादि) क्रियाणा मध्ये समुदानिकाक्रिया व्याख्याता, तस्याश्च कपायानुगतत्वात् बहवो नेदा यतस्ततस्तासा सामुदानिकाना क्रियाणामिह प्रकारे (एणउत्ति) अधिकारो व्यापार सम्यक्प्रयुक्तेच नावस्थाने । तच्चेह विरतिरूपं सयमस्थान प्रशस्तनावसंधान रूपंच गृह्यते । सम्यक्प्रयुक्तनावस्थानग्रहणसामर्थ्यादीर्यापथिका क्रियापि गृह्यते । सामुदानिका क्रियाग्रहणाच्चाप्रशस्तनावस्थानान्यपि गृहीतान्यानिश्च पूर्वोक्तानि क्रियाभि पूर्वोक्तान् पुरुपान् तद्द्वारायातान्प्रावाडुकाश्च परीकृते सर्वानपीति । यथा चैव तथा स्तएव सूत्रकारस्तं (जहासे एगऽयामणुस्सानवतीत्यादि) तथा प्रावाडुकपरिक्षायामपि (णायउ उगरएंचविप्पजहा निरकायरियाए समुठिया) इत्यादिना वक्ष्यतीति गतोनिर्युक्त्यनुगम । सांप्रत सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे श्राउसतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नगवतैवमाख्यातमिह खलु क्रियास्थान नामाध्ययनं तस्यचायमर्थ । (इह खलु संजूहेणति) सामान्येन सक्षेपेण समासतोद्वे स्थाने नवत । ये क्रियावतस्ते सर्वेप्यनयो स्थानयोरेवमाख्यायंते । तद्यथा धर्मेचैवाधर्मेचैव । इदमुक्त नवति धर्मस्थानमधर्मस्थानच । यदिवा धर्मादनपेत धर्म विपरीतमधर्म । कारणशुद्ध्या च कार्यशुद्धिर्नवतीत्याह । उपशांतं यत्तद्धर्मस्थानमनुपशांत वाऽधर्मस्थान तत्रोपशाते उपशमप्रधाने धर्मस्थाने ऽधर्मस्थानेवा केचन महासत्वा समासन्नोत्तरशुनाद्वयोवर्तते । परेच तद्विपर्यस्ते विपर्यस्तमतय ससारानिष्वगिणोऽधोऽधोगतयोवर्तते । इहच यद्यप्यनादिनवान्यासादिंद्रियानुकूलतया प्रायश पूर्वमधर्मप्रवृत्तोनवति पश्चात्सदुपदेशयोग्याचार्यससर्गाद्धर्मस्थाने प्रवर्तते । तथाप्यन्यर्हितत्वात्पूर्व धर्मस्थानमुपशमस्थानच प्रदर्शितं पश्चात्तद्विपर्यस्तमिति ॥ १ ॥ साप्रतं तु यत्र प्राणिनामनुपदेश स्वपरप्रवृत्त्यादावेव स्थान नवति तदधिकृत्याह । (तहणइत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथम स्याधर्मपक्षस्य स्थानस्य विविधोनगोविनंगोविचारस्तस्यायमर्थइति । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिपु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्या पुरुपास्तेचैव नूतानवतीत्याह । तद्यथा । श्रारायाता सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्यास्तद्विपरीताश्चाऽनार्याएके केंचन नवति यावद्दूरूपा सुरूपाश्चेति । तेपा चाऽऽर्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूप । दंडय

त्पोयस्यासौ मृगसंकल्प । एतदेव दर्शयति । मृगेषु प्रणिधानमंत·करणवृत्तिर्यस्यासौ मृगप्रणिधान क मृगान्हनिष्यामीत्येतदध्यवसायी सन् मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता नवति तत्रच गत सदृष्ट्वा मृगानेते मृगाइत्येव कृत्वा तेषां मध्येऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं श र (आयामेतत्ति) आयामेन समाकृष्य मृगमुद्दिश्य निसृजति सचैवसकल्पोनवति । तथा ऽह मृगं हनिष्यामीति इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरादिकं पक्षिविशेषं व्यापादयि ता नवति । तदेव खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तो दंडो यदाऽन्यं स्पृशति घातयति तदा ऽकस्माद्दंडइत्युच्यते ॥१०॥ अधुना वनस्पतिमुद्दिश्याकस्माद्दंडउच्यते (सेजहेत्यादि) तद्य थानाम कश्चित्पुरुष कृषीवलादि शाल्यादेर्धान्यजातस्य श्यामादिक तृणजातमपनयन् धान्यशुद्धिकुर्वाण सन्नन्यतरस्य तृणजातस्यापनयनार्थं शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत्सच श्या मादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिंवा रालकंवा छिंद्याद्रक्षणीयस्यैवासावकस्मा च्छेत्ता नवति. इत्येवमन्यस्यार्थायान्यकृते ऽन्यंवा स्पृशति छिनत्ति । यदिवा स्पृशतीत्य नेनापि परितापं करोतीति दर्शयति । तदेव खलु तस्य तत्कर्तुस्तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंड निमित्तं सावद्यमिति पापमाधीयते संबध्यते । तदेतच्चतुर्थदंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्य यिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

अहावरे पंचमे दंमसमादाणे दिहिविपरियासियादंमवत्तिएत्ति आहिज्ज इ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिइहिंवा नाइहिंवा नगिणीहिंवा नजाहिंवा पुत्तेहिंवा धूताहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं सवसमाणे मित्तं अमि त्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुव्वे नवइ दिहि विपरियासियादंमे ॥१२॥ से ज हा णामए केइपुरिसे गामघायंसिवा णगरघायंसिवा खेडकव्वडमंमवघा यंसिवा दोणमुहघायंसिवा पट्टणघायंसिवा आसमघायंसिवा सन्नि वेसघायंसिवा निग्गमघायंसिवा रायहाणिघायंसिवा अतेणं तेणमि त्ति मन्नमाणे अतेणं हयपुव्वे नवइ दिहिविपरियासियादंमे एवं खलु त स्स तप्पत्तिय सावज्जंति आहिज्जइ पंचमे दंमसमादाणे दिहिविपरिया सिया दंमवत्तिएत्ति आहिए ॥१३॥

अर्थ—हवे अपर पांचमो दृष्टिविपर्यास नामे क्रिया स्थानक कहियें छैए. ते जेम नाम एवी संनावनाये कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, बेन, नार्या, पुत्र, दीकरी, पुत्रनी वहु, प्रमुख परिवार (सद्धिंसवसमाणे के०) सहित वसतो थको ज्ञाति पालवाने अर्थे (मित्तअमित्तमेवमन्नमाणे के०) पोताना मित्रने दृष्टिना विपर्यास थकी " ए महारो

अर्थ-(पढमे दंमसमादाणे के०) त्या पहेलोजे क्रिया स्थानक तें (अहादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ के०) अर्थ दंम प्रत्ययिक एवे नामे कहियेठेयें (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते कहेडे णाम एवी सजावनायें डे (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थ, अथवा (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति स्वजनादिकने अ र्थे, (आगारहेउंवा के०) घरने अर्थे, (परिवारहेउंवा के०) दास दासी कुमारादिक परिवारने अर्थे, (मित्तहेउवा के०) मित्रने अर्थे, (णागहेउंवा के०) नागकुमार देव तानें अर्थे, (नूतहेउवा के०) नूत देवताने अर्थे, (जरकहेउंवा के०) यक्ष देवताने अर्थे, (तंदंमतसथावरेहिंपाणेहिं के०) ते दंम, त्रस अने स्थावर प्राणीउने विषे (सयमेवणि सिरिंति के०) स्वयमेव एटले पोतेंज उपघात करे (अणेणविणिसिरावेति के०) अ नेरा वीजा पासे उपघात करावे (असंपिणिसिरितसमणुजाणइ के०) अनेरो वीजो कोइ उपघात करतो होय तेने अनुमोदे (एवखलु के०) एरीतें निश्चें थकी (तस्सतप्पत्ति यंसावज्जंति के०) करण करावण अने अनुमतियें करी करे, तेहने तत्प्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म (आहिज्जइ के०) वंधाय (पढमेदंमसमादाणेअहादंमवत्तिएत्तिआहिए के०) एटले प्रथम क्रिया स्थानक अर्थदंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यु ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-प्रथम दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययइत्याख्यायते । तद्यथा नाम कश्चित्पुरु ष. आत्महेतुमात्मार्थं ज्ञातिहेतुं स्वजनाद्यर्थं आगारहेतु गृहार्थं परिवारार्थं मित्रनाग नूतयक्षाद्यर्थं तं दंडं त्रसस्थावरेषु प्राणिषु स्वयं निसृजति निक्षिपति अन्येनापि कारयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते एव तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्म आधीयते संवध्यते ए तत्प्रथम दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातं ॥ ५ ॥

॥ टीका-यथोद्देशस्तथा निर्देशइतिकृत्वा प्रथमक्रियास्थानादारन्य व्याचिख्यासुरा ह । (पढमे त्यादि) यत्प्रथममुपात्त दंडसमादानमर्थायदंडमित्येवमाख्यायते । तस्यायम र्थः । तद्यथा नामकश्चित्पुरुष । पुरुषग्रहणमनुक्तमुपलक्षण । सर्वोपि चातुर्गतिक प्रा एयात्मनिमित्तमात्मार्थं तथाज्ञिज्ञातिनिमित्तं स्वजनाद्यर्थं तथाऽगार गृह तन्निमित्त तथा परिवारोदासीकर्मकरादिक परिकरोवा गृहादेर्वृत्त्यादिकस्तन्निमित्तं तथा मित्रनागनूतय क्षाद्यर्थं तथानूतं स्वपरोपघातरूपं दंडं त्रसस्थावरेषु स्वयमेव निसृजति निक्षिपति दंड मिव दंडमुपरि पातयति प्राण्युपमर्दकारिणीं क्रिया करोतीत्यर्थः । तथाऽन्येनापि कार यत्यपरं दंड निसृजत समनुजानीते । एव कृतकारितानुमतिन्निरेव तस्याऽनात्मज्ञस्य त त्प्रत्ययिक सावद्यक्रियोपात्तं कर्माधीयते संवध्यतेइति । एतत्प्रथम दंडसमादानमर्थदंड प्रत्ययिकमित्याख्यातमिति ॥ ५ ॥

तु व्यापादयेत्तेन च दृष्टिविपर्यासवता मित्रमेव हतपूर्व नवतीति अतोदृष्टिविपर्यासदं डोयं ॥१२॥ पुनरप्यन्यथा तमेवाह। (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुष पुरुष कारमुद्दहन् ग्रामघातादिके विभ्रमे भ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमित्येव म न्यमानोव्यापादयेत्। तदेव तेन भ्रांतमनसा विभ्रमाकुलेनाचौरएव हतपूर्वोनवति सोऽयं दृष्टिविपर्यासदंड। तदेव खलु तस्य दृष्टिविपर्यासवत् तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्मा धीयते। तदेव पंचम दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

अहावरे ब्रह्मे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा अगारहेउंवा परिवारहेउंवा सयमेव मुसंवयंति अस्सेणंवि मुसवयावेति मुसंवयंतंपि अस्सं समणुजाणइ एवं खलुतस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ ब्रह्मे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए ॥१४॥

अर्थ–हवे बठो क्रिया स्थानक मृषावादप्रत्ययिक कहेछे. पूर्वोक्त पाचने दंमसमादान पणे कह्या कारण के, तेमाहे प्राय. परनो उपघात थायछे, अने अहींथी हवे क्रिया जछे माटे एने क्रियास्थान एवी संज्ञा करवी अने हवे एथकी आगलजे क्रिया स्थानक कहेशे. ते थकी प्राय परजीवनो विनाश नथी, तेमाटे तेने क्रियास्थान संज्ञा कहेवाय अने पूर्वेना पाच स्थानने दंमसमादान एवी संज्ञाछे एटलुं विशेष जाणवु.

हवे बठो क्रिया स्थानक विचारियें छैयें ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइएक पुरुष (आयहेउवा के०) पोताने अर्थे (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति गोत्रीने अर्थे (अगारहेउवा के०) घरने अर्थे (परिवारहेउवा के०) परिवार जे दास दासी तेने अर्थे (सयमेवमुसवयंति के०) स्वयमेव मृषावाद बोले एटले जेम हु कोइ प्रकारे चोर नथी अथवा महारो परिवार कोइ चोर नथी एवो मृषावाद बोले (असेणविमुसवयावेति के०) अन्य पासे मृषावाद बोलावे, (मुसवयंतपिअसमणुजाणइत्ति के०) अन्य कोइ मृषावाद बोले तेने अनुमोदे, एरीते निश्चे करण करावण अनुमोदन थकी मृषावाद बोले तेने तत्प्रत्ययिक सावद्यकर्म बधाय ए बठो क्रियास्थानक मृषावाद प्रत्ययिक कह्यो ॥१४॥

॥ दीपिका–अथापर षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं ज्ञातिपरिवारनिमित्तंवा स्वयमेव मृषावादं वदति नायं मदीयइत्यादि तथाऽचौरं चौरं वदति तथाऽन्येन मृषावादं वादयति अन्यं मृषावादं वदंतं समनुजानीते। एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते। एतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातं। पूर्वोक्तानां पंचानां क्रियास्थानानां सत्यपि क्रियास्थानत्वे प्राय

णे. (णोमंसाए के०) मांसने अर्थें न हणे, (णोसोणियाए के०) शोणितने अर्थें न हणे, (एवहियियाए के०) एमज हियो एटले हृदयना मास ने अर्थें न हणे, (पित्ताए के०) पित्तने अर्थें न हणे, (वसाए के०) वसाने अर्थे न हणे, (पिछाए के०) पिछने अर्थें न हणे, (पुछाए के०) पुछने अर्थें न हणे, (वालाए के०) वाल रोमने अर्थें न हणे, (सिंगाए के०) सिंगडाने अर्थें न हणे, (विसाणाए के०) वृषण प्रताज पोड्सने अर्थें न हणे, (दंताए के०) दातने अर्थें न हणे, (दाढाए के०) दाढने अर्थें नहणे (णहाए के०) नखने अर्थें न हणे, (ण्हारुणिए के०) नसा नाडीने अर्थें न हणे, (अहिए के०) अस्थिने अर्थे न हणे, (अहिमंजाए के०) हाडकानी मिजाने अर्थें न हणे, एटला ए कारणने अर्थे कोइ जीवने हणे नहीं, परंतु कारण विना जीवने हणे, (णोहिंससुमित्ति के०) अतीतकाले पण एटला कारण नणी जीव हण्या नथी, तथा (णोहिंसिंतिमेत्ति के०) वर्त्तमान काले पण हणे नही (णोहिंसिस्सतिमेत्ति के०) आगमिक कालें पण हणशे नही, (णोपुत्तपोसणाए के०) एवु पण न जाणे जे ए जीवनो विनाश करीने मह्ारा पुत्रनुं पोपण करीश. (णोपसुपोसणयाए के०) पशुनुं पोपण करशुं, एम पण न जाणे, (णोआगारपरिवूहणताए के०) ग्रह घरनी वृद्धि शातिक पुष्टिकादिक निमित्तें पण हणे नहीं. (णोसमणमाहणवत्तणाहेउं के०) श्रमण ब्राह्मणनुं पोपण करवा निमित्ते पण न हणे (णोतस्ससरीरगस्सकिंचिविप्परियादित्तानवति के०) तथा पोताना शरीरना परित्राणने अर्थें एटले पोपणनेअर्थें पण न हणे किंतु? क्रीडा निमित्तें, अथवा व्यसने करी निरर्थक पणे (सेहंता के०) ते जीवनो हणनार थाय दमादिक ना प्रहारे करी जीवने हणे, (छेत्ता के०) जीवोना कर्ण नासिकादिक छेदे, (नेत्ता के०) नेदे, शूलिकारोपण करे (लुंपइत्ता के०) अगना अवयव कापी नाखे (विलुंपइत्ता के०) चामडी उपाडी उखेडी नाखे, (उद्दवइत्ता के०) नाना प्रकारना पीडाकारी उपद्रव उपजावे, (उज्जिउंबालेवेरस्सआनागीनवति के०) एतावता तेवाल विवेक गमीने नि केवल वैरनो विनागी थाय. (अणहादंमे के०) एटले त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंम कह्यो. ॥६॥ (हवे स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंम कहेछे (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टाते जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुप मार्गे जतो थको निरर्थक निर्विवेक पणे वृक्षना पल्लवने दंमादिके करी फाटकी नाखे, परंतु लेवानी वाछा कांइ न होय, वली (जेइमेथावरापाणानवति के०) जे ए स्थावर प्राणी होय (तजहा के०) ते देखाडेछे. (इक्कडाइवा के०) तृण विशेप प्रसिद्धछे (कडिणाइवाजतुगाइवापरगाइवा के०) वासथकी उपनु जे तृण विशेप, जेणे करी फुल गुंथाय ते जाणवु (मोरकाइवा के०) नदीमा थायछे ते, (तणाइवा के०) तृण प्रसिद्ध (कुसाइवा के०) मान, (कुछगाइवा के०) वनस्पति विशेप, (प

अहावरे अठमे किरियाठाणे अज्ज्ञवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे णत्थिणं केइकिंविसंवादेति सयमेव हीणे दीणे डुठे डुम्मणे उहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविठे करतलपल्लहत्थमुहे अट्टज्झा णोवगए नूमिगयदिठिएभियाइं तस्सण अज्ज्ञया आसंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जइ तं कोहे माणे माया लोहे अज्ज्ञमेव कोहमाणमा यालोहे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जति आहिज्जइ अठमे किरिया ठाणे अज्ज्ञवत्तिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे अपर आठमो क्रिया स्थानक अध्यात्मिकप्रत्ययिक नामे कहेछे. अध्या त्मिक केहेतां जे कर्म बधनुं कारण एवो नाव चित्त थकी उपजे, तेमाटे अध्यात्मिक क ह्यिे ते जेम नाम एवी संनावनाये कोइएक पुरुषछे तेने (णत्थिणं केइकिंविसंवादेति के०) कोई विखवादनु कारण नथी. विखवाद एटले परानव तेने कोइ करे नही, तथापि ते पुरुष, (सयमेवके०) पोतेज (हीणेदीणेडुठेडुम्मणेके०) हीन, दीन, डुष्ट अने डुर्मन एटले डुंमा मन वालो थाय (उहयमणसंकप्पे के०) अनवस्थित चित्त संकल्प एवो थको, (चिंतासोगसागरसंपविठे के०) चिंता शोक रूप समुइमांहे पेठो एवो थको, जे अव स्था करे, ते देखाडेछे (करतलपल्लहत्थमुहे के०) हाथना तलाने विषे स्थाप्युंछे मुख जेणे एटले गालने विषे हाथ देइने (अट्टज्झाणोवगए के०) आर्त्तध्यान सहित (नू मिगयदिठिएयियाइ के०) नूमिनी सन्मुख एकाग्रचित्तें जोतो निर्विवेक पणे आर्त्त, रौ इ, ध्यान ध्यावे (तस्सणअज्ज्ञया के०) तेने अध्यात्मनी (आसंसइया के०) आ शंसा मिश्रित (चत्तारिठाणाएवमाइज्जइत्तं के०) चार स्थानक कहिए ते कहेछे पेहे लो क्रोध, बीजुं मान, त्रीजी माया, अने चोथो लोन (अज्ज्ञमेव के०) ते पोताना मनथीज उत्पन्नथाय ए क्रोध, मान, माया, अने लोन, ए चारे करी जीवनो मन दोष डुष्ट थाय एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. तेमाटे ए आठमो क्रिया स्थानक आध्यत्मिक प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अथापरमष्टम क्रियास्थानमाध्यात्मिकमत करणोद्भवमाख्यायते । य था कश्चिन्नरस्तस्य नास्ति कश्चिद्विसवादयिता परानवकरस्तथाप्यसौ सयमेव हीनोदीनो डुष्टोडुर्मनाअपहतमन संकल्प चिंताप्रधानः शोकश्चिंताशोकस्तत्र प्रविष्ट करतले पर्यस्तं स्थितं मुख यस्य सतथा आर्तध्यानोपगतोनूमिगतदृष्टिर्ध्यायति तस्यैवमाध्यात्मिकानि चित्तोद्भवानि असशयितानि नि सशयानि चत्वारि स्थानानिस्यु । तानि चैवमा

पोषणाय अगार गृह तस्य परिबृंहण वृद्धिस्तदर्थं नोहिनस्ति तथा श्रमणब्राह्मणवर्तनहेतुं यत्पाल्यते तस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणिहिंसनं न स्यात् इत्यादिहेतून् विनाऽसौ क्रीडया हंता भवति दंडादिभिश्छेत्ता कर्णादीनां भेत्ता शूलादिना लुंपयिता अंगावयवकर्तनतोविलुंपयिता नेत्रोत्पाटनचर्मकर्तनादितोजीवितादपद्रावयिता सच सद्विवेकमुज्झित्वा बालोऽज्ञोवैरस्य भागी भवति। पंचेंद्रियजीवपीडातोऽनर्थदंडउक्त ॥६॥ अथ स्थावरानाश्रित्याह् । यथा कश्चित्पुरुष पथि गछन् निर्निमित्तमेव वृक्षादे पल्लवादिक दंडादिना प्रध्वंसयति । एतदेवाह् । येऽमी स्थावरावनस्पतिकाया प्राणिन स्यु । त द्यथा । इक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तान् पत्रपुष्पफलादि निरपेक्ष क्रीडया छिनत्ति न पुत्रपोषणायेत्यादि पूर्ववत् । यावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य भागी भवति । अयमनर्थदंडो वनस्पत्याश्रयउक्त. ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह् । तद्यथानाम कश्चित्पुरुष कच्छे नदीजलवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे ह्रदेप्रतीते उदकेजलाशयमात्रे (दविर्यंति) तृणादिद्रव्यसमुदाये वलये वृत्ताकारनद्यादिजलकुटिलगतियुक्तप्रदेशे तमे अवतमसे गहने वृक्षवल्लीसमुदाये गहनविदुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्लीसमुदाये वनविदुर्गे नानाविधवृक्षसमूहे एतेषु कच्छादिषु दशस्थानेषु तृणानि उत्सर्प्य ऊर्ध्वीकृत्य, स्वयमेवाऽग्निकाय निसृजति निक्षिपति अन्येन वाऽग्निकायं निसर्जयति निक्षेपयति अन्यमप्यग्निकायं निसृजत समनुजानीते अयमनर्थदंड । तदेव खलु तस्य तत्प्रत्ययिक दवदाननिमित्तं सावद्य कर्मव्याख्यात । एतच्च द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

॥ टीका–अथापर द्वितीय दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते तदधुना व्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव निर्विवेकतया प्राणिनोहिनस्ति । तदेव दर्शयितुमाह् । (जेइमेइत्यादि) ये केचनामी संसारांतर्वर्तिन प्रत्यक्षावपाद्य प्राणिनस्तांश्चासौ हिंसन्नर्चाशरीर नो नैवार्चार्थं हिनस्ति तथाऽजिनं चर्म नापि तदर्थमेव मांसशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणनखस्नाय्वस्थिमज्जा इत्येवमादिक कारणमुद्दिश्य नैवाहिंसिषिपुर्नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणायेति पुत्रादिकं पोषयिष्यामीत्येतदपि कारणमुद्दिश्य न व्यापादयति तथा नापि पशूनां पोषणाय तथाऽगार गृह तस्य परिबृंहणमुपचयस्तदर्थंवा न हिनस्ति तथा न श्रमणब्राह्मणवर्तनाहेतु तथा यत्नेन पालयितुमारब्धं नोत स्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणव्यपरोपण भवति इत्येवमादिकं कारणमनपेक्ष्यैवासौ क्रीडया तछीलतया व्यसनेन वा प्राणिनां हंता भवति दंडादिभि । तथा छेत्ता भवति कर्णनासिकाविकर्तनतस्तथा भेत्ता शूलादिना तथा लुंपयितान्यतरांगावयवविकर्तनतस्तथा विलुंपयिताऽक्ष्युत्पाटनचर्मविकर्तनक

नो पक्ष, तेना मदें करीने, (कुलमएणवा के०) कुल एटले पितानो पक्ष, तेना मदें करीने, (बलमएणवा के०) शरीरनुं बल, तेना मदें करीने, (रूवमएणवा के०) रूपने मदें करीने, (तवमएणवा के०) तपने मदें करीने, (सुयमएणवा के०) श्रुतज्ञानने मदें करीने, (लाभमएणवा के०) लाभने मदे करीने, (ईस्सरियमएणवा के०) ऐश्वर्य एटले ठकुराइने मदें करीने, (पन्नामएणवा के०) प्रज्ञाना मदें करीने, एटलाना मद (अन्नतरेणवा के०) अथवा अन्य एटले बीजा कोइ (मयहाणेण के०) मदना स्थानके करीने (मत्तेसमाणे के०) मातो थतो (परहिलेंति के०) बीजानी हेलना करे, (निदेंति के०) निंदा करे, (खिंसति के०) खष्ट करे, (गरहति के०) गर्हा करे, (परिभवइ के०) पराभव करे, (अवमन्नेति के०) अपमान करे, (इत्तरिएअ य के०) ए बापडो जघन्य एटले जातिकुलादिके हीनछे. (अहमंसिपुणविसिठ्ठेजाइकुलबलाइगुणोववेए के०) हुं वली विशेष जाति, कुल, बलादिकगुणेकरी सहितछुं (एवअप्पाणसमुक्कस्से के०) एम पोताना आत्माने उत्कर्ष एटले अहंकार करे. हवे एवा मद करनारने विपाक देखाडेछे (देहाचुए के०) ते पुरुष आ लोक माहे पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय, अने परलोके पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय देहाचुए एटले आ शरीरथकी चवीने परभवे (कम्मबित्तिए के०) कर्मद्वितीय (अवसेपयाइ के०) एतावता कर्मने वश वर्त्ततो चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे (तजहा के०) ते कहेछे (गप्भाउगप्भ के०) एक गर्भ थकी मरण पामिने, वली बीजा गर्भ माहे उपजे (जम्माउजम्म के०) एक जन्म थकी बीजुं जन्म पामे, (माराउमार के०) मरण थकी मरण पामे, (णरगाउणरग के०) नरक थकी निकलीने वली नरकातरे नरकमा जइने तीव्र दुःख भोगवे, एटले ते नरकमाहे थी निकलीने, सिंह मत्स्यादिक माहे उत्पन्न थाय, फरी त्यांथी मरण पामीने तीव्रतर नरकातरे जाय एतावता ते (चंमे के०) रौद्र अहंकारी (थद्धे के०) स्तब्ध अनम्र शील (चवले के०) चपल एवा लक्षणेयुक्त (माणियाविभवइ के०) ते अभिमानी पुरुष होय एम निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बधाय, ए नवमो क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथापर नवम क्रियास्थान मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा कश्चित्पुरुषो जात्यादिगुणोपेत सन् जातिकुलबलरूपतप श्रुतलाभैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्थानैर न्यतरेण वा मत्त पर हीनबुद्ध्या हीलयति, निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिभवति । यथाय मितरोजघन्योहीनोमत्त कुलादिभि । अह पुनर्विशिष्टकुलादिगुणोपेतएवमात्मानमुत्क

स्वजनादिकने हणशे. (अन्निवा के०) अथवा तेना कोइएक बीजाने (हिंसंसुवा के०) अतीतकालें हण्योछे (हिंसइवा के०) वर्तमान कालें हणेछे. (हिंसिस्सइवा के०) आगमिक कालें हणशे (तंदमंतसथावरेहिंपाणेहिसयमेवणिसिरिंतिके०) एम जाणीने दंमेक रीत्रसस्थावर प्राणीनो पोते घात करे, बीजानी पासे घात करावे, अथवा अन्य कोइ घात करतो होए तेने अनुमोदन आपे ए हिंसादंम, एम निश्चे एने प्रत्यये एटले ते आश्रित सावद्यकर्म बंधाय, एटले त्रीजो क्रिया स्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो.॥ए॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयमाह । अथापर तृतीयं दंडसमादान हिंसादंडप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोमामयं घातयिष्यतीति मत्वा, सर्पादिक हति यथा कंसोदेवकीसुतान् परशुरामोवा यथा कार्तवीर्यं जघान । मदीयं पितरमन्यदीयस्य वा कस्यचित्सुवर्णपशुप्रभृतेरयमुपद्रवकारीति मत्वा, तत्र दंम निसृजति तदेव मा मदीयं अन्यमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीत्येव संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंमं स्वयं निसृजति अन्येन निसर्जयति अन्यं निसृजतं समनुजानीते । एतत्तृतीयं दंड समादान हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यातम् ॥ ए ॥

॥ टीका–तृतीयमधुना व्याचिख्यासुराह । (अहावरे इत्यादि) अथापर तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुष पुरुषकार वहन् स्वतोमरणजीरुतया वा मामयं घातयिष्यतीत्येव मत्वा, कंसवद्देवकीसुतान् जावतो जघान मदीयं वा पितरमन्यं वा मामकं ममीकारोपेत परशुरामवत्कार्तवीर्यं जघाना न्यं वा कचनाप सर्पसिंहादिक व्यापादयिष्यतीति मत्वा सर्पादिक व्यापादयति अन्यदीय स्य वा कस्यचिद्धिरण्यपश्वादेरयमुपद्रवकारीति कृत्वा तत्र दंड निसृजति । तदेवमय मा मदीयमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीतिवेत्येव संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंडं प्राणव्यपरोपणलक्षण स्वयमेव निसृजति अन्येन निसर्जयति निसृजतं वाऽन्य स मनुजानीते । इत्येतत्तृतीयं दंडसमादान हिंसाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ए ॥

अहावरे चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे कछंसिवा जाव वणविड्डग्गंसिवा मियवत्तिए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गता एए मियत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुआयामेत्ताणं णिसिरंज्जा स मियं वहिस्सामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा चडगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंवा कविंजलंवा विंधित्ता न

नी परपरिनवेसति चडरोऽइोनवति परस्यापकरोति तदनावे ह्यात्मानं व्यापादयति । तथा स्तब्धश्चपलोयत्किंचनकारी मानी सन्सर्वोप्येतदवस्थोनवतीति । तदेव तत्प्रत्ययिकं माननिमित्त सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । नवममेतत्क्रियास्थानमाख्यातमिति॥१७॥

अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माईहिवा पिताहिवा नाईहिवा नइणीहिवा नज्जाहिवा धूयाहिवा पुत्तेहिवा सुएहाहिवा सद्धिं सवसमाणे तेसिं अन्नयरेसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुय दंम निवत्तेति तं जहा सीउदगवियडंसि वा काय उवोलित्तानवति उसिणोदगवियडेणवा काय उसिचित्ता नवति अगणिकाएण कायं उवडहित्तानवति जोतेणवा वेतेणवा णेतेणवा तयाइवा कसेणवा ठियाएवा लयाएवा पासाइं उद्दालित्तानवति दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा कायंआउडित्ता नवति तहप्पगारे पुरिसजाए सवसमाणे डुम्मणा नवति पवसमाणे सुमणा नवति तहप्पगारे पुरिसजाए दंमपासी दंमगुरुए दंमपुरक्कडे अहिए इमसि लोगसि सजलणे कोहणे पिठिमंसियावि नवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जति दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिए॥१८॥

॥ अर्थ–अथ हवे अपर दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक कहियेछैये. ते जेम नाम एवी संनावनार्थे कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, वेन, स्त्री, वेटी, पुत्र, पुत्रनीस्त्री, तेवहु जाणवी (सिद्धिंसवसमाणे के०) एटला साथे वसतो थको (तेसिंअन्नयरेसि के०) ते मातापिताठिकथी कोइ अनेरो अजाण पणे अनानोग थकी (अहालहुगंसि के०) यथा कथंचित् न्हानो डुर्वचन प्रमुखनो अथवा काय थकी हस्त पादादिकनो संघट्ट प्रमुख एवो (अवराहंसि के०) अपराध थये बते (सयमेव के०) पोतेंज क्रोधें करी धमतो थको तेने (गुरुयदंमनिवत्तेति के०) महोटो दम करे (तंजहा के०) ते कहेछे (सीउदगवियडंसिवा के०) सीतल पाणीये करी सीतकालने विषे (कायउवोलित्तानवति के०) ते अपराधीनु शरीर ठंमापाणी माहे वोले. एवा अकार्यनो करनार थाय तथा (उसिणोदगवियडेणवाकायंउसिचित्तानवति के०) उष्णकालें अत्यंत उष्ण पाणीयें करीने उष्ण तेलें करीने तेना शरीरनेसिंचे शरीरनुं शोषण करनार थाय, (अगणिकाएणकायंउवडहित्तानवति के०) अग्निकाये करीने तेना शरीरनु दहन करनार

जे चलावे. (तेसामगंतणगंकुमुडगं के०) ते मनमाहे एवु जाणे ठेजे हुं ए श्यामादिक ककुमुद तृणविशेपने ठेदिश पठी (वीहीकसियंकलेसुयं के०) व्रीहीकलेसुकादिक धान्य, ठेचु करीने ए धान्यमाहेथ्रु (तणंछिंदिस्सामितिकटु के०) तृण ठेदीश. एप्रकारें करीने. पठी ते तृणो ठेदतो थको शाली, व्रीही, कोड्वा कगुणी, बंटी, राला, इत्यादिक धान्यनो (ठिंदित्तानवति के०) ठेदनारो थाय (इतिखलुसे के०) एप्रकारे निश्चे ते (अन्नस्सअठाए के०) अन्यना घातनो अर्थ चितवतो थको (अन्नंफुसति के०) अन्यनो घात उपजावे एटले तृणोने ठेदतो थको धान्यने ठेदे, ते कारणे (अकम्माडंम्हे के०) एने अकस्मात् दम्कहिए, एम निश्चे तेने ते निमित्ते एटले तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बधाय एप्रकारे ए चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् दंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—अथापर चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दडप्रत्ययिकमाख्यायते । अकस्मादित्ययशब्दोमगधदेशे लोके संस्कृतएवोच्चार्यते ततइहापि तथैवोक्त । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोलुब्धकादि कच्छादिपु गत्वा मृगैर्वृत्तिर्जीविका यस्य समृगवृत्तिकोमृगेपु सकल्पो यस्यसतथा मृगेपु प्रणिधान चित्तवृत्तिर्यस्यसतथा मृगवधार्थं कच्छादिपु गंता नवति तत्रच गत सएते मृगाइति कृत्वा ऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरमायामेन समारुप्य, निसृजति सच मृग हनिष्यामीति कृत्वा इपुं क्षिप्तवान् सच तेनेपुणा तित्तिर, वर्तकंवा लावकवा, कपोतकंवा कपिवा, कपिजलंवा, पक्षिविशेप व्यापादयिता नवति । इह खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तोदंडोयदाऽन्य स्टशति घातयति सोऽकस्माद्दंडइत्युच्यते ॥१०॥ अथ वनस्पतिमुद्दिश्येममेव दडमाह । तद्यथानामकश्चित्पुरुप' कृपीवलादि शालिव्रीहिकोद्रवकगुरालादिधान्यस्य श्यामतृणककुमुदकलेसुकतृणानि तृणविशेपास्तानि (णिन्लिज्ञमाणे) अपनयन् धान्यशुद्धिं कुर्वाणोऽन्यतरस्य तृणस्य छेदाय शस्त्र दात्रादिक निसृजेत् । सच श्यामादिक तृण ठेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालि वा यावद्रालादिक वा छिंद्यात । रक्षणीयस्यैवाऽकस्मादसो ठेत्ता स्यादित्यन्यस्य कृतेऽन्यं स्टशति छिनत्ति । एव खलु तस्य तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दडनिमित्तं सावद्य पापमाधीयते सवध्यते । एतच्चतुर्थं दडसमादानमकस्माद्दडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

॥ टीका—अथापर चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । इह चाकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे सर्वेणाप्यागोपालागनादिना सस्कृतएवोच्चार्यतइति तदिहापि तथानूतएवोच्चारितइति । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषोलुब्धकादिक कच्छे वा यावद्वनडुर्गेवा गत्वा मृगैर्हरिणैराटव्यपशुनिर्वृत्तिर्वर्तन यस्यस मृगवृत्तिक सर्चवनूतोमृगेषु संक

पताडयिता नवति । तथाविधे पुरुषे स्वल्पापराधेपि महादंडकारिणि एकत्र वासं कुर्वंति मातापित्रादयोऽर्मनस स्यु । तस्मिन् प्रवसति दूर गछति सति सहवासिन. सुमनस सुखिन स्यु । तथाप्रकारस्तादृश पुरुषोदंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ, दंडप्रष्टोदंड पुरस्कृतोयेन सदंडपुरस्कृतोऽस्मिन् लोके स्वस्य परेषां चाऽहित परलोकेप्यहित संज्वलन क्रोधकारी क्रोधनोवधवधादिषु अविमृश्य प्रवृत्तिकृत् पृष्ठिमांसखादक परम र्मोद्घट्टनत. । एव तस्य स्वल्पापराधेपि महादंडकर्तुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । तदेतद्दशम क्रियास्थानमाख्यातमिति । अन्ये पुनरष्टम क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते । नवमंतु परदोषप्रत्ययिकं । दशम पुन. प्राणवृत्तिकमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं दशम क्रियास्थान मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषं प्रजुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिनि सार्ध परिवसन्तेपाच मातापित्रादीनामन्यतमे नानानोगतया यथाकथचि ल्लघुतमेप्यपराधे वाचिके डुर्वचनादिके तथा कायिके हस्तपादादिके सघट्टरूपे कृते सति स्वयमेवात्मना क्रोधध्मातोगुरुतर दंडं डु खोत्पादकं निवर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदके विकटे प्रजूते शीतेवा शिशिरादौ तस्यापराधकर्तु कायमधोबोलयिता नवति तथोष्णोदकविकटेन कायं शरीरमपसिंचयिता । तत्र विकटग्रहणाड्डुष्णतैलेन कांजिकादिनावा कायमुपतापयिता नवति तथाऽग्निकायेनाल्मुकेन तप्ताय सावा कायमुपदाहयिता नवति तथा जोत्रेणवा वेत्रेणवा नेत्रेणवा त्वचा वासनादिकपालजतया वाऽन्यतरेण वा दवरकेण ताडनतस्तस्यापराधकर्तु शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितु चर्माणि लुपयितु नवति तथा दडादिना कायमुपताडयिता नवति । तदेवमल्पापराधिन्यपि महाक्रोधदंडवति तथा प्रकारे पुरुषजाते एकत्र वसति सति तत्सहवासिनोमातापित्रादयोऽर्मनसस्तदनिष्टाशकया नवति तस्मिंश्च प्रवसति देशांतरे गछति गतेवा तत्सहवासिन सुमनसोनवति । तथाप्रकारश्च पुरुषजातोऽल्पेप्यपराधे महात दंडं कल्पयतीत्येतदेव दर्शयितुमाह । दंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ दडपार्श्वी स्वल्पतया स्तोकापराधे कुप्यति दड च पातयति । तमप्यतिगुरुमिति दर्शयितुमाह । दंडेन गुरुकोदंडगुरु । यस्यच महान् दडोनवति असौ दडेन गुरुर्नवति । तथा दड पुरस्कृत सदा पुरस्कृतदंडइत्यर्थ । सचैवनूत स्वस्य परेषा चास्मिन् लोकेऽस्मिन्नेव जन्मनि अहित प्राणिनामहितदडपातनात् तथा परस्मिन्नपि जन्मन्यसावहितस्तच्छीलतया चासौ यस्य कस्यचिदेव येन केनचिदेव निमित्तेन क्षणेक्षणे संज्वलयतीति सज्वलन सचात्यतक्रोधनोवधवधनविछेदादिषु शीघ्रमेव क्रियासु प्रवर्तते तदन्नावेप्युत्कटद्वेषतया मर्मोद्घट्टनत पृष्ठिमासमपिखादेत्तत्तदसौ ब्रूयात् । येनासावपि पर सज्वलयेत् ज्वलितश्चान्येषामपकुर्यात् त

शत्रुछे ” एम जाणतो थको (मित्तेहयपुव्वेनवइ के०) मित्रने हणे. एटले ए पुरुष शत्रुनो विनाश करवा वाछतो मित्रनेज हणे तेने मित्रज हत पूर्व थाय (दिछिविपरियासियादंमे के०) एने दृष्टि विपर्यास दंम कहिये. ॥ १२ ॥

वली बीजी रीतें देखाडेछे, ते जेम कोइएक पुरुष (गामघायंसिवा के०) गामनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (णगरघायंसिवा के०) नगरनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (खेडकव्वडमम्बघायंसिवा के०) खेड कव्वड मम्पनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (दोणमुहघायंसिवा के०) द्रोणमुखनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (पट्टणघायंसिवा के०) पट्टणनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (आसमघायंसिवा के०) आश्रमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (सन्निवेसघायंसिवा के०) सन्निवेशनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (निग्गमघायंसिवा के०) निगमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, रायहाणिघायंसिवा के०) राजधानीनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (अतेणतेणमितिमन्नमाणेके०) अचोरने चोर करी जाणतो थको, (अतेणहयपुव्वेनवति के०) अचोर एटले साधुनेज हणे तेथी साधुज हत पूर्वथाय, तेथी ए दृष्टि विपर्यास दंम कहिए एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय। ए पांचमो क्रियास्थानक दृष्टिविपर्यास नामे दम समादान कह्यो ॥१३॥

॥ दीपिका—अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारजट्टादिर्मातृपितृजगिनीजार्यापुत्रडुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वसन् ज्ञातिपालनाय मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमिति मन्यमानोहन्यात्तेनच दृष्टिविपर्यासान्मित्रमेव हतपूर्वं स्यादतोदृष्टिविपर्यासदंडोऽयं॥ १२ ॥ पुनरन्यथा तमेवाह । यथावा कश्चित्पुरुषोग्रामघातादिके विभ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमिति मन्यमानोहन्यात् । एव तेन भ्रांतेनाचौरएव हतपूर्वं स्यात् । ग्रामादिलक्षण चेदं । ग्रामो वृत्यावृत स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशोजं । खेट नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमजित. खर्वटं पर्वतेन ॥ ग्रामैर्युक्त मटं वंदजितदशशतैः पत्तन रत्नयोनि द्रोणाख्य सिंधुवेलावलयितमथ संबाधनंवाऽद्रिशृंगेइति । आश्रमस्तापसस्थानं । सन्निवेश सार्थकटकादिवास । निगमोवहुवणिग्वास । राजधानी राजकुलस्थान । सोय दृष्टिविपर्यासदंड । तदेव खलु तस्य दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिक सावद्यं कर्माधीयते । इद पंचम दंडसमादान दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

॥ टीका—अथापरं पचमं दंडसमादान दृष्टिविपर्यासदंडप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारजट्टादिकोमातृपितृभ्रातृजगिनीजार्यापुत्रडुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वसंस्तिष्ठन् ज्ञातिपालनकृते मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमित्येव मन्यमानोहन्या

एक प्ररूपवुले तेने ठेकाणे (अन्नंआइक्खंते के०) अन्य बीजुं काइक जुदूंज प्ररूपे ॥ १ए॥ (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टाते नाम एवी संनावनायें जेम. (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष संग्राम थकी निकव्यो, (अंतोसल्ले के०) तीर नालादिकना शल्यें करी सशल्य छतो (तसल्ल के०) ते शल्यने (णोसयंणिहरति के०) वेदना थकी बीहितो थको पोतें पोताने हाथे काढे नही, (णोअन्नेणणिहरावेतिके०) बीजाने हाथे पण कढावे नही, (णोपडिविद्धसेइ के०) तथा वैद्यने उपदेशें औषधादिक प्रयोगे करीने पण ते शल्यनो विध्वस थशे नही (एवमेव के०) एम जाणीने, (णिएहवेइ के०) ते शल्यने गोपवी राखे (अविउट्टमाणे के०) पुछ्यो थको कहे नही, (अंतोअंतो रियाइके०) ते डुखें पीड्यो थको माहोमाहे डुखी थाय, (एवमेव के०) एम ते (माइमायंकट्टु के०) मायावी पुरुष, माया शट्ये करीने तेणे जे कोइ अकार्य कस्या होय ते (णोआलोएइ के०) गुरु समक्ष आलोवे नही (णोपडिक्कमेइके०) पडिकमे नही (णोणिंदइ के०) आत्मानी साखें निंदे नही, (णोगरहइ के०) परसाक्षीक गर्हे नही (णोविउट्टइ के०) तेवा अकार्य करवा थकी निवृत्तिपामे नही (णोविसोहेइ के०) शुभनाव रूप पाणीये करी ते अतिचारनु कलंक पखाले नही, (णोअकरणाएअप्पुट्टेइ के०) तेवा अकार्यने अणकरवाने उठे नही एटले अण करवानो उद्यम न करे, (णो अहारिहतवोकम्मपायच्छित्तपडिवज्जइ के०) यथायोग्य तप कर्म रूप प्रायश्चित पडिवजे नही एरीते (माइ के०) ते मायावी पुरुष (अस्सिलोएपच्चायाइके०) आ लोक माहे पण अविश्वासनी प्रसिद्धि पामे (माइपरलिलोएपच्चायाइ के०) मायावी पुरुष परलोके नरकादिक पीडाना स्थानकने विषे वली वली अरहट्ट घटिकाने न्यायें गतिआगति करे, तथा मायावी पुरुष परनी (निंदइ के०) निंदा करे, (गरहइ के०) गर्हा करे (पससइ के०) अने पोतानी पोते प्रशसा करे, (णिच्चरइ के०) अकार्यने विषे रती करे, (णनियट्टइ के०) अकार्य थकी निवर्त्ते नही (णिसिरियंदंमंछाएति के०) अकार्य करीने पोतानो अपराध ढाकी राखे एरीते (माइअसमाहड के०) मायावी पुरुष अपहारे एटले त्यागकरे, शेनो त्यागकरे ? ते कहेछे (सुहलेस्सेयाविनवइ के०) शुभ लेश्यानो त्याग करे अने सर्व कालें अशुभ लेश्याये करी प्रवर्त्तमान थको होए एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्त सावद्य कर्मबंधाय. एटले अगीआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ २० ॥

॥ दीपिका–अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा । ये केचनामी नवति पुरुषा । किंनूता । गूढाचारागलकर्तकग्रन्थिछेदकादयस्ते बहूपायैर्विश्वासमुत्पाद्य, विरू

परोपघातित्वादंडसमादानसंज्ञा कृता । पद्मादिषु च प्रायेण परघात स्यादत क्रियास्थानसंज्ञोच्यते ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपर षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तत्रच पूर्वोक्तानां क्रियास्थानत्वे प्रायश परोपघातोभवतीति कृत्वा दंडसमादानकृता पद्मादिषुच बाहुल्येन न परव्यापादान भवतीत्यत क्रियास्थानमित्येषा संज्ञोच्यते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुष स्वपक्षावेशाढाग्रहादात्मनि कृतं निमित्तं यावत्परिवारनिमित्त वा सद्भूतार्थेनिन्ह्वरूप मसद्भूतोद्भावनस्वभावं स्वयमेव मृषावाद वदति । तद्यथा नाहं मदीयोवा कश्चिच्चौर सच चौरमपि सद्भूतमप्यर्थमपलपति तथा परमचौरं चौरमिति वदति तथान्येन मृषावादं भाणयति तथान्याश्च मृषावादं वदत समनुजानीते । तदेव खलु तस्य योगत्रिककारणत्रिकेण मृषावादं वदतस्तत्प्रत्ययिकं सावद्य कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १४ ॥

अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहाणामए केइ पुरिसे आयहेउंवा जाव परिवारहेउवा सयमेव अदिन्नं आदियइ अन्नेणंवि अदिन्न आदियावेति अदिन्नं आदियंत अन्नं समणुजाणइ एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १५ ॥

अर्थ–हवे अपर सातमो क्रिया स्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइ एक पुरुष पोताना आत्माने अर्थे ज्ञातिगोत्रीने अर्थे यावत् परिवारने अर्थे पोते अदत्तादान ग्रहण करे, बीजाने अदत्तादान लेवरावे, अदत्तादान बीजो कोइ लेतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते निश्चे थकी तेने अदत्तादान तत्प्रत्ययिक कर्म बंधाय, एटले सातमो क्रियास्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कह्यो ॥ १५ ॥

॥ दीपिका–अथाऽपरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । इदं प्राग्वत् ॥ १५ ॥

॥ टीका–अथापरं सप्तम क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । एतदपि प्राग्वज्ज्ञेयं । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं परद्रव्यमदत्तमेव गृह्णीयादपरच ग्राहयेद्गृह्णंतमप्यपर समनुजानीयादित्येव तस्यादत्तादानप्रत्ययिक कर्म संबध्यते । इति सप्तम क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १५ ॥

कादिका पराऽविज्ञाता क्रिया कुर्वतीत्यर्थ । तेच स्वचेष्टयैवोलूकपत्रवल्लघव· कौशिक पिच्छवल्लघीयांसोपि पर्वतवद्गुरुमात्मान मन्यंते । यद्विवा कार्यप्रवृत्ते पर्वतवन्नो स्तंभयितु शक्यते ते चाऽऽर्यदेशोत्पन्नाअपि संत शाठ्यादात्मप्रच्छादनार्थमपरजयोत्पादनार्थं चाऽनार्यभाषा प्रयुंजते परव्यामोहार्थं स्वमतिपरिकल्पितभाषाभिरपराऽविदिताभिर्भाषंते तथाऽन्यथाऽव्यवस्थितमात्मानमन्यथासाध्वाकारेण मन्यंते व्यवस्थापयति तथाऽन्यत्पृष्टामात्तत्स्थानतोऽन्यदाचक्षते । यथाम्रान् पृष्टा कोविदारकानाचक्षते । वादकालेवा कश्चिन्नाथवादितया व्याकरणे प्रवीणस्तर्कमार्गमवतारयति । यथावा शरदि वाजपेयेन यजेतेत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञ कालातिपातार्थं शरत्कालं व्यावर्णयति । तथाऽन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्येऽन्यमेवार्थमाचक्षते । तेषा सर्वार्थविसंवादिना कपटप्रपंचचतुराणा विपाकोद्भवनाय दृष्टात दर्शयितुमाह ॥ २१ ॥ (सेजहेत्यादि) यथानाम कश्चित्पुरुष संग्रामादपक्रांतोऽतर्मध्ये शल्यं तोमरादिक यस्य सोऽत शल्य सच शल्यघट्टनवेदनाभीरुतया तच्छल्य न स्वतोनिर्हरत्यपनयति उद्धरति तथाप्यन्येन नोद्धारयति नापि तच्छल्य वैद्योपदेशेनौषधोपयोगादिभिरुपायै प्रतिध्वसयति विनाशयति अन्येन केनचित्पृष्टोवाऽपृष्टोवातच्छल्यं निष्प्रयोजनमेव निन्हुतेऽपलपति तेन च शल्येनासावतर्वर्तिना (अविउट्टमाणेत्ति) पीड्यमान (अतोत्ति) मध्येमध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति तत्कृतां वेदनाम सहमान क्रियासु प्रवर्ततइत्यर्थ । साप्रतं दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथाऽसौ सशल्योऽ खनाऽग्नवत्येवमेवासौ मायी मायाशल्यवानन्यत्कृतमकार्य तन्मायया गूहयन् माया कृत्वा न ता मायामन्यस्मै आलोचयति कथयति नापि तस्या स्थानात्प्रतिक्रामति न ततोनिवर्तते नाप्यात्मसाक्षिक तन्मायाशल्य निंदति । तद्यथा धिङ्मा यदहमेवभूतमकार्य कर्मोदयात्कृतवांस्तथा नापि परसाक्षिक गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते तथा (नोविउट्टत्ति) नापि तन्मायाख्य शल्यमकार्यकरणात्मक विविधमनेकप्रकार त्रोटयत्यपनयति । यद्यस्यापराधस्य प्रायश्चित्त तत्तेन पुनस्तदकरणतया निवर्त्तयतीत्यर्थ ।नापि तन्मयादिकमकार्य सेवित्वा लोचनार्हायात्मान निवेद्य,तदकार्यकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठते प्रायश्चित्त प्रतिपद्यापि नोयुक्तविहारी भवतीत्यर्थ । तथा नापि गुर्वादिभिरनिर्धीयमानोपि यथार्हमकार्यनिर्वहणयोग्य प्रायश्चित्त शोधयतीति । प्रायश्चित्तं तपकर्मविशिष्ट चांद्रायणाद्यात्मक प्रतिपद्यते ऽ.... । तत्रैव मायया सत्कार्यप्रच्छादको ऽस्मिन्नेव लोके मायावीत्येव सर्वकार्ये ... प्रत्यायाति प्रख्यातिं याति तथाभूतश्च सर्वस्यापि विश्वास्योभवति । ... पुरुषइत्यादि । तथाति मायाविनादसौ परस्मिन् लोके जन्म ... याता ... नरकतिर्यगादिषु पौन पुन्येन प्रत्यायाति

ख्यायंते । तद्यथा । क्रोधमानमायालोभस्थानानि । तेच क्रोधमानमायालोभाआत्मोभ वा । एभिरेव मनोडुष्टं स्यात् । एव तस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्त सावद्यं कर्माधी यते । तदेवमष्टममाध्यात्मिकाख्य क्रियास्थानमाख्यात ॥ १६ ॥

॥ टीका–अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमित्यंत करणोभ्रवमाख्यायते । तद्य था नामकश्चित्पुरुषश्चित्तोपेक्षाप्रधानस्तस्य च नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता । न तस्य कश्चि द्विसवादेन परिभावेनवा सद्भूतोभ्रावनेनवा चित्तडु खमुत्पादयति तथाप्यसौ स्वयमेव वर्णापसदवद्दीनोडुर्गतवद्दीनोडुश्चित्ततया डुष्टोडुर्मनास्तथोपहतोऽस्वन्नतया मन संकल्पो यस्य सतथा चिंतैव शोकऽति सागरश्चिताप्रधानोवा शोकश्चिताशोकसागरप्रविष्ट । तथाभू तश्च यदवस्थोभवति तद्दर्शयति । करतले पर्यस्तं मुख यस्य सतथाऽहर्निशं भवति तथा र्तध्यानोपगतोऽपगतसद्विवेकतया धर्मध्यानदूरवर्ती निर्निमित्तमेव दं द्योपहतवद्ध्यायति । तस्यैव चिताशोकसागरावगाढस्य सतश्चाध्यात्मिकान्यंत करणोभ्रवानि मन संश्रितान्यस शयितानि वा नि सशयितानि चत्वारि वक्ष्यमाणानि स्थानानि भवति । तानि चैव समा ख्यायते । तद्यथा क्रोधस्थानं, मानस्थान, मायास्थान, लोभस्थानमिति । ते चावश्यं क्रो धमानमायालोभाआत्मनोऽधिभवत्याध्यात्मिकाएभिरेव सभिर्डष्ट मनोभवति । तदेव तस्य डुर्मनस क्रोधमानमायालोभवतएवमेवोपहतमन सकल्पस्य तत्प्रत्यविकमध्यात्मनिमि त्तं सावद्य कर्माधीयते संबध्यते । तदेवमेतक्रियास्थानमाध्यात्मिकाख्यमाख्यातमिति॥१६॥

अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए के ६ पुरिसे जातिमएणवा कुलमएणवा बलमएणवा रूवमएणवा तवमएण वा सुयमएणवा लाभमएणवा ईस्सरियमएणवा पन्नामएणवा अन्नतरे णवा मयठाणेण मत्ते समाणे परं हिलेति निंदेति खिंसति गरहति परिभ वइ अवमन्नेति इत्तरिए अय अहमसि पुण विसिठे जाइकुलबलाइगुणो ववेए एवं अप्पाणं समुक्कस्से देहाचुए कम्मवित्तिए अवसेपयाइ तंजहा गप्पाउगप्पं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउणरगं चंमे थद्धे चवले माणियावि भवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तिय सावज्जति आहिज्जइ णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥

अर्थ–अथ हवे-अपर नवमो क्रियास्थानक मान प्रत्ययिक नामे कहिए ठेएं ते जेम नाम एवी सभावनाये कोइएक पुरुष (जातिमएणवा के०) जाति एटले माता

येने विषे रहस्यना करनार, ए सर्वे प्राय त्रसजीवोनी विराधना नकरे परतु एकेंद्रियनी विराधनायें उपजीवन करे, (णोबहुसंजया के०) ते घणा संयत नहीं, (णोबहुपडिविरया के०) घणी हिंसा थकी निवर्त्या नथी, एटले सर्व प्राणातिपात विरमणव्रतादिकने विषे न प्रवर्त्ते, किंतु द्रव्य थकी केटलाएक व्रत पाले, अने सर्व विरतिनु कारण जे सम्यक् दर्शनछे, ते गुण तेमाहे नथी ते कारणे. (सवपाणनूतजीवसत्तेहिं के०) सर्व प्राणी, नूत, जीव, अने सत्वथकी अविरत, हिंसा थकी अविरत (तेअप्पणो के०) ते पारकेंमी पोते, (सच्चामोसाइ के०) घणा सत्यामृषावचन (एवविउंजति के०) एम आगल केशे. जेरीतें बोले तेज कहेछे. (अहंणहतवो के०) हु ब्राह्मण पणा थकी मने दंमादिके हणवो नहीं, (अन्नेहतवा के०) अन्य शूद्रादिकने हणवा. (अहंणअज्ञावेयवो के०) तथा हुं वर्णोत्तम छुं, माटे मने आज्ञा करवी नहीं एटले मने. काइ आदेश आपवो नही. तथा (अन्नेअज्ञावेयवा के०) शूद्रादिक आज्ञापयितव्यछे एटले तेमने आदेश आपवो. (अहंणपरिघेतवो के०) हु वर्णोत्तमछुं, माटे मने बलात्कारे ग्रहण करवो नही, (अन्नेपरिघेतवा के०) अन्य शूद्रादिकने बलात्कारे ग्रहण करवा. (अहंणपरितावेयवो के०) तथा मने परितापवो नही, (अन्नेपरितावेयवा के०) अन्य शूद्रादिकने परितापवा (अहंणउद्दवेयवो के०) तथा मने उपद्रव करवो नही, तथा जीव, काया थकी रहित करवो नही, (अन्नंउद्दवेयवा के०) अन्य शूद्रादिकने उपद्रवो करवा एम ते परपीडाना उपदेशना करनार मूढ, असंबंध प्रलापी (एवमेवतेइच्छिकामेहिंमुच्छिया के०) एरीते पूर्वोक्त प्रकारे ते मूढ परमार्थना अजाण थका स्त्रियादिकना कामनोगने विषे मूर्छित थका (गिद्धा के०) गृद्ध एटले ते कामनोगना अनिलाषी छता, (गढिया के०) कामनोगने विषे आसक्त छता (गरहिया के०) निंदवा योग्य, अत्यंत आसक्त छता (अझोववन्ना के०) अध्युपपन्न एटले कामनोगने विषे एकाग्र चित्त थया छता (जाववासाइंचउपंचमाइं के०) यावत् चार पाच वर्ष सुधी अथवा (छद्दसमाइ के०) छ अथवा दश वर्ष एटलो काल तेमाहे ते तीर्थिक (अप्पयरोवा के०) अल्पतर एटले अल्प काल सुधी (जुज्जयरोवा के०) अथवा घणा काल सुधी घरवास छांमीने (नुंजित्तुनोगनोगाइ के०) वली काम नोग जे शब्दादिक विषयछे तेने धर्मने पाखमे नोगवीने, (कालमासे कालकिच्चा के०) मरण प्रस्तावे काल करीने काइ एक बालतपना प्रनावथी (अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो नवंति के०) तेने अनेरा आसुरिक किल्बिषीने स्थानके उपजवु थाय, (ततोविप्पमुच्चमाणे के०) ते स्थानकथी आयुष्यने क्षये चवीने (जुज्जोजुज्जोएलमूयत्ताए के०) वलीवली मनुष्य नव पामे, तोपण एल एटले बोडा, काणा, अथवा मूयत्ता एटले मुगा तथा

र्पयेत् । एव जात्यादिमदमत्त सन् ऽहैव निद्य स्यात् । अत्रच जात्यादिमदद्यादिसंयोगैर्नंगाज्ञेया । तथाहि । जातिमद कस्यचिन्न कुलमद , १ कस्यचित्कुलमदएव, न जातिमद २ कस्यचिद्द्वयं ३ कस्यचिडुनयमपि न ४ एव पदद्येन चत्वारोनगा । पदत्रयेणाष्टौ, पदचतुष्टयेन पोडश, पचनि पदै द्वात्रिंशत् पड्भिश्चतु पष्टि सप्तनि १२० अष्टनि २०६ सर्वत्र मदानावरूपश्चरमचंग शुद्धइति । समानी देहाच्युतोमृत सन् कर्मद्वितीय कर्मसहायोऽवश परवश प्रयाति नवांतर । तद्यथा गर्नाज्जे जन्मनएकस्मात्पर जन्म, मारान्मरणान्मारं मरणांतर व्रजति नरकतुल्याच्चंडालादिवासान्नरक रत्नप्रनादिक याति । अथवा नरकाडुत्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरतितीव्र नरकातर याति । तदेव मानी परपरिनवे सति चडोरोंऽझेऽन्य हति तदनावे आत्मानमेव हति स्तब्धश्चपलो यत्किचनकारी स्यात् मानी सन् एव खलु तस्य तत्प्रत्ययिक माननिमित्त सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । नवममेतक्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापर नवमं क्रियास्थान मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोजात्यादिगुणोपेत सन जातिकुलबलरूपतप श्रुतलानैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्थानैरन्यतरेणवा मत्त परमवबुध्या हीलयति तथा निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिनवति, एतानि चैकार्थिकानि कथचिन्नेदं चोत्प्रेक्ष्य व्याख्येयानीति । यथा परिनवति तथा दर्शयति । ऽतरोय जघन्योहीनजातिक कुलबलरूपादिनिर्दूरमपन्नष्ट सर्वजनावगीतोयमिति । अहं पुनर्विशिष्टजातिकुलबलादिगुणोपेतएवमात्मान समुत्कर्पयेदिति । सांप्रतं मानोत्कर्पविपाकमाह । (देहाच्चुएऽत्यादि) तदेव जात्यादिमदोन्मत सन्निहैव लोके गर्हितोनवति । अत्र जात्यादिपद द्यादिसयोगाङ्ष्टव्यास्ते चैव नवति । जातिमद , कस्य चिन्न कुलमदोऽपरस्य कुलमदो,न जातिमद परस्योनयमपरस्यानुनयमित्येव पदत्रयेणाष्टौ चतुर्भि पोडशेत्यादि यावदष्टनि पदै पट्पचाशदधिक शत द्यमिति । सर्वत्र मदानावरूपचरमनग शुद्धऽति । परलोकेऽपिच मानी दु खनागनवतीत्यनेन प्रदर्श्यते । स्वायुप क्षये देहाच्युतोनवातर गच्छेत्शुनाशुनकर्मा द्वितीय कर्मपरायत्तत्वादवश परत्र प्रयाति । तद्यथा गर्नाज्जर्नं पचेंद्रियापेक्षं तथा गर्नाज्जर्नं विकलेंद्रियेप्रत्पद्यमान पुनर गर्नाज्जर्नमेव गर्नादगर्नमेतच्च नरककल्पगर्नदु खापेक्षायामनिहितमुत्पद्यमानदु खापेक्षया त्विदमनिधीयते । जन्मनएकस्मादपर जन्मातर व्रजति । तथा मरण मारस्तस्मान्मारांतरं व्रजति तथा नरकदेश्यात्कुपाकादिवासाद्रत्नप्रनादिक नरकातर व्रजति । यदिवा नरकात्सीमतकादिकाडुध्दृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरपि तीव्रतर नरकातर व्रजति । तदेव मानदवंइंगजूर्मा ससारचक्रवाले स्त्रीपुनपुमकादीनि वहून्यवस्थातराण्यनुनवति । तदेव मा

चइह प्रत्यायांति । तदेव तेषा तीर्थिकानां तत्प्रत्ययिकं सावद्यानुष्ठाननिमित्तं सावद्य कर्माधीयते । तदेतल्लोभप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

॥ टीका–एतानि चानर्थदंडादीनि एकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसयतानां भ वति।इदतु द्वादश क्रियास्थान पाखडिकानुदिश्याऽभिधीयते (अहावरेइत्यादि) एकादशा त् क्रियास्थानादनतरमथापर द्वादश क्रियास्थानं लोभप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा । य इमे वक्ष्यमाणाअरण्यं वसत्यरण्यकास्ते च कदमूलफलाहारा सत' केचन वृक्षमूले वस ति, केचनावसथेपूटजाकारेषु गृहेषु, तथापरे ग्रामादिकमुपजीवतोग्रामस्याते समीपे वस तीति ग्रामातिकास्तथा क्वचित्कार्ये मडलप्रवेशादिके रहस्यं येषाते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसयतान सर्वसावद्यानुष्ठानेभ्योनिवृत्ताः । एतदुक्त भवति । नवाहुल्येन त्रसेषु दंडस मारभ विदधति एकेंद्रियोपजीविनस्त्वविगानेन तापसादयोभवतीति तथा न बहुविरता न सर्वेष्वपि प्राणातिपातविरमणादिषु व्रतेषु प्रवर्तते किंतु? द्रव्यत. कतिपयव्रतव्रतिनोन भावतोमनागपि तत्करणस्य सम्यग्दर्शनस्याभावादित्यभिप्राय । इत्येतदाविर्भावयितु माह । (सव्वपाणेत्यादि) ते ह्यारण्यादय सर्वप्राणिभूतजीवसत्वेभ्यआत्मना स्वतोविरता स्तदुपमर्दकारभादविरताइत्यर्थ । तथा पाषडिकाआत्मना स्वतोबहूनि सत्यामृषाभूतानि वाक्यान्येव वक्ष्यमाणनीत्या विशेषेण युजति प्रयुंजति ब्रुवतइत्यर्थ । यदि वासत्यान्यपि तानि प्राण्युपमर्दकत्वेन मृषाभूतानि सत्यामृषाण्येव ते प्रयुजतीति दर्शयति । तद्यथाऽ ह ब्राह्मणत्वाद्दडादिभिर्न हतव्योऽन्येतु शूद्राद्याहतव्या । तथाहि । त द्वाक्य ।शूद्र व्या पाद्य प्राणायाम जपेत् किंचि द्वा दद्यात् तथा क्षुद्रसत्वानामनस्थिकाना शकटभारमपि व्या पाद्य ब्राह्मण भोजयेदित्यादि । अपर चाह वर्णोत्तमत्वात् नाज्ञापयितव्योन्येतु मत्तोऽधमा समाज्ञापयितव्यास्तथा नाह परितापयितव्योऽन्येतु परितापयितव्यास्तथाह वेतनादिना कर्मकरणाय न ग्राह्योऽन्येतु शूद्रायाह्याइति । किंबहुनोक्तेन नाहमुपद्रावयितव्योजीवि तादपरोपयितव्योऽन्येतु अपरोपयितव्याइति । तदेव तेषा परपीडोपदेशनतोऽतिमूढतया ऽसबद्धप्रलापिनामज्ञानावृतानामात्मभरीणा विषमदृष्टीना न प्राणातिपातविरतिरूप व्रतमस्त्यस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादत्तादानविरमणाभावोप्यायोज्य । अधुना त्वनादिभावाभ्यासाद्दुस्त्यजत्वेन प्राधान्यात् सूत्रेणैवाब्रह्माधिकृत्याह । (एवमेवेत्या दि) एवमेव पूर्वोक्तेनैव कारणत्वेनातिमूढत्वादिना परमार्थमजानास्ते तीर्थिका स्त्रीप्रधा ना कामा स्त्रीकामा । यदिवा स्त्रीषु कामेषु च शब्दादिषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्यु पपन्ना । अत्र चात्यादरख्यापनार्थं प्रभूतपर्यायग्रहण । एतच्च स्त्रीषु शब्दादिषुच प्रवर्त न प्राय प्राणिना प्रधान ससारकारण । तथा चोक्त । मूलमेयमहम्मस्स महादोससमु

थाय, (जोतेणवा के०) जोत्रे करी, (वेत्तेणवा के०) वेत्रे करी, अथवा (णेतेणवा के०) नेतरे करी, (तयाइवाके०) त्वचाये करी, अथवा (कसेणवाके०) ताजणे चा बखुकें करी, (ठियाएवा के०) नाडाये करी, (लयाएवा के०) लता एटले वेलुये करी, दोरडीयेंकरी (पासाइउद्दालित्तानवति के०) तेना पार्श्वनागना चामडाने उखेडनार थाय, (दंमेणवा के०) दम्मे करी लाकडीये करी, (अठीणवा के०) हाडकायें करी, (मुठीणवा के०) मुठिये करी, (लेलूणवा के०) पाषाणने कटके करी, (कवालेणवा के०) ठीकरीये करी, कपालादिकेंकरी, (कायंआउडित्तानवति के०) तेना शरीरने ता डनार थाय, किंबहुना (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना दंमना करनार एवा (पुरिस जाए के०) पुरुष जाति जे तथा प्रकारना कुकर्मना करनार होए तेनी साथे (सवसमा णे के०) एकवा रहेता बता सज्जन पुरुष जे माता पितादिक ते पण (डुम्मणानवति के०) डुर्मन थइने देशांतर जता रहे पढी (पवसमाणे के०) ते थकी अलगा रहेवा थी (सुमणानवति के०) सुमन थाय, एटले तेने ठोडयाथी हर्षित थाय एवा (तह प्पगारे के०) तथा प्रकारना (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे थोडा अपराधीने पण दम्मना देनार, (दंमपासीके०) अल्पापराधने विषे अति कोपकरनार, ते दडपार्श्वी (दंमगुरु एके०) दंमेंकरी आकरो दंम करे, (दंमपुरेक्कडेके०) तेने सर्व काल दंमज अग्रेसर ढे. ते पुरुष (अहिएइमसिलोगंसिकें०) आलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारी अने (अ हिएपरसिलोगसि के०) परलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारीढे तेनु कारण शु? तोके तेजीव, (संजलणे के०) क्षणे क्षणे ज्वले, (कोहणे के०) क्षणेक्षणे क्रोध करे, (पिठिमंसियाविनवति के०) पृष्ठ मांस नक्षण करनार होय, पुठे पाठल अव र्णवादनो बोलनार होय, एम निश्चे तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय ए दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १० ॥

॥ दीपिका–अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुष प्रत्युकटपोमातापितृसुत्हत्स्वजनादिभि सार्धं संवसन् तेषां मातापित्रादीनाम न्यतमेनाऽनाजोगतोयथाकथंचिद्वघुतमेप्यपराधे स्वयमेवात्मनाक्रोधतोगुरुतर दंड वर्तय ति करोति । तद्यथा शीतोदकविकटे शिशिरादावतिशीतोदके काय शरीरमपराधिनोऽवबो लयित्ता नवति तथा उष्णोदकविकटेन कायमपसिंचयिता नवति । विकटग्रहणाडुष्णतै लकाञ्जिकादिना अग्निकायेन उल्मुकेन तप्तलोहेनवा कायमुपदाहयिता नवति । (जोए णत्ति) जोत्रेण वेत्रेणवा नेत्रोवृक्षविशेषस्तेन कशादिनावा लतयावा शरीरपार्श्वाणि उद्दा लयितुं चर्माणि लुंपयितु नवति । दडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना कपालेन नांडखंडेन कायमु

शीने । एतान्यनर्थदंडादीनि लोनप्रत्ययिकक्रियास्थानपर्यवसानानि द्वादश क्रियास्थानानि । कर्मग्रंथिद्रावणाद्रव सयम सविद्यते यस्यासौ द्रविकोमुक्तिगमनयोग्यतया वा द्रव्यनूत श्रमण साधु ।तमेव विशिनष्टि । मावधीरित्येव प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तेनैवंत गुणविशिष्टेनैतानि सम्यग्यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिरूपणतोमिथ्यादर्शनाश्रितानि ससारकारणानीति कृत्वा ज्ञपरिज्ञया ज्ञातव्यानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहर्तव्यानि नवतीति ॥१२॥

अहावरे तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अत्ताए सवुमस्स अणगारस्स इरियासमियस्स नासासमियस्स एसणासमियस्स आयाणनममत्तणिक्खेवणासमियस्स उच्चारपासवणखेलसिंघाण जल्लपारिठावणियासमियस्स मणसमियस्स वयसमियस्स कायसमियस्स मणगुत्तस्स वयगुत्तस्स कायगुत्तस्स गुत्तिदियस्स गुत्तबनयारिस्स आउत्तगछमाणस्स आउत्तचिठमाणस्स आउत्तणिसियमाणस्स आउत्ततुयट्टमाणस्स आउत्तनुंजमाणस्स आउत्तंनासमाणस्स आउत्तवछ पडिग्गह कंबलं पायपुछण गिण्हमाणस्सवा णिक्खिवमाणस्सवा जाव चक्खुपम्हणिवायमवि अत्थिविमाया सुहुमा किरिया इरियावहिया नाम कज्जइ सापढमसमए बछा पुठा बितीयसमए वेइया तइयसमए णिज्जिणा सावछा पुठा उदीरिया वेइया णिज्जिणा सेयं काले अकम्मयावि नवति एव खलु तस्स तप्पतियं सावज्जति आहिज्जइ तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएति आहिज्जइ ॥ से बेमि जेयअ अतीता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता नगवंता सवेते एयाइ चेव तेरसकिरियाठाणाइ नासिसुवा नासेतिवा नासिस्संतिवा पन्नविसुवा पन्नवितिवा पन्नविस्सिवा एवंचेव तेरसम किरियाठाणं सेविसुवा सेवतिवा सेविस्सतिवा ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे अपर तेरमो क्रिया स्थानक इरिया पथिक नामे कहिए छेए (इहखलुअत्ताए के०) निश्चे आ जगत्माहे आत्म नाव पामवाने अर्थे (सवुमस्स के०) मन, वचन, अने कायाये करी सवृत एटले सवर सहित एवा (अणगारस्स के०) साधुने इरियावहि क्रिया कहियें ते साधुना गुण कहेछे ईर्यासमितिए समितो, नाषासमितिए समितो, एषणासमितिए समितो, आदान नाम मात्रा निक्षेपण समितिए समि

देव खलु तस्य महादंडं प्रवर्तयितुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्य कर्माऽधीयते। तदेतद्दशमं क्रिया स्थान मित्रद्रोहप्रत्ययिकमाख्यातमिति । अपरे पुनरष्टम क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययि कमाचक्षते नवमंतु परदोषप्रत्ययिकच. दशम पुन' प्राणवृत्तिक क्रियास्थानमिति ॥१८॥

अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नव ति गूढायारा तमोकसिया उलुगपत्तलहुया पव्वयगुरुया ते आयरियावि संता अणारियाउ नासाउवि पउज्जंति अन्नहासंतं अप्पाणं अन्नहामन्नं ति अन्नंपुछा अन्नवागरति अन्न आइक्खियव्व अन्नआइक्खते॥१९॥से ज हा णामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णोसयं णिहरति णोअन्नेण णि हरावेति णोपडिविद्धसेइ एवमेव निण्हवेइ अविउट्टमाणे अतोअंतोरि याइ एवमेव माई माय कट्टु णोआलोएइ णोपडिक्कमेइ णोणिंदइ णोगर हइ णोविउट्टइ णोविसोहेइ णोअकरणाए अब्भुट्ठेइ णोअहारिहं तवो कम्म पायच्छित्त पडिवज्जइ माइ अस्सिंलोए पच्चायाइ माइ परंसिलोए पच्चायाइ निंदइ गरहइ पससइ णिच्चरइ णनियट्टइ णिसिरियं दंमंछा एति माइ असमाहड सुहलेस्सेयावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सा वज्जंति आहिज्जइ एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए॥२०॥

अर्थ—हवे अपर अगिआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक कहिये छेयें (जेइमे नवति के०) जे आ जगत्माहे पुरुषछे ते कया पुरुष तोके, (गूढायारा के०) गूढा चारी एटले धूतारा, ठगारा, गंठीछोडा प्रमुखछे ते नाना प्रकारना उपायें करीने लोक ने विश्वास उपजावीने वचे. (तमोकसिया के०) अंधाराने विषे विचरनारा, अर्थात् लोक थकी छाना क्रियाना करनारा, (उलुगपत्तलहुयाके०) ते पोतें जाते घूवडनी पांख थकी पण हलकाछे परतु (पव्वयगुरुया के०) पोताने पर्वत थकी पण महोटा माने, (तेआयरियाविसंता के०) ते आर्य देशमा उत्पन्न थया होय तेम छता पण मा परने वचवाने अर्थे शठ पणे, पोताने गोपववा नणी (अणारियाउनासाउविपउज्जं के०) अनार्य देशनी नाषा बोले, अथवा पोतानी कल्पित नाषा जे बीजायी नवति पु णी होय तेवी नाषा बोले, (अन्नहासंतं के०) तिपी पण तेवी अजाणी अर्दयस्तेच ना (अप्पाणअन्नहामन्नंति के०) पोतें वली बीजी रीते माने, (अन्नंपुछा के०) तथा माया काइ पुछे थके (अन्नंवागरति के०) कहे, (अन्नआइक्खियव्व के०)

ए तेर जे क्रियाना स्थानक छे ते मात्र एक श्रीवर्द्धमान स्वामियेंज नथी कह्या, किंतु अन्य बीजा पण सर्व तीर्थकरे कह्याछे एवो नाव देखाडेछे. (सेबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामि जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के, मे श्री महावीर पासेंथी सांनळ्याछे जे पूर्वोक्त अर्थ, ते तुजने कह्या ते अर्थ (जेयअतीता के०) अतीतकालें जे तीर्थकर थया (जेयपडुपन्ना के०) तथा जे तीर्थंकर हमणा वर्त्तमान कालेंछे, वली (जेआगमिस्सा के०) जे आगमिककाले तीर्थंकर थशे, (अरिहंता के०) ते श्री अरिहंत पूजा सत्कार करवा योग्य, (नगवता के०) ऐश्वर्यादिकगुण युक्त, (सबेतेएयाइंचेव के०) ते सर्व तीर्थ करे निश्चे थकी, ए (तेरसकिरियाठाणाइं के०) तेर क्रियाना स्थानक जेछे ते अतीतका लें नांख्या, वर्त्तमान काले नांखेछे,अने आगमिक काले नाखशे विशेषे प्ररूप्या विशेषे प्ररूपेछे, अने विशेषे प्ररूपशे एम निश्चे ए तेरमो क्रिया स्थानक अतीतकालें सेव्यो, वर्त्तमान कालें सेवेछे, अने आगमिक कालें सेवशे जेम जंबूद्दीपने विषे वे सूर्य सरखो प्रकाश करेछे, तथा जेम प्रदीप सरखुं अजवाळुं करेछे, तेम तीर्थकर पण त्रणेकाले वर्त्त मान छता, सरखो उपदेश आपेछे ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–अथापर त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिक नाम आख्यायते । ईरणं ईर्या तस्यास्तया वा पथाईर्यापथ सविद्यते यस्य तदीर्यापथिक । एतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्र वृत्तिनिमित्तु इदं । सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीहितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रि या तया यत्कर्म तदीर्यापथिक सैव वा क्रिया ईर्यापथिका । तस्या स्वरूपमाह । (इहखलु इत्यादि) आत्मनावार्थ संवृतस्याऽनगारस्य ईर्यादिकानि पचनि समितिनिर्मनोवाक्का यै समितस्य तिसृनिर्गुप्तिनिर्गुप्तस्य गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्तिसहितब्रह्मचारिणश्च उ पयुक्त गछतस्तिष्ठतोनिषीदतस्त्वग्वर्त्तनां कुर्वाणस्य तथा उपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं क बल पादपुछनका गृण्हतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुःपद्मनिपातमपि उपयुक्त कुर्वंत सतो स्यस्ति विद्यते विमात्रा विविधा मात्रा सूक्ष्मा क्रिया ईर्यापथिकानाम केवलिनापि क्रिय ते । यत सयोगी जीव क्षणमप्येक निश्चल स्यातु नशक्तोऽतिवह्निताप्यमानजलव त्कार्मणशरीरानुगत सदा परिवर्तमानएवास्ते । तत केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारा स्युस्तैश्च कर्म बध्यते तदीर्यापथिक तस्य याऽवस्था सा क्रिया । (सापढमेति) निकषा यिणा यत्कर्म बध्यते तत्प्रथमसमये बद्धं स्पृष्टं चेति तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता । द्वितीय समये वेदिताऽनुनूता तृतीयसमये निर्जीर्णा । केवलयोगनिमित्त यत्कर्म बध्यते तस्य न सापरायिकस्येव स्थिति किंतु प्रकृतित सातावेदनीय तत् १ स्थितितोद्विसमया स्थितिक २ अनुनावत शुनानुनावमनुत्तरसुरसुखातिशायि ३ प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थि

पं कुर्वंति चडप्रद्योतादेरजयकुमारादिवत् तमसि कपितुं शीलं येषांते तमःकपिणस्तएव तम कापिका पराविज्ञाता क्रिया कुर्वंतीत्यर्थः । तेच उलूकपिछवल्लघवोपि पर्वतवगु रुमात्मान मन्यते आर्याअपि सतस्ते परव्यामोहार्थमनार्यनाषा (विउवति) प्रयुजंते अन्यथा स्थितमात्मानमन्यथा साध्वाचारेण मन्यंते व्यवस्थापयति अन्यत् पृष्टामायया ऽन्यदेव वदंति आम्रान् पृष्टा निंबान् वदंति । व्याकरण पृष्टस्तदज्ञस्तर्कमवतारयति । यथा वा शरदि वाजपेयेन यजेतइत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालविलंबार्थं शर त्कालमेव वर्णयति (अन्नमाऽऽकिरियवति) अन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्येऽन्यमेवाख्याति ॥१९॥ (सेजहेति) तद्यथानाम कश्चित्पुरुष संग्रामान्निर्गतेऽतर्मध्ये शल्य यस्य सोंऽत शल्य सवे दनानीत स्वयं शल्यं ननिर्हरति नरुपति नाप्यन्येन कर्षयति । नापि वैद्योपदेशादौषध प्रयोगै प्रतिध्वसयति विनाशयति अन्येन दृष्टस्तच्छल्यं निन्हुतेऽपलपति तेन शल्येन (अ विउट्टमाणेत्ति) पीडयमान (अंतोअत्ति) मध्ये पीडयमानोपि रीयते व्रजति वेदना स हमानोपि क्रियासु प्रवर्त्ततइत्यर्थः । दृष्टांत योजयति (एवमेव मायीति) यथा सशल्यो डु खनाग्नवति एवमेव मायी, कृत कार्यं निगूहयन् माया कृत्वाऽन्यस्मै नालोचयति नकथयति न तस्मात्स्थानात्प्रतिक्रमति न निवर्त्तते न आत्मसाक्षिक निंदति नापिपरसा क्षिक गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते (नविउट्टइत्ति) न विन्नोटयत्यपन यति मायाशल्य नविशोधयति नापि पुनस्तदाकरणतयाऽन्युत्तिष्ठते नापि यथार्हं तप क र्मरूपं प्रायश्चित्त प्रतिपद्यते । तदेव मायावी अस्मिन् लोकेऽविश्वासतया प्रत्याख्याति याति । यडुक्तं । मायाशील पुरुषोयद्यपि, नकरोति कंचिदपराध ॥ सर्पइवाऽविश्वास्यो नवति तथाप्यात्मदोषहतःऽति ॥ तथा मायावी परस्मिन् लोके नरकतिर्यगादिषु प्रत्या याति नूयोनूयोयाति (निंदगाहयति) पर निंदयित्वा आत्मप्रशसया तुष्यति । एवचा सौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चरति तथाविधानुष्ठायी नवति । तत्रच गृध्दस्तस्मान्मातृस्थाना न्ननिवर्त्तते दंडं निसृज्य हिंसां कृत्वा प्रछादयत्यपलपति अन्यस्यवा मस्तके क्षिपति समाया वी असमाहृतशुनलेश्योऽनगीकृतशुनध्यानश्चापि नवति । एव खलु तस्य तत्प्रत्ययि क मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । एतदेकादशक्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकमा ख्यातमिति ॥ २० ॥

॥ टीका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा ये केचनामी नवति पु रुषा । किंविशिष्टाः । गूढाआचारायेषा ते गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदादयस्तेच ना नाविधैरुपायैर्विश्रंनमुत्पाद्य पश्चादपकुर्वंति प्रद्योतादेरजयकुमारादिवत् । तथा माया शीलत्वेनाप्रकाशकचारिणस्तमसि कपितु शील येषाते तमसिकापिणस्तएवच तम

स्पृष्टेत्युक्ता तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुनूततृतीयसमयेवतिजीर्णा । एतडुक्तं नवति। कर्मयोगनिमित्त बध्यते तत्स्थितिश्च कपायायत्ता तदनावाच्च न तस्य सांपरायिकस्येव स्थिति किंतु योगसद्भावाद्बध्यमानमेव स्पृष्टतां सश्लेपं याति । द्वितीयसमये त्वनुनूय ते तच्च प्रकृतित सातावेदनीयं स्थितितोद्विसमयस्थितिकमनुनावत. शुनानुनाव अनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि देशतोबहुप्रदेशमस्थिरबंधं बहुव्ययंच । तदेव सेर्यापथिका क्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता वेदिताऽतिजीर्णा नवति (सेयंकालेत्ति) आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्ष्या कर्मतापि च नवति । एव ताव द्वीतरागस्येर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्त्रयोदशं क्रियास्थानं व्याख्यातं। ये पुनस्तेन्योऽन्ये प्राणिनस्तेषा सांपरायिकोबंधस्तेतु यानि प्रागुक्तानीर्यापथवर्ज्यानि द्वादश क्रियास्थानानि तेषु वर्तंते तेषा तद्वर्तिनामसुमतां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्त सांपरायिकोबंधोनवति । तत्रच प्रमादस्तत्र कपायायोगाश्च नियमाद्भवति । कपायिणश्च योगायोगिनस्त्वेते नाज्या । तत्र प्रमादकपायप्रत्ययिकोबंधोऽनेक प्रकारा स्थिति । तद्व्दितस्तु केवलयोगप्रत्ययिकोद्विसमयस्थितिरेवेर्याप्रत्ययिकइति स्थित॥ २३ ॥ एतानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नगवद्वर्धमानस्वामिनैवोक्तान्यपि त्वन्यैरपीत्येतद्दर्शयितुमाह । (सेबेमीत्यादि) सोहं ब्रवीमीति यत्प्रागुक्तं तद्वा ब्रवीमीति। तद्यथा । ये तेऽतिक्रातारूपनादयस्तीर्थकृतोयेच वर्तमाना. क्षेत्रांतरे सीमंधरस्वामिप्रनृतयोये चागामिन पद्मनानादयोऽर्हंतोनगवत सर्वेपि ते पूर्वोक्तान्येतानि त्रयोदश क्रियास्थानान्यनापंतनापते नापिष्यंतेच । तथा तत्स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च प्ररूपितवतः प्ररूपयति प्ररूपयिष्यंतिच। तथैतदेव त्रयोदश क्रियास्थानं सेवितवत सेवते सेविष्यंतेच।तथाहि जंबूद्वीपे सूर्यद्वय तुल्यप्रकाशं नवति । यथा वा सदृशोपकरणा. प्रदीपास्तुल्यप्रकाशानवत्येव तीर्थकृतोपि निरावरणत्वात् कालत्रयवर्तिनोपि तुल्योपदेशानवति॥ २४

अडत्तरचण पुरिसविजय विनंगमाइक्खिस्सामि इह खलु णाणापन्नाण णाणाछंदाण णाणासीलाणं णाणादिठ्ठीणं णाणारूईण णाणारंनाण णाणाज्झवसाणं सजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाज्झयण एवं नवइ॥२५॥ तंजहा नोमं उप्पाय सुविणं अंतलिक्खं अगं सरं लक्खणं वंजण इत्थिलक्खण पुरिसलक्खण हयलक्खण गयलक्खणं गोणलक्खणं मिंढलक्खण कुक्कडलक्खण तित्तिरलक्खण वट्टगलक्खणं लावयलक्खण चक्कलक्खण छत्तलक्खणं चम्मलक्खण दंमलक्खण असिलक्खणं म

तथा नानाविधं प्रपंचैर्वंचयित्वा पर निदति जुगप्सते । तद्यथाऽयमज्ञ पशुकल्पोनाने न किमपि प्रयोजनमित्येव पर निदयित्वाऽत्मान प्रशंसयति । तद्यथा ह्यसावपि मया वंचितइत्येवमात्मप्रशंसया तुष्यति । तथा चोक्तं । येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यतीति । एव चासौ लब्धप्रसरोऽधिक निश्चयेन वा चरतीति तथाविधानुष्ठायी नवतीति निश्चरति । तत्रच गृह सस्तस्मान्मातृस्थानान्न निवर्तते तथासौ मायावलेपेन दंड प्राप्यु पमर्दकारण निसृज्य पातयित्वा पश्चाह्नादयत्यपलपति अन्यस्य चोपरि प्रक्षिपतिसच मायावी सर्वदा वचनपरायण संस्तन्मना सर्वानुष्ठानेष्वेवनूतोनवति । असमाहृताऽनगीकृता शोनना लेश्या येन सतथार्त्तध्यानोपहततयाऽसावशोननलेश्यइत्यर्थ । तदेवमपगतधर्मध्यानोसमाहितोशुद्धलेश्यश्चापि नवति । तदेव खलु तस्य तत्प्रत्ययिक मायागत्य प्रत्ययिक सावद्य कर्माऽधीयते । तदेकादश क्रियास्थान मायाप्रत्ययिक व्याख्यात ॥ २० ॥

अहावरे वारसमे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति तजहा आरन्निया आवसहिया गामतिया कण्हुईरहस्सिया णो वहुसंजया णोवहुपडिविरया सवपाणनूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चा मोसाइ एवं विउजंति अहं ण हतवो अन्ने हंतवा अहं ण अज्जावेयवो अन्ने अज्जावेयवा अहं ण परिघेतवो अन्ने परिघेतवा अह ण परितावेयवो अन्ने परितावेयवा अह ण उद्दवेयवो अन्ने उद्दवेयवा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया गरहिया अझोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं उद्दसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा नुंजित्तुनोगनोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो नवंति ततोविप्पमुच्चमाणे नुज्जोनुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जति आहिज्जइ डुवालसमे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिए ॥ २१ ॥

अर्थ–हवे अपर बारमो क्रियास्थानक लोनप्रत्ययिक कहिए डैयें. (जेइमेनवति के०) जे आगल कहेशे ते पुरुष कोण ? (तंजहा के०) ते कहेडे (आरन्निया के०) अरण्यमा वसनारो, कंदमूलफलाहारी, वृक्षने मूले वसनारो, वली (आवसहिया के०) कोइएक पानडानी पर्णकूटी करीने तेमा रहे, (गामतिया के०) तथा कोइएक आजीविका निमित्तें ग्रामने समीपें निवास करी रहे, (कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक का

कहावे, तथा (उप्पायं के०) उत्पातिक, कपिहसितादिक, तथा आकाश थकी रुधिरवृष्ट्यादिक (सुविण के०) स्वप्नते रात्रीने विषे गजवृषभादिक दर्शन, (अं तलिक्ख के०) उल्कापात मेघ वृष्ट्यादिक तथा (अंग के०) अंग नेत्र बाहु स्फुरणा दिक, (सर के०) काकशिवादिक स्वर विचारणा, (लक्खण के०) पद्म, यव, शस्त्र, चक्रादिक लक्षण, (वजण के०) मस तिलकादिक, (इत्थिलक्खणपुरिसलक्खण के०) स्त्रीलक्षण, तथा पुरुषना लक्षण, ते सामुद्रिकादिक प्रसिद्धछे. (हयलक्खण के०) घो डाना लक्षण, (गयलक्खणके०) हाथीना लक्षण, (गोणलक्खण के०) गौ वृषभना लक्षण, (मिढलक्खण के०) मिढाना लक्षण, (कुक्कडलक्खणके०) कुकडाना लक्षण, (तित्तिरल क्खण के०) तित्तिरपक्षीना लक्षण, (वट्टगलक्खण के०) वर्तकना लक्षण, (लावयल क्खण के०) लावकना लक्षण, (चक्कलक्खण के०) चक्रना लक्षण, (छत्तलक्खणके०) छत्रना लक्षण, (चम्मलक्खण के०) चर्मना लक्षण, (दंडलक्खण के०) दंडना लक्षण (असिलक्खण के०) खड्गना लक्षण, (मणिलक्खण के०) मणि चंद्र सूर्यकातादिकना लक्षण, (कागिणिलक्खण के०) कागिणिना लक्षण, एवीरीते एना प्ररूपक शास्त्र जा णवा ॥ १६ ॥ हवे मन्त्रविद्या कहेछे. (सुभगाकर के०) जे थकी दुर्भाग्य वत प्राणी सौभाग्य वत थाय (दुभगाकर के०) जेथकी सौभाग्य वत प्राणी दौर्भाग्यवत्त थाय. (गब्भाकर के०) जे विद्याने बले गर्भाधान ऊपजे तेवी विद्या, (मोहणकर के०) लोकने व्यामोह ऊपजे तथा वेदनो उदय दीपे, (आहव्वणि के०) आथर्वणीविद्या ए टले तत्काल अनर्थनी करनारी विद्या, (पागसासणि के०) इन्द्रजाल विद्या, (दव्वहो म के०) मधु घृतादिक द्रव्य, उच्चाटनादिक कार्य निमित्तें होमीए ते द्रव्यहोम जाण वो (खत्तियविज्ज के०) क्षत्रीनी धनुर्विद्यादिक विद्या, (चदचरियं के०) चद्रमानु चरित्र चद्रमानोवार जाणे (सूरचरियके०) सूर्यनु चरित्र सूर्यनो वार जाणे, (सुक्कचरियं के०) शुक्रनु चरित्र शुक्रनो वार जाणे, (बहस्सइचरियंके०) बृहस्पतिनु चरित्र बृहस्प तिनो वार जाणे, एव नवग्रह चरित्र ते ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध जाणवु. तथा (उक्कापायं के०) उल्कापात, (दिसादाह के०) दिग्दाह (मियचक्कं के०) आरण्यक जीव तेनो ग्राम नगरने विषे प्रवेश करतां दर्शनथाय, अथवा शब्द शुभाशुभ चितवियें ते मृगचक्र कहिए (वायसपरिमंडल के०) काकादिक पक्षीना शब्दादिकनो विचार कहे एवीविद्या (पंसुवुट्ठिके०) पंसु धूल वृष्टि, (केसवुट्ठिके०) केश वृष्टि, (मंसवुट्ठिके०) मांस वृष्टि, (रुहिरवुट्ठि के०) रुधिरवृष्टि, तेनु शुभाशुभ फल, जे शास्त्रने विषे चितवियें ते शा स्त्रो (वेतालि के०) वेतालि नामे विद्या केटला एक अक्षर प्रमाणछे ते केटला एक दि वस जपतां अचेतन काष्ठ माहे चेतन ऊगाडे (अद्धवेतालि के०) ते दंडने उपशमावे.

(तमूयत्ताएजाइमूयत्ताएपच्चायंति के०) ते जात्यंध एटले जन्म थकी अंध, तथा जन्म थकी बहेरा, एवा थाय एम प्रत्यागच्छति एटले फरीने आ लोकमा आवेछे एरीते निश्चे थकी तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय. ए बारमो लोनप्रत्ययिक नामे क्रिया स्थानक कह्यो ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–एतान्येकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसयताना नवति । इदंतु द्वादश क्रियास्थान पाखंडिकानुद्दिश्य कथ्यते ॥ अथापर द्वादश क्रियास्थान लोनप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथा । यइमे नवत्यारण्यकाअरण्यवासिनआवसथिकाउटजवासिनोग्रा मांतिकाग्रामादिकमुपजीवतोग्रामस्याते समीपे वसतीति (कएहुई) क्वचित्कार्ये मडल प्रवेशादिके रहस्य येषा ते क्वचिड्राहसिकास्तेच न बहुसयतान सर्वसावद्यनिवृत्ताश्च प्राय इत्यर्थ । एतएव न बहुविरतान सर्वव्रतपालका किंतु ? इव्यत कतिपयव्रतानावत स म्यक्त्वानावात् । एतदेवाह॥ (सबपाणेत्ति) तेआरण्यकादय सर्वप्राणिनूतजीवसत्त्वेन्य आत्मना स्वतोविरता सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येव वक्ष्यमाणनीत्या वियुजति विशेषे ण प्रयुंजति कथयतीत्यर्थ । तद्यथाह ब्राह्मणत्वादडादिनिर्न हतव्योऽन्येशूइत्वाद्धतव्या । तथा च तद्वाक्य शूइ व्यापाद्य प्राणायाम जपेत् । तथा क्षुइसत्त्वानामनस्थिकाना शकटना रमपि व्यापाद्य ब्राह्मण नोजयेदित्यादि । तथाह न आज्ञापयितव्योऽन्येतु मत्तोऽधमा स मापयितव्या । नाहं परितापयितव्योऽन्ये परितापयितव्या । अह मूल्येन कर्मकरणा य न ग्राह्योऽन्ये ग्राह्या । नाहमपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येत्वपद्रावयित व्या । तदेव तेषा परपीडोपदेशान्न प्राणातिपातविरतिव्रतमस्ति । उपलक्षणान्मृषावा दादत्तादानविरतिव्रतानावोपि ज्ञेय । तुर्यव्रतमाश्रित्याह । (एवमेवत्ति) एव पूर्वोक्त प्रकारेण स्त्रीषु कामेषु च मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्ना । कियत कालमासक्ताइत्याह । (जाववासाइत्ति) यावद्वर्षाणि चतु पचपड्दशकानि । अय च मध्यम काल । एताव त्कालग्रहण च साभिप्राय । प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव व्रजति तेषा च एतावानेव काल सन्नाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यतइत्याह । तस्माच्च उपात्ता त्कालादल्पतर प्रनूततरोवापि काल स्यात् । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवास नुक्त्वापि नो गान् स्त्रीनोगान् स्त्रीनोगे सत्यवश्य शब्दादयोनोगनोगास्तान् नुक्त्वा ते हि वय प्रव्रजिता इति नच नोगेन्योनिवृत्ताअज्ञानित्वात्ते एवनूतपरिणामा कालमासे स्वायु क्षये काल कृत्वा विकृष्टतपसोपि आसुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवति । तस्मादपि स्थानाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताएडमूकत्वेनोत्पद्यते । यथा एडकोव्यक्तवाक् तथायमपि । (त मूयत्ताएत्ति) तमस्त्वेन जात्यधतयाऽत्यताज्ञानावृततया वा जातिमूकत्वेनापगतवा

वाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते येन सपुरुषविचय. पुरुषविजयोवा अल्पसत्वा ना केषांचित्पुरुषाणां ज्ञानलवेनार्थानुबंधिना विजयस्तस्य विभंग ज्ञानविशेषं चाख्या स्यामि । यादृशानां चासौ विभंग स्यात्तानाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति नानाप्र ज्ञाविचित्रमतय पुरुषानानाछंदाविचित्राभिप्रायानानाशीलानानारूपाद्दृष्टिरत करणप्र वृत्तिर्येषा ते तथा तेषाच त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानीति प्रमाण ज्ञेयं । तथा नानारुची ना नानारंजाणा नानाध्यवसायसयुताना इह लोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखाना तेषां नानाविध पापश्रुताध्ययन भवति॥२५॥तद्यथा । भूमौ भव भौमं निर्घातभूकंपादिक उत्पातं कपिहसितादि स्वप्नं गजादि, आंतरिक्षं मेघादि,आंगं बाहुनेत्रस्फुरणादि, स्वरलक्षणं काकस्व रादिलक्षण, मत्स्ययवश्रीवत्सादि व्यंजन तिलमाषादि स्त्रीलक्षण रक्तपाणिपादादिकं । ए व पुरुषहयगजगोमिढकुक्कुटतित्तिरवर्तकलावकचक्रछत्रचर्मदंडासिमणिकाकिणीरत्नलक्ष णानि॥ २६ ॥ सुभगमाकरोति सुभगाकाराविद्या, दुर्भगमाकरोति दुर्भगाकारा, गर्भकरा मो हनकरा आथर्वणी अथर्वणाख्या, सद्योऽनर्थकारिणी विद्या पाकशासनी इंद्रजालविद्या कणवीरपुष्पादिनिर्द्रव्यैरुच्चाटनादिकार्यैर्होमोयस्या सा द्रव्यहोमा, क्षत्रविद्या धनुर्वेदा दिका, तामधीत्य प्रयुंजते । ज्योतिषविद्यामाह । (चंदचरियमित्यादि) चंद्रचरित्र, नक्षत्र योगराहुग्रहणादिक सूर्यचरित्रं, तथैव शुक्रबृहस्पतिचरितं उदयास्तवर्णकालादि । उल्का पातदिग्दाहमंडलविचारेण शुभाशुभकारिणोमृगाहरिणशृगालादयआरण्यास्तेषा दर्शनं ग्रामप्रवेशादौ शुभाशुभ यत्र चिंत्यते समयोपि मृगचक्रं वायसादीना पक्षिणां स्था नस्वरादिक शुभाशुभं चिंत्यते त द्वायसपरिमंडलं पांसुकेशमांसरुधिरवृष्टयोऽनिष्टफलायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तन्नाम तथा वैतालीविद्या सा च किल कतिभिर्जपैर्दंडमुत्थापयति । अ धवैताली त दंडमुपशमयति। उपस्वापिनी, तालोद्घाटनी, श्वपाकी, शाबरी, द्राविडी, का लिंगी, गौरी, गांधारी अवपतनी, उत्पतनी, जृंभणी, स्तंभनी, श्लेषणी, आमयकरणी. वि शल्यकरणी, प्रक्रामणी, अंतर्धानकरणी इत्यादिका विद्या अधीयते।आदिशब्दात्प्रज्ञप्त्याद योग्राह्या । एताश्च विद्या पाखंडिकागृहस्थावा स्वपूज्याद्यर्थलिंगधारिणोवा अन्नपान वस्त्रलयनशयनार्थं प्रयुंजति अन्येषा वा विरूपरूपाणा विचित्राणा कामभोगाना कृते प्र युंजति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टमित्याह । (तिरिमिति) तिरश्चानामननुकूलां स दनुष्ठानप्रतिघातकारिणी तेऽनार्याविप्रतिपन्ना विद्या सेवते तेच यद्यपि क्षेत्रार्याभाषार्या स्तथाप्यनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव ज्ञेया । तेच कालमासे मरणावसरे कालं कृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोभवति ततोन्यतरेषु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिस्थानेषु उ त्पत्स्यते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदि मनुष्येषूत्पद्यंते तदा एडमूकत्वेनाऽव्यक्तभाषित्वेन त मस्त्वेनांधतया मूकतयावा प्रत्यायाति ततोनरकतिर्यगादिषूत्पद्यते ॥ २७ ॥

स्सयमित्यादि । स्त्रीसंगासक्तस्यावश्यंनाविनी शब्दादिविषयासक्तिरित्यत स्त्रीकामग्रहणं। तत्र चासक्तायावत कालमासते तत्सूत्रेणैव दर्शयति । यावद्वर्षाणि चतु पचपड्दशकानि । अयच मध्यमकालोगृहीत । एतावत्कालोपादान च साभिप्रायं प्रायस्तीर्थिकाअति क्रातवयसएव प्रव्रजति तेषा चैतावानेव काल सनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वं मयश्च गृह्यते इति दर्शयति । तस्माच्चोपात्तादल्पतर प्रनूततरोवापि कालोनवति । त त्रच ते त्यक्त्वापि गृहवास नुक्त्वा नोगनोगान् इति स्त्रीनोगे सति अवश्य शब्दादयोनोगा नोगनोगास्तान्नुक्त्वा तेच किल वय प्रव्रजिताइति नच नोगेन्योविनिवृत्ता । यतोमिथ्या दृष्टितया ज्ञानांधत्वात्सम्यग्विरतिपरिणामरहितास्तेचैवनूतपरिणामा स्वायुष काल मासे कालं कृत्वा निरुष्टतपसोपि सतोऽन्यतरेष्वासुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयि तारोनवति । ते ह्यज्ञानतपसा मृताअपि किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पत्स्यते तस्मादपि स्था नादायुष क्षयाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युता किल्बिषिकबहुलास्तत्कर्मशेषेणैलवन्मूकाएलमूका स्तद्भावेनोत्पद्यंते । किल्बिषिकस्थानाच्च्युत सन्ननतरनवे वा मानुषत्वमवाप्य यथैलमूकोऽ व्यक्तवाक् समुत्पद्यतइति । तथा (तममूयत्ताये त्ति) तमस्त्वेन जात्यधतया अत्यताऽज्ञा नावृततया वा तथा जातिमूकत्वेनापगतवाचइह प्रत्यागच्छतीति । तदेवनूत खलु ते षा तीर्थिकाना परमार्थत सावद्यानुष्ठानादनिवृत्तानामाधाकर्मादिप्रवृत्तेस्तत्प्रायोग्यनोग नाजा तत्प्रत्ययिक सावद्यं कर्माधीयते । तदेतद्नोनप्रत्ययिकं द्वादश क्रियास्थान माख्यातमिति ॥ २१ ॥

इच्चियाइ डुवालस किरियाठाणाइ दविएणं समणेणवा माहणे णवा सम्म सुपरिजाणिअवाइं नवंति ॥ २२ ॥

अर्थ–एरीते ए बारे क्रिया स्थानक तेने (दविएण के०) मुक्ति गमन योग्य एवा जे श्रमण तथा ब्राह्मणो होय तेणे (सम्मंसुपरिजाणिअवाइनवति के०) सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरवा ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–उपसहारमाह । (इच्चेइत्यादि) इत्येतान्यनर्थदंडादीनि द्वादश क्रियास्था नानि कर्मग्रंथिद्रावणाद्द्रव संयम सविद्यते यस्यासौ द्रविकस्तेन श्रमणेन साधुना मा वधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य समाहनस्तेन सम्यक् सुपरिज्ञातव्यानि संसारकारणानीति ज्ञात्वा, परिहर्तव्यानि नवति ॥ २२ ॥

॥ टीका–साप्रतमेतेषां द्वादशानामप्युपसहारार्थमाह । (इच्चेयाइत्यादि) इतिरुपप्रद

णायाता तामधीत्य प्रयुजते । तथा नानाप्रकार ज्योतिपमधीत्य व्यापारयतीति दर्शयति (चदचरियमित्यादि) चद्रस्य ग्रहपतेश्चरित चद्रचरितमिति । तत्र वर्णसंस्थानप्रमाण प्रजानक्षत्रयोगराहुग्रहादिकं । सूर्यचरितविद । सूर्यस्यमडलपरिमाणराशिपरिजोगोद्यो तावकाशराहूपरागादिक । तथा शुक्रचारोविथीत्रयचारादिकस्तथा बृहस्पति शुनाशुन फलप्रद सवत्सरराशिपरिजागादिकश्च तथोल्कापाताविग्दाहाश्च वायव्यादिपु मंडलेपु नवत शस्त्राग्निकुत्पीडाविधायिनोनवति । तथा मृगाहरिणशृगालादयश्चारण्यास्तेपां द र्शनरुत ग्रामनगरप्रवेशादौ सति शुनाशुन यत्र चित्यते तन्मृगचक्र । तथा वायसादीनां प क्षिणा यत्र स्थानादिकं स्वरआश्रयेणाऽशुनफल चित्यते तद्वायसपरिमडलं । तथा पांसु केशमांसरुधिरादिवृष्टयोऽनिष्टफलदायत्र शास्त्रे चित्यंते तत्तदनिधानमेव नवति । त था विद्यानानाप्रकारा क्षुद्रकर्मकारिण्यस्ताश्चेमा । वैतालीनामविद्या । नियताक्षरप्रतिब द्धा । साच किल कतिनिर्जपैर्दंडमुत्थापयति तथार्धवैताली तमेवोपशमयति । तथोपस्वा पिनी तालोद्घाटनी श्वापाकी शाबरी तथा परिड्राविडी कालिंगी गौरी गाधार्यवपतन्युत्पतत नीजृंनणी स्तननी श्लेपणी आमयकरणी विशल्यकरणी प्रक्रामण्यंतर्धानकरणीत्येवमादि का विद्याअधीयते । आसा चार्थ संज्ञातोऽवसेयइति न वर । स्वापिनीद्राविडीकालिंग्य स्तद्देशोद्भवास्तद्भापानिबद्धावा चित्रफला । अवपतनी तुजपत्स्वतएवपतत्यन्य वापात यत्येवमुत्पतन्यपि इष्टव्या । तदेवमेवमादिकाविद्या । आदिग्रहणात्प्रज्ञप्त्यादयो गृह्यंते। एताश्च विद्या पापडिकाश्चविदितपरमार्थागृहस्थावास्वयूथ्यावाद्रव्यलिंगधारिणोन्नपा नाद्यर्थं प्रयुजति अन्येपा वा विरूपाणामुच्चावचाना शब्दादीना कामनोगाना कृते प्रयु जति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टकारीति दर्शयितुमाह । (तिरिच्छमित्यादि) तिरश्ची नामनुकूला सदनुष्ठानप्रतिपादिका घातिका ते अनार्यविप्रतिपन्ना विद्या सेवते । तेच य द्यपि क्षेत्रार्यनापार्या स्तथापि मिथ्यात्वहतबुद्धयोऽनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव इष्टव्या स्तेच स्वायुप क्षये कालमासे कालंकृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोनवति ततोऽन्यतरे पु आसुरीयकेपु किल्बिषिकादिपु स्थानेपूत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदिवा मनुष्ये पूत्पत्स्यते तत्रच तत्कर्मशेपतयैडमूकेनाव्यक्तनापिणस्तमस्त्वेनाधतया मूकतया वा प्र त्यागच्छति ततोपि नानाप्रकारेपु यातनास्थानेपु नरकतिर्यगादिपूत्पद्यते ॥ २७ ॥

से एगइन आयहेउवा णायहेउवा सयणहेउंवा आगारहेउवा परि वारहेउवा नायगंवा सहवासियवा णिस्साए अडुवा अणुगामिए अडुवा उवचरए अडुवा पडिपहिए अडुवा संधिछेदए अडुवा गंठिछे दए अडुवा उरभिए अडुवा सोवरिए अडुवा वागुरिए अडुवा सोउ

तो, उच्चार एटले वडीनीत, अने पासवण एटले लघुनीत, खेलसिंघाणजल्ल एटले थूंक, बडखो, नाकनो मेल, श्लेष्म, शरीरनो मेल, तेने पारिष्ठापन एटले परठववा रु प समितिए समित्तो, (मणसमियस्स के०) मनसमितवत, (वयसमियस्स के०) वचनसमितवत, (कायसमियस्स के०) कायसमितवत, (मणगुत्तस्स के०) मनगुप्ते गुप्तो, (वयगुत्तस्स के०) वचनगुप्तें गुप्तो, (कायगुत्तस्स के०) कायगुप्तें गुप्तो, (गुत्तिंदियस्स के०) गुप्तेंद्रिय एटले इंद्रियोनो गोपवनार, (गुत्तबंभयारिस्स के०) गुप्त ब्रह्मचारी, एटले नववाडे विशुद्ध, ब्रह्मचर्यनो पालनार, (आउत्तगच्छ माणस्स के०) उपयोग सहित सावधान पणे चालनार, (आउत्तचिठमाणस्सके०) सावधान पणे उनो रहेनार, (आउत्तणिसियमाणस्स के०) सावधान पणे वेसनार, (आ उत्तंतुयट्टमाणस्स के०) सावधान पणे शयन करनार, (आउत्तंभुञ्जमाणस्स के०) सावधान पणे भोजन करनार, (आउत्तभासमाणस्स के०) सावधान पणे बोलनार, (आउत्तंवत्थंपडिग्गहंकबलंपायपुंछणगिहमाणस्सवा के०) सावधान पणे वस्त्र पात्र, कांबल, पायपुंछणने लेतो, तथा (णिक्खिवमाणस्सवा के०) निक्षेप एटले तेने सा वधान पणे मूकतो, तथा (जावचरकूपम्हणिवायमवि के०) किबहुना यावत् चक्षु नी पांपण एटले मिषोन्मिष मात्र, ते पण उपयुक्त पणे करतो, एवो जे साधु तेने एठे. (सुहुमाकिरियाइरियावहियानामकज्जइ के०) सूक्ष्मकिरिया इरियावहि नामे ठे, पर तु ते क्रिया केवी ठे, तोके (अभिविमायाके०) विविध प्रकारें जेनी मात्राठे एवी क्रियाठे ते लागे, ए क्रिया केवलीने पण लागे, कारणके केवली पण सयोगीत्रे ते सयोगी जीव तो एक क्षणवार पण अग्निना ताप माटे पाणीनी पेरें निश्चल रही शके नही, ते कारणे इरियावहि क्रिया लागे. (साके०) ते क्रिया कषाय विना (पढमसमए के०) पहेला समयने विषे (बद्धा के०) बंधाय. (पुठा के०) फरशे, तथा (बितीयसमएवेइया के०) बीजा समयने विषे वेदाय एटले एनु वेदवु थाय, अने (तइयंसमएणिज्जिन्ना के०) त्रीजा समयने विषे निर्जराय एटले एनुं निर्जरवु थाय, ते कहे ठे. (सावद्धा पुठाउदीरियावेइयाणिज्जिन्ना के०) ते क्रिया बधाए, फरशाए, उदिराए, वेदाय, अने नि र्जराए, जे कारण माटे कर्मबंधनी स्थिति कषायितठे ते इरियावहिना धणी होय तेने ते नथी केमके, कषाय वालाने सांपरायिक कर्म बंधायठे. परतु ते कषाय, इरियावहिवाला ने नथी ए कारणे ते इरियावहि क्रिया (सेयकाले के०) ते आगमिककालें त्रीजा स मयने विषे (अकम्मयाविभवति के०) अकर्मता पणे होय, एटले कर्म रहितपणे होय तेथी वीतरागनेज इरियावहि क्रिया लागे एरीतें निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमि त्ते सावद्य कर्म बधाय. ए तेरमो क्रिया स्थानक इरियावहि एवे नामे कह्यो. ॥ २३ ॥

अथवा श्वभिश्चरति शौवनिक शुनां पालकइत्यर्थ । अथवा (सोवणियंतएत्ति) श्वभि· पापर्द्धिकुर्वन्मृगादीनामत करोतीत्यर्थ ॥ २८ ॥

॥ टीका–सांप्रत गृहस्थानुद्दिश्याधर्मपक्षसेवनमुच्यते । (सेएगइउइत्यादि) सएकः क दाचिन्निस्त्रिंश सांप्रत्यापेक्ष्यपगतपरलोकाध्यवसाय कर्मपरतया भोगलिप्सु ससारस्वभा वानुवर्त्यात्मनिमित्त चेत्येतान्यनुगामुकान्यकर्तव्य हेतुभूतानि चतुर्दशासदनुष्ठानानि विधत्ते तद्यथा ज्ञातय स्वजनास्तन्निमित्त तथाऽगारनिमित्तं गृहसंस्कारणार्थ सामान्येनवा कुटुं बार्थ परिवारनिमित्तवा दासीदासकर्मकरादिपरिकरकृते तथा ज्ञातएवज्ञातक· परिचित स्त समुद्दिश्य तथा सहवासिकवा प्रातिवेश्मिकवा निश्रीकृत्यैतानि वक्ष्यमाणानि कुर्यादि ति सबंध । तानिच दर्शयितुमाह । (अडुवेत्यादि) अथवेत्येव वक्ष्यमाणावेक्षया पक्षां तरोपलक्षणार्थ । गच्छतमनुगच्छतीत्यनुगामुक सचाऽकायाध्यवसायेन विवक्षितस्थला द्यपेक्षया विरूपकर्तव्यचिकीर्षुस्त गच्छंतमनुगच्छति । अथवा तस्यापकर्तव्यस्यापकाराव सरापेक्ष्युपचारकोभवत्यथवा तस्य प्रातिपथिकोभवति प्रतिमुख समुखीनमागच्छत्यथवाऽऽ त्मस्वजनार्थ सधिच्छेदकोभवति चौर्य प्रतिपद्यते अथर्वारश्चैर्मैपैश्चरत्यौरभ्रिकोथवा सौ करिकोभवत्यथवा शकुनिभि· पक्षिभिश्चरतीति शकुनिकोऽथवा वागुरया मृगादिबंधनो भ्वा चरति वागुरिकोथवा मत्स्यैश्चरति मात्स्यकोथवा गोपालभाव प्रतिपद्यतेऽथवा गर घातक स्यादथवा श्वभिश्चरति शौवनिक· शुना परिपाकोभवतीत्यर्थोऽथवा (सोवणिय ति) श्वभि पापर्द्धि कुर्वन्मृगादीनामत करोतीत्यर्थ ॥ २८ ॥

से एगइउ आणुगामियभाव पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणु गामियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहार आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्काइत्ता भवइ ॥२९॥ से एगईउ उवचरय भावं प डिसंधाय तमेव उवचरिय हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आ हार आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्काइत्ता भवइ ॥३०

अर्थ–हवे ए चौद स्थानकने प्रत्येके प्रथम थकी विवर्णकरीने कहेछे (सेएगईउ आणुगामियभावपडिसधाय के०) ते कोइ एक पुरुष आत्माने अर्थे कोइ एक ग्रामात रे जनारा पुरुषनी पासे इच्छे एवु जाणीने (तमेवआणुगामियाणुगामिय के०) तेमज तेनी पछवाडे जाय, पछी तेने विश्वास उपजावीने (हंता के०) तेने हणे, छेदे, भेदे, लु टे, विशेषे लुटे, (उद्दवइत्ता के०) उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करे, पछी

वधं वद्धव्ययच ४ । तदेव सारक्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता निर्जीर्णा स्यात् । (सेयंकालेत्ति) एष्यत्काले आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि नवति । एव खलु तस्य वीतरागस्य तत्प्रत्ययिकमीर्यापथिक कर्माधीयते बध्यते । एतत्त्रयोदशं क्रियास्थानमाख्यातं । ये पुनस्तस्मादन्ये प्राणिनस्तेषा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्त सांपरायिकोबंध• स्यात् । केवलयोगनिमित्तस्तु वीतरागस्यैव । सच द्विसमयस्थितिकइति ॥२३॥ सोहं ब्रवीमि येऽतीतायेच प्रत्युत्पन्नाये चागामिनोर्हंतो नगवत सर्वे ते एतान्येव त्रयोदश क्रियास्थानानि अनापिपुर्नापंते नाषिष्यतेच विपाकत प्रज्ञापितवंत प्रज्ञापयति प्रज्ञापयिष्यतिच । तथैतदेव त्रयोदश क्रियास्थानं सेवितवत सेवति सेविष्यते च ॥ २४ ॥

॥ टीका–अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिक नामाख्यायते । ईरणमीर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथस्तत्र नवमीर्यापथिकमेतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्त। प्रवृत्तिनिमित्तं त्विदं सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिकेत्युच्यते । सा कस्य नवति किंनूता वा कीदृक्कर्मफलावा इत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति प्रवचने संयमेवा वर्तमानस्य । खलुशब्दोऽवधारणेऽलंकारेवा । आत्मनोनावआत्मत्वं तदर्थमात्मत्वार्थं संवृतस्य मनोवाक्काये परमार्थतएवनूतस्यैवात्मनावोऽपरस्य त्वसंवृतस्यात्मतत्त्वमेव नास्ति सद्नूतात्मकार्यकारणात् । तदेवमात्मार्थं संवृतस्यानगारस्येर्यापथिकादिनि पचनि समितिनिर्मनोवाक्काये समितस्य तथा तिसृनिर्गुप्तस्य । पुनर्गुप्तिग्रहणमेतानिरेव गुप्तिनिर्गुप्तोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नावनायात्यादरख्यापनार्थं वेति । तथा गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्त्युपेतब्रह्मचारिणश्र सततमुपयुक्त गच्छतस्तिष्ठतोनिषीदतोमुनेस्त्वग्वर्तना कुर्वाणस्य तथोपयुक्तमेव वस्त्र पतद्ग्रह कंबलंवा पादपुंछनक वा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षु पक्ष्मनिपातमप्युपयुक्त कुर्वत सतोऽत्यतमुपयुक्तस्याप्यस्ति विद्यते विविधा मात्रा विमात्रा तदेवविधा सूक्ष्माक्षिपक्ष्मसचलनरूपादिकेर्यापथिकानाम क्रिया केवलिनापि क्रियते । तथाहि । सयोगी जीवोन शक्नोति क्षणमप्येक निश्चलस्थातुमग्निना ताप्यमानोदकवत्कार्मणशरीरानुगत सदा परिवर्तयन्नेवास्ते । तथा चोक्तं । केवलीण नते अस्सिसमय निजेसु आगासयएसेसु इत्यादि । तदेव केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारान्नवतीह च कारणे कार्योपचारात्तया क्रियया यद्बध्यते कर्म तस्य कर्मणो याश्रवस्थास्ता क्रिया । ताएव दर्शयितुमाह । (सापढमसमयेइत्यादि) यासावकायिण क्रिया तया यद्बध्यते कर्म तत्प्रथमसमयएव बद्ध स्पृष्टचेति कृत्वा तत्क्रियैव बद्ध

॥ दीपिका–अथैक. कश्चित्सौकरिक' श्वपचश्चाडाल खाटिकइत्यर्थः । तद्भावमाश्रित्य महिष वान्यं त्रस प्राणिन हतीति तस्य हता छेत्ताइत्यादि ॥३५॥ अथैक. कश्चि वा गुरिकत्वमाश्रित्य मृग वाऽन्य प्राणिन हति तस्यच हता नवति शेष पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

॥ टीका–अत्रांतरे सौकरिकपदं तच्च स्वबुध्या व्याख्येयं। सौकरिका श्वपचाश्चांडाला खट्टिकाइत्यर्थ. ॥३५॥ अथैक कश्चित्क्षुद्रसत्वोवागुरिकनाव लुब्धकत्व प्रतिसंधाय प्रतिपद्य वागुरया मृगं हरिणमन्यंवा त्रसं प्राणिन शशादिकमात्मवृत्यर्थं स्वजनाद्यर्थंवा व्यापादयति तस्यच हंता छेत्ता नवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

से एगइन्ने सउणिय नाव पडिसंधाय सउणिंवा अन्नतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३७॥ से एगइन्ने मिन्नियनावं पमिसंधाय मछंवा अन्नतरं वा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ३८ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष, शाकुनी एटले पक्षीउनो विनाश करीने, आजीविका करे, एवो थको अनेक पक्षीउने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु. ॥ ३७ ॥ कोइएक पुरुष अधमाधम माछी थइने अनेक माछलादिक जलचर जीवोने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका–अथैक कश्चिच्छकुनालावकादयस्तै श्चरति शाकुनिकस्तद्भावमाश्रित्य शकुनमन्य वा त्रसं हति तस्य च हननादिका क्रिया करोतीति ॥ ३७ ॥ अथैक कश्चिन्मात्स्यिकनावमाश्रित्य मत्स्य वाऽन्य त्रस वा जलचर प्राणिनं हन्यात् । शेषं सुगम ॥३८॥

॥ टीका–अथैक कश्चिदधमोपापजीवी शकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भाव प्रतिसधाय तन्मासाद्यर्थी शकुनमन्य वा त्रस व्यापादयति तस्यच हननादिका क्रिया करोतीति । शेष पूर्ववत् ॥३७॥ अथैक कश्चिदधमाधमोमात्स्यिकनाव प्रतिपद्य, मत्स्य वाऽन्य जलचर प्राणिन व्यापदयेद्धननादिका क्रिया कुर्यात् । शेष सुगम ॥ ३८ ॥

से एगइन्ने गोघायनाव पडिसंधाय तमेव गोणंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३९॥ से एगइन्ने गोवालनाव पडिसंधाय तमेव गोवालंवा परिजविय परिजवियहंता जाव उवरकाइत्ता नवइ॥ ४० ॥

अर्थ–कोइएक अधर्मी पुरुष, क्रूरकर्मनो करनार, गौघातकनो नाव आदरी, गाय, अथवा बीजा त्रस जीवोने छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ ३९ ॥ कोइएक पुरुष, क्रूर

णिलक्खणं कागिणिलक्खणं ॥ २६ ॥ सुभगाकरं डुब्भगाकरं गब्भाकरं मो हणकरं आहच्चाणि पागसासणि दव्वहोमं खत्तियविज्जं चंदचरिय सूरच रियं सुक्कचरियं वहस्सइचरिय उक्कापायं दिसादाहं मियचक्क वायसपरिमंमलं पसुवुठिं केसवुठि मसवुठि रूहिरवुठि वेतालि अद्ध वेतालि उसोवणि तालुघाडणि सोवागि सोवरि दामिलि कालिगि गो रिं गंधारि उवतिणि उप्पयणि जंभणि थभणि लेसणि आमयकरणि विसल्लकरणि पक्कमणि अंतद्धाणि आयमिणि एवमाइआउ विज्जाउ अन्नस्स हेउं पउंजंति पाणस्स हेउ पउंजंति वछस्स हेउं पउंजति लेण स्स हेउं पउंजंति सयणस्स हेउं पउंजंति अन्नेसिवा विरूवरूवाणं का मभोगाण हेउं पउंजति तिरिछं तेविज्ज सेवेति ते अणारिया विप्पडि वन्ना कालमासे काल किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइ किब्विसियाइं ठा णाइं उववत्तारो भवति ततोवि विप्पमुच्चमाणा भुज्जोएल मूयताए तम अंधयाए पच्चायति ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे जे काइ ए तेरमा क्रियास्थानकने विषे पाप न कह्यु, ते कहेछे (अडुत्तरच णं के०) जे कांइ तेरमा क्रियास्थानकने विषे नकेवाणुं ते आगले ग्रथे कहिए छैए (पुरि सविजयंविभंगेमाइक्खिस्सामिके०) हवे पुरुषविचय अथवा पुरुषविजय एटले केटला एक अल्पसत्ववत पुरुषनो विभग एटले ज्ञानक्रियाविशेष कहीशु (इहखलु के०) आ मनुष्य क्षेत्रने विषे निश्चे थकी (णाणापन्नाण के०) नाना प्रकारनी जेनी प्रज्ञाछे तथा (णाणाछंदाण के०) नाना प्रकारे जेनो अभिप्रायछे (णाणासीलाण के०) नाना प्रकारे जेनो आचा रछे (णाणादिठ्ठीणं के०) नाना प्रकारें जेनी दृष्टीछे एतावता त्रणशेने त्रेसठ जेनु प्रमा णछे तेकारणे नाना दृष्टिना जाणवा (णाणारूईण के०) आहार, विहार, शयन, आ भरण, यान, वाहन, गीत, अने वाजित्रादिकनेविषे जुदी जुदी जेनी रुचिछे (णाणारं भाण के०) तथा नाना प्रकारना जेना आरभ एटले कर्षण, पशुपालन, शिल्पकर्म, इत्यादिक जेने आरभछे. (णाणाज्झवसाण के०) नाना प्रकारना शुभाशुभ अध्यवसाय तेणेकरी (सजुत्ताणं के०) सहित जे वर्त्तेछे. (णाणाविहपावसुयाज्झयणं के०) तेना ए आगलजे केहेशे ते प्रमाणे, नाना प्रकारे पापश्रुताध्ययन (एवभवइ के०) एम होय ॥२५॥ (तंजहा के०) ते कहेछे (भोम के०) भूमिनिर्घात एटले भूमिकपादिक जे ग्रंथ

॥ टीका–अथैक कश्चिज्जघन्यकर्मकारी शौवनिकनाव प्रतिपद्य सारमेयपापर्द्धिनाव प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं तेन वा पर मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिन व्यापादयेत्तस्य च हननादि का क्रिया कुर्यादिति ॥ ४१ ॥ अथैक· कश्चिदनार्योनिर्विवेक· (सोवणियंतियं नावति) श्वनिश्चरति शौवनिक· अतोस्यास्तीत्यंतिकोऽतेवा चरत्यंतिक· पर्यंतवासीत्यर्थ । शौवनिकश्चासावंतिकश्च शौवनिकांतिक· क्रूरसारमेयपरिग्रह प्रत्यंतनिवासीच प्रत्यंतनिवासिनि वाँ श्वनिश्चरतीति तदसौतन्नाव प्रतिसंधाय डुष्टसारमेयपरिग्रह प्रतिपद्य, मनुष्यं वा कंच नपथिकमन्यागतमन्यं वा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता नवति । अयं च ताच्छीलिक सून् लुट् प्रत्ययोवा इष्टव्य· । तृचि तु साध्याहार प्राग्वद्व्याख्येय । तद्यथा । पुरुषं व्यापादयेत्तस्य च हता छेत्ता इत्यादि । तृनलुट्प्रत्ययौ प्रागपि योजनीयाविति । तदेवमसौ महाक्रूरकर्मकारी महद्भि· कर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४२ ॥

से एगइउ परिसामज्जाउ उठ्ठिता अहमेयं हणामित्ति कट्टु तित्तिरवा वट्टगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविजलंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४३ ॥ से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराघालएण गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं ज्ञामेइ अन्नेणवि अगणिकाएण सस्साइ ज्ञामावेइ अगणिकाएण सस्साइं ज्ञामंतपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४४ ॥

अर्थ–हवे कांहि एक पापनुं विशेष कारण कहेछे जे प्रथम कह्यु, अने हवे कहेशे, तेमां विशेष एटलुजछे के, प्रथमजे जीवहिंसा कही ते हिंसा लोक थकी प्रछन्न पणे करे, अने हवे जे कहेशे ते हिंसा लोकमा प्रगट पणे करे, एटलु विशेष जाणवु ते एवी रीते छे, जेम कोइएक पुरुष मास नक्षण करवानी इछायें, अथवा व्यसनने लीधे अथवा क्रीडाने निमित्त (परिसामज्जाउउठ्ठित्ता के०) परिषदामाहेथी उठीने (अहमेयं के०) हुं आ अमुक जीवने (हणामित्तिकट्टु के०) हणीश· एवी प्रतिज्ञा करीने, पछी (तित्तिरवा के०) तित्तर, अथवा (वट्टगवा के०) वर्त्तक, अथवा (लावगवा के०) लावक, अथवा (कवोयगवा के०) कपोत पक्षी, अथवा (कविजलंवा के०) कपिजल एटले पारेवा, तथा सारस पक्षिविशेष जाणवा, अथवा (अन्नयरवा के०) अन्य (तसपाण के०) त्रस जीवने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक यावत् पोताना आत्माने कर्मबंधन विषे पाडे ॥ ४३ ॥ हवे कोइएक पुरुष, प्रकृतियें क्रोधी थतो, (केणइ के०)

(उसोवणिके०) उपस्वापिनी विद्या, (तालुघाडणिके०) ताला उघाडवानी विद्या, तालो द्घट्टनी (सोवागि के०) चामालिणीस्वापकी विद्या, (सोवरिके०) शावरी विद्या (दा मिलिके०) डाविडीविद्या (कालिंगिके०) कालिंगी विद्या, (गोरिके०) गोरी विद्या (गंधारि के०) गाधारी विद्या, (उवतिणिं के०) अवपतनी नीचे पाडवानी विद्या, (उप्पयणि के०) उत्पतनी एटले उंचे जवानी विद्या. (जनणिके०) जृनणी विद्या, (थनणिके०) स्तननी विद्या (लेसणि के०) श्लेपनी विद्या (आमयकरणि के०) आमय करणी विद्या (विसल्लकरणि के०) विशल्य करणी विद्या (पक्कमणि के०) प्रक्रामणी फेर चडा वानी विद्या (अतद्धाणि के०) अदृश्य करणि विद्या (आयमणि के०) आत्मणी विद्या, (एवमाइआउविज्जाउ के०) इत्यादिक विद्याउ आदि शब्दथकी प्रज्ञप्त्यादिक विद्याउ लेवी ते विद्याउने जे शास्त्रो थकी जाणीये तेवा शास्त्रो नणीने पाखंमी, परदर्शनी अथवा गृहस्थ, अथवा स्वपक्षीक इव्यलिंगी साधु ते ए पूर्वोक्त विद्याउने (अन्नस्सहेउ के०) अन्नने अर्थे (पउंजति के०) प्रयुजे (पाणस्सहेउपउजति के०) पाणीने अर्थे प्रयुजे (वत्थस्सहेउंपउंजति के०) वस्त्रने अर्थे प्रयुजे (लेणस्सहेउंपउजति के०) उपाश्रयने अर्थे प्रयुजे (सयणस्सहेउपउजति के०) शयनने अर्थे प्रयुजे (अन्नेसिवाविरुवरुवाणकामन्नोगाणहेउंपउजति के०) अथवा बीजा नाना प्रकारना कामनोगने अर्थे प्रयुजे ते पुरुष (तिरिछ तेविज्जंसेवेति के०) तिरछि एटले रुडा अनुष्ठाननी हणनारी एवी ते विद्याने सेवे (तेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) ते अनार्य जाणवा यद्यपि क्षेत्र करी अने नाषायें करी तो आर्यछे तथापि, मिथ्यात्व ना आसेवन थकी, अनार्य कर्मना करनार, अनार्य, अनाचारी, केवाय ते (कालमासे कालंकिच्चा के०) आयुष्यने क्षये कालने अवसरे काल करीने अज्ञान तपने प्रमाणे यद्यपि देवलोके जाय तथापि ते,(अन्नयराइ आसुरियाइ किव्विसियाइ गणाइ उववत्तारो नवति के०) तेउनु अनेरा आसुरी किल्विषिकादिक स्थानकोने विपे उपजवु थाय (ततोविविप्पमुच्चमाणाके०) त्या थकी चवीने (लुक्कोके०) वली मनुष्यमा उपजतो केवा थाय तोके (एल के०) बेरा थाय. (मूयताए के०) मुगा थाय, (तम अंधयाए के०) आंधला एवा ते जीव थाय. त्यार पछी (पच्चायति के०) नरक तिर्यचादिक गतिने विपे परिन्रमण करे, अधर्मपक्ष आश्री एटले व्रतधारीने पापनो विपाक कह्यो हवे गृहस्थ उद्देशिन अधर्म पक्ष कहेछे ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नोक्तं पापस्थानं तदाह । इदमुत्तरं अस्मात्क्रियास्थानप्रतिपादनादुत्तरं यदत्र नोक्तं तदुत्तरग्रथेनोच्यते । चसमुच्चये । ण

आजरणादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने हाथे अपहरावे,बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे, एम करतो जीव घणां पाप कर्मोपार्जन करे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–अथैक. केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः कुडलादि द्रव्यमपहरेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

॥ टीका–अपिच (सेएगर्डइत्यादि) अथैक· कश्चित्केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादे· संबंधि कुंडलादिक द्रव्यजातं स्वयमेवापहरेदवशिष्टं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइर्ज केणइवि आदाणेण विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडु वा सुराथालएण समणेणवा माहणेणवा छत्तगवा दंमगंवा नंमगंवा म त्तगवा लठिवा निसिगंवा चेलगंवा चिलिमिलिगंवा चम्मगवा छेयण गवा चम्मकोसियवा सयमेव अवहरंति जाव समणुजाणइ इति से म हया जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४८ ॥

अर्थ–हवे पाखंमी दर्शन उपर कोप्यो थको, जे करे, ते देखाडेछे कोइएक कारणे रीसाणो छतो वादीयें जीत्यो अथवा पोताना दर्शनने द्दष्टिरागें अथवा अन्न अने धान्यने थोडे दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वाछितलाजने अजावे, कोप्यो थको श्रमण अथवा ब्राह्मण तेना दंम, छत्र, माटीना जाम, मात्रो,लाकडी, बेसवानो पाट, वस्त्र, मटको, ढांकवानो वस्त्र, चर्म, चर्मछेदनी तरवार, चर्मनी कोथली इत्यादिक अनेक उपकरण पोते अपहरे, बीजा ने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते घणा कर्म उपार्जन करे एटला कारणे क्रोधे करी पापनुं विशेषपणु कह्यु ॥ ४८ ॥

॥ दीपिका–अथ पाखडिकोपरिकोपमाह। अथैक कश्चित्स्वमतानुरागेण वादपराजितो वा अन्येन वा केनचिन्निमित्तेन कुपित श्रमणानां ब्राह्मणानां छत्रक वा नाडं किंचिद्वस्तु दंडक वा नांडक किंचिद्वस्तुमात्रकं पात्रं (लठ्ठिगं) यष्टि (निसिग) वृसीमासनमिति यावत् । चेलक वस्त्र (चिलिमिलिग) प्रछादपटी चर्मकं पाडकादि चर्मछेदनकं शस्त्रादि च मेकोश शस्त्रक्षेपकोत्थलक स्वयमपहरेत् । शेषपूर्ववत् ॥ ॥ ४८ ॥

॥ टीका–साप्रतं पाखडिकोपरि कोपेन यत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह। (सेएगइर्डइत्यादि) अथैक कश्चित्स्वदर्शनानुरागेण वा वादपराजितोवान्येनवा केनवा केनचिन्निमित्तेन कु

॥ टीका—सांप्रत त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नाभिहित पापस्थानं तदभिधित्सुराह । (अहुत्तरमित्यादि) अस्मात्त्रयोदशक्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तर यत्र न प्रतिपादित त दधुनोत्तरभूतेनानेन सूत्रसंदर्भेण प्रतिपाद्यते । यथाऽऽचारे प्रथमश्रुतस्कंधे यन्नाभिहित तडुत्तरभूतानिचूलिकानि प्रतिपाद्यते । तथा चिकित्साशास्त्रे मूलसंहिताया श्लोक स्थाननिदानशारीरचिकित्सितकल्पसंज्ञकाया कार्यं यन्नाभिहितं तडुत्तरेऽभिधीयते एवमन्य त्रापि छंद सित्यादावुत्तरसद्भावोऽवगंतव्य । तदिहापि पूर्वेण यन्नाभिहित तदनेनोत्तरग्र थेन प्रतिपाद्यतइति । च समुच्चये । णमितिवाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यते वि ज्ञान द्वारेणान्वेष्यते येन सपुरुषविचय पुरुषविजयोवा केषाचिदल्पसत्वाना तेन ज्ञानब लेनावधिप्रयुक्तेनानर्थानुबंधेनाविजयादिति । सच विभंगवदवधिविपर्ययवद्भिभंगोज्ञानवि शेष पुरुषविचयश्चासौ विभंगश्च पुरुषविचयविभंगस्तमेवभूत ज्ञानविशेषमाख्यास्यामि प्र तिपादयिष्यामि । यादृशाना चासौ भवति ताल्लेशत प्रतिपादयितुमाह । (इह खलुइ त्यादि) इह जगति मनुष्यक्षेत्रे प्रवचने वा नानाप्रकाराविचित्रक्षयोपशमात् प्रज्ञायतेऽन येति प्रज्ञा सा विचित्रा यषा ते नानाप्रज्ञास्तया वाऽल्पाल्पतराल्पतमया चिंत्यमाना पुरुषा षट्स्थानपतिताभवति । यथा छंदोऽभिप्राय सनानायेषा ते तथा तेषा नानाशी लाना तथा नानारूपा दृष्टिरत करणप्रवृत्तिर्येषा ते तथा तेषामिति । तेषांच त्रीणि श तानि पष्ठ्यधिकानि प्रमाणमवगतव्य । तथा नाना रुचिर्येषा ते नानारुचय । तथा हि । आहारविहारशयनासनाच्छादनाभरणयानवाहनगीतवादित्रादिषु मध्ये ऽन्यस्यान्यारु चिर्भवति तेषा नानारुचीनामिति । तथा नानारंभाणा कृषिपाशुपाल्यविपणिशिल्पिक र्मसेवादिष्वन्यतरमारंभेणेति । तथा नानाव्यवसायसयुताना शुभाव्यवसायभाजा इह लोकमात्रप्रतिबद्धाना परलोकनिष्पिपासाना विषयतृषितानामिद नानाविधं पापश्रुताध्य यन भवति ॥२५॥ तद्यथा भूमौ भव निर्घातभूकपादिक, तथोत्पात कपिहसितादिक, त था स्वप्नं गजवृषभसिंहादिक, तथाऽतरिक्षं मेघादिकं, तथांगे भवमाग अक्षिबाहुस्फुर णादिकं, तथा स्वरलक्षणं काकस्वरगभीरस्वरादिक तथा लक्षण यवमत्स्यपद्मशखच क्रश्रीवत्सादिक व्यजन तिलकमाषादिक, तथा स्त्रीलक्षण रक्तकरचरणादिक, एवपुरुषा दीना काकिणीरत्नपर्यंताना लक्षणप्रतिपादकशास्त्रपरिज्ञानमवगतव्यं ॥२६॥ तथा मंत्रवि शेषरूपाविद्या तद्यथा। डुर्भगमपि सुभगमाकरोमि सुभगकारा, तथा सुभगमपि डुर्भगमा करोमि डुर्भगकारा, तथा गर्भकरा गर्भाधानविधायिनी तथा मोहोवेदादयोवा तत्करण शीलामाथर्वणाभिधाना सद्योऽनर्थकारिणी विद्याभणीयते तथा पाकशासनीमिंद्रजाल संज्ञिका तथा नानाविधैर्द्रव्यै कणवीरपुष्पादिभिर्मधुघृतादिभिर्वोच्चाटनादिकै कार्यैर्होमो हवनं यस्या सा द्रव्यहवना ता तथा क्षत्रियाणा धनुर्वेदादिकापरा वा या स्वगोत्रक्रमे

तेसा कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइओ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइओ णोवितिगिछइ तसमणांवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंमगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवक्खाइत्ता नवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ–एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट, गाय, बलद, घोडा, गर्द्दननां बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्द्दननी शालाने काटा थकी टांकीने पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आनरण, तथा मौक्तिकादिक द्रव्य, पोते अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पाच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाछे परतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलु विशेपछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका–अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जवाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिडष्ट्रादिबंधन गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगम ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवैतत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका–तथेहामुत्रच दोपापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबधिना क्रमेलकादीना जवादीनवयवाश्छिंद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शाला दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेसत्कं कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीना दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येव प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽनिदितास्तएव तदन्वे नानिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइओ समणंवा माहणवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता नवइ अडवाण अछराए आफालित्ता नवइ अडवाणं

णिए अदुवा मच्छिए अदुवा गोघायए अदुवा गोवालए अदुवा सोव णिए अदुवा सोवणियंतिए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे गृहस्थ उद्देशीने अधर्म पक्ष कहेछे (सेएगईउ के०) ते गृहस्थ कोइ एक महा निर्दय परलोक थकी न बिहितो थको, संसारना सुख वांछतो छतो जे कर्कश कर्म करे ते कहेछे. (आयहेउंवा के०) पोताने निमित्तें अथवा (णायहेउवा के०) ज्ञातिने निमित्तें (सयणहेउवा के०) स्वजनने निमित्तें (आगारहेउंवा के०) घरने नि मित्ते (परिवारहेउंवा के०) परिवारने निमित्तें (नायगंवा के०) परिचित एटले जा णेला पुरुषने निमित्तें (सहवासियवाणिस्साए के०) सहवासि एटले पाडोशीनी निश्रा ये, एटला अकार्य करे, ते कहेछे. (अदुवा के०) अथवा (अणुगामिए के०) अ कार्य करवाने अर्थें बीजो जतो होय तेनी पछवाडे जाय, (अदुवाउवचरए के०) अथवा अकार्य करवाने अर्थे तेने अनेक उपचार करे विश्वासे, (अदुवापडिपहिएके०) अथवा प्रतिपथिक एटले मार्गे जता माणसनी सन्मुख आवे (अदुवासंधिछेदएके०) संधिछेदक, एटले चोरी करे, (अदुवागंठिछेदए के०) अथवा ग्रंथिछेद करे, एटले गंठी छो डो थाय, (अदुवाउरब्भिए के०) अथवा गाली एटले गाडरा चरावे (अदुवासोवरि ए के०) अथवा सूवर डुक्कर चरावे (अदुवावागुरिए के०) अथवा वाघरी थाय, एटले मृग मारवाना कर्म करे (अदुवासोवणिए के०) अथवा शकुनी एटले पक्षीउंने पाश नाखे, (अदुवामछिए के०) अथवा माछी थाय, (अदुवागोघायए के०) अथवा गो घातक कसाइ थाय, गायने मारे, अथवा गोधाने नाथे (अदुवागोवालए के०) गोवालि या पणु करे, इत्यादिक नीचकर्म करे, (अदुवासोवणिए के०) कुतरानो राखनार था य, (अदुवा सोवणियंतिए के०) कुतराये करी शिकार खेले. इत्यादिक बधा मलीने चउद प्रकारें करी अनेक जीवोनो विनाशकरे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अथ गृहस्थानुद्दिश्याधर्मसेवामाह । (सेएगईउआयहेउवा) सएक कदाचिन्निस्त्रिंशआत्मनिमित्त ज्ञातिहेतुवा अगारहेतु गृहसस्करणार्थ परिवारहेतुवा ज्ञा तक परिचितस्तं समुद्दिश्य सहवासिक प्रातिवेश्मिक निश्रीकृत्य एतानि कुर्यात् । तान्ये वाह । (अदुवेत्ति) अथवेति पक्षातरापेक्षया । गच्छतमनुगच्छतीत्यनुगामुक. सचाकार्य करणमनास्त गच्छंतमनुगच्छति । अथवाऽन्यस्य विरूपकरणावसरापेक्षी उपचारक स्या त् । अथवा उरभ्रेण चरत्यौरभ्रिक । अथवा सौकरिक । अथवा शकुनिभिश्चरति शाकु निक अथवा वागुरिक अथवा मात्स्यिक अथवा गोघातक अथवा गोपालत्व भवति

॥ टीका–सांप्रत विपर्यस्तदृष्टयोऽगाढमिथ्यादृष्टयोऽभिधीयते (सेएगइउइत्यादि) अथै क कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनद्रक: साधुप्रत्यनीकतया श्रमणादीनां निर्गच्छतां प्रविश तां वा स्वतश्च निर्गच्छन् प्रविशन् वा नानाविधैः पापोपादानभूतैः कर्मभिरात्मानमुपख्या पिता भवतीत्येतदेव दर्शयति । अथवेत्ययमुत्तरापेक्षया पक्षांतरोपग्रहार्थः । क्वचित्साधु दर्शने सति मिथ्यात्वोपहतदृष्टितयाऽपशकुनोयमित्येव मन्यमानः सन् दृष्टिपथादपसारयन् साधुमुद्दिश्यावज्ञयाप्सरायाश्च पुटिकाया स्फालयिता भवत्यथवा तत्तिरस्कारमापादय न्परुषं वचोब्रूयात् । तद्यथोदनमुंभनिरर्थककायक्लेशपरायणदुर्मुंडेऽपसराग्रतस्तदसौ भ्रुकुटिं विदध्यादसत्यंवा ब्रूयात् तथा भिक्षाकालेनापि (भे) तस्य भिक्षोरन्येभ्योभिक्षा चरेभ्योऽनु पश्चात्प्रविष्टस्य सतोऽत्यतदुष्टतयाऽन्नादेर्नदापयिता भवत्यपरंच दानोद्यत नि षेधयति तत्प्रत्यनीकतयैतच्च ब्रूते । इमे पाखंडिकाभवंति तएवभूताभवतीत्याह । (चो सुत्ति) तृणकाष्ठहारादिकमधमकर्म विद्यते येषां ते तद्वतस्तथा भारेण कुटुबभारेण पोट्ट लिकादिभारेण वाऽऽक्रांता पराभग्ना सुखलिप्सवोऽलसाः क्रमागतं कुटुंबं पालयितुमसम र्थास्तथा पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथाचोक्तं । गृहाश्रमपर इत्यादि । तथा (वसलगत्ति) वृषलाअधमाः शूद्रजातयस्त्रिवर्गप्रतिवारकास्तथा कृपणा क्लीबा अकिंचित्करा श्रमणा भवति प्रव्रज्या गृहस्तीति ॥ ५४ ॥

ते इणमेव जीवितं धिक्कीवितं संपडिवुहेति नाड ते पारलोगस्स अट्ठाए किंचिवि सिलीसंति ते डुक्खंति तेसोयंति तेजूरंति तेतिप्पंति तेपिट्टं ति तेपरितप्पंति तेडुक्खण जूरण सोयण तिप्पण पिट्टण परितिप्पण वहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया भवंति ते महया आरंभेणं ते महया समारंभेणं तेमहया आरंभसमारंभेणं विरूवरूवेहिं पाव कम्मे किच्चेहिं उरालाइं मणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजित्तारो भवंति ॥ त जहा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणंलेणकाले सयणंसयणकाले पुव्वावरंचणं ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सिरस्साण्हाए कंठेमालाकडे आवद्धमणिसुवन्ने कप्पियमा लामउली पडिवद्धसरीरवग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अ हतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडा गारसालाए महति महालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरि वुडे स

तेनुं धनलइने ते धनेकरी अनेक प्रकारें (आहारआहारेंति के०) अहार आहारे. (इतिसेमहयापावेहिकम्मेहिअत्ताणउवक्काइत्तानवइ के०) एवी रीते ते पुरुष महोटा क्रूर पाप कर्मानुष्ठाने, पोताना आत्माने दुर्गतिमाहे पाडे नरक तिर्यंचगतिने नामे वि ख्यात थाय ॥ १९ ॥ ते कोइएक पुरुष धनवतनी वचना निमित्ते (उवचरयनावपडिस धाय के०) उपचारक नाव आदरीने तेमज नाना प्रकारना उपाय करी विश्वास उप जावी तेने हणी. छेदी, नेदी, लुंटी, विशेषे लुटी, उपद्रव करी, जीवितव्यथकी वि नाशकरीने तेनु धनलेइने, तेधने करी अनेक प्रकारना आहार आहारे. एरीते ते पुरुष महोटा क्रूर पापानुष्ठाने करीने पोताना आत्माने दुर्गतिमाहे पाडे चतुर्गतिक ससारमां हे परिभ्रमणकरे नरकादि गतिने विषे विख्यात थाय ॥ २० ॥

॥ दीपिका—एवमेतेषा चतुर्दशकर्तव्यानामुद्देशं कृत्वा तानि प्रत्येक विवृणोति । तत्रैक' कश्चिदात्माद्यर्थं ग्रामातर गछन् पुरुषस्य समीपे किंचिद्द्रव्य ज्ञात्वा तज्जिघृक्षुस्त स्यानुगामुकनाव प्रतिसधाय सहगमनेनानुकूल्यं प्रतिपद्य वचनावसर समीहमानोगछ तमनुगछति । अवसर लब्ध्वा तस्य हता, दडादिनिश्छेत्ता, खड्गादिना नेत्ता, वज्रमुष्ट्या दिना लुपयिता, केशाकर्षणादिनिर्विलुपयिता, कशाप्रहारादिनि अपद्रावयिता, जीवित विनाशक स्यात् इत्यादि कृत्वाऽहारमाहारयति इत्येवमसौ महद्भि पापै कर्मभिरात्मा नमुपख्यापयिता नवति । अयं महापापकारीत्येव लोके ख्यापयति ॥१९॥ तदेवमेक कश्चिन्नवत कस्यचिदुपचरकनावमाश्रित्य त विश्वासे पातयित्वा धनादिकृते तस्य हता छेत्ता इत्यादि । एवमसौ महद्भि पापैरुपख्यापयिता नवति ॥ २० ॥

॥ टीका—तदेवमेतानि चतुर्दशाप्युद्दिश्य प्रत्येकमादित प्रनृति विवृणोति । (सेए गइउइत्यादि) तत्रैक कश्चिदात्मार्थं अपरस्य गतुर्ग्रामातर किंचिद्द्रव्यजातमवगम्य तदादि त्सुस्तस्यैवानुगामुकनाव प्रतिसधाय सहगमनावेनानुकूल्य प्रतिपद्य विवक्षितवचनावसर कालाद्यपेक्षी तमेव गछतमनुव्रजति तमेव चान्युत्थानविनयादिनिरत्यतोपचारैरुपचर्यानु व्रज्य च विवक्षितमवसर लब्ध्वा, तस्यासौ हता दंडादिनिस्तथा छेत्ता खड्गादिना हस्त पादादेस्तथा नेत्ता वज्रमुष्ट्यादिना तथा लुपयिता केशाकर्षणादिकदर्थनतस्तथा विलुप यिता कशाप्रहारादिनिरत्यंतदुःखोत्पादनेन तथा द्रावयिता जीविताद्व्यपरोपणतोनवती त्येवमादिक कृत्वाऽहारमाहारयत्यसौ । एतदुक्त नवति । गलकर्तक कश्चिदन्यस्य धनव तोऽनुगामुकनाव प्रतिपद्य तं बहुविधैरुपायैर्विश्रम्भे पातयित्वा नोगार्थी मोहांध साप्रतेक्षि तया तस्य । रिक्थवतोप्रकृत्याहारादिका नोगक्रिया विधत्ते । इत्येवमसौ महद्भि क्रूरं क

प्रलंबित (सोणिसुत्तगमल्लदामकलावे के०) कडने विषे कंदोरोछे जेने एवो, अने फुलनीमाळाना समूह पेरतो एवो, (अहतवत्थपरिहिए के०) अत्यंत बहु धोळां निर्दोष वस्त्र पेहेरे, (चंदणोक्कितगायसरीरे के०) चंदने करी गात्रने विलेपन करे एवो थको, (महतिमहालियाए के०) अत्यंत महोटी (कूडागारसालाए के०) कूटने आकारें शिला तेने विषे (महतिमहालयसिसीहासणसि के०) महोटा सिंहासने बेठो थको (इत्थिगुम्मसपरिवुडे के०) स्त्रीना वृंदे पर वर्यो (सव्वराइएण के०) सर्व रात्री संबंधि (जोइणा के०) प्रदीपनी ज्योति (झियायमाणाणं के०) तेना अजवाला थकि (महयाहयनट्टगीयवाइय के०) महोटा नट्ट, गीत, वाद्यादिक वाजीत्रादिकने शब्दे, (तंतीतलतालतुडियत्तघणमुइंगपडुपावाइयंरवेण के०) वीणा, हाथना ताल, कांशियाना ताळ, तुरी एटले वाजीत्र, हाथ विशेष, घन ध्वनि सरखो जेनो घोषछे, मृदंग, पटह, माह्या पुरुषे वजाव्याछे, तेने शब्दें करी, (उरालाइंमाणुस्सगाइ के०) उदार प्रधान मनुष्य संबंधीया (भोगभोगाइं के०) कामभोगने (भुंजमाणे के०) भोगवतो थको (विहरइ) विचरे ॥ ५५ ॥

॥ दीपिका–अथ गृहस्थानामत्यंतविपरीतमतीनामसदाचारत्वं प्रकटयन्नाह । ते साधुधर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादप्रकटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं सम्प्रतिबृंहति प्रशंसति ते परलोकस्यार्थाय किंचित्सदनुष्ठानं न श्लिष्यंते नाश्रयते तेऽपवादे परान् दुःखयंति आत्मानंच अज्ञानांधास्तत्कुर्वंति येन शोचते परानपि शोचयंति ते परान् (जूरयंति) गर्हंति ते स्वकर्मभि पीड्यते (तेतिप्पंति) सुखाच्यावयत्यात्मानं पराश्च ते पापेन परितप्यतेऽन्तर्दह्यते पराश्च परितापयंति । एवं ते दुःखनशोचनादिक्लेशादिप्रतिविरता स्युस्ते महतारंभेण प्राणिघातरूपेण महता समारंभेण प्राणिपरितापरूपेण विरूपरूपैश्च नानाविधै पापकर्मकृत्यैरुदारानुत्कृष्टान्मद्यमांसादियुतान् मानुष्यकान् मनुष्यभवयोग्यान् भोगेभ्योऽप्युत्कटाभोगान्भोगभोगास्तान भोक्तारः स्युः ॥ तद्यथा अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तस्य पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयनासनादिकं सपूर्वापरं सहपूर्वकृत्येन स्नानादिना परकृत्येन विलेपनभोजनादिना वर्ततइति सपूर्वापरं । कोऽर्थः । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । तद्यथा । स्नातं कृतं देवतानिमित्तं बलिकर्म येन स कृतबलिकर्मा कृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलसुवर्णचंदनाक्षतदूर्वासिद्धार्थादीनि प्रायश्चित्तानि दुःखप्रतिघातकानि येन स कृतकौतुकमंगलप्रायश्चित्त । शिरसि स्नातं कल्पितयोमालाप्रधानोमुकुटः सन्निधते यस्य स कल्पितमालामुकुटी प्रतिबद्धशरीरोदढांग । (वग्घारित) प्रलंबितं श्रोणी श्रोत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतया कवे कृतमाल । आविद्धानि परिहितानि मणिसुव

कर्मनो करनार गोपालनाव आदरीने, क्रोधे चड्यो थको गायने गोकुल मांहेथी टाली तेने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ ४० ॥

॥ दीपिका–अथैक' कश्चित्क्रूरकर्मा गोघातकनावमाश्रित्य गामन्य वा त्रसं हति तस्य हंता स्यात् ॥ ३९ ॥ अथैक कश्चिगोपालनाव प्रतिपद्य ता गा परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहता नवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ४० ॥

॥ टीका–अथैक कश्चिगोपालनाव प्रतिपद्य कस्याश्चिगो कुपित सन् ता गा परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहता छेत्ता नेत्ता नूयोनूयोनवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ अथैक. कश्चित्क्रूरकर्मकारी गोघातकनाव प्रतिपद्य गामन्यतर वा त्रस प्राणिन व्यापाद येत्तस्य च हननादिका क्रिया' कुर्यादिति ॥ ४० ॥

से एगइउ सोवणियन्नावं पडिसंधाय तमेव सुणगंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥४१॥ से एगइउ सोवणियतियं नाव पडिसंधाय तमेव मणुस्संवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव आहार आहारेति इति से महया पावेहि कम्मेहि अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ ॥४२॥

अर्थ–कोइएक पुरुप शौवनिकनाव एटले श्वाने करी आहार करु एवो नाव आदरीने अनेक जीवने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ ४१ ॥ कोइएक पुरुप श्वानने पाले, श्वाननो परिग्रह करे, तेणे करी कोइएक आवता जता पथिकने, अथवा बीजा जीवने हणे, छेदे, नेदे, आहार आहारे इत्यादिक एरीते ते क्रूरकर्म करी चतुर्गतिक ससार मांहे पडे ॥ ४२ ॥ एटले आजीविका निमित्त पापनु कारण कह्यु

॥ दीपिका–अथैक कश्चित् श्वपापर्धिनाव प्रतिज्ञाय तमेव श्वान परवा त्रस मृग सूकरादिक हन्यात्तस्यच हंतेत्यादिपूर्ववत् ॥ ४१ ॥ अथैक कश्चिदनार्य (सोवणियं तियति) श्वनिश्चरति शौवनिक अतोस्यास्तीत्यतिक अंते वा चरति अतिक पर्यतवासी शौवनिकश्चासौ अतिकश्च शौवनिकातिक क्रूरसारमेयपरिग्रह' प्रत्यतनिवासी च तदसौ तन्नावमाश्रित्य मनुष्य कंचन पथिकमन्यवा मृगसूकरादिक त्रस प्राणिन हता नवति । हंता इत्यत्र ताच्छीलिकस्तृन् । श्वस्तनीता वा तृच् स्यात्तदाध्याहारेण पूर्ववन्नेप । तथा पुरुपं हति तस्य स हता छेत्तेत्यादि । तृन्श्वस्तन्यौ प्रागपि योज्यौ । सचैव महद्भि पापकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता स्यादिति ॥ ४२ ॥

गतप्रायश्चित्त । तथा कल्पितश्चासौ मालाप्रधानोमुकुटश्च सतथा विद्यते यस्य सतथा कल्पितमालामुकुटी । तथा प्रतिबद्धशरीरोद्दष्टावयवकायोयुवेत्यर्थ । तथा (वग्घा रियं ति) प्रलंबितं श्रोणीसूत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा तदेवमसौ शिरसि स्नातः नानाविधविलेपनावलिप्तश्च कंठे कृतमालस्तथाऽपरयथोक्तभूषणभूषित सन्महत्या कूटाकारशालायां (महालियाएत्ति) विस्तीर्णायां कूटागारशालायां तथा महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने महासने समुपविष्ट. स्त्रीवृंदेन युवतिजनेन सार्द्धमपरपरिवारेण संपरिवृतो वेष्टितोपस्तया महता बृहत्तरेण प्रहतगीतवादित्रतंत्र्यादिरवेणोदारान्मानुष्यकान् भोगान्भुंजानोविहरति प्रविचरति विजृंभतीत्यर्थ. ॥ ५५ ॥

तस्सणं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अब्भुट्ठंति भणाहं देवाणुप्पिया किंकरेमो किआहारेमो किउवणेमो किं आचिट्ठामो किभेहिय इच्छंदं किंभेआसगस्स सयइ तमेवपासित्ता अणारिया एवं वयंति देवे खलु अयंपुरिसे देवसिणाए खलु अय पुरिसे देवजीवणिज्जे खलु अयपुरिसे अन्नेए विचणं उवजीवंति तमेव पासित्ता आरिया वयंति अभिक्कतंकूरकम्मे खलु अयंपुरिसे अति धुत्ते अइयायरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लहबोहियाएयावि भविस्सइ ॥ ५६ ॥

कोइएक (आयाणेणके०) शब्दादिक कारणे करी रीसाणो हतो, (विरुद्धसमाणे के०) आगलानो विरोध करे. ते कारण कहेछे. (अडुवाखलदाणेण के०) सडेलां अन्न तेने दाने करीनें, अथवा धान्यने खले अल्प दाने करीने, (अडुवासुराथालएणके०) अथवा थाल कोशादिक, कोइएक अधिकारादिक, तेने विषे वांछित लाजने अनावे रीसाणो थको (गाहवतीणवाके०) गृहपतिना, अथवा (गाहावइपुत्ताणवा के०) गृहपतिना पुत्रना धान्य खलादिकने (सयमेवके०) पोतें (अगणिकाएणके०) अग्नि काये करी, (सस्सा इके०) ते धान्यादिकने (झामेइ के०) बाले (अन्नेणविअगणिकाएणसस्साइझामावे इ के०) अथवा रीसाणो थको बीजा पासे अग्निकाये करी ते धान्यादिकने बलावे. (अगणिकाएणसस्साइझामतविअन्नंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्नि काये करी ते धान्यने बालतो होय, तेने अनुमोदे एरीते ते महोटा पापकर्मे करी पोताना आत्माने बांधे. यावत् चतुर्गतिक संसार माहे परिभ्रमण करे ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—उक्ता सदा जीवनोपायभूता वृत्ति । अथ क्वचित्कुतश्चिन्निमित्तात्सावद्यांगीकारं दर्शयति । पूर्वं वृत्तिरुक्ता प्रछन्नं वा प्राणिघातं कुर्यादिह तु कुतश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जन मध्ये प्राणिघातप्रतिज्ञया प्रवर्तते इत्याह । अथैक कश्चिद्व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्ये गतउत्थाय एव प्रतिज्ञा कुर्यात् । अहमेनं प्राणिन हनिष्यामीति प्रतिज्ञां कृत्वा तित्तिरादिकं हता इत्यादि यावदात्मानं पापकर्मणा उपख्यापयिता भवति । पूर्वमपरायं विना क्रुद्धाउक्ता ॥४३॥ अथाऽपराधक्रुद्धान्दर्शयति । अथैक कश्चित्प्रकृत्या क्रोधन केनचिदादीयतइत्यादान शब्दादिकं कारण तेन विरुद्ध परस्य घातं कुर्यात् केनचिछब्देन क्रुष्टोनिंदितोवा विरुध्येत रूपेण बीभत्सं कंचित् दृष्ट्वाऽपशकुनोयमिति ध्यात्वा कुप्येत । गधरसादिक सूत्रेणैवाह । (अडुवाखत्ति) खलस्य कुपितस्य दान खलके वाल्पधान्यादेर्दान खलदान तेन कुपितः । अथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन वांछितलाभाभावात् कुपितोगृहपतेर्गृहपतिपुत्राणां वा स्वयं अग्निकायेन खलकवर्त्तीनि सस्यानि ध्मापयेद्दहेत् अन्येन वा दहतोऽन्यान्वा समनुजानीयात् । एवमसौ महापापैरात्मानमुपख्यापयिता स्यात् ४४

॥ टीका—उक्ता सदा जीवनोपायवृत्तिरिदानीं क्वचित्कुतश्चिन्निमित्तादभ्युपगमं दर्शयति । (सेएगइउइत्यादि) अयं चात्र पूर्वस्माद्विशेष । पूर्वत्र वृत्ति प्रतिपादिता प्रछन्नं वा प्राणव्यपरोपणं कुर्यात् । इतरस्तु कश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिव्यापादनप्रतिज्ञां विधायोद्यछतइति दर्शयति । अथैक कश्चिन्मांसादनेछया व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्यादभ्युत्थायैवभूता प्रतिज्ञां विदध्यात् । यथाहमेनं वक्ष्यमाण प्राणिन हनिष्यामी

क्षयो कृष्णपक्षः । ततोऽस्य दिगादिकमप्रशस्तमुक्तं । अन्यदपि अबोधिलाभादिकं योज्यं । (आगमिस्सत्ति) सचाऽऽगामिकाले दुर्लभबोधिकः स्यादिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका–तस्यच क्वचित्प्रयोजने समुत्पन्ने सति एकमपि पुरुषमाज्ञापयतोयावच्चत्वा र पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते । तेच किंकुर्वाणाएत द्वक्ष्यमाणमूचु । तद्यथा । भणाज्ञापय स्वामिन् ! धन्यावय येन भवताप्येवमादिश्यते किंकुर्मइत्यादिसुगम । याव हृदयेप्सितमिति । तथा किंच ते युष्माकमास्यकस्य मुखस्य स्वदते स्वादु प्रतिभा ति ? यदिवा यदेवास्य भवदीयास्यस्य स्रवति निर्गछति तदेव वय कुर्मइति । तथा तमेवेत्यादि । तमेव राजान तथा क्रीडमानं दृष्ट्वा अन्येऽनार्याएव वदति । तद्यथा । देव खल्वयंपुरुषस्तथा देवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्यस्तथा तमेवतां प्रतेद्धितया सदनुष्ठायिन दृष्ट्वा आर्याविवेकिन सदाचारवतएव ब्रुवते तद्यथाऽभिक्रा तक्रूरकर्मा खल्वयं पुरुषोहिंसादिक्रियाप्रवृत्तइत्यर्थः । तथा धूयते रेणुव द्वायुनाससा रचक्रवाले भ्राम्यते येन तद्धूत कर्म । औणादिकोनक्प्रत्यय । अतीव प्रभूतधूतम ष्टप्रकार कर्म यस्य सोतिधूतस्तथाऽतीवात्मन परै पापकर्मभि रक्षा यस्य सोत्या त्मरक्षस्तथा दक्षिणस्या दिशि गमनशीलोदक्षिणगामुक । इदमुक्त भवति । योहि क्रूर कर्मकारी साधुनिंदापरायणस्तद्दाननिषेधक सन् दक्षिणगामुकइत्युक्तं । इदमेवाह । (ने रइएइत्यादि) नरकेषु भवोनारक कृष्णपक्षोस्यास्तीति कृष्णपाक्षिकस्तथा आगामिनि काले नरकाद्धृतोदुर्लभबोधिकश्चाय बाहुल्येन भविष्यतीति । इदमुक्त भवति । दिक्कुमध्ये द क्षिणा दिग् शस्ता गतिषु नरकगति, पक्षयो कृष्णपक्ष तदस्य विषयोस्येद्रियानुकूलवर्तिन परलोकनिस्पृहमते साधुप्रद्वेषिणोदानातरायविधायिनोदिगादिकमशस्त दर्शितमन्यदपि यदशस्त तिर्यग्गत्यादिकमबोधिलाभादिक च तद्योजनीयमस्येति । एतद्विपरीतस्य तु वि षयनि स्पृहस्य इंद्रियानुकूलस्य परलोकभीरो साधुप्रशसावत सदनुष्ठानरतस्य दक्षिण गामुकत्व सुदेवत्व शुक्लपाक्षिकत्व तथा सुमानुषतया तस्य सुलभबोधित्व मित्येवमादिकं सद्धर्मानुष्ठायिन सर्व भवतीति ॥ ५६ ॥

इच्चेयस्स ठाणस्स उठियावेगे अभिगिज्झत्ति अणुठियावेगे अभि गिज्झति अभिझंझाउरा अभिगिज्झति एसठाणे अणारिए अकेवले अ प्पडिपुन्ने अणेयाउए असंसुद्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिवाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असवदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे अ साहु एसखलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए ॥ ५७ ॥

पित सन्नेतत्कुर्यादित्याद्द । तद्यथा । श्राम्यंतीति श्रमणास्तेषामन्येषामपि तथानू ताना केनचिदादानेन कुपित सन् दंडकादिकमुपकरणजातमपहरेत् अन्येन वा हारये दन्यंवा हरतं समनुजानीयात् इत्यादिपूर्ववत् ॥ ४८ ॥

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएण उसहीउ झामेइ जाव अन्नपि झामतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवरकाइत्ता नवति ॥ ४ए ॥

अर्थ–हवे नि कारण पापनुं विशेष कहेले. अथ कोइएक पुरुष, अत्यंत मूर्खपणे ते (णोवितिगिंबइके०) एवो विचार करे नहीं के, अकार्य करवा थकी मने आ नवमा अथ वा परनवमा अनिष्टफलनी प्राप्ति थशे, अथवा महारो अनुष्ठान अत्यंत मागोठे एवु आलोचे नहीं, एवो बतो आलोक तथा परलोक विरुद्ध क्रिया करे ते देखाडेठे गृहप तिना अथवा गृहपतिना पुत्रना धान्यने नि.कारणे पोते अग्निकायें करी प्रज्वाले, बी जाने हाथे प्रज्वालावे, बीजो कोइ प्रज्वालतो होय तेने अनुमोदे ॥ ४ए ॥

॥ दीपिका–पूर्वं विरोधिनोऽनिहिता अथ इतरे कथ्यंते । अथैक कश्चिन्मूढतया (णोवितिगिंबइत्ति) न विमर्षति नविचारयति यन्ममानेन कृतेन परलोकेऽनिष्टं नावि । अथवा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीति न वेत्ति एवनूतश्च गृहपत्यादेर्निमित्तमेव त त्कोपं विनैव स्वयमग्निना सस्यानि शालिव्रीह्यादीनि दहेदित्यादि ज्ञेयं ॥ ४ए ॥

॥ टीका–एव तावद्विरोधिनोऽनिहिता साप्रतमितरेऽनिधीयंते । (सेएगइउइत्यादि) अथै क कश्चित् दृढमूढतया (नोवितिगिबिइत्ति) न विमर्षति नमीमासते । यथाऽनेन कृतेन ममा ऽमुत्राऽनिष्टफलं स्यात् तथा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबधीत्येव न पर्यालोचयति तन्नावाप न्नाश्च यत्किचनकारितया इहलोकपरलोकविरोधिनी क्रिया कुर्यात् । एतदेवोद्देशतोदर्शयति तद्यथा गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्तत्कोपमतरेणैव स्वयमेवात्मानाग्निकायेनौषधी शालिव्री ह्यादिका ध्मापयेद्दहेत्तथाऽन्येन दाहयेद्दहतं च समनुजानीयादित्यादि ॥ ४ए ॥

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दन्नाणवा सयमेव घूराउकप्पइ अन्नेणवि क प्पावेति अन्नपि कप्पंति त समणुजाणइ ॥५०॥ से एगइउ णोवितिगिंब इ तं गाहावतीणवा गहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा जाव गद्दन्नसाला

वशगाजवतीत्यर्थ । तथा एके केचन सांप्रतेक्षिणस्तस्मात्स्थानादनुपस्थितागृहस्थाए व संत (अजिगिज्झंतित्ति) कंक्षा तृषा तदातुरा संतोऽर्थेष्वत्यर्थं लुभ्यंते यतएवमतो द स्थानमनार्यानुष्ठानपरत्वादनार्यं महापुरुषानुचीर्णं जवति तथा नविद्यते केवलमस्मि न्नित्यकेवलमशुद्धमित्यर्थ । तथेतरपुरुषाचीर्णत्वादपरिपूर्णं सजुणविरहात्तुछमित्यर्थः । तथा न्यायेन चरति नैयायिक न नैयायिकमनैयायिकमसद्यायवृत्तिकमित्यर्थः । तथा र गेलगेसवरणे । शोजन लगन संवरण इंद्रियसयमरूप सल्लगस्तन्नाव सल्लगत्ववा विद्यते सल्लगत्वमस्मिन्नित्यसल्लगत्वमिंद्रियासवरणरूपमित्यर्थ । यदिवा शल्यवच्छल्यं मायानुष्ठा नकार्यं तजायति कथयति तच्छल्यग यत्परिज्ञान तन्नास्तीत्यशल्यगत्वमिति । तथा विद्यते सिद्धेर्मोक्षस्य विशिष्टस्थानोपलक्षितस्य मार्गोयस्मिस्तदसिद्धिमार्गं तथा नविद्यते मुक्ते रशेषकर्मप्रच्युतिलक्षणायामार्गं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोयस्मिस्तदमुक्तिमार्गं तथा न विद्यते परिनिर्वृते परिनिर्वाणस्यात्मस्वास्थ्योत्पत्तिरूपस्य मार्गं पथा यस्मिन् स्थाने तदपरिनिर्वाणमर्गं तथा नविद्यते सर्वं दुःखानां शारीरमानसानां प्रक्षयमार्गं सदुपदेशा त्मकोयस्मिस्तदसर्वदुःखप्रक्षीणमार्गं । कुतएवजूत तत्स्थानमित्याशक्याह । (एगंतेत्या दि) एकांतेनैव तत्स्थान यतोमिथ्याजूत मिथ्यात्वोपहतबुद्धीनां यतस्तन्नवत्यतएवासा ध्वसद्वृत्तत्वान्नद्मय सत्पुरुषसेवित पथा येन विषयाधा प्रवर्ततइति । तदय प्रथमस्य स्था नस्याधर्मपाक्षिकस्य पापोपादानजूतस्य विजगोविनागोविशेष स्वरूपमिति यावत् ॥५७॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्कस्स विनंग एव माहिज्जइ इह ख लु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगइया मणुस्सा जवंति तं जहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमं तावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावावेगे डुरूवावेगे तेसि चणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइ जवति एसोआलावगो जहा पोंमरीए तहा णेतवो तेणेव आलावेण जाव सवोवसंता सवताए परिनिवुमत्तिवेमि॥५८॥ एसठाणे आरिए केवले जाव सवडुक्खपहीणमग्गे एगतसम्मे साहु दोच्च स्स ठाणस्स धम्मपक्कस्स विनंगे एव माहिए ॥५९॥

अर्थ—हवे अपर बीजु स्थानक धर्म पक्षनो विजंग एटले विचार कहियेछैए निश्चे आ जगत् मांहे पूर्वदिशियें, पश्चिमदिशिये, उत्तरदिशिये, अने दक्षिण दिशिये, अथवा विदि शियें, एवा कोइएक मनुष्यछे, ते कहेछे.एक आर्य, एक अनार्य, एक उचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायाना धणी, एक न्हानी कायाना धणी, एक

फरुसंवदित्ता नवइ कालेणवि से अणुपविठस्स असणवा पाणवा जाव णोदेवावेत्ता नवइ जे इमे नवइ वोनमंता नारकता अलसगा वेसलगा किवणगा निवक्रमा वणगा समणगा पव्वयंति ॥ ५४ ॥

अर्थ–हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेले कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरता पेसता (दिस्सा के०) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने डुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेले (अडुवाणअन्नराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीये करी एवु जाणेजे, ए मने अपशकुन थयु. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा (आफालित्तानवइ के०) चपटीये करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, (अडुवाणफरुसवदित्तानवइ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे डुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा 'एवा कठोर वचन बोले, तथा (कालेणविसेअणुपविठस्स के०) निक्षावेलाये ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने (असणवापाणवा के०) अशन पानादिक देता अत्यत डुष्टपणे पोते निंदे अने (जावणोदेवावेत्तानवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवा डुर्वचन बोले के, (जेइमेनवइ के०) जे ए पाखमीने आपवा थकी काही फल नथी एम कहे (वोनमता के०) ए तृण काष्ठना नारानो आणनारले (नारकता के०) ए कुटुंबना नारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोले (अलसगा के०) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखमी थयोले (वेसलगा के०) वृषल कोइएक क्षुद्र जातिकले तथा (किवणगानिवक्रमा के०) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे (वणगासमणगापव्वयति के०) प्रवज्यां लिए ॥ ५४ ॥

॥ दीपिका–अथैके कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टि साधुप्रत्यनीक श्रमण ब्राह्मण साधु दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमान पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता नवति (अडुवाणति) अथवा साधु दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता नवति पस्य कठिनवचोब्रूयात् निक्षाकालेपि (से) तस्य निक्षोर्निक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न नवति प्रत्यनीक सन्निद ब्रूते।(जेइमेत्ति) पाखडिका स्युस्ते चोन्नमतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तद्भ्यते येषा तेचोन्नमत नाराक्राता कुटुंब पालयितुमसमर्थास्ते पाखडव्रतमाश्रयति। तथा वृषलाअधमा कृपणा क्लीबाअकिंचित्करा श्रमणा स्यु प्रव्रज्या गृह्णंतीति॥५४॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंग एव माहिज्जइ जे इमे भवति आरसिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुईरहस्सित्ता जाव ते तउविप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहु एसखलु तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एव माहिए ॥ ६०.॥

अर्थ–अथ हवे अपर त्रीजु स्थानक मिश्र पक्षनो विचार एम कहेछे (जेइमेभवति के०) जे ए मिश्रस्थानकछे ते एने मिश्रस्थानक शा कारणे कहिये? तेमाटे विशेष कहेछे अधर्म पक्षें मिश्रित जे धर्म पक्ष, ते कारणे एने मिश्र पक्ष कहिये परंतु, अधर्मना बाहुल्य पणा थकी, ए अधर्म पक्षज जाणवो यद्यपि मिथ्यादृष्टि पण केटली एक विरति करेछे, तथापि ते चित्तने अशुद्ध पणे, अने परमार्थने अजाण पणे, तथा अभिनव पित्तनाभावने उदये, साकर मिश्रित दूधपाननी पेठे, तथा उखर क्षेत्रमा मेघ वृष्टिनी पेठें ते धर्म पण तेनो फलदायक नथाय ते कारणे मिश्र पक्ष, विशेष अधर्म पक्षने मलतोज छे (आरसिया के०) जे आरण्यक एटले कंदमूल फलाहारी वृक्षने मूले वसता (आवसहियाके०) कोइएक पानडानी झुंपडी करीने रहे, (गामणियंतिया के०) आजीविका चलाववा निमित्त ग्रामने समीपे रहे, (कण्हुईरहस्सित्ता के०) कोइएक कार्यने विषे रहस्यना करनार, एवा तापसादिक पूर्वोक्त जेहोय ते मिश्रपक्षवाला जाणवा. (जावतेतउविप्पमुच्चमाणाके०) यावत् यद्यपि ए काहीएक काय क्लेश करे तथापि ते आसुरी किल्बिषिया उने स्थानके जइ उपजे ते स्थानक थकी आयुष्यने क्षयें चवीने, (भुज्जो के०) वली मनुष्य भव पामे तो (एलमूयत्ताएके०) बेहेरा, मुंगा, आंधला, जन्मांध, (पच्चायंति के०) एवा थाय. एरीतें चतुर्गतिक संसार माहे परिभ्रमण करे ए कारणे ए स्थानक अनार्य एटले महापुरुषने अनाचरणीय छे, एने विषे केवलज्ञान नथी, यावत् सर्व दुःखना क्षयनु कारक ए स्थानक नथी ए मार्ग एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानक, माटे ए असाधुनो पंथ जाणवो ए निश्चे त्रीजु स्थानक जे मिश्रपक्ष, तेनो विचार एरीते कह्यो ॥६०॥

॥ दीपिका–अथापरस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभाग कथ्यते। अत्राधर्मपक्षयुक्तोधर्मपक्षइति मिश्रउच्यते। तत्राधर्मस्येह बहुत्वादयमधर्मपक्षवज्ज्ञेय। यतोमिथ्यादृश काचिज्जीवहिंसादिनिवृत्तिं कुर्वंति तथापि चित्ताशुद्धेरभावान्नवीने पित्तोदये शर्करामिश्रक्षीरपानवत् उषरप्रदेशे वृष्टिवद्वा कार्यासाधकत्वान्निरर्थकता याति सा। तथा मिथ्यात्वानुभवान्मिश्रपक्षोप्यधर्मपक्षएवेति दर्शयति। (जेइमेआरसिया) ये इमे

वराडएण, जोडणाभियायमाणाणं महया हयनट्टगीयवाइय तंतीतल तालतुम्भियघणमुडगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइ नोग नोगाइ भुंजमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ–(तेइणमेवजीवितधिग्गीवि के०) ते साधुना अवर्णवादि एम कहे जे आ साधुनुं जीवितव्य धिक् ठे (तसंपडिबुहेंति के०) अने पोताने प्रशासे जे अमे नला ठेए, एरीते ते इह लोक प्रतिबध साधुना निंदक मोहाध पुरुष ते साधुनो अपवाद बोले, (नाइतेपारलोगस्सअट्ठाएकिंचिविसिलीसंति के०) ए पुरुष, परलोकना अर्थनो साधनार एवो स्वल्प मात्र कांहीपण अनुष्ठान करे किंतु? परने डुर्वचनादिके करी पीडा उपजावे (तेडुक्खंति के०) ते अज्ञानना अधकारे डु खी थाय (तेसोयंति के०) ते अ धिक शोचे, अन्यने शोक करावे (तेजूरति के०) ते जूरे तथा परने निंदे. (तेतिप्पंति के०) ते पोताने तथा परने सुख थकी चूकावे (तेपिट्टति के०) ते पोते पीडाय, अने बीजाने पीडावे (तेपरितप्पंति के०) ते पोते माहोमाहे दाझे, बीजाने दझावे, (तेडुक्खणजूरणसोयण के०) ते पुरुष, एरीते डु ख, जूरण, शोक, इत्यादिक करतो करावतो थको (तिप्पण के०) सुखनो टालनार (पिट्टण के०) पीडानो करनार, (परितिप्प ण के०) पश्चात्ताप करनार, (वहबंधण के०) वध बंधननो करनार (परिकिलेसाउ के०) महोटा क्लेश, तेथकी (अप्पडिविरयानवति के०) नथी निवर्त्या ते पुरुष, एवा ठता ते महोटा आरन प्राण व ध रूप तथा महोटा समारन परजीवने किलामणा उपजा वी ते महोटा आरन समारंने करीने नाना प्रकारना पापनुष्ठाने करीने प्रधान मनुष्य नाव संबधिया मधु मासादिक अनेक काम नोगने नोगवतो थको विचरनारो थाय (तजहा के०) तेज कहेने (अन्नअन्नकाले के०) अन्नने काले अन्न, (पाण पाणकाले के०) पाणीने काले पाणी, (वत्थवत्थकाले के०) वस्त्रने काले वस्त्र, (ले णलेणकाले के०) घरने काले घर (सयणसयणकाले के०) शयनने काले शयन, (पु व्वावरचणएहाए के०) पहेले पहोरे, अने वली पाठले पहोरे स्नान करे, (कयबलिक म्मे के०) देवतादिक निमित्त बलि कर्म करे (कयकोउय के०) अनेक कौतुक उत्ता रणादिक करे, (मगलपायच्छित्ते के०) दधि, दूर्वादिक मगल करे, डु स्वप्नादिकना निवा रणने अर्थे ए क्रिया करे,(सिरसाएहाएकंठेमालाकडे के०) शिरे स्नान करीने कंठे माला पेरे, (आवद्धमणिसुवन्नेकप्पियमालामउली के०) आवद्ध एटले ग्रुपहेरे? तोके, मणि अने सुवर्ण, यथा योग्य स्थानके पहेरे, अनेक हार, अर्धहार, कटीसूत्र, इत्यादिक आ नरणे करीने, (पडिबद्धसरीरवग्घारीय के०) प्रतिबंध नाम दृढ शरीर देहले जेनो एवो,

ना के०) रुष्यादिक महाआरंभना करनार, तथा (महापरिग्गहा के०) क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद, चतु पदादिक, अनेक परिग्रहवंत अधर्मिक अधर्मानुय एटले अधर्मनीज अनुमोदना करनारा, (अधम्मिठा के०) अधर्मज जेने इष्ठ वल्लनछे, (अधम्मक्खाई के०) अधर्मना बोलनार, अथवा अधर्मथीज ख्याति जेनी, अधर्म करी आजीविकाना करनार, एटले अधर्मेज जीवे, प्राण धारण करे तथा अधर्मज देखे तथा अधर्मनेज अंगीकार क रवा प्रलोके एटले देखे, ते अधर्म प्रलोइ केवाय (अधम्मपलज्जणा के०) अधर्मने विषे राचे, अधर्मशील एटले अधर्मज जेनो स्वनावछे, (समुदायारा के०) तथा चारनो समुदाय छे जेनो (अधम्मेणचेवविर्त्तिकप्पेमाणाविहरंति के०) तथा जे अधर्म करीनेज वृत्ति कल्पीने विचरे कालक्षेप करे ॥६१॥

॥ दीपिका—उक्तानि अधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । अथ तेषां स्थानिनोऽनिधीयंते । अथवा पूर्वोक्तमेव प्रकारांतरेण विशिष्टतरमाह । अथापरं प्रथमस्थानस्य धर्मपक्षस्य वि नंगोविनागएवमाख्या यते । (इहखलुइत्यादि) एते च प्रायोगृहस्थाएव स्युरित्याह । (गिहत्था) गृहस्था (महेच्छा) महारंभा महापरिग्रहाअधर्मेण चरंत्याधार्मिकाअध र्मानुज्ञा अधर्मिष्ठानिस्त्रिंशा अधर्माख्यायिनोऽधर्मवादिन अधर्मजीविनोऽधर्मप्रलोकिन अधर्म प्रकर्षेण रज्यतइत्यधर्मप्ररक्तका अधर्मशील समुदाचारोयत्किंचनकारित्व येषां ते तथा अधर्मेण वृत्ति जीविका कल्पयंत कुर्वंतोविहरंति तिष्ठंति । पापानुष्ठानमाह ॥६१॥

॥ टीका—उक्तान्यधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । साम्प्रत तदाश्रिता स्थानिनोऽनिधीयंते । यदिवा प्राक्तनमेवान्येन प्रकारेण विशेषिततरमुच्यते । तत्राद्यमधर्मस्थानकमाश्रित्याह (अहावरेइत्यादि) अथापरोन्य प्रथमस्य स्थानस्याधर्मपाक्षिकस्य विनंगोविनाग आख्यायते (इहखलु इत्यादि) सुगम । यावन्मनुष्याएवस्वनावानवतीति । एते च प्रा योगृहस्थाएव नवतीत्याह । (महेच्छाइत्यादि) महती राज्यविनवपरिवारादिका स र्वातिशायिनी स्वच्छा त करणप्रवृत्तिर्येषा ते महेच्छास्तथा महानारंभोवहनोप्रमंडलिकागं त्रीप्रवाहकृषिपिंडपोषणादिकोयेषा ते महारंभा । ये चैव नूतास्ते महापरिग्रहाधन धान्यद्विपदचतुष्पदवास्तुक्षेत्रादिपरिग्रहवत्त क्वचिदप्यनिवृत्ताअतएवाधर्मेण चरंतीत्य धर्मिकास्तथा धर्मिष्ठानिस्त्रिंशकर्मकारित्वादधर्मबहुलास्ततश्चाधर्मे कर्तव्ये अनुज्ञाअनुमो दन येषा ते नवत्यधर्मानुज्ञा एवमधर्ममाख्यातु शील येषा ते तथा एवमधर्मप्रायजीवि नस्तथा अधर्ममेव प्रविलोकयितु शील येषा ते नवत्यधर्मप्रविलोकिनस्तथा धर्मप्रायेषु क र्मसु प्रकर्षेण रज्यतइति अधर्मरक्ता । रलयोरैक्यमिति रस्य स्थाने लकारोऽत्र कृत इति ।

र्णानि येन सतथा अहतमखंडित वस्त्र परिहित येन सतथा चंदनेन
गात्रं शरीरावयवायस्य सतथा नानाविधविलेपनावलिप्तइत्यर्थः । महत्यां
लियाइति) विस्तीर्णाया कूटागारशालीया महति महालये
ने स्थित । स्त्रीगुल्मेन स्त्रियोयुवतय. गुल्मोऽन्य परिवारस्तेन परिवृत
त्रिसंबधिना ज्योतिषा प्रदीपादिनवेन क्रियमाणेन दीप्यमानेन महता
नाटयगीतवादित्रतंत्रीतलतालत्रुटिकघनमृदंगपटुप्रवादितरवेण
गन्नोगान् त्रुंजानोविहरति ॥ ५५ ॥

॥ टीका–साप्रतमेषामगारिकाणामत्यंतविपर्यस्तमतीना
(तेइणमेवइत्यादि) तेहि साधुवर्गापवादिनः सद्धर्मप्रत्यनीका
द्धाटनजीवितं धिक्जीवित कुत्सित जीवित साधुजुगुप्सापरा
त्तजीवितं प्रशसतीति नाव । ते चेह लोकप्रतिबद्धा साधुजुगु
वदति नापिच ते पारलौकिकस्यार्थस्य साधनमनुष्ठानं
माश्रयति । केवल ते परान् साधून् वाचादिनिरनुष्ठानै
न परेषांच । तथा ते ज्ञानाधास्तथा तत्कुर्वति येना
र्नापितादिनिः शोक चोत्पादयंति तथा ते परान्
ड्यावयत्यात्मान पराश्र तथा ते वराकाअपुष्टधर्माणा
श्च पीडयति तथाते पापेन कर्मणा परितप्यंतेऽतदेहं
सहत्तय सतोडखीन शोचनादिक्लेशादप्रतिविरता
महताऽऽरम्नेण प्राणिव्यापादनरूपेण तथोनान्याम
प्रकारैः सावद्यानुष्ठानैः पापकर्मकृत्यैरुदारान्
साद्युपेतान् मानुष्यकान् मनुष्यनवयोग्यान्
यिनोन्नोक्तारोनवति ॥ एतदेवदर्शयितुमाह । (
यथेप्सित तत्पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानव
सपूर्वापर संपद्यते सहपूर्वेण पूर्वाह्णकर्तव्येना
यत्क्रियते स्नानादिकं तथा परच यत्क्रियते वि
पर । इदमुक्तंनवति । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा
शतोदर्शयितुमाह । तद्यथा । विनूत्या स्नात
तथा तथाकृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि
सीकावलीमालीमादीनि तथा

या के०) अणविमान्या कार्यना करनार, (उक्कंचण के०) तथा शूलिकारोपणने विषे ऊर्ध्वमहोटुं करवु (वचण के०) वचणा एटले परने ठगवानी बुधिराखे, जेम अजयकुमारने चंडप्रद्योतनी गणिकाये वच्यो, तेनी पेठे वचक, (मायाणियडि के०) वचवानीबुध्यें वाणीयानी पेठे मायानियड नियड एटले बगनी वृत्तिये वचवाने अर्थे साधुने सरूपे रहे जेम उदायिराजाने चलेडकिये वच्यो, मार्यो, तेनी पेठे जाणी लेवु (कूडके०) मृषा बोलवु (कवडसाड के०) कपट एटले रुप पालटवु तथा नापादिक परावर्ति एटले प्रकारे (सपञग के०) तथा ते तोलानु न्यूनाधिक करवु तथा नेलसेलनुं करवु इत्यादिक व्यापार जाणवो (बहुला के०) घणाछे बहुलकर्म. ते उपर योगी सन्यासीनी कथा जाणवी (डुस्सीला के०) डु शील (डुव्वया के०) डुष्टव्रत वाला (डुप्पडियाणदा के०) डु खें आनंद पमाडिये जेने डु खे हर्ष पमाडिये डुराराध्य इत्यर्थ एवा (असाहु के०) असाधु (सव्वाउ के०) सर्वथा प्रकारे (पाणाइवायाउ के०) प्राणातिपात थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या, (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (जावसव्वाउपरिग्गहाउ के०) यावत् सर्वथा परिग्रह थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वतोकोहाउ के०) सर्वथा प्रकारे क्रोध थकी (जावमिछादसणसल्लाउ के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (सव्वाउके०) सर्वथा (एहाणुचणके०) स्नान (मद्दणके०) मर्दन करावबु (वस्रके०) वर्ण ते अबीर, गुलाल, (गंधके०) सुवास, (विलेवणके०) विलेपन करवा थकी, (सद्दके०) शब्द, गीत, वाद्यादिकना (फरिसके०) आठ जातना स्पर्श, (रूवके०) रुप, सुंदराकारादिक, (गध के०) कर्पूरादिकनी सुगंध (मल्लालकाराउ के०) माला, अलंकार ते थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वाउ के०) सर्वथा (सगड के०) शकट एटले गाडा (रह के०) रथ (जाणके०) यहेल (जुग के०) पुरुषे उपाड्यो आकाश यान तथा (गिल्लि के०) झोली, अथवा उटना पलाण (थिल्लिके०) हस्तिना पलाण, (सिया के०) शिबिका ते देशविशेष प्रसिद्ध यान शिबिका (सदमाणियाके०) शिबिका देशविशेषे अन्यजातिछे (सयणासणजाणवाहण के०) पर्यंकादिक आसयान वाहनादिकना (नोग के०) नोग थकी तथा (नोयण के०) नोजन (पविछर के०) घर बखारो (विहीउ के०) तेना विस्तारथी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (सव्वाउ के०) सर्व (कयविक्कय के०) क्रय वक्रय एटले लेवो वेचवो (मासद्धमासरूवग के०) माप अर्धमाप रूपादिक (सववहाराउ के०) इत्यादिक लेवा देवा रूप व्यापार थकी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी सर्वथा हिरण्य एटले रु

जेवो जीवछे, निश्चें ए पुरुष घणा लोकने आजीविकानो करनारछे, एने (अन्नेणविचणं उव जिवति के०) बीजा घणा पुरुषो सेवेछे, एरीते ते राजादिकने देखीने अनार्य लोको कहे अने तेना वखाण करे. हवे (तमेव पासित्ता के०) वली ते राजादिकने देखीने (आ रियावयंति के०) आर्य पुरुष जे होयते एवु कहेके (अनिकंतकूरकम्मेखलुअय पुरिसे के०) निश्चे ए पुरुष अत्यत क्रूर कर्मी हिंसादिक क्रियाने विषे प्रवर्त्तेछे, (अतिधूत्तेके०) तथा ए पुरुष अत्यंत धूर्त्तछे घणा कर्म करी सहितछे, तथा (अइयायरक्केके०) घणा कर्मकरी आपणा आत्माने संसार माहे राखनारछे, (दाहिणगामिए नेरइए के०) त था ए दक्षणगामि नारकीमा उपजनार, प्राय जे क्रूरकर्मना करनार, साधुना निंदक, सा धुने दान आपवानो निषेध करनार होय, ते दक्षिणगामि नारकीमाहे उपजे. तेमाटे ए पुरुष दक्षिण गामि जाणवो (कण्हपक्खिएके०) कृष्ण पाक्षिक नारकी थशे, कृष्ण पक्षि क नारकी मांहे शु विशेषछे? ते कहेछे. (आगमिस्साण डुल्लहवोहियाएयाविनविस्सइ के०) आगमिक कालें डुर्लन बोधी थशे एटले शु कह्यु? जे, दिशि मांहे दक्षिणदिशि, अने अप्रशस्त गतिमांहे नरकगति, तथा पक्ष माहे कृष्ण पक्ष, एटला वाना अप्रशस्तछे तेम विषयांध पुरुष जे छेते परलोकना निस्पृहि, एवा साधुने देखीने तेने दानातरायना कर नार थायतो एवा अप्रशस्त पुरुषने बोधबीज पामवु डुर्लनछे. तथा जे ए थकी विपरी त विषयने विषे निस्पृहि, परलोकना नीरु, तथा साधुनी प्रशासाना करनार, एवा पुरुष उत्तरदिशि तथा देवतानी गति अने शुक्लपक्ष, एटला वाना पामे तेने मनुष्य नवमा बो धबीज पामवु सुलनछे ॥ ५६ ॥

॥ दीपिका–तस्यैवनूतस्य पुरुषस्य क्वचित्कार्ये सति एकपुरुषमाज्ञापयतोयाव च्चत्वार. पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठते एव वदंति च नण स्वामिन्! किंकु र्मोवय किमाहराम आनयाम? किमुपनयामोढौकयाम? (किंआचिठामोत्ति) किंनू षणादि परिधापयाम? किं युष्माकं हृदयेप्सित? किंयुष्माकमास्यकस्य मुखस्य (सयइ त्ति) स्वदते स्वाड प्रतिनाति? अथवा यदेव तवास्यस्य नवति तव मुखान्निर्गछति तदे व वय कुर्मइति । (तमेवपासित्तत्ति) य राजान तथाक्रीडमान दृष्ट्वा अनार्याएव वदंति देव खलु अय पुरुषोदेवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्योऽन्योप्येनमुपजीवति तथा त तादृशमसदाचार दृष्ट्वाऽर्याविवेकिनोवदंति अनिक्रातक्रूरकर्मा अयं पुरुषोहिंसादि क्रियाप्रवृत्त अतिधूर्तोबहुलकर्मा अतीवात्मानं पापैरक्षतीत्यत्यात्मरक्ष दक्षिणदिग्गामी नैरयिक कृष्णपाक्षिक । कोर्थ । य क्रूरकर्मा साधुप्रत्यनीकस्तद्दाननिषेधक सदक्षिण दिशि नरकतिर्यगादिरुत्पद्यते । दिक्षु मध्ये दक्षिणा दिक् अप्रशस्ता गतिषु नरकगति प

कृष्यादे स्वयंकरणमारंभः परेण कारयणं समारंभस्तस्मात्, पचनपाचनतः कंडनकुट्टन पिट्टनतर्जनताडनवधबंधादिभिर्यः परिक्लेशस्तस्मादनिवृत्ताये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याः कर्मसमारंभाअबोधिकाबोधिनाशकाः परप्राणपरितापनकरायेऽनार्यैः क्रियंते ततोनिवृत्तायावज्जीवयेति ॥ ६२ ॥

॥ टीका–पापानुष्ठानमेव लेशतोदर्शयितुमाह । (हणछिदभिंदेत्यादि) स्वतएव हननादिका क्रिया कुर्वाणाअपरेषामप्येवमात्मकमुपदेशं ददति । तत्र हननं दंडादिभिस्तत्कारयंति तथा छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, विकर्तकाः प्राणिनामजिनापनेतारोऽतएव लोहितपाणयस्तथा चंडारौद्रानिस्त्रिंशाः क्षुद्राः क्षुद्रकर्मकारित्वात्तथा साहसिकाअसमीक्षितकारिणस्तथा उत्कुचनवचनमायानिकृतिकूटकपायादिभिः सद्दातिसंप्रयोगेगाढ्यं तेन बहुलास्तत्प्रचुरास्ते तथा तत्रोर्ध्वं कुचनं शूलाधारोपणार्थमुत्कुंचनं । वचनं प्रतारणं । तद्यथाऽभयकुमार प्रद्योतगणिकाभिर्धार्मिकवचनया वंचितः । माया, वचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव । निकृतिस्तु बकवृत्त्या कुर्कुटादिकरणेन दंभप्रधानवणिक् श्रोत्रियसाध्वाकारेण परवचनार्थं गलकर्तकानामिवावस्थानं । देशभाषानेपथ्यादिविपर्ययकरणं कपटं । यथा आषाढभूतिना नटेन वा परापरवेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकाअवाप्ताः । कूटंतु कार्षापणतुलाप्रस्थादेः परवचनार्थं नानाविधकरणं । एतैरुत्कुचनादिभिः सद्दातिशयेन प्रयोगोयदिवातिशयेन द्रव्येण कस्तूरिकादिना परस्य द्रव्यस्य संप्रयोगः सोतिसंप्रयोगस्तद्बहुलास्तत्प्रधानाइत्यर्थः । उक्तंच सोहोइ सातिजोगो,दव्वं जं छादियमदव्वेसु । दोसगुणावयणेसुय, अत्थविसवाइणं कुणइ ॥ १ ॥ एते चोत्कुंचनादयोमायापर्यायाइंद्रशक्रादिवत् कथंचित्क्रियाभेदेपि द्रष्टव्याः । तथा दुष्टं शीलं येषांते दुःशीलाश्चिरमुपचरिताअपि क्षिप्रं विसंवदति । दुःखानुमेयादारुणस्वभावाइत्यर्थः । तथा दुष्टानि व्रतानि येषांते तथा । यथा मांसभक्षणव्रतकालसमाप्तौ प्रभूततरसत्त्वोपघातेन मांसप्रदानमन्यदपि नक्तभोजनादिकं दुष्टव्रतमिति तथान्यस्मिन् जन्मांतरे मधुमद्यमांसादिकमभ्यवहरिष्यामीत्येवमज्ञानाद्याजन्मांतरविधिद्वारेण सनिदानमेव व्रतं गृह्णंति, तथा दुःखेन प्रत्यानंद्यते दुष्प्रत्यनंद्या । इदमुक्तं भवति । तैरानंदितेनापरेण केनचित्प्रत्युपकारेप्सुना गर्वाध्मातादुःखेन प्रत्यानंद्यते । यदिवा सत्यप्युपकारे प्रत्युपकारभीरवोनैवानंद्यंते प्रत्युत शठतयोपकारे दोषमेवोत्पादयति । तथा चोक्तं । प्रतिकर्तुमशक्तिष्ठानराः पूर्वोपकारिणः ॥ दोषमुत्पाद्य गच्छंति मद्गूनामिव वायसाः ॥ १ ॥ यतएवमतोऽसाधवस्ते पापकर्मकारित्वात् तथा यावज्जीवं यावत्प्राणधारणेन सर्वस्मात्प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंदनीयादपि ब्राह्मणघातादेरविरताइति । सर्वग्रहणं सर्वस्मादपि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्माद

अर्थ-(ऽच्चेयस्सठाणस्सउठियावेगेके०) ए पूर्वोक्त स्थानक ऐश्वर्य लक्षण शृंगार मूल तेने कोऽएक पाखंमीन मार्ग प्रवर्त्तता, परमार्थना अजाण, एवा पुरुप (अनिगिञ्जंतिके०) वाछे, नियाणादिक चितवे, तथा वली (अणुठियावेगेके०) कोऽएक अनुठ्ठित गृहस्थ तेपण (अनिगिञ्जति के०) वाछे, (अनिझंझाउरा के०) तृष्णावत लोभिया तदातुर थका ते राजानी पदवीने (अनिगिञ्जंति के०) वांछे, (एसठाणेअणारिए के०) ए स्थानक अनार्य छे, महा पुरुपने अनाचीर्ण, (अकेवलेके०) एने विषे केवल ज्ञान नथी ए कारण माटे अशुद्ध तथा (अप्पडिपुन्ने के०) अप्रतिपूर्ण सद्गुण रहित तथा पूर्णता रहित त था (अणेयाउए के०) अन्याय प्रवर्तक एटले न्यायमार्ग जेमा नथी, (असंसुद्धे के०) मलयुक्त (असल्लगत्तणे के०) तथा शल्यनु कापनार नथी, (असिद्धिमग्गेके०) ए स्था नक थकी सिद्धिनो मार्ग नथी, एटले ए स्थानक सर्वज्ञ खना क्थनो करनार नथी, (अमुत्तिमग्गे के०) कर्मबधनु स्थानक छे (अनिव्वाणमग्गे के०) असमा धिनु स्थानक छे (अणिज्जाणमग्गेके०) मोक्षने नजाणवानो मार्ग छे, (असव्वदुक्खप हीणमग्गे के०) सर्वथा सर्वज्ञ खना क्थनो मार्ग नथी, एवु ए स्थानकने (एगतमिछे के०) ए एकात मिथ्यात्वनु स्थानकछे, एकारणे ए (असाहु के०) असाधुनो मार्गछे एसखलुके०) निश्चे थकी ए (पढमस्सठाणस्स के०) प्रथम स्थानकनु (अधम्मपक्खस्स (विभगे के०) अधर्म पक्षना विभग एटले विचार (एवमाहिए के०) एम कह्यो ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका-अस्योपसहारमाह । ऽत्येतस्य स्थानस्य सावद्यरूपस्य एके उत्थिता पा खडाश्रिता (अनिगिञ्जंति) लुभ्यते लोभवशगा स्यु । अनुत्थितागृहस्थाअपि सतोलु भ्यते (झंझाउरा) तृष्णातुरालुभ्यंते अतऽदं स्थानमनार्य अकेवलमशुद्ध अप्रतिपूर्ण गुणशून्यत्वात्तुच्छं अनैयायिकमन्यायवृत्तिक असशुद्ध समल शल्य मायानुष्ठानमकार्य न श ल्यकर्तनमशल्यकर्तन । नविद्यते सिद्धेर्मार्गोयस्मिन् तदसिद्धिमार्ग नविद्यते मुक्तेर्मार्गोज्ञाना दिकोयस्मिन् तदमुक्तिमार्ग नविद्यते निर्वाणस्य चित्तस्वास्थ्यस्य मार्गोयस्मिन् तत्तथा अनि र्वाणमार्ग न ससारनिर्याणमार्गरूपमित्यर्थ । न सर्वज्ञ खप्रक्षेपमार्गरूपं यस्मादेकातेन मिथ्यादृशा असाधु असदाचारत्वात् । एपखलु प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य विभंगोविशेप स्वरूपमिति यावत् आख्यात कथित ॥ ५७ ॥

॥ टीका-साप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (ऽच्चेइयस्सेत्यादि) ऽत्येतस्य पूर्वोक्तस्य स्थानस्य ऐश्वर्यलक्षणस्य शृगारमूलस्य ससारिकस्य परित्यागबुध्या एके केचन विपर्यस्तमतय पा पंडिकोत्थानेनोत्थिता परमार्थमजानात (अनिगिञ्जतित्ति) आभिमुख्येन लुभ्यते लोभ

करेइ इमं नक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेह वेयगछियं अंगछियं इमं पक्का करेइ इमं नक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेह वेयगछियं अंगछियं इमंपुक्का फोडिय करेइ इमं णयणुप्पाडियं करेह इमं दंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जिप्फोडिय करेइ इमं णयणुप्पाडियं करेह इमं दंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जि प्पुप्पाडियं उलंबियं करेह घसियं करेह घोलियं करेह सूलाइयं करेह सूला भिन्नयं करेह खारवत्तियं करेह वझवत्तियं करेह सीहपुच्छियंगं करेह वसन्नपुच्छियंगं करेह दवग्गिदह्वयंगं कागणिमंसखावियंगं भत्तपाणनिरुद्धगं इमं जावजीवं वहबंधणं करेह इमं अन्नयरेणं असुभेणं कुमारेणं मारेह ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे वली बीजा प्रकारे अधार्मिक पुरुषनो विशेष कहेछे. यथादृष्टांतें नामएवी संभावनाये कोइएक पुरुष. कलम एटले वटाणा, चणा, मसूरनी दाल, तल, मग, मास एटले अडद, निप्फाव एटले वाल, (कुलथ के०) तुवर, (आलिसंदग पलिमथग मादिएहिं के०) चउथ, कालाचणा, आदेलेइने जे धान्य विशेषछे तेने पचन पाचनादिक क्रियाये करी पोताने तथा परने अर्थे (अयंते के०) अयत्नछता निर्दय भावे (कूरेके०) क्रूरपणे दुष्ट थको (मिच्छादंमंपउजति के०) मिथ्या दंम प्रयूजे (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें पूर्वोक्त जे (पुरिसजाए के०) पुरुषजाति छे ते निर्दय पणे त्तितर, वर्त्तक, लावक, कपोतपक्षी, कपिंजलपक्षी, मृग, पाम्हो, सूवर, मयूर, गौ नकुलादिक, जलचर घो, काचवो, अने भूजपुरी सर्प इत्यादिक प्राणीने विषे अर्थी अथवा अनर्थी थको यत्नविना निर्दय भावे क्रूर दुष्ट थकोमिथ्यादंम प्रयूजे, एवा पुरुषने परिवार पण एवोज सांपडे "यथा राजा तथा प्रजा" इतिवचनात् ते देखाडेछे. (जावियसेबाहिरियापरिसाभवइ के०) जेपण तेनी बाहेरनी परिषदा होय (तंजहा के०) ते कहेछे (दासेइवा के०) ए दास आपणी दासीनो पुत्रछे (पेसेइवा के०) ए प्रेक्षक काम काज उपने ज्यां त्यां मोकलवुं (भयएइवा के०) भृत ते मजूरीनो करनार, तथा (भाइल्लेइवा के०) भागीक, षष्ठादिक भागे कर्षणादिकने विषे प्रवर्त्ते, (कम्मकरएइवा के०) कामनो करनार प्रसिद्ध ते कर्मकर कहिये (भोगपुरिसेइवा के०) स्वतंत्र भोगने माटें राखेलो दास तेपण बाहेरनी परिषदा मांहे कोइ रूडो पुरुष होय (तेसिंपियणं के०) तेनो पण (अन्नयरंसिवा के०) अन्य कोइ एकनो (अहालहुगंसिके०) यथा शब्दादिक सांभलेछते पछी तेनो एवो न्हानो (अवराहसिके०) अपराध उपने छते ते नायकना दासादिकपण (सयमेवगुरुयंदंमनिवत्तेइके०) पोतें तेने महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते केवा दंम करे. ते कहेछे (इमदंमेह के०) एने दमो, एनुं सर्व

सारावर्ण वाला, एक माग वर्ण वाला, एक सुंदर सरूपवान्, एक कुरूपवान्, तेने क्षेत्र एटले उघाम्ती भूमिका. अने वस्तु एटले घर हाट, प्रमुख एवो परिग्रह होय, इत्यादि (एसोआलावगोजहापोंमरीएतहाएतव्वो के०) ए समस्त आलावो जेम पूर्वना पौंमरीकाध्ययनमा कह्योछे तेमज जाणवु, एटले "तेएवअलावेणजावसव्वोवसता सव्वत्ताएपरिनिवुमंतित्तिबेमि" एटला सुधीनो पाठ पौंमरीक अध्ययनमाछे. ते प्रमाणे अहीं पण जाणी लेवु अर्थात् तेज आलावे ज्या सुधी सर्व प्रकारे उपशात एटले कषायने जीपीने तथा सर्व प्रकारे सर्व पापस्थानकथकी उपशम्या ए कारणे सर्वात्मा, सर्व जीव उपर समभावे वर्त्तमान, शीतलीभूत थया ए प्रमाणे श्रीसुधर्मस्वामि जंबूप्रत्ये कहेछे के ते आलावो सर्व आहीं जाणवो. ॥ ५८ ॥ ए स्थानकने आर्य रुडुं जाणवु एने विषे केवल ज्ञान होय यावत् ए सर्व दुःख क्षय करवानो मार्ग छे, एकात सम्यक्मार्ग, एकात सम्यक्दृष्टीनो मार्ग ते कारणे ए साधुनुं स्थानक जाणवुं एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्ष, तेनो विभंग एटले विचार एरीते कह्यो ॥ ५९ ॥

दीपिका-(अहावरेत्ति) अथापरोद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषएवमाख्यायते । तद्यथा (पाईणति) प्राचीन प्रतीचीनमुदीचीन दक्षिणवा दिग्भागमाश्रित्य सत्येके केचन कल्याणभाज पुरुषा । तद्यथा आर्या एके अनार्याइत्यादि यथा पुडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं वाच्य यावत्ते एव सर्वपापस्थानेभ्यउपशाताअतएव सर्वात्मतया परिनिर्वृता इत्यहं ब्रवीमि ॥५८॥ एतत्स्थानमार्यं महापुरुषाचरित केवलमित्यादिप्राग्वद्विपरीत ज्ञेय। यावद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषआख्यात ॥ ५९ ॥

टीका-साप्रत द्वितीयं धर्मोपादानभूतं पक्षमाश्रित्याह । (अहावरेइत्यादि) अथेत्य धर्मपाक्षिकस्थानादनतरमयमपरोद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य पुण्योपादानभूतस्य विभंगोविभाग. स्वरूपं समाधीयते सम्यगाख्यायते । तद्यथा प्राचीन प्रतीचीनमुदीच्य दक्षिणवा दिग्विभागमाश्रित्य सतिवि द्यंते एके केचन कल्याणपरपराभाज पुरुषामनुष्या स्तेचे वक्ष्यमाणस्वभावाभवति । तद्यथेत्ययमुपप्रदर्शनार्थं । आर्याएके कचनार्यदेशोत्पन्नास्तथाऽनार्या शकयवनशबरबर्बरादयइत्याद्येव । यथा पौंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं निरवयव भणितव्य एव पूर्वोक्तेन प्रकारेण सर्वेभ्य पापस्थानेभ्यउपशातास्तथा अतएव सर्वात्मतयापरिनिर्वृताइत्यहमेव ब्रवीमि ॥५८॥ तदेवमेतत्स्थान कैवलिक प्रतिपूर्णं नैयायिकमित्यादि प्राग्वद्विपर्ययेण नेय । यावद्वितीयस्य स्थानस्य धार्मिकस्यैव विभंगो विभाग स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ५९ ॥

तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा दासः स्वदासीसुत· प्रेष्य· प्रेषणयोग्यः नृतकोमूल्यगृ हीत· नागिक कृष्यादौ सनागग्राही कर्मकर· प्रतीत नोगपरोनायकाश्रित कश्चित् ते दासादयोऽन्यतरस्मिन्स्वल्पेऽप्यपराधे स्वयं गुरुतर दंडं प्रयुंजंति । सच नायकस्तेषां दा सादीना यथा लघौ स्वल्पेऽपराधेपि गुरुदंड वक्ष्यमाण प्रयुंक्ते । तद्यथा इमं दास दंडय त यूयमित्यादि सुगम । यावदिममन्यतरेणाऽशुनेन कुत्सितमारेण मारयतइति॥ ६३ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा बहुप्रकारमधार्मिकपदं प्रतिपिपादयिषुराह । (सेजहाणामएइ त्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थोनामशब्द सनावनायां सनाव्यते । अस्मिन्विचित्रे संसा रे केचनैवनूता पुरुषा केवलमसूरतिलमुजादिषु पचनपाचनादिकया क्रियया स्वपरार्थे मयताअप्रयत्नवतोनिष्कृपा क्रूरामिथ्यादडं प्रयुजति । मिथ्यैवाऽनपराधिष्वेव दोषमारो प्य दडोमिथ्यादडस्तं विदधति । तथैवेमे प्रयोजन विनैव तथाप्रकारा· पुरुषानिष्करुणा जीवोपघातनिरतास्तित्तिरवर्तकलावकादिषु जीवनप्रियेषु प्राणिष्वयता क्रूरकर्माणोदंडं प्रयुंजति । तेषा च क्रूरधियां "यथा राजा तथा प्रजा" इति प्रवादात् परिवारोपि तथानूतए व नवतीति । तथा दर्शयितुमाह । (जावियसेइत्यादि) यापिच तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा । दास स्वदासीसुत प्रेष्य प्रेषणयोग्योनृत्योनृत्यदेश्योनृतकोवेतवेनोदकाद्या नयनविधायी तथा नागिकोय षष्ठयशादिलानेन कृष्यादौ व्याप्रियते कर्मकर· प्रती तस्तथा नायिकाश्रित कश्चिद्भोगस्तद्वेव ते दासादयोऽन्यस्य लघावप्यपराधे गुरुतर दंडं प्र युजति प्रयोजयंतिच । सच नायकस्तेषां दासादीनां बाह्यपर्षद्भूतानामन्यतरस्मिंस्तथा ल घावपराधे शब्दश्रवणादिके गुरुतर दंड वक्ष्यमाण प्रयुंक्ते । तद्यथा । इमं दासं प्रेष्यादि कवा सर्वस्वापहारेण दंडयत यूयमित्यादि सूत्रसिद्ध यावदिममन्यतरेणाशुनेन कुत्सित मारेण व्यापादयत यूयं ॥ ६३ ॥

जावियसे अप्रितरिया परिसा नवइ तंजहा मायाइवा पियाइवा नाया इवा नगिणीइवा नज्जाइवा पुत्ताइवा धूताइवा सुण्हाइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसि अहालहुगसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं णिवत्तेइ सीउदगवियडंसि उगेलित्ता नवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परसि लोगसि तेडक्कति सोयंति जूरंति तिप्पति पिट्टति परितप्पति ते डक्कणसोयणजूरणपिट्टणपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अपडिविर या नवति ॥ ६४ ॥

अर्थ–(जावियसे [illegible] पण तेनी अभ्यंतरनी परिषदा होय

अरण्ये चरतीत्यारण्यिका कंदमूलफलाशिनस्तापसा आवसथोगृहं तेन चरतीत्यावस थिकागृहिण । यद्यप्येते कायक्लेशेन देवा स्युस्तथापि आसुरीयेषु किल्बिषिकेषु उत्प द्यते इत्यादि सर्वं पूर्वोक्त वाच्यं । यावत्ततश्च्युतानरत्नवे एलमूकत्वेन प्रत्यायाति तदेतत्स्था नमनार्यमित्यादि पूर्ववत् । एषस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकस्य विभंगोविचारोज्ञेय ॥ ६० ॥

॥ टीका—सांप्रत धर्माधर्मयुक्तं तृतीयस्थानमाश्रित्याह । (अहावरेत्यादि) अथापरस्तृतीय स्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभाग स्वरूपमाख्यायते । अत्र चाधर्मपक्षेण युक्तोऽधर्म पक्षोमिश्रइत्युच्यते । तत्राधर्मस्येह भूयिष्ठत्वादधर्मपक्षएवायं द्रष्टव्य । एतदुक्त भवति । यद्यपि मिथ्यादृष्टय काश्चित्तथाप्रकारा प्राणातिपातादिनिर्वृतिं विदधति तथाप्याशया शुद्धत्वादभिनवे पित्तोदये सति शर्करामिश्रक्षीरपानवदूपरप्रदेशवृष्टिवद्विवक्षितार्थसाध कत्वान्निरर्थकतामापद्यते । ततोमिथ्यात्वानुभावात् मिश्रपक्षोप्यधर्मएवावगतव्य इति । एतदेव दर्शयितुमाह ॥ (जेइमेभवतीत्यादि) ये इमेऽनंतरमुच्यमानाअरण्ये चरतीत्यार ण्यिका कंदमूलफलाशिनस्तापसादयोये चावसथिकाआवसथोगृह तेन चरतीत्यावस थिकागृहिणस्तेच कुतश्चित् पापस्थानान्निवृत्ताअपि प्रबलमिथ्यात्वोपहतबुद्धयस्ते यद्य प्युपवासादिना महता कायक्लेशेन देवगतय केचन भवति तथापि ते आसुरीयेषु स्था नेषु किल्बिषिकेषूत्पद्यतइत्यादि सर्व पूर्वोक्त भणनीय यावत्ततश्च्युतामनुष्यभव प्रत्याया ता एलमूकत्वेन तमोंधतया जायते । तदेवमेतत्स्थानमनार्यमकेवलमसपूर्णमनैयायि कमित्यादि यावदेकांतमिथ्याभूत सर्वथैतदसाध्विति । तृतीयस्थानस्य मिश्रस्यायं विभ गोविभाग स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ६० ॥

अहावरे पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति गिहत्था महिच्छा महारंभा महापरि ग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिठा अधम्मक्खाई अधम्मपावजी वि अधम्मपलोई अधम्मवलजणा अधम्मसील समुदायारा अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ॥ ६१ ॥

अर्थ—हवे वली ए पूर्वे त्रण प्रकार जे कह्या, तेज प्रकार विशेषे करी कहेछे तेमा प्रथम स्थानक कहेछे अथ हवे अपर प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो स्वरुप विचार आवीरीते कहेछे आजगत्मांहे निश्चे पूर्वादिक चारदिशिने विषे कोइएक मनुष्य छे ते केवा छे तोके, (महिच्छा के०) महोटी जेनी इछाछे, चित्तनी अविरतिछे, तथा (महार

अर्थ-एरीतें ते पूर्वोक्त स्वनाव वालो पुरुष निर्दय थको बाह्यान्यंतर एवी पोतानी जे प रिपदा तेने पण पीडानो करनार एवो, छतो स्त्रियादिकना काम नोगने विषे मूर्छित गृद्ध एट ले लोनी, नोगने विषे पोतें गुथाणो थको परम आसक्त छतो, यावत् चार, तथा पांच, तथा सात,तथा दश वर्ष एम अल्प काल अथवा घणोकाल सुधी नोगववा योग्य नोग नोगवीने, घणा जीवोनी साथे अनेक जातना वैर उपजावी वैरनावना स्थानकनो संचय करीने, ज्यां घ णापापरूप हिंसादिक क्रूर कर्म संनारीकरी करेला कर्मने प्ररेतो एवा छतो, नरक रूप स्था नकने पामे (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम (अयगोलइवा के०) लोहनो गोलो, (सेलगोलइवा के०) पाषाणनो गोलो, तेने (उदगंसिपक्खित्तेसमाणे के०) पाणीना इहमां हे अथवा नदी तलाव मांहे नाख्यो थको, (उदगतलमइवइत्ताइ के०) उपलुं तलुं अति क्रमीने पाणीना तलामा जइ पेसे, (अहेधरणितलपइठाणेनवइ के०) नीचे धरतिना त लाने विषे जइ बेसेछे. (एवमेव के०) एरीते (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें, ए पूर्वोक्त प्र कारना दुष्ट निर्दय नास्तिक वादि प्रमुख एवा जे (पुरिसजाते के०) पुरुष जातिछे ते (वज्ज बहुलेके०) घणा पापरूप कर्म, (धूतबहुलेके०) घणी कर्मरूपरज (पंकबहुलेके०) घणो क र्मरूप कादव, (वेरबहुले के०) घणो जीवोनी साथे वैरनाव, (अप्पत्तियबहुले के०) अविश्वासलायक एवु मननु डुर्ध्यान (अयसबहुले के०) घणो अपयश (दंनबहु ले के०) घणुं कपट परने वचवा पणु छे जेमां, (णियडिबहुले के०) घणो वेष तथा नाषानु पलटाववुछे जेमा (साइबहुले के०) सातिशय इव्य साथे गुणहीन पुरुषोना इव्यनु मेलाववु (उस्सन्नतसपाणघाती के०) प्राय त्रस प्राणी जीवनो घात करनार, ते (कालमासेकालकिच्चा के०) कालने अवसरे काल करीने (धरणितलमइवइत्ताइ के०) पृथ्वीना तलाने सहस्र योजन प्रमाण अतिक्रमि जाये, जइने, (अहेणरगतल पइठाणेनवइ के०) नीचे नरकना तलियाना स्थानकने विषे तेनुं पडवु थायछे ॥६५॥

॥दीपिका-(एवमेवत्ति) एवमेव ते निर्दया स्त्रीप्रधानेषु कामेषु मूर्छिता गृद्धाग्रथिता अध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतु पचपट्सप्त वा दशवाल्पतरप्रनूततर वा काल नोगान् नु क्त्वा वैरायतनानि वैरानुबधान् प्रविसूय उत्पद्य बहूनि पापकर्माणि सचित्य वर्धयित्वा उत्पन्न प्राय सनारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणानरकतलप्रतिष्ठाना स्यु । यथाऽयोगोल. शिलागोलकोवा उदकक्षिप्तउदकतलमतिवर्त्य उल्लघ्याधोधरणितलप्रतिष्ठानोनवति एवमे व सनरोवज्रं बध्यमान कर्म तद्बहुल धून प्राग्बद्ध कर्म तत्प्रचुर पकबहुल पंकपाप वैरबहुल (अप्पत्तियत्ति) मनसोडुर्ध्यान दंनोमायया परवचन निकृतिर्नाषावेषादिपरा वर्त्तेन परडोहबुद्धि सातिशयेन इव्येणहीनइव्यस्य मेलनं साति तद्बहुल. अयशोबहु

तथाऽधर्मशीलाअधर्मस्वनावास्तथाऽधर्मात्मक समुदाचारोयत्किंचनानुष्ठानं येषाते नव त्यधर्मशीलसमुदाचारास्तथाऽधर्मेण पापेन सावद्यानुष्ठानेनैव दहनाकननिलांठनादिके कर्मणा वृत्तिर्वर्तनं कल्पयंत कुर्वाणाविहरतीति कालमतिवाहयति ॥ ६१ ॥

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहियपाणी चमा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उ क्कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपउंगवहुला डुस्सीला डुव्व या डुप्पडियाणंदा असाहु सवाउ पाणाइवायाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जाव सवाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए सवाउ कोहाउ जाव मिछादंसणसल्लाउ अप्पडिविरया सवाउ एहाणुम्मद्दण म द्दण वणगंधविलेवणसद्द फरिसरसरूव गंधमल्लालंकाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउ सगड रहजाण जुगगिल्लिथिल्लिसिया संदमा णिया सयणासणजाण वाहणभोगभोयणपवित्थरविहीउ अप्पडिविरया जावजीवाएसवाउ कयविक्कयमासद्धमासरूवगसंववहाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउहिरण्ण सुवण्णधणधण्ण मणिमोत्तियसंखसिलप्प वालाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कूडतुलकूडमाणाउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउ आरंभ समारम्भाउ अप्पडिविरया जावजीवाए उ सवाउ करणकारावणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ पयण पयावणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कुट्टणपिट्टणतज्जणताड णावहबंधपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जावजीवाए जेआवण्णे तहप्प गारे सावज्जा अवोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा जे अणारि एहि कज्जंति ततो अप्पडिविरया जावजीवाए ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे एनो अधर्माचार कहेछे. ते पोते अधर्मी छता बीजाने पण एवा आदेश आपे ते कहेछे. के, (हण के०) अरे एने हणो, (छिंद भिंद के०) कर्णादिक, छेदी शूलादिकें करी भेदी, (विगत्तगाके०) एना चर्म उखेडो, इत्यादिक कहीने प्राणीउने डुःखना उ पजावनार थाय, ए कारणे (लोहियपाणी के०) सर्वकाल लोहीये करी हाथ रगाता परंतु तेउ जीवोने हणीने कोइ वारे हाथ पण धोवे नही, (चमा के०) तीव्रक्रोध, (रुद्द के०) रौद्र ध्यान, शोचरहितकर्मना करनार (खुद्दाके०) क्षुद्र डुष्ट, नृमा, (साहस्सि

अगणिवन्नाना कक्खडफासा डुरुहियासा असुन्ना णरगा असुन्ना णरए सु वेयणाउ ॥ ६६ ॥

अर्थ-(तेणणरगाके०) ते नरकनु स्वरूप कहेछे (अंतोवट्टा के०) सीमंतादिक नरकावासा माहेली कोरे वाटलाआकारेछे, (बाहिचउरंसा के०) बाहेर चारखुणाछे (अहेखुरप्पसंठाणसंठिया के०) नीचे सजायानी धारने आकारे संस्थितछे एटले रह्याछे (णिच्चंधकारतमसा के०) नित्य सर्वकाल मेघ छायानी पेठें, कृष्णपक्षनी रात्रीनी पठें, महाअंधकारे युक्तछे बहुल अधकारछे. (ववगयचंदसूरगहनक्खत्तजोइसप्पहा के०) बुधादिक ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ज्योतिष्य प्रकाश, ते थकी व्यपगत एटले रहितछे (मेदवसामसरुहिरपूयपमलचिक्खललित्ताणुलेवणतला के०) मेद, वसा, मास, रुधिर, परसेवो, तेना पमल एटले समूह तेना कादवे करी अनु लिप्तछे जेना नूमितल एवाछे, एटले जे एकवार लिंपीये तेने लिप्त कहिये अने जे वारवार लिंपीये तेने अनुलिप्त कहियें, (असुईवीसापरमडुब्भिगंधाकएहा के०) अशुचि बीनत्सविष्टाये खरडया कुत्सित एटले माससमान डुर्निगंध, खराब कृष्णवर्ण वाला (अगणिवन्नानाके०) मशाणनो अग्नि, तथा धम्या लोहना अग्निनी ज्वालाउना जेवा वर्ण थाय ते समान आकारछे जेनो, जे अत्यंत कठोर, सह न करता अत्यंत डु सहछे (कक्खसफासाडुरुहियासा अशुनके०) डु खे सहन थाय एवा खरखरा कर्कश फरशछे जेने विषे, एवा अशुन (णरगा के०) नरकने विषे (अशुन णरएसुवेयणाउ के०) महा अशुन वेदना प्रवर्त्तेछे ॥ ६६ ॥

॥ दीपिका-नरक स्वरूपमाह । ते नरकाअंतर्वृत्ताबहिश्चतुरस्रा. अधश्च क्षुरप्रसंस्थान स्थिता । एतच्च संस्थान पुष्पावकीर्णाना तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिका गतास्तु वृत्त त्र्यस्रचतुरस्रसस्थानाएव तथा नित्याधकारतमसा नृश तमोबहुला व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्पथा । मेदवसामासरुधिरपूयपटलैर्लिप्तानि अनुलेपनप्रधानानि तलानियेषां ते तथा । तथा अशुचयोविस्रा कुथितमासादिलिप्तत्वात् परमडुरभिगंधा. कृष्णाग्निवर्णाश्च कर्कशस्पर्शाडु खेनाधिसह्यते यतोऽशुनास्तत्र नरकेषु अशुनाडु सहावेदना ॥ ६६ ॥

॥ टीका-नरकस्वरूपनिरूपणमाह । (तेणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । ते नरका सीमंतकादिकाबाहुल्यमगीकृत्यातर्मध्ये वृत्ताबहिरपि चतुरस्राअधश्च क्षुरप्रसंस्थानसस्थिता । एतच्च सस्थान पुष्पावकीर्णानाश्रित्योक्त तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिका प्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसस्थानाएव नवंति । तथा नित्यमेवान्धतमस येषु ते नित्यांधतमसा । क्वचित्पाठोनित्याधकारतमसाइति । मेघावच्छिन्नावरतलकृष्णपक्षरजनीवत् तमो

पुं, तथा सुवर्ण, धन, धान्य, चिंतामणी प्रमुख मणी, तथा मौक्तिक दक्षणावर्त्त शंख, राजपट, प्रवालादिक परिग्रह, तेथकी अनिवृत्या, तथा जावजीवसुधी सर्व कूडा तोला, कूडा मापथकी, नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी सर्व आरम्भ जे कर्पणादिक, तथा समारम्भ विशेष, तेथकी नथी निवृत्या, तथा जावजीवसुधी सर्वथा करण करावण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी पचन ते पोते पचाववानुं करे, तथा पचावण ते बीजा पासे पचाववानु करावे, ए क्रिया थकी नथी निवृत्या, तथा सर्व कुटण पिट्टन तर्ज्जन अंगुलीयेकरी तर्जना करे चपटीयादिके करी ताडन करे, वध, बंधन करे, इत्यादिक जीवने क्लेशना कारण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी जे बीजा, तथाप्रकारें पाठज कह्या एवा सपापकारी परपीडाना करनार, सावद्य कर्म, (अबोहिया के०) बोधबीजना नसाडनार एवा (कम्मता के०) कर्म, परजीवने परितापना करनार जे अनार्य पुरुषोने करवा योग्य, तेथकी पण जावजीव सुधी निवृत्या नथी ॥ ६२ ॥

॥दीपिका–(हणछिदत्ति) जहि दंडादिना, छिंधि कर्णादिक, भिंधि शूलादिना, एव परोपदेशं ददते । किंभूता. विकर्तका प्राणिना चर्मापनेतारस्तेनैव लोहितपाणयश्चडारौद्रा निस्त्रिंशा क्षुद्रा साहसिकाअविचारितकारिण उत्कुचनवचनमायानिकृतिकूटकपटादिभि सहातिसप्रयोगोगाध्यं तेन बहुला । तत्र शूलाद्यारोपणार्थमूर्ध्वं कुचनमुत्कुचनं वचन प्रतारण । यथाऽभयकुमार प्रद्योतगणिकाभिर्धर्मवचनया वंचित । माया, वचन बुद्धि॰ प्रायोवणिजामिव निकृतिस्तु बकवृत्त्या देशभाषावेषादिविपर्ययकरण कूटं तु लामानादेर्न्यूनाधिककरण, कपटं यथापाढभूतिना वेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकार्थं चत्वारोमोदकालब्धा एव मायायुतानरा । पुन किंभूता । दुशीलाश्चिर परिचिताअपि शीघ्रं विसवदतोदुष्टव्रताडुखेन प्रत्यानंद्यते दर्पितइति दुष्प्रत्यानंद्याअसाधव पापा सर्वत प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरनिवृत्ताइति सर्वग्रहण । एव यावज्जीव सर्वतोमृषावादाऽदत्तादानमैथुनपरिग्रहादप्रतिविरता । एव सर्वेभ्य क्रोधमानमायालोभेभ्यस्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽविरता स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरुपरसगंधमाल्यालंकारादप्रतिविरता सर्वत शकटरथादेर्यानादिकात्प्रविस्तरविधे परिकरादप्रतिविरता । अत्र शकटरथादिकमेव यान शकटरथयान युग्यतरोल्लिखं चाकाशयान (गिल्लित्ति) दोलिका (थिल्लित्ति) तुरगद्वयनिर्मित यान (सदमाणियत्ति) शिबिकाविशेष । तथा सर्वत क्रयविक्रयाभ्या योमापकार्धमापकरूपकनाणकादिभि संव्यवहारस्तस्मादविरता सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णधान्यमणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालादिपरिग्रहात् कूटतुलाकूटमानात्

॥ टीका–तयाच वेदनयाभिनूतास्तेषु नरकेषु नारकानैवाक्षिनिमेषमपि कालं निद्रायं ते नाप्युपविष्टाद्यवस्थाअक्षिसंकोचनरूपामीषन्निद्रामवाप्नुवंति । नह्येवन्नूतवेदनाभिनूतस्य निद्रालानोनवतीति दर्शयति । तामुज्वलां तीव्रानुनावेनोत्कटामित्यादि विशेषणविशिष्टां यावद्वेदयंत्यनुनवंतीति ॥ ६७ ॥

से जहाणामए रुरकसिया पव्वयग्गे जाए मूले छिन्ने अग्गे गरुए ज उणिनं जउ विसमं जउडुग्गं तउपवडंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गप्नातोगप्न जम्मातोजम्मं माराउमारं णरगाउ णरगं डुस्काउ डुस्कं दाहि णगामिए णेरइए कण्हपरिकए आगमिस्साणं डुल्लनबोहिएयावि नवइ एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वडुस्कपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहू पढमस्स ठाणस्स अधम्मपरकस्स विनंगे एव माहिए ॥६८॥

अर्थ–(सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते नाम एवी संनावनाये जेम कोइएक (रुरकसिया के०) वृक्ष होय, (पव्वयग्गेजाए के०) पर्वतने अग्रे उपनो (मूलेछिन्ने के०) मूल माहेथी छेद्यो (अग्गेगरुएके०) अग्रे नारी एवो हतो ते वृक्ष (जउणिनं जउविसम के०) ज्यां ज्यां नीचा खामानु स्थानक होय, ज्यां त्यां विषम, समान नही, (जउडुग्गंके०) ज्यां ज्यां डुर्गम कष्टस्थान होय, (तउपवडंतिके०)त्यां ते वृक्ष उतावलो पडे. (एवमेवतहप्पगारे के०) एदृष्टांते तथा प्रकारना डुष्ट असाधु कर्मकारी पुरुष जाति ते कर्मरूपी वायरे प्रेर्यो हतो उतावलो नीचो नरकगतिमां जइ पडे, फरी त्यां थकी उद्दर्यो थको फरी गर्न थकी गर्न, जन्म थकीजन्म, मरण थकी मरण पामे, नरकथकी नरक पामे, डुःख थकी वली डुःख पामे, एरीते दक्षिणदिशिनो जनारो, नारकी, कृष्णपक्षी ते दीर्घसंसार पणाने लीधे आगमिक काले डुर्लन बोधि थाय ए स्थानक अनार्य अकेवल यावत् जेमां सर्वडुःख थकी बुटवानो मार्ग नथी एकांत मिथ्यात्व असाधुनो मार्ग जा णवो ए प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ६८ ॥

॥ दीपिका–(सेजहत्ति) तद्यथा नामकश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं य था निम्नं नीच स्थानं तत पतति एवमसावसाधुरपि नरके पतति ततोप्युद्वृत्तो गर्नाग नं याति एव न तस्य [illegible] यावदागामिन्यपि कालेऽसौडुर्लन बोधि स्यात् (ए सठाणत्ति) तदेतत् स [illegible] ख्यातं [illegible] । तदेव प्रथमस्याधर्मपाक्षि कस्य स्थानस्य विनंग [illegible]

पि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्मात्स्त्रीबालादेः परद्रव्यापहरणादविरतास्तथा सर्वस्मात्परस्त्रीगमनादेर्मैथुनादविरताएवं सर्वस्मात्परिग्रहाद्योनिपोपकादप्यविरताएव स र्वेभ्य क्रोधमानमायालोभेभ्योऽविरतास्तथा प्रेमद्वेपकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरपरिवादाऽर तिरतिमायामृपावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽसदनुष्ठानेभ्योयावज्जीव ये प्रतिविरताभव ति । तथा सर्वस्मात्स्नानोन्मर्दनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारात्कामांगा न्मोहजनितादप्रतिविरतायावज्जीवयेति । इहच वर्णकग्रहणेन वर्णविशेपापादकं लोध्रा दिकं गृह्यते । तथा सर्वत· शकटरथादेर्यानविशेपादिकात्प्रतिविस्तरविधे परिकररूपात्प रिग्रहादप्रतिविरता ।इहच शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयान युग्यं पुरुपोत्क्षिप्तमा काशयान (गिल्लित्ति) पुरुपद्वयोत्क्षिप्ता ज्जोल्लिका । (थिल्लित्ति) वेसरादिद्वयविनिर्मि तोयानविशेप 'तथा (सदमाणियत्ति) शिविकाविशेपएव । एतदेवमन्यस्मादपि वस्त्रा दे परिग्रहादुपकरणभूतादविरतास्तथा सर्वत सर्वस्मात्क्रयविक्रयाभ्या करणभूताभ्यां यो मापकार्धमापकरूपकार्षापणादिभि पण्यविनिमयात्मक सव्यवहारस्तस्मादविरतायाव ज्जीवयेति । तथा सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णादे· प्रधानपरिग्रहादविरतास्तथा कूटतुलाकूटमा नादेरविरतास्तथा सर्वत कृपिपाशुपाल्यादेर्यत्स्वत करणमन्येन च यत्किंचित्कारयति त स्मादविरतास्तथा पचनपाचनतस्तथा कंडनकुट्टनपिट्टनतर्जनताडनबंधादिना य परिक्लेश प्राणिना तस्मादविरता । साम्प्रतमुपसंहरति । ये चान्ये परपीडाकारिण सावद्या कर्मस मारम्भाअबोधिकाबोधकारिणस्तथा परप्राणपरितापनकरागोग्रहबंदीग्रहग्रामघातात्मकाये ऽना र्यै क्रूरकर्मभि क्रियंते ततोऽप्रतिविरतायावज्जीवयेति ॥ ६२ ॥

से जहा णामए केइ पुरिसे कलममसूरतिलमुग्गमासनिप्फावकुलत्थ आलिसंदग पलिमंथगमाढिएहिं अयंते कूरे मिछादंडं पउजंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविजलमियमहिसव राहगाहगोहकुम्मसिरिसिवमाढिएहिं अयंते कूरेमिछादंडं पउजति जा वियसे बाहिरिया परिसा भवइ तंजहा दासेइवा पेसेइवा भयएइवा भा इल्लेइवा कम्मकरएइवा भोगपुरिसेइवा तेसिपियणं अन्नयरसिवा अ हालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुय दंडं निवत्तेइ तंजहा इमंदंमेह इ मंमुंमेह इमंतज्जेह इमताळेह इमंअडुयबंधणं करेह इमंनियलबंधण करे ह इमंहडिबंधण करेह इमंचारगबंधणं करेह इमंनियलजुयलसंकोडिय मोडियं करेह इमंहत्थछिन्नयं करेह ...छिन्नय करेह इमं कन्नछिणयं

यते । तद्यथा (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति वियंते ते चै वन्नूतानवंतीति । तद्यथा । न विद्यते सावद्यआरंजोयेषांते तथा अपरिग्रहानिष्किंचनाः धर्मेण चरंतीति धार्मिकायावद्धर्मेणैवात्मनोवृत्तिं परिकल्पयति तथा सुशीला. सुव्रताः सु प्रत्यानंदा सुसाधव. सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरताएव यावत्परिग्रहाद्विरताइति । तथा ये चान्ये तथाप्रकारा· सावद्याआरंजायावद्बोधिकारिणस्तेन्यः सर्वेन्योपि विरताइति ॥६९

से जहा णामए अणगारा नगवंतो इरियासमिया नासासमिया एसणासमिया आयाणनंममत्तणिक्खेवणासमिया उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिठावणियासमिया मणसमिया वयसमिया कायसमिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंनचारी अकोहा अमाणा अमाया अलोना संता पसंता उवसंता परिणिवुमा अणासवा अग्गंथा छिन्नसोया निरुवलेवा कंसपाइ वमुक्ततोया संखइव णिरंजणा जीवइव अपडिहयगती गगणतलंपिव निरालंवणा वाउरिव अपडिवंधा सारदसलिलइव सुद्धहियया पुक्करपत्तइव निरुवलेवा कुम्मोइव गुत्तिंदिया विहगइव विप्पमुक्का खग्गविसाणंव एगजाया नारंमपक्खीव अप्पमत्ता कुंजरोइव सोंमीरा वसनोइव जातथिमा सीहोइवडुद्धरिसा मंदरोइवअप्पकम्पा सागरोइवगंनीरा चंदोइवसोमलेसा सूरोइव दित्ततेया जच्च कंचणगंचइव जातरूवा वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणोविव तेयसा जलंता णत्थिण॥७०॥तेसिंनगवंताणं कत्थविपडिबंधेनवइ से पडिवंधे चउविहे पण्णते तं जहा अंमएइवा पाठांतरेवोम्जेइवा पोयएइवा उग्गहेइवा पग्गहेइवा जन्नजन्नदिसं इच्छंति तन्नं तन्न दिसं अपडिवद्धा सुइनूया अप्पलदुनूया अप्पग्गथा संजमेणं तवसा अप्पाणं नावेमाणे विहरंति॥७१॥तेसिणं नगवंताणं इमा एतारूवा जाया माया वित्ती होत्था तंजहा चउत्थेनत्ते छठेनत्ते अष्ठमेनत्ते दसमेनत्ते छवालसमे नत्ते चउदसमे नत्ते अद्धमासिएनत्ते मासिएनत्ते दोमासिए तिमासिए चाउम्मासिए पंचमासिए छम्मासिए अडुत्तरंचणं उक्खित्तचरया णिक्खित्तचरया उक्खित्तणिक्खित्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा सं

स्व अपहरी ल्यो, (इमंमुंमेह के०) एने सर्वमुंमन करावो (इमंतज्जेह के०) एने अंगु लीये करी तर्जना करो, (इमंतालेह के०) एने चिपटे करी ताडन करो, (इमंअडुय बंधणकरेहके०) एने पठवाडे वाहु करीने बंधने बंधन करो, (इमनियलवधणकरेहके०) एना हाथमां वेडी नाखीने बंधन करो, (इमंहडिबधणकरेह) एने हडनुं वधन करो, (इ मचारगबंधणंकरेह के०) एने नाकसी बंधन करो, (इमनियलजुयलसकोडियमोडियंक रेहके०) एने वेडीना युगलें करी संकोच करो, मोडिय एटले अंगोपांग नंग करी मरडो, अथवा एना हाथ पग संकोचीने बांधो, (इमंहत्नछिन्नयंकरेह के०) एना हाथ छेदन करो, (इम पायछिन्नयं करेह के०) एना पग छेदन करो (इमंकन्नछिन्नयंकरेह के०) एमज एना कान छेदन करो, (इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयंकरेहके०) एनुं नाक छेदन करो, एना होठ, एनुं मस्तक, एनुं मुख, छेदन करो, (वेयगछहियंअंगछहिय के०) एनुं वेदछेद करो, एना जीवतांज हैयाने छेदो, कापो, एम करो. (इमपुरकाप्फोडियंकरेहके०) एना शरीरनी खालने उपाडो एम करो, (इमंणयणुप्पाडियंकरेह के०) एनी आंख उखेडो एटले चक्षुकाढो, एम करो. (इमंदसणुप्पाडियंवसणुप्पाडियजिप्नुप्पाडियंउल्लंबियकरेह के०) एना दात काढो, वृपण काढो, एनी जीन काढो एने उंचो बांधोएने कूप, पर्वत नदीने नाखो एम करो, (घसियंकरेह के०) एने पग बांधीने घसो, (घोलिय करेहके०) एने विपे आंबांनी पेंठे घोलो, (सूलाइयंकरेहके०) एने शूली उपर आरोपण करो, (सूलानि न्नयंकरेहके०) एने त्रिशूलें नेद करो, (खारवत्तियं करेहके०) एने शस्त्रें करी छेदीने लू णनुं पाणी सींचो (वप्नवत्तियं करेह के०) एनु शरीर नाचें करी, कागें छेदो (सीहपु छियंगं करेह के०) एने सिंहने पुठडे बांधो, (वसनपुछियग करेह के०) एने बलदने पुंठडे बांधो (दवग्गिंदढ्यंगं के०) एने दावानल माहे बालो, (कागणिमसरकावियगंके०) एने काक पक्षीनु मांस काढीने खवरावो, तथा एनु पोतानु मास काढीने एनेज खव रावो, (नत्तपाणनिरुष्ट्वगंके०) एने नात पाणीनो निरोध करो, (इमजावजीवबहबंधणकरेह के०)एने जावजीव सुधी बांधी मूको, वध, बधन करो, (इमअन्नयरेणंअसुनेणकुमारेणमारे हके०)एम एने बीजा केटलाएक अशुन्न मारे करीने मारो,इत्यादिक एवा दम तेने आपे ६३

॥ दीपिका–अधार्मिकपदमेव सविस्तरमाह । (सेजहेत्ति) तद्यथा । नामसंनावने । संनाव्यंते अत्र नवे केचिदेवन्नूतानरा ये कलममसूरादिपु पचनादिक्रियया ऽयताअयन्न वतोनिष्क्रिया. क्रूरा मिथ्या अपराधं विना दोपमारोप्य दडोमिथ्यादडस्त प्रयुजति । त था एवमेव प्रयोजनं विनैव तथाप्रकारानिर्दया. पुरुपास्तित्तिरिवर्तकादिप्राणिप्वयता क्रू रकर्माणोमिथ्यादंडं प्रयुजति तेपा परिकरोपि तादृश. स्यादित्याह (जावियसेत्ति) यापिच

जल्लपारिठावणिया समितिये समिता) एटले वडीनीत, लघुनीत, थूंक नासीकानो सीं घाण, शरीरनो मल, तेने जयणा सहित परठवे एमपाच समितिये समिता, मन समि तियें सहित, वचन समितिये सहित, काय समितियें सहित, मन ने असंयम थकी गो पवीने प्रवर्तावे, माटे मनगुप्तियें गुप्त, वचनने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे वच न गुप्तिये गुप्त, कायाने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे कायगुप्तियें गुप्त, एरीतें त्र ण गुप्तियें गुप्त, तथा गुप्तेंद्रिय एटले असयम थकी इंद्रियोने गोपवी राखनार, नववा डविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालनार, क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोभ रहित, सता एटले मध्यवर्त्तिये, अने पसंता, एटले बाह्य वृत्तिये उवसंता, एटले उपशातते उजय थापि शातवृत्तिवाला, परिनिवृत्ता एटले समस्त सताप वर्जीत, अनाश्रय एटले पाप क र्म वध थकी रहित, अग्रंथा एटले हिरण्यादिक परिग्रह थकी रहित, छिन्नश्रोत एटले छेद्योछे ससारनो प्रवाह जेणे, तथा निरुवलेवा एटले निर्लेप कर्म मल थकी रहित, कं सपातीवमुक्कतोया एटले कासाना पात्रनी पेठें पापरूप पाणी जेने ठवतु नथी; जेम कांसा ना पात्रने पाणी न लागे तेम, ते साधुने पापरूप पाणी लागे नही, तथा शंखनी पेठें निरजन एटले रागादिक रग रहित, जीवनी पेठें अप्रतिहत गतिवाला जाणवा, एटले जेम जीवनी गति अप्रतिहतछे स्खलाय नही, तेम साधुने पण देश नगरादिकने विषे वि हार करवाने विषे अप्रतिहत अस्खलित गतिछे आकाशनी पेठें निरालंब एटले आका श जेम स्तंजादिकना आलंबने रहितछे तेम, साधु पण गाम, नगर, कुलना आलंबनथी रहितछे वायुनी पेठें अप्रतिबध थका ग्रामने विषे एक रात्र, अने नगरने विषे पांच रा त्र, विचरे गामेएगराइय णगरेपंचराइया इति वचनात् शारद एटले शीतकाल तेनुं स लील एटले पाणी तेनी पेठें, अथवा आश्विन, अने कार्तिक मासना पाणीजेम निर्मलहो य, तेनी पेठें निर्मल हृदय वाला (पुरकरपत्तइवनिरूवलेवा) एटले जेम कमलना पत्रने पाणी तथा कादव न लागे तेम, साधुने कर्म रूप लेप न लागे. काचबानी पेठें गुप्तेंदि य, जेम काचवो, चार पग अने पांचमी ग्रीवा गोपवीने प्रवर्त्ते तेम, साधु इंद्रियो गोप वीने प्रवर्त्ते पक्षीनी पेठें विप्रमुक्त, अनियतवासी, एटले पक्षी जेम सर्व परिवार स्थान कनी ममता रहित होय, तेम साधुपण परिवारादिकनी ममताथी रहित होय. (खग्गवि साणंवएगजाया) एटले गेंमानु शींगडुं जेम एक होय, तेम साधु, राग द्वेष रहित थको क होय नारमपक्षीनी पेठें अप्रमत्त होय, जेम नारम पक्षी अप्रमादी होयछे, तेम सा धु प्रमाद रहित थको धर्म कार्यने विषे प्रवर्त्ते. कुंजरनी पेठें शूरवीर एटले जेम हस्ती शूरवीर होय, तेम साधु कषायादिक निवारवाने शूरवीर होय, परतु कायर पणु जणा वे नहीं. वृषननी पेठें बलवत जेम बेल नार उपाडे अगीकार करे निर्वाह करे तेम सा

जहा के०) ते कहेछे माता, अथवा पिता, अथवा नाइ, नगनी, स्त्री, पुत्र, बेटी, पुत्रनीस्त्री, इत्यादिक माहेली परिषदावालामाथी कोइकनो पण अजाण पणे यथा न्हानो सरखो अपराध उपने थके पोतेंज तेने महोटो दंम करें, मारे, शीतकालें तेना शरीरनें टाढापाणीमां बोले, एवा अकार्य करें, ए जेम पूर्वे मित्रदोप प्रत्ययिक क्रियास्थानक कह्युछे, तेमज अहीयां पण जाणीलेवु एवा दंमनो करनार पुरुष, ते यावत् आ लोकने विषे अहित कारी अने परलोकने विषे आत्माने अहितकारी थाय ते अनेक जीवने डुख उपजावे, शोक उपजावे, जूरावे, तपावे, पीटे, परिताप आपे, ते घणा जीवोने डुखदायक शोकनो करनार गर्हा, निंदा करावनार, पीटीने पीडानो उपजावनार, परिताप करावनार, वध करावनार, बंधन करावनार, एवा महोटा क्लेश उपजाववाना कर्म थकी, जावजीव नथी निवृत्या एवो थका होय ॥ ६४ ॥

॥ दीपिका—यापि च तेषामन्यंतरा पर्षद्भवति मातापित्रादिका मित्रदोष प्रत्ययिका ख्यदशमक्रियास्थानवज्ज्ञेयं यावदहितोऽस्मिन् लोकें। ते क्रूरकर्माण स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडकरणाद्दुःखयंति शोकयंति याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरतान्नवति ॥ ६४ ॥

टीका—यापिच क्रूरकर्मवतामन्यंतरा पर्षद्भवति । तद्यथा । माता पित्रादिका मित्रदोष प्रत्ययिकक्रियास्थानवद्ज्ञेयं यावदहितोयमस्मिन् लोके इति । तथाहि । आत्मनोऽपथ्यकारि परस्मिन्नपि लोकें । तदेव ते मातृपित्रादीना स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडापादन तोडुःखमुत्पादयंति तथा नानाविधैरुपायैस्तेषा शोकमुत्पादयति शोकयंतीत्येव ते प्राणिनां बहुप्रकारपीडोत्पादका याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरतान्नवति ॥ ६४ ॥

एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चनपचमाइं बहसमाइवा अप्पतरोवा नुज्जतरोवा कालं भुंजित्तु नोग नोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं सचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उस्सन्नाइं संनारकडेण कम्मणा से जहा णामए अयगोलइवा सेलगोलइवा उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे धरणितल पइठाणे नवइ एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले आप्पत्तियबहुले दंनबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सन्नतसपाणघाती कालमासे कालंकिच्चा धरणितल मइवइत्ताइ अहे णरगतलपइठाणे नवइ ॥ ६५ ॥

क्षमण, त्रण मास क्षमण, चतुर्मासिक, पंच मासिक, छ मासिक, एवां तपना करनारा, (अड्डत्तरचण के०) अथवा एक साधु एवा अभिग्रहना करनाराछे, ते कहेछे. (उक्खित्तचरया के०) उत्क्षिप्तचर्या एटले पोताने अर्थे हामली माहे थकी काढयुं एवु जे कुसार अन्न तेना लेनारा, (णिक्खित्तचरया के०) निक्षिप्तचर्या एटले विरसवाने अर्थे हामली माहेथी काढी वली हामली माहे प्रक्षेप्यो, एवो जे आहार तेनी गवेषणा करनारा, (उक्खित्तणिक्खित्तचरगा के०) पूर्वोक्त बन्ने जातना आहारनी गवेषणा करनारा, (अंतचरगा के०) जे गाममांहे ससता मूल्यनो आहार मले, तेना लेनारा, (पंतचरगा के०) नीरस आहार जमता थका, तेमाथी जे वध्यो होय तेना लेनारा, (लूहचरगा के०) जावजीव सुधी लूखा आहारना लेनारा.(समुदाणचरगा के०) हर्ष सहित जे आहार आपे तेना लेनारा, (संसठ्ठचरगा के०) खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, (असंसठ्ठचरगा के०) अण खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, (तज्जातसंसठ्ठचरगा के०) ते जे द्रव्यें हाथ अथवा कडछी खरडी होय तेवा हाथे करी, अथवा तेवी कडछीये करी, तेज आहार आपे, तेवा आहारना लेनारा, (दिठ्ठलाभिया के०) दीठा आहारनाज लेनारा, तथा (अदिठ्ठलाभिया के०) अणदीठो आहार, तथा अणदीठो दातार, तेनी गवेषणा करनारा, (पुठ्ठलाभिया के०) तथा पुछीनेज आहारना लेनारा, (अपुठ्ठलाभिया के०) अणपुछ्या आहारना लेनारा, (भिक्खूलाभिया के०) थोडु अन्न आपे अने हेलणा करे एवा तुच्छ आहारना लेनारा, (अभिक्खूलाभिया के०) अतुच्छ आहारना लेनारा, (अन्नायचरगा के०) ज्या कोइ पण उलखे नहीं त्यां अज्ञात आहारना लेनारा, (अन्नायलोगचरगाके०) आज्ञात लोकना कुत्सित अन्नना लेनारा, (उवनिहिया के०) जे आहार पोता थकी नजीक जाणे, तेना लेनारा, (संखादत्तिया के०) दात्तिनी सख्याना करनारा, (परिमित्तपिंडवाइयाके०) प्रमाणोपेत पिंडना लेनारा, (सुद्धेसणिया के०) शुद्धएषणिक दोष रहित एवा आहारना गवेषण हार, (अंताहारा के०) अंताहारी एटले वाल, चणकादिकना आहारना गवेषनारा, (पंताहारा के०) तेज टाढु उगलुं, एवा अन्नना लेनारा, (अरसाहारा के०) हिंग जीरादिकना वघारे रहित एवा अरस आहारना लेनारा (विरसाहारा के०) जुना धान्य खावेलाना आहारना लेनारा, (लूहाहारा के०) लूक्ष आहारना लेनारा, (तुच्छाहाराके०) तुच्छआहारना लेनारा,(अंतजीवीके०) अंताहारे जीवे, (पंतजीवीके०) प्रांतआहारें जीवे, (आयंबिलिया के०) कूर, अडदना, बाकला लेइ, आयबिल सदाय करे (पुरिमड्डिया के०) सर्व काल बे पहोर दिवस वित्या पछी आहार जमे, (णिव्वगइया के०) सर्वकाल निवी करे, विगय रहित अन्न जमे, (अमज्जमसासणीणो के०)

ल प्रायस्त्रसघाती कालमासे स्वायु क्षये कालं कृत्वा धरणितलं रत्नप्रभादिकायाः पृथिव्यास्तलमतिलंघ्याऽधोनरकतलप्रतिष्ठान स्यात् ॥ ८५ ॥

॥ टीका–तेच विषयासक्ततया एतत्कुर्वतीत्येतद्दर्शयितुमाह। (एवमेवइत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तस्वभावाएव ते निष्कृपानिरनुक्रोशाबाह्यान्यतरपर्षदोरपि कर्णनासाविकर्तनादिना दंडपातनस्वभावा स्त्रीप्रधाना कामा स्त्रीकामा, यदिवा स्त्रीषु मदनकामविषयभृतासु का मेषुच शब्दादिषु इच्छाकामेषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्ना। एते च शक्रपुरदरादिवत्पर्याया कथचिद्भेदं वाश्रित्य व्याख्येयाः। तेच भोगासक्ताव्यपगतपरलोका व्यवसायायावद्वर्षाणि चतु पंचषट् सप्तवा दशवाल्पतर वा कालं भुक्त्वा भोगासक्ततयाच परपीडोत्पादनतो वैरायतनानि वैरानुबंधानप्रसूयोत्पाद्य विधाय तथा संचयित्वा सचित्योपचित्य बहूनि प्रभूततरकालस्थितिकानि क्रूराणि क्रूरविपाकानि नरकादिषु यातनास्थानेषु क्रकचपाटन शाल्मल्यवरोहणतप्तत्रपुपानात्मकानि कर्माण्यष्टप्रकाराणि बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचनावस्थानि विधाय तेनच संभारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तत्कर्मगुरवोवा नरकतलप्रतिष्ठानाभवती त्युत्तरक्रिययापादितबहुवचनरूपयेति संबंध। अस्मिन्नेवार्थे सर्वलोकप्रतीत दृष्टांतमाह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथानामायोगोलकोऽयस्पिंड शिलागोलकोवृत्तात्मशकलं बोदके प्रक्षिप्त समानसलिलतलमतिवर्त्यातिलंघ्याऽधोधरणीतले प्रतिष्ठानोभवति। अधुना दार्ष्टांतिकमाह। (एवमेवेत्यादि) यथासावयोगोलकोवृत्तत्वाच्छीघ्रमेवाधोयात्येवमेव तथाप्रकार. पुरुषजात.। तमेव लेशतोदर्शयति। वज्रवद्वज्र गुरुत्वात्कर्म तद्बहुलस्तत्करण प्रचुरस्तथा बध्यमानकर्मगुरुरित्यर्थ। तथा धूयतइति धूत प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुर। पुन सामान्येनाह। पंकयतीति पंकं पापं तद्बहुलस्तथा। तदेव कारणतोदर्शयितुमाह। वैरबहुलो वैरानु बंधप्रचुरस्तथा (पत्तियंति) मनसोऽदुष्प्रणिधान तत्प्रधानस्तथा दंभोमायया परवचन तदुत्कटस्तथा निकृतिर्मायावेषभाषापरावृत्तिश्छद्मना परद्रोहबुद्धिस्तन्मयस्तथा सातिबहुलऽतिसातिशयेन द्रव्येणापरस्य हीनगुणस्य द्रव्यस्य सयोग सातिस्तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथा ऽयशोऽश्लाघासद्वृत्ततया निंदा यानि यानि परापकारभूतानि कर्मानुष्ठानानि विधत्ते तेषु तेषु कर्मसु करचरणछेदनादिषु अयशोभाग्भवतीति। सएवभूत पुरुष कालमासे स्वायुष क्षये कालं कृत्वा पृथिव्यारत्नप्रभादिकायास्तलमतिवर्त्य योजनसहस्रपरिमाणमतिलंघ्य नर कतलप्रतिष्ठानोऽसौ भवति ॥ ८५ ॥

तेणं णरगा अतोवट्टा बाहिं चउरसा अहे खुरप्पसंठाणसठिया णिच्चंधकारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा मेदवसामंसरुहिर पूयपमलचिक्खललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कण्हा

उ केο) जन्मनां कर्मरूपकरणीने उघाडी, हेलना करतां पण समता नाव धरे. (निंदणाउ केο) कोइ निंदा करे, (खिंसणाउ केο) कोइ बीजा लोकोनी साखें हेलना करे, (गरहणाउ केο) कोइ तेना मुख अगलज हेलना करे, (तज्जणाउ केο) कोइ तर्जना करे, (तालणाउ केο) कोइ ताडना करे, (उच्चावयागामकंटगा केο) उंचा नीचा ग्रामकंटक एटले ग्रामीण लोकना वचन, पांच इंद्रियने कंटक समान, तेने सहन करे, (बावीसंपरीसहोवसग्ग केο) बावीश परिसह अने देवादिकना करेला उपसर्गादिक ए सर्वने (अहियासिज्जंति केο) मन वचन अने कायायें करी, अहियासे एटले सहन करे, (तमठ्ठआराहंति केο) साधु ते अर्थ जे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तेने आराधे, (तमठ्ठआराहित्ता केο) ते ज्ञान दर्शन चारित्ररूप अर्थ आराधिने, (चरमेहिंउस्सासनिस्सासेहिं केο) बेला उश्वास, नि श्वासे ज्ञान उपजे ते केवो ज्ञान उपजे, ते कहेछे. (अणतं केο) अतरहित, (अणुत्तर केο) प्रधान, (निव्वाघायं केο) निर्व्याघात, (निरावरण केο) आवर्ण रहित, (कसिणं केο) कृत्स्नं संपूर्ण, (पडिपुन्न केο) परिपूर्ण एवो, (केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति केο) प्रधान केवलज्ञान अने केवलदर्शन, पामे (समुप्पाडेत्तिाकेο) ते केवल ज्ञान अने केवल दर्शन उपजावीने एटले पामिने, (ततोपच्छा केο) तेवार पछी (सिज्झंतिकेο) सीजे एटले तेने सर्व अर्थनी सिद्धि थाय, (बुज्झंति केο) चउदराज लोकनु स्वरूप बुझे, (मुच्चंति केο)सर्व दु ख थकी मूकाय, (परिनिव्वायंति केο) कर्मरूप दावनलने उपशमाववे करी शीतलीनूत थाय (सव्वदुक्खाण अतकरेंति केο) सर्व दु खनो अत करे, ॥ ७२ ॥

॥दीपिका–प्रकारांतरेण पुन. साधुगुणानाह । (सेजहत्ति) तद्यथानाम केचन जगवतोऽनगारानवति । ईर्यासमिताइत्यादि सुगम । यावत्सुहुतहुताशनइव दीप्तवन्हिरिव तेजसाज्वलंतो दीप्यमाना ॥७०॥(णत्थिणति)नास्ति तेषां क्वचिस्प्रतिबंध । प्रतिबंधश्चतुर्विध । तद्यथा। अमजोइसादि । अंडकवा मयूरांडकादि क्रीडामयूरादिहेतु स्यात्तेन तत्र निबध स्यात् । पोतजे हस्त्यादौ पोतके वा शिशुत्वात्प्रतिबंध स्यात् । अथवा (अमजोइवाबोंडजोइवाइतिपावातरं) अडज शणिकादिवस्त्रं बोंडज कार्पास वस्त्रं तत्र प्रतिबंध स्यात् (उग्गहेइवा) अवगृहीतं परिवेपणार्थमुत्पाटितं नक्तपानं प्रगृहीतं नोजनार्थमुत्पाटितं तदेव । अथवा अवग्रहिकं वसतिपीठफलकादि औपग्रहिकं वा दंडकाद्युपधिजातं प्रगृहीततु रजोहरणाद्यौधिकोपधिरूपं तत्र प्रतिबंध स्यात् ।(जसंति) या या दिशमिच्छंति विहर्तुं तां तां दिशं विहरंति। किंनूता । अप्रतिबद्धा शुचिर्नूतानावशुद्धिमत श्रुतिनूतावा प्राप्तसिद्धांता· लघुता अल्पोपधयोऽगौरवाश्च अनल्पमंपावद्धगमा.न विद्यते आत्मन सवधी ग्रथोहिरण्यादिर्ये

बहुलास्तथा व्यपगतोग्रहसूर्यचंद्रज्योति पथोयेषां ते तथा । पुनरप्यनिष्टापादनार्थं तेषा मेव विशेषणान्याह् । (मेदवसेत्यादि) डुष्कृतकर्मकारिणा ते नारकास्तडुखोत्पादनार्थैव नूतानवति । तद्यथा । मेदवसामांसरुधिरपूयादीना पटलानि सर्वास्तैर्लिप्तानि पिच्छिलीकृ तान्यनुलेपनतलान्यनुलेपनप्रधानानि तलानि येषा ते तथा अशुचयोविष्ठासृक्क्लेदप्रधान त्वादतएव विश्रा कुथितमांसादिकल्पकर्दमावलिप्तत्वात् । एव परमडुर्गंधा कुथितगो मायुकलेवरादपि असह्यगंधास्तथा कृष्णाग्निवर्णानारूपत । स्पर्शतस्तु कर्कश कठिनोवज्र कंटकादप्यधिकतर स्पर्शोयेषा ते तथा किंबहुनाऽतीव डु खेनाधिसह्यते । किमिति । यत स्ते नरका पचानामप्यींद्रियार्थानामशोजनत्वादशुनास्तत्रच सत्वानामशुनकर्मकारिणामु दग्रदंडपातिनाच वज्रप्रचुराणां तीव्राअतिडु सहवेदनाः शारीरा प्राडुर्नवति ॥ ६६ ॥

णोचेव णरएसु नेरइया णिद्दायं तिवा पलायंतिवा सूइवा रतिवा धीति वा मतिवा उवलन्नते तेणं तञ उङ्कल विउल पगाढं कडुयं कक्कस चंमं डुक्क डुग्गं तिव्वं डुरुहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुन्नवमाणा विहरति ॥६७॥

अर्थ–(णोचेवणरएसुनरइया के०) पणते नरकने विषे जे नारकी जीवोछे ते एटलावानां पामता नथी शुं नथी पामता ? तोके (णिद्दायतिवा के०) निद्रा नथी पामता, (पलायंतिवाके०) घणी निद्रा जे प्रचला ते पण नथी पामता, (सूइवाके०) श्रुति एटले विशेष ज्ञाननी स्मृति तेपण नथी पामता, (रतिवा के०) चित्तने विषे रति पामता नथी, (धतिवा के०) विशेष धैर्य धृतिने पण नथी पामता, तथा (मतिवा के०) बुद्धिने पण (उवलनंते के०) पामे नहीं (तेणतञउङ्कजं के०) ते नारकी ते नरकने विषे प्रवर्त्तमान थका उज्वली केतां तीव्र उत्कृष्ट (विउलं के०) विस्तीर्ण (पगाढ के०) आकरी, (कडुयं के०) कडवी, (कक्कस के०) कर्कश, (चम के०) रौद्र, (डु क्कं के०) डु खनुं कारण, (डुग्गंतिव्वं के०) तीव्र डुर्ग, तीक्ष्ण, (डुरुहियासं के०) डु खे सहन करवा योग्य (णेरइयावेयण के०) नरकने विषे नारकीने वेदनाने (पच्चणुन्नवमाणाविहरंतिके०) नोगवता थका विचरेछे काल अतिक्रमण करेछे ते उपर दृष्टात कहेछे ॥ ६७ ॥

॥ दीपिका–(णोचेवत्ति) तेषु नरकेषु वेदनाजिनूता न निद्रायंते न प्रचलायते ईषन्निद्रामपि नगछतीत्यर्थ । श्रुतिंवा रतिंवा धृतिंवा मतिंवा नोपलनते ते नारकास्तत्र उज्वला मुत्कटा विपुला प्रगाढां कटुका कर्कशा चडा डु खरूपा तीव्रा डुरधिसह्यां नरकवेदना प्रत्यनुनवमानास्तिष्ठंति ॥ ६७ ॥

तत्यपि कंबलवस्त्रादिधारणाजाव' अनुपानस्कता पाडुकाद्यजाव' जूमिशयनं फलकशयनं काष्ठशयन केशलोचः ब्रह्मचर्यधारण। निक्षार्थं परगृहप्रवेश. लब्धमानापमानानि हेजन हिंसागर्हातर्जनताडनानि उच्चावचग्रामकंटका. शुजाशुजाइंडियविषयारागदेषरहिततया सोढव्याइत्यर्थ. । द्वाविंशतिः परीषहा. । देवादिकृताउपसर्गाश्चध्यास्यंते यदर्थमेताडु क्रा. क्रिया क्रियंते तमर्थं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्राख्यमाराध्य चरमरुच्छ्वासनि.श्वास प्रातसमयं यावदित्यर्थ. । ततोऽनंतमनुत्तर निर्व्याघातं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनमाप्नु वति तत. सिद्ध्यंति मोक्षमाप्नुवतीति ॥ ७३ ॥

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण साधुगुणान् दर्शयितुमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम केचनोत्तमसंहननधृतिबलोपेताश्चनगाराजगवतोजवतीति । ते पचनि· समितिजि समि ता' । एवमित्युपदर्शने । औपपातिकमाचारांगसंबंधि प्रथममुपांगं । तत्र साधुगुणा प्रबंधे न व्यावर्ण्यंते तदिहापि तेनैव क्रमेण इष्टव्य मित्यतिदेश । यावत्कृतमपनीतं केशश्मश्रुलोम नखादिक यैस्ते तथा सर्वगात्रपरिकर्मविप्रमुक्तानिष्प्रतिकर्मशरीरास्तिष्ठंतीति॥७०॥७१॥७२ तेचोग्रविहारिण प्रव्रज्यामनुपाल्य, बाधारूपे रोगातंके समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा जक्तप्रत्याख्या न विदधति । किंबहुनोक्तेन यत्कृतेऽयमयोगोलकवन्निरास्वादः करवालधारामार्गवद्दुरध्य वसाय श्रमणजावोऽनुपाल्यते तमर्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यमाराध्य व्याहतमनं तं मोक्षकारण केवलज्ञानमाप्नुवति केवलज्ञानावाप्तेरूर्ध्वं सर्वडुःखविमोक्षलक्षण मोक्ष मवाप्नुवतीति ॥ ७३ ॥

एगच्चाए पुणएगे जयतारो जवति अवरेगंपुण पुव्वकम्मावसेसेण कालमा से कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो जवंति तंजहा म हड्डिएसु महजुत्तिएसु महापरिक्कमेसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुजावे सु महासुखेसु तेण तत्थ देवा जवति महड्डिया महजुत्तिया जाव महासुखा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंजियजुया अंगय कुंमल मट्ठगंमयल कन्न पीढधारी विचित्तहत्थाजरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगंधपवर वत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा जासुरबोंदीपलंबवणमाल धरा दिव्वेण रूवेण दिव्वेण वन्नेण दिव्वेणं गंधेण दिव्वेण फासेण दिव्वेणं संघा एण दिव्वेणं संठाणेण दिव्वाए इड्डिए दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए पजाए दिव्वाए गयाए दिव्वाए अच्चाए दिव्वेण तेयेण दिव्वाए लेसाए दसदिसाउ उज्जो

॥ टीका—एव तावदयोगोलयापाणदृष्टांत शीघ्रमधोनिमज्जनार्थप्रतिपादक प्रदर्शितोऽधुना शीघ्रपातार्थप्रतिपादकमेवापर दृष्टातमधिकृत्याह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथा नाम कश्चिद्वृक्ष पर्वताग्रे जातोमूले छिन्न शीघ्रं यथा निम्न पतति एवमसावप्यसाधुकर्मकारी तत्कर्मैवातेरित शीघ्रमेव नरके पतति ततोप्यु दृत्तोगर्नाङ्गर्नमवश्य याति न तस्य किंचित्त्राणं नवति यावदागामिन्यपि काले डुर्लनधर्मप्रतिपत्तिर्नवतीति। साप्रतमुपसहरति (एसठाणेइत्यादि) तदेतत्स्थानमनार्य पापानुष्ठानपरत्वाद्यावदेकातमिथ्यारूपमसाधु। तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विनगोविनाग स्वरूपमेव व्याख्यात ॥ ६० ॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्म पक्कस्स विनंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाइणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवति तंजहा अणारंना अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया धम्मिठा जाव धम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरति सुस्सीला सुव्वया सुप्पडियाणदा सुसाहु सव्वतो पाणातिवायाउ पडिविरया जावजीवाए जावजेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अवोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जति ततोविपडिविरता जाव जीवाए॥६ए

अर्थ—अथ हवे बीजो स्थानक धर्म पक्षनो विचार कहिये ठेये आजगत् माहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइएक मनुष्य एवाठे ते कहेठे निरारनी, नि परिग्रही धार्मिक धर्मानुगामि, धर्मज जेने इष्टठे यावत् धर्मेकरी वृत्ति आजीविका करता थका विचरे ठे सुशील, सुव्रत, रूडा आनंद पामनारा, सुसाधु, तथा सुखसाध्य पदवीरूप गुणे करी विराजमान, ते पुरुष सर्वथा प्राणातिपात थकी निवृत्या, जावजीव सुधी यावत् जे बीजा, तथा प्रकारना पापकारी, सावद्यकर्म अबोधिना करनार बीजा प्राणीने परितापना करनार कार्य करिये, तेवा कार्य थकी पण निवृत्या ठे ॥ ६ए ॥

दीपिका—अथापरस्य द्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विनंग स्वरूपमेवमाख्यायते। यथा प्राच्यादिदिक्षु मध्येऽन्यतरस्या दिशि सति विद्यते केचिन्मनुष्यानवति। तद्यथा अनारनाअपरिग्रहाधार्मिकाधर्मानुगाधार्मिष्ठाधर्मेणैव वृत्तिं कल्पयतोविहरति तथा सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदा सुसाधव सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरतायावत्परिग्रहाद्विरता। ये चान्ये तथाप्रकारा सावद्याअबोधिकारिण कर्मका कर्महेतव परप्राणपरितापनकरा आरनाक्रियंते ततोविरता ॥ ६ए ॥

॥ टीका—अथापरस्य द्वितीयस्य विनगोविनाग स्वरूपमेव वक्ष्यमाणनीत्या व्याख्या

प्राणातिपात थकी, अत्यंत पणे विरम्याछे विरक्त थयाछे, जाव जीव सुधी एकेक प्राणी जे पृथिव्यादिक ठार तेने हणवा थकीअत्यंत विरम्या नथी उंसख्या नथी, एटले एक सूक्ष्म प्राणातिपात थकी अविरता इत्यादिक सर्वपद, जेवां अविरतने आलावे कह्यांछे, तेवा आहीं पण जाणीलेवां, परतु एटलुं विशेषछे जे, एक पक्षे विरति, अने एक पक्षे अविरति, (जावजेयावन्ने के०) यावत् जेकाइ अनेरा तथाप्रकारना पूर्वोक्त सावद्य अबोधिना कारण एवा कर्म रूप व्यापार, बीजा जीवोने परितापना करनार नीपजावीयें, ते थकी पण एक पक्षें विरति, अने एक अपक्षे अविरति, ते विरताविरत कहियें.॥७५॥

॥ दीपिका–अथापरस्य तृतीयस्थानकस्य मिश्रकाख्यस्य विनंग स्वरूपमाख्यायते । (इहखलु इत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यां युतं नवति तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । यथा बहुषु गुणेषु मध्यपतितोऽल्पदोषोन स्वरूपं लनते कलंकइव चंद्रिकाया बहूदकमध्यपतितोमृत्खंडावयवोन जलं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्मे, ततोयं मिश्रपक्षोधर्मपक्षएवेति स्थित । इह जगति प्राच्यादिदिक्षु एके शुनकर्माणो मनुष्या स्यु । तद्यथा अल्पेछा अल्पारंनाधार्मिकवृत्तय शीला सुव्रता सुप्रत्यानंदा साधव स्यु । तेच एकस्मात् स्थूलात् संकल्पकृतात्प्राणातिपातान्निवृत्ता । एकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिविरता । एव शेषाण्यपि व्रतानि वाच्यानि । (जावजेयावन्नेत्ति) ये चान्ये सावद्या कर्मारंनास्तेन्यएकस्मायंत्रपीडानिर्लांछनरूपीवलादेर्निवृत्ता । एकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताः ॥ ७५ ॥

॥ टीका–अथापरस्य तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विनंग समाख्यायते । (इहखलुइत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यामुपेतं तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । तद्यथा । बहुषु गुणेषु मध्यपतितोदोषोनात्मानं लनते कलंकइव चंद्रिकायास्तथा बहूदकमध्यपतितोमृल्लकलावयवोनोदक कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्ममिति स्थित । धार्मिकपक्षएवायं । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु एके केचन शुनकर्माणोमनुष्यानवतीति । अल्पा स्तोका परिग्रहारंनेष्विछात करणप्रवृत्तिर्येषा ते तथा एवनूताधार्मिकवृत्तय प्राय सुशीला सुव्रता सुप्रत्यानदा साधवोनवतीति । त एकस्मात् स्थूलात्संकल्पकृतात् प्रतिनिवृत्ताएकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिनिवृत्ताएव शेषाण्यपि व्रतानि संयोज्यानि । एतस्मादपि सामान्येन निवृत्ताइत्यतिदिशन्नाह । (जेयावन्नेइत्यादि) । ये चान्ये सावद्यानरकादिगमनहेतव कर्मसमारंनास्तेन्यएकस्मायंत्रपीडननिर्लांछनरूपीवलादेर्निवृत्ताएकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताइति ॥ ७५ ॥

सछचरगा असंसछचरगा तज्जातसंछचरगा दिछलाभिया अदिछला भिया पुछलाभिया अपुछलाभिया भिक्खलाभिया अभिक्खलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखादत्तिया परिमित पिंम्वाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमछिया विग इया अमज्जमंसा ससिणो णोणियामरसभोइ ठाणाइया पडिमाठाणा इया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दमायतिया लगंमसाइ णो अप्पाउडा अगत्तया अकंमुया अणिठुहा धुतकेसमसरोमनहा सवगा यपडिक्कम विप्पमुक्का चिठंति॥१३॥तेणं एतेण विहारेणं विहरमाणा बहुइ वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नसिवा अणु पन्नसिवा बहुइभत्ताइ पच्चक्खाइ पच्चक्खाइत्ता बहुइ वासाइं अणसणाइ छेदिति अणसणाइ छेदित्ता जस्सठाएकीरति नग्गभावे मुम्भावे अ ण्हाणभावे अदत्तवणगे अछतए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कछसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धाअलद्ध माणाअमा णणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उ च्चावयागामकंटगा बावीसंपरीसहो वसग्गअहियासिज्जति तमठंआरा हति तमठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंत अणुत्तरं निवाघातं निरावरणं कसिणं पडिपुन्नं केवलवरणाणदसणसमुप्पाडेति समुप्पाडेतित्ता ततोपच्छा सिज्झंतिबुज्झंति मुच्चंति परिणिवायति सवायं ति सवदुक्खाण अंतकरेति ॥ १३ ॥

अर्थ—वली बीजे प्रकारे साधुना गुण देखाडे छे ते यथा नाम एवी संभावनायें जे म कोइएक उत्तम सघयणवंत, महाबलें करी सहित अणगार भगवंत होय, ते केवा होय? तोके इर्या समितिये समिता, भाषासमितियें समिता, एटले सत्यनिरवद्य भा षाना बोलनार, एषणासमितियें समिता, एटले बेंतालीश दोषरहित, आहारनी गवेष णाना करनार, (आयाणभंममत्तणिरकेवणासमितियेंसमिता) एटले माटीनु भाजन, तथा मात्रा, अने वस्त्रादिक ने जयणाये पुंजी प्रमार्जीने मूकनारा, (उच्चारपासवणखेलसिंघाण

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं सवरवु, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप वे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड्ग, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोक्खके०) कर्म थकी मूकाववु ते जाणवाने विषे (कुसला के०) माह्याछे, (अस हेज्ज के०) कोइ कष्ट पडया थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइए हिके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, म होरगादिक, (देवगणेहि के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निग्रथना एटले नगवतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) च लावी नशके, मोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निग्रथना प्रवचनने विषे नि शकित एटले सदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वाछे नही, (निव्वितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे सदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगछारहित होय, (लद्धहा के०) सूत्रसानलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयहा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियहा के०) सशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कस्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियहा के०) वारवार विशेषें पूछीने निश्चित कस्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयहा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धास्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अछिमिंजपेम्मा णुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिजा जे धातु विशेष ते नगवतना सिद्धां तरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मव्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंतो! (निग्गं थेपावयणेके०) निग्रथ एटले साधु सबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमठेके०) एज आत्माने अर्थ उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे (सेसेअणठे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे एवी कथा करे, एरीतें निग्रंथना प्रवचनने [illegible] के०) निर्मल स्फाटिकना जेवु चित्तछे जेनुं, (अवयुप [illegible] घरना बारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

धु पण, व्रतनार निर्वाह करवाने सामर्थ्यवान् धर्मधुरंधर जाणवो, सिंहनी पेठें डुर्द्धर्ष एटले सिंह जेम बीजा मृगादिक जानवरोने डुर्द्धर्ष एटले तेनाथी परानवाये नही, तेम साधु पण परीसह उपसर्गादिके करी परानवाये नही मदर एटले मेरुपर्वतनी पेठें अप्रकप, जेम मेरुपर्वत कपायमान न थाय, तेम साधु पण परीसह अने उपसर्गादिके कंपायमान न थाय. समुड्नी पेठें गंनीर, एटले समुड् जेम गनीर होयठे, तेम साधु हर्ष शोकादिक कारण रहित थका गंनीर होय. चड्मानी पेठें सोम लेश्यावत एटले चड्मा जेम शीतल प्रकृतिवत होय, तेम साधु सर्वकाल मननो उद्धार करनारो, महा शीतल प्रकृति सहित होय, सूर्यनी पेठें दीप्ततेज एटले सूर्य जेम तेजवत होयठे, तेम साधुपण तपश्चर्याये करी तेजवत प्रतापवत देखायठे साचा सुवर्णनी पेठें जातिरूप सतेज, एटले सुवर्णने जेम मेल न लागे, तेम साधुने पण कर्म मेल नलागे वसुंधरानी पेठें सर्व स्पर्श सहे एटले पृथ्वी जेम काटा, काकरी, अग्न्यादिकना सर्व स्पर्श सहन करे, तेम साधु पण क्षमागुणें सहित थको, टाढ तापादिकना स्पर्शने सहन करे सुहुयहुतासणोविव तेयसाजलता एटले रुडे ड्व्ये घृतादिक सींचता जेम हुताशन जे अग्नि ते सदा ते यसा एटले तेजवत देखायठे जाज्वल्यमान देखायठे तेम,साधु पण ज्ञान तेजे करी सर्वकाल तेजवत देखायठे. ॥ ७० ॥ (णत्थिणतेसिंनगवताणके०) ते नगवत महिमावत साधुने नथी कहविपडिबंधेनवइ एटले क्यांहि पण प्रतिबंध नथी सेपडिबधे चउविहेपसत्ते एटले ते प्रतिबंध चार प्रकारनो कह्योठे, ते कहेठे (अंमएइवा के०) जे अंम थकी उपजे एवा पक्षी कीडा मयूरादिक ते आश्री प्रतिबंध नथी, (पोयएइवा के०) पोत ते हस्त्यादिकना बालक ते आश्रित प्रतिबंध नथी, उग्गहेइवा के०) उग्रह एटले वस्ति पीठ फलगादिक तेनो पण प्रतिबंध नथी, (पग्गहेइवा के०) उंधीक उपग्रहिक उपकरण तेनिमित्त प्रतिबंध नथी, (जन्नंजन्नदिसंइछंति के०) जे जे दिशाये विहार करवा वाठे, (तन्नतन्नंदिस अप्पडिबद्धा के०) ते ते दिशाये अप्रतिबंध पणे विचरे (सुइनूया के०) शुचिर्नूत निर्मलातर आत्मावत (अप्पलहुनूया के०) अल्प लघुनूत एटले अल्प परिग्रही थका, (अप्पग्गंथाके०) अल्प ग्रंथवत बहुश्रुत, (सजमेणतवसा के०) संयम अने तपें करी (अप्पाणनावेमाणे के०) पोताना आत्माने नावता थका, (विहरंति के०) विचरे.॥७१॥ (तेसिण नगवताण के०) ते नगवत एटले साधुने, (इमाएतारूवा के०) एवा ए तद्रूप (जायामायावित्तिहोछा के०) संयमयात्रा एटले सयमनो निर्वाह, तेने अर्थे, मात्रावृत्ति प्रमाणोपेत नातपाणी लेवु, ते तपे करी निर्मल थाय (तजहा के०) ते कहेठे एक उपवास, बे उपवास, त्रण उपवास, चार उपवास, पाच उपवास, ठ उपवास, सात उपवास, अर्द्धमासना उपवास, एक मास क्षमण, बे मास

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवु स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्यु. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्ग साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्यु. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ ७७ ॥

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । (सेजहत्ति) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवा जीवाद्युपलब्धपुण्यपापा । इह प्राय सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्र तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांत रविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशला (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिभिर्नैर्ग्रंथात्प्रवचनमताद नतिक्रमणीयाअकंपनीया (इणमेत्ति) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था (अस्थिमिंजा) अस्थिमध्य यावत्प्रेमानुरागरक्ता दर्शनेत्यर्थ नावितमतयइत्यर्थ । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयायां स्त्रियं रम्यां पश्यति तातामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्त राज्ञोक्तं गछत स्वस्थान यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पचपैर्दिनैर्नलभे तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिका. स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृप । नचोपलभ्यते चौरस्तत पंचमदिने ताम्बूलपुष्पादि गृह्णन् रात्रौ नृपेण दृष्ट परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हत स । तत समर्पितं यद्धनं यस्य सत्क स्त्रियोपि। तत्रैका कामिनी अत्यंतमोपर्धेर्नावितानेछति स्वपतिमपि तत प्राज्ञैरुक्त अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदासौ तदाग्रहं मुंचति तत स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि नक्ष्यति तथा स्नेहायाति सर्वास्थिपाने च गत सर्वोपि चौरस्नेह अनुरक्तानून्निजे नर्तरि। तदेव यथा सात्यत नाविता नेछत्यपर तथा श्रावकाअपि नितरा नाविता शासने नशक्यतेऽन्यथाकर्तु अत्यंतं सम्यक्त्वौषधनावितत्वादिति । श्रावका किंनूताः । (अयमाउसोत्ति) इदमायुष्मन् जैन शासन अर्थस्तत्त्वनूतं अयमेव परमार्थ. शेषोऽनर्थइति चिंतयंत । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषध सम्यक्त्वमनुपालयंत (उसियफलिहत्ति) उच्छ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थ । (अवगुयडुवारत्ति) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलानान्नकुतोपि नयं कुर्वतीत्युद्घाटितद्वारा (अचियत्तत्ति) अचियत्तोऽननिमत्तोंऽत पुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुछनेन औषधनेषजे

मद्य मांसना परित्यागी होय, (णोणियामरसन्नोइ के०) सर्व काल अत्यंत सरस आ हार लीये नहीं, (ठाणाइया के०) सर्वकाल कायोत्सर्गना करनारा. (पडिमठाइया के०) प्रतिमाना वहनारा, (उक्कडआसणिया के०) एक स्थानके केटलो एक काल निवृत्तिये रहे,(णिसज्जियाके०) निषेधआसनना बेसनारा एटले निषेध पदार्थयुक्तपृथवीपर बेसे, (वीरासणिया के०) वीरासने करी रहे, बाजोठ उपर बेशी, पग नीचामूके, पठी बाजोठ दूर करीने तेज आसने बेसे (दंमायतिया के०) दंमनी पेठें लांबो थयो थको रहे. (लगमसाइणो के०) वाका काष्ठनी पेठें शयन करे, मस्तक, पानी अने वासो, तेने नूमीलागे, परंतु बीजे नलागे (अप्पाउडाअगत्तया के०) वस्त्र रहित, वस्त्ररूप प्रावरण न राखे, (अकंमुयाके०) शरीरे खाजी नखणे, (अणिठुहाके०) मुखनुं थूक परठवे नहीं, (धुतकेसमसरोमनहाके०) माथाना केश, गुह्यस्थानकना केश, दाढीमुठना केश, काखली ना केश, शरीरना रोम, तथा नख, समारे नही, (सव्वगायपडिक्कमविप्पमुक्का के०) सर्व गात्र एटले शरीरनी शुश्रूषा करवा थकी विप्रमुक्त, एटले मूकाणा थका, (चिठंतिके०) रहे. ॥७४॥ (तेणएतेणविहारेणविहरमाणा के०) तेसाधु एवा उग्र विहारे करी विचरता थ का (बहुश्वासाइ के०) घणाएक वर्ष (सामन्नपरियागपाउणंति के०) चारित्र पर्याय पाले एवो चारित्र पाली (बहुबहुआबाहंसि के०) रोगादिकनी आबाधा (उपन्नसिवा के०) उपनी, तथा (अणुपन्नसिवा के०) अणउपने ठते (बहुइंनत्ताइंपच्चारकाइंके०) घणानात पाणी पच्चरके (पच्चरकाइत्ता के०) ते पच्चरकीने (बहुइंवासाइंअणसणाइंठे दिंति के०) घणा काल सुधी अनशन पाले,(अणसणाइंठेदित्ता के०) ते अनशन पाली ने किंबहुना शुजाशुकहेवायी? (जस्सठाएकीरतिके०) जे साधुधर्मने अर्थे आधर्म एवोके, लोहगोलकनी पेठें निरास्वाद खड्ग धारानी पेठें डुःसाध्य,एवो चारित्र पाले (नग्गनावेके०) नग्नपणानो नाव एटले प्रमाणोपेत वस्त्रपहेरे, (मुंमनावे के०) पांचइंद्रियो तथा चार कषायनो संवर करे, (अण्हाणनावे के०) अघोल स्नान नो त्यागनाव करे, (अदंतव णगे के०) दातण करवानो परिहार करे, (अठत्तएके०) मस्तके ठत्र धरावे नहीं, (अणोवाहणए के०) पगरखानो त्याग करे, (नूमिसेज्जा के०) नूमिकाने विषे शय न करे, (फलगसेज्जा के०) पाट, पाटीया उपर शयन करे, (कठसेज्जा के०) काष्ठ, पाषाण उपर शयन करे (केसलोए के०) मस्तके केशनो लोच करे, (बनचेरवासे के०) ब्रह्मचर्यने विषे वास करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यने पाले, (परघरपवेसे के०) निक्षा ने अर्थे पारका घरने विषे न्रमण करे, (लद्धाअलद्ध के०) त्यां परघर न्रमण करतां कदाचित् निक्षानो प्राप्तिथाय, अथवा नथाय, तोपण समता नाव धरे, (माणाअ माणणाउ के०) मान, अथवा अपमान, देता थका पण समता नाव धरे (हीलणा

नि स्फाटिकानीव स्फाटिकानि अंतःकरणानि येषांते तथा । एतडुक्तं नवति। मौनींद्र दर्शनावाप्तौ सत्यां परितुष्टमानसाइति । तथा अप्रावृतानि द्वाराणि यैस्ते तथा उद्घाटित गृह द्वारास्तिष्ठति सद्दर्शनलानेन न कस्यचिद्विन्यति शोननमार्गपरिग्रहे नोद्घाटितशिरसो विश्रब्ध तिष्ठंतीति अचिंतयन्तोऽनभिमतोऽतःपुरप्रवेशवत्परगृह द्वारप्रवेशोऽन्यतीर्थिकप्र वेशोयेषां ते तथा अनवरतं श्रमणानुयुक्तविहारिणोनिर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेनाशनादिना तथा पीठफलकशय्यासंस्तारकादिनाच प्रतिलानयंतस्तथा बहूनि वर्षाणि शीलव्रतगुणव्रत प्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मान नावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ तदेव ते परमश्रावकाः प्रनूतकाल मणुव्रतशिक्षाव्रतानुष्ठायिनः साधूनामौषधवस्त्रपात्रादिनोपकारिणः संतोयथोक्तं यथाशक्ति सदनुष्ठान विधायोत्पन्ने वा कारणेऽनुत्पन्नेवा नक्तं प्रत्याख्यायालोचितप्रतिक्रांता समाधि प्राप्ताः संत कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवेषूत्पद्यंतइति । एतानि चाभिगतजीवाजी वादिकानि पदानि हेतुहेतुमद्भावेन नेतव्यानि । तद्यथा यस्मादभिगतजीवास्तस्माडुपल ब्धपुण्यपापा । यस्माडुपलब्धपुण्यपापास्तस्माडुच्छ्रितमनसः । एवमुत्तरत्रापि एकैकं पदंत्य जन्निरेकैक चोत्तर गृह्णन्निर्वाच्यं । तेच परेण पृष्टाअपृष्टावाएतदूचुः । तद्यथाऽयमेव मौ नींद्रोक्तोमार्ग सदर्थ । शेषस्त्वनर्थोयस्मादेव प्रतिपद्यते तस्मात्ते समुच्छ्रितमनस संतः साधुधर्मं श्रावकधर्मं च प्रकाशयंतो विशेषेणैकादशोपासकप्रतिमाः स्पृशंतो विहरतोऽष्टमी च तुर्दश्यादिषु पोषधोपवासादौ साधून् प्रासुकेन प्रतिलानयति पाश्चात्ये च कालेसंलिखि तकाया संस्तारकश्रमणनाव प्रतिपद्य नक्तं प्रत्याख्यायायुष क्षये देवेषूत्पद्यंते । ततोपि च्युता सुमानुषनाव प्रतिपद्य तेनैव नवेनोत्कृष्टत सप्तस्वष्टसु नवेषु सिध्यंतीति । तदे तत्स्थानं कल्याणपरंपरया सुखविपाकमिति कृत्वाऽर्यमिति । अयं विनंगस्तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्याख्यातइति. ॥ ७७ ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरइं पडुच्च पंमिए आहिज्जइ विरया विरइं पडुच्च बाल पंमिए आहिज्जइ तत्थणं जासा सवतो अविरइ एसठा णे आरंनठाणे अणारिए जाव असवडुःखप्पहीणमग्गे एगंतमिछे अ साहू तत्थणं जासा सवताविरइ एसठाणे अणारंनठाणे आरिए जा व सवडुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तत्थणं जासा सवउ विरया वि रई एसठाणे आरंनणारंनठाणे एसठाणे आरिए जाव सवडुक्खप्पही णमग्गे एगंतसम्मे साहू ॥ ७८ ॥

अर्थ—हवे ए त्रणे स्थानकनें संक्षेपें करी सविशेष कहेछे.-(अविरइंपडुच्च के०)

पां तेऽनात्मग्रंथाइति वा॥७१॥तेषां साधूनां भगवतां (इमाए) तद्रूपायात्रामात्रा वृत्ति संयम यात्राप्रमाणाजीविकाऽभवत्। तद्यथा। चतुर्थभक्तमेकोपवास पष्ठभक्तं यावत्षण्मासिकं। अथच (उक्खित्तचरयत्ति) उत्क्षिप्त स्वकार्याय पाकभाजनादुद्धृत तदर्थमभिग्रहतश्चरति तद्गवेषणाय गच्छंतीति उत्क्षिप्तचरका। (निक्खित्तचरयत्ति) निक्षिप्तभाजनादनुद्धृतं तदर्थमभि ग्रहतश्चरति तद्गवेषणाय गच्छतीति निक्षिप्तचरका। (उक्खित्तनिक्खित्तचरयत्ति) पाकभा जनाडुत्क्षिप्त तत्रैवाऽन्यत्र वा स्थाने यदन्न तदर्थमभिग्रहवतश्चरति। अंतेन प्रांतेन रू क्षेण भक्तादिना चरति ये ते तथा समुदानेन भिक्षया चरतीति (ससठ्ठेन) खरटितेन हस्तादिना दीयमानं संसृष्टमुच्यते उक्तविपरीतमसंसृष्ट तेन चरति (तज्जायत्ति) तज्जातेन देयद्व्याविरोधिना यत्संसृष्ट हस्तादि तेन चरति ते तथा। (दिठ्ठलाभियत्ति) दृष्टस्यैव भक्तादेर्लाभः अदृष्टस्यापकवरकादिमध्यान्निर्गतस्य श्रोत्रादिभि· कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभस्तेन चरति ये ते तथा। (पुठ्ठलाभियत्ति) पृष्टस्यैव हे साधो! किंते दीयते इत्यादिप्रश्नेन योलाभ· सयेषामस्ति ते तथा। एवमपृष्टलाभिकाविपरीता। भिक्षेव भिक्षा तु छमवज्ञातं वा तल्लाभोयेषामस्ति ते तथा अभिक्षालाभिका विपरीता.।अज्ञातचरकाअज्ञा तगृहेषु चरतीत्यभिग्रहवत· अन्न भोजन वा ग्लायंति अन्नग्लायिकास्तेच अभिग्रहविशेषा त्प्रातरेवान्नं गृण्हति(उवणिहया) उपनिहितं यथाकथंचिदासन्नीभूतं तेन चरति ये ते उपनि हितका, सख्याप्रधानादत्तयोयेषां ते तथा।प्रातरेवग्रण्हंभक्तादि(परिमियत्ति) परिमित पिंड पात अर्धपोषादिलाभोयेषामस्ति ते तथा।(सुध्देसणिया) शुद्धेषणा. शुद्धस्य वा निर्व्यंजन स्य कूरादेरेषणा येषामस्ति ते अतप्रांतवल्लवणकादि सआहारोयेषां ते तथा। विरसं नीरसं शीतलीभूतं रूक्षाहारा. (अंबिलिया) आचाम्लं ओदनकुल्मापादि तेन चरतीति। निर्विकृति का. घृतादिविकृतित्यागिन अमद्यमासाशिन मद्यमास नाश्नंतीति। (नोनियागत्ति) ननित्यं रसभोजिन (नेसज्जीया) निषद्यायुतायां भूमौ उपविशन तथा चरतीति नैषद्यका। वीरा सनं सिंहासननिविष्टस्य भून्यस्तपादस्य सिंहासनापनोदे सति यादृशमवस्थान तद्यस्यास्ति सवीरासनिक (दंडायतिया) दंडस्येवायतमायामोयेषां ते दडायतिका। लगमं वक्रका ष्ठं तद्वत् शेरते ये ते लगंमशायिन पार्श्विका शिरश्च पृष्टमेव वा भूमौ लगति तथा शयन कुर्वंति आतापकाआतापनाग्राहिण (अप्पाउडा) अप्रावृतां. प्रावरणवर्जका (अगंडु या) अकडूयका (अनिठ्ठहा) अनिष्ठीवना (धुतमससत्ति) धूतानि भीतिकर्मतया त्य क्तानि केशश्मश्रुरोमाणि शिरोजकूर्चकक्षादिलोमानि यैस्ते तथा सर्वशरीरपरिकर्मणा रहि ताइत्यर्थः॥७२॥(तेणत्ति) ते साधवएव विहृत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायमनुपाल्य (आ बाहंसत्ति) रोगातंके उत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तप्रत्याख्यान कुर्वंति। कि बहुना यत्कृते क्रियते नग्नभावोमुंडभावश्च (अण्हाणगे) स्नानाभाव. अदंतधावन अछत्रक।शरसि आतपे प

प्रतीत्य पापाड्डीन पंडितः परमार्थज्ञोवेत्येवमाधीयते व्याख्यायते तथा विरताविरतिं चा श्रित्य बालपंडितइत्येतत्प्राग्वदायोज्यमिति । किमित्यविरतिविरत्याश्रयेण बालपंडित्या पत्तिरित्याशंक्याह् । तत्थणमित्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु येय सर्वात्मना सर्वस्मात् अविरति र्विरतिपरिणामाभाव । एतत्स्थानं सावद्यारंभस्थानमाश्रयस्तदाश्रित्य सर्वाण्यपि कार्याणि क्रियंते । यतएवमतएतदनार्यस्थान नि शूकतया यत्किंचनकारित्वाद्यावदसर्वज्ञ खप्रक्षीण मार्गोयं तथैकांतमिथ्यारूपोसाधुरिति । तत्र चेय विरति सम्यक्त्वापूर्विका सावद्यारंभा न्निवृत्ति सावद्यानुष्ठानरहितत्वात्संयमस्थान तत्र चैतत्स्थानमार्यस्थानं । आराद्यातं स र्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यं तथा सर्वज्ञ खप्रक्षीणमार्गोऽशेषकर्मक्षयपथस्तथैकांत सम्यग्भूत । एतदेवाह् । साधुरिति । साधुभूतानुष्ठानात्साधुरिति । तत्रच येयं विरताविरतिरभिधीयते सैव मिश्रस्थानभूता तदेव तदारंभरूपस्थानमेतदपि कथंचिदार्यमेव पारंपर्येण सर्वज्ञ ख प्रहीणमार्गस्तथैकांतसम्यग्भूत साधुश्चेति तदेवमनेकविधोयमधर्मपक्षोधर्मपक्षस्तथा मि श्रपक्षश्चेति सक्षेपेणाभिहितपक्षत्रयसमाश्रयणेन ॥७८॥

एवमेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअवतरंति तंज हा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव तत्थणं जे से पढमठा णस्स अधम्मपरकस्स विभंगे एवमाहिए तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवठाइं पावाडुयसयाइ भवंतीति मरकाइं तंजहा किरियावाईणं अकिरियावाई ण अन्नाणियवाईण वेणइयवाईणं तेवि निव्वाणमाहंसु तेवि परिमोरक माहंसु तेवि लवंति सावगा तेवि लवंति सावइत्तारो ॥ ७९ ॥

अर्थ-(एवमेव के०) एप्रकारे (समणुगम्ममाणा के०) अन्य बीजा जे मार्ग, अ नेक उन्मार्गछे ते सर्व, (इमेहिंचेवदोहिठाणेहिसमोअवत्तरंति के०) ते निश्चे थकी ए वे स्थानकने विषे अवतरेछे समायछे (तंजहा के०) ते बे स्थानकनां नाम कहेछे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्म स्थानक, बीजु अधर्म स्थानक, (उवसंतेचेवअणु वसंतेचेवके०) एक ज्यां कषायादिक उपशम्याछे ते उपशांत स्थानक जाणवु, अने बीजु ज्यां कषायादिक उपशम्या नथी ते अनुपशांत स्थानक जाणवु (तत्थणजेसेपढमठाणस्स अधम्मपरकस्सविभंगेएवमाहिए के०) त्यां ए बेहु स्थानक माहे प्रथम स्थानक, ते अधर्म पक्षछे, तेनु स्वरूप विचार एम कहिये (तस्सण के०) ते अधर्मपक्ष स्थानक माहे (इमाइ के०) ए (तिन्नितेवठाइपावाडुयसयाइभवंतीतिमरकाइ के०) त्रणशेंने त्रेशठ प्रावादुक एटले पाखंमीना भेद अवतरेछे, एम भगवते कह्युछे (तंजहा के०)

वेमाणा पन्नासेमाणा गइकल्लाणा ठिइकल्लाणा आगमेसिन्नदयावि न्नवंति एसगणे आयरिए जाव सवडुक्खपहीणमग्गे एगतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विन्नंगे एवमाहिए ॥ ७४ ॥

अर्थ-(एगच्चाए के०) एम कोइ एक पुरुष (पुणे के०) वली (एगे के०) एक ज शरीरे एटले तेज एक न्नवमां (न्नयंतारोन्नवति के०) सिद्धिगति गामि होय (अवरेपुण के०) अपर एटले बीजा वली (पुव्वकम्मवसेसेणं के०) जेने पूर्वकृत कर्म अवशेष रह्यां होय तो तेवा पुरुष (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरे काल करीने (अन्नयरेसु के०) अन्यत्र (देवलोएसु के०) देवलोकने विषे (देवत्ताएउववत्तारो न्नवति के०) देव पणे उपजनार थाय (तंजहा के०) ते देवलोक केवा होय तेकहेठे (महड्डिएसु के०) महर्द्धिक महोटी ऋद्धिना धणी, (महज्जुत्तिएसु के०) महाद्युतिवान, (महापरिक्कमेसु के०) महोटा पराक्रम वाला, (महाजसेसु के०) महोटा यशना धणी, (महाबलेसु के०) महोटा बलवान, (महाणुन्नावेसु के०) महोटा अतिशयवान एवा महानुन्नाव वैक्रियादिक शक्तियें करी सहित होय (महासुखेसु के०) महोटा सुखना धणी, एटला वाना जेस्थानकने विषेठे (तेणतडदेवान्नवति के०) ते त्यां देवता पणे होय, ते देवता केवा होय ते कहेठे. महोटी ऋद्धियादिक गुणें सहित यावत् महोटां सुख सहित (हारविराइयवछा के०) हारे करी विराजित शोन्नायमानठे, हृदय कमल जेनां वली (कडगतुडियथनियनूया अंगयं के०) कटक, केयूर, अंगदादिके करी स्तनितठे न्नुजा जेनी, वली देदीप्यमान (कुम्मलमठगमयल के०) कुंमलें करी घसायेला एवा गालना तट जेणे शोन्नित कस्याठे (कन्नपीढधारी के०) कुमलना आधार माटें कानठे माटे कर्णपीठ धारी कह्या अथवा कर्णपीठते काननुं आन्नरण विशेष जाणवु ते आन्नर्ण कुंमलठे, तेना धरनारा. (विचित्तहन्नान्नरणा के०) विचित्रप्रकारना मुड़ादिक आन्नरण जेना हाथमा रहेलांठे तेणेकरीसहित (विचित्तमालामउलिमउडाके०) विचित्र प्रकारनी माला सहित मुकुटना धरनार, (कल्लाणगंधपवरवछपरिहिया के०) कल्याणकारी सुगंधित वस्त्रना पेरनार, तथा (कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा के०) कल्याणकारी प्रवर माल्य विलेपनना धरनार, (न्नासुरबोंदीपलंबवणमालधरा के०) देदीप्यमान शरीर प्रलंब एवी लटकतिजे वनमाला रूप आन्नर्ण विशेष, तेना धरनारा, (दिव्वेणंरूवेण के०) प्रधान रूपे करी सहित, (दिव्वेणवन्नेण के०) दिव्य वर्णेकरी सहित, (दिव्वेणगधेण के०) दिव्य गंधें करी सहित, (दिव्वेणंफासेणके०) दिव्य स्पर्शे करी सहित, (दिव्वेणसघाएण के०) दिव्य शरीरनो सघातन समुदाय तेणे करी सहित, (दिव्वेणं

देन । परत. परेनापि षट् जाता' १२ एवमजीवादिपदार्थेषु प्रत्येकं १२ ततो द्वादश सप्तनिर्गुणिताजाता ८४ एते क्रियावादिन्नेदा । अज्ञानिकन्नेदा. ६७ । यथा । जीवाजीवाद्यानव पदार्था स्थाप्यते । उत्पत्तिश्च दशमी नवपदार्थानामध. प्रत्येकं सप्त सत्वादय स्थाप्या । तद्यथा । सत्व असत्व सदसत्व अवाच्यत्व सदवाच्यत्व असदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्व चेति । नवसप्तनिर्गुणिताजाता' ६३ । उत्पत्तेश्चत्वारएवाद्याविकल्पाः । तद्यथा । सत्व सदसत्व अवाच्यत्व चेति । शेषविकल्पत्रय तु उत्पत्तेरनंतर पदार्थावयवापेक्षं अतउत्पत्तौ न संनवतीति चत्वारएव न्नेदास्त्रिषष्ठिमध्ये क्षिप्ताजाता' ६७ । एषामर्थस्त्वेयोयथा । कोजानाति जीव सन्नित्येकोन्नेद १ कश्चिदपि नजानाति तद्ग्राहकप्रमाणाना वादित्यर्थ । ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं । ज्ञातस्य कदाग्रहतया परलोकप्रतिपंथित्वात् । एवमसदादयोपि नंगान्नाव्या । उत्पत्तिरपि किंसतोऽसत सदसत्तोवाच्यस्य वेति कोजानाति । ज्ञातेनवा नकिंचिदपि प्रयोजनं । इत्यज्ञानिकन्नेदा । वैनयिकाः ३२ । यथा । सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेषु अष्टसु स्थानेषु कायेन मनसा वाचा दानेनच देशकालोपपन्नेन विनय' कार्यइति चत्वार कायादय स्थाप्या । चत्वारश्चाष्टनिर्गुणिताजाता ३२ । एव सर्वेपि मीलिताजाता ३६३ परवादिन्नेदा । एषां विशेषव्याख्या प्रथमागतोज्ञेया । ते सर्वे प्रावाडुकाजैनाइव निर्वाण मोक्षमाहु. । तेपि लपंति वदंति धर्मदेशना यथा हेश्रावका ! शृण्वतीति श्रावका । एव गृहीत वृष यथाहं देशयामीति । तथा तेपि धर्मश्रावयितार सतएव लपति तदनेनोपायेन स्वर्गमोक्षप्राप्तिरिति ॥ ७९ ॥

॥ टीका—सांप्रतमसावपि मिश्रपक्षोधर्माधर्मसमाश्रयणेनानयोरतर्वर्ती नवतीति दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) एवमेव सक्षेपेण सम्यगनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मस्थानयोरनुपतति । किमिति । यतोयडुपशांतस्थानं तद्धर्मपक्षस्थानमनुपशातस्थानमधर्मपक्षस्थानमिति । तत्रच यदधर्मपाक्षिक प्रथमं स्थानं तत्रामूनि त्रीणि षष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यतर्नवतीति । एवमाख्यातं पूर्वाचार्यैरिति । एतानि वा सामान्येन दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थे । क्रिया ज्ञानादिरहितामेकामेव स्वर्गापवर्गसाधनत्वेन वदितु शीलं येषा ते क्रियावादिनस्ते च दीक्षातएव मोक्ष वदतीत्येवमादयोऽष्टव्याइति । तेषाच बहवोन्नेदास्तथा क्रिया परलोकसाधनत्वेन वदितु शीलं येषा ते तथा तेषामिति अज्ञानमेव श्रेयइत्येव वदितु शीलं येषां ते नवत्यज्ञानवादिनस्तेषा तथा विनयएव परलोकसाधने प्रधान कारणं येषाते तथा तथा तेषामिति । अत्रच सर्वत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । तद्यथा क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं अक्रियावादिना चतुरशीतिरज्ञानिकाना सप्तषष्टिर्वैनयिकानां द्वात्रिंशदिति । तत्र सर्वे

से जहा णामएसमणोवासगा नवंति अनिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपा वा आसवसंवरवेयणाणिज्जरा किरियाहिगरणबंधमोक्कुसला असहे ज्ज देवासुरनागसुवन्नजक्करक्कसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा इए हिं देवगणेहिं निग्गंथाउ पावयणाउ अणइक्कमणिज्जा इणमे निग्गंथे पा वयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धठा गहीयठा पुच्छियठा विणिच्छियठा अनिगयठा अठिमिजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो नि ग्गंथे पावयणे अय परमठे सेसे अणठे उसियफलिहा अवगुयडुवा रा अचियत्तं तेउरपरघरपवेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिठ्ठपुण्णिमासिणीसुपडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुए सणिज्जेणं असण पाणखाइमसाइमेण वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं उसहनेसज्जेणं पी ठफलगसेज्जासथारएणं पडिलानेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्च क्खाणपोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं नावेमा णा विहरंति ॥७६॥ तेण एयारूवेणं विहारेण विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नसिवा अ णुप्पन्नंसिवा बहुइ नत्ताइ अणसणाए पच्चक्काए बहुइ नत्ताइं अणसणाए पच्चक्काएत्ता बहुइ नत्ताइ अणसणाए छेदेइ बहुइ नत्ताइं अणासणाए छेदेइत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्न यरेसु देवलोएसु देवताए उववतारोनवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जु इएसु जाव महासुखेसु सेसं तहेव जाव एसठाणे आयरिए जाव एगं तसम्मे साहू तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विनंगेएवं आहिए ॥ ७७ ॥

अर्थ–वली विशेष कहियेछेयें. ते यथा दृष्टांते नाम एवी सनावनायें जेम कोइ एक उत्तम पुरुष, विशिष्ट उपदेश सांनवालवाने अर्थें (समणोवासगानवति के०) श्रमणो पासकनो धर्म सेवन करे, ते श्रमणोपासक विशेषत धर्मना करनार जाणवा, ते श्रम णोपासकना लक्षण कहेछे (अनिगय के०) अनिगत एटले उलख्याछे जाण्याछे (जी वाजीवा के० जीव जे चेतन लक्षण रूप, अने अजीव जे चेतनरहित, एटले जीवा जीवना उलखनार, तथा (उवलद्धपुण्णपावा के०) शुन प्रकृतिरूपजे पुण्य, अने अशु

अर्थ-(तेसव्वेपावाउयाआदिकराधम्माणं के०) ते सर्वे प्रावाडुक एटले पाखंमी पोताने ठंदे धर्मना आदिना करनार कहिये, परंतु ते (णाणापन्ना के०) नाना प्रकारनी बुद्धि वाला, (णाणाछंदा के०) नाना प्रकारना अभिप्राय वाला, (णाणासीला के०) नानाप्रकारना आचारवाला, (णाणादिट्ठी के०) नाना प्रकारनी दृष्टि वाला, (णाणारुई के०) नाना प्रकारनी रुची वाला, (णाणारंभा के०) नाना प्रकारना आरंभना करनारा, (णाणाज्झवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करीने सहित एवा थका, पोतपोतानु (एगमहंमंमलिबंधंकिच्चा के०) एक महोटुं मम्मल बांधि करीने, एटले पंक्ति करीने, (सव्वेएगयाउचिठ्ठति के०) ते सर्व एकज प्रदेशें तिष्ठति एटले बेठाछे. ॥ ८० ॥

॥ दीपिका-ते सर्वे प्रावाडुकाआदिकरा स्वधर्माणा।नानाप्रज्ञानानाछंदानानाभिप्रायानानाविधादृष्टिर्दर्शनं येषा ते तथा नानाविधा रुचिर्येषा ते तथा नानाविधारंभानानाविधाध्यवसायसयुक्ताएक महातमंडलिबंध कृत्वा तिष्ठंति ॥८०॥

॥ टीका-तदेव सर्वप्रावाडुकामोक्षांगभूतामहिंसा न प्राधान्ये न प्रतिपद्यंतइति दर्शयितुमाह । (तेसव्वेइत्यादि) प्रवदनशीला प्रावाडुका सर्वेपि त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतपरिमाणाश्रपि आदिकरायथा स्व धर्माणा। येपिच तच्छिष्यास्तेपि सर्वे नानाभिन्ना प्रज्ञा ज्ञानं येषांते नानाप्रज्ञा । आदिकराइत्यनेनेदमाह । स्वरुचिविरचितास्ते नत्वनादिप्रवाहायाताः । ननु चार्हतानामपि आदित्वविशेषणमस्त्येव सत्यमस्ति किंतु अनादिर्हेतुपरंपरेत्यनादित्वमेव तेषांच सर्वज्ञप्रणीतागमानाश्रयणान्निबंधनाभावस्तदभावाच्च भिन्नपरिज्ञानमतएव नानाछंदा ।छंदोऽभिप्राय । भिन्नाभिप्रायाइत्यर्थ ।तथाहि । उत्पादव्ययध्रौव्यात्मके वस्तुनि सांख्यैरेकांतेनाविर्भावतिरोभावाश्रयणादन्वयिनमेव पदार्थं सत्यत्वेनाश्रित्य नित्यपक्ष समाश्रितास्तथा शाक्याअत्यंतक्षणिकेषु पूर्वोत्तरभिन्नेषु पदार्थेषु सत्सु सएवायमिति प्रत्यभिज्ञा प्रत्यय सदृशापरापरोत्पत्तिर्वितथाना भवतीत्येतत्पक्षसमाश्रयणादनित्यपक्षं समाश्रिताइति । तथा नैयायिकवैशेषिका केषांचिदाकाशपरमाण्वादीनामेकांतेन नित्यत्वमेवकार्यद्रव्याणाच घटपटादीनामेकांतेनानित्यत्वमेवाश्रिता । एवमनया दिशाऽन्येपि मीमांसकतापसादयोऽभ्यूह्याइति । तथा ते तीर्थिकानानाशील येषा ते तथा शीलं व्रतविशेष सच भिन्नस्तेषामनुभवसिद्धएव । तथा नाना दृष्टिर्दर्शनं येषांते तथा नानारुचिरेषा ते नानारुचयस्तथा नानारूपमध्यवसानमंत करणप्रवृत्तिर्येषा ते तथा इदमुक्तं भवति । अहिंसा परम धर्मांग । साच तेषा नानाभिप्रायत्वाद विकलत्वेन व्यवस्थिता । तस्याएव सूत्रकार प्राधान्य दर्शयितुमाह । ते सर्वेपि प्रावाडुकायथास्वपक्षमाश्रिताएकत्र प्रदेशे संयुतामंमलिबंधमाधाय तिष्ठति ॥८०॥

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंत पुरनी पेरें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कर्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, पण मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा (चाउद्दसट्ठमुदिट्ठ के०) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्याणिक तिथि (पुण्णिमासिणीसु के०) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे (पडिपुन्नपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के०) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, (समणेनिग्गथे के०) श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथने (फासुएसणिज्जेण के०) प्रासुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दोष रहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेण के०) अशन, पान, खादिम स्वादिम, (वत्थपडिग्गहकंबलपायपुछणेण के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुछण, (उसहनेसज्जेणके०) औषध, नैषज्य, (पीठफलगसेज्जासथारएणपडिलानेमाणा के०) पीठ, फलक, शय्या, सथारो तेणेकरी प्रतिलानता थका, (बहुहिंसीलवयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहि के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुनाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाण ना करनार, तथा पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहि के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदर्याछे जेणे, ते शु आदर्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंनावेमाणाविहरति के०) पोताना आत्मानें नावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, (बहुइवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी (समणोवासगपरियाग के०) श्रमणोपासकना पर्यायने (पाउणंति के०) पाले, (पाउणित्ताके०) पालीने (आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के०) रोगादिक आवाधा उपनी, (अणुप्पन्नंसिवा के०) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते (बहुइनत्ताइ के०) घणा नात पाणीनो (अणसणाएपच्चरकाए के०) अनशनपच्चरके (पच्चरकाएता के०) एम घणा नक्त पाननो अनशन पच्चरकिने (बहुइनत्ताइअणसणाछेदइ के०) ते अनशनने विषे घणा नक्त पानने छेदे, एटले परिहरे (छेदेइत्ता के०) छेदी एटले परिहरीने, घणादिवस अनशन पालीने (आलोइयपडिक्कंता के०) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, ते अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या डुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी ऋद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

न्हाना प्रकारनी प्रज्ञावाला, यावत् नाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणे करी संयुक्त एवा परदर्शनी ते आगल आवीने, (एववयासी के०) एवुं कहेछे के (हंनोपावाउया के०) अहो प्रावाडुको ! (आइगराधम्माण के०) तमे धर्मनी आदिना करनारछो ; (णाणापन्नाजावणाणाज्झवसाणसंजुत्ता के०) तमे न्हाना प्रकारनी बुद्धिवाला, तथा न्हाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणें करी संयुक्तछो ते माटे, (इमंतावतुम्हेसागणियाणंइंगालाणंके०) ए तुमे अग्निये बलता अंगारा तेणे करी सहित एवोआ एक लोहनुं (पाइंके०) नाजन (बहुपडिपुन्न के०) घणुं प्रतिपूर्ण तेने (गहायमुहुत्तयं के०) ग्रहण करीने, एक मुहूर्त्त मात्र (पाणिणाधरेह के०) हाथ माहे धरी राखो, (णोबहुसंमासगंसंसारियंकुज्जा के०) घणी संमासानो सहाय मकरो. (णोबहुअग्गिथनणियंकुज्जाके०) घणो अग्निने स्तननी एटले स्थनि राखे तेवी विद्यानु सहाय मकरो (णोबहुसाहम्मियवेयावडियंकुज्जाके०) घणो मांहो माहे साधर्मिकनु वैयावच्च नो करवो, एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो (णोबहुपरधम्मियवेयावडियकुज्जा के०) घणो परधर्मिकनो माहो माहे वैयावच्चनो करवो एटले अग्नि दीधानो उपशमाववु मकरो मात्र (उज्जुयाके०) सरल थका (णियागपडिवन्नाके०) मोक्ष मार्ग प्रतिपन्न थका, (अमायंकुव्वमाणापाणिपसारेह के०) माया रहित पणु करता थका हाथ पसारो (इतिवच्चाके०) एम कहीने, (सेपुरिसेके०) ते पुरुष (तंसागणियाणंइंगालाणपाइबहुपडिपुन्नं के०) ते अग्नि बलता अगरानु नाजन घणु प्रतिपूर्ण नरीने (अउमएणसमासएणगहाय के०) लोहना समासा सहित ग्रहीने (तेसिंपावाउयाणके०) ते प्रावाडुकना (पाणिसु के०) हाथनी उपरे (णिसिरिति के०) मूके (तएणंके०) तेवारे (तेपावाडयाआइगराधम्माण के०) ते प्रावाडुक धर्मनी आदिना करनार (णाणपन्नाजावणाणाज्झवसाणसजुत्ता के०) नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित एवा छता ते प्रावाडुकने हाथमां अग्नि आपे छते (पाणिपडिसाहरति के०) पोताना हाथ पाछा खेंचे एम पाछा हाथ करता देखीने (तएण के०) तेवारे (सेपुरिसे के०) ते पुरुष ते सर्व प्रावाडुक धर्मना अदिना करनार नाना प्रकारनी प्रज्ञावाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित ते प्रत्ये (एववयासी के०) एम कहेके (हनोपावाडुया के०) हे प्रावाडुको ! पोताना छंदे धर्मनी आदिना करनाराउ ! नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित (कम्हाणतुम्हेपाणिंपडिसाहरह के०) शाकारणे तमे हाथ पाछा खेंचोछो तेवारे ते बोल्या (पाणिनोमहिज्जाके०) अमारा हाथ नथी बलताशुं ? अमारा हाथ बलेने दाजेछे ते कारण माटे हाथ पाछा खेची लीधाछे तेवारे ते पुरुष फरी बोल्यो के (दड्ढेकिंनविस्सइ के०) तमारो हाथ दाझवाथी शु थवानुंछे एवु सांजली फरी ते

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलाभयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तप कर्मभिरात्मानं भावयंतस्तिष्ठति ॥७६॥ (तेणत्ति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्याय प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तं प्रत्याख्याय स्वायु क्षये देवेपूत्पद्यते ततोपि च्युता' सुमानुष भवं प्राप्य तेनैव भवेनोत्कृष्टत' सप्तसु अष्टसु वा भवेपु सित्स्यंति । तदेव स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यायं विभंगोविचारआख्यात' ॥ ७७ ॥

॥ टीका–ताश्च विशेपतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽभिगतजीवाजीवस्वभावास्तथोपलब्धपु एयपापा । इह च प्राय सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवादिकोप्यस्मा भिरादर्श समुपलब्धोतएकमादर्शमगीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावका परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपा सतोन धर्मा च्चाल्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपाद्दढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ता । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत भूत कथानक । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेक परिव्राट् विद्यामंत्रौपधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् या यामभिरूपतरामगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैनागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यह पत्तनं मुप्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानभिमत सोऽत्र केवलमास्ते । तदेव क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञाभिहितं गच्छत यूयं विश्रब्धाभवतावश्यमहं तं दुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचभैरहोभिर्न लभे चौरं विमर्पयुक्तोपि च स्वक्ष्याम्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेव कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिका । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षका । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलभ्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि भोजनतांबूलगंधमाल्यादिक गृह्णन् रात्रौ स्वतोनिर्गतेनोपलब्ध. सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतर प्रविश्य व्यापादितस्त दनतर समर्पितं यद्यस्य तत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमतिनी अत्यंतमौपविभा विता नेच्छत्यात्मीयमपि भर्तार ततस्तद्विभिरभिहित यथाऽस्या परिव्राट्सत्कान्यस्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रह मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यभ्यवहार विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगत प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे भर्तरि । तदेव यातावत्यतं तेन परिव्राजा नेच्छत्यपरमेव श्रावक जनोपीति नितरां भावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यर्तं सम्यक्त्वौपधे न वासितत्वादिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जावजलियफलिहाइत्यादि) उच्छ्रिता

न समत तथा सर्वजीवानामित्येतत्प्रमाणं । एषा युक्ति· तदेतत्समवसरणं एषधर्मे विचार· । आत्मवत्सर्वभूतानि य· पश्यति सपश्यनीति प्रत्येकं तुलासाम्यमित्यादि (तन्नणति) तत्र एव सति ये श्रमणब्राह्मणादयएवमाख्याति । सर्वे प्राणाहतव्या दडादिनि परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिनि परिग्राह्या श्राद्धादौ मत्स्याऽव अपद्रावयितव्यायागादौ मेषाऽव । एव ये भाषते ते आगामिनि काले स्वशरीरस्य छेदाय भेदायच भापंते । तथाऽगामिनि काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवति योन्यां जन्म योनिजन्म तद्बहुशोगर्भजावस्थाया लभंते संसारप्रपचातर्गतास्तेजोवायुषु उच्चैर्गोत्रो६ लनेन कलकलीभावभाजोदुःखव्याकुला स्यु ॥ ८१ ॥

॥ टीका—तेषा चैव व्यवस्थितानामेक कश्चित्पुरुषस्तेषा सविदर्थ ज्वलतामगाराणां प्रतिपूर्णां पात्रीमयोमय भाजनमयोमयेनैव सदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवानुवाच तान्। यथा भो प्रावादुका ! सर्वोक्तविशेषणविशिष्टाऽदमंगारभृतं भाजनमेकैकं मुहूर्त प्रत्येक सासारिकाणामिवाऽग्निस्तभन विधत्ते नापिच साधर्मिकाऽन्यधार्मिकाणामग्निदाहोपशमादिनोपकार कुरुतइति ऋजवोमायामकुर्वाणा पाणि प्रसारयत ? तेपिच तथैव कुर्युस्ततोऽसौ पुरुष तद्भाजन पाणौ समर्पयति तेपिच दाहशंकया हस्त सकोचयेयुरिति । ततोसौ तानुवाच। किमिति पाणि प्रतिसहरत? यूयं एवमभिहितास्ते ऊचुर्दाहभयादिति । एतदुक्त भवति । अवश्यमग्निदाहभयान्न कश्चिदग्निमुख पाणि ददातीत्येतत्परोयं दृष्टात । पाणिना दग्धेनापि किंभवता भविष्यतीति दुःखमिति चेद्यथैव भवतोदाहापादित दुःखभीरव सुखलिप्सवस्तदेवसति सर्वेपि जतव ससारोदरविवरवर्तिनएवभूताएवेत्येव मात्मतुलयाऽत्मौपम्येन यथा मम नाभिमत दुःखमित्येव सर्वजंतूनामित्यवगम्याहिंसैव प्राधान्येनाश्रयणीया तदेतत्प्रमाण एषा युक्ति· । आत्मवत्सर्वभूतानि य.पश्यति सपश्यति । तदेव समवसरण सएषधर्मविचारोयत्राहिंसा सपूर्णा ॥ तत्रैव परमार्थतोधर्मे इत्येव व्यवस्थिते तत्र ये केचनाविदितपरमार्था श्रमणब्राह्मणादयएव वक्ष्यमाणमाचक्षते परेषामात्मदार्ढ्योत्पादनार्थेव भाषंते तथैवमेव धर्मे प्रज्ञापयति व्यवस्थापयति तथान्येन प्राण्युपतापकारिणा प्रकारेण परेषा धर्म प्ररूपयंति व्याचक्षते । तद्यथा । सर्वे प्राणाइत्यादि यावद्धंतव्यादडादिभि परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिभि परिग्राह्याविशिष्टकाले श्राद्धादौ रोहितमत्स्याऽव तथाऽपद्रावयितव्यादेवतायागादिनिमित्तमस्त्याऽद्येवेत्येव ये श्रमणाद्य प्राणिनामुपतापकारिणीं भाषा भाषते आगामिनि काले ऽनेकशोबहुश स्वशरीरच्छेदायच भाषते तथा ते सावद्यभाषिणोभविष्यंति काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवति । योन्या जन्म योनिजन्म तदनेकशोबहुशोगर्भेभ्यु

अविरति एटले असंयम ते आहीं सम्यक्त्वने अभावें जोपण मिथ्यादृष्टिनी विरतिछे, तोप ण तेने अविरतिज कहेवाय, ते अविरति आश्री तेने (बालेयाहिज्जइ के०) बाल कहि ये, (विरईपडुच्चपंडिएआहिज्जइ के०) अने विरति एटले सावद्य परित्यागरूप ते आश्री तेने पंडित परमार्थनो जाण कहियें, (विरयाविरइपडुच्चबालपंडिएआहिज्जइ के०) त था विरताविरत एटले काइक संयम काइक असंयम ते आश्री तेने बाल पंडित कहियें, (तत्थणजासासव्वतोअविरइ के०) त्या पूर्वोक्त त्रण स्थानकने विषे जे सर्व थकी अविरति स्थानकछे एटले-जेमां सर्वथा विरति परिणामनो अभावछे. (एसठाणे के०) ए स्थानक ते (आरंभठाणे के०) आरंभनुं स्थानक, (अणारिए के०) अनार्य, (जावअसव्वदुक्खप्प हीणमग्गे के०) यावत् सर्व दुःख थकी मूकाववानो मार्ग नथी (एगंतमिछेअसाहु के०) एकांत मिथ्यात्व मार्ग असाधु एटले ए सारो मार्ग नहीं हवे बीजु धर्मपक्षनु स्थानक कहेछे. (तत्थणंजासासव्वताविरइ के०) त्या जे सर्व थकी विरति सम्यक् पूर्वक आरंभ परित्यागरूप (एसठाणे के०) ए स्थानक (अणारंभठाणे के०) अनारंभनु स्थानक (आरिए के०) आर्य, (जावसव्वदुक्खप्पहीणमग्गे के०) यावत् सर्व दुःख थकी मुका ववानो मार्ग, (एगंतसम्मेसाहु के०) एकात सम्यक्त्व साधु मार्ग जाणवो. हवे त्रीजु मिश्रपक्षनुं स्थानक कहेछे (तत्थणजासासव्वउविरयाविरइएसठाणेआरंभणोआरंभठाणे के०) त्या जे सर्व थकी विरताविरत एटले संयमासंयमरूप स्थानक ते आरंभ अने अनारंभ रूप स्थानक जाणवु (एसठाणे के०) ए स्थानक (आरिए के०) आर्य यावत् सर्व दुःख थकी मूकाववानो मार्ग, एकात सम्यक् भलो मार्ग जाणवो ॥ ७८ ॥

॥ दीपिका—अथेदं पक्षत्रयमुपसंहरन् संक्षेपतोवक्ति। अविरति प्रतीत्याश्रित्य बालआ धीयते स्थाप्यते विरतिमाश्रित्य बालपंडितइत्युच्यते । तत्र वा अविरति । एतत् स्थान यावन्नाय सर्वदुःखक्षयमार्गं किंतु? एकातमिथ्यात्वमार्गोऽसाधु । तत्र या सर्वविरति एतत्स्थानमनारंभस्थान आर्य यावदय सर्वदुःखक्षयमार्गं साधु शोभन । या सर्वतो विरताविरति । इद स्थानमारंभानारंभस्थानं । इदमपि स्थानमार्यं परपरया सर्वदुःख क्षयमार्गं एकांत सम्यक् साधु ॥७८॥

॥ टीका—उक्ता धार्मिकाअधार्मिकास्तदुभयरूपाश्चाभिहिता ।साप्रतमेतदेव स्थानत्रिकमु पसंहारद्वारेण सक्षेपतोबिभणिषुराह । (अविरइइत्यादि) येयमविरतिरसयमरूपा स म्यक्त्वाभावान्मिथ्यादृष्टेर्व्यतोविरतिरप्यविरतिरेव ता प्रतीत्याश्रित्य बालवद्बालोऽज्ञः सद सद्विवेकविकलत्वात् इत्येवमाधीयते व्यवस्थाप्यते आख्यायते वा तथा विरति चाश्रित्य

रशे नहीं एवी रीतें स्वदर्शनी पण, जे पूर्वोक्त जाषा बोलशे ते सीजसे नही एम निश्चे जाणवु. हवे जे उत्तम पुरुषने एवी तुल्यता राखवी जे सर्व जीव प्रत्येक तुल्य, प्रत्येक प्रमाण, एप्रमाणे प्रत्येक समोसरण पण छे ॥ ८२ ॥

॥ दीपिका–ते नरावहूनां दंडनादीनां शरीरङ्खानां जाजनं जवति तथा मातृमरणादीनां मानसङ्खाना तथाऽन्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्ङःखजागिनोजविष्यंति । किं बहुना । (अणादियंति) अनादिक नवियतेऽवदग्रोऽतोयस्य सोऽनवदग्रोऽनंत तं दीर्घाध्वानं चतुर्गतिमार्गं चातुरंत संसारकांतारमनुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीवद्भ्रमिष्यंति न बोधं प्राप्स्यंति न सेत्स्यंति सर्वङ्खानामंतं न करिष्यंति एषतुला एतत्साम्य यत्सावद्याचारान् त्सिध्यंति कुमतिन. स्वमतेपि औद्देशिकादिनोजिनस्तथैव एतत्प्रमाणं प्रत्यक्षादिकं प्रत्यक्षेण चौराद्याबाध्यमानादृश्यंते । एवमन्येपि एतत्समवसरण आगमविचार' प्रत्येकं प्रतिजीवमिदं साम्य इष्टव्यं ॥ ८२ ॥

॥ टीका–तथा ते बहूनां दंडादीनां शारीराणां ङःखानामात्मानं जाजनं कुर्वंति तथा ते निर्विवेकामातृवधादीना मानुषाणां ङःखानां तथान्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्ङःखदौर्मनस्यानामाजागिनोजविष्यंतीति । किंबहुनोक्तेनोपसंहारव्याजेन । गुरुतरमर्थसंबंधं दर्शयितुमाह । (अणादियं इत्यादि) नास्यादिरस्तीत्यनादि संसारः। तदनेनेदमुक्तंजवति । यत्कैश्चिदजिहितं यथायमंमकादिक्रमेणोत्पादितइत्येतदपास्तं । नवियतेऽवदग्रं पर्यंतो यस्य सोयमनवदग्रोऽपर्यंतइत्यर्थ । तदनेनेदमुक्त जवति । यडुक्तं कैश्चिद्यथा प्रलयकालेऽशेषसागरजलप्लावन द्वादशादित्योङमेन चात्यंतदाहइत्यादिकं सर्वं मिथ्येति दीर्घमित्यनंतपुजलपरावर्तरूप कालावस्थानं तथा चत्वारोंतागतयोयस्य सतथा चातुर्गतिक इत्यर्थ । तत्संसारएव कांतार संसारकांतारोनिर्जल. सजयस्त्राणरहितोऽरण्यप्रदेशः कांतार इति । तदेवंजूतं जूयोजूय पौन.पुन्येनानुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीन्यायेन तत्रैव भ्रमंत. स्थास्यंतीत्यतएवाह । यतस्ते प्राणिनां हंतार कुतएतदिति चेत्सावद्योपदेशादेतदपि कथमिति चेदतऔद्देशिकादिपरिजोगानुज्ञयेत्येवमवगतव्यमित्यतस्ते कुप्रावचनिकानैव सेत्स्यंति नैव ते लोकाग्रस्थानमाक्रमिष्यंति तथा न ते सर्वपदार्थान् केवलज्ञानावाप्त्या जोत्स्यंते । अनेन ज्ञानातिशयजावमाह । तथा न तेऽष्टप्रकारेण कर्मणा मोक्ष्यंते । अनेनाप्यसिद्धेरकैवल्यावाप्तेश्च कारणमाह । तथा परिनिर्वृति. परिनिर्वाणमानंदसुखावाप्तिस्तां ते नैव प्राप्स्यते तेनापि सुखातिशयाजाव. प्रदर्शितोजवतीति । तथा नैते शारीरमानसानां ङःखानामात्यंतिकमंत करिष्यतीत्यनेनाप्यपायातिशयाजाव प्रदर्शितोजवति । एषातु

ते कहेछे. (किरियावाईण के०) एक क्रियावादी, तेना एकसोने एंशी नेदछे. (अकिरियावाईण के०) बीजा अक्रियावादी तेना चोराशी नेदछे (अन्नाणियवाईण के०) त्रीजा अज्ञानवादी, तेना सडसठ नेदछे (वेणइयवाईण के०) चोथो विनयवादी, तेना बत्रीश नेदछे एम सर्वे मली त्रणशेने त्रेसठ नेदोछे (तेवि निव्वाणमाहंसु के०) ते पण सर्व पोत पोताना मतने अनुरागे निर्वाण एटले मोक्षनो मार्ग कहेछे (तेवि परिमोरकमाहंसु के०) तेपण कर्म थकी मूकाववानो उपाय कहेछे (तेविलवतिसावगा के०) तेपण कहेछेके अहो श्रावको ! अमे जे धर्म प्ररूपीयें छैये ते धर्म तमे आदरो (तेविलवतिसावइत्तारो के०) तेपण कहेछे के, अमे धर्मना सनलावनारा छैये.॥७९॥

॥ दीपिका–मिश्रपक्षोपि धर्माधर्मयोरेवातर्नवतीत्याह । एवमेव संक्षेपेण समनुगम्यमानाव्याख्यायमाना सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मपक्षयोरनुपतति । उपशांतस्थानं धर्मपक्ष अनुपशातस्थानमधर्मस्थान (तन्नणति) तत्रच यत्प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य स्थान तत्रामूनि त्रीणि त्रिपष्ठ्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्नवतीत्येवमाख्यातं पूर्वाचार्यै । तद्यथा । क्रियावादिन· अक्रियावादिन अज्ञानिकवादिनवैनयिकवादिन । अत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । क्रियावादिनामशीत्युत्तरशत १८० अक्रियावादिना चतुरशीति ८४ अज्ञानिकाना सप्तषष्टि ६७ वैनयिकाना द्वात्रिंशत् ३२ सर्वे मिलिता ३६३ मीलन्नेदा । नेदानयने प्रकारश्चायं । जीवाजीवाश्रवसवरनिर्जरापुण्यपापबंधमोक्षरूपान् नव पदार्थान् विन्यस्य जीवपदार्थस्याध स्वपरन्नेदौ स्थाप्यौ । तयोरधोनित्यानित्यन्नेदौ तयोरप्यध काल १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वनाव ५ नेदा पच स्थाप्या । ततएव नेदा कार्या । अस्ति जीव· स्वतोनित्य कालत १ अस्तिजीव स्वतोनित्यईश्वरत २ एवमात्मनियतिस्वनावैरपि । एव पच नेदानित्यपदेन लब्धा । अनित्यपदेनापि पच । एते दश विकल्पा स्वत पदेन लब्धा । एव दश विकल्पा परत पदेनापि । जाता विशतिर्जीवपदेन । एवमजीवाद्यष्टपदैरपि विशतिर्विंशति स्यु । नवनिर्विंशतिनिश्चाशीत्यधिक शत । एते क्रियावादिन्नेदा । न कस्यचित्पदार्थस्य क्रिया संनवति । उत्पत्त्यनतरमेव विनाशात् । क्षणिका सर्वसंस्कारा· अस्थिराणा कुत क्रिया इत्यादि ये वदति तेऽक्रियावादिन. । तेषां नेदा ८४ । यथा । पुण्यपापवर्जितजीवाजीवादिपदार्थसप्तकस्य न्याम । तस्याध प्रत्येक स्वपरन्नेदौ असत्वादात्मनोनित्यानित्यविकल्पौ नस्त । कालादीना पचानामधस्तात्पष्ठी यदृच्छा स्थाप्या । इह यदृच्छावादिन सर्वेप्यक्रियावादिनएव । तत. प्राक् यदृच्छा नोक्ता । ततएव नेदा कार्या । नास्ति जीव. स्वतः कालत १ नास्तिजीव स्वतईश्वरत २ एवमात्मादिनिरपि । एव षड्नेदा. स्वत· प

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिसु णोबुज्झिसु णोमुच्चिसु णोपरिणिव्वाइंसु जाव णोसव्व डुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो करेतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ७४ ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वडःखनो अत पण कोइये अतीत काले कस्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे छे, ते अधर्मपक्षने मलताज छे ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका–अथोपसहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्म पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्त्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यते न बुद्धान बुध्यते न नोत्स्यंते न सर्वडुःखानामतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥७४॥

॥ टीका–नणितानि क्रियास्थानानि साप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन विनणिपुराह (इच्चेतेहिंइत्यादि) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूप समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यति न नविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यते नच नोत्स्यते तथा न मुमुचुर्न मुंचति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यति तथा न डुःखानामतं ययुर्न पुनर्याति नच यास्यंतीति॥७४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिसु परिणिव्वाइंसु जाव सव्वडुक्खाण अंत करेसुवा करंति करिस्सतिवा एव से भिक्खु आयठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जासि त्तवेमि ॥७५॥ इति बीयसुयखधस्सकिरियाठाणंनामवीयमज्झयणंसम्मत्त॥

अर्थ–ए पूर्वे कह्युजे निश्चे तेरमु क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतजीनूत थया, यावत् सर्व डःखनो अतीत काले अत कीधो, वर्त्तमान काले अत करे छे, अने आगमिक काले अत करशे, एम ते साधु चारित्रिठ बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानु हित चितवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

प्येते मौलास्तच्छिष्याश्च प्रवदनशीलत्वात्प्रावाडुकास्तेषा च भेदसंख्या परिज्ञानोपायश्चा चारएवाभिहितइति नेह प्रतन्यते । ते सर्वेप्यार्हताइव परिनिर्वाणमशेष द्वंद्वोपरमरूपव र्णगंधरसस्पर्शस्वभावमनुपचरितपरमार्थस्थान ब्रह्मपदाख्यमबाधात्मक परमानंदसुखस्व रूपमाहुरुक्तवतस्तथा तेपि प्रावाडुका संसारबंधनान्मोचनात्मकं मोक्षमाहु । पूर्वेण नि रुपाधिक कार्यमेव निर्वाणाख्यमुक्तमनेन तु तदेव कारणोपाधिकमित्यय विशेष । तत्र येषामप्यात्मा नास्ति ज्ञानसततिवादिना तेषामपि कर्मसंतते संसारनिबंधनभूतायाविच्छे दान्मोक्षभावाविरोध । तेषा चोपादानक्षयादनागतानुत्पत्ते संततिछेदएव मोक्ष प्रदी पस्येव तैलवर्त्यभावे निर्वाणमिति । तथाचाहु । न तस्य किंचिद्भवति न भवत्येव केव लमिति । एतच्च तेषां महामोहविजृंभित । यत । कर्म चास्ति फल चास्ति कर्ता नैवास्ति कर्मणा ॥ संसारमोक्षवादित्वमहोह्याध्यविजृंभितमिति ॥ येषा चात्मास्ति साख्यादीनां तेषा प्रकृतिविकारवियोगोमोक्ष क्षेत्रज्ञस्य पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानादेव विद्यमाने प्रधानवि कारैर्विमोचन मोक्षइति । तेषामप्येकांतनित्यवादितया मोक्षाभाव । एवमन्येपि नैया यिकवैशेषिकादय संसाराभावमिछंतोपि न मुच्यते सम्यग्दर्शनादिकस्योपायस्याभावादि त्यभ्यूह्याह । यदि न तेषा मोक्ष कथं ते लोकस्योपास्याभवतीत्याशक्याह । तेपि तीर्थि काजपंति ब्रुवते मोक्षं प्रति धर्मदेशना विदधति । शृण्वतीति श्रावका हेश्रावका! एव गृह्णी त यूयं यथाह देशयामि तथा तेऽपि धर्मश्रावयितार सतएव जपंति भाषते यथाऽनेनोपा येन स्वर्गमोक्षावाप्तिरिति तद्वचनं मिथ्यात्वोपहतबुद्ध्योवितथमेव गृह्णति कूटपण्यक्रायि ना विपर्यस्तमतयएवेति । तदेवमादितीर्थिकास्तच्छिष्याश्च पारपर्येण मिथ्यादर्शनानुभावा त्परान्प्रतारयंति तेपिच तेषा प्रतारयंति आहु' कथमेते प्रवाडुकामिथ्यावादिनोभवंति । अ त्रोच्यते । यतस्तेप्यहिंसा प्रतिपादयंति नच ता प्रधानमोक्षागभूता सम्यगनुतिष्ठंति । कथ साख्याना तावज्ज्ञानादेव धर्मोन तेषामहिंसाप्राधान्येन व्यवस्थित किंतु पचयमाइत्यादि कोविशेषइति । तथा शाक्यानामपि दश कुशलाधर्मपथाश्चहिंसापि तत्रोक्ता नतु सेव ग रीयसी धर्मसाधनत्वेन तैराश्रिता । वैशेषिकाणामपि अभिसेवनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुल वासप्रस्थादानयज्ञादिनक्षत्रमंत्रकालनियमादृष्टास्तेषु चाभिषेचनादिषु पर्यालोच्यमानेषु हिंसैव संपद्यते वैदिकाना हिंसैव गरीयसी धर्मसाधन यज्ञोपदेशात् तस्य च तयाविनाभा वादित्यभिप्राय । उक्तंच । ध्रुव प्राणिवधोयज्ञे ॥ ७९ ॥

ते सव्वे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारम्भा णाणाझवसाणसंजुत्ता एगमहं मंड लिबंध किच्चा सव्वे एगयाउ चिट्ठंति ॥ ८० ॥

समाप्त्यर्थं । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नया. पूर्ववद्व्याख्येया ॥ समाप्तं क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनमिति ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययनप्रारंभः ॥

हवे बार क्रिया स्थानकने वर्जनार एवा चारित्रवान पुरुषे शुद्धाहार लेवो, ते कारण माटे हवे आहार परिज्ञा नामे त्रीजुं अध्ययन प्रारंभिये ैयें

सुयंमे आउसं तेण भगवया एव मक्खायं इह खलु आहारपरिण्णाणाम ज्झयणे तस्सण अयमठे इह खलु पाईणंवा सव्वतो सव्वावंतिचणं लो गंसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया तेसिचणं अहा बीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढवीजोणिया पुढविसंभवा पुढवीवुक्कमये तज्जोणिया तस्सं भवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कमा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्खत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसि णाणाविहजो णियाण पुढवीण सिणेह माहारेति ॥१॥ ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीर तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाणतसथा वराण पाणाण सरीरं अचित्तं कुवंति परिविध्धं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारिय विपरिणयं सारूवियकडं सत अवरेवियणं तेसि पुढविजो णियाण रुक्खाण सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफा सा णाणासंगणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउवित्ता तेजीवा क म्मोववन्नगा भवंति तिमक्खायं ॥ २ ॥

अर्थ-(सुयंमेआउसंतेण के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबू प्रत्यें कहेछे के, में एवुं सांभळुं छे जे, आयुष्यमत (भगवयाएवमक्खायं के०) भगवंत श्रीमहावीर देवें एम कह्युं छे (इहखलु के०) निश्चे आ जिनशासनने विषे (आहारपरिण्णाणामज्झयणे के०) आहारपरिज्ञा एवे नामे अध्ययन कह्यु. (तस्सणअयमठे के०) तेनो ए अर्थ आगळ कहेछे (इहखलु के०) निश्चे आ जगत् मांहे (पाईणवा के०) पूर्वादिक चारदिशिने विषे तथा विदिशिने विषे (सव्वतोसव्वावतिचणलोगसि के०) सर्व थकी सर्व, एतावता सर्व लोकने विषे (चत्तारिबीयकाया के०) चार, बीज कायना प्रकार एटले उत्पत्तिना

पुरिसेयं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्न गहाय अउमएणं सन्नासएणं गहाय ते सवे पावाउए आइगरा धम्माण णाणापन्ना जाव णाणाज्ञवसाणसंजुत्ते एवं वयासीहंनो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअज्ञवसाणसंजुत्ता इम ताव तुम्ह सागणिया ण इगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णोबहु सन्नासग संसारिय कुज्जा णो बहुअग्गिथन्नणिय कुज्जा णोबहु साह म्मियवेयावडिय कुज्जा णोबहुपरधम्मियवेयावडियं कुज्जा उज्जयाणिया गपडिवन्ना अमायं कुवमाणा पाणि पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाडयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्न अउमएण सन्नासएणं गहाय पाणिसु णिसिरिंति तएणं तेपावाडया आइगरा ध म्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्ञवसाणसंजुत्ता पाणिपडिसाहरंति तए णं से पुरिसे ते सवे पावाउए आदिगरे धम्माण जाव णाणाज्ञवसाणसं जुत्ता एवं वयासी हंनो पावाडया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्ञवसाणसंजुत्ता कम्हाण तुन्ने पाणि पडिसाहरह पाणिं नोमहि ज्जा दड्ढे किं नविस्सइ डुरकति मन्नमाणा पडिसाहरह एसतुला एस प्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयंतुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे तत्नणं जेते समणा माहणा एवमातिरकति जाव परुवेति सवे पाणाजाव सत्ता हंतवा अज्जावेयवा परिघेतवा परितावेयवा किलामेतवा उद्दवेतवा तेआगंतुछेयाए तेआगंतुन्नेयाए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणि जम्मणससारपुणन्नवगप्नवासन्नवपवंच कलंकलीनागिणो नविस्संति ॥

अर्थ–तेवारे कोई एक (पुरिसेयं के०) पुरुष जैन मार्गनो जाण ते तेमने अहिंसा दिकने विषे पाडवाने अर्थे (सागणियाणइंगालाण के०) अग्निये बलता अंगारा तेणे करी एक लोढानु (पाइके०) पात्र एटले नाजन नरीने (बहुपडिपुन्नं के०) घणो प्र तिपूर्ण नरीने (अउमएण के०) लोहना (संमासएणगहाय के०) समासी सहित ग्र हण करीने (तेसवेपावाउए के०) ते सर्व प्रावाडक एटले परदर्शनी (आइगराधम्माणं के०) पोतपोताना धर्मनी आदिना करनार, (णाणापन्नाजावणाणाज्ञवसाणसंजुत्तेके०)

शरीरने आहारतां पृथवीने पीडा उपजावे नही. ॥ १ ॥ पछी (तेजीवा के०) ते जीव, (आहारेतिपुढवीसरीर के०) पृथवीनु शरीर आहारे, एमज (आउसरीर के०) अपकायनुं शरीर, (तेउसरीर के०) तेज कायनुं शरीर, (वाउसरीर के०) वायुकायनु शरीर, (वणस्सइसरीर के०) वनस्पतिकायनुं शरीर, (णाणाविहाणतसथावराणं पाणाणसरीर के०) तथा नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीउनां शरीर आहारे, परतु तेमने पीडा नउपजावे. तेनुं कारण कहेछे, जेम अमजादिक जीव गर्भस्थ छतां माताना उदरनो आहार करे, परतु माताने पीडा उपजावे नही, तेम अही पण जाणी लेवुं. तथा उपन्या पछी वृद्धि प्राप्त अनेक वर्ण रसादिक गुण सहित थाय, तेवारें पण काइ पीडा उपजावे एरीतें ते जीव पृथवीकाय प्रमुख जीवोनुं (सरीरअचित्तंकुवंति के०) शरीर अचित्त करे (परिविद्धत्त के०) परिविध्वस करे (तंके०) ते वनस्पतिना जीव तेणे (सरीरपुवाहारियं के०) पृथवी कायादिकनु जे शरीर पूर्वे आहार्युं, ते अधुना हमणा. वनस्पतिना जीव उत्पद्यमान उपजता, अथवा उपना (तयाहारियं के०) त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने, (विपरिणयं के०) परिणमावीने (सारुवियकडसंतं के०). पोतानी काया सरखा रूप करे, (अवरेवियण के०) अपर एटले अन्य बीजा शरीर मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक, एवा रूप करे तथा (तेसि पुढवीजोणियाण के०) ते पृथवीयोनिक (रुक्खाण के०) वृक्ष, तेना (सरीरा के०) शरीर, ते (णाणावन्नाण के०) नाना प्रकारना वर्ण, (णाणागंधा के०) नाना प्रकारना गध, (णाणारसा के०) नाना प्रकारना रस, (णाणाफासा के०) नाना प्रकारना स्पर्श, (णाणासठाणसठिता के०) नाना प्रकारना संस्थानें करी सहियत, (णाणाविहसरीरपुग्गलविउविता के०) तथा नाना प्रकारना शरीरना पुद्गलें करी विकूर्व्या थका होय, एरीते (तेजीवा के०) तेजीव (कम्मोववन्नगाभवति तिमक्खाय के०) वनस्पतिने विषे तथाविध कर्मने उदये उपना होय परतु आही काल, ईश्वरादिक कारण कोइ समजवो नही एम भगवंत श्रीतीर्थंकर देवे कह्यु छे. एटले पृथवीयोनिक वृक्ष कह्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथाहारपरिज्ञाख्य तृतीयमध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयं मे इत्यादि) श्रुतं मयाऽयुष्मन्भगवतेदमाख्यातं आहारपरिज्ञानाख्यमध्ययन । तस्य चा यमर्थ । प्राच्यादिदिक्षु सर्वत (सवावतित्ति) सर्वस्मिन लोके चत्वारोबीजकायाबीजप्र काराभवंति । तद्यथा । अग्रे बीज येपामुत्पद्यते तेऽग्रबीजास्तालसहकारादय । अथवाऽ माम्रेवोत्पत्ती कारण येपा तेऽग्रबीजा कोरटादय । मूलबीजाआर्द्रकादय पर्वबीजा

प्रावाडुक पाखंमी दर्शनीने बोल्या के, अमने डुःख उपजेछे, तेवारें फरी ते पुरुष बोल्यो के, (डुरकंतिमन्नमाणा के०) जो तमे डुःख जाणता अग्निनी दाह थकी बीहिता थका हाथ ने (पडिसाहरहके०) पाछा करोछो ? तो जेम तमे डुःख थकी बीक राखोछो, तेम सर्व जीवने (एसतुल्लाके०) ए तुल्य एटले बराबर छे, (एसप्पमाणेके०) एप्रमाणे जाणवु (एससमोसरणे के०) ए समोसरण) पत्तेयंतुल्ला के०) प्रत्येक प्रत्येकने सरखु, अने (पत्तेयप्पमाणे के०) प्रत्येक प्रत्येकने प्रमाण, एवुं (पत्तेयंसमोसरणेके०) प्रत्येक प्रत्येकने समोसरण जाणवु (तत्थणंजेतेसमणामाहणाएवमातिरकंति के०) त्या जे श्रमण ब्राह्मण एम कहेछे (जावपरूवेंतिके०) यावत् एम प्ररूपे छे के, (सवेपाणाजावसत्ताहंतवा के०) सर्व प्राणी, यावत् सर्व सत्वने हणवा, (अज्जावेयवाके०) दंम काशादिके करी ताडवा, (परिघेतवा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा. (परितावेयवा के०) शारीरिक मानसीक पीडा उपजाववी, (किलामेतवा के०) किलामण उपजाववी (उद्दवेतवा के०) उपड्ववा, तथा जीव, काया थकी रहित करवा एवां वचनना बोलनारा, (ते आगंतुछेयाए के०) ते आगमिक काले वारवार पोताना शरीरनुं छेदन पामशे. (तेआगंतुभेयाए के०) ते आगमिक कालें भालादिके करी पोताना शरीरनु भेदन पामशे, (जावतेआगंतु के०) यावत् ते जीव आगमिक कालें (जाइजरामरण जोणिजम्मणं के०) जाति, जरा, मरण, तथा नवी नवी योनी मांहे उपजवु, तथा जन्मना डुःख (ससारके०) एरीतें संसार माहे परिभ्रमण करता (पुणनव के०) वली वली नव नवा भवनुं करवु, (गप्भवास के०) वली वली गर्भवास माहे वसवुं, एरीतें (भवपवंच के०) संसारनो प्रपंच एटले ससारनो विस्तार, (कलंकलि के०) कलकलाट एटले डुःखें करी व्याकुल पणुं, तेना (भागिणोभविस्सति के०) विभागी थशे ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका-(पुरिसेयत्ति) एक कश्चित्पुरुष साग्निकानां ज्वलतामंगाराणा प्रतिपूर्णा (पाइ) पात्री अयोमयेन लोहमयेन सदंशकेन गृहीत्वा तेषा ढौकितवान् उवाच । भो प्रावाडुका ! इदमंगारभृतं भाजन एकैक मुहूर्तं प्रत्येक बिभृत यूयं ? । नचेदं संदंशक सासारिकं नापि चाग्निस्तंभन विदध्यु । नापिच साधर्मिकानामग्निदाहोपशमादिना उपकार कुर्युरिति । ऋजवोमायामकुर्वाणा पाणि प्रसारयत तेपि तथैव कुर्यु ततोसौ नर स्तद्भाजन तत्पाणौ समर्पयति । तेपि च दाहभयाध्दस्तं सकोचयंति । ततोसौ पुरुषस्तान् प्राह किमिति पाणि संहरत यूयं ? । ते प्राहुर्दाहभयात् । नर प्राह । दग्धेन हस्तेन किंभावि ? । डुःखमिति चेदेव यूयं दाहोत्पन्नडुःखभीरव सुखलिप्सव । एव सति सर्वेपि जतव ससारवर्तिनएवविधाएवेति आत्मतुलया आत्मतुल्यत्वेन यथा मम डुःखं

वर्ततेऽतोन मोहविपाकस्वनावा क्षुदिति । तदेव व्यवस्थिते यत्कैश्चिदाग्रहगृहीतैरनि धीयते यथा प्रवर्त्यते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयोन हीयंते जगडुपकृतावनंतं वीर्यं किं गततृपो शुक्तिस्तदेतत् प्लवते यतश्छद्मस्थावस्थायामप्येतदस्तीति तत्रापि किमिति झुंक्ते तत्र सम स्तवीर्यातरायक्ष्याचावान्मुक्तिसद्भावइतिचेत्तदयुक्त । यतः किं तत्रायुपोपवर्तनं स्यात् किंवा चतुर्णां ज्ञानानां काचिद्धानि स्याद्येन न शुक्तिरिति । तस्माद्यथा दीर्घकालस्थितेरायुष्कं कारणमेवमाहारोपि । यथा सिद्धिगतेर्व्युपरतक्रियस्य ध्यानस्य चरमक्षण कारणमेवं सम्य क्त्वादिकमपीति । अनंतवीर्यतापि तस्याहारग्रहणे सति न विरुध्यते । यथा तस्य देवछंदा दीनि विश्रामकारणानि गमनविषीदनानिच नवत्येवमाहारक्रियापि विरोधाच्चावान्नह्यत्र वलवत्तरवीर्यवतोऽल्पीयसी क्षुदिति । एवच स्थिते यत्किंचिदेतत् । अपि चैकादशपरीषहावे दनीयकृता जिने प्राङ् ष्यति । अपरेतु एकादशज्ञानावरणीयादिकृतास्तत्क्षयेऽपगता इती यमप्युपपति केवलिनि शुक्तिं साधयति । तथाहि । क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाश्यादिरि ति स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाञ्चालानरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञानदर्शना नीत्येते द्वाविंशतिर्मुमुक्षुणा परिसोढव्या परिषहास्तेषाच मध्ये ज्ञानावरणीयोद्भौ प्रज्ञा ज्ञानाख्यौ दर्शनीयमोहनीयसंनवोदर्शनीयपरिषहोंतरायोद्भोजानपरिषहोस्ति । चारित्र हनीयसनूतास्त्वमी नामोयारतिस्त्रीनिषद्यायाञ्चासत्कारपुरस्कारा । एते चैकादशापि जिने केवलिनि न संनवति तत्कारणानामपगतत्वात् । नहिकारणानावे क्वचित्कार्योपपत्ति । शेपास्त्वेकादश जिने संनवति तत्कारणस्य वेदनीयस्य विद्यमानत्वात् । तेचामी क्षुत्पि पासाशीतोष्णदंशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्या । एतेच वेदनीयप्रनवास्तत्र केव लिनि विद्यंते । नच निदानानुच्छेदे निदानिनच्छेद. संनाव्यते अत.केवलिनि क्षुद्वेदनी यादिपीडा संनाव्यते । केवलमसावनंतवीर्यत्वान्न विव्हलीनवति । नचासौ निष्ठितार्थो नि प्रयोजनमेव पीडामधिसहते । नच शक्यते वक्तुमेवनूतमेव तस्य नगवत. शारीरं यद्वत क्षुत्पीडा न बाधते आहारमतरेण वर्तते यथास्वनावेनैव प्रस्वेदादिरहितमेव प्रक्षेपाहार रहित इत्येतच्चाप्रमाणकत्वादपकर्णनीयं । अपिच केवलोत्पत्ते प्राग्भुक्तेरभ्युपगमात्केव लोत्पत्तावपि तदेवौदारिक शरीरमाहाराद्युपसंस्कार्यमथान्यथानाव कैश्चिदुच्यते असाव पि शुक्तिरहितत्वादभ्युपगममात्रकएवेति । तदेव देशोन पूर्वकोटिकालस्य केवलस्थिते स नवादौ दरिकशरीरस्थितेश्च यथायुष्क कारणमेव प्रक्षेपाहारोपि । तथाहि । तैजसशरीरेण मृडुकृतस्यान्यवत्ह्तस्य द्रव्यस्य स्वपर्यायैर्या परिणामितस्योत्तरोत्तरपरिणामक्रमेणौदारिक शरीरिणामनेन प्रकारेण क्षुडनवो नवति वेदनीयोदये सतीव च सामग्री सर्वापि नगवति केवलिनि संनवति तत्किमर्थमसौ न शुंक्ते नच घातिचतुष्टयस्य सहकारिकारणनावोस्ति येन तदनावात्तदनावइत्युच्यते । तदेव ससारस्थाजीवाविग्रहगतौ जघन्येनैकं समयं उत्क

त्कातजावस्थायां प्राभुवति तथा ससारप्रपंचातर्गतास्तेजोवायुपूचैर्गोत्रो ह्रजनेन कलं कलीनावनाजोनवति वहुशोनविप्यंति च ॥ ८१ ॥

ते वहुणं दंमणाण वहूणं मुंमणाण तज्जणाणं तालणाणं अडुवधणाणं जाव घोलणाण माइमरणाणं पितामरणाणं नाइमरणाणं नगिणीमरणाण नज्ञापुत्तधूत्तसुएह्नामरणाण दारिद्दाणं दोह्ग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविप्पउगाणं वहुण डुक्कदोमणस्साण आनागिणो नविस्सति अणाढियंचणं अणवयग्ग दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं नुज्जोनुज्जो अणुपरियट्टिसंति ते णोसिज्झिस्संति णोवुज्झिस्संति जाव णोसवडुस्काण अंतं करिस्संति एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेय तुल्ला पत्तेय पमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ ८२ ॥

अर्थ-(तेवहूणदमणाण के०) ते जीव घणा दंमाशे, (वहूणमुंमणाणं के०) ते जीव घणा शरीरादिके मुंमाशे, (तज्जणाण के०) अगुलीयादिकनी तर्जना पामशे, (तालणाणं के०) दंमादिके ताडना पामशे, (अडुबंधणाणं के०) बंधीखानाना बंधन पामशे. (जावघोलणाण के०) यावत् आंबानी पेठें घोलाशे, (माइमरणाण के०) ते जीव माताना मरणना डुःखने पामशे, (पितासरणाण के०) पिताना मरण, (नाइमरणाणके०) नाइनां मरण, (नगिणीमरणाणके०) वेहेनना मरण, (नज्ञापुत्तधूतसुएह्ना मरणाणके०) नार्याना मरण, पुत्रना मरण, दीकरीना मरण, पुत्रनीवहुना मरण थशे, तेने देखीने डुःख पामशे, डुःखी थशे, ते पुरुष, (दारिद्दाणके०) दरिद्री थशे, (दोह्ग्गाण के०) र्दौर्नागी थशे, (अप्पियसवासाणके०) अप्रियकारीयो साथे तेनो सवास थशे, (पियविप्पउगाण के०) ते प्राणी प्रियकारी वस्तुनो विप्रयोग एटले वियोग पामशे, (वहूणडुक्कदोमणस्साण के०) घणां डुःख अने दौर्मनस्य पणानो (आनागिणोनविस्संति के०) विज्ञागी थशे, तेपुरुष, (अणादियंचण के०) आदि रहित, (अणवयग्गं के०) अंत रहित, (दीहमद्ध के०) दीर्घकालपर्यंत एटले घणाकालसुधी (चाउरत्तससारकतार के०) चारगतिरूप अंत अवयवछे जेने विषे तेने चाउरत्त कहियें एवी संसार रूप अटवी तेने विषे, (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (अणुपरियट्टिस्सति के०) परिज्रमण परावर्त्तन करशे, (तेणोसिज्झिस्संति के०) ते पापमी जीव सीजशे नही, एटले पोताना कार्यनी सिद्धि करशे नही, (णोवुज्झिस्सति के०) लोकालोकना स्वरूपने वुजशे नही, (जावणोसवडुक्काणअंतकरिस्सति के०) यावत् ते प्राणी सर्वडुःखनो अंत क

शेवालजबालादेरुदकवदिति। तथा पृथिव्या संजव सदा नवन येषां वनस्पतीनां तथा। इदमुक्तं नवति न केवलं ते सद्योनिकायस्थितिकाश्चेति। तथा पृथिव्यामेव विविधमुत्प्राबल्येन क्रम क्रमण येषा ते पृथिव्युक्रमा.। इदमुक्त नवति। पृथिव्यामेव तेषामूर्ध्व क्रमणलक्षणाद्द्विर्नवति। एवच ते तद्योनिकास्तत्संजवास्त व्युक्रमाइत्येतदनूद्याप्यपर विधातुकामआह। (कम्मोवगाइत्यादि) तेहि तथाविधेन वनस्पतिकायसन्नवेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तेष्वेव वनस्पतिरूपसामीप्येन तस्यामेव च पृथिव्या गच्छंतीति कर्मोपगाजएयंते। तेहि कर्मवशगावनस्पतिकायादागत्य तेष्वेव पुनरपि वनस्पतिरूत्पद्यंते न चान्यत्रोत्ताश्चन्यत्र नविष्यंतीति। उक्तच। कुसुमपुरोप्ते बीजे, मथुराया नाकुर समुद्भवति॥ यत्रैव तस्य बीज तत्रैवोत्पद्यते प्रसव। तथा ते जीवा. कर्मनिदानेन कारणेन समाकृष्यमाणास्तत्र वनस्पतिकाये वा व्युक्रमा समागता संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीष्वित्यन्येषामपि पसा कायानामुत्पत्तिस्थानजूतासु सचित्ताऽचित्तमिश्रासु वा श्वेतकृष्णादिवर्णतिक्तादिरससुरन्यादिगंधमृडुकर्कशादिस्पर्शादिकैर्विकल्पैर्बहुप्रकारासु नूमिषु वृक्षतया विविध वर्तते तेच तत्रोत्पन्नास्तासा पृथिवीना स्नेह स्निग्धनावमादद्ते सएवच तेषामाहारइति। नच ते पृथिवीशरीरमाहारयत पृथिव्या पीडामुत्पादयति॥२॥ एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतीनामायोज्यं। अत्रच पीडानुत्पादनेऽयं दृष्टांत। तद्यथा। अडोनवाद्याजीवामातुरुष्मणा विवर्धमानागर्नस्याएतोदरगतमाहारयत्तोनातीव पीडामुत्पादयंत्येवमसावपि वनस्पतिकाविक पृथिवीस्नेहमाहारयन्नातीव तस्या पीडामुत्पादयति उत्पद्यमान समुत्पन्नश्च वृद्धिमुपगतोऽसदृशवर्णरसाद्युपेतत्वात् बाधा विदध्यादपीति। एवमप्कायस्य जौमस्यांतरिक्षस्य वा शरीरमाहारयति तथा तेजसोनस्मादिक शरीरमाददति। एव वाय्वादेरपीति द्रष्टव्य। किंबहुनोक्तेन नानाविधानां त्रसस्थावराणा प्राणिना यच्छरीरं तत्ते समुत्पद्यमानाश्चित्तमपि स्वकायेनावष्टभ्य प्रासुकीकुर्वंति। यदिवा परिविध्वस्त पृथिवीकायादिशरीर किंचित्परितापित कुर्वंति ते वनस्पतिजीवाएतेषा पृथिवीकायादीना तच्छरीरं पूर्वमाहारितमिति तैरेव पृथिवीकायादिनिरुत्पत्तिसमये आहारितमासीत् स्वकायत्वेन परिणामितमासीत्। तदधुना वनस्पतिजीवास्तत्रोत्पद्यमानाउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयत्याहार्यं च स्वकायत्वेन विपरिणामयति विपरिणामितं च तच्छरीर स्वकायेन सह स्वरूपता नीतं सत्तन्मयतां प्रतिपद्यते। अपराण्यपि मूलशाखाप्रतिशाखापत्रपुष्पफलादीनि तेषां पृथिवीकायिकाना वृक्षाणा नानावर्णानि। तथाहि। स्कंधस्यान्यथाजूतोवर्णोमूलस्य चान्याद्दनाइति। एव यावन्नानाविधशरीरेषु पुजलविकुर्वितास्ते नवतीति। तथाहि। नानारसवीर्यविपाकानानाविधपुजलोपचयात्सुरूपकुरूपसंस्थानास्ते नवतीति। तथा दृढाल्पसंहनना कृशस्थूलस्कधाश्च नवत्येवमादिकानानाविधस्वरूपाणि विकुर्वत्तीति स्थितं। केषां

ला तदेतडुपमानं यथा सावद्यानुष्ठानपरायणा सावद्यभाषिणश्च कुप्रावचनिकान सिध्यंत्ये व स्वयूथ्या अप्यौद्देशिकादिपरिभोगिनोन सिध्यंतीति। तदेतत्प्रमाण प्रत्यक्षानुमानादिक। तथाहि। प्रत्यक्षेणैव जीवपीडाकारि चौर्यादिर्बंधनान्न मुच्यते। एवमन्येपीत्यनुमानादि कमप्यायोज्यं। तथा तदेतत्समवसरणमागमविचाररूपमिति प्रत्येकच प्रतिप्राणि प्रतिप्रा वाडुकमेततुलादिकं डृष्टव्यमिति ॥ ८२ ॥

तत्थणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेति सव्वे पाणा स व्वेभूया सव्वेजीवा सव्वेसत्ता णहंतवा णअज्ञावेयवा णपरिघेतवा णउद्दवेय वा तेणो आगंतुछेयाए तेणोआगंतुभेयाए जाव जाइजरामरणजोणि जम्मण ससारपुणभ्भवगभ्भवासभवपवं कलंकलीभागिणो भविस्संति तेणोवहूणं दंभणाणं जाव णोवहूणं मुंभणाणं जाव वहूणं डुक्कदोमण स्साण णोभागिणो भविस्सति अणादियंचण अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकतारे भुज्जोभुज्जो णोअणुपरियट्टिस्संति तेसि स्सिज्झति जाव सव्वडुक्काणं अंतं करिस्संति ॥ ८३ ॥

अर्थ–त्यांजे श्रमण ब्राह्मण, सर्व जीवने पोताना आत्मा समान लेखवीने एवो धर्म कहेशे, यावत् प्ररूपशे, के सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्व जीव, सर्व सत्वने हणवा नही, एकांतदया पालवी, यावत् सर्व सत्वने उपद्रववा नही, ते पुरुषो, आगमिक काले पोताना शरीरनुं छेदन नहीं पामशे, ते आगमिक काले भेदन नही पामशे, ते पुरुष यावत् जाति, जरा, मरण, वली वली योनीमांहे उपजवु, जन्मनुं डुःख, संसारमांहे परिभ्रमण करवु, वली वली गर्भवास मांहें वसवु, ससारनो विस्तार प्रपंच, तथा कलकलाट तेनो विभागी नहीं थशे. ते पुरुष, घणो दंभाशे नहीं, यावत् डुःख दौर्मनस्य पणानो विभागी नहीं थशे, आदिरहित अंतरहित दीर्घ पंथछे, एटले दीर्घ काल पर्यंत चारगति रूप संसार, तद्रूप अटवीने विषे वली वली परिभ्रमण परावर्त्त नही करशे. ए रीते दया धर्मना प्ररूपनार पुरुषो सीजशे कार्यसिद्धि करशे, यावत् सर्व डुःखनो अंत करशे. ॥ ८३ ॥

॥ दीपिका–अथैतद्विपरीतानाह। (तत्थणति) तत्र ये ज्ञातव्या श्रमणमाहनास्ते ए वमाख्यांतीत्यादि सर्वं पूर्वसूत्रविपरीतं वाच्य ॥ ८३ ॥

॥ टीका–ये पुनर्विदिततत्वाआत्मौपम्येनात्मतुलया सर्वजीवेष्वहिंसां कुर्वाणा आत्मा चक्षते। तद्यथा सर्वेपि जीवाडुःखद्विष सुखलिप्सवस्ते न हंतव्याइत्यादि। त [illegible] वैपापे दंडनादिक सप्रतिषेध भणनीय [illegible] पिरे [illegible] ते व्यतिक्रमिष्य [illegible] परि

पक्रमजेनो (कम्मोवगाके०) कर्मना वशं गत वनस्पतिकायथी आवी वली तेहीज वन स्पतिकायने विपे (कम्मनियाणेण के०) कर्मना कारण थकी आकर्पिता (तव्वुक्कमा के०) त्यां आव्या छता (पुढवीजोणिएहिंरुरक्केहिं के०) पृथ्वीयोनिक वृक्षनी पेठे (रुरकत्ताएविउट्टंतिके०) वृक्ष पणे उपजे ते जीव तेहीज पृथ्वीयोनिक वृक्षनो स्नेह आहार आहारे, तेणे करी उपचय पामे. हवे ते जीवो शुं आहारे ? तोके पृथ्वी, अप, तेज, वायु अने वनस्पतिना शरीर, तथा नाना प्रकारना, त्रस स्थावर जीवोनां शरीर, अचित्त करें ; परतु तेने पीडा न उपजावे, परिविध्वस करे ते शरीरने पूर्वे आहारयुं ते, अथवा हमणा उपजता आहारेछे, अथवा उपना पछी आहारेछे, त्वचाने स्पर्श करी आहारीने परिणमावीने, पोतानी काया सरखा रूप करे इत्यादिक बीजुं सर्वे पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–पूर्वं पृथिव्या ये वृक्षाउत्पद्यंते ते उक्ता । अत्र तु वृक्षेष्वेव ये वृक्षाजायते तान् वक्ति (अहावरति) अथापरमेतदाख्यात पुरार्हता । इहैके सत्वावृक्षएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेपा ते वृक्षयोनिकावृक्षा. । इहच पूर्वं पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेषु कथितं यत्तदेवात्र व्याख्येय पूर्ववत् ॥ ३ ॥

॥ टीका–साप्रत तद्योनिकेष्वेव वनस्पतिपु अपरे समुत्पद्यंतऽत्येतद्दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) सुधर्मस्वामी शिष्योद्देशेनेदमाह । अथापरमेतदाख्यातं पुरा तीर्थकरेण । यदिवा तस्यैव वनस्पते. पुनरपर वक्ष्यमाणमाख्यात । तद्यथेहास्मिन् जगत्येके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिन सत्वा प्राणिनोवृक्षाएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेपा ते वृक्षयोनिका. । इहच यत्पृथिवीयोनिकेपु वृक्षेष्वभिहित तदेतेष्वपि वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिषु तदुपचयकर्तृ सर्वमायोज्य यावदाख्यातमिति ॥ ३ ॥

अहावर पुरक्काय इहेगतिया सत्ता रुक्कजोणिया रुक्कसंभवा रुक्कवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्त वुक्कमा रुक्कजोणिएसु रुक्कत्ताए विउट्टति ते जीवा तेसिं रुक्कजोणियाण रुक्काण सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइसरीर तसथावराण पाणाण सरीर अचित्त कुव्वति परिविद्धत्थ त सरीर पुव्वाहारिय तयाहारियं विपरिणामिय सारूविकडं सत ते अवरेवि यणं तेसि रुक्कजोणियाण रुक्काण सरीरा णाणावन्ना जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवतीति मरकायं ॥ ४ ॥

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखने अर्थे पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणिये. त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रिया स्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका–तथा एतस्मिन् त्रयोदशे क्रियास्थाने धर्मपक्षावतार । ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यतीत्यादि । तदेव संनिकृष्टद्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थ आत्मार्थ सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महित. आत्मा गुप्तोयस्य सतथा आत्मयोग कुशलमन प्रवृत्तिरूप स यस्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रम स्वय संयमानुष्ठानप्रवृत्त । आत्मा रक्षितोदुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षित आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते ऽत्यात्मानुकंपक (आयनिप्फेडएत्ति) आत्मान संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेभ्य प्रतिसंहरेत्सामहापुरुष । इतिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागच्छाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीय श्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्य द्वितीयमध्ययन समाप्तं ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रत त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एतस्मिंस्त्रयोदशे क्रियास्थाने वर्तमानाजीवा सिद्धा सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वदुःखानामंत करिष्यतीति स्थितं । तदेव संनिकृष्ट पौंडरीकाध्ययनेऽभिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जक अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशातआत्मनोवार्थ आत्मार्थ सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेभ्योरक्षति स आत्मार्थ्यात्मवानित्युच्यते । हिताचाराश्चर्यारादयोनात्मवतोऽयंत्वात्महितऐहिकामुष्मिकापायभीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा । एतडुक्त भवति । स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोग कुशलमन प्रवृत्तिरूपआत्मयोग सयस्यास्ति । सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थ । तथात्मा पापेभ्योदुर्गतिगमनादिभ्योरक्षितोयेन सतथा दुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिभाव । तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुभानुष्ठानेन सद्गतिगामिन विधत्तइति । तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति । तथात्मानमनर्थभूतेभ्योद्वादशेभ्य क्रियास्थानेभ्य प्रतिसंहरेत् । यदि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेभ्य प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेभ्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संभाव्यतइति । इति परि

लपत्रपुष्पफलबीजजूतेषु दशसु स्थानेषु जीवा. समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षव्युत्क्रमाश्चोच्यंते इति । शेषपूर्ववत् । इहच प्राक्चतुर्विधार्थप्रतिपादकानि सूत्राण्यनिहितानि । तद्यथा । वनस्पतय. पृथिव्याश्रितान्नवतीत्येकं तच्छरीर १ अप्कायादिशरीर वाऽहारयंतीति द्वितीयं २ तथा विवृद्धास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंतीति तृतीयं ३ अन्यान्यपि तेषा पृथिवीयोनिकाना वनस्पतीना शरीराणि मूलस्कंधकंदादीनि नानावर्णानि नवतीति चतुर्थं ४ एवमत्रापि वनस्पतियोनिकाना वनस्पतीनामेवविधार्थप्रतिपादकानि चतु प्रकाराणि सूत्राणि इष्टव्यानीति यावत्ते जीवावनस्पत्यवयवमूलस्कंधादिरूपा कर्मोपपन्नगानवत्येवमाख्यातं ॥ ४ ॥

अहावर पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंनवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संनवा तछवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तछ वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए वीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइ णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाण सरीरं अचित्त कुव्वंति परिविद्धछ तं सरीरगं जाव सारूविकडं सत अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाण मूलाणं कंदाणं खंधाणं तयाणं सालाण पवालाणं जाव वीयाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जाव णाणाविहसरीरं पुग्गल विउवित्ता ते जीवा कम्मोववन्नगा नवंतीति मक्खायं॥५

अर्थ–अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युछे. आ जगत् मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक तथा अन्य तेना अवयवरूप प्राणी उपजे तथा जे एक वनस्पतिनो जीव सर्व वृक्षना अवयव व्यापारें, अन्य जीव वली तेना अवयव व्यापारे, ते वृक्षने विषे मूल पणे, कंद पणे, स्कंध पणे, त्वचा पणे, शाखा पणे, पत्र पणे, फूल पणे, फल पणे अने बीज पणे, प्रवाल एटले अंकुरपणे, एटला स्थानके उपजे ते जीव त्यां उपजता वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु यावत् ते जीव मूल कंदादिक वनस्पतिना अवयवरूप कर्म तेने वशें त्या उपजे एम श्रीतीर्थंकरे कह्युछे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका–अथवृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अहावरमिति) अथापरमेतदाख्यातं । इहैके सत्वावृक्षयोनिका स्यु । तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंजस्य उपचयकारिण

नेद होय. (एवमाहिज्जंइ के०) ते आ प्रकारे तीर्थंकरे कह्या. (तंजहा के०) ते कहेछे (अग्गबीया के०) जेने अग्रे बीज उपजे ते अग्र बीज कहेवाय ते तिल, ताल, सह कारादिक अथवा शाल्यादिक जाणवा, तथा जे अग्र तेने विषे उत्पत्तिना कारणने पामे तेपण, अग्र बीज कहेवाय, ते कोरंटकादिक जाणवा; एटले ए प्रथम नेद जाणवो तथा (मूलबीयाके०) आईकादिक ए बीजो नेद जाणवो, (पोरबीयाके०) पर्व बीज ते सेलडी प्रमुख, ए त्रीजो नेद जाणवो (स्कंधबीयाके०) स्कंधबीज ते सालरा नाग र्जुन प्रमुख, ए चोथो नेद जाणवो. (तेसिचणके०) ते चार प्रकारना वनस्पतिकाय (अ हाबीएणके०) यथा जे जेनु बीज उत्पत्ति कारण, ते यथा बीज एटले ते तेनु बीज जाणवु. जेम शालीना अंकुरनुं शाली बीज उत्पत्ति कारणछे, एम अन्यत्र स्थानके पण जाणी लेवु (अहावगासेण के०) तथा जे जेनो अवकाश एटले उत्पत्ति स्थानक पृथवी, पाणी, काल, आकाश, बीज, संयोग, एने यथावकाश कहिये. एम यथा बीजें तथा यथावकाशें करीने, (इहेगतियासत्ता के०) आ जगत्मांहे कोइ एक सत्व, तथाविध कर्मना उदय थकी, वनस्पतिने विषे उपजनार थतो उपजे, ते वनस्पतिने विषे उपजता (पुढवीजोणि याके०) पृथवीयोनिक थाय यद्यपि तेनुं वनस्पतिज बीज कारणछे परतु, आधार विना उत्पत्तिनो अनावछे, ते कारण माटें पृथवीयोनिक कह्या जेम गोवालादिक कर्दमना आ धारेछे, पण पृथ्वी विना थाय नही, एम आहीं पण जाणी लेवु (पुढविसंनवाके०) पृथ वीने विषे वनस्पतिकायनो संनवछे (पुढवीवुक्कमाके०) तथा पृथवीने विषे विविध एटले नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे जेनु ते पृथवीवुक्कमा कहिये एटले एम कह्युजे पृथवीने विषे ते वनस्पतिकायनी उपर उपर वृद्धिछे (तज्जोणिया के०) ते पृथवीयोनिक होय. (तस्संनवाके०) ते पृथवीने विषे वनस्पतिकायनो संनवछे, (तडुवकमाके०)ते पृथवीने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे,(कम्मोवगाके०)ते जीव तथाविध वनस्पतिकाय संनवि कर्म प्रेर्यमान थता त्यां वनस्पतिने विषे उपशमीप पृथवीने विषे जाय, ते कारणे एने कम्मो वगा कहिये, एटले ते जीव कर्मना वशांगत वनस्पतिकाय थकी आवीने वली तेज वनस्प तिकायने विषे उपजे,पण अन्यत्रथी आव्या अन्यत्र नउपजे. जेम कुसुम पुरिये वाव्यां एवां बीजोना मथुरायें अंकुरो नमले, ज्या जेहनुं बीज, त्याज तेना अंकुरोनी उत्पत्ति जाणवी (कम्मणियाणेणंके०) तथा ते जीव कर्मने कारणे आकर्षित (तडवुक्कमाके०) त्या पृथ विने विषे तथा वनस्पतिने विषे, वुक्कमा एटले आव्या थता (णाणाविहजोणितासुपुढ वीसु के०) नाना प्रकारयोनी पृथवीने विषे (रुक्खत्ताए के०) रूंख पणे (विउट्टंतिके०) उपजे, (तेजीवातेसिंणाणाविहजोणियाणंपुढवीण के०) ते जीव ते नाना प्रकार योनी पृथवीनो (सिणेहमाहारेंति के०) स्नेह आहारे तेहीज तेनो आहार. ते पृथवीना

त वनस्पतिशरीरमाहारयंति तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनां शरीरकमाहारयंति तथा तच्छरीरमाहारित सदचित्त विध्वस्त परिणामितमात्मसात्कृत स्वकायावयवतया व्यवस्थापर्यंत्य पराणिच तेषामध्यारुहाणा नानाविधरूपरसगंधस्पर्शोपेतानि नानासंस्थानानि शरीराणि नवंति ते जीवास्तत्र स्वकृतकर्मोपपन्ना नवतीत्येतदाख्यातमिति प्रथमं सूत्रं ॥ ६ ॥

अहावरं पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता अज्ञारोहजोणिया अज्ञारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेण तत्र वुक्कमा रुक्खजोणिएसु अज्ञारोहेसु अज्ञारोहत्ताए विउट्टति ते जीवा तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेति ते जीवा पुढवीसरीरं जाव सारूविकड संत अवरेवि यणं तेसि अज्ञारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरे कह्युछे, ते कहेछे जे प्रथम वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अध्यारोह कह्या,तेनेज विषे वली बीजा प्रदेश वृद्धिना करनार एवा अध्यारोह वनस्पति पणे उपजे , ते जीव अध्यारोह प्रदेशने विषे उपना ते वृक्षयोनिक अध्यारोहनो स्नेह आहारे इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवु. एटले अध्यारोहनु बीजुं सूत्र कह्यु ॥७॥

॥ दीपिका—प्राग्वृक्षयोनिकेषु वृक्षेष्वध्यारोहाउक्ता । अत्र तेष्वेवान्ये प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारोहवनस्पतित्वेन जायंते । तेच जीवाअध्यारोहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारोहजीवास्तेषा स्वयोनिनूतानि शरीराणि आहारयंति तत्र पराण्यपि पृथिव्यादिनि शरीराण्याहारयति अपराणि चाऽध्यारोहसनवानामध्यारुहजीवाना नानावर्णकादिकानि शरीराणि नवत्येवमाख्यातमिति द्वितीयं सूत्रं ॥ ७ ॥

॥ टीका—द्वितीय त्विदमथापर पुराख्यातं । ये ते प्राग्वृक्षयोनिषु वृक्षेषु अध्यारुहा' प्रतिपादितास्तेष्वेवोपरि प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारुहवनस्पतित्वेनोपपद्यंते । तेच जीवाअध्यारुहप्रदेशेषूपपन्नाअध्यारुहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराण्याहारयंति । तथाऽपराण्यपि पृथिव्यादीनि शरीराणि आहारयति अपराणि चाध्यारुहसनवानामध्यारुहजीवाना नानाविधवर्णकादिकानि शरीराणि नवतीत्येवमाख्यात ॥ ७ ॥

अहावर पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता अज्ञारोहजोणिया अज्ञारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा अज्ञारोहजोणिएसु अज्ञारोह

इक्षुप्रमुखा स्कंधबीजा सल्लक्यादय । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकायाइयाणं पचविहा बीजवक्कंति ॥ एवमाहिज्जइ त अग्गमूलपोर खधबीयरुहा ॥ छठाविएगंतियासं मुछिमाबीयाजायंते । यथा दवदग्धभूमौ हरितानि विविधानि उत्पद्यंते (तेसिचणंति) तेषां चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीज तद्यथा बीज तेन यथाबीजेन । को र्थ ? । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारण एवमन्यदपि ज्ञेयं । योयस्यावकाशोयद्यस्यो त्पत्तिस्थानं तद्यथावकाश तेन इह जगति एके केचन जीवावनस्पतौ उत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिका' पृथिवीसंभवा । कोर्थ ? । बीजाडुत्पद्यमानोवनस्पतिकाय पृथिव्याधारे समुत्पद्यते । यथा शैवलकर्दमादयोजलाधारे जायंते तथा वनस्पतयोभूमो जायंते इत्य र्थ । तथा पृथिव्या व्युत्क्रमोवृद्धिर्येषा ते तथा एव ते तद्योनिकास्तत्संभवास्तद्व्युत्क्रमा कर्मोपगा कर्मप्रेर्यमाणा· कर्मनिदानेन तत्र पृथिव्यां वनस्पतौ वा व्युत्क्रातात्रागता सं तोनानाविधयोनिकासु पृथिवीषु षण्णां कायाना उत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताचित्तमिश्रा सु वृक्षतया विवर्तंते जायंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तासा पृथिवीनां स्नेह स्निग्धभावमाहारंति गृह्णंति ॥१॥ तेच तत्रोत्पन्नाआहारंति पृथिवीशरीर । एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतिशरीर मपि । नानाविधानां त्रसस्थावराणा प्राणिना यच्छरीर तत्स्वकायेनाश्रित्याचित्त कुर्वंति । यदिवा परिविध्वस्त पृथिव्यादिशरीर पूर्वाहारितमिति पूर्वमुत्पत्तिसमये पृथिव्यादिभिरेव आहारितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारय ति आहार्यच स्वकायत्वेन विपरिणामितं स्वकायेन सह (सारूविकि) स्वरूपत· नीतं तन्मय स्यात् (अवरेवियत्ति) अपराण्यपि पृथिवीकाना वृक्षाणा शरीराणि नानाव र्णादीनि यथा स्कंधस्यान्योवर्णादिर्मूलस्यान्यएव एव यावन्नानाविधशरीरपुद्गलविकुर्विता· स्युः । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानापुद्गलोपचयात्सुरूपसस्थानाहृढाल्पसहनना श्च स्युरिति । ते जीवावनस्पतिकाया कर्मोत्पन्नाएव न पुन कालेश्वरादिना तत्रोत्पद्यत इत्याख्यातमर्हदादिभि ॥ २ ॥

॥ टीका–द्वितीयाध्यायनानंतरं तृतीयमारभ्यते । अस्य चायमभिसबंध । कर्मक्षपणा र्थमुद्यतेन भिक्षुणा "द्वादशक्रियास्थानरहितेनांत्यक्रियास्थानसेविना सदाहारगुप्तेन भवि तव्यं । धर्माधारभूतस्य शरीरस्याधारोभवत्याहार । सच मुमुक्षुणोद्देशकादिरहितोग्राह्य· । तेनच प्राय प्रतिदिन कार्यमित्यनेन संबंधेनाहारपरिज्ञाध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनु योग द्वाराण्युपक्रमादीनि भवति । तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्या तृतीय पश्चानुपूर्व्या पचम मानुपूर्व्यात्वनियतमित्यर्थाधिकार । पुनरत्राहार शुद्धाशुद्धभेदेन निरूप्यते । निक्षेपस्त्रि विधओघादिस्तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययन । नामनिष्पन्ने तु आहारपरिज्ञेति द्विपदनाम ।

स्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीजत्वेन जायंते ते तथा कर्मोपगानवंतीत्याख्यात मिति चतुर्थं सूत्रं ॥ ए ॥

॥ टीका–इदंतु चतुर्थकं । तद्यथा (अहावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं । तद्यथा इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारुहेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीज नावेनोत्पद्यंते तेच तथाविधकर्मोपगान्नवतीत्येतदाख्यातमिति शेषं तदेवेति ॥ ए ॥

अहावरं पुरकाय इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंनवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना नवंती तिमरकायं॥१०॥एव पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जावमरकाय ॥ ११ ॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं तणसरीरं च अहारेंति जावमरकायं ॥१२॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति तेजीवा जावएव मरकायं ॥१३॥ एव नुसहीणवि चत्तारि आलावगा ॥१४॥ एव हरियाणवि चत्तारि आलावगा॥१५॥

अर्थ–हवे वली वृक्ष वर्जीने बीजा वनस्पतिकायना विशेष आश्री कहेछे. हवे बीजुं स्थानक पूर्वे तीर्थकरें कह्युछे आ जगत् मांहे कोइ एक पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीनेविषे वनस्पतिकायनो संनवछे, पृथ्वीऽयुत्क्रमछे, यावत् नाना प्रकारे योनिक, पृथ्वीने विषे तृणपणे उपजे, ते पृथ्वीनो आहार आहारे इत्यादिक जेम वृक्षनो पहेलो आलावो कह्यो हतो, तेमज जाणवो एमज चार आलावा जेम वृक्षना कह्याछे, तेम तृणना पण जाणवा ॥ १० ॥ बीजे आलावे पृथ्वीयोनिक तृणनेविषे उपजे आगलनुं सर्व पूर्ववत् जाणवु, ॥ ११ ॥ त्रीजे आलावे तृणयोनिक तृणनेविषे तृणपणे उपजे शेषं पूर्ववत् जाणवु ॥ १२ ॥ चोथे आलावे तृणयोनिक तृणने विषे मूलकंदादिकने नावे उपजे शेषं पूर्ववत् जाणवु, ॥ १३ ॥ (एवउसहीणविचत्तारिआलावगा के०) एज रीतें उपधि एटले धान्यनी जाति तेना पण चार आलावा जाणवा ॥ १४ ॥ (एवहरियाणविचत्तारिआलावगा के०) एव हरितकाय आश्री पण चार आलावा जाणवा. ए सर्व मली ने बीश आलावा ॰॰ा ॥ १५ ॥

एत· समयत्रयं नवस्थकेवली च समुद्घातावस्थ समयत्रयमनाहारक शैलेश्यवस्थायां त्वन्तर्मुहूर्तं। सिद्धास्तु सादिकमपर्यंत कालमनाहारकाऽति स्थित। सांप्रत प्रथमाहारग्रहणं येन शरीरेण करोति तद्दर्शयति । जोएण कम्मएण, आहारेऽ अणतर जीवा ॥ तेण पर मी सेण, जीवसरीरस्स पज्जत्ती ,, ॥ ए ॥ (जोएणेत्यादि) ज्योतिस्तेजस्तदेव तत्र वा नव तैजस कार्मणेन चाहारयति। तैजसकार्मणे हि शरीरे आससारनाविनी ताभ्यामेवोत्पत्तिदेशं गताजीवा प्रथममाहार कुर्वंति तत परमौदारिकमिश्रेण वैक्रियमिश्रणेन वा यावच्छरीर निष्पद्यते तावदाहारयति । शरीरनिष्पत्तौ त्वौदारिकेण वैक्रियेण चाऽहारयतीति स्थितं। सांप्रत परिज्ञानिक्षेपार्थमाह । ” णामं ठवणपरिन्ना, दव्वनावेय होऽ नायव्वा ॥ दव्वपरिन्ना तिविहा, नावपरिन्ना नवे डुविहा,, ॥१०॥ (णाममित्यादि) तत्र नामस्थापना ड्व्यनावनेदात्परिज्ञा चतुर्धा । तत्रापि नामस्थापने सुखत्वादनादृत्य ड्व्यपरिज्ञा प्रतिपादयन् गाथापरार्द्धमाह । ड्व्यपरिज्ञेति । ड्व्यस्य ड्व्येण वा परिज्ञा सा च परिच्छेद्यड्व्यप्रधान्यात्तस्यच सचित्ताचित्तमिश्रनेदेन त्रैविध्यात्रिविधेति । नावपरिज्ञापि ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानन्नेदेन द्विविधेति । शेषास्त्वागमनोआगमज्ञशरीरव्यतिरिक्तादिकोविचार शस्त्रपरिज्ञावद्रष्टव्य । गतानिक्षेपनिर्युक्तिरधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेद । (सुयमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुत मयाऽऽयुष्मता तु नगवतेदमाख्यात । तद्यथा। आहारपरिज्ञेदमध्ययन तस्य चायमर्थ । प्राच्यादिषु दिक्षु सर्वतइत्यूर्ध्वाधोविदिक्षु च (सव्वावतित्ति) सर्वस्मिन्नपि लोके क्षेत्रे प्रज्ञापकनावदिगाधारनूतेऽस्मिन् चत्वारोबीजकायाबीजमेव कायोयेषां ते तथा । बीज वक्ष्यमाण । चत्वारोबीजप्रकारा समुत्पत्तिनेदान्नवति । तद्यथा । अग्रे बीज येषामुत्पद्यते ते तलतालीसहकारादय शाल्यादयोवा । यदिवाऽग्राएयेवोत्पत्तौ कारणता प्रतिपद्यते येषा कोरटादीना ते अग्रबीजास्तथा मूलबीजाआर्द्रकादय पर्वबीजास्त्विक्ष्वादय स्कंध बीजा सल्लक्यादय· । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकाइयाण पंचविहा बीजवक्कंती ॥ एवमाहिज्जऽ तंजहा अग्गमूलपोरुखंधबीयरुहाछठाविएगेदियासमुच्छिमाबीया जायंते । यथा दग्धवनस्थलीषु नानाविधानि हारितान्युन्नवति पद्मिन्योवाऽनिनवतडागादाविति । तेषां च चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजमुत्पत्तिकारण तद्यथाबीजं तेन यथा बीजेनेति । इदमुक्तं नवति । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारण । एवमन्यदपि ड्रष्टव्यं । यथावकाशेति । योयस्यावकाश यद्यस्योत्पत्तिस्थानमथवा नूम्यंबुकालाकाशबीज संयोगाययथावकाशो गृह्यते तेनेति । तदेव यथाबीज यथावकाशेन चेहास्मिन् जगत्येके केचन सत्वाये तथाविधकर्मोदया द्वनस्पतिपूत्पित्सवस्तेहि वनस्पतावुत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिका नवति यथा तेषां वनस्पतिबीज कारणमेवमाधारमतरेणोत्पत्तेरनावात्पृथिव्यपि

वनस्पतिपणे, कंडुकनामा वनस्पतिपणे, उवहिणिकानामा वनस्पतिपणे, निर्वेहणीय नामा वनस्पतिपणे, सछत्रपणे, छत्तगत्ताए पणे, वासाणितापणे, कुरुनामा वनस्पति पणे, उपजे. ते जीव तेहीज नानाविध योनिक पृथ्वीनो स्नेह आहारे ते जीव पृथिव्या दिकना शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे बीजा पण तेवा पृथ्वीयोनिक आयनामा वनस्पति यावत् कुरनामा वनस्पतिना शरीर जेवा रूप करे ते शरीर नाना प्रकारना वर्णवालां होय इत्यादिक यावत् पूर्ववत् नगवते कह्युं ए कुहण नामा वनस्पतिनो विशेष ते आश्री एकज आलावो जाणवो. कारण के, ते योनिक बीजा नथी, तेथी एना शेष त्रण आलावा नथी. एनुं विशेष श्रीपन्नवणा थकी जाणवुं. एव सर्व मली एकवीश आलावा पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्या ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आर्यादयोवनस्पतिविशेषालोकतोज्ञेया । कुहणेषु तु एकएवालापकोवाच्य । शेषास्त्रयोन संति तद्योनिकानामन्येषामन्नावादिति ॥ १६ ॥

॥ टीका—इह चामी वनस्पतिविशेषालोकव्यवहारतोऽनुगंतव्या प्रज्ञापनातोवावसेया इति । अत्रार्थे सर्वेषामेव पृथिवीयोनिकत्वात्पृथिवीसमाश्रयत्वेनाभिहिता । इह च स्थावराणा वनस्पतेरेव प्रस्पष्टचैतन्यलक्षणत्वात्तस्यैव प्राक्प्रदर्शित चैतन्य ॥ १६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंनवा जाव कम्मनियाणेण तब वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाण उदगाण सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीर जाव सत अवरेवियण तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाण सरीरा णाणावण्णा जावमस्काय जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाण उसहीण हरियाणं चत्तारि आलावगा नणियव्वाएकेक्के तहा उदगजोणियाण रुक्खाणं इक्के ॥ १७ ॥

अर्थ—हवे अप्कायथोनिक वनस्पतिनुं विशेष देखाडेछे ते अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकर देवें कह्युंछे, ते कहेछे आ जगत् माहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदक संनव शैवलादिक वनस्पति ते जीव,यावत् कर्मने उदये नानाविध योनिक पाणीने विषे वृक्षपणे उपजे त्या उपना छता नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे पृथ्वीकायादिकनुं शरीर आहारे. इत्यादिक यावत् बीजुं सर्व पूर्वनी पेठें जाणवुं ए जेम पूर्वे पृथ्वीयोनि कवृक्षना चार आलावा कह्या, तेम आहीं पण अप्कायथोनिक वृक्षना चार आला

चित्राक्यादीनां वनस्पत्याद्या स्थावरजीवाएव न भवतीति अतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह् ।(ते जीवाइत्यादि) ते वनस्पतिपूत्पन्नाजीवाउपयोगलक्षणत्वाज्जीवाना । तेषामप्याश्रयोत्स र्पणादिकया क्रिययोपयोगोलक्ष्यते । तथा विशिष्टाहारोपचयाऽपचयाभ्या शरीरोपचयाप चयसद्भावादनेकजीवा स्थावरास्तथा छिन्नप्ररोहणात्स्वापात्सर्वत्वगपहरणे मरणादित्येव मादयोहेतवोऽत्र इष्टव्या ।यदत्र कैश्चित्स्पृष्टेपि वनस्पतीना चैतन्ये सिद्धानैकांतिकत्वादिक मुक्तं स्वदर्शनानुरागात्तदपकर्णनीय। नहि सम्यगार्हतमताभिज्ञोसिद्धविरुद्धानैकांतिकोपन्या सेन व्यामोह्यते सर्वस्य कथंचिदभ्युपगतत्वात्प्रतिषिद्धत्वाच्चेति ते जीवास्तत्र वनस्पतिषुतथा विधेन कर्मणा उपपन्नगा । तच्चेदं एकेंद्रियजातिस्थावरनामवनस्पतियोग्यायुष्कादिकमिति तत्कर्मोदयेन तत्रोत्पन्नाउच्यंते न पुन कालेश्वरादिना तत्रोत्पाद्यंते इत्येवमाख्यात तीर्थ करादिभिरिति । एवतावत्पृथिवीयोनिकावृक्षाअभिहिता ॥ २ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवु क्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तत्त वुक्कमा पुढवीजोणिएहि रुक्खेहि रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढवी जोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आ उतेउवाउवणस्सइसरीरं णाणाविहाण तसथावराण पाणाण सरीरं अचि त्तं कुवंति परिविद्धत्थं त सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सा रुविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुक्खजोणियाण रुक्खाणं सरीरा णाणाव न्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविह सरीरपुग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवतीतिमक्खायं ॥ ३ ॥

अर्थ–हवे तद्योनिक वनस्पतिने विषे अन्य बीजा जीव उपजे, ए देखाडेछे, श्री सु धर्मस्वामी श्री जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, वली वनस्पतिनो (अहावरपुरक्खाय के०) अ पर एटले बीजो प्रकार, पूर्वे श्री तीर्थंकर देवे कह्योछे, ते हवे कहेछे. (इहेगतिया के०) कोइ एक (सत्ता के०) जीव प्राणी. (रुक्खजोणिया के०) वृक्षज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणेज उपजे (रुक्खसंभवा के०) ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे (रुक्खवुक्कमा के०) तथा वृ क्षने विषे नाना प्रकारे प्रबल पणे संक्रमण छे जेनो, एटले वृद्धिछे (तज्जोणिया के०) तद्योनिकछे, (तस्संभवा के०) तत्संभवछे, (तडुवक्कमा के०) तेना सरखोछे उ

जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसि उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खल छिन्नगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं एगोचेव आलावगो ॥१८॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरे कह्युछे. आ जगत् माहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे वनस्पतिकायनो संभव, यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या थका नानाविध योनिक उदकने विषे उदक पणे, अवनक पणे, पणग एटले पन्य पणे, सेवाल पणे, कलंबुक पणे, आहडपणे, कसेरुग पणे, कच्छभाण पणे, उत्पलनामा कमलनी जाति पणे, लाल वर्णे सूर्यविकाशी कमलनी जाति पणे, चंद्रविकासी कमलनी जाति पणे, नलिन कमलनी जाति पणे, सुभग कमल पणे, सुगंध कमलनी जाति पणे, पुंडरीक एटले धवलश्वेत कमलनी जाति पणे, महापुंडरीक एटले अत्यंत धवलश्वेत कमलनी जाति पणे,सो पांखडीछे जेनी एवा कमलनी जाति पणे पुष्कर जे थकी पान निकले ते पणे उपजे, हजार पांखडी छे जेनी एवा कमलनी जाति पणे, एम कल्हारनी जाति पणे, कोकणा पणे, अरविंद कमल पणे, तामरस कमल पणे, बीस मृणाल पणे, पुष्कर पणे, उपजे , एटले एवा एवा भावे उपजे, ते जीव नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् कहेवु एनो एकज आलावोछे, पण बीजा आलावा नथी ए उदक योनिक वनस्पतिनाएकवीश आलावा, एम वधामळी वनस्पतिकायना वेहेंतालीश आलावा थया ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–एतेषामुदकाकृतीनामवकपनकादीनामन्यस्य प्रागुक्तविकल्पस्याभावादेक एवालापक स्यात् । एते जलाश्रिता कलंबकाहडादिवनस्पतयोलोकतोज्ञेया ॥ १८ ॥

॥ टीका–एतेषा हि उदकाकृतीना वनस्पतिकायाना तथावयवपनकशैवलादीनामपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पस्याभावादिति । एते च उदकाश्रयावनस्पतिविशेषा कलंबुकाहडाद योलोकव्यवहारतोवसेयाइति ॥ १८ ॥

अहावरं पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं अज्झारोहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं अज्झारुहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं पुढविजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एव उसहीहिं वि तिन्नि आलावगा एव हरिएहिं वि तिन्नि आ

अर्थ—हवे वनस्पतिना अवयवोनो अधिकार कहेले (अहावरंपुरक्कायं के०) अथ हवे अपर स्थानक तीर्थंकरे कह्युछे, ते कहेछे. आ जगत् माहे कोइ एक जीव, वृक्ष ज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, वृक्षने विषेज जेनो सन्नवछे, एटले वृक्षिछे वृक्षने विषेज जेनुं नाना प्रकारे संक्रमणछे, ते योनिक ते सन्नवछे कर्मना वशगत वनस्पतिकाय थकी आवी वली तेज वनस्पतिने विषे कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता, वृक्षयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणे उपजे ते जीव तेहज वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे,ते जीव आहारे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, अने वनस्पति कायना शरीर, त्रस अने स्थावर प्राणीनां शरीर अचित्त करे परिविध्वस्त करे ते वनस्पतिना जीव पृथ्वीकायादिकनुं जे शरीर पूर्वे आहार्युं, तथा हमणा उपजता अथवा उपना पछी जे आहारेछे, ते त्वचाने स्पर्श करी आहारीने परणमावीने पोतानी काया सरखा रूप करे, ते अवयवरूप रूप करे, ते कहेछे एक मूल, बीजुं कंद, त्रीजी त्वचा, चोथी शाखा, पांचमा प्रवाल एटले नवांकुर, छठा पुष्प, सातमा पत्र, आठमा फल, नवमा बीज, दशमो स्कंधनूत, ते वृक्षना ए दश स्थानकने विषे जीव उपजे छे ते वृक्ष योनिक, ते वृक्षना शरीर नाना प्रकारना वर्ण वाला यावत् ते वनस्पतिना जीव कर्मना उदये उपना होय एरीते नगवंत श्री तीर्थंकर देवे कह्या, परंतु काल ईश्वरादिक कारण कोइ नथी ॥४॥

॥ दीपिका—अथापरमेतदाख्यात । इह वनस्पत्यवयवस्त्र । यथा इहैके जीवावृक्षयोनिका स्युस्तदवयवाश्रिताश्चान्ये वनस्पतिरूपाएव जीवा स्यु । तथाहि । योहि एकोवनस्पतिजीव सर्ववृक्षावयवव्यापी स्यात् तस्य चापरे तदवयवेषु मूल १ कंद २ त्वक् ३ शाखा ४ प्रवाल ५ पुष्प ६ पत्र ७ फल ८ बीज ९ स्कंध, १० नूतेषु दशस्थानेषु जीवा समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षोद्भवावृक्षव्युत्क्रमाश्चोत्पद्यते इति शेष पूर्ववत् । इह चत्वारि सूत्राणि यथापूर्वमुक्तानि । यथा वनस्पतय पृथिव्याश्रिता नवतीत्येक १ तच्छरीरमप्कायादिशरीर चाहारयति २ वृक्षास्तदाहारित शरीरमचित्त विध्वस्तच कृत्वात्मसात्कुर्वंति ३ अन्यान्यपि तेषा पृथिवीयोनिकाना वनस्पतीना शरीराणि मूलकंदादीनि नानापर्णानि नवंति ४ एवमत्रापि चत्वारि सूत्राणि ज्ञेयानि ॥ ४ ॥

॥ टीका—साप्रतं वनस्पत्यवयवानधिकृत्याऽऽह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं तद्दर्शयति । इहास्मिन् जगत्येके न सर्वे तथाविधकर्मोदयवर्तिनोवृक्षयोनिका. सत्वान्नवंति तदवयवाश्रिताश्च परे वनस्पतिरूपाएव प्राणिनोनवंति । तथा योह्येकोवनस्पतिजीव सर्ववृक्षावयवव्यापी नवति तस्य चापरे तदवयवेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवा

बेहेंतालीश बयामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक,उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक,तृणयोनिक,उंषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो, उंषधिनो, हरितनो,मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो,यावत् कुरवदनो, उदकनो, अवगाहिनो,यावत् पुरकलछि एटले जे थकी पान निकले तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आप णां सरखां रूप करे इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुस्कलछि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना नाना प्रकारना वर्ण, गध, रस, स्पर्शवाला होय.ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थंकर गणधरादिके कह्यु त्या सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं स्वरूप कह्यु, अने पृथ्वीकायादिक चार जातिना एकेंद्रियना स्वरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै मूलादिभिरिति । एव वृक्षयोनिकैरध्यारुहै अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहै अध्यारुहयोनिकै मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेया । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं॥१९॥ते व नस्पतिपूत्पन्नाजीवा पृथिवीयोनिकाना तथा उदकाना वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनि काना वृक्षाणा यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यात। तत्र त्रसाना शरीरमाहारयंतीत्यंते ज्ञे य । इति वनस्पतीना स्वरूपमुक्तं । शेषा पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका–सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्य था। पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एव वृक्षयोनिकै रध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽष्टव्या । एवमुद कयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीय ॥१९॥ तदेव पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्प तेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । (तेजीवाइत्यादि) ते वनस्पति पूत्पन्नाजीवा पृथिवीयोनिकाना तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकाना वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसाना प्राणिना शरीरमाहारयंत्येतदवसा ने ऽष्टव्यमिति । तदेव वनस्पतिकायिकाना सुप्रतिपाद्यचैतन्याना स्वरूपमभिहितं । शे षा पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियावसरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्म भूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्खयाणं तेसिचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससय कम्मकडाए जोणिए एडणं मेहुणवत्ति

स्ते वृक्षयोनिकाउच्यंते । यदिवा मूलस्कंधादिका. पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्ते एवमुच्यंते। अत्रापि सूत्रचतुष्टय प्राग्वत् ॥ ५ ॥

॥ टीका-सांप्रतं वृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह् । (अथावरमिति) अथापरमेतत्पुराऽऽख्यात यद्वक्ष्यमाणमिहैके सत्वावृक्षयोनिकाजवति । तत्र ये ते पृथिवीयोनिकावृक्षास्ते प्वेव प्रतिप्रदेशतया येपरे समुत्पद्यते तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारजकस्योपचयकारिणस्ते वृक्षयोनिकाइत्यनिधीयंते । यदिवा ये ते मूलकदस्कंधशारवादिका पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्तएवमनिधीयंते तेषुच वृक्षयोनिकेषु वृक्षेषु कर्मोपादननिष्पादितेषु उपर्युपरि अध्यारोहंतीत्यध्यारुहावृक्षोपरिजातावृक्षानिधाना· कामवृक्षानिधानावा इष्टव्यास्तदजावेऽवापरे वनस्पतिकाया समुत्पद्यंते वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिष्विति । इहापि प्राग्वच्चत्वारि सूत्राणि इष्टव्यानि ॥ ५ ॥

अहावर पुरक्काय इहेगतिया सत्ता रुरकजोणिया रुरकसनवा रुरकवुक्कमा तजोणिया तस्संनवा तडुवक्कमा कम्मोववन्नगा कम्मनियाणेण तत्र वुक्कमा रुरकजोणिएहिं रुरकेहिं अज्ञारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुरकजोणियाण अज्ञारुहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ६ ॥

अर्थ-हवे वृक्ष उपरना वृक्ष आश्री कहेछे अथ हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरे कह्युछे आजगत्माहे कोइ एक वृक्षयोनिक सत्व एटले जीव होयछे त्यां जे पृथ्वीयोनिक वृक्ष, ते वृक्षने विषेज बीजा मूलादिक वृद्धिना करनार, ते वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अवयवरूपे उपजे, तेनी उपर उपर जे आरूढे ते वल्ली वृक्षादिक अथवा पींपलादिक वड वृक्षनी उपर उपजे, ते कामवृक्षादिक जाणवा ते कारणे एने अध्यारोह वृक्ष कहिये, ते अध्यारोह, वृक्षनोज स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणी लेवु ते यावत् पोताना कर्मने वशे उपजे. एटले अध्यारोहनुं प्रथम सूत्र कह्यु ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-वृक्षयोनिकेषु एके अध्यारोहाजायंते वृक्षोपरिजातावृक्षाअध्यारोहाइत्युच्यंते । तेच वल्लीवृक्षानिधाना । शेषं प्राग्वत् । इद प्रथमसूत्र ॥ ६ ॥

॥ टीका-तद्यथा योनिकेषु वृक्षेष्वपरेऽध्यारुहा समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पन्ना· सयोनिमू

के०) संयोग उपजे ते संयोग उपने छते त्या जीव तैजस कार्मण शरीरे करी उपजे (तेइह उविसिणेहसंचिणतिके०) ते जीव उपजता छता प्रथम समये वेहुनो स्नेह संचिणे एट ले आहारे, ते आहारीने, (तज्ञणजीवा के०) त्या ते जीव (इत्थित्ताएपुरिसत्ताएणपुंसग त्ताएविउट्टति के०) स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक पणे उपजे (तेजीवामाउउयंपिउसुक्कं के०) तेजीव माता संबंधि रक्त, अने पिता संबंधि शुक्र, ते (तडुभयंसंसट्ठं के०) वेहु मिश्रित एकलु नवेलुं डुगछनिक (कलुसकिव्विसके०) कलुष मलीन बीभत्स (तपढमत्ताए के०) तेनो, प्रथम समयने विषे (आहारमाहारेति के०) आहार आहारे (ततोप छा के०) त्यार पछी, (जसेमाया के०) जे तेनी माता (णाणाविहाउरसविईउ आहारमाहारेति के०) नाना प्रकारना रसवाला आहार आहारे, (ततोएगदेसेणउय माहारेतिके०) तेवार पछी तेनो एक देशे उज आहार आहारे (आणुपुव्वेणवुड्डापलिपा गमणुविन्नाके०) ते स्नेह करी ते जीवनी अनुक्रमे निष्पति उपजे. एवा अनुक्रमे वृद्धियें पहोते छते (ततोकायातोअभिनिवट्टमाणाके०) तेवार पछी तेनी काया थकी एटले तेनी योनि थकी निकले (इत्थिवेगयाजणयतिके०) ते एक स्त्री थइ निकले, (पुरिसंवेगयाज णयंति के०) एक पुरुष थइ निकले, (णपुंसगंवेगयाजणयंति के०) एक नपुंसक थइ निकले, (तेजीवाडहरासमाणाके०) ते जीव बालक थका (माउक्कीरसप्पिआहारेतिके०) माताना स्तननु दुग्ध आहारे तथा मोटो थाय त्यारे घृत आहारे तेवार पछी (आणुपुव्वे णवुड्डाके०) अनुक्रमें वधता थका (उयणकुम्मासतसथावरेयपाणेतेजीवाआहारेति के०) ओदन चावलादिक अडदादिक तथा त्रस अने स्थावर प्राणी पण आहारे (पुढविसरीरं के०)पृथ्वीनु शरीर जे लवणादिक ते आहारे.ते आहार्यो छतो (जावसारूविकडंसंतंके०) पोताना शरीर सरखो करे, एटले पोतानी काया रूप करे, एटले ते आहार धातु पणे परिणमावे (अवरेवियणतेसिं के०) तथा बीजा पण तेने (णाणाविहाण के०) नाना प्रकारना (मणुस्सगाण के०) कर्मभूमीने विषे उपना एवा मनुष्यना, अकर्मभूमी ना मनुष्यना, अंतर द्वीपना मनुष्यनां, आर्य मनुष्यना, म्लेछ मनुष्यनां, शरीर, नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्श करी सहित थका, एवा पोताना कर्मने वशे उपजे इत्या दिक पूर्ववत् यावत् श्री तीर्थंकर गणधरे कह्यु ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसकायेषु पूर्वं मनुष्यानाह । अथापरमाख्यातं । नानाविधानां म नुष्याणां स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । तद्यथा । कर्मभूमिजाऽऽद्यादिमनुष्याणां (यथाबीजेनेति) यद्यस्य बीजं तत्र शुक्राधिकं नरस्य शोणिताधिकं स्त्रिया उभयसमता नपुंसकस्य कारणमि ति । यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्षिप्रसुखस्तत्र वामा कुक्षिः स्त्रिया, द

ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अब्नारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सिणेह माहारेति ते जीवा आहारंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविक डं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्ञारोहजोणियाण अज्ञारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ८ ॥

अर्थ–अथ हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कहुंछे आजगत् माहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनियाछे, ते अध्यारोह योनिया तेने विषे वली अध्यारोह पणे उपजे, ते अध्यारोहयोनिक अध्यारोहना शरीर आहारे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु आहीं पूर्वे बीजा सूत्रमा वृक्षयोनिक अध्यारोहनां शरीर बीजा अध्यारोह जीव अहारे, अने आ त्रीजा सूत्रमां अध्यारोहयोनिक अध्यारोह जीवना शरीर अहारे, एटलु विशेषछे ए अध्यारोहनुं त्रीजुं सूत्र कहुं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–एके सत्वाअध्यारोहसंनवेषु अध्यारोहेषु अध्यारोहत्वेन जायते। येच एव जायते तेऽध्यारोहयोनिकानाध्यारोहाणा यानि शरीराणि तान्याहारयति। द्वितीयसूत्रे वृक्षयोनिकानामध्यारोहाणा यानि शरीराणि तान्यपरेऽध्यारोहाजीवाआहारयति। अत्रतु अध्यारोहयोनिकाना अध्यारोहजीवाना शरीराणीति विशेष । इदं तृतीयसूत्र ॥ ८ ॥

॥टीका–तृतीयं त्विदं (अहावरमित्यादि) अथापर पुराख्यात । तद्यथा। इहैके सत्वा अध्यारुहसनवेष्वध्यारुहत्वेनोपपद्यंते । ये चैवमुत्पद्यंते तेऽध्यारुहजीवाआहारयति । तृतीये त्वध्यारुहयोनिकानामध्यारुहजीवाना शरीराणि द्रष्टव्यानीति विशेष ॥ ८ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता अज्ञारोहजोणिया अज्ञारोहसंन्नवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा अज्ञारोहजोणिएसु अज्ञारोहेसु मूलत्ताए जाव वीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्ञारोहजोणियाण अज्ञारोहाण सिणेहमाहारेंति जाव अवरेवि यणं तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं मूलाणं जाव वीयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ए ॥

अर्थ–हवे अध्यारोहनुं चोथु सूत्र श्री तीर्थंकरें कहुछे, ते कहेछे आ जगत् माहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनिक ते अध्यारोहने विषे मूल कंदादिक अवयव थइने उपजे, ते त्यां उपना थका तेना शरीर आहारे, इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ए॥

॥ दीपिका–अथापरमिदमाख्यात इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारोहेषु मूलकंद

किल वामा स्त्रियोदक्षिणा कुक्षिः पुरुषस्योनयाश्रितः पंढइति। अत्र चाविध्वस्ता योनिरवि ध्वस्तं बीजमिति चत्वारोनंगा.। तत्राप्याद्यएव नंगकउत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिष्विति। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मनिर्वर्तितायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरतानिलापोदय जनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोग. समुत्पद्यते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते समुपा दाय तत्रोत्पित्सवोजंतवस्तैजसकार्मणाभ्यां शरीराभ्यां कर्मरज्जुसदानितास्तत्रोत्पद्यते। तेच प्रथममुनयोरपि स्नेहमाविन्वत्यविध्वस्तायां योनौ सत्यामिति। विध्वस्यते तु योनि. पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्तति पुरुषइति। तथा द्वादशमुहूर्तानि यावच्छुक्रशोणिते अवि ध्वस्तयोनिके नवतस्ततऊर्ध्वं ध्वंसमुपगच्छतइति। तत्र जीवाउनयोरपि स्नेहमाहार्य स्वक र्मविपाकेन यथास्व स्त्रीपुन्नपुंसकनावेन (विउट्टंतित्ति) वर्तते समुत्पद्यंतइति यावत्। तउ त्तरकालं च स्त्रीकुक्षौ प्रक्षिप्ता सत स्त्रियाऽऽहारितस्याहारस्य निर्यास स्नेहमाददति त त्स्नेहेनच तेषां जतूनां क्रमोपचयादानेन क्रमेण निष्पत्तिरुपजायते। सत्ताहं कललं होइ सत्ताह होइ बुब्बुयं इत्यादि। तदेवमनेन क्रमेण तदेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मि श्रेणवा लोमभिर्वाऽऽनुपूर्व्येणाहारयंति यथाक्रममानुपूर्व्येण वृद्धिमुपागताः संतोगर्नपरि पाक गर्ननिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातु कायादभिनिवर्तमाना पृथग्नवत्त सतस्तद्योनेर्नि र्गच्छंति। तेच तथाविधकर्मोदयादात्मन स्त्रीनावमप्येकदा जनयंत्युत्पादयंत्यपरे केचन पुनाव नपुंसकनावच। इदमुक्तं नवति। स्त्रीपुनपुंसकनाव प्राणिना स्वकृतकर्मनिर्वर्तितो नवति न पुनर्योयादृगिहनवे सोमुष्मिन्नेव तादृगेवेति। तेच तदद्दर्जातबालका. सत पू र्वजन्माभ्यासादाहारानिलाषिणोनवति मातु स्तन्यमाहारयंति तदाहारेण चानुपूर्व्येण च वृद्धास्तउत्तरकालं नवनीतदध्योदनादिकं यावत्कुल्मापान् नुजते तथाहारत्वेनोपगतास्त्र सास्थावराश्च प्राणिनस्ते जीवाश्चाहारयंति तथा नानाविधपृथिवीशरीरं लवणादिकं सचे तन वाऽऽहारयंति तच्चाहारितमात्मसात्कृतं सारूप्यमापादितं सत् रसासृङ्मांसमेदोस्थिम ज्जाशुक्राणि धातवइति सप्तधा व्यवस्थापयंत्यपराण्यपि तेषां नानाविधमनुष्याणां शरीराणि नानावर्णान्याविर्नवति। तेच तद्योनिकत्वात्तदाधारनूतानि नानावर्णानि शरीराण्याहारयं तीत्येवमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा मच्छाणं जाव सुसमाराणं तेसिंचणं अहावीएणं आहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्सयकम्मकडा तहेव जाव ततो एगदेसेणं उयमाहारेंति आ णुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायाउ अभिनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति पोयं वेगया जणयंति से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगया

के सत्वा पृथिवीयोनिका· पृथिवीसंनवाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारि सूत्राणि एव तृणा न्यप्याश्रित्य ज्ञेया । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोत्पद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंतीत्येकं, ॥१०॥ पृथिवीयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणशरीर चाहारयतीति द्वितीयं ॥११॥ तृणयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यते तृणयोनिकतृणशरीर चाहारयंतीति तृतीयं ॥ १२ ॥ तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशस्थानेपूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति चतुर्थं सूत्र ॥ १३ ॥ (एवउत्तहीण) इत्यादि सुगम ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ टीका—सांप्रततृक्षव्यतिरिक्तं शेषवनस्पतिकायमाश्रित्याह । (अथावरमित्यादि) अ थापरमिदमाख्यातं यडुत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा । इहैके सत्वा पृथिवीयोनिका पृथिवी संनवा· पृथिवी॰व्युत्क्रमाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारआलापकाएव तृणान्यप्याश्रित्य इष्ट व्या । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोपपद्यंते पृथिवीशरीर चाहारयंति ॥१०॥ द्वितीयंतु पृथवीयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणशरीर चाहारयंतीति ॥ ११ ॥ तृतीयं तु तृणयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यते तृणयोनिकशरीर चाहारयंतीति ॥१२॥ चतुर्थं तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशप्रकारेपूत्पद्यते तृणशरीरं चाहारयंत्येव यावदाख्यातमिति ॥१३॥ एवमौषध्याश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीया ॥१४॥ नवरमोपधिग्रहण कर्तव्यमेव हरिताश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीया । कुहणेषु त्वेकएवालापकोऽदृव्यस्तद्योनिकानाम परेपामनावादिति नाव. ॥ १५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंनवा जाव कम्म नियाणेण तत्र वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कूहणत्ताए कंडुकत्ताए उव्वेहणियत्ताए निव्वेहणियत्ताए सछत्ताए छत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेति तेवि जीवा आहारेति पुढविसरीरं जा व सतं अवरेविथणं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरी रा णाणावन्ना जावमक्खायं एगोचेव आलावगो सेसा तिन्नि णत्थि ॥ १६ ॥

अर्थ—अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकर देवें कह्युठे आ जगत् मांहे कोइ एक सत्व, पृथ्वीयोनिक पृथ्वीने विषे सनवठे. यावत् कर्मने कारणे आकर्षता त्यां उप ना ठता नाना प्रकारनी योनीने विषे, पृथ्वीने विषे, आयनामा वनस्पति पणे, वाय नामा वनस्पति पणे, कायनामा वनस्पति पणे कुहणत्ताए एटले तोईकोडी नामा

॥ टीका–एव तावत्कर्मभूमिव्युत्क्रांतजमनुष्याः प्रतिपादितास्तदनंतर संमूर्छनजानामवस रस्ताश्चोत्तरत्र प्रतिपादयिष्यामि सांप्रत तिर्यग्योनिकास्तत्रापि जलचरानुद्दिश्याह । (अहा वरमित्यादि) अथानंतरमेत द्वक्ष्यमाणं पूर्वमाख्यात । तद्यथा । नानाविधजलचरपचेंद्रिय तिर्यग्योनिकाना संबंधिन काश्चित्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । (मछाणजावसुसुमाराणमि त्यादि) तेषा मत्स्यकछपमकरग्राहसुसुमारादीना यस्य यथा यद्बीज तेन तथा यथावकाशेन योयस्योदरादावकाशस्तेन स्त्रिया पुरुषस्यच स्वकर्मनिर्वर्तितायां योनावुत्पद्यंते । तेच तत्राभिव्यक्तामातुराहारेण वृद्धिमुपगता स्त्रीपुनपुसकानामन्यतमेनोत्पद्यंते तेच जीवा जलचरागर्भा द्व्युत्क्रांताः सतस्तदनतर यावद्दहरतिलघवस्तावदप्स्नेहमप्कायमेवाहा रयति । आनुपूर्व्येणच वृद्धा सतोवनस्पतिकाय तथापरांश्च त्रसास्थावरांश्चाहारयति या वत्पचेंद्रियानप्याहारयंति । तथा चोक्त । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तर ॥तिमि गिलगिलोप्यस्ति, तद्गिलोप्यस्ति राघव ॥१॥ तथा ते जीवा पृथिवीशरीर कर्दमस्वरूप क्रमे ण वृद्धिमुपगता सतआहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतमात्मसात्परिणामयति शेष सुगम । यावत्कर्मोपगताभवतीत्येवमाख्यात ॥ २२ ॥

अहावर पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणि याण एगखुराण दुखुराण गंडीपदाण सणप्फयाणं तेसिंचणं अहावी एण अहावगासेण इत्थिपुरिसरसयकम्मजाव मेहुणवत्तिए णामं स जोगे समुप्पज्जइ ते दुहउ सिणेहं सचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरि सत्ताए जाव विउट्टति ते जीवा माउउय पिउसुक्क एवं जहा मणुस्साण इ त्थिवि वेगया जणयति पुरिसपि नपुसगंपि तेजीवा डहरा समाणा माउ क्खीरं सप्पि आहारेति आणुपुव्वेण वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरेयपाणे ते जीवा आहारेति पुढविसरीर जाव सतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहा णं चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं जाव सणप्फ याण सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥२३॥

अर्थ–हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरे कह्युछे आ जगत् माहे नाना प्रकारना चतुष्पद स्थलचर पचेंद्रिय तिर्यंच योनिया जीवछे, ते कहेछे. एक खुर ते अश्वादिक, द्विखुर ते गो महिष वृषभादिक , गर्भीपद ते हस्त्यादिक, तथा षट्पद ते सिंह व्याघ्रादिक, ते यथा बीजे यथावकाशे इत्यादिक पूर्वनी पेठे ते जीवोनी उत्पत्ति जाणवी ते जीव उप

वा जाणवा ए सर्व मली पच्चीश आलावा थया ॥ २५ ॥ तेमज अध्यारोहना पण उदक योनि आश्री चार आलावा कहेवा तेमज तृणना पण चार आलावा उदकयोनी आश्री कहेवा ॥ ३२ ॥ तथा उंषधिना पण चार आलावा कहेवा ॥ ३७ ॥ एम हरितकायना पण चार आलावा आदि उदकयोनिकने विषे जाणवा एम एकेकना चार चार आलावा करता वधा मलीने वीश आलावा उदक योनिक वनस्पतिना थया, तथा एकवीश आलावा पूर्वे पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्याछे, ए वधा मलीने एकतालीश आलावा वनस्पतिना थया ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथाप्काययोनिकस्य वनस्पते स्वरूपमाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाउदक योनिरुत्पत्तिस्थान येषा ते तथा तेच कर्मवशगानानाविधयोनिकेषु जलेषु वृक्षत्वेन पनकशैवलादित्वेन जायंते तेच जलशरीरमाहारयंति न केवल तदेवान्यदपि पृथिव्यादिशरीरमाहारयति। यथा पृथ्वीयोनिकानां वृक्षाणा चत्वारआलापकास्तथा जलयोनिकानां वृक्षाणा न स्यु.। तत्रोत्पन्नानामन्यविकल्पाभावात् किंतर्हि? एकएवाऽऽलापक स्यात्॥१७॥

॥ टीका—सांप्रतमप्काययोनिकस्य वनस्पते स्वरूप दर्शयितुमाह । (अथावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथा । इहैके सत्वास्तथाविधकर्मोपचया उदक योनिरुत्पत्तिस्थानं येषा ते तथा तथोदके सनवोयेषा ते तथा यावत्कर्मनिदानेन सदानितास्तउपक्रमानवतीति । तेच तत्कर्मवशगानानाविधयोनिपूदकेषु वृक्षत्वेन व्युत्क्रामंत्युत्पद्यंते । येच जीवाउदकयोनिकावृक्षत्वेनोत्पन्नास्ते तच्छरीरमुदक शरीरमाहारयति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिवीकायादिशरीरमाहारयतीति । शेष पूर्ववत् । यथा पृथिवीयोनिकानां वृक्षाणा चत्वारआलापकाएवमुदकयोनिकानामपि वृक्षाणा नवतीत्येव इष्टव्यं । अपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पाभावादिति किंतर्हि? एकएवालापकोनवति ॥ १७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसनवा जाव कम्मणियाणेण तत्र वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुगत्ताए हडत्ताए कसेरुगत्ताए कच्छनाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुयत्ताए नलिणत्ताए सुनगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंमरियमहापोंमरियत्ताए सयपत्ताए सहस्सपत्ताए एव कल्हारकोकणयत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए निसनिसमुणालपुक्कलत्ताए पुक्कलच्छिनगत्ताए विउट्टति ते जीवा तेसिं णाणाविह

सालिया सर्प्प, महोरग तथा हजार योजन प्रमाण शरीर वाला, इत्यादिक जीव छे. तेने यथा बीजे यथावकाशें इत्यादिक पूर्ववत् ते जीवनी उत्पत्ति जाणवी एक अंडरूप निपजे, एक पोतरूप नीपजे, ते ते अंडथकी उद्भियमान पुरुष, स्त्री, अने नपुंसक थाय. ते जीव बालक थका वायुकाय आहारे. पछी अनुक्रमें वधता थका वनस्पति काय तथा त्रस स्थावर प्राणी आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवु ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–अथ उर परिसर्प्पानाह । उर.परिसर्प्पाअहिप्रमुखाअंडजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्भान्निर्गछति तेच निर्गतामातुरूष्माण वायु चाहारयंति तेषां च जातिविशेषात्तेनैवाहारेण वृद्धिर्जायते । शेष सुगम ॥ २४ ॥

॥ टीका–साप्रतमुर परिसर्पानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) नानाविधानां बहुप्रकाराणामुरसा ये प्रसर्पंति तेषां । तद्यथा अहीनामजगराणामाशालिकाना महोरगाणा यथावकाशेन यथाबीजत्वेन चोत्पत्त्याण्डजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्भान्निर्गछंतीति । तेच निर्गता मातुरूष्माण वायुं चाहारयंति तेषां जातिप्रत्ययेन तेनैवाहारेण क्षीरादिनेव वृद्धिरुपजायते । शेषं सुगम यावदाख्यातमिति ॥ २४ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण तंजहा गोहाणं नउलाण सिहाण सरडाणं सल्लाणं सरघाण खाराण घरकोइलियाणं विस्संभराणं मुसगाण मंगुसाणं पयलाइयाणं बिरालियाण जोहाण चउप्पाइयाणं तेसिचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्सय जहा उरपरिसप्पाणं तहाभाणियबं जाव सारूवि कडं सतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जावमक्खायं ॥ २५ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें श्रीतीर्थंकरे कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारे भुजपरि सर्प्प स्थलचर पचेंद्रिय तिर्यंच योनिक छे ते कहेछे गोहजाति, नोलिउ, सिहन, सरड किरकाटीया प्रमुख, सलगा, सरवा, खारा, जीवविशेष घरकोइला, एटले गिलोइ, विसनरा एटले छपका, मुसक एटले उंदर, खसकला पयालि, विरालि एवीरीतें चतुष्पद भुजपरिसर्प्प जीवविशेष छे ते जीवोनी उत्पत्ति यथा बीजे करी यथावकाशें करी

लावगा पुढविजोणिएहिवि आएहिं काएहि जाव कूरेहिं उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहि रुक्खेहि रुक्खजोणियेहि मूलेहि जाव बीएहिं एवं अज्झारुहेहिवि तिन्नि तणेहिवि तिन्नि आलावगा उसहीहिवि तिन्निहरि एहिंवि तिन्नि उदगजोणिएहिं उदएहि अवएहि जाव पुक्खलच्छिन्न एहि तसपाणत्ताएविउट्टंति ॥ १९ ॥ तेजीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं उदगजो णियाण रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहीजो णियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अज्झारुहाणं तणाणं उसहीणं हरि याणं मूलाण जाव बीयाण आयाणं कायाण जाव करवाणं उदगाणं अ वगाणं जाव पुक्खलच्छिन्नगाणं सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेति पु ढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसि रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणि याणं तणजोणियाणं उसहिजोणियाणं हरियजोणियाण मूलजोणिया णं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाण कायजोणिया णं जाव कूरजोणियाणं उदगजोणियाणं अवगजोणियाण जाव पुक्खल च्छिन्नगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ २० ॥

अर्थ—हवे अन्यत्र प्रकारे वनस्पतिनुं स्वरूप कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकरदेवें कह्यु. आजगत् मांहें कोइ एक जीव ते पृथ्वीयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्षयोनिक वृक्षे करी, तथा वृक्ष योनिक मूलें करी, यावत् बीजे करी, तथा वृक्षयोनिक अध्यारोहे करी, तथा अध्यारोहयोनिक अध्यारोहे करी, तथा अध्यारोहयोनिक मूलें करी, यावत् बीजे करी, पृथ्वीयोनिक तृणे करी, तृणयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक मूलेंकरी, यावत् बीजे करी, ए प्रकारें ए त्रणना त्रण त्रण आलावा जाणवा. ए रीतेंज वली उंषधिये करी पण, त्रण, त्रण, आलावा जाणवा एमज हरितकायना पण त्रण आलावा जाणवा.पृथ्वीयोनिक, आयनामा वनस्पति, कायनामा वनस्पति, यावत् कुरवा दनामा वनस्पति, उदकयोनिकना वृक्षे करी, वृक्षयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना मूलें करी, यावत् बीजें करी, एमज अध्यारोहना पण त्रण आलावा जाणवा तृणमा पण त्रण आलावा जाणवा.उंषधियें करी पण,त्रण आलावा जाणवा, हरितें करी पना त्रण आलावा जाणवा, उदकयोनिक उदक अवकपनक यावत् पुक्खलछि जे ... ण निकले तेने विषे, त्रस प्राणि पणे उपजे.ए सर्व, बत्रीश आलावा थया अने ...

ष्मणाऽऽहारितेन वृद्धि प्राप्तं सत् कललावस्थां त्यक्त्वा चचूप्रमुखान् अवयवान्निष्पाद्य भेदं याति (माउगात्तसिणंति) मातृगात्रोष्माणमित्यर्थः । तत पश्चादपि जननीसमानी तेनाहारेण वृद्धि प्राप्नोति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–सांप्रतं खेचरानुद्दिश्याह । अहावरमित्यादि) नानाविधाना खेचराणामुत्पत्तिरेवं द्रष्टव्या । यथा चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीप्रभृतीनां तथा लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिविततपक्षिणां बहिर्द्वीपवर्तिनामेतेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामाहारक्रियैवमुपजायते। तद्यथा । सा पक्षिणी तदंडकं पक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदूष्मणाहारितेन वृद्धिमुपगतं सत् कललावस्था परित्यज्य चञ्चादिकानवयवान् परिसमाप्य भेदमुपयाति तदुत्तरकालमपि मात्रोपनीतेनाहारेण वृद्धिमुपयाति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तद्वुक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्त वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २७ ॥

अर्थ–हवे पूर्वे कह्यो जे मनुष्य तथा तिर्यचनो अधिकार तेथकी अपर एटले वीजुं स्थानक तीर्थंकरे कह्युं छे आ जगत् माहे कोइ एक जीव कर्मने उदये वर्त्तता नानाविध योनिया पोताना करेला कर्मने विशेषे नानाविध संभवछे नानाविधना आव्या छता ते जोणिया ते संभव तदुपक्रम कर्मना वशंगत कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता, ना[illegible] प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना पुद्गलने विषे,शरीरने विषे, सचित्तने विषे,अचित्तने [illegible] अपर शरीरनी निश्राये उपजे ते विकलेंद्रिय जीव जाणवा अहीं सचित्त ते मनुष्यादि [illegible] शरीरने विषे जू लीख,इत्यादिक भावे उपजे तथा अचित्त ते मनुष्यने परिभुज्यमाण [illegible] मंचादिकने विषे माकडादिकने भावे उपजे ते जीव उपना थका ते नाना प्रकारना [illegible] स्थावर प्राणीना [illegible] ते [illegible] शरीर आहारीने, यावत् पो[illegible] सरखां रूप करे [illegible] स्थावर योनिक अपर शरीरनी

याएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते डुहउवि सिणेहं संचिणंति तच्छणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं तं तदुनयं संसठ्ठ कलुसं किव्विसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेति ततो पच्छा जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेति ततो एगदेसेणं उय माहारेति आणुपुव्वेण वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अनिनिवट्ट माणा इत्थिं वेगया जणयति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा म्हरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेति आणुपुव्वेणं वुड्ढा उ यणं कुम्मास तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मनूम गाणं अकम्मनूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावण्णा नवंतीतिमक्खाय ॥ ११ ॥

अर्थ–हवे त्रसकायनो अवसर छे ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे छे तेमाहे नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राह्य जाणवा अथवा डुष्कृत कर्मना जे फल तेना नोगवनार छे, तेने आहार पण, एकांते अशुन पुजल थकी नीपनो उज थकीछे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्राय अनुमानगम्यछे, तेनो आहार एकात शुनछे, तेनो पण उजाहारछे. परतु प्रक्षेपकृत नथी देवतानो आहार बे प्रकारेछे एक आनोगिक बीजो अनानोगिक, तेमा जे अनानोगिक ते समय समयपर छे अने आनोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ न क्ते आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षे आहारछे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य माहे [illegible] गि प्रथम मनुष्यनु स्वरूप कहेछे अथ हवे बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवे [illegible] उत्कृ रापूर्वे कह्युछे आ जगत् मांहें नाना प्रकारना मनुष्यछे, एक आर्य, एक अनार्य [illegible] मनुष्या पन्नर कर्म नूमीना उपना, एक त्रीश अकर्म नूमीना उपना, एक अतर द्वीप [illegible] अंतरमेव ना, एक आर्य, एक म्लेछ छे. (तेसिचणंअहाबीएण के०) तेनें यथा बीजे [illegible] द्वीना म स्त्री पुरुष नपुंसकने नेदें करी, जे जेनु बीज ते यथा बीज, तेणे करी, तथा [illegible] नपुंसक एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षे स्त्री उपजें, दक्षिण कुक्षे पुरुष [illegible] ण [illegible] य शुक्र दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी, (इत्थि [illegible] र [illegible] सकस्य वेदनो उदय छते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित [illegible] वत्तियाएवणामके०) आही मैथुन [illegible] अरणी अने काष्ठनी

एजेम सचित्ताचित्त शरीरनी निश्रायें विकलेंद्रिय जीव उपजेछे तेम, तेना मल, मूत्र, वमनादिकने विषे (दुरूव के०) विरूपरूप एटले कृम्यादिकने नावें उपजे, ते जीव तेऐ विष्टादिकने विषे उपना छता तेहिज आहार लीये. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–अथ पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवान् जीवानाह । (एवमित्यादि) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयायथा विकलेंद्रियाजायंते । तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीष वातादिषु परे जतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां ते डुरूपास्तत्संनवत्वेन तद्भावेन जायंते। तेच विष्टादौ शरीरान्निर्गते अनिर्गतेवा उत्पन्नास्तदेव विष्टादिकमाहारयंतीति। शेष प्राग्वत्॥२८॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवानसुमत. प्रतिपादयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमिति पूर्वोक्तपरामर्शी । यथा सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयाविकलेंद्रिया समुत्पद्यते तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीषवातादिषु अपरे जतवोडुष्ट विरूपं रूपं येषा कृम्यादीना ते डुरूपा स्तत्संनवत्वेन तद्भावेनोत्पद्यते । तेच तत्र विष्टादौ देहान्निर्गतेऽनिर्गतेवा समुत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तदेव विष्टादिक स्वयोनिनूतमाहारयंति । शेष प्राग्वत् ॥ २८ ॥

एवं खुरडुगत्ताए ॥ २९ ॥

अर्थ–हवे सचित्त शरीरनी निश्राये जे जीव उपजे ते आश्री कहेछे. (एव के०) जेम मलमूत्रादिकने विषे जीवनी उत्पत्ति थायछे तेम तिर्यंचना शरीरने विषे खुर एटले चर्मने विषे कीटकने नावे उपजे एटले गाय, नेंश प्रमुखना चर्म माहें प्राणियो समूर्छे, ते तेनु चर्म मास नक्षण करे, चर्मे विवर करे, ते थकी जे अशुद्ध पुरुल निकले तेज आहारे , तथा अचित्त गवादिक शरीरने विषे पण जीव उपजे तथा सचित्ताचित्त वनस्पति शरीरने विषे पण घूण कीटकादिक समूर्छे. ते उपजता तेनुंज शरीर आहारे इत्यादिक जाणवु ॥ २९ ॥

॥ दीपिका–अथ सचित्तदेहाश्रयान् जतूनाह । (एवखुरुडुगत्ताएत्ति) यथा मूत्रविष्टादावुत्पादस्तथा तिर्यग्देहेषु (खुरडुगत्तेत्ति) चर्मकीटत्वेन जायते । तथाहि ।जीवतामेव गोमहिष्यादीना चर्मणोंऽत प्राणिन समूर्छ्यंते । तेच तन्मासचर्मणी नक्षयति नक्षयंतश्च तच्चर्मणोविवराणि कुर्वंति । गलच्छोणितेषु विवरेषुच तेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणित नक्षयति तथाऽचित्तगवादिदेहेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटका समूर्छयंते तदेहमेव नक्षयतीति ॥ २९ ॥

क्षिणा नरस्य, वनयाश्रिता पंढस्येति। तत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्त बीज१ विध्वस्ता योनिर्विध्वस्त बीज२ विध्वस्ता योनिरविध्वस्त बीज ३ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्त बीज। चतुर्षु भंगेषु आद्यभंगएव उत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिषु। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मकृतायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरत्ताभिलापोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगोजायते तत्संयोगेच तत्शुक्रशोणिते तैजसकार्मणाभ्यां गृहीत्वा तत्रोत्पद्यते जीवा,। (तेइहत्ति) ते जीवा प्रथममुभयोरपि स्नेहमाचिन्वंति अविध्वस्तयोनौ। विध्वस्यते तु योनि। पचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिक पुमानिति। द्वादशमुहूर्तान् यावद्बीजमविध्वस्त स्यात् ततऊर्ध्वं ध्वंसयति तत्र जीवा कर्मवशात स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन (विउट्टति) जायंते ते जीवामातु. ऋतु शोणित पितु शुक्रं तत्तदुभयसंसृष्टं कलुष किल्बिषं वीभत्स तत्प्रथमतयाऽऽहारमाहारयति तत. पश्चात्सेतस्य माता यन्नानाविधरसवतमाहारमाहारयति तत्स्नेहेन तेषां जंतूनां वृद्धि स्यात् ततस्तदेकदेशेन स्वगेकदेशेनवा मातुराहार मोजसा मिश्रेण वा लोमभिर्वाऽऽहारयति आनुपूर्व्येण यथाक्रम पुष्टावृद्धि प्राप्ताजीवागर्भपरिपाक गर्भनिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातु कायादभिनिवर्तमाना. पृथग्भवतोनिर्गच्छंति। कर्मवशादात्मन स्त्रीभावमेके जनयति एके पुंभाव नपुंसकभाव वा तेच डहरावाला· संतोमातु क्षीर स्तन्यमाहारयति वृद्धा सत सर्प्पिर्घृत धान्यमोदन कुल्माषान् भुंजते नानाविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनोजीवान् आहारयति। नानायोनिकजंतुशरीराण्याहारयंतीत्यर्थ। नानामनुष्याणा शरीराणि केचित्तद्योनिकत्वादाहारयति इत्याख्यात ॥२१॥

॥ टीका–सांप्रत त्रसकायस्यावसर सच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदभिन्न। तत्र नारकाअप्रत्यक्षत्वेनानुमानग्राह्याउष्कृतकर्मफलभुज केचन संतीत्येव ते ग्राह्या। तदाहारोप्येकांतेनाशुभपुद्गलनिर्वर्तितउजसा प्रक्षेपेणेति। देवाअप्यधुना बाहुल्येनानुमानगम्याएव तेषामप्याहार· शुभएकांतेनोजोनिर्वर्तितोन प्रक्षेपकृतइति। सचाऽनोगनिर्वर्तितोनानोगकृतश्च। तत्र नानोगकृत प्रतिसमयभावी आनोगकृतश्च जघन्येन चतुर्भक्तकृतउत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्त्रनिष्पादितइति। शेषास्तु तिर्यङ्मनुष्यास्तेषाच मध्ये मनुष्याणामभ्यर्हितत्वात्तानेव प्राग्दर्शयितुमाह। (अथावर पुरस्कायमित्यादि) अथानंतरमेव तु पुरा पूर्वमाख्यात। तद्यथा। आर्याणामनार्याणा च कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजादीनां मनुष्याणा नानाविधयोनिकाना स्वरूपं वक्ष्यमाणनीत्या समाख्यात। तेषाच स्त्रीनपुंसकभेदभिन्नाना यथा बीजेनेति। यद्यस्य बीज तत्र स्त्रिया सत्रंवि शोणित पुरुषस्य शुक्रं एतदुभयमप्यविध्वस्तं शुक्राधिक सन्मनुष्यस्य, शोणिताधिक स्त्रियास्तत्समता नपुंसकस्य कारणता प्रतिपद्यते तथा यथावकाशेनेति। योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्ष्यादिकस्तत्रापि

ते जीव त्यां उपना थता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणियोनो स्नेह आहा रे. इत्यादिक शेषं सुगम ॥ एटले वात योनिक अप्काय देखाड्यो. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–अथाप्कायं वक्तुकामस्तत्कायकारणभूतवायुकथनपूर्वमाह । (अहावर मित्यादि) अथैतदाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मोदयात्तत्र वायुयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागम्य नानाविधाना त्रसानां दर्दुरादीनां प्राणिनां स्थावराणां च हरितलवणादीनां सचित्ताचित्त देहेषु तदप्कायशरीरं वायुयोनिकत्वादप्कायस्य वायुना उपादानहेतुभूतेन निष्पादितं तथा वातेन संगृहीतं अभ्रपटलातर्निर्वृत्तं तथा वातपरिगतं वायुनाऽन्योन्यानुगतं ऊर्ध्वगते वाते उर्ध्वभाग्भवति । गगनगतवायुवशाज्जलं व्योम्नि संमूर्छते । अधोगते वाते जलमप्यध. स्यात् तिर्यग्गतेच तिर्यक् वातयोनिकत्वाज्जलस्य यत्र यत्र वायु. परिणमति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । जलभेदान् वक्ति । (उसत्ति) अ वश्याय हिम महिकाधूमरीकरका. (हरतणुत्ति) तृणाग्रप्रासाजलबिंदव शुद्धोदकं प्रतीतं । इहैके जीवा. शुद्धजले जातानानाविधत्रसस्थावराणां उत्पत्त्याऽऽधारभूतानां स्नेह भक्षयंति । शेषं सुगम ॥ ३० ॥

॥ टीका–सांप्रतमप्काय प्रतिपादयिषुस्तत्कारणभूतवातप्रतिपादनपूर्वकं प्रतिपाद यतीत्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाण पुरा पूर्वमाख्यातं । इहास्मि न् जगत्येके सत्वास्तथाविधकर्मोदयानानाविधयोनिका संतोयावत्कर्मनिदानेन तत्र तस्मिन्वातयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागत्य नानाविधानां बहुप्रकाराणां त्रसानां दर्दुरप्रभृ तीना स्थावराणाच हरितलवणादीनां प्राणिनां सचित्ताचित्तभेदभिन्नेषु शरीरेषु तदप्का यशरीरं वातयोनिकत्वादप्कायस्य वायुनोपादानकारणभूतेन सम्यक् ससिद्ध निष्पा दितं । तथा वातेनैव सम्यक्गृहीतमभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातेनान्योन्यानुगतत्वा त्परिगतं तथोर्ध्वगतेषु वातेषूर्ध्वभागी भवत्यप्कायोगगनगतवातवशाद्दिवि संमूर्छते जलं तथाऽधस्ताद्गतेषु तद्वशाद्भवत्यधोभागीत्यप्कायएव तिर्यग्गतेषु तिर्यग्भागी भवत्यप्कायः इदमुक्तं भवति । वातयोनिकत्वादप्कायस्य यत्र यत्रासौ तथाविधपरिणामपरिणतोभव ति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । तस्य चाभिधानपूर्वकं भेदं दर्शयितुमा ह । तद्यथा । (उसत्ति) अवश्याय (हिमयेत्ति) शिशिरादौवातेरिताहिमकणामिहि का धूमिका करका प्रतीता (हरतणुयत्ति) तृणाग्रव्यवस्थिताजलबिंदव. शुद्धोदकं प्रतीतमिति । इहास्मिन्नुदकप्रस्तावे एके सत्वास्तत्रोत्पद्यंते स्वकर्मवशगास्तत्रोत्पन्नास्ते जीवास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्वोत्पत्त्याधारभूतानां स्नेहमाहारयंति ते जीवा स्वशरीरमाहारयंति अनाहारकान भवतीत्यर्थ ।शेषं सुगम यावदेतदाख्यातमिति ॥३०॥

जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया जणयंति ते जीवा महरा समाणा आउसिणेहमाहारेति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सतिकाय तसथा वरेयपाणे ते जीवा आहारेति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं ते ि णाणाविहाणं जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छाण सुसुमा राणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वे तीर्थंकरे कह्युछे आ जगत् मांहें नाना प्रकारना जलचारी पंचेंड्रिय तिर्यंच योनिक जीवछे, ते कहेछे. माछला,कछप, मगरमछ, नक्र, च क्र, पाठीन, पीठ, ग्राहक, सुसुमारादिक, तेने यथावीजे करी स्त्रियादिकना नेदें करी, य थावकाश एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षे स्त्री उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी स्त्री पुरुषादिक वेदने उदयें कर्म निर्वर्त्तित पूर्वयोनिने विषे, अही मैथुन प्रकृतिय नाम अरणीय काष्ठनी पेरें संयोगें उपजे (तहेव के०) तेमज यावत् ते जीव माता नी कुक्षिये उपना पछी एक देशे उज आहारे, अनुक्रमें वृद्धिये पोहोतो छतो तेवार प छी ते काया थकी एटले योनिथकी काले करी निकले, निकलता थका त्या एक जण अंम रूप, एक पोत रूप, त्यां अमथकी उद्भिमान ते स्त्री पुरुष नपुसक पणे उपजे, ते जीव बालक छतां अपकायनो स्नेह आहारे. पछी अनुक्रमे वर्द्धमान थका एटले वृ द्धि पाम्या थका वनस्पतिकायनुं शरीर तथा त्रस अने स्थावर प्राणीने आहारे ते जी व पृथ्वीनुं शरीर आहारे यावत् पोतानी काया सरखा रूप करे. अन्य पण ते नाना प्र कारे जलचर पचेंड्रिय तिर्यंच योनिक यावत् सुसुमारना सरखा रूप करे ते कर्मने वशे उपजे, ते नाना प्रकारना वर्ण गध रस स्पर्शवान् थाय. एम श्री तीर्थंकरे कह्यु ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—गर्नजमनुष्याउक्ता समूर्छनजाश्चाग्रे वक्ष्यंते सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि पूर्वं जलचरानाह् । अथापरं तिर्यग्योनिकानां जलजरपंचेड्रियाणा स्वरूपमाख्यात प्रथ म मत्स्यकछपमकरग्राहसुषुमारादीनां यस्य यद्बीज यस्योदराद्यवकाशोयस्तेन स्त्रिया. पु रुषस्य च कर्मकृतायां योनौ जायंते । तेच तत्र मातुराहारेण वृद्धा स्त्रीपुंनपुंसकानाम न्यतमत्वेन जायंते गर्ननिर्गताबाला सतो ऽपांस्नेहमपकायमेवाहारयंति । वृद्धास्तु वनस्पतिकायं अन्यान् त्रसस्थावरांश्च यावत्पंचेड्रियानपि आहारयंति । यडुक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम अस्तिमत्स्यस्तिमिगिल· । तिमिगिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघव' तथा ते जीवा· पृथवीशरीर कर्दमस्वरूपमाहारयति तच्चाऽऽहारित सत्समानरूपं आत्मसात्परिणामियति । शेषं सुगम ॥ २२ ॥

उदगजोणियाण जीवाण उदगाणं सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेति पुढविसरीरं जावसतं अवरेवियणं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री-तीर्थंकरे कह्यु छे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मना उदय थकी उदक योनिक उदकने विषे उपजे. त्यां उपना थका उदक जीवनो स्नेह आहारे, शेषं सुगमं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—तदेव त्रसस्थावरदेहसंभव जलयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणजलसंभवमेव जलं दर्शयति । (अहावरमिति) इह एके सत्वा उदकयोनिकेषु उदकेषूत्पद्यंते तेच तेषां जलसंभवाना आत्माधारभूतानां शरीरं भक्षयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३१ ॥

॥ टीका—तदेव त्रसस्थावरसंभवमुदकयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणमप्कायसंभवमेवाप्काय दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगत्युदकाधिकारे वा एके सत्वा स्वकृतकर्मोदयाडुदकयोनिषूदकेषूत्पद्यते तेच तेषामुदक संभवानामुदकजीवानामात्माधारभूताना शरीरमाहारयंति ।शेषं सुगमं।यावदाख्यातमिति३१

अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जावकम्मनियाणेण तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेति तेजीवा आहारेति पुढविसरीरं जावसतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खाय ॥ ३३ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवे कह्यु आ जगत् माहे कोइ एक जीव कर्मे प्रेर्या थका उदक योनिक उदकने विषे पूयरादिक त्रस प्राण पणे उपजे ते उपना छता तेनु शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—अथ जलाधारभूतान् त्रसानाह । इहैके सत्वा उदकयोनिकेषूदकेषु त्रसप्राणितया पूतरकादित्वेन उत्पद्यंते । तेच उत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तेषां जलयोनिकानां जलाना स्नेहमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३३ ॥

॥ टीका—साम्प्रतं ...

जतां मातानुं रक्त अने पितानुं शुक्र इत्यादिक आहारे एम मनुष्यनी पेठें एक स्त्री, एक पुरुष, एक नपुंसक थाय. ते जीव बालक छता मातानुं दुग्धादिक आहारे. पछी अनुक्रमे वधता वनस्पतिकाय अने त्रस स्थावर प्राणिनो आहार करे इत्यादिक ते स्थलचारि चतुष्पदना शरीर नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् कर्मने वशें थाय इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–अथस्थलचरानाह् । अथापरमाख्यात नानाविधाना चतुष्पदाना स्वरूपं । तद्यथा । एकखुराणामश्वखरादीना द्विखुराणा गोमहिष्यादीना गंडीपदाना हस्तिगंडकादीना सनखपदानां सिंहव्याघ्रादीना यथाबीजेन यथावकाशेन सर्वेप र्याप्तिमवाप्य उत्पद्यते उत्पन्नाश्च मातु स्तन्यमाहारयंति वृद्धि प्राप्ता परेषा शरीरम प्याहारयंति । शेषं सुगम ॥ २३ ॥

॥ टीका–सांप्रत स्थलचरानुद्दिश्याह् । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं नानाविधाना चतुष्पदानां तद्यथा एकखुराणामित्यश्वखरादीना तथा द्विखुराणा गोमहि ष्यादीना तथा गंडीपदानां हस्तिगंडकादीना तथा सनखाना सिंहव्याघ्रादीना यथाबीजेन यथावकाशेन सकलपर्याप्तिमवाप्योत्पद्यंते तथोत्पन्ना संतस्तदनंतर मातु स्तन्यमाहा रयंतीति । क्रमेणच वृद्धिमुपगता संतोपरेषामपि शरीरमाहारयति शेष सुगमं । यावत्क र्मोपगताभवतीति ॥ २३ ॥

अहावरं पुरक्खाय णाणाविहाण उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरि क्खजोणियाण तंजहा अहीणं अयगराणं असालियाण महोरगा णं तेसिंचणं अहाबीएण अहावगासेण इत्थीए पुरिस जावएत्थण मे हुणे एवं तं चेव नाणत्तं अंडं वेगइया जणयति पोयं वेगइया जणयति से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगइया जणयति पुरिसंपि णपुंसगंपि ते जीवा डह रा समाणा वाउकायमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथाव रपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियण तेसिं णा णाविहाणं उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खपंचिंदियअहीणं जाव महो रगाण सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जावमक्खायं ॥ २४ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वे तीर्थंकरे कह्युछे आ जगत्माहे नाना प्रकारे उ रपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनियाछे ते कहेछे अही सर्प, अजगर सर्प, अ

पाषाणादिषु सचित्ताचित्तेषु अग्निजीवा समुत्पद्यंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तेषा त्रसस्थावरा णा स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं। अन्ये त्रयोप्यालापकाउदकवद्द्रष्टव्या ॥३४॥ अथ वायुकायमाह । इदमग्निकायवद्व्याख्येय ॥ ३५ ॥

॥ टीका–सांप्रत तेज कायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथैतदपरमाख्यातं । इ हास्मिन् ससारे एके केचन सत्वा॰ प्राणिनस्तथाविधकर्मोदयवर्त्तिनोनानाविधयोनय॰ प्रा क् संत पूर्वजन्मनि तथाविधं कर्मोपादाय तत्कर्मनिदानेन नानाविधानां त्रसस्थावराणा प्राणिना सचित्तेष्वचितेषु शरीरेषु चाग्नित्वेन विवर्तते प्रादुर्भवति । तथाहि । पचेंद्रियति रश्चा दंतिमहिषादीना परस्पर युद्धावसरे विषाणसघर्षे सति अग्निरुत्तिष्ठते एवमचित्तेष्व पि तदस्थिसघर्षादग्नेरुद्भवं तथा द्वींद्रियादिशरीरेष्वपि यथासंभवमायोजनीयं । तथा स्थावरेष्वपि वनस्पत्युपलादिषु सचित्ताचित्तेष्वग्निजीवा॰ समुत्पद्यते ते चाग्निजीवास्तत्रोत्प न्नास्तेषां नानाविधाना त्रसस्थावराणा स्नेहमाहारयति । शेषं सुगम यावद्भवतीत्येवमा ख्यातं।अपरे त्रयोप्यालापका प्राग्वद्द्रष्टव्याइति ॥ ३४ ॥ सांप्रत वायुकायमुद्दिश्याह। (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातमित्याद्यग्निकायागमेन व्याख्येय ॥ ३५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनि याणेणं तत्त वुक्कम्मा णाणाविहाण तसथावराण पाणाणं सरीरेसु सचि त्तेसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए सक्करत्ताए वालुयत्ताए इमाउ गाहा उ अणुगंतवाउ " पुढवीय सक्करा वा,लुयाय उवले सिलाय लोणू से ॥ अयत उय तंब सीसग, रुप्प सुवण्णेय वइरेय ॥ १ ॥ हरियाले हिं गुलए, मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अब्भपडलब्भवालुय, बायरका ए मणिविहाणा ॥२॥ गोमेज्जएय रूयए, अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगयमसारगल्ले, भूयमोयग इंदणीलेय ॥ ३ ॥ चदण गेरुय हंसगब्भे, पुलए सोगंधिएय बोद्धवे ॥ चदप्पभ वेरुलिए, जलकते सूरकतेय ॥४॥ एयाउ एएसु भाणियबाएउ गाहाउ जाव सूरकंताएवि वुट्टंति तेजीवा ते सिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेति तेजीवा आहारे ति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियण तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढ वीण जाव सूरकताण सरीरा णाणावण्णा जावमक्खाय सेसं तिसिआल ॥ जहा उदगाणं ॥ ३६ ॥

इत्यादिक जेम पूर्वे उर परिसर्पनो विचार कह्यो तेम जाणवो ते जीव अनुक्रमे वधता थका पृथ्व्यादिकनो आहार करे. इत्यादिक सर्व अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—भुजपरिसर्प्पानाह। भुजपरिसर्प्पाणां गोधानकुलादीनां यथाबीजेन यथाव काशेनोत्पत्ति स्यात्। तेच अंडजत्वेन पोतजत्वेन वा उत्पन्नामातुरूष्मणा वायुना चाऽऽहारितेन वृद्धिं याति। शेषं सुगमं ॥ २५॥

॥ टीका—साप्रत भुजपरिसर्पानुद्दिश्याह (अहावरमित्यादि) नानाविधान्या भुजा न्या ये परिसर्प्पंति तेषा। तद्यथा। गोधानकुलादीना स्वकर्मोपात्तेन यथाबीजेन यथाव काशेन चोत्पत्तिर्भवति। ते चांडजत्वेन पोतजत्वेन चोत्पन्नास्तदनतर मातुरूष्मणा वायुना वा हारितेन वृद्धिमुपयाति। शेष सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २५ ॥

अहावरं पुरक्कायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्कजोणियाणं तंजहा चम्मपक्कीणं लोमपक्कीणं समुग्गपक्कीणं विततपक्कीण ते सिंचणं अहाबीएणं अहावगासेण इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा म्हरा समाणा माउगात्त सिणेह माहारेति आणुपुवेणं वुड्डा व णस्सतिकाय तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेति पुढविसरीरं जाव सतं अवरेवियणं तेसि णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्कजोणि याणं चम्मपक्कीणं जावमक्कायं ॥ २६ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरे कह्यु छे आ जगत् मांहे नाना प्रकारे खेचर पंचेंद्रिय तिर्यंचछे, ते कहेछे. चर्मपक्षी ते वग्गुली प्रमुख, लोमपक्षी ते सारस राजहंसा दिक, तथा समुद्गपक्षी अने विततपक्षी ए बे जाति, मनुष्य क्षेत्र थकी बाहेर जाणवी. ते खेचर जातिने यथाबीजे यथावकाशें जेम उरपरिसर्प्पनी पूर्वें उत्पत्ति कही, तेमज ए जीवनी पण उत्पत्ति जाणवी ते जीव बालक छता मातानो स्नेह आहारे इत्यादिक आलावो सर्व पूर्ववत् जाणवो ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—अथ खेचरानाह। खेचराणामुत्पत्तिरेव ज्ञेया। तद्यथा। चर्मपक्षिणां चर्मकीटवग्गुलीचर्मचटकादीनां लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीना समुद्गप क्षिणोविततपक्षिणश्च बहिर्द्वीपवार्तिनस्तेषा यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामे वमाहार स्यात्। सा पक्षिणी तदंडक स्वपक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडक तद्रू

तेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वशादिषु तान्येव। एवमचित्तेपूपरादिषु लवणत्वेन जायंते तदेव पृथ्वीकायिकानानाविधासु पृथ्वीषु शर्करावालुकोपलशिलालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेन बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते ॥ (एयाउगाहाउत्ति) एतागाथा अनुगंतव्या । एतद्गाथानुगमेन पदानि वाच्यानि। (पुढवीयसक्करावालुयायइत्यादि) अत्र पदोच्चारोयथा पुढवित्ताए। सक्करत्ताए वालुयत्ताए इत्यादि । एव गाथानुसारेण पदानि वाच्यानि। यावत्सूरकतत्ताएत्ति । शेषं सुगम।एव चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन ज्ञेया.॥३५॥

॥ टीका–साम्प्रतमशेषजीवाधार पृथिवीकायमधिकृत्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतत्पूर्वमाख्यात । इहैके सत्वा पूर्वं नानाविधयोनिका स्वकृतकर्मवशानानाविध त्रसस्थावराणा शरीरेषु पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते। तद्यथा। सर्प्पशिर सु मणय. करिदंतेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वेण्वादिषु तान्येवेति । एवमचित्तेपूपलादिषु लवणनावेनोत्पद्यंते । तदेव पृथिवीकायिकानानाविधासु पृथिवीषु शर्करावालुकोपलसितालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेनच बादरमणिविधानतया समुत्पद्यते । शेषं सुगम । यावच्चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन नेतव्याइति ॥ ३६ ॥

अहावरं पुरस्कायं सव्वेपाणा सव्वेनूता सव्वेजीवा सव्वेसत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंनवा णाणाविहवुक्कमा सरीरजोणिया सरीरसंनवा सरीरवुक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनियाणा कम्मगतीया कम्मठिइया कम्मणाचेव विप्परियासमुवेति ॥ ३७ ॥

अर्थ–हवे समस्त जीव आश्री कहेछे हवे अनेरु स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकरें कह्युं आ जगत् माहे सर्वप्राण, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, नाना प्रकार योनिक नाना प्रकारनी योनिने विषे संनव एटले उत्पत्तिछे जेनी, नाना प्रकारे आव्या छता, शरीरयोनिक शरीरने विषे नपजे शरीरने विषे आव्या छता त्या उपजे एटले नरकादिक चार गतिने विषे शरीर पणे उपजे त्या त्या यथायोग्य शरीरनो आहार करे कर्मने वशे उपजे कर्मने कारणे करीने कर्म करी कर्मने अनुसारे गति पामे कर्म करी जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट स्थिति पामे एटले जे जीव आ नवमा जेवोछे तेवोज आगले नवे न थाय. ए कारणे जीव, कर्मने वशें सुख वाछतो पण विपर्यास दुःख पामे. ॥३७॥

॥ दीपिका–अथ सर्वजीवानाश्रित्याह । अथापरमिदमाख्यात । सर्वे जीवानानाविधयोनिकानानाविधयोनिषूत्पद्यंते यत्रच उत्पद्यंते तत्र तद्देहाऽऽहारिण स्यु.। तेनाहारेण चायुसा कर्मवशगाश्चतुर्गतिषु भ्रमंति ॥ ॥ ३७ ॥

निश्राये विकलेंड्रियने नावे उपजे. तेनां शरीर नाना प्राकारना वर्ण गंध रस अने स्पर्श वाला जाणवां एम यावत् तीर्थकरें कह्युं ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–उक्ता पचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च । अथ विकलेंड्रियानाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वा कर्मणा तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्य आगत्य नानाविधत्रसस्थावराणा शरीरेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अन्यशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते उत्पद्यतइत्यर्थः । तेच विकलेंड्रिया सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेन जायंते नरभुज्यमानेषु मंचकादिषु अचित्तेषु मत्कुणत्वेनोत्पद्यंते तथा नरशरीरेषु विकलेंड्रियशरीरेषु वा सचित्ताचित्तेषु ते जीवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अनुस्यूतत्वेन परिनिश्रयाकृम्यादित्वेन जायंते । केचित्सचित्तेऽग्नौ मूषिकादितया यत्र चाग्निस्तत्र वायुरिति ते वायूद्भवाअपि ज्ञेया । पृथिवीमाश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादौ ऊष्मणा सस्वेदजाजायंते उदके पूतरकाडोक्षणकाभ्रमरिकादय । वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादय. एव ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराणि आहारयतीत्याख्यातं ॥ २७ ॥

॥ टीका–व्याख्याता पंचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च तेषां चाहारो द्वेधा । आभोगनिर्वर्तिताऽनाभोगनिर्वर्तितश्च । तत्रानाभोगनिर्वर्तित प्रतिक्षणभाव्यभोगनिर्वर्तितस्तु यथास्व क्षुद्वेदनीयोदयभावीति । साप्रतं विकलेंड्रियानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानतरमेतदाख्यातमिहास्मिन् ससारे एके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिन सत्वा प्राणिनोनानाविधयोनिका कर्मनिदानेन स्वकृतकर्मणोपादानभूतेन तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्यागत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु अचित्तेषु सचित्तेषुवा (अणुसुयत्ताएत्ति) अपरशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते समुत्पद्यंते इति यावत् (तेच जीवाविकलेंड्रिया सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेनोत्पद्यंते तथा तत्परिभुज्यमानेषु मचकादिष्वचित्तेषु मत्कुणत्वेनाविर्भवति तथाऽचित्तीभूतेषु मनुष्यादिशरीरकेषु विकलेंड्रियशरीरेषुवा ते जीवाअनुस्यूतत्वेन परनिश्रयाकृम्यादित्वेनोत्पद्यंते । अपरेतु सचित्ते तेज कायादौ मूषिकादित्वेनोत्पद्यते । यत्र चाग्निस्तत्र वायुरित्यतस्तडुद्भवाअपि द्रष्टव्या । तथा पृथिवीमनुश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादावूष्मणा सस्वेदजाजायंते तथोदके पूतरकाडोक्षणकभ्रमरिकाछेदनकादय· समुत्पद्यंते तथा वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयोजायते । तदेव ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराण्याहारयति इत्येवमाख्यातमिति ॥ २७ ॥

एवं डुरूवसंभवत्ताए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे पचेंड्रियनां मल मूत्र माहें उपजता एवा, जीव आश्री कहेछे (एवके०)

अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथु प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन प्रारंभिये बैये. त्रीजा अध्ययनमां आ हार आश्री कर्मबंध थाय. एम कह्यो ते कर्मबंध पच्चरकाण करवाथी टली जायछे, ते कारण माटे चोथु अध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया नामे कहिये बैये.

सुयंमे आउसतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु पच्चरकाणकिरियाणा मज्झयणे तस्सणं अयमठे पसत्ते आया अपच्चरकाणीयावि भवति ॥ आया अकिरिया कुसलेयावि भवति आया मिछा संठियावि भवति आया एगतदंमेयावि भवति आया एगंतबालेयावि भवति आया एगतसुत्तेयावि भवति आया अवियारमणवयणकायवक्केयावि भवति आया अप्पडिहयअपच्चरकायपावकम्मेयावि भवति एस खलु भगवता अरकाए असंजते अविरते अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगतदंमे एगतबाले एगंतसुत्ते सेबाले अवियारमणवयणकायवक्के सुविणमवि ण परस्सति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १ ॥

अर्थ—सुधर्म स्वामी जबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, (सुयमे के०) में एम सांभल्युंछे (आउसतेण के०) आयुष्मन् (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्री महावीरदेव तीर्थंकर तेणें एम कह्युंछे (इहखलुपच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे के०) ए प्रवचनने विषे खलु ए वाक्यालंकारे प्रत्याख्यानक्रिया नामें अध्ययन, (तस्सणंअयमठेपसत्ते के०) तेनो ए अर्थ जे आगल कहेशे, ते कहेछे, (आयाअपच्चरकाणियाविभवति के०) ए आत्मा जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योग सहित स्वभावे रह्यो थको, अप्रत्याख्यानी होय. अपि शब्द थकी तेहीज आत्मा, कोइ एक रूडा कारण थकी पच्चरकाणी पण होय. (आयाअकिरियाकुसलेयाविभवति के०) ए आत्मा रूडा अनुष्ठानें रहित पण होय अपि शब्द थकी रूडा अनुष्ठाने सहित पण होय, तथा (आयामिछासंठियाविभवति के०) ए आत्मा मिथ्यात्वे संस्थित पण होय, अने अपि शब्द थकी मिथ्यात्व थकी रहित पण होय, (आयाएगंतदंमेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांते प्राणीउने दंमनो करनार पण होय, तथा (आयाएगतबालेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांत बाल पण होय, (आयाएगंतसुत्तेयाविभवति के०) तथा

॥ टीका—सांप्रतं सचित्तशरीराश्रयान् जंतून् प्रतिपादयितुमाह । (एवखुरडगुत्ताएइत्यादि) एवमिति यथा मूत्रपुरीषाद्यावुत्पादस्तथा तिर्यक्शरीरेषु (खुरडगुत्ताएत्ति) चर्मकीटतया समुत्पद्यते । इदमुक्तं नवति जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोत प्राणिनः संमूर्छंते तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयतश्चर्मणोविवराणि विदधति गलछोणितेषु विवरेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितमाहारयंति तथा अचित्तगवादिशरीरेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटका समूर्छंते तेच तत्र समूर्छतस्तछरीरमाहारयतीति ॥२९॥

अहावर पुरकायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिया णेणं तछवुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराण पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसुवा तं सरीरगं वायसं सिद्धवा वायसंगहियंवा वाय परिगहियं उद्दवाएसु उद्दनागी नवति अहेवाएसु अहेनागी नवति तिरियवाएसु तिरियंनागी नवति तजहा उसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए तेजीवा तेसि णाणाविहाणं तसथावराण पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा अहारेति पुढविसरीर जावसंतं अवरेवियणं तेसि तसथावरजोणियाणं उसाण जावसुद्धोदगाण सरीरा णाणावणा जावमरकाय ॥ ३० ॥

अर्थ—हवे अपूकायनुं प्रतिपादन करे ले हवे वीजु स्थानक ले श्री तीर्थंकरें कह्युले आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मने उदये नानाविध योनिक लता यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या लता नाना प्रकारे त्रस ते दर्डुरादिक अने स्थावर ते हरिकाय लवणादिक प्राणीना सचित्त अचित्त शरीरने विषे ते अप्कायनु शरीर वायुये करी निपजाव्यु तथा (वायसगहियंवा के०) वायरे करी सम्यक् प्रकारे ग्रह्यु तथा (वायंपरिह्यिं के०) वायरे करी अन्योन्य परिगत एटले माहोमाहे मेलव्यु तथा (उद्दवाएसुउद्दनागीनवति के०) ऊर्ध्वगत वायराने विषे ऊर्ध्वगत नागी थाय एटले ऊर्ध्व वायु थके पाणी पण उपहरो रहे (अहेवाएसुअहेनागीनवतिके०) तथा निचे निचे वायरे निचो होय, (तिरियवाएसुतिरियंनागीनवति के०) तिर्छे वायरे तिर्छो थाय, जे जे परिणामे वायु वर्त्ते, तेम तेम पाणी पण परिणमे (तंजहा के०) हवे तेना नाम कहेले (उसा के०) उसपडे ते (हिमएके०) हिम (महिया के०) धूयरी (करए के०) करगडा (हरतणुए के०) तृणने अग्रे स्थित एवा पाणीना विंदुआ (सुद्धोदए के०) शुद्धोदक ते स्वछ पाणी इत्यादिक पाणी जाति मांहे जीव उपजे.

नस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि जवति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयम् । तद्यथे ह कर्मोपादानजूतस्याशुजस्य प्रत्याख्यान प्रतिपाद्यतइति । सांप्रत निक्षेपस्तत्राप्योघनिष्पन्नेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने प्रत्याख्यानक्रियेति द्विपदं नाम । तत्र प्रत्याख्यानपद निक्षेपार्थं निर्यु क्तिरुदाह ।'' णाम ठवणादविए, अइच्छ पडिसेह एय जावेय ॥ एसोपच्चरकाण,स्स ठविहो होइनिरकेवो ,, ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापना इव्यादित्साप्रतिषेधजावरूपः । प्रत्याख्यानस्यायं षोढा निक्षेप । तत्रापि नामस्थापने सुगमे । इव्यप्रत्याख्यानं इव्यस्य इव्येण इव्याद्इव्ये इव्यजूतस्य वा प्रत्याख्यान । तत्र सचित्ताचित्तजेदमिश्रस्य प्रत्याख्यानं इव्यनिमित्तं वा प्रत्याख्यान यथा धम्मिल्लस्य । एवमपराण्यपि कारकाणि स्वधिया योज नीयानि। तत्र दातुमिछा दित्सा न दित्सा अदित्सा तया प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं । सत्यपि देये सतिच सप्रदानकारके केवलं दातुर्दातुमिछा नास्तीत्यतोऽदित्साप्रत्याख्या न तथा प्रतिषेधप्रत्याख्यानमिदं । तद्यथा । विवक्षितइव्याजावाद्विशिष्टसप्रदानकारका जावाद्वा सत्यामपि दित्सायां य प्रतिषेधस्तत्प्रत्याख्यान। जावप्रत्याख्यानं तु द्विधाऽत करणशुद्धस्य साधो श्रावकस्य वा मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं चेति । च शब्दाद्विविधमपि नोआगमतोजावप्रत्याख्यानं इष्टव्यं नान्यदिति । साप्रत क्रियापदं नि क्षेतव्य । तच्च क्रियास्थानाध्ययने निक्षिप्तमिति । न पुनर्निक्षिप्यते । इह पुनर्जावप्रत्याख्या ने नाधिकारइति दर्शयितुमाह । '' मूलगुणे सुयपगय, पच्चरकाणे इहं अधीगारो ॥ हो ऊ तुतप्पच्चइया, अप्पच्चरकाणकिरियाउ ,, ॥ २ ॥ (मूलगुणेसुयइत्यादि) मूलगुणा प्रा णातिपातविरमणास्तेषु प्रकृतमधिकार प्राणातिपातादे प्रत्याख्यान कर्तव्यमिति याव त् । इह प्रत्याख्यानक्रियाध्ययने जावाधिकारोयदि मूलगुणप्रत्याख्यानं न क्रियते तत्रो पाय दर्शयितुमाह । प्रत्याख्यानाजावेऽनियतत्वाद्यत्किंचनकारितया तत्प्रत्ययिका तन्नि मित्ताजावाडत्पद्यते प्रत्याख्यानक्रिया सावद्यानुष्ठानक्रिया तत्प्रत्ययिकश्च कर्मबंधस्तन्निमि त्तश्च ससारइत्यत प्रत्याख्यानक्रिया मुमुक्षुणा विधेयेति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्य । तच्चेदं (सुयमेआउसतेणमित्यादि) अस्य चानतरपरपरसूत्रैः सह सबधोवक्तव्य । सचायमिहानतराध्ययनपरिसमाप्ताविद सूत्रमाहारगुप्त समित सहित सदा यतेतेत्येतन्मया श्रुतमायुष्मता जगवतेदमाख्यातमे वमनया दिशा परपरसूत्रैरपि सबधोऽन्यूह्य । इहास्मिन् प्रवचने सूत्रकृतागेवा । खट्विति वाक्यालकारे । प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययन तस्यायमर्थोवक्ष्यमाणलक्षण । अतती त्यात्मा जीव प्राणी सचानादिमिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगानुगततया स्वजावतएव प्रत्या ख्यान्यपि जवत्यपिशब्दात्सएव कुतश्चिन्निमित्तात्प्रत्याख्यान्यपि । तत्रात्मग्रहणमपरद र्शनव्युदासार्थं । तथाहि । साख्यानामप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावश्चात्मा । सच तृणकु

अहावरं पुरकायं इहेगतियासत्ता उदगजोणिया उदगसंनवा जाव कम्मणियाणेण तत्र वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं तसथावरजोणियाण उदगाण सिणेहमाहारेति तेजीवा आहारेति पुढविसरीरं जाव संत अवरेवियणं तेसिं तसथावर जोणियाण उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमखायं ॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे अप्काय योनिक अप्काय देखाडेछे. अथ हवे अपर स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे संनवछे,यावत् कर्मेने कारणे करी एटले तथाविध कर्मने उदयें वातवशें उपना एवा त्रस अने स्थावर जीव, तेना शरीरने अधार नूत एवुं उदक जे पाणी ते उदके उपना त्रस स्थावर योनिक उदक तेने विषे उदक पणे उपजे,ते जीव त्यां उपना थका ते उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक शेषं सुगमम् ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका–वातयोनिकं जलमुक्त्वा जलसंनव जलमाह । (अहावरमित्यादि) इहैके सत्वावातवशोत्पन्नत्रसस्थावरदेहाधारनूतमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा उदकसंनवास्त्रसस्थावरयोनिकेषु उदकेषु अपरोदकतया उत्पद्यंते । तेच जलसत्वास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानां जलानां स्नेहं पराण्यपि पृथिव्यादिशरीराणि चाहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरं नक्षितं सत्सारूप्यमानीयात्मसात्कुर्वंति । अन्यान्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि वर्तंते तेषां च नीरयोनिकानां नीराणां नानाविधानि शरीराणि वर्तंते एतदाख्यातं ॥३१॥

॥टीका–तदेवं वातयोनिकमप्कायं प्रदर्श्याधुनाप्कायसंनवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगति उदकाधिकारे वा एके सत्वास्तथाविधकर्मोदयाद्वातवशोत्पन्नत्रसस्थावरशरीराधारमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदकसंनवा यावत्कर्मनिदानेन तत्रोत्पित्सवस्त्रसस्थावरयोनिकेषूदकेष्वपरोदकतया विवर्तंते समुत्पद्यते ते चोदकजीवास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानामुदकानां स्नेहमाहारयंत्यन्यान्यपि पृथिव्यादिशरीराण्याहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरमाहारितं सत् सारूप्यमानीयात्मसात्प्रकुर्वंत्यपराण्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि विवर्तंते तेषां चोदकयोनिकानामुदकानां नानाविधानि शरीराणि विवर्तंते इत्येतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं

इ हणंतस्स समणक्कस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि पासउ एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ पुणरवि चोयए एवं बवीति तत्थणं जेते एवमाहंसु असंतएणं मणेणं पावएणं असंतीयाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएण पावएणं अहणं तस्सअमणक्कस्स अवियारमणवयणकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जइ तत्थणं जेते एवमाहंसु मिछा ते एवमाहंसु ॥ २ ॥

अर्थ-ए प्रकारें कहे थके, (तत्थचोयएपन्नवगंएववयासि के०) त्यां शिष्य प्रज्ञापक एटले गुरु प्रत्ये एवुं बोल्यो के, हे नगवन्! (असंतएण के०) अगते अप्रवर्ते (मणेण के०) मने (पावयण के०) पापकर्मने विषे, तथा (असंतियाएवत्तिएपावियाए के०) अगते अप्रवर्त्ते वचनें पापकर्मनें विषे, (असतएणकाएणपावएण के०) अगते अप्रवर्ते कायाये पापकर्मने विषे, (अहणतस्स के०) अणहणताने विषे, (अमणक्कस्स के०) पापकर्म उपर मनना परिणाम रहित, (अवियारमणवयकायवक्कस्स के०) अविचारवत मन वचन काया एवा रहे, एटले पापकर्मना विचार विनाना रहे, (सुविणमविअप्पसउपावकम्मेणोकज्जइ के०) स्वप्नांतरे पण पापकर्मने अण देखता, एटले जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण देखे नहीं, तो तेने पापकर्म सर्वथाऽपि लागे नहीं, (कस्सणतंहेउं के०) तो शा कारणे ते पाप कर्म तेने लागे, ? अंहीं अव्यक्तपणा थकी पापकर्म लागे, तेने कांइ बंधनु कारण जाणवु नही. (चोयएएवबवीति के०) तेहिज वली नोदक शिष्य, पोताना अनिप्राये करी पापकर्मना बंधनु कारण आवी रीतें कहेले (अन्नयरेणमणेणंपावएण के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे मनें करी प्रवर्त्ते, (मणवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते मन निमित्ते पापकर्म करे बांधे, (अन्नयरीएवत्तिएपावियाए के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे वचनें करी प्रवर्त्ते, (वत्तिवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते वचन निमित्ते पापकर्मने करे बांधे, (अन्नयरेणकाएणपावएण के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापने विषे कायाने प्रवर्त्तावे. (कायवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते कायनिमित्ते पाप कर्म करे, बांधे (हणतस्ससमणक्कस्ससवियारमणवयकायवक्कस्स के०) हणताने विषे पापकर्म उपर मन परिणाम सहितने विषे सविचार मनें करी, वचनें करी, अने कायायें करी सहित, (सुविणमविपासउ के०) स्वप्नांतरने विषे पण पापकर्म देखे ले (एवगुणजातीयस्सपावेकम्मेकज्जइ के०) एम गुण

त्यादि) अथापरमेतदाख्यातमिहैके सत्वाउदकयोनिषु चोदकेषु त्रसप्राणितया पूतरक दित्वेन विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोत्पद्यमाना समुत्पन्नाश्च तेषामुदकयोनिनामुदकाना स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगम यावदाख्यातमिति ॥ ३३ ॥

अहावरं पुरकाय इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनिया णेणं तछ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्ते सुवा अचित्तेसुवा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाण सिणेहमाहारेति ते जीवा आहारेति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियण तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावन्ना जाव मरकायं सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥३४॥ अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तछ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाण सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा वाउकायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा भाणियव्वा चत्तारि गमा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे अग्निकाय जीव आश्री कहेछे अथ हवे अनेरु स्थानक श्री तीर्थंकर देवे कह्यु. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नाना प्रकारना योनि वाला, ते एवा प्रकारनुं कर्मोपार्जन करीने, नानाविध त्रस अने स्थावर प्राणिना शरीरने विषे सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, अग्निकाय पणे उपजे त्या उपजता थता, ते त्रस अने स्थावर प्राणीनो स्नेह आहारे इत्यादिकं शेषं सुगम ॥ अही अग्निकायने विषे शेष त्रण आलावा उदकना आलावानी पेठे जाणी लेवा ॥३४॥ हवे वायुकाय जीव आश्री कहेछे हवे अनेरु स्थानक श्री तीर्थंकरे कह्यु आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नानाविध योनिक कर्मने वशवर्त्ति थका नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना शरीर सचित्त अने अचित्तने विषे वायुकाय पणे उपजे इत्यादिक जेम अग्निकायना चार आलावा कह्या तेम ए वायुकायना पण चार आलावा केहेवा. ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथ तेज कायमाह । एके सत्वा कर्मोदयान्नानाविधाना त्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेष्वचित्तेषु वाऽग्नित्वेन विवर्तंते प्राडुर्भवति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चा दंतिमहिषादीना परस्पर युद्धावसरे दंतशृंगयोगेऽग्निरुत्पद्यते । एवमचित्तेष्वपि तदस्थिघर्षणादग्निरुत्पत्ति । विकलेंद्रियशरीरेष्वपि यथासंभव योज्यं । स्थावरेषु वनस्पति

कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते? नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरिति नावः। त देव चोदकएव स्वानिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह।(अन्नयरेणमित्यादि) कर्माश्रव द्वारनूतैर्म नोवाक्कायकर्मनि कर्म बध्यत इति दर्शयति। अन्यतरेण क्लिष्टेन प्राणातिपातादिप्रवृत्त्या म नसा वाचा कायेनच तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यतइति।इदमेव स्पष्टतरमाह। अतस्तस्वान्तमन स्कस्य समनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यत. अस्पष्टविज्ञानस्यैतद्गुणजातीयस्य पाप कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादे. पापकर्मसंनवइति तेषां घातकस्य मनोवाक्काय व्यापारस्यानावात्। अथैतद्व्यापारमंतरेणापि कर्मबधइष्यते एवच सति मुक्तानामपिकर्म बंध स्यात्।न चैतदिष्यते। तस्मान्नैव स्वप्नातिकमविज्ञोपचित कर्म बध्यतइति। तत्र य थैवनूतैरेव मनोवाक्कायव्यापारै. कर्मबंधोऽन्युपगम्यते तदेव व्यवस्थिते सति ये ते एवमुक्त वतस्तद्यथा विद्यमानैरेवा शुनैर्योगै. पाप कर्म क्रियते मिथ्या तएवमुक्तवतइति स्थितं॥२॥

तत्र पन्नवए चोयगं एव वयासी त सम्मं ज मए पुव्वुत असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तिए पावियाए असंतएण काएणं पावएण अहणं तस्स अमणक्कस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जति तं सम्मं कस्सणं तं हेउं आचार्य्या आह तत्र खलुनग वया उजीवणिकायहेऊपस्सत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तसकाइया इच्चे एहिं उहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चखायपावकम्मे निच्च पसढविउवातचित्तदंमे त जहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादसणसल्ले ॥ ३ ॥

अर्थ–एवु शिष्यें आचार्यना पक्षने दूषण आप्युं, (तत्र के०) तेवारें (पन्नवएचोयगं के०) आचार्य पोताना शिष्यप्रत्ये (एववयासी के०) एवु बोल्या के,अहो शिष्य! (तंसम्म जमएपुव्वुतंके०) जे में पूर्वे वचन कह्युंके जे मन,वचन, अने कायानी प्रवर्त्ति विना पण पाप कर्म लागे ते सत्यछे इत्यादि पाठनो अर्थ सुगम छे माटे नथी लख्यो. (तं सम्म के०) ते सत्य जाणजे,युक्तिसहित जाणजे एवु आचार्यनुं वचन सानली, फरी शिष्य बोल्यो के, (कस्सणतंहेउं के०) शे कारणे तमारु वचन सत्य छे ते कहो ? हवे (आचार्यआह के०) आचार्य कहेछे (तत्रखलुनगवया के०) त्या खलु ए वाक्यालंकारे नगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे (उजीवणिकायंहेऊपस्सुत्ता के०) उ जीव निकाय कर्मबंधनां कारण कह्याछे, (तंजहा के०) ते कहेछे (पुढविकाईया के०) पृथिवीकाय थकी मांमीने (जावतसकाइया के०) यावत् त्रसकाय पर्यंत, (इच्चेएहिंउहिंजीवणिकाएहिं के०)

अर्थ–हवे पृथ्वीकाय जीव आश्री कहेछे हवे अन्य स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युछे आ जगत् माहे कोइ एक जीव, नाना प्रकार योनिक, यावत् कर्माधीन थका त्या उपजे नाना प्रकारना त्रस स्थावर प्राणीना शरीरने विषे, सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, शर्करा एटले कांकरा पणे, वेलु एटले रेति पणे, इत्यादिक (इमाउगाहाउ के०) ए आगलनी चार गाथाये करी पृथ्वीकायना भेद कहेशे ते प्रमाणे (अणुगंतवाउ के०) सर्व जाणी लेवा (पुढवीय के०) पृथ्वी पणे (सक्करा के०) कांकरा पणे, (वालुयाय के०) वेलू ते रेती पणे, (उवले के०) उपल एटले पाषाणना कटका पणे, (सिलाय के०) माटी अने पाशाणनी शिलापणे, (लोणूसेके०) समुद्रादिकना लूण ते पणे, उसे एटले ऊस पणे, ते खारी धूल पणे, (अयत के०) लोह पणे, (उय के०) जसत तरुआ पणे, (तंब के०) त्रावा पणे, (सिसग के०) शीसा पणे, (रुप्प के०) रूपा पणे, (सुवस्रेय के०) सुवर्ण पणे, (वइरेय के०) वज्र, ते हीरा पणे, (हरियाले के०) ...एके०) हिंगलो पणे, (मणोसिलाके०) मणसील पणे, (सासगज ...नीजाति, अंजन एटले सुरमो ते पणे, (पवालेके०) परवाला, ...भ्रपडल अने अभ्रवालुक एटले आकाशना जलउस तथा (बायरकाय के०) बादरकाय, पृथ्वीना भेद कह्या. हवे ... (गोमेज्जएय के०) गोमेद्य रत्न, (रूयए के०) रजत ...ग के०) स्फाटिक रत्न, (लोहियरकेय के०) ...न, (मसारगल्ले के०) मसारगल्ल रत्न, ...य के०) इन्द्रनील रत्न, (चदण ...पे के०) हसगर्भ रत्न, (पुलए ... वोधव्वे के०) जाणवा (च ... रत्न, (जलकंते के०) जलकत रत्न पण एनु नाम छे ए चार गाथा ...काश पणे एटले एटला दूर लगे पृथ्वी ...थता छता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्था ...गय सुगमछे ए पृथिवीकायना शेप त्रण आ ...जाणी लेवा ॥ ३६ ॥

...थमाह । इहैके सत्वा कर्मवशगानानाविधत्रसस्थावरा... ...वा पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते । तद्यथा । सर्पशिरस्सु मणय. करिद

पाप कर्म येन सतया पुनर्नञ्समासेनाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा यश्चात्मा जतुस्तथा तद्भवत्वादेव नित्यं सर्वकाल प्रकर्षेण शठस्तथा व्यतिपाते प्राणव्यपरोपणे चित्त यस्य स व्यतिपातचित्त स्वपरदम्भहेतुत्वाद्दंभः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंभश्चेति कर्मधारय । इत्येतदेव प्रत्येक दर्शयितुमाह (तजहेत्यादि) तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठचित्तदम्भएव मृषावाददत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यमिति । तेषामिहैकेंद्रियविकलेंद्रियादीनामनिवृत्तत्वान्मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्व इष्टव्यं । तद्भावाच्च ते कथ प्राणातिपातादिदोषवत्तया व्यक्तविज्ञानाअपि स्वप्नाद्यवस्थायामिति ते कर्मबधकाएव । तदेव व्यवस्थिते यत्प्रागुक्तं परेण यथा नाव्यक्तविज्ञानानामघ्नताममनस्कानां कर्मबंधइत्येतत् ह्रवते ॥ ३ ॥

आचार्यआह तत्त खलु भगवया वहए दिठंते पण्णत्ते से जहा णामए वहए सिया गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खण निद्दाए पविसिस्सामि खणंलद्धूण वहिस्सामि पहारेमाणे से किंतु हुनाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुतस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूण वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राओवा. सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभुत्ते मिछासंठित्ते निच्च पसढविओवायचित्तदंभे भवति एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हंता भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे आचार्य एनी उपर दृष्टांत कहेछे. (तच्चखलुभगवया के०) त्यां निश्चे भगवत श्री महावीर देवे (वहएदिठंते के०) वधकनो दृष्टात (पण्णत्ते के०) कह्यो छे. (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनाये कोइ एक पुरुष, (वहएसिया के०) वधक होय ते कोइ एक कारणे कोप्यो थको, (गाहावइस्सवा के०) गृहपति उपर, तथा (गाहावइपुत्तस्सवा के०) गृहपतिना पुत्र उपर अथवा (रण्णोवा के०) राजा उपर, (रायपुरिसस्सवा के०) अथवा राजानो पुरुष, तेओनो विनाश करवा वाछतो, एवी चितवना करे के, (खणनिद्दाए के०) अवसर पामिने, एना घरमां (पविसिस्सामि के०) प्रवेश करीश (खणलद्धूणवहिस्सामि के०) छिद्रादिक पामिने अथवा देखीने एने हणीश. (पहारेमाणे के०) ते पुरुष एम चितवतो, (सेकिंतुहुनामसेवहए के०) ते केवो जाणवो? तु अवधारणे छे नाम संभावनाये छे तो के, ते वधक कहिये. हवे ते वधक गृहपतिनो, अथवा गृहपतिना पुत्रनो, अथवा राजानो, अथवा राजपुरुषनो, वध

॥ टीका-सांप्रत सर्वोपसंहार द्वारेण सर्वजीवान् सामान्यतोविजणिषुराह् । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यात । तद्यथा। सर्वे प्राणा प्राणिनोऽत्रच प्राणिभूतजीवनत्वशब्दा. पर्यायित्वेन डृष्टव्या' कथचिन्नेदं चाश्रित्य व्याख्येया । तेच नानाविधयोनिकातो नाविधासु योनिपूत्पर्यंते नारकतिर्यङ्नरामराणा परस्परगमनसन्नवात्तेच यत्र यत्रोत्पद्यंते ते तत्तच्छरीराण्याहारयति तदाहारवतश्च तत्रागुप्ताश्च द्वारतया कर्मवशगानारकतिर्यङ्नरामरगतिषु जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितयोजवति।अनेनेदमुक्तं नवति । योयादृगिह नवे स तादृगेवामुत्रापि नवतीत्येतन्निरस्त नवत्यपितु कर्मोपगा कर्मनिदाना. कर्मायत्तगतयोनवति तथा तेनैव कर्मणा सुखलिप्सवोपि तद्विपर्यास डु खमुपगछतीति ॥ ३७ ॥

से एवमायाणह से एवमायाणित्ता आहारगुत्ते सहिए समिए सयाजए त्तिबेमि ॥ बियसुयखंधस्स आहारपरिसा णाम तईयमज्झयण सम्मत्तं ॥३८॥

अर्थ-हवें गुरु, शिष्य प्रत्यें कहेछे के, (सेएव के०) ते एम (मायाणह के०) तमे जाणो जे, मे आदि थकी सर्वजीव आश्री आहारनु विशेष संसार परिभ्रमण कह्युछे. (सेएवमायाणित्ता के०) एवु जाणीने जे विवेकी जन होय ते, (आहारगुत्ते के०) आहारने विषे गुप्त थाय एतावता शुद्ध निर्दोष एषणीक आहारनु खप करे,अने (सहिए के०) ज्ञान दर्शन अने चारित्रें करी सहित थको (समिए के०) पाच समितियें समितो, (सयाजए के०) सदा सर्वकाल एटले जावजीव सुधी सयमने विषे यत्न करे. त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणजो ॥ ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कधने विषे, आहारपरिज्ञा नाम त्रीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ३८ ॥

॥दीपिका-(सेएवमायाणहत्ति) तदेव जानीत यूय' यत्पूर्वोक्त सर्व।एव ज्ञात्वा चाहारगुप्त एव समितियुत समित सहितोवा ज्ञानादिनि सदा यतेत सयमे प्रयत्नवान् नवेदिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३८॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधे आहारपरिज्ञाख्य तृतीयमध्ययन समाप्तम्॥

॥ टीका-साप्रतमध्ययनार्थमुपसजिघृक्षुराह । (सेएवमायाणहेत्यादि) यदेतन्मयाऽऽदित प्रनृत्युक्तं।तद्यथा। योयत्रोत्पद्यते स तच्छरीराहारकोनवत्याहारगुप्तश्च कर्मादत्ते कर्मणाच नानाविधासु योनिषु अरहट्टघटीन्यायेन पौन पुन्येन पर्यटतीत्येवमाजानीत यूय' एतद्विपर्यास डु खमुपगछंतीति । एतत्परिज्ञायच सदसद्विवेक्याहारगुप्त पंचनि समितिनि समितोयदिवा सम्यक् ज्ञानादिके मार्गे इतोगत समितस्तथा सह हितेन वर्तते सहितस्सदा सर्वकाल यावडुच्छ्रासं तावद्यतेत तत्सयमानुष्ठाने प्रयत्नवान्नवेदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे।ब्रवीमीति पूर्ववत्। गतोऽनुगम ।साप्रत नयास्ते च प्राग्वद्द्रष्टव्या ॥३८॥ समाप्तमाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

प्यात्मनो ऽवसरं लब्ध्वाऽपरकार्येक्षणे सति तथा वध्यस्यच छिद्रमपेक्षमाणस्तदवसरा पेक्षी किंचित्कालमुदास्ते सच तत्रौदासीन्यं कुर्वाणोऽपरकार्यं प्रति व्यग्रचेता· तस्मिन्नवसरे वधं प्रत्यस्पष्टविज्ञानोजवति । सचैवन्नूतोपि तथा तं वध्यं प्रति नित्यमेव प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवत्येवमविद्यमानैरपि प्रव्यक्तैरशुनैर्योगैरेकेंद्रियविकलेंद्रियादयोऽस्पष्टविज्ञानाअपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वात्प्राणातिपातादिदोषवतोजवति । नच तेऽवसरमपेक्षमाणाउदासीनाअप्यवैरिणोन जवतीति । अत्रच वध्यवधकयो क्षणापेक्षया चत्वारोनंगा । तद्यथा । वध्यस्याऽनवसरोवधकस्य च अनयोर्वाऽनवसरो द्वयोरप्यवसरइति । नागार्जुनीयास्तु पठंति । अप्पणो अरकाणया एतस्सवा पुरिसस्स छिदं अलजमाणे णोवहे इतं जयामेरकणो जविस्सइ तस्स पुरिसस्स छिद्द लजिस्सामि तया मेस पुरिसे अवस्सं वहयवे जविस्सइ एव मणोपहारे माणेत्ति सूत्रं निगदसिद्धं ॥ ४ ॥

आचार्यआह जहासे वहए तस्स गाहावइस्सवा तस्स गाहावइपुत्तस्सवा रणोवा रायपुरिसस्स खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूए मिच्छासठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे एवमेव वालेवि सव्वेसिं पाणाण जाव सव्वेसि सत्ताण दियावा राउवा सुत्तेवा जागरे माणेवा अमित्तन्नूए मिछासठिते निच्च पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले एवंखलु जगवया अरकाए असंजए अविरए अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगतवाले एगंतसुत्तेयावि जवइ से वाल अवियारमणवयणकायवक्के सुविणम विणपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ–तेवारें अचार्य बोल्या के, अहो शिष्य ! जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपति, तथा गृहपतिना पुत्र, अथवा राजा, तथा राज पुरुष उपर विनाशनो जाव चिंतवतो थको, तेमना विनाशनी क्रिया कस्या विना पण ते वधक कहेवाय; बीजा पदोनो अर्थ सुगम छे माटे आहीं लख्यो नथी (एवमेव के०) एम ते, (वालेवि के०) बाल जीव पण, सर्व प्राणीने विषे यावत् सर्व सत्व, तेनो दिवसे अथवा रात्रिये सुता अथवा जागतां, अमित्रनूत एटले शत्रुनूत मिथ्यात्वसस्थित निरतर शठ,प्राणिघातने विषे चित्त छे जेन्नु, प्राणीयोने दम कारक, (त के०) ते कहेछे. प्राणातिपात, मृषावादथी,मांमी

ए आत्मा एकांत सुतो एटले शयन करनार पण होय, (आयाएगतअवियारमणवयण कायवक्कयाविनवति के०) तथा ए आत्मा एकात अविचार्युं कोइ कार्य करे, एवा मन वचन अने कायायें करी सहित पण होय, (आयाअपडिहयअपञ्चरकायपावकम्मेया विनवति के०) तथा ए आत्मा, अप्रतिहत एटले विरते करी नथी हण्या तथा नथी पच्चख्या पाप कर्म जेणे एवो पण होय, (एसखलुनगवताअरकाए के०) एवो जीव श्री नगवते कह्योछे वली केवो कह्यो तो के? (असजते के०) असयत (अविरते के०) अविरति (अपडिहयपच्चायपावकम्मे के०) अप्रतिहत एटलें नथी हण्या पच्चरकाणे करीने पाप कर्म जेणे, (सकिरिए के०) क्रिया सहित, (असंवुमे के०) संवर रहित (एगंतदंमे के०) एकांतें दंम, (एगंतवाले के०) एकाते बाल, (एगत सुत्ते के०) ए कातें सुतो एटले शयन करनार, एवो कह्यो (सेवालेअवियारमणवयणकायवक्के के०) ते बाल, अविचारवान् एवो मन वचन अने कायाये करी रहित छतो, जे पाप कर्मने (सुविणमविणपस्संति के०) स्वप्नातरे पण देखे नही. (पावेयसेकम्मेकज्जइ के०) तो पण तेने तेवा पापकर्मनो बध थायछे ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रत्याख्यानक्रियाख्यं चतुर्थमध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्र । (सुयंमेइत्यादि) श्रुत मयाऽऽयुष्मता नगवतेदमाख्यात । इहागे प्रत्याख्यानक्रियानामा ध्ययन तस्यायमर्थ । आत्मा स्वनावतएवाऽप्रत्याख्यानी नवति । अपिशब्दात्तकदा चित्प्रत्याख्यान्यपि नवति । आत्मा क्रियाकुशल सदाचार स्यादक्रियाकुशलोपि । आत्मा मि थ्यात्वसंस्थित आत्मा एकातदंडोहिंसक स्यात् आत्मा बाल सुप्तोनावसुप्तश्च । अवि चाराणि अशोननानि मनोवच कायवाक्यानि यस्य स तथा । वाग्ग्रहणेनैव वाक्यस्य गता र्थत्वात्पुनर्वाक्यग्रहण वाग्व्यापारस्य प्राचुर्यज्ञापनार्थ । तथाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापक र्मा अप्रतिहतं अनिवारित प्रत्याख्यातेन विरत्या पापकर्म येन स तथा एवमेपआत्मा असयतोऽविरतोऽ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियोऽसवृत एकातदड एकातबाल एकांतसुप्तः स बालोऽविचारमनोवच कायवाक्य स एवनूत पटुविज्ञानरवित स्वप्नमपि न पश्यति तेनाप्येवनूतेनाव्यक्तज्ञानेनापि पापं कर्म बध्यते ॥ १ ॥

॥ टीका—तृतीयाध्ययनानंतर चतुर्थमारभ्यते। अस्य चायमनिसंबंध । इहानतराध्य यने आहारगुप्तस्य कर्मबंधोऽ निहितोऽत्र तत्प्रत्याख्यान प्रतिपाद्यते । यदि वोत्तरगुणस पादनार्थ शुद्धेतराहारपरिज्ञोक्ता। सा चोत्तरगुणरूपा प्रत्याख्यानक्रियासमन्वितस्य नवती स्यतआहारपरिज्ञानतर प्रत्याख्यानक्रियाध्ययनमारभ्यते इत्यनेन सबधेनायातस्याऽध्यय

(एवमेवेत्यादि) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणो ऽप्यमित्रनूतोजवत्येवमेवासावपि बालवद्वालोस्पष्टविज्ञानोजवत्येव निवृत्तेरजावाद्योग्य तया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोजवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोजवति । इदमुक्तं ज वति । यद्यप्युत्थानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादक वदंतर्डुष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुराम. कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तडुत्तरकालं सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आहत्ति) " अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तु ष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्ये वमसावमित्रनूतोमिथ्याविनीतश्च जवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनु वदन्नाह । (एवखलुजगवयाइत्यादि) यथासौ वधक स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घात यत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषडुष्टएव एवमसावप्येकेंद्रियादिकोस्पष्टविज्ञानोपि तथानूतएवावि रताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियाविदोषडुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं प त्तेय चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्च पसढविउवायचित्तदंमे नवइ एवमेव बाले सव्वे सिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेय चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्चं पसढ विउवायचित्तदंमे नवइ ॥ ६ ॥

अर्थ-(जहासेवहए के०) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्ये क चित्तें करी विनाश चितवतो, दिवसे रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रनूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटे, प्राणीयोने दमनो करनार होय. तेने पापकर्म वधाय (एवमेव के०) एमज ए बाल जे एकेंद्रिया दिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति प णाने नावे ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्ते करी विनाश चितवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विषे, सुतो, जागतो, अमित्र नूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चि त्तछे जेनूं, प्राणीयोने दमनो करनार होय, एम बोलाय ते कारणे तेने पापकर्म वधाय॥६॥

॥ दीपिका-तदेव पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां डुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासौ वधकोगृहपत्यादे प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्ताव सरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

वजीकरणेप्यसमर्थतया किंचित्करत्वान्न प्रत्याख्यानक्रियाया नवितुमर्हति। वीद्यानामप्या त्मनोनावावात् ज्ञानस्य च क्षणिकतया स्थितेरनावात् कुत प्रत्याख्यानक्रियेति एवमन्य त्रापि प्रत्याख्यानक्रियायाश्चनावोवाच्य । तथा सदनुष्ठान क्रिया तस्या कुशल क्रियाकुशलस्तत्प्रतिपेधादक्रियाकुशलोप्यात्मा नवति । तथात्मा मिथ्यात्वोदयसस्थितो नवति तथैकांतेन नापरान् प्राणिनोदंमयतीति दंमस्तदेवनूतश्चात्मा नवति तथाऽसा रतापादनाड्रागद्वेपाकुलितत्वाद्बालवद्बालश्चात्मा नवति तथा सुप्तवत्सुप्त । यथाहि इव्यसुप्त शब्दादीन् विपयान् न जानाति हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलश्च तथा नाव सुप्तोप्यात्मैवनूतएव नवतीत्येवमविचारणीयान्यशोननतया निरूपणीयान्यपर्यालोच नीयानि मनोवाक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। तत्र मनोंत करण वाग्वाणी कायोदेहो ऽर्थप्रतिपादक पदसमूहात्मक वाक्यमेक तिडंतं सुबंतंवा। तत्र वाग्ग्रहणेनैव वाक्यार्थ स्य गतार्थत्वाद्यत्पुनर्वाक्यग्रहण करोति तदेव ज्ञापयतीह वाग्व्यापारस्य प्रचुरतया प्राधान्यं प्रायशस्तत्प्रवृत्त्यैव प्रतिपेधविधानेन तयोरन्येपां प्रवर्त्तन नवति । तदेवम प्रत्याख्यानक्रिय सन् आत्माऽविचारितमनोवाक्कायवाक्यश्चापि नवतीति। तथा प्रतिहतं प्रतिस्खलितं प्रत्याख्यात विरतिप्रतिपत्त्या पापकर्माऽसदनुष्ठान येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा तत्प्रतिपेधादसदनुष्ठानपरश्चात्मा नवति । तदेवमेपपूर्वोक्तोऽसंयतोऽविरतो ऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रिय सावद्यानुष्ठानस्तथानूतश्चासंवृतोमनोवाक्कायैरगुप्तो गुप्तत्वाच्चात्मन परेपा च दंडहेतुत्वाद्दडस्तदेवनूतश्च सन् एकांतेन बालवद्बाल सुप्तवदेकांतेन सुप्तस्तदेवनूतश्च बालसुप्ततयाऽविचाराण्यविचारितरमणीयानि परमार्थविचारगुणया युक्त्या वा विघटमानानि मनोकायवाक्यानि यस्य स तथा। यदिवा परसवध्यविचारितमनोवाक्कायवाक्य सत्क्रियासु प्रवर्त्तते तदेवनूतोनिर्विवेकतया पटुविज्ञानरहित स्वप्नमपि न पश्यति तस्य चाव्यक्तविज्ञानस्य स्वप्नमप्यपश्यत पापं कर्म बध्यते तेनैवनूतेनाव्यक्तविज्ञानेनापि पापं कर्म क्रियतइति नाव. ॥ १ ॥

तञ्च चोयए पन्नवगं एवं वयासि असंतएणं मणेणं पावयणं असंतिया ए वतीयाए पावियाए असतएण काएणं पावएण अहणंतस्स अमण स्कस्स अ वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सत्त पावकम्मे णो कज्जइ कस्सणं तहेत्त चोयए एवं ववीति अन्नयरेण मणेण पावएणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावे कम्म कज्जइ अन्नयरेण काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्ज

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विभागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वो· पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थत सूत्रे प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेव द्रष्टव्य· । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियश्चात्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतु· स्वपरावसरापेक्षितया कदाचिद्व्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांत । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वाद्वध्यस्यामित्रभूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरभावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदमइत्युपनय· । यतएव तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एव मृषावादादिष्वपि पचावयवत्व योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारण विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नाभिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेय पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ–एम गुरुये कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके. हे भगवन् ! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेछे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमाहे (बहवेपाणा के०) अनता प्राणीने (जेइमेणसरीरसमणुस्सएण के०) जे आ शरीरे करी, समुणस्सए एटले पुरुषें करी, जीवे दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारे पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें साभल्या नथी, (नाभिमयावा के०) उलख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषे करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्ते करीने ए जीवोनो विनाश चितव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुता, जागता, अमित्रभूत मिथ्यासस्थित निरतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तछे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय ? अने प्राणातिपात थकी मामीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे ? एतावता तेने नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–एव षड्जीवनिकायेषु प्रत्येक अमित्रभूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

जातिने यथायोग्यें पापकर्म लागे, वधाय (पुणरविचोयएएववबीति के०) वली पण नोदक शिष्य, आचार्य प्रत्ये एम कहेछे (तङएंजेतेएवमाहसु के०) त्या जे, ते एम कहेछे के, (असंतएणमणेणंपावएणं के०) पापकर्मने विषे अछते मनें, (असतीयाएवतिएपावियाए के०) पापकर्मनें विषे अछते वचने, (असतएणकाएणपावएण के०) पापकर्मने विषे अछते कायाये करी, एटलें पापकर्मने विषे मन, वचन, अने कायाने अणप्रवर्त्तावतो तथा (अहणतस्सअमणस्कस्सअवियारमणवयणकायवक्कस्सके०) अण हणतानें पाप उपर मन परिणाम रहित अणविचास्या मन वचन अने कायानें विषे, तेणें करी सहित. (सुविणमविअपस्सउपावेकम्मेकज्जइ के०) स्वप्नातरे पण पापकर्म करवाने विषे, बांधवाने विषे, अणदेखतो एवो जे होय ते पण पापकर्म बाधे, (तङणजेते के०) त्या जे ते (एवमाहसु के०) एम कहेछे. (मिह्यातेएवमाहसु के०) ते मिथ्या एटले जुठुं कहेछे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–एव स्थिते शिष्य प्रज्ञापकमाचार्यमेवमवादीत् अथवा आचार्योनिप्रायं शिष्योऽनूद्य निषेधति । (असतएणमित्यादि) असता अविद्यमानेन मनसाऽप्रवृत्तेनाऽशोननेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नत अमनस्कस्याविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यत स्वप्नातिक च कर्म नोपचयं यातीत्येव अव्यक्तविज्ञानस्यापि पाप कर्म न बध्यते । कस्य हेतो केन कारणेन तत्पाप कर्म बध्यते? । नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पाप कर्म बंधहेतुरित्यर्थ । तदेव शिष्यएव स्वानिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह । (अन्नयरेणति) कर्माश्रवद्वारनूतेन मनोवाक्कायानामन्यतरेण क्लिष्टेन तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यते तथा घ्नत सत्वान् समनस्कस्य सविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यत स्पष्टविज्ञानस्य एव गुणजातीयस्य पाप कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादे पापकर्मसनवइति । तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्यानावात् । तस्मान्नैव स्वप्नातिकमविज्ञोपचित्त कर्म विद्यतइति । एव सति ये ते एवमुक्तवतस्तथा । विद्यमानैरेवाज्ञैर्योगै पाप कर्म क्रियते मिथ्या ते एवमुक्तवतइति ॥ २ ॥

॥ टीका–तत्र चैव व्यवस्थिते चोदक' प्रज्ञापकमेवमवादीत् । अत्र चाचार्यानिप्रायं चोदकोऽनूद्य निषेधयति । (असंतएणमित्यादि) अविद्यमानेनाऽसताऽमनसाऽसत्प्रवृत्तेनाऽशोननेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतस्तथा मनस्कस्याविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यत स्वप्नातिकचकर्म नोपचयं यातीत्येवमव्यक्तविज्ञानस्यापि पाप कर्म न बध्यते एवनूतविज्ञानेन पापं न क्रियतइति यावत् । कस्य हेतो केन हेतुना केन

जीवनिकाएहिं जाव कारवेश्वि से यतेहिं ब्रहिं जीवनिकाएहिं असंज य अविरय अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमि ब्रादंसणसल्ले एस खलु भगवया अरकाए असंजए अविरए अपडि हयपच्चरकायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साउ पावेयसे कम्मे कज्ज इ से तं सन्निदिहंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ-हवे एम शिष्ये कह्यानंतर आचार्य कहेछे (तब्रखलुभगवयाउवेदिहंतापण्ण त्ता के०) त्यां निश्चे भगवंतें ए अर्थ उपर बे दृष्टांत कह्याछे ते जेमछे, तेम कहेछे. (तसन्निदिहंतेय के०) एक सज्ञिदृष्टांत, अने (असन्निदिहंतेय के०) बीजो असज्ञिदृ ष्टांत (सेकितसन्निदिहंते के०) त्यां सज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदि यापज्जत्तगा के०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण सज्ञी पचेंद्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिण के०) तेमाहे कोइ एक (बजीवनिकाएपडुच्च के०) ब जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, (तं के०) ते बकायना नाम कहेछे. (पुढवीकायजावतसकायं के०) पृथिवी काय यावत् त्रसकाय पर्यंत (सेएगइउ के०) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, (पुढवीकाएणंकिच्चकरेइवि के०) पृथिवीकाये करीनेज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे (तस्सणएवभवइ के०) तेने एम होय ते कहेछे (एवखलुअहपुढवीकाएण के०) एम निश्चे हु पृथिवीकाये करी (किच्चकरेमिविकारवेमिवि के०) कार्य करीश, अने बीजानी पासे पण करा वीश परंतु (णोचेवणसेएवभवइ के०) तेनें निश्चें एवो अभिप्राय नथी के (इमे णवाइमेणवा के०) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथ वा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकाये कार्य करीश अथवा अनेक भेद पृथिवीकायना छे तेमाहेथी अमुक कोइ एक भेदेंज कार्य करीश, ज्या सुधी एवो अभिप्राय नथी त्या सुधी तेने सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे (सेएतेणपुढवीकाएणकिच्चंकरेइवि कारावेइवि के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, बीजा पासे कार्य करावे, (सेणतातोपुढवीकायाउ के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायथकी, (असजय के०) असयति अनिवृत्त (अविरय के०) अविरति, (अपडिहयपच्चरकाणपाव कम्मेयाविभवइ के०) तथा नथी हण्या पच्चखाणे करीने पापकर्म जेणे एवो छे, (एवजावतस्सकाएत्तिभाणियव्वे के०) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले बए काय आश्री जाणीलेवु जेने जे कायनी अविरति होय तेने ते कायनु कर्म लागे ए रीतें को

ए ठ जीव निकायने विषे, (आयाअपडिहयपच्चरकायपावकम्मे के०) आत्मा सर्व काल अप्रतिहत एटले हण्यां नथी पच्चरकाणे करी पापकर्म जेणे एवो, तथा (निच्चंपसढनिच वातचित्तदंमे के०) नित्य शठ एटले जड जेवो, एनो परमार्थ जाणे नहीं, प्राणघातने विषे चित्तठे जेनुं ते कारणे प्राणीठने दंमनो करनार जाणवो (तंजहा के०) ते क हेठे (पाणातिवाए के०) प्राणातिपात आदें देइने, (जावपरिग्गहे के०) मृषावाद, अ दत्तादान, मैथुन, यावत् परिग्रह, अने (कोहे के०) क्रोध थी मांमीने, (जावमिच्छादं सणसल्ले के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानकने विषे अनिवृत्ति ठे एटले अढार पापस्थानक थकी निवृत्या नथी, ते कारण माटें एकेंड्रियादिक जीवोने पण अपच्चरकाणी क्रियानो बंध लागे ठे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–एवमाचार्यपक्ष दूषयित्वा नोदकेन स्वपक्षे स्थापिते आचार्य आह । तच पन्नवएत्ति) आचार्य स्वमतमनूद्य युक्त्या साधयति (तंसम्मंति) तत्सम्यक् यन्मयोक्तं अव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यतइति तद्युक्तं । एवमुक्ते शिष्यआह । कस्य हेतो केन का रणेन तत्सम्यक् गिति चेदाह। (तत्थखलु इत्यादि) तत्र नगवता षड्जीवनिकायाः कर्मबंध हेतुत्वेन स्थापिता । तद्यथा । पृथिवीकायिकाइत्यादि । इत्येतैः षड्जीवनिकायैरात्मा प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं पापं कर्म येन स तथा जीवेषु विरत एवनूतोन स अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नित्यं प्रकर्षेण शठ प्रशठ व्यतिपाते हिंसाया चित्त यस्य स व्यतिपातचित्त स्वपरदंमहेतुत्वादंम प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति । तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः । एव मृषावादादिष्वपि वाच्य यावन्मि थ्यादर्शनशल्यं । तदेवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि हिंसादिदोषवत्तया मिथ्यात्वाविरतिप्रमा दकषाययोगाश्रितत्वेन अस्वप्नाद्यवस्थायामपि कर्मबंधइति तन्निरस्तं ज्ञेयम् ॥ २ ॥

॥ टीका–तदेव चोदकेनाचार्यपक्ष दूषयित्वा स्वपक्षव्यवस्थापिते सत्याचार्य आह (तत्थपन्नव इत्यादि) तत्राचार्य स्वमतमनूद्य तस्योपपत्तिक साधयितुमाह । (तंसम्म मित्यादि) यदेतन्मयोक्त प्राग् यथा स्वप्नाव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यते तत्सम्यक् शोभनं युक्तिसंगतमित्येवमुक्ते परआह। कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यगिति चेदाह (तत्थखलु इत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलुशब्दोवाक्यालकारे। नगवता वीरवर्द्धमानस्वा मिना षड्जीवनिकाया कर्मबंधहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा पृथिवीकायिकाइत्यादि या वत्त्रसकायिकाइति । कथमेते षड्जीवनिकाया कर्मबंधस्य कारणमित्याह (इच्चेएहिं मित्यादि) इत्येतेषु पृथिव्यादिषु षड्जीवनिकायेषु प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं.

कृतेषु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव भवत्यस्य चार्थस्य सुखप्रतिपत्तये भगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्भिरपि पर्याप्तिभिः पर्याप्ताकहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिन पंचेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रिया करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेक षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवभूतां प्रतिज्ञां नियम कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुकाशिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैव कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेभ्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवभूतोभवत्यध्यवसाय । तद्यथैव खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृतप्रतिज्ञस्य विशेषाभिसंधिनैव भवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवीकायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा भवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासद्भावादेवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनभांडोपकरणधावनादिषु प्रयोगस्तेज कायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंतेत्यादिव्यापारादिषु प्रयोजन वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएव विकलेंद्रियपंचेंद्रियेष्वप्यायोज्यमिति । तथकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसंयतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठान स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्तेरभावादवभूतोध्यवसायोभवति । तद्यथैव खल्वहं षड्भिरपि जीवनिकायै सामान्येन कृत्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसयतोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा भवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेद मया वक्तव्यमीदृग्भूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोभवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । तद्यथेदं मया दत्तादान ग्राह्यमिदतु न ग्राह्यमित्येव मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमानमायालोभेष्वपि स्वयमभ्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येव देशकालस्वभावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रभूतोसौ भवति तत्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोय संज्ञिदृष्टांतोऽभिहित । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापादयति शेषेषु निवृत्त· कदाचिद्द्वावेव त्रिकादिका संयोगाभणनीयायावत्सर्वानपि व्यापादयतीति । सचैव सर्वेषा व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंभप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्ते । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा दृष्टास्तथाप्यसौ तत्प्रवृत्तिनिवृत्तेरभावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येव दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यम् ॥ ८ ॥

चिंतवतो अवसर पामिने, तेना घर मांहे प्रवेश करीश, अवसर देखीने तेने हणीश, एम चिंतवतो, दिवसे अथवा रात्रीये सुतो, अथवा जागतो, अमित्रनूत मिथ्यामित्र पणामा सस्थित एटले माठा कार्यने विषे रह्यो, (निच्चंपसढ के०) नित्यज प्रशठ एटले एनो परमार्थ जाणे नहीं (विऊवायचित्त के०) प्राणिघात तेने विषे जेनु चित्तछे ते कारणे, (दंमेनवति के०) प्राणीउने दंमनो करना होय, ते पुरुष जीवनो विनाश न करतो थको पण वधक कहेवाय, किवा न कहेवाय ? (एवंवियागरेमाणे के०) एरीतें आचार्ये कहे उते, (समियाएवियागरेचोयएहंतानवति के०) शिष्य बोल्यो के, हे नगवन् ! ए तमें सत्य बोल्या ते वधक कहेवाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यः स्वमतसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुइत्यादि) तत्र खलु नगवता वधकदृष्टांत प्रज्ञप्तः । तद्यथानाम कश्चिद्वधक स्यात् गृहपतेर्गृहपतिपुत्रस्य वा राज्ञोराजपुरुषस्य वा उपरि कुतश्चिन्निमित्तात्कुपित सन् क्षणमवसर निदाय प्राप्य गृहे पुरे वा घाताय प्रवेक्ष्यामि क्षणमवसर छिद्रादिक लब्ध्वा वध्यं हनिष्यामीति सप्रधारयन् दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा मित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्य प्रशठव्यतिपातचित्त दंमोहिंसाध्यवसायी नवति । अयमर्थ । कोऽपि कस्यापि गृहपत्यादेरुपरि कुपितस्तं हतुकामोपि यावदवसरं छिद्रं न लनते तावत्कार्यांतरे प्रवृत्तोपि हिंसामकुर्वन्नपि वध्यस्य हिंसावसरापेक्षी नित्यं रागद्वेषाकुल स्यात् । एवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि विरतेरनावात्तदयोग्यतया हिंसामकुर्वतोपि तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंतएवेत्यर्थ ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्य' स्वपक्षसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुनगवयाइत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलु शब्दोवाक्यालंकारे । नगवतैश्वर्यादिगुणोपेतेन चतुस्त्रिंशदतिसमयसमन्वितेन तीर्थकृता वधकदृष्टांत प्रज्ञप्त प्ररूपितस्तद्यथा नाम वधक कश्चित्स्यादिति कुतश्चिन्निमित्तात्कुपित सन् कस्यचिद्वधपरिणत कश्चित्पुरुषोनवति । यस्यासौ वधकस्तं विशेषेण दर्शयितुमाह । (गाहावइस्सवेत्यादि) गृहस्य पतिर्गृहपतिस्तत्पुत्रोवाऽनेन सामान्यत. प्राकृतपुरुषोऽनिहितस्तस्योपरि कुतश्चिन्निमित्ताद्वधक कश्चित्स्यात्तः सच वधपरिणामपरिणतोपि कस्मिंश्चित्क्षणे पापकारिणमेनं घातयिष्यामीति । तथा राज्ञस्तत्पुत्रस्योपरि कुपितएतत्कुर्यादित्याह । (खणनिदायइत्यादि) क्षणमवसर (णिदायत्ति) प्राप्य तथाविधस्य पुरे गृहे वा प्रवेक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी नवति तथा क्षणमवसर छिद्रादिक वध्यस्य लब्ध्वा तदुत्तरकालं तं वध्य हनिष्यामीत्येव सप्रधारयति। एतदुक्तं नवति । गृहपते सामान्यपुरुषस्य राज्ञोवा विशिष्टतमस्य कस्यचिद्वधपरिणतो

पस्थानकने नथी करता, तो पण तेने विषे अविरतिपणा थकी ते असंज्ञी जीवोने कर्म लागेछे (ऽसेवजावणोचेवमणो के०)तथा यद्यपि ते असंज्ञीया जीव मनना व्यापार रहित छे, (णोचेववई के०) तथा वचनना व्यापार रहितछे, तथापि (पाणाणजावसत्ताण के०) सर्वप्राणीने यावत् सर्व सत्वने (दुरकणत्ताए के०) दु खने उपजाववे करी, (सोयण त्ताए के०) शोकने उपजाववे करी, (जूरणत्ताए के०) वयनी हानीने करवे करी, (ति प्पणत्ताए के०) मन वचन अने काया ए त्रणेथी पीडवे करी, (पिट्टणत्ताए के०) यष्टि मुष्टिने प्रहारें करी, (परितप्पणत्ताए के०) बाहेर तथा अभ्यंतरने पीडवे करी, एवा ए वा प्रकारे यद्यपि ते असंज्ञीया जीव समस्त जीवोने दुःख नथी उपजावता, तथापि ते विरतिपणाने अनावें सर्व जीवोने दु खनुं उपजाववु, शोक,जूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य तथा अभ्यंतरनु पीडवु वध बधननुं करवु इत्यादिक क्लेशथकी विशेषे करी अनिवृत्त्याछे अविरति कहेवायछे ते विरतिपणाने अनावे ते जीवो तत्प्रत्ययिक कर्मकरी बधायछे॥९॥

॥ दीपिका—अथाऽसंज्ञिदृष्टांतमाह । (सेकितमिति) ये इमेऽसज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीका यायाव द्वनस्पतिकायास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसा यावत्संमूर्छिमपंचेंद्रियास्ते सर्वेप्यसज्ञिनो येषा न तर्कोविचार. न सज्ञा दीर्घकालसवंधिनी न प्रज्ञा स्वबुद्धिरुता न मनोवग्रहादिमति न वाक् स्पष्टवर्णा तथा स्वयं करोमि अन्यै कारयामि कुर्वतमनुजानामि इत्यभिप्रायोनास्ती ति । तेऽसंज्ञिनोबाला. सर्वेषा जीवानां घातनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया घातकाएव अस त्यजापकाअपि अविरतत्वात् अदत्तग्राहिणोपि दध्यादिभक्षणात् तीव्रनपुसकवेदोदया न्मैथुननिवृत्तेरभावाञ्च मैथुनप्रवृत्ता परिग्रहवतोपि अशनादे स्थापनात् । एव क्रोधमान मायालोभायावन्मिथ्यादर्शनसशल्यसद्भावश्च तेषां ज्ञेय । ततश्च ते कर्मबंधका स्यु. । त था यद्यपि ते विशिष्टमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वजतूनां (दु खणत्ताएत्ति) दु खो त्पादनतया शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन जूरण वयोहानिस्तत्कारणतया त्रिभ्योमनोवा कायेभ्य पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तया (पिट्टणयाए) मुष्टिलोष्टादिभि· कुट्टनेन परिताप नया बहिरतश्च पीडया तेऽसज्ञिनोयद्यपि दूरस्थाना विषयगतानां जीवानां दु ख नोत्पा दयंति तथाप्यविरतत्वाद्दु खशोचनादेरविरता स्युस्ततश्च कर्मणा बध्यंते ॥ ९ ॥

॥ टीका—सज्ञिदृष्टांतानतरमसज्ञिदृष्टांत प्रागुपन्यस्त सोऽधुना प्रतिपाद्यते । (सेकिंत असन्निदिठंतेइत्यादि) सज्ञानं सज्ञा सा विद्यते येषा ते सज्ञिनस्तत्प्रतिषेधादसंज्ञिनोमन सोऽव्यक्ततया अभावात्तीव्राऽतीव्राध्यवसायविशेषरहिता प्रसुप्तमत्तमूर्छितादिवदिति । ये इ मे सज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायिकायाव द्वनस्पतिकायिकास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसा प्राणिनो विकलेंद्रियायावत्समूर्छिन पचेंद्रियास्ते सर्वेंप्यसंज्ञिनोयेषा न तत्कार्यविचारोमीमांसावि

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त थतो होय. एम निश्चे भगवते कह्युछे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चरकाणे करीने पाप कर्म जेणें हण्या नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय ते बाल, अविचारवाला, एवा मन वचन अने काया तेणे करी सहित थतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नही. एवां पापकर्मनुं बंधन करे एम अविरतिपणाये करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यएव स्वाभिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । (सेकिंतुइत्यादि) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया पर पृच्छति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्त स्यात्किंवा न? इति पृष्ट पर समतया मध्यस्थ सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यभवत्यसौ अमित्रभूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिक दर्शयति । (जहासत्ति) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिक दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रभूतोभवति एवमसावपि बालो ऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेत स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिक कुलश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्दुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुराम कृतवीर्यं हत्वापि तत सप्तवार नि क्षत्रां पृथिवीं चकार । यदुक्तं । “ अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् ” ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रभूत स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । (एवखलुभगवयाइत्यादि) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाद्दुष्टएवमेकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाद्दुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पाप कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यएव स्वाभिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्भावयन्नाह । (सेकिंतुहुइत्यादि) आचार्य स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया पर पृच्छति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । हुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी छिद्रमवसर प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रभूतोमिथ्यासंस्थितोनित्य प्रशवव्यतिपातचित्तदंमोभवत्याहोस्विन्नेत्येव पृष्ट पर समतया माध्यस्थ्यमवलम्ब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्य भवत्यसावमित्रभूतइतीत्यादि ॥ तदेव दृष्टांत प्रदर्श्य दार्ष्टांतिक दर्शयितुमाह (जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

कायं संकमंति सन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति सन्निकायाउवा स न्निकायं संकमंति असन्निकायाउवा असन्निकाय संकमंति जे एए सन्नि वा असन्निवा सवे ते मिछायारा निच्चं पसढविउवायचित्तदंमा तं पाणा तिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले एव खलु भगवया अरकाए असंजए अ विरए अपडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे ए गतबाले एगंतसुत्ते से वाले अवियारमणवयकायवक्के सुविणमवि ण प सइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १० ॥

अर्थ-(इतिखलुसेअसन्निणोविसत्ता के०) एणी परें निश्चे ते पृथिवीकायादिक असंज्ञी जीव ठता पण (अहोनिसिपाणातिवाए के०) रात्री दिवस प्राणातिपातने विषे, (उवरका इज्जंति के०) कहिये, एटले ,तेने प्राणातिपातनुं कर्म लागे, एम बोलिये. (जावअहोनि सिपरिग्गहउवरकाइज्जंति के०) यावत् रात्री दिवस परिग्रहने विषे प्रवर्त्तता बोलिये, क हिये (जावमिछादंसणसल्लेउवरकाइज्जंति के०) यावत् मिथ्यादर्शन शल्यने विषे प्रवर्त्तता कहियें, माटे असज्ञियाने पण पापकर्मनो उपारव्यान विरतिने अजावे कहियें. हवे शिष्य पूठे ते के, एवजूतएटले वेदांतवादी एम कहे ठे के,जे पुरुषठे ते पुरुष पणुंज पामे, अने जे पशु होय ते पशु पणुज पामे,तेम आंही जैनशासनने विषे पण जे सज्ञिया ते सज्ञी पणुज पामे अने जे असज्ञीया ते असज्ञी पणुज पामे ठे किंवा बीजी कोइ रीते ठे? ते कहो एम पूठे ठते शिष्य प्रत्ये आचार्य कहेठे (सबजोणियाविखलुसत्तासन्निणोहुज्जा के०) निश्चे सर्वयोनिक सत्व एटले जीव सज्ञिया पणे होइने (असन्निणोहोंति के०) असंज्ञिया पण होय, (असन्निणोहुज्जासन्निणोहोंति के०)असज्ञिया होइने सज्ञिया होय (होच्चासन्नीअडवाअसन्नी के०) एम संज्ञी अथवा असज्ञी होय एटले वेदांतवादिनो पक्ष निराधार थयो, तथा कोइ एक सज्ञी पण तेज जवमां मूर्छादिकनी अवस्थाये असज्ञी थाय एम एकज जवमाहे संज्ञीया माहेथी असज्ञीउ थाय, मूर्छाने अजावें ते वली सज्ञीउ पण थाय, जो एकज जवमां एमठे तो जन्मांतरनुं केवुज शुं! जेम कोइ एक जागतो मनुष्य निद्राना उदय थकी सुतो थको वली निद्राने अजावे जागतोज कहेवाय ए दृष्टांत सज्ञी असज्ञी उपर जाणवो (तबसेअविविचित्ता के०) त्यां ते जीवें पूर्वेनुं कर्म जे बाध्युठे. अ थवा उदय आव्युठे तेने पृथक् अणकीधे, तथा (अविधूणित्ता के०) अण खपावे, तथा (असंमुछित्ताके०) अणठेदे, (अणणुतावित्ता के०) अण तपावे, थके (असन्निकाया उवासन्निकायंसंकमंति के०) पहेलो जग, असज्ञिकाय थकी सज्ञिकाये संक्रमे. (स

नां प्रत्येकममित्रभूतोभवन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोभवति । एव बालकएकेंड्रियादिरपि सर्वप्राणिना विरतेरभावात्प्रत्येक घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंम स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

॥ टीका–तदेव दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमन कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येक प्राणिना दुष्टात्मा भवति इत्येतत्प्रतिपादितुकामआह । (जहासेवहएइत्यादि) यथाऽसौ वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तथास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्त समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिण मदाविवियायिन पातयिष्यामीत्येव प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा सर्वाष्ववस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रभूतोऽवसरापेक्षितया भवन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोभवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोऽज्ञानावृतएकेंड्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरभावात्तद्योग्यतया प्रत्येक वध्येषु घातकचित्त समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोभवतीति । इदमुक्त भवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजानुघाताडुपशांतवैर कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एव मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्व वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विभागोदृष्टव्य । तद्यथा । आया अपच्चरकाणीयावि भवतीत्यतआरभ्य यावत्पावेयसे कम्मे कज्जइत्ति इतीय प्रतिज्ञा । तत्र पर प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तड चोयए पसुवगं एव वयासीत्यतआरभ्य यावद्भंते एवमाहिंसुमिति । तद्यथा । तड चोयए पसुवगं एव वयासीत्यतआरभ्य यावद्भंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येव वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्व प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतो केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तड खलु भगवया छजीवनिकाया हेऊपसुत्ताइत्यतआरभ्य यावमिच्छादंसणसल्लेइत्यय हेतु । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थ स्वपक्षे सिद्धि दर्शयितु दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु भगवया वहए दिट्ठंते पसुत्ते इत्येतदारभ्य यावत्तस्याखण लद्धूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेव दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतो सत्ता स्वाभिप्रेता परेण भणयितुमाह । से किंतुहुणाम से वहए इत्यादेरारभ्य यावद्भता भवति । तदेव हेतोर्दृष्टांते सत्व प्रसाध्य हेतो पक्षधर्मत्व दर्शयितुमुपनयार्थ दृष्टांतधर्मिणि हेतो सत्तां परेणाभ्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरभ्य यावत्सिच्चं पसढविडवायचित्तदंमेत्ति । सांप्रत हेतो पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेअवीत्यादीत्यतआरभ्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेव प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

कारयितुं न कुर्वंतमनुमंतु वा प्रवृत्तिरस्ति। ते चाऽहर्निशममित्रभूतामिथ्यासंस्थितानित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडाडुःखोत्पादनतया यावत्परितापनपरिक्लेशादेरप्रतिविरताअसंज्ञिनो पि संतोऽहर्निशं सर्वकालमेव प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघा तकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्यउपाख्यायंतइति । उपाख्यानं वा संज्ञिनोपि । योग्यतया पापकर्मानिवृत्तेरित्यभिप्राय. । तदेव दर्शिते दृष्टांतद्वये तत्प्रतिबद्धमेवार्थशेषं प्रतिपादयितु चोद्यं क्रियते ।तद्यथा। किमेते सत्वा· संज्ञिनश्च भव्याभव्यत्ववन्नियतरूपा एवाहोस्वित्संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञित्व प्रतिपद्यंते।असंज्ञिनोपि संज्ञित्वमित्येव चोदिते सत्या हाचार्य· (सवजोणियाविखलुइत्यादि) यदिवा संत्येवभूतावेदांतवादिनोयएवं प्रतिपादयंति पुरुष पुरुषत्वमश्नुते पशुरपि पशुत्वमिति। तदत्रापि संज्ञिन संज्ञिनएव भविष्यंत्यसंज्ञिनो प्यसंज्ञिनइति । तन्मतव्यवच्छेदार्थमाह ।(सवजोणियावीत्यादि) यदिवा किं संज्ञिनोऽसंज्ञि कर्मबंध प्राक्तने सत्येव कर्मणि कुर्वंति किंवा नेत्येवमसंज्ञिनोपि संज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने स त्येव कुर्वंत्याहोस्विन्नेत्येतदाशंक्याह । (सवजोणियावीत्यादि) सर्वायोनयोयेषा ते सर्वयो नय संवृतविवृतोभयशीतोष्णभयसचित्ताऽचित्तोभयरूपायोनयइत्यर्थः । तेच नारकतिर्यङ् नरामराअपिशब्दाद्विशिष्टैकयोनयोपि । खल्विति विशेषणे । एतद्विशिनष्टि । तज्जन्मापे क्षया सर्वयोनयोपि सत्वा पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मन पर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावदसंज्ञिन· करणत सत पश्चात्संज्ञिनोभवत्येकस्मिन्नेव जन्मन्यन्यजन्मापेक्षयात्वेकेंद्रियादयो पि सत पश्चान्मनुष्यादयोभवतीति । तथाभूतकर्मपरिणामात् पुनर्भव्याभव्यत्ववन्न व्यव स्थानियमोभव्याभव्यत्वे हि न कर्मायत्ते अतोनानयोर्व्यभिचार ।ये पुन. कर्मवशगा स्ते संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञिनोभवत्यसंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति वेदांतवादिमतस्य प्रत्यक्षेणैव व्यभिचार समुपलभ्यते । तद्यथा । संज्ञ्यपि कश्चिन्मूर्छाद्यवस्थायामसंज्ञित्वं प्रतिपद्यते तदपगमेतु पुन संज्ञित्वमिति ज·मांतरे तु सुतरां व्यभिचारइति । तदेव संज्ञ्यसंज्ञिनोः कर्मपरतंत्रत्वादन्योन्यानुगतिरविरुद्धा । यथा प्रतिबुद्धोनिद्रोदयात्स्वपिति सुप्तश्च प्रति बुध्यते इत्येव स्वापप्रतिबोधयोरन्योन्यानुगमनमेवमिहापीति । तत्र प्राक्तनं कर्म यद्बुदीर्ण यच्च बद्धमास्ते तस्मिन् सत्येव तदविविच्यापृथक्कृत्य तथाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुता प्यते चाविविच्यादयश्चत्वारोप्येकार्थिकाअवस्थाविशेषं चाश्रित्य भेदेन व्याख्यातव्या· । तदेवमपरित्यक्तप्राक्तनकर्मणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकाय संक्रामति तथा संज्ञिकायादसंज्ञिकाय चाप्यपि प्रायशस्तत्कर्मशेषतया थूनस्थानेपूत्पद्यते इत्यवगतव्यं ।अत्र चतुर्भंगकसभव सूत्रे णैव दर्शयति । सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षु प्राक् प्रतिपन्नमर्थं निगमयन्नाह् । (जेए तेभेत्यादि) ये एते सर्वाभिरपि पर्याप्तिभि: पर्याप्ता लब्ध्या करणेन च द्विकाश्चापर्या

परोव्यनिचारं दर्शयति । (णोइणछेइति) नायमर्थ. समर्थोयत्ससर्वेऽपि प्राणिन· सर्वे षा जीवानाममित्रनूताइति । तत्र पर स्वपक्षसिद्ध्ये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंता· प्राणिन संति येऽमुना शरीरसमुच्छ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुपा न श्रुता कर्णाभ्या नानिमतानेष्टा । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विपयस्तेपु ह्यमित्रनाव स्यात्! । तेषा जीवाना कदाचिदपि विषयमप्राप्ताना कथं वध प्रति चित्तसमादान स्यात्!। न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंम स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका—तत्रैव सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेपु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधि त्वे प्रतिपादिते व्यनिचार दर्शयन्नाह । (णोइणछेसमछेइत्यादि) नायमर्थ समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्य. । तद्यथा । सर्वे प्राणिन सर्वेषामेव सत्वाना प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापर· स्वपक्षसिद्ध्ये सर्वेषा प्रत्येक मित्रानाव दर्शयितु कारणमाह । इहा स्मिश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंता·प्राणिन सूक्ष्मबादरनेदनिन्ना सति । यथैव तत किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूताबहव· सति । ये प्राणिन सू क्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था ह्यमुना शरीरसमुच्छ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिद मनेनावाग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुच्छ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुपा न श्रुता श्रवणेंद्रियेण विशे षतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेवज्ञानेन स्वयमेवेत्यत कथचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्र नाव· स्यात् ह्यतस्तेषा कदाचिदविज्ञातानां कथ प्रत्येक वध प्रतिचित्तसमादान न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति शेष सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तत्र खलु नगवया डुवेदिठता पणत्ता त सन्निदिठतेय असन्निदिठतेय से कित सन्निदिठते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए तेसिणं ठजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइउ पुढवी काएणं किच्च करेइवि कारावेइवि तस्सणं एव नवइ एव खलु अह पुढवी काएणं किच्च करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेणवा इमे णवा से एतेणं पुढवीकाएण किच्चं करेइवि कारावेइवि सेण तातो पुढवी कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियव से एगइउ ठजीवनिकाएहिं किच्च करे इवि कारावेइवि तस्सणं एव नवइ एवं खलु अहं ठजीवनिकाएहिं कि च्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेहिवा से यतेहिं ठ

चणिकायहेउपसत्ता के०) त्या संयत पणाने नावें नगवत् श्री वीतराग देवें ढ जीवनिकाय कारण कह्याछे (तजहा के०) ते कहेछे (पुढवीकाइयाजावतसकाइया के०) पृथिवीकायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ढे (सेजहाणामए के०) तेने जेम नाम एवो संनाव नावें (ममअस्सात के०) मुजने अशाता उपजे ढे ते प्रमाणें दंमे करी हणतां थका अस्थियें करी, मुष्टिये करी, पाषाणें करी, कपाल एटले ठीकरीये करी ताडता थका यावत् उद्वेग करता थका, एटले जीव काया थकी रहित करता थका, एक रोम उखेड वा मात्रे करीपण हिंसाकारक डुःख तथा नय हुं वेडुं ए रीते जाणवु के, सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्वने महारी पेठें दंमना प्रहारे करी, कपाल एटले ठीकरीये करी आक्रोश करावता ताडता थका, अथवा हणता थका, तर्जनाकरता थका, यावत् उद्वेग करता थका, एक रोम मात्र उखेडवु एंवु पण हिंसाकारी, कारण ते थकी ते जीवो पण डुःख अने नय एवुज वेदे (एवणच्चा के०)एम जाणीने सर्वप्राणी यावत् सर्व सत्वने हणवा नही, यावत् उपद्रववा नहीं, ए प्राणीनो दया लक्षण धर्म, ते ध्रौव, नित्य, शाश्वतो. एवो चउद रज्ज्वात्मक लोक जाणीने आलोचीने षट्जीवनिकायरूप डुःख समुद्रमा पड्यो ते पर जीवना डुःखना जाण, एवा खेदज्ञ श्रीनगवत तीर्थंकर देव तेणे नांष्यो ढे (एवसेनिक्कू के०) एवु जाणीने ते साधु प्राणातिपात मृषावादादिक यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानक थकी निवृत्त्यो, तथा ते निक्कु दत धावने करी दंत प्रक्षाले नहीं एमज अजन वमन विरेचनादिकक्रिया न करे, धूपन एटले वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (तपिनआदते के०) एटलावाना पोतें आदरे नहि ते निक्कु चारित्रिउ क्रिया रहित ढजीवनिकायनो अहिंसक तथा क्रोध रहित यावत् मान, माया, लोन रहित उपशात एटले समाधिवत परिनिवृत्त एवो ढतो होय तेनें निश्चे संयत विरति प्रतिहत पापकर्मा एटले पच्चखाणे करी पापकर्मने हणनार, क्रिया रहित सवृत्त, एकांत पंमित एम नगवतें कह्योढे तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥ ए श्री सुयगडाग सूत्रना बीजा श्रुतस्कधनें विषे प्रत्याख्यान क्रियानामा चोथा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समास थयो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—अथ सजातवैराग्य शिष्य प्रश्न करोति (सेकिंकुवमित्यादि) अथ किं कुर्वन् किंवा कारयन् कथ वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यानपापकर्मा जंतु स्यात् ? । आचार्यआह । (तत्थखलुत्ति । तत्र संयतत्वसद्भावे । नगवता षड्जीवनिकायाहेतवः । तद्यथा । पृथिवीकाया यावत्त्रसकाया । यथाऽविरतस्य षड्जीवनिकाया [illegible]तिहेतुत्वेन [illegible] विरतस्य तएव मोक्षहेतवोनवति । यडुक्त । “जेजत्ति

६ एक पुरुष छजीव निकायें करीने कार्य पोतें करे, बीजा पासे करावे, ते पुरुष छजीव निकायने विषे अविरति असयति केहेवाय ए आलावानो बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मा लखाइ गयोछे, माटें आहीं लख्यो नथी ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकने विषे असयति अविरति तथा पच्चरकाणे करीने जेणे पापकर्म हण्या नथी एम अविरतिने भावें होय, तेने स्वप्ना तरें अणदीठु पण पापकर्म बधाय, लागे. एम निश्चे श्री भगवतें कह्युछे, एटले सज्ञीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—एव सति न सर्वविपयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविपयप्राप्ता स्युस्तेपामेव प्रत्याख्यान क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । (तत्थखलुइत्यादि) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसद्भावात्तद्विपय कर्मबंधोभव त्येव । अत्र दृष्टांतद्वयमाह । सज्ञिदृष्टांतोऽसज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं सज्ञिदृष्टांत ?। ये ऽमे स ज्ञिपंचेंद्रियास्तेपा मध्ये कश्चिदेक. पड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एव प्रतिज्ञा कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एव कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेपकायेभ्योनिवृत्तस्तस्य चैवभूतोऽभिप्राय । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एव प्रतिज्ञाया कृताया विशेपाभिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृसेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा भवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्त. कश्चित्तेजस्कायादिति । शेपकायैस्तु व्यापार करोति कश्चित् प ट्स्वपि जीवनिकायेपु अनिवृत्तोऽसयतत्वात्ते कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेपप्रति ज्ञा एव मृपावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्य सच तस्मान्मृपावा दाद निवृत्तत्वादसंयत स्यात् तथा इदमदत्त मया ग्राह्य इन्तु न ग्राह्य । एव मैथुनपरिग्र हेप्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोभेप्वपि स्वयं विचार्य वाच्य । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिक कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वभावविप्रकृष्टेप्वपि जीवेपु अमित्रभूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्त । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एव अविरते· कर्मबंधोज्ञेय ॥ ८ ॥

॥ टीका—एव व्यवस्थिते न सर्व विपयं प्रत्याख्यान युज्यते इत्येव प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह । (तत्थखलुभगवयाइत्यादि) यद्यपि सर्वेप्वपि देशकालस्वभावविप्र

अथ पंचमाध्ययनप्रारंभ

हवे चोथा अध्ययनने विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटे अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो, माटे आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामे पांचमुं अध्ययन कहियें ठेयें. ॥

आदाय बंनचेरं च, आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सि धम्मे अणायारं, नाय रेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥

अर्थ-(आदायबंनचेरच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवइं के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आंगल कहेशे तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत ठे इत्यादिक नकहे (अस्सिधम्मेअणायारं के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेज्जकयाइवि के०) तेने क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

॥ दीपिका-अथ पचमाध्ययनमारन्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरश्रुतमिति नाम । तस्येदं सूत्रं आदाय बंनचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठान चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञ पमित· इमा वक्ष्यमाणो वाच इदं जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचार नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

॥ टीका-सांप्रत पचममारन्यते । अस्य चायमनिसंबंध । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसव्यवस्थितस्य सतोनवतीत्यतस्तदनतरमाचारश्रुताध्ययनमनिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलित नवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमनिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्त सन्नाचारवान् नवतीत्यत· प्रत्याख्यानक्रियानतरमाचारश्रुताध्ययन तत्प्रतिपक्षनूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवति । तत्रोपक्रमांतर्गतो र्थाधिकारोय । तद्यथा । अनाचार प्रतिषिध्य साधूनामाचार प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपदं नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिरुदाह । " णाम ठवणादविए दवे नावेय होंति नायवा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निक्खेवो चउविहो होति,,॥१॥ (णामठवणेत्यादि) तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यनावनेदनिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्य· । एव श्रुतमपीति। तत्राचारश्रुतयोरन्यत्रानिहितयोर्लाघवार्थमतिदेश कुर्वन्नाह । "आयारसुयं नणियं,

से किंतं असन्निदिठंते जेइमे असन्निणो पाणा तं पुढवीकाइया जाव वणस्स इकाइया छठावेगइया तसा पाणा जेसिं णो तक्काइवा सन्नातिवा पन्नातिवा मणातिवा वईवा सयंवा करणाए अन्नेहिवा कारावंतए करंतंवा समणुजा णितए तेविण बाले सवेसि पाणाणं जाव सवेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सु त्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूतमिछामठिया निच्च पसढविउवातचित्तदंमा त पाणाइवा ते जाव मिच्छादंसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेवमणो णो चेववई पाणा णं जाव सत्ताण डुक्कणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणताए परितप्पणताए ते डुक्कणसोयणजावपरितप्पणवहवंधणपरिकिलेसाउ अप्प डिविरया नवंति ॥ ए ॥

अर्थ-(सेकिंतंअसन्निदिठंते के०) हवे असंज्ञियानो दृष्टांत कयो ? ते कहेछे (जेइ मेअसन्निणोपाणा के०) जे ए असज्ञी प्राणीउंठे (त के०) ते कहेछे (पुढवीकाइया के०) पृथिवीकायिक, (जाववणस्सइकाइया के०) यावत् वनस्पतिकाय पर्यंत. ए पांच स्थावर जाणवा. (छठावेगइयातसापाणा के०) तथा छठा, कोइ एक त्रस प्राणीउ पण असज्ञी छे (जेसिंणोतक्काइवा के०) जेने तर्क नथी तर्क एटले ए स्तनछे के, पुरुषछे ए आ गल शुछे! एवो नाव जेने न उपजे, एटले सारु करवु ढेखीने कहेके, आ रुडुं करेछे एवो नाव जेने नथी, (सन्नातिवा के०) तथा सज्ञा ते जे पूर्वेहष्टनु उलखवु ते जेने न थी (पन्नातिवा के०) तथा जेनें प्रज्ञा एटले बुद्धि नथी, (मणातिवा के०) तथा जेनें मन नथी, (वईवा के०) तथा जेने वचन नथी, (सयवाकरणाए के०) तथा जेने पो ते कार्य करवु नथी, अथवा (अन्नेहिंवाकारावंतए के०) वीजा पासे कार्य करावबु नथी, (करतवासमणुजाणितए के०) तथा वीजो कोइ कार्य करतो होय तेने देखीने कहेके, ए रुडुं करेछे एम कहीने तेने अनुमोदन आपवु एवो नाव जेने नथी, (तेवि णबाले के०) ते असंज्ञी बाल अज्ञानी जीव, (सवेसिपाणाए के०) सर्व प्राणीनो (जा वसवेसिसत्ताणके०) यावत् सर्वसत्वनो (दियावाराउवासुत्तेवाजागरमाणेवा के०) दिवसे रात्रे, सुता, जागता, (अमित्तनूत के०) जीवोनो अमित्रनूत शत्रुसमान वोलियें कारणके, तेनें तेनुं विरति पणुं नथी (मिछासठिया के०) ते मिथ्यात्व सस्थित (निच्चपसढविउवात चित्तदंमा के०) निरतर शठ एटले परमार्थ नथी जाणता, तथा प्राणवातने विषे जेनु चि त्तछे, तथा प्राणीउने दमना करनार, (तं के०) ते कहेछे (पाणाइवातेजावमिछादसण सल्ले के०) प्राणातिपात मृषावादादिकथी यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत ए अढार पा

अथ पचमाध्ययनप्रारंभ.

हवे चोथा अध्ययनने विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटें अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो, माटें आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामे पांचमुं अध्ययन कहियें बैयें. ॥

आदाय बंनचेरं च, आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सि धम्मे अणायारं, नाय रेक्क कयाइवि ॥ १ ॥

अर्थ-(आदायबंनचेरच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवइं के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आगल कहेशे तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत बे इत्यादिक नकहे (अस्सिधम्मेअणायार के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेक्ककयाइवि के०) तेनें क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

॥ दीपिका-अथ पचमाध्ययनमारभ्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरश्रुतमिति नाम । तस्येद सूत्रं आदाय बंनचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठान चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञ पमित इमां वक्ष्यमाणां वाच इद जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचार नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

॥ टीका-सांप्रत पंचममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंध । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसंव्यवस्थितस्य सतोभवतीत्यतस्तदनंतरमाचारश्रुताध्ययनमभिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलितं भवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमभिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्त सन्नाचारवान् भवतीत्यत प्रत्याख्यानक्रियानंतरमाचारश्रुताध्ययन तत्प्रतिपक्षभूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवति । तत्रोपक्रमांतर्गतो र्थाधिकारोयं । तद्यथा । अनाचार प्रतिषिध्य साधूनामाचार प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपद नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णाम ठवणादविए ढवे भावेय होति नायव्वा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निरकेवो चउविहो होति,,॥१॥ (णामठवणेत्यादि) तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यभावभेदभिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्य । एव श्रुतमपीति। तत्राचारश्रुतयोरन्यत्राभिहितयोर्लाघवार्थमतिदेश कुर्वन्नाह । "आयारसुयं भणियं,

शिष्टविमर्शोविद्यते यथा कस्यचित्संज्ञिनोमंदमंदप्रकाशे स्थाणुपुरुषोचिते देशे किमयं स्थाणुरुत पुरुषइत्येवमात्मकऊहस्तर्क सनवति नैव तेषामसंज्ञिना तर्का सनवतीति। तथा सज्ञान संज्ञा पूर्वोपलब्धार्थेतडत्तरकालपर्यालोचना तथा प्रज्ञान प्रज्ञा स्वबुध्योत्प्रेक्षणं,सएवायमित्येवनूतं प्रज्ञानंच तथा मनन मनोमतिरित्यर्थ । सा चावग्रहादिरूपा तथा प्रस्पष्टवर्णा वाक्।साच न विद्यते तेषामिति। यद्यपिच धीड्रियादीनां जिव्हेंड्रियनावि वरादिकमस्ति तथापि न तेषां प्रस्पष्टवर्णत्व ।तथा न चैषा पाप हिंसादिक करोमि कारयामीत्येवनूताध्यवसायपूर्विकामतिस्तथा स्वयं करोम्यन्यैर्वा कारयामीत्येवनूतोध्यवसायो न विद्यते तेषां। तदेव तेप्यसंज्ञिनोबालवद्बाला सर्वेषा प्राणिना घातनिवृत्तेरनावात्तयोग्यतया घातकाव्यापादका । तथाहि । द्वींड्रियादय. परोपघाते प्रवर्तते एव तन्नक्षणादिना अनृतनाषणमपि विद्यते तेषामविरतत्वात् केवलं कर्मपरतंत्राणा वागनावस्तथाऽदत्तादानमपि तेषामस्त्येव दध्यादिनक्षणात्तथेदमस्मदीयमिदंच पारक्यमित्येवनूतविचारानावाच्चेति । तथा तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुनाविरतेश्च मैथुनसन्नावोपि तथाशनादे स्थापनात्परिग्रहसन्नावोपीत्येव क्रोधमानमायालोनायावन्मिथ्यादर्शनशत्यसन्नावश्च तेषामवगंतव्यस्तन्नावाच्च ते दिवा रात्रौवा सुप्ताजाग्रदवस्थावा नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमानवति । तदेव दर्शयितुमाह । (तंजहाइत्यादि) तेह्यसंज्ञिन क्वचिदपि निवृत्तेरनावात्तत्प्रत्ययिककर्मबधोपेतानवति । तद्यथा । प्राणातिपातयावन्मिथ्यादर्शनशल्यवतो नवति । तन्नत्तयाच यद्यपि वैशिष्ट्यमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वेषा प्राणिनां डुखोत्पादनतया तथा शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन तथा जूरणतया जूरण वयोहानि रूपं तत्करणशीलतया तथा त्रिन्योमनोवाक्कायेन्य पातन त्रिपातन तन्नावस्तथा यदिवा (तिप्पणयाएत्ति) परिवेदनतया तथा (पिट्टणया) मुष्टिलोष्टप्रहारेण परितापनतया बहिरतश्च पीडया ते चासंज्ञिनोपि यद्यपि देशकाले स्वनावविप्रकृष्टानां न सर्वेषां डुखं समुत्पादयंति तथापि विरतेरनावात्तद्योग्यतया डुःखपरितापक्लेशादेरप्रतिविरता नवति तत्सन्नावाच्च तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसि पाणातिवाए उवरकाइज्जंति जाव अहोनिसि परिग्गह उवरकाइज्जति जाव मिछादंसणसल्ले उवरकाइज्जंति एवंनूतवादी सबजोणियावि खलु सत्ता सन्निणो हुच्चा असन्निणो होति असन्निणो हुच्चा सन्निणो होति होच्चा सन्नी अडवा असन्नी तब से अविविचित्ता अविधूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता असन्निकायाउवा सन्नि

वा एकांत अशाश्वत, (इतिदिष्ठिनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एटले पंमित जन एवो पक्ष आदरे नहीं ॥ २ ॥

॥ दीपिका-(अणादीयमिति) अनादिकं जगत्प्रमाणैः सांख्याभिप्रायेण परिज्ञाय अनवदग्रमनंतं च तन्मतएव ज्ञात्वा सर्वमिदं शाश्वतं बौद्धाभिप्रायेणवाऽशाश्वतं इति दृष्टिं न धारयेत् एवं पक्षं नाश्रयेत् ॥ २ ॥

॥ टीका-तत्रानाचरं नाचरेदित्युक्तं । अनाचारश्च मौनींद्रप्रवचनादपरोनिधीयते मौनींद्रप्रवचनं तु मोक्षमार्गहेतुतया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं। सम्यग्दर्शनंतु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूपं । तत्त्वं तु जीवाजीवपुण्यपापाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षात्मकं तथा धर्मा धर्माकाशपुजलजीवकालात्मकं द्रव्यं नित्यानित्यस्वभावं सामान्यविशेषात्मकोऽनाद्यप र्यवसानश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोलोकस्तत्त्वमिति । ज्ञानतु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेव लस्वरूपं पंचधा । चरित्रं, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिय, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यातरूपं पंचधैव मूलोत्तरगुणभेदतोऽ नैकधेत्येवं व्यवस्थिते मौनींद्रप्रवचनेन कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वाऽनाद्यपर्यवसाने लोके सति दर्शनाचारप्रतिपक्षभूतमना चारं दर्शयितुकामआचार्योयथावस्थितलोकस्वरूपोद्घट्टनपूर्वकमाह (अणादीयमित्यादि) नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्यवा द्रव्यस्यादिः प्रथमोत्पत्तिर्विद्य तइत्यनादिकस्तमेवभूतं परिज्ञाय प्रमाणतः परिछिद्य तथानवदग्रमपर्यवसानंच परिज्ञा यानयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्ट्यावधारणात्मकं प्रत्ययमनाचारं दर्शयति शश्वद्भवतीति शाश्वतं नित्यं साख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शनेचानुयायिनं सामा न्याशमवलंब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शाश्वत मित्येवभूतां दृष्टिं नावधारयेदिति एवं पक्षं न समाश्रयेत् । तथा विशेषपक्षमाश्रित्य वर्त्तमाननारकान् समुत्सेत्स्यतीत्येतच्च सूत्रमगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवभूतबौद्ध दर्शनाभिप्रायेण च सर्वत्र शाश्वतमनित्यमित्येवभूताच दृष्टिं न धारयेदिति ॥ २ ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणा यारं तु जाणए ॥ ३ ॥

अर्थ-हवे एनु कारण कहेछे. सर्वलोक नित्यज छे अथवा अनित्यज छे, (एएहिंदो हिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानके करीने (ववहाराणविज्जई के०) लोकनो व्यवहार न प्रवर्ते एटले आ लोक, तथा परलोक संबधि कार्य जे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण, एवो व्यव

न्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंतिके०) बीजो भंग. संज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, (सन्निकायाउवासन्निकायंसंकमंति के०) त्रीजो भंग, सज्ञिकाय थकी सज्ञिकाये संक्रमे. (असन्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंति के०) चोथो भंग, असज्ञिकाय थकी असज्ञिकाये संक्रमे, एव चतुर्भंग जाणवा. (जेएएसन्निवाअसन्निवा के०) जे ए संज्ञिया अथवा असंज्ञीया छे (सवेतेमिछायारा के०) ए सर्वे अपच्चखाणीने भावे मिथ्याचार वाला जाणवा ते सर्वे जीवने विषे नित्य अत्यंत शव एटले मूर्ख पणु छता प्राणीघातने विषे जेनु चित्तछे तथा प्राणिउने दंमना करनार केवाय. यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकना करनार ते केवाय. ए रीते भगवत श्री महावीरदेवे कह्युके जे असयति अविरति अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्म वाला, तथा सक्रिय असवर एकांत दंमना करनारा, एकात बाल, एकांत सुता कह्या. ते बाल अविचारित मन वचन अने कायाना परिणाम वाला छतां जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण न देखे, तेनु पण कर्म तेने लागे ॥१०॥

॥ दीपिका—इति अमुना प्रकारेण । खलु वाक्यालंकारे । ते पृथ्वीकायादयोऽसज्ञिन. सतोऽहर्निशं प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवदुपाख्यायते यावन्मिथ्यादर्शनशल्ये उपाख्यायंते।तेच कर्मवशात्सर्वयोनिकाअपि जीवा पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मन.पर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावत्करणतोऽसंज्ञिन· संत पश्चात्सज्ञिनोभवन्त्येकस्मिन्नेव जन्मनि । अन्यजन्मनितु एकेंद्रियादयोपि मनुष्यादय स्यु ।पर भव्याभव्यत्ववन्न नियम । भव्याभव्यत्वेहि न कर्मायत्ते अतोन ताभ्यां व्यभिचार । ये पुन कर्मवशगास्ते पुन सज्ञिनोभूत्वाऽन्यत्रासज्ञिन स्यु असज्ञिनश्च भूत्वा सज्ञिनइति । तत्र यत्कर्म बद्धमस्ति तस्मिन् सत्येव तदविविच्याऽपृथक् कृत्वाऽविधूयाऽसमुछिद्याऽननुताप्याएते चत्वारोपि शब्दाएकार्थिकाः। तदेवमत्यक्तकर्माणोऽसज्ञिकायात्सज्ञिकायं सक्रामति सज्ञिकायादसंज्ञिकायंच सज्ञिकायात्संज्ञिकायं असज्ञिकायादसज्ञिकायच । एव चत्वारोभगा । उपसंहरन्नाह । (जेएतेजीवत्ति) ये एते पर्याप्ताअपर्याप्ता सज्ञिनोऽसज्ञिनोवा सर्वे ते मिथ्याचाराअविरतत्वात् तथा सर्वधर्मेषु नित्यं प्रशवव्यतिपातचित्तदंमा स्युरेवभूताश्च प्राणातिपातादिषु सर्वेष्वप्याश्रव द्वारेषु वर्ततइति (एवखलुत्ति) एवमुक्तनीत्या खलु निश्चितं भगवता आख्यातमित्यादिना पूर्वोक्तमनुवदति । यावत्पाप कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

॥ टीका—तदेव विप्रकृष्टविषयमपि कर्मबंध प्रदर्श्योपसजिहीर्षुराह । (इतिखलुतेइत्यादि) इति रूपप्रदर्शने।खलुशब्दोवाक्यालंकारे विशेषणे वा। किं विशिनष्टि । ये इमे पृथिवीकायादयोऽसज्ञिनः प्राणिनस्तेषां नतर्को,नसज्ञा, नमनो, नवाक्, नस्वयं कर्तुं नान्येन

सिद्धिने योग्य एवा सर्वभव्यजीव सिद्धिने विषे जशे एम करतां सर्व भव्यजीवनो विछेद थशे. एवु वचन विवेकी पुरुष न बोले, तथा (सवेपाणाअणेलिसा के०) सर्व प्राणी एटले सर्व जीव ते अणेलिसा एटले सरखा नथी तथा सरखाछे तथा विलक्षणछे एवुं वचन पण विवेकी जन एकांतें न बोले, तथा (गंठिगाएभविस्संति के०) तथा सर्व प्राणी कर्म ग्रंथि सहित थशे, एटले कर्मनी गांव सहितज रेहेशे, एवुं पण एकांतें वचन न बोले, (सासयंतिवणोवए के०) तथा सर्वज्ञ शाश्वताज सर्वकालें होशे. पण कदापि कालें विछे द नहीज पामे एवु वचन पण एकांतें बोले नहीं ॥४॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानक जे तीर्थंकर विछेद पामशे, अथवा शाश्वताज रहेशे, अथवा सर्व भव्य जीव सिद्धिने पामशे, अथवा सर्व भव्य जीव कर्म सहितज रहेशे, ए बे स्थानक बे प्रकारना थया एम कहेवुं, ते. (ववहारोणविज्जती के०) व्यवहार नथी एवुं जाणे (एएहिंदोहिं ठाणेहिं के०) ए बेहु स्थानके करी, (अणायारंतुजाणई के०) अनाचार जाणे, एटले दर्शनाचार आश्री अनाचार कह्यो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-(समुच्छिहिंति) समुच्छेत्स्यंति उच्छेदं यास्यति शास्तारोभव्याः सर्वभव्या नां मुक्तिगमनेन भव्यशून्योलोकः स्यादित्येव नो वदेत् । तथा सर्वे प्राणाअनीदृशाविस दृशाविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्यपि नो वदेत् । ग्रंथिकाः कर्मग्रंथोपेता एव भविष्यति सर्वे जीवाइत्यपि नो वदेत् । कोर्थः ?। सर्वे प्राणिनः सेत्स्यत्येव कर्मावृ तावा भविष्यंतीत्येकमपि पक्षमेकांतेन न वदेत्तथा शाश्वतास्तीर्थकृतइत्यपि न वदेत्॥४॥ (एएहिंति) शास्तारः क्षयं यास्यंति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे प्राणाविल क्षणाः सदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वाएव तद्रहितं वा जगदिति वा एवमनयोः स्थानयो र्व्यवहारोन विद्यते । इद पक्षद्वयमपि न घटतइत्यर्थः । यतोऽनागतकालस्येव भव्याना मनंतत्वान्निरंतरं मुक्तिगमनेपि न भव्यशून्यं जगदिति । केचिद्भव्याअपि सामग्र्यभावान्न सेत्स्यंति यथा प्रतिमायोग्यमपि दलिकं सामग्रीं विना प्रतिमारूपं न स्यादिति सर्वे जीवाअपि विचित्रकर्मसद्भावाद्विसदृशाः कथंचित् उपयोगामूर्तत्वासंख्यप्रदेशत्वादिधर्मैः सदृशाअपि । तथा सर्वेऽर्हंतः प्रवाहापेक्षया शाश्वताः एकैकापेक्षया अशाश्वताअपीति एताभ्यां द्वाभ्यामेकांतस्थानाभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ५ ॥

॥ टीका-तथान्यमप्यनाचारं प्रतिषेधुकामआह । (समुच्छिहिंतीत्यादि) सम्यक् निरवशेषतयोत्सेत्स्यत्युछेदं यास्यति क्षयं प्राप्स्यंति सामस्त्येनोत्प्राबल्येन सेत्स्यंति वा सिद्धिं यास्यति । के ? ते शास्तारस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्नावा सर्वे निरवशेषा

सकाः अन्योन्यसंक्रमभाजः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वेप्येते मिथ्याचाराअप्रत्याख्यानित्वादि त्यभिप्रायः । तथा सर्वजीवेष्वपि नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंभानवतीत्येवभूताश्च प्राणा तिपाताद्येषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति ॥ तदेव व्यवस्थिते यत्तदुक्तं चोदकेन तद्य थेहाविद्यमानाऽशुभयोगसंभवे कथं पापं कर्म बध्यतइत्येतन्निराकृत्य निरंतरभावात्तद्योग्य तया पापकर्मसद्भाव दर्शयति । (एव खलुइत्यादि) एवमुक्तनीत्या । खल्ववधारणे ऽलं कारे वा । भगवता तीर्थकृतेत्यादिना यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदनुवदति । यावत्पाप च कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

चोदक से किकुवं किकारवं कहं संजयविरयप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे भवइ आचार्यआह तत्र खलु भगवया छजीवणिकायहेउं पण्णत्ता तं जहा पुढवीकाइया जाव तसकाइया से जहा णामए मम अस्सातं दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आतोडिज्जमाण स्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुक्कणणमायमविहिंसाकारं दुक्कं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाण सवे पाणा जाव सवे सत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आतोडिज्जमाणेवा हम्ममाणेवा तज्जिज्जमाणेवा ता लिज्जमाणेवा जाव उद्दविज्जमाणेवा जाव लोमुक्कणणमायमविहिंसा कारं दुक्कं भयं पडिसंवेदेति एवं णच्चा सवे पाणा जाव सवे सत्ता न हंतवा जाव ण उद्दवेयवा एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदिए एवं से भिक्कू विरते पाणाइवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाउ से भिक्कू णो दंतपरकालेणं दंतेपरकालेज्जा णो अंजणं णो वमणं णो धूव णं तंपि न आदते से भिक्कू अकिरिए अलूसए अकोहे जाव अलोभे उवसंते परिनिवुडे एस खलु भगवया अरकाए संजयविरयपडिहय पच्चरकायपावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिएयावि भवइ त्तिबेमि ॥ इति बीयसुयरकंधस्स पच्चरकाण किरियाणाम चउत्थं मज्झयणं सम्मत्तं॥ १ १॥

अर्थ--(चोदक के०) हवे वली शिष्य पूछेछे के हे भगवन् ! (सेकिंकुवंकिकारवकहंसंजय के०)ते जीव केवां अनुष्ठान करतो,केवा अनुष्ठान करावतो,केवा प्रकारें संयत (विरय के०) विरति (प्पडिहयपच्चरकायपावकम्मेभवइ के०) प्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मा होय, ते कहो? एवु सांभलीने (आचार्यह के०) आचार्य बोल्या (तत्रखलुभगवयाछजी

त्वं तत्कथं तेपां ह्रुय युक्तिरप्यत्र संवधिशब्दावेतो । मुक्ति संसारं विना न नवति संसारोपि न मुक्तिमंतरेण । ततश्च नव्योछेदे संसारस्याप्यनाव. स्यादतोऽनिधीयते नाऽनयोर्व्यवहारोयुज्यतइति ॥ ५ ॥

जे केइ खुद्दगा पाणा, अडुवा संति महालया ॥ सरिसंतेहिंति वेरं ति असरिसंतीय णो वदे ॥६॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ण विज्जई ॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारंतु जाणए ॥ ७ ॥

अर्थ–हवे चारित्राचार आश्री कहेछे (जेकेऽखुद्दगापाणा के०) जे कोइ आ जगत् मां लघुप्राणी एटले सूक्ष्मजीवछे एटले पृथविकायथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत सूक्ष्म जीवछे, (अडुवासंतिमहालया के०) अथवा जे जीव महाकाय एटले महोटी कायावाला छे, अहीं न्हानाजीव ते कुंथुआदिक, अने महोटा जीव ते हस्त्यादिक जाणवा (सरिसतेहिंतिवेर के०) ए वेहुनो विनाश करवा थकी सरखुंज वैर होय, एवु एकाते वचन न बोले (असरिसतीयणोवदे के०) अथवा असरीखु होय एटले सरखु वैर न होय. एवुं वचन पण एकातें न बोले कारणके, कर्मबंधने विषे न्हाना मोटानुं कांइ विशेष नथी किंतु? अध्यवसाय विशेष कर्म बंधछे एवु जाणे, अन बोले ॥६॥ ए बेहु स्थानक बोलतां व्यवहार प्रवर्त्ते नहीं, एवु जाणे, तथा एवुं एकातें बोलतां अनाचारछे एम जाणे.॥७॥

॥ दीपिका–(जेकेइत्यादि) ये केचित् कुद्रा प्राणिनएकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पचेंद्रिया । अथवा महालयामहाकाया संति तेपां क्षुद्राणा कुंथ्वादीनां महतां हस्त्यादीनां च हनने सदृश वैरं कर्मवधस्तुल्यइत्येकांतेन नो वदेत् असदृश वातद्धाते वैर कर्मबंधइंद्रियज्ञानकायानां विचित्रत्वादित्यपि नो वदेत् ।नहि वध्यवशात्कर्मबंध किंतु? अध्यवसायवशात् तीव्राध्यवसायादल्पमपि सत्व घ्नतोमहान् कर्मबंध अकामस्यतु महाकायप्राणिहननेपि स्वल्पबंधइत्यर्थ ॥६॥ (एएहिंइति) एताभ्या तुल्यातुल्यविरूपाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते अध्यवसायस्यैव बंधाबंधहेतुत्वात् ।एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां प्रवृत्तस्यानाचार जानीयात् । तथाहि । नहि जीववधे हिंसा स्यात्तस्य नित्यत्वात् । यडुक्त "पंचेंद्रियाणि त्रिविध वलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायु ॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोजीकरणं तु हिंसा" इति । किंच नावापेक्षएव कर्मबंधोयथा वैद्यस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोयद्यपि रोगी म्रियते तथापि न वैद्यस्य कर्मबंधोडुष्टाध्यवसायान्नावात् अन्यस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोपात्कर्मबंध । यदागम । उच्चालिय मियाए, इरियासमि

यायहेऊ, भवस्सते चेव वत्तिया मोरके ॥ गणणाईया लोया, दोसहवि पुसा भवे तुह्नाइति (सेजहत्ति) तद्यथा नाम ममासातं दुःख दंमादिना नोद्यमानस्य पीड्यमानस्य भवति रोमोत्खननमात्रमपि दुःखमहं प्रतिसवेदयामि अनुभवामि ततश्चैव जानीहि त्वं सर्वे पि जीवादंमादिना ताम्यमानादुःखिनः स्यु रोमोत्खननमात्रमपि दुःखमनुभवति । एवं ज्ञात्वा सर्वे प्राणान हतव्या (एसधम्मेत्ति) एषधर्मोध्रुवोनित्य परिणामानित्यतायाम पि सत्या स्वरूपाच्यवनात्तथा सूर्योज्जतिरिव शश्वद्भवनात् शाश्वत समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्जुमितं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदित । तवेव स भिक्षुर्निवृत्त सर्वाश्रवेभ्योदंतप्रक्षा लन न कुर्यात् न नेत्राजन न वमनविरेचनादि वस्त्र धूपनच न आदत्ते स भिक्षु क्रोधा दिरहितोऽलूशकोऽहिंसकोयावदेकांतेन पंमितोभवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ११ ॥ इति सूत्रकृतागदीपिकाया द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ टीका–तदेवमप्रत्याख्यानिनः कर्मसंभवात्तत्सद्भवाच्च नारकतिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं संसारमवगम्य संजातवैराग्यश्चोदकआचार्यं प्रति प्रवणचेता प्रश्नयितुमाह । (सेकिंकुव मित्यादि) अथ किमनुष्ठानं स्वतः कुर्वन् किंवा परं कारयन् कथंवा केन प्रकारेण संयत विरतप्रतिहतपापकर्मा जतुर्भवति । सयतस्य हि विरतिसद्भावात्सावद्यक्रियानिवृत्तिस्तन्निवृ त्तेश्च कृतकर्मसंचयाभावस्तदभावान्नरकादिगत्यभावश्चैव पृष्टे सत्याचार्यआह । (तत्थख लु इत्यादि) तत्र संयमसद्भावे षड्जीवनिकायाभगवता हेतुत्वेनोपन्यस्ताः । यथा प्रत्याख्या नरहितस्य षड्जीवनिकाया संसारगतिनिबंधनत्वेनोपन्यस्ताएव तएव प्रत्याख्यानिनोमो क्षाय भवतीति । तथा चोक्तं । "जेजेत्तियायहेऊ, भवस्सते चेव वत्तिया मोरके॥ गणणाईया लोगा, दोसहवि पुसहा भवे तुह्नाइत्यादि" । इदमुक्तं भवति । यथात्मनोदंमाद्युपघाते दुःखमुत्पद्यते एवं सर्वेषामपि प्राणिनामित्यात्मोपमया तदुपघातान्निवर्तते एषधर्मः सर्वापा यत्राणलक्षणोध्रुवोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरस्वभावोनित्यइति परिणामानित्यतायामपि सत्यां रूपाद्यच्यवनात् तथा आदित्योद्गतिरिव शश्वद्भवनाच्छाश्वत परै कचिदप्यस्खलितोयुक्ति संगतत्वादित्यभिप्रायोयमेवभूतश्च धर्मः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितस्तत्रैव स भिक्षुर्निवृत्तश्च सर्वाश्रवद्वारेभ्योदंतप्रक्षालनादिका क्रिया कुर्वन सावद्यक्रियायाअनावादक्रियोऽक्रियत्वाच्च प्राणिनामलूषकोऽव्यापादकोयावदेकातेनैवासौ पंमितोभवति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् नयाः प्राग्वद्व्याख्येया ॥११॥ समाप्तं प्रत्याख्यानाख्यं चतुर्थमध्ययनमिति ॥ ४ ॥

अर्थ-हवे आहार आश्री आचार अनाचार कहेछे (अहाकम्माणिभुंजंति के०) जे साधु आश्री छए कायनु मर्दन करी,वस्तु जे नोजन उपाश्रयादिक कीधा होय, एटलानो जे उपनोग करे ते, (अन्नमन्नेसकम्मुणा के०) परस्पर माहोमाहे पोताने कर्मे, (उवलित्तेति जाणिज्जा के०) उपलिप्त जाणवा एवु पण वचन एकांतें न बोले, (अणुवलित्तेतिवापुणो के०)अथवा पोताना कर्मे करी अनुपलिप्त,एटले उपलिप्त न जाणवा,एवु पण वचन कांतेतें न बोले,कारणके, जे आधाकर्मिक आहार होय, तेने पण श्रुतना उपदेशने अर्थे शुद्ध एवो करीने जमे तो ते कर्म करी लेपाय नहीं अथवा सुजतो आहार होय,परतु ते आहारने आहारगृद्धपणे जमे तो, ते कर्मे करी बधायछे. एवु जाणीने, अनेकांत वचन बोले, पण एकांत वचन न बोले ॥७॥ ए बेहुस्थानके करी व्यवहार न जाणे, अने ए बेहु स्थानके करी अनाचार जाणे ॥ ए ॥

॥ दीपिका-(अहाकम्माणित्ति) आधाकर्माणि ये भुंजतेऽन्योन्यं परस्पर तान्स्वकीयेन कर्मणा उपलिप्तान्वा नो वदेत् अनुपलिप्तान्वा न वदेत् । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानस्य न बध श्रुतोपदेश विनाऽहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्यापितु बधस्तस्मादाधाकर्मनोगे कर्मबध स्यान्न स्याद्वा इति वदेत् ॥ ७ ॥ (एएहिंदोहिंमिति) आधाकर्मनोगे कर्मबध स्यादेव न स्यादेवेति द्वाभ्या स्थानाभ्या व्यवहारो न विद्यते द्वाभ्या स्थानाभ्या स्वीकृताभ्यामनाचार जानीयात् ॥ ए ॥

॥ टीका-पुनश्चारित्रमविरुद्धाहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकामआह । (अहाकम्माणीत्यादि) साधु प्रधानकारणमादायाश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि । तानितु वस्त्रनोजनवसत्यादीन्युच्यते । एतान्याधाकर्माणि ये भुजते एतैरुपनोग ये कुर्वत्यन्योन्यं परस्पर तान्स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येव नो वदेत्तथाऽनुपलिप्तानितिवा नो वदेत् । एतदुक्त नवति । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजान कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपनोगेनावश्यतया कर्मबधोनवतीत्येव नो वदेत्तथा श्रुतोपदेशमंतरेणाहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्य तन्निमित्तकर्मबधसद्भावात्सद्भावयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि । न बधस्य सद्भावासद्भावयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युक्तमद्भावमतोनुलिप्तानपि नो वदेद्यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेव युज्यते वक्तुमाधाकर्मोपनोगे न स्यात्कर्मबंध स्यान्नेति । यतउक्तं । "किंचिच्छुद्धं कल्पमकल्प्य स्यादकल्पमपि कल्प ॥ पिंम शय्या वस्त्र पात्र वा नेषजाद्य वा" ॥१॥ तथान्यैर ...भ्य । ...त्यतहि सावस्था देशकालामयान्प्रति॥ यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यंच

वज्जेयव्वा सया अणायारा ॥ अवहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइत्त लइयव्वे,,॥२॥(आचारसुयमित्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुते। द्वंद्वैकवद्भावस्तद्भनयमपि नणितमुक्त। तत्राचारः क्षुल्लिकाचारकथायामनिहित. श्रुतं तु विनयश्रुते। नावार्थस्तु वर्जयितव्या परिहार्या सदा सर्वकाल यावज्जीव साधुरनाचारास्तांश्चाबहुश्रुतोऽगीतार्थो न सम्यक् जानातीत्यतस्तस्य विराधना नवेत्। बहुशब्दोऽवधारणे। बहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदाचारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं। तथाहि। मार्गज्ञः पथिक कुमार्गवर्जनेन नापथगामी नवति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचार वर्जयन्नाचारवान्नवति न चानाचारदोषैर्युज्यतऽत्यतस्तत्प्रतिपेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इहमज्जयण मिहेति नायव्वा ॥ तोअणगारसुय इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ ३ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य डुर्गतिगमनैकहेतो प्रतिषेधोनिराकरण सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्य'। सच परमार्थतोऽनगारकारणमिति। ततः। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम नवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनतर सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (आदायवंनचेरमित्यादिश्लोक.) अस्य चानंतरपरपरसूत्रै सबधोवाच्यस्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकातपंमितोनवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परंपरसूत्रसबंधस्त्वयं बुध्येत। तथा त्रोटयेद्बंधनं। किंकृत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रै. संबधोवाच्योर्थस्त्वय। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोनूतदयेंद्रियनिरोधलक्षण तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींद्रप्रवचन ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञ' पटुप्रज्ञः सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षत्वाचामाह। इमां समस्ताध्ययनेनापि धीयमानां प्रत्यक्षासन्ननूतां वाच इदं शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नाभिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थित सन्नानाचार सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न विदध्यादिति संबंध.। यदिवाऽऽशुप्रज्ञ सर्वज्ञ प्रतिसमयं केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधिनि धर्मे व्यवस्थितइमां वक्ष्यमाणां वाचमनाचार च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थ. ॥१॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इति दिठिं न धारए ॥ २ ॥

अर्थ–हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इच्छायें यथावस्थित लोकस्वरूप प्रकटन पूर्वक कहेछे. (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितछे, एवुं जाणीने (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवु जाणीने, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अथ

वीर्यछे, एवी संज्ञा पण करवी नही (नत्थिसव्वत्थवीरियं के०) वली सर्वपदार्थनें विषे सर्वद्रव्यनुं वीर्य नथी, एवी संज्ञा पण करवी नही अही एकांतनो निषेध करीनें स्याद्वाद बोलवो. इत्यर्थ. ॥ १० ॥ अगीआरमी गाथानो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका-(जमिदमिति) यदिदमौदारिक शरीर आहारकंवा एतद्ग्रहणा द्वैक्रियमपि ग्राह्यं कार्मण तथा तैजसमपि। एतेषा शरीराणामैक्यमेव तैजसकार्मणयोरभिन्नत्वात्। ततस्त्रयाणामेकत्वमेवेति नो वदेत् इत्यग्रेतनश्लोके संबंध । तथा शरीराणां सर्वेषा सर्वथा भेदएवेत्यपि नो वदेत् कथंचिदेकत्वस्याप्यंगीक्रियमाणत्वात् तथा। (सव्वत्थ त्ति) सर्वे सर्वत्रास्तीति सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपाया प्रकृतेरेकत्वात्तस्याएव हि सर्वस्य कारणत्वात्सर्वं सर्वात्मकमेव सति सर्वत्र घटपटादौ अन्यस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिरस्ति सर्वस्य व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वात्सर्वं सर्वत्र सर्वस्य वीर्यमस्तीति सञ्ज्ञां न कुर्यात्। तथा सर्वे भावा स्वस्वशक्तियुक्ताइति न सर्वस्य सर्वत्र शक्तिरित्यपि संज्ञां न कुर्यात् भेदाभेदस्वरूपत्वात्सर्वभावानामिति ॥१०॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिंति) द्वाभ्यामेताभ्या सर्वत्र शक्तिरस्ति नास्तिवेति अथवा शरीराणां सर्वथा भेदोऽभेदोवेति द्वाभ्या स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते युक्तयोन संगच्छतीत्यर्थ । एतयो स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं जानीयात् ॥११॥

॥ टीका-पुनरप्यन्यथादर्शन प्रति वागमानाचारं दर्शयितुमाह। (जमिदंउरालमित्यादि) यदि वा योयमनंतरमाहार. प्रदर्शित स सति शरीरे भवति। शरीर च पंचधा। तस्य चौदारिकादे शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकाम. पूर्वपक्षद्वारेणाह। (जमिदमित्यादि) यदिदं सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैं पुद्गलैर्निर्वृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं निस्सारत्वादे तच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति। तथा चतुर्दशपूर्वविदा क्वचित्संशयादावाह्रियतइत्याहारकमे तद्ग्रहणाच्च वैक्रियोपादानमपि द्रष्टव्यं। तथा कर्मणा निवृत्तं कार्मणमेतत् सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यं। औदारिकवैक्रियाहारकाणा प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्या सह युगपदुपलब्धे कस्यचिदेकत्वाऽशंका स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह। तदेव तद्यदेवौदारिक शरीर तएव तैजसकार्मणे शरीरे। एव वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं। तदेवंभूता संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया। तथैतेषामात्यतिकोभेदइत्येवंभूतामपि सज्ञां नो निवेशयेत्। युक्तिश्चात्र यद्येकांतेनाभेदएव। ततइदमौदारिकमुदारपुद्गलनिष्पन्न तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तितं कार्मण सर्वस्यैतस्य ससारचक्रवालस्य भ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेजएव तैजस आहारपक्तिनिमित्त तैजसलब्धिनिमित्त चेत्येव भेदेन सञ्ज्ञानिरुक्तं कार्यंच न स्यात्। अथात्यतिकोभेदएव ततोघटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धि स्यात्।

वर्ज्जयवा सया अणायारा ॥ अवहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइउ जइयवे,,॥१॥(आचारसुयमि त्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुतं। द्वंद्वैकवन्नावस्तडुनयमपि नणितमुक्त। तत्राचार. क्षुल्लिकाचारकथायामनिहित' श्रुतं तु विनयश्रुते। नावार्थस्तु वर्जयितव्या परिज्ञाया सदा सर्वकालं यावज्जीवं साधुरनाचारास्तांश्चावहुश्रुतोऽगीतार्थोन सम्यक् जानातीन्यतस्तस्य विराधना नवेत्। वहुशब्दोऽवधारणे। वहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदा चारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं।तथाहि। मार्गज्ञ पथिक' कुमार्गवर्जनेन नापथगामी न वति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचार वर्जयन्नाचारवान्नवति न चानाचारदोषैर्युज्य तइत्यतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इहमज्जयणं मिहेति नायगा ॥ तोअणगार सुयं इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ २ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य दु र्गतिगमनैकहेतो प्रतिषेधोनिराकरण सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्य'। तच्च पर मार्थतोऽनगारकारणमिति। तत.। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम नवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनंतर सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयि तव्यं। तच्चेदं। (आदायवंनचेरमित्यादिश्लोक) अस्य चानतरपरपरसूत्रै नवपोवाच्य स्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकातपमितोनवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परपरसूत्रमवं धस्त्वयं वुध्येत। तथा त्रोटयेद्वंधन।किमत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रै. संवधोवाच्योर्थस्त्वय। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोनूतदयेंद्रियनिरोधलक्षणं तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींद्रप्रवचन ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञ पटुप्र ज्ञ सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षित्वात्तामाह।इमा समस्ताध्ययनेना पि धीयमाना प्रत्यक्षासन्ननूता वाच इत्र शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नाभिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थितः सन्नानाचार सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न वि दध्यादिति संबंध.।यदिवाऽऽशुप्रज्ञ सर्वज्ञ प्रतिसमय केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधि नि धर्मे व्यवस्थितइमा वक्ष्यमाणां वाचमनाचार च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थ.॥१॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इ ति दिठिं न धारए ॥ २ ॥

अर्थ—हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इछायें यथावस्थित लोकस्वरूप प्रकटन पूर्वक कहेछे (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितछे, एवु जाणीने (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवु जाणीने, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अथ

नामस्त्येन स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिचावक्तव्यं चेति।तथैकाशस्य परद्रव्याद्य पेक्षया स्यान्नास्ति चावक्तव्य चेति तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपे क्षयाऽन्यस्य तु योगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिच नास्तिचाऽवक्तव्य इयं च सप्तभंगी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥ १० ॥ ११ ॥

णत्थि लोए अलोएवा, णेव सन्नं निवेसए॥ अत्थि लोए अ लोएवा, एव सन्न निवेसए॥ १२॥ णत्थि जीवा अजीवावा, णेव सन्न निवेसए॥ अत्थि जीवा अजीवावा, एवं सन्नं निवे सए॥ १३॥ णत्थि धम्मे अधम्मेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि धम्मे अधम्मेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १४॥

अर्थ–हवे सर्वशून्यवादीना मतनु निराकरण करवाने अर्थे,लोक अने अलोकनुं अस्ति पणु देखाडेछे, (णत्थिलोएअलोएवा के०) चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवो जे लोक,अथवा पंचा स्तिकायरूप एवो जे लोक, ते नथी,एवी सज्ञा न करवी,तथा आकाशास्तिकाय रूप एवो जे अलोक,ते पण नथी,ते एवी सज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे. हवे केवी सज्ञा करवी? ते कहेछे पचास्तिकायरूप लोक ते पण छे,तथा आकाशास्तिकाय रूप अ लोक ते पणछे, एवी सज्ञा करवी ए केवलीनो मतछे॥१२॥हवे लोकालोकनुं अस्तिपणुं देखाडीने तेना विशेषभूत जीव अने अजीव तेनो अस्तिभाव देखाडेछे जीव ते, उपयोग लक्षण ससारीक, अथवा मुक्तिगत,ए पण नथी तथा अजीव ते धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल,अने कालात्मक ए पण नथी एवी सज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे त्यारे केवी सज्ञा करवी? तोके, जीव पणछे,अने अजीव पणछे एवी सज्ञा करवी ए केवली भगवतनो मतछे ॥१३॥ हवे एवा जीवनो अस्तिभाव देखाडीने तेने सदसत्क्रिया अनु ष्ठानने विषे धर्म, अने अधर्म कारणछे,ते माटे हवे तेनो अस्तिभाव कहेछे श्रुतचारित्ररूप जे धर्म, ते कर्मक्षयनो कारणरूपछे ते पण नथी, तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, क षाय, अने योगरूप जे अधर्मछे, ते कर्मबंधनो कारणरूपछे, ते पण नथी, एवी सज्ञा पण न करवी परतु धर्म पणछे, अनें अधर्म पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णत्थिलोएइत्यादि) शून्यवादिमताभिप्रायेण नास्ति लोक अलोकोऽ नास्तीति सज्ञा नो निवेशयेन्न स्थापयेत् अस्ति लोक पचास्तिकायात्मक. अस्ति वाऽलो

हार प्रवर्त्ते नही (एएह्विदोहिंगणेहिंश्रणायारंतुजाणए के०) तथा ए वेहु स्थानके अ नाचार जाणवो, ए कारणे एकांत पक्ष आदरवो नही ॥ ३ ॥

॥ दीपिका-(एएहिंति) एताभ्यां एकांतं नित्यं, एकांतमनित्यंचेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते । एकांतनित्ये एकांतानित्येच वस्तुनि व्यवहारोव्यवस्था न घटतइ त्यर्थः । तस्मादेताभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ३ ॥

॥ टीका-किमित्येकांतेन शाश्वतमशाश्वतं वाऽस्तित्वेवंजूता दृष्टिं न धारयेदित्याह । (एएह्विदोह्विमित्यादि) सर्वं नित्यमेवानित्यमेव चैताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामन्युपगम्य मानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारोलोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षणोन विद्यते । तथाह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं सर्वं नित्यमित्येव न व्य वह्रीयते प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिनावेन प्रध्वंसानावेन वा दर्शनात्तथैवच लोकस्य प्रवृत्तेरा मुष्मिकेपि नित्यत्वान्मनोबंधमोक्षाद्यनावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्री यते । तथैकांतानित्यत्वेनापि न लोकोधनधान्यघटपटादिकमनागतनोगार्थं सग्रह्णीयात् तथामुष्मिकेपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात् । तथाच दीक्षाविहारादिकमनर्थकं त स्मान्नित्यानित्यात्मकस्या द्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिरतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकां तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनींऽागमबाह्यरूपं विजानीयात् । तुशब्दोविशेषणार्थः । कथंचिन्नित्यानित्ये वस्तुनि व्यवहारोयुज्यतइत्येत द्दिशिनष्टि । तथाहि सामान्यसमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति नवति तथा विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथाच नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्यइति नवति । तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहारानि नवति । तथा चोक्तं "घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थि तिः स्वयं ॥ शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुकं" मित्यादि । सदेव नित्यानित्य पक्षयोर्व्यवहारोन विद्यते तथानयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ३ ॥

समुच्छिहिंति सत्थारो, सब्वे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगावा न
विस्संति, सासयंतिव णो वए ॥४॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, वव
हारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥५॥

अर्थ-वली पण अनाचार, निषेधवाने कहतो छतो कहेछे. (समुच्छिहिंति के०) सर्वथापि उच्छेद पामशे एटले क्षय थइ जाशे,अथवा सर्व सिद्धिने विषे जशे ते कोण जशे तोके (सत्थारो के०) तीर्थंकर सर्वज्ञ, तथा जे तेना शासनमां प्रवर्त्तेछे ते सर्व

दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमताभिज्ञेन । तन्मतं चैवभूतं ।तद्यथा नैकांतेनावयवाएव नाप्यवयव्येव चेत्यत स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यत· कथंचिल्लोको स्त्येवमलोकोपीति स्थितं ॥१२॥ तदेव लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूत योर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिजीवाअजीवेत्यादि) जीवाउपयोग लक्षणा संसारिणोमुक्तावा ते न विद्यते तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकाला त्मकागतिस्थित्यवगाहदानच्छायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणान विद्यतइत्येव संज्ञा परि ज्ञान नो निवेशयेन्नास्तित्वनिबंधन त्विद प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवान विद्यंते कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिका क्रियां कुर्वंतीति । तथात्मा द्वैत वादमताभिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमित्यागमात्तथा अजीवान विद्यंते सर्वस्यैव चेतनाचेतनस्यात्ममात्रनिर्वर्त्तित्वान्नो एव संज्ञां निवेशयेत् किंत्वस्ति जीव· सर्वस्यास्य सुखदुःखादेर्निबंधनभूत स्वसंवित्तिसिद्धोऽहं प्रत्ययग्राह्यस्तथा तद्व्यतिरि क्ताधर्माधर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यंते । सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणानुभूयमानत्वा तद्गुणाना भूतचैतन्यवादीत्र वाच्य । किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युताऽनि त्यानि।यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतेभ्युपगम· नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं तावदविद्यमानमतिप्रसंगाद भ्युपेतागमलोपाद्वा ऽथविद्यमानमेव सिद्ध तर्हि जीवत्व तथाऽत्मा द्वैतवाद्यपि वाच्य । यदि पुरुषमात्रमेवेद सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्य नोपलभ्यते तथा तदैक्यभेदनिबंधनानां पक्ष हेतुदृष्टांतानामभावात्साध्यसाधनाभावस्तस्मान्नैकांतेन जीवाजीवयोरभावोपितु सर्वपदा र्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीव स्यादजीव अजीवोपिच स्यादजीव स्याज्जीवइत्येतच्च स्या द्वादाश्रयणं जीवपुद्गलयोरन्योन्यानुगतयो शरीरस्य प्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलंभाद्द्रष्ट व्यमिति ॥१३॥ जीवास्तित्वेच सिद्धे तन्निबंधनयो सदसत्क्रिया द्वारायातयोर्धर्माधर्मयोर स्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिधम्मेअधम्मेवेत्यादि) धर्मं श्रुतचरित्राख्यात्मकोजीवस्या त्मपरिणाम कर्मक्षयकारणमात्मपरिणामएवमधर्मोपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययो गरूप कर्मबंधकारणमात्मपरिणामएव।तावेवभूतो धर्माऽधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादि मतेन न विद्येते इत्येव संज्ञा नो निवेशयेत्। कालादयएवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्मा धर्माव्यतिरेकेणैकांतत कारणमित्येवमभिप्राय कुर्याद्यत तएवैककाभ कारणमपितु समु दिताएवेति।तथाचोक्त । " नहि कालादी हिंतो, केवले हिंतो जायए किंचि ॥ इहमुग्गर धणा इवि, तासवे समुदिया हेऊ " इत्यादि । यतोधर्माधर्ममंतरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मं सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिकइत्येव संज्ञां नो निवे शयेदिति ॥ १४॥

सिद्धिगमनयोग्यानव्यास्ततश्चोच्छिन्ननव्यं जगत्स्यादिति शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीतां युक्तिं चाभिदधति जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावादन्नव्यस्य च सिद्धिगमनासनवात्कालस्य वाऽनंत्यादनारतसिद्धिगमनसंनवेन तद्यथोपपत्तेरपूर्वाधानाभावान्नव्योच्छेदइत्येव नो वदेत्त था सर्वेपि प्राणिनोजंतवोऽनीदृशाविसदृशा सदा परस्परलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकांतेन नो वदेत् । यदिवा सर्वेषां नव्यानां सिद्धिसद्भावे विशिष्टा सं सारेऽनीदृशाश्चनव्याएव नवेयुरित्येव च नो वदेत् । युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा त्मकोग्रंथोयेषां विद्यते ते ग्रंथिकाः सर्वेपि प्राणिन कर्मग्रथोपेताएव नविष्यंतीत्येवम पि नो वदेत् । इदमुक्तं नवति । सर्वेपि प्राणिन सेत्स्यत्येव कर्मावृतावा सर्वे नविष्यंती त्येवमेकमपि पक्षमेकांतिकं नो वदेत् । यदिवा ग्रंथिकाइति ग्रंथिकसत्वानविष्यंतीति ग्र थिनेदं कर्त्तुमसमर्थानविष्यंतीत्येव च नो वदेत्तथा शाश्वताइति शास्तार सदा सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थकरान नविष्यंति न समुत्सेत्स्यति नोच्छेदं यास्यतीत्येव नो वदेदिति ॥ ४ ॥

तदेव दर्शनाचारनिषेध वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याऽधुना युक्तिं दर्शयितुकामआह । (एएहिं इत्या दि) एतयोरनंतरोक्तयोर्द्वयो स्थानयो । तद्यथा । शास्तार क्षय यास्यतीति शाश्वतावा नविष्यंतीति । यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्नावा सेत्स्यंति शाश्वतावा नविष्य ति । यदिवा सर्वे प्राणिनोह्यनीदृशा विसदृशासदृशावा तथा ग्रथिकसत्वास्तद्रहितावा न विष्यंतीत्येवमनयो. स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदास्तित्वे युक्तेरनावान्न विद्यते । तथा हि । यत्तावदुक्तं सर्वेशास्तार. क्षयं यास्यंतीत्येतदयुक्तं । क्षयनिबंधनस्य कर्मणोनावात्सि द्धानां क्षयानावोन नवस्थकेवल्यपेक्षयेदमनिधीयते तदप्यनुपपन्नं यतोनाद्यनंतानां केवलि नां सद्भावात्प्रवाहापेक्षया तदनावानाव । यदप्युक्तमपूर्वायानावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावान्नव्यशून्यं जगत् स्यादित्येतदपि सिद्धांतपरमार्थाविदिनो वचनं । यतोनव्यरा शेरानंते नविष्यत्कालस्यवानंत्यमुक्तं तच्चैवमुपपद्यते । यदि क्षयोन नवति सतिच तस्मि न्नात्यंतं न स्यान्नापि चावश्य सर्वस्यापि नव्यस्य सिद्धिगमनेन नाव्यमित्यानव्यान्नव्यान तत् सामग्र्यनावाद्योग्यदलिकप्रतिमावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्वताएव नवस्थ केवलिनां शास्तृणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया शाश्वतत्वमेवात कथंचिच्छाश्वता कथंचिदशाश्वताइति। तथा सर्वेपि प्राणिनोविचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीरांगोपांगा दिसमन्वितत्वादनीदृशा विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिनिर्धर्मै कथंचित्स दृशास्तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रंथयोपरेच तथाविधपरिणामानावाद्ग्रंथिकसत्वा एव नवतीत्येव व्यवस्थितेनैकांते नैकांतपक्षोनवतीति प्रतिपित्थस्तदेवमेतयोरेव द्वयो स्थानयोरुक्तनीत्या नानाचारं विजानीयादिति स्थितं । अपिचागमेअनंतानंतास्वप्युत्सर्पि एयवसर्पिणीषु नव्यानामनंतनागएव सिद्ध्यतीत्ययमर्थ प्रतिपाद्यते ।यदा चैवनूतं तदानं

तापरसत्तानांतरीयकतोनेतरस्य सत्तेति नाप्युत्नयानाव शक्यते वक्तुं निबंधन
प जगद्वैचित्र्यस्यानावात् । नहि कारणमंतरेण क्वचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा । नियतिस्वना
ादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाणां पादप्रसारिका प्रायोपि च तद्वादेन्युपगम्यमाने
सकलक्रियावैयर्थ्यं ततएव सकलकार्योत्पत्तिरित्यतोस्ति पुण्य पापं चेत्येव संज्ञां निवे
शयेत् । पुण्यपापे चैव रूपे । तद्यथा ॥ "पुजलकर्म शुनं य,त्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्ट
म् ॥ यदशुनमथ तत्पाप,मिति नवति सर्वज्ञनिर्दिष्ट"मिति ॥ १६ ॥

णत्थि आसवे संवरेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे
संवरेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा णिज्जरावा,
णेवं सन्न निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा, एवं सन्नं
निवेसए ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे कारण विना कार्यनी उत्पत्ति नथी,माटें पुण्य अने पाप ए बेनुं कारण आ
श्रव अने संवरछे, तेथी हवे आश्रव अने संवर देखाडेछे. प्राणातिपातादि रूप जे कर्म
ग्रहण करवाना कारणछे ते आश्रव जाणवा अने जेणें करी आवता कर्मने रोकी रा
खीयें तेने संवर कहियें, माटें ए आश्रव अने संवर बन्ने नथी, एवी संज्ञा करवी नहीं,
परंतु आश्रव पणछे, अने संवर पणछे, एम कहेवु ॥ १७ ॥ हवे आश्रव अने संवरने
सद्भावे वेदना अने निर्जरानो सद्भाव देखाडेछे. वेदना एटले कर्मनुं अनुनववु, अनें नि
र्जरा एटले कर्म पुजलनु साडवु, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु वेदना पणछे
अने निर्जरा पणछे एवी संज्ञा गीतार्थ साधु करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(णत्थिआसवेति) आश्रवसंवरसद्भावोंगीकार्यइति ॥ १७ ॥ (णत्थिवेय
णेति) वेदना कर्मानुनवरूपा निर्जरा कर्मपुजलशाटरूपा एते द्वे अपि न स्त । यत प
ल्योपमसागरोपममसातवेद्य कर्म अंतर्मुहूर्तेनैव क्षय याति । यडुक्त । "जं अन्नाणी कम्मं,
खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसास मित्तेणमित्यादि । तथा
क्षपकश्रेण्या शीघ्रमेव कर्मण क्षयात् यथाक्रमबद्धस्यानुनवानावे वेदनायाअनावस्तदना
वेच निर्जरायाअप्यनावइत्येव नांगीकुर्यात् । यत कस्यचिदेव कर्मणएवमुक्तनीत्या क्षय
अन्यस्य तु प्रदेशानुनवेन नोगसद्भावादस्तिवेदना । यडुक्त । "पुव्विंडच्चिन्नाण दुप्पडिकंताणक
म्माण॥वेइत्ता मोरको नत्थि अवेइत्ताइत्यादि । वेदनासद्भावेच निर्जराप्यस्तीति स्वीकुर्यात्॥१८॥

— कारणमंतरेण कार्यस्योत्पत्तिरत पुण्यपापयो प्रागुक्तयो. कारणनूतावा

यस्स संकमणाए ॥ वावज्जिज्जकुलिंगी, । मरिज्जतज्जोगमासज्ज ॥ १ ॥ नयतस्स तन्निमि त्तो,बधेसुहमोविदेसिर्ड समए॥ अणवज्जाउपडगेण,सव्वनावेणसोजह्मा ॥२॥ इत्यादि॥७॥

॥टीका–अधुना चारित्राचारमंगीकृत्याह॥(जेकेइइत्यादि)ये केचन क्षुद्रका सत्वा प्राणिन एकेंद्रिय द्वीन्द्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाअथवा महालयामहाकाया सति विद्यते तेषां क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुंथ्वादीनां महानालय शरीर येषां ते महालयाहस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृश वैरमिति वज्रकर्म विरोधलक्षण वा वैर सदृशं समान तुल्यप्रदेशत्वात्सर्वे जंतूनामित्येवमेकातेन नो वदेत्तथा विसदृशमसदृशं तद्व्यापत्तौ वैर कर्मबंधोवा इंद्रियवि ज्ञानकायाना विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत्।यदि हि वध्यापेक्षएवकर्मबंध स्यात्तद्वशात्कर्मणोपि सादृश्यमसादृश्यवा वक्तु युज्यते। नच तद्वशादेव बधोपि त्वध्यवसायवशादपि ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्वव्यापादने पि महद्वैरमकामस्यतु महाकायसत्वव्यापादनेपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेवसूत्रेणैव द र्शयितुमाह ॥ (एएहिमित्यादि) आन्यामनंतरोक्ताभ्या स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पका यसत्वमहाकायव्यापादनापादितकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरण व्यवहारोनिर्युक्ति कत्वान्न युज्यते ।तथाहि। न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्व चैकमेव कर्मबधस्य कारणमपितु वधकस्य तीव्रनावोमंदनावोज्ञाननावोऽज्ञाननावोमहावीर्यत्वमल्पवीर्यत्व चेत्येतदपि । तदेव वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबंधविशेषइत्येव व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृश त्वव्यवहारोन विद्यतइति तथा तयोरेव स्थानयो प्रवृत्तस्यानाचार विजानीयादिति । तथा हि। यज्जीवसाम्यात्कर्मबंधसदृशत्वमुच्यते तदयुक्त।यतोनहि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते ।त स्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वादपि त्विंद्रियादिव्यापत्त्या ।तथाचोक्तं।"पचेंद्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनि श्वासमथान्यदायु ॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोजीकर ण तु हिंसा"॥१॥ इत्यादि।अपिच नावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबधोन्युपेतु युक्त । तथाहि। वैद्य स्यागमसव्यपेक्षस्य क्रिया कुर्वतोयद्यप्यातुरविपत्तिर्नवति तथापि न वैरानुषगोनवेद्दोषा नावादपरस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबधस्तद्हितस्यतु न बंधइत्युक्तं चागमे । उच्चालियंमिपाएइत्यादि । तत्सुत्रमस्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवविधव ध्यवधकनावापेक्षया स्यात् सदृशत्व स्यादसदृशत्वमित्यन्यथाऽनाचारइति ॥ ७ ॥

अहाकम्माणि नुंजंति, अस्समस्से सकम्मुणा॥ उवलित्तेति जाणि ज्जा, अणुवलित्तेति वा पुणो ॥८॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहा रो ण विज्जई, एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायार तु जाणए ॥ ए ॥

सज्ञा न करवी, परतु क्रिया पणछे, अनें अक्रिया पणछे एवी संज्ञा करवी ॥१९॥ हवे क्रियाने सद्भावे क्रोधादिकनो सद्भाव देखाडेछे जे पोताने अने परनें अप्रीतिनुं कारण ते क्रोध जाणवो, तथा जे गर्वलक्षण ते मान जाणवु, ए बेहु नथी, एवी सज्ञा पण न करवी, परतु क्रोध अनें मान ए बेहुछे एवी संज्ञा करवी ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(णत्थिकिरियेत्यादि) सांख्यादीना सर्वव्यापकत्वादात्मनोऽव्योम्नइव परिस्पदात्मिका क्रिया न विद्यते बौद्धानातु क्षणिकत्वात्सर्वभावानां प्रतिक्षणमुत्पत्तिरेव नान्या काचित्क्रिया तथा सर्वपदार्थाना प्रतिक्षणमवस्थातरगमनात्सक्रियत्वमेव अतोऽक्रिया न विद्यते एव संज्ञा न कुर्यात् किंतु ? अस्ति क्रियाऽक्रियाचेति संज्ञा कुर्यात् । यत· क्रियाभावे व्योम्नइव बंधे मोक्षाभाव प्रसज्येत । बौद्धानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिक्रियैव ततोऽस्ति क्रिया तद्भावेच तद्विपक्षभूताऽक्रियाप्यस्तीति ॥१९॥ (णत्थिकोहेवेति) नास्ति क्रोध सहिमानाशएव क्षपकश्रेण्यांच भेदेन क्षपणानगीकारात् । तथा क्रोध किं ? आत्मनोधर्म किंवा कर्मणउतान्यस्य । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंग । अथ कर्मणस्तत स्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयसंगात् अन्यधर्मत्वेऽकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोध· । एव मानाभावोऽपि वाच्यइत्येव नागीकुर्यात् । यत क्रोधाध्मात पुरुप प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते नायं मानाशोनिमित्तभेदात् । तथा जीवकर्मणोर्द्वयोरप्ययं धर्मस्तत· पूर्वोक्त प्रत्येकदोपासंभवस्तत क्रोधोमानश्चास्तीति सज्ञा निवेशयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-वेदनानिर्जरेच क्रियाक्रियत्वे ततस्तद्भावप्रतिषेधनिषेधपूर्वक दर्शयितुमाह । (णत्थिकिरियाअकिरियावाइत्यादि) क्रिया परिस्पंदलक्षणा तद्विपर्यस्तात्वक्रिया । ते द्वे अपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । साख्याना सर्वव्यापित्वादात्मनआकाशस्येव परिनिस्पदिका क्रिया न विद्यते । शाक्यानातु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थाना प्रतिसमयमन्यथा वान्यथोत्पत्त । पदार्थसत्तैव न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियास्ति ॥ तथा चोक्त । भूतिर्येषा क्रिया सैव कारकस्यैव चोच्यतइत्यादि । तथा सर्वपदार्थाना प्रतिक्षणमवस्थातरगमनात्सक्रियात्वमतोन क्रिया विद्यते इत्येव सज्ञा नो निवेशयेत् कितर्ह्यस्ति क्रिया अक्रिया वेत्येव सज्ञा निवेशयेत् । तथाहि । शरीरात्मनोर्देशादेशातरावाप्तिनिमित्ता परिस्पदात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते । सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बंधमोक्षाद्यभाव सच दृष्टइष्टश्चेति । तथा शाक्यानामपि प्रत्यक्षेणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यत कथ क्रियायाअभावोपि चैकातेन क्रियाभावे ससारमोक्षाभाव स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया तद्विपक्षभूताचाक्रियेत्येव सज्ञा निवेशयेदिति ॥ १९ ॥ तदेव सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भाव

वर्क्ययेदित्यादि ॥८॥ किमित्येव स्याद्वाद प्रतिपाद्यतइत्याह।(एएहिंदोहिमित्यादि) आभ्या
द्वाभ्या स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्व्यवस्थानयोराधाकर्मोपजोगेन कर्मबंधाजावाजावभूत
योर्व्यवहारोन विद्यते।तथाहि। यद्यवश्यमाधाकर्मोपजोगेनैकांतेन कर्मबंधोऽभ्युपगम्येत ।
एव चाहाराजावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदय स्यात् । तथाहि । क्षुदपीडितोन सम्यगी
र्यापथं शोधयेत्ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्बादिसद्भावतया देहपाते सत्यव
श्यंजावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरगीकृता जवत्यार्तध्यानापत्तौच तिर्यग्गति
रित्यागमश्च । सव्वउ संजम संजमाउ अप्पाणमेव रक्केज्जाइत्यादिनापि तडुपजोगे कर्मब
धाजावइति । तथाहि । आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधेच प्रतीत
कर्मबंधइत्यतोऽनयो स्थानयोरेकांतेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरण व्यवहारोन युज्यते तथाभ्या
मेव स्थानाभ्या समाश्रिताभ्या सर्वमनाचार विजानीयादिति स्थित ॥ ए ॥

जमिदं उराल माहारं, कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वत्थ वीरियं अत्थि,
णत्थि सव्वत्थ वीरिय ॥ १० ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे बीजी रीते परदर्शनी आश्री बोलवानो अनाचार कहेछे (जमिदंउरालमाहार
कम्मगंचतहेवय के०) जे ए शरीर सर्वलोक प्रसिद्ध औदारिक, ते तिर्यच अने मनुष्यनु
शरीर जाणवु, तथा जे चौदपूर्वधर मुनिराज होय,'ते कोइ एक संशय उपने छते शरी
र करीने केवली पासे पूछवाने अर्थे मोकले,ते आहारक शरीर जाणवु एना ग्रहणथी
वैक्रिय शरीर पण ग्रहण करवु, तथा कार्मण शरीर कर्मपुजलनिबद्ध जाणवु तेमज
एनु सहचारी ते तैजस शरीर जाणवु, ए पांच शरीर जाणवा हवे कोइएकने ए पाच श
रीरने तेमाहेथी औदारिक वैक्रियादिकने विषे एकज शरीरनी आगका उपजे एटले ते
एम कहे के, जे औदारिक शरीर, तेहिज तैजस, कार्मण शरीरछे, अने तैजस कार्मण शरीर
तेहिज औदारिक, वैक्रिय, अने आहारक शरीरछे. परतु एवी सज्ञा न करवी, तथा ए पाचे
शरीर अत्यंत माहो माहे जुदां जुदाछे एवी पण सज्ञा न करवी त्यारे केवी संज्ञा करवी?
तोके,ए जीव आश्री पाचे शरीर अभिन्नछे अने नामने नेदें,पर्यायने नेदें,भिन्न पणछे एम
कहेवु हवे सर्वद्रव्यनो नेदानेद देखाडवामाटें कहेछे (सव्वछवीरियअत्थि के०) स
घळु द्रव्य, सर्वद्रव्यने विषेछे एवो सांख्यमतनो अभिप्राय जाणवो ते सांख्य मत एम
कहेछे के, सत्व, रज, तमरूपें जे प्रधाननामा तत्व ते सर्वद्रव्यनु कारणछे, ए कारणे
सर्वद्रव्य सर्वात्मक एवी व्यवस्था एटले सर्वत्र घट पटादिकद्रव्यने विषे अन्यद्रव्यनु

ति स्वीकार्य ॥ २१ ॥ (णत्थिरागदोसाविति) रागद्वषौ न स्तइति न स्वीकार्यं तौ विद्येते इति मति कार्या युक्ति । पूर्वोक्ता ॥ २२ ॥

॥ टीका साप्रतं मायालोनयोरस्तित्व दर्शयितुमाह (णत्थिमायावलोनेत्यादि) अत्रापि प्राग्वन्मायालोनयोरजाववादीना निराकृत्यास्तित्व प्रतिपादनीयमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतं तेषांच क्रोधादीना समासेनास्तित्व प्रतिपादयन्नाह । (णत्थिपेज्जेवेत्यादि) प्रीतिलक्षणं प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्यायात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेषस्तावेतौ द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषाचिदनिप्रायोयद्रुत मायालोनावेवावयवौ विद्येते न तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्त न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति । तथा ह्यवयवेन्योयद्यनिन्नोवयवी तर्हि तद्नेदात्तएव । नासावथ निन्न पृथगुपलन्न स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो सज्ञा निवेशयेत् । यतोऽवयवावयविनो कथचिन्नेदइत्येव नेदानेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानुपपत्तिरित्येव चास्ति प्रीतिलक्षण प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येव संज्ञा निवेशयेत् ॥२२॥

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरते संसारे, एव सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायने सद्भावे, ससारनो सद्भाव देखाडेछे. नरक, तिर्यच, मनुष्य अने देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार नथी. एवी सज्ञा न करे, परतु ए चतुर्गतिलक्षण ससारछे एवी सज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे वली पण एज ससारनो सद्भाव देखाडेछे नुवनपति, व्यतर, ज्योतिषी, अने वैमानिक, ए चार जातना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देविछे ए बेहु नथी एवी संज्ञा न करे, परतु ए देव पणछे अने देवीउं पणछे, एवी सज्ञा करे. एवी सद्भावनाये मनुष्य, नारकी, अने तिर्यच नो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरतइति) नास्ति चातुरत चत्वारोऽतागतिनेदायत्र ससंसारश्चतुरतश्चतुर्विध ससारोनास्ति देवनारकयोरनुपलन्यमानत्वात् इति सज्ञा न निवेशयेत् अस्ति चतुर्विध ससार यत सति सुरनारका प्रकृष्टपुण्यपापफलनोगस्यान्यथानुपपत्तेः एवं सज्ञा निवेशयेत् ॥ २४ ॥ (णत्थिदेवेति) नास्ति देवोदेवी वा इति मति न कुर्यात अस्ति देवोवा देवी इति सज्ञा कुर्यात् अत्र प्रकृष्टपुण्यफलनोगएव हेतु ॥ २५ ॥

लब्धिरित्येव च व्यवस्थिते कथंचिदेवोपलब्धेर्भेद कथंचिन्न सज्ञा । तदेवमौदारिकादीना शरीराणा भेदाभेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव इ र्शयितुकाम' पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह् । (सव्वत्थवीरिय त्र वियतइतिकत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपस्य प्रधानस्यै कत्वात्तस्यच सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येव व्यवस्थिते घटपटाद्यवय वस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिर्वियते सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वा दत सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येव संज्ञा नो निवेशयेत्तथा सर्वे भावा स्वभावेन स्वस्वभावव्यव स्थिताइति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य वीर्यं शक्तिरित्येवमपि सज्ञा नो निवेशयेत् ।यु क्तिश्चात्र यत्तावदुच्यते सांख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्तु न समान कालोपलब्धिरिति तदयुक्तं। यतोभेदेन सुखदुःखजीवितमरणादूरासन्नसूक्ष्मबादरसुरूपकुरू पादिकं ससारवैचित्र्यमध्यक्षेणाऽनुभूयते ।नच दृष्टेऽनुपपन्न नाम।नच सर्वं मिथ्येत्यप्युपप न्नं युज्यते । यतोऽदृष्टाशंकाऽदृष्टकल्पनाच पापीयसी। किंच सर्वैक्येऽभ्युपगम्यमाने ससार मोक्षाभावतया कृतनाशोकृताभ्यागमश्च बलादापतति। यच्चैतत्सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति प्रधानमित्येतत्सर्वस्य जगत कारण तन्निरतरा सुहृद प्रत्येष्यंति निर्युक्तिकत्वाद पिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुनएकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्वरजस्तमसामप्येकत्व स्यात् तद्भेदे च सर्वस्य भेदइति। तथा यदप्युच्यते सत्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादत्वाच्च मयू राङ्करणे चञ्चुपिच्छादीना सतामेवोत्पादाभ्युपगमादसदुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्तिप्र संगादित्येत द्वाङ्मात्रं । तथाहि । यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्ह्युत्पादोनिष्पन्नघ टस्येवापिच मृत्पिंडावस्थायामेव घटगता कर्मगुणव्यपदेशाभवेयुर्नच भवति ततोनास्ति कारणे कार्यमथाऽनभिव्यक्तमस्तीति चेन्न । तर्हि सर्वात्मना वियते नाप्येकांतेनासत्कार्य वाद एव । तद्भावेहि व्योमारविंदानामप्येकांतेनासतोमृत्पिंडादेर्घटादेरिवोत्पत्ति स्यान्न चै तद्दृष्टमिष्ट वा।अपिचैव सर्वस्य सर्वस्माडुत्पत्ते कार्यकारणभावान्नियम' स्यादेवच न शाल्यं कुरार्थीशालीबीजमेवाददीत्पितु यत्किंचिदेवेति नियमेनच प्रेक्षापूर्वकारिणामुपादानकारणे दौ प्रवृत्तिरतोनासत्कार्यवादइति।तदेव सर्वपदार्थाना सर्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मै कथंचि देकत्वं तथा प्रतिनियतार्थकार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थत सदितिकृत्वा कथ चिद्भेदइति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितं।अनेनच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति भगकद्वये न शेषभगकाअपि द्रष्टव्या । ततश्च सर्ववस्तु सप्तभंगीस्वभावं। ते चामी स्वद्रव्यक्षेत्रकालभा वापेक्षया स्यादस्ति परद्व्यापेक्षया स्यान्नास्ति अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाभिधातुमशक्य त्वात्स्यादवक्तव्य तथा कस्यचिदंशस्य स्वद्व्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य पर द्व्याद्यपेक्षया स्या द्वा नास्तिवा वक्तव्यं चेति । तथैकस्यांशस्य स्वद्व्याद्यपेक्षया परस्य द्र

गए के०) पोतानुं स्थानक "इसीवप्नार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी सज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–(णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धि कर्मक्षयरूपा असिद्धि· संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञा न निवेशयेत् । ससारचानुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियत कर्मक्षयस्यच पीडोपशमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धिरप्यस्तीति सज्ञा कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेद्धाइति) सिद्धे· सर्वकर्मक्षयरूपाया निज स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्भाग स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निज स्थानमिति संज्ञा च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

॥ टीका–सर्वेनावाना सप्रतिपक्षत्वात्ससारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि नवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धि दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ताचासिद्धिर्नास्तीत्येव नो सज्ञां निवेशयेदपि त्वसिद्धे संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानतरमेव प्रसाधितायाश्चविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येव संज्ञा निवेशयेदिति स्थित । इदमुक्त नवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदावाकर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादत कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुन्योवहिरतर्मलक्षय" इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि सनवानुमानाद्द्रष्टव्यस्तथाल्यन्यस्यमानाया प्रज्ञायाव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्दृष्टव्य·। तत्र कस्यचिदत्यंतातिशयप्राप्ते सर्वज्ञत्व स्यादिति सनवानुमानेन चैतदाशकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुदकमन्यतोलतामियान्नाग्निसान्नवेत् तथा दशहस्तातरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गतु शक्तोन्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानजल प्रतिक्षण क्षयं गच्छत्प्रज्ञा तु विवर्धते। यदिवा क्षोषोपलब्धेरव्याहतमग्नित्व तथा प्लवनविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनानावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तर वृद्ध्या प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्याचदेव नाशकनीयमिति स्थित । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणानावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवाजननूतसमुज्ज्वलकद्दष्टांतेन जीवाकुलत्वाज्जगतोहिसायाऽनिवारत्वात्सिद्ध्यनाव । तथा चोक्तं। "जले जीवा स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथ निक्षुरहिसक" इत्यादि। ... स्येव हिसकत्वात्सिद्ध्यनावइति । तदेतदयुक्त । तथाहि । ...

कश्चाकाशास्तिकायमात्रइति संज्ञा निवेशयेत् ॥ १२ ॥ (णत्थिजीवाइति) न सति जीवाश्च जीवाचा इति सज्ञा नो निवेशयेत् सति जीवाश्चजीवाश्चेति सज्ञा कुर्यात् ॥ १३ ॥ (णत्थि धम्मइति) नास्ति धर्मं श्रुतचारित्रात्मक नास्ति वाऽधर्मोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग रूपः एव सज्ञा न कर्यात् अस्ति धर्मोऽधर्मोवा एव सज्ञा कुर्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—तदेव सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनोनेदान्नेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिम तनिरासेन लोकालोकयो प्रविनागेनास्तित्व प्रतिपादयितुकामआह । (णत्थिलोए अलोएवाइत्यादि) यदि वा सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति सर्वत्र वीर्यमित्यनेन सामान्येन वस्त्व स्तित्वमुक्तं । तथाहि । सर्वत्र वस्तुनोवीर्यं शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यं मनस स्वविषयज्ञानोत्पा दन तच्चैकातेनात्यतानावाब्रशविषाणादेरप्यस्तीत्येव सज्ञा न निवेशयेत्सर्वत्र वीर्यं ना स्तीति नो एव सज्ञा निवेशयेदिति । अनेनाविशिष्टं वस्त्वस्तित्व प्रसाधितमिदानीं तस्यैव वस्तुनईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयास्तित्व प्रसाधयन्नाह । (णत्थिलोएअलोएइत्या दि) लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोधर्माधर्माकाशादिपंचास्तिकायात्मकोवा स नास्तीत्येव सज्ञा नो निवेशयेत् । तथाऽऽकाशास्तिकायात्मकस्त्वेक सच न विद्यते एवेत्येव सज्ञा नो निवेश येत् । तदनावप्रतिपत्तिनिबंधन विद । तद्यथा प्रतिनासमान वस्त्ववयवद्वारेणवा प्रति नासेतावयविद्वारेणवा तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिनासनमुत्पद्यते निरशपरमाणूना प्र तिनासमानासनवात्सर्वारातीयनागस्य परमाण्वात्मकत्वात्तेपांच छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमश क्यत्वात् । तथाचोक्त "यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः सच न दृश्यते ॥ निरशस्यच नागस्य नास्तिछ द्मस्थ दर्शन" मित्यादि।नाप्यवयविद्वारेण विकल्प्यमानस्यावयविनएवानावात्।तथा ह्यसौ स्वावयवेषु प्रत्येक सामस्त्येनवा वर्तेताऽशाशिनावेनवा सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसंगान्नाप्यं शेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्थाप्रसगात्तस्माद्विचार्यमाण न कथंचिद्वस्त्वात्मक नाव लनते ततस्तत्सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेद्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृश। तथाचोक्त। "यथा य थार्थाश्चित्यते विविच्यंते तथा तथा॥ यद्येते स्वयमर्थेभ्योरोचते तत्र के वय" मित्यादि। तदेव वस्त्वनावे तद्विशेषलोकालोकानाव सिद्धएवेत्येव नो सज्ञा निवेशयेत् । किंत्वस्ति लोककर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपोवैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृश पंचास्तिकायात्म कोवा तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोप्यस्ति ।संबधिशब्दत्वाल्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेरिति नाव । युक्ति श्चात्र यदि सर्वं नास्ति तत सर्वान्तःपातित्वात्प्रतिषेधकोपि नास्तीत्यतस्तदनावात्प्रतिषे धानावोपि च सति परमार्थनूते वस्तुनि माया स्वप्नेंद्रजालादिव्यवस्थान्यथा किमाश्रित्य कोवा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति । अपिच "सर्वानावोयथानीष्टोयुक्त्यनावेन सिध्यति। सास्ति चेत्सैव नस्तत्त्व तत्सिद्धौ सर्ववस्तुस" दित्यादि । यदप्यवयवावयविविनागकल्पनया

द्विपरीतोऽसाधुरपि नास्ति एकस्याप्यनावे द्वितीयस्याप्यनाव· द्वयो· परस्परापेक्षत्वात् । एव संज्ञां न निवेशयेत् । किंतु ? अस्ति साधु संपूर्णगुणसन्नावात् । तथाहि । सम्यग्दृष्टेरर क्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णत· कचिदज्ञानादशुद्ध ग्रहणसंनवेऽप्युपयुक्तस्य संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । तदेव मुक्तिकृते प्रवर्त्तमानस्य साधुत्व इतरस्यासाधुत्व मंतव्यं ॥ २८ ॥ (णत्रिकल्लाणमिति) वांछितार्थप्राप्ति कल्या ण । कल्याणवांश्च कश्चिन्नास्ति सर्वपदार्थानामसारत्वाद्विनश्वरत्वाच्च । पापं पापवान् वा कश्चिन्नास्ति अद्वैतवादिमतेनाऽऽत्मान विना सर्वस्यानावात् एव संज्ञां न कुर्यात् एको तेन सर्वनावानामसारत्वविनश्वरत्वानावादस्ति कल्याणं तद्वांश्च अद्वैतमतस्य मिथ्या त्वात् पाप पापवांश्च विद्यते । अद्वैते हि सुखी दुःखी सुरूपः कुरूपोधनी दरिद्रइत्यादि विश्ववैचित्र्यं न स्यादिति ॥ २९ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सिद्ध· साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षनूतानामसाधूना चास्तित्व प्र तिपिपादयिषु पूर्वपक्षमाह । (णत्रिसाहूअसाहूवाइत्यादि) नास्ति न विद्यते ज्ञानदर्श नचारित्रक्रियोपेतोमोक्षमार्गव्यवस्थितः साधु सपूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्यानावात्तदना वाच्च तत्प्रतिपक्षनूतस्यासाधोरप्यनाव· परस्परापेक्षित्वादेत द्व्यवस्थानस्यैकतरानावे द्वि तीयस्याप्यनावइत्येव सज्ञा नो निवेशयेदपित्वस्ति साधु सिद्ध· प्राक्साधितत्वात् । सि द्धिसत्ता च न साधुमतरेण अत साधुसिद्धिस्तत्प्रतिपक्षनूतस्य वाऽसाधोरिति । यश्च सं पूर्णरत्नत्रयानुष्ठानानाव प्रागाशकित स सिद्धांतानिप्रायमबुध्वैव । तथाहि । सम्यग्दृष्टे रुपयुक्तस्यारक्तद्विष्टस्य सत्सयमवत श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुध्या गृह्णत क चिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसनवेपि सततोपयुक्ततया सपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । य भ नक्ष्यमिदं चानक्ष्यं गम्यमिदं वाऽगम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदंच विपरीतमित्येव रा गद्वेषसनवेन समनावरूपस्य सामायिकस्यानाव केश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजूं ऽपितु प्रधानमोक्षांगस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थमपि चोपकारापकारयो समनावतया सा मायिक न पुनर्नक्ष्यानक्ष्ययो समनावत्वेति ॥ २८ ॥ तदेव मुक्तिमार्गप्रवृत्तस्य सा धुत्वमितरस्य चासाधुत्व प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतो· सन्नाव प्रतिषेधनि षेधद्वारेणाह । (णत्रिकल्लाणपावेवाइत्यादि) यथेष्टार्थफलसंप्राप्ति· कल्याण तन्न विद्य ते सर्वोऽशुचितया निरात्मकत्वात् सर्वपदार्थाना बौद्धानिप्रायेण तथा तदनावे कल्याणवां श्च न कश्चिद्विद्यते तथात्मा नूतवाद्यनिप्रायेण पुरुषएवेद सर्वमितिकृत्वा पापं पापवा न्वा न कश्चिद्विद्यते तदेवमुनयोरप्यनाव । तथा चोक्त । "विद्याविनयसपन्ने ब्राह्मणे गवि

णत्थि वंधेव मोरकेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि वंधेव मोरकेवा, एवं सन्न निवेसए॥ १५॥ णत्थि पुस्रेव पावेवा, णेवं सन्नं निवेस ए॥ अत्थि पुस्रेव पावेवा, एव सन्न निवेसए॥ १६॥

अर्थ–हवे धर्माधर्मेने अस्तिनावें, वंध अने मोक्षनो सन्नाव देखाडेछे प्रकृति, स्थिति, अनुनाग, अने प्रदेशरूप,एवो जे चार प्रकारनो वध, ते पण नथी, तथा मोक्ष पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परतु ए वंध पणछे अने मोक्ष पणछे एवी सज्ञा करवी ॥१५॥ हवे वधना सन्नावें अवश्य पुण्य अने पापनो पण सन्नावछे ते कहेछे पुण्य जे शुन प्रकृतिलक्षण ते पण नथी, तथा पाप जे अशुनप्रकृतिलक्षण ते पण नथी, एवी सज्ञा न करवी, परतु पुण्य पणछे अने पाप पणछे एवी संज्ञा करवी॥ १६॥

॥ दीपिका–(णत्थिवधेऽति) नास्ति वंधोमोक्षोवेति सज्ञां न कुर्यात् बधमोक्षसन्नावमगीकुर्यात्॥ १५॥ (णत्थिपुस्रमिति) नास्ति पुण्यं सत्कर्म, नास्ति पापमसत्कर्म इति नांगीकार्य तयोरस्तित्व मंतव्य॥ १६॥

॥ टीका–सतोश्च धर्माधर्मयोर्वधमोक्षसन्नावइत्येतद्दर्शयितुमाह। (णत्थिबधेवमोरकेवाइत्यादि) वध प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशात्मकतया कर्मपुफलाना जीवेन स्वव्यापारतस्वीकरण। सचामूर्तस्यात्मनोगगनस्येव न विद्यतइत्येव नो संज्ञां निवेशयेत्। तथा तदनावाच्च मोक्षस्याप्यनावइत्येवमपि सज्ञा नो निवेशयेत्। कथर्तार्हे संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति।अस्ति वध कर्मपुफलैर्जीवस्येत्येव सज्ञां निवेशयेदिति। यत्नूच्यते मूर्तस्यामूर्तिमता सवधोन युज्यतइति तदयुक्त। आकाशस्य सर्वव्यापितया पुफलै सबंधोडुर्निवार्य। तदनावे तद्व्यापित्वमेव न स्यादन्यच्चास्य विज्ञानस्य त्द्दत्पूरमदिरादिना विकार समुपलन्यते। नचासौ सवधमृतेऽतोयत्किंचिदेतत। अपिच संसारिणामसुमता सदा तैजसकार्मणशरीरसन्नावादात्यंतिकममूर्त्तत्व न नवतीति। तथा तत्प्रतिपक्षनूतोमोक्षोप्यस्ति तन्नावे वधस्याप्यनाव स्यादित्यतोऽशेषवधनापगमस्वनावोमोक्षोस्तीत्येव सज्ञां निवेशयेदिति ॥१५॥ वधसन्नावें चावश्यं नावी पुण्यपापसन्नावइत्यतस्तन्नाव निषेध द्वारेणाह। (णत्थिपुस्रइत्यादि) नास्ति न विद्यते पुण्यं शुनकर्मप्रकृतिलक्षण तथा पाप तद्विपर्ययलक्षण नास्ति न विद्यते इत्येव नो संज्ञां निवेशयेत्। तदनावप्रतिपत्तिनिबधन त्विदं। तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यपापमेव ह्युत्कर्षावस्थ सत्सुखड खनिबंधन तथा परेषा पाप नास्ति पुण्यमेव ह्यपचीयमान पाप कार्यं कुर्यादित्यन्येषा तूनयमपि नास्ति। ससारवैचित्र्य स्वनावादिकृत तदेतदयुक्त। यत पुण्यपापशब्दौ सबंधिशब्दौ। सबं...

अन्य वचन आश्रि संयम कहेछे. (असेसंअरकयंवावि के०) आ जगत् मांहें समस्त वस्तु जे घटपटादिकछे ते एकांतें नित्य,शाश्वतछे. एवु वचन न बोले, (सवडुकेतिवापुणो के०) तथा वली सर्व जगत् दुःखात्मकज छे, एवु वचन पण न बोले,जे कारण माटे आ जगत् मांहें एकेक जीवनें तो महा सुखछे, एम बोलायछे यत "तणसंथारनिसस्रो, विमुणि वरो नट्टरागमयमोहो ॥ ज पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टिवि" ॥ १ ॥ इति वचनात् । माटें सर्व जगत् दु खीजछे, एवु वचन पण न बोले, (वज्झापाणाअवज्झंति के०) तथा ए चोर छे, ए परदारानो सेवनारछे, माटे ए वध करवा योग्य छे एवु वचन न बोले, अथवा ए अमुक पुरुष अवध्य एटले वध करवा योग्य नथी (इतिवायंननीसरे के०) एवु वचन पण न बोले, कारणके, एम बोलतां तेना कर्मनी अनुमोदना लागे ए रीतें सिंह, व्याघ्र, मार्जारादिक हिंसक जीव देखीनें, चारित्रिउं मध्य स्थ पणुं अवलंबन करे इत्यर्थ ॥ ३० ॥ हवे वली बीजो, वचननो प्रकार, मनसुधी आश्रि देखाडिये छैये. (दीसंतिसमयाचारा के०) आ जगत् माहें कोइ एक चारित्रिया एवा देखायछे. के, समयाचारा एटले सिद्धांतोक्त आचारनें विषे प्रवर्त्तमान, तथा (निरकुणासाहुजीविणो के०) निरकुणा एटले दोषरहित एवा आहारना गवेषण हार, तथा साधुजीवि एटले पोताना आचार पालवा सारु जीवे छे, तथा क्षांत, जितेंद्रिय, जितक्रोध, दृढव्रतवान्, धुसर प्रमाण दृष्टियें मार्गना शोधनार, प्रासुक उदकना पान करनार, मौनी,छजीवनिकायना रक्षण करनार, किं बहुना सराग छे, तो पण वीतरागनी पेठें रहेछे, एवा साधु देखीने (एएमिछोवजीवंति के०) ए मिथ्यात्वोपजीवि बाह्य वृत्तिये करी लोकोनें वचेछे (इतिदिठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एतावता एवो भाव मनमाहें चिंतवे नहीं, वचनथकी कहे नहीं, किं बहुना. स्वतीर्थिक परतीर्थिकने एवु वचन कहे नहीं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका-(कल्लाणेपावेति) सर्वथाऽयंकल्याणवानय सर्वथा पापवान् एवमेकांते व्यवहारो न विद्यते । एकांतपक्षाश्रयणेन यद्वर कर्मबंधस्तत् श्रमणा शाक्यादयोबाला· पंडितमानिन शुष्कतर्कदर्पोन्मत्तान जानंति ॥ ३० ॥ (असेसमिति) अशेषं सर्वं वस्तु सांख्यानिप्रायेणाक्षतं नित्यं इति न ब्रूयात् । अपिशब्दादनित्यमपि न वदेत् । तथा सर्वं जगद्दु खात्मकमित्यपि न वदेत् चारित्रादिपरिणते सुखस्यापि दर्शनात् । यडुक्तं । "तणसंथारनिसन्नो, विमुणिवरोनट्टरागमयमोहो ॥ ज पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीत्रि" ॥ १ ॥ चोरपारदारिकादयोवध्याअवध्यावा इति न वदेत् । तथा चोक्त । "मार्जार व्याघ्रसिंहादीन् सत्वव्यापादनोद्यतान्॥ दृष्ट्वा स्वार्थपर. साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबत"इति॥१॥

अथसंवरौ तत्प्रतिपेधद्वारेण दर्शयितुकामआह। (णत्थिआसवेसंवरेवेत्यादि) आश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपआश्रव कर्मोपादानकारण तथा तन्निरोध संवर एतौ द्वावपि न स्तइत्येव संज्ञां नो निवेशयेत्तदभावप्रतिपत्त्या शंकाकारणमिदं कायवाङ्मन कर्मयोग स आश्रवइति यथेदमुक्त तथेदमप्युक्तमेव। (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबधो न भवतीति युक्तिरपि। किमयमाश्रवआत्मनोभिन्नउताऽभिन्न. । यदि भिन्नोनामासावाश्रवोघटादिवदभेदेपि नाश्रवत्व सिद्धात्मनामपि आश्रवप्रसंगात्तदभावेच तन्निरोधलक्षणस्य सवरस्याप्यभाव सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात्। यतोयत्तदनेकांतिकत्व कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्त तदस्माकमपि समतमेव। यतोयमस्माभिरप्युपयुक्तकर्मबधोभ्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबधस्तथा भेदाभेदोभयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषाभावइत्यस्त्याश्रवसद्भावस्तन्निरोधश्च सवरइति। उक्तच। "योग शुद्ध' पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यास ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रव सवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा सवरश्चेत्येव सज्ञा निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ आश्रवसवरसद्भावे चावश्यं भावी वेदनानिर्जरासद्भावइत्यतस्त प्रतिपेधनिपेधद्वारेणाह। (णत्थिवेयणेत्यादि) वेदना कर्मानुभवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुद्गलशाटनलक्षणा। एते द्वे अपि न विद्येते इत्येव नो सज्ञा निवेशयेत्। तदभाव प्रत्यागकाकारणमिदं। तद्यथा। पल्योपमसागरोपमशतानुभवनीय कर्मांतर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यभ्युपगमात्। तदुक्त। "ज अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाइ,वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहिं गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेण" इत्यादि। तथा क्षपकश्रेण्या च,झटित्येव कर्मणोभस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुभवनाभावे वेदनायाअभावस्तदभावाच्च, निर्जरायाअपीत्येव नो संज्ञा निवेशयेत्। किमिति। यत कस्यचिदेव कर्मणएवमनतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुभवेन चापरस्य तूदयोदीरणाभ्यामनुभवनमित्यतोस्ति वेदना। यतआगमोप्येवभूतएव। तद्यथा। "पुव्विंडच्चिन्नाण, डुप्पडिकताणकम्माण॥ वेइत्ता मोरको णत्थि अवेइत्ताइत्यादिवेदना सिद्धा च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येव सज्ञा निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णत्थि किरिया अकिरियावा, णेव सन्नं निवेसए॥ अत्थि किरिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव माणेवा, णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ २० ॥

अर्थ–हवे वेदना, अने निर्जरा, ए बन्ने क्रिया अने अक्रियाना आयतछे. माटे तेनो सद्भाव देखाडेछे क्रिया एटले करवु,अने जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी एवी

तोरन्यानपेक्षणादिति । तथा सर्वं जगदु खात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात्सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् ।तथा चोक्तं । "तणसंथारनिसण्णो, विमुणिवरो नट्ठरा गमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि" ॥१॥ तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्यावा तत्कर्मानुमतिप्रसंगादित्येवभूता वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधु परव्यापारनिरपेक्षोन विसृजेत् । तथाहि । सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलंबयेत् । तथा चोक्त । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यादीनि सत्वगुणाधिक क्लिश्यमानविनयेष्विति । एवमन्योपि वाक्संयमोऽभ्यूह्य । तद्यथा । अमी गवादयोवाह्या न वाह्यास्तथामी वृक्षादयश्छेद्या न छेद्यावेत्यादिकं वचोन वाच्यं साधुनेति ॥३०॥ अयम परोवाक्संयमप्रकारोऽत करणशुद्धिसमाश्रित्त प्रदर्श्यते । (दीसंतीत्यादि) दृश्यंते समुपलभ्यंते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृत संयतश्चात्मा येषा ते निभृतात्मान । क्वचित्पाठ (समियाचारत्ति) सम्यक् स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीतश्चाचारोऽनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचारा सम्यग्वा इतोव्यवस्थितश्चाचारोयेषा ते समिताचारा । के ते ? । भिक्षणशीलाभिक्षवोभिक्षामात्रवृत्तय । तथा साधुना विधिना जीवितु शीलं येषां ते साधुजीविन. । तथाहि । ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवत्ति तथा क्षांतादांताजितक्रोधाः सत्यसंधादृढव्रतायुगांतरमात्रदृष्टय परिपूतोदकपायिनोमौनिनस्सदा तायिनोविविक्तैकांतध्यानाभ्यासिनोकौकुच्यास्तानेवभूतानवधार्यापि सरागाअपि वीतरागाइव चेष्टते इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविनइत्येव दृष्टिं न धारयेन्नैवभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येव भूतां वाच निसृजेद्यथेते मिथ्योपचारप्रवृत्तामायाविनइति । छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवभूतस्य निश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्राय । तेच स्वयूथ्यावा भवेयुस्तीर्थांतरीयावा ताबुभावपि न वक्तव्यौ साधुना । यतउक्त । "यावत्परगुणपरदो,षकीर्तने व्यापृतं मनोभवति ॥ तावद्वर विशुद्धे, ध्याने व्यग्र मन कर्तुं"मित्यादि ॥ ३१ ॥

दक्खिणाए पडिलंभो, अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरेज्ज मेहावी, संतिमग्गं च बूहए ॥३२॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिट्ठेहिं संजए ॥ धारयतेउ अप्पाणं, आमोक्खाए परिवएज्जासित्तिबेमि॥३३॥
इति बीयसुयक्खधस्स अणायारणाम पंचमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—वली आचार देखाडेछे (दक्खिणा के०) दान-तेनो प्रतिलंभ एटले, गृहस्थे दान देवु; लेनारे दान लेवु. एवो व्यापार प्रवर्त्तमान देखी, अस्ति, अथवा नास्ति, एटले गुण, दूषण काइ पण कहे नहीं. (पुणो के०) असंयमनी अनुमोदन अने दूषण केता

त्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्यिकोहेवमाणेवेत्यादि) स्वपरात्मनोरप्रीतिलक्षण क्रोध ॥ सचानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते । तथैतावद्भेदएव मानोगर्व । एतौ द्वावपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । क्रोध केषांचिन्मतेन मानांशएवानिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यंतक्रोधोदयदर्शनात् क्षपकश्रेण्या च भेदेन क्षपणानन्युपगमात् । तथा किमयमात्मधर्मआहोस्वित्कर्मणउतान्यस्येति । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगोऽथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तडुदयप्रसंगान्मूर्तत्वाच्च कर्मणोहि घटस्येव तदाकारोपलब्धि स्यादन्यधर्मत्वे त्वकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधइत्येव मानाभावोपि वाच्य इत्येव संज्ञा नो निवेशयेत् । यत । कषाय कर्मोदयवर्ती दृष्टोष्ट कृतभ्रुकुटीभंगोरक्तवदनोगलत्स्वेदविंडुसमाकुल क्रोधाध्मात समुपलभ्यते न चासौ मानांशस्तत्कार्याकरणात्तथा परनिमित्तोत्थापितत्वाच्चेति तथा जीवधर्मकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मस्तत्धर्मत्वेनच प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिरनभ्युपगमात्संसार्यात्मना कर्मणा सार्द्धं पृथग्भवनाभावाच्चडुभयस्यच न नरसिंहवद्वस्त्वंतरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधोमानश्चेत्येव संज्ञा निवेशयेत् ॥ २० ॥

णत्थि माया व लोभेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि माया व लोभेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २१ ॥ णत्थि पेज्जेव दोसेवा, णेवं सन्न निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा, एवं सन्न निवेसए ॥ २२ ॥

अर्थ–हवे माया अनें लोभनो सद्भाव देखाडेछे, जे परवचनरूप ते माया, अने जे सन्निधि संचयरूप ते लोभ, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु माया पणछे, अने लोभ पणछे एवी संज्ञा करवी ॥ २१ ॥ हवे क्रोधादिक जेछे, तेनो संक्षेप थकी सद्भाव कहेछे. प्रेम एटले प्रीतिलक्षण पुत्र, कलत्र, धन, धान्यादिक, विषेरागता ते राग, तथा अप्रीतिलक्षण ते द्वेष, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी, परतु राग पणछे, अने द्वेष पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २२ ॥

॥ दीपिका (णत्थिमायेवेति) मायालोभौ न स्त इति संज्ञा न निवेशयेत् मायालोभयोर्निबंध पूर्ववत् । प्रत्यक्षदृश्यत्वान्मायालोभौ स्तइति संज्ञा निवेशयेत् ॥ २१ ॥ (णत्थिपेज्जेवेति) प्रीति प्रेम पुत्रकलत्रधनादिषु रागस्तद्विपरीतोद्वेषस्तौ न स्त. । यतोमायालोभावेव राग. क्रोधमानावेव द्वेषस्ताभ्यां रागद्वेषौ न स्त अस्ति प्रेमद्वेषोप्यस्तीति संज्ञा कुर्यात यस्माद्रागोवयवी मायालोभौ अवयवो तथा द्वेषोऽवयवी क्रोधमानौ अवयवौ अवयवीच अवयवेभ्य कथंचिद्भिन्नोऽभिन्नश्च तस्मान्मायालोभश्च प्रेमद्वेषश्च कथंचिदस्ति

ण वयणाणं जो नयाणइविसेसमित्यादिस्थानैरात्मान वर्तयान्नामोक्षायाशेषकर्मक्षया थे मोक्षं यावत्परिसमताात्सयमानुष्ठाने व्रजेत्गच्छेस्त्वमिति विधेयस्योपदेशः। इति परिस माप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयाश्चनिर्हिताश्चनिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥ समाप्तमनाचारश्रुताख्य पंचममध्ययनमिति ॥

॥ हवे छठुं अध्ययन प्रारंनिये छैये ॥

पांचमा अध्ययनने विषे आचारनी आचरणा करवी, अने अनाचारनी परिहरणा ए टले अनाचारनो त्याग करवो एम कह्यु हवे ते प्रमाणें जे महानाग्यवान् पुरुषथी करा यछे, ते आर्द्रकुमारना दृष्टांतनी पेठें देखाडेछे. जेम आर्द्रकुमारनो गोशालक साथे वाद थयो, ते रीतेंज आ छठा अध्ययनमा कहेछे प्रत्येक बुद्ध आर्द्रकुमार, एकदा प्रस्तावें श्री महावीरदेवनी पासे आवता अतरालें गोशालके बोलाव्यो. ते कथा कहेछे.—

पुराकडं अद्द इम सुणेह, मेगतयारी समणे पुरासी ॥ से भिक्खु
णो उवणेत्ता अणेगे, आइक्खतिण्हिं पुढोविछिरेण ॥ १ ॥ साजी
वियापठविता थिरेणं, सन्नागर्ठ गणर्ठ भिक्खुमझे ॥ आइक्ख
माणो बहुजन्नमत्थं, नसधयाती अवरेण पुव्व ॥ २ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमारनें गोशालक बोलावीने कहेछे के, (अद्दइमंसुणेह के०) हो आर्द्रकुमार! जे हुं कहुछु ते तु सानल (पुराकड के०) परापूर्वे जे जे आ ताहारे ती र्थकरें कर्युछे, ते हु कहुछु ते सानल. ते शु कर्युछे? तोके, (मेगतयारीसमणेपुरासी के०) ए श्रमण नगवत महावीर पूर्वे प्रथम एकातचारी विहार करता हता एटले एकांतें लोक रहित एवा प्रदेशें विचरता हता, अने अनेक प्रकारनां उग्रतप करता हता, ते हमणां उग्रतप आचरवा थकी नग थया थका सुजनें छोडीने एटले महारो परित्याग करीने, (सेभिक्खुणोउवणेत्ताअणेगे के०) ते साधु शिष्यो एकठा करीने अनेक देव, देवी, मनुष्य, अने स्त्रीना वृंद मांहे बेठा थका धर्म कहेछे (आइक्खतिण्हिंपुढोविछिरेण के०) तथा घणा शिष्य एकठा करी, तमारा जेवा मुग्ध जनने विप्रतारवा माटे पृथक् पृथक् जुदा जुदा विस्तारे करी धर्म कहेछे ॥ १ ॥ वली गोशालक कहेछे के, (साजीवियापठवितायिरेण के०) अहो आर्द्रकुमार! ताहारे गुरुयें घणा लोक मांहे बेशी धर्म देशनाने मिशें आजीविका मामीछे, केमके, एकाकी विचरतां लोक परानव करेछे, एवु

॥ टीका सांप्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽयं चातुरंतसंसारस्तद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण प्रतिपादयितुमाह । (णत्थि चाउरंते इत्यादि) चत्वारोऽन्ता नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणायस्य संसारस्यासौ चतुरंत संसारस्तु भावागोनेकत्वात् । तच्च चतुर्विधोपि न विद्यते अपितु सर्वेषां समुन्निरयत्वात्कर्मबंधात्मकत्वात् एकहेतुत्वादथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखदुःखोपेतया तद्व्यवस्थानाद्द्विविध संसार पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधोऽनन्तभावात्तस्मै न कथंचिद्घटतइत्येव संज्ञां नो निवेशयेदपितु अस्ति चतुरंत संसारइत्येव संज्ञां निवेशयेत् । यत्तूक्तमेकविध संसारस्तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेद समुपलभ्यते न चासावेकविधत्वे संसारस्य घटते । तथा तत्रानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमात् द्वैविध्यमपि न विद्यते । तत्रवानुमानंतु पुण्यपापयो प्रकृष्टफलभुजस्तत्सम्भवाज्जां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनादतः सत्राव्यते प्रकृष्टफलभुजोन्यतिमी च प्रत्यक्षेणादर्शनादथ तद्विमानानामुपलंभएवमपि तदविघातृनि केश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन गम्यते । ग्रहगृहीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमानमिति तदस्तित्वेनु प्रकृष्टपुण्यफलभुजइव प्रकृष्टपापफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं । संसारस्य पर्यायनयाश्रयणेनु यदनेकविधत्वमुच्यते तदयुक्तं । यत सप्तपृथिव्याश्रिताअपि नारका समानजातीयाश्रयणादेकप्रकाराएव तथा तिर्यंचोपि पृथिव्यादय स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्च द्विभेदयोनिकप्रमाणा सर्वेप्येकविधाएव । तथा मनुष्याअपि कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजान्तरद्वीपजसंमूर्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनवाश्रितास्तथा देवाअपि भवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन भिन्नाएकविधत्वेनैव गृहीतास्तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्य संसारस्य व्यवस्थित नैकविधत्व संसारवैचित्र्यदर्शनान्नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्वजात्यनतिक्रमादिति ॥ २२ ॥ २४ ॥

णत्थि सिद्धी असिद्धीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी असिद्धीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे संसारनें सद्भावें सिद्धिनो सद्भाव देखाडेछे समस्तकर्मक्षयरूप लक्षण सिद्धि जाणवी अने तेथकी विपरीत ते असिद्धि जाणवी. ए बेहु नथी एवी संज्ञा न करे, परंतु सिद्धि पणछे. अने असिद्धि पणछे. एवी संज्ञा पोताना चित्तने विषे स्थापन करे ॥२५॥हवे सिद्धिना स्थानकनो सद्भाव कहेछे. समस्तकर्मक्षयलक्षण जे सिद्धि तेनुं (निजे

गरे श्रेणिकस्य राज्ञ स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयत्यार्द्रककुमारेणासौ पृष्टोयथा कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यंतीत्यसावक थयद्यथार्यदेशे तव पितु परममित्रश्रेणिकोमहाराजा तस्यैतानीत्यार्द्रककुमारेणाप्य नाणि किं तस्यास्ति कश्चियोग्य पुत्रोस्तीत्याह। यद्येव मत्प्रहितानि प्राभृतानि नवता त स्य समर्पणीयानीति नणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्यानिहितं वक्तव्योसौ मद्वच नायथार्द्रककुमारस्त्वयि स्निह्यतीति सच महत्तमोगृहीतोनयप्राभृतोराजगृहमगाजत्वा च राजद्वारपालनिवेदितोराजकुल प्रविष्टो दृष्टश्च श्रेणिक प्रणामपूर्वं निवेदितानि प्राभृतानि कथितं च यथासदिष्ट। तेनाप्यासनाशनतांबूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानितोद्वितीये चान्ह्यार्द्रककुमारसत्कानि प्राभृतान्यजयकुमारस्य समार्पितानि कथिता निच तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्सदिष्टवचनान्यजयकुमारेणापि परिणामिक्यबुद्ध्या परिणामि तं नूनमसौ नव्य समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिछतीति। तदिदमत्र प्रा प्तकाल यदादितीर्थकरप्रतिकरप्रतिमास दर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियतइतिमत्वा तथैव कृ त महार्हाणिच प्रेषितानि प्राभृतानीति। उक्तश्च। महत्तमोयथा मत्प्रहितप्राभृतमेतदेका ते निरूपणीय तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावार्द्रकपुर समर्पितं च प्राभृतं राज्ञोद्वि तीये चान्ह्यार्द्रककुमारस्येति कथितंच यथासदिष्टं तेनाप्येकाते स्थित्वा निरुपिता प्रतिमा ताच निरूपयतऊहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं चिंतितंच तेन यथा ममाज यकुमारेण महानुपकारोऽकारि सद्धर्मप्रतिबोधतइति। ततोसावार्द्रक संजातजातिस्मरणो चिंतयद्यस्य मम देवलोकनोगैर्यथेप्सित संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत्तस्यामीभिस्तुच्छैर्मानुषै. स्व ल्पकालीनं कामनोगैस्तृप्तिर्नविष्यतीति कुतस्त्यमित्येतत्परिगणय्य निर्विण्णकामनोगो यथोचितनोगमकुर्वन राज्ञा तज्जातनयेन मा क्वचिद्यायास्यत पंचभि शतैराजपुत्राणां र क्षयितुमारेने। श्रार्द्रककुमारोऽप्यश्ववाहनिकया विनिर्गत प्रधानाश्वेन प्रपलायित तत श्च प्रव्रज्या गृह्णन् देवतया सोपसर्ग नवतोद्यापि नणित्वा निवारितोप्यसावार्द्रकोराज्यं तावन्न करोति कोन्योमा विहाय प्रव्रज्या ग्रहीष्यतीत्यभिसधाय तां देवतामवगणय्य प्रव्रजितोविहरन्नन्यदान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्न कायोत्सर्गव्यवस्थितोवसतपुरे तया देवलो काच्च्युतया श्रेष्ठिदुहित्रा परदारिकामध्यगतया रमत्येषमम नर्त्तेत्येवमुक्ते सत्यनंतरमे व तत्सन्निहितदेवतार्द्धत्रयोदशकोटिपरिमाणा शोनन वृतमनयेति नणित्वा हिरण्य वृष्टिर्मुक्ता ताच हिरण्यवृष्टिं राजा गृह्णन् देवतया सर्पाद्युत्थानतोविधृतोऽनिहितं च तया यथैतद्धिरण्यं जातमस्यादारिकाया नान्यस्य कस्यचिदित्यतस्तत्पित्रा सर्वं सगो पितमार्द्रककुमारोप्यनुकूलोपसर्गइतिमत्वाऽश्वेनान्यत्र गतोगछतिच। काले दारिकाया वरका समागछति पृष्टोच पितरौ तया किमेषामागमनप्रयोजन? कथितंच ताभ्या यथैते

ताश्रव द्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंश दोषरहितनिद्धानुजईर्यासमितस्य कदाचिद्रव्यत प्राणिव्यपरोपणेपि तत्कृतवधाभाव सर्वे था तस्यानवद्यत्वात् । तथाचोक्त । उच्चालियंमिपाए, इत्यपि प्रतीतं तदेव कर्मबंधाभावात्सि द्धेः सद्भावोव्याहत सामर्थ्यभावादसिद्धिसद्भावोपीति ॥ २५॥ साप्रत सिद्धानां स्थाननिरूप णायाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धेरशेषकर्मच्युतिलक्षणायानिज स्थानमीषत्प्राग्भारा ख्यं व्यवहारतोनिश्चयतस्तु तदुपरि योजनक्रोशषड्भागस्तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्स ना स्तीत्येव संज्ञा नो निवेशयेत् । यतोबाधकप्रमाणाभावात्साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्स त्ता दुर्निवारेति । अपिचापगताशेषकल्मषाणां सिद्धाना केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन भा व्यं तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभूत द्रष्टव्यं । नच शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्या पिन सिद्धाइति यतोलोकालोकव्याप्याकाश । न चालोके परद्रव्यस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्ते । तथाहि । सिद्धावस्थाया तेरा व्यापित्व मभ्युपगतमुतप्रागपि न तावत्सिद्धावस्थाया त द्व्यापित्वभवने निमित्ताभावान्नापि प्रागव स्थाया तद्भावे सर्वससारिणां प्रतिनियतसुखदु खानुभवोन स्यान्नच शरीराद्बहिरवस्थित मवस्थानमस्ति । ततस्तानिबधनप्रमाणस्याभावादत सर्वव्यापित्व विचार्यमाण न कथ चिद्घटते तदभावे च लोकाग्रमेव सिद्धाना स्थान तद्गतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्व गतिरिति। तथाचोक्तं । "लाउ एरडफले,अग्गीधूमे उसूधणुविमुक्के ॥ गइ पुव्वपउगेण,एव सिद्धाणविग ईउ" इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निज स्थानमित्येव सज्ञा निवेशयेदिति॥२६॥

णत्थि साहू असाहूवा,णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहू
वा, एवं सन्न निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा, णेवं सन्न
निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा, एव सन्न निवेसए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे सिद्धिना साधनारा साधुओछे. तेनो सद्भाव कहेछे ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्ररूप रत्नत्रयने साधे,ते साधु जाणवा, ते पण नथी, तथा ए थकी विपरीत ते अ साधु जाणवा, ते पण नथी एवी संज्ञा न करवी, परतु साधु पणछे, अने असाधु प णछे, एवी सज्ञा करवी ॥ २७ ॥ हवे सामान्य प्रकारे कल्याण अनें पापनो सद्भाव देखाडेछे. मनोवांछित अर्थनी प्राप्तिनुं करनारु एवु कल्याण, ते पण नथी तथा ते थकी विपरीत जे पाप, ते पण नथी एवी सज्ञा न करे, किंतु? कल्याण पणछे, अने पाप पणछे एवी सज्ञा करे ॥२८॥

॥ दीपिका–(णत्थिसाहू इति) नास्ति साधुर्मुनि. सपूर्णचारित्रगुणाभावात् तदभावे त

दिश्यते तंच राजपुत्रकमार्द्रककुमारं प्रत्येकबुद्धं नगवत्समीपमागछंत गोशालकोब्रवीद्यथा हे आर्द्रक! यदहं ब्रवीमि तछृणु। पुरा पूर्वं यदनेन नगवत्तीर्थकृता कृतं तच्चेदमिति दर्शयति। एकांते जनरहिते प्रदेशे चरितु शीलमस्य येत्येकांतचारी तथा श्राम्यतीति श्रमणः पुरासीत्तप श्चरणोद्युक्तः सांप्रतं तूग्रैस्तपश्चरणविशेषैर्निर्नर्त्सितोमां विहाय देवादिमध्यगतोसौ धर्मं किल कथयति तथा निक्षून् बहूनुपनीय प्रनूतशिष्यपरिकरं कृत्वा नवद्विधानां मुग्धजनानामिदानीं पृथक् पृथग्विस्तरेणाचष्टे धर्ममिति शेषः ॥१॥ पुनरपि गोशालकएव (साजीविए) इत्याद्याह येष बहुजनमध्यगतेन धर्मदेशना मुष्मत्करुणारब्धा सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता प्रस्थापिता एकाकी विहरन्लौकिकैः परिनूयतइतिमत्वा लोकपंक्तिनिमित्तं महान् परिकरः कृतः। तथाचोच्यते। "छत्र, गाव, पात्रं, वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निक्षुः॥ वेषेण परिकरेणच, कियतापि विना न निक्षापि" ॥ तदनेन दंनप्रदानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेनास्थिरेण पूर्वं ह्यय मया सार्द्धमेकाक्यंतप्रांताशनेन शून्यारामदेवकुलादौ वृत्तिं कल्पितवान्न च तथानूतमनुष्ठानं सिकताकवलवन्निरास्वादं यावज्जीवं कर्तुमलमतोमां विहायाप बहून् शिष्यान् प्रतार्यैवनूतेन स्फुटाटोपेन विहरतीत्यतः कर्तव्ये स्थिरश्चपलः पूर्वचर्यापरित्यागेनापरकल्पसमाश्रयात्। एतदेव दर्शयति। सन्नाया गत सखेवमनुजपर्षदि व्यवस्थितो (गणरोत्ति) गणशोबहुशोऽनेकशइति यावत् निक्षूणां मध्ये गतोव्यवस्थितश्चाचक्षाणोबहुजनेन्योहितोबहुजन्योर्थस्तमर्थं बहुजनहितं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न सधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयं सिंहासनाशोकवृक्षनामंडलचामरादिकं मोक्षागमनविघ्नततोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुला तेन कृता सा क्लेशाय केवलमस्येत्यथ कर्मनिर्जरणहेतुका परमार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वादंजकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति ॥ २ ॥

एगंतमेवं अडवा विइपिंह, दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पु
वि च इपिंह च अणागतं वा, एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ स
मिच्च लोगं तसथावराणं, खेमकरे समणे माहणे वा ॥ आइ
क्खमाणोवि सहस्समन्ने, एगंतयं सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥

अर्थ—वली गोशालक कहेछे. के, अहो आर्द्रकुमार! (एगतमेव के०) जो एकांत विचरवुं रूडुंछे, एवुं जाणीनें ताहरे गुरुयें आदस्युं हतुं, तो सदैव तेनोज अंगीकार करवो हतो, (अडवाविइपिंह के०) अथवा हमणां अनेक साधुना परिवारे परव

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः "समदर्शिन" इत्येवमेव कल्याणपापकाजावरूपां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येव संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । नैकांतेन कल्याणाजावोयोवौद्धैरनिहितः सर्वपदार्थानामशुचित्वासंनवात्सर्वाऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेर्नापि निरात्मनः स्वद्रव्यक्षेत्र कालजावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परद्रव्यादिनिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा चेतनावानावात्पापाजावोपि नास्त्यचेतनावेहि सुखी डुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्नगः सुजगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगवैचित्र्यजावोऽध्यक्षसिद्धोपि न स्यात् । यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्य । न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यजावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति । तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पचेंद्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकांतेन तेऽपि पापवतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमिति स्थितं ॥ २८ ॥

कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ॥जं वेरं तं न जाणंति, समणा बालपंमिया ॥२९॥ असेसं अक्खयं वावि, सवडुक्खेति वा पुणो ॥ वज्ञा पाणा न वज्ञति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा, निक्कुणो साढुजीविणो ॥ एए मिबोवजीवंति, इति दिट्ठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीने, एकांत मार्गनें, दूषवेढे ए पुरुष एकांतें कल्याणवंतज ढे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज ढे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ जगत् माहें एकांत कांहीज नथी ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय, परंतु ते अत्यावस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परिणामविशेषें सङ्गतिगामी थाय ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणढे एम न जाणे, ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख, अनें पंमित एटले पंमितपणाना अनिमानी होय ते न जाणे ते शायकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थनूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणे ते निरंतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थ ॥ २९ ॥ हवे

नालजाप यस्मादेव तस्मात्पूर्वापरविरोध । एव गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमार श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं यदेकत्व मौनव्रतिकत्व च नगवत तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मच तुष्टयक्षयार्थं साम्प्रत बहुपरिवारस्य यद्धर्मदेशकत्व तच्छेपकर्मक्षयाय तीर्थकृन्नाम कर्म वेदनार्थंच तत पूर्वमिदानीमनागतेच काले रागद्वेपरहितत्वादेकत्वनावनया एकत्व मेव धर्मं कथयन् प्रतिसदधाति न तस्य पूर्वापरविरोधोस्ति आशंसारहितत्वात् ॥ ३ ॥ लानार्थं देशना करोतीत्याह । समेत्य लोक यथावस्थित ज्ञात्वा त्रसस्थावराणां क्षेमक रोरक्षक श्रमणो द्वादशधा तप प्रवृत्त माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनोब्राह्मणोवा समतया धर्ममाचक्षाणोपि मौनी च वाक्सयतएव तथा सहस्राणा मध्ये स्थितोपि एकांतमेव सा रयति साधयति तस्मात्तथार्च तथैव प्राग्वदर्चा लेश्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीर तच्च प्राग्वदस्य स तथार्चस्तथाह्यशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरसस्काराय यत्न विदधाति सहि नगवानात्यंतिकप्रहाणादेकाकी जनपरिवृ तोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयो कश्चिद्विशेपोस्ति रागद्वेपमुक्तत्वात्पूर्वं पश्चाच्च तुल्याश यऽत्यर्थ । यदुक्त । “रागद्वेषौ विनिर्जित्य, किमरण्ये करिष्यसि ॥ अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसी”ति ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपिच (एगतमित्यादि) यद्येकातचारित्रमेव शोनन पूर्वमाश्रितत्वात्त त सर्वदान्यनिरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यमथचेद् साम्प्रत महापरिवारवृत साधु मन्यसे ततस्तदे वादावप्याचरणीयमासीदपिच द्वे अप्येते छायातपवदत्यत्तविरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवा यं गच्छतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्तत किमिय महता प्रबधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्म स्तत किमिति पूर्वं मौनव्रतमालवाप यस्मादेव तस्मात्पूर्वोत्तरव्याहृति । तदेव गोशालकेन पर्यनुयुक्तआर्द्रककुमार श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं पूर्वस्मिन्काले यन्मौनव्रतिकत्व या चैकचर्या तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं । साम्प्रत यन्महा जनपरिवृतस्य धर्मदेशनाविधान तत्प्राग्बद्धनवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षपणोद्यतस्य विशे पतस्तीर्थकरनाम्नोवेदनार्थमपरासा चोच्चैर्गोत्रशुनायुर्नामादीना शुनप्रकृतीनामिति । यदिवा पूर्वं साम्प्रतमनागते च काले रागद्वेपरहितत्वादेकत्वनावनानतिक्रमणाच्चैकत्वमेवा नुपचरित नगवानशेपजनहित धर्मं कथयन् प्रतिसदधाति न तस्य पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरा शसारहितत्वाद्भेदोऽस्त्यतोयदुच्यते नवता पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरसागत्य तत् ह्वतइति ॥३॥ एतद्धर्मदेशनया प्राणिना कश्चिदुपकारोनवत्युत नेति [illegible] तीत्याह । (समिच्चलोगमित्या [illegible]) सम्यग्यथावस्थित लोक पड्द्रव्यात्म[illegible] [illegible]त्याह ! (समिच्चलोगमित्या

[illegible]नामकर्म [illegible] दीडियादयस्त[illegible]

१५१ पृथिव्यादयस्तेपामुत्नयेपामपि

एवमन्योपि वाक्संयमोक्तिय । यथाऽसौ कुतीर्थिकोबाल किमपि न वेत्ति इत्यादिका पर स्याप्रीतिकारिणी नाषा न विसृजेत् ॥ यदुक्त। "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवाप रो ॥ सवसो तं ण नासिज्जा, नासं अहियगामिणी" इति ॥३१॥ (दीसंतित्ति) दृश्यते स मिताचारा· शास्त्रोक्ताचारपरानिक्षवोनिक्षामात्रवृत्तय· साधुना विधिना जीवतीति साधु जीविन । तथाहि । क्षातादांताजितेंद्रियाजितकपायास्तापिनस्तानेवनूतान् मत्वापि एते मिथ्योपजीविनइति दृष्टि न धारयेत् नैवमनिप्रायं कुर्यात् नाप्येव वदेत् यथा मिथ्योप चारप्रवृत्तमायाविनएते इति । छद्मस्थेन हि एवनूतनिश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादिति नाव । तेच स्वयूथ्यावा नवेयुस्तीर्थांतरीयावा उनावपि न वक्तव्यौ साधुना । यदुक्तं ।"यावत्प रगुणपरदो,पकीर्तने व्याप्टतं मनोनवति । तावद्दर विशुद्धे,ध्याने व्यग्र मन कर्तुं॥१॥३२॥

॥ टीका–तदेव कल्याणपापयोरनेकांतरूपत्वं प्रसाध्यैकांतं दूपयितुमाह (कल्लाणेपा वएइत्यादि) कल्यं सुखमारोग्यं शोननत्व वा तदणतीति कल्याण तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थौ याच्प्रत्ययातोऽर्शआदिन्योजित्यनेन । कल्याणवानिति यावत् । पापकशब्दोपि मत्व र्थी याच्प्रत्ययांतोद्रष्टव्य । तदेव सर्वथा कल्याणवानेवाय तथा पापवानेवायमित्येवनूतो व्यवहारोन विद्यते तदेकांतनूतस्यार्थस्यैवानावात्तदनावस्यच सर्ववस्तूनामनेकांताश्रयणेन प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहारानावाश्रयण सर्वत्र प्रागपि योजनीयं । तद्यथा । सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्तिवा सर्वत्र वीर्यमित्येवनूतएकांतिकोव्यवहारोन विद्यते। तथा नास्ति लोकोऽलोकोवा तथा संति जीवाअजीवाइति वेत्येवनूतोव्यवहारोन विद्यतइति सर्वत्र संबंधनीयं । तथा वेरं वज्जं तद्दत्कर्म वैरं विरोधोवा वैर तद्येन परोपतापादिनैकांतपक्षस माश्रयणेन वा नवति।तत्ते श्रमणास्तीर्थिकावालाइव बालारागद्वेपकलिता पण्डिता पण्डि तानिमानिन· शुष्कतर्कदर्पाध्मातान जानंति परमार्थनूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्यानेकांतपक्षस्यवा नाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणावाला पण्डितावान जानतीत्ये व वाच न निसृजेदित्युत्तरेण संबध· । किमिति न निसृजेद्यतस्ते किंचिज्ज्ञानंत्येवापिच ते पां तन्निमित्तकोपोत्पत्ते । यच्चैवनूतं वचस्तन्न वाच्य । यतउक्तं । "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवा परो ॥ सवसो तण नासेज्जा नास अहियगामिणि' मित्यादि ॥ ३० ॥ अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह । (असेसमित्यादि) अशेषं कृत्स्न तत्सांख्यानिप्राये ण कृत नित्यमित्येव न ब्रूयात् । प्रत्यर्थं प्रतिसमय चान्यथान्यथा नावदर्शनात्तथा प्रदर्श यमित्येवनूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यनिज्ञानस्य लूनं पुनर्जातेपु केशनखादिप्वपि प्रदर्श नात्तथापि शब्दादेकांतेन क्षणिकमित्येवमपि वाच न निसृजेत्सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वाडुत्तरस्य निर्हेतुकउत्पाद· स्यात्तथाच सति नित्य सत्वमसत्ववा हे

कहे, तथा (संवरेय के०) पांच संवर ते सत्तरभेद युक्त संवर ते कहे, (विरतिंइह के०) पछी विरतिनो उपदेश ते सवरना धरनारने कहे, वली इह एटले आ प्रवचनने विषे (सामणियं मिपन्ने के०) संपूर्ण संयमने विषे मूलगुण,ते पांच महाव्रतरूप तथा उत्तरगुण,ते संवर विरतिरूप, ते प्रज्ञावंत एवा, स्वामी कहे वली ते केवाछे, तोके, (लवावसक्की के०) कर्मना टालनार, तथा (समणेत्तिबेमि के०) श्रमण एटले तपस्वी, एवा श्री महावीर देव ते लोकना हितने अर्थे धर्म कहेता थका आचारवंतज जाणवा हुं एम कहुंहुं.॥६॥

॥ दीपिका–ज्ञातस्याक्रोधस्य दांतस्य मानरहितस्य जितेंद्रियस्य निर्लोभस्य लोभत्यागान्निर्मायस्येत्यपि इष्टव्य । भाषादोषाश्चसत्यसत्यामृषाकर्कशाऽसन्यशब्दोच्चारणादय तद्वर्जकस्य भाषागुणाहितमितदेशकालासदिग्धभाषणादय. तन्निषेधकस्य सतोधर्मं कथयतोपि नास्ति दोष । छद्मस्थ हि प्रायोमौनमेव श्रेय । केवलिनस्तु भाषणमपि गुणायेति ॥५॥ कीदृशं धर्मं वक्तीत्याह । पचमहाव्रतानि साधूना पचगुणव्रतानि श्राद्धाना प्रज्ञापितवान् तथैव पचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् तत्सवर च सप्तदशप्रकार सयमं विरतिं च कथितवान् इह शासने श्रामण्य संपूर्णसंयमस्तस्मिन्कर्तव्ये पूर्णकृत्स्ने मूलोत्तरगुणान् पूर्वोक्तान् कथितवान् । किंभूतोऽसौ लव.कर्म तस्मा(दवसक्कइति)अवसर्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रमणइति । अथ गोशालकोवक्ति (बेमित्ति) यदह ब्रवीमि हे आर्द्रक ! तत्त्वं शृणु॥६॥

॥ टीका–अपगतरागद्वेषस्य प्रभाषमाणस्यापि दोषाभाव दर्शयितुमाह । (धम्मकहंतस्से त्यादि) तस्य भगवतोपगतघनघातिकलंकस्योत्पन्नसकलपदार्थाविर्भावज्ञानस्य जगदभ्युद्धरणप्रवृत्तस्यैकातपरहितप्रवृत्तस्य स्वकार्यनिरपेक्षस्य धर्मं कथयतोपि तुशब्दस्यापिशब्दार्थत्वान्नास्ति कश्चिद्दोष । किंभूतस्येत्याह। ज्ञातिसपन्नस्यानेन क्रोधनिरासमाह । तथा दांतस्योपशांतस्यानेन मानव्युदास।तथा जितानि स्वविषयप्रवृत्तिनिषेधनेंद्रियाणि येन स जितेंद्रियोऽनेन तु लोभनिरासमाचष्टे मायायास्तु लोभनिरासादेव निरासोऽइष्टव्यस्तन्मूलत्वात्तस्य भाषादोषाश्चसत्यसत्यामृषकर्कशासन्यशब्दोच्चारणादयस्तद्विवर्जकस्य तत्परिहर्तुस्तथा भापायाथ गुणाहितमितदेशकालासदिग्धभाषणादयस्तन्निषेधकस्य सतोब्रुवतोपि नास्ति दोष छद्मस्थस्य हि वाहुल्येन मौनव्रतमेव श्रेय समुत्पन्नकेवलस्य तु भाषणमपि गुणाये ति ॥ ५ ॥ किंभूत धर्ममसौ कथयतीत्याह । (महव्वएपचेत्यादि) महांति च तानि व्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि तानि [illegible] प्रज्ञापितवान् पचापि तदपेक्षयाणूनि लघूनि व्रतानि पचैव तानि श्रावका[illegible] तथैव पचाश्रवान् प्राणातिपातादि कर्मण प्रवेशद्वारभूतांस्तत्[illegible] सयमं [illegible] ॥६त सवरवतो

थकां वृत्तिछेद थाय. ए कारण माटे, (मेहावी के०) जे पंमित होय, ते अस्ति, नास्ति, न कहे, तेवारें साधु केम बोले ? ते कहेछे. (संतिमग्गचवूहए के०) शांतिमार्ग एटले मोक्षमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपनी वृध्धि थाय, एवु वचन बोले. एटले जे वचन बोलवा थकी असंयम सावद्य न थाय, तेवु वचन बोले. इत्यर्थ ॥३२॥ हवे अध्ययन परिसमाप्तिनें अर्थे कहेछे. (इच्चेएहिंगणेहिं के०) एम ए पूर्वोक्तस्थानके (जिणदिछेहिंसंजए के०) जिन एटले वीतरागजाषित वचने युक्त, एवा संयत एटले जे चारित्रिया (धारयंतेउ अप्पाण के०) ते पोताना आत्माने धारे, क्यां लगे धारे? तोके (आमोरकाएपरिवएज्जासि के०) ज्यां सुधी मोक्ष प्राप्ति थाय,त्यां सुधी धारे. हवे एवो उपदेश शिष्यनी प्रत्यें गुरु कहे. के,अहो शिष्य ! तुं आवा आचारे प्रवर्त्तजे.त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३३ ॥ ए बीजा श्रुतस्कंधनें विषे अनाचार नामें पांचमाअध्ययननो सक्षेपार्थ बालावबोध समाप्तथयो.

॥ दीपिका-(दक्खिणाएत्ति) दानं दक्षिणा तस्या प्रतिलंभः प्राप्तिर्दानलाभ सोस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्तिवा नास्तिवा इति न व्यागृणीयान्न वदेन्मेधावी किंतु ? शांतिमार्गं मोक्षमार्गं वृंहयेद्वृद्धिं प्रापयेत् यथा मोक्षमार्गवृद्धिर्भवति तथा वदेदित्यर्थ ॥ ३२ ॥ इत्येतैरनेकांतविधायिभि स्थानैर्जिनोद्दिष्टै. संयतआत्मानं धारयन् आत्मान प्रवर्तयन् आमोक्षाय कर्मक्षयार्थं परिव्रजेत्संयमे प्रवर्त्तेत ॥इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३४ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधेऽनाचारश्रुताख्यं पंचमाध्ययन समाप्तम् ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (दक्खिणाएइत्यादि) दान दक्षिणा तस्या. प्रतिलंभ प्राप्ति स दानलाभोऽस्माद्गृहस्थादे· सकाशादस्ति नास्ति वेत्येव न व्यागृणीयान्मेधावी मर्यादाव्यवस्थित ।।यदिवा स्वयूथस्य तीर्थांतरीयस्य वा दान ग्रहणवा प्रतिलाभ सएकांतेनास्ति संभवति नास्ति वेत्येव न ब्रूयादेकांतेन तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसंभवात् । तथाहि। तद्दाननिषेधेंऽतरायसंभवस्त द्विचित्रपंच तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भवऽत्यतोऽस्ति दान न वेत्येवमेकांतेन न ब्रूयात् । कथ तर्हि ब्रूयादिति ? दर्शयति ।शांतिर्मोक्षस्तस्य मार्गं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपबृंहयेद्वर्धयेत्। यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्भवति तथा ब्रूयादित्यर्थं । एतदुक्तं भवति । पृष्ट केनचिद्विधिप्रतिषेधमतरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेव ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि ॥ ३२ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह (इच्चेएहिंमित्यादि) इत्येतैरेकांतनिषेधद्वारेणानेकांतविधायिभि स्थानैर्वाक्संयमप्रधानै समस्ताध्ययनोक्तैरागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैरुपलब्धैर्न समतिविकल्पोत्थापितै संयत. सन् संयमवानात्मानं धारयन्निर्विविधधर्मदेशनावसरे वाच्य । तथा चोक्तं । "सावज्जणवज्जा

ऽसावपि इष्यत. शेषेण तु बीजोदकाद्युपभोगेन गृहस्थकल्पाएव ते। यत्तु भिक्षाटनादिक सुपन्यस्त तेषां तद्गृहस्थानामपि केषांचित्संभाव्यते नैतावता श्रमणभावइति ॥ १० ॥

इमं वयंतं तुमपाउ कुव्व, पावाइणो गरिहसि सव्वएव ॥ पावाइ
णो पुढो किट्टयंता, सयंसयं दिठिकरेति पाउ ॥ ११ ॥ ते अन्नम
न्नस्स विगरहमाणा, अक्कंतिउ समणामाहणाय ॥ सतोय अ
त्थी असतोय णत्थी, गरहामोदिठि ण गरहामोकिंचि ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमारनां ए पूर्वोक्त वचन सांभळीने गोशालक बीजो उत्तर आपवाने असमर्थ थतो, अन्य तीर्थिकोने पोताना सहायकारी करीने सोल्लंठ एटले असार वचन बोलेछे के, अहो आर्द्रकुमार! (इमंवयंतंतुमपाउकुव्व के०) तु एवां पूर्वोक्त वचन कहेतो थतो (पावाइणोगरिहसिसव्वएव के०) सर्वे प्रावाडुक एटले अन्यदर्शनीउने निंदेछेज, कारणके आ जगत् माहे सर्वे दर्शनीउ बीज उदकादिकनुं सेवन करता थका, संसार उछेदवाने अर्थे प्रवर्त्तेछे,तो तेने मानिये नही एवु वचन सांभळीने आर्द्रकुमार ते गोशालकने उत्तर आपवाने अर्थे बोल्यो, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे कहेछे. के, अहो गोशालक! (पावाइणोपुढोकिट्टयंतासयसयंदिठिकरेतिपाउ के०) सर्वे प्रावाडुक एटले सर्वे दर्शनी पोत पोतानी जुदी जुदी दृष्टीये जुदी जुदी मतिये पोतपोतानुं दर्शन प्रगट करेछे. जेम ते पोतपोताना दर्शननी स्थापना करेछे, तेम हुं पण अमारा दर्शननी प्रभावना करुंछु के, सचितपाणी,बीजादिकना परिभोगथकी नि केवल कर्मनुं बंधनछे,पण एथकी संसारनो उछेद काइ पण नथी एवो अमारा दर्शननो मतछे, तो अंही निंदा पण शानी? अने उत्कर्षपण शानो?॥११॥वळी आर्द्रकुमार कहेछे (तेअन्नमन्नस्सविगरहमाणा के०) ए समस्त परवादी परस्पर माहोमाहे पारका दर्शनने निंदेछे, अने पोताना दर्शनना गुण बोलेछे, (अक्कंतिउसमणामाहणाय के०) ते श्रमण ब्राह्मण सर्वे पोतपोताना पक्षने समर्थेछे अने परना पक्षने दूषण आपेछे तेज गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. (सतोयअत्थीअसतोयणत्थी के०) अमारा पक्षने अंगीकार करवा थकी पुण्यछे, अने स्वर्गापवर्गादिकना सुख प्राप्त थायछे, अने परना पक्षने अगीकार करवा थकी पुण्य नथी अने पुण्यने अभावे स्वर्गापवर्गादिकनी प्राप्ति पण नथी ए रीतें सर्वे तीर्थिक माहोमाहे व्याघातें प्रवर्त्तेछे. तेम अमे पण यथावस्थित तत्त्वनु कथन करनारा छैयें तेणे करी, (गरहामोदिठिणगरहामोकिंचि के०) एकांतवादीने अमे काइ गर्हता नथी, निंदता नथी, केमके, सत्य कहेतां थका काइ प्रवाद नथी इत्यर्थ. ॥ १२ ॥

जाणीने, पंक्ति निमित्ते, घणो महोटो परिवार कर्योछे, वली ए तमारो गुरु केवोछे, तो के, अस्थिर एटले प्रथम माहारी साथे एकलो थंत प्रात आहारी शून्य एवा देवकुला दिक स्थानकोने विषे रहेतो हतो, अने तेवो उग्रआचार वेलूना कवलनी पेरें नि स्वाद जाव जीवसुधी करवानें अशक्तछे, ते कारणे महारो समागम मुकीने घणा शिष्योने वि प्रतारी एवे घटाटोपें विचरेछे, ते कारणे अस्थिरछे ते अस्थिर पणुं देखाडेछे (सनाग छ के०) सना जे देव अने मनुष्यनी परषदा मांहे वेगो (गणडंनिरकुमल्ले के०) अने क भिक्षुना समुदाय मांहे रहेतो थको (आइरकमाणोवहुजन्नमच्छ के०) घणालोकने हितनो कारक, एवो अर्थ कहेतो देखायछे. ते कारणे (नसधयातीअवरिणपुव्वं के०) माहोमाहे आचार तेनो सवि मलतो नथी, एटले प्रथमना आचारमा अने हमणाना आचारमां माहोमांहे विरोध देखायछे, ते ए प्रकारे के, सिंहासन,अशोक वृक्ष,भामंडल, छत्र, चामरादिक ममाण जो मोक्षनु अंग होय तो, प्रथम जे उग्रक्रिया एणे कीधी तेतो नि केवल क्लेश भणीज कीधी, अथवा जो ते क्रिया कर्म निर्जरवानु कारण हती, तो हमणानी क्रिया पण बीजाने विप्रतारवाने अर्थे,पाखंडरूप जाणीये छैये वली प्रथमतो मौनपणुं रुडुं जाणीने अंगीकार कर्युं हतु, त्यारे हमणा धर्मदेशना आपवानु शु कामछे? जो धर्मदेशना देवी, ए रुडुछे तो पहेला मौनपणु आदर्युं हतु ते अत्यंत अयोग्यछे॥२॥

दीपिका–अथ षष्ठाध्ययनमारभ्यते । तत्राऽऽर्द्रककुमारकथासंबंधत्वादार्द्रकीयाभिधानं । तत्कथाचेयं । मगधदेशे वसंतपुरे सामायिकोनाम कुटुंबी वसति । स वैराग्यतः श्रीधर्मघो षाचार्यपार्श्वे पत्नीयुतः प्रव्रज्यां गृहीत्वा साधुभिः सह विहरति । सोऽन्यदा स्वपत्नीं साध्वीं भिक्षामटंतीं दृष्ट्वा रागी जातः । स्वाभिप्रायः परस्य साधोस्तेन निवेदितः । तेनापि तत्प्रवर्ति न्यास्तयापि तस्याः साध्व्याः । ततः स्वपतिमनुरक्तं ज्ञात्वा साध्व्या भक्तप्रत्याख्यानपूर्वमा त्मोद्बंधनमकारि । मृत्वा स्वर्गमगात् । तदाकर्ण्य तत्पतिः साधुरपि गुरुमनापृच्छ्य भक्तं प्र त्याख्याय दिवं गतः । ततश्च्युत्वा आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकाभिधोजातः । साऽपि तत्पत्नी स्वर्गच्युता वसंतपुरे श्रेष्ठिपुत्री जाता । आर्द्रकोपि युवा परमसुभगः संपन्नः । अन्यदाऽऽर्द्रकपित्रा जनहस्ते राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितं । आर्द्रककुमारेण श्रेणि कसुतायाऽभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं । जनोराजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्राभृतानि निवेदितवान् समानितश्च राज्ञा । आर्द्रकप्रहितानि प्राभृतानि चाऽ भयकुमाराय दत्तवान् । कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अभयेनाचिंति । नूनम सौ भव्यः स्यादासन्नसिद्धिकोयोमया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति । ततोऽभयेन प्रथमजिनप्रतिमा वद्प्राभृतयुतार्द्रकुमाराय प्रहिता । इदं प्राभृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य । सोऽप्या र्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् । प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्म

कृया नावदिगपेक्षया वा तासु ये त्रसाये च स्थावरा प्राणिन.। चशब्दौ स्वगतानेकनेदसंसूच कौ। नूत सद्भूत तथ्यं तत्राभिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातक जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूताभिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठान जुगुप्समानोनैवापरलोकं कंचन गर्हति निंदति (वुसिमंति) संयमवानिति। तदेव रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्नाव ने न काचिद्गर्हत्यथ तत्रापि गर्हा नवति नह्यग्निरुष्णोऽग्नि' शीतमुदक विष मारणात्मकमित्येव मादि किंचिद्वस्तुस्वरूपमाविर्नावनीयमिति ॥१४॥

आगंतगारे आरामगारे,समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दक्का
हुसंते बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता, सुत्तेहि अत्थेहिय णिच्छयन्ना ॥ पु
च्छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति संकमाणो ण उवेति तत्थ ॥१६॥

अर्थ–हवे गोशालकमतानुसारी त्रेराशिक बीजा प्रकारे करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे के, अहो आर्द्रकुमार! ताहरो तीर्थंकर राग, द्वेष, अने नय, तेणे करी सहित छे, ए कारण माटे ते बीहितो थको (आगंतगारे के०) शून्यघर धर्मशालादिक तथा (आरामगारे के०) उद्यानादिकने विषे (समणेउनीते के०) श्रमण अने माहण थ की बीहितो थको (णउवेतिवास के०) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे (दक्काहुसंते के०) दक्ष एटले माह्या, घणा शास्त्र ना जाणनार, पंमित, (बहवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकने विषे आवे, माटे तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवा स्थानकने विषे ताह रो त्या गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, (ऊणातिरित्ताय के०) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणे करी ऊणाछे न्यूनछे,तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथे बोलता कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटे एवा स्थानक गमीने त्यागीने देवादिकनी परषदामाहे एकांतें बेसेछे वली ते पुरुषो केवाछे तोके, (लवालवाय के०) एकतो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार, तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलता वादीना मुख माहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी ताहरा तीर्थंकरे आरा म उद्यानादिक माहे निवास करवानो त्याग कर्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिक्खियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवाने सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

तव वरकाइति । ततस्तयोक्तं तात ! सकलकन्या प्रदीयंते नानेकशोढत्ता चाह तस्मै यस्त वंच हिरण्यजात नवनिर्गृहीत तत सा पित्राऽनाणि । किं त्व त जानीपे ? तयोक्तं तत्पादग तानिज्ञानदर्शनतोजानामीति । तदेवमसौ तत्परिज्ञानार्थं सर्वस्य निक्षार्थिनोनिक्षा दापयितु निरूपिता ततोद्वादशनिर्वर्षैर्गते कदाचिन्नासौ नवितव्यतानियोगेन तत्रैव वि हरन्समायात प्रत्यनिज्ञातश्च तया तत्पादचिन्हदर्शनतस्ततोसौ दारिका सपरिवारा तदृष्ट प्रतोजगामाईककुमारोपि देवतावचनं स्मरंस्तथाविधकर्मोदयादवश्यं नवितव्यतानियो गेन च प्रतिनग्रस्तया सार्द्धं नुनक्ति नोगान् पुत्रश्चोत्पन्न पुनराईककुमारेणासावनिहिता सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोहं सकार्यमनुतिष्ठामि तया सुतव्युत्पादनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं दृष्टा चासौ बालकेन किमंवतनवत्या प्रारब्धमितरजनाचरित ततोसाऽववोचद्यथा तव पि ता प्रव्रजितुंकामस्त्वं चाद्यापि शिशुरसमर्थोर्थार्जनेततोहमनाथा स्त्रीजनोचितेनानिंद्ये न विधिनाऽऽत्मानं नवतं च किल पालयिष्यामीत्येतदालोच्येदमारब्धमिति । तेनापि वा लकेनोत्पन्नप्रनूतया तत्कर्त्तितसूत्रेणैव काय मद्बध्धोयाम्यतीति मन्मनोनाषिणोपविष्टए वासौ पिता परिवेष्टितस्तेनापि चिंतितं यावतोमी बालककृतवेष्टनततवस्तावत्येव वर्षाणि मया गृहेस्यातव्यमिति निरूपिताश्च ततवोयावद्वादश तावत्येव वर्षाण्यसौ गृहवासे व्य वस्थित्त पूर्णेषु द्वादशसु संवत्सरेषु गृहान्निर्गत प्रव्रजितश्चेति । ततोसौ सूत्रार्थनिष्पन्न एकाकिविहारेण विहरन् राजगृहानिमुख प्रस्थितस्तदंतराले च तद्रक्षणार्थं या नि प्राक् पित्रा निरूपितानि पंचराजपुत्रशतानि तस्मिन्नश्वे नष्टे राजनयाद्वैलक्ष्याच्च न रा जांतिक जग्मुस्तत्राटवीडुर्गेण चौर्येण वृत्तिं कल्पितवतस्तैश्चासौ दृष्ट प्रत्यनिज्ञातश्च तं च तेन दृष्टा' किमिति नवन्निरेवनूत कर्माश्रित ? तैश्च सर्व राजनयादिकं कथितमाईकक मारवचनाच्च संबुध्धा प्रव्रजिताश्च । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसा ब्रा ह्मणाश्च वादे पराजिता । तथाईककुमारदर्शनादेव हस्ती व ंधनाद्विमुक्तस्तेच हस्तिताप सादयश्चाईककुमारधर्मकथाक्षिप्ताजिनवीरसमवसरणे निष्क्रांता । राज्ञा च विदितवृत्तांत त्वेन महाकुतूहलापूरितहृदयेन दृष्टोनगवान् कथं त्वद्दर्शनतोहस्ती निरर्गल. संवृत्तइति महान् नगवतः प्रनावइत्येवमनिहित सन्नाईककुमारोब्रवीन्नवमगाथयोत्तर ॥" ए डुक्कर वारणपासमोयण,गयस्स मत्तस्स वणमिराय ॥ जहा उवत्ता वलिएण तंतुणा, सुडुक्करमे प डिहाइमोयण ॥ १ ७॥ (णडुक्करमित्यादि) न डुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धमत्तवारणस्य विमोचनं वनेराजन्नेतत्तु मे प्रतिनाति डुष्करं यच्च तन्त्रावलितेन ततुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति । स्नेहततवोहि लघुना डुरुच्छेदानवंतीति नाव. । गतमाईककथानक ॥

स्नेहततवोहि लघुना डुरुच्छेदानवंतीति नाव. । गतमाईककथानक ॥ ~ अथ सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे

नामनिष्पन्ननिक्षेपश्च । तदनंतर सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं । (पुराकडमित्यादि) यथा च गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदाईककुमारस्य तथानेनाध्ययनेनोप

क्षया नावदिगपेक्षया वा तासु ये त्रसाये च स्थावरा.प्राणिन.। चशब्दौ स्वगतानेकनेदसंसूच कौ। नूत सद्भूत तथ्यं तत्रानिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातक जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूतानिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठान जुगुप्समानोनैवापरलोक कंचन गर्हति निंदति (वुसिमंति) संयमवानिति। तदेव रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्नाव ने न काचिग्रर्हत्यथ तत्रापि गर्हा नवति नह्युसोग्नि. शीतमुदक विष मारणात्मकमित्येव मादि किंचि द्वस्तुसरूपमाविर्नावनीयमिति ॥१४ ॥

आगंतगारे आरामगारे,समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दस्का
हुसंते बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिक्किय बुद्धिमंता, सुत्तेहि अत्थेहिय णिच्चयन्ना ॥ पु
च्छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति सकमाणो ण उवेति तब ॥१६॥

अर्थ–हवे गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक बीजा प्रकारे करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे के, अहो आर्द्रकुमार! तादृशे तीर्थंकर राग, द्वेष, अने नय, तेणे करी सहित छे, ए कारण माटे ते बीहितो थको (आगतगारे के०) शून्यघर धर्मशालादिक तथा (आरामगारे के०) उद्यानादिकने विषे (समणेउनीते के०) श्रमण अने माहण थ की बीहितो थको (णउवेतिवास के०) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे (दस्काहुसंते के०) दक्ष एटले माह्या, घणा शास्त्र ना जाणनार, पंमित, (बहुवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकने विषे आवे, माटे तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवा स्थानकने विषे ताह रो स्था गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, (ऊणातिरित्ताय के०) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणे करी ऊणाछे न्यूनछे,तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथे बोलता कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटे एवा स्थानक गमीने त्यागीने देवादिकनी परषदामांहे एकांतें बेसेछे वली ते पुरुषो केवाछे तोके, (लवालवाय के०) एकतो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार, तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलता वादीना मुख माहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी ताहरा तीर्थंकरे आरा म उद्यानादिक माहे निवास करवानो त्याग कर्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिक्कियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवाने सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

खो थको जो साधुपदनुं मानते तो, प्रथम थकीज ए आचार केम न आदखो ? माटे (दोवग्गमन्नंनसमेतिजम्हा के०) ए वेहु आचार, गयानी अने तडकानी पेठें माहो मा हे मलता नथी, तथा जो मौनपणाने विषे धर्मछे तो ए, धर्मदेशना शा माटे आपे छे ? अथवा जो धर्मदेशनाने विषेज धर्मछे, तो मौनव्रत आदरवानुं शुं कारण हतु? ते कारण माटे तादृशो गुरु अत्यत विरुद्धाचारी देखायछे एवा वचन गोशालकना सांजली ने हवे गाथाना उत्तरार्द्धवडे आर्डकुमार, ते गोशालकने उत्तर आपेछे (पुव्विंचइण्हिंच अणागतवा के०) पूर्वे कालें जे मौनपणुं अने एकचर्या, श्री महावीरदेवे आदरी हती ते छद्मस्थ पणाथकी घातिया चार कर्मनो क्षय करवाने अर्थे जाणवी, अने हमणां जे अनेक लोक आगल धर्मनु प्रकाशवु करेछे, ते वली अघातिया चार कर्मनी शुन प्र कृति खपाववाने अर्थे जाणवु ए कारणे प्रथम तथा हमणा तथा अनागत एटले आ गमिककाले राग द्वेषने अनावे, एकलपणुंज सनाविये छेयें (एगंतमेवपडिसधयाति के०) तेथी एना प्रथमना अने पाछलना आचारनो काइ नेद नथी, माटे जे तादृश मनथी पूर्वापर आचारनो विरोध जणायछे ते खोटो जाणवो, तु जोतो खरो ! के, एना धर्मोपदेशे करी केटला एक प्राणीउने उपकार थायछे के,नथी थतो? ॥३॥ तेहिज क हेछे (समिच्चलोगंतसथावराण के०) लोक जे षट् द्रव्यात्मक, तेनें समिच्च एटले केवल ज्ञाने करी जाणीने. त्रस अने स्थावर जे प्राणीउछे, एतावता चोराशी लक्ष जीव योनि छे तेने, (खेमकरे के०) क्षेमना करनार, तथा (समणे के०) श्रमण एटले वार नेदें तपना करनार, तथा (माहणेवा के०)कोइ जीवने म हणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण अथवा ब्राह्मण एवा जे श्री महावीर देव, ते प्राणीउना हितने अर्थे (आइरकमाणोवि सहस्समज्के के०) रागद्वेषरहित धर्म, मनुष्यना सहस्रमध्ये प्रकाशता बता (एगतयंसा रयतितहच्चे के०) तेमज पूर्वनी पेठे एकात पणुज साधेछे एनी पूर्वनी अवस्थामां अनें हमणानी अवस्थामा काइ पण अतर नथी तथा अर्चा एटले शुक्र ध्यानरूप जे लेश्या, ते छे जेने एवा, तथा अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्य तेणे युक्तछे तो पण, अहंकार नथी, तथा शरीर संस्कारजणी यत्न पण करता नथी ए कारण माटें ते नगवत अनेक लोके परवस्था थका पण, राग द्वेषना अनावथकी एकाकीज जाणवा इत्यर्थ ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—(एगंतमेवमित्यादि) यद्येकातचारित्रमेव शोभनं पूर्वमाश्रितत्वान्तत सर्वदा निरपेक्षैस्तदेव कर्तव्य अथ चेदं साप्रत परिकरवहुत्व श्रेयस्तदा पूर्व तदेव कार्य हि अप्येते छायातपवदत्यतं विरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवाय गछतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्त त· किमियं महता प्रबधेन धर्मदेशनाऽथानर्थव [illegible] पूर्व मौनव्रतमने

मन्यते न परलोकसुखमिति लाजादर्शनात्तत्र न याति नगवान्नतु द्वेषबुद्ध्या। यदप्युक्तं। पण्डितनरगुटिकादिविद्यासिद्धनयान्न तेषां स्थाने यातीत्येतत्प्रलापप्रायं। यत·। स वैरपि तीर्थिकै सर्वज्ञस्य नगवतोमुखमप्यवलोकयितु न शक्यते वादस्तु दूरापास्तएवेति॥१८॥

॥ टीका–एतज्जोशालकमत परिहर्तुकामआर्द्रकआह। (णोकामकिच्चाइत्यादि) सहि नगवान्प्रेक्षापूर्वकारितया नाकामकृत्योनवति कमन कामइज्ञा न कामोऽकामस्तेन कृत्यं कर्तव्यं यस्यासावकामकृत्य सएवनूतोन नवत्यनिज्ञाकारी न नवतीत्यर्थः। योह्युत्प्रेक्षा पूर्वकारितया वर्तते सोऽनिष्टमपि स्वपरात्मनोनिरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत नगवास्तु सर्वे ज्ञ सर्वदर्शी परहितैकरत कथं स्वपरात्मनोर्निरुपकारकमेव कुर्यात्तयाच बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योन चासौ बालवद्नालोचितकारी न परानुरोधान्नापि गौरवाद्धर्मदे शादिकं विधत्तेऽपितु यदि कस्यचिद्भव्यसत्वस्योपकाराय तज्ञापित नवति तत प्रवृत्तिर्नवति नान्यथा नथा न राजानियोगेनासौ धर्मदेशनादौ कथचित्प्रवर्तते तत· कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्ति स्यादित्येव व्यवस्थिते केनचित्कचित्संशयकृत प्रश्न व्यागृणीया यदि तस्योपकारोनवत्युपकारमतरेण नच नैव व्यागृणीयाद्यदिवाऽनुत्तरसुराणा मन· पर्यायज्ञानिनाच इव्यमनसैव तन्निर्णयसनवादतोन व्यागृणीयादित्युच्यते। यद्यप्युच्यते नवता यदि वीतरागोऽसौ किमिति धर्मकथा करोतीति चेदित्याशंक्याह। स्वकामकृत्ये न स्वेज्ञाचारिकारितयाऽसावपि तीर्थकृन्नामकर्मण क्षपणाय न यथाकथंचिदतोऽसावग्ला नइहास्मिन्संसारे आर्यक्षेत्रे चोपकारयोग्यआर्याणां हि सर्वहेयधर्मदूरवर्तिना तदुपकारा धर्मदेशना व्यागृणीयादसाविति॥१७॥ किचान्यत्। (गंतेत्यादि) सहि नगवान् परहितैकरतोगत्वापि विनेयासन्नमथवाप्यगत्वा यथानव्यसत्वोपकारोनवति तथातया न गवतोर्हतोधर्मदेशना विदधत्युपकारे सति गत्वापि कथयंत्यसतितु स्थिताअपि न कथयं तीत्यतोन तेषा रागद्वेषसनवइति केवलमाशुप्रज्ञ· सर्वज्ञ समतया समदृष्टितया चक्रवर्ति इमकादिषु पृष्टोवा धर्म व्यागृणीयात्। जहा पुणस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ इति वच नादित्यतोन रागद्वेषसद्भावस्तस्येति। यत्पुनरनार्यदेशमसौ न व्रजति तत्रेदमाह। अनार्या क्षेत्रनापाकर्मनिर्वहिष्कृतादर्शनतोपि परिसमतादितागता प्रभ्रष्टाइति यावत्। तदेवमसौ नगवानित्येतत्तेषु सम्यग्दर्शनमात्रमपि कथचिन्न नवतीत्याशकमानस्तत्र न व्रजतीति। यदिवा विपरीतदर्शनिनोन नवन्त्यनार्या शकयवनादयस्तेहि वर्तमानसुखमेवैकमंगीकृ त्य प्रवर्तते न पारलौकिकमंगीकुर्वन्त्यत सद्धर्मपराङ्मुखेषु तेषु नगवान्न याति न पुनस्तद्वे ष्यादिबुद्ध्येति। यदप्युच्यते त्वया यथानेकशास्त्रविशारदगुटिकासिद्धविद्यासिद्धादितीर्थि कपराजयनयेन न तत्समाजे गच्छतीत्येतदपि बालप्रजल्पितप्राय। यत्

र॰ श्राम्यतीति श्रमणो द्वादशप्रकारतपोनिष्टप्तदेहस्तथा माहणति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनो ब्राह्मणोवा स एवनूतोनिर्ममोरागद्वेषरहित प्राणिहितार्थं न लाजपूजाख्यात्यर्थं धर्ममा चक्षाणोपि प्राग्वत् छद्मस्थावस्थाया मौनव्रतिकएव वाक्सयत । उत्पन्नदिव्यज्ञानलाजापा गुणदोपविवेकज्ञतया जापणेनैव गुणावाप्तेरनुत्पन्नदिव्यज्ञानस्य तु मौनव्रतिकत्वेनेति तथा देवासुरनरतिर्यक्सहस्रमध्येऽपि व्यवस्थित पंकाधारपंकजवत्तद्दोपव्यासगाजावान्ममत्व विरहाद्गग्द्दोपविकजत्वादेकातमेवासौ सारयति प्रख्यातिं नयति साधयतीति याव त् । ननु चैकाकिपरिकरोपेतावस्थयोरस्ति विशेष प्रत्येक्षेणैवोपलभ्यमानत्वात्सत्य मस्ति विशेषोबाह्यतोन लालरत्तोपि दर्शयति । तथा प्राग्वदर्चा लेश्या शुक्लध्याना ख्या यस्य स तथार्च॰ । यदिवार्चा शरीर तच्च प्राग्वद्यस्य सतथार्चस्तथाह्यसावशोका द्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीर संस्कारायत्त विदधाति सहि नगवाना त्यंतिकरागद्वेपप्रहाणादेकाक्यपि जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयो कश्चि द्विशेषोस्ति । तथाचोक्त। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य,किमरण्ये करिष्यसि । अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसि" ॥ इत्यतोबाह्यतर्न गमनातरमेव कषायजयादिकं प्रधान कार णमिति स्थित ॥ ४ ॥

धम्मं कह तस्सउ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जितिंदिय
स्स ॥ नासायदोसेय विवज्जगस्स, गुणेयन्नासाय णिसेवगस्स
॥ ५ ॥ महव्वए पंच अणुव्वएय, तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरति
इह सामणियंमि पन्ने, लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे राग द्वेष विना धर्म कहेता थका कोइ प्रकारनो दोप नथी, एवो नाव दे खाडेले. (धम्मकहतस्सउणत्थिदोसो के॰) ते नगवत, समस्त लोकनो उद्धार करवाने प्रवर्त्तमान हता, धर्मदेशना करेले, तेथी तेने दोप नथी, ते नगवत केवाले तो के, (ख तस्सदंतस्सजितिंदियस्स के॰) क्षमावत, दमितेंद्रिय, एटले इंद्रियना दमनहार,वली जि तेंद्रिय. (नासायदोसेयविवज्जगस्स के॰) तथा नापाना दोप टालनार, अने (गुणेयना सायणिसेवगस्स के॰) नापाना गुणना सेवनार, एवा नगवतं बोलता थका, पण तेउनुं मौनव्रत पणुंज जाणवु ॥ ५ ॥ हवे श्री महावीर नगवत, केवो धर्म कहे, ते कहेले (महव्वएपचअणुव्वएय के॰) पाच महाव्रत जे प्राणातिपातविरमणादिक साधुनो धर्म ले, ते कहे, तथा श्रावक उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपात विरमणादिक, पाच अणुव्रत कहे (तहेव के॰) तेमज (पंचासव के॰) पाच आश्रव ते कर्मनें आववाना स्थानकले,ते

हुं एम कहुं छुं,ए कारणें सर्व प्रकारथकी वाणियानी ते स्वामीने उपमा न संजवे,परंतु देशथकी ज्यां ज्यां स्वामी लान देखे, त्यां त्यां विचरे. ए उपमा सत्यछे. इत्यर्थः ॥२०॥

॥ दीपिका–अथ गोशाल आह । यथा वणिक् उदयार्थी लानार्थी पण्यक्रयाणकं देशांतरे गत्वा विक्रीणाति आयस्य लानस्य हेतोर्महाजनसंगं प्रकरोति तडुपमया श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येव मे मम मति स्यात् वितर्कोविचारणा च ॥ १९ ॥ आर्द्रकमुनिराह । नगवान् सावद्यानुष्ठानरहितोनव कर्म न कुर्यात् पुरातन च विधूनाति अपनयति त्यक्त्वा अमति विमति त्रायी सनगवान् परेन्योप्येवमाह । यथा विमतित्यागेन मोक्षगामी स्यादिति । एतावता ग्रथेन ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतमित्युक्तं तस्य मोक्षानुष्ठानस्य उदयार्थी लानार्थी श्रमणोनगवान् । ततोवणिग्दृष्टांत सर्वसाधर्म्येण न प्रवर्त्तते नगवतः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात् देशसाधर्म्यंतु युक्तमेव यथा वणिग्यत्र लानं पश्यति तत्र क्रियां व्यापारयति तथा नगवानपीति एतदहं ब्रवीमीत्यार्द्रकमुनिराह ॥ २० ॥

॥टीका–पुनरन्येन प्रकारेण गोशालकआह ॥ (पन्नंजहेत्यादि) यथा वणिक् कश्चिडुदयार्थी पण्यं व्यवहारयोग्यं नांमं कर्पूरागरुकस्तूरिकाबरादिकं देशांतरं गत्वा विक्रीणाति तथा आयस्य लानस्य हेतो कारणान्महाजनसंगं विधत्ते तडुपमोयमपि नवत्तीर्थंकर श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येव मे मम मतिर्नवति वितर्कोमीमांसावेति ॥ १९ ॥ एवमुक्तोगोशालकेनार्द्रकआह ।(नवनकुज्जाइत्यादि) योय नवता दृष्टांत प्रदर्शित. सकिं सर्वसाधर्म्येणोत देशत ?। यदि देशतस्ततोन न क्षतिमावहति । यतोवणिग्वत् यत्रैवोपचयं पश्यति तत्रैव क्रिया व्यापारयति न यथाकथचिदित्येतावता साधर्म्यमस्त्येव । अथ सर्वसाधर्म्येणेति तन्न युज्यते । यतोनगवान् विदितवेद्यतया सावद्यानुष्ठानरहितोनव प्रत्यग्रं कर्म न कुर्यात् तथा विधूनयत्यपनयति पुरातन यन्नवोपग्राहि कर्मबंधं तथा त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी नगवान् सर्वस्य परित्राणशीलोविमतिपरित्यागेन चैवनूतएव नवतीति नाव । त्रायी वा मोक्षं प्रति। अयवयमयपयचयतयणयगताविसस्य रूपं । सएव नगवानेवाह । यथा विमतिपरित्यागेन चैवनूतएव नवतीत्येतावता च संदर्नेण ब्रह्मणोमोक्षस्य मर्तं ब्रह्मव्रतमित्येतडुक्तं । तस्मिन् चोक्ते तदर्थं वाऽनुष्ठाने क्रियमाणे तस्योदयार्थी श्रमणइति ब्रवीम्यहमिति ॥ २० ॥

समारन्नंते वणिया नूयगामं,परिग्गहं चेव ममायमाणा॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१ ॥ वित्ते

दि विरतिर्नैवतीत्यतोविरति च प्रतिपादितवांश्चशब्दात्तत्फलभूतौ निर्जरमोक्षौ च इहास्मि न्प्रवचने लोके वा श्रमणभाव· श्रामण्यं संपूर्ण सयमस्तस्मिन् वा विधेयें मूलगुणान् म हाव्रताणुव्रतरूपांस्तथोत्तरगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपान् कृस्ने संयमे विधातव्ये प्राज्ञइति क्वचित्पाठ'। प्रज्ञाने तत्प्रतिपादितवानिति । किंभूतोऽसौ लव कर्म तस्मा(दवसक्कइति) श्र वसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रम्यतीति श्रमण तपश्चरणयुक्तइत्येतदहं ब्रवीमि स्वयमेव च भग वान्पचमहाव्रतोपपन्नइंद्रियनोइंद्रियगुप्तोविरतश्चासौ लवावसर्प्पीसन् स्वतोन्येषामपि तथा भूतमुपदेशं दत्तवानित्येतद् ब्रवीमीति। यदि वाईककुमारवचनमाकर्ण्याऽसौ गोशालकस्तत्प्र तिपक्षभूतं वक्तुकामइदमाह । इत्येतद्वक्ष्यमाणं यदहं ब्रवीमि तच्छृणु! त्वमिति ॥ ६ ॥

सीउदगं सेवउ बीयकायं, आहायकम्म तह इत्थियाउ ॥ एगंत
चारिस्सिह अम्हधम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेति पाव ॥ ७ ॥
सीतोदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्म तह इत्थियाउ॥एयाइं
जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे एवु आर्द्रकुमारनु पूर्वोक्त वचन सांभलीने,फरी गोशालक कहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! तें एम कह्यु जे ए परहित भणी प्रवर्त्तिने धर्म कहेवाथकी दोष नथी, तथा लोक परिवारनो पण दोष नथी,तो हु कहु तु ते पण सांभल के,जे अमारा सि द्धांतमां कह्युछे तेनो पण दोष नथी ते शुं कह्युछे ! ते कहेछे. (सीउदगंसेवउबीयका य के०) सचितपाणी तेने सेवो, एटले पान करो,तथा बीजकायनो उपभोग करो,(आहा यकम्मं के०) तथा आधाकर्मी आहार ल्यो, (तह के०) तेमज(इछियाउ के०) स्त्रीनो प्रसंग पण करो,एटले पोताना अने परना उपकारनु कारण,अने धर्मनुं आधार एवुं जे शरीर तेने अर्थे जे कांइ करियें,तेंमा दोष नथी केमके,(एगतचारिस्सिहअम्हधम्मे के०) अमारा धर्मनें विषे प्रवर्त्तमान तथा आराम उद्यानादिकने विषे एकाकी विचरतो एवो, (तवस्सिणोणाभिसमेतिपाव के०) कोइ एक तपस्वी तेने पाप लागे नहीं जे कारण माटे यद्यपि शीतोदकादिक काइक कर्मबंधनु कारणछे तथापि तेनो, उपभोग, धर्माधारभूत एवुं जे शरीर तेने कारणे करता थका काइ पण दोष नथी इति भाव ॥ ७ ॥ हवे वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक ! शीतोदक अने बीजकायनो उपभोग करवो, तथा आधाकर्मी आहार लेवो, अने स्त्रीयादिकनो प्रसंग करवो, इत्यादिक बोल जे तें पूर्वे कह्या, तेना पडिसेवनारा तो आगारी एटले गृहस्थज कहेवाय, परतु एवा श्रमण एटले साधु न होय. ॥ ८॥

संगं संबंधं कुर्वंति । नगवांस्तु षड्जीवरक्षापरोपरिग्रहस्त्यक्तस्वजनपक्षः सर्वत्राप्रतिबद्धो धर्मार्थमन्वेषयन् गत्वापि धर्मदेशनां विधत्ते अतोजगवतोवणिग्भिः सार्द्धं न सर्वसाधर्म्य मस्तीति ॥ २१ ॥ पुनरपि वणिजां दोषमुद्भावयन्नाह । (वित्तेसिणोइत्यादि) वित्तं इव्यं तदन्वेष्टुं शीलं येषां ते वित्तैषिणस्तथा मैथुने स्त्रीसंपर्के संप्रगाढाअध्यूपपन्नास्तथा ते नो जनार्थमाहारार्थं वणिजइतश्चेतश्च व्रजंति वदंति वा तांस्तु वणिजोवयमेव ब्रूमोयथैते का मेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्यकर्मकारित्वादनार्यारसेषुच सातागौरवादिषु गृद्धामूर्छितानन्वे वनूतानगवतोर्हतः कथं तेषा ते सह साधर्म्यमिति? । दूरतएव निरस्तैषा कथेति ॥ २२ ॥

आरंनगं चेव परिग्गहं च, अविउस्सिया णिस्सिय आयदंमा ॥
तेसिं च से उदए जं वयासी, चउरंतणंताय उहायणेह ॥२३॥ णेगं
त णच्चंतिय उदएवं, वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए साति
मणंतपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमारज कहेले (आरंनगंचेवपरिग्गहंच के०) आरंन जे सावद्य अनुष्ठान रूप, तथा परिग्रह ते धनधन्यादिक, नव प्रकारे तेनी ममत्वने (अविउस्सियाणि स्सय के०) न गमीने. तेहिज आरंन परिग्रहने विषे निश्चे थकी बंधाणा एवा वाणिया होय वली केवा होय? तोके, (आयदंमा के०) पोताना आत्माने दंमनार, (तेसिंच सेउदएजवयासी के०) वली हे गोशालक! तु कहेले के, ते वाणिया लानना अर्थीले माटें ते लान तो एवो वाणियानो जाणवो के, (चउरतणतायउहायणेह के०) ते वाणि याने जे लानले ते लान चतुर्गतिक संसारने,तथा तेना उःखने अर्थ थाय, अने ते वा णियानो लान एकांतिक एटले एकांत पण न होय ॥२३॥ वली तेहिज देखाडेले. (णे गंतणच्चंतियउदएवं के०) वली अहो गोशालक! ते वाणियानो लान पण एकांतिक नथी, कोई वारें लान वाठता अलान पण थाय. तथा आत्यंतिक एटले सर्वकालनावी लान पण नथी, कोइ वारें होय, अनें कोइ वारें न पण होय. (वयंतितेदोविगुणोदयं मि के०) ते व्यापारना जाण एम कहेले के, नफो पण थाय, अथवा टोटो पण थाय, ए बे नाव होय,माटें ते बे नाव विगतगुणोदय जाणवा. तो ते लानथकी शुं, जे एकां तिक अनें आत्यंतिक नहीं, अनें वली ते लान अनर्थ नणी प्रवर्ते? (सेउदएसातिमणंत पत्ते के०) अने ते जे श्री नगवंतनो केवलज्ञान प्राप्ति लक्षण, तथा निर्झरानुं कारण, एवो जे लान, ते सादि अनंत जाणवो. (तमुदयंसाहयइताइणाइ के०) एवा लान ... पोतें नगवंत ले, अनें बीजानें पण एवो लान आपेले ते नगवंत कहेवाले! तो

॥ दीपिका—अथ गोशालोन्यतीर्थिकान्सहायान्कृत्वा सोल्लुंठमसारं प्राह । इमां पूर्वोक्तां वाच त्व प्रादुष्कुर्वन्सर्वान् प्रावादुकान् गर्हसि ? । यत सर्वेपि तीर्थिका बीजोदकादिभोजिनोपि भवोच्छेदाय प्रवर्त्तते ते तुऽप्रावादुका पृथक् पृथक् स्वीयां दृष्टि प्रत्येक स्वदर्शनं प्रादुष्कुर्वंति प्रकाशयति । अथवा श्लोकपश्चार्द्धं आर्द्रमुनिराह । सर्वेपि प्रावादुका स्वमत प्रकाशयंति तथा वयमपि स्वदर्शन प्रादुष्कुर्मोयद्बीजोदकादिभोगिन कर्मबंधोन भवोच्छेदऽति स्थिते कात्र परनिंदा कोवा आत्मोत्कर्षऽति ॥ ११ ॥ ते प्रावादुकाअन्योन्यस्य परदर्शन गर्हमाणा स्वदर्शनगुणानाख्याति यथा स्वतऽति स्वकीये पक्षे स्वमतेस्ति पुण्य अस्वत परमते नास्ति पुण्यमित्येव तीर्थिका परस्परव्याघातेन प्रवृत्ता वय तु तत्वप्ररूपणादेकांतदृष्टि गर्हाम नहि एकांतपक्षोयुक्तिसंगतऽति वदंतो वय न किंचिद्गर्हाम । काणाधादिवस्तुस्वरूपकथनेन परापवाद । तथाचोक्त । "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्पान्, सम्यग्यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषान्, सम्यग्विचारयत कोत्र परापवाद"ऽति ॥ १२ ॥

॥ टीका—अधुनैतदाकर्ण्य गोशालकोपरमुत्तर दातुमसमर्थोऽन्यतीर्थिकान्सहायान् विधाय सोल्लुंठमसार वक्तुकामआह (इमवयत्तित्यादि) ऽमा पूर्वोक्ता वाच । तुशब्दोविशेषणार्थ । त्व प्रादुष्कुर्वन्प्रकाशयन्सर्वानपि प्रावादुकान् गर्हसि जुगुप्ससे यस्मात्सर्वेऽपि तीर्थिकाबीजोदकादिभोजिनोपि संसारोच्छित्तये प्रवर्त्तते तेतु भवता नाभ्युपगम्यते तेतु प्रावादुका पृथक् पृथक् स्वीयां स्वीयां दृष्टि प्रत्येक स्वदर्शनं कीर्तयत प्रादुष्कुर्वंति प्रकाशयति । यदिवा श्लोकपश्चार्द्धमार्द्रककुमारआह । सर्वे प्रावादुकायथावस्थित स्वदर्शन प्रादुष्कुर्वंति तत्प्रामाण्याच्च वयमपि स्वदर्शनाविर्भावन कुर्मस्तद्यथा ह्यप्रासुकेन बीजोदकादिपरिभोगिन कर्मबंधएव केवल न संसारोच्छेदऽतीदमस्मदीय दर्शनमेव व्यवस्थितं कात्र परनिंदा कोवात्मोत्कर्षऽति ॥ ११ ॥ किंच । (तेअन्नमन्नस्सेत्यादि) तेप्रावादुकाअन्योन्यस्य परस्परेणतु स्वदर्शनप्रतिष्ठाशया परदर्शन गर्हमाणा स्वदर्शन गुणानाचक्षते तुशब्दात्परस्परतोव्याहतमनुष्ठान चानुतिष्ठति ते च श्रमणानिर्ग्रंथादयो ब्राह्मणाद्विजातय' सर्वेप्येते स्वक पक्षं समर्थयति परकीय च दूषयति। तदेव पश्चार्द्धेन दर्शयति। स्वतऽति। स्वकीये पक्षे स्वाभ्युपगमेस्ति पुण्य तत्कार्यंच स्वर्गापवर्गादिकमस्त्यत स्वपराभ्युपगमाच्च नास्ति पुण्यादिकमित्येवं सर्वेपि तीर्थिका परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताअतोवयमपि यथावस्थिततत्वप्ररूपणतोयुक्तिरिक्तत्वादेकातदृष्टि गर्हामोजुगुप्सामोन ह्यसावेकांतोयथावस्थिततत्वाविर्भावकोभवतीत्येव व्यवस्थिते तत्वस्वरूपं वयमाचक्षाणा न किंचिद्गर्हाम काणकुणोद्घट्टनादिप्रकारेण केवलं स्वपरस्वरूपाविर्भावनं कुर्मोन च द

अहिंसयं सवपयाणुकंपी, धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं॥ तमाय दंमेहिं समायरता,अबोहीए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥ पिन्नागपिंमी मवि विड सूले,केई पएज्जा पुरिसे इमेत्ति॥ अलाउयं वावि कुमा रएत्ति, स लिप्पती पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे वली कहेठे के, देवोनां करेलां समवसरण, सोनानुं कमल, देवछंदो, सिंहासन. इत्यादिक पदार्थोनो परिभोग करतो थको ते,कर्मो थकी शी रीतें न लेपाय? एवु गोशालकनुं वचन आशंकीनें,आर्डकुमार कहेठे के,(अहिंसयं के०) ए भगवत श्री महावीर देव सर्वजीवने अहिंसता एटले अणहणता थका,समवसरणादिकनो उपभोग करेठे,परं तु ते समवसरणादिक उपर, श्री वीतरागदेवनो लगारमात्र पण प्रतिबंध नथी, ए कारण माटें एमने कर्म न लागे वली स्वामी कहेवाठे? तो के,(सवपयाणुकंपी के०) सर्व प्रजा एटले सर्वजीव तेनी अनुकंपाना करनार,(धम्मेठियंकम्मविवेगहेउं के०) एवा श्री भगवत धर्मने विषे प्रवर्त्तता कर्म विवेकना कारण भूत,एवा तेउने (तमायदंमेहिंसमायरता के०) आत्मदंम एटले अनेक असमजस वचनें करी तारा सरखा, आत्मदमने आचारता थका वणिकनो दृष्टांत देठे, माटें (अबोहीएतेपडिरूवमेयं के०) ते अबोधी एटले अज्ञानी प्रतिरूप जाणवा, एयं एटले ए एक तेनुं अज्ञान पणुंज जाणवु, केमके एक तो पोते अज्ञान पणे प्रवर्त्ते,ए पेहेलु अज्ञान पणु. वली त्रिजगत् पूज्य, सर्व अतिशयना निधान, एवा अरिहंतने वैश्यादिकनी उपमा आपे, ते बीजुं अज्ञान पणुं.माटें ते जीव एम करता थका पोताना बोध बीजनो नाश करेठे इत्यर्थ ॥ २५ ॥ हवे इत्यादिक पूर्वोक्त गोशालकनां वचनोनुं निराकरण करीनें आर्डकुमार मुनि आगल चाल्या, तेवारे वच्चे शाक्यपुत्रियदर्शी नी एटले बौद्ध मल्या. तेणे एम कह्यु के,हे आर्डकुमार! तें गोशालक प्रत्ये वाणियानो दृष्टांत दूषव्यो ते युक्तज कर्युं, कारण के, बाह्य अनुष्ठान, प्राय. शून्यठे, अंतरग अनुष्ठानेज मोक्षाग प्रधान जाणवु, ए कारण माटें अमारा सिद्धांतमांहे ते अंतरगानुष्ठानतुं साधवु कह्युठे ते अमें कहिये ठैयें माटें तु सावधान थको सांभल ? (पिन्नागपिंमीमवि विडसूले के०) पिन्नाग पिंमी एटले खलपिंमी ते अचेतनठे अने ते कोइ एक स्थानके ठे तेनीपर कोइ एक पुरुषे वस्त्र नाख्यु, पठी ते खलपिंमने शूलीये प्रोइने, (केइपएज्जा पुरिसेइमेत्ति के०) कोइ एक म्लेछें पुरुषनी बुद्धिये लइने अग्नि उपर पचाव्यो, तथा वली (अलाउयवाविकुमारएत्ति के०) तुवडुं देखीने ए कुमारठे एवी बुद्धिये एक पुरुषे तेनें अग्नि उपर पचाव्यो,(सलिप्पतीपाणिवहेणअम्ह के०) तो हवे ए बेहुजण,पुरुष अने कु मारहत्यानें पापें लेपाय. अमारा सिद्धांतमांहे ए भावठे. अनाभोग वधनुं मूल मन परि

बुद्धिये करी सहित, (सुत्तेहिंअत्थेहिंयणिच्छयन्ना के०) वली सूत्र अने अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुच्छिसुमा णे के०) मुजने कांइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी अपाशे नहीं, तेथी महारु मान जंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्त के०) एवी वातोथी शका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोने विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुजु नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–एवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह। योनवतस्तीर्थक रः सरागद्वेपनययुक्तः। तथाहि। आगंतुकाना कार्पटिकादीना अगार आगत्तागार आरामेऽ गार आरामागार तत्रासौ श्रमणोभीत सर्व न वासमुपैति। किं तत्र नयमित्याह। दक्षा पमिताहुर्यस्माद्बहवः सति मनुष्या । तद्भीतोसौ तत्र न याति। ऊनाः स्वतोहीनाअतिरि क्तावा जात्यादिना सति केचित् तैः पराजितस्य महान् कलाभ्रंश स्यात्। ते नरा किंभूता लपावाचालाघोपिततर्कद्रूका तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादिविद्यायुक्ता यद्वशा द्वागे व न निस्सरति मुखात् यद्भयात्तेपु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधा रणसमर्थाबुद्धिमंत शिक्षिता सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईदृशा सूत्रार्थविषय प्रश्नमाका र्पुरनगाराएके इत्यसौ शंकमानोबिभ्यन्न तत्र तेषा मध्ये उपैति याति तयानार्यदेशे न धर्म कथितवान् आर्येतु देशनां करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु? कुत्रचिदेवेति ततोसौ राग द्वेषाकुलोवीरः ॥ १६ ॥

॥ टीका–सएव गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह । (आगंतागारेइत्यादि) सविप्रतिपन्न सन्नार्द्रकमेवाह। योसौ भवत्सवधी तीर्थकर सरा गद्वेपनययुक्तस्तथाह्यसावागंतुकाना कार्पटिकादीनामगारमागतागार तथाऽरामेऽगारमा रामागार तत्रासौ श्रमणोभवत्तीर्थकर । तुशब्दएवकारार्थे। भीतएवासौ तपःव्यसननयात्त आगंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिका क्रिया कुरुते। किं तत्र नयकार णमितिचेत्तदाह । दक्षा निपुणा प्रभूतशास्त्रविशारदा । हुशब्दोयस्मादर्थे। यस्माद्बहव संति मनुष्यास्तस्मादसौ तद्भीतोन वास तत्र समुपैति न तत्र गमातिष्ठते । किंभूता न्यू ना स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा तान्या पराजितस्य महाश्च्छायाभ्रंशइति । तानेव विशिनष्टि। लपंतीति लपावाचाला घोपितानेकतर्कविचित्रदंडकास्तथा न लपामौनव्र तिकानिष्ठितयोगा गुटिकादियुक्तावा यद्वशादनिर्धेयविपयावागेव न प्रवर्तते ततस्तद्भयेना सौ युष्मत्तीर्थकृदागतागारादौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह । (मेहावि

खलक्तस्य पिंमिन्निचकं तदचेतनमपि सत् कस्मिंश्चित्संभ्रमे म्लेछादिविषये केनचिन्नश्य ता प्रावरणं खलोपरि क्षिप्तं तच्च म्लेछेनान्वेष्टुं प्रवृत्तेन पुरुषोयमिति मत्वा खलपिंम्या स ह गृहीत ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां ता खलपिंमी पुरुषबुध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुक तुबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नावेव पपाच सचैवचित्तस्य डुष्टत्वात्प्राणिवध जनितेन पातकेन युज्यते। अस्मत्सिद्धाते चित्तमूलत्वाबुनाशुनबंधस्येत्येव तावदकुशल चित्तप्रामाण्यादकुर्वन्नपि प्राणातिपातप्रतिघातफलेन युज्यते ॥ २६ ॥

अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिन्नागबुद्धीइ नरं पएज्जा ॥
कुमारगं वावि अलाबुयंति, न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥
पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा, सूलंमि केई पएज्जायतेए ॥ पिन्नाय
पिंमे सति मारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥

अर्थ–वली एहिज दृष्टांत विपरीत पणें करीने कहेछे (अहवावि के०) अथवा कोइ एक सत्यपुरुषने (पिन्नागबुद्धिइ के०) खलपिंमीनी बुद्धियें करी कोइ एक (मिल क्खु के०) म्लेछ, (सूले के०) शूलिये करी (विद्धूण के०) विंधीनें प्रोइनें (नर के०) मनुष्यने (पएज्जा के०) अग्निये करी पचावे, अने (कुमारगंवाविअलाबुयंति के०) त था कुमार बालकने देखीने तेने तुबडानी बुद्धि लावीनें, अग्निमां पचावे, ए बेहुजणने मनपरिणाम विशेष एवु (नलिप्पइपाणिवहेणअम्हं के०) प्राणवधनुं पाप लागे नहीं, ए अमारा शास्त्रनुं रहस्य जाणवुं ॥२७॥ वली पण तेहिज दृष्टांत कहेछे (पुरिसचविद्धूण कुमारगवा के०) पुरुष अथवा कुमारने (सूलंमि के०) शूलीये (विद्धूण के०) वींधीनें प्रोइनें (केइपएज्जायतेएके०) कोइएक पुरुष अग्निनें विषे पचावे (पिन्नायपींमेसतिमारु हेत्ता के०) अने मनमाहे एवो नाव आणे के ए खलपिंमीछे (बुद्धाणतंकप्पतिपारणाए के०) तेनी बुद्धदर्शीजनने पण पारणा नणी कल्पेतो, अन्य बीजानुं शुं कहेवु? एताव ता मनसाये असकल्पितछे माटें कर्म न लागे एवो अमारो मतछे ॥ २८ ॥

॥दीपिका–अथवा सत्यं पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछ शूले प्रोतमग्नौ पचेत् कुमारकं वालं वाऽलाबुबुद्ध्या पचेन्नासौ प्राणिवधेन लिप्यतेस्माकमिति प्राणिवधाभिप्रायाभावात् ॥ २७ ॥ पुरुषं कुमारकवा शूले विध्वा कश्चिज्जाततेजसि वन्हौ आरुह्य पचेत् खलपिं मीयमिति मत्वा सतीं शोजना तदेतद्बुद्धाना शाक्याना कल्पते पारणाय नोजनाय । एव मसंकल्पितं कर्मचय न यात्यस्मन्मते ॥ २८ ॥

बुद्धिये करी सहित, (सुत्तेहिअत्थेहिंयणिच्छयन्ना के०) वली सूत्र अने अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुच्छिंसुमा णे के०) मुजने काइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी थपाशे नहीं, तेथी महारु मान भंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्थ के०) एवी वातोथी शंका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोनें विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुडो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–एव गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह । योनवतस्तीर्थक र सरागद्वेषत्रययुक्त । तथाहि। आगंतुकानां कार्पटिकादीना अगार आगंतागार आरामेऽ गारं आरामागार तत्रासौ श्रमणोभीत सर्व न वासमुपैति। कि तत्र भयमित्याह। दक्षा पंडिताढुर्यस्माद्दव· संति मनुष्या । तद्भीतोसौ तत्र न याति। ऊना स्वतोहीनाअतिरि क्तावा जात्यादिना संति केचित् ते पराजितस्य महान् कलात्रंश· स्यात्। ते नरा किंभूता लपावाचालाघोपितलर्कदमका तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादियिद्यायुक्ता य द्दशा द्वागे व न निस्सरति मुखात् यद्भयात्तेषु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधा रणासमर्थाबुद्धिमंत शिक्षिता सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईदृशा सूत्रार्थविषयं प्रश्नमाका र्षुरनगाराएके ऽत्यसौ शकमानोबिभ्यन्न तत्र तेषा मध्ये उपैति याति तथानार्यदेशे न धर्मं कथितवान् आर्येतु देशना करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु ? कुत्रचिदेवेति ततोसौ राग द्वेषाकुलोवीर ॥ १६ ॥

॥ टीका–सएव गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह । (आगंतागारेऽत्यादि) सविप्रतिपन्न सन्नाईकमेवाह । योसौ भवत्सबधी तीर्थंकर सरा गद्वेषत्रययुक्तस्तथाह्यसावागतुकाना कार्पटिकादीनामगारमागतागार तथाऽरामेऽगारमा रामागार तत्रासौ श्रमणोभवत्तीर्थंकर । तुशब्दएवकारार्थे। भीतएवासौ तपध्वसनभयात्त त्रागंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिका· क्रिया कुरुते । कि तत्र भयकार णमितिचेत्तदाह । दक्षा· निपुणा प्रभूतशास्त्रविशारदा· । हुशब्दोयस्मादर्थे । यस्माद्दव संति मनुष्यास्तस्मादसौ तद्भीतोन वास तत्र समुपैति न तत्र समातिष्ठते । किंभूता न्य ना· स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा तान्या पराजितस्य महाश्छायाभ्रंशइति । तानेव विशिनष्टि । लपंतीति लपावाचाला घोपितानेकतर्कविचित्रदंडकास्तथा न लपामौनव्र तिकानिष्ठितयोगा· गुटिकादियुक्तावा य द्दशादभिधेयविषयावागेव न प्रवर्तते त सौ युष्मत्तीर्थकृदागंतागारादौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह । (

ड कोण ? ते कहेछे (वयंतिजेयाविपडिस्सुणति के०) एक तो जे खलपिंमीनी बुद्धियें पु रुपनें पचावे, अने तेमाहे पाप नथी एम कहे, अने बीजो जे तेमनु एवुं वचन अंगी कार करे, ए बेहुने नलूं नथी. एवी नावशुद्धियें मोक्ष नथी, माटे हुं एवो मा र्ग केम आदरुं ? ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–स्नातकाबौद्धशिष्यास्तेषां भिक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे बौद्धधर्मे कश्चि डुपासक पचनाद्यारम्नं कृत्वापि नोजयेत् ते बहवोपि श्रद्धालव पुण्यस्कंधं महांतं स मावर्ज्यारोप्याख्यादेवानवति महासत्वा ॥ २९ ॥ बौद्धैरित्युक्ते आर्द्रक प्राह । यत्त व मते कथितं तत्संयतानामयोग्यरूपमघटमानमिदं यत्प्राणानामिंद्रियादीनां घातेन पा पं कृत्वा तदनाव वदंति खलबुद्ध्या पुरुषं घ्नतोपि न पापमिति पुरुषबुद्ध्या खलघाती पा पवानिति वचनं तेषां अबोध्ये अबोधिलाजार्थं तयोर्द्वयोरपि स्यात् । कौ द्वौ ? ये एव पू र्वोक्तं वदंति येच तेन्यः शृण्वति तयोर्द्वयोरपि असाध्वेतत् अज्ञानावृतमूढजननावशु द्ध्या शुद्धिर्न स्यादित्यर्थ ॥ ३० ॥

॥ टीका–पुनरपि शाक्यएव दानफलमधिकृत्याह । (सिणायगाणमित्यादि) स्नात कावोधिसत्वा । तुशब्दात्पंचशिक्षापदिकादिपरिग्रह । तेषां निक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे शाक्य पुत्रिये धर्मे व्यवस्थित कश्चिडुपासक पचनपाचनाद्यपि कृत्वा नोजयेत्समासगुडदाडिमे नेष्टेन नोजनेन ते पुरुषामहासत्वा श्रद्धालव पुण्यस्कधं महांत समावर्ज्य तेनच पुण्य स्कधेनारोप्याख्यादेवानवत्याकाशोपगा सर्वोत्तमा देवगतिं गछतीत्यर्थ ॥ २९ ॥ तदेव बुद्धेन दानमूल शीलमूलश्च धर्मं प्रवेदितस्तदेह्यागछ बौद्धसिद्धांत प्रतिपद्यस्वेत्येव नि क्षुकैरनिहितः सन्नार्द्रकोऽनाकुलया दृष्ट्या तान्वीक्ष्योवाचेदं वक्ष्यमाणमित्याह । (अ जोगरूवमित्यादि) इहास्मिन्नवदीये शाक्यमते सयताना निक्षूणा यदुक्त प्राक् दत्यंते नायोग्यरूपमघटमानकं तथा ह्यहिंसार्थमुत्थितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य पंचसमितिसमितस्य स त. प्रव्रजितस्य सम्यक् ज्ञानपूर्विका क्रिया कुर्वतोनावशुद्धि फलवती नवति तद्विपर्य स्तमतेस्त्वज्ञानावृतस्य महामोहाकुलीकृतांतरात्मतया खलपुरुषयोर्विवेकमजानत. कुत्त नादिकं तथा बुद्धस्यैवान्नबुद्ध्यापिशितनक्षणानुमत्यादिकमिति । एतदेव दर्शयति । प्राणा नामिंद्रियाणामपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्पापमेव कृत्वा रससातागौरवादिगृद्धास्तदना व व्यावर्णयत्येतच्च तेषां पापानावव्यावर्णनमबोध्यै अबोधिलानार्थं तयोर्द्वयोरपि सपद्यते ऽतोसाध्वेतत् । कयोर्द्वयोरित्याह । ये वदंति पिण्याकबुद्ध्या पुरुषपाकेपि पातकानाव येच

तः समस्तैरपि प्रावाडकैर्मुखमप्यवलोकयितु न शक्यते वादस्तु दूरोत्सादितएवेत्यत कुतस्तस्य पराजव. । जगवांस्तु केवलालोकेन यत्रैव स्वपरोपकार पश्यति तत्रैव गत्वा पि धर्मदेशनां विधत्तइति ॥ १८ ॥

पन्नं जहा वणिए उदयठी, आयस्स हेउं पगरेति संगं ॥ तऊवमे समणे नायपुत्ते, इच्चेव मे होति मती वियक्को ॥१ए॥ नवं न कुज्जा विहुणे पुराणं, चिच्चा मई ताइयमाह एवं ॥ पन्नावया बंजवतित्ति वुत्ता तस्सोदयठी समणे त्तिबेमि ॥ २० ॥

अर्थ—वली बीजा प्रकारे गोशालक केहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! (पन्नंजहावणिए उदयठी के०) जेम कोइ वाणियो उदयार्थी एटले लाजार्थी थतो व्यवहार योग्यकरियाणुं एटले कर्पूर, अगर, कस्तूरी, अने वस्त्रादिक, ते देशातरथकी लेइ आवे (आयस्सहेउंपगरेतिसगं के०) पोताना लाजनें अर्थे महाजननो सग करे,(तऊवमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम तमारो तीर्थंकर श्रमण, ज्ञातपुत्र पण ते वाणियासमान जाणवो. केमके, कोइ एक लाजनें अर्थे अनेक महाजनना वृंद माहे बेसेछे, (इच्चेवमेहोतिमतीवियक्को के०) माटे ए प्रकारे महारी मतिछे, अने एवो माहारो वितर्कछे, एटले विचारणा छे, इत्यर्थ. ॥१ए॥ हवे गोशालक प्रत्ये आर्द्रकुमार कहेछे के. अहो गोशालक! जे, तें ए वाणियानो दृष्टात देखाड्यो, ते सर्वथकी सरखो, किंवा देशथकी सरखो ? माटें जो ते दृष्टांत देशथकी सरखोछे, ए रीतें ते जो वाणियानो दृष्टात देखाड्यो होय तो, ए वातें अमने अलाज कांइ नथी कारण के, वाणियो ज्या ज्या लाज देखे, त्या त्या क्रय विक्रयादिक व्यापार करे ए प्रकारे ए तहारो दृष्टांत देश पणाथी सरखोछे अथवा जो सर्वथकी सरखोछे ? एम तुं कहीश तो, ए वात, घटेज नहीं,कारणके,जगवत श्री महावीर देव,सावद्यानुष्ठान रहित,(नवनकुज्जाविहुणेपुराण के०) तथा ते नवु कर्म कोइ पण करे नहीं,अने पुरातन कर्मने खपावे एवाछे.तथा (चिच्चामइ के०) चिच्चा एटले विशेषें त्याग करीछे अमइ एटले डुर्मतिने जेणे, (ताइयमाहएव के०) त्रायी एटले छ जीवनिकायनो रक्ष पाल, एव एटले एवा जे श्री महावीर स्वामी ते (पन्नावयाबंजवतित्तिवुत्ता के०) एम कहे के, जेम डुर्गतिने परित्यागी जीव मुक्तिगामी थाय, एवु बोलें, स्वामीनुं वचन ते ब्रह्मव्रत छे एटले ब्रह्म शब्दें मोक्ष व्रत कह्यु. एवु ब्रह्मव्रत रूप जे स्वामिनुं वचन तेनें मान्य करी, अनेक लोक मुक्तिये जाय एटले डुर्मतिनें परित्यागें जीव मुक्तिगामी थाय. (तस्सोदयठीसमणेत्तिबेमि के०) तेना लाजना अर्थी श्रमण श्री महावीरदेवज जाणवा,

ऽनार्यएव। क. संनव. पिण्याकपिंमयां पुरुषबुद्धे ? अतोवागप्येषाऽसत्या कथिता तस्मात्पि ण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दनीरुणा साशंकेनैव प्रवर्त्तितव्यं ॥ ३२ ॥

॥ टीका–परपक्षं दूषयित्वाऽर्द्रकः स्वपक्षाविर्नावनायाह । (उड्ढमहेयमित्यादि) ऊर्ध्व मधस्तिर्यक्षु यादिश प्रज्ञापनादिकास्तासु सर्वास्वपि दिक्षु त्रसाना स्थावराणां च जंतूनां यत्त्रसस्थावरत्वेन जीवलिंगं चलनस्पंदनांकुरोद्भवछेदम्लानादिक तद्विज्ञायते नूतानिशं कया जीवोपमर्दोत्र नविष्यतीत्येवबुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तदुपमर्द्द परिहरन् व देत् कुतोप्यत कुतोस्तीहास्मिन्नेवनूतेऽनुष्ठाने क्रियमाणे प्रोच्यमाने वास्मत्पक्षे युष्मदा पादितोदोषइति ॥ ३१ ॥ अधुना पिण्याके पुरुषबुद्ध्याऽसन्नवमेव दर्शयितुमाह । (पु रिसेत्यादि) तस्या पिण्याकबुद्ध्या पुरुषोयमित्येवमत्यंतजडस्यापि विज्ञप्तिरेव नास्ति त स्मायएव वक्ति सोऽत्यंतोपुरुषस्तथान्युपगमेन हुशब्दस्यैवकारार्थत्वेऽनार्यएवासौ य· पुरु षमेव खलोयमिति मत्वा हतेपि नास्ति दोषइत्येव वदेत् । तथाहि । क संनव पिमयां पुरुषबुद्धेरित्यतोवागपीयमीदृगसत्येति सत्वोपघातकत्वात्ततश्च नि शंकप्रहार्यनालोचको निर्विवेकतया बध्यते तस्मात्पिण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दनीरुणा सा शकेन प्रवर्त्तितव्यमिति ॥ ३२

वायाभियोगेण जमावहेज्जा, णो तारिसं वायमुदाहरिज्जा ॥ अ
ठाणमेयं वयणं गुणाणं, णो दिक्खिए बूयसुरालमेयं ॥३३॥ लद्धे
अठे अहो एव तुप्भे, जिवाणुभागे सुविचिंतिएव ॥ पुव्वं समुद्दं अ
वरं च पुठे, उलोइए पाणितले ठिएवा ॥ ३४ ॥

अर्थ–वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, (वायाभियोगेण के०) वचननें अभियोग पणे एटले (जमावहेज्जा के०) वचन मात्र बोलता थकां पण जे पाप लागे, (णोता रिसवायमुदाहरिज्जा के०) तादृश तेवु वचन विवेकी पुरुष न बोले. (अठाणमेयंवय णगुणाणणोदिक्खिएबूयसुरालमेयं के०) गुणनुं अस्थानरूप एवु असार वचन, तेने जे दीक्षित माह्यो पुरुष होय ते न बोले, के जे खलपिमने पुरुष, अनें पुरुषनें खलपिम, तथा तुंबडाने बालक, अने बालकने तुंबडुं, इत्यादिक वचन उत्तम पुरुष न बोले इत्य र्थ· ॥३३॥ वली पण आर्द्रकुमारजी कहेछे के, (लद्धेअठेअहोएवतुप्भे के०) अहो शाक्य दर्शनीओ तमने एवे ज्ञाता पणे करीनें जाणिये छैये, जे तमोनें विज्ञान ते यथावस्थित तत्व, जाण्युं एटले तमे तत्व पाम्या (जिवाणुभागेसुविचिंतिएव के०) तथा तमे जीवनो अनु भाग जे कर्मविपाक, ते रुडीरीतें चिंतव्यो, (पुव्वसमुद्दअवरचपुठे के०) तथा एवा वि

सिणो मेहुणसंपगाढा, ते भोयणठा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्झोववन्ना, अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (समारभंतेवणियाभूयगामं के०) ते वाणियो चतुर्दश प्रकार पणे, भूतग्राम एटले जीवनो समूह समारंभे, एतावता छकायनी हणनार एवी क्रियानें विषे प्रवर्त्तें, एटले क्रयविक्रयने अर्थें शकट, उंट, घोडा, तथा बलदनें पीडा उपजावे, (परिग्गहंचेवममायमाणा के०) तथा परिग्रह, चतुष्पदादिक तेनें विषे ममत्व करे. वली (तेणातिसजोगमविप्पहायआयस्सहेउपगरतिसग के०) ते वाणिया ज्ञाति स्वजनादिकनो संयोग छांड्याविना, लाभनें कारणे अन्य बीजा साथें संबंध करे, अनें श्री वीतराग तो केवा छे ? तो के, छजीवनिकायना रक्षपाल, नि परिग्रही, ज्ञातिस्वजननो संग त्यागीने, सर्वत्र अप्रतिबंध नि केवल धर्मनोज लाभ गवेषता धर्म देशना आपेछे ए कारणमाटें भगवत अनें वाणियानें सर्वथकी सरखा पणुं नथी ॥२१॥ वली आर्द्रकुमारज कहेछे के, हे गोशालक ! (वित्तेसिणो के०) वली वाणिया वित्त एटले धनना गवेषण हार होय, तथा (मेहुणसपगाढा के०) मैथुननें विषे आसक्त होय, (तेभोयणठावणियावयंति के०) तथा भोजनने अर्थें ज्यां त्यां परिभ्रमण करे,माटें अमे ते वाणियाने एवा कहियें छेयें (वयंतुकामेसुअज्झोववना के०) वलीजो ते वाणीया कामभोगने विषे गृद्ध, तथा (अणारियापेमरसेसुगिद्धे के०) अनार्य कर्मना करनार, तथा प्रेमरसने विषे गृद्ध एटले मूर्छित छे, अनें भगवत श्री अरिहंत देव एवा नथी. तो ते वाणिया नी साथे सरखा पणु भगवतनें केम कहियें ? ॥ २२॥

॥ दीपिका–वणिजोभूतग्राम समारभते हिंसति परिग्रह स्वीकुर्वंति ममायमाणाम मेदमिति व्यवस्थापयत ते वणिजोज्ञातिसंयोगमविप्रहायात्यक्त्वा यस्य लाभस्य हेतोरपरेण सह संग संबंधं कुर्वंति ॥ २१ ॥ वणिजोवित्तैषिणोधनार्थिन मैथुने संप्रगाढा प्रसक्ता तथा ते भोजनार्थमहारार्थमितश्चेतश्च व्रजति । वयंतु एव ब्रूमोयथा ते वणिज कामेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्या प्रेमरसेषु गृद्धा अतोभगवत सर्वसाधर्म्यं नास्ति ॥ २२॥

॥ टीका–नचैवभूतावणिजइत्येतदार्द्रककुमारोदर्शयितुमाह । (समारभतइत्यादि) ते हि वणिजश्चतुर्दशप्रकारमपि भूतग्रामं जंतुसमूह समारभते तदुपमर्दिका क्रिया प्रवर्तयंति क्रयविक्रयार्थं शकटयानवाहनोष्ट्रमण्डिकादिनिरनुष्ठानैरिति तथा परिग्रह द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिक ममीकुर्वंति ममेदमित्येव व्यवस्थापयंति ते हि वणिजोज्ञातिभिः स्वजनैः सह य संयोगस्तमविप्रहायापरित्याज्य यस्य लाभस्य हेतोर्निमित्तादपरेण सार्धं

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार जैनमतनी स्थापना करेछे (जीवाणुनागंसुविचिंतयंता के०) जिनशासननें विषे प्रतिपन्न जे पुरुष ते, जीवनो अणुनाग अवस्थाविशेष, तेनुं मर्दन जे पीडानी उत्पत्तिरूप दुःख तेने रुडी रीते चिंतवता थका, (आहारियाअन्नविहायसोहिं के०) आहारिया एटले अन्नपाणीनें विषे विशुद्धता आदरेछे. एटले बहेंतालीश दोष रहित एवो विशुद्ध आहार लियेछे, परंतु तमारी पेठे मांसादिक पण, पात्रें पड्यो दोष नणी न थाय, तेम तेनें नथी ? अनें तमे तो केवाछो, तो के (नवियागरेछन्नपउपजीवि के०) छिन्नपदोपजीवि एटले हिंसाने स्थानके करी उपजीवन करोछो, पण इत्यादिक वचन प्रसिन्नपणे न बोलो तेवा जैनमतना धारक पुरुष न होय ? (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) ए पूर्वोक्त निर्दोष आहारनें लेवे करी, छ कायने पालवे करी, तीर्थकरनें अनुधर्म, होय. ते संयत एटले साधुनो धर्म जाणवो ॥३५॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे, शुं कहेछे ? तो के, (सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक जे बौद्धमति दर्शन धारक तेना बे हजार भिक्षुक एटले शाक्यपुत्रीयधर्में प्रवर्त्तता भिक्षुक तेने (जेनोयएनिइएभिरकुयाण के०),जे पचन पाचनादिक क्रिया करीने नित्य जमाडे, तेने लाभ थायछे, पुण्य थायछे, एवुं तमे कहोछो परंतु, (असजएलोहियपाणिसेऊ के०) ते असंयत लोहितपाणि एटले जेना हाथ सदा काल लोहियें करी खरडयाछे तेवो ते अनार्य पुरुष, (णियछतीगरिहमिहेवलोए के०) प्रथमतो आ लोकमांहेज गर्हा पामे, अने परलोके परनवे दुर्गतिमां जाय केमके एवा सावद्यानुष्ठानना करनार, अनक्ष्य अने अपेयनुं जे दान, तेना अनुमोदनार एवा कुपात्रने जे दान देवु. ते कर्म बंधनुं कारणछे ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—सोपहासमुक्त्वार्द्रकमुनिः स्वपक्षमाह जिनमतप्रतिपन्नाः जीवानुनागं सुष्ठु विचिंतयतोऽन्नविधौ शुद्धिमाहृतवतः स्वीकृतवत । नवता तु मांसाद्यपि पात्रपतितं न दोषाय तथा छन्नपदं मातृस्थानं तेनोपजीवी सन्न व्यागृणीयात् मायया न वदेदित्यर्थः । एषधर्मोऽनुधर्मइह जैनमते संयतानां साधूनां अर्हदनुष्ठानानंतरं स्यादित्यनुधर्मः ॥३५॥ स्नातकानां बौद्धानां भिक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं नोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषयति । असंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरिहैव लोके सगर्हां नियछति निश्चयेन गछति॥३६॥

॥ टीका—तदेवं परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षस्थापनायाह । (जीवाणुनागमित्यादि) मौनींद्रशासनप्रतिपन्नाः सर्वज्ञोक्तमार्गानुसारिणोजीवानामनुनागमवस्थाविशेषं तदुपमर्दनपीडां वा सुष्ठु विचिंतयंतः पर्यालोचयतोन्नविधौ शुद्धिमाहृतवतः स्वीकृतवतोद्विचत्वारिंशद्दोषरहितेनाशुद्धेनाहारेणाहारं कृतवतोनतु यथा नवता पिशिताद्यपि पात्रपतितं न दो

के, त्रायी एटले आसन्न नव्यनें डुःखथकी राखनार बे, तथा ज्ञानी एटले जाणेली व स्तुबे विद्यमान जेनें एवा जगवतने वाणियानी उपमा केम देवाय ? ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–सारंजपरिग्रहं वाऽव्युत्सृज्याऽत्यक्का तत्रैव नि सृतावद्धाआत्मैव दंनोहि सकोयेषां ते तथा तेषां च वणिजामुदयोलाजोयदर्थं ते प्रवृत्ता य च त्व लाज वदसि स तेषा चतुरंतश्चतुर्गतिकोय ससारोऽनतस्तस्मै तदर्थं जवति तथा डु खाय जवति नच स लाजोऽपि तस्यैकांतिक ॥ २३ ॥ एतदेवाह । एकातिक आत्यतिकश्च तेषा वणिजामुद योलाजोन विद्यते । लाजार्थं प्रवृत्तस्य हानेरपि दर्शनात् । एव वदंति तद्विद तौ च द्वावपि जावौ विगतगुणोदयौ ।कोर्थ ।योनैकातिक १ अनात्यंतिकश्च २ किं तेन लाजे नेति य सेतस्य जगवतउदयोलाजोधर्मदेशनादि. सच सादिरनतश्च एवजूतमुदयं प्राप्तो ऽन्येषामपि तादृशं साधयति कथयति । त्रायी ज्ञाती च ज्ञात वस्तु विद्यते यस्य सज्ञा ती ज्ञातसर्वज्ञेय. एवजूतेन जगवता तेषा पूर्वोक्तानां वणिजा कथं सर्वसाम्यमिति ॥२४॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (आरंजगंचेवइत्यादि) आरंजं सावद्यानुष्ठान च तथा परिग्रह वाऽ व्युत्सृज्यापरित्यज्य तस्मिन्नेवारंजे क्रयविक्रयपचनपाचनादिके तथा परिग्रहेचधनधान्यहिर ण्यसुवर्णद्विपदचतुष्पदादिके निश्चयेन श्रितावद्धानि श्रितावणिजोनवति तथात्मैव दंनोदंन यतीति दंनोयेषां ते जवत्यात्मदंनाअसदाचारप्रवृत्तेरिति। जावोपि चैषा वणिजा परिग्रहारंज वता सउदयोलाजोयदर्थं ते प्रवृत्तायं च त्व लाजं वदसि सतेषा चतुरतश्चतुर्गतिकोय ससा रोऽनंतस्तस्मै तदर्थं जवतीति न चेहासावेकांतेन तत्प्रवृत्तस्यापि जवतीति ॥२३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (णेगंतिणच्चंतिइत्यादि) एकांतेन जवतीत्येकातिकस्तथा तद्धाजार्थं प्रवृ त्तस्य विपर्ययस्यापि दर्शनात्तथा नाप्यात्यतिक सर्वकालजावी तत्क्षयदर्शनात्सतेषा उदयोलाजोनैकांतिकोनात्यंतिकश्चेत्येव तद्विदोवदंति । तौच द्वावपि जावौ विगतगुणो दयौ जवत । एतडुक्त जवति । किं तेनोदयेन लाजरूपेण योनैकातिकोनात्यतिकश्च प श्चादर्थायेति । यश्च जगवत सेतस्य दिव्यज्ञानप्राप्तिलक्षणउदयोलाजोपोचा धर्मदेशनावाप्त निर्जरालक्षण. सच सादिरनंतश्च तमेवजूतमुदय प्राप्तोजगवानन्येषामपि तथाजूतमेवोदय साधयति कथयति श्लाघते वा । किंजूतोजगवास्त्रायी। अयवयमयपयचयतयणयगताविव्य स्य दंमकधातोर्णिनिप्रत्यये रूपं । मोक्षं प्रति गमनशीलइत्यर्थ । त्रायी वासन्नजव्याना त्राण करणात्तथा ज्ञाती ज्ञाता क्षत्रियाज्ञातं वा वस्तुजात विद्यते यस्य सज्ञाती विदितसमस्तवेद्य इत्यर्थः । तदेवजूतेन जगवता तेषां उवेकिना कथं सर्वसाधर्म्यमिति ॥ २४ ॥

पश्यतांतर । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्य प्राणैर्वियुज्यते" ॥ ३ ॥ तदेव महादोषं मांसादन मिति मत्वा यद्विधेय तद्दर्शयति । एतदेवभूत मांसादनाभिलापरूपं मनोंत करणं कुश लानिपुणामासाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वंति तदभिलापादात्म नोनिवर्त्तयतीत्यर्थ ।आस्ता तावद्भक्षण वागप्येषा यथा मांसभक्षणेऽदोषइत्यादिका नास्त्य निर्वृत्तोक्ता मिथ्या। तुशब्दान्मनोपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तौ चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथाचोक्तं । "श्रुत्वा दुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिना दुर्गति, ये कुर्वंति शुभोदयेन विरति मांसादनस्यादरात् । तद्दीर्घायुरदूषित गदरुजा सनाथ्य यास्यति ते, मर्त्येषून्नटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु चेत्यादि" ॥ ३९ ॥ न केवलं मांसादनमेव परिहार्यमन्यदपि मुमुक्षूणां परिहर्तव्यमिति दर्शयितुमाह । (सव्वेसिमित्यादि) सर्वेषा जीवाना प्राणार्थिना न केवलं पंचेंद्रियाणामेवेति सर्वग्रहणं दयार्थतया दयानिमि त्त सावद्यमारंभं महानय दोषइत्येव मत्वा तत्परिवर्जयंत साधवस्तच्छंकिनोदोषशंकिन ऋषयोमहामुनयोज्ञातपुत्रीया श्रीमन्महावीरवर्द्धमानशिष्या· उद्दिष्ट दानाय परिकल्पि तं यद्भक्तपानादिक तत्परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा, सव्वेसिपाणाण निहाय दंम्॥ तम्हा ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोणुधम्मो इह संजयाणं॥ ४१ ॥ निग्गं थधम्मंमि इम समाहि, अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥ बुद्धे मुणी सीलगुणोववेए, अवत्तते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥

अर्थ–वली पण साधुनो आचार कहेछे. (भूयाभिसकाएदुगंछमाणा के०) भूत जे प्राणी तेना मर्दननी शकायें सावद्यानुष्ठाननें दुगछता निदता, तथा (सव्वेसिपाणाण निहायदम के०) सर्व प्राणीनो दंम एटले विनाश, तेनें निहाय एटले वामीनें त्याग करी ने सम्यक् आचारे प्रवर्त्तता एवा साधु (तम्हाणभुजतितहप्पगार के०) ते कारणें त था प्रकारना एटले आधाकर्मादिक दोषें दूषित एवा ते आहारने ण भुजति एटले न ज मे, न भोगवे (एसोणुधम्मोइहसजयाण के०) आ जगतमांहे यतिनो धर्म, ते अ णुधर्म, एटले श्री तीर्थंकरनी पठवाडे जाणवो जेम श्री तीर्थंकरे निर्दोष आहार ग्रह णादिक धर्म आचर्यो, तेम तेनें अनुसारें साधु पण, एहिज धर्म आचरे इत्यर्थ ॥ ४१ ॥ व ली पण साधुनो आचार कहेछे (निग्गथधम्ममिइमसमाहि के०) नथी जेने विषे बा ह्य अनें अभ्यतर ग्रंथि एवो जे धर्म, तेने विषे ए पुर्वोक्त जे समाधि एटले सुजता अहारनु ले वु, (अस्सिंसुठिच्चाअणिहेचरेज्जा के०) इत्यादिकनें पामीनें सम्यक् अनुष्ठानरूप समाधिनें

णामज जाणवु, चित्तमांहे जो जीवघातनो परिणामछे तो अणकखु थकुं पण, प्राणघातनुं पाप लागेछे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—असौ नगवान्समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसन् । कोर्थः । नहि तत्रार्हत कोप्याशंसाप्रतिबंधोवास्ति साम्यरसलीनत्वात् । सर्वेषा प्रजाजतवस्तेषामनुकंपी एवविध धर्मे स्थितं तं नवादृशाआत्मदंनैः समाचरतोवणिगादितुल्यं कुर्वंति एतच्चावोधेरज्ञातस्य प्रतिरूपं अज्ञानविलसितमित्यर्थ । एव गोशाले निराकृते बौद्धाः प्राहुस्त्वया वणिग्दृष्टां तदूषणेन बाह्यानुष्ठानदूषितं तद्वर कृतं यतोऽस्मत्सिद्धांतेप्यांतरमेवानुष्ठानं नवमोक्षयो प्रधानांगमिति । तत्त्व शृणु ॥२७॥ पिण्याकः खलस्तस्य पिंमी शकलमचेतनमपि कदाचि न्म्लेछादिविषये संभ्रमे केनचिन्नश्यता खलोपरि वस्त्रं हिप्तं तच्च म्लेछेन पुरुषोयमिति बुद्ध्या गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टिता खलपिंमी पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नौ पचेत् अस्माकं मते सप्राणिवधेन लिप्यते चित्तस्य डुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

॥ टीका—सांप्रतं कृतदेवसमवसरणपद्मावलीछेवछंदकसिंहासनाद्युपनोग कुर्वन्नप्याधाकर्म कृतवसतिनिषेधकसाधुवत्कथ तदनुमतिकृतेन कर्मणाऽसौ न लिप्यतइत्येतजोशालकमत माशंक्याह । (अहिंसयमित्यादि) असौ नगवान् समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसक स न्नुपनोगं करोति । एतडुक्त नवति नहि तत्र नगवतोमनागप्याशसाप्रतिबंधोवा विद्यते स मतृणमणिमुक्तालोष्टकांचनतया तडुपनोगं प्रति प्रवृत्तेर्देवानामपि प्रवचनोद्भिनायिपूणा क थंनु नाम नव्यानां धर्मानिमुख प्रवृत्तिर्यथा स्यादित्येवमर्थमात्मलानार्थं च प्रवर्त्तनादतोन्न गवानहिंसकस्तथा सर्वेषा प्रजायंतइति प्रजाजतवस्तदनुकपी च तान्ससारे पर्यटतोनुकंपयते तच्छीलश्च तमेवरूपं धर्मपरमार्थरूपे व्यवस्थित कर्मविवेकहेतुनूतं नवद्विधाआत्मदंभे समा चरंतआत्मकल्पं कुर्वंति । वणिगादिनिरुदाहरणैरेतच्चावोधेरज्ञानस्य प्रतिरूपं वर्तते एकं ता वदिदमज्ञानं यत्स्वत कुमार्गप्रवर्तनं । द्वितीयं चैतत्प्रतिरूपमज्ञान यन्नगवतामपि जगद् द्यानां सर्वातिशयनिधानजूतानामित रै समत्वापादनमिति ॥ २५॥ साप्रतमार्द्रककुमारम पहस्तितगोशालकं ततोनगवदनिमुखं गछतं दृष्ट्वाथातराले शाक्यपुत्रीयानिक्षवइदमूचुर्य देत दणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यमनुष्ठान दूषितं तच्छोननं कृतं नवता यतोऽतिफल्गुप्रायं बाह्य मनुष्ठानं आंतरमेव त्वनुष्ठानं ससारमोक्षयो प्रधानागमस्मत्सिद्धांते चैतदेव व्यावर्ण्यते । इ त्येतदार्द्रककुमार नो राजपुत्र ! त्वमवहित शृणु श्रुत्वाचावधारयेति नणित्वा ते निक्षुका आंतरानुष्ठानसमर्थकमात्मीयसिद्धांताविर्नावनायेदमाहु । (पिन्नागेत्यादि) पिण्याक,

संसारातरवर्त्यपीह लनते शं मुक्तवन्निर्नय., संतोपात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेश्चिंत " इत्यादि ॥ ४२ ॥

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए माहणाणं॥ ते पुन्नखधे सुमहङ्गणित्ता, नवंति देवा इति वेयवाउ ॥४३॥ सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए कुलालयाणं॥ से गच्छति लोलुवसंपगाढे, तिव्वान्नितावी णरगान्निसेवी ॥ ४४ ॥

अर्थ–ए रीतें आर्द्रकुमार गोशालक तथा बौधमतिउने परास्त करीने आगल चाल्यो तेवारें, वच्चे ब्राह्मण मल्या, ते ब्राह्मण बोल्या के,अहो आर्द्रकुमार! तें रूडूं कर्युं के, जे ए पूर्वोक्त वेद मत वेदबाह्य हता, तेनुं ते निराकरण कर्युं, तो हवे ए जैनमत पण वेद बाह्यछे. एवु जाणीने, तमारा सरखाने आश्रय करवा योग्य नथी केमके,तु क्षत्री छो अने क्षत्रीनें सर्व वर्णोत्तम एवा ब्रह्मणनेज सेववा योग्यछे, परतु शूद्र सेववा नही ए कारण माटें वेदोक्त विधियें यज्ञादिकमार्गेनी तमारे सेवा करवी. इत्यादिक ते ब्राह्मणो पोतानो मार्ग देखाडेछे (सिणायगाणतुडुवेसहस्से के०)स्नातक एटले पट्कर्मने विषे निरत, अनें वेदना नणनार, पोताना आचारने विषे तत्पर,नित्य स्नातक, ब्रह्मचारी, एवा बे सहस्र(माहणाण के०) ब्राह्मणनें(जेनोयएणितिए के०)जे पुरुष नित्य जमाडे, एटले तेनें मनोवाछित आहार आपे, (तेपुन्नखधेसुमहङ्गणित्ता के०) ते पुरुष घणो महोटो पुण्यनो स्कध उपार्जन करीने, (नवंतिदेवाइतिवेयवाउ के०) देवता थाय एवु अमारा वेदनुं वाक्यछे, एम जाणीने ए वेदोक्त मार्ग आदर्यो ॥४३॥ हवे आर्द्रकुमार उत्तर कहेछे के, अहो ब्राह्मणो! (सिणायगाणतुडुवेसहस्से के०) स्नातकना बे सहस्रनें (जेनोयएणितिएकुलालयाण के०) जे दातार नित्य जमाडे ते स्नातक केवाछे तोके, कुलालग एटले मार्जार ते सरखा ब्राह्मण पण जाणवा, कारण के, ए पण सावद्याहार वाछता, सर्वकाल घर घरने विषे भ्रमण करे एवा, एक निंद्य आजीविकाना करनार, ते कुपात्रनें दान देवाथी,(सेगच्छति लोलुवसपगाढे के०)ते लोलपी ब्राह्मण सहित एवो दातापण गच्छति एटले दुर्गतियें जाय, दुर्गतिमां कया स्थानके जाय ? तोके, (तिव्वान्नितावीणरगान्निसेवी के०) तीव्रवेदना सहन करनार, एतावता तेत्रीश सागरोपम पर्यंत पूर्ण आयुष्ये ते बहु जण नरकना स्थानकनें विषे नारकी थाय ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका–एव गोशालकमते बौद्धमते च निरस्ते [illegible] नो आर्द्रकुमार! शो
नन रुतं यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते क्षिप्ते अथ [illegible]

॥ टीका–अमुमेव दृष्टांत वैपरीत्येनाह । (अहवावीत्यादि) अथवापि सत्पुरुष खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछ शूलप्रोतमग्नौ पचेत्तथा कुमारक बाल तुवकबुद्ध्याग्नावेव पचेन्न वमेवासौ प्राणिवधजनितेन पातकेन लिप्यतेऽस्माकमिति ॥ २७ ॥ किंचान्यत् । (पुरिसमित्यादि) पुरुष वा कुमार वा विध्वा शूले कश्चित्पचेज्जाततेजस्यग्नावारुह्य खलपिन्नीयमिति मत्वा सती शोनना तदेतद्बुद्धानामपि पारणाय नोजनाय कल्पते योग्य नवति किमुतापरेषामेव सर्वास्ववस्थास्वचिंतित मनसा संकल्पित कर्मचयं नागछत्यस्मत्सिद्धाते । तडक्त अविज्ञानोपचित परिज्ञानोपचितमीर्यापथिक स्वप्नांतिक चेति कर्मोपचय न याति ॥२८

सिणायगाण तु दुवे सहस्से, जे नोयए णितिए निरकुयाण॥ ते
पुन्नखंधं सुमहं जिणित्ता, नवंति आरोप्प महतसत्ता॥ २ए॥ अ
जोगरूवं इह संजयाणं, पावं तु पाणा णयसंस्काउं॥ अवोहि
ए दोएहवि तं असाहु, वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥

अर्थ–हवे वली शाक्यदर्शनीउ दानफलनो अधिकार कहेले (सिणायगाणतुदुवेसहस्से के०) स्नातक एटले बौद्धमत प्रधान दर्शनी, तेना जे बे सहस्र तेनें (जेनोयएणितिएनिरकुयाण के०) जे कोइ पोताना शाक्यपुत्रीय धर्मे प्रवर्त्ततो एवो उपासक, पचनादिक क्रिया करीने निक्षुने निरंतर जमाडे, (तेपुन्नखधंसुमहजिणित्ता के०) ते पुरुष महान् पुण्यस्कध उपार्जीनें, (नवंतिआरोप्पमहतसत्ता के०) महोटा सत्ववालो एटले अद्धावंत थको आरोप्य एवे नामे सर्वोत्तम देवता थाय. इत्यर्थ ॥ २ए ॥ ए रीतें बौद्धदर्शनी पोताना धर्मनु रहस्य, आर्द्रकुमार प्रत्ये देखाडीने तेने कहेवा लागा के, अहो आर्द्रकुमार ! तु अमारो धर्म मान्य कर! एवु कहे थके, हवे आर्द्रकुमार तेमने कहेले के, अहो शाक्यदर्शनीउ ! (अजोगरूवइहसजयाण के०) अही तमारा दर्शननें विषे जे पूर्वे नोजन आश्री वचन कह्यु ते, सयतपणाने अयोग्य ले कारणके, अहिंसानें अर्थे प्रवर्त्तमान, समिति अनें गुप्तिये करी सहित, एवा साधु होय, तेने नावशुद्धि फलदायिनी थाय ए वात खरीले, परतु तमारी वक्तव्यतायें, खल अनें पुरुषनी व्यक्ति पण जे न जाणे; तेनेंज नावशुद्धि कही ए कारणेल बौद्धमतिउ खलपिन्नीनी बुद्धिये पुरुषनो विनाश करीने, तेना गुरुनें मांस नक्षण करावे. ते अत्यंत अयुक्तले, तेज कहेले (पावतुपाणाणयसंस्काउं के०) प्राणी एटले जीव, तेना विनाशरूप पाप करीनें, प्रकर्षे रसगृद्ध थका वली तेनेंज पुण्य बोले माटें,(अवोहिए दोएहवितअसाहु के०) ए पाप, अवोधीनु कारणले तेथी ते बेहुने असाधु जाणवा, ते

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (दयावरंधम्मडुगंछमाणा के०) जेमां दया प्रधानछे एवा धर्मने निंदता, (वहावहंधम्मपससमाणा के०) तथा हिंसारूप धर्मनी प्रशंसा करता, (असीलं के०) आचार रहित एवा, (एगंपि के०) एकनें पण (जेनोयपती के०) जे कोइ नृप राजा अथवा बीजो कोइ मूढमति धार्मिक पुरुष, पात्रनी बुद्धिये करी जमाडे, तो (णीयोणिसजातिकुउंसुरेहिं के०) ते नृप राजा, अथवा बीजो कोइ मूढमति पुरुष होय, ते निशा एटले सदैव कृष्णांधकार रात्रीसमान काल वर्त्तेछे जेमां एवी नरकभूमिनेविषे नरकमांहे जाय ए वचन सत्य करी जाणवुं अनें तमें कह्यु जे देवता थाय, ते वात मृषाछे तेवा पुरुषनें असुरनें विषे पण गति न जाणवी, तो वैमानिक देवता क्याथी थाय ! ॥ ४५ ॥ हवे आर्द्रकुमार ब्राह्मणोनो मत परास्त करीनें आगल चाल्यो, एटले एक दंमिया सांख्य मति मल्या, ते एम कहेछे के, अहो आर्द्रकुमार ! तें रूडू कीधु के, जे ए ब्राह्मणो सर्व आरंभने विषे प्रवर्त्तता गृहस्थ छता, पोतामां गुरुपणुं मानता, एवा ए राक्षस सरखा ब्राह्मणनुं निराकारण कर्युं? सांप्रत अमारा सिद्धांतसाथे तमारासिद्धांतनो कांइ भेद नथी, अमारो सिद्धांत पंचविंशति तत्वरूपछे हवे ते पण कहुछु सांजल, हैयानेविषे धारण कर. (डुहउविधम्मंमिसमुठियामो के०)जे अमारो धर्म, अने तमारो धर्म, ए बेहु सरखाज जाणिये छैये कारण के, तमारे पण जीवनें अस्तिभावे पुण्य, पाप, बंध, अने मोक्षनो सद्भावछे,अनें अमारे पण एमज छे. तमारे पण पांच महा व्रतछे, अनें अमारे पण अहिंसादिक पांच यमछे,तथा इंद्रिय अनें नोइंद्रियना नियमो तो आपण बेहुने सरखाजछे तेमाटें बेहुधर्मने विषे अमने अने तमने प्रवर्त्तता सम्यक् प्रकारज जाणवो अने(अस्सिसुठिम्रा के०) एहिज धर्मनें विषे रहिनें, (तहएसकाल के०) तथा अतीतकालें, वर्त्तमानकालें, अने आगमिक कालें, जे पूर्वोक्त अंगीकार करेला धर्मना प्रतिपालनहार आपणे छैये तेवा बीजा कोइ नथी (आयारसीलेवुइएहनाणी के०) तथा आपणो आचार जे यम नियमलक्षण, ते प्रधान शील कह्योछे, परतु आजीविकानुं कारण आपणने कोइ पण नथी? तथा वली आपण बेहुनें ज्ञान, मोक्षनुं अंग कहुछे (णसपरायंमिविसेसमछि के०)तथा कर्मे करीने भ्रमण करेछे प्राणी जेमां ते संपराय कहिये, एवो संपराय जे, संसार, ते जेम तमारे नित्यछे, तेम अमारे पण नित्यजछे तेमाटें ए सिद्धांतमां अमारे तमारे विशेष कांइ नथी ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका–दयया वरं प्रधानं धर्मं जुगुप्समानोनिंदन् वधावहं हिंसाकरं धर्मं प्रशंसन्नेकमपि अशील निर्व्रतं षड्जीवोपमर्दनं योभोजयेत्कि पुनर्बहून् नृपोराजाऽन्योवा य कश्चिन्मूढ. सवराको निशेव नित्यांधकारत्वान्निशा नरकभूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वधम

तेन्य· शृण्वत्येतयोर्द्वयोरपि वर्गयोरसाध्वेतदिति । अपिच नाज्ञानावृतमूढजनजावशुद्ध्या शुद्धिर्नवति । यदिच स्यात्संसारमोचकादीनामपि तर्हि कर्मविमोक्षः स्यात्तथा जावशुद्धिमेव केवलामन्युपगछता नवता शिरस्तुमसुंमनपिंमपातादिक चैत्यकर्मादिक चानुष्ठानमनर्थकमापद्यते तस्मान्नैवविधया जावशुद्ध्या शुद्धिरुपजायतइति स्थितं ॥३०॥

नुड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, विन्नाय लिंगं तसथावराण ॥ नूयानिसंकाइ डुगंछमाणा, वदे करेज्जाव कुउ विहत्थि ॥३१॥ पुरिसेत्ति विन्नत्ति न एवमत्थि, अणारिए से पुरिसे तहा हु ॥ कोसंनवो पिन्नगपिंमियाए, वायावि एसा वुइया असच्चा ॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमार, जैनमार्गना गुण कहेछे. (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) उंची, नीची, अने तिर्छि जे दिशिउछे, ते दिशिउने विषे (तसथावराण के०) त्रस अने स्थावर जीवोनी (लिंगं के०) अहिनाण, चलन, स्पंदन, अंकुरोद्भवादिक, उत्पत्तिने (विन्नाय के०) जाणीने, (नूयानिसंकाइडुगंछमाणा के०) नूत जे जीव तेनी अनिगकार्ये के, रखे कोइ जीवनो घात उपजे' एवा नावे पापना नयथकी, सर्व सावद्यानुष्ठानने डुगंछता जीवनां मर्दनने परिहरता थका, (वदे के०) वदे एटले धर्मोपदेश आपे (करेज्जाव के०) तथा यावत् क्रिया अनुष्ठान पण करे,(कुउविहत्थि के०) तो हवे एवी रीतें अनुष्ठान करता, तथा बोलता अमारा पक्षने विषे तमारो उपजावेलो दोष कोइ नथी॥३१॥

हवे खलपिंमीनें विषे पुरुषनी बुद्धिनो असंनव देखाडेछे. (पुरिसेत्तिविन्नत्तिनएवमत्थि के०) खलपिंमीने विषे ए पुरुषजले एवी बुद्धि तो जे अत्यंत मूर्ख होय तेने पण न उपजे? ते कारणें (अणारिएसेपुरिसेतहाहु के०) जे एवी बुद्धि करे, अने एम कहे के एनें हणवामा दोष नथी, ते निश्चे थकी अनाचारी पुरुष जाणवो,(कोसंनवोपिन्नगपिंमियाए के०) खलपिंमिकाने विषे जे पुरुषनी बुद्धि करवी, ते वातज केम संनवें? माटें (वायाविएसावुइयाअसच्चा के०) एवी वाणी बोलवी ते पण असत्य कहीने, माटें एवी नाषानो बोलनार निर्विवेकी, कर्म बंधनें करी बंधाय अने अनंतो संसार वधारे. इत्यर्थः ॥३२॥

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु त्रसस्थावराणां लिंगं जीवत्वचिन्हं विज्ञाय नूताभिशंकया जीवघातोत्र नावीति बुध्द्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तद्घातं परिहरन्वदेत्कुर्यादपीति कुतोस्तीह त्वङ्कोदोषः । न कश्चितत्रास्मन्मते दोषोस्तीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ तस्यां पिण्याकपिंमया पुरुषोयमिति विज्ञप्तिर्मतिर्नास्ति जडस्यापि तस्माद्यएव वक्ति सपुरुषो

अपहसितं वा कुर्यात् यत्किंचिद्वा दद्यात् तथा नास्थिजतूना शकटचरं मारयित्वा ब्राह्मण नोजयेदित्येवमादिका देशना विद्धज्जनमनांसि न रंजयतीत्यतोऽत्यर्थमसमंजसमिव लक्ष्यते युष्मद्दर्शनमिति । तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतब्राह्मणविवादं नगवदंतिकं गच्छंतं दृष्ट्वा एकदंमिनांतराले एवोचुस्तद्यथा जो आर्द्रककुमार! शोजनं कृतं जवता यदेते सर्वारंजप्रवृत्तागृहस्थाः शब्दादिविषयपरायणा पिशिताशनेन राक्षसकल्पा द्विजातयो निराकृता स्तत्साप्रतमस्मत्सिद्धांतं शृणु श्रुत्वाचावधारय । तद्यथा सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंच तन्मात्राणि तेन्य पंच नूतानि तथा चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्येतत्त्वार्हतैरप्याश्रितमत पंचविंशतितत्वपरिज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरित्यतोऽस्मत्सिद्धांतएव श्रेयान्नापरइति ॥ ४५ ॥ तथा न युष्मत्सिद्धांतोतिदूरेण नियतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहुंवीत्यादि) योयस्माद्धर्मोनवदीयश्चार्हत सज्जनयरूपोपि कथंचित्समानस्तथाहि युष्माकमपि जीवास्तित्वे सति पुण्य पापबंधमोक्षसद्भावोन लोकायतिकानामिव तदजावे प्रवृत्तिर्नापि बौद्धानामिव सर्वाधारजूतस्यांतरात्मनएवाजावस्तथास्माकमपि पंच यमाअहिंसादयोजवता च तएव पंचमहाव्रतरूपास्तथेंद्रियनोइंद्रियनियमोप्यावयोस्तुल्यएव तदेवमुजयस्मिन्नपि धर्मे बहुसमाने सम्यगुबानोद्धितायूयं वयंच तस्माद्धर्मे सुष्टु स्थिता पूर्वस्मिन् काले वर्तमाने एष्येच यथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वोढारोन पुनरन्ये यथाव्रतेश्वरयागविधानेन प्रव्रज्या मुक्तवतो मुचति मोक्षति चेति तथाचारप्रधान शीलमुक्तं यमनियमलक्षणं न फल्गुवत्कुकुहकाजीवनरूपमथानंतर ज्ञानंच मोक्षागतयाभिहित तच्च श्रुतज्ञान केवलाख्यंच यथा स्वमावयोदर्शने प्रसिद्धं तथा संपर्य्यते स्वकर्मनिज्रर्भ्यते प्राणिनोयस्मिन्ससंपराय ससारस्तस्मिंश्चावयोर्न विशेषोस्ति । तथाहि । यथा जवतां कारणे कार्यं नैकांतेनासदुत्पद्यते अस्माकमपि तथैव द्रव्यात्मतया नित्यत्व जवद्भिरप्याश्रितमेव तथोत्पादविनाशावपि युष्मदभिप्रेतावाविर्भावतिरोजावाश्रयादस्माकमपीति ॥ ४६ ॥

अवत्तरूव पुरिसं महंतं, सणातणं अक्खयमवयं च ॥ सव्वेसु नूतेसु विसव्वतोसे, चंदोवताराहि समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एव ण मिज्जंति ण संसरती, ण माहणाखत्तिय वेसपस्सा ॥ कीडाय पक्खीय सरीसिवाय नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥

अर्थ—वली एक दंमिज कहेडे (पुरिसं के०) पुरुष शब्दें जीव तेनें जे रीतें तमें जाणोगे, ते रीतें अमे पण जाणियें ठयें (अवत्तरूव के०) आत्मा अव्यक्तरूपढे, कर चरणादिक जे अवयव तेणे करी लख्योनजाय ते कारण माटें अव्यक्तरूपढे

ज्ञानें करी तमारो यश पूर्व अनें पश्चिम समुद्र सुधी पहोंतो, विस्तार पाम्यो, (वलोइए पाणितलेठिएवा के०) तथा तमोयें एवे विज्ञाने करी, अवलोकन करवे करी, ए लोकनें पाणितलस्थितनी पेठे अवलोक्यो, तो अहो ! अमे तमारा विज्ञानना अतिशयनु वर्णन शुं करियें ? एवु तमारा सरखुं ज्ञातापणुं क्यांही पण देखातु नथी,जे खलपिंड अनें पुरुष, तथा तुबडुं, अने बालकनो अंतर काइ पण जणाय नही, तो वली हवे जाणपणामा बाकी पण शुं रह्यु? ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका–वाचानियोगोवागनियोगस्तेन यदावहेत्कुर्यात् पापं कर्म तादृशीं वाच नोदाहरेन्न वदेत् एतद्वचनं गुणानामस्थानं दीक्षितोन ब्रूयात् उदार सुप्नु निःसारमिति यत्खलेपि पुरुष· पुरुषोपि खल· अलाबुकं बालक बालकोवाऽलाबुकमिति निःसारत्वमित्यर्थः॥ ३३ ॥ अहो ! एवमगीकृते सति युष्माभिरथानन्तरमर्थस्तत्व लब्धं जीवानामनुकर्मविपाक· नाग सुविचिंतित एवन्नूतेन ज्ञानेन नवतां यश पूर्वं समुद्रमपर च पृष्ठ गतमित्यर्थ । नवद्भिरवलोकितएवायं लोक पाणितलस्थितइवेति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (वायानियोगेणमित्यादि) वाचानियोगोवागनियोगस्तेनापि यद्यस्मादावहेत्पाप कर्म ततोविवेकी नाषागुणदोषज्ञोन तादृशी नाषामुदाहरेन्नाभिदध्यायतएवं ततोऽस्थानमेतद्वचन गुणानां नहि प्रव्रजितोयथावस्थितोर्थाभिधायेत डुवार सुप्नु परिस्थूरं निःसारं निरुपपत्तिकं वचनं न ब्रूयात् तद्यथा पिण्याकोपि पुरुष पुरुषोपि पिण्याकस्तथाऽलाबुकमेव बालकोबालकएवाऽलाबुकमिति ॥३३ ॥ सांप्रतमार्द्रककुमारएव तं निक्षुकं युक्तिपराजितं संतं सोल्लुठ बिनणिपुराह । (लद्धेत्यादि) अहो युष्माभिरथानंतर्यं एवन्नूताभ्युपगमे सति लब्धार्थोविज्ञान यथावस्थितं तत्वमिति तथाचगत सुचिंतितोनवद्भिर्जीवानामनुनाग कर्मविपाकस्तत्पीडेति तथैवन्नूतेन विज्ञानेन नवतां यश· पूर्वसमुद्रमपरच पृष्ठं गतमित्यर्थ । तथा नवद्भिरेवंविधविज्ञानावलोकनेनावलोकित· पाणितलस्थइवायं लोकइति अहो ! नवतां विज्ञानातिशयोयडुत नवत पिण्याक पुरुषयोर्बालालाबुकयोर्वा विशेषानभिज्ञया पापस्य कर्मणोयथैतन्नावानाव प्रक्लिप्तवत्तइति ॥ ३४ ॥

जीवाणुनागं सुविचिंतयंता, आहारिया अन्नविहायसोहिं ॥ न
वियागरे छन्नपन्नपजीवि, एसोणुधम्मोइह संजयाणं ॥ ३५ ॥
सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए निइए निक्खुयाणं ॥ अ
संजए लोहियपाणि सेऊ, णियछत गरिहंमिहेव लोए ॥ ३६ ॥

मतयाऽसौ स्थित यथा तारास्वेकएव चंद्र तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अ
याईकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते डुर्नगसुनगादिनेदेन जीवा
न मीयेरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न ससरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा
न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवति नरा
श्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येव गतिनेदोन स्यात् ? ॥ ४८ ॥

॥ टीका–पुनरपि तथैवैकदंमिन संसारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाह । (अवत्तरूव मित्यादि) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्तं यथा नवतोन्युपगतवतस्तथा वयमपि तमेव विशि नष्टि। अमूर्त्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतो वस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिनं तथा सनातन शाश्वतं द्रव्यार्थतया नित्यं नानाविधग तिसंनवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशाना खंमश कर्तुमश क्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययाजावात्तथा सर्वेष्वपि जूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीर सर्वत सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा नवति कइव ? चं द्रइव शशीव तारानिरश्विन्यादिनिर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूप संपूर्णः संबंधमुपयात्येवम सावपि आत्मा प्रत्येक शरीरै सह सपूर्ण सबधमुपयाति तदेवमेकदंमिनिर्दर्शन साम्यापादनेन सामवादपूर्वक स्वदर्शनारोपणार्थमार्द्रककुमारोनिहितोयत्रैतानि संपूर्णा नि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मससारयोर्विद्यंते सएव पक्ष सश्रुतिकेन स माश्रयितव्योनवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि संति नार्हतेऽतोनवताप्य स्मदर्शनमेवान्युपगतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमनिहित सन्नार्द्रकुमारस्तडुत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) यदिवा प्राक्तनश्लोक (अवत्तरूवमित्यादि) कोवेदांतवाद्यात्मा द्वैतमते न व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्त पुरुपमात्मानं महांतमाकाशमिव सर्वव्यापिनं स नातनमनंतमक्षयमव्यय सर्वेष्वपि जूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वत सर्वात्मतया सौव्यव स्थितइत्येवन्युपगतवतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्र संबधमुपयात्येव चास्या पीत्यस्य चोत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) एवमिति तथा नवता दर्शने एकांते नैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येव पदार्था सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंध मोक्षसन्नावोबधानावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिक संसारोमोक्षानावा च्च निरर्थक व्रतग्रहण नवता पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येव च यडुच्यते न वता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा ससारातर्गतानाच पदार्थाना न सा म्यं तथाहि नवता द्रव्यैकत्ववादिना सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कार णानिन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच द्रव्यपर्यायोनयवादिना कारणे कार्यं द्रव्या

पायेति । तथा ठन्नपदोपजीवी मातृस्थानोपजीवी सन् न व्यागृणीयादेपोनंतरोक्तोऽनु पश्चाद्धर्मोनुधर्मस्तीर्थकरानुष्ठानाढनंतर नवतीत्यमुना विशिष्यते। इहास्मिन् जगति प्रवच ने वा सम्यग्यताना सत्साधूना नतु पुनरेवविधोनिक्षूणामिति।यच्च नवद्भिरोदनादेरपि प्राएयं गत्समानतया हेतुनूततया मासादिसाहश्य चोत्पद्यते तद्विज्ञाय लोकतीर्थांतरीयमतं । तथाहि। प्राएयंगत्वे तुल्येपि किंचिन्मास किंचिन्नामासमित्येव व्यवह्रियते।तद्यथा गोक्षीररु धिरादेर्नक्ष्यानक्ष्यव्यवस्थितिस्तथा समानेपि स्त्रीत्वे नार्याश्वश्वादौ गम्यागम्यव्यवस्थि तिरिति। तथा शुष्कतर्कदृष्ट्या योय प्राएयंगत्वादिति हेतुर्नवतोपन्यस्यते। तद्यथा "नक्षणीयं नवेन्मासं, प्राएयंगत्वेन हेतुना ॥ ओदनादिवदित्येव कश्चिदाहेति तार्किक " ॥१॥ सो सिद्धानैकांतिकविरुद्धदोपडुष्टत्वादपकर्णनीय । तथाहि । निरशत्वाद्वस्तुनस्तदेव मांसं त देव च प्राएयंगमिति प्रतिज्ञार्थैकदेशादसिद्ध । तद्यथा नित्य शब्दोनित्यत्वादथ निन्न प्रा एयंग तत. सुतरामसिद्धोव्यधिकरणत्वाद्यथा देवदत्तस्य गृहं काकस्य कार्ष्ण्यात्तथानैकांति कोपि श्वादिमासस्यानक्ष्यत्वादथ तदपि क्वचित्कथंचित्केपाचिन्नक्ष्यमिति चेत्तेव च सत्य श्वादेर्नक्ष्यत्वादनैकांतिकत्व। तथा विरुद्धाव्यनिचार्यपि यथार्थहेतुर्मांसस्य नक्ष्यत्व साधयत्येव बुद्धास्त्वामपूजात्वमपि। तथा लोकविरोधिनी चेय प्रतिज्ञा। मासोदनयोरसा म्याद्दृष्टातविरोधश्चेत्येव व्यवस्थितं यडुक्तं प्राग्यथाबुद्धानामपि पारणाय कल्पतएतदि ति तदसाध्विति इति स्थित ॥ ३५ ॥ अन्यदपि निक्षुकोक्तमार्द्रकुमारोऽनूद्य दूपयितुमाह । (सिणायगाणतुइत्यादि) स्नातकाना बोधिसत्वकल्पाना निक्षूणा नित्य य सहस्र द्वयं नोजयेदित्युक्त प्राक् तद्दूपयत्यसयत सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरनार्यइव गर्हां निदां जुगुप्साप दवीं साधुजनानामिह लोकएव निश्चयेन गड्ठति परलोके वाऽनार्यगम्या गतिं यातीति॥३६॥

थूलं उरप्नं इह मारियाणं, उद्दिठनत्त च पगप्पएत्ता ॥ तं लोणते ल्लेण उवक्कडेत्ता, सपिप्पलीय पगरति मंसं ॥ ३७ ॥ त नुंजमा णा पिसितं पनूत, ण उवलिप्पामो वयं रएणं ॥ इच्चेव माहंसु अ णज्जधम्मं, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वली पण आर्द्रकुमार ते कुमतिना मतनी वात कहेठे के,(थूलं के०) मह टी कायायें उपचित मांस शोणित युक्त एवो, (उरप्नं के०) उरणो तेनें (इह के० आ शाक्यना शासनने विषे संघनी नक्तिनें अर्थे (मारियाण के०) विनाशीनें मारीनें (उद्दिठनत्तंचपगप्पएत्ता के०) उद्दिष्ट नोजन कल्पीने (तंलोणतेल्लेणउवक्कडेत्ता के० ते मासने लूण, अने तेल साथे पचावीनें, (सपिप्पलीयंपगरंतिमंस के०) पिप्पली

र्त्ततयाऽसौ स्थित यथा तारास्वेकएव चंद्र तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अ
ार्द्रकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते दुर्नगसुनगादिन्नेदेन जीवा
न जीवैरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न संसरति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा
न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानपि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवति नरा
श्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येव गतिन्नेदोन स्यात् ॥ ४८ ॥

॥ टीका–पुनरपि तथैवैकदंमिन ससारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाह । (अवत्तरूव मित्यादि) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्त यथा नवतोन्युपगतवतस्तथा वयमपि तमेव विशि नष्टि। अमूर्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतो वस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिन तथा सनातन शाश्वतं द्रव्यार्थतया नित्यं नानाविधग तिसन्नवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशाना खंमश. कर्तुमश क्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययानावात्तथा सर्वेष्वपि नूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीर सर्वत सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा नवति कइव चं द्र्र शशीव तारानिरश्विन्यादिनिर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूप संपूर्णं सबंधमुपयात्येवम सावपि आत्मा प्रत्येक शरीरै सह संपूर्णं सबधमुपयाति तदेवमेकदंमिनिर्दर्शन साम्यापादनेन सामवादपूर्वकं स्वदर्शनारोपणार्थमार्द्रककुमारोनिहितोयत्रैतानि सपूर्णा नि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मससारयोर्विद्यंते सएव पक्ष सश्रुतिकेन स माश्रयितव्योनवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि सति नार्हतेऽतोनवताप्य स्मद्दर्शनमेवान्युपगंतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमनिहित सन्नार्द्रकुमारस्तदुत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) यदिवा प्राक्तनश्लोक (अवत्तरूवमित्यादि) कोवेदांतवाद्यात्मा द्वैतमते न व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्त पुरुषमात्मान महातमाकाशमिव सर्वव्यापिनं स नातनमनतमक्षयमव्यय सर्वेष्वपि नूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वत. सर्वात्मतया सौव्यव स्थितइत्येवन्युपगतवतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्र सबंधमुपयात्येव चास्या प्यपीन्यस्य चोत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) एवमिति तथा नवता दर्शने एकांते नैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येव पदार्था सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंध मोक्षसन्नावोबंधानावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिक संसारोमोक्षानावा च्च निरर्थक व्रतग्रहणं नवता पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येव च यदुच्यते न वता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा ससारांतर्गतानांच पदार्थाना न सा म्य तथाहि नवतां द्रव्यैकत्ववादिना सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कार णानिन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच द्रव्यपर्यायोन्नयवादिना कारणे कार्यं द्रव्या

विषे स्थित एटले प्रवर्त्तमान एवो साधु अणिहे एटले मायारहित थको अथवा, स्नेहरहित थको, सयमानुष्ठाननें आचरे, एटले पाले (वुद्धेमुणीसीलगुणोववेए के०) बुद्ध एटले तत्त्वनो जाण, मुणी एटले त्रिकालवेदी, त्रण कालनो जाण, सील एटले आचार ते उपशमादिक तथा गुण, एटले मूलोत्तर गुणरूप तेणे करी उपपेत एटले सहित, एवो साधु, (अवन्नतेपावणतीसिलोग के०) अत्यर्थ एटले सर्वगुणसपन्न ते, लोक एटले आ लोकने विषे, अनें लोकोत्तरने विषे, सतोपकारक श्लाघाने पाउणत्ती एटले पामे॥४२॥

॥ दीपिका–नूताना प्राणिनां हिंसाविशंकया सावद्यव्यापार जुगुप्समान परिहरन् सर्वेषा प्राणिना दंभं निहाय त्यक्त्वा साधवस्तथाप्रकारमशुद्धाहार न भुंजते तस्मादेषो नुधर्म सयतानामिह जैनमते तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुधर्मइति ॥ ४१ ॥ निर्ग्रंथधर्मे साधुमार्गे स्थितइमपूर्वोक्त समाधि प्राप्तोऽस्मिन्समाधौ सुष्ठु स्थित्वाऽनिहोनि र्माय. सन् चरेत्संयमे बुद्धोज्ञाततत्वोमुनि शीलेन क्रोधोपमेन गुणैश्च मूलोत्तरभूतरुपेतो युक्तोत्यर्थं ता सर्वातिशायिनीं श्लाघा प्राप्नोति । यदुक्तं । " राजानं तृणतुल्यमेव मनुते श क्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृता प्राप्नोति नो वेदना ॥ ससारातरवर्त्यपीह ल नते श मुक्तवन्निर्भयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित " इति ॥ ४२ ॥

॥ टीका–किंच । (नूयाविसंकाएइत्यादि) नूताना जीवानां उपमर्दशंकया सावद्यम नुष्ठान जुगुप्समानापरिहरतस्तथा सर्वेषा प्राणिना दम्यतीति दंभ. समुपतापस्तं निहाय परित्यज्य सम्यगुत्थिता सत्साधवोयतस्ततोन भुजते तथाप्रकारमाहारमशुद्धजातीयमे षोनुधर्मइहास्मिन् प्रवचने सयतानां यतीनां तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुना वि शेष्यते । यदि चाणुरिति स्तोकेनाप्यतिचारेण वा बाध्यते शिरीषपुष्पमिव सुकुमारइत्यतो ऽणुता विशेष्यतइति ॥ ४१ ॥ किंचान्यत् ॥ (णिग्गंथधम्ममित्यादि) नास्मिन्मौनींद्र धर्मे बाह्याभ्यंतररूपोग्रंथोस्यास्तीति निर्ग्रंथ सचासौ धर्मश्च निर्ग्रंथधर्म नच श्रुतचारित्रा ख्य क्षात्यादिकोवा सर्वज्ञोक्तस्मिन्नेवभूते धर्मे व्यवस्थितइम पूर्वोक्तसमाधिमनुप्राप्तो ऽस्मिश्चाशुद्धाहारपरिहाररूपे समाधौ सुष्टु अतिशयेन स्थित्वाऽनिहोऽमायोऽथवा निहन्यत इति निहोन निहोऽनिह परीषहैरपीडितो यदिवा स्निहबंधने स्निहइति स्नेहरूपबधनर हित सयममनुष्ठानं चरेत् तथा बुद्धोऽवगततत्वोमुनि. कालत्रयवेदी शीलेन क्रोधाद्युपशम रूपेण गुणैश्च मूलोत्तरगुणभूतैरुपेतोयुक्तइत्येव गुणकलितोऽत्यर्थंता सर्वगुणातिशायिनी सर्व द्वोपरमरूपा संतोषात्मिका श्लाघा प्रशंसा लोके लोकोत्तरेवाऽऽप्नोति। तथा चोक्त। "राजा न तृणतुल्यमेव मनुते शक्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृता. प्राप्नोति नो वेदना ॥

र्वागपरनागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थः ॥४९॥ पूर्वेन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सडुपदेशादिति ॥ ५० ॥

॥ टीका–तदेव व्यवस्थितं युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न भवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गाभावनं दोषमाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावभासेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाअजानानाअविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गस्यार्गलाभूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क? घोरे भयानके संसारसागरे (अणोपारेत्ति) अवाग्भागपरभागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवभूते ससारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४९ ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टॄणां गुणानाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवला लोकं न केवलिनो विविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञ पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथाभूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिण कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्तत· संसारसागरं तीर्णा परंच तारयंति सडुपदेशदानतइति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोच्छेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतदुक्तं भवति यथाऽऽदेशिक· सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तडुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येव केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांतारान्निस्तारयंतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदाहडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेगं,बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवाण दयट्ठयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ– हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ? ते आर्द्रकुमार कहेछे. (जे के०) जे कोइ संसारमांहे वर्तता अशुभ कर्मना करनार, (गरहिय के०) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीये आचरण करेलु (ठाणमिहावसंति के०) एवु क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनु इह एटले आ जगत् माहे सेवन करे, आजीविकाने कारणे तेनो आश्रय करे, (जेयाविलोएचरणोववेया के०) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक मांहे विरति परिणामरूप चारित्रे करी सहितछे. (उदाहडंततुसममईए के०)

तस्माद्ब्राह्मणसेवैव युक्तेत्याह। स्नातकानां षट्कर्मरतानां विप्राणां सहस्रद्वयं ये नोजयंति नित्यं ते पुण्यसंबंधं सुमहांतमुर्ज्य देवा स्युरिति वेदवाद ॥ ४३ ॥ आर्द्रकमुनिरेतदूषयन्नाह। (सिणायेति)। स्नातकाना सहस्रद्वयं ये नोजयंति। किंनूताना कुलानि गृहाणि मांसार्थिनोयेऽटंति ते कुलाटामार्जारा. कुलाटाइव कुलाटास्तेषां सताहग्ब्राह्मण नोजनकोवहुवेदनासु गतिषु याति। किंनूत लोलुपैरामिषगृद्धै. सप्रगाढोव्यास. तीव्रोऽसह्योनितापोयस्य एवंनूत सन्नरकानिसेवी स्यात् ॥ ४४ ॥

॥ टीका–तदेवमार्द्रककुमार निराकृतगोशालकाजीवकबौद्धमतमनिसमीक्ष्य सांप्रतं द्विजातय. प्रोचु.। तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननमकारि नवता यदेते वेदवाह्ये द्वे अपि मते निरस्ते तत्साप्रतमप्यार्हत वेदवाह्यमेवातस्तदपि नाश्रयणार्ह नवद्विधाना तथाहि नवान् क्षत्रियवर क्षत्रियाणा च सर्ववर्णोत्तमाब्राह्मणाएवोपास्यान शूद्राश्रतोयागादिविधिना ब्राह्मणसेवैव युक्तिमतीत्येतत्प्रतिपादनायाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) तुशब्दो विशेषणार्थी । षट्कर्मनिरतावेदाध्यापका शौचाचारपरतया नित्य स्नायिनोब्रह्मचारिण' स्नातकास्तेषा सहस्रद्वय नित्यं ये नोजयेयु कामिकाहारेण ते समुपार्जितपुण्यस्कंधा' सतोदेवा स्वर्गनिवासिनोनवतीत्येवनूतोवेदवादइति ॥ ४३ ॥ अधुनार्द्रककुमारएतद्दूषयितुमाह । (सिणायगाणतुइत्यादि) स्नातकाना सहस्रद्वयमपि नित्य येनोजयति। किंनूताना कुलानि गृहाण्यामिषान्वेषणार्थिनोनित्य येऽटति तेकुलाटामार्जारा कुलाटाइव कुलाटाब्राह्मणा । यदिवा कुलानि क्षत्रियादिगृहाणि तानि नित्य पिंमपातान्वेषिणा परतर्ककाणामालयोयेषा ते कुलालयास्ते निद्यजीविकोपगतानामेवनूताना योसहस्रद्वय नोजयेत्स सत्पात्रनिक्षिप्तदानोगबति वहुवेदनासु गतिषु। किंनूत सन् लोलुपैरामिषपर्वं गृद्धैरससातागौरवाद्युपपन्नै जिह्वेंद्रियवशगै सप्रगाढोव्याप्तोयदिवा किंनूते नरकेयाति लोलुपैरामिषगृध्रुनिरसुमन्निव्याप्तोयोनरकस्तस्मिन्निति। किंनूतश्चासौ दाता नरकनिसेवी नवति तद्दर्शयति। तीव्रोऽसह्योयोऽनिताप क्रकचपाटनकुंनीपाकतप्तत्रपुपानशटमल्यालिंगनादिरूप सविद्यते यस्यासौ तीव्रानितापीत्येवनूतवेदनानितप्तस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि यावदप्रतिष्ठाननरकाधिवासी नवतीति ॥ ४४ ॥

दयावर धम्मडुगंठमाणा, वहावह धम्मपसंसमाणा ॥ एगं पि जे नोययती असीलं, णियोणिसं जाति कुर्ज सुरेहिं ॥ ४५ ॥
डुहर्जवि धम्मं मिसमुठियामो, अस्सिं सुठिच्चा तह एसकालं ॥
आयारसीले वुइए हनाणी, ण संपरायंमि विसेसमत्थि ॥ ४६ ॥

ग्भागपरभागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थ. ॥४९॥ पूर्णेन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सदुपदेशादिति ॥ ५० ॥

॥ टीका–तदेवं व्यवस्थिते युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न नवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गोद्भावने दोषमाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावनातेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाअजानानाअविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गेस्थार्गलाभूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क्व? घोरे भयानके संसारसागरे (अणोपारेत्ति) अर्वाग्भागपरभागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवंभूते संसारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४९ ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टृणां गुणानाविर्भावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवलालोकं न केवलिनोविविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथाभूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिणः कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्ततः संसारसागरं तीर्णाः परंच तारयंति सदुपदेशदानतइति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोच्छेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतदुक्तं भवति यथाऽऽदेशिकः सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तदुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येवं केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांतारान्निस्तारयतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदाहडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ संवछरेणाविय एगमेगं,बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवाणदयठयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ– हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ? ते आर्द्रकुमार कहेछे. (जे के०) जे कोइ संसारमाहे वर्तता अशुभ कर्मना करनार, (गरहियं के०) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीये आचरण करेलुं (ठाणमिहावसंति के०) एवुं क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनुं इह एटले आ जगत् माहे सेवन करे, आजीविकानें कारणे तेनो आश्रय करे, (जेयाविलोएचरणोववेया के०) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक माहे विरति परिणामरूप चारित्रे करी सहितछे. (उदाहडंतंतुसममईए के०)

ष्वेष्वपि प्राप्तिरिति । अथाईकं मुनिमेकदनिन सांख्या प्राहु नो आर्हत वर कृत यदे सर्वारम्भप्रवृत्तामासाशिनोधिग्जातयोनिरस्ता । इदानीमस्मन्सिद्धांत शृणु ॥ ४५ ॥ य यमस्मद्धर्मे यश्च त्वदीयोजिन मवनयरूपोपि कथंचिनुल्य । पंचयमाश्चस्माक नवत तएव महाव्रतानि पुण्यपापबंधमोक्षस्तन्नावोस्माकं नवता च तदेवमुनयन्मिन्नपि धर्मे सा स्थितायूयं वयंच पूर्वस्मिन्काले वर्त्तमाने एष्येच गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहका. आचारप्रधान शीलमुक्ति कथित अथ ज्ञान मोक्षागमुक्त द्वान्या आवयो. संपराये संसारे च न विशेषोस्ति ॥ ४६ ॥

॥ टीका–(दयावरमित्यादि) दया प्राणिषु कृपा तया वर प्रधानोयोधर्मस्तमेव ध र्म जुगुप्समानोनिंदंस्तथा वध प्राण्युपमर्दमावहतीति वधावहस्तं तथाभूत धर्म प्रशंसन्क वन् एकमप्यशील निवृत्ते पड्जीवकायोपमर्दन योनोजयेत् किं पुन प्रभूतान नृपोगजा न्योवा य· कश्चिन्मूढमतिर्धार्मिक आत्मान मन्यमान ससराकोनिशेव नित्यान्धकारत्वाश्नि शारकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वप्यधमदेवेष्वपि प्राप्तिरिति । तथा कर्मवशादसुमत विचित्रजातिगमनाज्जातेरशाश्वतत्वमतोन जातिमदोविधेयइति । यदपि केचिदुच्यते य या ब्राह्मणाब्रह्मणोमुखाद्विनिर्गताबाहुन्या क्षत्रियाऊरुन्या वैश्या पद्भ्याशूद्रा इन्येत दप्यप्रमाणत्वादति फल्गुप्राय तदन्युपगमे च न विशेषोवर्णाना स्याद्देकस्मात्प्रसूतेर्न्नुप्रश खाप्रतिशाखायनूतपनसोडुंबरादिफलवद्ब्रह्मणोवा मुखादेरवयवाना चातुर्वर्ण्योत्पत्ति स्यान चैतदिष्यते नवद्भिस्तथा यदि ब्राह्मणादीना ब्रह्मणोमुखादेरुद्भव साप्रतं किं न जायते ? अ थ युगादावेतदित्येव सति दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यादिति । तथा यदि केचिदन्यथापि मर्व ज्ञनिक्षेपावसरे तद्यथा सर्वज्ञरहितोतीत काल कालत्वाद्वर्तमानकालवदेवच तत्त्यैतदपि शक्यते वक्तुं यथा नातीत कालोब्रह्ममुखादिविनिर्गतचातुर्वर्ण्यसमन्वित कालत्वाद्वर्तमा नकालवन्नवति च विशेषे पक्षीकृते सामान्यहेतुरित्यत्र प्रतिज्ञार्थैकदेशा सिद्धता नागरकं चेति । जातेश्चानित्यत्वं युष्मत्सिद्धांतएवाभिहितं । तद्यथा शृगालोवा एषजायते य सपुरी षोदह्यतइत्यादिना । तथा सद्य पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेन शूद्रीनवति ब्राह्मण क्षीरविक्रयीत्यादि लोके चावश्यंनावी जातिपात । यतउक्त । " कायिकै कर्मणां दोषैर्याति स्थावरतां नर ॥ वाचिकै पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातितां " ॥१॥ इत्यादिगुणैर प्येवविधैर्न ब्राह्मणत्वं युज्यते । तद्यथा । "षट्शतानि नियुज्यते पशूनां मध्यमेहनि । अ श्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुभिस्त्रिभिरित्यादि वेदोक्तत्वान्नाय दोषइति चेन्नभिदमनिदिन मेव न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यत पूर्वोत्तरविरोधस्तथा । " आततायिनमायातमपि वेदांतग रणे । जिघांसतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा नवेत् ॥ तथा शूद्रं हत्वा प्राणायामं जपेत्

त्यासेवंति जीविकाहेतुमाश्रयंति तथाच ये सदुपदेशवर्तिनोलोकेस्मिन् चरणेन विरतिप रिणामरूपेणोपेता. समन्विताम्तेषामुजयेषामपि यदनुष्ठानं शोजनाशोजनस्वरूपमपि स तु तदसर्वज्ञैरर्वाग्दर्शिनि नर्म सदृश तुल्यमुदाहृतं उपन्यस्तं स्वमत्या स्वाजिप्रायेण न पुन र्यथावस्थितपदार्थनिरूपणेनाथवाऽऽयुष्मन् हे एकदंमिन्! विपर्यासमेव विपर्ययमेवो दाहरेदसर्वज्ञोयदशोजन तच्छोजनत्वेनेतरत्त्वितरयेति यदिवा विपर्यासइति मत्तोन्मत्तप्र लापवदित्युक्त नवतीति ॥ ५१ ॥ तदेवमेकदंमिनोनिराकृत्यार्द्रककुमारोयावद्भगवदंतिकं व्रजति तावद्धस्तितापसा परिवृत्य तस्थुरिदं च प्रोचुरित्याह । (संवच्छरेणइत्यादि) ह स्तिनं व्यापाद्यात्मनोवृत्तिं कल्पयंतीति हस्तितापसास्तेषां मध्ये कश्चिद्वृद्धतमएतदुवाच नयया नो आर्द्रककुमार! सश्रुतिकेन सदाल्पबहुत्वमालोचनीयं तत्र ये अमी तापसा. कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां सत्त्वानां स्थावराणां तदाश्रितानां वोडुंबरादिषु जंगमानामु पघाते वर्त्तंते येपि च नैक्ष्येणात्मान वर्तयंति तेप्याशंसादोषदूषिताइतश्चेतश्चाटयमाना. पि पीलिकादिजंतूनां उपघाते वर्त्तंते वयंतु संवत्सरेणापि अपिशब्दात् षण्मासेन चैकैकं हस्ति न महाकाय बाणप्रहारेण व्यापाद्य शेषसत्वानां दयार्थमात्मनोवृत्तिं वर्त्तनं तदामिषेण वर्षमेकं यावत्कल्पयामस्तदेव वयमल्पसत्वोपघातेन प्रजूततरसत्वानां रक्षां कुर्मइति॥५२॥

सवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता अणियत्तदोसा ॥ सेसा
णजीवाणवहेलणाय, सियाय थोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥
सवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणता समणे वएसु ॥ आया
हिए तं पुरिसं अणज्जे, ण तारिसे केवलिणो नवंति ॥५४॥ बुद्ध
स्स आणाए इम समाहिं, अस्सि सुविच्चा तिविहेण ताई ॥तरिउं
समुद्द च महानवोघं, आयाणवतं समुदाहरेज्जा त्तिबेमि ॥५५॥
इति अद्दइज्जणाम छठमज्ज्ञयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो-हस्तितापसो! तमें (संवच्छरेणावियएगमेगंपा णहणताअणियत्तदोसा के०) वर्ष वर्ष प्रत्ये, तथा व मासप्रत्ये तमे एकेक महोटो जीव हणता थका दोषथकी, निवर्त्या एम कहेवाउंज नहीं. (सेसाणजीवाणवहेलणाय के०) कारणके, घणा जीवनें न हणता अनें वर्षमां,तथा उमासमा एकजीवनें हणता एवा तमो नें पचेंद्रियमहाकाय जीवना वधनो आशंसा दोष पण लागेछे,अनें साधु तो, सूर्य किरणे प्रकाशित मार्गनेविषे जूसर मात्र दृष्टि शोधता, इर्यासमितें समितावंत उता, बेंतालीश दोष रहित आहारनी गवेषणा करता,आहारना लाजें, अथवा अलाजें,समवृत्ति वाला

तथा (महंत के०) महांत एटले समस्तलोकमां व्यापी रह्योछे, तथा (सणातण के०) सनातन एटले शाश्वतो छे, यद्यपि नाना प्रकारनी गति करेछे तथापि, चैतन्य लक्षण जे आत्मस्वरूपछे ते क्यांहि पण जतु नथी, तथा (अरकय के०) अक्षय एटले कोइ पण प्रदेशनो खय करी न शकीये तथा (मव्वयच के०) अव्यय एटले अनतकाले कोइ एक प्रदेशनो पण व्यय न थाय एटले विछेद न थाय किंबहुना (सव्वेसुनूतेसुविसव्वतोने के०) सर्वनूतनें विषे, शरीर शरीरप्रत्ये ए आत्मा एकज व्यापी रह्योछे,ते उपर दृष्टांत देखाडेछे (चंदोवतारादिसमत्तरूवे के०) जेम चंद्रमा अश्विन्यादिक नक्षत्रे करी, स मस्तरूप थको संबंध पामे, तेम ए आत्मा, शरीर शरीर प्रत्ये संपूर्ण संबंध पामे. यदु क्त " एकएव हि नूतात्मा नूते नूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रव त् " इत्यादि ॥ ४७ ॥ हवे तेप्रत्ये आर्द्रकुमार कहेछे (एवणमिज्ञतिणससरत्तीं के०) ए रीतें जेम तमारे दर्शनें एकांतवादें आत्मा एक, नित्य, अविकारी, एम जे कहियें, ते सनवे नहीं, एम कहियें तो सर्व पदार्थ नित्य ठरेछे, तेम ठता तो बंध मोक्षनो पण सन्नाव क्याथी थाय? अनें बंधनें अनावे चतुर्गतिक संसारनो पण अनाव, अनें मोक्ष नो पण अनाव थाय अने मोक्षने अभावे तमे जे यम नियमादिक व्रततु ग्रहण कर्या छो ते पण निरर्थक थशे, ए कारण माटे आत्मा सर्व व्यापी एकजछे ए जे तमारु बो लवुछे ते अयुक्तछे, एम कहेता तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, अनें देवता, तथा बाल, कुमा र, सुनग, डुर्नग, धनाढ्य,दरिद्री, इत्यादिक नेदें जूदा जूदा पदार्थो न जाणिये ? तथा पो ताना करेला कर्म करी प्रेर्या जीव, नाना प्रकारनी गतिनें विषे परिभ्रमण पण न करे? (नमाहणाखत्तियवेसयस्साकीडायपरकीयसरीसिवायनरायसव्वेतहदेवलोए के०)तथा आ त्मानें सर्वव्यापक पणुंज कहेवा थकी एकत्व नावेज आत्मा थयो, तेवारे ब्राह्मण, क्षत्रि य, तथा वैश्य, अनें शूद्र, तथा कीटक, पक्षी, तथा सरीसिव एटले सर्प, तथा नर ए टले मनुष्य, तथा सर्व देवलोक इत्यादिक, नाना प्रकारनी गतिना गामी जीव न होय? ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापक नथी, तथा आत्मा एक पण नथी, ते माटे तमा रो आगम, सर्वज्ञनाषित नथी, अनें सर्वज्ञनाषित विना याथातथ्य न होय ॥ ४८ ॥

॥दीपिका—नवतः पुरुषजीव स्वीरुतवतस्तथा वयमपि। किंनूत? अव्यक्तरूपं महांतं व्याप कं सनातन नित्यं अक्षतं प्रदेशाना खमश कर्तुमशक्यत्वात् अव्यय अनतकालेनापि ए कप्रदेशस्यापि व्ययाचावात्। तथा सर्वेषु नूतेषु शरीरवत्सु प्रतिशरीरं सर्वत सामस्त्यादसा वात्मा नवति। यथा चंद्रस्ताराभि संपूर्ण समस्तरूप संबध्यते एवं जीवोपि शरीरे संपूर्ण संबध्यते अयमेव श्लो[illegible] । न वर सर्वनूतेषु सर्वत सर्वा

वधे न लग्नाः तस्मात्स्यादेव स्तोकं स्वल्पं यस्माद्घ्नंति ततस्तेपि निर्दोषाः॥५३॥ श्रमणव्रतेषु स्थिताअपि संवत्सरेणाप्येकैकं जतुं येघ्नंति येच उपदिशंति तेऽनार्या आत्महिताः पुरुषा न तादृशा केवलिनोभवंति॥५४॥ एवं हस्तितापसान्निरस्याईककुमारं भगवदंतिकं व्रजंतं दृष्ट्वाऽभिनवगृहीतो वनहस्ती चिंतयतिस्म। यद्यहं बंधनमुक्तः स्यां तदाईककुमारं प्रतिहन्मि, तस्करपंचशतोपेतं तथा प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं गत्वा वदेयां वदेव हस्तिना चिंतितं तावता तस्य बंधनानि त्रुटितानि आर्द्रमुनिसंमुखं त्वरया चलितः करी त. तोलोकैः पूत्कृतं हा हतोयं मुनिरिति हस्ती च ससंभ्रमं मुनिपार्श्वमागत्य त्रि. प्रदक्षिणीकृत्य दंताग्रस्पृष्टभूमि. साधुं नत्वा वनं ययौ तत. श्रेणिकनृपः सपौरलोकस्तं मुनिं सप्रभावं नत्वा प्रोवाच।भगवन्नाश्चर्यमिदं यदयं करी बंधनान्मुक्तः ततोमुनिराह। हे नृप! नैतदाश्चर्यं यत्करीमुक्तोबंधनात्। यत्तु स्नेहपाशमोचनं तद्दुष्करं तच्च प्रागुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा। "न डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ जहाउच त्तावलिएण ततुणा, त डुक्करं मेपडिहाइ मोयणं॥१॥ अस्यार्थः प्रागध्ययनप्रारंभे प्रोक्तः। एवमार्द्रकुमारोनृपं प्रतिबोध्य श्रीवीरांतिकं गत्वा भगवंतं भक्तिभृतआसीनः। भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तव शिष्यत्वेन ददौ॥ अथाध्ययनोपसंहारमाह। (बुद्धस्सइत्यादि) बुद्धस्य तत्वज्ञस्य श्रीवीरस्याज्ञया इमां समाधिं धर्मावाप्तिं प्राप्यास्मिन्समाधौ सुष्ठुस्थित्वा मनोवाक्कायैस्त्रायी रक्षकस्तीर्त्वाऽतिक्रम्य समुद्रमिव महाभवौघं। आदानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं विद्यते यस्य सआदानवान् धर्मं परहितैषी उदाहरेत्कथयेत्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत्॥ ५५॥ इत्यार्द्रकीयाध्ययनमिदं षष्ठं समाप्तम्॥

॥ टीका–सांप्रतमेतदेवार्द्रककुमारोहस्तितापसमतं दूषयितुमाह। (संवछरेणइत्यादि) संवत्सरेणैकैकं प्राणिनं घ्नतोपि प्राणातिपातादनिवृत्तदोषास्ते भवत्याशंसादोषश्च भवतां पंचेंद्रियमहाकायसत्ववधपरायणानामतिदुष्टोभवति साधूनां तु सूर्यरश्मिप्रकाशितवीथिषु युगमात्रदृष्ट्या गच्छतामीर्यासमितिसमितानां द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारमन्वेषयतां लाभालाभसमवृत्तीनां कुतस्त्यआशंसादोषः पिपीलिकादिसत्वोपघातोवेत्यर्थ. स्तोकसत्वोपघातेनैवभूतेन दोषाभावोभवताभ्युपगम्यते तथाच सति गृहस्थाअपि स्वारंभदेशवर्तिनएव प्राणिनोघ्नंतीति शेषाणांच जंतूनां क्षेत्रकालव्यवहितानां भवदभिप्रायेण वधेन प्रवृत्तायतएव तस्मात्कारणात्स्यादेव स्तोकमिति स्वल्पं यस्मात् घ्नंति ततस्तेपि दोषरहिताइति॥ ५३॥ सांप्रतमार्द्रककुमारोहस्तितापसान्दूषयित्वा तदुपदेष्टारं दूषयितुमाह। (संवछरेणेत्यादि) श्रमणानां यतीनां व्रतानि श्रमणव्रतानि तेष्वपि व्यवस्थिताः सतएकैकं संवत्सरेणापि ये घ्नंति ये चोपदिशंति तेऽनार्याः असत्कर्मानुष्ठायित्वात्तथा आ

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते नवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्नावतिरोनावौ नवतोच्येते तावपि नोत्पाद विनाशावत्तरेण नवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामावयोर्न कथंचित्साम्य किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा द्वैते चाभ्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरा मरनेदेन बालकुमारकसुनगडुर्नगाढ्यदरिद्रादिनेदेनवा न मीयेरन्न परिछेद्येरन् नापि स्व कर्मचोदितानानागतिषु ससरति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वै श्यान प्रेष्यान शूद्रा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्ये व नानागतिनेदेनोनिद्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा द्वैतवादोप्यायात्यत प्रत्ये कं सुखडुखानुनव समुपलभ्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञा नोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४८ ॥

लोयं अयाणित्ति ह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
सति अप्पाणपरं च णठा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४ए ॥
लोयं विजाणंति ह केवलेण, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्म
समत्तं च कहंति जेउ, तारति अप्पाणपर च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ— वली आर्डकुमार कहेडे के, (लोयं के०) ए लोक जे चौदरज्ज्वात्मक, तेनें (अयाणित्तिहकेवलेण के०) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहं तीजेधम्ममजाणमाणा के०) जे दर्शनीउ अजाणता थका धर्म कहेडे. (णासति अप्पाणपरचणठा के०) ते पोताना आत्मानें भ्रष्ट करता थका बीजानें पण भ्रष्ट क रेडे किंबहुना. (संसारघोरंमिअणोरपारे के०) ते घोर एटले रौद्र, अपारावार, एवो जे संसार ते मांहे पोतें पण पडे. अने बीजाने पण पाडे ॥ ४ए ॥ हवे आर्डकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेडे (लोयविजाणंतिहकेवलेण के०) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेने केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे (पुन्न णनाणेणसमाहिजुत्ता के०) तथा संपूर्ण ज्ञानें करी. समाधिसहित थका, (धम्मंसम त्तंचकहंतिजेउ के०) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थे जे कहे (तारं तिअप्पाणपरचतिन्ना के०) ते पोतें पण संसार समुद्र थकी तरे, अनें बीजानें पण तारे एवो जे जिनेंद्र मार्ग, केवलीनाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

॥ दीपिका—लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन ऽह जगति ये कथयंति । ध मैमजानाना. ते स्वयं नष्टा आत्मना परं च नाशयति क्व? घोरे संसारे अणोरपारे अर्वा

क्वाञ्चालयितु शक्यते तन्नीत्या न द्वारप्रदानमित्यर्थः । प्रातिद्वारी राजांत.पुरेपि प्रवेशोय स्य सतथा कोर्थः ? पुरेहि कोपि न प्रवेश्य· तत्राप्यसौ प्रतीतगुणत्वे प्रवेशयोग्यइत्यर्थ । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु उपदिष्टासु महाकल्याणकसंबंधितया पुण्यतिथित्वेन प्रग्नि द्धासु तथा पौर्णमासीषु च तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिषु एवन्नूतेपु धर्मदिवसेपु सुष्टु अतिश येन प्रतिपूर्णं संपूर्णमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् तथावि धान् सगुणान् श्रमणान् एषणीयेन शुद्धेनाशनादिना प्रतिलाभयन् (बहुहि) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं नावयन् एव पूर्वोक्तप्रकारेण। च स मुच्चये ण वाक्यालंकारे । विहरति आस्ते ॥ ३ ॥

॥ टीका–अधुनाऽमुष्मिकगुणाविर्नावेन नावसंपदनिधीयते । (सेणलेवेंइत्यादि) ण मिति वाक्यालंकारे। सलेपाख्योगृहपति श्रमणान् साधूनुपास्ते प्रत्यहं सेवतइति श्रमणो पासकस्तदनेन विशेषणेन तस्य जीवादिपदार्थाविर्नावकश्रुतज्ञानसपदा वेदिता नवत्येत देव दर्शयत्यभिगतजीवाजीवेत्यादिना ग्रंथेन। यावदसहायोपि देवासुरादिनिर्देवगणैरनति क्रमणीयोऽनतिलंघनीयोधर्मादप्रच्यावनीयइति यावत् । तदियता विशेषणकलापेन त स्य सम्यक्ज्ञानित्वमावेदित नवति । साप्रतं तत्तस्य विशिष्टसम्यग्दर्शनित्वमापादयितुमा ह । (निग्गंथेत्यादि) निर्ग्रंथे आर्हते प्रवचने निर्गता शंका देशसर्वरूपा यस्य स नि शंक तदेव सत्य नि शंक यज्जिनै प्रवेदितमित्येव कृताध्यवसायस्तथा निर्गता काङ्क्षान्यान्यद र्शनग्रहणरूपा यस्यासौ निराकांक्षस्तथा निर्गता विचिकित्सा चित्तविप्लुतिर्वि द्वज्जुगुप्सा यस्यासौ निर्विचिकित्सोयतएवमतोलब्धउपलब्धोर्थो परमार्थरूपोयेन स· लब्धार्थो ज्ञाततत्वइत्यर्थ ।तथा गृहीत स्वीकृतोर्थोमोक्षमार्गरूपोयेन सगृहीतार्थस्तथा विशेपत· पृष्टोर्थोयेन स पृष्टार्थोयतएवमतोविनिश्चितार्थस्ततोभिगत. पृष्टनिर्वचनत प्रतीतोर्थो येन सोभिगतार्थस्तथाऽस्थिमिजाऽस्थिमध्यं यावत्सधर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोत्यंतसम्यक्त्व वासितातश्वेताइति यावत् । एतदेवाविर्नावयन्नाह । (अयमाउसोइत्यादि) केनचिद्व मेसर्वस्व पृष्ट सन्नेतदाचष्टे । तद्यथा नो आयुष्मन्निदं निर्ग्रंथमौनींद्रप्रवचनमर्थः सद्भू तार्थस्तथा प्ररूपणतया तथेदमेवाह । अयमेव परमार्थ कषतापच्छेदैरस्यैव शुद्धत्वेन नि र्घटितत्वात्।शेषस्तु सर्वोपि लौकिकतीर्थिकपरिकल्पितोऽनर्थस्तदनेन विशेषणकदंबकेन सम्यक्त्वगुणाविष्करण कृतं नवति। सांप्रतं तस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां कृतोयोगुणस्त दाविष्करणायाह । (उसियइत्यादि) उच्छ्रितं प्रख्यात स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्यासावुच्छ्रित स्फटिक. प्रख्यातनिर्मलयशाइत्यर्थः । तथाऽप्रावृतमस्थगित द्वार गृहमुखं यस्य सोप्रा वृत द्वार । इदमुक्त नवति । गृहं प्रविश्य परतीर्थिकोपि यद्यत्कथयति तदसौ कथयतु

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते नवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्भावतिरोभावौ नवतोच्येते तावपि नोत्पाद विनाशावंतरेण नवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामावयोर्न कथचित्साम्यं किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा हैते चाभ्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरामरभेदेन बालकुमारकसुभगडुर्भगाढ्यदरिद्रादिभेदेनवा न भीयेरन्न परिछेयेरन् नापि स्वकर्मचोदितानानागतिषु संसरति सर्वव्यापित्वादेकत्वाच्च तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्रेत्येव नानागतिभेदेनोनिर्दिश्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा हैतवादोप्यायात्यत. प्रत्येकं सुखडुखानुनव समुपलभ्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञानोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४८ ॥

लोयं अयाणित्ति ह केवलेण, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
सति अप्पाणपरं च णठा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४ए ॥
लोयं विजाणति ह केवलेण, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्म
समत्तं च कहंति जेउ, तारति अप्पाणपर च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ– वली आर्द्रकुमार कहेले के, (लोयं के०) ए लोक जे चौदरज्ज्वात्मक, तेनें (अयाणित्तिहकेवलेण के०) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहंतीजेधम्ममजाणमाणा के०) जे दर्शनीत अजाणता थका धर्म कहेले. (णासति अप्पाणपरचणठा के०) ते पोताना आत्मानें भ्रष्ट करता थका बीजानें पण भ्रष्ट करेले. किंबहुना. (संसारघोरमिअणोरपारे के०) ते घोर एटले रौद्र, अपारावार, एवो जे ससार ते मांहे पोतें पण पडे, अने बीजानें पण पाडे ॥ ४ए ॥ हवे आर्द्रकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेले (लोयंविजाणतिहकेवलेण के०) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेनें केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे (पुन्नेणनाणेणसमाहिजुत्ता के०) तथा मपूर्ण ज्ञानें करी, समाधिसहित थका, (धम्मंसमत्तंचकहंतिजेउ के०) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थे जे कहे (तारतिअप्पाणपरंचतिन्ना के०) ते पोते पण संसार समुद्र थकी तरे, अने बीजानें पण तारे. एवो जे जिनेंद्र मार्ग, केवलीभाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

॥ दीपिका–लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन इह जगति ये कथयंति । धर्ममजानाना. ते स्वयं नष्टा. आत्मना पर च नाशयंति क? घोरे ससारे अणोरपारे अर्वा

प नथी, तेम त्रसनूत सत्व, हणवा नही एवी प्रतिज्ञाना करनारनें स्थावरनें हणवा थकी, पञ्चरकाणनो नंग न थाय. (एवमेवसइनासाएपरक्कमे के०) तो जूओ ? के ; एनें एवु नापानु पराक्रम (विक्कमाणे के०) विद्यमान उते त्रसने स्थानके त्रसनूत एवी नापाने बोलता (जेते के०) जे कोइ साधु (कोहावालोहावापरपञ्चरकावेंति के०) क्रोध थकी, अथवा लोन थकी, परनें एटले बीजाने नूत शब्द टाली त्रस जीवनो पञ्चरकाण करावे, तो तेने मृषावाद लागे, ने एवा पञ्चरकाणना लेनारनें अवश्य निश्चे व्रतनंग थाय (अयंपिणोउवएसेकिणोणेआउएनवइ के०) ए रीतें जोतां, ए उपदेश नलो नथी, ए न्याय मार्ग नथी, हुं एम जाणुछुं. माटें (अवियाइआउसोगोयमा के०) अपिसनावनाये अहो आयुष्यमन् गौतम ! (तुप्नंपिएवरोयइ के०) तमने पण हुं कहुं छु ए वात रूचे एवीछे ए वात वखाणवा योग्यछे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–एव नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव घ्नत· प्रतिज्ञालोपः स्यात् । उदक. पुनः स्वाभिप्रायमाह । एव प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं नवति एव प्रत्याख्यापयतांच तदेव।एव प्रत्याख्यान कुर्वतां कारयतांच न स्वप्रतिज्ञालोपः। यथा (णस्सत्ते त्यादि) एव गृहस्थ प्रत्याख्याति त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दमं वधं विहाय त्यक्त्वा प्रत्याख्यान करोति। तदिह नूतत्वविशेषणात् स्थावरपर्यायप्राप्तस्य वधेपि न प्रतिज्ञालोप नान्यत्राभियोगेन राजाद्यभियोगादन्यत्र प्रत्याख्यानं गृहपतिचौरविमोक्षणतयेति सम्यगुक्त । तस्मान्नूतत्वाविशेषणांगीकारे यथा क्षीरविकृतिप्रत्याख्यायिनोदधिनक्षणेपि न प्रतिज्ञानंग· तथा त्रसनूतान हंतव्याइति प्रतिज्ञावत स्थावरहिंसायामपि न प्रत्याख्यानातिचार । एव विद्यमाने सति नाषाया प्रत्याख्यानवाच. पराक्रमे नूताविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये। एव दोषपरिहारोपाये सति केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा श्रावकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां मृषावाद· स्यात् गृह्णतांच व्रतलोप । तदेवमयमपि नोस्मदीयोऽंगीकार कि नवतां नो नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवति अपिवायुष्मन्गौतम ! एषपक्षस्तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

॥ टीका–तदेव व्यवस्थिते नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव स्थावरत्वेनायातं व्यापादयंतोऽवं श्यंनावी प्रतिज्ञाविलोपोयतस्ततएव मङ्कया वक्ष्यमाणनीत्या प्रत्याख्यानं कुर्वता सुप्रत्याख्यातं नवत्येवच ते प्रत्याख्यापयंतोनातिचरति स्वीया प्रतिज्ञामित्येतद्दर्शयितुमाह । (एणणेत्यादि) तत्र गृहपति प्रत्याख्यानमेव गृह्णाति तद्यथा त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दमयतीतिदंम· प्राण्युपमर्दस्तं विहाय परित्यज्य प्रत्याख्यानं

ए बेहुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो (अहाउसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्मन् एक दंमियाउ! तेथी तेवु कहेनाराने विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाणवा.अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें डैयें. साचु, अनें जुतु ए बे धर्म,सरखाज केम होय? ॥५१॥ ए रीते एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आर्द्रकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीनें बोल्या के, अहो आर्द्रकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइयें शामाटें? तेनुं कारण कहुं ते तु सानल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करे, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जगम जीव होय, तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मार्गीनें पोतानी आजीविका करेडे ते पण,आशसादोषें करी दूषितडे,कारण के जिहां तिहां परिज्रमण करता कीडी,मकोडी प्रमुख अनेक जीवने डुहवेडे अने अमेंतो,(सवडरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसे,तथा अपिशब्दे करी ड मासें एकज, (वाणेणमारेउमहागयंतु के०) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारे विनाशीनें, (सेसाणजीवाणदयठयाए के०) शेष बीजा जीवोनी दयानें अर्थे, मात्र ते एकज हस्तीना मांसे करीने, (वासवयंवित्तिपकप्पयामो के०) वर्ष दिवस सुधी अमें अमारी आजीविका चलावियें डैये. ए रीतें थोडा जीवनो उपघात करी, घणा जीवोनी अमें रक्षा करिये डैयें. ए माटें विशेषे करी, अमारो मार्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

॥दीपिका—ये गर्हितं नियनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लोके चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः समं तुल्यमेवोदाहृतं कथितं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण। अथायुष्मन् हे सांख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एवमेकदंमिनोनिरस्यार्द्रमुनिर्नगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेव प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्द्रक! ये तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूना स्थावराणा तदाश्रितत्रसानाच घातका. ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूषिता भ्रमतश्च पिपीलिकादिजंतुघातका वयं तु संवत्सरेणाप्येकं महागजं बाणेन व्यापाद्य शेषाणां जीवानां दयार्थं आत्मनोवृत्ति जीविकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयामः कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षका. ॥ ५२ ॥

॥ टीका—पुनरप्यार्द्रककुमारएवाह । (जेगरहियमित्यादि) असर्वज्ञप्ररूपणमेवंनूतं नवति । तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेता. समन्वितास्तद्विपाकसहायागर्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

तविधयाविधेयविशेषोराजानमुपस्थितोऽवादीच्च गजदया गिरा यथा मा कृथादेवास्माकं कुलक्षयं गृह्यतामिदमस्मदीयं कुलक्रमायातं स्वभुजोपार्जितं प्रभूतं द्रविणजातं मुच्यतां मुच्यताममी षट् पुत्राः क्रियतामयमस्माकमनुग्रहइति । एवमभिहितोराजा तद्वचनमाकर्ण्य पुनरपि सविशेषमादिदेश असावपि वणिक्सर्वेषामशक्तौ सर्वमोचनाननिप्राय राजानमेत्य पचानां मोचनं याचितवान् तानप्यसौ राजा नमोक्तुमनाऽस्थेवमभिगम्य चतुर्मोचने कृते सादरं विज्ञप्तवांस्ततथापि राजा तमनादृत्य कुपितवदनएव स्थितस्ततस्त्रयाणां विमोचने कृतादरस्तत्पिताऽभूत् तानप्यमुंचंतं राजानं ज्ञात्वा गणितस्वापराधो द्व्योर्मोचनं प्रार्थितवांस्तथाप्यवज्ञाप्रधानं नृपतिमवगम्य ततः पौरमहत्तमसमेतोराजानमेव विज्ञप्तवांस्तद्यथा देवाऽकाण्डएवास्माकं कुलक्षयः समुपस्थितः तस्माच्च भवतएव त्राणायालमतः क्रियतामेकमत्पुत्रविमोचनेन प्रसादइति भणित्वा पादयोः सपौरमहत्तमः पतितोराज्ञापि सञातानुकंपेन मुक्तस्तदेकोज्येष्ठपुत्रइति । तदेवमस्य दृष्टांतस्य दार्ष्टांतिकयोजनेयं । तद्यथा साधुनाभ्युपगतसम्यग्दर्शनमवगम्य श्रावकमखिलप्राणातिपातविरतिग्रहणं प्रति चोदितोप्यशक्तितया यदा न सर्वप्राणातिपातविरतिं प्रतिपद्यते यथाऽसौ राजा वणिजोत्यर्थं विज्ञपितोपि न षडपि पुत्रान् मुमुक्षति नापि पंचचतुस्त्रिद्विःसंख्यान् पुत्रानिति । ततएकविमोक्षणेनात्मानं कृतार्थमिव मन्यमानः स्थितोसावेव साधोरपि श्रावकस्य यथाशक्तिव्रतं गृह्णतस्तदनुरूपमेवाणुव्रतदानमविरुद्धमिति यथाच तस्य वणिजोन शेषपुत्रवधानुमितिर्लेशयोप्यस्त्येव साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमिति प्रत्ययजनितः कर्मबंधोभवति किं तर्हि? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव सत्वान् बादरान् सकल्पजप्राणिवधनिवृत्त्या रक्षति तन्निमित्तः कुशलानुबंधएवेत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तसेहिमित्यादि) त्रस्यतीति त्रसा द्वीन्द्रियादयस्तेभ्य सकाशान्निधाय निहाय वा परित्यज्येति यावत् दंडयतीति दंडस्तं परित्यज्य त्रसेषु प्राणातिपातविरतिं गृहीत्वेत्यर्थस्तदपि च त्रसप्राणातिपातविरमणव्रतं तेषां देशविरतानां कुशलहेतुत्वात्कुशलमेव भवति ॥ १० ॥

तसावि वुच्चंति तसा तससंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्भुवगयं भवइ तसाउयचणं पलिक्खीणं भवइ तसकायट्ठिइया ते तउ आउयं विप्पजहंति ते तउ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा णामचणं अब्भुवगयं भवइ थावरा आउयंचणं पलिक्खीणं भवइ थावरकायट्ठिइया तउ आउयं विप्पजहंति तउ आ

ए वेहुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो (अहावसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्मन् एक दंमियाउं तेथी तेवु कहेनारानें विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाण वा अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें ढैयें साचु, अनें जूठु ए वे धर्म,सरखाज केम होय? ॥५१॥ ए रीतें एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आर्द्रकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीने बोल्या के, अहो आर्द्रकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइये शामाटें? तेनुं कारण कहु ते तु सांनल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करे, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जगम जीव होय, तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मागीनें पोतानी आजीविका करेढे ते पण,आशंसादोषें करी दूषितढे,कारण के जिहां तिहां परिच्रमण करता कीडी,मकोडी प्रमुख अनेक जीवने डुहवेढे अनें अमेंतो,(संवह्नरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसें,तथा अपिशब्दें करी ढ मासे एकज, (वाणेणमारेउमहागयंतु के०) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारे विनाशीने, (सेसाणजीवाणदयठयाए के०) शेष बीजा जीवोनी दयानें अर्थें, मात्र ते एकज हस्तीना मांसे करीनें, (वासवयंवित्तिपकप्पयामो के०) वर्ष दिवस सुधी अमे अमारी आजीविका चलावियें ढैयें. ए रीतें थोडा जीव नो उपघात करी, घणा जीवोनी अमे रक्षा करिये ढैये. ए माटें विशेषे करी, अमारो मा र्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

॥दीपिका–ये गर्हितं निंद्यनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लो के चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः सम तुल्यमेवोदाल्हतं कथितं स्वमत्या स्वानिप्रायेण। अथायुष्मन् हे साख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एव मेकदंमिनोनिरस्यार्द्रमुनिर्निगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेव प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्द्रक! ये तापसा कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां स्थावराणा तदाश्रितत्रसानाच घा तका. ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूषिता भ्रमंतश्च पिपीलिकादिजंतुघातका वयं तु संवत्सरेणाप्येक महागज बाणेन व्यापाद्य शेषाणा जीवाना दयार्थं आत्मनोवृत्तिं जी विकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयाम कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षका ॥ ५२ ॥

॥ टीका–पुनरप्यार्द्रककुमारएवाह । (जेगरहियमित्यादि) असर्वज्ञप्ररूपणमेवनूतं नवति । तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेता. समन्वितास्तद्विपाकसहायाग र्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

ी ते नागरिक बाहिर आरामनें विषे वेहेलाने विणाशतां व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अंहीं त्रस, अनें स्थावरने चेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो बाहेर आरामादि कने विषे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शुं जतु रह्युं ? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंछे. तेहिज वर्णछे, तेहिज परिणामेछे, ए दृष्टांत पर्याये त्रसनें मले नही, एवु जाणी, तमे अयुक्त बोलोछो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका–त्रसाअपि द्वीड्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंनारकृतेन कर्मणा स्युः । सनारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुनवेन वेदन। तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्या दिक त्रसत्वेन सबद्ध यदायुष्क उदयप्राप्त स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते । त्र सायुर्यदा क्षीण स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनातर्मुहूर्त उत्कृष्टत. सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायाति । स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यंते एवस ति स्थावरकाय प्रत श्राद्धस्य कथं स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतचंगइति । किंच (थाव राअावत्ति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीण स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनातर्मु हूर्त उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येया पुद्गलपरावर्ता· । ततस्ते स्वायु· परित्यज्य नूय पुनर पि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरजावात्सामर्थ्यात्त्रसत्वेन प्रत्यायाति ते त्रसा प्राणाअप्यु च्यंते त्रसाअप्युच्यंते । महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिका स्ते नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कनावात् । ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणा। नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्त ।नागरिकोन हतव्यइति प्रतिज्ञा कृत्वा बहि·स्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्रतोव्रतचंगइति त्वत्पक्ष । सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेत. स बहि स्थो पि नागरिकएवाल पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्त ।सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नो पद्यते । सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्व प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्न तोन व्रतचग ॥ ११ ॥

॥ टीका–यच्च प्रागभिहित तद्यथा तमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहि· स्थ व्यापादयतोऽवश्यंनावी व्रतजगस्त्येतत् परिहर्तुकामआह । (तसावीत्यादि) त्रसा अपि द्वींड्रियादयोपि स्वसनारकृतेन कर्मणा नवति । संनारोनामावश्यतया कर्मणोविपा कानुनवने वेदन। तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्मान्युपगत नवति त्रसत्वेन य स्यचिद्यमायुष्क तद्यदोदयप्राप्तं नवति तदा त्रससनारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदि श्यंते न तदा कथचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तदायु परिक्षीण नवति। एमिति वाक्य

होय, तेनें कयो आशंसा दोष ? अनें पिपीलिकानो घात पण केम थाय? अनें तमो एवा म होटा जीवनो उपघात करीनें पण पोताने निर्दोष मानोछो, ते जो एवी रीतें निर्दोष पणुं थतुं होय तो, आपणी आजीविकानें निमित्तें आरंभनें विषे प्रवर्त्तता (सियायथोवगिहि णोवितम्हा के०) कदाचित् पोतानु क्षेत्र टाली अन्य जीवोनो उपघात अण करता गृहस्थ पण तमारी पेरें थोडा जीव हणता, घणा जीव पालता थका तमारा सरखा निर्दोषज जाणवा एम वखुं ॥५३॥ वली आर्द्रकुमार कहेछेके, (संवच्छरेणावियएगमेगपाणहणता समणेवएसु के०) अहो हस्तितापसो! जे तमारा दर्शनी, श्रमणना व्रतने विषे प्रवर्त्तता छता संवत्सर संवत्सर प्रत्यें तथा छमास प्रत्यें एकेक जीव हणे, अनें वली एहिज धर्मनो उपदेश आपे, (आयाहिएतंपुरिसेअणज्जे के०) ते अनार्य अनाचारी पोतानें तथा परनें अहितना करनार जाणवा केम के, (णतारिसेकेवलिणोजवति के०) ते पुरुष सादृशकेवली न होय? ते अशुद्धमार्गना प्रवर्त्तक अने सत्यमार्गना द्वेषी जाणवा जे कारणे ते वर्षवर्ष प्रत्यें एकेक जीवनो विनाश करे, तेनुं मांस वर्ष वर्ष दिवस सुधी राखे तेमाहे अनेक असंख्यात बीजा त्रस जीव उपजे, तेथी तेनें पचावता ते जीवोनो विनाश थाय ए कारण माटें घणा जीवोनो विनाश करता पण एम कहे के, अमे थोडा जीवोनो विनाश करियें छैयें, ते माटें तेमिथ्यावादी जाणवा. तेनुं वचन अमे प्रमाण नथी करता. इ त्यादिक वचन कही अन्य दर्शनीनें प्रतिबोधि, श्री महावीर देवनें समवसरणे जइ, ती र्थंकरने वांदीने, आर्द्रकुमार, आज्ञानो आराधक थयो ॥ ५४ ॥ हवे अध्ययन परिस माप्ति जणी कहेछे. (बुद्धस्सआणाएइमंसमाहि के०) बुद्ध एटले तत्वना जाण, एवा श्री महावीर देव, तेनी आज्ञायें आ समाधि, धर्मप्राप्ति लक्षण लहीने, (अस्सिंसुठि आतिविहेणताई के०) ए समाधिने विषे प्रवर्त्ततो त्रिविध त्रिविध प्रकारे छ कायनो र क्षपाल एवो साधु, (तरिउंसमुद्दंचमहाजवोघं के०) जयंकर संसार समुद्र तरीनें (आ याणवतंसमुदाहरेज्जा के०) आदानवत एटले सम्यक् ज्ञान, दर्शन, अने चारित्र सहि त थको, एम आर्द्रकुमारनी पेरे यथावस्थित प्ररूपणाये करी परदर्शनीनो निराकरण करीनें मोक्षनो मार्ग प्रगट करे, ते साधु जाणवो. तिबेमिनी व्याख्या, पूर्ववत् जाणवी ॥ ५५ ॥ ए अद्दइज्जनामें छठा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—अथार्द्रकुमार: प्राह ॥ संवत्सरेणाप्येकैकं प्राणिनं घ्नंतं प्राणातिपातादनिवृ त्तत्वान्निवृत्तदोषास्ते स्युः साधूनां तु सूर्यप्रकाशिते मार्गे युगमात्रदृष्ट्या ईर्यासमित्या गच्छता निर्दोषाहारान्वेषिणां समचित्तानां क्व आशंसादोष: ? क्व कीटिकादिघातोवेत्यर्थ: । स्तोकजी वघाते च दोषाजावस्तदा गृहस्थाअपि स्वारंभदेशस्थान् जीवान् घ्नंति शेषाणां च जीवाना

ही ते नागरिक वाहिर आरामनें विपे वेठेलाने विणाशता व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अंहीं त्रस, अनें स्थावरनें नेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो वाहेर आरामादि कने विपे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शु जतु रह्यु? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंछे. तेहिज वर्णछे, तेहिज परिणामेछे, ए दृष्टांत पर्याये त्रसनें मले नहीं, एवुं जाणी, तमे अयुक्त बोलोछो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका–त्रसाअपि द्वीन्द्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंजारकृतेन कर्मणा स्युः। सन्नारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुनवेन वेदन। तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्या दिकं त्रसत्वेन सबद्ध यदायुष्क उदयप्राप्त स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते। त्र सायुर्यदा क्षीण स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनांतर्मुहूर्त उत्कृष्टत. सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजंति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायाति। स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यते एवस ति स्थावरकायं घ्नत श्राद्धस्य कथ स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतनंगइति। किंच (थाव राअवति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीण स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनांतर्मु हूर्त उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येया पुद्गलपरावर्ता। ततस्ते स्वायु परित्यज्य नूय· पुनर पि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरनावात्सामर्थ्यात्त्रसत्वेन प्रत्यायाति ते त्रसा· प्राणाअप्यु च्यंते त्रसाअप्युच्यते। महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिका स्ते नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कनावात्। ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणा। नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्त। नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञा कृत्वा वहि·स्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्नतोव्रतनंगइति त्वत्पक्ष। सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेत स वहि स्थो पि नागरिकएवात पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्त। सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नो पद्यते। सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्व प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्न तोन व्रतनग ॥ ११ ॥

॥ टीका–यच्च प्रागभिहितं तद्यथा तमेव त्रस स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहि स्थं व्यापादयतोऽवश्यंनावी व्रतनंगइत्येतत् परिहर्तुकामआह। (तसावीत्यादि) त्रसा अपि द्वीन्द्रियादयोपि स्वसंजारकृतेन कर्मणा नवति। सन्नारोनामावश्यतया कर्मणोविपा कानुनवने वेदन। तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्माभ्युपगत नवति त्रसत्वेन य न्निबद्धमायुष्क तद्यदोदयप्राप्तं नवति तदा त्रससंजारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदि श्यते न तदा कथंचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तदायु परिक्षीण नवति। एममिति वाक्य

त्मानं परेषां चाहितास्ते पुरुषाः। बहुवचनमार्षत्वान्न। तादृशा. केवलिनोभवति तथा ह्येक स्य प्राणिन संवत्सरेणापि घाते येन्ये पिशिताश्रितास्तत्संस्कारेच क्रियमाणे स्थावरज गमाविनाशमुपयाति ते तै· प्राणिवधोपदेष्टृभिर्न दृष्टा। नच तैर्निरवद्योपायोमाधुकर्या वृ त्त्या योभवति सदृष्टोतस्तेन केवलमकेवलिनोविशिष्टविवेकरहिताश्चेति। तदेव हस्तिताप सान्निराकृत्य भगवदंतिकं गछंतमार्द्रककुमार महता कलकलेन लोकेनाभिष्टूयमान त समुप लभ्य अभिनव गृहीतः संपूर्णलक्षणसपूर्णोहस्ती समुत्पन्नस्तथाविधविवेकोचित यत् य थार्द्रकुमारोयमपकृताशेषतीर्थिकोनिष्प्रत्यूह सर्वज्ञपादपद्मातिकं वदनाय व्रजति तथाहम पियद्यप्यपगताशेषबंधन. स्या ततएनं महापुरुषमार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धतस्करपचशतोपेत त था प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वित परमया भक्त्यैतदंतिकं गत्वा वदामीत्येव यावद सौ हस्ती कृत्यसंकल्पस्तावत्त्रटत्त्रटदिति त्रुटितसमस्तबंधन सन्नार्द्रककुमाराभिमुख प्रदत्त कर्णतालस्तथोर्ध्वप्रसारितदीर्घकर प्रधावितस्तदनंतर लोकेन कृतहाहारवगर्भकलकलेन पूत्कृत यथा धिक् कष्टं हतोयमार्द्रककुमारोमहर्षिमहापुरुषस्तदेव प्रलपंतोलोकाइतश्चेत श्च प्रपलायमाना। असावपि वनहस्ती समागत्यार्द्रककुमारसमीपं भक्तिसन्नमावनताग्रभा गोत्तमांगोनिर्वृतकर्णतालस्त्रि.प्रदक्षिणीकृत्य निहितधरणीतलदताग्रभाग स्पृष्टकराग्रतञ्च रणयुगल· सुप्रणिहितमना प्रणिपत्य महर्षिवनाभिमुख ययाविति। तदेवमार्द्रककुमार तपोनुभावाहंधनोन्मुक्तं महागजमुपलभ्य सपौरजनपद श्रेणिकराजस्तमार्द्रककुमार म हर्षि तत्तप प्रभाव चाभिनंद्याभिवद्य च प्रोवाच भगवन्नाश्चर्यमिदं यदसौ वनहस्ती ताद्द ग्विधान्नरोछेद्यावृंखलाबंधनाद्युष्मत्तप प्रभावान्मुकइत्येतदतिडुष्करमित्येवमभिहिते आ र्द्रकुमार· प्रत्याह। भो श्रेणिक महाराज! नैतडुष्कर यदसौ वनहस्ती बंधनान्मुक्तोपि त्वेत डुष्करं यत्स्नेहपाशमोचन एतच्च प्राक्निर्युक्तिगाथया प्रदर्शित। साचेय। "ण डुक्कर वारणपा समोयणं, गयस्स मत्तस्स वणमि रायं॥जहा उवत्तावलिएण ततुणा,सुडुक्करमे पडिहाइ मो यण॥ १॥ एवमार्द्रककुमारेण राजानं प्रतिबोध्य तीर्थकरातिक गत्वाऽभिवद्य च भगवत भक्तिभरनिर्भरआसाचक्रे भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तच्छिष्यत्वेनोपनिन्य इति॥ ५४॥ सांप्रत समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थाह। (बुद्धस्सेत्यादि) बुद्धोऽवगत तत्व सर्वज्ञोवीरवर्द्धनस्वामी तस्याज्ञया तदागमेन इमं समाधि सद्धर्मावाप्तिलक्षण अ वाप्यास्मिंश्च समाधौ सुष्टु स्थित्वा मनोवाक्कायैश्च प्रणिहितेंद्रियोन मिथ्यादृष्टिमनुमन्यते केवल तदावरणजुगुप्सा त्रिविधेनापि करणेन न विधत्ते सएवभूतआत्मन परेषाच त्राण शीलस्तायी वा गमनशीलोमोक्षं प्रति सएवभूतस्तरीतुमतिलंघ्य समुद्रमिव डुस्तर महाभवौ घं मोक्षार्थमादीयतइत्यादान सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप तद्विद्यते यस्यासावादानवान साधुः सच सम्यग्दर्शनेन सता परतीर्थिकतप समृद्ध्यादिदर्शनेन मौनींद्रादर्शनान्न प्रच्यव

अर्थ–हवे वादसहित उदयपेढालपुत्र, जगवत श्रीगौतम प्रत्ये बोल्या के, अहो आयुष्मन् गौतम! ते कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रमणोपासक श्रावकनें एक प्राणातिपातविरति विषयिक दंमनो त्याग कस्यो जाय. ते केवा हेतुथी? ए कारण देखाडे ले संसारी प्राणी परस्पर माहो मांहे गतिना करनारले स्थावरप्राणी त्रस पण उपजे, अने त्रसप्राणी पण स्थावर पणे उपजे हवे वली विशेषे कहेले स्थावर काय थकी मूकाता थका एतावता स्थावरकायनुं आयुष्य त्यागी सर्वे त्रसकाय पणे उपजे, पालल कोइ स्थावर रहे नहीं, तथा वली त्रसकाय थकी मूकाता एतावता त्रसकायनु आयुष्य त्यागीने सर्वे, स्थावरकाय माहे उपजे, पालल कोइ त्रस रहे नहीं, तेवारे ते श्रावकने स्थावर माहे उत्पन्न त्रसनुं स्थानक हणाणुं, ए व्रतजग थयो ॥१२॥

॥ दीपिका–पुनरुदक प्राह। सवादमुदकोगौतममवादीत्। हे गौतम! नास्ति सकश्चित्पर्याय यस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य दमोवधोनिक्षिप्त परित्यक्त स्यात्। कोर्थ। श्राद्धेन त्रसमुद्दिश्य प्रत्याख्यान कृत। संसारिणा वान्योन्यगमन सनवात्त्रसा सर्वेपि स्थावरत्व प्राप्तास्तदा त्रसानामनावान्निर्विषय प्रत्याख्यानमित्यर्थः। (कस्सणंति) केन हेतुना इदमुच्यते सासारिका खलु प्राणा स्थावरास्त्रसतया त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्यायाति स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमाना स्वायुषा सर्वे निरवशेषकास्त्रसकाये समुत्पद्यते त्रसकायादपि तदायुषा मुच्यमाना: सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यते तेषा त्रसाना स्थावरकायोत्पन्नाना स्थानमेतद्घात्य। यथा केनचित्प्रतिज्ञात मया नगरनिवासी न हतव्य तच्च उद्वसित नगर ततोनिर्विषय प्रत्याख्यान। एवमत्रापि त्रसानामनावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

॥ टीका–पुनरप्यन्यथोदक पूर्वपक्षमारचयितुमाह। (सवायंउदएइत्यादि) स ह्याच सवाद वोदक पेढालपुत्रोनगवत गौतममेवमवादीत्। तद्यथाऽऽयुष्मन् गौतम! नास्त्यसौ कश्चित्पर्यायोयस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य विशिष्टविषयामेव प्राणातिपातनिवृत्ति कुर्वतोदम प्राण्युपमर्दनरूपोनिक्षिप्तपूर्व परित्यक्तपूर्वोनवति। इदमुक्त नवति। श्रावकेण त्रसपर्यायमेकमुद्दिश्य प्राणातिपातविरतिव्रत गृहीत ससारिणा च परस्परगमनसनवात्तेच त्रसा सर्वेपि किल स्थावरत्वमुपगतास्ततश्च त्रसानावान्निर्विषय यत्प्रत्याख्यानमिति। एतदेव प्रश्नपूर्वक सदर्शयितुमाह। (कस्सणंतंहेउमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। कस्य हेतोरिदमनिधीयते केन हेतुनेत्यर्थ। सासारिका प्राणा परस्परससरणशीलायतस्तत स्थावरा. सामान्येन त्रसतया प्रत्यायाति त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्या

न तस्य परिजनोप्यन्यथा भावयितुं सम्यक्त्वाद्भावयितुं शक्यतइति यावत्। तथा राज्ञां बह्व भात·पुर द्वारेषु प्रवेष्टुं शीलं यस्य सतथा। इदमुक्तं नवति प्रतिपिद्धान्यजनप्रदेशान्यपि यानि स्थानानि भाण्डागारांत पुरादीनि तेष्वप्यसौ प्रख्यात श्रावकाख्यगुणत्वेनास्खलित प्रवेशस्तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषूपदिष्टासु तथा पौर्णमासीषुच तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिष्वित्यर्थः। एवंभूतेषु धर्मदिवसेषु सुप्रतिशयेन प्रतिपूर्णोय पौषधोव्रताभिग्रहविशेषस्त प्रतिपूर्णमाहारशरीरसंस्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् संपूर्ण श्रावकधर्ममनुचरति तदनेन विशेषणकलापेन विशिष्टं देशचारित्रमावेदित नवति। साप्रतं तस्यैवोत्तरगुणाख्यापनेन दानधर्ममधिकृत्याह। (समणेणंनिग्गंथइत्यादि) सुगमं (यावत्पडिलाभेमाणेत्ति) साप्रतं तस्यैव शीलतपोभावनात्मकं धर्ममावेदयन्नाह (बहूहिमित्यादि) बहुभि शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैस्तथा यथा परिगृहीतैश्च तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्नेव चानंतरोक्तया रीत्या विहरति धर्ममाचरंस्तिष्ठति। च समुच्चये। णमिति वाक्यालंकारे ॥ ३ ॥

तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तर पुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं सेसदविया नामं उदगसाला होत्था अणेगखंभसयसन्निविट्ठा पासादीया जावपडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं हत्थिजामे नामं वणसंडे होत्था किण्हे वणउ वणसंडस्स ॥ ४ ॥

अर्थ-(तस्सण के०) ते लेप नामा गृहपतिने नालिंदा नामा पाडा थकी, उत्तर अने पूर्वदिशाने वच्चे, एटले ईशान कोणे (एत्थणंसेसदवियानामउदगसालाहोत्था के०) जिहां तिहां घर करावता जे काइ पाट पीठिकादिक उपकरण उगर्यां होय,वधेलां होय एवां उपकरणे करीने निपजावेली एटले करावेली एवी सेसदविया नामें उदकशाला हती वली ते उदकशाला केवी हती? तोके, (अणेगखंभसयसन्निविट्ठा के०) अनेक स्तंभना शेंकडा तेना उपर रहेली, तथा तेणें करी सहित, (पासादीयाजावपडिरूवा के०) प्रासादवत् दर्शनीय यावत् प्रतिरूप,(तिस्सेणसेसदवियाएउदगसालाएउत्तरपुरच्छिमेदिसिभाए के०) ते सेसदविया नामा उदकशाला थकी ईशान कोणनी दिशाये (एत्थणहत्थिजामेनामंवणसंडेहोत्था के०) हस्तियाम नामें वनखंड हतो, (किण्हेवणउवणसंडस्स के०) ते वनखंड, काले वर्णें हतो, एनु विशेष वर्णन जेम, श्री उववाई उपांगमां कह्युं छे तेम जाणवुं.

॥ दीपिका–तस्य लेपस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदाया पूर्वोत्तरस्यां दिशि शेषद

समस्त त्रस जीव पण स्थावर पणुं न पामे. केम के कोइ वारे पण त्रसशून्य संसार न थाय, तेमज स्थावरशून्य पण संसार न थाय, ए अमारो मतछे. हवे तमारो पक्ष तमारेज अभिप्राये करी निराकरण करियेछैये ते साभलो (तुम्नचेवअणुप्पवादेण के०) तमाराज केवा प्रमाणे (अभिणसेपरियाए के०) ते पर्यायछे के जे पर्याये करी श्रमणोपासकनें सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेनो घात छंमायछे एटले त्याग थायछे केमके, तमारी वक्तव्यताये जे वारे सर्व स्थावरजीव त्रसपणे उपना तेवारें सर्व प्राण विषे पच्चरकाण श्रावकनो थयो, ते कारण माटे श्रावक, त्रसनो घात न करे. ए विशेष सूत्रे करी देखाडेछे (कस्सणतंहेउ के०) तेनो हेतु कयो? ते देखाडेछे निश्चें सांसारिक प्राणी, त्रस प्राणी पण स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी त्रस पणे उपजे, त्रसकाय थकी मूकाता सर्व स्थावर पणें उपजे, अने स्थावर कायथकी मूकाता सर्व त्रस पणे उपजे तेवारे (तेसिचणतसकायंसिउववन्नाणगाणमेयंअघत्तं के०) जो स्थावरकाय पणु त्यागीने त्रस पणे उपजे, तेवारे श्रावकने त्रसना स्थानक नणी अघत्तं एटले विराधनानु कांहिं कारण नथी, जे कारणे (तेपाणाविवुच्चति के०) ते त्रसप्राण पण कहिये, अने तेने त्रस पण कहिये, ते महाकाय, ते चिरस्थितिक, ए अर्थ पूर्ववत् जाणवो. (तेबहुयरगापाणा के०) ते घणा त्रसप्राणीयो जेणे करी श्रमणोपासकने रूडो पच्चरकाण थाय (तेअप्पयरागापाणा के०) ते प्राण, आंही अल्प शब्द सर्वथा अनावने अर्थेछे जे कारणे सर्व स्थावर फीटी त्रस थाय, तेवारे स्थावर जीवनो अनाव थयो एम तमारी वक्तव्यतायेज श्रावकने घणुं रूडुं पच्चरकाण थाय अने जे तमे कहोछो के श्रावकने अपच्चरकाण थाय, ते तो उलटुं रूडु पच्चरकाण थाय ते श्रावक महोटी त्रसकायना आरंनथी उपशम्या सावधान थया विशेषेथी निवर्त्या, तेने रूडु पच्चरकाण थाय (जन्न के०) जे कारण माटें तमे अथवा बीजा (एववदह के०) एम कहे के जे एवुं कोइ पर्याय नथी, के जे पर्याये श्रावकने प्राणातिपातनो पच्चरकाण थाय. ए तमारुं केहेवु ते न्यायमार्गेनु नथी ॥ १३ ॥

॥ दीपिका–अथ गौतम प्राह सक्षाच गौतम उदकमवादीत् । अस्माकमिति मगध देशे सर्वजनप्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तथैवात्र पठित । तदेवमस्माक संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोननं किं तर्हि ? युष्माकमेवानुप्रवादेन एतदशोननमिति । अस्म द्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूत न नवति नापिच नविष्यति यत्सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्व प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसाना वाऽसंख्येयत्वेन तदाधारत्व न युक्त । त्रसाश्रपि स्थावरत्व न प्रतिपन्नानच प्रतिपद्यते नापि प्रतिपत्स्यते । नच कदाचित्त्रसशून्य संसार स्यादिति नवदाक्षेपोवृथैव । अस्त्यथ पर्यायोयत्श्रमणोपासकस्य सर्वप्राणिनिस्त्रसत्वेन

त्तसत्वान् संकल्पवधनिवृत्तोरक्षति आह·। तन्निमित्तं कुशलानुबंधएवेत्याह। (तसेहिं) त्रसेन्योदंभ हिंसां त्यक्त्वा यावद्विरमति तावत्तस्य कुशलं पुण्यमेवेति ॥ १० ॥

॥ टीका–यच्च नवतास्माकं प्राग्दोषोद्भावनमकारि तद्यथा त्रसाना वधनिवृत्तौ तदन्येषां वधानुमति· स्यात् साधोस्तथानूतशब्दानुपादानेनातरमेव त्रस स्थावरपर्यायापन्न व्यापादयतोव्रतनंगइत्येतत्कुचोद्यजात परिहर्तुकामआह। (नगवचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। नगवान्गौतमस्वामी चशब्द पुन शब्दार्थे। पुनराह। तद्यथा। संति विद्यंते एके केचन लघुकर्माणोमनुष्या प्रव्रज्या कर्तुमसमर्थास्त द्व्यतिरेकेणैव धर्म चिकीर्षवस्तेषा चैवमध्यवसायिना साधोर्धर्मोपदेशप्रवणस्याग्रतऽदमुक्तपूर्व नवति। तद्यथा। नो साधो! न खलु वयं शक्नुमोमुंमानवितु प्रव्रज्या ग्रहीतुमगाराद्गृहान्नागारता साधुनाव प्रतिपत्तु वय त्वानुपूर्व्येण क्रमशोगोत्रस्येति गा त्रायऽति गोत्रं साधुत्व तस्य साधुनावस्य पर्यायेण परिपाल्यात्मानमनुश्लेपयिष्याम ।ऽदमुक्त नवति। पूर्वं देशविरतिरूपतया श्रावकधर्मं गृहस्थयोग्यमनिद्यमनुपालयामस्ततोनुक्रमेण पश्चाच्छ्रमणधर्ममिति। ततएव ते सख्या व्यवस्था श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंत प्रकाशयति। तद्यथा। नान्यत्रानियोगेन। सचाभियोगोगणाभियोगोबलाभियोगोदेवताभियोगोगुरुनिग्रहश्चेत्येवमादिनाभियोगेन व्यापादयतोपि त्रस न व्रतनंग·। तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेत्यस्यायमर्थ। कस्यचिद्गृहपते· पट् पुत्रास्तैश्च सत्यपि पितृपितामहक्रमायाते महति वित्ते तथाविधकर्मोदयाद्राजकुलनाण्डागारे चौर्यमकारि राजपुरुषैश्च नवितव्यतानियोगेन गृहीतास्ते ऽत्येके। परे त्वन्यथा व्याचक्षते। तद्यथा। रत्नपुरे नगरे रत्नशेखरोनाम राजा तेन च परितुष्टेन रत्नमालाग्रमहिषीप्रमुखांत पुरस्य कौमुदीप्रचारोऽनुज्ञातस्तदवगम्य नागरलोकेनापि राजानुमत्या स्वकीयस्य स्त्रीजनस्य तथैव क्रीडनमनुमत राज्ञाच्च नगरे डिंडिमशब्दमाघोषित। तद्यथास्तमनोपरि कौमुदीमहोत्सवे प्रवृत्ते य कश्चित्पुरुष समुपलन्यते नगरमध्ये तस्याविज्ञप्तिक शरीरनिग्रह· क्रियतइत्येव च व्यवस्थिते सत्येकस्य वणिज पट् पुत्रास्ते च कौमुदीदिने क्रयविक्रयसंव्यवहारव्यग्रतया तावत्स्थितायावत्सवितास्तमुपगत। तदंतरमेव स्थगितानि च नगरद्वाराणि तेषाच तत्कालात्ययान्न निर्गमनमनूत्ततस्ते नयसत्रांतानगरमध्यएवात्मानं गोपयित्वा स्थितास्ततोनिष्क्राते कौमुदीप्रचारे राज्ञा रक्षिका· समाहूयादिष्टायथा सम्यक् निरूपयत यूय नात्र नगरे कौमुदीचारे कश्चित्पुरुषोव्यवस्थित? इति। तैरप्यारक्षिकै सम्यक् निरूपयद्भिरुपलन्य पड्वणिक्पुत्रवृत्तातोयथावस्थितएव राज्ञ निवेदित। राज्ञाप्याज्ञानगकुपितेन तेषां षण्णामपि वध समादिष्टस्ततस्तत्पिता पुत्रवधस माकर्णनगुरुशोकविह्वलोऽकाण्डपतितकुलक्षयोन्नातलोचन· किं कर्तव्यतामूढतया गण

गाराउ अणगारियं पवइत्ताए वयं णं चाउद्दसठमुदिठपुसि मासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो इछापरिमाणं करिस्सामो डुविहं तिविहेणं मा खलु मम ठाए किंचि करेहवा करावेहवा तछ विपच्चक्खाइस्सामो ते णं अन्नोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तवंसिया सम्मं कालगताविं वत्तवसिया ते पाणावि वुच्चति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं नवइ इति से महयाउ जण्णं तुप्ने वयह तं चेव जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १७ ॥

अर्थ–वली उदक प्रत्ये नगवत श्री गौतमस्वामी बोल्या के, निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक श्रमणोपासक होय, तेणे एवु व्रत विशेष पूर्व उच्चार कर्युं होय के, निश्चे अमे मुंम थई गृहस्थावास थकी, अणगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी तेथी, अमें चतुर्द्दशी, अष्टमी, चोमासानी त्रण पूर्णिमा, तथा उद्दिष्टतिथि ते महाकल्याणिक तिथि, एटले दिवसे प्रतिपूर्ण सम्यक् प्रकारे पौषध पालता विचरिशुं, तथा वली स्थूल प्राणातिपात पच्चखीशु एणी पेरे स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तान, स्थूल मैथुन, स्थूल परिग्रह, पच्चखीशु इछा प्रमाणे करीशु, "डुविहंतिविहेणं" इत्यादिक नागाये करी पच्चखीशु (माखलुममठाए के०) निश्चे महारे अर्थे पौषध माहे कांहि पचन पाचनादिक म करवु बीजा पासे म करावबु, त्या पण एवु पूर्वोक्त अमे पच्चखाण करीशुं (तेण के०) ते एवा व्रतना उच्चार करनार श्रावक, (अन्नोच्चा के०) अणजम्या, (अपिच्चा के०) पाणी पीधा विनाना, (असिणाइत्ता के०) अने स्नान कर्या विना, पोसहव्रत करे पोसहव्रतमा एटला वाना न करे. (आसदी के०) मचक, (पेढियाउ के०) पीढी, माची इत्यादिक, ते थकी (पच्चारुहित्ता के०) उत्तरीने सम्यक् प्रकारें पौषध लीये. (तेतहाकालगयाकिवत्तवसिया

उय विप्पजहित्ता नुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चं ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरठिइया ॥ ११ ॥

अर्थ–हवे जे उदयपेढालपुत्रनो अनिप्राय पूर्वे कह्यो ते एवो जे,त्रस जीव,स्थावर माहे उपनो तेनो, आराम केतां अरण्यमांहे वेठे विनाश करता, नागरिक पुरुषनी पेठें अवश्य व्रत नंग थाय ए बोल टालवा माटे कहेठे (तसाविवुच्चंति के०) त्रस एटले बे इंद्रियादिक एम पण कहिये, (तसातससंनारकडेणंकम्मुणाणामचणअनुवगयंनवइ के०) ते त्रस, पूर्वबध त्रसनाम कर्मनें उदये त्रसनुं नाम पामे, पठी (तसाउयंचणंपलिरकीणनवइ के०) ण एवे वाक्यालंकारे जेवारें ते त्रसकायनुं आयुष्य परिक्षीण थाय ते त्रसकायनी स्थिति क्या लु थी होय? ते कहेठे (तसकायठिइयाते के०) ते त्रसकायस्थिति, जघन्यथकी अंतरमुहूर्त्त अनें उत्कृष्टसाधिक बे हजार सागरोपम प्रमाणे होय (ततोआउयविप्पजहति के०) ते वार पठी ते त्रसपणुं ठांमे (विप्पजहित्ता के०) ते त्रसपणुं ठामीने (थावरत्ताएपच्चायंति के०) स्थावर पणे उपजे, (थावराविवुच्चंति के०) तेवारे तेने स्थावर पण कहियें (थाव राथावरसंनारकडेणकम्मुणणामचणअनुवगयंनवइ के०) ते स्थावर, पूर्व बध कर्यु जे स्थावरनाम कर्म, तेना उदयथी स्थावर एवुं नाम पामे, एटले स्थावर होय, (थावरा आउयंचणपलिरकीणनवइ के०) वली ते जेटले ते स्थावरनुं आयु कर्म परिक्षीण थाय. (थावरकायठिइया के०) हवे स्थावरकायनी स्थिति केवी होय? तो के, जघन्य अंतर मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट थकी अनंतो काल असंख्यात पुज्जलपरावर्त्त पर्यंत, एवी स्थिति होय. पठी एटली स्थिति खपावीने, (तउआउयंविप्पजहति के०) तेवार पठी स्थावर पणुं ठांमे. (तउआउयंविप्पजहित्ता के०) ते स्थावर स्थिति ठांमीने (नुज्जोपरलोइयत्ताए पच्चायंति के०) वली परलोक पणे उपजे एतावता त्रसपणुं पामे. (तेपाणाविवुच्चंतितेत साविवुच्चंति के०) ते प्राण पण कहिये,ते त्रसनामकर्मने उदये,त्रसनाम पणे उपनाठे.मा टे त्रसप्राण एवे नामे कहिये, तथा त्रस पण कहिये (तेमहाकायाए के०) ते महो टी काया एटले लक्ष योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर वाला एवा महाकाय कहिये. तथा (तेचिरठिइयाए के०) ते चिरस्थितिक नवस्थितिनी अपेक्षायें तेत्रीश सागरोपम प्रमाण स्थिति जाणवी. तो अहीयां श्रावके त्रसनुंज पच्चरकाण कीधुंठे परंतु स्थावरकायपणे उपना ते जीवोनुं पच्चरकाण नथी कर्युं. ते कारणें कयो व्रत नंग थयो? तथा तमे जे नागरीकनो दृष्टांत देखाडयो ते दृष्टांत पण अहीं संनवे नहीं ते दृष्टांत देवाथी अमे एम जाणीयें ठैये जे, तमे गुरुना मुख थकी सूत्रार्थ लीधो नथी केमके, नगरने धर्म सहित ते नागरिक कहिये ते नागरिक पुरुष महारे हणवो नहीं, एवी प्रतिज्ञा ग्रहण करीने प

तन्निर्विषयं श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपप्रत्याख्यानं । तदधुना बहुप्रकारत्रससंनूत्याऽशून्य ता संसारस्य दर्शयति । नगवानाह । संति विद्यते शांतिप्रधानावा एके केचन श्रमणो पासकानवति तेषा चेदमुक्तपूर्वं नवति संनाव्यते च श्रावकाणामेवनूतस्य वचस. संनव इति । तद्यथा । न खलु वयं शक्नुम प्रव्रज्यां ग्रहीतु किंतु ? वयं । णमिति वाक्यालंकारे । चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीषु संपूर्णं पौषधमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्याम· तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्र ह प्रत्याख्यास्यामोद्विविधमिति कृतकारितप्रकार द्वयेनानुमते· श्रावकस्याप्रतिषिद्धत्वात्तथा त्रिविधेनेति मनसा वाचा कायेन च तथा मा इति निषेधे खलु इति वाक्यालंकारे मदर्थं पचनपाचनादिकं पौषधस्य मम कृते मा कार्ष्ट तथा परेण मा कारयत तत्राप्यनुमतावपि सर्वथा यदसनवति तत्प्रत्याख्यास्याम ते एवनूतकृतप्रतिज्ञा· संत श्रावका अनुक्त्वाऽ पीत्वाऽस्नात्वा च पौषधोपेतत्वादासदीपीविकात· प्रत्यारुह्यावत्तीर्य सम्यक् पौषध गृही त्वा कालं कृतवतस्ते तथाप्रकारेण कृतकालाः संत किं सम्यकृतकालाउतासम्यगिति ? कथं वक्तव्य स्यादित्येवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेव वक्तव्यं स्यात् सम्यक्कालगताइत्येव कालग तानामवश्यंनावी तेषां देवलोकेपूत्पादस्तत्रुत्पन्नश्च त्रसएव ततश्च कथ निर्विषयता प्रत्याख्यानस्योपासकस्येति ॥ १७ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा नवंति तेसिंचणं ए व वुत्त पुवं नवइ णो खलु वयं सवाएमो मुंमा नवित्ता आगा राउ जाव पवइत्तए णो खलु वय संवाएमो चाउद्दस ठमुद्दि ठपुण मासिणीसु जाव अणुपालेमाणा विहरित्तए वयं ए अपच्छिम मारणंतिय मलेहणा जूसणा जूसिए नत्तपाणं पडियाइक्खिया जाव काल अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव पाणाइवायं पच्च क्खाइस्सामो जाव सव परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविह तिविहे- ण मा खलु ममठाए किंचिवि जाव आसदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तवसिया सम्मं कालगयाइ वत्तवं सिया ते पाणावि वुच्चति जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १८ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेले. कोइ एक श्रमणोपासक एवा होय, तेणे एवु पूर्वे त उच्चारवालुं वचन कह्यु होय के, निश्चे अमे मुम थइने गृहस्थावास थका यावत् अ

लंकारे। त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीण नवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टत सातिरेकसहस्र द्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरन्नावात्तदायुष्कं ते परि त्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति। इत्येवच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्त. श्रावकस्य व्रत नंगइति?। किंचान्यत् (थावराश्राउयंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं नव ति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकालमसंख्येया. पुजलप रावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरन्नावात्तदायुष्क परित्यज्य नूय. पुनरपि पारलौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरनावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायांति। तेषाच त्रसानामन्वर्थितान्यनि धानान्यनिधातुमाह। (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंनाररुतेन कर्मणा समुत्पन्ना. संत' सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते। तथा विशेषतस्त्रसनयचलनयोरिति धात्वर्थानुगमाद्भयच लनान्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकाया योजनलक्षप्रमा णशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यते। नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायु ष्कसन्नावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यान तेन गृहीत नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति। यस्तु नागरिकदृष्टांतोनवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसा म्यात्केवलं नवतोनुपासितगुरुकुलवानित्वमाविष्करोति। तथाहि। नगरधर्मैरुपयुक्तो नागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञा गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहि स्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किल व्रतनंगइति नवतः पक्षइति। सच न घटते। यतोयोहि न गरधर्मैरुपेत' सबहिस्थोपि नागरिकएवात पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषण नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषण नोपपद्यते तदेवम त्र त्रस सर्वात्मना त्रसत्व परित्यज्य यदा स्थावर समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागा दपरपर्यायापन्नत्वाच्च सएवासौ न नवति तद्यथा नागरिक पदव्या प्रविष्टस्तद्धर्मापेतत्वा त्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न नवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो
गोयमा एत्थिणं से केइ परियाए जण्णं समणोवासगस्स एगपाणा
तिवायविरएवि दंमे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं सासारिया खलु पा
णा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावर
त्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि
उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जं
ति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

सुशीला साधवः एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेव देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषय प्रत्याख्यानं ॥ २० ॥

॥ टीका—पुनरन्येन प्रकारेण प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) पूर्वोक्तेन्योमहारंनपरिग्रहवदादिन्योविपर्यस्ता सुशीलाः सुप्रत्यानंदा साधवइत्यादि सुगम। यावत् (णोणेयाउएनवइत्ति) । एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेवान्यतरेषु देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ॥ २० ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा अप्पेच्छा अप्पारंना अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहति ततो नुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चति जाव णो णेयाउए नवइ ॥ २१ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे. निश्चे आ जगत् मांहे कोइ एक मनुष्य, एवा होय, ते कहेछे. अल्पइच्छा एटले अल्पलोनी, अल्पारंनी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक धर्मानुग, प्राणातिपातादिक थकी एकपक्षे विरति, अनें एकपक्षे अविरति, ए कारण माटे विरताविरत कहेवाय जेनें विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहणकाल प्रारंनी मरणांतसुधी जीवघातरूप दंमनो निषेधछे. ते विरताविरत पुरुष, ते नव संबंधी आयुष्य छांमीनें, तिहांथी पोताना पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइने, सद्गतिये जाय ते त्यां छतां प्राण पण कहेवाय, त्रस पण कहेवाय, इत्यादिक पाठ सर्व, पूर्ववत् जाणवो ज्यां सुधी तमारुं बोलवु न्यायमार्गनुं नथी ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—किंच । सुगममिदं सूत्रं एते चाल्पेच्छादिविशेषणाअवश्यं प्रकृतिनद्रतया सद्गतिगामित्वेन त्रसेषूत्पद्यते ॥ २१ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) सुगमं यावणोणेयाउएत्ति । एते चाल्पेच्छादिविशेषणविशिष्टाअवश्यं प्रकृतिनद्रतया सद्गतिगामित्वेन त्रसकायेषूत्पद्यंतइतिइष्टव्य ॥ २१ ॥

लंकारे। त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीणं नवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरनावात्तदायुष्कं ते परित्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति। इत्येवंच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्तः श्रावकस्य व्रतनंगइति?। किंचान्यत (थावराञ्चाउयंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं नवति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकालमसंख्येयाः पुजलपरावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरनावात्तदायुष्कं परित्यज्य नूयः पुनरपि पारलौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरनावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायाति। तेषांच त्रसानामन्वर्थितान्यनिधानान्यनिधातुमाह। (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंनारकृतेन कर्मणा समुत्पन्नाः सतः सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते। तथा विशेषतस्त्रसनयचलनयोरिति धात्वर्थानुगमाद्भयचलनाच्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकायाः योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यते। नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कसद्भावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यानं तेन गृहीतं नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति। यस्तु नागरिकदृष्टांतोनवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्केवलं नवतोनुपासितगुरुकुलवासित्वमाविष्करोति। तथाहि। नगरधर्मैरुपयुक्तो नागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञां गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहिः स्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किल व्रतनंगइति नवतः पक्षइति। सच न घटते। यतोयोहि नगरधर्मैरुपेतः सबहिस्थोपि नागरिकएवात पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते तदेवमत्र त्रसः सर्वात्मना त्रसत्वं परित्यज्य यदा स्थावरः समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागादपरपर्यायापन्नत्वाच्च सएवासौ न नवति तद्यथा नागरिकः पदृव्या प्रविष्टस्तद्धर्मोपेतत्वात्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न नवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा एत्थिणं से केइ परियाए जएणं समणोवासगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंमे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं संसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

त्रस जीव कह्याछे तेनो सर्वथा प्रकारें श्रावकने आमरणांत सुधी पच्चरकाणछे अनें ज्यां ज्यां स्थावर बोल्याछे त्यां त्यां श्रावकें अनर्थ पच्चरकाण कर्युंछे. तेथी तेमाहे ते जीव, अपना जणी, ए पण पच्चरकाण थाय. एटले नवे भंग मांहे श्रावकनें पच्चरकाण होय ए रीते जाणवुं एवी रीतें घणा दृष्टांते करी श्रावकना पच्चरकाणनो विषय देखाड्यो.॥३४॥

॥ दीपिका–अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसाआराद्देशवर्तिषु स्थावरेपूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणोद्देशाद्बहिर्येत्रसा स्थावराश्च तेपूत्पद्यंते ॥ २८ ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिनोये त्रसास्तेपूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेपु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेपूत्पद्यते ॥ ३० ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते परदेशवर्तिषु त्रसस्थावरेपूत्पद्यंते ॥३१॥ परदेशवर्तिनोये त्रसा स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेपूत्पद्यंते ॥ ३२ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसा स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु स्थावरेपूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसास्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेपूत्पद्यंते । एव नवापि सूत्राणि भणितानि तत्र, यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानश प्रथम व्रतग्रहणादारभ्य श्रावकेणामरणांतोदंम परित्यक्तइति योज्यं । यत्र तु स्थावरास्तत्रार्था य दंमोन निक्षिप्तोन त्यक्त अनर्थाय च दंम परित्यक्तइति । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

॥ टीका–एवमन्यान्यप्यष्ट सूत्राणि द्रष्टव्यानि सर्वाण्यपि नवर तत्र प्रथमे सूत्रे तदेवं यद्व्याख्यातं तच्चैव भूतं तद्यथा गृहीतपरिमाणे देशे ये त्रसास्ते गृहीतपरिमाणदेशास्तेष्वेव । तथा द्वितीयं सूत्रं त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसा आराद्देशवर्तिषु स्थावरेपूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ तृतीये त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणादेशाद्बहिर्ये त्रसा स्थावरास्तेपूत्पद्यते॥२८॥ तथा चतुर्थसूत्रे त्वाराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते तद्देशवर्तिष्वेव त्रसेपूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ पंचम सूत्र तु आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेपु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेपूत्पद्यते ॥ ३० ॥ षष्ठं सूत्रं तु दूरदेशवर्तिनो ये स्थावरास्ते गृहीतपरिमाणास्तेपुत्रसस्थावरेपूत्पद्यंते ॥३१॥ सप्तमसूत्रत्विद परदेशवर्तिनोये त्रसा स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेपूत्पद्यंते ॥३२॥ अष्टमसूत्र तु परदेशवर्तिनोये त्रसा स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु स्थावरेपूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ नवमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसा स्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेपूत्पद्यंते । एवमनया प्रक्रियया नवापि सूत्राणि भणनीयानि । तत्र यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशआदेरारभ्य श्रमणोपासकेनामरणांतोदमस्त्यक्तइत्येव योजनीयं । तत्र तु स्थावरास्तत्रार्थाय दमो न निक्षिप्तोन परित्यक्तोऽनर्थायच दंमः परित्यक्तइति । शेषाक्षरघटना तु स्वबुद्ध्या विधेयेति ॥ ३४ ॥

यांति । तदेवं संसारिणां परस्परगमनं प्रदर्श्याधुना यत्परेण विवक्षितं तदाविष्कुर्वन्नाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमाना स्वायुषा तत्सहचरितैश्च कर्मभि स र्वे निरवशेषास्त्रसकाये समुत्पद्यंते ते त्रसकायादपि तदायुषा विप्रमुच्यमाना सर्वे स्थावर काये समुत्पद्यंते तेषाच त्रसानां सर्वेषां स्थावरकायसमुत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं वर्तते तेन श्रावकेण स्थावरकायवधनिवृत्तेरकारणादत्त सर्वस्य त्रसकायस्य स्थावरकायत्वेनो त्पत्तेर्निर्विषयं तस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपं प्रत्याख्यानं प्राप्नोति । तद्यथा केनचिद्व्रतमेवभूत गृहीत यथा मया नगरनिवासी न हंतव्यस्तच्चो द्वसित नगरमतोनिर्विषयं तत्तस्य प्रत्या ख्यानमेवमत्रापि सर्वेषां त्रसानामभावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आ उसो अस्साकं वत्तवएणं तुम्नचेव अणुप्पवादेणं अत्थिणं से परि याए जेणं समणोवासगस्स सवपाणेहिं सवभूएहिं सवजीवेहिं सवसत्तेहिं दंभे निक्खित्ते भवइ कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तस त्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उव वज्जति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ते पाणावि वुच्चं ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवति ते अप्पयरागा पाणा जे हिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ से महया तसकायाउ उवसंतस्स उवठियस्स पडिविरयस्स जन्नं तुम्नेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवासगस्स एग पाणा पविरएवि दंभे णिक्खित्ते अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे एम कहे उते वादसहित भगवत श्रीगौतम स्वामी, उदयपेढाल पुत्र प्रत्ये एम बोल्या के, निश्चें अहो आयुष्यमन् उदक ! (अस्साकंवत्तवएण के०) अमारी वक्तव्य तायें जे तु वचन कहेले, तेम थयुं पण नथी, अने थशे पण नहीं, ते केमके, समस्त स्थावरजीव, त्रस पणे उपजे एम तमे कहोडो तो, जगत् मांहे त्रस जीवतो असंख्या ताले, अने स्थावर अनंताले तो, अनंता असंख्याता माहे शी रीतें समाय? तथा वली

॥ टीका–तदेव बहुनिर्दृष्टांतै· स्वस्वविषयतां श्रावकप्रत्याख्यानस्य प्रसाध्याधुनात्यंता बंधतां चोद्यस्य सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (नगवचणंउदाहुरित्यादि) नगवान् गौतमस्वा म्युदकं प्रत्येतदाह । तद्यथा नैतद्भूतमनादिके काले प्रागतिक्रांते नाप्येतदप्यऽनंते काले नाव्यं नाप्येत द्वर्तमानकाले नवति । ये त्रसा· प्राणाः सर्वथा निर्लेपतया स्वजात्युच्छेद तोछेत्स्यंति स्थावराजविष्यंतीति तथा स्थावराश्च प्राणिन· कालत्रयेपि नैव समुछेत्स्यं ति त्रसाजविष्यंति यद्यपिच तेषां परस्परसंक्रमेण गमनमस्ति तथापि न सामस्त्येनान्य तरेषामितरत्र सद्भावस्तथाहि न ह्येवन्नूत सनवोस्ति यद्गुत प्रत्याख्यानिनमेकं विहाय परे षां नारकाणां द्वीद्रियादीनां तिरश्चा मनुष्यदेवानां च सर्वदाप्यनाव एवच त्रसविषयं प्र त्याख्यानं निर्विषयं नवति यदि तस्य प्रत्याख्यानिनोजीवतएव सर्वेपि नारकादयस्त्रसा समुछिद्यते न चास्य प्रकारस्य संनवोस्त्युक्तन्यायेनेति स्थावराणा चानंतानामनंतत्वादेव नासंख्येयेषु त्रसेपूत्पादइति सुप्रतीतमिदं तदेव नव्यवछिन्नैस्त्रसै· स्थावरैश्च प्राणिनिर्य द्व दत यूयमन्योवा कश्चिद्वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्र श्रमणोपासकस्यैकत्रसविष योपि दमपरित्यागइति तदेतडक्तनीत्या सर्वमशोननमिति ॥ ३५ ॥

नगवंचणं नुदाहु आउसतो· उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परि नासेइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताच रित्त पावाण कम्माण अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिठइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिनासइ मिति मन्नंति आ गमित्ताणाणं आगमित्तादंसण आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अ करणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिठइ तएणं से उदय पेढालपु त्ते नगवं गोयमं ·अणाढायमाणा जामेव दिसि पाउनूते तामेव दिसि पहारेउगमणाए ॥ ३६ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे, के, अहो आयुष्मन् उदक ! खलु इति निश्चे जे [ ]रुप यथोक्त क्रियानुष्ठाननो करनार एवो श्रमण होय, अथवा माहण एटले ब्रह्मचर्य [ ]नो पालनार एवो ब्राह्मण होय तेनें (परिनासेइ के०) निंदे, (मितिमन्नति के०) तेने विषे [ ]त्री नाव मानतो थको (आगमित्ताणाण के०) तथा सम्यक् ज्ञान, पोताने विषे आ [ ]णीनें, (आगमित्तादसण के०) सम्यक् दर्शन पोताने विषे आणीने, (आगमित्ताचरित्तं के०) सम्यक् चारित्र पोताने विषे आणीने, एतावता सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनो पालनार पण होय. (पावाणकम्माणअकरणाए के०) पाप

अर्थ—हवे भगवंत श्री गौतमस्वामी त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, आ दृष्टांतने विषे पण, निश्चें निर्ग्रंथोनें पूछवुं. ए कारण माटे निर्ग्रंथ उद्देशीने पूछे छे के, अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! निश्चे आ जगत् मांहे परिव्राजक सन्यासी, परिव्राजिका संन्यासिणी, तथा (अन्नयरेहिंतोतिछायययणेहिंतो के०) अन्य तीर्थायतनथकी आवीने (आगम्मधम्मंसव णवत्तियं के०) आगम धर्म सांभलवानें साधु पासे आवी ते(उवसकमेज्जा के०) उद्यम करे ? (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा आवीने उद्यम करे, तो केम तथाप्रकारना परिव्राजक, तथा परिव्राजिकाने धर्म कहेवो ? हा धर्म कहेवो (तचेवउवठाविज्ञिए के०) तेम कहेवो के, ज्यांसुधि तेने उठावकुं कल्पे. ? हा, कल्पे. ते वली परिव्राजक थका चारित्रिया थयाछे, तेनें मंमलें वेसाडवा कल्पे ? हा, बेसाडवा कल्पे तथा आहार पाणी लेवो कल्पे ? हा, कल्पे एवा विहारें विचरता ते वली ज्यां सुधी तथाविधकर्मने उदये करी गृहस्थावास सेवे ? हा, सेवे. तेवारे तेनें तथाप्रकारे आहारपाणी करवा, ममलीमा बेसाडवा कल्पे? तेवारे निर्ग्रंथबोल्या, के, (णोइणठ्ठेसमठ्ठे के०) ए अर्थ समर्थ नथी एतावता तेने मंमलीमां वेसाडवुं न कल्पे. तो हवे जुउ ! के तेनो तेज जीव, तेनी साथे प्रथम आहार पाणी करवो न कल्पे, वच्चे वली आहारपाणी करवो कल्पे, अने वली तेज जीव साथे हमणा आहार पाणी करवो न कल्पे. एम तेनी त्रण अवस्था थइ. प्रथम अश्रमण, पछी वच्चे श्रमण, ने हमणां वली अश्रमण ते अश्रमणपर्याये सहित एवा ते श्रमण निर्ग्रंथनें ममलीमा पोतानी साथें बेसारी जमाडवो न कल्पे. अहो निर्ग्रंथो ! ए दृष्टांतनी पेठे त्रस स्थावरने विषे पण जाणवुं. जेवारे त्रस तेवारे त्रसज, अने जेवारे स्थावर, तेवारे स्थावरज, जाणवा ए रीते मानो, अने एवी रीतें जाणवु एप्रमाणे निर्ग्रंथनी साक्षिये देशविरति प्रमाण करी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकानुद्दिश्याह । सुगमार्थमिदं सूत्रं । तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादय संतोऽसंभोग्या. साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूना सभोग्या पुन श्रामण्यत्यागेऽसंभोग्या एव पर्यायान्यथात्व त्रसस्थावराणामपि योज्य ॥ १६ ॥

॥ टीका—तदेव द्वितीयं दृष्टांत प्रदर्श्याधुना तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकोद्देशेन दर्शयितुमाह । (भगवचणमुदाहुरित्यादि जावसेएवमायाणियव्वत्ति) उत्तानार्थं । तात्पर्यार्थस्त्वय पूर्वे परिव्राजकादय. सतोऽसंभोग्या साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संभोग्या सवृत्ता पुनस्तदभावे त्वसंभोग्याइत्येव पर्यायाऽन्यथात्व त्रसस्थावराणामप्यायोजनीयमिति॥ १६॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं

एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आ

रिहृतं नवति तदेव यथावस्थितमर्थं गौतमस्वामिनावगतोप्युदकः पेढालपुत्रोयदा नगवं गौतममनाड्रियमाणोयस्याएव दिश. प्राडर्नूतस्तामेव दिशं गमनाय संप्रधारितवान्॥३६

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु तहान्नूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंनिएसमाणे सोवित्तावत आढाइ परिजाणेंति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्याणं मंगल देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

अर्थ—नगवत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, अहो आयुष्मन् उदक ! खलु इति निश्चें जे कोइ तथान्नूत श्रमण ब्राह्मणने समीपें एक पण आर्य धर्म संबंधिक रूडु वचन सानलीने सम्यक् प्रकारे संयमने विषे धारीनें (अप्पणोचेवसुहुम्माए के०) पोता थकी सूक्ष्म कुशाग्र वत् बुद्धिये करी (पडिलेहीए के०) आलोचीनें विचारीनें जाणे के, आ रूडा वचनें करी हु (अणुत्तर के०) प्रधान, (जोगखेमपयंलंनिएसमाणे के०) योगक्षेमपद एटले रूडुं मुक्ति साधवा योग्य पद, तेने विषे पहोचो एतावता ए थकी मे रूडु एक पद लाध्यु (सोवित्तावतं के०) ते पुरुष, ते उपदेशना देनार पुरुषनें (आढाइ के०) आदर करे, तथा (परिजाणेंति के०) ए पुज्यछे एवु करी जाणे, तथा तेने वादे, ते आगल अंजली करे (नमंसंति के०) मस्तक नमावे, (सक्कारेइ के०) सत्कार करे, वस्त्रादिके करी प्रतिलान्ने (समाणेइ के०) अन्युत्थानादिक करे, तथा यावत् कल्याणमगल देवता चैत्य एनी उपमा मानि स्तुति करे, तथा, (पज्जुवासंति के०) पर्युपासना करे, यद्यपि ते उपदेशनो दातार कांइ वदनादिक वाछे नही,तथापि ते सानलनारे ते परमार्थ उपकारी नणी यथाशक्तिये विनयादिक समाचरवो.॥३७॥

॥ दीपिका—तदा । नगवान् गौतमआह । हे आयुष्मन्नुदक । य. खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमप्यर्थं धार्मिक सुवचनं श्रुत्वानिशम्यावधार्यात्मनएव तदनुत्तर योगक्षेमपदमित्यवगम्य सूक्ष्मया बुध्या प्रत्युपेक्ष्य विचार्यहमनेन योगक्षेमपदमनुत्तर लनित प्रापित सन् सोपि तावल्लौकिकोपि तमुपदेशदातारमाड्रियते पूज्योयमिति जानाति कल्याण मगल देवता चैत्यमिव पर्युपास्ते प्राकृतजनोपि चेद्धितोपदेशदातार पूजयति तदा किं पुनर्वाच्यमनुत्तरधर्मोपदेशकपूजाया विवेकिजनस्येति । नाव. ॥ ३७ ॥

के०) तेणें तथा प्रकारे काल कीधो, तो तेनें केवा कहिये, ते रुडी पेरे मरण पाम्या कहिये किंवा नही ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के, (सम्मकालगयावित्तव्वसिया के०) ते सम्यक् प्रकारें रुडी रीते कालगत थया एम कहिये, तेवारें श्रीगौतम बोल्या के, ए रीतें जेणें काल कीधो, तेने अवश्य देवलोकने विषे उत्पत्ति जाणीये ठैये केमके, रुडे परिणामें जे मरण पामे ते देव थाय. (तेपाणाविवुच्चति के०) त्यां थका तेने प्राण पण कहिये, (तेतसाविवुच्चति के०) तेने त्रस पण कहिये, ते महाकाय कहीये, तेनें चिरस्थितिक कहिये, तो ए कारणे (तेवहुतरगापाणा के०) ते घणा जीव के,(जेहिंसमणोवासगस्ससुपच्चखायंनवइ के०) जेने विषे श्रावकने रूडूं पच्चरकाण होय अने ते थोडा जीव, के जेने विषे श्रावकनें पच्चरकाण नथी. एम ते श्रावकने महोटी त्रसकाय थकी उपशमठे ते पच्चखाण राखवानो उद्यमठे तेने विराधवानी विरतिठे एवा श्रावकने तमे कहोगो के, एवो कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रावकनें एक पण प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय! ते तमारु वचन न्यायमार्गनुं नथी ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एव दृष्टांतत्रयेण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तजतमेव विचारमाह । नगवान् गौतमउदकं प्रत्याह । शांतिप्रधानाएके श्रमणोपासकानवंति तेषां च इदमुक्तपूर्वं नवति । यथा न खलु वयं शक्नुम प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वय चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु संपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयतोविहरिष्याम तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहं प्रत्याख्यास्याम'। द्विविध कृतकारितनेदात् श्राद्धस्यानुमतेरनिषिद्धत्वात्रिविधं मनोवचनकायैं मा निषेधे पौषधस्यस्य मम कृते किंचित्पचनपाचनादिकं मा कार्षि परेण मा कारयत सर्वथाऽसंनविनोवस्तुनोऽनुमतेरपि निषेध' तत्रापि प्रत्याख्यास्याम ते श्रावकाअनुक्त्वाऽपीत्वाऽस्नात्वा च पौषधयुतत्वादासंदीपीविकात प्रत्यारुह्याऽवतीर्य सम्यक् पौषधं कृत्वा काल कृतवंत ते किं सम्यकृतकालाउतासम्यक् ? एव पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेव वक्तव्यं ते सम्यक्कालगता । एवं कालगतानामवश्यनावी देवलोकोत्पाद. तत्रोत्पन्नाश्च ते त्रसाएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्येति ॥ १७ ॥

॥ टीका—तदेव दृष्टांते प्रत्याख्यातृविषयगतोगृहस्थयतिपुनर्गृहस्थनेदेन पर्यायनेद प्रदर्शित । तृतीयेतु दृष्टांते परतीर्थिकसाधुनावोनिष्क्रमणनेदेन संनोग द्वारेण पर्यायनेद व्यवस्थापितइति । तदेव दृष्टांतप्राचुर्येण निर्दोषा देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तजतमेव विचार कर्तुकामआह । (नगवचणमुदाहुरित्यादि) पुनरपि गौतमस्वाम्युदकं प्रतीदमाह । तद्यथा बहुनि. प्रकारैस्त्रसनाव संनाव्यते ततश्चाशून्यस्तै संसारस्तदशून्यत्वे

एगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी चतुर्दशी, अष्टमी, त्रण चोमासानी पूर्णिमा, तथा महाकल्याणिक तिथिने विषे पौषध लइ न शकियें अमारे छेले कालें मरणने अंते शरीर पातलुं पाडवा संलेषणाने विषे जूसणा एटले आत्मा स्थापवो, स्थापीने भात, एटले अन्न पाणी निषेधिने यावत् मरणकाल अण वांछता मरणा भिलाषा अण करता विचरीशुं यावत् सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन, सर्व परिग्रह, त्रिविध त्रिविध प्रकारे पच्चरकीशुं, तथा अमारे अर्थे कांइ पण पचन पाचनादिक म करो,म करावो,एवुं पण पच्चरकाण करीशु ते श्रावको ए रीते अण जमते,पाणी अणपीते, स्नानादिक अण करते, मंचक, माची इत्यादिक थकी उतरीने ते प्रकारे काल करे. तो तेनें केवा कहियें, रूडा मरणना करनार कहियें के, माठा मरणना करनार कहियें? ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, ते रुडी पेरे कालगत थया कहेवाय, तेपाणाविवुच्चंति इत्यादिक शब्दोनो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो यावत् तमारुं एवुं बोलवुं, ते न्याय मार्गनुं नथी त्यां सुधी जाणवुं ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–पुन. श्राद्धोद्देशेन प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । गौतम प्राह । संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषामेतडुक्तपूर्वं नवति । यथा न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितु वय चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकाया. । यदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिता· सेविताउत्तमार्थगुणैरेव नूता संतोनक्तपानं प्रत्याख्याय कालं दीर्घकालमनवकाङ्क्षमाणाविहरिष्याम· । कोर्थः? न खलु वयं दीर्घकालं व्रतं पालयितु समर्था. किंतु वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारत्यागेन जीवित त्यक्तुं समर्था. । इति सूत्रेणैवाह । (सवंपाणाइवायमित्यादि) यावत्ते तथा कालगता. किं वक्तव्यमेतत्स्यात् सम्यक् ते कालगताइति पृष्टानिर्ग्रंथाआहुर्यथा ते सन्मनस. शोननचित्ता· कालगता इति । ते कालं कृत्वा सुरलोकेषूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नाश्चपि हंतु न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तिप्रत्याख्यानस्य विषया स्यु ॥ १८ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा श्रावकोद्देशेनैव प्रत्याख्यानस्य विषयं प्रदर्शयितुमाह । (नगवचणमित्यादि) गौतमस्वाम्येवाह । तद्यथा संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषां चैतडुक्तपूर्वं नवति । तद्यथा । खलु न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतु नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया सलेखनक्षपणया क्षपितकाययदिवा संलेखनजोषणया सेवनया जोषिता सेविताउत्तमार्थगुणैरित्येवनूता संतोनक्तपानं प्रत्याख्य

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा आरणिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवा सगरस आयाणसो आमरणंताए दंके णिक्खित्ते नवइ णो वहु संजया णो वहुपडिविरया पाण नूय जीव सत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चा मोसाइं एवं विप्पडिवेदंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा जाव कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइ आसुरियाइं किबिसियाइं जाव उववत्तारो नवति तउ विप्पमुच्चमाणा नुज्जो एलमुयत्ताए तमोरुवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए नवइ ॥२१॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछेके,आ जगत्मांहे कोइएक मनुष्य एवा होय के,आरणि क एवुं तीर्थविशेष तेनें विषे रहेनार ते आरण्यवासी,तथा कंदमूलफलाहारी,वृक्षने मूले वसनार एवा पुरुष,तापस विशेष जाणवा (आवसहिया के०) वली कोइएक पानडानी पर्ण कूटी करी रहेनारा, ग्राम निमंत्रिक एटले आजीविका निमित्ते ग्राम समीपे वसनारा,(क ण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक कार्यने विषे रहस्यना करनार,इत्यादि तापस विशेष, जेनें विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहण प्रारंनीने मरणांत सुधी हिंसानो निषेधछे हवे ते तीर्थिक केवाछे ? तोके घणा संयत नथी,कारणके तेमांहे सम्यक्ज्ञान नथी, ते माटें ते पूर्ण सय मने जाणता नथी,तथा प्राण.नूत,जीव,अने सत्वनें विषे जेने घणुं व्रतिपणु नथी ते पोते पोता थकी एवी सत्यामृषा नाषा प्रयुंजीने लोक आगल आवी रीते बोले ते कहेछे मने ब्राह्मण पणाने लीधे दंमादिके करी हणवो नही बीजा कुद्रादिकोने हणवा इत्यादिक पूर्व अध्ययननें विषे कह्युछे,ते सर्व अंहीं जाणी लेवु. एवा मनुष्य,कालमासे काल करीने बालतपश्चर्याने योगें अनेरा आसुरिय किल्बिषीयादिकनी गतिने विषे जाय जे कारण माटे ते जीवघातना उपदेशना देनार,नोगाभिलाषी, तापसो, निस्याधिकार सहित एवी नरकादि क गतिमाहे जाय. वली बालतपनें योगे तेनें प्रथमतो पूर्वोक्त नीचगति प्राप्त थाय, ते वार पछी वली ते आसुरीयादिक गतियकी आयुष्यने क्षये चवीनें वली वली वेहेरा, मूगा, एवा तमोरूप अध मनुष्य थाय. एवा छता तेनें त्रस कहिये, तेने प्राण कहिये, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु इत्यादिक यावत् ए तमारुं वचन न्यायमार्गनु नथी ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—किंचान्यत् एके मनुष्याएवंनूता. स्यु आरण्यिकाआरण्यवासिन आवसथि काग्रामनिमंत्रिका (कण्हुईरहस्सिया) कचिदकार्ये रहस्यका एते सर्वेपि तीर्थिकविशेषा

भगवंचणं उदाहु ण एतं भूयं ण एतं भव्वं ण एतं भविस्संति
जसं तसा पाणा वोछिज्जिहिति थावरा पाणा भविस्संति थाव
रा पाणावि वोछिज्जिहिति तसा पाणा भविस्संति अवोछिन्नेहिं
तसथावरेहिं पाणेहिं जसं तुब्भेवा अन्नोवा एवं वदह णछिणं से
केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥ ३५ ॥

अर्थ-हवे वली उदक पेढालपुत्र प्रत्ये, भगवंत श्री गौतमस्वामी कहेछे के,अहो उ दक ! (णएतंभूयं के०) भूतकालने विषे ए वात थइ नथी, (णएतंभव्वं के०) वर्त्तमा नकालें ए वात थाय नही, (णएतंभविस्संति के०) आगमिक कालें ए वात थशे न ही (जसुंतसापाणावोछिज्जिहिंति के०) जे त्रसप्राणी सर्वथापि विछेद थशे (थावरा पाणाभविस्सति के०) अने जगत् माहे स्थावर प्राणीज रहशे, अथवा स्थावरप्राणी स र्वथा विछेद पामशे, अनें जगत् माहे त्रस प्राणीज रहेशे यद्यपि तेने परस्पर मांहो मांहे गतिछे जे स्थावर फीटी त्रस थाय, अनें त्रस फीटी, स्थावर थाय, परतु समस्त पणे एकनो बीजा मांहे सद्भाव न थाय. तथा एवीपण संभावना नथी जे, एक पच्च रकाणना करनार टाली अन्य नारकी, बेइंद्रियादिक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता,ए समस्तनो अ भाव होय? जो एमज होय तो त्रसनुं पच्चरकाण निर्विषय थाय परतु ए वात संभवे नही! (अवोछिन्नेहितसथावरेहिंपाणेहि के०) एम त्रस अनें स्थावर प्राणीनो अविछेद होय. (जसुतुब्भेवाअन्नोवाएववदह के०) माटें जे तमे अथवा बीजो कोइ, एम कहेके (णछिण सेकेइपरियाए के०) ते कोइ पर्याय नथी के जे पर्याये करी श्रावकने प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय ते वचन, (जावणोणेयाउएभवइ के०) यावत् न्यायोक्त नथी ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका-तदेव बहुदृष्टांतैं श्रावकप्रत्याख्यानस्य सविषयता प्रसाध्याधुना परप्रश्नस्या त्यंतासंबद्धतां दर्शयन्नाह। गौतमस्वामी उदकं प्राह।नैतद्भूत नैतद्भव्य नैतद्भविष्यं यत्त्रसा सर्वथा उछेत्स्यंति स्थावराएव भविष्यंति तथा स्थावराउछेत्स्यंति त्रसाएव भविष्यंति ए तद्द्वयं न सम्भवति नहि कदाप्येव संभवोस्ति यत्प्रत्याख्यानिनमेकं विहायान्येषा नारका णां द्वीन्द्रियादितिरश्चां मनुष्याणां देवानां च सर्वथाप्यभाव । एवहि च प्रत्याख्यान नि र्विषय स्याद्यदि प्रत्याख्यानिनोजीवतएव नारकाद्यास्त्रसा· समुछिद्यंते नचाय प्रकार सम्भ वी स्थावराणा वानंतत्वाऽसख्येयेषु त्रसेषूत्पादसंभव एव सति य द्वदत यूयमन्योवा वद ति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयच्छ्रावकस्यैकत्र सविषयोदमत्यागइति तदेव त्वदीय मेर्थ सर्वमशोभनमिति ॥ ३५ ॥

कर्मनें अण करवा नणी उद्यो. एटले सावधान थयो. (सेखलुपरलोगंपलिमंथत्ताए चिठ्इ के०) ते पण निश्चे परलोकना विघात नणी तिष्टे, एटले रहे, एटले शुं कह्युं? तोके, चारित्रिउं पुरुष घणोज गुणवान् होय परतु यथोक्त श्रमण ब्राह्मणनी निंदा करे, ते परलोकनो, तथा संयमनो विराधक कहेवाय हवे जे गुणवतना गुण ग्रहण करे, ते नां फल देखाडेछे. जे महासत्ववत पुरुष रत्नाकरनी पेरें गंनीर, श्रमण ब्राह्मणने निंदे नही, ते सहित थको तेनी साथें मैत्री नाव पोषण करे, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनें यथोक्त पालतो ठतो, पापकर्मने अण करवा नणी उद्यो एटले सावधान थयो. ते निश्चें थकी परलोकनो तथा संयमनो आराधक थाय. ए कारण मार्टे श्रमण ब्रह्मणनी निंदा न करे ! ते पुरुष रूडो जाणवो. एवु जाणीने ए निंदा परिहरवी. अने सूधो संयम पालवो (तएणंसे के०) तेवार पठी ते उदक पेढाल पुत्र, नगवन् श्री गौतम समीपें एवा अर्थो सांनलीनें, श्रीगौतम स्वामीनें आदर दीधा विना पूठया विना जे दिशा थकी आव्यो हतो, तेहिज दिशा तरफ फरी गमन चितवन करतो हवो॥ ३६॥

॥ दीपिका–अथोपसंहारमाह । गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक ! य. खलु श्रमणं य थोक्तक्रियाकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनापते मैत्रीं मन्यमानोपि निंदति स म्यक् ज्ञानदर्शनं चारित्रं च आगम्य प्राप्य पापकर्मणामकरणायोछित. खलु लुब्धप्रकृति· पंमितंमन्य. परलोकस्य लजते. पलिमंथाय विघाताय तिष्ठति य. पुनर्महासत्व सागर वजंनीर. श्रमणादीन्न परिनापते न निंदति तेपुच परमां मैत्रीं मन्यते सम्यक् ज्ञानादीन्य नुगम्य पापकर्मणामकरणायोछित· सखलु परलोकविशुद्ध्या तिष्ठति अनेन वाक्येन पर निदावर्जनाद्यथावस्थितार्थकथनेन श्रीगौतम· स्वौद्धत्यं· परिहरतिस्म एव श्रीगौतमे न यथास्थितार्थज्ञापितोप्युदकोयदा गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिश प्रादुर्भूतस्ता मेव दिशं गमनाय प्रधारितवान् चिंतितवान् ॥ ३६ ॥

॥ टीका–सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (नगवचणउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्याह । आ युष्मन्नुदक ! य खलु श्रमण वा यथोक्तकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनापते नि दति मैत्रीं मन्यमानोपि तथा सम्यक्ज्ञानमागम्य तथा दर्शनं चारित्रं च पापानां कर्म णामकरणाय समुछित. स खलु लघुप्रकृति पंमितंमन्य परलोकस्य सुगतिलक्षणस्य तत्कारणस्य वा सत्संयमस्य पलिमथाय तद्विलोडनाय तद्विघाताय तिष्ठति यस्तु पुन र्महासत्वोरत्नाकरवजंनीरोन श्रमणादीन् परिनापते तेपु च परमां मैत्रीं मन्यते सम्यग्द र्शनचारित्राण्यनुगम्य तथा पापाना कर्मणामकरणायोछित स खलु परलोकविशुद्ध्यावतिष्ठ ते अनेन च परपरिनापावर्जनेन यथावस्थितार्थस्वरूपदर्शनतोगौतमस्वामिना स्वौद्धत्यं